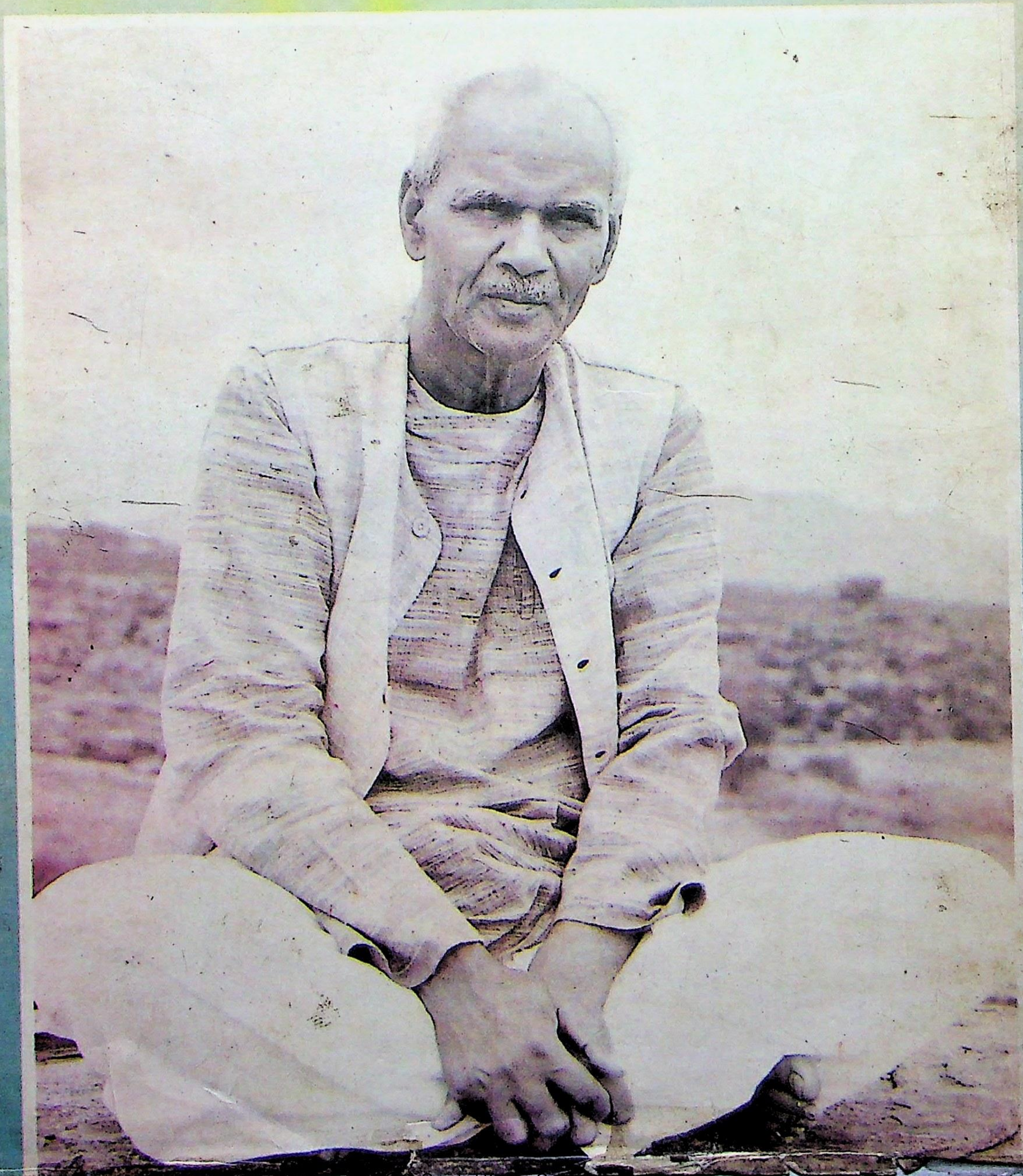
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक



पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय—२३

विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक



कुछ शब्द वाङ्मय के विषय में

प्रस्तुत वाङ्मय एक प्रयास है, इस युग के व्यास परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के जीवन-दर्शन को जन-जन तक पहुँचाने का। आज से ८५ वर्ष पूर्व आगरा के आँवलखेड़ा ग्राम में जन्मा वेदमूर्ति तपोनिष्ठ की उपाधि प्राप्त भारतीय संस्कृति के उन्नयन को समर्पित एवं सच्चे अर्थों में ब्राह्मणत्व को जीवन में उतारने वाला यह राष्ट्र-संत अपने अस्सी वर्ष के आयुष्य में (१९११ से १९९०) आठ सौ वर्ष से अधिक का कार्य कर गया। सादगी की प्रतिमूर्त्ति, ममत्व, स्नेह से लबालब अंत:करण एवं समाज की हर पीड़ा जिनकी निज की पीड़ा थी, ऐसा जीवन जीने वाले युगदृष्टा ने जीवन भर जो लिखा, अपनी वाणी से कहा, औरों को प्रेरित कर उनसे जो संपन्न करा लिया, उस सबको विषयानुसार इस वाङ्मय के खण्डों में बाँधना एक नितान्त असम्भव कार्य है। यदि यह सफल बन पड़ा है तो मात्र उस गुरुसत्ता के आशीष से ही, जिनकी हर श्वास गायत्री यज्ञमय थी एवं समिधा की तरह जिनने अपने को संस्कृति-यज्ञ में होम कर डाला।

उनकी जीवनावधि के अस्सी वर्षों में से प्रारंभिक तीस वर्ष जन्मस्थली आँवलखेड़ा, आगरा जनपद एवं नगर में एक साधक, समाज-सुधारक, प्रखर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की तरह बीते। इसके बाद के तीस वर्ष मथुरा में एक विलक्षण कर्मयोगी, संगठन निर्माता, भविष्य दृष्टा, सारी मानव-जाति को एक सूत्र में पिरो कर युग निर्माण सत्संकल्प के रूप में मिशन का 'मैनिफेस्टो' सतयुगी समाज का आधार बताकर प्रस्तुत करते दृष्टिगोचर होते हैं। इस पूरी अवधि में एवं आयुष्य के अंतिम बीस वर्षों में परमवंदनीया माताजी का



पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

विज्ञान और अध्यात्म : परस्पर पूरक



सम्पादक
ब्रह्मवर्चस



प्रकाशक

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

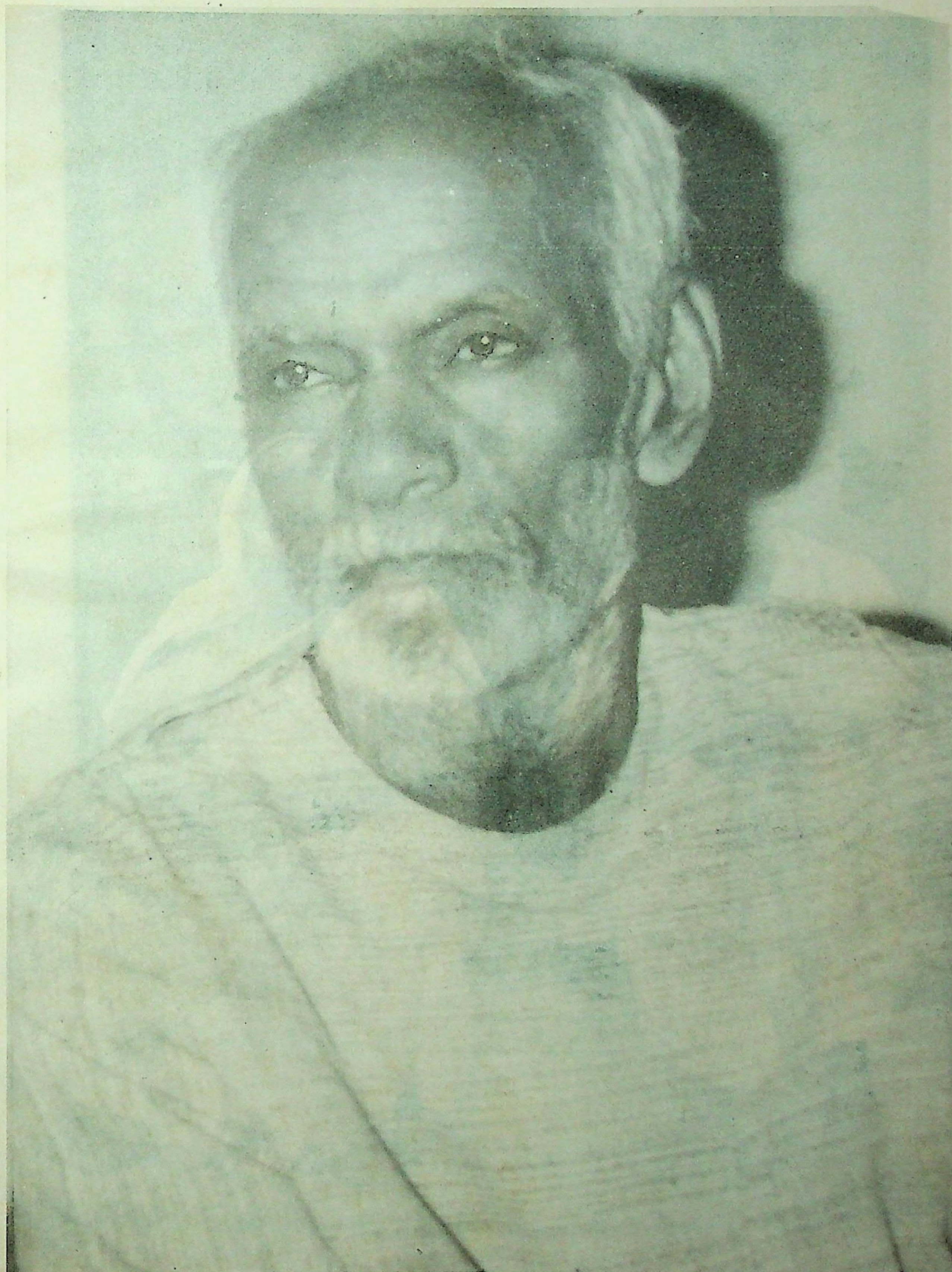
❒
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❒
प्रथम संस्करण १९९५



❒
मूल्य १२५)
सत्तर खण्डों के सैट का मूल्य ७०००)

❒
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा



एक ऋषि, एक वैज्ञानिक, एक संत, एक सुधारक, एक मनीषी



स्नेह-वात्सल्य की मूर्तिमान हमारी आराध्य सत्ताएँ

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतः स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसाज्जत प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

भूमिका

एक जन भ्रान्ति यह सदा से रही है कि विज्ञान और अध्यात्म परस्पर विरोधी हैं । दोनों में कुत्ते-बिल्ली जैसा बैर है एवं इनका परस्पर सहकार तो दूर, मिलना कतई सम्भव नहीं । तार्किकों का कहना है कि मनुष्य की प्रगति जो आज इस रूप में दिखाई देती है, उसका मूल कारण विज्ञान का उद्भव व विकास है । धर्म या अध्यात्म तो एक अफीम की गोली मात्र है जो प्रगति के स्थान पर अवगति की ओर ले जाकर व्यक्ति को अकर्मण्य बनाती है । परमपूज्य गुरुदेव इस तर्क से सहमत न हो वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की वकालत करते हुए कहते हैं कि यह नितान्त असत्य है कि पदार्थ विज्ञान और अध्यात्म दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं । पूज्यवर के अनुसार अध्यात्म एक उच्चस्तरीय विज्ञान है । यदि दृष्टिकोण परिष्कृत कर अध्यात्म और विज्ञान को उस नजरिये से देखा जा सके तो ज्ञात होगा कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं । दोनों एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते तथा दोनों के पारस्परिक अन्योन्याश्रित सहयोग पर ही इस धरित्री का भविष्य टिका हुआ है ।

अपने इस प्रतिपादन की पुष्टि में पूज्यवर ने अनेकानेक तर्क दिए हैं । उनने ब्रह्माण्ड की सुव्यवस्था, स्रष्टि के अविज्ञात रहस्यों, पृथ्वी से परे अन्तर्ग्रही जीवन, ज्योतिर्विज्ञान आदि से जुड़े विभिन्न तथ्यों पर गहराई से प्रकाश डालते हुए यह प्रतिपादित किया है कि यह सब जो भी कुछ हमें स्रष्टि चक्र के रूप में दिखाई देता है, वह सब सुव्यवस्थित है एवं प्रमाणित करता है कि इन सबके मूल में कोई सत्ता कार्य कर रही है जो हमें भले ही दिखाई न दे किन्तु उसके ही कारण जीवन स्पन्दित होता है, यह विज्ञान भी अब मान रहा है । ऐसी स्थिति में नास्तिकतावादियों का यहमत कि ईश्वर नहीं है व यहाँ कुछ भी किसी परोक्ष सूक्ष्म जगत की चेतना के संचालन द्वारा नहीं, स्वत: मात्र संयोगवश चल रहा है, गलत है ।

सौरमण्डल का एक घटक है पृथ्वी, इतने अनगिनत सौर मण्डल और उनमें से प्रत्येक की अनेकों आकाश गंगाएँ । उनमें से एक हमारा सौरमण्डल है, जिसका अधिपति है सूर्य । ब्रह्माण्ड के इस हृदय की धड़कन पर सूर्य से निकलने वाली रश्मियों-तेज पर एवं सुनियोजित ताप पर पृथ्वी एवं उस पर रहने वाले जीवधारियों का जीवन टिका हुआ है । ब्रह्माण्ड से जुड़े विज्ञान जगत के ही अनेकानेक प्रमाण-तथ्य, आँकड़े देते हुए परमपूज्य गुरुदेव यह प्रमाणित करते हैं कि यह ब्रह्माण्ड न अनगढ़ है, व अव्यवस्थित । अणु में विभु-लघु में महान की तरह जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है, यहाँ चेतना के सागर में हम सब तैर रहे हैं एवं वही चेतना हम सबके अंदर भी स्पन्दन कर रही है । इन तथ्यों के आधार पर वे विज्ञान की कसौटी पर ही अध्यात्मवाद के एक-एक सिद्धान्त को प्रमाणित करते हुए अपनी ऐसी शैली में, जो कहीं और इस सुगम-सुग्राह्य ढंग से देखने को नहीं मिलती, दोनों ही विधाओं का-महाशक्तियों का समन्वय प्रतिपादित करते हैं ।

इस समग्र वाड्मय में प्रकृति जगत की ऐसी विलक्षणताओं का वर्णन है, अविज्ञात संयोगों का एवं अजूबों का वर्णन है जिनका कि विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं । प्रत्यक्ष के पीछे छिपे परोक्ष जगत के इन विलक्षण क्रिया-कलापों का, अद्भुत दृश्यों-रहस्यमय ध्वनियों का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि जहाँ विज्ञान समाप्त होता है वहाँ अध्यात्म आरम्भ होता है तथा उस परिवेश में समझने का प्रयास करने पर वह सब समझ में आ जाता है जो सम्भवत: एक वैज्ञानिक, तर्किक बुद्धि को अनगढ़ सा लग रहा था ।

क्या ब्रह्माण्ड में हम अकेले हैं ? हमारे अलावा भी कहीं कोई जीवन विद्यमान है ? किसी अन्य ग्रह पर भी क्या हम जैसे ही या भिन्न शक्लों के जीवधारी विद्यमान हैं ? यह सारी गुत्थियाँ अरसे से मानवी मन को-उसकी जिज्ञासाओं को जगाती-कुरेदती रही है । पूज्यवर लिखते हैं कि लोकान्तर से अंतरिक्षयान पहले भी भूलोक पर आते रहे हैं, इसके प्रमाण धरती पर अनेक हैं तथा उड़नतश्तरियों के रूप में वे भले ही आज

हमें यदा-कदा, इधर-उधर दिखाई पड़ती हों । हो सकता है कि उनका विज्ञान हमसे भी अधिक विकसित हो । हमसे भी अधिक सुविकसित, सुव्यवस्थित सभ्यताएँ हो सकती हैं, ब्रह्माण्ड में कहीं और बैठीं वे हमसे संपर्क स्थापित करना चाहती हों, ऐसे में हमें हमारे विज्ञान की उपलब्धियों पर गर्व न कर अध्यात्म की गहराई में प्रवेश कर इन सब का मर्म ब्राह्मीचेतना के गर्भ में तलाशना चाहिए ।

ज्योतिर्विज्ञान को पूज्यवर ने गणित की कसौटी पर प्रस्तुत करते हुए अन्तर्ग्रही धाराओं के आदान-प्रदान एवं परोक्ष जगत के मानवी सत्ता पर प्रभाव के एक-एक पक्ष पर प्रकाश डाला है । भौतिकी यदि ज्योतिर्विज्ञान की चुनौती स्वीकार करले तो बहुत से वे रहस्य जो आज हमें समझ में नहीं आते, मनुष्य उन्हें जानकर उनसे अनेकों गुना लाभ उठा सकता है जैसा कि हमारे ऋषिगण उठाते थे ।

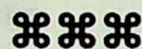
विज्ञान और ज्ञान दोनों में से कोई किसी का विरोधी नहीं वरन् ये दोनों एक-दूसरे के सहयोग पर टिके हैं । जब-जब विज्ञान अध्यात्म की वर्जनाओं से मुक्त हो अपनी गोटी खुद फैंकने की एवं मर्यादाओं से मुक्त प्रगति की बात सोचता है तो वह प्रगति की दिशाहीन अंधी दौड़ की ओर अग्रसर हो उठता है जो विनाशकारी सिद्ध होती है । जब-जब अध्यात्म विज्ञान की कसौटी पर कसे जाने से स्वयं को मनाकर देता है एवं एकांगी-एकाकी चलने की बात करता है, तब-तब वह मूढ़-मान्यताओं, अंध विश्वासों, प्रथा परम्पराओं के घेरे में बँधता हुआ अपने पैरों में बेड़ी बाँध लेता है । पूज्य गुरुदेव चाहते हैं कि आज आवश्यकता है, परिष्कृत अध्यात्म तंत्र की बेड़ियों से मुक्त धर्मतंत्र की तथा धर्म अध्यात्म की वर्जनाओं-सीमा बंधन में चलने वाले विज्ञान तंत्र की । इसके लिए प्रायोगिक एवं दार्शनिक आधार पर क्या कुछ स्थापित किया जा सकना सम्भव है, यह सारा रोचक विवेचन इसमें पढ़ सकेंगे ।

-ब्रह्मवर्चस

विषय सूची

अध्याय-५

विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय आज की सर्वोपरि आवश्यकता



विज्ञान और अध्यात्म : परस्पर पूरक १.१

ब्रह्माण्ड न तो अनगढ़ है, न बेतुका

सौर-मण्डल : हमारा बड़ा परिवार

खगोल विज्ञानियों के अनुसार अपनी पृथ्वी को एक गैस बादल से समुद्र का, पिण्ड गोलक का, रूप धारण करने वाले समय को प्रायः ११ अरब वर्ष हुए हैं । सौर-मण्डल के अन्य सदस्यों का जन्म भी प्रायः एक साथ हुआ, इससे उनकी आयु भी वही मानी जायेगी । इसके अपवाद भिन्न-भिन्न ग्रहों में भिन्न-भिन्न संख्या में देखे गए । चन्द्रमा हो सकते हैं, जो बाद में बनते रहे हैं । पृथ्वी के चन्द्रमा के सम्बन्ध में कहा जाता है, कि समुद्र वाले गड्ढे से टूट कर अन्तरिक्ष में विचरण करने वाला पदार्थ भर है । जो गिर तो पड़ा पर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण परिधि को लाँघ न सकने के कारण उसी के इर्द-गिर्द परिभ्रमण करने लगा । यही बात अन्य ग्रहों के चन्द्रमाओं के सम्बन्ध में भी लागू होती है ।

हमारी पृथ्वी सौर-मण्डल के मध्य में नहीं है, वरन् एक कोने में पड़ी है । ठीक इसी प्रकार अपना सौर-मण्डल भी मन्दाकिनी आकाश गंगा के ठीक मध्य में अवस्थित न होकर एक कोने में पड़ा है । सूर्य प्रति सेकण्ड २२० किलोमीटर की गति से अपने सौर-मण्डल सहित आकाश गंगा केन्द्र की परिक्रमा करता है । इस सन्दर्भ में समझा जा सकता है कि जब से धरती पर मनुष्य का जन्म हुआ है, तब से लेकर अब तक उस केन्द्र की एक परिक्रमा भी पूरी नहीं हो पायी है । अपनी आकाश के गंगा केन्द्र से यह सौर-मण्डल ३० हजार प्रकाश वर्ष हटकर है ।

अन्यान्य ग्रह नक्षत्रों की तरह ही अपने इस सौर-मण्डल का भी सृजन हुआ है । वाष्पीय महामेघ न केवल अपने केन्द्र में फटा, वरन् उसके टुकड़े भी उसी क्रम से फटते चले गए । अपने-अपने उद्गम केन्द्र के इर्द-गिर्द उसकी आकर्षण शक्ति के कारण परिभ्रमण करने की स्थिति में फँसते चले गए । विस्फोट के जिस क्रम से वितरण विकिरण फैलता है, उसी अनुपात से आकर्षण भी उत्पन्न होता है । वह अपने परिकर को एक सीमा तक ही बिखरने देता है । इसके बाद सभी को एक सूत्र में समेट लेता है और परिवार क्रम के अनुरूप निर्वाह करने लगता है । ब्रह्माण्ड में विद्यमान अनेकानेक सौर-मण्डलों के सम्बन्ध में यह घटनाक्रम घटित हुआ है ।

अपने सौर-मण्डल के सदस्यों में कुछ ग्रह हैं, कुछ उपग्रह । ग्रहों में सूर्य को छोड़कर नौ ग्रह हैं । इनमें से कुछ तो खुली आँखों से देखे जा सकते हैं और कुछ ऐसे हैं जो अधिक दूरी तथा रोशनी की कमी के कारण विशेष उपकरणों से ही देखे जा सकते हैं । इन ग्रहों की दूरी, परिधि, भ्रमण-कक्षा तथा प्रति सेकण्ड चाल का लेखा-जोखा इस प्रकार है—

बुध

सूर्य से अधिकतम दूरी २९७ लाख किमी., सूर्य की परिक्रमा ८८ दिन में, अपनी धुरी पर परिभ्रमण ५९ दिन । दौड़ की गति प्रति सेकण्ड ४७.६ किलोमीटर ।

शुक्र

सूर्य से अधिकतम दूरी १०९० लाख किमी. । सूर्य की परिक्रमा २२४.७ दिन । अपनी धुरी पर एक चक्कर २४४ दिन । गति प्रति सेकण्ड ३५ किमी. ।

पृथ्वी

दूरी १५२१ लाख किमी. सूर्य परिक्रमा ३३५.२६ दिन । धुरी पर चक्कर २३ घण्टा ५६ मि. ४ सै. । गति २९.८ किमी. ।

मंगल

दूरी २४९१ लाख किमी., परिक्रमा ६८७ दिन । चक्कर २४ घण्टा ३७ मि. २३ से. । गति प्रति सेकण्ड २४.१ किमी. ।

बृहस्पति

दूरी ८१५७ लाख किमी. । परिक्रमा ११.८६ वर्ष । धुरी भ्रमण १० घण्टा १४ मि. । गति प्रति सेकण्ड १३.१ किमी. ।

शनि

दूरी १५०७० लाख किमी. । परिक्रमा २९.४६ वर्ष । धुरी भ्रमण १० घण्टा १४ मि. । गति ९.६ किमी. प्रति सेकण्ड ।

यूरेनस

दूरी ३००४० लाख किमी. । परिक्रमा ८४.१ वर्ष । धुरी ११ घण्टे । गति ६.८ सेकण्ड ।

नैपच्यून

दूरी ४५३७० लाख किमी. । परिक्रमा १६४.८ वर्ष । धुरी १६ घण्टे । गति ५.४ सेकण्ड ।

प्लूटो

दूरी ७३७५० लाख किमी. परिक्रमा २४७.७ वर्ष । धुरी ६ दिन ९ घण्टे । गति ४.७ प्रति सेकण्ड ।

सौर-मण्डल के चन्द्रमाओं की खोज में क्रमशः वृद्धि होती जा रही है । धरती का एक चन्द्रमा सर्वविदित है । उसे आँखों से देखा जा सकता है, पर सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों में किसके इर्द-गिर्द कितने चन्द्रमा परिभ्रमण करते हैं । इसका पता खोज-बीनों के सहारे धीरे-धीरे ही हस्तगत होता रहा है ।

इस सन्दर्भ में नवीनतम जानकारी देने वाला एक नक्शा वैज्ञानिक पत्रिका 'नेशनल ज्योग्राफी' में कुछ दिन पूर्व ही प्रकाशित हुआ है । जिसमें पृथ्वी के एक चन्द्रमा के अतिरिक्त मंगल के २, बृहस्पति के १६, शनि के १६, यूरेनस के ५, प्लूटो का १, नैपच्यून के २ चन्द्रमा दर्शाए गए हैं । इस प्रकार सौर-परिवार का चन्द्र समुदाय ४३ सदस्यों का हो जाता है । यह अपने मूल ग्रहों से महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान करते हैं । आमतौर से वे लेते अधिक और देते कम हैं, पर बृहस्पति का 'इओ' चन्द्रमा इसका अपवाद भी है । वह अपनी विशेष परिस्थिति के कारण २० हजार

एम्पीयर की एक विद्युत धारा अपने बृहस्पति की ओर भेजता है । इस कारण वहाँ एक प्रकार का सायरन सदा बजता रहता है ।

अन्य ग्रहों के विशेषतया सौर-मण्डल के अनुदान अपनी पृथ्वी को निरन्तर मिलते रहते हैं । इनमें से कुछ प्रत्यक्ष हैं, कुछ अप्रत्यक्ष । प्रत्यक्ष उपहार उल्काओं के रूप में प्राप्त होते रहते हैं । धरती पर उल्काएँ निरन्तर बरसती रहती हैं । उनमें से कुछ तो वायु-मण्डल में प्रवेश करते समय ही जल-भुन जाती हैं । कुछ बचे या भुने रूप में धरातल पर बरसती रहती हैं । उनसे न केवल पृथ्वी के भार में अभिवृद्धि होती है, वरन् और भी बहुत कुछ मिलता रहता है ।

मंगल और बृहस्पति के बीच एक उल्का पिण्डों की शृंखला परिभ्रमण करती है । इसे एस्टेरायड मण्डल कहते हैं । उसमें कुछ बहुत छोटे आम, अमरूद जैसे और, कुछ एक हजार किलोमीटर व्यास तक के उल्का खण्ड हैं । इनमें से कुछ कभी-कभी पथभ्रष्ट होकर पृथ्वी की ओर चल पड़ते हैं । फलतः उसके वायु-मण्डल में प्रवेश करते समय उन्हें भयंकर घर्षण का सामना करना पड़ता है । इसमें वे बुरी तरह जल-भुन जाते हैं, उनके अधजले खण्ड कभी-कभी पृथ्वी पर भी गिरते हैं । इनको उल्कापात या टूटते हुए तारे के रूप में देखा समझा जाता है । गणितीय आधार पर जाना गया है कि प्रायः एक हजार टन उल्का धूलि धरती पर गिरती है । उसके वजन में यह वृद्धि हर वर्ष होती चली जाती है ।

भूतकाल में उल्कापात जितना होता था, अब उतना नहीं होता । इसका कारण पृथ्वी के वायु-मण्डल का क्रमशः अधिक सघन होते चले जाना है । चन्द्रमा पर वायु-मण्डल के अभाव में उस पर भयंकर उल्कापात होता रहता है । उसके धरातल में पाये जाने वाले गड्ढे इसी कारण बने हैं । पृथ्वी पर अनेक सरोवर इसी कारण बने हैं । खड्डों में उल्कापात होने से पृथ्वी की गहरी सतह भी प्रभावित होती रही है और उस कारण भूकम्पों और ज्वालामुखियों का नया आधार खड़ा होता रहा है ।

उल्काओं ने जहाँ धरती को लातें मार कर, चिकौटी काट-काट कर उत्तेजित किया और परिवर्तन प्रक्रिया को तेजी से आगे बढ़ाया है, उस दृष्टि से उन्हें श्रेय भी दिया जा सकता है । यों अपने समतल गोलक को चेचक जैसा दाग-दगीला और कुरूप भी उन्हीं ने बनाया है । अणुओं का परिवर्तन और सम्मिश्रीकरण में भी इस प्रहार प्रक्रिया से बहुत सहायता मिली है । सामान्य निर्जीव अणुओं का सूक्ष्म जीवी स्तर तक विकसित होना एवं फफूदी शैवाल से बढ़ते-बढ़ते वनस्पति स्तर तक पहुँचने में भी परिवर्तन गति को बढ़ाने में उल्काओं की अच्छी खासी भूमिका रही है ।

जीन्स ढाँचे को सुनिश्चित रूप देने में फ्रान्सिस क्रिक का कथन यह भी है कि धरती का जीवन उल्कापातों के माध्यम से धरती पर उतरा है ।

स्वीडन के दार्शनिक स्वान्त आहेर्नियस ने भूतकाल की तरह इन दिनों भी आकाश से धरती पर जीवन की अनेक धारों के उतरने की बात कही थी । उनका आधार दर्शन था । इसलिए उस पर ध्यान नहीं दिया गया, पर अब उनके मत को वैज्ञानिक प्राश्रय मिल रहा है और यह विश्वास बढ़ता जा रहा है कि अन्तरिक्ष और धरातल के बीच न केवल पदार्थों और ऊर्जाओं का आदान-प्रदान होता है, वरन् जीवन की विशिष्ट धाराएँ उतरने का भी अनुभव होता है ।

सूर्य के अनुदान में व्यवधान या व्यतिरेक उत्पन्न होने से धरती निवासियों के लिए अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं । अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकम्प, बाढ़, महामारी जैसी दुर्घटनाओं को गिना जाता है । वनस्पति के उत्पादन एवं गुण धर्म में अन्तर पड़ना, वातावरण में उलट-पुलट होने के कारण देखा जाता है । प्राणि जगत की प्रवृत्तियों के सामान्य क्रम में अन्तर आने और प्रवाह उलटने पर सम्बन्धित व्यवस्थाएँ भी ऐसी ही उथल-पुथल में गड़बड़ाती हैं । कुल मिलाकर सूर्य द्वारा उगले गए अव्यवस्थित उफान के सामान्य क्रम से व्यतिरेक ही उत्पन्न करते हैं और उसने कारण अभ्यस्त ढर्रे में व्यतिरेक होने के कारण चिन्ताजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । एक ग्रह से दूसरे ग्रह के बीच जो आदान-प्रदान सामान्यतया चलते रहते हैं, सन्तुलन बने रहने में सहायता करते हैं । उनमें भी इस कारण अव्यवस्था फैलती है और उस कारण विशेष रूप से विकसित और प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों के साथ अधिक घनिष्ठ होने के कारण मनुष्य ही अधिक प्रभावित होता है ।

सौर-कलंकों के उभार वाले वर्षों में पिछले दिनों सर्वविदित दुर्घटनाएँ विनाशकारी युद्धों के रूप में सामने आयी हैं । १७५० से १९५० तक के दो सौ वर्षों की घटनाओं पर इस सन्दर्भ में दृष्टिपात करने से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सौर-विकरण का प्रभाव मनुष्यों की युद्धोन्माद प्रवृत्ति के रूप में किस प्रकार उबल पड़ता है और किस तरह भयानक मार-काट मचती है ।

१७६३ ब्रिटेन युद्ध, १७८९ फ्रान्सीसी क्रान्ति, १८०५ ट्रेफलगर युद्ध, १८१५ वाटरलू युद्ध, १८५७ भारत गदर, १८६५ अमेरिकी गृह-युद्ध, १९०४ रूस-जापान युद्ध १९१४ प्रथम विश्व युद्ध, १९३४ द्वितीय विश्व युद्ध, १९४७ भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम—ये सभी समय ऐसे थे, जिनमें सूर्य-कलंक चरम ऊर्जा उगल रहे थे ।

सौर-कलंकों की विशालता का एक अधिक प्रामाणिक और स्पष्ट चित्र स्काइलैब यान से धरती पर भेजा था । उसमें ५ लाख ६० मील ऊँचाई तक उठती और चारों ओर फैलती हुई ज्वालाएँ दिखायी गई हैं । इससे पूर्व भी और बाद में भी ऐसे अनेक अवसर आते रहे हैं जिनमें इन ज्वालाओं की ऊँचाई तथा चौड़ाई इससे भी कहीं अधिक थी ।

ऐसे वर्षों में चर्म रोग से लेकर केन्सर आर्वुदों में असाधारण वृद्धि होती है । आत्म-हत्याओं का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक बढ़ जाता है । बलात्कार, अपहरण, आक्रमण एवं अपराधों का दौर रहता है । उत्तरी ध्रुव की गतिविधियाँ असामान्य हो उठती हैं । चुम्बकीय तूफान आते हैं और रेडियो, टेलीविजन जैसे संचार साधनों में गड़बड़ी होती है ।

सौर-ज्वालाएँ छोटी भी होती हैं और बड़ी भी । थोड़ी देर में ही उछलकर आकाश में विलुप्त भी हो जाती हैं और देर तक उनकी शिखा यथावत् बनी रह कर लहराती रहती है । कुछ मिनटों से लेकर कुछ घण्टों तक अपने एक रूप में बनी रहती है, बाद में उनका स्वरूप घटता या बढ़ता रहता है । इन्हीं अव्यवस्थित परिस्थितियों में नैपोलियन, चंगेज खाँ, सिकन्दर, हिटलर जैसे दुर्दान्त व्यक्ति जन्म लेते हैं ।

उस अवधि में सर्वत्र उत्तेजना छायी रहती है, इसका कई क्षेत्रों को तो कुछ लाभ भी होता है किन्तु मनुष्यों में विशेष रूप से आवेश दृष्टि रहती है, उनका सन्तुलन शिथिल पड़ता जाता है और उद्धत कार्य करने लगते हैं। अपराधी प्रवृत्तियाँ पनपती हैं और विग्रह खड़े होते हैं।

पृथ्वी सौर-परिवार का एक सदस्य है। इस पर रहने वाले प्राणी भी उसी के नाती, पोते-परपोते हैं। हम सभी को इस पारिवारिकता के अनुदानों और उत्तरदायित्वों को समझना चाहिए, साथ ही आत्मनिर्भरता के सिद्धान्तों को समझना चाहिए। जिन्हें अपनाकर अनुकूलता का लाभ उठाया और प्रतिकूलता का सामना किया जाता है।

ब्रह्माण्ड के हृदय की धड़कन

मनुष्य का हृदय धड़कता है और उस आधार पर समस्त शरीर में रक्त संचार एवं गतिशीलता का माहौल बनता है। धड़कन बन्द हो जाने पर शरीर की मृत्यु सुनिश्चित है।

ब्रह्माण्ड को भी ईश्वर का विराट रूप माना गया है। उसका भी कोई हृदय होना चाहिए। यह धड़कन वैज्ञानिकों ने सुनी है और उसे किसी तारे से आने की कल्पना छोड़कर यह स्वीकार किया है कि यह ब्रह्माण्ड की हृदय धड़कन है।

पृथ्वी पर अन्तरिक्ष से कुछ क्रमबद्ध रेडियो संकेत आते रहते हैं। उनके सम्बन्ध में कई अनुमान लगाए जाते हैं जिनमें से एक यह भी है कि किसी विकसित सभ्यता वाले लोकवासी पृथ्वी के साथ सम्बन्ध सूत्र जोड़ने के लिए यह आदान-प्रदान संकेत भेजते हैं।

अब उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी मिली है और प्रतीत हुआ कि पलसार्स तारों से एक विशेष प्रकार की शक्तिशाली रेडियो बौछार होती है। वही इन वीप-वीप संकेतों के रूप में धरती तक आते-आते बदल जाती है। इतनी सशक्त रेडियो बौछार का समीपवर्ती क्षेत्र में और कोई उद्गम स्रोत है नहीं।

यह पलसार्स तारे क्या हैं? इनका विवेचन करते हुए अन्तरिक्ष विशेषज्ञों ने इनकी संरचना अद्भुत बतायी है। वे कहते हैं कि जब कोई तारा जीर्ण-शीर्ण होकर मरणासन्न होता है, तब उसका विस्तार सिकुड़ते-सिकुड़ते अत्यन्त सघन हो जाता है। विशाल विस्तार थोड़े से में सिमट जाता है। सूर्य अपनी पृथ्वी से ३,३०,००० गुना भारी है। यदि इसकी ऊर्जा समाप्त हो जाय तो वह पिचक कर मात्र दस किलोमीटर व्यास का गोला बन जायेगा। इतने पर भी उसका भार उतना ही बना रहेगा जितना अब है। सभी मरणासन्न तारों की यही स्थिति होती है।

इस सिकुड़न में जहाँ विस्तार कम होता है, वहाँ उनकी रेडियो धर्मिता असंख्य गुनी बढ़ जाती है और वह समूचे ब्रह्माण्ड में फैलने लगती है। दूरी के हिसाब से जो ग्रह जितने समीप होते हैं, वे उस विकिरण से उतने ही अधिक प्रभावित होते हैं। दूरी बढ़ते जाने पर प्रभाव घटते जाना स्वाभाविक है।

रुक-रुक कर विकिरण धरती पर आने से लगता है, ब्रह्माण्ड का दिल धड़कता है। मनुष्य का हृदय जिस तरह धुक-धुक करता रहता है, उसी प्रकार क्रमबद्ध रूप से इन संकेतों पर ध्यान केन्द्रित करने पर लगता है कि ब्रह्माण्ड शरीर का कोई हृदय केन्द्र है और वहाँ यह धड़कन जैसी हलचल होती है। इस मान्यता की संगति इसलिए और भी अधिक अच्छी तरह बैठ जाती है कि प्रकृतिगत हलचलों के पीछे भी किसी पेण्डुलम गति को काम करते समझा जाता है। घड़ी की हलचल पेण्डुलम क्रम पर आधारित है। हृदय की धड़कन को भी पेण्डुलम व्यवस्था माना जाता है। ब्रह्माण्ड का क्रम भी इसी आधार पर चल रहा हो तो क्या आश्चर्य?

इस पलसार्स समूह में भी एक विलक्षण है, इसका नाम १५३ रखा गया है। यह अपने स्थान पर अवस्थित है। अन्य साथियों की तरह अपनी धुरी पर घूमता नहीं और बौछार का सतत् क्रम चलाता है। जब कि अन्य धुरी पर घूमने के कारण ध्रुव केन्द्र सामने होने पर ही पृथ्वी की ओर बौछार पहुँचा पाते हैं। इस समुदाय का एक ही स्थिर क्यों है? इसके बारे कहा जाता है कि यह पिछले ब्रह्माण्ड का बचा हुआ अवशेष है जो किसी प्रकार किसी कोने में महाप्रलय और महासृजन की चपेट में आने से बच गया है।

नाचता सूर्य, जो सत्तर हजार ने देखा

घटना १३ अक्टूबर, १९१७ की है। पुर्तगाल के कोबिडा इरिया नामक स्थान में तीन बच्चों ने पेड़ पर लटकते एक प्रकाश को देखा। प्रकाश के बीच में एक चन्द्रवदनी देवी मुस्करा रही थी। लड़के डरने लगे तो उस देवी ने कहा—"डरो मत! मैं स्वर्ग से आयी हूँ। तुम लोग इसी समय आया करो तो प्रकाश समेत मेरे दर्शन करते रह सकोगे।"

लड़कों ने बात सब जगह फैला दी। दूसरे दिन उस गाँव के आस-पास के लोग सत्तर हजार की संख्या में उस स्वर्ग की देवी के दर्शन करने एकत्रित हुए। युवती के दर्शन तो न हुए पर लोगों ने बादलों के बीच चाँदी जैसा चमकता हुआ एक दिव्य प्रकाश का गोला देखा। दर्शकों में पढ़े-बिना-पढ़े, आस्तिक-नास्तिक, मूढ़-तार्किक, विद्वान सभी किस्म के लोग थे। सभी ने उस समय वह प्रकाश पुंज देखा और आश्चर्यचकित रह गए कि आखिर यह है क्या? गोला स्थिर न रहा उसने कई घेरे बनाकर कलाबाजियाँ खानी शुरू कीं। गोला तश्तरी जैसा हो गया। इसकी कई प्रकार की आकृतियाँ बनने लगीं। बहुत समय तक उसमें इन्द्र-धनुष उभरा रहा। इन्द्र-धनुष बहुत लम्बा था। अन्तरिक्ष के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक उसकी लम्बाई थी। इस समय हल्की वर्षा हो रही थी। दर्शकों के कपड़े उसमें भीग रहे थे। इतने में प्रकाश के गोले ने एक गरम लहर का चक्कर लगाया और देखते-देखते सबके कपड़ों से भाप उठने लगी और वे सब ऐसे सूख गए, मानों वर्षा से किसी के कपड़े भीगे ही न हों।

इस घटना की जानकारी मिलने पर सारे पुर्तगाल में तहलका मच गया। पुर्तगाल के सर्व प्रख्यात दैनिक पत्र मार्से क्यूलों के सम्पादक ने इस घटना का आँखों देखा विवरण छापा और उसे 'सूर्य का नृत्य' नाम दिया।

मनोवैज्ञानिकों में से कुछ ने तुक ठिठाई की कि सत्तर हजार व्यक्ति एक ही कल्पना से आबद्ध थे। फलतः उन्हें वैसा ही स्वरूप प्रतीत हुआ। जिनकी समझ में यह तुक नहीं आयी, उन्होंने

सीधे-साधे शब्दों में इसे दैवी चमत्कार कहते हुए, प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर शान्ति का बोधक बताया ।

भौतिक के विज्ञानी और मनोविज्ञानी ऐसी घटनाओं का अपने ढंग का अर्थ लगाते हैं । मनोविज्ञानी वी. जी. जुग ने अपनी पुस्तक 'फ्लाइंग सासर' पुस्तक में एक घटना का वर्णन लिखा है कि "एक जगह चार व्यक्तियों को एक प्रकाश का गोला दीखा । पर मुझे नहीं दीखा । इसका कारण यह है कि वे चार व्यक्ति पहले से ही वैसी कल्पना किए बैठे थे । पर मेरी कल्पना वैसी न थी ।" फिर भी यह एक प्रश्न बना ही रहता है कि सत्तर हजार व्यक्तियों को एक ही तरह का दृश्य एक ही समय में कैसे दीखा ? भौतिक विज्ञानी इसे ब्रह्माण्डीय हलचल कह सकते हैं । फिर भी उसका कुछ कारण तो होना चाहिए ।

सत्तर हजार लोगों ने एक ही समय में एक ही घटना देखी । सबके गीले कपड़ों से पानी भाप बनकर कर उड़ा और कपड़े सूख गए, कैसे ? इन प्रश्नों का उत्तर अभी भी देना बाकी है । मनोवैज्ञानिक जादूगरी 'मास हिप्नोटिज्म' या ब्रह्माण्ड में हुई कोई घटना कहने से काम चलता नहीं । इसे एक दैवी चमत्कार मान लेने में भी कोई हर्ज नहीं । दैवी चमत्कार भी इस विश्व व्यवस्था और प्रकृति घटना का ही एक अंग ही तो है ।

यहाँ सब कुछ चल रहा है अचल कुछ भी नहीं

इस जगत में स्थिर कुछ नहीं, सब कुछ चलायमान है । मनुष्य अपने अधिकार एवं सम्पर्क के पदार्थों एवं व्यक्तियों के बिछुड़ने पर उद्विग्न होता है, तब वह यह भूल जाता है कि यह प्रकृति का अनिवार्य नियम है । एक का मरण ही दूसरे का जन्म है । एक की हानि ही दूसरे का लाभ है । यदि पदार्थ और व्यक्ति एक स्थिति में यथावत् भी बने रहें, तो फिर यहाँ स्तब्ध जड़ता का ही साम्राज्य होगा । हलचलें ही इस विश्व की शोभा बनाए हुए हैं । उत्पादन, वृद्धि और मरण का क्रम ही इस संसार में शोभा, सुषमा, सक्रियता और नवीनता बनाए रहने में समर्थ हो रहा है । इच्छा अथवा अनिच्छा से इस विधि-विधान को इसमें स्वीकार करना पड़ता है ।

न केवल मनुष्य जीवन से सम्बद्ध क्षेत्र में, वरन् इस विश्व ब्रह्माण्ड के प्रत्येक क्षेत्र में उलट-पुलट की महान् गतिविधियाँ निरन्तर चल रही हैं । अपनी धरती को ही लें, उसके दृश्यमान क्षेत्र में कितने अद्‌भुत परिवर्तन होते रहते हैं । आज जहाँ जल है, वहाँ कल थल बन जाता है और जहाँ थल है, वहाँ जल का विशाल भण्डागार दिखायी पड़ता है । परिवर्तन के प्राकृत नियम से अपना भूतल तक बच नहीं सका, फिर बेचारा मनुष्य सदा एक ही स्थिति में बना रहे, उससे सम्बद्ध पदार्थ और व्यक्ति यथास्थान बने रहें, यह कैसे हो सकता है ?

पृथ्वी के जल-थल भाग का जैसा नक्शा आज हम भूगोल एवं एटलस की पुस्तकों में देखते हैं, सदा से वैसी ही स्थिति नहीं रही है, उसमें ढेरों बार उलट-पुलट होती रहती है । जहाँ आज अथाह जलराशि का समुद्र फैला हुआ है, वहाँ किसी समय थल भाग था और जहाँ इन दिनों भूखण्ड दीखता है, वहाँ कभी गहरा समुद्र था । पृथ्वी सिकुड़ती, फूलती साँस लेती और करवट बदलती रही है । इस उथल-पुथल में जल का स्थान थल ने और थल का स्थान जल ने ले लिया है । महाद्वीप जितने अब गिने जाते हैं, भूतकाल में कभी उससे ज्यादा रहे हैं, कभी कम । जिन क्षेत्रों के आवागमन में इन दिनों समुद्र बाधक है वहाँ कभी निर्बाध रीति से पैदल अथवा थल-वाहनों से आना-जाना बना रहता था । उन दिनों का सुविस्तृत थल क्षेत्र कट-कटकर अब टुकड़े-टुकड़े हो गया है । बीच में समुद्र आ जाने से अब ये क्षेत्र सम्बद्ध न रह कर असम्बद्ध हो गए हैं ।

भारत क्षेत्र को ही लें । वह उत्तर की ओर खिसकता चला आ रहा है और दक्षिण भाग समुद्र में डूबता जा रहा है । खगोल शास्त्रियों के अनुसार पिछले एक करोड़ वर्ष में वह ३० डिग्री उत्तर को खिसक आया है और यह क्रम अभी भी जारी है ।

आज भूगोल को पूर्वी-पश्चिमी गोलार्द्धों में बाँटा जाता है । भूतकाल में यह स्थिति नहीं थी, तब उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्ध था । उत्तरी गोलार्द्ध में पूरा एशिया, यूरोप, उत्तरी अमेरिका सम्मिलित थे । दक्षिणी गोलार्द्ध में आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका आदि थे । दोनों गोलार्द्धों के बीच में समुद्र तो था, पर इतना चौड़ा और गहरा नहीं । आज जहाँ अटलान्टिक महासागर है, वहाँ कभी अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका का महाद्वीप था । ईसा से १०० वर्ष पूर्व के तत्वज्ञानी तथा विज्ञानी पोसीडोनियस ने इस महाद्वीप की भूतकालीन स्थिति के सम्बन्ध में बहुत कुछ तथ्य प्रस्तुत किए हैं और उसका नाम 'अतलांतीस' लिखा है । ईसा से ७०० वर्ष पूर्व के प्रख्यात कार्व हैसिवड और रोमन विद्वान होरेस ने भी उस महाद्वीप का उल्लेख किया है । उस समय तक उस समुद्र तल में डूबे भू-भाग के सम्बन्ध में आवश्यक प्रमाण मौजूद थे । सिसीलियन विद्वान डायोडारिस, स्पेनिश न्यायाधीश एडोरियस, महामनीषी पाइथियस, महाकवि होमर आदि की रचना में उस लुप्त महाद्वीप के सम्बन्ध में तकालीन जन-श्रुतियों एवं उपलब्ध तथ्यों का उल्लेख पाया जाता है ।

विद्वान प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'टाइमेयस' में इस महाद्वीप का न केवल भौगोलिक वर्णन किया है, वरन् वहाँ की राजकीय आर्थिक और सामाजिक स्थिति के बारे में बहुत कुछ लिखा है । अचानक एकबार महा भयंकर भूचाल आया और प्रलय जैसे दृश्य उपस्थित हो गए । बहुत बड़ा भू-भाग समुद्र में समा गया और समुद्र में डूबी जमीन थल के रूप में ऊपर आ गई । प्लेटो ने यह सब यों ही नहीं लिखा । उसने ईसा से ४०० वर्ष पूर्व उस क्षेत्र में लम्बी शोध-यात्राएँ की थीं और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उस समय के थल क्षेत्र को किसी समय का समुद्र तल सिद्ध किया था ।

प्रो. शूल्टन, रिचार्ड हैनिंग, ऐडोल्फ शूल्टन जैसे पुरातत्ववेत्ताओं ने भी उस जल प्रलय को तथ्य समर्थित बताया है, जिसने बहुत बड़े क्षेत्र को जल से थल में और थल से जल में बदल दिया था । जर्मन प्रोफेसर शूल्टन ने इस विषय में अत्यधिक दिलचस्पी ली है । उन्होंने न केवल ऐतिहासिक प्रमाणों पर अपना प्रतिपादन किया, वरन् खुदाई के कितने ही प्रयोग करके पृथ्वी के करवट बदलने की बात को सर्वथा सत्य सिद्ध किया । इनकी खोजों के आधार पर वार्सीलोनो विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डॉक्टरेट' की उपाधि से सम्मानित किया । उन्हें इस ओर दिलचस्पी किसी भूतकालीन पुरातत्ववेत्ता अप्पियन के ग्रन्थ 'आइवेरिका' से मिली

थी, जिसमें जल-प्रलय की प्रतिक्रिया का विशद् वर्णन था। शूल्टन की शोध १२ खण्डों में प्रकाशित हुई है। इस ग्रन्थ में पृथ्वी के आरम्भ काल से लेकर अब तक समय-समय पर होती रही उलट-पुलट का सचित्र वर्णन है।

ध्रुव तारे के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह स्थिर है, पर वस्तुतः यह कहने भर की बात है, कि इस समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में जब कुछ भी स्थिर नहीं तब बेचारा ध्रुव किस प्रकार एक स्थान पर जमा बैठा रह सकता है।

पृथ्वी यों नारंगी की तरह गोल तो है, पर सूर्य की परिक्रमा करते हुए अपनी धुरी पर भी घूमती है। वह बिल्कुल सीधी स्थिति में नहीं, वरन् अपनी धुरी पर एक तरफ झुकी हुई है। यह झुकाव उसकी भ्रमणशीलता के बीच भी यथावत् बना रहता है। इस झुकाव की ठीक सीध में जो तारा पड़ता है, उसे ध्रुव कहते हैं।

झुकाव स्थल पर सूर्य का प्रभाव भी विलक्षण प्रकार का तथा अन्य स्थानों से सर्वथा भिन्न स्तर का पड़ता है। इसलिए वहाँ छः महीने का दिन छः महीने की रात, आकाशीय ज्योति, विभिन्न प्रकार के प्रकाशों का आभास जैसी विचित्रताएँ दिखायी पड़ती हैं। उन्हीं अचम्भों में से एक यह भी है कि जो तारा उस क्षेत्र की सीध में पड़ता है, वह अचल दिखाई पड़ता है। वस्तुतः उसकी वैसी स्थिति है नहीं। अन्य तारकों की तरह वह भी चलता ही रहता है।

अचल होते हुए भी पृथ्वी के स्थानों के अनुरूप ध्रुव का स्थान भी बदलता दीखेगा। हरिद्वार में जिस स्थान पर वह दिखाई देगा, बम्बई, रंगून आदि से देखने पर वह उस स्थान की अपेक्षा काफी नीचा या ऊँचा दिखाई देगा। भू-मध्य रेखा के दक्षिण में जाने पर तो उसके दर्शन ही नहीं हो सकेंगे।

पृथ्वी, समुद्र, ध्रुव आदि स्थिर दीखने वाले पदार्थ जब अस्थिर हैं, तो फिर न जाने मनुष्य ही क्यों आशा करता है कि उसका शरीर, वैभव एवं कुटुम्ब सदा स्थिर एक रस बना रहेगा ? प्रकृति की परिवर्तन प्रक्रिया को यदि हम विनोदपूर्वक देख सकें तो ही प्रसन्न रह सकेंगे, सुखद परिवर्तनों के साथ दुःखद भी आते ही रहेंगे। हमें दोनों के लिए प्रबुद्ध मनःस्थिति अपनाकर स्वागत के लिए तैयार रहना ही चाहिए।

लघुतम मानव जीवन यह संसार महत्तम

ब्रह्माण्ड का विस्तार इंच, फुट, गज और मीलों से नापा नहीं जा सकता। उसे केवल समय माप सकता है, क्योंकि वह जब एक मूल बिन्दु से विकसित होना प्रारम्भ हुआ था, तब से आज तक बढ़ता ही जा रहा है।

प्रकाश एक सेकण्ड में १,८६,००० मील चलता है। एक वर्ष में वह १८६०००× ६० × ६० × २४ × ३६५ $\frac{१}{४}$ मील = ५८६६७१३६००००० मील चलता है। इतनी दूरी को १ प्रकाश वर्ष कहते हैं। वैदिक सम्पत्ति के विद्वान लेखक पं. रघुनन्दन शास्त्री ने पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति का समय परार्द्ध और मन्वन्तरों के हिसाब से १६७२६४०००० वर्ष निकाला है जबकि पृथ्वी को इससे अधिक ही होना चाहिए। इस हिसाब से अकेले इतने ही समय में ब्रह्माण्ड का विस्तार—५८६६७१३६००००० × १६७२६४०००० मील होना चाहिए। पर पृथ्वी तो सौर-मण्डल का एक अति छोटा-सा ग्रह है, इससे पहले और बाद का विस्तार तो इससे भी अरबों गुना अधिक है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह ब्रह्माण्ड ५० करोड़ प्रकाश वर्ष के घेरे में है। १० करोड़ तो नीहारिकायें मात्र हैं जो अनेक सौर-मण्डलों को जन्म दे चुकीं और दे रही हैं।

पीले रंग का हमारा सूर्य एक प्रकाशोत्पादक आकाशीय पिण्ड—'तारा' माना गया है। इसके मुख्य ६ ग्रह, लगभग १००० अवान्तर ग्रह, अनेक पुच्छल तारे एवं उल्का समूह हैं। इन सबके द्वारा सूर्य को चारों ओर से घेरा गया, आकाश सब मिलाकार सौर- मण्डल कहलाता है। भारतीय मत के अनुसार जहाँ तक सूर्य की किरणें गमन कर सकती हैं वह सब सौर- मण्डल का विस्तार है। इस विस्तार का अनुमान करना ही कठिन है जबकि सौर-मण्डल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ऐसा है जैसे १० करोड़ मन गेहूँ के ढेर में पड़ा हुआ गेहूँ का एक छोटा दाना। एटलस में सारी पृथ्वी का नक्शा निकाल कर अपने गाँव के अपने घर की जगह ढूँढें तो उसकी माप ही नहीं निकाली जा सकेगी, ऐसी ही नगण्य स्थिति सौर-मण्डल की इस विराट् ब्रह्माण्ड में है। यहाँ इस सूर्य जैसे करोड़ों सूर्य और अरबों चन्द्रमा दिन-रात प्रकाश करते रहते हैं।

किन्तु हमारी दृष्टि में यह विस्तार ही अलौकिक है। सौर-मण्डल के विस्तार का छोटा-सा अनुमान नवग्रहों के विस्तार से लगाया जा सकता है। ३००० मील व्यास वाला बुध (मरकरी) सूर्य से ३ करोड़ ६० लाख मील दूर है। यह ८८ दिन में सूर्य की परिक्रमा कर लेता है। ७८०० मील व्यास का शुक्र (वीनस) सूर्य से ६७०००००० मील दूर है। २२४$\frac{१}{२}$ दिन में सूर्य की परिक्रमा करता है। इसके बाद कहीं ७६२० मील व्यास की हमारी पृथ्वी है, जो सूर्य से ६३००००००० मील दूर है और ३३५$\frac{१}{४}$ दिन में सूर्य की परिक्रमा लगाती है।

सूर्य का घेरा डालने वाला अगला ग्रह मंगल (मार्स) है। इसका व्यास तो पृथ्वी से छोटा कुल ४२०० मील है, पर यह सूर्य से १४१०००००० मील दूर और ६८७ दिन में सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है। बृहस्पति (जुपीटर) का व्यास महाभयंकर ८७००० मील है और सूर्य से ४८३०००००० मील दूर है तथा १२ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करता है। ७४००० मील व्यास वाला शनि सूर्य से ८८६०००००० मील दूर है और २९$\frac{१}{२}$ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा लगाता है। वारुणी (यूरेनस) ३१००० मील, वरुण (नेरच्यून) ३३००० मील व्यास वाले सूर्य से क्रमशः १८० करोड़ और २८० करोड़ मील दूर पृथ्वी की ८४ वर्ष और १६४$\frac{१}{२}$ वर्ष में परिक्रमा लगाते हैं। सबसे अधिक दूरी का ग्रह यम (प्लूटो) सूर्य से ३७० करोड़ मील दूर है। ३००० मील व्यास वाले इस बुध के समान छोटे से ग्रह को सूर्य की परिक्रमा करने में २४८ वर्ष लग जाते हैं। बेचारा यम जब तक एक चक्कर पूरा करके फिर उसी स्थान पर पहुँचता होगा तब पृथ्वी

में कम से कम ३ पीढ़ियाँ जन्म लेकर मर चुकी होती हैं। वे अनुमान भी नहीं लगा पाते होंगे कि क्या यही वह पृथ्वी है जिसे पहले चक्कर में कुछ और ही ढंग और तरीकों से देख गए थे।

यह ६ तो प्रमुख ग्रह हैं। उन्हीं का विस्तार इतना विशाल है। अभी तो ५०० करोड़ और भी तारे, धूमकेतु और क्षुद्र ग्रह हैं, जिनके व्यास १० मील से लेकर कई-कई हजार मील के हैं। सारा सौर-मण्डल महादानव की तरह है। यदि कहा जाय तो वह हजार भुजाओं वाले सहस्र बाहु, अनेक मुँह वाले दशानन और अपने पेट में सारी सृष्टि भर लेने वाले लम्बोदर की तरह विकराल है और मनुष्य उस तुलना में रेत के एक कण, सुई के अग्रभाग से भी हजारवें अंश जितना छोटा। जैसे मनुष्य जब चलता है तो चींटा, मच्छरों को नगण्य पाप-पुण्य से परे मानकर मारता-कुचलता निकल जाता है, उसे कभी ध्यान ही नहीं आता कि इतने भी छोटे कोई जीव हैं। उसी प्रकार सौर-मण्डल की यह अदृश्य शक्तियाँ हमें कुचलती और क्षुद्र दृष्टि से देखती निकल जाती होंगी तो हम उनका क्या बिगाड़ सकते हैं। लगी तो रहती है आये दिन शनि की दशा दीन मनुष्य उससे भी तो छुटकारा नहीं ले पाता।

चन्द्रमा सबसे पास का उपग्रह है वहाँ लोग थोड़े समय में हो आये। अभी तो बुध है, वहाँ मनुष्य जाय तो २१० दिन तब लगें जब वह इतनी ही तीव्र गति से उड़ान करे जैसे चन्द्रयात्रा के लिए। शुक्र में पहुँचने में २६२, मंगल में ५६८, बृहस्पति में २७२४, शनि में ४४१६, यूरेनस, नेपच्यून तथा यम तक पहुँचने में क्रमशः ३२ वर्ष, ६१ वर्ष और ६२ वर्ष चाहिए जब कि मनुष्य की अधिकतम आयु ही १०० वर्ष है अर्थात् कोई यहाँ से बाल्यावस्था में चले और यम का चक्कर लगाकर आये तो वह बीच में ही मर जायेगा।

इतनी दूर की यात्राओं के लिए यात्री को और अधिक सामान न हो तो भी ऑक्सीजन, पानी, ऑर्गनिक पदार्थ, क्षार आदि तो चाहिए ही। यह सामान भी एक बड़ा बोझ होगा। बुध के लिए ०.६१५ टन, शुक्र के लिए ०.६२१ टन, मंगल के लिए १.८२४ टन, बृहस्पति के लिए ५.६८१ टन शनि १२.६३६ टन चाहिए। यदि इतना वजन (१ टन=२७ मन के लगभग) खाद्यान्न ही हो जाय तो अन्तरिक्षयानों की भीमकायिकता का तो अनुमान लगाना ही कठिन हो जायेगा। चन्द्रमा पर जाने वाले अन्तरिक्षयान में ५६००००० पुर्जे लगे थे। यदि उनमें लगे ९९.९ प्रतिशत काम करें शेष .१ प्रतिशत=५६०० पुर्जे ही खराब हो जायें तो मनुष्य बीच में ही लटका रह जाय।

यह यात्राएँ तभी सम्भव हो सकती हैं जब मनुष्य को कुछ दिन मार कर जीवित रखा जा सके। वैज्ञानिक उसकी शोध में पूरी तरह जुट गए हैं। हर नयी उपलब्धि इस तरह के नये प्रश्न और नयी समस्या को जन्म देती हुई चली जा रही है। महात्वाकांक्षाएँ हनुमान के शरीर की तरह बढ़ीं तो प्रश्न और समस्याओं ने सुरसा का रूप धारण कर लिया। आज का विज्ञान मनुष्य को ऐसी ही समस्याओं में ग्रस्त करता हुआ चला जा रहा है।

वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग किए हैं जिनसे मनुष्य को अस्थायी मृत्यु प्रदान करके उन्हें पुनर्जीवित करना सम्भव हो गया है, पर समस्या केवल आयु सम्बन्धी ही तो नहीं है, अन्तरिक्ष की विलक्षण शक्तियों से भी तो भय कम नहीं है, न जाने कितने सूक्ष्म शक्ति प्रवाह आकाश में भरे पड़े हैं, वे मानव-नियन्त्रित अन्तरिक्षयानों को एक सेकण्ड में कहीं का कहीं पहुँचा सकते हैं। अमेरिका को इन शक्ति-प्रवाहों का पता भी है।

इन सीमित भौतिक शक्ति, परिस्थिति और अपनी लघुत्तम क्षमता लेकर मनुष्य अपने सौर-मण्डल के विस्तार को ही नाप सकने में समर्थ नहीं, तो फिर विराट् ब्रह्माण्ड को जान लेना उसके लिए कहाँ सम्भव है ?

पर मनुष्य कोई अकारण वस्तु भी नहीं है। भगवान ने यह शरीर एक ऐसी मशीन बनायी है कि इसमें वे सारे साधन, पदार्थ और शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, जिनसे ब्रह्माण्ड के विस्तार को यहीं बैठे-बैठे मजे में नापा जा सकता है। सृष्टि में जो कुछ है यहीं बैठे-बैठे देखा, सुना और प्राप्त किया जा सकता है पर उसके लिए उसे अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। लघुत्तम बनना पड़ेगा। अपने भीतर खोज करनी पड़ेगी और उन सूक्ष्म शक्तियों का जागरण करना पड़ेगा जो विराट् की सम्भावनाओं को हमें घर बैठे ही उपलब्ध करा सकती हैं।

सुव्यवस्थित ब्रह्माण्ड के अव्यवस्थित 'ब्लैक होल'

ऐसा अनुमान किया जाता है कि ब्रह्माण्ड में लगभग एक अरब आकाशगंगाएँ हैं। एक आकाशगंगा में सौ अरब तारे हैं। सूर्य भी एक बृहत् तारा है तथा पृथ्वी एक ग्रह। पृथ्वी के अतिरिक्त आठ ग्रह—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो हैं। सूर्य के चारों ओर ये नौ ग्रह अपनी अण्डाकार कक्षा में परिक्रमा करते रहते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक उपग्रह है। बृहस्पति के तेरह, शनि के दस, यूरेनस के पाँच, मंगल एवं नेपच्यून के दो-दो उपग्रहों की जानकारी अब तक मिली है। बुध एवं शुक्र ग्रहों के उपग्रहों के होने की कोई जानकारी नहीं मिल पायी है।

जिस आकाशगंगा की पृथ्वी अंग है, अनुमानतः उसका व्यास है एक लाख प्रकाशवर्ष तथा मोटाई दस हजार प्रकाशवर्ष। ऐसी एक अरब आकाशगंगाएँ ब्रह्माण्ड में अनुमानतः अभी हैं। अपनी आकाशगंगा के तारों, ग्रहों व उपग्रहों की भी अभी तक मात्र अल्प जानकारी प्राप्त हो सकी है। अनन्त ब्रह्माण्ड तक तो मस्तिष्क की कल्पना भी पहुँच सकने में स्वयं को असमर्थ पाती है। पृथ्वी के विषय में भी पूर्व के अनेकानेक मत अब असत्य सिद्ध होते जा रहे हैं। ऐसी अनेकानेक नयी शोधें अब इस क्षेत्र में हो रही हैं, जो बताती हैं कि पृथ्वी के विषय में भी जो जाना-समझा गया था, वह मात्र कल्पना ही था। दो अमेरिकी खगोलशास्त्री डॉ. रिचर्ड और जॉर्ज स्मिथ एवं उनके सहयोगी शोधकर्त्ता लॉरेंस बर्कले लेब के मार्क कोरेश्टाइन के अनुसार हमारी पृथ्वी लगभग बीस लाख किलोमीटर प्रति घण्टा की भयंकर गति से बासुकि तारामण्डल की ओर दौड़ती चली जा रही है। अति सम्वेदनशील रेडियो उपकरणों द्वारा पृथ्वी वायुमण्डल से १६,९०० मीटर की ऊँचाई पर किए गए परीक्षणों से यह जानकारी मिली है। इन अनुसंधानों से यह समझा जा रहा है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक फल या पौधे के खिलने की तरह हुई है न कि अग्निपिण्ड के

विस्फोट से, जैसा कि माना जाता था एवं नियन्त्रित तथा पूर्णतया समान गति से उसका विस्तार होता चला गया । यह घटना १५ अरब वर्ष पूर्व हुई मानी है ।

ब्रह्माण्ड में तारकों—सौर-मण्डलों की क्रिया-प्रक्रिया अपने ढंग से प्रवाहित हो रही है और ग्रह-नक्षत्रों का परिवार अपने सामान्य-क्रम से चल रहा है । इतने पर भी जहाँ-तहाँ ऐसी पहेलियाँ और विसंगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जिनका समाधान ढूँढ़ पाने में मानवी बुद्धि किंकर्त्तव्यविमूढ़ रह जाती है ।

इस अनन्त अन्तरिक्ष में जहाँ-तहाँ ऐसे चक्रवात या भ्रमर हैं जो अपनी प्रचण्ड शक्ति के कारण महादैत्य कहे जाते हैं । उनकी पकड़ और चपेट में जो भी दृश्य-अदृश्य, साकार-निराकार फँस जाता है, उसे वे अपने उदर में निगल लेते हैं और यह पता नहीं चलने देते कि जो उनका खाया वह पचने के लिए कहाँ चला गया ? इन भँवरों को विज्ञान की भाषा में 'ब्लैक होल' कहते हैं ।

ब्लैक होल का अर्थ है, काला छेद ! अन्तरिक्ष में वे जहाँ कहीं होते हैं, वहाँ सघन अन्धकार छाया रहता है । सघन भी इतना कि उस क्षेत्र पर पड़ने वाली प्रकाश किरणें तक उसी गर्त में चली जाती हैं और उनका दर्शन कर सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं हो पाता । होल इसलिए कि उसमें मात्र पोल ही पोल भरी पड़ी है । पोल भी इतनी जिसमें कोई दृश्य या अदृश्य पदार्थ बिना किसी अवरोध खिंचता-घुसता चला जाता है । इस प्रवेश की गति इतनी अधिक होती है कि उसकी तुलना में प्रकाश की गति भी स्वल्प ठहराई जा सके ।

अपनी पृथ्वी पर बारमूडा के निकट कई बार कितने ही जलयान एवं वायुयान इस भँवर में फँस कर अपना अस्तित्व गँवा बैठे हैं । पकड़े जाते समय तो कुछ क्षण के लिए चीखे-चिल्लाये, किन्तु बाद में उनका इस प्रकार लोप हो गया मानो उनका कभी कोई अस्तित्व था ही नहीं । ढूँढ़ने पर कोई निशान या प्रमाण ऐसे न मिले जिनसे घटना-क्रम का या उसके निमित्त कारण का कुछ तो पता चल सके । उस क्षेत्र में होती रही दुर्घटना का विवरण बड़ा रोमांचकारी है । इसी प्रकार के काले छेद इस ब्रह्माण्ड में अन्यत्र हैं भी । पृथ्वी वालों को भी उनका आभास जब-तब मिलता रहता है ।

इनकी विभीषिका अत्यधिक रोमांचकारी है । वे छोटे भी होते हैं और बड़े भी । छोटे ब्लैक होल सपोलों की तरह थोड़े से क्षेत्र में अपना फन फैलाये रहते हैं और जो उधर से गुजरता है, उसे लपक लेते हैं । किन्तु बड़े ब्लैक होल ऐसे ही हैं, जो अपनी समूची पृथ्वी को ही देखते-देखते निगल सकते हैं ।

सुव्यवस्थित सृष्टि प्रवाह में अव्यवस्थित ब्लैक होल किस कारण उत्पन्न होते हैं और वे किस क्रम से अपना क्रिया-कलाप चलाते हैं ? इसकी खोजबीन अन्तरिक्ष विज्ञानियों ने की है । उससे समग्र जानकारी तो प्राप्त नहीं हो सकी, पर जो कुछ पता चला है वह भी कम रहस्यमय और कम रोमांचकारी नहीं है ।

नेशनल एरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) ने 'उहुरु' नामक एक कृत्रिम उपग्रह को गत दिसम्बर, १९७० में इटली के एयरो स्पेस रिसर्च सेण्टर से अन्तरिक्ष में छोड़ा । इसका उद्देश्य "ब्लैक होल" की स्थिति का पता लगाना था । ऐसे २०० तारा स्रोतों का पता इस उपग्रह ने लगाया जो एक्स-रे उत्सर्जित करते हैं । इनमें प्रमुख-प्रमुख हैं—सैतोरस एक्स-३, सिग्नस एक्स-१, हरक्यूलिस-एक्स-१, सिग्नस- एक्स-३ । वैज्ञानिकों का ध्यान इन स्रोतों में सिग्नस एक्स-१ की ओर अधिक आकर्षित हुआ । अध्ययन द्वारा इसमें वे सारे लक्षण पाये गए हैं, जो "ब्लैक होल" पर पाये जाते हैं । सिग्नस एक्स-१ की दूरी पृथ्वी से लगभग ८००० प्रकाशवर्ष (७५ लाख अरब किलोमीटर) के लगभग है । गैस मण्डल में जो ब्लैक होल पाये जाते हैं । उनकी सारी विशेषताएँ इसमें हैं । गुरुत्वाकर्षण बल की तीव्रता के कारण यह भी प्रत्येक वस्तु पर हावी होकर उसे अपनी ओर खींच लेता है ।

"ब्लैक होल" की स्थिति का पता लगाना भी एक विकट समस्या है । प्रकाश की किरण को प्रकाश स्रोत से यदि भेजा जाय तो ब्लैक होल प्रकाश को तुरन्त पकड़ लेगा, हमें मात्र एक काला छिद्र दिखाई देगा ।

आइन्स्टीन के अनुसार प्रकाश किरणों में भी द्रव्यमान होता है । यदि यह सिद्धान्त सही है तो ब्लैक होल के धरातल से ऊपर फेंकी गई प्रकाश की किरण तीव्र गुरुत्वाकर्षण के कारण पीछे खींच ली जायेगी । उसी प्रकार जिस तरह यह पृथ्वी ऊपर फेंकी गई गेंद को खींच लेती है । ब्लैक होल की तेज गुरुत्वाकर्षण शक्ति का कारण यह है कि विज्ञान के सिद्धान्तानुसार जो वस्तु जितनी सघन होगी, उसका आकर्षण बल उतना ही प्रबल होगा । ब्लैक होल का घनत्व अधिक होने के कारण उसका गुरुत्वाकर्षण अत्यधिक है और वह अपनी पकड़ में आने वाले प्रत्येक पदार्थ को सहज ही अपनी ओर खींच लेता है ।

प्रसिद्ध तारा भौतिकशास्त्री श्री के. एस. थ्रोन और श्री नीविकोव का ब्लैक होल की उत्पत्ति के विषय में कहना है कि "विकासक्रम की अन्तिम अवस्था में तारे यदि १.२ सौर द्रव्यमान बढ़ जाते हैं तो एक बृहत् तारे की तरह उन्हें फट जाना चाहिए । फटने से दो चीजें तारे छोड़ सकते हैं—एक विस्तीर्ण गैस का बादल तथा दूसरा अवशेष तारा । यदि शेष तारे का भार २ सौरद्रव्यमान से कम है, तो वह एक न्यूट्रॉन तारे, जिसका कि घनत्व नाभिक के स्तर का होता है, में बदल जाता है तथा यदि इससे अधिक है तो वह ब्लैक होल में परिवर्तित हो जायेगा ।"

ब्लैक होल की उत्पत्ति और भयानक शक्ति के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकले हैं, वे मानव जगत में प्रयुक्त होने वाले सिद्धान्तों और प्रचलनों से ही मिलते-जुलते हैं । जो भारी होता है, वह अपेक्षाकृत हल्कों को अपनी ओर खींचता है । जो हल्का पड़ता है, वह दूसरों के प्रभाव से प्रभावित होकर उनका अनुकरण करने लगता है । इस तथ्य को अधिक अच्छी तरह समझा जा सके तो स्वयं को अधिक भारी-भरकम बनाने और अपने प्रभाव क्षेत्र में अधिकों की सेवा कर सकने की प्रेरणा मिलती है । साथ ही वह सतर्कता अपनाने का भी अवसर मिलता है, कि किसी की समर्थता, प्रतिभा से प्रभावित होकर कुछ ऐसा न करने लगे जो अनुचित, अनुपयुक्त हो । ब्लैक होल ब्रह्माण्ड में भी है और मानव समाज में भी । प्रभाव शक्ति की जितनी उपयोगिता है, उतनी ही भयंकरता भी । इस तथ्य को ध्यान में रखकर चलना और आत्म रक्षा का उपाय समय रहते करना चाहिए ।

प्रकृति प्रवाह से कहीं छिद्र रह जाने के कारण भी इन ब्लैक होलों की उत्पत्ति मानी गई है । छिद्र कहीं भी नहीं रहने दिए जाय । कपड़े में छोटा-सा छिद्र होता है उसे समय पर न सिया

जाय तो सारे कपड़े को ही निरर्थक कर देगा । घड़े में छोटा-सा छिद्र हो जाने पर पानी भी बह जाता है और आस-पास की जमीन भी गीली होती है । बाँधों में एकाध चूहों का छेद होता है और वह बढ़कर बाँध में दरार डालने-तोड़ने और उसके कारण बड़े क्षेत्र को जलमय करने की हानि पहुँचाता है । इसलिए समय रहते हर छिद्र को बन्द करना चाहिए । हम छिद्रान्वेषी न बनें पर उनके कारण होने वाली हानि से बेखबर भी न रहें और जहाँ पोल-पट्टी दिखायी पड़ती हो वहाँ उसे नंगा भले ही न करें, पर उसे बन्द तो किया ही जाना चाहिए ।

ब्लैक होल अपनी भयानक शक्ति और उससे होने वाली हानि एवं अव्यवस्था की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं । साथ ही यह भी बताते हैं कि वैयक्तिक जीवन एवं समाज व्यवस्था में यदि कहीं ब्लैक होल हों उनके खतरे को समझें और बन्द करने का प्रयत्न करें ।

अपने विश्व ब्रह्माण्ड की संक्षिप्त जन्म-कुण्डली

आँख उठाकर मोटी दृष्टि से देखने पर ऊपर आसमान में एक नीली सी चादर तनी दीखती है । उसमें कुछ जुगनू जैसे चाँद सितारे टँके चमकते दृष्टिगोचर होते हैं । मोटी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तथ्य भी इसी प्रकार छोटे-मोटे हल्के-फुल्के प्रतीत होते हैं, पर यदि गम्भीरतापूर्वक देखा और बारीकी में उतरा जाय तो कितनी हीं रहस्यमय पर्तें खुलती चली जाती हैं और उथली दृष्टि से जो सामान्य जैसा प्रतीत होता था, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लगने लगता है ।

आकाश को रात में देखने पर एक धुँधली सी सफेद बदली सिर के ऊपर दीखती है । दादी अपने नाती-पोते, पोतियों को उसे 'हाथी की सड़क' बताती और कहती है कि आधी रात इस पर होकर इन्द्र राजा का हाथी गुजरता है । यह बदली हमारी आकाशगंगा है । उसी की बेटी वह देवयानी निहारिका है जिसमें हमारा सौर-मण्डल एक कोने में बैठा-बैठा दिन काटता और चरखा चलाता है । लटकते हुए सितारे वस्तुतः अपने सूर्य के भाई-बन्धु हैं, दूरी इतनी अधिक है कि उसके मीलों की गणना करते-करते सिर चकराने लगे ।

इस सन्दर्भ में प्रश्न उठता है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड आखिर बना कैसे ? जब यह नहीं बना था तब क्या स्थिति थी ? क्या प्राणियों की तरह यह ब्रह्माण्ड भी जन्मता, बढ़ता और मरता है ? ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करते हुए संक्षेप में इस सृष्टि की जन्मपत्री पढ़नी और उसकी ग्रह दशा देखनी चाहिए ।

बीसवीं सदी में भौतिकी (फिजिक्स) के क्षेत्र में असाधारण प्रगति हुई है । खगोल-विज्ञानियों ने भौतिकी के कुछ सिद्धान्तों एवं उपकरणों का प्रयोग खगोल-विज्ञान में किया । फलस्वरूप 'खगोल भौतिकी' नामक विज्ञान की एक नई शाखा का उदय हुआ । खगोल-भौतिकी से खगोल-विज्ञान की जानकारियों एवं गवेषणाओं में महत्त्वपूर्ण योगदान मिला है ।

ई. पी. हब्बल ने १९४२ में 'साइन्स इन प्रोग्रेस' की तीसरी सिरीज के 'दी प्रोब्लम ऑफ दी एक्सपेन्डिग यूनीवर्स' नामक लेख में लिखा है कि "यह ब्रह्माण्ड लगभग शून्य है । ब्रह्माण्ड के महाशून्य में भौतिक पदार्थ पिण्ड बहुत दूर-दूर फैले हुए हैं । ब्रह्माण्ड के महाशून्य की तुलना में स्थूल भौतिक पदार्थ अत्यन्त न्यून परिमाण में हैं ।

पहले खगोल विज्ञानियों की मान्यता थी कि सूर्य ब्रह्माण्ड का केन्द्र हैं, परन्तु खगोल भौतिकी के अनुसन्धानों से पता चला कि हमारा सूर्य तो एक छोटा-सा नक्षत्र है । ऐसे अरबों-खरबों सौर-मण्डल एक नीहारिका (नेबुला) के अन्तर्गत हैं । अपना सौर-मण्डल जिस नीहारिका का सदस्य है, उसे 'देवयानी' नाम दिया गया है । कई अरब नीहारिकाओं का समुच्चय आकाशगंगा (मिल्की वे या गैलेक्सी) कहा जाता है । ब्रह्माण्ड में असंख्यों आकाशगंगाएँ हैं । अपनी 'देवयानी' नीहारिका मन्दाकिनी आकाशगंगा की एक नीहारिका है । लगभग २० हजार नीहारिकाओं के अस्तित्व के बारे में स्पष्ट पता चला है । हब्बल महोदय के अनुमान के अनुसार नीहारिकाओं की संख्या इसके अतिरिक्त और दस गुनी होगी । उन्होंने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से यह प्रमाणित किया कि ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है, नीहारिकाएँ एक-दूसरे से दूर हटती जा रही हैं ।

हमारी आकाशगंगा (गैलेक्सी या मिल्की वे) मन्दाकिनी का व्यास आर. ए. लिटलटन की "दी मॉडर्न यूनीवर्स" के अनुसार एक लाख प्रकाश वर्ष है । प्रकाश की चाल ३ लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड है । इस गति से एक वर्ष में चली गई दूरी को १ प्रकाश वर्ष कहा जाता है । ब्रह्माण्ड की विशालता की कल्पना से मानवीय बुद्धि हतप्रभ रह जाती है ।

वी. जे. वाक और पी. एफ. वाक की "दी मिल्की वे" के अनुसार अपनी आकाशगंगा (मिल्की वे) में लगभग १००० खरब नक्षत्र हैं । मन्दाकिनी मिल्की वे की निकटवर्ती गैलेक्सी को एन्ड्रमेडा कहा जाता है । इसका आकार भी हमारी गैलेक्सी के लगभग बराबर है ।

'दी मॉडर्न यूनीवर्स' नामक पुस्तक में आर. ए. लिटलटन ने उल्लेख किया है कि खगोल भौतिकीविदों के अनुसार ब्रह्माण्ड में लाखों गैलेक्सी विद्यमान हैं । मानव-निरीक्षण सीमा से परे भी गैलेक्सियाँ हैं । उनको किसी भी उपाय से जाना नहीं जा सकता, क्योंकि उनकी गति निरन्तर बढ़ती जाती है और अन्ततः उनका वेग प्रकाश के वेग से अधिक हो जाता है, तब वे अदृश्य हो जाती हैं । ब्रह्माण्ड सतत् फैलता बढ़ता जा रहा है ।

वीलेन डी. सिट्टेर ने "थ्योरीज ऑफ दी यूनीवर्स" में बताया है कि ब्रह्माण्ड शून्य है, उनमें भौतिक पदार्थ नगण्य है । कहने का अभिप्राय यह है कि शून्य की तुलना में भौतिक पदार्थ द्वारा घेरा हुआ आकाश अत्यल्प है । इसलिए ब्रह्माण्ड का घनत्व समग्र भौतिक पदार्थ के धनत्व की अपेक्षा लाखों गुना कम है । उनके अनुसार गैलेक्सियाँ निरन्तर और तेजी से एक-दूसरे से दूर भाग रही हैं ।

ए. एस. एडिंगटन ने 'दी एक्सपेन्डिंग यूनीवर्स', जी. जे. ह्वीट्रो ने 'दी स्ट्रक्चर ऑफ दी यूनीवर्स' एवं वीलेन डी. सिट्टेर के ब्रह्माण्डीय मॉडल का समर्थन किया है ।

'दी न्यू पाथवेज ऑफ साइन्स' में ए. एस. एडिंगटन महोदय ने भौतिक तन्त्र और विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में गहरा सम्पर्क बताया है । उन्होंने भी ब्रह्माण्डीय प्रसार के सिद्धान्त को स्वीकारा है ।

'दी क्रीएशन ऑव दी यूनीवर्स' में जी. गैमो ने उल्लेख किया है कि खरबों वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड में भौतिक पदार्थ ही सम्पीड़ित अवस्था में था और उसका निरन्तर क्रमश-विकास हो रहा है । उनके अनुसार ब्रह्माण्ड का फैलाव सदैव होता रहेगा । उसकी कोई सीमा रेखा नहीं है । वह अनन्तदिक् तक फैलता ही रहेगा ।

'दी थ्यौरीज ऑफ कॉस्मोलॉजी' लेख में एच. ब्रोण्डी ने उल्लेख किया है कि एक ओर तो गैलेक्सियाँ एक-दूसरे से दूर हटती जा रही हैं और अन्त में अदृश्य होती जा रही हैं, दूसरी ओर भौतिक पदार्थ की निरन्तर रचना हो रही है, जिससे नई गैलेक्सियों का निर्माण भी हो रहा है । इस कारण ब्रह्माण्ड में भौतिक पदार्थ का अस्तित्व सदा बना रहेगा । ब्रोण्डी महोदय ने गैलक्सियों की तुलना मनुष्यों एवं जीवधारियों से की है । जिस प्रकार कुछ व्यक्ति मरते हैं और अन्य नये जन्म लेते हैं, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में कुछ आकाशगंगाएँ (गैलेक्सियाँ) दूर जाते-जाते अदृश्य हो जाती हैं और उसके स्थान पर नयी गैलेक्सियों की उत्पत्ति होती रहती है । इस प्रकार ब्रह्माण्ड में गैलेक्सियों की संख्या सदा लगभग एक-सी रहती है । डी. डब्ल्यू. स्कियामा ने भी अपने 'इवोल्यूशनरी प्रोसेस इन कॉस्मोलॉजी' नामक लेख में इसी तथ्य का समर्थन करते हुए कहा है कि ब्रह्माण्ड में गैलेक्सियाँ पहले भी विद्यमान थीं और भविष्य में भी बनी रहेंगी, ब्रह्माण्ड कभी भी गैलेक्सियों से रिक्त नहीं होगा ।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि हमारे विश्व-ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त एक और भी जगत है, जो भौतिक पदार्थों के विपरीत तत्वों से बना हुआ है । भौतिक तत्वों से विनिर्मित अपने जगत को—'कॉसमॉस' कहा जाता है तथा विपरीत तत्वों या प्रति-पदार्थ से बने जगत को 'एण्टीकॉसमॉस' नाम दिया गया है ।

काल गणना के सामान्य मापदण्ड चार हैं—दिन, सप्ताह, मास एवं वर्ष । दिन गणना सूर्यास्त तक के काल से की जाती है । सप्ताह की काल गणना सूर्य का परिभ्रमण करने वाले ग्रहों से सम्बन्धित है । मास, चन्द्र द्वारा पृथ्वी की एक परिक्रमा का काल है । वर्ष, सूर्य की पृथ्वी द्वारा परिक्रमा का समय है ।

प्रकाश पिण्डों को मोटे तौर पर चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक सूर्य जिसका प्रकाश इतना तीव्र है कि उसकी उपस्थिति में अन्य प्रकाश पिण्ड दिखायी नहीं पड़ते । पृथ्वी के जितने भाग पर सूर्य का प्रकाश जितने समय तक रहता है, उसे दिन कहा जाता है । पृथ्वी के ध्रुवों पर प्रायः छः-छः महीने के दिन-रात होते हैं । पृथ्वी की आकृति गोलाकार होने से उसका लगभग आधा भाग ही हर समय सूर्य के सामने रह पाता है । उसी भाग में दिन और शेष में रात्रि रहती है । भूमध्य रेखीय देशों में दिन-रात बराबर होते हैं । चूँकि पृथ्वी २४ घण्टे में अपनी कक्षा पर परिभ्रमण कर लेती है । इसलिए प्रायः दिन-रात २४ घण्टे का होता है ।

सूर्य के अतिरिक्त अन्य प्रकाश पिण्ड रात्रि के समय ही दिखायी पड़ते हैं । रात्रि में दिखायी पड़ने वाले ज्योति पिण्डों में सबसे निकटवर्ती होने के कारण सबसे बड़ा 'चन्द्रमा' मालूम होता है । अन्य तारों को एवं तारा गुच्छों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—एक तो वे तारे जो टिमटिमाते हैं, दूसरे वे जो नहीं टिमटिमाते । वस्तुतः वे तारे टिमटिमाते दिखायी पड़ते हैं, जो सूर्य के परितः परिभ्रमण नहीं करते । ये तारे सूर्य से छोटे एवं कम प्रकाशवान नहीं हैं, वरन् अनेक गुना बड़े एवं प्रकाशयुक्त हैं, परन्तु सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी से अत्यधिक दूरी पर आकाश में अवस्थित होने के कारण छोटे दिखायी देते हैं ।

आकाश में पृथ्वी जिस मार्ग से सूर्य के चारों ओर घूमती है, उसे १२ भागों में बाँटा गया है । एक भाग को एक राशि के नाम से सम्बोधित किया जाता है । एक माह में पृथ्वी जितनी दूर घूम जाती है वह 'राशि' कहलाती है । इस क्षेत्र में आने वाले विशिष्ट तारा गुच्छों को १२ विभिन्न नाम दिए गए हैं वे हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक धनु, मकर, कुम्भ, मीन । चन्द्रमा प्रतिदिन आकाश में जितना मार्ग तय करता दिखायी देता है, उतने को नक्षत्र कहते हैं, पृथ्वी एक माह में जितना मार्ग तय करती दिखायी देती है, चन्द्रमा एक दिन में उससे सवा दो गुना मार्ग तय करता दिखायी पड़ता है । नक्षत्रों की संख्या २७ है ।

सृष्टि के सृजन और उसके अन्त तक के विनाश का यह संक्षिप्त परिचय है । अभी अपना ब्रह्माण्ड किशोरावस्था में चल रहा है । यौवन और प्रौढ़ता तक पहुँचते-पहुँचते उसमें और भी अधिक वृद्धि होगी और परिपक्वता बढ़ेगी । वह स्थिति भी सदा न रहेगी वह क्रमशः जराजीर्ण होते हुए मरण का वरण करेगा । इसके बाद फिर वही क्रम चलेगा । हर छोटी-बड़ी वस्तु को इसी जन्म-मरण के चक्र में समान रूप से परिभ्रमण करना पड़ता है । कैसी है यह सृष्टा की वाल-क्रीड़ा, जिसमें रहकर वह स्वयं मोद मनाता है और दूसरों को हँसने-रोने का खट्टा-मीठा स्वाद चखाता है ।

परिवर्तन चक्र में घूमता हुआ अपना ब्रह्माण्ड

आकाश पर नजर डालने से एक काली चादर पर कुछ जुगनू से बैठे चमकते दीखते हैं । दिन में एक फानूस जैसी और रात में लालटेन जैसी रोशनी चमकाते हुए दो गोले घूमते नजर आते हैं । मोटी दृष्टि यहीं समाप्त हो जाती है, पर जब गहराई में उतर कर वास्तविकता खोजने की बात चलती है तो प्रतीत होता है कि इस नगण्य के पीछे न जाने कितना बड़ा विशाल विस्तार छिपा पड़ा है । उसकी पर्तें उठाते चलने पर विशालता का अनन्त विस्तार आँखों के सामने आकर खड़ा हो जाता है ।

ब्रह्माण्ड का स्वरूप कभी मानवी मान्यता के अनुसार बहुत छोटा था, पर अब पर्यवेक्षण से उसकी विशालता इतनी बढ़ चली है कि उसकी कल्पना करने तक में मस्तिष्क चकराने लगता है ।

कभी ब्रह्माण्ड इतना छोटा भी रहा होगा जिसे कृष्णचन्द्र अपने मुख में रखी हुई गोली की तरह यशोदा या अर्जुन को दिखा सके । रामचन्द्र के लिए भी कदाचित् यह सम्भव रहा हो कि वे बड़ी सुपाड़ी जितने ब्रह्माण्ड की झाँकी कौशल्या या काकभुसुण्डि को तनिकसी मुस्कान बखेर कर भली प्रकार दिखा सके । पर अब वैसी स्थिति नहीं रही । अब कोई हनुमान सूरज को मधुर फल समझकर निगलने के लिए तैयार न होगा ।

ब्रह्माण्ड के बारे में जैसे-जैसे जानकारियाँ बढ़ती जा रही हैं, वैसे-वैसे उसके विस्तार का दायरा बढ़ता जा रहा है । अभी वह बचपन की ही अवधि में है इसलिए उसे बहुत समय बढ़ने,

फैलने और परिपुष्ट होने में लगेगा । प्रौढ़ता आने के उपरान्त ही वृद्धावस्था की झुर्रियाँ पड़ना आरम्भ होंगी, कमर झुकेगी । खांसी, श्वास का सिलसिला चलेगा और घटते-घटते हारा-थका, जराजीर्ण होने पर वह मरण की तैयारी करेगा । मरने के उपरान्त उसे फिर जन्म लेने में कितने समय भूतकाल जैसी गर्भावस्था में रहना होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह निश्चित है कि जन्म-मरण के चक्र में पदार्थों एवं प्राणियों की तरह ब्रह्माण्ड को भी गुजरना पड़ेगा । इससे पूर्व यह जन्म-मरण की स्थिति कितने बार आयी होगी या भविष्य में कितनी बार आ सकती है, इस गतिचक्र का आदि-अन्त क्या है ? इस सम्बन्ध में उसका सृजेता ही कुछ कह सकता है । हम अल्पज्ञ प्राणी तो इतना ही कह सकते हैं कि वर्तमान कल्प का प्रस्तुत ब्रह्माण्ड अभी बचपन की अवधि में रहा है और क्रमशः बढ़ता-फूलता जा रहा है । सम्भवतः कुछ समय उपरान्त वह फलने भी लगेगा ।

अपनी नीहारिका 'मन्दाकिनी' नाम से जानी जाती है । इससे एक अरब से अधिक और सौर-मण्डल जुड़े हुए हैं । इसका विस्तार एक लाख प्रकाशवर्ष आँका गया है । सम्बद्ध सौर-मण्डल उसे केन्द्र मानकर अनन्त अन्तरिक्ष में अपनी निर्धारित कक्षा पर चलते हुए उसकी परिक्रमा करते रहे हैं । अपने सौर-मण्डल को उस परिक्रमा में प्रायः तीस हजार वर्ष लगते हैं । इतना भ्रमण कर लेने के उपरान्त वह अपनी पुरानी जगह पर आता है ।

आकाश में अपनी मन्दाकिनी जैसी लाखों आकाशगंगाएँ हैं । बहुचर्चित और शोध परिधि में जकड़ी गई 'एण्डोमेण्ड्रा' आकाशगंगा हमसे बीस लाख प्रकाश वर्ष दूर है ।

आकाश को अत्यधिक प्रभावित करने वाले क्वासार तारे अब तक चार खोजे जा सके हैं । इनमें जो निकटतम है, उसकी दूरी ८०० करोड़ प्रकाशवर्ष मानी गई है । यदि वहाँ तक पहुँचने का कोई मनुष्य दावा करे और अब तक विनिर्मित रॉकिटों के सहारे ढाई हजार मील प्रति घण्टा की चाल से चले तो उसकी पूर्णायुष्य १०० वर्ष होने पर भी आठ करोड़ जन्म लेने पड़ेंगे । यदि वापस भी लौटना हो तो फिर इतने ही वर्ष और चाहिए । यह अनवरत गति होने का लेखा-जोखा है, बीच में तेल-पानी लेने या सुस्ताने की आवश्यकता पड़ी तो समय और भी अधिक लग जायेगा ।

अपनी मन्दाकिनी से निकटवर्ती दूसरी आकाशगंगा देवयानी (एण्डोमेण्ड्रा) अधिक चमकीली और बड़ी होने के कारण आसानी से देखी-जानी जाती है । फिर भी यह एक आकाशगंगा परिवार के सदस्य हैं । उनका भी एक मण्डल है और १६ आकाशगंगाओं वाला समूह किसी अकल्पनीय दूरी वाले महा ध्रुव के इर्द-गिर्द परिभ्रमण करता है । यह भ्रमण पथ ३५ लाख प्रकाशवर्ष का है ।

अब तक के खगोल पर्यवेक्षणों से १०० अरब आकाशगंगाओं का अस्तित्व खोजा गया है । इस खोज चित्र में मात्र ५ अरब प्रकाश वर्षों की ही परिधि पकड़ में आयी जबकि समस्त ब्रह्माण्ड का विस्तार इससे भी कितना ही गुना अधिक है ।

माना जाता रहा है कि पदार्थ जब अत्यधिक घनीभूत हो जाता है तब ऊर्जा के रूप में परिवर्तित होता है । इसी का एक पूरक सिद्धान्त यह भी है कि जब ऊर्जा अत्यधिक घनीभूत होती है तो, पदार्थ के रूप में भी परिवर्तित हो जाती है । आत्यन्तिक तापमान १०० करोड़ अंश माना गया है । जब भी इतनी स्थिति पहुँचती होगी तो उसे ठण्डा करने की परिणति पदार्थ रूप में होने लगती है । इसी सिद्धान्त के अनुरूप ब्रह्माण्ड के आदि और अन्त का कारण खोजा जा रहा है । समझा जा रहा है कि तापमान की वृद्धि विकास बेला है और उसके चरम स्तर पर पहुँच जाने के उपरान्त जो ढलान आता है उसे स्थिरता, ढलना, वृद्धता या मरण की तैयारी कह सकते हैं । मानवी आयुष्य क्रम की भाँति ही यह ब्रह्माण्ड भी बढ़ता, फैलता सिकुड़ता मरता और जन्मता रहता है ।

ग्रह-नक्षत्रों की बिरादरी में नए सदस्य बढ़ते रहते हैं और पुराने समाप्त होते रहते हैं । कुछ का तो सर्वथा अन्त हो जाता है और वे पुनः वाष्प बादल के रूप में लौट जाते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता के चंगुल में फँसकर अपनी दुर्गति करते हैं । कुछ नए बालकों की तरह जन्मते हैं और कुछ प्रेत-पिशाच बनकर डरावनी विनाशकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते रहते हैं ।

सन् १०५४ में किसी विशाल तारे का विस्फोट देखा गया । शुक्र से भी अधिक चमकीला एक अनोखा तारा यकायक आकाश में प्रकट हुआ । वह इतना चमकदार था कि दिन में भी सरलतापूर्वक देखा जा सकता था । यह चमक कई सप्ताह तक रही ।

चीनी ज्योतिषियों ने इस जानकारी को सुरक्षित रखा है और उसका कारण किसी तारे का विस्फोट माना है । ऐसे विस्फोटों को सुपरनोवा कहा जाता है । उसका छितराव अभी भी एक छोटे गैसीय गन्ध के रूप में देखा जा सकता है । वह क्रमशः फैल ही रहा है । ऐसे विस्फोट आकाश में सदा ही होते रहते हैं, उनके आधार पर पुरानों का अन्त और नयों का जन्म होता रहता है ।

'हारवर्ड स्मिथ सोनियन सेन्टर फॉर एस्ट्रोफिजिक्स' के मूर्धन्य खगोल विज्ञानियों ने अपनी आकाशगंगा के केन्द्र में कुछ तारे ऐसे पाये हैं जो शराबियों की तरह बुरी तरह लड़खड़ा रहे हैं और बेढंगी चाल से चल रहे हैं, लगता है कि उन्हें कोई झकझोर या दबोच रहा है । हरवर्ड गस्की का कहना है कि सम्भवतः वे किसी ब्लैक होल की पकड़ में आ गए हैं और वह उन्हें क्रमशः खींचता, निगलता चला जा रहा है ।

इसी प्रकार 'सिगनस' नक्षत्र समूह का एक तारा जो हमारे सूर्य से प्रायः बीस गुना बड़ा है, किसी ब्लैक होल की पकड़ में आ गया है और वह उसके मुँह में घुसता चला जा रहा है ।

आकाश में कितने ही 'ब्लैक होल' विद्यमान हैं । उनका अस्तित्व होते हुए भी दृष्टिगोचर नहीं होते । कारण कि उनका पदार्थ अत्यधिक सघन है । इस स्थिति में गुरुत्वाकर्षण चरम सीमा पर होता है । इतना चरम कि अपनी परिधि में काम करने वाले प्रकाश को भी बाहर नहीं जाने देता । प्रकाश ही एक ऐसा आधार है जिसके सहारे अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों का अस्तित्व, स्थान एवं क्रिया-कलाप जाना जा सकता है । चूँकि ब्लैक होल कहे जाने वाले तारों का पदार्थ अत्यधिक सघन होने के कारण प्रकाश के बाहर जाने की बात बनती ही नहीं । ऐसी दशा में उनके अस्तित्व का ज्ञान भी किसी को नहीं हो सकता । अपने इर्द-गिर्द ही कोई छोटा ब्लैक होल यदि मौजूद है, तो भी हम उसके सम्बन्ध में तनिक भी जानकारी प्राप्त न कर सकेंगे ।

आकाश की इन अन्धेरी गुफाओं में भरे पदार्थ का भार अत्यधिक होता है । वहाँ की एक चम्मच का भार अपनी धरती के २० करोड़ हाथियों के बराबर भारी बैठेगा । जब कोई तारा मरता है तो उसका द्रव्य सिकुड़ते-सिकुड़ते इतना सघन हो जाता है कि वह ब्लैक होल के रूप में परिणत हो सके ।

ये ब्लैक होल ही हैं, जो कभी-कभी इतने विशाल और इतने सशक्त होते हैं कि वे अपनी आकर्षण शक्ति से समीपवर्ती ग्रह-तारकों को ही निगल जाते हैं । कई बार वे किसी ग्रह के किसी भाग विशेष को प्रभावित करते हैं और जो उस क्षेत्र की वस्तुओं को खींचकर अपनी खायी-खड्ड जैसी झोली में समेट लेते हैं । अपनी धरती पर बारमूडा क्षेत्र में एक ऐसा ही ब्लैक होल काम करता पाया गया है, जो इस क्षेत्र से निकलने वाले कितने ही वायुयानों, जलयानों को निगल चुका है ।

प्रस्तुत ब्रह्माण्ड की विशालता और विचित्रता का इस छोटी जानकारी के साथ ही अन्त ही नहीं हो जाता वरन् सम्भावनाएँ इतनी अधिक हैं, जिनका अनुमान लगाने तक में मानवी बुद्धि मापने को असमर्थ दीखती है ।

विज्ञात सृष्टि के आरम्भ में जिस गैस बादल के विस्फोट की चर्चा इन पंक्तियों में हुई है ठीक उसके समतुल्य एक दूसरा भी ठीक वैसा ही एक अपरिचित गैस बादल इस विनिर्मित ब्रह्माण्ड के इर्द-गिर्द भ्रमण करता पाया गया है । अनुमान यह लगाया जा रहा है कि वह भी किसी दिन अपना विकास विस्तार इसी प्रकार करेगा, जैसा कि अपने इस विज्ञात मेघ ने किसी समय किया था । यदि वैसा हुआ तो उससे नई समस्याओं का जन्म होगा ।

इस सन्दर्भ में एक नया प्रतिपादन सोवियत खगोल विज्ञानियों ने किया है । उन्होंने सुदूर अन्तरिक्ष में एक वृहत्तर वाष्पीय बादल को देखा है ! यह ठीक उसी प्रकार का है, जैसा कि विज्ञात ब्रह्माण्ड के आरम्भिक निर्माण काल में विस्फोट से पूर्व था । इन विज्ञानियों का कहना है कि सम्भवतः महा विस्फोट मूल द्रव्य के एक अंश का ही हुआ है और इतने से ही अपने ब्रह्माण्ड से गतिशील निहारिकाओं तथा ग्रह-नक्षत्रों का जन्म हुआ है । शेष अंश अभी भी अपनी आरम्भिक स्थिति में विद्यमान है । कह नहीं सकते कि वह सिकुड़ या फैल रहा है । यह भी विदित नहीं कि वह ठण्डा या गर्म हो रहा है । दोनों ही स्थिति में वह अपनी वर्तमान गतिविधियों के अन्तिम चरण तक पहुँचने से पूर्व कोई बड़ा उपद्रव खड़ा करेगा । गर्म हो रहा होगा तो ढाई अरब सेंटीग्रेट तापमान तक पहुँचते-पहुँचते फट पड़ेगा और वैसे ही एक नए ब्रह्माण्ड को जन्म देगा जैसाकि हमारे परिचय घेरे में धीरे-धीरे आता जा रहा है । तब वह महाविस्फोट अपने वर्तमान ब्रह्माण्ड के साथ टकराकर ऐसी स्थिति में ही पैदा कर सकता है, जैसा कि अपने और सौर-मण्डल में मंगल और वृहस्पति के मध्य परिभ्रमण करते, उल्का खण्डों की श्रृंखला बनकर छितराई स्थिति में घूमते देखा जा सकता है । ठण्डा होने और सिकुड़ने की प्रक्रिया भी कम खतरनाक नहीं है । वह भी चरम सीमा पर पहुँचते-पहुँचते नए किस्म के संकट उत्पन्न करती है । यह भी हो सकता है कि वह अति दूरगामी गैस बादल अपने ब्रह्माण्ड के निकट चला आये और परिवार का सदस्य बनकर रहने लगे । मानवी बुद्धि को उसकी सत्ता की ससीमता देखते हुए सृष्टा की इस विशाल संरचना के मर्मों को समझ सकना अति कठिन प्रतीत होता है तो भी हम क्रमशः सत्य और तथ्यों की ओर बढ़ ही रहे हैं । इस मार्ग पर चलते रहकर हम न केवल सृष्टि के रहस्यों को, वरन् सृष्टा के सान्निध्य अनुग्रह को प्राप्त कर सकने में भी समर्थ हो सकेंगे ।

यहाँ ध्रुव कुछ नहीं, सभी परिवर्तनशील है

गाड़ी के पहिए घूमते रहते हैं और धुरी यथास्थान स्थिर रहती है । इस प्रकार समझा जाता रहा है कि पृथ्वी का एक ध्रुव स्थान है, जिस पर वह लट्टू की कील की तरह घूमती रहती है । यह स्थिरता का सिद्धान्त अब निरस्त हो गया है और माना जाता है कि इस ब्रह्माण्ड में हर वस्तु गतिशील है । स्थिरता किसी के भी भाग्य में बदी नहीं है ।

पृथ्वी नारंगी जैसी शक्ल की मानी गई है । उसके दोनों सिरों पर गड्ढे हैं । भीतर धँसा हुआ उत्तर ध्रुव और बाहर उभरा हुआ दक्षिण ध्रुव । सामान्य गोलाई पृथ्वी पर अन्यत्र तो है पर इन दोनों क्षेत्रों में व्यतिक्रम हुआ है । इसलिए सूर्य से सम्बन्धित अनुदानों का लाभ वहाँ अन्यत्र की तरह नहीं मिलता है । गड्ढे अपने किस्म का व्यतिरेक उत्पन्न करते हैं । पृथ्वी की भ्रमण कक्षा भी वृत्ताकार न होकर अण्डाकार है । साथ ही वह लट्टू की तरह लटकती हुई भी घूमती है । ऐसे ही कुछ अन्य कारण भी हैं, जिनके कारण ध्रुवों की स्थिति में व्यतिरेक उत्पन्न होता है । वहाँ छः महीने की रात और छः महीने का दिन होता है, पर वह दिन भी वैसा नहीं जैसा कि हम अपने यहाँ देखते हैं । इसी प्रकार वहाँ रात भी वैसी नहीं होती जैसी अन्यत्र होती है । यह व्यतिरेक ध्रुवों की अपनी भिन्नता विचित्रता के कारण है । व्यक्ति हो या ग्रह-नक्षत्र अथवा धरातल का कोई भाग या खण्ड, सामान्य से असामान्य की स्थिति में रहेगा उसे असाधारण परिस्थितियों में भी रहना होगा । उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की परिस्थितियाँ धरातल के अन्य स्थानों से इसी कारण भिन्न हैं । वहाँ और भी कितने ही आश्चर्यजनक दृश्य एवं तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं ।

उत्तरी ध्रुव में प्रायः सीटी जैसी पैनी ध्वनियाँ सुनाई पड़ती रहती हैं । यह अन्तरिक्ष से धरती पर तैरने वाले अनुभवों की जानकारी देती हैं । इनके उतार-चढ़ावों को देखते हुए यह समझा जा सकता है कि किस स्तर के प्रवाह ऊपर से नीचे आ रहे हैं । इस क्षेत्र में ७००० मील की ऊँचाई पर विद्युतीय गैसों का बादल मँडराता हुआ देखा गया है । समझा जाता है कि वह छलनी का काम देता है । सौर उन्हीं ऊर्जाओं को धरती पर उतरने देता है, जो उसके काम की हैं ।

उत्तरी ध्रुव की धरती भीतर की ओर धँसी है । इसकी गहराई १४,००० हजार फुट है । दक्षिणी ध्रुव ऊँट की पीठ पर देखे जाने वाले कूबड़ की तरह ऊपर उठा हुआ है । यह उभार १६,००० फुट है । यहाँ की बर्फ स्थिर है जबकि उत्तरी ध्रुव पर वह बहती रहती है । वहाँ एस्कीमो जाति के मनुष्य तथा कुत्ते, हिरन, रीछ जैसे प्राणी पाये जाते हैं पर दक्षिण ध्रुव पर पेनगुइन और बिना पंख वाले मच्छर के अतिरिक्त और कोई प्राणी नहीं हैं । इस क्षेत्र में रात धीरे-धीरे आती है और सूर्य बहुत कम समय तक निकलता है फिर भी उसके अस्त होते समय की लालिमा

देर तक छायी रहती है । रात्रि बहुत लम्बी होती है । उसमें उत्तर दिशा में ही थोड़ी-सी प्रकाश आभा दीख पड़ती है । सूर्य किरणों के विचित्र मोड़-मरोड़ के कारण इस क्षेत्र के आकाश में चित्र-विचित्र दृश्य दीखते रहते हैं । कभी-कभी सूर्य हरे रंग का दीख पड़ता है ।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की अपनी-अपनी विचित्रताएँ हैं, जो अजनबी को हतप्रभ कर देने के लिए पर्याप्त हैं । कई वस्तुएँ जमीन पर होते हुए भी अपने आकार से कई गुनी बड़ी दिखायी पड़ती हैं । और हवा में अधर में लटकी हुई प्रतीत होती हैं । कई बार बर्फ में, कई बार हवा में, ऐसे नकली सूर्य-चन्द्र चमकने लगते हैं, जो अवास्तविक होते हुए भी वास्तविक जैसे प्रतीत होते हैं । उत्तरी ध्रुव में रातें सामान्य क्षेत्र के बीस दिनों के बराबर लम्बी होती हैं । क्षितिज में सूर्य का दर्शन भी १६ दिन तक बना रहता है । चन्द्रमा की रोशनी में सूर्य के प्रकाश की तरह काम हो सकता है ।

यह दृश्यमान ध्रुव हुए । इसके अतिरिक्त दो अदृश्य ध्रुव भी हैं, जिन्हें विद्युत चुम्बकीय ध्रुव कहते हैं । वे स्थान बदलते रहते हैं । जबकि दृश्यमान ध्रुवों का स्थान परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है । जब होता है, तब धरातल को प्रभावित करता है । समुद्रीय भाग का कुछ अंश थल के रूप में उभरता और थलीय भाग पानी में डूबता देखा गया है । महाद्वीपों की स्थिति में इसी कारण परिवर्तन होते रहे हैं । कुछ भाग बँटकर विलग हुए हैं और कुछ विलग खण्डों को समीपता का लाभ मिला है । वे जुड़कर एक हो गए हैं । किन्तु विद्युत चुम्बकीय ध्रुवों के परिवर्तन से ऐसी भौगोलिक हेरा-फेरी नहीं होती । उनके कारण पृथ्वी के वातावरण पर प्रभाव पड़ता है और प्राणियों का आन्तरिक स्तर इस कारण बदलते हुए देखा गया है ।

नक्शे में दिखाये गए उत्तर दक्षिण ध्रुव भौगोलिक हैं । नारंगी की शक्ल वाली धरती के दो सिरे गड्ढे एवं टीले जैसे हैं, यही सर्वविदित ध्रुव हैं । चुम्बकीय ध्रुव इससे भिन्न होते हैं । इन दिनों चुम्बकीय और भौगोलिक ध्रुव अति समीप होने के कारण उनकी संयुक्त स्थिति का परिचय हमें प्राप्त हो रहा है । पर सदा से ऐसा न था और सर्वदा ऐसा रहेगा भी नहीं । चुम्बकीय ध्रुव अपना स्थान बदलते रहते हैं । यहाँ तक कि वे घूमते-घूमते एक-दूसरे के स्थान तक पहुँच जाते हैं । पृथ्वी के आरम्भिक दिनों वाला उत्तरी ध्रुव दक्षिण छोर पर आया है और दक्षिण वाले ने उत्तर वाले के स्थान पर अधिकार कर लिया है । अनुमान है कि अब से दो हजार वर्ष बाद सन् ४००० में यह ध्रुव परिवर्तन की एक परिधि पूरी कर लेगा । इस अवधि में एक या दो शताब्दियों का समय ऐसा भी गुजरेगा, जिसमें पृथ्वी की सामान्य गुरुत्वाकर्षण शक्ति में बेतरह घट-बढ़ होने के कारण भयानक उथल-पुथल होगी ।

चुम्बकीय परिवर्तनों के अप्रत्याशित परिवर्तन होते हैं । उस कारण न केवल शीत-ग्रीष्म की स्थिति में भयानक परिवर्तन हो सकते हैं, वरन् प्राणियों की नस्लें भी बदल सकती हैं । भूतकाल में कितने ही हिम युग आये हैं और सर्दी की अधिकता और बर्फ की भरमार से प्राणियों की जान बचना कठिन हो गया है । जिनकी सूझबूझ काम दे गई या जिन्हें आत्मरक्षा के साधन मिल गए, मात्र वे ही जीवित रह सके । इसी प्रकार ग्रीष्म युग में ध्रुवों की बर्फ पिघलने से समुद्र की सतह ऊपर उठी है और कितने ही महाद्वीपों को उदरस्थ करने के साथ-साथ ही नए द्वीपों का नीचे से ऊपर उछलने का उपक्रम बना है । इस प्रकार धरातल और समुद्र के स्थानों में आश्चर्यजनक परिवर्तन होते रहे हैं । यह सब पृथ्वी की चुम्बकीय क्षमता में व्यतिरेक उत्पन्न होने के कारण होता रहा है । इसका मूलभूत कारण ध्रुवों का स्थान बदलते रहना ही है ।

ध्रुवों का असाधारण परिवर्तन अब से ६० करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था । उस समय की समुद्री तलछट निकालकर नील उपडाइक जैसे मूर्धन्य शोधकर्त्ताओं ने जाना है कि इस चुम्बकीय व्यतिरेक के कारण समुद्र क्षेत्र में 'रेडियो लारिया' नामक एक जीव कोश अचानक ही उपज पड़ा, साथ ही पूर्ववर्ती कितने ही जीवन घटकों का लोप हो गया । कितनों में ही आनुवांशिक परिवर्तन हुए और पुरानी शक्ल-सूरतों में भारी उलट-पुलट हो गई । ऐसा इसलिए हुआ कि धरती की चुम्बकीय दुर्बलता देखकर आकाश से कॉस्मिक किरणें उतर पड़ीं और उनके प्रभाव से प्राणियों की नस्लें तथा पदार्थों की विशेषताओं में असाधारण व्यतिरेक उत्पन्न हुआ । कितने ही छोटी जाति के प्राणी बहुत बड़े आकार के हो गए और कितने ही विशालकाय होने पर उस बोझ से आत्मरक्षा न कर सके और सदा के लिए समाप्त हो गए । कितनों की जातियों का तो पूरी तरह रूपान्तरण ही हो गया ।

ध्रुवों की स्थिति का पर्यवेक्षण करने पर कई तथ्य सामने आते हैं । उनमें से एक यह है कि यहाँ कोई वस्तु स्थिर नहीं । दूसरा यह कि मानवी पुरुषार्थ का अत्यधिक महत्त्व होते हुए भी यह सर्वशक्तिमान नहीं है । उसे भी न केवल धरातल की वरन् ब्रह्माण्डीय परिस्थितियों से भी प्रभावित होना पड़ता है । इन तथ्यों का निष्कर्ष यह निकलता है कि हम न केवल परिवर्तनों का सामना करने की तैयारी रखें, वरन् यह भी सोचें कि जानकारियाँ जो हस्तगत हैं, वे पूर्ण नहीं हैं । उनमें क्रमिक विकास की दिशा में बढ़ते हुए पिछली मान्यताओं की अपेक्षा अधिक प्रमाणित जानकारियाँ प्राप्त होती रही हैं । अभी इसमें और भी सुधार की गुंजाइश रहेगी । अत्यधिक सत्य तक पहुँचने के लिए अभी बहुत समय धैर्य रखना पड़ेगा । साथ ही यह भी समझना होगा कि उपलब्ध जानकारियाँ न तो परिपूर्ण हैं और न स्थिर । इसलिए अपने मस्तिष्क के कपाट खुले रखें और अधिक जानने की जिज्ञासा रखते हुए, वर्तमान मान्यताओं को पत्थर की लकीर न मानें और न ही पूर्वाग्रहों से प्रभावित होकर भविष्य में सुधार की सम्भावनाओं से आँखें बन्द कर लें ।

ध्रुवों के परिवर्तन क्रम को देखते हुए दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि इस हेर-फेर के लिए बाधित करने वाली अन्तर्ग्रही परिस्थितियों का महत्त्व कम नहीं है । हमारी स्वतन्त्रता सीमित है । पुरुषार्थ पर भी सीमा बन्धन है । भूलोक इस ब्रह्माण्ड परिवार का एक छोटा-सा घटक और मनुष्य व्यापक प्राणिजगत का एक नगण्य-सा सदस्य है । हमें अपनी मर्यादाएँ समझनी चाहिए और पारिवारिकता के अनुबन्धों को ध्यान में रखकर अपनी रीति-नीति निर्धारित करनी चाहिए ।

अरस्तू के ब्रह्माण्ड का केन्द्र अपनी पृथ्वी थी और अन्य सभी ग्रह-नक्षत्र उसकी परिक्रमा करते थे । रोमन चर्च ने भी यही मान्यता अपना ली । बाद में जब गैलीलियो, कोपरनिकस, न्यूटन

आदि ने उस मान्यता में परिवर्तन करने का प्रयास किया तो उन्हें पूर्व पंथियों के साथ लड़ाई मोल लेनी पड़ी और उत्पीड़न भरी प्रताड़ना सहनी पड़ी । इससे पूर्व अरस्तू की मान्यता को एक दूसरा खगोलवेत्ता एरिस्यर्कस भी चुनौती दे चुका था । वह सूर्य को ब्रह्माण्ड का केन्द्र बताता था और आकाश को जगमगाते तारों से सजी हुई चादर कहता था ।

अब न तो सूर्य ध्रुव केन्द्र है और न महासूर्य, जिसकी परिक्रमा में अपना सौर-मण्डल निरन्तर परिभ्रमण करता रहता है । महासूर्यों का समुदाय किसी अतिसूर्य के इर्द-गिर्द घूमता है । यह परिक्रमा क्रम अन्ततः कहाँ तक पहुँचता है, कोई नहीं जानता ।

ध्रुव अन्तर्ग्रही परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं तथा प्रभावित करते हैं । पृथ्वी के पास सब कुछ अपना नहीं है । उपलब्ध वैभव के अधिकांश भाग तो उसे सूर्य से अनुदान रूप में प्राप्त हुआ है किन्तु बात इतने से ही समाप्त नहीं हो जाती । समूचा ब्रह्माण्ड पृथ्वी को कुछ न कुछ प्रदान करता है । वह साधारण भी होता है और असाधारण भी । यह पृथ्वी की ध्रुवों की सूझबूझ और क्षमता पर निर्भर है कि वे उसमें से कितना आवश्यक उपयोगी समझते हैं और कितना ग्रहण कर सकने की पात्रता से सम्पन्न हैं ।

उत्तरी ध्रुव अन्तर्ग्रही क्षेत्र के सिर का काम करता है । अन्न-जल-वायु जैसे आहार वही ग्रहण करता और पेट में धकेलता है । आँख, कान, नाक आदि बाह्य ज्ञान को मस्तिष्क गह्वर तक पहुँचाने का काम भी सिर का ही है । दोनों ही ध्रुव बेतुके बेडौल होते हुए भी ग्रहण-विसर्जन का काम करते हैं । दक्षिण ध्रुव को गुदा मार्ग कहना चाहिए । पचने के उपरान्त जो अनावश्यक मलवा कचरा शेष रह जाता है, वह इसी मार्ग से अन्तरिक्ष के खाई खन्दक में धकेल दिया जाता है । इस प्रकार हम अन्तर्ग्रही परिस्थिति से सतत् प्रभावित होते भी हैं, और करते भी हैं ।

ध्रुव क्षेत्र की स्थिति इस ब्रह्माण्ड की भौतिक स्थिति के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी देने और आदान-प्रदान में समर्थ रहने की है । वह स्थिरता के पूर्वाग्रह अपनाने वालों को निरुत्साहित करती है और कहती है—"इस परिवर्तनशील विश्व में हम हठवादी न बनें, जिज्ञासु की तरह अधिक सही जानने की उत्सुकता बनाये रहें । साथ ही हमें यह भी सोचना होगा कि पृथ्वी समेत उसके समस्त जड़-चेतन निवासी किसी विशाल विश्व-व्यवस्था के अनुशासन में बँधे हुए उपलब्ध स्वतन्त्रता का इतना ही उपयोग करें, जिससे विश्व अनुशासन में विग्रह और व्यतिरेक उत्पन्न न हो । ग्रहण का औचित्य है, वह उपलब्ध भी है, किन्तु विसर्जन की बात को भूलें नहीं । ध्रुव ग्रहण और विसर्जन में निरत रहकर ही अपने ग्रह गोलक का सन्तुलन बनाये हुए हैं । हमारी व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियाँ भी इसी विश्व-व्यवस्था के अनुरूप बननी और गतिशील रहनी चाहिए ।"

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म

भौतिकी के क्षेत्र में निरन्तर अनुसंधान चल रहे हैं एवं नये-नये अनुसंधान सृष्टि में क्रियाशील मूल बलों तथा उनके एकीकरण सम्बन्धी प्रतिपादनों पर हो रहे हैं । इस क्षेत्र में एक कठिनाई यही आती है कि पदार्थ विज्ञान तक दृष्टि सीमित रखने वाले भौतिकविद् पराभौतिकी (पैराफिजिक्स) के प्रतिपादनों को गले उतारने को तैयार नहीं हैं । देखा यह गया है कि ब्रह्माण्ड सम्बन्धी आत्मिकी की मान्यताओं को यदि आज के अनुसंधानों से समन्वित किया जाता है तो कई सिद्धान्त ऐसे जन्म लेते हैं जिन्हें बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वीकार किया जा सकता है । ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उजागर करने वाली यह प्रतिपाद्य सामग्री गणित के सिद्धान्तों पर भी खरी उतरती है ।

एक भारतीय अणु वैज्ञानिक परमहंस तिवारी के अनुसार यह भौतिक संसार, जो हम अन्तरिक्ष में देखते हैं, सब शून्य से बना है । डॉ. तिवारी का कहना है यह ब्रह्माण्ड खाली-खाली नहीं है, वरन् भार रहित, लचीलेपन से युक्त (इन्काम्प्रेसी बल), गतिशील तथा ऊर्जा से लबालब द्रव इसमें भरा हुआ है ।

इस द्रव द्वारा ही किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में खाली स्थान में से पदार्थों की रचना हुई है । श्री तिवारी द्वारा लिखित पुस्तकों 'स्पेसवोरटेक्स थ्योरी' तथा 'ओरिजिन ऑफ इलेक्ट्रॉन्स फ्रॉम एम्पटी स्पेश' में इसका विस्तृत वर्णन है ।

श्री तिवारी ने गणित के माध्यम से सिद्ध करके बताया कि गतिशील द्रव जब प्रकाश की गति से चलता है तो छोटे-छोटे छिद्र 'द्रव में' पैदा हो जाते हैं । यही छिद्र (परशून्य) जो वास्तव में खाली हैं और १/३०००,००,०००,००० मिमी. व्यास के हैं ।

श्री तिवारी के अनुसार मूल बल (बेसिक फोर्स) की उत्पत्ति घूमते हुए ब्रह्माण्डीय द्रव से हुई है । हमें ज्ञात गुरुत्वाकर्षण विद्युत चुम्बकीय तथा नाभिकीय बल इस 'बेसिक फोर्स' के ही कारण है । भौतिकी की सभी मूल इक्वेशन्स 'वोरटेक्स थ्योरी' के अनुसार प्रतिपादित की जा सकती हैं । जिसमें आइन्स्टीन की 'थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी' भी शामिल है । एक और नया तथ्य ब्रह्माण्ड की इस शोध से उभर कर आया है । अब तक प्रकाश की गति को ही सर्वोपरि गति माना जाता रहा है । आइन्स्टीन कहते थे, इससे तीव्रगति नहीं हो सकती । पर अब ध्रुव 'कर्क' नीहारिका की गतिविधियों का विश्लेषण करते हुए इस गतिशीलता का नया कीर्तिमान सामने आया है । ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के डॉ. एल. एल. और डॉ. ज्याफे एनडीन ने इस नीहारिका के विद्युतीय चुम्बकीय क्षेत्र की चल रही गतिशीलता को प्रति सेकण्ड ५,६५,२०० मील नापा है, जो प्रकाश गति की तुलना में लगभग चार गुना अधिक है । इस नीहारिका के मध्य एक छोटा सूर्य ऐसा पाया गया है कि जिसका तापमान अपने सूर्य से १०० गुना अधिक है । वह अपनी धुरी पर प्रति सेकण्ड ३३ बार परिक्रमा कर लेता है, यह भ्रमण गति भी अब तक की कल्पनाओं से बहुत आगे है ।

कार्ल सांगा जैसे कुछ साइन्स फिक्सन लिखने वाले ब्रह्माण्ड वैज्ञानिकों का विचार है कि अब शीघ्र ही वह दिन निकट आता चला आ रहा है, जब अपनी आकाश-गंगा के साथ जुड़े हुए ग्रह उससे छिटक कर दूर चले जायेंगे और अनन्त अन्तरिक्ष में स्वतन्त्र रूप से विचरण करने लगेंगे । इनका प्रभाव सौर परिवार पर ही नहीं, ग्रहों के साथ भ्रमण करने वाले उपग्रहों पर भी पड़ेगा और एक विशृंखल अराजकता की ऐसी बाढ़ आयेगी कि सर्वत्र एकाकीपन दृष्टिगोचर होने लगेगा, पर अन्तर्ग्रही आदान की शृंखला टूट जाने से ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी कि हर नक्षत्र

विविधताओं के कारण बनी हुई विशेषताओं और सुन्दरताओं को खोकर अपने स्वरूप की तुच्छताओं से सीमाबद्ध अपंग और कुरूप स्तर को ही प्राप्त होगा, लेकिन यह मात्र कल्पना ही है। विधेयात्मक चिन्तन वाले वैज्ञानिकों का मत है कि "अपने सौर-मण्डल में नौ ग्रह हैं, इक्कीस उपग्रह हैं और जो गिन लिए गए ऐसे बीस हजार क्षुद्र ग्रह हैं। ये सभी अपनी-अपनी कक्षा मर्यादाओं में निरन्तर गतिशील रहने के कारण ही दीर्घ जीवन का आनन्द ले रहे हैं। यदि वे व्यतिक्रम पर उतारू हुए होते तो, इनमें से एक भी जीवित न बचता। कब के वे परस्पर टकराकर चूर्ण-विचूर्ण हो गए होते।

इन नौ ग्रहों में से जो ग्रह सूर्य के जितना समीप है, उसकी परिक्रमा गति उतनी ही तीव्र है। बुध सबसे समीप होने के कारण प्रति सेकण्ड ४८ किलोमीटर की गति से चलता है और एक परिक्रमा ८८ दिन में पूरी कर लेता है। पृथ्वी एक सेकण्ड में २८.६ किलोमीटर की चाल से चलती हुई ३६५.२५ दिन में परिक्रमा पूरी करती है। प्लूटो सबसे दूर है वह सिर्फ ४.३ किमी. प्रति सेकण्ड की चाल से चलता है और २४८.४३ वर्ष में एक चक्कर पूरा करता है।

वास्तविकता यह है कि अपना सौर-मण्डल इतना व्यवस्थित, जीवित और गतिशील है कि वहाँ प्रत्येक ग्रह अपनी मर्यादाओं में चल रहा है और एक-दूसरे के साथ अदृश्य बन्धनों में बँधा हुआ है, यदि यह प्रकृति इन ग्रहों की न होती तो वह न जाने कब का बिखर गया होता और टूट-फूट कर नष्ट हो गया होता।

सौर परिवार अति विशाल है। सूर्य की गरिमा अद्भुत है। उसका वजन सौर परिवार के समस्त ग्रहों-उपग्रहों के सम्मिलित वजन से लगभग ७५० गुना अधिक है। सौर-मण्डल केवल विशाल ग्रह और उपग्रहों का ही सुसम्पन्न परिवार नहीं है, उसमें छोटे और नगण्य समझे जाने वाले क्षुद्र ग्रहों का अस्तित्व भी अक्षुण्ण है और उन्हें भी समान सम्मान एवं सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यह क्षुद्र किस प्रकार बने ? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का मत है कि दो समर्थ ग्रह परस्पर टकरा गए। टकराहट किसी को लाभान्वित नहीं होने देती। उसमें दोनों का ही विनाश होता है, विजेता का भी और उपविजेता का भी। यह विश्व सहयोग पर टिका हुआ है, संघर्ष पर नहीं। संघर्ष की उद्धत नीति अपनाकर बड़े समझे जाने वाले भी क्षुद्रता से पतित होते हैं। यह क्षुद्र ग्रह यह बताते रहते हैं कि हम कभी महान् थे, पर संघर्ष के उद्धत आचरण ने हमें इस दुर्गति के गर्त में पटक दिया।

मंगल और बृहस्पति के बीच करोड़ों मील खाली जगह में क्षुद्र ग्रहों की एक बहुत बड़ी सेना घूमती रहती है। सीरिपस, पलास, हाइडालगो, हर्मेस्ट, वेस्ट, ईराल आदि बड़े हैं। छोटों को मिलाकर इनकी संख्या ४४ हजार आँकी गई है, इनमें कुछ ४२७ मील व्यास तक के बड़े हैं और कुछ पचास मील से भी कम।

कहा जाता है कि कभी मंगल और बृहस्पति के बीच कई ग्रह आपस में टकरा गए और उनका चूरा इन क्षुद्र ग्रहों के रूप में घूम रहा है। पर यह बात भी कुछ कम समझ में आती है, क्योंकि इन सारे क्षुद्र ग्रहों को इकट्ठा कर लिया जाय तो भी वह मसाला चन्द्रमा से छोटा बैठेगा। दो ग्रहों के टूटने का इतना मलवा कैसे ? कल्पना यह है कि सौर-मण्डल बनते समय का बचा-खुचा फालतू मसाला इस तरह बिखरा पड़ा है और घूम रहा है।

वैज्ञानिकों की एक कल्पना यह भी है कि प्रशान्त महासागर की जमीन किसी खण्ड प्रलय के कारण उखड़ पड़ी और उड़कर चाँद बन गई। जहाँ से वह मिट्टी उखड़ी वहाँ का गड्ढा समुद्र बन गया। वह उखड़ी हुई जमीन आकाश में मंडराने लगी और धरती का चक्कर काटती हुई चन्द्रमा बन गई। इस प्रकार वह पृथ्वी का बेटा हुआ। इसी सन्दर्भ में यह भी कहा गया है कि जिन दिनों पृथ्वी की सतह लाल अंगारे की तरह तप रही थी, उन दिनों वह घूमती भी तेजी से थी, अपनी धुरी पर तब वह एक चक्कर तीन घण्टे में ही लगा लेती थी और आये दिन गर्म लावे के ज्वार-भाटे जैसे भूकम्प आते थे। उन्हीं दिनों कई विशालकाय उल्काएँ धरती से टकराई और कई समुद्र तथा झील-सरोवर बन गए।

स्थूल दृश्यमान इन पिण्डों की चर्चा न भी करें तो भी हमारे समक्ष एक पहेली तो अब भी रह जाती है। वह है इस पोले आकाश में अवस्थित प्लाज्मा की। गैलेक्सी की व्याख्या करते हुए एस्ट्रोफिजिसिस्ट कहते हैं कि दस खरब नक्षत्रों के समुच्चय से विनिर्मित इसके केन्द्रीय क्षेत्र में कणों का विघटन तेजी से होता है। तारों से अदृश्य कण निकलकर प्लाज्मा के रूप में पोले दीखने वाले आकाशीय क्षेत्र में फैल जाते हैं। इनके इस फैलाव से ही विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र तथा गुरुत्वाकर्षण आदि की क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। ऐसे फैले हुए प्लाज्मा को आयनीकृत प्लाज्मा (आइनोस्फेरिक प्लाज्मा) कहते हैं। आइनोस्फेरिक प्लाज्मा द्वारा कई तरह के क्षेत्र बनते हैं। आइनोस्फेरिक प्लाज्मा के रूप में फैले हुए ये कण ही विभिन्न विचारों, प्रक्रियाओं, घटनाओं, दृश्यों वाले हलचल पूर्ण जगत का कारण हैं तथा उसे प्रभावित नियन्त्रित करते हैं। लाखों वर्षों से आवारागर्दी करते-करते ये कण भूल ही गए हैं कि वे कहाँ से आये हैं।

ये भूले हुए कण ही कास्मिक कणों के रूप में पृथ्वी की ओर भी आते रहते हैं। इन कणों में उच्च गति वाले प्रोटॉन तथा कई तत्वों के परमाणु होते हैं, इनमें अत्यधिक ऊर्जा होती है। वायुमण्डल में इनके प्रवेश करते ही हलचल मच जाती है। इसी हलचल से एक्सेटेंडेड एयर शावर्स (फैले हुए वायु-शावरों) का निर्माण होता है। पृथ्वी की स्थूल हलचल इस प्रकार इन अनेक स्वभाव तथा गुणों वाले कणों के कारण ही होती हैं।

१९५९ में डॉ. मेघनाद साहा ने अपनी खोजों से यह सिद्ध किया था कि सूर्य के प्लाज्मा में दृश्य जगत का हर तत्व विद्यमान है। उनका मत था कि लोगों को सूक्ष्म अस्तित्व में भी आत्मिक आनन्द की सभी सामग्री बतायी जाती है तो लोग विश्वास नहीं करते, उनकी स्थूल दृष्टि में दृश्य जगत और स्थूल पदार्थ ही प्रसन्नता के मूल हैं, पर हमारी अनुभूतियाँ जितनी सूक्ष्म और विशाल होती जाती हैं, रस और आनन्द के तत्व भी उसी अनुपात में असीम तृप्ति वाले बनते चले जाते हैं। इस भारतीय वैज्ञानिक से सम्मति व्यक्त करते हुए विज्ञानी हाइसेन वर्ग ने प्रतिपादन किया था कि "अन्तरिक्ष में अमुक स्थिति पर पहुँचने पर परमाणु पदार्थ न रहकर अपदार्थ में, ऊर्जा में परिणत हो जाते हैं। पदार्थ सत्ता परिधि, काल और रूप में ढाँचे में बँधी है। मनःसत्ता में अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ, विचार और बिम्ब के रूप में व्याख्या होती

है । इतना अन्तर रहते हुए भी उन दोनों के बीच अत्यधिक घनिष्ठता है, यहाँ तक कि वे दोनों एक-दूसरे को प्रभावित ही नहीं करते, वरन् परस्पर रूपान्तरित भी होते रहते हैं ।"

इस तथ्य को नोबेल पुरस्कार विजेता यूजोन विगनर ने और भी अधिक स्पष्ट किया है । वे कहते हैं कि "यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं कि, वस्तुओं की हलचलों से चेतना ही प्रभावित होती है । वस्तुस्थिति यह है कि चेतना से पदार्थ भी प्रभावित होता है ।"

गेटे ने कहा था ब्रह्माण्डीय चेतना का अस्तित्व सिद्ध कर सकने योग्य ठोस आधार मौजूद हैं । रुडोल्फ स्टीनर ने अपने ग्रन्थ में गेटे के प्रतिपादन को और भी अच्छी तरह सिद्ध करने के लिए आधार प्रस्तुत किए हैं ।

जीव विज्ञानी टामस हक्सले ने ब्रह्माण्डीय चेतना के अस्तित्व और उसके कार्य-क्षेत्र पर और भी अधिक प्रकाश डाला है । वे उसे जीवाणुओं में अपने ढंग से और परमाणुओं में अपने ढंग से काम करती हुई बताते हैं और भारतीय दर्शन की परा और अपरा प्रकृति को ब्रह्म पत्नी के रूप में प्रस्तुत करने वाली मान्यता के समीप ही जा पहुँचते हैं ।

आँखें कुछ भी देखती हों, मन कुछ भी करता हो, तथ्य कुछ और ही है

निकटवर्ती वस्तुएँ बड़ी एवं महत्त्वपूर्ण लगती हैं और दूरी का फासला बढ़ने पर बड़ी वस्तु भी नगण्य जैसी लगने लगती है । उदाहरण के रूप में अपने चारों ओर फैले हुए ब्रह्माण्ड पर दृष्टि डालने और उसकी सत्ता का पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि अत्यधिक विशालता भी दूरस्थ होने के कारण छोटी-सी प्रतीत होने लगती है ।

पृथ्वी के अति निकट होने के कारण छोटा-सा चन्द्रमा भी इतना महत्त्वपूर्ण लगता है कि उसे सूर्य के बाद दूसरे नम्बर का ग्रह माना जाता है, जबकि वस्तुतः उस बेचारे का स्तर पृथ्वी के उपग्रह भर जितना है । खुली आँख से देखने पर विशालकाय तारे छोटे से लगते हैं और चन्द्रमा तुलनात्मक दृष्टि से उपहास्रास्पद आकार जितना होते हुए भी रात्रि में चमकने वाला सबसे बड़ा ग्रह पिण्ड प्रतीत होता है ।

समस्त आकाशीय पिण्डों में चन्द्रमा हमारे सबसे सन्निकट है । आधुनिक विज्ञान और तकनीक के विकास से चन्द्रमा के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो चुकी है । पृथ्वी से इसकी औसत दूरी ढाई लाख मील से कुछ कम है । यदि ३०० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से एक वायुयान शून्य में भी चल सकता हो तो हम एक माह में चन्द्रलोक तक पहुँच सकते हैं ।

क्षेत्रफल में भी चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी की अपेक्षा अत्यन्त छोटा है । इसका व्यास लगभग ३१६० मील है । चन्द्रमा की तुलना यदि हम पृथ्वी से करें तो ४९ चन्द्रमा मिलकर एक पृथ्वी बना पायेंगे । भार की दृष्टि से पृथ्वी चन्द्रमा से ८१ गुनी भारी है अर्थात् यदि तराजू के एक पलड़े पर पृथ्वी रखी जाय तो दूसरे पलड़े पर ८१ चन्द्रमा रखने पर उसका कुल भार एक पृथ्वी के बराबर होगा । पृथ्वी और चन्द्रमा के पत्थरों में ५:३ का अनुपात है ।

चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति अत्यन्त कम है । पत्थरों के भार से यह अन्दाज मिलता है । ऊपर से गिरने वाली वस्तु पृथ्वी पर जिस गति से गिरती है चन्द्रमा पर उसकी रफ्तार ६ गुनी कम हो जायेगी । इसी प्रकार पृथ्वी पर कोई १ मन वजन वाली वस्तु चन्द्रमा पर पहुँचकर पौने सात सेर की ही रह जायेगी ।

चन्द्रमा के सम्बन्ध में पूर्व संचित जानकारी और मान्यता से आधुनिक पर्यवेक्षण सर्वथा भिन्न है । वह निशानाथ एवं तारापति नहीं है, जैसा कि मान्यता के अनुसार उसका यशोगान होता रहता है । सौर-मण्डल के अन्य ग्रह विशालता की दृष्टि से पृथ्वी की तुलना में अत्यधिक बड़े हैं, किन्तु वे दूर होने के कारण नगण्य जितने प्रतीत होते हैं ।

सत्य केवल वही नहीं है जो अब तक जाना जा चुका है अथवा जिसे हम जानते हैं । शक्तिशाली रेडियो, दूरबीनों के द्वारा दूरस्थ तारों के रेडियो सर्वेक्षण से उनके आकार, उत्पत्ति, विकास व विनाश चक्र में उनकी वर्तमान स्थिति, तापक्रम, गुरुत्वाकर्षण आदि का पता चलता है । इन्हीं की सहायता मे सौर-मण्डल के दसवें ग्रह का पता चला है । नवें ग्रह या (प्लूटो) के आगे इस दसवें ग्रह का द्रव्य पृथ्वी से ३०० गुना है और यह सूर्य के चारों ओर हमारे ५११ वर्षों में एक परिक्रमा पूरी करता है । इस ग्रह की सबसे विचित्र विशेषता यह है कि इसकी सूर्य परिक्रमा की दिशा अन्य नौ-ग्रहों के एकदम विपरीत है ।

सौर-मण्डल की आधुनिकतम वैज्ञानिक खोजों से पता चला है कि समस्त ग्रहों में प्लूटो की दूरी सर्वाधिक है । लेकिन नवीनतम अनुसंधानों के अनुसार नैपच्यून को सबसे दूरस्थ समझा गया है । वैज्ञानिकों के अनुसार प्लूटो और नैपच्यून दोनों अपनी कक्षा बदलते रहते हैं । यह आगे दौड़, पीछे दौड़ की प्रक्रिया आगामी २० वर्षों तक निरन्तर चलती रहेगी । इसके पश्चात् प्लूटो अपनी पूर्व स्थिति पर आ जायेगा । इन दोनों ग्रहों की इस तरह की विलक्षण गतिविधियाँ जनवरी १९९९ से मार्च १९९९ तक अनवरत चलती रहेंगी । इसे अन्तरिक्ष विज्ञानियों ने ब्रह्माण्ड की विलक्षणता का एक अद्भुत उदाहरण कहा है ।

नैपच्यून को सूर्य की अण्डाकार परिक्रमा करने में १६४ वर्ष लगते हैं । ज्योतिर्विद श्री लॉविल ने भविष्यवाणी की थी कि सूर्य से ४ अरब मील की दूरी पर नवाँ ग्रह भी हो सकता है, जो सूर्य की परिक्रमा २८४ वर्ष में पूरी करता है । इस अपूर्ण जानकारी को देकर सन् १९१६ में लॉविल तो दुनिया छोड़कर चले गए । इसके १४ वर्ष बाद अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक क्लाइब टॉमबफ ने प्लूटो नामक नवें ग्रह को ब्रह्माण्ड से खोज निकाला ।

प्लूटो और सूर्य के मध्य दूरी ३,६६,६०,००,००० मील है और २४८ वर्ष में इसका परिक्रमा काल पूरा होता है । लेकिन इसका परिक्रमा पथ व्यवस्थित नजर नहीं आता ।

इन दोनों नये ग्रहों के उपरान्त अब ऐसे अन्य और ग्रहों की सम्भावना अपने सौर-मण्डल में मानी जाने लगी है जो दूरी के कारण खुली आँखों से न दीखने पर भी विशालता के आधार काफी बड़े और महत्त्वपूर्ण हैं ।

निखिल ब्रह्मा की विशालता देखते हुए अपना सूर्य एक नन्हा-सा टिमटिमाता हुआ तारा भर है । ब्रह्माण्ड में असंख्यों संसार अज्ञात तथा अनखोजे अस्तित्व में हैं । प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे. बी. एस. हेल्डन ने इस कल्पनातीत ब्रह्माण्ड के बारे में कहा

है—"ब्रह्माण्ड उतना ही विचित्र नहीं है, जितनी हम कल्पना कर लेते हैं, बल्कि उससे भी अति विचित्र है हम जितनी कल्पना कर सकते हैं।"

अमरीकी खगोलदर्शी शैपले ने देखा कि आकाशगंगा के रूप में दीखने वाले झुण्डों की पृथ्वी से दूरी २०,००० से २,००,००० प्रकाशवर्ष (एक प्रकाशवर्ष = १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकण्ड की चाल से १ वर्ष में तय की गई दूरी) तक है। उसने यह भी पता लगाया कि ये झुण्ड एक विशाल घेरा बनाते हैं और उन्हें लकड़ी के तख्ते की तरह विभाजित करती हुई एक आकाश-गंगा गुजरती है। इस घेरे का केन्द्र आकाश गंगा में है। यह केन्द्र सूर्य से ५०,००० प्रकाशवर्ष दूर है। इस प्रकार शैपले ने यह सिद्ध किया कि सूर्य आकाश-गंगा के केन्द्र पर नहीं है, जैसा कि हार्शेक्त और अन्य वैज्ञानिकों ने कहा था।

अन्तरिक्ष में अनेक आकाश-गंगाएँ मिलकर समूह बनाती हैं। इनको वैज्ञानिकों ने आकाश-गंगा शृंखलाएँ कहा है। प्रत्येक शृंखला में हजारों आकाश-गंगाएँ रहती हैं। कोशाकतला एक ऐसा ही विशाल आकाश-गंगा समूह है जिसमें ११,००० आकाश-गंगाएँ हैं। प्रत्येक गंगा के बीच करोड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी है।

निकटवर्ती चन्द्रमा की विशालता और ब्रह्माण्ड भर में बिखरे सूर्य तारकों की स्थिति तुच्छ जितनी दीखने का कारण एक ही है—निकटवर्ती को महत्त मिलना और दूरवर्ती के पल्ले उपेक्षा का बँधना। आँखें कुछ भी देखती हों, मस्तिष्क कुछ भी निर्धारण करता हो, पर तथ्य दूसरे ही हैं। सत्य को खोजने वाले इस रहस्य को जानते हैं कि निकटवर्ती और दूरवर्ती के महत्त्व और अस्तित्व के सम्बन्ध में किस प्रकार भ्रान्तियाँ होती रहती हैं। उपरोक्त उदाहरण एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं, कि जो निकटवर्ती है, दीख पड़ता है, सही हो, जरूरी नहीं है। वर्तमान में अतिनिकट होने से उसी के लाभ सर्वोपरि प्रतीत होते हैं जबकि भविष्य दूरवर्ती होने के कारण उपेक्षित बना रहता है। स्वार्थ साधना का प्रतिफल तुरन्त मिलता है और परमार्थ की परिणति कालान्तर में होती है। इसी भ्रान्ति में मनुष्य यह सोचने लगता है कि तात्कालिक स्वार्थ साधना में ही बुद्धिमत्ता है। तथ्य इसके विपरीत है। दूरवर्ती एवं चिरस्थायी उज्ज्वल भविष्य का महत्त्व समझने की यदि टेलिस्कोप जैसी दूरदर्शिता हस्तगत हो सके तो प्रतीत होगा कि श्रेय साधन ही महत्त्वपूर्ण एवं श्रेयस्कर है। चन्द्रमा की विशालता और आकाश-गंगा की लघुता मध्यान्तर के कारण उत्पन्न हुई भ्रान्तियाँ के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसी प्रकार वर्तमान में उलझे रहकर संकीर्ण स्वार्थों को ही सब कुछ मान बैठना और परम लक्ष्य की ओर ध्यान न देना अपने ढंग की अदूरदर्शिता ही है। इससे बच निकलने वाले ही सत्य तक पहुँचते और श्रेय साधने में सफल होते हैं।

जो मान लिया गया, वह अन्तिम नहीं है

प्राचीनकाल से अद्यावधि मनुष्य का ज्ञान निरन्तर विकसित हुआ है। वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर उपलब्ध साधन सुविधाओं की बात छोड़ भी दें तो मनुष्य का ज्ञान ही अकेले इतना विकसित हुआ है कि वह उस अर्जित सम्पदा के बल पर विकसित होता जा रहा है। ज्ञान के विकास की यह प्रक्रिया निरन्तर अबाध गति से चल रही है और इस विकास के कारण कई प्राचीनकालीन धारणाएँ टूटी हैं तथा नये सत्य सामने आये हैं। उदाहरण के लिए अति प्राचीनकाल में यह समझा जाता था कि धरती एक फर्श की तरह है, उस पर नीले आसमान की छत टंगी हुई है। उस छत पर चाँद-सूरज के रूप में दो झाड़-फानूस टंगे हैं तथा सितारों के जुगनू चमकते हैं।

समुद्र एक छोटे तालाब की तरह समझा जाता था किन्तु अब वे सब धारणाएँ मिथ्या सिद्ध हुई हैं और यह तथ्य सामने आये हैं कि हमारी पृथ्वी विशालकाय ब्रह्माण्ड की एक राई रत्ती जितनी छोटी-सी सदस्या मात्र है। उसके जैसे असंख्य पिण्ड इस अनन्त आकाश में छितरे पड़े हैं। समूचे ब्रह्माण्ड का विस्तार मनुष्य की कल्पना शक्ति से बाहर है। अपनी धरती पर भी जितना दृश्य पदार्थ है, उससे असंख्य गुना विस्तृत और शक्तिशाली वह है जो विद्यमान रहते हुए भी अदृश्य है। प्राचीन और अर्वाचीन कल्पनाओं में इतना विचित्र अन्तर है कि लगता है, मनुष्य खाई खन्दक के अन्धेरों से निकलकर सर्वप्रथम आलोकित होने वाले पर्वत शिखरों पर पहुँच गया है।

प्राचीनकाल और अर्वाचीनकाल की मान्यताओं के सम्बन्ध में अन्तर का इतना ही कारण है कि हमारे ज्ञान एवं साधन क्षेत्र का विस्तार हुआ है। तदनुसार यह विश्व भी, जिसे हम अपना संसार कह सकते हैं, अधिकाधिक विस्तृत होता चला गया है। संसार इतना विस्तृत तो पहले भी था, किन्तु उसका प्रत्यक्षीकरण अब हुआ है। इसलिए यही कहना होगा कि हमारा संसार इन दिनों बहुत अधिक विस्तृत हुआ है और भविष्य में भी हम जिस गति से बढ़ेंगे, हमारा विश्व भी उसी अनुपात से अधिक विकसित होता चला जायेगा। यूनान के लोगों की मान्यता थी, कि पृथ्वी हरक्यूलस देवता के कन्धे पर टिकी हुई है। भारतीय उसे शेषनाग के फन पर या गाय के सींग पर टिकी मानते थे, सूर्य देवता के रथ में सात घोड़े जुते होने और अरुण सारथी द्वारा हँकि जाने की मान्यता को अब सूर्य किरणों के सात रंग और प्रभातकालीन रक्ताभ आलोक कहकर संगतिकरण करना पड़ता है।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार कभी पृथ्वी चटाई की तरह चपटी बिछी हुई थी और उस पृथ्वी को हिरण्याक्ष कागज की तरह लपेट कर भाग गया था तथा समुद्र में जा छिपा था। पृथ्वी को उसके शिकंजे से निकालने के लिए भगवान विष्णु को वाराह का रूप धारण करना तथा हिरण्याक्ष से छीनना, छुड़ाना पड़ा था। उपलब्ध ज्ञान और प्राप्त तथ्यों के सन्दर्भ में इन घटनाओं को देखते हैं तो ये बातें बाल-बुद्धि की कल्पना ही सिद्ध होती हैं। पृथ्वी के लपेटे जाने की और उसी पर भरे हुए समुद्र में छिपा लेने की बात अब समझ से बाहर की बात है पर किसी समय यही मान्यता शिरोधार्य थी।

विद्वान् आर्यभट्ट ने पहली बार पाँचवीं शताब्दी में पृथ्वी को गोल गेंद की तरह बताया। बारहवीं शताब्दी में भास्कराचार्य ने उसमें आकर्षण शक्ति होने की बात जोड़ दी। प्राचीन ज्योतिष विज्ञान धरती को स्थिर और सूर्य को चल मानता था। सहज बुद्धि यही सोच सकती थी, किन्तु पीछे पृथ्वी को भ्रमणशील बताया गया तो बताने वालों को उपहासास्पद ही नहीं माना गया, वरन् उन्हें नास्तिक कहकर नास्तिकता के अपराध में सूली पर चढ़ा दिया गया किन्तु तथ्य तो तथ्य है। सत्य की कितनी ही उपेक्षा

की जाय उसे स्वीकार करना ही पड़ता है । पीछे जब अन्ध मान्यताओं की जकड़न ढीली हुई तो इन तथ्यों को भी स्वीकार किया जाने लगा और अब स्थिति यह है कि अब किसी को भी अपनी पृथ्वी के विश्व का नगण्य घटक मानने में कोई आपत्ति नहीं है ।

अपने विश्व में असंख्य निहारिकाएँ हैं । वे इतनी बड़ी हैं कि उनके एक कोने में करोड़ों सूर्य पड़े रह सकें और वे पृथ्वी से इतनी दूर हैं कि उनका प्रकाश पृथ्वी तक आने में लाखों वर्ष लग जाते हैं जबकि प्रकाश एक सेकण्ड में एक लाख छियासी हजार मील की गति से चलता है । आसमान में जो तारे दिखायी पड़ते हैं, उनमें से कई तो अपने सूर्य से भी हजारों गुना बड़े महासूर्य हैं । उनके अपने-अपने सौर-मण्डल तथा ग्रह-उपग्रह हैं । वे आपस में नजदीक दीखते भर हैं परन्तु वास्तव में उनका फासला अरबों-खरबों मील है । वे सभी एक-दूसरे के साथ पारस्परिक आकर्षण शक्ति के रस्सों से बँधे हैं । आकाश से नीचे गिरने या ऊँचे उछलने जैसी कोई शक्ति नहीं है । उस पोल में हर वस्तु अधर में सहज ही लटकी रह सकती है । हलचल तो ग्रह-नक्षत्रों की अपनी आकर्षण शक्ति के कारण होती है । उसी के प्रभाव से वे अपनी धुरी पर अपनी कक्षा में घूमते हैं । यह बातें सुनने-पढ़ने में विचित्र अवश्य लगती हैं, पर हैं सत्य । अब से कुछ सौ वर्षों पूर्व तक इन बातों पर कोई विश्वास नहीं करता था, किन्तु अब मनुष्य का ज्ञान बढ़ा है और साथ ही साथ उसका संसार भी । इसलिए इन मान्यताओं को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है ।

सूर्य सौर-मण्डल का केन्द्र है । उसका व्यास पृथ्वी से १०९ गुना, वजन ३,३०,००० गुना तथा घनफल १३,००,००० गुना बड़ा है । उसके एक वर्ग इंच स्थान में इतना प्रकाश उत्पन्न होता है जितना कि इतने ही स्थान में तीन लाख मोमबत्तियाँ जलाने से उत्पन्न हो सकता है । उसकी गर्मी ६ हजार डिग्री होती है, जिसकी तुलना में पृथ्वी की आग को बरफ जैसा ठण्डा माना जा सकता है । इतनी अधिक गर्मी के कारण सूर्य का सारा पदार्थ वाष्पीभूत है और उस द्रव्य में सदा भयंकर तूफान उठते रहते हैं जिनके कारण कभी-कभी तो इतने बड़े खड्ढ हो जाते हैं कि उनमें अपनी पृथ्वी के समान कई धरतियाँ समा सकें । काले धब्बे के रूप में सूर्य पर दिखायी देने वाली आकृतियाँ यही हैं ।

अपनी पृथ्वी ही उत्तर से दक्षिण तक ७८९९ मील तथा पूर्व से पश्चिम तक ७९२६ मील है । इसका ७१ प्रतिशत भाग समुद्र में डूबा हुआ है । समुद्र की सर्वाधिक गहराई ३५ हजार फीट है तथा भू-तल के ऊँचे-से-ऊँचे पहाड़ २९ हजार फुट तक ऊँचे हैं । पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा करने में ५८ करोड़ ४६ लाख मील की यात्रा एक वर्ष में पूरी करनी होती है । वह ६६,६०० मील प्रति घण्टा की गति से अपनी कक्षा में भागती है, साथ ही स्वयं भी लट्टू की भाँति २४ घण्टे में अपनी धुरी पर घूम लेती है ।

पोले आकाश में साँस लेने योग्य हवा कुछ ही दूरी तक है । इससे आगे बन्द रॉकेटों में साँस लेने के अतिरिक्त प्रबन्ध करना पड़ता है । प्राचीनकाल के लोग अन्यान्य लोकों में ऐसे ही विचरण करते थे जैसे पृथ्वी पर । इस तरह के कथा-प्रसंगों से पौराणिक साहित्य भरा पड़ा है । अब जो वस्तु स्थिति सामने आ रही है, उस आधार पर वैसा करना या यह मानना असम्भव हो ही गया है ।

पिछले जमाने में सूर्य को ठण्डा माना गया था । उसका एक नाम 'आतप' भी है । आतप अर्थात् जो स्वयं तो ठण्डा हो किन्तु दूसरों को प्रकाश दे, किन्तु अब वैसा नहीं कहा जा सकता । ऐसा मानने का उन दिनों एकमात्र कारण यह था, कि हम जितने ही ऊँचे चढ़ते जाते हैं, उतनी ही ठण्डक बढ़ती है । पहाड़ों पर बर्फ जमीं रहती है, यह सर्वविदित है । जितनी ऊँचाई उतनी ठण्डक, इस सिद्धान्त ने सूर्य के ठण्डा होने की कल्पना दी थी, पर अब इस बात की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता ।

चन्द्रमा किसी जमाने में पूर्ण ग्रह माना जाता था । उसे 'तारापति' कहते थे । सौर-मण्डल में ही नहीं आकाश में चमकने वाले ताराओं का भी वह अधिनायक था, किन्तु अब जो नये तथ्य सामने आये हैं, उनके अनुसार चन्द्रमा पूर्ण ग्रह नहीं है, वह केवल सूर्य की ही नहीं वरन् पृथ्वी की भी परिक्रमा करता है । इसलिए उसे पृथ्वी का उपग्रह ही कहा गया है । सूर्य की तुलना में तो वह करोड़ों का हिस्सा भी नहीं ।

पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा की अपनी-अपनी अलग गतियाँ हैं । इस चक्र में कई बार सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा के ऊपर पड़ने के मार्ग में पृथ्वी आ जाती है तो चन्द्र ग्रहण दीखता है और जब पृथ्वी तथा सूर्य के बीच में चन्द्रमा आ जाता है तो सूर्य ग्रहण दीख पड़ता है । कौन और कितना आड़े आया ! इसी हिसाब से ग्रहण की छाया न्यूनाधिक दीखती है । पहले कभी यह मान्यता रही थी कि राहु-केतु राक्षस सूर्य व चन्द्रमा पर आक्रमण करते हैं, किन्तु अब वैसी बात नहीं कही जा सकती । मानवी प्रगति ने ऐसी कितनी ही पुरानी मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया है और वह कड़वी गोली किसी प्रकार पुरातन पन्थियों को भी गले उतारनी पड़ रही हैं ।

सूर्य, चन्द्र ग्रहण को राहु केतु नामक राक्षसों का उत्पात मानने की तरह ही उल्कापात के सम्बन्ध में भी यह मान्यता प्रचलित थी कि ये देवताओं तथा प्रेतात्माओं की हलचलें हैं । समझा जाता था कि किसी महापुरुष के मरने पर एक तारा टूटता है । देवता लोग उल्कापात के माध्यम से पृथ्वीवासियों के लिए विपत्ति भेजते हैं । इस धारणा के कारण लोग भयभीत होकर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए कर्मकाण्ड आदि रचा करते थे किन्तु वैज्ञानिक गवेषणाओं ने सिद्ध कर दिया है कि उल्कापात अब प्रकृति की एक साधारण-सी घटना है । अनन्त आकाश में किन्हीं ग्रह-नक्षत्रों के टूटे-फूटे कंकड़ पत्थरों के रूप में उड़ते रहते हैं । वे कभी पृथ्वी के वायुमण्डल में घुस पड़ते हैं तो हवा के घर्षण से वे जलकर खाक होने लगते हैं । यह जलना और दौड़ना ही उल्कापात है । कभी-कभी एक साथ सैकड़ों कंकड़ घुसते हैं तो आकाश में आतिशबाजी जैसी जलने लगती है । कुछ पिण्ड बहुत बड़े और अधिक कठोर होते हैं और उनका अधजला हिस्सा धरती पर आ गिरता है । ऐसी उल्काएँ संसार भर में जब तब गिरती रहती हैं और उनके अधजले टुकड़े अजायब घरों में रखे जाते हैं ।

ज्वालामुखी और भूकम्पों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही मान्यताएँ थीं । भूकम्प के सम्बन्ध में समझा जाता था कि शेषनाग जब अपना फन हिलाते हैं तो पृथ्वी पर भूकम्प आते हैं । अब यह

मान्यता केवल अशिक्षित, देहाती और पिछड़े इलाकों भर में रह गई है अन्यथा शिक्षित समुदाय अच्छी तरह जानता है कि पृथ्वी आरम्भ में आग के गोले की तरह थी, उसकी ऊपरी पर्त धीरे-धीरे ठण्डी होती गई और उस पर प्राणियों तथा वनस्पतियों का निवास सम्भव हो सका। अभी भी पृथ्वी के भीतर प्रचण्ड गर्मी है। सारा पदार्थ पिघला हुआ है और कड़ाही में खौलते हुए तेल की तरह खुद-बुद करता रहता है। इसकी भाप अक्सर धरती की ऊपरी पर्त को बेधकर निकलती है जो जिधर से वह निकलती है वहाँ या तो ज्वालामुखी विस्फोट होता है अथवा भूकम्प आते हैं।

यह हलचलें निरन्तर होती रहती हैं। औसतन हर तीसरे दिन एक बड़ा और हर दस मिनट बाद एक हल्का भूकम्प पृथ्वी पर कहीं न कहीं निरन्तर आता रहता है। इसके अनेक कारण हैं। समुद्र की तली से पानी रिसकर उस आग्नेय द्रव पदार्थ तक जा पहुँचा है तो उसकी भाप विस्फोट करती हुई ऊपरी सतह को फाड़ती है। नये पहाड़ों के भीतर जहाँ-तहाँ गुफाओं की तरह बड़ी-बड़ी पोलें हैं, वे धसकती रहती हैं। पृथ्वी की ऊपरी पपड़ी सिकुड़ती रहती है। ऐसे-ऐसे अनेक कारण पृथ्वी पर ज्वालामुखी फटने अथवा भूकम्प आने के हैं। अब शेषनाग के फन हिलाने पर भूकम्प आने की बात मानना या स्वीकार करना अथवा इसी मान्यता पर अड़े रहना बाल-हठ तथा दुराग्रह ही कहा जायेगा।

कहा जा चुका है कि मनुष्य निरन्तर प्रगति-पथ पर बढ़ता जा रहा है। उसका ज्ञान बढ़ रहा है और ज्ञान बढ़ने के फलस्वरूप पुरानी मान्यताओं के स्थान पर नये प्रतिपादन सामने आ रहे हैं। यह क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है और भविष्य में भी अनन्त काल तक चलता रहेगा। आज की अपनी स्थापनाओं में भी भविष्य में विकास क्रम के अनुसार परिवर्तनों की शृंखला चलती रही है। अतः हमें दुराग्रही नहीं होना चाहिए और पूर्वजों के प्रति पूर्ण आस्थावान रहते हुए भी यह मानकर चलना चाहिए कि जो कहा अथवा माना जाता रहा है या माना जा रहा है, वही अन्तिम नहीं है।

पृथ्वी पर होते रहे परिवर्तन

पृथ्वी की स्थिति में समय-समय पर भयानक परिवर्तन होते रहे हैं। इन्हें महाप्रलय या खण्ड प्रलय कहा जाय तो भी आश्चर्य नहीं। यह परिवर्तन भूतकाल में भी हुए हैं और भविष्य में भी उनके होने की सम्भावना है।

इन परिवर्तनों के उपरान्त प्राणी स्वल्पकाल में ही विकसित कैसे हो गए, यह आश्चर्य की बात है। इसका एक और समाधान निकला है कि पाषाणों के मध्य प्राणी चिरकाल तक जीवित रह सकते हैं। इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि मनुष्य भी कहीं सुरक्षित स्थानों पर अपना अस्तित्व बनाये रहे हों।

कहा जाता है कि आदिम काल का मनुष्य अनगढ़ गुफाओं में रहता था, पर अब पर्वतीय प्रदेशों में ऐसे भव्य भवन ढूँढ निकाले गए हैं जो प्राकृतिक अनगढ़ नहीं हैं, वरन् मनुष्यों द्वारा उच्चस्तरीय कला-कौशल के साथ बनाये गए हैं।

पृथ्वी की, समुद्री द्वीपों की खोज के श्रेय अमुक मनुष्यों को दिए जाते हैं। पर प्रश्न यह उठता है कि उसने इतनी जल्दी इतनी सफलतापूर्वक स्थान कैसे ढूँढ़ निकाले। इसका समाधान उन मानचित्रों से मिला है जो अतीव पुरातन हैं और पृथ्वी एवं समुद्र की सही स्थिति के विवरण बताने की स्थिति में उपलब्ध हुए हैं। नवीन शोधकर्त्ताओं ने सम्भवतः इन्हीं मानचित्रों से सहायता ली है और खोज का काम शीघ्रतापूर्वक समग्र रूप से सम्पन्न किया है।

सभ्यताओं का इतिहास इतना नवीन नहीं है जितना कि पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ाया जाता है। वरन् वास्तविकता यह है कि अनुमानित काल की अपेक्षा कहीं पहले ऐसी सभ्यताओं का विकास विद्यमान था, आज की वैज्ञानिक प्रगति से किसी भी प्रकार कम महत्त्व की नहीं माना जा सकता।

चेचेन-इंगुशेती पहाड़ियों में पुरावेत्ताओं की एक खोज ने मनुष्य के गुफा-निवास की 'असभ्यता' के बारे में पुरानी भ्रान्त धारणाओं को भंग कर दिया है। यहाँ बड़ी ऊँचाइयों पर चट्टानों को तराशकर बनाये दो तले, तीन तले आवास मिले हैं, जिन्हें बहुकक्षी गुफाओं की संज्ञा दी जा सकती है। इस गुफा नगरी में लोगों के रहने के अतिरिक्त घरेलू कामकाज और पशुओं के लिए भी जगह बनी हैं।

सन् १६०० में काईथेरा टापू के पास समुद्र में जब गोताखोरों ने स्पन्ज ढूँढ़ने के लिए डुबकी लगायी, तो उन्हें एक ध्वस्त जहाज का मलवा मिला। १८० फुट नीचे समुद्र तल पर इस मलबे में जब खोजबीन की तो विभिन्न प्रकार की धात्विक मूर्तियों और बर्तनों के अतिरिक्त उन्हें किसी यन्त्र का एक भाग भी मिला। यह यन्त्र का गियर वाला भाग था, जिसमें प्रयुक्त तकनीक अत्यन्त जटिल थी। सूक्ष्म निरीक्षण से यह किसी अत्यन्त परिष्कृत यन्त्र का कोई हिस्सा मालूम पड़ा। सम्भवतः यह किसी खगोलीय कैलेण्डर का भाग हो, क्योंकि इसमें चन्द्रमा और ग्रह-मण्डलों की स्थितियाँ दिखायी गई हैं।

शोधकर्त्ताओं ने इस यन्त्र को १०० ई. पू. के हेलेनिस्टिक युग का बताया, किन्तु उनका कहना है कि इस युग में टेक्नोलॉजी का सर्वथा अभाव था। जब उस गियर तन्त्र की शुद्धता की परीक्षा की गई, तो इस कसौटी में भी वह खरा उतरा। उसमें त्रुटि एक मिमी के १० वें भाग से अधिक न थी। यह त्रुटि कोई बहुत अधिक नहीं मानी जा सकती। जब उस काल के लोग टेक्नोलॉजी से बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे, तो इतना परिष्कृत यन्त्र उन्हें कहाँ से प्राप्त हुआ? वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का कहना है कि यह यन्त्र सम्भव है, उन्हें किसी अन्तरिक्षीय अतिविकसित सभ्यता से प्राप्त हुआ हो।

सन् १६२६ में टर्किश नेशनल म्यूजियम के डायरेक्टर बी. हेलिल एडेम को एक अति प्राचीन नक्शे के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए। नक्शा रैडसी एवं परसियन गल्फ के फ्लीट एडमीरल पीरीरेस द्वारा विनिर्मित है। उक्त एडमिरल ने नक्शे को सन् १५१३ में बनाया, म्यूजियम में प्राप्त टुकड़े उसके विश्व नक्शे के ही भाग हैं। सन् १६४० में इसकी अनेक प्रतियाँ तैयार करवाई गईं। सन् १६५४ में यह नक्शा विख्यात अमरीकी मानचित्रकार अरलिंग्टन एच. मैलरी के हाथ लगा। मैलरी प्राचीन नक्शे के विशेषज्ञ माने जाते हैं, उन्होंने बताया कि पीरीरेस के नक्शे में महाद्वीपों एवं दक्षिणी ध्रुव को स्पष्ट दिखाया गया है। उनके अनुसार सन् १५१३ तक दक्षिणी ध्रुव की खोज नहीं हो पायी थी। उसके मानचित्र में अमरीका का भी उल्लेख है, जिसके बारे में तत्कालीन लोगों को कोई जानकारी नहीं थी। जब दो स्थानों के बीच की दूरी जानने

के लिए आधुनिक मानचित्र एवं पीरीरेस के नक्शे का तुलनात्मक अध्ययन किया गया, तो यह जानकर अचम्भा हुआ कि पुराने नक्शे में भी विभिन्न स्थानों के बीच की दूरियों को बिल्कुल सही-सही आंका गया है। इसके अतिरिक्त मानचित्र में विभिन्न स्थानों का सही-सही निरूपण भी नक्शे की विलक्षणता है। विशेषज्ञों का कहना है कि इतना सही मानचित्र किसी अति विकसित टेक्नोलॉजी के बिना सम्भव नहीं। आधुनिक युग में ऐसे मानचित्र बनाने के लिए वायुयानों एवं जलयानों के माध्यम से इन्फ्रारेट फोटोग्राफी एवं प्रतिध्वनि का सहारा लिया जाता है। दक्षिणी ध्रुव के बारे में तो सन् १६४६ तक विज्ञानियों को सही जानकारी नहीं थी। फिर इतना सही मानचित्र १५वीं सदी में कैसे बना लिया गया, जबकि नक्शे में उल्लिखित अधिकांश स्थानों के बारे में तत्कालीन लोगों को कोई जानकारी नहीं थी।

डेनिकेन का कहना है—नक्शा देवमानवों द्वारा कक्षा में घूमते स्पेश-स्टेशन से बनाया गया और इसे पृथ्वी-वासियों को भेंट स्वरूप प्रदान किया।

सन् १८६८ में सक्कारा के निकट एक कब्र में वायुयान का एक मॉडल प्राप्त हुआ। वायुयान का नम्बर ६३४७ उसमें स्पष्ट अंकित है। यह मॉडल लकड़ी का बना है, वजन ३६.७२ ग्राम पाया गया। दोनों डैनों का फैलाव १८ सेमी.। नाक ३.२ सेमी. और इसकी सम्पूर्ण लम्बाई १४ सेमी.। मॉडल का आकार-प्रकार हवाई उड़ान के अनुकूल है। विशेषज्ञों के अनुसार इसके डैने, पूँछ एवं शरीर की लम्बाई का अनुपात एक आदर्श वायुयान का है। इस पर मिस्री भाषा में 'पा-डायमेन' अंकित है, जिसका अर्थ है 'अमन का उपहार'। यह 'अमन' कौन हो सकता है? डेनिकेन के अनुसार अमन और कोई नहीं अन्तरिक्षवासी देवमानव ही हैं। विभिन्न स्थानों में इस प्रकार के अनेक वायुयान मॉडल पाये गए हैं। ये सभी 'हाल ऑफ इजिप्टियन म्यूजियम फॉर एन्टिक्वीटिज' में सुरक्षित हैं। वर्तमान समय में यहाँ इस प्रकार के १४ मॉडल उपलब्ध हैं।

कार्सन सिटी, नेवादा के सन्निकट प्रान्तीय जेल के आहाते में उत्खनन के समय सन् १८८२ में सैण्ड स्टोन की एक पर्त में जूते पहने हुए मनुष्य के पद चिह्न प्राप्त हुए थे। जिनकी लम्बाई १८-२० इंच और चौड़ाई ८ इंच थी। इसके साथ ही उस ट्रैक में अनेक अन्य पशुओं जैसे—हाथी, घोड़े, हिरण, भेड़ियों के पद चिह्न मिले थे। इन पद चिह्न तथा शैलाभों की उम्र २००००० से ३०००००० वर्ष आंकी गई थी।

नेवादा के पर्शिंग काउन्टी स्थित फिशर कैनन क्षेत्र में सन् १६२७ में अल्फ्रेड ई. नैप को ट्राइऐसिक लाइमस्टोन में धँसे चमड़े के जूतों के चिह्न अंकित मिले। प्रिन्टों के फोटोमाइक्रो ग्राफ लेने पर ज्ञात हुआ कि जूतों के चमड़े पतले धागों से, हाथों द्वारा टँकि गए थे। इस विधि को १६२७ में जूते बनाने वाले अपना रहे थे। ट्राइऐसिक लाइम स्टोन की उम्र १८००००००० से २२५०००००० वर्ष तक आंकी गई।

ओहियो के कोसोक्टन नामक स्थान के समीप उत्खनन करते समय सन् १८३७ में बौनों का एक कब्रिस्तान मिला। नर कंकालों की लम्बाई ३ से साढ़े चार फुट लम्बी थी और सभी अलग-अलग लकड़ी के ताबूतों में बन्द करके दफनाए गए थे। बौनी सभ्यता से सम्बन्धित कोई शिल्प उपलब्ध न होने के कारण उनकी अवधि निश्चित नहीं हो सकी, लेकिन कब्रों की संख्या देखते हुए इस सभ्यता के कार्य काल और सम्भावित शहर की सम्भावना सुनिश्चित है।

इसी तरह १८६१ में ओहियो के एक बहुत बड़े कब्रिस्तान टीले की खुदाई करने पर एक पुरुष का स्थूलकाय भारी-भरकम शरीर ताँबें की चद्दर में लिपटा हुआ पाया गया। सिर पर ताँबे की टोपी, हाथ-पैर और पेट-पीठ सभी ताँबे से ढके हुए थे। मुँह के अन्दर मोतियाँ ठुसी हुई थीं और गले में मोतियों तथा भालू के दाँतों से बना हार पहनाया गया था। इस कब्र के समीप ही एक महिला का अस्थि पंजर दफनाया हुआ मिला।

ये सभी कंकाल ५०० फीट लम्बे, २०० फीट चौड़े और २८ फीट ऊँचे टीले की १४ फीट गहराई में दफन किए हुए मिले थे।

सन् १८५३ में अमेरिका के एक खान उत्खनन में शिलाखण्ड में चारों तरफ से बन्द एक हार्नी लिजार्ड छिपकली निकली। पूर्ण विवरण ज्ञात करने के लिए न्यू मैक्सिको के न्यायाधीश हाटन ने इस छिपकली को वाशिंगटन स्थित स्मिथसोनिएन संस्थान को भेज दिया। पत्थर को तोड़कर बाहर निकाले जाने के बाद यह छिपकली दो दिन बाद मर गई।

१८६५ में इंग्लैण्ड के दुरहम प्रान्त के हार्टलेपूल वाटरवर्क्स की खुदाई का कार्य प्रगति पर था। २५ फीट की गहराई पर मैग्नीसिया लाइम स्टोन के भारी भरकम पत्थर हटाये जा रहे थे। पत्थर के एक बड़े टुकड़े के टूटने पर उस पत्थर की एक छोटे सी गुफा में बन्द एक जीवित टोड टर्र-टर्र करता हुआ बाहर निकला। जिसकी आँखें चमक रही थीं और मुँह बन्द था। आवाज नासाछिद्रों द्वारा निकल रही थी। सुप्रसिद्ध भू-विज्ञानी रॉबर्ट टेलर ने बताया कि टोड की उम्र ६००० (छः हजार) वर्ष की थी।

सन् १८५२ में इंग्लैण्ड के डर्वी प्रान्त में पासविक स्थिति खान की खुदाई करते समय मजदूरों को १२ फीट की गहराई में पत्थरों को तोड़ते समय एक बड़े शैल खण्ड के मध्य एक छोटी-सी गुफा में ६ इंच व्यास वाला मेढ़क बैठा हुआ मिला। मेढ़क की बाह्य त्वचा कैल्सियम कार्बोनेट के क्रिस्टलों से ढकी हुई थी। जैसे ही मेढ़क का सम्पर्क बाह्य वातावरण से हुआ वह मर गया।

इसी तरह १८३५ में लन्दन में रेलवे लाइन बिछाते समय मजदूरों ने पत्थर के एक खण्ड को तोड़कर एक जीवित मेढ़क निकाला था। प्रारम्भ में मेढ़क का रंग चमकीला भूरा था, परन्तु १० मिनट बाद बाह्य वातावरण के सम्पर्क में आते ही उसका रंग बदल कर काला हो गया। यह मेढ़क चार दिन तक जीवित रहा।

सन् १७८६-८८ के मध्य फ्रांस के ऐक्सिन प्रॉविन्स में शहर के समीप वृहद उत्खनन कार्य जोर-शोर से चल रहा था। खान से पत्थर निकाल कर जस्टिस पैलेस का पुनर्निर्माण कराना था। पत्थरों की चट्टानें बालू और मिट्टी की तहों से अलग-अलग परतों में जमी थीं, जिन्हें एक के बाद दूसरी पर्त की खुदाई करके निकाला जा रहा था। ४० फीट की गहराई में से पत्थरों की ११वीं पर्त निकाली जा चुकी थी। बालू हटाकर पत्थरों को तोड़ा गया। उसके नीचे पृथ्वी के गर्भ में समाई हुई ३००००००० वर्ष पुरानी मानवी सभ्यता के दर्शन हुए। पत्थरों के खम्भों, अर्द्धनिर्मित

पत्थर, सिक्के, लकड़ी से बने हथोड़े की मुठिया, आठ फीट लम्बा और एक इंच मोटा लकड़ी का सुन्दर बोर्ड, तथा कई अन्य प्रकार के बुडेन टूल्स को देखकर सभी हतप्रभ हो गए। उनमें से अधिकांश चीजें एवं डिजायनें फ्रांस में १८वीं सदी में प्रचलित थीं।

तथ्यों को देखते हुए हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि मानव सभ्यता अति पुरातन है और वह जीवाणु से नहीं ब्रह्माण्ड के अन्यान्य लोकों में निवास करने वाले देव मानवों से अनुदान में मिली है।

परिवर्तन सृष्टि का एक अनिवार्य उपक्रम !

इस सृष्टि में स्थिर कुछ भी नहीं है। जो स्थिर जैसे दिखायी पड़ते उनमें भी स्थिरता नहीं है। यहाँ सब कुछ गतिशील है। जड़ पदार्थ के अणु परमाणु के भीतर के कण सदा बन्द वृत्तों में गतिमान रहते हैं। चन्द्रमा, पृथ्वी की और पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। सूर्य भी एक जगह टँगा नहीं रहता। वह अपने सौरपरिवार के सदस्यों समेत महासूर्य की, और महासूर्य किसी विराट् सूर्य का परिभ्रमण करने दौड़ा चला जा रहा है। इस क्रम का अन्त नहीं और सम्भवतः यह तब तक बना रहेगा, जब तक यह सृष्टि रहेगी। गतिशीलता उसका प्रमुख लक्षण है।

स्थिरता अन्दर भी नहीं है। शरीर के भीतर सम्पूर्ण अवयव एक स्वसंचालित प्रक्रिया द्वारा अपने-अपने कार्यों में निष्ठापूर्वक जुटे हैं। हृदय का आकुंचन-प्रकुंचन अहर्निशि चलता रहता है। धमनियों में रक्त-प्रवाह एक क्षण के लिए भी रुकता नहीं। पाचन तन्त्र खाद्यान्नों को पचाने और ऊर्जा पैदा करने में मुस्तैदी दिखाता रहता है। फेफड़े भी अपनी गतिविधियाँ कहाँ रोकते हैं? वह रुक जायें, तो मनुष्य का प्राणान्त देखते-देखते हो जाय। मस्तिष्क की अपनी क्रिया प्रणाली है। वह उसे अपने ढंग से निरन्तर जारी रखता है। वैसे, बाहर से यह सब शान्त और गतिहीन जान पड़ते हैं, पर शरीरशास्त्री जानते हैं कि यदि भीतर का गति-चक्र रुक गया तो शरीर को जीवित रख पाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव भी जायेगा।

निश्चलता जड़ जैसे दीखने वाले पहाड़-पर्वतों पत्थर-चट्टानों में भी नहीं। उनके भीतर के परमाणुओं में भी हलचल जारी है। इलेक्ट्रॉन जैसे सूक्ष्म कण अपनी निश्चित कक्षा में चक्कर काटते ही रहते हैं। उनमें से कोई अपने दायित्व का सर्वथा त्याग कर दे, कर्त्तव्य का निर्वाह न करे तो पदार्थ सत्ता का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाय। पिण्ड हो अथवा ब्रह्माण्ड, जड़ हो या चेतन हलचल सब में हो रही है। गतिशील सभी हैं।

गति ही जीवन है और विराम मृत्यु। इस संसृति में सुव्यवस्था, क्रमबद्धता एवं पदार्थ व जीवन सत्ता बनी रहने के लिए गति आवश्यक है। गति स्वयं पृथ्वी में ही नहीं, उसके पृथक्-पृथक् टुकड़ों एवं प्लेटों में भी विद्यमान है। भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि पृथ्वी के टुकड़े भी चलायमान हैं। उनके अनुसार वे अनेकों बार पृथ्वी से अलग हुए तथा अनेक बार जुड़े। सात महाद्वीपों में पृथ्वी का विभाजित होना टेक्टोनिक प्लेटों की गतिशीलता का ही परिचायक है। अधुनातन शोधों के अनुसार ये महाद्वीप भी अपने-अपने स्थानों से खिसक रहे हैं। यह ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी पूरी तरह ठोस नहीं है। इसके केन्द्र में अतिशय गाढ़ा तरल पदार्थ है, जिस पर ६५ किमी. से ६५ किमी. तक की मोटी पर्त के दस टुकड़े तैरते रहते हैं। इस विज्ञान के विशेषज्ञों का कथन है कि बीस करोड़ वर्ष पहले ये टुकड़े परस्पर मिले हुए थे। इनका पृथक् अस्तित्व नहीं था, फलतः महाद्वीप भी एक ही था। गति के कारण कालक्रम में यह सात भागों में विभाजित हो गया, जिन्हें आज हम सात महाद्वीपों के रूप में जानते-मानते हैं। ये महाद्वीप भी स्थिर नहीं हैं। १ सेमी. से लेकर १५ सेमी. प्रति वर्ष ये विभिन्न दिशाओं में खिसकते जा रहे हैं। यूरोप और उत्तरी अमेरिका एक-दूसरे से प्रति वर्ष २.५ सेमी. दूर होते जा रहे हैं। हर वर्ष अनेक स्थानों पर अनेक भूकम्पों, ज्वालामुखियों की विभीषिका का कारण यह भी बताया जाता है कि यदा-कदा तैरती टेक्टोनिक प्लेटें आपस में टकरा जाती हैं, जिससे पृथ्वी सतह पर तीव्र कम्पन होता है एवं कहीं-कहीं इस भीषण टक्कर से गर्म तरल पदार्थ (लावा) भी बाहर निकल आता है। यही भूकम्प आने व ज्वालामुखी फटने का एक प्रमुख कारण बताया जाता है। इस क्रम में कई बार कई जगहों पर नये पहाड़ आते हैं, तो अनेक स्थान समुद्र के गर्भ में समा जाते हैं। विशाल हिमालय पर्वत के उद्भव का यही रहस्य है। कहा जाता है कि अब वह जहाँ है, वहाँ कभी समुद्र हुआ करता था। दूसरी ओर विश्व के दो प्राचीनतम महाद्वीप लैमूरिया एवं एटलांटिस अब जलमग्न हो गए हैं।

उत्तरी ऐंजिलिया यूनीवर्सिटी के भूगर्भ वैज्ञानिक एफ. जे. बिने एवं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के डी. एच. मैथ्यू ने कुछ वर्ष पूर्व अपने अनुसन्धानों के आधार पर घोषणा की कि पृथ्वी के ध्रुव खिसकते हुए अपना स्थान परिवर्तित करते जा रहे हैं। उनके अनुसार पिछले ध्रुव स्थानान्तरण के ७ लाख वर्ष बीत गए। अब पुनः उसी की पुनरावृत्ति की प्रक्रिया चल रही है। यह रहस्योद्घाटन शोध कार्य के निमित्त बनाए गए ग्लैमर चैलेन्जर जलयान द्वारा समुद्र की तलहटी का सर्वेक्षण करने के उपरान्त किया गया। तलहटी में करीब ३०० गहरे छिद्र पाये गए। इनमें एकत्रित मिट्टी १६ करोड़ वर्ष पुरानी बतायी जाती है। इस प्रकार की शोध के लिए अमेरिका में स्थापित पाँच संस्थानों में से प्रमुख स्क्रिप्स "इन्स्टीट्यूशन ऑफ ओशिनोग्राफी" द्वारा यह जानकारी उपलब्ध करायी गई है।

मूर्धन्य भूगर्भ विज्ञानी रॉबर्ट जीन एवं जॉन हौल्डन (अमेरिका) का कहना है कि २० करोड़ वर्ष पूर्व जापान उत्तरी ध्रुव के समीप था और भारत दक्षिणी ध्रुव के निकट। स्थानान्तरण के क्रम में सर्वप्रथम आस्ट्रेलिया और भारत का दक्षिणी भाग दक्षिणी ध्रुव से अलग हुए और क्रमशः खिसकते हुए वर्तमान स्थिति में आ गए। वैज्ञानिकों के अनुसार यह प्रक्रिया १८ करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई, जिसमें सर्वाधिक यात्रा भारत के हिस्से पड़ी। इस भूभाग ने ८८०० मील की दूरी इस कालखण्ड में तय की।

उक्त वैज्ञानिक के अनुसार आने वाले समय में उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका पश्चिम की ओर बढेंगे तथा पनामा और मध्य अमेरिका उत्तर की ओर। पृथ्वी की भीतरी हलचलों के कारण भविष्य में हिमालय और ऊँचा उठेगा तथा भारत पूर्व की ओर बढ़ेगा। आस्ट्रेलिया उत्तर की ओर गति करता हुआ एशिया से मिल जायेगा। भूमध्य सागर में भी नए द्वीपों के उभरने की संभावना व्यक्त की जा रही है। ऐसी स्थिति में जैसे-जैसे अफ्रीका

और यूरोप नजदीक आते जायेंगे, भूमध्य सागर का अस्तित्व क्रमशः घटता-मिटता जायेगा ।

यह गतिशीलता ग्रह-नक्षत्र, वृक्ष-वनस्पति, नदी-नाले सबमें समान रूप से दृष्टिगोचर होती है । गंगा को ही लें । कहा जाता है कि काशी में यह पवित्र नदी अब से दो सौ वर्ष पूर्व जहाँ बह रही थी, अब उससे काफी दूर चली गई है । हरिद्वार में उसकी सात धाराएँ वर्षों पूर्व जिधर से बहती थीं, वर्तमान में वे अपना वह स्थान त्याग चुकी हैं । समुद्र इसका अपवाद नहीं । उड़ीसा का कोणार्क मन्दिर इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सदियों पूर्व सूर्य मन्दिर जब बना था, तब तटवर्ती समुद्र उसका पाद-प्रक्षालन करता था, किन्तु अब वह मीलों दूर हट गया है ।

गति एवं परिवर्तन सृष्टि की अनिवार्य प्रक्रिया है । मनुष्य एवं उसकी मान्यताएँ इससे अछूती नहीं हैं । देखने में मनुष्य तो स्वयं चलता-फिरता नजर आता है, पर अपनी जड़-मान्यताएँ बन्दरिया के मरे बच्चे की तरह अपने से चिपकाये रहता और जड़ता का परिचय देता है । इस प्रकार इस सन्दर्भ में वह सृष्टि के नियमों का उल्लंघन करता है । देखा जाता है कि जो प्रचलन अब से सौ वर्ष पूर्व तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप सही थे, किन्तु अब अनुकूल नहीं रहे, उन्हें भी वह छाती से लगाये रहने का दुराग्रह करता है, जबकि होना यह चाहिए कि वर्तमान परिवेश में बदली परिस्थितियों के अनुरूप वह नवीन और विवेकशील प्रथा-परम्पराओं का शुभारम्भ-श्रीगणेश करे । जब त्वचा समय-समय पर अपनी कोशिकाएँ बदलती, पुरानी को त्यागती और नवीन बनाती रहती है, साँप केंचुली छोड़ते, वृक्ष-वनस्पति पुराने पत्ते गिराकर नयी किसलयों को धारण करते रहते हैं, तो मनुष्य अपवाद क्यों ? उसे भी निर्धारित प्रवाह के अनुरूप चलना चाहिए अन्यथा जड़ता-प्रतिगामिता अपनाकर वह देर तक अपना अस्तित्व बनाए नहीं रह सकता । पृथ्वी यदि घूमना छोड़ दे, नदियाँ स्थिर बनी रहने का हठ करने लगें तो या तो वे स्वयं अस्तित्व खो देती हैं अथवा प्रकृति यह कार्य कर देती है । मनुष्य का भी परिवर्तनशीलता धारण किए रहने में ही कल्याण है । यही सृष्टि का शाश्वत नियम है । इसी में गति और जीवन है ।

आसार बताते हैं कि हिमयुग आने वाला है

सौर-मण्डल विराट् ब्रह्माण्ड का एक विशाल परिवार है और ग्रह-नक्षत्र उसके सदस्य । एक परिवार के सदस्य होने तथा अन्योन्याश्रित रूप से जुड़े होने के कारण वे अपनी गति एवं स्थिति से परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं । चक्र सन्तुलन में जब किसी कारण व्यतिरेक अधिक बढ़ता है, तो व्यापक स्तर पर परिवर्तन होते हैं । कभी-कभी वे परिवर्तन इतने भीषण भी होते हैं कि जीव जगत् के अस्तित्व को चुनौती देते और भारी संकट पैदा करते देखे जाते हैं । प्रस्तुत होने वाली उन विभीषिकाओं में से एक है—हिमयुग का पृथ्वी पर आगमन ।

प्रमाणों से इस बात की पुष्टि हुई है कि विगत एक अरब वर्षों में पृथ्वी पर तीन बार हिमयुग विभिन्न अवधियों के लिए आये हैं । सबसे निकटवर्ती पिछला हिमयुग धरती पर बीस लाख वर्ष पूर्व प्रस्तुत हुआ था । प्रत्येक प्रमुख हिमयुग अनेक छोटे हिमयुगों से बना होता है जो गर्भकाल द्वारा विभाजित रहता है । विगत सात लाख वर्षों में सात बड़ी बर्फ की पर्तें भूमध्य रेखा की ओर सरकी हैं । प्रत्येक भूमण्डलीय शीत नौ हजार वर्षों तक उसके प्रभाव से रहती है तथा उसके बाद दस हजार वर्ष का मध्यवर्ती, बर्फ युग आता है ।

वैज्ञानिकों का अभिमत है कि हम सब उन सब में से एक गर्भ मध्यवर्ती हिमयुग की अवधि में रह रहे हैं । पिछली सबसे विशालकाय तथा भारी बर्फ की पर्त एक लाख वर्ष पूर्व ध्रुव की ओर सरक कर चली गई । ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी का मौसमी लोलक पुनः अगले सौ वर्षों में एक हिमयुग की स्थिति में जा पहुँचेगा ।

हिमयुग पृथ्वी पर क्यों आता है ? उस सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त दिए हैं, जिनमें से एक है—'मिलांकोविच का सिद्धान्त' । भूभौतिकविद् मिल्यूटिन मिलांकोविच के अनुसार सूर्य के वितरित प्रकाश को पृथ्वी धारण करती है, जिसके ग्रह समय-समय पर ठण्डे होते रहते हैं । प्रकाश वितरण की उस प्रक्रिया में समय-समय पर परिवर्तन आता रहता है, जब पृथ्वी सूर्य की ओर सरकती-हटती रहती है । खिसकने की यह प्रक्रिया जटिल गति सम्बन्धों पर आधारित है, पर उसका पूर्वानुमान लगाना सम्भव है ।

'क्रस्टल वाण्डरिंग थ्योरी' के अनुसार महाद्वीप लाखों वर्षों से भूमण्डल के चारों ओर एक से पन्द्रह सेन्टीमीटर प्रति वर्ष की रफ्तार से गति करते रहे हैं । इसे महाद्वीपीय प्रवाह कहते हैं । जब यह किसी भू-भाग को किसी उच्च ठण्डे अक्षांश पर उत्तर या दक्षिण में अवस्थित कर लेता है, जहाँ कि शीत की बर्फ पूरी तरह गल नहीं पाती, तो वहाँ बर्फ की पर्तें एक के ऊपर एक क्रमशः जमा होने लगती हैं तथा हिमनदी का रूप ले लेती हैं । हिमनदी तब समुद्र तट की ओर बढ़ती है, जहाँ कि बर्फ की चट्टानें स्वतन्त्र रूप से टूटकर समुद्रों को ठण्डा करने लगती हैं । ऐसी स्थिति में बर्फ की मोटी चादरें चारों ओर व्यापक क्षेत्र में फैल जाती हैं ।

इस प्रतिपादन के समर्थन में वैज्ञानिकों ने पाया है कि एक करोड़ वर्ष पूर्व गोंडवाना नामक उपमहाद्वीप, जिसके अन्तर्गत, अब दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया तथा अन्टार्कटिका आते हैं, के अधिकांश भाग बर्फ से ढक गए । बर्फ तब ये दक्षिणी ध्रुव के ऊपर एकत्रित हो गई । प्रमाण यह भी दर्शाते हैं कि अन्टार्टिका की भूमि पुनः सबसे बाद के हिमयुग में बर्फ से ढक गई । यह घटना गोंडवाना उपमहाद्वीप की भूमि के विभक्ति होने तथा अन्टार्टिका को ध्रुव के ठण्डे अक्षांश पर छोड़ देने के बाद घटी ।

'ग्रीन हाउस इफेक्ट सिद्धान्त' के समर्थक वैज्ञानिक कहते हैं कि वायुमण्डल में कार्बन डाइ-ऑक्साइड ग्रीन हाउस के शीशे की भाँति कार्य करती है । यह विकिरण के विषाक्त प्रभाव को पृथ्वी पर आने से रोकती है तथा सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर आने देती है, पर पृथ्वी की गर्मी को अन्तरिक्ष में उड़ने से रोकती है । पौधों का जीवन तथा विकास कार्बन डाइ-ऑक्साइड के कारण तेजी से होता है । कार्बन डाइ-ऑक्साइड की अत्यधिक खपत से वायुमण्डल में इस गैस की मात्रा अत्यल्प अथवा समाप्त हो जाती है । फलस्वरूप वह रक्षा कवच टूट जाता है, जिससे पृथ्वी

की गर्मी तेजी से वायुमण्डल की ओर चली जाती है और पृथ्वी ठण्डी होने लगती है । तापक्रम के घटने तथा कार्बन डाइ-ऑक्साइड की मात्रा में कमी पड़ने से पौधे सड़ने और मरने लगते हैं । इस प्रकार वायुमण्डल में कार्बन डाइ-ऑक्साइड की घटोत्तरी का चक्र हिमयुग लाने का उत्प्रेरक बनता है ।

'मैग्नेटिक पोल रिवर्सल सिद्धान्त' के आविष्कारक वैज्ञानिक का मत है कि पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुव सदा एक स्थिति में नहीं रहते । पृथ्वी के इतिहास में ऐसे अनेक अवसर आये हैं जब उसके चुम्बकीय ध्रुव परिवर्तित हुए हैं । उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव दक्षिणी में तथा दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव उत्तरी में बदले हैं । अनुमान है कि विगत सात लाख ६० हजार वर्षों में इस तरह के परिवर्तन १७१ बार हुए हैं । यह सुनिश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता है कि इस तरह का परिवर्तन क्यों होता है पर ऐसे परिवर्तनों का प्रमाण मध्य अटलांटिक सागर तटों पर फैले पत्थरों के अध्ययन से मिला है ।

उन विशेषज्ञों का विचार है कि पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र किसी न किसी रूप में मौसम से जुड़ा हुआ है । जब भी पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में परिवर्तन होता है, उसका प्रभाव मौसम के परिवर्तन के रूप में होता है, जो किसी एक हिमयुग को जन्म देने तथा उसकी समाप्ति का कारण बनता है । वैज्ञानिकों का पूर्वानुमान है कि निश्चित रूप से निकट भविष्य में चुम्बकीय ध्रुवों का एक परिवर्तन और होने वाला है जो हिमयुग का कारण बनेगा जिसे स्पष्ट देखा जा सकेगा ।

एक अन्य सिद्धान्त के अनुसार एक हिमनद के धरातल पर उच्च दाब तथा पृथ्वी के उच्च ताप के कारण पानी के जमने की सम्भावना कम रहती है । एक बर्फ की चादर की सतह के ६ हजार फीट नीचे का तापक्रम उसके ऊपरी हिस्से से २५ डिग्री फारेनहाइट अधिक होता है । उच्च दाब बर्फ के गलनांक बिन्दु को २६.३ डिग्री फारेनहाइट तक घटा सकता है । वैज्ञानिकों ने रेडियो-इको-साउण्डिंग तकनीक के द्वारा पता लगाया है कि उपरोक्त प्रक्रिया से पश्चिमी अन्टार्टिका सागर के नीचे बर्फ की पर्तों में विशालकाय झीलें बन गई हैं ।

'प्रो. जे. के. चार्ल्सवर्थ' हिमयुग सम्बन्धी सिद्धान्तों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि "वे सिद्धान्त अपने में पूर्ण नहीं हैं तथा परपर एक-दूसरे के विरोधी भी हैं पर इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि निकटवर्ती हिमयुग को लाने में अनेक प्रकार की भौतिक शक्तियाँ कारण बनेंगी । पर ऐसी स्थिति भी नहीं आयेगी कि अफ्रीका एवं कनाडा के शहरों पर बर्फ की चट्टानें तैरने लगें और संसार के सारे विशालकाय प्रासाद बर्फ नदी से ढक जायें । पर इतना सुनिश्चित है कि धीरे-धीरे पृथ्वी ठण्डी होती जा रही है । संसार में शीत की अवधि अन्य मौसमों की तुलना में अधिक दिनों तक रहेगी और क्रमशः वह बढ़ती ही जायेगी । सम्भव है कुछ दशकों में उत्तरी ध्रुव जैसी परिस्थितियाँ विभिन्न भू-भागों पर दृष्टिगोचर होने लगें ।"

११ जून, १९८३ को लगे पूर्ण सूर्य ग्रहण के अवसर पर यूनिवर्सिटी ऑफ लन्दन के वैज्ञानिक जॉन पार्किन्सन तथा डगलस गोध ने अपने अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि सूर्य सिकुड़ रहा है । सन् १९१६ के बाद अब तक सूर्य के घेरे में ४८० किमी. सिकुड़न आ चुकी है । सन् १९६२ में प्रख्यात खगोलविद् रॉबर्ट लाइटन ने भी यह निष्कर्ष निकाला था कि सूर्य पाँच मिनट की समयावधि के हिसाब से गैस के गुब्बारे की तरह सिकुड़ता-फैलता हुआ दोलन करता है । सूर्य के सिकुड़ने की प्रक्रिया दोलन से सर्वथा भिन्न है ।

सूर्य तथा अन्य ग्रह गोलकों के मध्य कार्यरत दोनों विपरीत गुरुत्वाकर्षण बलों के दबाव से सभी ग्रह पिण्ड अपने स्थान पर सन्तुलन बनाए हुए गतिमान हैं । गुरुत्वाकर्षण बल ग्रहों के पदार्थ को केन्द्र की ओर दबाए उनके कोरों से निसृत होने वाले दबाव को रोकता है । सूर्य की कोर का तापमान दो करोड़ डिग्री सेन्टीग्रेट है जो गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से सूर्य को सिकुड़ने से बचाता है । पर विगत कुछ दशकों से यह तापक्रम कम हो गया है, जिससे विकिरण दबाव घट गया है । फलस्वरूप गैस की पर्तें सिकुड़ने लगी हैं तथा सूर्य का व्यास भी घट गया है ।

ग्लोबल तापक्रम का अध्ययन करने वाले मौसम विज्ञानियों का कहना है कि पिछले ५० वर्षों से वायु-मण्डलीय तापक्रम क्रमशः गिरता जा रहा है । सन् १९४० से लेकर अब तक निरन्तर ह्रास हुआ है । सन् १९८० में १९४० की तुलना में ४ डिग्री सेन्टीग्रेट तापक्रम कम रहा । विशेषज्ञों का मत है कि यदि सूर्य के सिकुड़ने की रफ्तार यही रही तो उसके कोर क्रमशः ठण्डे होते जायेंगे । इस क्रम से एक सदी के भीतर ही दूसरा हिमयुग आ धमकेगा ।

संसार के विभिन्न देशों से जो समाचार मिल रहे हैं । उनसे भी इस बात की पुष्टि हो रही है कि प्रकृति का इकोलॉजिकल चक्र बुरी तरह से असन्तुलित हो चुका है । एक क्रुद्ध हाथी की तरह प्रकृति व्यवहार कर रही है । औसतन संसार का आधा वर्ष ठण्ड का है ।

इसी शीत लहर के दौरान दक्षिण अमरीका के कई हिस्सों में बर्फ की दो इंच मोटी पर्त जम गई । इस इलाके में अरबों रुपयों के फलों, सब्जियों तथा फसलों के बर्बाद होने का अनुमान था । नलों में पीने का पानी जम जाने से नगरों में पानी की सप्लाई ठप्प हो गई । टमाटरों के भीतर तक बर्फ जम गई थी । सेना, पुलिस तथा स्वयं सेवकों की मदद से ठण्ड से ग्रस्त क्षेत्रों में राहत कार्य पहुँचाया गया ।

दिसम्बर १९८३ में भारत के उत्तरी-पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में भीषण सर्दी पड़ी । शिमला, मसूरी, अम्बाला तथा हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में भयंकर बर्फ पड़ी । म. प्र., आन्ध्र प्रदेश, गुजरात आदि में भी अन्य वर्षों की अपेक्षा विगत वर्ष ठण्ड अधिक पड़ी । पश्चिमी जर्मनी, रूस, कनाडा आदि के विभिन्न भागों में इस वर्ष पड़ी ठण्ड से पिछले सैकड़ों वर्षों के रिकॉर्ड टूटे हैं ।

जिन कारणों से हिमयुग की परिस्थितियाँ बन रही हैं, उनमें से अधिकाधिक मानवजन्य भी हैं । वायु-मण्डल में बढ़ता प्रदूषण, कोलाहल, वनों का विनाश आदि । ये औद्योगीकरण की अदूरदर्शी नीतियों के परिणाम हैं । परस्पर सभी घटकों के जुड़े होने के कारण प्रभावित होने के कारण, प्रभावित तो सम्पूर्ण सौर-मण्डल ही होगा । प्रतिक्रिया स्वरूप यदि असन्तुलन बढ़ता तथा प्रकृति का आक्रोश हिमयुग जैसी परिस्थितियों के आगमन के रूप में बरसता है तो कोई आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए । अधिक अच्छा हो, मनुष्य अपनी अदूरदर्शी नीतियों को बदले । सम्भव

है जिस विभीषिका के आने का संकेत विशेषज्ञ कर रहे हैं । उसकी पूर्णतः रोकथाम न सही पर प्रकोप को कम करने में मदद अवश्य मिल सकती है । इस दिशा में सामूहिक प्रयास चलना चाहिए एवं सभी को सभी के हित की, भावी पीढ़ियों के भविष्य की थी चिन्ता करते हुए, उन कारणों को निरस्त करने की योजना बनानी चाहिए ।

भयंकर अणु शक्ति नहीं, मानवी दुर्बुद्धि है

प्रकृति के कण-कण में अनन्त शक्ति का भण्डार भरा पड़ा है। वस्तुतः समस्त जगत् शक्ति रूप ही है; परब्रह्म की सहचरी प्रकृति भी यदि शक्ति सम्पन्न न हुई तो और कौन होगा ? अपना सौर-मण्डल और अगला विश्व-ब्रह्माण्ड जिस असीम विस्तार वैभव से भरा पूरा है, उसी का प्रतिनिधित्व छोटा परमाणु करता है । जो ब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड में भी सन्निहित है, इस प्राचीन उक्ति को अणु विशेषज्ञों ने पदार्थ की न्यूनतम इकाई का विश्लेषण करके अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिया है ।

परमाणुओं का आकार कितना होता है, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक सेन्टीमीटर लम्बाई में वे १०,००,००,००० रखे जा सकते हैं ।

बहुत समय पूर्व परमाणु को 'पदार्थ' की सबसे छोटी इकाई माना जाता था । पीछे पता चला 'परमाणु' भी एक पूरा सौर-मण्डल है, जिसका मूल केन्द्र है, नाभिक-न्यूक्लियस । इसके इर्द-गिर्द इलेक्ट्रॉन ग्रहों की तरह परिक्रमा करते हैं । पीछे पता चला नाभिक भी एकाकी नहीं है । वह प्रोटॉन और न्यूट्रॉन कणों से मिलकर बना है । अब वे भी दो नहीं रहे । परमाणु के भीतर १५० प्राथमिक कण खोजे जा चुके हैं । ये सभी प्राथमिक कण गिने जा रहे हैं । इनके गुण, धर्म अभी बहुत स्वल्प मात्रा में ही जाने जा सके हैं । ये भी स्थायी नहीं हैं । जन्मते, नई पीढ़ी उत्पन्न करते और मरते वे भी हैं । ये जितने छोटे हैं उतना ही इनका जीवनकाल भी छोटा है । वे एक सेन्टीमीटर के १०,००० अरब वें हिस्से की दूरी तक ही चलकर अपना जीवन समाप्त कर देते हैं । समय की दृष्टि से वह इतना कम होता है कि एक के आगे २२ शून्य रखने पर जो संख्या बनती है, एक सेकण्ड का उतना भाग कहकर पाठकों को उसे समझाया जा सके ।

इन कणों को विद्युत आवेश की दृष्टि से दो सगे भागों में बाँटा जा सकता है, पोजिट्रॉन अर्थात् धनावेशी कण और इलेक्ट्रॉन अर्थात् ऋणावेशी कण ।

परमाणु भौतिकी में ऊर्जा की सबसे छोटी इकाई 'इलेक्ट्रॉन वोल्ट' मानी जाती है । वह इतनी कम है जितनी किसी वस्तु को बहुत ही हल्के हाथ से पेन्सिल की नोक छुआ देने भर से उत्पन्न होती है । प्राथमिक कण को इतनी ही ऊर्जा युक्त माना गया है । परमाणु का अस्तित्व इतना कम है कि उसे स्वाभाविक स्थिति में नहीं जाना जा सकता । उसका परिचय तभी मिलता है जब उसे अतिरिक्त ऊर्जा देकर चंचल बनाया जाय । ऐसी चंचलता १००० से १०००० इलेक्ट्रॉन वोल्ट को बढ़ाने पर ही हम उन्हें अपने किसी काम में ला सकते हैं । उसका नाभिक विचलित करने के लिए १ लाख तक इलेक्ट्रॉन वोल्ट की आवश्यकता पड़ती है ।

विभिन्न पदार्थों में पाये जाने वाले कणों की संरचना अलग-अलग प्रकार की है । हाइड्रोजन परमाणु के नाभिक में केवल एक प्रोटॉन पाया जाता है, जबकि अन्यों में अनेक । यूरेनियम के नाभिकों में तो ९२ प्रोटॉन पाये जाते हैं ।

भौतिकी का मोटा और सर्वमान्य नियम यह है कि समान आवेश वाले कण एक-दूसरे को दूर धकेलते हैं और असमान आवेश वाले एक दूसरे को पास खींचते हैं । विद्युत और चुम्बक बल का आधार यही है । नाभिक में धनावेशी प्रोटॉन होते हैं । इसलिए स्वभावतः ऋणावेशी इलेक्ट्रॉन उनका चक्कर काटेंगे । पर आश्चर्य यह है कि नाभिक के भीतर सभी प्रोटॉन धनावेशी होते हैं और वे साथ-साथ निर्वाह करते हैं । इसमें तो भौतिकी का सर्वमान्य सिद्धान्त ही उलट जाता है । इस समस्या का समाधान करते हुए वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नाभिक के क्षेत्र में विद्युत चुम्बकीय नियम निरस्त हो जाता है, उसके स्थान पर एक अन्य बल काम करता है जिसका नाम 'नाभिकीय बल' रखा गया है । यह विद्युत चुम्बकीय बल की तुलना में १०० गुना अधिक सशक्त माना गया है । इसका प्रभाव अपने छोटे क्षेत्र तक ही सीमित रहता है । प्राथमिक कण न केवल अपनी छोटी कक्षा में वरन् धुरी पर भी घूमते हैं । अन्य ग्रहों की तरह ही उनका भी वही क्रम है ।

नाभिक को तोड़ने से प्रचण्ड ऊर्जा प्राप्त होती है । इसके लिए कणों को अतिरिक्त ऊर्जा देनी पड़ती है । इसके लिए बहुमूल्य संयन्त्र बनाए गए हैं, जिन्हें साइक्लोट्रॉन या सिक्राटॉन कहते हैं । अमेरिका के ब्रुक 'हैवन' क्षेत्र में बने संयन्त्र में ३० अरब इलेक्ट्रॉन वाल्ट की क्षमता है । रूस के डुबना क्षेत्र में बने संयन्त्र में इससे भी ढाई गुनी अधिक क्षमता है ।

आइन्स्टाइन द्वारा प्रादुर्भूत शक्ति महासूत्रों के आधार पर यदि एक पौण्ड पदार्थ को पूर्णतया शान्ति रूप में बदला जाय तो उससे उतनी ऊर्जा प्राप्त होगी जितनी १४००००० टन कोयला जलाने से मिल सकती है । इनमें २५ हजार अश्व शक्ति का कोई इन्जन कई सप्ताह सतत् कार्य करता रह सकता है ।

जिस प्रकार अपने सौर-मण्डल का केन्द्र सूर्य है, उसी प्रकार अणु का केन्द्र न्यूक्लियस है । इसके इर्द-गिर्द घूमने वाले कणों को इलेक्ट्रॉन कहते हैं । प्रत्येक पदार्थ के अणुओं की संरचना अलग-अलग किस्म की इस आधार पर कही जाती हैं कि उनमें इलेक्ट्रॉनों की संख्या अलग-अलग होती है । न्यूक्लियस भी एकाकी नहीं है, वह प्रोटॉन और न्यूट्रॉन कणों से मिलकर बना होता है । इन मिलन संगठन में जो शक्ति काम करती है वह उस समय प्रचण्ड ऊर्जा के रूप में उफनती है, जबकि प्रोटॉन और न्यूट्रॉन के परस्पर संयोग को वियोग के विघटन के रूप में परिणत किया जाता है । सभी अणुओं में प्रोट्रॉनों की संख्या तो समान होती है, पर न्यूट्रानों में वस्तु-भेद से संख्या की न्यूनाधिकता पायी जाती है ।

इस अणु शक्ति का यदि सद्भावनापूर्वक सदुपयोग किया जा सके तो समृद्धि का असीम उत्पादन हो सकता है और उससे मानवी सुख-शान्ति में अनेक गुनी वृद्धि हो सकती है । अणु शक्ति के रचनात्मक प्रयोग सोचे गए हैं और वे सहज ही कार्यान्वित भी हो सकते हैं । पर यह सम्भव तभी है जब सद्भावना का उत्पादन अन्तःकरण की प्रयोगशालाओं में साथ-साथ होता चले ।

अणु आयुधों की भयंकरता और उनके उत्पादन की विपुलता को देखते हुए आज समस्त मानव जाति महामरण के त्रास से बुरी तरह सन्त्रस्त हो रही है । वस्तुतः यह त्रास अणु शक्ति का नहीं, मानवी दुर्भावना का है जिसके आधार से अमृत भी विष बन जाता है । यदि पाशा पलट जाय, दुर्बुद्धि का स्थान सद्‌भावनाएँ ले लें और अणु शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों में होने लगे तो उसकी सुखद सम्भावनाओं का क्षेत्र भी अत्यन्त व्याप्त हो सकता है ।

रेडियो सक्रियता को धातुओं में नियन्त्रित एवं व्यवस्थित क्रम से सँजोकर आइसोटोप्स बनाये जाते हैं । इनका उपयोग चिकित्सा, उद्योग, हाइड्रोलॉजी आदि में होता है । थाइरॉयड ग्रन्थियों की गड़बड़ी रोकने के लिए रेडियो डाइन आइसोटोप्स का प्रयोग होता है । स्वर्ण निर्मित आइसोटोप्स केन्सर की चिकित्सा में काम आते हैं । रक्त में बढ़े हुए स्वेत कणों की चिकित्सा फॉस्फोरस आइसोटोप्स से होती है ।

फसल में लगे हुए कीड़े मारने, उत्पादन बढ़ाने, शरीर एवं जल परीक्षा जैसे कार्यों में इनका प्रयोग होता है । इनका निर्माण एक बन्द कैबिन में यन्त्रों की सहायता से किया जाता है ।

सस्ती और प्रचुर परिमाण में विद्युत शक्ति प्राप्त करने के लिए अब परमाणु शक्ति पर विज्ञान का ध्यान केन्द्रित है । समुद्री पानी को पीने योग्य बनाने के लिए इसी शक्ति का बड़े पैमाने पर प्रयोग करना पड़ेगा । पानी में पायी जाने वाली हाइड्रोजन गैस को बिजली में बदल देने का—जलयान, वायुयान चलाने में—ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जमीनों को समतल बनाने में जितनी प्रचण्ड शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा, उतनी मात्रा अणु शक्ति के अतिरिक्त और किसी माध्यम से नहीं मिल सकती ।

अणु ऊर्जा से बिजली पैदा करने का कार्य अब अनेक विकसित देशों में हो रहा है । सन् १९७१ में संसार भर में १२० अणु शक्ति से बिजली उत्पन्न करने वाले १०२ रियेक्टर थे और १६ हजार मेगाटन बिजली उनसे पैदा हो रही थी । अब यह वृद्धि द्रुतिगति से हो रही है । लक्ष्य था कि १९८० में ३ लाख टन बिजली इसी आधार पर पैदा होने लगेगी जो संसार के समस्त विद्युत उत्पादन की १५ प्रतिशत थी । सन् २००० में आधी बिजली अणु शक्ति द्वारा उत्पन्न की जायेगी ।

इन दिनों बिजली, भाप, तेल, गैस, कोयला आदि के माध्यम से ईंधन की जरूरत पूरी की जाती है और उन्हीं से विविध-विधि प्रयोजन सिद्ध किए जाते हैं । भविष्य में शक्ति का स्रोत अणु ऊर्जा बन सकती है और उससे वे कार्य हो सकते हैं, जो आज के साधनों से सम्भव नहीं । पर्वतों को चूर्ण-विचूर्ण करके भूमि को समतल, उपजाऊ और उपयोगी बनाया जा सकता है । समुद्री जल मीठा किया जा सकता है । समुद्र तल से सम्पदाओं के निकालने और अन्तरिक्ष में उड़ानें जैसी अगणित सम्भावनाएँ अणु शक्ति अपने साथ छिपाए हुए है । सद्‌बुद्धि अपना सका तो परमात्मा का राजकुमार मनुष्य प्रकृति माता से अनेकानेक उपहार निरन्तर अनन्त काल तक प्राप्त करता रह सकता है । पर यदि उसकी दुर्बुद्धि यथावत् बनी रही तो फिर अपना अस्तित्व तो वह समाप्त करेगी ही, इस सुन्दर पृथ्वी ग्रह को भी अन्य निस्तब्ध एवं निष्प्राण पिण्डों की श्रेणी में ले जाकर खड़ा कर देगी ।

एक ओर विभीषिकाएँ और दूसरी ओर सुखद सम्भावनाएँ लिए हुए अणु शक्ति हमारे सामने हाथ बाँधे खड़ी है और पूछती है कि दुर्बुद्धि के माध्यम से उसे मृत्यु-दूती के रूप में प्रयुक्त किया जाने वाला है अथवा सद्‌भावनाओं के सहारे उसे दैवी वरदान बनने का अवसर दिया जाने वाला है । दोनों में से कोई भी आदेश देना मनुष्य के अपने हाथ की बात है । निर्णायक शक्तियाँ नहीं, सम्पदाएँ नहीं, मनुष्य की अपनी मान्यताएँ हैं, निर्धारण और परिष्कार उन्हीं का होना चाहिए ।

मंगल ग्रह की दुर्दशा से हम सबक लें

सौर परिवार के ग्रहों और उपग्रहों में से केवल मंगल ही एक ऐसा है, जिसकी परिस्थितियों की बहुत अंशों तक पृथ्वी से तुलना की जा सकती है । खोजी उपग्रहों से जो सूचनाएँ एकत्रित की हैं, उनसे प्रतीत होता है कि चिर अतीत में वहाँ जलाशयों की भरमार थी । नदियाँ बहती थीं और झरने झरते थे । वहाँ ऐसी प्राण वायु भी थी, जिसके सहारे प्राणी उत्पन्न हो सकें और जी सकें ।

इस प्रकार के प्रमाण वहाँ बड़ी संख्या में पाये गए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि किसी जमाने में मंगल पर प्राणियों और वनस्पतियों की अच्छी खासी विद्यमानता थी । ग्रह सुहावना था, उसकी स्थिति भी वैसी ही थी, जैसी कि उस जमाने में पृथ्वी की रही होगी । सम्भवतः मनुष्य स्तर के बुद्धिमान प्राणी भी वहाँ रहे हों । वे खाद्य उत्पादन करते थे । वनस्पतियों का लाभ लेते थे और प्रकृति सम्पदा का उपयोग करते थे ।

मंगल के ऊपर वैसा ही कवच आच्छादन भी था जैसा कि इन दिनों पृथ्वी के ऊपर है और ब्रह्माण्डीय किरणों के घातक प्रभाव से उसे बचाता है । पृथ्वी की सतही हलचलें भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । उन्हें सुरक्षित रखने में यह कवच आवरण सहायता करते हैं अन्यथा पृथ्वी अपनी विशेषताएँ गँवा बैठे । अपने सीमित दायरे में वह गर्भवती के भ्रूण की तरह सुरक्षित है । आवरण, आच्छादन उसे सुविधा भरे वस्त्रों की तरह अपने अंचल में आश्रय दिए हुए हैं । गर्मी वर्षा से जैसे मनुष्य अपने आप को छुड़ाता-बचाता है, उसी प्रकार भूपिण्ड भी आकाश में घेरा डाले हुए आयनॉस्फियर के आच्छादनों के कारण ब्रह्माण्डीय घातक किरणों से अपनी रक्षा कर पाता है । चमड़ी के थैले में जिस प्रकार भीतरी अंग अवयव दबे-ढके रहते हैं, उसी में भीतरी व्यवस्था सुरक्षित है अन्यथा फटे थैले में से जिस प्रकार मूँगफली के दाने बिखर पड़ते हैं, उसी प्रकार हमारे अन्तरंग अवयवों को भी उलट-पुलट करने में देर न लगेगी ।

पृथ्वी के कवच को इन दिनों बुरी तरह छेड़ा, झकझोरा जा रहा है । आणविक हलचलें ऊपर जाकर छाते में छेद कर सकती हैं । बढ़ता जा रहा तापमान भी उस झिल्ली को दुर्बल कर सकता है । 'स्टार-वार' का जो घातक खेल खेला जा रहा है, उसका प्रभाव धरातल पर ही नहीं, बल्कि आच्छादन पर भी पड़ सकता है । यदि ऐसा हुआ तो अन्तरिक्षीय आदान-प्रदान में ऐसा व्यतिरेक उत्पन्न हो सकता है कि पृथ्वी पर भरा हुआ जल भाप बन कर ऊपर उड़ जाय और यहाँ वैसी ही स्थिति बन जाय जैसी कि वर्तमान मंगल ग्रह की है । पानी उड़ जाने पर न वनस्पतियाँ रहेंगी और न प्राणियों के लिए जीवित रह सकना सम्भव होगा ।

मंगल का आवरण आच्छादन किस कारण फटा यह तो अभी नहीं जाना जा सका, इतना निश्चित है कि उस सुरम्य ग्रह की दुर्दशा जीवधारियों द्वारा किए गए हस्तक्षेप से आवरण में टूट-फूट हो जाने के कारण ही हुई। वहाँ की जमीन के गर्भ में गहराई पर अभी भी बड़ी मात्रा में पानी का संग्रह है उसे ऊपरी पर्त ने किसी प्रकार बचा रखा है।

सम्भव है, मंगल को किसी अन्तरिक्षीय दुर्घटना का शिकार होना पड़ा हो, पर यहाँ तो शासक और वैज्ञानिक मिलकर शस्त्र सज्जा जुटाने में स्टार-वार के माध्यम से ऐसी भयावह खिलवाड़ करने में लगे हुए हैं, जिससे न केवल वे, वरन् अपने इस सुन्दर भू-लोक को भी ले डूबेंगे। हमें आशा रखनी और विश्वास करना चाहिए कि मंगल ग्रह की दुर्दशा जैसी भूल पृथ्वी वासी नहीं करेंगे। समय रहते सद्बुद्धि जागेगी एवं सृष्टि सन्तुलन करने वाली व्यवस्था से और छेड़खानी नहीं की जायेगी।

महाविनाश रुक सकता है

चन्द्र यात्राओं से पता चला है कि उसमें सीमित गुरुत्वाकर्षण तो है पर कोई सशक्त कवच आच्छादन नहीं है। इस अभाव ने उसे इस योग्य नहीं रहने दिया है कि वनस्पतियों या प्राणियों का उस पर निर्वाह होता रहे। सूर्य का प्रकाश पहुँचते ही वह अत्यधिक गर्म हो जाता है। उसके हटते ही चरम सीमा की ठण्डक उत्पन्न हो जाती है। आये दिन होने वाले उल्कापातों ने उसमें मीलों गहरे खाई-खड्ड बना दिए हैं। यह सारी विभीषिकाएँ वैसे आच्छादन के अभाव में ही वहाँ खड़ी हुई हैं, जैसा कि पृथ्वी की सुरक्षा के लिए तना हुआ है। यदि अन्य ग्रह-उपग्रहों की भी यही स्थिति होगी तो वहाँ भी चन्द्रमा जैसा ही संकट खड़ा रहता होगा।

पृथ्वी के ऊपर चढ़े हुए एक के बाद दूसरे आच्छादन ऐसे हैं, जिन्होंने उसे आश्चर्यजनक सुविधा एवं परिस्थिति प्रदान की है। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि इन कवचों के साथ छेड़खानी न की जाय।

अन्तरिक्ष में जो प्रक्षेपणास्त्र भेजे जा रहे हैं, वे भले ही आच्छादनों को पूरी तरह निरस्त न कर सकें पर उनमें छेद तो अवश्य ही कर सकते हैं। यह छेद छोटे से भी हों, तो असाधारण संकट खड़ा कर सकते हैं। कभी उल्कापात होते हैं तो चना-मटर जैसे टुकड़े भी अजीव प्रकाश उत्पन्न करते हुए आकाश में दौड़ते चले जाते हैं। कुछ बड़े उल्कापात हों तो अनेक अणु बम एक साथ फूटने जैसे विग्रह खड़े कर सकते हैं। इसी सदी में कुछ दशक पूर्व साइबेरिया में कुछ बड़ा उल्कापात हुआ था। उसने संसार भर में तहलका मचा दिया। समुद्र में गिरने वाली उल्काएँ समुद्री तूफान या पृथ्वी पर जो वात-चक्रवात उत्पन्न करती हैं। उनकी शक्ति आश्चर्यजनक होती है।

इन दिनों विज्ञान की अभिरुचि अन्तरिक्ष की ओर मुड़ी है। उसने धरती और समुद्र पर आधिपत्य प्राप्त करने के उपरान्त अपना कार्य-क्षेत्र अन्तरिक्ष बनाया है। न केवल खोजी उपग्रह भेजे जा रहे हैं, वरन् भावी महायुद्ध के लिए कुरुक्षेत्र आकाश को ही बनाने की तैयारी की जा रही है। आकाश मार्ग से ऐसे प्रक्षेपणास्त्र दौड़ते रहे हैं जो कुछ ही क्षणों में धरती के एक सिरे में दूसरे सिरे तक पहुँच सकें और विघातक अस्त्र बरसा कर उस क्षेत्र का मटियामेट कर सकें। लेसर किरणों—मृत्यु किरणों का कार्य-क्षेत्र भी आकाश ही है। अभी यह परीक्षण की बेला है जो मारक अस्त्र बन पड़े हैं, वे भी सीमित शक्ति के हैं। पर जब युद्ध अथवा खोज का कार्य-क्षेत्र आकाश ही होता है तो यह असम्भव नहीं कि पृथ्वी की छतरी को पूरी तरह नष्ट करना सम्भव न हो तो भी उसमें दरार डाली जा सके, कोई खिड़की खोली या सेंध लगाई जा सके। ऐसा होने पर पृथ्वी की अत्यन्त बहुमूल्य सम्पदा गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं समुद्रीय जलराशि उस द्वार में होकर ऊपर उड़ सकती है अथवा ऐसी विपत्ति नीचे उतर सकती है जो पृथ्वी की विशिष्टता को नष्ट-भ्रष्ट करके, उसे चन्द्रमा की तरह जीवधारियों के लिए रहने योग्य न रहने दे।

माना कि अन्तरिक्ष की छेड़खानी करके उसकी सामान्य प्राण वायु नष्ट करने से लेकर अनेक प्रकार की खिलवाड़े सर्व साधारण द्वारा नहीं की जा रही हैं। यह उद्दण्ड खेल तथाकथित विशिष्ट वैज्ञानिकों तथा राजनेताओं द्वारा ही खेला जा रहा है पर विचारणीय यह है कि यह समूची पृथ्वी उन्हीं की सम्पदा तो नहीं है, जनसाधारण से भी उसका सम्बन्ध है। यह भूमण्डल किसी व्यक्ति विशेष अथवा समुदाय विशेष का बनाया हुआ नहीं है, न ही यह किसी की बपौती है। पर यदि बनाया हुआ भी हो तो उसे नष्ट करने की छूट नहीं है। आत्म-हत्या करना अपराध है। फिर समूचे घर या गाँव में आग लगाकर उसमें रहने वालों को समाप्त कर देना तो और भी बड़ा अपराध है, चाहे वह घर या गाँव उसी का अपना बनाया हुआ है। अन्तरिक्ष को विषाक्त करके उसकी प्राण वायु को विषैली कर देना अथवा पृथ्वी के आवरण कवच से खिलवाड़ करना किसी देश-विदेश से शत्रुता निभाना नहीं है वरन् समूची चर-अचर सृष्टि व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर देना है। उसे करने वाले जो भी हों, उस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा जो भी बनाते बढ़ाते हों, उन्हें परमात्मा की इस सुन्दर कलाकृति का विनाश करने वाला अपराधी ही गिना जायेगा।

इस पृथ्वी पर जल और वायु का एक सुन्दर समन्वय है। इस पर प्राणि मात्र का अधिकार है। इस सन्तुलन को स्थिर रखने में ही विश्व नागरिकता का निर्वाह है। यदि उसे नष्ट किया जाना है तो उत्पातियों और उन्मादियों को कुछ भी करते रहने की छूट नहीं दी जा सकती है। शेष लोग मूक दर्शक बनकर नहीं बैठे रह सकते। उनका अपरिहार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि ऐसे कुकृत्यों को रोकने के लिए वातावरण बनाएँ और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें, जिसमें किसी बड़े से बड़े को भी प्रकृति के साथ अनुपयुक्त छेड़छाड़ करने वाले अपने हाथ रोकने के लिए विवश होना पड़े।

इस सृष्टि संरचना के पीछे एक पूरक या प्रतिद्वन्द्वी सन्तुलन काम कर रहा है, इस तथ्य को सिद्धान्ततः बहुत पहले ही स्वीकार किया जा चुका है। अणु का प्रतिद्वन्द्वी प्रति अणु—विश्व का प्रतिद्वन्द्वी प्रति विश्व की सत्ता रहने से जो है वह सन्तुलित रीति से अपनी सत्ता एवं गतिविधि ठीक तरह बनाये हुए है। बैलेन्स बनाये रहने के लिए यह आवश्यक भी था अन्यथा एक ओर समूचा वजन बढ़ जाने से असन्तुलनजन्य संकट ही खड़ा होता है।

जन्म के पीछे मृत्यु, सम्पदा के पीछे दरिद्रता, आक्रमण के पीछे प्रतिशोध काम करता है अन्यथा एक ही दिशा में सफलता मिलते जाने पर जो स्थिति बनेगी उससे क्रम निर्वाह सम्भव न

होगा। विश्व का प्रतिद्वन्द्वी प्रति विश्व और अणु का विपक्षी प्रति अणु का अस्तित्व संरचना की स्थिरता एवं गतिशीलता का आधारभूत कारण है। पृथ्वी का वजन एक ओर अधिक दूसरी ओर कम हो तो उसकी धुरी न बनेगी और घूमने का प्रचलित क्रम अस्त-व्यस्त हो जायेगा।

प्रति विश्व के सम्बन्ध में जो जानकारियाँ अब तक प्राप्त की जा सकी हैं, वे उसके अस्तित्व को तो सिद्ध करती हैं। पर इस स्थिति में वह ज्ञान अभी नहीं पहुँच पाया है कि जो दृश्य है उसी की भाँति अदृश्य का भी प्रयोग-उपयोग सम्भव हो सके।

तन्त्र प्रक्रिया के अन्तर्गत मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण की तरह एक स्थिति स्तम्भन भी है। स्तम्भन अर्थात् गतिहीनता, जड़ता। चल बल प्रकृति प्रक्रिया है पर इसका विपरीत भाव यह भी है कि जीवन बना रहने पर भी उसका स्वरूप गतिहीन हो चले। पौराणिक गाथाओं में अहिल्या का शिला हो जाना प्रसिद्ध है। गौतम के शाप से ऐसा हुआ था। पर उसका निवारण भगवान राम के चरण स्पर्श से हो सका। यह एक उदाहरण है, जिसमें चल को अचल बना दिए जाने की प्रक्रिया है। पर्वतों की यही स्थिति होती है। उनके पाषाण परमाणु किसी गति विशेष में गतिशील रहते हैं, किन्तु वे सामान्यतया चट्टानों के रूप में स्थिर प्रतीत होते हैं। यों उस स्थिरता के अन्तर्गत काम करने वाली गतिशीलता का आकलन किया जा सकता है। अमुक पर्वत, अमुक क्षेत्र में इतना धँस रहा है, इतना उभर रहा है, इतना खिसक रहा है, ऐसी अन्वेषण सूचनाएँ प्रायः उपलब्ध होती रहती हैं। इन उदाहरणों से चल के साथ जुड़ने वाली अचल स्थिति को उदाहरणस्वरूप जाना जा सकता है। स्तम्भन यही है। यह कोई जादू नहीं; वरन् प्रकृति की अनेक चित्र-विचित्र गतिविधियों में से एक है। उत्तरी ध्रुव में छः महीने का दिन और छः महीने रात होती है, जबकि पृथ्वी का सामान्य भ्रमण प्रक्रिया के अनुसार वह प्रायः आधे-आधे समय की होनी चाहिए। किन्तु उत्तरी ध्रुव इसका अपवाद भी है। यह तुलनात्मक दृष्टि से आश्चर्यवत् दीखता है किन्तु जिन्हें प्रकृति की बहुमुखी गतिविधियों का ज्ञान है, उनके लिए यह एक परिस्थिति विशेष पर आधारित हलचल मात्र है। स्तम्भन को ऐसे ही अनेक उदाहरणों के आधार पर समझा जा सकता है।

जिन्हें 'प्रति विश्व' की सम्भावनाओं का ज्ञान है उन्हें यह स्वीकारने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि पूर्ण शून्य की स्थिति कहीं हो सकती है, कहीं पैदा की जा सकती है अथवा किसी स्थान विशेष से घसीटकर कहीं लायी जा सकती है। 'पूर्ण शून्य' का एक अर्थ महाविनाश है, तब कोई जीवित नहीं बचेगा। शून्य के क्षेत्र में यह आवश्यक नहीं कि वहाँ भी वस्तुओं में स्थिरता या जड़ता उत्पन्न हो चले। यह हो सकता है कि अमुक प्रकार के अणु या पदार्थ ही उसके कारण स्थिर हों और अन्य वस्तुएँ साधारण रीति से अपना काम करती रहें।

इन दिनों सर्वाधिक भयंकर अणु विस्फोटजन्य संकट इसी सन्दर्भ में पल सकता है। लेसर किरणों जैसी तरंगों को भी इस प्रकार दिग्भ्रान्त किया जा सकता है और वे अन्धे पक्षी की तरह बेतुकी उड़ानें भरती रह सकती हैं।

पुरातन अस्त्र अब इतने भयंकर नहीं रहे जिनसे बराबरी के आधार पर न लड़ा या निपटा जा सके। बारूद, डाइनामाइट जैसी उपलब्धियाँ हाथ लगने पर पुराने युद्ध और महायुद्ध लड़े जाते रहे। सामयिक हार-जीत भी होती रही। अब यह अत्यधिक लालच का विषय नहीं रहा। जापान पर दो अणु अस्त्र गिराने और उसका परिणाम देखने के उपरान्त ही प्रमुख शक्तियों के मुँह में पानी भरा है और नए ढंग से सोचने का यह सिलसिला चला है कि विरोधी से निपटने के लिए इसी आधार को अपनाया जाय। अणु बम इसी आधार पर बनते चले गए हैं और प्रतिस्पर्द्धा ने बात को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है कि इसी प्रकार प्रक्षेपणास्त्रों की सफलता ने अन्तरिक्ष को कुरुक्षेत्र बनाने की बात सोची है। किन्तु यदि समझा या समझाया जा सके कि अन्तरिक्षीय युद्ध को—अणु आयुधों को—रोकने की कोई विधा हस्तगत हो गई है या हो सकती है तो युद्ध के लिए आतुर मस्तिष्कों को अपनी योजनाएँ बदलनी पड़ सकती हैं और शान्ति में अपना लाभ देख सकते हैं। विचार यदि गहराई तक बैठ सकें तो उनके अनुरूप गतिविधियाँ भी उलट सकती हैं। इसमें सन्देह नहीं।

विश्वास किया जाना चाहिए कि विभीषिकाओं की काली घटाएँ हटेंगी और प्रकाश की उदीयमान किरणों का अगले ही क्षणों दर्शन होगा।

धरती की चुम्बकीय शक्ति से खिलवाड़ न करें

अपनी इस धरती की समर्थता एवं सम्पदा को पर्यवेक्षकों ने अनेक दृष्टियों से देखा और अनेक कसौटियों पर परखा है। उन निष्कर्षों में एक यह भी है कि धरती एक विशालकाय चुम्बक है। उसकी संरचना भर रासायनिक पदार्थों से हुई है। हलचलों के मूल में उसकी चुम्बकीय क्षमताएँ ही विभिन्न स्तर की हलचलें करतीं और एक से एक बढ़े-चढ़े चमत्कार प्रस्तुत करती हैं।

अणु शक्ति में परमाणु का नाभिक ही ऊर्जा-भण्डार माना जाता है। यह संचय धरती के प्रचण्ड चुम्बकत्व का ही एक घटक है। जीवाणुओं के भीतर जो सचेतन क्षमता काम करती है, उसे भी संव्याप्त चेतना का अंशधारी कहा गया है। यह समर्थता और चेतना दोनों ही उस चुम्बकत्व की दो गंगा-जमुना धाराएँ हैं, जिनके संयोग से धरती का वातावरण सौन्दर्य, वैभव और उल्लास से भरा पूरा बना रहता है।

लन्दन विश्वविद्यालय के किंग्स कॉलेज के प्रो. जॉन टेलर और फ्रान्सिस हिचिंग ने मिलकर एक पुस्तक लिखी है—"अर्थ मैजिक"। उसमें उन्होंने यह सिद्ध किया है, कि धरती पर दृष्टिगोचर होने वाली अगणित हलचलें जादू, चमत्कार जैसी प्रतीत होती हैं। उनके मूल में पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति ही काम करती है। यह यदि घटने-बढ़ने लगे तो उसके परिणाम प्रस्तुत व्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न करेंगे और भयावह परिणाम उत्पन्न होंगे।

वैज्ञानिक शोध संस्था 'नासा' के अन्तर्गत चलने वाले अनुसन्धान केन्द्रों ने प्रामाणित किया है कि धरती पर कारणवश होने वाले चुम्बकीय परिवर्तन ही सृष्टि के इतिहास क्रम में अनोखे और अप्रत्याशित अध्याय जोड़ते रहे हैं। भविष्य में यदि कभी कोई असाधारण उथल-पुथल होगी तो उसका मूलभूत कारण एक ही होगा—धरती के चुम्बकीय प्रवाह में उथल-पुथल, उलट-पलट।

समग्र पृथ्वी तो एक विशाल चुम्बक है ही, किन्तु उसका उभार क्षेत्र विशेष में न्यूनाधिक भी पाया जाता है । इसका प्रभाव उन स्थानों के पदार्थों और प्राणियों पर पड़ता है । उनकी आकृति और प्रकृति में जो अन्तर पाया जाता है उसमें अन्य कारण उतने प्रबल नहीं होते, जितने कि स्थान-स्थान पर पाये जाने वाले चुम्बकत्व के दबते-उभरते प्रवाह । इस दृष्टि से वे विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न क्षेत्रों की उपयोगिता सिद्ध करते हैं । जो कार्य एक स्थान पर नहीं हो सकता या कठिन पड़ता है, वह दूसरे उपयुक्त स्थान पर स्वल्प प्रयास से ही सरलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है ।

पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति क्षेत्र विशेष के आधार पर ध्रुव प्रदेशों में सबसे अधिक पायी जाती है और "रिओडी-जानीरो" क्षेत्र में न्यूनतम आँकी गई है । विलक्षणता एक और भी है कि यह सदा किसी स्थान पर एक जैसी नहीं रहती, उसमें कारणवश परिवर्तन होता रहता है ।

पिछले दिनों बारमूडा त्रिकोण क्षेत्र में अनेक अद्‌भुत घटनाएँ घटी हैं । उस क्षेत्र से गुजरने वाले जलयान एवं वायुयान इस प्रकार अदृश्य हुए हैं कि बहुत खोजने पर भी उनका कुछ भी अता-पता न मिल सका । विज्ञजनों का कहना है कि उस क्षेत्र में चुम्बकीय विलक्षणता ही ऐसे उपद्रवों के लिए उत्तरदायी है । इस दृष्टि से वह क्षेत्र सर्वथा अनोखा और विलक्षण है । वहाँ चित्र-विचित्र प्रकार के चुम्बकीय भँवर पड़ते रहते हैं ।

प्रसिद्ध डच भूगर्भ शास्त्री प्रो. सोल्को डब्ल्यू. ट्राम्प ने 'साइकिल फिजिक्स' पुस्तक में विभिन्न प्रयोग परीक्षण करके यह लिखा है कि पृथ्वी अगणित विशेषताओं और धाराओं से भरे-पूरे चुम्बकत्व से भरी पूरी है । वैज्ञानिक उपलब्धियों में प्रकारान्तर से इसी क्षमता के स्रोतों को खोजा और प्रयोग में लाया गया है । इसका समर्थन 'फ्रेन्च एटामिक एनर्जी कमीशन' के सदस्य 'इकोले नारमल' और अमेरिका के सुरक्षा-विभाग एवं अर्कन्सास विश्वविद्यालय के 'डॉ. जाबोज हारवलिक' ने भी किया है । डॉ. जाबोज 'अमेरिकन सोसायटी ऑफ डाउसर्स' के प्रमुख हैं ।

अमेरिका के 'सिविल ऐवियेशन बोर्ड' की 'ऐक्सीडेन्ट इन्वेस्टीगेशन रिपोर्ट' में बताया गया है कि बारमूडा क्षेत्र में जाने वाले हवाई या जल जहाज के चालकों को कभी-कभी दुर्घटना का पूर्वाभास हो जाता है । डॉ. जाबोज हारवलिक ने अनुसन्धान करके पता लगाया है कि इस स्थान विशेष से गुजरने पर मस्तिष्क की 'पीनियल ग्रन्थि' पर चुम्बकीय परिवर्तन का गहरा प्रभाव पड़ता है । इस परिवर्तन से 'सीरोटोनिन' नामक हार्मोन पैदा होता है, जो मानसिक विक्षिप्तता पैदा कर देता है ।

बारमूडा क्षेत्र अटलांटिक महासागर के मध्य आता है । 'एडगर केयसी' नामक प्रसिद्ध व्यक्ति, जो 'स्लीपिंग प्रोफेट' के नाम से जाने जाते थे, का कहना है—ईसा से ५०,००० वर्ष पूर्व अटलांटिक महासागर में एक बड़ा भूखण्ड था जहाँ पर 'अटलांटियन' सभ्यता का विकास हुआ था । उस सभ्यता ने तकनीकी साधन जैसे—टेलीविजन, एक्स-रे, लेसर बीम और एन्टीग्रेविटी यन्त्र आदि का विकास कर लिया था, लेकिन इन साधनों का दुरुपयोग करके अपना विनाश कर लिया । यह विनाश ईसा से २८,००० वर्ष पूर्व हुआ था । इस सभ्यता के बचे हुए लोगों ने 'मय' और 'मिस्र' संस्कृति का विकास किया । मिस्र में जैसे विशालकाय पिरामिड बने हैं उसी प्रकार के विशालकाय पिरामिडों के अवशेष बारमूडा क्षेत्र में पाये जाते हैं । मिस्र के 'चोलुला' नामक पिरामिड में लगे पत्थरों का आयतन ३,८८,२०,००० घन गज है ।

सन् १९४० ई. में एडगर केयसी ने भविष्य कथन किया था कि भूकम्प के माध्यम से अटलांटिक महासागर में पुरानी सभ्यता के द्वीप समूह १९६८ में ऊपर आने लगेंगे । १९६८ में बहुत से गोताखोर, मछली पकड़ने वालों ने छिछले पानी में दीवारें, सड़कें और प्लेटफॉर्म देखे । यह भविष्य कथन बिल्कुल सच निकला ।

एडगर केयसी के अनुसार 'अटलांटिक' सभ्यता का विस्तार 'सरगोसा' समुद्र से 'एजोर्स' तक है । रूस के प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री डॉ. मेरिया क्लिनोवा ने 'एकेडेमी ऑफ साइन्स ऑफ यू. एस. एस. आर.' की ओर से प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में भी इसका समर्थन किया गया है, कि इन चट्टानों के साथ किसी पुरातन सुविकसित सभ्यता का इतिहास जुड़ा हुआ है ।

'केयसी' के अनुसार इस सभ्यता के लोगों ने सूर्य शक्ति का नियन्त्रण करके आधुनिक लेसर किरणों जैसे 'जादुई आग के पत्थर' बना लिए थे । इनसे निकलने वाली किरणें आँखों से नहीं देखी जा सकती थीं परन्तु उनकी प्रतिक्रिया पत्थरों पर होती थी । पत्थरों से ऐसी शक्ति निकलती थी जो जमीन पर चलने वाले वाहन, पानी के ऊपर व भीतर तथा हवा में चलने वाले वाहनों पर भी अपना प्रभाव डाल सकती थी ।

केयसी के कथनानुसार अटलांटियन सभ्यता के लोग 'एन्टीमैटर' के हथियार प्रयोग करते थे । उन्होंने यह भी बताया कि वे लोग सूर्य शक्ति से ऐसी ऊर्जा पैदा कर सकते थे जो परमाणु का विखण्डन कर सकती थी और उसी के दुरुपयोग से वह सभ्यता विनष्ट हो गई । केयसी के कथन का समर्थन लन्दन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'पैट्रिक स्मिथ' ने भी लिया है जो पिरामिड चित्र लिपि के अच्छे ज्ञाता हैं । स्मिथ के अनुसार अटलांटिक सभ्यता के उत्तराधिकारियों ने मैक्सिको, पेरू और मिस्र में पिरामिड बनाये हैं । इन पिरामिडों की बनावट में पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, अनन्तता आदि सिद्धान्तों को शिल्पाकार दिया गया है । उन्हें ज्योतिर्विज्ञान का गहरा ज्ञान था—ऐसा पिरामिडों से पता चला है । 'चीजेन ईजा' नामक पिरामिड में पत्थरों की ऐसी रचना बनायी गई है कि सूर्य की किरणें सर्पाकार मार्ग से पिरामिड के मूल में बने सर्प के मुख जैसी आकृतियों में पहुँचती हैं । वर्ष में दो बार सूर्य की किरणें बसन्त और शरद ऋतु में इस पिरामिड के सर्पाकार मार्ग से चढ़ती-उतरती देखी जाती हैं ।

मिस्र के 'चैफ्रैन' नामक विशाल पिरामिड में किसी गुप्त रहस्य का उद्घाटन करने के लिए 'यू. एस. ए.' और 'यूनाइटेड अरब रिपब्लिक' संयुक्त प्रयास कर रहे हैं ।

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के क्षेत्र का कोई सूत्र इन पिरामिडों की रचना में छिपा है । ये पिरामिड बिल्कुल ठीक उसी स्थान पर बने हैं, जो धरती का केन्द्र है । प्रत्येक पिरामिड की सतहें समबाहु त्रिभुजाकार हैं । सदियों से प्रेतों का आह्वान करने वाले और देवताओं का आह्वान करने वाले कर्मकाण्डी समबाहु त्रिभुजों का उपयोग करते देखे जाते है । आज के प्रसिद्ध 'आकल्टिस्ट' फास्ट, एलीस्टर, क्राडली आदि की

मान्यता है कि इन त्रिभुजों की परिधि कभी अन्य लोकवासियों को बुलाने का माध्यम रही होगी।

इन दिनों पृथ्वी की वायु, जल, स्थिति, उर्वरता, खनिज सम्पदा एवं शक्ति का औद्योगिक तथा वैज्ञानिक प्रयोजनों के निमित्त व्यतिरेक किया जा रहा है। फलतः इन सभी क्षेत्रों में प्रदूषण विकिरण बढ़ रहा है। इस बढ़ती विषाक्तता से उत्पन्न होने वाले भावी संकट से सभी चिन्तित हैं। इस चिन्ता में सूक्ष्मदर्शी वैज्ञानिकों ने एक कड़ी और जोड़ी है, कि पृथ्वी के सुव्यवस्थित चुम्बकत्व के साथ खिलवाड़ न की जाय। यह तथ्य बहुत समय पूर्व ही माना जा चुका है कि यदि पृथ्वी की सही धुरी का पता लगाया और उस पर कस कर एक घूँस लगाया जा सके तो इतने भर से परिभ्रमण पथ में भारी अन्तर हो सकता है और उसकी समूची परिस्थितियों में भारी अन्तर ही नहीं, महाविनाश का संकट भी उत्पन्न हो सकता है। चुम्बकत्व की निश्चित दिशाधारा में व्यतिरेक उत्पन्न होने के परिणाम कितने भयावह हो सकते हैं, इसे उपर्युक्त निर्धारण से भली प्रकार माना जा सकता है।

वृत्रासुर, हिरण्याक्ष, सहस्रार्जुन, रावण, कुम्भकरण जैसे अनेक वैज्ञानिक बने। सब प्रकृति से छेड़खानी करने पर अपने और असंख्यों के लिए विपत्ति खड़ी कर चुके हैं। पिरामिड काल से पूर्व की मय-सभ्यता भी उसी उद्धत आचरण से विनाश के गर्त में गई। इन दिनों उन्हीं प्रयोगों की पुनरावृत्ति चल रही है। इसका परिणाम क्या हो सकता है, उसे अनुभव करके देखने की अपेक्षा यह अच्छा है, कि पूर्ववर्ती इतिहास से कुछ सीख और विनाश में कूदने से बचाया जाय। इन दिनों प्रकृति पर अधिकार करने की वैज्ञानिक महत्त्वाकांक्षाएँ धरती के चुम्बकत्व को डगमगा सकती हैं और ऐसे भविष्य की विभीषिका उत्पन्न कर सकती हैं जिससे उबरना कदाचित फिर कभी भी सम्भव न हो सके।

अन्तरिक्ष के प्रचण्ड ऊर्जा स्रोत

आकाश देखने में पोला, खोखला लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो बहुत ऊँचाई पर किसी ने नीली चादर तानकर उसमें झाड़-फानूस टाँगे और टिमटिमाते दीये लटकाये हों। दृश्य के रूप में इतना ही विदित होता है, पर वस्तुतः उसमें भारी सामर्थ्य, सम्पदा और विशालता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

इन दिनों जिसे खग्रास का सामना करना पड़ रहा है, वह सूर्य अकेला ही इस आकाश में नहीं है। अपनी आकाश-गंगा में ऐसे करोड़ों तारे हैं और उनमें से सैकड़ों उससे कहीं अधिक बड़े हैं। उनसे निःसृत होने वाली ऊर्जा समस्त ब्रह्माण्ड में फैलती है। दूरी के आधार पर धूमिल होना स्वाभाविक है, फिर भी उस वितरण में से कुछ हिस्सा पृथ्वी के हिस्से में भी निश्चित रूप से आता है।

ब्रह्माण्ड में गैस के असंख्य बादल परिभ्रमण करते हैं। इनमें पाया जाने वाला पदार्थ आश्चर्यजनक है। कहीं वह इतना हल्का है कि १०० किलोमीटर जगह में उसका वजन मात्र एक ग्राम है। कहीं वह इतना भारी है कि एक इंच व्यास में हजारों टन तौला जा सके। विस्तार की दृष्टि से ब्रह्माण्ड का विस्तार अकल्पनीय है। एक प्रकाशवर्ष ९४,६३,००,००,००,००० किलो- मीटर का माना जाता है। अपनी आकाश-गंगा में प्रायः १५० अरब तारे हैं। उनका मध्यान्तर इतना बड़ा है कि आकाश-गंगा के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचने में एक लाख प्रकाशवर्ष लगे। अब पिण्डों की गतिशीलता परिधि पर दृष्टिपात किया जाय। अपना सूर्य २२० किलोमीटर प्रति सेकण्ड की चाल से अपनी मण्डली को साथ लेकर आकाश-गंगा के केन्द्र ध्रुव तारे की परिक्रमा के लिए चल रहा है। यह एक परिक्रमा २५ करोड़ वर्षों में पूरी होती है, धरती का जिस दिन जन्म हुआ होगा। उस दिन से लेकर अब तक सूर्य ने केन्द्र की एक परिक्रमा तक पूरी नहीं की है। वह अवधि पूरी होने तक पृथ्वी जीवित भी रहेगी या नहीं, इसमें सन्देह है।

हर तारा ऊर्जा उगलता है और वह इतनी प्रचण्ड होती है कि उसका सूक्ष्मतम घटक परमाणु तक में पायी जाने वाली सामर्थ्य आश्चर्यचकित करती है। अणु विस्फोटों की भयंकरता हम सभी जानते हैं। अणुओं में सन्निहित ऊर्जा जिस शक्ति केन्द्र का नगण्य-सा अनुदान है वह कितनी महान् होनी चाहिए, इसकी कल्पना भी ठीक से करते नहीं बन पड़ती। ब्रह्माण्ड में अवस्थिति अरबों आकाश-गंगाओं की बात छोड़ें, मात्र अपनी मन्दाकिनी का ही अनुमान लगायें तो आश्चर्यजनक आँकड़े सामने आते हैं, इसका वजन लगभग २०,००,००,००,००,०० करोड़ टन है। ऐसे ३०० अरब सूर्यों का वजन अपनी आकाश-गंगा का है।

गैसीय मेघ ऐसे ही रुई के पुलन्दे की तरह नहीं उड़ते फिरते, वरन् उनमें असाधारण ऊर्जा के स्रोत रहते हैं। इन बादलों से ही ग्रह-नक्षत्र बनते हैं और वे बूढ़े होकर जब टूटते हैं तो अपनी सामर्थ्य इसी भाण्डागार को वापस लौटा देते हैं।

आये दिन मरते रहने वाले सूर्य और उनके परिवारी ग्रह-उपग्रह जन्मने पर अपनी भट्टी जलाते और गर्मी बिखेरते हैं। मरते-मरते भी उनकी अन्त्येष्टि इतनी गर्मी बखेरती है कि आकाश में ढलाई की भट्टियों और चिता की ज्वाल मालाओं से भरे-पूरे श्मशान की तरह हर घड़ी गरमागर्म देखा जा सकता है। गुरुत्वाकर्षण, तापमान, परिभ्रमण, परिवर्तन आकुंचन-प्रकुंचन की ऐसी हलचलें अनन्त आकाश में चलती रहती हैं, जिनसे प्रचण्ड क्षमता सम्पन्न शक्ति तरंगों का उत्सर्जन अनवरत होता रहता है। वे तालाब की लहरों की तरह फैलती और आगे बढ़ती चली जाती हैं। दूरी बढ़ने से उनकी समर्थता हल्की तो होती है, पर पूर्णतया समाप्त होने की स्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं होती। अगणित स्रोतों से उत्पन्न और अनेक आकर्षण-विकर्षणों से प्रभावित प्रेरित वे तरंगें आगे बढ़ती हैं। साथ ही परस्पर मिलकर नए-नए आधार खड़े करती हैं। अति सघन न्यूटॉन तारे एक सेकण्ड में तीस चक्कर की भयंकर चाल से गतिशील रहते हैं। वे इतनी ऊर्जा उत्सर्जित करते हैं कि उनसे प्रभावित क्षेत्र को विद्युत चुम्बकत्व का भण्डार कहा जा सके।

पोले आकाश में खोखलापन दीखता भर है, वस्तुतः उसमें सामर्थ्य के अजस्र भाण्डागार भरे पड़े हैं। उन्हीं को पृथ्वी अपनी आवश्यकतानुसार उपलब्ध करती हुई गुजारा करती है। जब

कभी उसके स्वाभाविक व्यवस्था क्रम में अन्तर होता है, तभी विपन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और सन्तुलन बिगड़ता है। सूर्य ग्रहण, सूर्य के धब्बे, चुम्बकीय तूफान जैसी अन्तरिक्षीय परिस्थितियाँ पृथ्वी की सुव्यवस्था में व्यतिरेक उत्पन्न करती हैं तो उस पर निवास करने वालों को चिन्तित होना और प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने का प्रयत्न करना स्वाभाविक है।

सौर-मण्डल के अन्य ग्रह-उपग्रहों की अपेक्षा पृथ्वी के वातावरण, वनस्पति जगत तथा प्राणि समुदाय को सूर्य और चन्द्र दो ही अधिक प्रभावित करते हैं। चन्द्रमा का प्रभाव समुद्र पर अधिक आसानी से देखा जाता है। ज्वार-भाटों की हलचलों में पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव का आकर्षण ही प्रमुख कारण है। यह एक प्रत्यक्ष दृश्य है। इसके अतिरिक्त यह प्रभाव सूक्ष्म रीति से सूक्ष्म परिस्थितियों पर भी पड़ता है, जिससे धरती की अनेक परिस्थितियाँ प्रभावित होती हैं। यहीं तक नहीं, प्राणियों की, विशेषतया मनुष्यों की मनःस्थिति पर भी इन परोक्ष दवाओं के कारण अप्रत्याशित रूप से उथल-पुथल होती है। अनिच्छित रूप से कुछ ऐसा होने लगता है जिसमें कर्त्ताओं का श्रेय या दोष उतना नहीं होता, जिसके लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराया जाता है।

सूर्य के सम्बन्ध में यह बात और भी अधिक जोर देकर कही जा सकती है। उसके उदय अस्त का, प्रभात-मध्याह्न का पृथ्वी की, उसके निवासियों की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसे दैनिक जीवन की घटनाओं में जोड़ कर सहज ही अनुभव किया जाता है। रात आते ही शरीर शिथिल होने लगता है। नींद आने लगती है। प्रभातकाल में ही सभी बिना जगाये जग पड़ते हैं। यहाँ तक कि पक्षियों को घोसलें से निकल कर चहचहाने और फुदकने, उड़ने की तरंग उठती है। सवेरे के और मध्याह्न के परिश्रम का परिणाम कितना भिन्न होता है, यह सभी जानते हैं। फूलों का खिलना सूर्योदय के साथ-साथ आरम्भ होता है, जब कि रात्रि को स्थिर ही नहीं रहते, सिकुड़ने भी लगते हैं। हवा गर्मी में नहीं अन्य परिस्थितियों में भी सूर्य की समीपता और दूरी का अन्तर पड़ता है। ऋतुओं के प्रभाव में सूर्य ही आधारभूत कारण होता है।

पृथ्वी का जीवन और यहाँ का सुखद वातावरण सूर्य का ही अनुदान है। भू-लोक के निवासियों को निर्वाह की ही नहीं चेतनात्मक उत्कर्ष के लिए भी उपयुक्त सुविधा उपलब्ध रहती है। जो चाहते हैं उसका समुचित लाभ उठाते हैं। उदासीनों, उपेक्षा करने वालों और अवमानना पर उतारू रहने वालों का तो अमृत भी भला नहीं कर सकता। गायत्री मन्त्र सूर्य का मन्त्र है। सविता, देवता से ब्रह्म तेजस् प्राप्त करने का रहस्यमय विधान उसकी साधना पद्धति में सन्निहित है। सूर्य सत्ता का मूल्यांकन करते हुए तत्वदर्शियों ने ठीक ही कहा है—"त्वम् मानो जगतश्चक्षुः" हे सूर्य आप ही इस संसार के नेत्र हैं। "त्वम् आत्मा सर्व देहिनाम्" आप ही सब प्राणियों की आत्मा है। "त्वम योनिः सर्व भूतानाम्" आप ही सब प्राणियों की काया हैं। "त्वमाचारः क्रियावताम्" आप ही पुरुषार्थियों के आचरण हैं। इन सूत्रों में सूर्य और प्राणियों के मध्य विद्यमान सम्बन्ध-सूत्र पर ऋषियों ने संक्षिप्त, किन्तु सारगर्भित प्रकाश डाला है।

डाकिया आया और एक पत्र क्रेव नीहारिका से लाया

गरुड़ पुराण में एक वर्णन आता है कि श्राद्ध पितरों का तर्पण किया जाता है, तब मन्त्रों द्वारा भेजे गए आह्वान के अनुसार परलोकवासी पितर स्वयं पृथ्वी पर उतर कर आते हैं और अपने पुत्र-पौत्रों द्वारा प्रदत्त अन्नादि को ग्रहण करते हैं, सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देते हैं और अपने लोक को लौट जाते हैं। सम्भव है, अपनी वासना के अनुरूप पितरों की आत्माएँ जिस लोक में हों वहाँ मन्त्रों द्वारा प्रेरित भाव-स्पन्दन पहुँचते हों और जीव-चेतना आकर श्राद्ध ग्रहण भी करती हो, पर आज की बुद्धिवादी दुनिया के लिए यह अन्धविश्वास है।

इन्द्र का तार आया है—उन्होंने अर्जुन को लिखा है—आपका नाम धनुर्विद्या में पी-एच. डी. के लिए सलेक्ट (चुन लिया गया) हो गया है, तुरन्त आइए। तार पढ़कर अर्जुन तैयारी करने लगे। उधर उनकी पत्नी सुभद्रा, द्रौपदी तथा अन्य परिजन उनकी तैयारी करते हैं, ताकि वे नियत समय पर इन्द्रलोक पहुँच कर उक्त प्रशिक्षण में भाग ले सकें।

छतरपुर के किसी छात्र का "जानसन एण्ड जानसन" शिक्षा-योजना के अन्तर्गत चुनाव होना, छात्रवृत्ति मिलना और अमेरिका जाकर पढ़ने का बुलावा होता तो उसे सच माना जाता पर अर्जुन को कभी इन्द्र लोक से बुलावा आया हो और वे कभी वहाँ जाकर शस्त्र-विद्या सीखकर आये हों यह कहा जायेगा तो न केवल उसे काल्पनिक उड़ान कहा जायेगा वरन् उसे भारतीयों का अतिवाद कह कर उसका उपहास भी किया जा सकता है। होना यह चाहिए था कि हमारे आर्ष ग्रन्थों में ऐसी कल्पनाएँ, ऐसा विज्ञान दिया हुआ है, उसके आधार पर विज्ञान को एक नयी दिशा दी जाती तो हम सत्य की शोध और वैज्ञानिक उपलब्धियों की दृष्टि से कुछ ही समय में रूस और अमेरिका से आगे होते। जिन बातों के लिए रूस, फ्रांस, अमेरिका व जर्मनी के वैज्ञानिकों को समय साध्य परीक्षण करने पड़ते और मस्तिष्क में जोर लगाना पड़ता है, वह बातें हमारे अथर्ववेद से लेकर भारद्वाज वैज्ञानिक प्रकरण तक पहले से ही शोधी हुई रखी हैं। यदि अपने आर्ष ग्रन्थों के प्रकाश में विज्ञान की खोज होती तो हमारी वैज्ञानिक प्रगति स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में ही बहुत चढ़ी-बढ़ी होती।

सन् १९५६ में सहारा रेगिस्तान में प्रागैतिहासिक काल की गुफायें मिलीं, उनमें मिले अनेक चित्र बड़े महत्त्वपूर्ण थे। इन्हीं चित्रों में कुछ ऐसे प्राणी भी दिखाये गए हैं जो आकाश में उड़ते हुए हैं। इन विचित्र प्राणियों को उड़ते-उड़ते अन्तर्ध्यान (वैनिश्ड) होते भी चित्रित किया गया है। इन चित्रों को देखकर प्रसिद्ध रूसी गणितज्ञ श्री एम. ए. ग्रेस्ट ने लिखा है कि "निश्चित ही उस समय आकाश के सुदूर नक्षत्रों के निवासी यहाँ आते रहे हैं, भले ही हमारा विज्ञान अभी उस स्वरूप को समझने में समर्थ न हुआ हो।" कुछ लोगों ने प्रश्न किया—यदि तब आ सकते थे तो अब क्यों नहीं आते? उत्तर अंग्रेज विचारक ए. सी. क्लार्क ने दिया, सम्भव है पृथ्वी के निवासियों में व्यापक रूप से छायी दुर्भावनाओं के कारण उन्हें यहाँ आने में भय लगता हो, या उन्हें घृणा हो गई हो। यह भी हो सकता है कि हमारा सूक्ष्म वायुमण्डल इतना

दूषित हो गया है कि उसमें से होकर उनके लिए पृथ्वी में उतरना कठिन हो गया हो।

कारण जो भी हो पर स्पष्ट होता जा रहा है कि अन्तरिक्ष के दूरवर्ती सितारों में भी जीवन अवश्य है और एक दिन फिर से ऐसा समय आ सकता है जब कि पृथ्वी के निवासियों के साथ उनका मुक्त पत्र-व्यवहार भी प्रारम्भ हो जाय। एक अलग डाक विभाग बनेगा जिसके पोस्टमैन अन्तरिक्ष की भाषा समझने वाले हुआ करेंगे और बड़े सवेरे आकर दरवाजे पर दस्तक दिया करेंगे—"अमुक भाई साहब, यह लीजिए आपके नाम क्रेव-नीहारिका से एक्सप्रेस पत्र आया है, तार आया या आपके जन्म दिन का बधाई सन्देश।" लोग खुश होकर पत्र लिया करेंगे और अपना उत्तर प्रेषित करने के लिए अन्तरिक्ष लिफाफा मँगाने के लिए नौकर को भेज दिया करेंगे।

यह पक्तियाँ भविष्यवाणी (यूटोपिया) जैसी अतिरंजित नहीं लगनी चाहिए क्योंकि यह बातें निश्चित ही कुछ ही दिनों में सच होने जा रही हैं। उसका प्रमाण है अन्तरिक्ष से आ रहे रहस्यमय संकेत। सन् १९६८ की बात है, क्रैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, लन्दन के कुछ शोध छात्र उस समय आश्चर्य चकित रह गए जब उन्होंने अन्तरिक्ष से आने वाली "बीप-बीप-बीप" की विचित्र ध्वनि सुनीं। यह संकेत किन्हीं बुद्धिमान प्राणियों द्वारा सम्प्रेषित थे। उसका अनुमान इस बात से हुआ कि संकेत निश्चित गति और नियमित समय पर आ रहे थे। इन संकेतों को "पल्सर" नाम दिया गया। एक अनुमान यह भी था कि आकाश की किसी आकाश-गंगा में विस्फोट हो रहा होगा यह ध्वनि उसी की होगी किन्तु "पल्सर" के अध्ययन के बाद "क्वासार किरणों" के विशेषज्ञ डॉ. मार्टिन स्मिड, ऐलेन लैण्डेज, मार्टिन राइल तथा ग्राइम स्मिथ ने भी यह स्वीकार किया कि संकेत विस्फोटजन्य और अकारण नहीं, वरन् एक व्यवस्थित विचार-प्रणाली द्वारा ही भेजे गए हैं। तब से इस दिशा में वैज्ञानिकों की शोधें बड़ी तत्परतापूर्वक चल रही हैं और जो निष्कर्ष अब तक उपलब्ध हुए हैं, उनसे भी उक्त धारणा को ही बल मिलता है।

मुलार्ड रेडियो वेधशाला में इनकी विस्तृत खोज चल रही है। वेधशाला के संचालक, प्रसिद्ध नक्षत्र विद् श्री मार्टिन राइल ने जाँच के बाद पाया कि यह पल्सर (संकेत) क्रमशः १.३३७, १.५ तथा १.९ सेकण्ड के क्रम से आ रहे हैं और नियमित आ रहे हैं। उनका स्रोत २०० प्रकाशवर्ष दूर (एक प्रकाशवर्ष ५८६९७१३६००००० मील के बराबर होता है। यह तारे इससे भी २०० गुना दूर कहीं स्थित हैं) के किसी कुल आधे मील व्यास वाले नक्षत्र से ही आ रहे हैं। सम्भव है, इतना बड़ा कोई अन्तरिक्ष स्टेशन ही आकाशस्थ प्राण धारियों ने लगा रखा हो। यह संकेत उस प्रयोगशाला से भेजे जा रहे हों। कुछ भी हो पर यह निश्चित है कि वे किसी बुद्धिधारी जीव द्वारा भेजे जा रहे हैं। इससे एक बात तो स्पष्ट है कि परलोक स्वर्ग और मुक्ति जैसी भारतीय कल्पना असंगत तथ्य नहीं, तर्कपूर्ण महान् उपलब्धि है। उसे यों ही उपेक्षा में टाला नहीं जा सकता।

हम भारतीय मृत्यु के समय सूर्य की उत्तरायण गति को शुभ मानते हैं और दक्षिणायन को अशुभ। विश्वास यह है कि उत्तरायण मृत्यु से मनुष्य ऊर्ध्व लोकों में अर्थात् स्वर्ग में जाता है। भीष्म पितामह को तो उसके लिए एक कष्टसाध्य प्रक्रिया के अन्तर्गत अपना प्राण स्थिर रखना पड़ा था। इस विश्वास का वैज्ञानिक पहलू जीवन के चुम्बकत्व से सम्बन्धित होने से है। प्राण एक प्रकार की विद्युत शक्ति है। चुम्बक और विद्युत परस्पर परिवर्तनीय शक्तियाँ हैं। अपने प्राणों को चुम्बकत्व में बदल कर उत्तरी ध्रुव के सर्वाधिक चुम्बक प्रभावी क्षेत्र से आकाशगामी बनाने की कल्पना को भी इन खोजों से बल मिलता है। जो ड्रेल बैंक स्थित रेडियो-टेलिस्कोप द्वारा जाँच करने पर एस्ट्रानॉमिस्ट (खगोलज्ञ) श्री ग्राह्म स्मिथ ने पल्सर की रेडियो तरंगों को पोलराइज्ड पाया अर्थात् वे चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा प्रभावित थीं और यही सबसे बड़ा प्रमाण है, जिससे यह पुष्टि होती है कि यह 'पल्सर संकेत' जीवधारियों द्वारा भेजे जा रहे हैं।

एक बार वैज्ञानिक चार्ल्स क्रॉस ने एक सुझाव दिया था कि आकाश के जीव धारियों को पृथ्वी से गणितीय संकेत भेजे जायें। क्रॉस की योजना अत्यधिक विकिरण वाले क्षेत्र साइबेरिया अथवा सहारा रेगिस्तान में ऐसी चिताएँ बनाने की थी जो पाइथागोरस की बनावट की हों। उनके द्वारा गणित सम्बन्धी रेडियो संकेत भेजे जाने की बात थी। पर संकट यह था कि यदि ऐसे संकेत सन् १९७० में भेजे जायें तो ११ प्रकाशवर्ष की दूरी वाले तारे में वे (कम से कम दूरी का पल्सर ११ प्रकाश वर्ष का है) ११ वर्ष बाद पहुँचेंगे। यह माना जाय कि वहाँ से उसका उत्तर तुरन्त भेज दिया जायेगा तो भी उसके पृथ्वी पर पहुँचने तक यहाँ सन् १९९२ चल रहा होगा तब तक वैज्ञानिक या तो मर चुका होगा या बूढ़ा चारपाई में पड़ा होगा।

पुराण की बात को भले ही लोग अतिरंजित कल्पना मानें पर यह वैज्ञानिक तथ्य तो गलत नहीं हो सकते। यदि वैज्ञानिक उपलब्धियाँ सच निकलीं तो आज न सही कल तो लोगों को भारतीय परलोकवाद का आश्रय लेना ही पड़ेगा, यदि ऐसा हुआ तो आज का विज्ञान अध्यात्मवाद से निश्चित ही प्रभावित होगा। वह दिन अब अधिक दूर नहीं है, जब यह सब कुछ सच होकर रहेगा।

धरती और सूरज भी मरने की तैयारी कर रहे हैं!

अपने सौर-मण्डल के ग्रह-उपग्रहों की विविध गतिविधियों का स्रोत सूर्य है। उससे जो ऊर्जा निःसृत होती है, उसी के बलबूते सौर परिवार अपना निर्वाह करता है। गर्मी के बिना न चूल्हा ही जलता है और न रेल, मोटर दौड़ती हैं। शरीर की गर्मी चुक जाय तो निस्तब्धता छा जायेगी और मौत आ दबोचेगी। तेल, पेट्रोल न हों तो गाड़ी कैसे चलेगी? बिजली न हो तो उसके सहारे चलने वाले कारखाने ठप्प पड़ जायेंगे। सूर्य का ऊर्जा उत्पादन बन्द हो जाय तो सौर-मण्डल के ग्रह स्वतः ठण्डे हो जायेंगे और इस परिवार के पारस्परिक सम्बन्ध क्षीण होने से विघटन चल पड़ेगा। तब ठण्डे ग्रह किसी अन्य गर्म सूर्य का आश्रय पाने के लिए अपना देश छोड़कर किसी लम्बी यात्रा पर चल पड़ने की तैयारी करेंगे। जलाशय सूख जाने पर पक्षी भी तो उड़कर अन्यत्र चले जाते हैं।

जन्म के उपरान्त हर वस्तु मरण की दिशा में चलती है। विकास और यौवन के पड़ाव इसी बीच में आ जाते हैं। अपने

सूर्य का बचपन चला गया । किशोर काल व्यतीत हो गया । प्रौढ़ावस्था भी व्यतीत हो गई । यह उसकी ढलती उम्र है जो उसे क्रमशः मरण की दिशा में घसीटे लिए जा रही है । जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, वह शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य की पतिव्रता पत्नी है । वह उस की कमाई खाती है । सुरक्षा के लिए उसी पर आश्रित है और पति के मरण पर साथ सती होने के लिए समुद्यत है । अस्तु, सूर्य के मरण का सीधा सम्बन्ध अपनी पृथ्वी के साथ होने और उसके अंचल में पलने वाले हम सब मनुष्यों का भाग्य भी इन अभिभावकों की स्थिति पर अविलम्बित है । सूर्य और पृथ्वी की स्थिति से हम मानव प्राणी अप्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते । अस्तु, अपना भविष्य चिन्तन करते समय हमें सूर्य और पृथ्वी के भविष्य का विचार करना पड़े उसे अनावश्यक नहीं माना जाना चाहिए ।

सूर्य ठण्डा हो रहा है । उसके फलस्वरूप पृथ्वी भी ठण्डी हो रही है । साथ ही उसकी सक्रियता भी घट रही है । अब से एक करोड़ वर्ष पहले दिन-रात २२ घण्टे के होते थे और वर्ष ४०० दिन का था । अब वर्ष में प्रायः ४० दिन की कमी और दिनमान में २ घण्टे की वृद्धि हो गई है । वह अपनी धुरी पर भी अपेक्षाकृत मन्द गति से घूमने लगी है और सूर्य की परिक्रमा करने वाली यात्रा में भी धीमापन आ गया है ।

खगोलवेत्ताओं की गणना है कि कोई पाँच अरब वर्ष बाद अपनी पृथ्वी की स्थिति बड़ी विचित्र हो जायेगी । एक दिन ७२० घण्टे का अर्थात् आज के दिन की तुलना में ३० गुना बड़ा होने लगेगा । रात्रि अब के १५ दिनों की बराबर होगी और दिन भी इतना ही बड़ा होगा । तब रात्रि में कई-कई बार जाग कर काम करने की और दिन में कई-कई बार पूरी नींद सोने की आवश्यकता पड़ा करेगी ।

पृथ्वी की उदासी देखकर चन्द्रमा का जी उससे खट्टा होता जा रहा है । इन दिनों चन्द्रमा हर ३० वर्ष में पृथ्वी से एक फुट दूर हट जाता है । जब पृथ्वी के दिन ७२० घण्टे के होंगे तो चन्द्रमा अब जितनी दूर (ढाई लाख मील) है, उससे प्रायः ड्यौढ़ी दूरी पर चला जायेगा । किन्तु यह स्थिति देर तक वैसी न रहेगी । कई अन्तर्ग्रहीय दबावों के कारण चन्द्रमा फिर वापस लौटेगा और धरती से मात्र ६ हजार मील दूर रह जायेगा । आकार में अब से १० गुना बड़ा दिखायी पड़ने लगेगा । वह समय चन्द्रमा के जीवन-मरण का होगा, यदि वह कुछ कदम और आगे बढ़ा तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के दबाव में वह ईंधन के ढेर की तरह जलता दिखायी पड़ सकता है, तब उसकी राख का कचरा पृथ्वी के इर्द-गिर्द वैसे ही घूमने लगेगा जैसा कि शनि ग्रह के इन्द-गिर्द ग्रह-उपग्रह का चूरा एक सघन छल्ले के रूप में घूमता रहता है ।

बुझते हुए दीपक की लौ जिस प्रकार बार-बार उछलती-चमकती है—मरणासन्न रोगी जिस तरह लम्बी साँसें लेता है, उसी तरह सूर्य के हाइड्रोजन का एक बड़ा भाग हीलियम में बदल जाने के कारण कई तरह की नाभिकीय प्रतिक्रियाएँ होंगी । उसका आकार अब से २० गुना अधिक हो जायेगा और रंग अंगारे जैसा लाल । तब पृथ्वी के भी प्राण संकट में फँस जायेंगे । वह सूर्य के अति निकट जाकर परिक्रमा करेगी फलतः उसके ठोस पदार्थ पिघल कर द्रव बन जाने, पानी का भाप बन कर अन्तरिक्ष में उड़ जाने जैसे संकट खड़े हो जायेंगे । ऐसी दशा में उस पर किसी प्राणी या वनस्पति जैसा कोई जीवन चिह्न भी शेष नहीं रह जायेगा । किन्तु यह सब रहेगा तभी तक, जब तक कि सूर्य गर्म है और पृथ्वी के निकट होने के कारण उसे अधिक गर्म करता है, जब सब स्वतः ठण्डा होता जायेगा तो स्वभावतः पृथ्वी भी ठण्डी होगी । तब पृथ्वी के प्रभाव क्षेत्र में भरी हुई गैसें पुनः बादल बनकर बरस सकती हैं और जीवन का श्रीगणेश नए सिरे से हो सकता है । उस समय के जीवधारी आज के जैसे होंगे या अन्य किसी आकृति प्रकृति के, यही अभी कहा जा सकना कठिन है । निश्चित रूप से वह शीत जीवी होंगे । पर उन विचारों को भी अधिक समय स्थिर रहने का अवसर कहाँ मिलेगा । पिछली सृष्टि गर्मी से जलकर नष्ट हुई थी तो यह अल्पजीवी नई सृष्टि शीत से ठिठुरकर थोड़े से समय में अपना दम तोड़ देगी । तब पृथ्वी बर्फ से ढकी एक बड़ी गोली मात्र दृष्टिगोचर होगी ।

सूर्य बुझते-बुझते एक टिमटिमाते दीपक की तरह रह जायेगा । गर्मी समाप्त हो जाने के कारण सौर-मण्डल के सभी ग्रह-उपग्रह ठण्डे हो जायेंगे, सघन अन्धकार उन्हें ढक लेगा । इतने पर भी बिखराव रोकने का एक कारण तब भी बहुत दिन बना रहेगा । सूर्य में भरा हुआ पदार्थ बहुत विस्तृत है । वह अपने विस्तार के कारण ही आकर्षण शक्ति बनाये रहेगा और उसमें बँधे हुए ठण्डा अँधेरा सौर-मण्डल किसी प्रकार अपनी कक्षा एवं धुरी पर परिभ्रमण करता रहेगा । यह नहीं कहा जा सकता कि उस नीरस स्थिति को प्रकृति कब तक सहन करेगी । हो सकता है कि इस शून्य को भरने के लिए ब्रह्माण्ड के कोई समर्थ सूर्य कहीं से टूटे पड़ें और इन अनाथ बालकों की साज सँभाल नये सिरे से करने लगें । एक सम्भावना और भी है कि यह अनाथालय जैसा सौर-मण्डल अपनी पृथ्वी समेत नवजीवन पाने के लिए अन्तरिक्ष की लम्बी यात्रा पर निकल पड़े । उस महायात्रा के भटकाव से त्राण पाकर स्थिरता का संरक्षण मिलने में किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा, इसका अनुमान लगाने में अभी तो मनुष्य की वर्तमान बुद्धि ने असमर्थता ही घोषित कर दी है ।

पृथ्वी की परिधि भूमध्य-रेखा पर ४०७६ किमी. और ध्रुवों पर ४०००० किमी. है । उसका व्यास भूमध्य-रेखा पर १२७५३ किमी. और ध्रुवीय व्यास १२७०६ किमी. है । धरातल का क्षेत्रफल ५१ करोड़ २ लाख वर्ग किमी. है । सूर्य की परिक्रमा करते हुए उसकी गति १००१६१ किमी. प्रति घण्टा है ।

पृथ्वी के आकार से सूर्य का आकार १३ लाख गुना बड़ा है, जिस ध्रुवतारे की अपना सूर्य अपने ग्रह परिवार समेत परिक्रमा करता है, वह उसकी तुलना में ३ लाख गुना बड़ा है । ध्रुव के परिवार में अनेक सौर-मण्डल सम्मिलित हैं । वह उन सब को समेटे हुए महा ध्रुव की परिक्रमा के लिए दौड़ रहा है । महा ध्रुव का आकार, प्रकाश और चुम्बकत्व अपने ध्रुव से अत्यधिक वृहत है ।

इतने वजन से लदे हुए इतनी तीव्र गति से चल रहे इस परिभ्रमण में शक्ति खर्च होती है और वह कहीं न कहीं से आनी ही चाहिए । स्पष्ट है कि सूर्य की उत्तेजना से पृथ्वी का अन्तराल उफनता है । दोनों के समन्वय से वह क्षमता उत्पन्न होती है जो

इस भूमण्डल की असंख्य गतिविधियों को संचालित करती है। साधन सामग्री सीमित है असीम नहीं। उत्पादन की तुलना में जब खर्च बढ़ जाता है, तो जीवनी-शक्ति घटती है, शरीर जराजीर्ण होते-होते मृत्यु के मुख में प्रवेश कर जाता है। यही अन्त ग्रह-नक्षत्रों का भी होता है। अपने सूर्य का और उसकी आश्रिता धरती का भी इसी प्रकार अन्त होना है। देर या सवेर में मरणधर्मा मनुष्यों की भाँति यह विशालकाय सूरज भी अपनी सहेली धरती समेत मरने की तैयारी कर रहा है। हमें भी इस तथ्य को समझना है और अपने मरण को ध्यान में रखना है।

पारस्परिक सहकार से गतिशील जीवन-चक्र

प्रकृति, जीव एवं वनस्पतियों का परस्पर एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पृथ्वी, जल, वायु तथा अंगणित जीवनोपयोगी पदार्थ प्रकृति के घटक हैं। प्राणियों अथवा वनस्पतियों के रूप में गतिशील जीवन का इन सबके सहयोग एवं सन्तुलन के आधार पर ही अपना अस्तित्व है। लगता भर है कि सभी अलग-अलग घटक हैं पर वास्तविकता यह है कि एक अभिन्न चक्र से सभी जुड़े हुए हैं, एक ही माला के मनके हैं। एक ही गति एवं स्थिति से समस्त चक्र प्रभावित होता और तद्नुरूप प्रतिक्रिया दर्शाता है। इकोलॉजी विशेषज्ञों का मत है कि प्रकृति चक्र की अपनी स्वसंचालित प्रक्रिया है। यदि उसमें अनावश्यक हस्तक्षेप न किया जाय तो वह सतत् गतिमान रहते हुए अगणित अनुदानों से जीव जगत की सेवा करता रह सकता है।

इकोलॉजी विशारदों के अनुसार जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक तीस से चालीस रासायनिक तत्व प्रकृति में सदा परिभ्रमण करते रहते हैं। उनका परिवर्तन विभिन्न चक्रों में, विभिन्न रूपों में होता रहता है। विज्ञानवेत्ता इसे 'बायोजियोकेमिकल साइकिल' कहते हैं। यह चक्र प्राणियों एवं वनस्पतियों के जीवन का स्रोत है, जिससे वे अपने-अपने लिए विभिन्न तरह के रासायनिक तत्व रूपी आहार प्राप्त करते हैं। अवशोषित तत्व जीव कोशों में पहुँचते हैं, जहाँ चयापचय क्रिया सम्पन्न होती है। अवशिष्ट पदार्थ उत्सर्जन के बाद अकार्बनिक जगत को लौटा दिए जाते हैं। यही चक्र निरन्तर गतिशील रहकर प्रकृति की सन्तुलन व्यवस्था को सतत् दृढ़ बनाये रखता है।

गैस रूप में विद्यमान वायुमण्डल के रासायनिक तत्व जीवधारियों द्वारा शोषित होकर पोषक तत्वों में बदल जाते हैं, उदाहरणार्थ—कार्बन डाइऑक्साइड कार्बोहाइड्रेट में तथा नाइट्रोजन प्रोटीन में। आहारचक्र के अन्तर्गत अन्यान्य घटकों से गुजारते हुए वे अपने मूल स्वरूप में उत्सर्जन, श्वसन इत्यादि प्रक्रियाओं के उपरान्त वायुमण्डल को लौटा दिए जाते हैं। भूमिगत रासायनिक तत्वों का चक्र भी इसी प्रकार संचारित होता रहता है। पत्थरों के अपक्षयन से खनिज उत्पन्न होते हैं। जो लवण के रूप में परिवर्तित होकर मिट्टी में जल अथवा समुद्र, झरना, नदी में मिल जाते हैं और जल चक्र के अभिन्न अंग बन जाते हैं। पौधे प्राणी इस खनिज लवण को ग्रहण करते हैं। फिर आहार-चक्र की शुरुआत हो जाती है। अवशिष्ट पदार्थों के वियोजन तथा अंगों के अपक्षयन से खनिज तत्व पुनः लवण एवं जल के रूप में हस्तान्तरित कर दिए जाते हैं।

इस 'बायोजियोकेमिकल साइकिल' द्वारा जीव जगत की विभिन्न प्रक्रियाओं से उत्पन्न अवशेषों का प्रयोग दूसरे समुदाय द्वारा कर लिया जाता है। एक का अवशिष्ट पदार्थ दूसरे का ऊर्जा स्रोत अथवा आहार बन जाता है। प्राणियों के अवशिष्ट पदार्थों में मिली नाइट्रोजन जीवाणुओं का आहार बन जाती है। जीवाणु मरकर भूमि को उर्वरा बनाते हैं। मिट्टी से पौधे पोषण प्राप्त करते हैं। पौधों से पशुओं को आहार मिलता है। इस प्रकार एक अविराम गतिचक्र चलता रहता है। मनुष्य द्वारा उत्सर्जित विष समान कार्बन डाइऑक्साइड पौधों का जीवनाधार है।

इसी प्रकार जनन, पोषण, अभिवर्द्धन, परिशोधन एवं सन्तुलन का स्वसंचालित गति चक्र प्रकृति में चलता रहता है, जो प्रकृति के विभिन्न घटकों के पारस्परिक सहयोग पर आधारित है। जन्म एवं विकास की तरह मृत्यु व विनाश भी उस जीवन-चक्र के गति एवं सन्तुलन के लिए आवश्यक है। पदार्थों के गति-चक्र तथा उससे उत्सर्जित होने वाले ऊर्जा प्रवाह पर ही समस्त जीवों का जीवन अवलम्बित है। जिन्हें जड़ समझा जाता है उनमें भी यह चक्र गतिशील है। जल के वाष्पीकरण, जमाव तथा पत्थरों के उद्भव एवं कटाव के रूप में भी वह चक्र क्रियाशील है। इसी प्रकार पौधों द्वारा भी सूर्य का प्रकाश अवशोषित किया जाता है तथा पुनः ऊर्जा के रूपान्तरण के साथ अन्तरिक्ष में छोड़ दिया जाता है।

प्रत्येक जीवनदायी पदार्थ में जल का अंश होता है। जीवधारी जब उन्हें ग्रहण करते हैं तो उसका जल कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, फॉस्फोरस व सल्फर को कार्बोहाइडेट्र, प्रोटीन, वसा तथा अन्य जीवनदायी पोषक तत्वों में बदल देता है। पौधे मिट्टी से पोषक तत्वों के रूप में नाइट्रेट, अमोनिया, सल्फेट आदि प्राप्त करते हैं।

वे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया से ऑक्सीजन को वायुमण्डल में छोड़ते रहते हैं। वातावरण में प्रचुर परिमाण में विद्यमान नाइट्रोजन एक निष्क्रिय गैस है, जो जीवधारियों द्वारा सीधे प्रयोग में नहीं लायी जा सकती, जबकि वह जीवन की एक प्रमुख इकाई है पर प्रकृति की व्यवस्था वस्तुतः विलक्षण है। दूसरी एक प्रक्रिया से वह उस गैस को उपयोगी बना देती है। वातावरण में जीवाणुओं की जातियाँ तथा कुछ 'एल्गी' की प्रजातियाँ इस गैस को उपयोग में लाती हैं तथा वायुमण्डल से खींचकर मिट्टी में छोड़ देती हैं। मिट्टी के जीवाणु नाइट्रोजन को अमोनिया में बदल देते हैं। कुछ पौधे अमोनिया को सीधे प्रयोग कर लेते हैं, परन्तु अधिकांश मिट्टी के जीवाणुओं द्वारा इसके नाइट्राइट व नाइट्रेट में परिवर्तित किए जाने के उपरान्त ही ग्रहण करते हैं। कैल्सियम, सल्फर, मैग्नेशियम, पोटैशियम तथा बोरोन जैसे खनिज तत्व मिट्टी के माध्यम से पौधों की जड़ों को प्राप्त होते हैं। पौधों के विनष्ट होने पर पुनः मिट्टी में मिल जाते हैं।

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के चक्र चलते रहते हैं। अपनी अलग-अलग भूमिका सम्पन्न करते हुए भी वे परस्पर एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप में जुड़े हुए हैं। कार्बन एवं ऑक्सीजन का एक चक्र है। अनुमान है कि पूरे जीव मण्डल में २×१०×१६ टन कार्बन संव्याप्त है। यह वायुमण्डल में ७×१०×११ टन कार्बन

डाइऑक्साइड तथा हरे पौधों में ४.५×१०×११ टन कार्बोहाइड्रेट के रूप में पाया जाता है । प्रकाश संश्लेषण तथा पौधों के श्वसन क्रिया से वायुमण्डल के साथ कार्बन डाइऑक्साइड का विनिमय चलता रहता है, जिसके फलस्वरूप इसकी वार्षिक उत्पादकता धरातल पर २.५×१०×१० टन तथा समुद्री क्षेत्र में २×१०×१० टन प्रति वर्ष होती है । दिन के समय में प्रकाश संश्लेषण से पौधे के समीप के वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड १२ प्रतिशत घट जाती है, पर रात्रिकाल में जीवाणुओं, पौधों तथा पशुओं के श्वसन से धरातल पर कार्बन डाइऑक्साइड की सान्द्रता १५ प्रतिशत बढ़ जाती है । इससे सन्तुलन बना रहता है । यही सन्तुलन पर्जन्य वर्षा का कारण बनता है, जिससे वनस्पतियों-खाद्य में प्राण तत्व समाविष्ट होता है ।

अनुमान है कि मात्र ईंधन के जलाये जाने से वायुमण्डल में प्रति वर्ष ६×१०×६ टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमण्डल में भरती जा रही है । वाहनों तथा बड़े कारखानों से निकली मात्रा इसके अतिरिक्त है । कार्बन डाइऑक्साइड जल में भी घुलनशील है । इस विशेषता के कारण वह समुद्र के माध्यम में समस्त संसार में वितरित कर दी जाती है पर उसका बाहुल्य होने से जलचरों के अस्तित्व के लिए संकट खड़ा हो गया है । यही स्थिति वायुमण्डल की है । उसमें भरी दमघोंटू विषाक्तता अगणित प्रकार के रोगों का कारण बनती है ।

ऑक्सीजन का चक्र भूमण्डल, वायुमण्डल तथा जीवमण्डल के बीच गतिशील रहता है । ऑक्सीजन की मात्रा सन्तुलित रखने तथा उसके चक्र को गतिशील रखने में पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है । ऑक्सीजन के अतिरिक्त भी अन्य गैसों का चक्र क्रियाशील है । वायुमण्डल में नाइट्रोजन लगभग ८० प्रतिशत है, जो अपने मूल स्वरूप अथवा परिवर्तित रूप में जीवधारियों के काम आती है । यद्यपि मनुष्य द्वारा कृत्रिम खादों के अधिक प्रयोग से वह चक्र भी बिगड़ता चला गया है ।

जल चक्र पृथ्वी, सूर्य और समुद्र के सहयोग से गतिशील है । पृथ्वी एवं समुद्र का जल सूर्य प्रकाश से वाष्पीभूत होकर वायुमण्डल में पहुँचता, घनीभूत होकर बादल में बदलता तथा पुनः वर्षा के रूप में पृथ्वी एवं नदियों को लौटा दिया जाता है जो पुनः समुद्र में जा पहुँचता है । वर्षा की मात्रा किसी देश अथवा द्वीप की बनावट के ऊपर निर्भर करती है । जल के विश्वव्यापी वितरण का लेखा-जोखा लिया जाय तो मालूम होगा कि जलवृष्टि से पृथ्वी को प्राप्त जल की मात्रा वाष्पीकृत हुए जल के ही समतुल्य होती है । आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका में सूखे की स्थिति सदा बने रहने का कारण यह है कि वहाँ वर्षा के जल का ७५ प्रतिशत भाग वाष्पीभूत हो जाता है ।

जल एवं गैसों के अतिरिक्त ऊर्जा का चक्र भी सर्वत्र सक्रिय है । गति अथवा विकास के लिए प्रेरणा एवं शक्ति पेड़-पादप तथा जीव-जन्तु उसी से प्राप्त करते हैं । इस चक्र के अध्ययन विश्लेषण की नई तकनीक रेडियो आइसोटोप्स, माइक्रोकैलोरीमेट्री, कम्प्यूटर साइन्स तथा एप्लायड गणित के सम्मिलित सहयोग से विकसित हुई है । इकोलॉजी प्रणाली में ऊर्जा चक्र को समझने में इस विधि से भारी मदद मिली है । ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सौर विकिरण है । इस विकिरण का कुछ अंश 'ऑटोट्राफ' प्रक्रिया द्वारा जैविक पदार्थ में बदल दिया जाता है, जिससे समस्त भू-मण्डल की आहार आवश्यकता की पूर्ति होती है । आहार चक्र में जीवधारियों के एक समुदाय की आहार ऊर्जा परिवर्तित रूप में, दूसरे समुदाय को हस्तान्तरित कर दी जाती है ।

प्रकृति के इन विभिन्न चक्रों के युग्म एवं पारस्परिक सहकार से सृष्टि में जीवन विभिन्न रूपों में अठखेलियाँ कर रहा है । एक की गति एवं स्थिति में परिवर्तन का सीधा प्रभाव समूचे 'इकालॉजिकल चक्र' पर पड़ता है । पेड़-पादपों, जीव-जन्तुओं, सूक्ष्म जीवाणुओं, मनुष्य तथा सम्बन्धित पर्यावरण के सह-अस्तित्व एवं सम्मिलित जटिलतम प्रणाली को 'इकोसिस्टम' कहा जाता है । इस सन्तुलन के कारण ही समस्त प्रकृति के सभी व्यापार ठीक ढंग से चलते हैं । प्रत्येक इकालॉजिकल सिस्टम सैकड़ों, हजारों जैविक समुदायों के सहयोग से मिलकर बना है । ऊर्जा रासायनिक द्रव्यों का हस्तान्तरण एक से दूसरे में करता रहता है । अन्तर्जगत के इकोसिस्टम की प्रक्रिया भी स्वयं में अद्भुत है । इस प्रक्रिया के ध्वंस एवं निर्माण, जन्म और मरण सम्बन्धी विविध क्रियाओं से वातावरण के समीपवर्ती एवं दूरवर्ती क्षेत्रों में विभिन्न रसायनों का आदान-प्रदान चलता रहता है ।

प्रकृति के सभी क्रिया-कलाप विभिन्न घटकों के परस्पर सहयोग पर गतिशील हैं । सबका अस्तित्व भी इसी सिद्धान्त पर अवलम्बित है । इसमें गतिरोध तब उत्पन्न होता है, जब अनावश्यक छेड़छाड़ की जाती और प्रकृति की स्वचालित व्यवस्था भंग की जाती है । प्रकृति ही नहीं समस्त मानव जाति भी एक जीवन-चक्र में बँधी हुई है । एक की स्थिति दूसरे को प्रभावित करती है । सबकी सुख-शान्ति भी इसी बात पर आधारित है कि हर व्यक्ति अपने को विराट् परिवार का अभिन्न अंग माने, उसके विकास में सहयोग दे । व्यक्तिगत स्वार्थ की भी स्थायी रूप से आपूर्ति तभी हो सकती है जब समाज सर्वतोन्मुखी विकास की ओर चले । संकीर्णता जहाँ कहीं भी पनपेगी बिलगाव को जन्म देगी । हिल-मिलकर रहने, सरकार की नीति अपनाने तभी उपलब्धियों के आदान-प्रदान की उदारता अपनाने पर ही प्रकृति का सन्तुलन बना हुआ है । यही रीति-नीति मनुष्य जाति को भी अपनानी होगी । सबकी उपेक्षा करके एकाकी कोई भी जीवित नहीं रह सकता । अन्ततः उसे भी दम तोड़ना होगा, सह-अस्तित्व का सिद्धान्त प्रकृति पर ही नहीं मनुष्य के ऊपर भी लागू होता है । मानव जाति की सुख-शान्ति एवं उज्ज्वल भविष्य का इसे संक्षेप में आचार सूत्र समझा जा सकता है ।

बुद्धि न तो सर्वज्ञ है और न ही सर्व समर्थ

सृष्टि जितनी सुन्दर है उतनी ही विलक्षण भी । इसके छोटे से छोटे घटक अपने अन्दर इतने रहस्य छिपाए हुए हैं, जिन्हें देखकर मानवी मस्तिष्क हतप्रभ रह जाता है । विज्ञान ने अपनी आरम्भिक स्थिति में कभी दावा किया था, कि उसने सब कुछ जान लिया है । यह उसके स्थूल पर्यवेक्षण का परिणाम था । गहराई में स्थूल से सूक्ष्म की ओर उतरने पर यह ज्ञात हुआ कि जितना देखा और समझा गया था, वह तो जानकारियों का एक छोटा-सा हिस्सा मात्र था । बड़ा भाग तो अब भी अविज्ञात एवं रहस्यमय बना हुआ है ।

विराट् सृष्टि में अन्य भागों को छोड़ भी दिया जाय तो भी जिस भू-भाग पर मनुष्य निवास करता और विज्ञ होने का दावा

भरता है, उसके ही रहस्य इतने विस्मित करने वाले हैं, जिन्हें देखकर वैज्ञानिक बुद्धि का दर्प चकनाचूर हो जाता है और अपनी अल्पज्ञता का भान होता है ।

ज्वालामुखी के विस्फोटों से सम्बन्धित वैज्ञानिक भविष्यवाणियाँ अभी तक शत-प्रतिशत सत्य नहीं हो सकी हैं । किन्तु जावा के ज्वालामुखी पर्वत पेगरेज के ऊपर लगभग १० हजार फीट की ऊँची चोटी पर रायल काडस्लिप नामक पौधा होता है । इस पौधे पर कभी-कभी ही पुष्प दिखायी पड़ता है । किन्तु यह अशुभ सूचक पुष्प जब भी खिलेगा तो पेगरेज में ज्वालामुखी विस्फोट अनिवार्य रूप से होता है । स्थानीय लोग जब भी इस फूल को देखते हैं, तो अपना स्थान छोड़कर दूरस्थ सुरक्षित स्थानों में पहुँच जाते हैं । एक निश्चित समय में विस्फोट होने के बाद लोग फिर से अपना घर बसाते हैं ।

ज्वालामुखी का उस पौधे से क्या सम्बन्ध है । पुष्प का खिलना और ज्वालामुखी का फटना एक साथ होने में कोई वैज्ञानिक कारण नजर नहीं आता । क्या कोई चेतन सत्ता पुष्प के माध्यम से मानवी सुरक्षा के लिए संकेत देती है अथवा उस पौधे में ही ऐसी कोई भविष्य की घटनाओं को जानने का ऐसा कोई संग्रहीतन्त्र है । अनेक प्रयोग-परीक्षणों के बाद भी यह रहस्य ज्यों का त्यों बना हुआ है । यह नगण्य पौधा कई बार ज्वालामुखी के विस्फोटों से रक्षा करता आ रहा है । इस क्षेत्र के निवासी यह मानते हैं, कि कोई दैवीय शक्ति पुष्प के माध्यम से ज्वालामुखी के विस्फोटों से रक्षा करती है । पौधे के प्रति उनकी उतनी ही श्रद्धा है, जितनी कि किसी देवी अथवा देवता के प्रति ।

अरलसागर में स्थित 'वार्सा कल्मीज' नामक द्वीप वैज्ञानिकों के लिए रहस्यमय बना हुआ है । उस क्षेत्र में 'कजाक' नामक भाषा बोली जाती है । कजाक भाषा में वार्सा कल्मीज का अर्थ होता है—"जाओ और कभी वापस मत लौटो ।" प्रकृति ने इस क्षेत्र में ऐसा ही क्रूर मजाक किया है । १८० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले इस द्वीप में बादल तो बराबर छाए रहते हैं, पर पानी कभी नहीं बरसता । द्वीप के चारों ओर वर्षा तो होती है, पर उस क्षेत्र में आज तक पानी के दर्शन नहीं हुए । इससे देखने पर निरन्तर पानी बरसने का भ्रम होता है । यह भ्रम बादलों के छाए रहने के कारण होता है । कुछ व्यक्तियों ने उस स्थान पर जाने व बसने का दुस्साहस किया, पर वे पानी के अभाव में जीवित न रह सके । बादलों के छाए रहने तथा पानी न बरसने का कोई कारण न ढूँढ़ा जा सका ।

अमेरिका के 'एमेको आयल रिसर्च डिपार्टमेन्ट' में आग लगने का कोई कारण न होने पर भी तेल के बड़े-बड़े टैंकर क्यों जल गए ? उक्त संस्था के वैज्ञानिकों की परिकल्पना है कि किसी विशेष परिस्थिति में 'बॉल ऑफ लाइट' आती है और आग लगा देती है । वैज्ञानिकों ने इसे 'फेज लॉक्ड लूप ऑफ इलेक्ट्रोमेग्नेटिक रेडियेशन' कहा है ।

स्थूल की तुलना में सूक्ष्म जगत तो और भी व्यापक और विलक्षण है, जिसकी परिकल्पना कर सकना तक मनुष्य बुद्धि के लिए सम्भव नहीं है ।

बुद्धि न तो सर्वज्ञ है और न ही सर्वसमर्थ । उसकी उपयोगिता इतनी भर है कि अपनी क्षमता का सदुपयोग इस संसार को सुन्दर एवं समुन्नत बनाने के लिए करे । मानवी गरिमा इसी में निहित है ।

यह समूचा ब्रह्माण्ड फैल और फूल रहा है

प्राणी चेतना की भाँति ही पदार्थ सत्ता भी प्रगति के लक्ष्य को समान रूप से अपनाकर चल रही है । जड़ हो या चेतन, पदार्थ हो या प्राणी—प्रगति पथ पर अग्रसर हुए बिना किसी को भी चैन नहीं । वर्तमान में मिलकर रहने के लिए कोई सहमत नहीं । आदिम काल से लेकर अब तक की लम्बी मन्जिल पूरी करते समय, उसे पराक्रम का अभ्यास और उपलब्धियों का रसास्वादन करते रहने का जो अनुभव मिला है, वह असाधारण रूप से मधुर एवं आकर्षक है । उसे छोड़ने के लिए दोनों में से कोई भी किसी भी मूल्य पर सहमत नहीं हो सकता । समूचा प्राणि जगत और सुव्यवस्थित पदार्थ वैभव समान रूप से बस एक ही निश्चय किए हुए हैं, एक ही मार्ग अपनाए हुए हैं कि उन्हें अग्रगमन के उपहार एवं आनन्द का परित्याग नहीं ही करना है ।

यहाँ पदार्थ की प्रकृति पर दृष्टिपात करना है और यह देखना है कि क्या वह भी सचेतन की तरह प्रगति के लिए समान रूप से आकुल-व्याकुल है ? और क्या उसका पराक्रम भी आगे बढ़ने, अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त करने, अधिक सुविस्तृत बनने में संलग्न है । जड़ पदार्थ में इच्छा का अभाव और हलचलों का बाहुल्य माना जाता है, पर गम्भीरता से विचार करने पर प्रतीत होता है कि उसकी हलचल भी उद्देश्यपूर्ण है । अनगढ़ निष्प्रयोजन नहीं ।

पदार्थ चल रहा है—यह स्पष्ट है, पर क्यों चल रहा है ? किस दिशा में चल रहा है उसके सामने भी प्रगति का, विस्तार का, पराक्रम का, प्रकटीकरण का और अपूर्णता को पार करते हुए चरम पूर्णता तक पहुँचने का लक्ष्य ही प्रेरणा स्रोत बनकर रह रहा है ।

ब्रह्माण्ड का आरम्भ कब और किस क्रम से हुआ—इसके सम्बन्ध में अनेक मत हैं, पर जिस प्रतिपादन पर प्रायः आज सहमति हो चली है वह यह है कि आरम्भ में थोड़ा-सा सघन द्रव्यमान (मास) था । उसके अन्तराल में किसी अविज्ञात कारण से विस्फोट हुआ और उसकी धज्जियाँ उड़ गईं, असंख्य टुकड़े हुए—वे जिधर-तिधर छितर गए । इस छितराव ने एक नई दिशा अपनाई । टुकड़ों में से अधिकांश अपनी धुरी पर लटटू की तरह घूमने लगे और साथ ही घुड़दौड़ की तरह आगे की ओर भी भागने लगे । चूँकि यह समस्त सृष्टि रचना गोलकार है, फलतः गति भी गोलाकार ही अग्रगामी रह सकती है । अनवरत घुड़दौड़ को अन्ततः गोलाकार बनना पड़ा और किसी लक्ष्य तक पहुँच कर प्रयास की इतिश्री कर देने की अपेक्षा अनन्तकाल तक अनवरत घुड़दौड़ जारी रखने का एक सुनिश्चित मार्ग मिल गया ।

द्रव्यमान के छितरे टुकड़ों ने न केवल बाह्य जगत में, ब्रह्माण्ड के प्रांगण में अपनी घुड़दौड़ को जारी रखा वरन् आत्मसत्ता की निजी परिधि में भी इसी नीति को अपनाया । वे अपनी-अपनी धुरियों पर भी घूमने लगे । इस प्रकार वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही क्षेत्र में उन्होंने अपने प्रयास-पुरुषार्थ को अग्रगमन के

लक्ष्य में नियोजित किए रहने का मार्ग चुना और अनुशासन अपनाया।

विज्ञानवेत्ताओं के अनुसार सृष्टि का आरम्भिक द्रव्यमान एक सघन बादल के रूप में था। उस स्थिति में उसका क्षेत्रफल १०-१२ किलोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर आँका गया है। इस सघन बादल को खगोलवेत्ता 'प्रोटो गैलेक्सी' के नाम से पुकारते हैं। आरम्भ में वह बादल ऐसे ही अनगढ़ था। विस्फोट होने के बाद उस केन्द्र में तथा टुकड़ों में एक नयी क्षमता उद्‌भूत हुई। उसे गुरुत्वाकर्षण के नाम से जाना जाता है। विस्फोट के बाद टुकड़े नीहारिका बन गए और छोटे ग्रह तारकों के रूप में अपने छोटे-छोटे कलेवरों को सुगठित बना सकने में सफल हो गए। नीहारिकाएँ अभी भी उतनी सुव्यवस्थित नहीं हो सकी हैं।

ब्रह्माण्ड फूल रहा है। उसके अन्तराल में अवस्थित नीहारिकाएँ तथा तारा मण्डल क्रमशः एक-दूसरे से दूर हटते जा रहे हैं। इस हटने का तात्पर्य पीछे की ओर लौटना नहीं, आगे की ओर बढ़ना है।

तारों की दूरी का अनुमान इन दिनों इस आधार पर लगाया जाता है कि उनका प्रकाश धरती पर पहुँचने में कितना समय लेता है। प्रकाश की गति एक सेकेण्ड में एक लाख छियासी हजार मील है। इस गति से चलते रहने पर एक वर्ष में जितनी दूरी पार होती है, उसे एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। पृथ्वी से कौन-सा तारा कितनी दूर है, इसकी गणना इसी आधार पर की जाती है कि उसका प्रकाश धरती तक आने में कितना समय लगा। समय और दूरी का सिद्धान्त इसी आधार पर विनिर्मित हुआ है। उदाहरण के लिए सूर्य के प्रकाश को धरती तक आने में प्रायः सवा आठ मिनट लगते हैं। इस आधार पर उसकी मध्यवर्ती दूरी का निर्धारण ९ करोड़ ८ लाख मील की दूरी का हुआ है। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों की दूरी मापी जाती है।

ग्रह-तारकों का प्रकाश वर्तमान में जितना नापा गया है उतना भविष्य में न रहेगा, अन्तर बढ़ जायेगा। समय अधिक लगने का अर्थ है दूरी का बढ़ना। खगोल निरीक्षकों के अनुसार यह मध्यवर्ती दूरियाँ हजारों मील प्रति सेकण्ड के हिसाब से बढ़ रही हैं। इतना ही नहीं एक और भी विचित्र बात यह है कि न केवल दूरी बदलती है, वरन् उस घुड़दौड़ की तीव्रता भी बढ़ जाती है और उसकी चाल में क्रमशः अभिवृद्धि भी होती जाती है। आश्चर्य यह है कि यह अभिवृद्धि सामान्य नहीं असामान्य है, अर्थात् उसकी तीव्रता में जो अनुपातिक वृद्धि हो रही है, वह है एक सेकण्ड में पचास किलोमीटर। इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यवर्ती दूरी का निरन्तर विस्तार तो हो ही रहा है। उस विस्तार की गति में भी आश्चर्यजनक तीव्रता आती चली जाती है। यह क्रम इसी प्रकार चलते रहने पर यह निश्चित है कि न केवल पृथ्वी और तारकों की मध्यवर्ती दूरी, वरन् उन सब का फासला भी बढ़ता-फैलता ही चला जायेगा। यह बात किसी एक-दो पिण्डों के बारे में नहीं, वरन् सभी प्रस्तुत ग्रह-नक्षत्रों पर लागू होती है। वे सभी एक-दूसरे के निकट आने की नीति नहीं अपना रहे, वरन् धीरे-धीरे अधिक दूर हटने की नीति अपनाये हुए हैं। कुल मिलाकर इसका तात्पर्य-निष्कर्ष निकलता है—समूचे ब्रह्माण्ड में फुलाव-विस्तार की प्रक्रिया।

समूचा ब्रह्माण्ड प्रति सेकण्ड साढ़े पाँच सौ किलोमीटर की गति से फूलता-फैलता चला जा रहा है। भूतकालीन स्थिति की अपेक्षा वर्तमान काल में ग्रह-तारकों की मध्यवर्ती दूरी बढ़ी है और भविष्य में उसके और भी बढ़ते जाने की प्रक्रिया को देखते हुए शोधकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्ड का अभी विकास-बचपन चल रहा है। उसे परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव करने, वृद्ध होने तथा पुनर्जन्म का चोला बदलने में अभी अकल्पनीय देरी है। यह समूचा प्रतिपादन इन दिनों 'हथल सिद्धान्त' के नाम से विख्यात है।

अपना सूर्य जिस नीहारिका का परिभ्रमण कर रहा है, उसका नाम 'मन्दाकिनी' और व्यास प्रायः चार लाख प्रकाशवर्ष है। सूर्य इन दिनों दो लाख किलोमीटर प्रति घण्टे की चाल से चल रहा है। अपनी नीहारिका का एक पूरा चक्कर लगाने में उसे २५ करोड़ प्रकाश वर्ष लगते हैं। अनुमान है कि अपने सूर्य को अपनी नीहारिका का दस परिक्रमा लगाते-लगाते बुढ़ापा आ जायेगा और एक-दो परिक्रमा और कर लेने के उपरान्त उसका मरण हो जायेगा। अपनी नीहारिका अब तक दस हजार तारा गुच्छकों को जन्म दे चुकी। प्रत्येक तारा गुच्छक में कम से कम एक सौ सूर्य हैं। इस प्रकार इसके पुत्र सूर्यों की संख्या दस लाख को पार कर गई। जिस प्रकार अपने सूर्य के दो ग्रह और ३२ उपग्रह हैं, उसी प्रकार इन दस लाख सूर्यों के भी बाल-बच्चे होंगे। यह सारा परिवार बेटे—तारा गुच्छकों, पोते सूर्यों, परपोते ग्रह-पिण्ड और उनके भी पुत्रगण उपग्रहों समेत अरबों की संख्या में सदस्यों का बन चुका है। इतने पर भी अपनी नीहारिका की न तो जवानी समाप्त हुई है और न उसके प्रजनन कृत्य में कोई कमी आयी है। उसके अपने निजी पुत्र तारा गुक्षक अभी और जन्मेंगे। वे उसके पेट में कुलबुला रहे हैं और भ्रूण की तरह पक रहे हैं। समयानुसार प्रसव होते रहेंगे और यह परिवार अभी अकल्पनीय काल तक इसी प्रकार बढ़ता रहेगा।

ऊपर की पंक्तियों में मात्र अपनी एक नीहारिका की चर्चा हुई है। उसकी सदस्य संख्या और विस्तार परिधि की समग्र कल्पना कर सकना ही मानवी मस्तिष्क जैसे तुच्छ घटकों के लिए कठिन है, फिर ऐसी-ऐसी जो अन्य सहस्रों नीहारिकाएँ और भी हैं, उन सबके अपने-अपने परिवार और विस्तार मिला लेने पर ब्रह्माण्ड विस्तार की परिकल्पना और भी अधिक कठिन हो जाती है। यहाँ इतना भर बताया जा रहा है कि सृष्टि के आदि का मूल द्रव्य किस प्रकार प्रगति की आकांक्षा में प्रेरित होकर अग्रगमन के लिए निकल पड़ा और उसका गतिमान किस प्रकार निरन्तर बढ़ता ही चला आया है।

ब्रह्माण्ड भी कभी बूढ़ा होगा और मरेगा भी। पर साथ ही परम्परा को देखते हुए यह भी निश्चय है कि वह महाप्रलय-महाविश्राम की अवधि लम्बी न होगी। फैला हुआ ब्रह्माण्ड जब [illegible] तो अपने विस्तार को समेट कर आरम्भ काल की तरह [illegible] हो जायेगा और नींद पूरी होते ही फिर विस्फोट-विस्तार की विगत एवं अभ्यस्त परम्परा को उसी प्रकार फिर चालू कर देगा, जिस प्रकार मनुष्य नींद लेने के बाद नये दिन से फिर पुराना ढर्रा अपनाता है अथवा नया जन्म लेकर पूर्व जन्म की पुनरावृत्ति करता है।

शक्ति सागर की प्रचण्ड लहरें ब्रह्माण्ड किरणें

हमारे ज्ञान का ८३ प्रतिशत भाग नेत्रों के माध्यम से आकर मस्तिष्क को प्रभावित करता है । इस दृष्टि दर्शन का माध्यम है, प्रकाश । प्रकाश के आधार पर ही नेत्र देख पाते हैं । नेत्र स्वस्थ होते हुए भी—प्रकाश के अभाव में कुछ देख नहीं सकते । अँधेरे में उनकी क्षमता कुण्ठित हो जाती है । साथ ही ज्ञान का द्वार भी बन्द हो जाता है । अध्यात्म परिभाषा में ज्ञान और प्रकाश एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । प्रकाश-दर्शन का जहाँ भी तात्विक विवेचना में उल्लेख हुआ होगा, वहाँ रोशनी नहीं वरन् ज्ञान गरिमा की ही चर्चा रही होगी ।

जैसे-जैसे हमारे ज्ञान का विस्तार हो रहा है, उसी प्रकार भौतिक प्रकाश की विशालता के भी पर्त खुलते चले जा रहे हैं । हमारे नेत्र सात रंग की प्रख्यात प्रकाश किरणों को ही देख पाते हैं, पर अब विदित हो चला है कि नेत्रों की पकड़ से बाहर भी उसकी विशालता दृश्यमान ज्योति की तुलना में अत्यधिक विस्तृत है । ब्रह्माण्ड किरणें, गामा किरणें, एक्स किरणें, पराबैंगनी प्रकाश, ऊष्मा तरंगें, रेडियो तरंगें, प्रकाश परिवार के अन्तर्गत ही आती हैं ।

इन सब में शक्तिशाली और अद्‌भुत हैं—ब्रह्माण्ड किरणें । अनन्त आकाश से विद्युत चुम्बकीय विकिरणों की इस धरती पर निरन्तर वैसी ही वर्षा होती रहती है, जैसे वर्षा ऋतु में बादलों से पानी या दिन में सूर्य से ऊष्मा की वर्षा होती है । कुछ समय पहले गामा किरणें शक्ति की दृष्टि से अग्रणी मानी जाती थीं, पर अब विज्ञान जगत का ध्यान 'ब्रह्माण्ड किरणों' पर केन्द्रित है । शक्ति स्रोत के रूप में उन्हें ही अब सर्वोपरि माना जाता है । इन इन्द्रियातीत किरणों को विज्ञान की भाषा में कॉस्मिक रेज कहते हैं ।

धरती से ३० किलोमीटर ऊपर जाने पर वायुमण्डल में कुछ विशिष्ट परमाणुओं की वर्षा होती हुई अनुभव में आती है । अन्वेषण बताता है कि ये कण परमाणु नहीं वरन् उसके 'नंगे नाभिक' हैं । परमाणु तो एक सौर परिवार की तरह है जिसके मध्य 'नाभिक' रहता है और चारों ओर परिक्रमा करने वाले इलेक्ट्रॉन गतिशील रहते हैं किन्तु ब्रह्माण्ड विकिरण में इलेक्ट्रॉनों से रहित नंगे नाभिक ही होते हैं, इनमें से कम शक्ति वाले तो पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति से खिंचकर ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर चले जाते हैं और शेष शक्तिशाली कण पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं । तब वायुमण्डल के परमाणु नाभिकों और ब्रह्माण्ड किरण नाभिकों में टक्कर होती है । इस संगम समन्वय से नयी जाति के कणों का जन्म होता है । इन्हें मेसोन हाईपरोन, ऋण न्यूक्तियोन आदि नामों से जाना जाता है । इतने पर भी इन ब्रह्माण्ड किरणों का अस्तित्व समाप्त नहीं होता । ये वायु नाभिकों से टकराती हुई नये नाभिकों को जन्म देती हुई पृथ्वी तक चली आती हैं । वहाँ उनका वह रूप नहीं रहता जो वायुमण्डल में प्रवेश करने से पूर्व था । यहाँ वे बहुत कुछ बदलती हुई स्थिति में होती हैं । पृथ्वी पर अब तक ३० से भी अधिक परमाणु तत्वों की खोज की जा चुकी है । इन्हें विनिर्मित, विकसित और गतिशील बनाने में जिस सिक्रोट्रोन तत्व को श्रेय है, वह ब्रह्माण्ड किरणों की ही प्रतिकृति है । इस एक शब्द में अनन्त शक्ति का उद्‌गम कहना चाहिए जेनेवा में स्थापित प्रोट्रॉन—सिक्रोट्रॉन २८ अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट शक्ति के 'बीम' पैदा कर सकता है । ब्रह्माण्ड विकिरण के कुछ कण तो इससे भी १० लाख गुने अधिक शक्तिशाली हैं ।

यह ब्रह्माण्ड किरणें कहाँ से आती हैं, इनका उद्‌गम स्रोत कहाँ है ? इसका अन्वेषण करते हुए यह पता लगा है कि इस निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त कोटि-कोटि तारागणों में कुछ बूढ़े होकर मरते रहते हैं और उनके मरण से नये तारकों का जन्म होता है । यह नये तारे जब अस्तित्व में आते हैं, तब उनकी उग्र ऊर्जा जिस परिधि में बिखरती है, वहाँ उसे ब्रह्माण्ड किरणों के विकिरण के रूप में अनुभव किया जाता है । वृद्ध तारकों के मरण अवसर पर अति उच्च तापमान के कारण हीलियम, हाइड्रोजन आदि तत्व की ज्वलन प्रक्रिया से भयंकर विस्फोट होता है और वह तारा टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाता है । इस विस्फोट की आभा लगभग एक महीने तक आकाश में दृश्यमान रहती है । यह विस्फोटजन्य पदार्थ नये ढंग से, एक नये तारे के रूप में प्रकट होता है—इसे विज्ञानी 'सुपर नोवा' कहते हैं । यह अभिनव तारक ही ब्रह्माण्ड किरणों का उद्‌गम स्रोत होता है । वर्तमान अभिनव तारक का नामकरण 'क्रैब नेबुला' के नाम से प्रख्यात है । तारों की मरण-जन्म प्रक्रिया प्रायः ३०० वर्षों में एक बार देखने को मिलती है । वर्तमान अभिनव तारक का ज्योति पुंज हमसे लगभग ३००० प्रकाशवर्ष दूर है । इसका व्यास ५ प्रकाशवर्ष है ।

एक सेकण्ड में प्रकाश की गति १,८६,००० मील है । एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूरी चल सकता है, उसे प्रकाशवर्ष कहते हैं । इस गणना के आधार पर 'क्रैब नेबुला' नामक नवीन तारे की दूरी और परिधि का आश्चर्यजनक विस्तार कल्पना क्षेत्र में बिठाया जा सकता है ।

अपनी आकाश-गंगा में मात्र तारे ही भरे नहीं हैं, उसके मध्यावकाश में विरल गैस तथा धूल से बने हुए ऐसे विशालकाय बादल भी हैं, जो निरन्तर विचरण करते रहते हैं । 'क्रैब नेबुला' से निकली हुई ब्रह्माण्ड किरणें कुछ तो सीधी पृथ्वी पर आती हैं, कुछ इन बादलों से टकरा कर बिखर जाती हैं और उनका धरती पर अवतरण सभी दिशाओं में होने लगता है ।

धरती के विभिन्न प्रयोजनों में संलग्न विभिन्न प्रक्रियाओं का सम्पन्न करने में तत्पर—महाशक्ति, धरती की अपनी उपज नहीं है, वह अन्यत्र से आती है । धरती उसका उपयोग भर करती है । उपयोग भी इतना कम जिसे पर्वत की तुलना में राई जितना समझा जा सके । शेष शक्ति तो ऐसे ही बिखरती, अस्त-व्यस्त होती हुई, फिर किसी अज्ञात दिशा में ही चली जाती है ।

शक्ति की तनिक-सी उपलब्धि होने पर हम मदोन्मत्त हो जाते हैं । अच्छा स्वास्थ्य, चमकता सा रंग-रूप, तेज मस्तिष्क, मुट्ठी भर पैसा, तनिक-सी सत्ता प्रशंसा पाकर हम अहंकार में इठे-इठे फिरते हैं और समझते हैं कि न जाने क्या पा लिया और क्या बन गए । यह अहंवृत्ति अपने आपको और विराट विश्व के स्वरूप को न जानने के कारण है ।

शक्ति के उद्गम पर यदि हम विचार करें तो पृथ्वी की समस्त हलचलों को प्रेरित करने वाली अन्तरिक्ष से अवतरित होने वाली ऊष्मा पर ध्यान जाता है। प्रकाश की महत्ता को समझने का प्रयत्न करते हुए उससे भी बड़ी शक्ति धारा सामने आ जाती है। ब्रह्माण्ड किरणें कितनी अद्‌भुत, कितनी भयंकर और कितनी उग्र हैं, इसकी थोड़ी-सी झाँकी मिलते ही लगता है, इस धरती को घेरे हुए महाशक्ति का समुद्र लहरा रहा है और उसमें हम मानव प्राणी मच्छरों की तरह अपना जीवन-यापन कर रहे हैं।

शक्तिमान की महाशक्ति की तनिक-सी झाँकी ब्रह्माण्ड किरणों में होती है। उनकी भी प्रेरक दूसरी सत्ता मौजूद है। धरती उसी शक्ति के हाथों का एक नन्हा-सा खिलौना है और हम सब हैं, उस खिलौने से चिपके हुए रजकण। अपनी तुच्छ उपलब्धियों पर अहंकार करना वस्तुतः शक्ति के विराट् स्वरूप को न समझने के कारण ही होता है। यथार्थता को यदि समझ सकें तो अपने नगण्य से अस्तित्व को समझें और विनयावनत होकर रहें।

संगठम और सहयोग पर सृष्टि-व्यवस्था टिकी है

परमाणु के बारे में पूर्ण मान्यता यह थी कि वे एकाकी और अपने आप में पूर्ण हैं। पर पीछे पता चला कि परमाणु भी एक परिवार सत्ता की तरह है और उसके साथ भी एक के भीतर अनेक पर्तें जुड़ी हुई हैं।

सन् १८०३ में जॉन डॉल्टन ने परमाणुवाद के सिद्धान्त को जन्म दिया। उनका कहना था कि "प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्म कणों से मिलकर बना है। परमाणु अविभाज्य है और उसकी क्रिया से विभाजित नहीं हो सकता। सारे परमाणु आकार, रूप, भार आदि में समान होते हैं लेकिन अलग-अलग तत्वों के परमाणुओं के गुण, आकार, रूप, मात्रा आदि अलग-अलग होते हैं। जो दो परमाणु मिलते हैं तो वे पूर्ण संख्या में मिलते हैं, खण्डों में नहीं। परमाणु के खण्ड नहीं होते। परमाणु न उत्पन्न किए जा सकते हैं और न वे नष्ट होते हैं।"

डॉल्टन के परमाणु सिद्धान्त अर्वाचीन शोधों ने बहुत अंशों में झुठला दिए हैं। डॉल्टन की कल्पना थी कि परमाणु विभाजित नहीं हो सकते परन्तु अब द्रव्य को परमाणुओं से भी सूक्ष्म कणों से बना हुआ ज्ञात किया गया है। परमाणु धन और ऋण विद्युत कणों से बने होते हैं जिन्हें प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन कहते हैं। अतः परमाणु इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन आदि में विभक्त हो सकते हैं। यह भी आवश्यक नहीं कि किसी तत्व के समस्त परमाणु समान हों और यह भी आवश्यक नहीं कि दो विभिन्न तत्वों के परमाणु भिन्न-भिन्न ही हों, वे समान भी हो सकते हैं।

रेडियम और उसकी किरणों को आरम्भ में स्व-निर्भर माना गया था, पर अब उसके अन्तर्गत भेद-प्रभेदों की पर्तें स्पष्ट होती चली जा रही हैं। आज की रेडियम सम्बन्धी मान्यता में उसके तीन विभाजन हैं—(१) अल्फा, (२) बीटा, (३) गामा। किरणों की त्रिविधि प्रकृति में रेडियम विभक्त है। उनकी अपनी-अपनी विशेषता और क्षमता है, फिर भी वे तीनों परस्पर मिली-जुली ही रहती हैं और उनका समन्वय ही रेडियम का समग्र अस्तित्व विनिर्मित करता है।

धातु कण और प्राणियों के मूल उत्पाद तत्व भी अब इस रूप में देखे समझे जाने लगे हैं कि वे न केवल जीवन्त ही हैं वरन् परस्पर सहयोग भी करते हैं और मिल-जुलकर एक अस्तित्व का परिचय देते हैं। पदार्थों के समस्त रूपों में धातुओं के कण ही सबसे भारी होते हैं। तब भी उनमें जीवन विद्यमान है। भारतीय विज्ञानवेत्ता प्रो. जे. सी. बोस ने रायल इन्स्टीट्यूशन के सामने यह प्रमाणित किया था कि माँसपेशियों की तरह ही धातुओं में भी हल्के किस्म का जीवन विद्यमान है। उन्होंने विभिन्न वनस्पतियों में जीवन ही नहीं संवदेना भी सिद्ध की और प्रमाणित किया कि मिट्टी-पत्थर भी निर्जीव नहीं हैं। उर्वरा भूमि तो अनेक प्रकार के बैक्टीरियों जैसे सूक्ष्म कृमियों को जन्म देती रहती हैं और उनका पोषण करती हैं, इन्हीं का अग्रिम विकास धरती पर उगी वनस्पतियों के रूप में दिखायी देता है।

रसायन क्षेत्र पर दृष्टिपात करें तो भी यही संगठन और सहयोग का, परस्पर मिलन और समन्वय का सिद्धान्त मूर्तिमान होता दीखता है।

दो तत्वों का सम्मिश्रण ऐसा भी हो सकता है जिसमें वे परस्पर पूरी तरह आत्मसात हो जायें और अपना-अपना अस्तित्व खोकर एक नये यौगिक के रूप में विकसित होने लगें।

यथा—मैग्नीशियम को हवा में जलाने से सफेद राख बनती है। इस राख को 'यौगिक' कह सकते हैं क्योंकि इसमें ऑक्सीजन और मैग्नीशियम का सम्मिश्रण पाया जाता है। इसी प्रकार पानी भी दो तत्वों से मिलकर बनता है, उसमें हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का सम्मिश्रण है। कोयले को जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड बनता है, वह भी एक यौगिक है।

रासायनिक प्रीति उसे कहते हैं, जिसमें दो पदार्थ मिलकर एक रस हो जाते हैं। यह भी एक यौगिक प्रक्रिया ही है। दो के मिलने से तीसरी वस्तु बनने की यह भी एक प्रक्रिया है।

यथा—लोहा और गन्धक गर्म करने पर मिल जाते हैं और यौगिक बनाते हैं। गन्धक और पारा मिला देने से भी ऐसा ही मिश्रण होता है। यह मिलन कई प्रकार का होता है। सोडियम के टुकड़े को पानी में डालने पर दोनों के कणों में पारस्परिक मिलन होता है और उससे हाइड्रोजन गैस बनती है। नमक के घोल और सिल्वर नाइट्रेट का घोल मिलाने से सिल्वर क्लोराइड बनता है। ताँबा और नाइट्रिक एसिड मिलाने से ताम्र नाइट्रेट बनना आदि।

मिश्रण उसे कहते हैं जिसमें कुछ पदार्थ आपस में मिलकर ऐसे दीखते हैं मानो वे परस्पर घुल-मिल गए पर वस्तुतः ऐसा नहीं होता, उनमें पृथकता बनी रहती है। कोई अपना अस्तित्व नहीं खोता और न उनके मिलने से कोई तीसरी चीज बनती है। आवश्यकतानुसार उन्हें पृथक् भी किया जा सकता है। बाहर से एकता भीतर से पृथकता की यह मिश्रण पद्धति रसायन क्षेत्र में आसानी से देखी जा सकती है।

नमक, मिट्टी और लोहे के बुरादे को मिलाकर एक मिश्रण बनाया जा सकता है। खड़िया, कोयला, शक्कर आदि मिलाकर एक चीज बन सकती है। एल्कोहल, जल और नारियल का तेल मिलाकर एक नई जैसी चीज का अस्तित्व सामने आता है।

गन्धक, शोरा और कोयला मिलाने से बारूद बनती है । यह मिश्रण प्रयोगशाला में आसानी से पृथक् किए जा सकते हैं ।

जीव रसायन (डी. एन. ए.) भी न्यूक्लिओटाइड वर्ग के चार अन्य रसायनों का सम्मिश्रण है । इनके नाम हैं—(१) एडिनिन, (२) गुआनिन, (३) लाइमीन, (४) साइटोसीन । न्यूक्लिक एसिड के विभिन्न खण्डों को जो विभिन्न गुणों को निर्धारित करते हैं, जीन कहते हैं । रासायनिक दृष्टि से प्रत्येक 'जीन' न्यूक्लिक एसिड का बना होता है ।

गैसों की विधि व्यवस्था को गौर से देखा जाय तो उनमें से पारस्परिक सहयोग के कारण उत्पन्न होने वाली क्षमता और विशेषता का परिचय पग-पग पर प्राप्त होता है । नाइट्रोजन जीवधारियों और पौधों के शरीर की वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्व है । यह वायुमण्डल में प्रचुर मात्रा में विद्यमान भी है पर आश्चर्य इस बात का है कि शरीर या पौधे हवा के नाइट्रोजन को सीधा ग्रहण नहीं कर सकते ।

वायुमण्डल का नाइट्रोजन विद्युत प्रभाव से ऑक्सीजन से मिलकर नाइट्रिक ऑक्साइड बनाता है । जो मेघ जल से मिलकर नाइट्रिक अम्ल बनाता है और पृथ्वी तल पर गिरकर धरती के अन्य लवणों से क्रियान्वित होकर नाइट्रेट में परिणत होती है । इतनी लम्बी प्रक्रिया में से गुजरने के बाद तब कहीं नाइट्रोजन इस योग्य बनती है कि उसे प्राणियों के शरीर और पौधे सोखकर आत्मसात कर सकें ।

पौधों के नाइट्रेट लवणों में प्रोटीन बनाते हैं । वनस्पति, उसकी पत्ती, फल-फूल खाकर उसके उस तत्व को प्राणी अपने शरीर में ग्रहण करते हैं । जानवर मल और मूत्र के द्वारा बहुत-सा नाइट्रोजन धरती को लौटा देते हैं । जो उनके शरीर में बचा रहता है वह मरने के बाद सड़ने या जलने पर फिर लौटकर धरती को या वायुमण्डल को मिल जाता है । इस प्रकार वायुमण्डल का नाइट्रोजन जल, वनस्पति, प्राणी, धरती और फिर वायुमण्डल में भ्रमण करके एक सुव्यवस्थित चक्र की तरह घूमता रहता है ।

आकाश स्थित नाइट्रोजन वायु का बादल बिजली की सहायता से वर्षा के साथ खाद बनकर धरती पर आना, पृथ्वी के संयोग से उसका वनस्पति के रूप में उगना, वनस्पतियों का प्राणियों द्वारा भक्षण किया जाना और उसका प्रोट्रॉन जैसे उपयोगी पदार्थों में परिवर्तित होना । मल-मूत्र द्वारा उसका फिर धरती पर आना, वस्तुओं की सड़न से उसका फिर आकाश में लौटना, यह एक ऐसा चक्र है जो निरन्तर चलता रहता है, इसे जीवनचक्र भी कह सकते हैं । इसे धरती पर सजीवता बनाये रखने में नाइट्रोजन की महान् भूमिका भी कह सकते हैं ।

इसके अतिरिक्त पौधों को नाइट्रोजन प्राप्त होने का एक और भी तरीका है । सेम, बटला, मटर जैसी जाति के पौधों की पतली जड़ों में अत्यन्त सूक्ष्म बैक्टीरिया कीड़े रहते हैं, उनमें यह विशेषता है कि वे वायुमण्डल से सीधे नाइट्रोजन लेते हैं और उसे नाइट्रेट बना देते हैं । जिन्हें पौधे आसानी से आत्मसात कर लेते हैं ।

सहअस्तित्व का, परस्पर सहयोग का, यह अनोखा उदाहरण है । कीड़े पौधों को खुराक देते हैं और पौधे कीड़ों को । इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के लिए जीवन के साधन प्रदान करते रहते हैं ।

पृथ्वी में भी कुछ ऐसे सूक्ष्म कीड़े रहते हैं जो पदार्थों में से नाइट्रोजन बनाते हैं और वायुमण्डल से जितना अंश धरती निवासियों को प्राप्त होता है, उसे वापस करते रहते हैं ।

वायुमण्डल में नाइट्रोजन का बहुत बड़ा भण्डार है । धरती की सतह से दो सौ मील तक की ऊँचाई में जो वायु का आवरण है, उसमें ७८ प्रतिशत नाइट्रोजन गैस का भाग है । जिस तरह ऑक्सीजन श्वास नलिका में फेफड़े तक जाकर रक्त की अशुद्धि दूर कर उसे शुद्ध बनाती है । उसी तरह नाइट्रोजन मनुष्यों, पेड़-पौधों तथा अन्य जीवधारियों के भोजन की व्यवस्था जुटाती है । जैसे आटा ऐसे ही कच्चा नहीं खाया जा सकता, उसकी रोटी बनाकर खाने से काम चलता है । उसी तरह नाइट्रोजन सीधा भोजन नहीं है, उसके कारण प्रोटीन तथा दूसरे पदार्थ बनते हैं और वे हमारे आहार का प्रयोजन पूरा करके जीवन रक्षक ही सिद्ध होते हैं ।

चाहे जन-जीवन की बात हो, चाहे प्रकृतिगत जड़ समझे जाने वाले पदार्थों की, सबके मूल में एक ही प्रधान तथ्य काम करता दिखायी पड़ेगा—संगठन और सहयोग । जहाँ इस प्रक्रिया को जितना अधिक अपनाया जायेगा वहाँ उतना ही अधिक उत्कर्ष दिखायी पड़ेगा । जहाँ इसमें न्यूनता दिखायी पड़ेगी, वहीं अवांछनीय एवं असुखकर परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी ।

सारा संसार एक बिन्दु पर

एक बार कई देवता मिलकर प्रजापति ब्रह्मा जी के समीप जाकर बोले—"भगवन हम वह विद्या जानना चाहते हैं, जिसे जान लेने से 'अनुष्टुप' सिद्धि होती हो । किसी के मन की बात जान लें, कितनी ही दूर बैठे हुए अपने किसी प्रियजन के दर्शन कर लें, बातचीत कर लें, एक पल में कहीं भी जाकर वहाँ का सब कुछ देखकर लौट आने की विद्या सीखने के लिए आपके समीप हम देवगण उपस्थित हुए हैं ।"

ब्रह्मा जी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"आज मैं तुम्हें ६ नारसिंह चक्र का वर्णन करता हूँ, उसे जान लेने वाला ऐसी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है ।

चार 'अर' (रथ आदि पहियों में जो गोलाकार डंडे लगे रहते हैं उन्हें 'अर' कहते हैं) वाला आचक्र, दूसरा भी चार अर वाला सुचक्र, तीसरा आठ अरों वाला महाचक्र, पाँच-पाँच अरों वाले चौथे और पाँचवें सकललोक रक्षण तथा द्यूतचक्र और अन्तिम आठ अरों वाला असुरान्त चक्र और इनके आन्तर, माध्यम एवं बाह्य तीन वलय हैं, इनको जानने वाले को सभी लोक सिद्ध हो जाते हैं । सो हे देवगणों ! क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, शेष सभी शरीर के सब अंगों में रहने वाले इन चक्रों को जानने का प्रयत्न कीजिए ।"

इन सूत्रों में विज्ञान के वह सिद्धान्त और रहस्य छिपे पड़े हैं, जिन्हें यदि जान लिया जाय तो सचमुच मनुष्य उस सिद्धि-सम्पदा को प्राप्त कर सकता है, जिसका संकेत प्रजापति ब्रह्मा ने उपरोक्त पंक्तियों में किया है किन्तु इस युग का शिक्षित और विज्ञान मुखापेक्षी व्यक्ति इसे केवल वाग्मिता कहकर टाल जाते हैं या उसका उपहास उड़ाते हैं और कहते हैं कि ऐसा भी कहीं सम्भव है कि मनुष्य किसी व्यक्ति के मन की बात जान ले, दूरवर्ती लोगों से बातचीत कर ले, वस्तुओं का स्थानान्तरण और

दूरवर्ती सन्देश जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचे क्या कभी सम्भव हो सकते हैं ? क्या संसार इतने समीप आ सकता है ?.

टेलीफोन, रेडियो, बेतार-का-तार (वायरलेस) आदि की बात जाने दीजिए, इनकी शक्ति और सीमा बहुत थोड़ी है । टेलीविजन भी अभी बड़ा महँगा और यांत्रिक है । एक ऐसे आविष्कार की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं, जिससे उपर्युक्त पौराणिक आख्यान को शब्दशः सत्य सिद्ध करने में अब थोड़ा ही समय और शेष रहा है । जब इस यन्त्र का पूर्ण विकास हो जायेगा तो यह संसार इतने समीप आ जायेगा कि भारत और अमेरिका की दूरी ही नहीं, विश्व ब्रह्माण्ड ही सिमट कर एक बिन्दु पर आ जायेगा ।

ऐसी सम्भावना के प्रथम यन्त्र का नाम है 'टेल स्टार' । इसमें न तो कोई विध्वंसक है और न ही कोई ऐसा उपकरण जो अन्तरिक्ष यात्रा के काम आये । इन सबसे हटकर एक नया ही प्रयोग हुआ है, उसे विश्व-शान्ति और कल्याण के लिए अणु सत्ता के उपयोग की संज्ञा दी जा सकती है । उसमें ऐसी संचार और ग्रहण व्यवस्था रखी गई है, जिसकी सहायता से दुनिया के किसी भी भाग में बैठे मनुष्य को देखना, बातचीत करना आदि सम्भव हो जायेगा । अभी विशेष प्रग्रहण केन्द्रों (रिसीविंग स्टेशन्स) के माध्यम से ही यह व्यवस्था सम्भव होगी, पर टेल स्टार का विस्तृत अध्ययन एक दिन मनुष्य-मनुष्य के बीच बेतार-के-तार की तरह का सम्बन्ध सूत्र बन जायेगा, ऐसी सम्भावना उसके निर्माता डॉ. पियर्स ने स्वयं ही व्यक्त की है ।

'टेल स्टार' एक प्रकार का चक्र ही है, जिसमें भीतर तो वैज्ञानिक उपकरण हैं और बाहर सन्देश प्रेषित (ट्रांसमिट) और ग्रहण (रिसीव) करने वाली विचित्र प्रणाली का अंकन किया गया है । इसमें गहरे रंग की ३६०० वर्ग सौर सेल (वह बैटरियाँ जो सूर्य की ऊर्जा से चलती हैं) और भीतर पट्टियों की तरह की एण्टेना हैं । ऊपर वाली पट्टी ६३६० मेगासाइकिल्स पर सन्देश ग्रहण करती है, अर्थात् इस फ्रिक्वेंसी पर कहीं से भी प्रेषित समाचार या वृत्तचित्र को वह ग्रहण कर लेगी और निचली पट्टी ४१७० मेगासाइकिल्स से उस सन्देश या चित्र को सारी सृष्टि में फैला देगी । पिछले दिनों अन्तरिक्ष यात्री कूपर की यात्रा को अमेरिका के अतिरिक्त इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि कई देशों में दिखाया गया, वह टेल-स्टार की सहायता से ही था ।

'टेल स्टार' की तकनीकी (टेक्निकल) रचना मानव शरीर से कम आश्चर्यजनक नहीं है । जिस प्रकार हमारे शरीर में ७२ हजार नाड़ियों का जाल बिछा है और वह सब कुछ ऐसे शक्ति केन्द्रों (कोष या चक्रों) उपकेन्द्रों से सम्बद्ध है, जहाँ की शक्ति से, इन नाड़ियों के माध्यम से, बाह्य और अन्तर जगत् से सम्बन्ध और सामंजस्य स्थापित होता है । शरीर के एक स्थान की प्रतिक्रिया दूसरे अंगों पर होती है, वह इन नाड़ियों के माध्यम से होती है, उसे विशेष शक्ति कोषों की अस्तर अनुभूति (सेल्फ रियलाइजेशन) कह सकते हैं । उसी प्रकार टेल स्टार में भी हजारों ग्रहण और प्रेषण (रिसीविंग एण्ड ट्रान्समिसिंग) प्रणालियाँ रखी गई हैं, जिससे उन्हें विश्व के किसी भी भाग में सुना और देखा जा सके ।

टेल स्टार का कुल वजन १७० पौण्ड और व्यास केवल ३४ इंच है, जिस तरह एक बालक किसी पतंग को मंजे से आकाश में उड़ा लेता है, उसी प्रकार टेल स्टार को अन्तरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में स्थापित कर दिया जाता है । वहाँ से वह अपना काम प्रारम्भ कर देता है । अभी इसे केवल अमेरिका की बैल टेलीफोन प्रयोगशाला ने तैयार किया । उसे छोड़ने के लिए एण्डोवर नामक स्थान में एक विशाल एण्टोना निर्मित किया गया है । अभी केवल यूरोप में ही कुछ ऐसे केन्द्र स्थापित हुए हैं, जो इस संचार व्यवस्था का लाभ उठा रहे हैं पर वह दिन दूर नहीं जब इसकी सहायता से चन्द्रमा और शुक्र आदि ग्रहों में पहुँचे लोगों से भी बातचीत करने में सहायता मिलेगी ।

'टेल स्टार' की मुख्य भूमिका यह है कि वह धरती के प्राप्त संकेतों को दस अरब गुना शक्ति देकर बढ़ा देता है और फिर उस बढ़ी हुई शक्ति से उस सन्देश को धरती की ओर प्रेषित करता है । उपग्रह से संकेत भेजने की शक्ति ढाई वाट की है, जो पृथ्वी पर आने तक घटकर अरबों हिस्से के बराबर रह जाती है । इस कारण सामान्य स्तर पर उसे सुना जाना सम्भव नहीं होता, इसलिए एण्डोवर (स्थान का नाम) १७७ फुट ऊँचा एण्टेना (उपग्रह संचार केन्द्र) बनाया गया । यह संकेतों की आवाज को फिर बढ़ा देता है, जिससे सामान्य संचार व्यवस्था का कार्यक्रम चलने लगता है, अर्थात् एण्डोवर की फ्रिक्वन्सी पर यूरोप के (अभी) सभी देश अपने रेडियो और टेलिविजन सेटों पर सुन और देख लेते हैं । बाद में यह व्यवस्था सारे संसार के लिए उपलब्ध हो जायेगी ।

इस व्यवस्था पर भारी व्यय आता है । ३० लाख डालर की धनराशि केवल एक बार के प्रयोग में व्यय होती है । इतना व्यय हर बार उपग्रह भेजने पर उठाना पड़ता है । फिर वहाँ पृथ्वी में अनेक एण्टोना स्थापित करने का व्यय भी बहुत अधिक है । अमेरिका में १७७ फुट का विशाल एण्टोना बना है, उसका ३७० टन भार है और डिग्री के बीसवें भाग तक नियन्त्रण कर सकता है, का निर्माण व्यय कई करोड़ डालर तक बैठा है, इसलिए यह व्यवस्था सब के लिए सम्भव नहीं । इंग्लैण्ड में 'गूनहिली डाउन्स', फ्रांस में ब्रिटोनी और पश्चिमी जर्मनी में म्यूनिख से बाहर बिल्हेम में ही एण्टोना निर्मित होने की सम्भावनाएँ हैं, शेष देश तो अभी उसकी प्रारम्भिक जानकारी जुटाने में ही संलग्न हैं । सभी देशों में व्यवस्थाएँ हो जायेंगी तो एक महाद्वीप का दूसरे महाद्वीप से संचार का सीधा सम्बन्ध जुड़ जायेगा और तब अन्तरिक्ष यात्रियों के सन्देश, उनके चित्र आदि भी यहाँ उतने ही साफ देखे और सुने जा सकेंगे ।

११ जुलाई, १९६२ को पहला टेल स्टार आकाश में स्थापित किया गया । जब वह एण्डोवर की एण्टोना से उड़कर अपने नियत स्थान पर चक्कर लगाने लगा । २५ टन वजन और नकली रबर मिले डेक्रोन तन्तुओं से बने एण्डोवर एण्टीना ने आध घण्टे में ही सन्देश प्रणाली का श्रीगणेश किया । उधर ह्वाइट हाउस में अमेरिका के उपराष्ट्रपति टेलीफोन हाथ में लेकर खड़े थे । इधर फ्रैड कैपेल एण्डोवर से बोले—"आप जानते होंगे कि यह आवाज टेल स्टार उपग्रह द्वारा प्रसारित की जा रही है, आपको मेरी आवाज कैसी सुनाई दे रही है । उधर से उपराष्ट्रपति ने अभिवादन का उत्तर इन शब्दों में दिया—"मि. कैपेल, आपकी

आवाज बिल्कुल साफ सुनाई दे रही है ।" यह उद्घाटन था । इसके बाद लाखों अमेरिकियों ने सारे पेरिस को अपने टेलिविजनों में देखा । वहाँ की प्रत्येक वस्तु साफ ऐसे ही दिखायी दे रही थी, जैसे कोई आकाश में बैठकर विस्तृत भू-भाग का दृश्य देख रहा हो । पेरिस का संगीत, दृश्य और स्वर बिल्कुल स्पष्ट और साफ सुने गए । फिर इंग्लैण्ड का कार्यक्रम दिखाया गया । टेल स्टार से अन्तरिक्ष की अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलने के भी समाचार मिले हैं । अनुमान है कि यह टेल स्टार दो सौ वर्ष तक काम करता रहेगा ।

इस अनुसन्धान से सामान्य जनता को अभी लाभ भले ही न मिला हो पर लोग यह अनुभव कर रहे हैं कि ऐसी कोई सत्ता, जो टेल स्टार की तरह की सम्भावनाओं से परिपूर्ण है, मानव शरीर में हो सकती है क्या ? यदि हाँ, तो क्या उपनिषद का वह अंश जो ऊपर प्रजापति ने देवताओं को सुनाया, उसी का संकेत तो नहीं है । यदि हाँ, तो मनुष्य इस खर्चीली और जटिल यान्त्रिक प्रक्रिया में क्यों पड़े । अपने आन्तरिक 'टेल स्टारों' का ही विकास क्यों न किया जाय ?

वैज्ञानिक इस बात को मानते हैं कि यान्त्रिक संचार और दूरदर्शन (टेलिविजन) प्रणाली शरीर की संचार और दर्शन प्रणाली का नमूना है । वे यह भी मानते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में उठने वाले विचारों को भी एक नियत फ्रिक्वेंसी पर ग्रहण किया जा सकता है । पर उसके लिए भेजे जाने वाले सन्देशों की शक्ति टेल स्टार की तरह किसी अणु-शक्ति द्वारा बढ़ा दी जाय । उसी प्रकार ग्रहण करने वाले भी अपनी शक्ति को उतना बढ़ा लें कि वह हवा में तैरते हुए सन्देशों में से अपनी फ्रिक्वेंसी के सन्देश की शक्ति को बढ़ाकर ग्रहण कर लें । ऐसे चक्र, ऐसे संस्थान जो ३६०० बैटरियों की तरह उन विचारों को शक्ति दे सकें, शरीर में हैं । केवल उनके विकास की आवश्यकता है, इसकी पुष्टि वैज्ञानिक संचार-उपग्रह टेल स्टार से कर रहे हैं ।

जिस दिन यह अभ्यास मनुष्य पूरा कर लेगा उस दिन मनुष्य-मनुष्य तो क्या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक बिन्दु पर आ जायेगा । तब न कोई कष्ट होगा, न कोई अभाव, न किसी को प्रेम पीड़ा और न कोई अज्ञान, भले ही अभी इस तरह के आध्यात्मिक विकास में कुछ समय लगे ।

विज्ञान के लिए भारी शोध कार्य करने को पड़ा है

प्रकृति के अगणित रहस्यों में से मनुष्य के हाथ अभी थोड़े से ही लग पाये हैं । यहाँ तक कि जिस सूर्य ऊर्जा के मध्य हम जीवन-यापन करते हैं, उसका भी समुचित मात्रा में उपयोग सीख नहीं पाये हैं । अन्यथा ईंधन और ऊर्जा का जो संकट सामने खड़ा है उसका अब से बहुत पहले ही समाधान हो गया होता ।

भूत और भविष्य की घटनाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करना यों आज सर्वसाधारण के लिए सम्भव नहीं । कोई योगी सिद्ध पुरुष ही उस सन्दर्भ में कुछ बता सकते हैं । नर का यदि सुदूर नक्षत्रों तक पहुँच सकना किसी प्रकार सम्भव हो सके, तो वहाँ से वे सारे दृश्य प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं, जिन्हें हम आज चिर अतीत कहते हैं ।

१९७१ में रूस और अमेरिका ने मिलकर एक संस्था का गठन किया, जिसे "सोवियत अमेरिका काँग्रेस ऑन एक्स्ट्रा टेकिस्टेरियस लाइफ" के नाम से सम्बोधित किया जाता है । यह संस्था अमेरिका के 'ब्यूराकन' प्रदेश में गठित हुई ।

इस संस्था ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि आकाश-गंगा में ही पृथ्वी जैसी विकसित सभ्यता १ लाख आकाशीय पिण्डों में होने की सम्भावना है । इस सम्भावना की बात तय होने पर वैज्ञानिकों में यह जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता हुई, कि वहाँ के लोग कैसे रहते होंगे आदि । आकाशीय पिण्डों की अति दूरी को ध्यान में रखते हुए संचार माध्यम केवल 'रेडियो सिगनल' ही हो सकते हैं । ऐसा निश्चय होने के उपरान्त खगोल विद्या-विदों एवं अन्य वैज्ञानिकों ने सेटी (एस. ई. टी. ई.)—सर्च फॉर एक्स्ट्रा टेरिस्टेरियल इन्टेलीजेन्स नामक संस्था गठित की । कई वर्षों से आकाश में 'रेडियो सिगनल' भेजे जा रहे हैं और प्रत्येक आकाशीय पिण्ड की रेडियो एक्टीविटी मालूम करके उनका नक्शा बनाया जा रहा है । इस कार्य की जटिलता के बारे में सेटी के पायोनियर (अग्रगामी) डॉ. फ्रैन्क डी. ड्रेक कहते हैं—"यह कार्य उस सुई को ढूँढने के समान है जो विशाल घास के ढेर में खो गई है ।"

प्रसिद्ध डच भूगर्भ शास्त्री प्रो. सोल्को डब्ल्यू. ट्राम्प ने 'साइकिल फिजिक्स' पुस्तक में विभिन्न प्रयोग परीक्षण करके यह लिखा है कि पृथ्वी अगणित विशेषताओं और धाराओं से भरे-पूरे चुम्बकत्व से भरी-पूरी है । वैज्ञानिक उपलब्धियों में प्रकारान्तर से इसी क्षमता के स्रोतों को खोजा और प्रयोग में लाया गया है । इसका समर्थन (फ्रेन्च एटॉमिक एनर्जी कमीशन) के सदस्य 'इकोले नारमल' और अमेरिका के सुरक्षा-विभाग एवं अर्कन्सास विश्वविद्यालय के 'डॉ. जाबोज हारबलिक' ने भी किया है । डॉ. जाबोज 'अमेरिका सोसायटी ऑफ डायसर्स' के प्रमुख हैं ।

अन्य ग्रहों तारकों तक पहुँचने के लिए अभी तक न कोई वाहन ढूँढा जा सका और न किसी सुलभ मार्ग की जानकारी मिली है । किन्तु यदि पृथ्वी के निकटवर्ती किसी ब्लैक होल में प्रवेश किया जा सके और गन्तव्य लक्ष तथा उस बिवर का अन्त जाना जा सके तो बिना किसी परिश्रम के एक से दूसरे ब्लैक होल के रास्ते उन सुदूर नीहारिकाओं में पहुँचा जा सकता है । जिनको कि अभी तो पूरी कल्पना भी नहीं हो पायी है ।

अभी बारमूडा त्रिकोड के एक छोटे ब्लैक होल का पता चल पाया है जो वायुयानों और जलयानों को अपने उदर में ग्रास की तरह घसीट ले जाता है पर पृथ्वी भर में यह एक ही हो, ऐसी बात नहीं है । ध्रुव प्रदेश और समुद्रों के सुविस्तृत क्षेत्र में और भी कितने ही ऐसे ब्लैक होल हो सकते हैं, जिनका आदि-अन्त जाना जा सके तो, ब्रह्माण्ड यात्रा अति सरल हो सकती है ।

खगोल शास्त्रियों का कहना है कि यदि ब्लैक होल के शक्ति भण्डार का उपयोग किया जा सके तो ऊर्जा के लिए मुँहताज न होना पड़े । ब्लैक होल का शक्ति भण्डार अनन्त काल तक चलने वाला होता है, ऐसी मान्यता है ।

कोई एक विशालकाय तारा जब मृत्यु के सन्निकट पहुँचता है, तब उस दृश्य का अवलोकन करते हुए खगोलशास्त्रियों ने बताया कि उस अवधि में तारे का प्रकाश करोड़ों गुना बढ़ जाता है । यह इतना अधिक बढ़ता है, कि सम्पूर्ण तारा समूह का प्रकाश एक ओर, इस मृतप्रायः तारे का प्रकाश और विकिरण एक ओर ।

कई अरब वर्षों में एक तारे में जो प्रकाश शक्ति निःसृत होती है, मृत्यु के कुछ घण्टे पूर्व उतनी ही मात्रा में शक्ति व प्रकाश प्रवाहित हो जाती है । यदि अति विशालकाय तारे की मृत्यु का गहराई से अध्ययन किया जाय तो उसकी मृत्यु के साथ कभी-कभी एक ब्लैक होल का जन्म होता है । खगोलशास्त्रियों ने मृतप्रायः तारे की तुलना करते हुए बताया है कि जिस प्रकार ज्वलनशील पदार्थ या लकड़ी से निर्मित ४०-५० मंजिल का मकान जलते-जलते ही टूटकर गिरने लगता है और अन्त में बहुत छोटे रूप में शेष रह जाता है उसी प्रकार तारा भी जलते-जलते अपने करोड़ों गुने छोटो रूप में संकुचित हो जाता है ।

यदि कोई विराट् तारा जो सूर्य से १० गुना बड़ा हो, उसकी मृत्यु हो तो वह ब्लैक होल में परिवर्तित होता है । उस स्थिति में वह कितना संकुचित होता है इसे इस प्रकार समझा जा सकता है—गुरु पृथ्वी से १३ सौ गुना बड़ा है और सूर्य गुरु से १ हजार गुना बड़ा है तो १० सूर्य जितने आकार का तारा पृथ्वी से १३० लाख गुना बड़ा होगा । ब्लैक होल बनने के बाद यह विराट् तारा पृथ्वी पर स्थित किसी 'हवाई टापू' जितना रह जाता है । अपने स्वरूप से कितने अरबों गुना छोटा हो जाता है ।

ब्लैक होल दो प्रकार के होते है—(१) भंवरदार और (२) बिना भंवर वाले । जैसे नदियों में कई स्थानों पर गहरे पानी में भंवरे होती हैं, ठीक उसी प्रकार ब्लैक होल भी अपने पास जाने वाली किसी भी वस्तु को अपनी ओर खींच लेता है । इसी एक लक्षण द्वारा ब्लैक होल का अनुमान लगाया जा सकता है । क्योंकि यह प्रकाश भी सोख लेता है ।

हमारे 'मन्दाकिनी' तारा विश्व में ही ५० लाख से अधिक ब्लैक होल होने की सम्भावना है । एक बड़ा ब्लैक होल कन्या राशि में पाया गया है जिसका एम-८५ नाम है एवं पृथ्वी से ६ करोड़ प्रकाशवर्ष दूर है ।

प्रसिद्ध भौतिकविद् 'जान ए विलर' की मान्यता है कि एक ब्रह्माण्ड से दूसरे ब्रह्माण्ड में जाने के लिए गुप्त सुरंग मार्ग ब्लैक होल हो सकते हैं ।

कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी के अनुसन्धानकर्त्ता स्टीफन होडिंग के अनुसार ब्लैक होल में स्थल और समय का कोई बन्धन नहीं होता । ब्लैक होल के माध्यम से मनुष्य वर्तमान से कई लाखों वर्ष पूर्व और लाखों वर्ष आगे भी पहुँच सकता है । स्टीफन ने कहा है कि ब्लैक होल में कण और प्रति कण एक-दूसरे को नष्ट करते रहते हैं ।

जिस प्रकार ब्लैक होल प्रत्येक प्रकार के पदार्थ एवं प्रकाश किरण सोख लेता और कहीं कुछ दिखायी नहीं देता है, इसी ब्रह्माण्ड में खगोलविदों ने ऐसे स्थान पाये हैं, जहाँ पहले कुछ नहीं था, वहाँ तीव्र गति से प्रकाश एवं अनेक प्रकार से आयोनाइज कण पाये गए । ऐसे स्थानों को 'व्हाइट होल' नाम से जाना जाता है । खगोलशास्त्रियों की कल्पना है कि 'ब्लैक होल' और 'ह्वाइट होल' के बीच आपसी सम्बन्ध है । दोनों के माध्यम की 'वर्म होल' कहते हैं ।

ह्वाइट होल की खोज के बाद वैज्ञानिक अनुमान लगा रहे हैं कि संलग्न ह्वाइट होल और ब्लैक होल के माध्यम से किसी अन्य ब्रह्माण्ड में भी पहुँचा जा सकता है, क्या ? इस सन्दर्भ में वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि इन संलग्न ब्लैक और ह्वाइट होलों के माध्यम से किसी अन्य ब्रह्माण्ड में कुछ ही समय में पहुँच सकते हैं जबकि यदि सीधे मार्ग से चला जाय तो कई अरब वर्ष लग जायेंगे ।

खोज के ऐसे-ऐसे अनेक क्षेत्र विज्ञान के सामने पड़े हैं, पर उसे नक्षत्र युद्ध और परमाणु बम बनाने की वितृष्णा में चैन पड़े तब उन दिशाओं में कुछ सोच सकना सम्भव हो ।

परिवर्तन : सृष्टि की एक शाश्वत विधि व्यवस्था

"परिवर्तन के अतिरिक्त संसार में कुछ भी शाश्वत नहीं है", किसी विचारक के इस कथन की सत्यता को सर्वत्र परखा जा सकता है । हर क्षण संसार बदल रहा है, स्थिरता कहीं भी नहीं है । जिन्हें हम स्थिर मानते हैं, वे भी तीव्र गति से हलचल कर रहे हैं । नेत्रों का भ्रम उस गति को देखने में अवरोध खड़ा करता है । पैरों के नीचे पड़े मिट्टी के कण गतिहीन प्रतीत होते हैं, पर उनके सूक्ष्मतम घटकों को देखा जा सके तो प्रतीत होगा कि उनमें भी अत्यन्त तीव्र हलचल हो रही है । गति से रहित शरीर के आन्तरिक संस्थानों के क्रिया-कलाप कभी रुकते नहीं । हर क्षण लाखों कोशिकाएँ मरतीं हैं तथा लाखों नयी पैदा होकर उनका स्थान ले लेती हैं । प्रत्यक्ष नेत्रों को यह कहाँ दिखायी पड़ता है । गति एवं परिवर्तनों का मात्र स्थूल पक्ष ही नेत्रों को दिखायी पड़ता अथवा अनुभव में आता है । अधिक सूक्ष्म परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होते । पर इससे उस सच्चाई पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता कि सृष्टि के हर छोटे-बड़े घटक गतिशील हैं तथा उनमें निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं ।

पृथ्वी के स्वरूप एवं इतिहास की जानकारी प्राप्त करने वाले भू-भौतिकीविदों का मत है कि आज की तुलना में पृथ्वी की स्थिति पहले से भिन्न थी । पृथ्वी की उत्पत्ति के सन्दर्भ में संकुचन और प्रवाह के दो सिद्धान्त प्रमुख हैं । संकुचन सिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी आरम्भ में बहुत गर्म थी, फिर धीरे-धीरे ठण्डी होकर संकुचित हुई । इस संकुचन के फलस्वरूप महाद्वीपों का विस्थापन शुरू हुआ । उन विशेषज्ञों का अभिमत है कि किसी प्रागैतिहासिक युग में आस्ट्रेलिया, दक्षिण एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका महाद्वीप एक-दूसरे से जुड़े हुए थे, जो बाद में अलग-अलग हो गए ।

अमरीकी वैज्ञानिक डॉ. रॉबर्ट एस. दिएज तथा डॉ. सी. होल्डेन ने महाद्वीपों के तैरने की गति, उनके फिसलने की दिशा, उनकी वर्तमान स्थिति, समुद्र गर्भीय पर्वत श्रेणियों का विस्तार, चुम्बकीय जल क्षेत्रों की प्राचीन दिशाएँ तथा भूगर्भीय संरचना में समानताएँ आदि तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि अब से २५ करोड़ ५० लाख वर्ष पूर्व पर्मियन युग में सभी महाद्वीप एक-दूसरे से जुड़े हुए थे, सात में विभक्त न थे, मात्र एक महाद्वीप था । उसे तब पैजिया कहा जाता था । उस समय दक्षिण अमरीका अफ्रीका से सटा हुआ था और अमरीका का पूर्वी समुद्री तट उत्तरी अफ्रीका के भूखण्ड से चिपका हुआ था । आस्ट्रेलिया महाद्वीप अण्टार्कटिका का एक भाग था तथा भारत दक्षिण अफ्रीका एवं अण्टार्कटिका के बीच दबा हुआ था ।

होल्डेन के अनुसार यह महाद्वीप एक किनारे पर ६०° पश्चिम के देशान्तर से १२०° पूर्व देशान्तर तक अवस्थित था। उस समय तक पृथ्वी की आयु साढ़े चार लाख वर्ष हो चुकी थी। छोटे-छोटे पौधे तथा जीव-जन्तु अस्तित्व में आ चुके थे, पर 'पेंजिया' महाद्वीप ५० लाख वर्ष पूर्व ही कई खण्डों में विभाजित होने लगा। पहले वह दो भागों में बँटा—उत्तरी और दक्षिणी उपखण्डों में जो क्रमशः लारेशिया और गोंडवाना नाम से प्रख्यात हुआ। लारेशिया में उत्तरी अमेरिका तथा एशिया सम्मिलित थे तथा गोंडवाना-लैण्ड में दक्षिणी अमरीका और अण्टार्कटिका। लगभग १३ करोड़ वर्ष पूर्व वे दोनों विशाल भू-भाग भी छोटे उपखण्डों में विभाजित हो गए तथा छः करोड़ पचास लाख वर्ष पूर्व वे महाद्वीप धीरे-धीरे फिसलते हुए एक-दूसरे से अलग होते गए और अन्ततः आज की स्थिति में आ पहुँचे।

दोनों भू-भौतिकीविदों का मत है कि महाद्वीपों तथा महासागरों की स्थिति ठीक वैसी है जैसे पुरानी जमी हुई बर्फ पर नई बर्फ की पर्त का जमना। जब गर्मी पड़ती है, तो नई बर्फ की पर्त थोड़ी पिघलती है और पुरानी बर्फ की सतह पर फिसलने लगती है, जबकि पुरानी बर्फ की पर्त पहले की भाँति जमी रहती है। हमारी पृथ्वी के महाद्वीप तथा महासागर लगभग ८० किलोमीटर या उससे भी अधिक मोटे एक ठोस पदार्थ की पर्त पर अवस्थित थे। ठोस पदार्थ की वह पर्त लाखों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हुई है एवं पृथ्वी के गर्भ में तैरती अथवा फिसलती है तथा महाद्वीपों, महासागरों के फिसलने का कारण बनती है।

महाद्वीपों की गति एवं स्थानान्तरण से नये द्वीप एवं पर्वत भी बनते-मिटते रहते हैं। अमरीकी भूगर्भ- शास्त्री डॉ. जॉन एफ. वर्ड तथा जॉन एफ. डेवी के अनुसार फिसलने की प्रक्रिया में भारत उपमहाद्वीप का भूखण्ड एशिया महाद्वीप के भूखण्ड से टकराया, तो एक गहरी खाई बन गई। दोनों भूखण्ड एक-दूसरे को दबाते रहे, और उनके किनारे क्रमशः नीचे की ओर धँसते गए ऊपर का पदार्थ नीचे गर्भ क्रोड की तरफ चलता गया। अन्ततः जब दोनों टकराये तब उनका अपेक्षाकृत हल्का पदार्थ मुख्य भूखण्ड से अलग होकर ऊपर उठ गया और उसने बाद में हिमालय पर्वत जैसा आकार ग्रहण कर लिया। पर्वतों के निर्माण की यही प्राकृतिक विधि है।

बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान लखनऊ के पुरावनस्पति शास्त्री डॉ. आर. जे. लखनपाल एवं उनके सहयोगी डॉ. एस. गुलेरिया ने अपने अध्ययनों से निष्कर्ष निकाला है कि भारत के उत्तरी सिरे पर बिना पेड़-पौधे व भीषण ठण्ड वाले क्षेत्र लद्दाख की जलवायु पहले गर्म शीतोष्ण हुआ करती थी। यह लगभग डेढ़ करोड़ वर्ष पहले की बात है। लद्दाख के कुछ हिस्से से मिले हिमालयी पाम व गुलाब की प्रजाति के जीवावशेषों के अध्ययन के आधार पर उन्होंने उपर्युक्त निष्कर्ष निकाले हैं। खोज में यह बात भी सामने आयी है कि पिछले डेढ़ करोड़ वर्षों में हिमालय की ऊँचाई तीन हजार मीटर बढ़ गई है।

प्रख्यात वैज्ञानिक टेलर ने १९१० में बताया कि पृथ्वी की घूर्णन गति में परिवर्तन के फलस्वरूप महाद्वीपों का विस्थापन दो दिशाओं में हुआ। एक दोनों ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर और दूसरा अफ्रीका से पश्चिम की ओर। पहले प्रकार के विस्थापन से आल्पस, हिमालय, काकेशस आदि पर्वत बने तथा दूसरे प्रकार से राकी, ऐण्डीज पर्वत बन गए।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ब्लेकेट महोदय ने लगातार कई वर्षों तक ध्रुवों के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि महाद्वीपीय विस्थापन की प्रक्रिया चलती रहती है। उन्होंने यह भी बताया कि भू-चुम्बकत्व की दिशा में भी परिवर्तन होता रहता है। अनेकों बार पृथ्वी के उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव दक्षिण में तथा दक्षिणी उत्तरी में बदले हैं। जब ध्रुव कहलाते हैं, तो संसार की अन्य भौगोलिक परिस्थितियों में भी विशेष अन्तर आता है। ब्लेकेट महोदय का मत है कि लगभग सात करोड़ वर्ष पहले भारत भूमध्य रेखा के दक्षिण में था। अमरीका, अफ्रीका, यूरोप व भारत निरन्तर उत्तर की ओर खिसक रहे हैं। तीस करोड़ वर्ष पूर्व पेरिस भूमध्य रेखा पर था और यूरोप उसके समीप था। द्वीपों के खिसकने की दिशाओं में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं।

सन् १९६० में डॉ. हैरीहेस ने महाद्वीपों के खिसकने का एक नया हेसके प्लेट-टेक्टॉनिक सिद्धान्त को जन्म दिया। उनका कहना था कि महाद्वीपों के खिसकने का कारण है—पृथ्वी मैरोडियो ऐक्टिव तत्वों की उपस्थिति। उससे ही अत्यधिक ऊष्मा पैदा होती है, जो संवहन धाराओं को जन्म देती है। ये संवहन धाराएँ अपने प्रवाह में महाद्वीपों की स्थिति को भी प्रभावित करती हैं।

सोवियत विज्ञान अकादमी के भूभौतिकी संस्थान के विशेषज्ञ वैज्ञानिक विगत २५ वर्षों से पामीर की पीटर प्रथम तथा करातेगीन्स्की पर्वतमालाओं का अध्ययन कर रहे हैं। उनका मत है कि २५ साल में ये पर्वत मालाएँ एक-दूसरे के आधा मीटर और पास खिसक आयी हैं।

कौन महाद्वीप कब किधर खिसक जायेगा, इसकी सुनिश्चित भविष्यवाणी कर सकना तो असम्भव है, पर पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में विभिन्नता के आधार पर भू-भौतिकविदों के एक दल ने सम्भावना व्यक्त की है, कि निकट भविष्य में महाद्वीपों की स्थिति में परिवर्तन इस प्रकार होंगे—

अफ्रीका उत्तर की ओर खिसकेगा तथा यूरोप के निकट हो जायेगा तथा भूमध्य सागर या तो बहुत छोटा हो जायेगा अथवा समाप्त हो जायेगा। लॉस ऐन्जिल्स सहित कैलीफोर्निया का कुछ भाग उत्तर की ओर खिसकेगा तथा उत्तरी अमरीका से अलग हो जायेगा।

भारतीय विशेषज्ञ डॉ. चौधरी के अनुसार उत्तर प्रदेश और बिहार प्रति वर्ष पाँच सेमी. उत्तर की ओर खिसक रहे हैं। इस प्रक्रिया से एक समय ऐसा आयेगा जब ये दोनों प्रान्त हिमालय के नीचे होंगे। जर्मनी के ज्वालामुखी विशेषज्ञ 'हेरन ताजिफ' का कहना है कि अफ्रीका के इथीमोपिया राष्ट्र का कुछ अंश लाल सागर में डूब जायेगा जिसके बाद एक नया सागर बन जायेगा। दक्षिणी अमरीका के उत्तर में स्थित कैरेबियन सागर में नए छोटे-छोटे स्थल खण्ड बन जायेंगे, जैसे कि अभी उसके आस-पास सेन्ट लूसिया, जमाइका, प्यूटोरिया, डामिनिका आदि अनेक द्वीप हैं। इस प्रकार अनुमानतः सभी महाद्वीप १० सेन्टीमीटर प्रति वर्ष की गति से खिसक रहे हैं।

महाद्वीप ही नहीं, सृष्टि के कण-कण में हर क्षण परिवर्तन हो रहा है, स्थिरता कहीं नहीं है। करोड़ों जीव प्रकृति के गर्भ

में हर पल पैदा होते तथा करोड़ों मृत्यु की गोद में जा पहुँचते हैं। एक स्थिति लौटकर कभी नहीं आती। लगता भर है कि परिस्थितियों की पुनरावृत्ति हो रही है, वास्तविकता ऐसी है नहीं। संसार की जो स्थिति कल थी, वह आज नहीं है, कल उसका रूप दूसरा ही होगा। सतत् गति एवं अगणित परिवर्तनों ने संसार को एक स्थिर हालत में कभी भी नहीं रहने दिया है।

परिवर्तन के नियमों से मनुष्य भी बँधा है। एक हालत में न तो मनुष्य की शारीरिक स्थिति रहती है, और न ही प्रकृति की। जन्मा हुआ शिशु नित्य नए दौर से गुजरता तथा विकास की एक निश्चित मंजिल नित्य पूरी करता है। किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि से गुजरता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। शरीर में हुए परिवर्तनों के अनुरूप उसे अपने मनःस्थिति में भी परिवर्तन करना पड़ता है। जो मनःस्थिति बचपन की होती है, वह युवावस्था में नहीं होती। वृद्धावस्था में मन की प्रकृति बदल जाती है।

विचारों एवं मान्यताओं में भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। एक समय की उपयोगी तथा स्वस्थ मान्यताएँ दूसरे समय में अनुपयोगी हो जाती हैं, जरा-जीर्ण होकर अन्धविश्वास का रूप ले लेती हैं। विवेक के आधार पर उनका चयन न किया जाय तो हानिकारक ही सिद्ध होती हैं। ठीक इसी प्रकार अपना सोचना ही सही है, अपनी जानकारियाँ परिपूर्ण हैं। इस तरह का चिन्तन भी एकांगी है। विचारशीलता इस बात में सन्निहित है कि विवेक के आधार पर औचित्य को अपनाने के लिए सदा तैयार रहा जाय। परिवर्तनशील इस संसार में बदली परिस्थितियों के अनुरूप सामंजस्य बिठा लेना सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है जो परिवर्तनों को स्वीकार नही करते, अपनी मनःस्थिति को जड़वत् बनाये रहते हैं, वे पिछड़ेपन के अभिशाप से लदते एवं प्रगति के अवसर अपने हाथों गँवा बैठते हैं।

सुन्दर, अनुपम, सुन्दर : यह सृष्टि

परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, परमपिता आदि कई नामों से पुकारी जाने वाली एक अनादि शक्ति का प्रकाश और उसकी प्रेरणा से ही इस जगत को और जगत के पदार्थों को स्फुरण मिल रहा है। उसी के प्रभाव से सृष्टि के विभिन्न पदार्थों का ज्ञान, कार्य एवं सौन्दर्य प्रतिभासित होता है। वही अपने समग्र रूप में अवतीर्ण होता रहता और सत्य रूप में प्रतिष्ठित होता रहता है। साधक जब विराट् 'जगत' के रूप में परमात्मा का दर्शन करता है, उन्हीं की चेतना को सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा, तारागण आदि में प्रकाशित होते देखता है, तो उसे सत्य का दर्शन होता है, जगत और अध्यात्म का स्थूल और सूक्ष्म का, दृश्य और तत्व का जहाँ परिपूर्ण सामंजस्य होता है, वहीं सत्य की परिभाषा पूर्ण होती है और यह सत्य जब जीवन साधना का आधार बनता है तब जगत की प्रेरक और सर्जन शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। इसलिए शास्त्रकारों ने सत्य को ही जीवन का सहज दर्शन माना है। महर्षि विश्वामित्र ने कहा है—

"सत्येनार्क प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी।
सत्य व्यक्ति परोधर्मः स्वर्गे सत्ये प्रतिष्ठितिः॥"

अर्थात् सत्य से ही सूर्य तप रहा है, सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सबसे बड़ा धर्म है और सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है।

समग्र अध्यात्म दर्शन का मूल आधार सत्य है। पूर्व और पश्चिम जिस प्रकार एक ही अखण्ड क्षितिज में स्थित है, उसी प्रकार जगत् और अध्यात्म, दृश्य और अदृश्य सत्ता एक ही सत्य के दो पहलू हैं। उनमें से एक का भी त्याग करने पर सत्य के दर्शन असम्भव हैं। सत्य के साथ शिव और सुन्दर भी जुड़े हुए हैं। शिव अर्थात् आनन्द कल्याण और सुन्दर अर्थात् पुलक उत्पन्न करने वाली भावनात्मक विशेषता। जब जगत की समस्त घटनाओं को केवल बाह्य घटनाएँ समझकर उनका विश्लेषण किया जाता है तो उनसे कोई आनन्द नहीं मिलता। उस स्थिति में घटनाएँ और विश्लेषण केवल एक शुष्क मशीनी उपक्रम मात्र बन कर रह जाते हैं। पटरी पर रेल के समान, सड़क पर मोटर के समान, शिलाखण्डों पर नदी की धारा के समान मन मानस पर भी जगत की धारा बहती रहती है। चित्त पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाता और सब कुछ निर्जीव, नीरस, अरुचिकर परस्पर लगने लगता है लेकिन जीवन में नवीनता, सरसता और अहोभाव का समावेश कर लिया जाय, तो परमपिता परमात्मा की यह सृष्टि सुन्दर और सुन्दरतम प्रतीत होती है। परमात्मा ने सृष्टि के निर्माण में अपनी पूरी कलात्मकता का परिचय दिया है और इस सृष्टि को इतना सुन्दर बनाया है कि उसे रस भाव से देखा जाय तो यह उपवन असंख्य प्रकार के पुष्पों से महकता-पुलकता अनुभव होने लगे। रात को तारों भरे आकाश की ओर निहारें तो लगेगा कि परमात्मा ने आकाश में कितने सुन्दर टिमटिमाते हुए दिए जला दिए हैं, नीले आकाश की काली चादर में कैसे चमकते हुए मोती टांग दिए हैं।

वैज्ञानिकों ने जब शक्तिशाली दूरबीनों से आकाश की ओर देखा तो कवि हृदय विज्ञानवेत्ता और भी पुलक उठे। सामान्य दृष्टि से सभी तारे, ग्रह-नक्षत्र एक समान दिखायी देते हैं। लेकिन दूरबीनों से देखने पर पता चलता है कि आकाश में तरह-तरह के रंग-बिरंगे झाड़-फानूस टंगे हुए हैं। सामान्य दृष्टि से लोग केवल चन्द्रमा को ही देख पाये और चन्द्रमा को देखकर ही लोगों के हृदय इतने तरंगित हो गए कि उसकी सुन्दरता ने अनेक व्यक्तियों को कवि बना दिया। विश्व की तमाम भाषाओं में चन्द्रमा को लेकर, उसकी सुन्दरता पर जितनी कविताएँ लिखी गई हैं, उतनी कविताएँ कदाचित ही किसी विषय को लेकर लिखी गई हों। स्थूल दृष्टि से चन्द्रमा २१६० मील व्यास का एक बुझा हुआ आकाशीय गोला है। वहाँ की जमीन ऊबड़-खाबड़ छोटे-बड़े खड्डों और टेकरियों वाली है। लेकिन रात के समय जब तारों भरे आकाश में, पूर्णिमा के दिन सोलह कलाओं के साथ चमकता है, तो उसकी सुन्दरता देखते ही बनती है।

पृथ्वी के अतिरिक्त आकाश में और भी ग्रह हैं। उन ग्रहों की संख्या नौ बतायी जाती है। यह ग्रह अपने सौर-मण्डल के ही हैं। अपने सौर-मण्डल के अतिरिक्त आकाश में और भी लाखों-करोड़ों असंख्य सौर-मण्डल है, जिनका अपना-अपना परिवार है। स्थूल रूप में अपने सौर-मण्डल के ग्रह परिवार में ग्रहों की स्थिति संरचना चाहे जैसी हो परन्तु भारतीय मनीषियों ने उन्हें परमात्मा की अनुपम, अद्वितीय और सुन्दरतम कलाकृति

के रूप में जाना-माना है तथा प्रत्येक मांगलिक अवसर पर उसकी पूजा का विधान किया है । इस परम्परा का कुल मिलाकर इतना ही कारण है कि भारतीय मनीषा पदार्थों और वस्तुओं के स्थूल विश्लेषण की अपेक्षा जीवन की समग्रता और उसके आन्तरिक सौन्दर्य को अधिक महत्त्व देते रहे हैं । पिछले दिनों वैज्ञानिकों ने आन्तरिक अनुसंधान के लिए कई अन्तरिक्ष यान छोड़े । रूस ने स्पूतनिक-१ और २, लूनिक २ और ३, स्पूतनिक ३, वोस्टोक १, २, ३, ४, ५ और ६, लूनिक ४, ६, ७ और ८, ६ और १०, जोड़ ५, सीयूग २ व ३, जोड़ ६, प्रोटन, ४ आदि अन्तरिक्ष यान छोड़े । अमेरिका ने भी पायनियर, मीदास एक्स प्लोटर, मर्करी रेड स्टोन, मैरीनर, सिनक्रोम, रैंजर, जैमिनी, सर्वेयर, ओ. ए. एस., अपोलो आदि ने कई एक अन्तरिक्ष यान छोड़े । अन्तरिक्ष अभियान के इस क्रम में इन कार्यक्रमों को भारी सफलता मिली ।

इन यानों में से कुछ मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि के पास तक भी पहुँचे हैं । यानों द्वारा पृथ्वी पर सम्बन्धित ग्रहों के जो चित्र भेजे गए, उनसे ग्रहों की वास्तविक स्थिति का तो पता चलता है, पर सृष्टाकर्ता की अद्भुत कलाकारिता भी उनसे स्पष्ट होती है । हमारी पृथ्वी का तो केवल एक ही चन्द्रमा है किन्तु वरुण ग्रह के दो चन्द्रमा हैं । वहाँ के आकाश में ये दोनों चन्द्रमा उसी प्रकार चमकते हैं, जैसे हमारी पृथ्वी पर एक चन्द्रमा चमकता दिखायी देता है । इसी प्रकार यूरेनस ग्रह के पाँच चन्द्रमा हैं ।

५ मार्च १९७९ को अन्तरिक्ष अनुसंधान अभियान में भेजे गए वायजर १ ने बृहस्पति ग्रह से २ लाख ७७ हजार किमी. की दूरी से लगभग १५००० चित्र भेजे । स्मरणीय है कि यह ग्रह पृथ्वी से अधिकंतम ७२ करोड़ और न्यूनतम ६४ करोड़ किमी. दूर रहता है किन्तु यह आकार में पृथ्वी से १३१२ गुना बड़ा है । वायजर-१ ने बृहस्पति के जो चित्र भेजे, वे बहुत ही सुन्दर हैं । इन चित्रों की मदद से बृहस्पति ग्रह की संरचना, धरातल का स्वरूप, वातावरण रेडियोधर्मी विकिरण और रेडियो धर्मी तरंगों का बहाव तथा ग्रह के ऊपर व्याप्त गैस के बादलों और ग्रह के गुरुत्वाकर्षण व चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र को समझने में बड़ी सहायता मिलती है ।

वायजर-१ अन्तरिक्षयान द्वारा बृहस्पति ग्रह के ५ से १५ किलोमीटर और कहीं कहीं तो १ किलोमीटर के सुस्पष्ट चित्र प्राप्त हुए । इस ग्रह के पास छः घण्टे तक उड़ान भरने के बाद वायजर-१ अपने उड़ान मार्ग में आने वाले १३ उपग्रहों में से ५ उपग्रहों के पास से गुजरा जिनके नाम अमेस्थिया, पेरियासिस, गैनीमीड, आई. ओ. और कैलिस्ये हैं । बृहस्पति और उसके उपग्रहों का इतनी निकटता से अध्ययन करने का मौका वैज्ञानिकों को पहली बार मिला और इनके अध्ययनों से अनेक तथ्यों का पता चला है । उदाहरण के लिए कैलिस्ये नामक उपग्रह इतना ठण्डा है कि उस पर ऊपर की ओर हमेशा बर्फ उठती रहती है । अन्तरिक्षयान ने उसके जो चित्र भेजे उन्हें देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे किसी ने सुन्दर मनोहारी गेंद को मुलायम रेशमी गुच्छों से लपेट दिया हो । बृहस्पति का एक उपग्रह आई. ओ. पृथ्वी के चन्द्रमा जितना बड़ा है । इस पर बृहस्पति ग्रह के विकिरण निरन्तर आते रहते हैं । लेकिन इसके बावजूद भी उसके धरातल में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है । यह ग्रह नारंगी और लाल रंग का है । बृहस्पति ग्रह का लगभग पूरा संसार रंग-बिरंगा है । कैलिस्ये गहरे मटमैले और पीछे धब्बों वाला तथा भूरा रंग लिए हुए है । वायजर-१ ने बृहस्पति के तमाम उपग्रहों की रंग-बिरंगी चित्र प्रतिकृतियाँ भेजी हैं ।

वायजर-१ उपग्रह बृहस्पति और उसके चन्द्रमाओं की जानकारी जुटाने के बाद शनि, नेपच्यून, यूरेनस और प्लूटो ग्रहों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए आगे अग्रसर हो गया । यह अन्तरिक्षयान शनि ग्रह के पास १३ नवम्बर, १९८० को पहुँचा पर इसके पूर्व ही पायनियर-११ गत सितम्बर १९७९ के प्रथम सप्ताह में शनि ग्रह के पास पहुँचा और वहाँ से इस अन्तरिक्षयान ने शनि के अनेक चित्र भेजे । बृहस्पति के बाद अपने सौर-मण्डल में शनि सबसे बड़ा ग्रह है । यह ग्रह 'पृथ्वी' से दूरबीनों की सहायता से चमकीले पीले तारे के समान दिखायी देता है । सूर्य के बाद क्रम से पड़ने वाले नौ ग्रहों में इसका स्थान छठवाँ है । यह सूर्य के चारों ओर १ अरब ४४ करोड़ की औसत दूरी पर चक्कर काटता है । शनि ग्रह पर यदि रहना पड़े तो वहाँ का एक वर्ष पृथ्वी के साढ़े अट्ठाईस वर्षों के बराबर होगा । पृथ्वी के हिसाब से वहाँ के दिन भी छोटे हैं, केवल ५ घण्टे ७ मिनट की रात और लगभग इतने ही समय का दिन अर्थात् पृथ्वी पर जितनी अवधि में हम ३६५ दिन-रात देख लेते हैं उतनी ही अवधि में शनि ग्रह पर लगभग ८७७ दिन-रात देखने पड़े । इसका कारण यह है कि शनि अपनी धुरी पर बहुत तेजी से घूमता है ।

अब तक तो शुक्र ग्रह को सुन्दरता का प्रतीक समझा जाता था किन्तु शनि ग्रह सम्भवतः सौर-मण्डल के सुन्दरतम ग्रहों में से है । इसके चारों ओर कई वलय हैं, जो पहनायी गई मालाओं के समान दिखायी देते हैं । यह वलय शनि ग्रह की सुन्दरता को चार चाँद लगा देते हैं । पृथ्वी से टेलिस्कोप द्वारा देखने पर यह वलह अद्भुत और अनुपम सुन्दर दिखायी देते हैं । इन्हें सर्वप्रथम वैज्ञानिक गैलीलियो ने सन् १६१० में देखा था । दिखायी पड़ने वाले तीन प्रमुख वलयों की कुल चौड़ाई लगभग ६५ हजार किलोमीटर है । वैज्ञानिक का विश्वास है कि ये वलय किसी भटके हुए चन्द्रमा से बने हैं, जो शनि के गुरुत्वाकर्षण से टुकड़े-टुकड़े हो गए । समझा जाता है कि शनि के धरातल से ये टुकड़े सूर्य के प्रकाश में इस तरह चमकते हुए दिखायी देते हैं, जैसे किसी ने असंख्यों बल्ब आकाश में टांग दिए हों । पायनियर यान द्वारा भेजे गए इन वलयों के चित्र से यह पता लगाया गया है कि ये वलय हिम से लिपटी चट्टानों या बर्फीली चट्टानों से बने हो सकते हैं ।

पायनियर-११ ने शनि ग्रह के जिस भाग के चित्र भेजे हैं, वह पृथ्वी पर से नहीं दिखायी देता । कारण कि पृथ्वी से शनि का एक ही पहलू देखा जा सकता है । इस यान द्वारा भेजे गए संकेतों के आधार पर शनि के सबसे बड़े उपग्रह टाइटन पर जीवन का अस्तित्व होने की सम्भावना आंकी गई है । यह उपग्रह बुध उपग्रह से भी बड़ा है । यह तथ्य उस अभियान के परिणामस्वरूप सामने आये हैं, जो मनुष्य ने पृथ्वी से दूर अन्तरिक्ष का अनुसंधान करने के लिए आरम्भ किया ।

पृथ्वी से बहुत दूर अन्तरिक्ष में अभियान कर मनुष्य ने अपने और अपनी दुनिया के एक नये ही स्वरूप का दर्शन किया है । यह दुनिया कितनी सुन्दर है ? यह सब देख जानकर उसके

निर्माण कर्त्ता, सृष्टा और नियामक की सूझ-बूझ कलाकारिता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जा सकता । अभी तक इस विराट ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में बहुत थोड़ा एक बटा हजारवां अंश भी जानने में नहीं आया है । पर यह सत्य है कि भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जिस विराट रूप का दर्शन कराया था, वैज्ञानिक अनुसंधानों से प्रकट होने वाले तथ्य उसके अनुरूप यथार्थ ही सिद्ध हो रहे हैं । इस विराट दर्शन के बाद ही अर्जुन के मुँह से हठात् यह शब्द निकल पड़े—"आप ही आदिदेव और अनादि काल से चले आ रहे पुराण पुरुष हैं । आप इस जगत के परम आश्रय हैं और आप ही परमधाम हैं । ये अनन्त रूप आप ही के द्वारा यह समाज विश्व विख्यात किया गया है । इस चराचर जगत को अहोभाव से देखने पर किसी भी व्यक्ति के मन में यह उद्‌गार फूट पड़ना स्वाभाविक है ।

यह ब्रह्माण्ड अनगढ़-अव्यवस्थित नहीं है

भौतिकीविद् श्री फ्रांसिस थॉमसन ने सृष्टि की संरचना पर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि संसार की समस्त वस्तुएँ एक अखण्ड सत्ता से जुड़ी हैं, चाहे वे बड़ी हों या छोटी, उनका परस्पर सम्बन्ध इतना सुसम्बद्ध है कि सभी को आश्चर्य होता है । उसी अखण्ड सत्ता के इशारे पर सृष्टि के सारे क्रिया-कलाप संचालित होते हैं । उसकी इच्छा के बिना मनुष्य तो एक पत्ता भी नहीं हिला सकता । यह कह कर श्री फ्रांसिस ने उस आप्त वचन का ही समर्थन किया है, जिसमें कहा गया है—'ईशावास्यमिदं सर्वं' ।

सचमुच यह सारा ब्रह्माण्ड उसके सारे घटक इतने सुनियोजित ढंग से अपना कार्य सम्पन्न कर रहे हैं, जिसे देखकर किसी न किसी नियामक सत्ता की कल्पना करनी ही पड़ती है । इसके बिना ब्रह्माण्ड की व्याख्या और उसकी निरन्तरता की विवेचना अधूरी जायेगी । यदि ब्रह्माण्ड के इन सुव्यवस्थित क्रिया-कलापों को कुछ क्षण के लिए संयोग मान भी लिया जाय तो भी यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की क्रमबद्धता की भली-भाँति व्याख्या नहीं कर पायेगा क्योंकि तब प्रश्न उठेगा कि आखिर यह संयोग कब तक और किस-किस के साथ ? ठीक भी है कि संयोग किसी एक ग्रह पिण्ड की कुछ घटनाओं को कुछ क्षण के लिए तो माना जा सकता है, पर सभी खगोलीय पिण्डों के पूरे जीवन काल में संयोग ही घटित होता रहता है, ऐसा मानना अविवेपूर्ण होगा । इन्हीं सब बातों को देखते हुए विद्वान लेखक वैज्ञानिक डॉ. कार्ल जुस्टांग ने एक स्थान पर लिखा है, कि "संसार का हर परमाणु एक निर्धारित नियम व्यवस्थानुसार कार्य करता है । यदि इसमें तनिक भी व्यक्तिक्रम और अनुशासनहीनता दृष्टिगोचर होने लगे, तो विराट ब्रह्माण्ड एक क्षण भी अपने वर्तमान अस्तित्व को नहीं रखा पाता तथा क्षण मात्र में विस्फोट से अनन्त प्रकृति में आग लग जाती है और यह संसार अग्नि की लपटों में घिरा एक तप्त पिण्ड भर होता । परन्तु देखने में ऐसा नहीं आता, अतः यह किसी चेतन समष्टि सत्ता का अस्तित्व में होना प्रामाणित करता है ।"

एक पर्यविक्षक की तरह यदि पूरे ब्रह्माण्ड के ग्रह पिण्डों की अपनी गतियों, उनके सतह की परिस्थितियों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों का सूक्ष्मता से अध्ययन करें, तो हमें ज्ञात होगा कि इनकी व्यक्तिगत विशिष्टताएँ सोद्देश्य हैं । उदाहरण के लिए सूर्य को लिया जा सकता है । यह हमारी पृथ्वी से १० करोड़ ६० लाख मील दूर है और आठ मिनट में अपनी सन्तुलित किरणें पृथ्वी तक पहुँचाता है, जिससे पृथ्वी के सभी जीवधारी अपना जीवन-क्रम चलाते रह पाते हैं । इस सुनिश्चित दूरी पर अवस्थित सूर्य की सतह पर जो तापमान है, उसका २२० करोड़वाँ भाग मात्र पृथ्वी की सतह पर जीवधारियों तक पहुँचता है । यहीं जीवों में प्राण स्पन्दन बनाये रखने, वनस्पतियों को हरा-भरा रहने के लिए उत्तरदायी है । यदि इस दूरी में तनिक भी न्यूनाधिकता होती है, तो यहाँ जीवन धारण योग्य वातावरण नहीं रह पाता । निकटता से गर्मी बढ़ती और दूरी से शीतलता आती है । दोनों ही स्थितियों में जीवन असम्भव होता । इस बात को अब वैज्ञानिक भी स्वीकारने लगे है कि पृथ्वी इस मामले में अन्य ग्रह-नक्षत्रों से कहीं अधिक सौभाग्यशाली है । उनका कहना है कि सूर्य से इसकी दूरी तथा कक्षा में स्थिति इतनी उपयुक्त है कि उससे प्राणियों का जन्म, ऋतु, अनुकूलता एवं शोभा-सुषमा का सृजन सम्भव हो सका । यह स्थिति अन्य ग्रहों की नहीं है । उनका तापमान या तो इतना अधिक है या इतना कम है कि उनमें जीवन-विकास हो ही नहीं सका । सम्भवतः यही कारण है कि अभी तक पृथ्वी पर ही जीवन है, अन्य ग्रहों पर नहीं, यह कहा जाता है ।

इतना ही नहीं सूर्य की ताप-ऊर्जा का जो अनुदान पृथ्वी को मिलता है, उसमें भी एक प्रकार का नियन्त्रण दिखायी पड़ता है । सूर्य आग का जलता हुआ एक गोला है । उसका बाह्य तापमान करीब ६००० डिग्री से.ग्रे. तथा भीतरी लगभग १५ करोड़ डिग्री से.ग्रे. है । इस प्रचण्ड ताप में वह ४ मील मोटाई वाले ९ करोड़ ३० लाख मील लम्बे हिम-खण्ड को क्षण मात्र में पिघला सकता है । सूर्य के एक वर्ग इंच क्षेत्र में जिस ऊर्जा की कल्पना की गई है, वह करीब ६० अश्व शक्ति के बराबर होती है । यदि उसके सम्पूर्ण ३३९×३१२ वर्गमील क्षेत्र में शक्ति का अनुमान करना हो, तो इस गुणनखण्ड को हल करना चाहिए । ३३९३×१०, ३३९३×$१०^{२२}$ $१७६०^{२}$×$३^{२}$×$१०^{२}$ इतने हार्स पावर की शक्ति उत्सर्जित होती है । यह सारी शक्ति एक साथ पृथ्वी पर फेंक दी जाती तो यह भी एक धधकता सूर्य पिण्ड बन जाती है । पर देखा ऐसा नहीं जाता । सूर्य-ऊर्जा का सुनिश्चित २२० करोड़वाँ हिस्सा ही पृथ्वी को मिल पाता है । इसी से ५ अरब मनुष्य, १०० अरब पक्षी, १००० अरब अन्य जीव-जन्तु एवं विशाल वनस्पति जगत की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ तथा ऋतु-संचालन की सारी क्रियाएँ सम्पन्न होती रहती हैं ।

इसकी ऊर्जा वितरण प्रणाली भी बुद्धिमत्तापूर्ण है । प्रतिदिन सूर्य की रोशनी द्वारा डेढ़ वर्गमील क्षेत्र के भू-भाग पर लगभग उतनी ही ऊर्जा उत्पन्न होती है, जितनी सन् १९४५ में हिरोशिमा पर गिराए गए परमाणु बम द्वारा उत्पन्न हुई थी । दोनों प्रकार की ऊर्जाओं में अन्तर मात्र इतना है कि सूर्य रोशनी के द्वारा बहुत बड़े क्षेत्र में तथा लगभग बारह घण्टे की लम्बी अवधि में उतनी ऊर्जा उत्पन्न होती है जितनी परमाणु बम द्वारा बहुत छोटे क्षेत्र में तथा एक सेकण्ड से भी कम समय में उत्पन्न हो गई । यही कारण है कि परमाणु बम लोगों को मृत्यु का ग्रास बना देने वाली भयंकर ताप-तरंगें उत्पन्न करता है, जबकि सूर्य प्रकाश द्वारा

उत्सर्जित ताप बहुत हल्का एवं सुखद होता है । इतना विस्तृत व विरल भी कि नन्हें पौधे भी बिना किसी हानि के उसे स्वयं में अवशोषित कर लेते हैं ।

इसी प्रकार पृथ्वी का स्वयं का वातावरण और परिस्थितियाँ भी विवेकपूर्ण ढंग से विनिर्मित हैं । इसके चारों ओर गैसों के अनेक ऐसे कवच बने हुए हैं जो अनावश्यक और हानिकारक ब्रह्माण्डीय विकिरणों को पृथ्वी के साथ छेड़खानी करने से रोकते हैं । इनकी सघनता-विरलता में कमी-बेशी होती रहती है । पर ऐसा अब तक कभी नहीं हुआ कि ये सुरक्षा-कवच ही विनष्ट हो गए हों । यदि ऐसा हुआ होता तो धरती के जीवधारी शायद अब तक सुरक्षित नहीं रह पाते । इसकी दैनिक और वार्षिक गतिविधियाँ भी इस तरह निर्धारित हैं कि जीवन-धारण के लिए वे तनिक भी अन्यथा नहीं जान पड़तीं । ऐसे ही अन्य सभी ग्रह-नक्षत्र अपनी-अपनी कक्षा में निर्बाध रूप से गतिमान हैं । उनमें अब तक किसी तरह का व्यतिरेक नहीं आया ।

इस प्रकार इन सभी तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो इन्हें सहज संयोग कह कर नहीं टाला जा सकता । इनके पीछे सुव्यवस्था, सुसन्तुलन सुनियोजन-सुनियन्त्रण का जो अद्भुत सामंजस्य दिखायी पड़ता है, वह निश्चय ही किसी अदृश्य नियन्ता के बिना शक्य नहीं । सम्भव है, ब्रह्माण्ड की इन्हीं सब विशिष्टताओं को देखते हुए सर जेम्स जीन्स के यह उद्‌गार निकल पड़े हों कि, "यह विश्व-ब्रह्माण्ड किसी तीर-तुक्के की परिणति नहीं है, वरन् सुनियोजित ढंग से विनिर्मित किसी बुद्धिमान सत्ता की सुन्दरतम अभिव्यक्ति है ।" दार्शनिक स्पिनोजा भी मिलते-जुलते मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि, "यह ब्रह्माण्ड ईश्वर के ही विचारों का मूर्त रूप है ।" मूर्धन्य वैज्ञानिक पास्कल का कहना था कि "दृश्य पदार्थों में अदृश्य रूप से काम करने वाली एक ही सत्ता है । वही इस विराट् विश्व का संचालन करती है ।" प्रख्यात खगोलविद् कॉपरनिकस इस रहस्यमय संरचना से इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि वे अपनी वेधशाला में अन्तरिक्ष का टेलीस्कोप से वीक्षण करते हुए गद्‌गद होकर कह उठे थे—"हे ईश्वर ! यह संसार तेरी कितनी सुन्दर संरचना है ! धन्य है तेरी यह सृष्टि !"

इस प्रकार उपर्युक्त पंक्तियों में विद्वान वैज्ञानिक मनीषियों ने प्रकारान्तर से इसी बात को स्वीकारा है कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड किसी आकस्मिक महाविस्फोट की परिणति नहीं वरन् योजनाबद्ध ढंग से परमसत्ता द्वारा विनिर्मित एक कृति है । यह न तो अनगढ़ है और न बेतुकी ।

मनुष्य : अनन्त आकाश का क्षुद्रतम अंश

ध्रुवों की ओर से नाप करें तो २४८६० और भूमध्यरेखा पर से नापें तो हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं, उसकी परिधि २४६०२ मील लम्बी है । दूरी को कोई पैदल नापना चाहे और यह मानकर चले कि मार्ग में पड़ने वाली नदियाँ, पहाड़, समुद्र, ग्लेशियर चट्टानें, बड़े-बड़े वृक्ष, खाने, जीव-जन्तु और हिंसक जानवरों की रुकावटें नहीं आयेंगी तो भी कम-से-कम ५ वर्ष का समय इस परिक्रमा में लग जायेगा ।

हमारी पृथ्वी जिस सौर-मण्डल की सदस्य है, सूर्य उसका प्रमुख तारा है । ग्रह जो स्वयं प्रकाशित होते हैं और उपग्रह जो किसी अन्य स्रोत से प्रकाश ग्रहण करके प्रकाशित होते हैं । ऐसे अगणित ग्रह-उपग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं, १० इनमें प्रमुख हैं, चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है, अन्यों में से मंगल और शुक्र ग्रह सबसे पास हैं, उसके बाद सूर्य है, जिसकी एक परिक्रमा करने में पृथ्वी को ३६५$\frac{१}{४}$ दिन लगाने पड़ते हैं । बुध जो सूर्य के सबसे समीप है, ८८ दिन में सूर्य की एक परिक्रमा करता है । पृथ्वी के पास उसके बाद जो ग्रह है, वह है बृहस्पति । बृहस्पति को तीन चन्द्रमा प्रकाश देते हैं । एक प्रकार की नीहारिका (नेबुला) से खचित शनि ग्रह का उसके बाद स्थान है, इसका भी एक चन्द्रमा है । यूरेनस के ३ चन्द्रमा, नेपच्यून एक चन्द्रमा का ग्रह है और सबसे दूर का ग्रह प्लूटो है । यह सभी ग्रह-उपग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं का परिभ्रमण करते हुए सूर्य की परिक्रमा करते हैं और उसमें जितना अन्तरिक्ष उनकी क्रियाशीलता में आता है, उसकी कोई सीमा निर्धारित करना कठिन है ।

बिना किसी यन्त्र के सायंकाल आकाश की ओर खड़े होकर देखें तो हम संसार के सम्पूर्ण भागों से अधिक-से-अधिक १०००० तारे ही देख सकते हैं । एक स्थान से तो २००० तारों से अधिक नहीं देख सकते, ये सभी तारे एक सर्पिल नीहारिका (सरपेन्टल नेबुला) के बाह्य प्रदेश में अवस्थित हैं । जो हमारी दृष्टि में आ जाते हैं और जो बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं दिखायी देते । आकाशगंगा में ऐसे तारों की संख्या १५०००००००००० है । इनमें से अनेक तारे सूर्य से छोटे और अनेक सूर्य से कई गुना बड़े तक हैं । इनकी परस्पर की दूरी इतनी अधिक है कि उन सब की अलग नाप करना भी कठिन है । पृथ्वी से सूर्य की ही दूरी ६३०००००० मील है, चन्द्रमा हमसे कुल २४०००० मील दूर है । प्लूटो ग्रह जो सूर्य से सबसे अधिक दूर है, उसमें सूर्य का प्रकाश पहुँचने में ५ घण्टे ३० मिनट का समय लगता है अर्थात् सूर्य और प्लूटो के बीच का अन्तर १८६००० मील ×१९८०० सेकण्ड = ३६८२८००००० मील है । मनुष्य का आकार-प्रकार इतने विशाल अन्तरिक्ष की तुलना में सागर की एक बूँद, मरुस्थल के एक रेणु-कण से भी छोटा होना चाहिए ।

यह तो रहा सौर परिवार का विस्तार और उसकी परिवार संख्या का संक्षिप्त-सा विवरण । इनमें होने वाली गति शक्ति और क्रियाशीलता का क्षेत्र तो और भी व्यापक है । सूर्य स्वयं भी स्थिर नहीं । वह अपनी धुरी पर ४३००० मील प्रति घण्टे की भयंकर गति से घूमता रहता है और प्रति सेकण्ड ४० लाख टन शक्ति आकाश में फेंकता रहता है । पृथ्वी को तो उस शक्ति में से कुल चार पौण्ड शक्ति प्रति सेकण्ड मिलती है और उतने से ही यहाँ की जलवायु का नियन्त्रण, खनिज पदार्थ और मनुष्यों को ताप आदि मिलता रहता है । यह शक्ति देखने में कम जान पड़ती है, किन्तु उसे यदि किसी परमाणु केन्द्र में पैदा करना पड़े तो उसके लिए प्रति घण्टा १७०००००००००० डॉलर व्यय करने पड़ेंगे । सूर्य की यह शक्ति जो वह अपने सौर परिवार की रक्षा और व्यवस्था में व्यय करता है, वह उसकी सम्पूर्ण शक्ति के दस लाखवें भाग का भी दस लाखवाँ हिस्सा होता है । काम में आने वाली शक्ति के अतिरिक्त शक्ति को वह अपने भीतर न जाने किस प्रयोजन के लिए धारण किए हुए है और थोड़ी-सी शक्ति भी कंजूसी से व्यय करता है । उससे जहाँ सूर्य (आत्मा) की शक्ति का बोध होता है, वहाँ यह भी पता चलता है कि नियामक

शक्तियाँ कितनी सामर्थ्यवान् हैं और मनुष्य कितना क्षुद्र है और शारीरिक और मानसिक दृष्टि से तो वह कीड़े-मकोड़े से भी गया बीता रह गया । आत्मिक दृष्टि से भले ही उसकी सामर्थ्य बढ़ी-चढ़ी हो, उसका उद्घाटन और उद्बोधन एकाएक नहीं हो जाता, उसके लिए अपूर्व विश्वास, अविरल साधना और अखण्ड साहस की आवश्यकता पड़ती है ।

अभी तक हम अपनी पृथ्वी को छोड़कर केवल सौर-मण्डल तक ही पहुँचे हैं । यह सौर-मण्डल अपने परिवार को लेकर किसी अभिजित नक्षत्र की ओर जा रहा है । ऐसा भारतीय ज्योतिर्विदों का मत है और कई ऐसी आकाशगंगाएँ, हजारों नीहारिकाएँ और अगणित सूर्य अभी इस अन्तरिक्ष में हैं । ऋग्वेद में भी सृष्टि के विस्तार के वर्णन में 'बहवो सूर्या' अनन्त सूर्य आकाशगंगा में हैं, ऐसा कहा है । उस विस्तार को समझने से पूर्व हमें दूरी का दूसरा माप जान लेना चाहिए । बहुत दूरी के ग्रह-नक्षत्रों को प्रकाशवर्ष से नापा जाता है । एक सेकण्ड में प्रकाश १ लाख, ८६ हजार ३१७ मील चलता है । इस हिसाब से १ वर्ष में प्रकाश जितना चल लेता है उस दूरी को १ प्रकाश वर्ष की गणना लगभग ५८४०००००००००० मील है । आकाश में कुछ ग्रह-नक्षत्र तो इतनी दूरी पर बसे हुए हैं कि मनुष्य मरे और फिर जीवन धारण करें, मरे और फिर जीवन धारण करे, इस तरह कई जन्मों की आवृत्ति कर ले तो भी उनका प्रकाश पृथ्वी तक न पहुँचे । ज्योतिर्विदों का कहना है कि आकाश में ऐसे कई तारे दिखायी दे रहे हैं, जो वास्तव में हैं ही नहीं । किन्तु चूँकि उनका प्रकाश वहाँ से चल पड़ा है और वह आकाश को पार करता हुआ आ रहा है, इसलिए उस तारे की उपस्थिति तो मालूम होती है, पर वस्तुतः वह टूटकर या तो नष्ट हो गया है अथवा किसी समीपवर्ती ग्रह में आकर्षित होकर उसमें जा समाया है ।

हमारा सौर-मण्डल जिस नीहारिका से सम्बद्ध है, उसे मंदाकिनी आकाशगंगा कहते हैं, यह आकाशगंगा ही इतनी विशाल है कि एक सिरे से दूसरे तक पहुँचने के लिए प्रकाश को १ लाख वर्ष लगेंगे । कुछ चमकीले तारे जैसे व्याध लुब्धक पृथ्वी से १० प्रकाश वर्ष दूर हैं, यदि कोई तेज-से-तेज जहाज से चले तो भी वहाँ तक पहुँचने में तीन लाख वर्ष लग जायेंगे । यह भी इसी निहारिका से सम्बन्ध रखते हैं । इस विस्तार को ही तय करने में मनुष्य को लाखों वर्ष लग सकते हैं तो शेष विस्तार को तो वह लाखों बार जन्म लेकर भी पूरा नहीं कर सकता । वैज्ञानिकों ने अब तक ऐसी दस करोड़ नीहारिकाओं (नेबुलाज) का अनुमान लगाया है । जबकि यह विस्तार भी ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण की तुलना में वैसा ही है जैसे समुद्र तट पर बिखरे हुए रेत के एक कण का करोड़वाँ छोटा अणु ।

सूर्य का आर-पार ८६४००० मील है । पृथ्वी की परिधि से १०८ गुना अधिक है । ऐसे-ऐसे अनेक सौर-मण्डल इस अन्तरिक्ष में समाए हुए हैं और उनकी गतिशीलता इतनी तीव्र है, कि कई-कई ग्रह-उपग्रह तो ७२ हजार मील प्रति घण्टा की रफ्तार से अपने-अपने में भ्रमणशील हैं । कई तारे युगल (डबुल) और कई बहुत (मल्टीपल) होकर ब्रह्माण्ड (कॉस्मास) के आश्चर्य को और भी बढ़ा देते हैं । हमारे सौर-मण्डल में ही १००० छोटे उपग्रह, अनेक पुच्छल तारे और असंख्य उल्काएँ विद्यमान् हैं । इस प्रकार की बनावटें प्रायः सभी सौर-मण्डलों में हैं । ऐसे-ऐसे १ विलियन (१ करोड़) सूर्यों की खोज की जा चुकी है । खगोलशास्त्री एण्ड्रोमीडा नामक नीहारिका (नेबुला) में २७०० लाख सूर्यों की उपस्थिति की पुष्टि कर चुके हैं । यह हमारे सौर-मण्डल की ओर २०० मील प्रति घण्टा की गति से बढ़ रहा है ।

कुछ ऐसे तारों का पता लगाया गया है, जो पृथ्वी से इतनी दूर बसे हैं, जहाँ हमारी कल्पना भी नहीं पहुँच सकती है । उदाहरणार्थ 'सिरस' ८.५ प्रकाशवर्ष, 'प्रोस्योन' ११ प्रकाशवर्ष, 'एलटेयर' १५ प्रकाशवर्ष दूर है । वोदा और ऐरीट्यूरस तारा समूह पृथ्वी से ३० प्रकाशवर्ष, कैपीला ५४ प्रकाशवर्ष, सप्तर्षि मण्डल १०० प्रकाशवर्ष, रीगल इन ओरिओन ५०० प्रकाशवर्ष, हाइडेसे १३०, प्लाइडस ३२५ प्रकाशवर्ष और औरिओन का नीला तारा ६०० प्रकाशवर्ष की दूरी पर बसा हुआ है । तारे विभिन्न प्रकार की जलवायु, तापीय और ऊर्जा शक्ति वाले है । कई लम्बाई-चौड़ाई में बहुत बड़े है । 'अन्टलारि' नामक तारा पृथ्वी जैसी २१ पृथ्वियाँ अपने भीतर भर ले तो भी बहुत स्थान खाली पड़ा रहे । ओरियन तारा समूह का तारा बैटिल जीन्स का व्यास २५०० लाख मील है, कुछ तारे तो इतनी दूर हैं कि उनकी पृथक किरण के दर्शन पृथ्वीवासियों को ३६ हजार वर्ष बाद होंगे, तब तक उनका प्रकाश यात्रा करता हुआ बढ़ता रहेगा ।

रेडियो ज्योतिष नाम की विद्या का जन्म अब इन सबसे आश्चर्यजनक माना जाने लगा है अर्थात् रेडियो दूरबीनों का निर्माण हुआ है, जिससे रेडियो तारे और रेडियो नीहारिकाओं की खोज की गई । वैज्ञानिक कहते हैं कि लाखों-करोड़ों प्रकाशवर्श की दूरी के तारे केवल प्रकाश के हैं । क्वासर और पल्सार ज्योतियों के अनेक तारों का पता चला है । एक महाभयंकर काले तारे का पता चला है, जिसकी सीमा और दूरी का कोई अनुमान ही नहीं लगाया जा रहा । यह दूरी और विस्तार जितना बढ़ता जा रहा है, मनुष्य उतना ही छोटा होता जा रहा है । पृथ्वी की तुलना में एक परमाणु बड़ा हो सकता है पर ब्रह्माण्ड की तुलना में मनुष्य तो परमाणु के बराबर भी नहीं है । वह सर्गाणु, कर्षाणु से भी छोटा नगण्य अणु ही हो सकता है ।

भौतिक दृष्टि से मनुष्य बहुत दीन और दुर्बल प्राणी है, जो कुछ शक्ति और सामर्थ्यवान् है, वह उसकी आत्मिक शक्ति ही है, पर हम मानव मन और मानव आचरण के झगड़े से ही कब अवकाश पाते हैं, जो अपने लघु रूप को विश्वव्यापी चेतना के साथ सम्बन्ध जोड़ पाने की बात सोच पायें । उसके लिए तो मनुष्य को अपने छोटेपन का ध्यान रखना ही पड़ेगा । जब तक वह अपनी लघुता स्वीकार नहीं करता, विश्व की व्यापकता को समझ पाना और उसमें अपने आप को घुला पाना उसके लिए नितान्त असम्भव है ।

जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है

प्रकाश एक सेकण्ड में १८६००० मील चलता है । एक दिन में १८६००० × ६० × ६० × २४ और १ वर्ष में १८६००० × ६० × ६० × २४ × ३६५ = ५८०२१६६००००००० मील चलता है । लम्बी दूरियाँ जो मील, गज, फीट, इंचों में नहीं नापी जा सकतीं, उन्हें नापने के लिए

वैज्ञानिकों ने प्रकाशवर्ष की कल्पना की । एक प्रकाशवर्ष का अर्थ हुआ ५६०२१९६०००००० मील दूरी ।

ऐसे ५० करोड़ प्रकाशवर्षों जितना विराट् इस ब्रह्माण्ड को वैज्ञानिकों ने माना है । १० करोड़ नीहारिकाएँ (नेबुला) प्रकाश धाराएँ लेकर चलती हैं और वह अनेकों सूर्यों को जन्म देती हैं । हमारे लिए प्रत्यक्षतः सूर्य ही उस ब्रह्माण्ड का जनक, प्राण-प्रतिष्ठाता है, जिसमें हम रहते हैं । ऐसे-ऐसे अरबों सौर-मण्डल विराट आकाश में भरे पड़े हैं । उस विशालता का अनुमान छोटा-सा मनुष्य स्थूल आँखों से कर भी कैसे सकता है ? हम तो गगन-मण्डल के अधिक-से-अधिक ६ हजार तारे ही एक स्थान पर खड़े होकर देख सकते हैं ।

सौर-मण्डल के स्वामी सूर्य अरबों छोटे-बड़े ग्रह-नक्षत्रों को अपनी शक्ति से चलाते हैं । नवग्रह तो उनके सबसे समीपवर्ती कार्यकर्त्ता और सहयोगी हैं । वस्तुतः उनका परिवार कितना विशाल है, उसमें कितने सदस्य हैं, उसकी सही-सही कल्पना नहीं की जा सकती । चींटी के लिए हिमालय पर्वत की माप जितनी कठिन हो सकती है, हमारे लिए उतनी ही दुःसाध्य है, सौर-मण्डल की इस लम्बाई-चौड़ाई की कल्पना ।

लेकिन यह सब अव्यवस्थित नहीं है । सब कुछ मस्तिष्कीय है । गणितीय नियमों पर आधारित है । सूर्य की प्रथम कक्षा में बुध, द्वितीय में शुक्र, तृतीय में पृथ्वी, चतुर्थ में मंगल, पंचम में बृहस्पति, छठवें में शनि, सातवें में यूरेनस, आठवें में नेपच्यून और नवें में प्लूटो—इन नवग्रहों की स्थिति, कक्षा का अध्ययन और उनके ज्योतिर्विज्ञान द्वारा एक समय भारतीय प्रकृति की सूक्ष्म हलचलों को भी जान लिया करते थे । आज भी वैज्ञानिक मौसम सम्बन्धी अनेक पूर्व जानकारियाँ प्राप्त करते हैं । यूगोस्लाविया आदि में तो इनका मानवी आचार-संहिता से भी सम्बन्ध जोड़ा जाने लगा है—यह सब बताता है कि सौर-मण्डल के नियम-विधान किसी विश्वव्यापी विधान की व्याख्या और अंग मात्र हैं । ऐसा नहीं कि जो कुछ हो रहा है, वह निरर्थक, बिना किसी की प्रेरणा या किसी सत्ता के नियन्त्रण के बिना हो रहा है, चाहे उस शक्ति को शक्ति भर कहें, देवता या भगवान । कल्पना में वह वस्तु एक ही हो सकती है—सूर्य की तरह सर्वव्यापी और सर्व समर्थ शक्ति ।

सूर्य के मध्य भाग में ५०००००००० डिग्री गर्मी भरी पड़ी है । इस महाशक्ति का २०००००वाँ हिस्सा ही वह प्रक्रिया के विकास, विनाश और सन्तुलन में काम लेता है । शेष भाण्डागार शायद इसलिए सुरक्षित है कि कोई उपयुक्त पात्र आये और किसी ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति के लिए शक्ति की आवश्यकता अनुभव करे तो उसे इतनी शक्ति दी जा सके, जिससे वह कैसे भी ध्वंस या निर्माणकारी कार्यक्रम सुभीते से चला सके । एक समय हम भारतीय इस अक्षय शक्ति का स्वामित्व और भागीदारी प्राप्त किया करते थे और ऐसे-ऐसे अतीन्द्रिय चमत्कार दिखाया करते थे, जो आज अमेरिका और रूस के वैज्ञानिक भी दिखा नहीं पाये ।

वृक्ष, वनस्पति पैदा करना सूर्य का काम है । वायु का चलाना सूर्य का काम । ऋतु-परिवर्तन, प्रकाश, ताप और विद्युत शक्ति बाँटना सूर्य का काम । गुरुत्वाकर्षण द्वारा सम्पूर्ण ग्रहों को स्थिर रखना भी उसी की सामर्थ्य में है । कॉस्मिक किरणों (अल्फा, किरण, बीटा किरण और गामा किरण) के द्वारा सम्पूर्ण सौर-मण्डल में त्रिगुणात्मक चेतना फैलाने का काम सूर्य भगवान ही करते हैं । इसे उपनिषदों में सावित्री विद्या कहा है । यह गायत्री की ही स्थूल चेतना का ज्ञान है । आज आयनमण्डल (आइनोस्फियर) के नाम से इस सम्बन्ध की बहुत-सी बातें वैज्ञानिक भी जानने लगे हैं ।

यह जानकारियाँ इतनी अधूरी हैं कि उतने मात्र से हमारी जिज्ञासा का समाधान नहीं हुआ । एक बार ऐसी ही उलझन एक ऋषि के समक्ष आयी थी । उन्होंने आकाश की ओर आँखें फाड़कर देखा तो स्तब्ध रह गए थे । उन्होंने समझ लिया था कि विराट् ब्रह्माण्ड के दर्शन स्थूल आँखों से नहीं किए जा सकते । यन्त्र भी कुछ ठोस सहायता देने वाले नहीं । विराट् दर्शन की जिज्ञासा भी इतना प्रखर हो उठी थी कि ऋषि के लिए चुपचाप बैठना कठिन हो गया था ।

तब उन्होंने आत्म-चेतना पर नियन्त्रण करने का अभ्यास प्रारम्भ किया । ध्यान द्वारा चित्तवृत्तियाँ एकाग्र कर उन्होंने मानो-जगत में प्रवेश किया तो पाया कि जो कुछ भी इस विराट् विश्व में हैं, सौर-मण्डल उसका एक नमूना है, उदाहरण है और जो कुछ सौर-मण्डल में वह सब अण्ड (परमाणु) में है अर्थात् परमाणु में ही विराट् विश्व समाया हुआ है, इसलिए हमें बड़े-से-बड़े बनने और अन्तरिक्ष बेधकर सुदूर नक्षत्रों में दौड़ने का कष्ट व समयसाध्य अभ्यास की आवश्यकता नहीं, वह सब, हम सब छोटे-से-छोटे होकर जहाँ हैं, वहीं थोड़े समय में प्राप्त कर सकते हैं ।

ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति परमाणु पदार्थ का वह छोटे-से-छोटे टुकड़ा है, कण है जिसके और टुकड़े नहीं हो सकते । जो स्वतन्त्र अवस्था में उसी प्रकार नहीं रह सकता, जिस प्रकार सामाजिक आश्रय का पूर्ण परित्याग करके कोई जीवित नहीं रह सकता । किन्तु यही छोटे-से-छोटा अविभाज्य कण अपने भीतर पूरा सौर जगत् छिपाए है । योग वशिष्ठ में कहा है—

परमाणौ परमाणौ सर्गवर्गा निरर्गलम् ।
महाचितैः स्फुरन्त्यर्कसचीव त्रसरेणवः ॥

—योग वशिष्ठ ३।७।२६

अर्थात् सृष्टि से परमाणु-परमाणु के भीतर अनन्त सृष्टियाँ हैं । यह ऐसा ही है जैसे सूर्य कि किरणों में अनेक त्रसरेणु दिखायी देते हैं ।

आज का विज्ञान इस बात की अक्षरशः पुष्टि करता है । भौतिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ का छोटे-से-छोटा टुकड़ा एक वैसा ही ब्रह्माण्ड है, जैसा सौर-मण्डल । जहाँ से उसकी स्थूलता समाप्त हो सूक्ष्मता प्रारम्भ होती है, वहाँ आकाशीय पिण्डों की विलक्षण गतिविधियाँ देखने को मिलती है । सूर्य की तरह सबका स्वामी नाभिक (न्यूक्लियस) होता है । शक्ति और सामर्थ्य में भी वह सूर्य की तरह ही प्रखर और प्रचण्ड होता है ।

नाभिक के आस-पास किसी तत्व में १, किसी में ७, १०, १५, १८, २२, आदि इलेक्ट्रॉन उसी तरह चक्कर लगाते रहते हैं, जिस प्रकार सूर्य के आस-पास ग्रह-उपग्रह चक्कर काटते हैं । क्लाउ-सिद्धान्त (क्लाउ थ्योरी) के अनुसार परमाणु में सौर-मण्डल की तरह आकाश, ग्रह-नक्षत्र, उनका परिभ्रमण, उल्कापात आदि सब कुछ किसी क्रम-व्यवस्था में होता रहता है । जिस प्रकार

परमाणु को एक केन्द्रीय सत्ता बाँधे है और सौर-मण्डल को सूर्य उसी प्रकार समूचे ब्रह्माण्ड को भी एक आदि-शक्ति द्वारा बँधा होना चाहिए । ईश्वर के अस्तित्व का यह सबसे बड़ा प्रमाण है, जो विश्वास के बाद कसौटी पर खरा उतरता है । यह शक्ति ही संसार में व्यवस्था स्थापित करती है ।

न्यूक्लियस में धन आवेश वाले कण (पार्टिकल्स) पाये जाते हैं, इन्हें ही प्रोटॉन्स कहते हैं । नाभिक में ही दूसरे प्रकार के कण होते हैं, जिनका भार हाइड्रोजन के परमाणु के बराबर होता है, किन्तु विद्युत आवेश नहीं होता, उन्हें न्यूट्रॉन कहते हैं । परमाणु का भार प्रोटॉन और न्यूट्रॉन का सम्मिलित भार ही होता है । इसका व्यास .००००००००००००१ मिलीमीटर अर्थात् प्रायः कुछ भी नहीं होता । वह कुछ भी नहीं है और उसी पर सारे परमाणु की सत्ता आश्रित है । यह परस्पर विरोधी बातें हैं, पर यह है सत्य । तात्पर्य यह है कि नाभिक (न्यूक्लियस) का शक्ति भाग सूर्य है । उसकी समस्त क्रियाएँ सूर्य की तरह ही होती हैं ।

परमाणु में रेडियो सक्रियता (रेडियो ऐक्टिविटी) नाभिक का ही गुण है । इसमें सूर्य की तरह तीन किरणें निकलती रहती हैं—(१) अल्फा किरणें, (२) बीटा किरणें, (३) गामा किरणें । अल्फा किरणें धन आवेश युक्त (पॉजिटिव चार्ज) होती है, परन्तु गैसों को आयनीकृत (आयोनाइज) करने की क्षमता होती है । यह सादृश सूर्य से ज्यों-का-त्यों है । सूर्य भी अल्फा रेज के माध्यम से हीलियम गैस ही निकालता (एमिट) है । यह छोड़ी हुई गैस या अल्फा किरणें ही आइनोस्फियर का निर्माण करती हैं, इसलिए न्यूक्लियस को ही परमाणु का सूर्य या विश्वव्यापी चेतन सत्ता कहना चाहिए ।

परमाणु का यह त्रसरेणु भी प्रकाश की गति के अनुसार ही चलता है । ग्रहों की तरह इलेक्ट्रॉन के कक्षा-पथ और उनके चलने, टूटने, एक कक्षा से दूसरी कक्षा में कूदने की गतिविधियाँ भी परमाणु में अहर्निश चलती रहती हैं । गुरुत्वाकर्षण की भाँति एक शक्ति, जिसे केन्द्र की ओर खींचे रहने वाली (सेण्ट्रीफ्यूगल फोर्स) कहते हैं, भी काम करती रहती है । नाभिक (न्यूक्लियस) की शक्ति का विस्तृत परिचय नाभिक विद्या (न्यूक्लियर साइन्स) सम्बन्धी किसी लेख में अलग देंगे, तब उसकी क्षमता का पता चलेगा । संक्षेप में एक परमाणु की सारी शक्ति का विस्फोट कर उसे नियन्त्रण में ले लिया जाय, तो उससे इतनी गर्मी पैदा होगी, जिससे २७००० कुन्टल जल क्षण भर में उबालकर उड़ाया जा सके ।

ब्रह्माण्ड की दूरी का अनुमान नहीं किया जा सकता । पर परमाणु के नाभिक के, अन्दर के प्रोटॉनों की दूरी तो कुल १/२०००००००००००० इंच होती है । यदि यह दूरी आधा इंच होती, तो उन दोनों के बीच की दूरी १/४ इंच होने पर शक्ति सोलह गुनी होती । १/२ इंच होने पर ६४ गुनी, तात्पर्य यह कि ब्रह्माण्ड की जो शक्ति विस्तार में है, परमाणु में वही शक्ति प्रोटॉनों की समीपता में है । पति-पत्नी जितने प्रेम और आत्मीयता से रहते हैं, उनकी शक्ति उतनी ही अधिक होती है । इसका अनुमान इस व्याख्या से चलता है अर्थात् दो प्रोटॉनों के बीच में १/२०००००००००००० इंच की दूरी के बीच इतनी शक्ति होगी, जो इस्पात की १० इंच मोटी चादर को भी काटकर रख देगी ।

विराट् ब्रह्माण्ड की शक्तियों का कोई पारावार नहीं, पर अण्ड की शक्तियाँ उनसे भी अधिक चमत्कारिक हैं । बड़े घेरे में हजार व्यक्तियों को बैठाया जा सकता है, पर यदि छोटे से बिन्दु में सिन्धु भरा हो, तो उसे चमत्कार ही कहा जायेगा । यह चमत्कार सृष्टि के प्रत्येक परमाणु में भरा है । इसे ध्यान-प्रणाली और योग-विद्या द्वारा पाया और उपयोग में लाया जा सकता है । हम इस विद्या को जान लें, तो सूर्य की तरह हवा, पानी, आकाश, ग्रह-नक्षत्रों, पृथ्वी, पौधों, ऋतु, वनस्पतियों तक भी इच्छित परिवर्तन कर सकते हैं । भारतीय योगी शक्ति के द्वारा विश्व-विजयी होते रहे हैं ।

पृथ्वी का ओर-छोर बनाम जीवन का आदि-अन्त

जीवन का ओर-छोर कहाँ है ? यों मोटे तौर पर यह उत्तर दिया जा सकता है कि जन्म दिन उसका आरम्भ होता है और मरण दिन पर इति श्री हो जाती है । पर यह स्थूल उत्तर है । सूक्ष्म के रूप में यह कहा जाना चाहिए कि जिस दिन ईश्वरीय महातेज में रूप स्फुलिंग प्रकट हुआ वह उसका जन्मदिन है । योनियों के चक्र में भ्रमण करते हुए उसका यात्रा क्रम चल रहा है । वर्तमान मनुष्य जीवन उस जन्मान्तरण के महाग्रन्थ का एक पृष्ठ मात्र है । उसका अन्त तब होगा जब महाप्रलय में ब्रह्म अपने सारे प्रस्तार को अपने आप में समेट कर केन्द्रीय कर लेगा ।

पृथ्वी का आदि-अन्त कहाँ है ? इस प्रश्न का उत्तर साधारणतया उसका व्यास ८००० मील बताकर अध्यापक लोग देते हैं पर यह तो केवल धरती की ठोस सीमा हुई । धरती का जीवन उसका वायुमण्डल है । वायु न हो तो जीवन संचार ही सम्भव न हो । शब्दों का बोलना, सुनना ही शक्य न रहे । बादल वर्षा आदि की कोई व्यवस्था न बने । यह वायु धरती का वैसा ही अंग है, जैसा कि ठोस पदार्थ । यह वायु का घेरा उसका अपना है जिस तरह किसी देश की सीमा उसके समीपवर्ती समुद्र में भी उतनी घुसी रहती जितनी में कि उसका यातायात एवं सुरक्षा निर्भर है । ठीक इसी प्रकार धरती की सीमा भी वहाँ तक जायेगी, जहाँ तक कि उसका अपना वायुमण्डल संव्याप्त है । यह अत्यन्त मोटी परिभाषा है जितनी गहरी शोध धरती के अस्तित्व के बारे में है, उतने ही नये तथ्यों का अनावरण होता चला गया है । पिछली मान्यताएँ झुठलाई जाती रही हैं और नई स्थापना होती रही है । इस उलट-पुलट का अन्त कब और कहाँ होगा ? यह बताया जा सकना आज की स्थिति में सम्भव नहीं ।

अब से पचास वर्ष पूर्व धरती का वायुमण्डल ७.८ मील की ऊँचाई तक माना जाता था । पीछे कहा जाने लगा कि वह १००-१५० मील है । वैज्ञानिक अनुसन्धान आगे बढ़े और यह परिधि २५०-३०० मील बताई जाने लगी, इसे आयनोस्फियर कहते हैं । इससे भी ऊँची लहराती, झूमती, रंगीन, ज्योतियाँ देखी गईं जिन्हें वैज्ञानिकों की भाषा में आऊरोकल लाइट्स—मेरुज्योतियाँ कहा जाता है । इनका अस्तित्व वायुमण्डल के बिना सम्भव नहीं । अस्तु वायुमण्डल की सीमा ७०० मील ऊँचाई तक मानी गई । इस प्रकार पृथ्वी की परिधि पहले की अपेक्षा अब और आगे खिसक गई ।

रूस का प्रथम उपग्रह पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर काटने के लिए जब भेजा गया था तो अनुमान था कि ५००-६०० मील ऊँचाई पर हवा नाममात्र को होगी। उपग्रह को उससे कोई बाधा न पड़ेगी और वह ६ महीने अपना काम जारी रख सकेगा। पर अनुमान गलत निकला। इतनी ऊँचाई पर भी दबाव काफी था। उसकी रगड़ से यान की गति धीमी होती गई और उसे दो महीने में ही वापस लौटना पड़ा।

पृथ्वी के चारों ओर तीस मील तक फैला हुआ वायुमण्डल, सूर्य के अल्ट्रावायलेट किरणों का विकिरण, व्यूहाणुओं से सम्बद्ध, गैस क्षेत्र, दृश्यमान, प्रकाश, अदृश्य ब्रह्माण्ड किरणें, रेडियो तरंगे, चुम्बकीय पर्तें लोकान्तरों से आने वाला प्रभाव आदि अनेक तथ्य ऐसे हैं, जो खुली आँखों से दीख नहीं सके फिर भी वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनका अपनी धरती के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मोटे तौर से ऋतु प्रभाव के साथ धरती के साथ जुड़े हुए अन्तरिक्ष सम्बन्ध से ही हम परिचित हैं, पर जो इससे आगे की अनदेखी बातें हैं वे और भी अधिक प्रभावशाली हैं। दूसरें शब्दों में यों कहना चाहिए कि भूगर्भ में जो कुछ है, उससे असंख्य गुना और प्रभाव अन्तरिक्ष में भरा पड़ा है। उससे अपरिचित रहे तो हमें अज्ञानियों की संज्ञा में ही गिना जायेगा।

अब तक समुद्र तट पर हवा का दबाव देखकर यह हिसाब लगाया जाता था कि ऊँचाई पर वह पर्त अमुक क्रम से घटती जायेगी और अन्त में एक स्थान पर जाकर हवा बिल्कुल समाप्त हो जायेगी पर यह अनुमान गलत निकला। वायुमण्डल गर्मी को पाकर फैलता ही जाता है वह इतना हल्का हो सकता है कि उसे जाना न जा सके, पर रहता वह बहुत आगे तक है।

३१ जनवरी, १९५८ को अमेरिकी कृत्रिम उपग्रह 'एक्स प्लोरा'—'प्रथम' अन्तरिक्ष में उड़ाया गया। बाद में रूसी और अमेरिकन उपग्रह और भी उड़े। उनसे नई सूचना मिली कि पृथ्वी की भूमध्य रेखा के चारों ओर दो मोटे-मोटे कवच हैं। मानो धरती ने अपनी कमर में दो मेखलाएँ पहन रखी हैं। इनमें एक विचित्र प्रकार का वायुमण्डल और इनमें एक की ऊँचाई दो हजार मील और दूसरी के बीस हजार मील के लगभग है। इस प्रकार धरती की सीमा अब और आगे बढ़ गई।

यह मेखला कवच किसी एक नयी वस्तु के बने हैं जिसे वैज्ञानिक भाषा में 'प्लाज्मा' कहा जाता है, अब तक यही पढ़ा-सुना जाता रहा है, कि पदार्थ तीन रूपों में पाया जाता है—(१) ठोस, (२) तरल, (३) वायव्य, पर अब यह चौथी वस्तु और सामने आयी प्लाज्मा। यह वायु से भी विरल एक ऐसी गैसीय स्थिति है जिसमें परमाणुओं का भी विघटन हो जाता है।

पुराना अनुमान यह था कि आकाश सर्वथा शून्य एवं रिक्त है। पर अब यह स्पष्ट हो गया है कि वह क्षेत्र निस्तब्ध नहीं है। उसमें विद्युतमय और चैतन्य तत्व भरे पड़े हैं। उनमें भी अपनी दुनिया की तरह ही हलचलों की भरमार है। समझना चाहिए कि इस शून्य आकाश सागर में ही लहरें, ध्वनियाँ, उथल-पुथल, जीव-जन्तु जैसे अपने ढंग के अतिरिक्त की भरमार है, न वहाँ निस्पंदन है, न निश्चल स्थिति।

पृथ्वी में एक-दूसरे किस्म का वायुमण्डल भी है जिसे आकर्षण-चुम्बकत्व अथवा ग्रेविटी के नाम से पुकारते हैं। यह चुम्बकत्व 'प्लाज्मा' को प्रभावित करता है और उसकी प्रतिक्रिया लौट कर पृथ्वी पर आती है। इस प्रकार आदान-प्रदान और भी विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार जमाता है। इस चुम्बकीय प्रत्यावर्तन को सम्पन्न करने वाला वायुमण्डल की तरह का ही चुम्बक मण्डल भी है। यह भी पृथ्वी का विस्तार है, इसे उसका आधार साधन अथवा अधिकार क्षेत्र कह सकते हैं। इस प्लाज्मा प्रवाह के कारण ही सूर्य की शक्ति का धरती तक नियन्त्रित रूप से आना सम्भव होता है और अन्य ग्रहों से उसका सम्पर्क बनता है। इसलिये धरती की परिधि नापनी हो तो उसकी गणना वायुमण्डल को आधार मानकर नहीं वरन् चुम्बक मण्डल की परिधि के आधार पर नापनी चाहिए।

पृथ्वी से सूर्य की दूरी ९,३०,००,००० मील है। चूँकि यह सूर्य भी पृथ्वी की परिधि है और वायु की तरह उसकी गर्मी रोशनी भी पृथ्वी के लिए जीवन आधार है। मछली का आधार पानी होता है। किसान का आधार खेत। इसी प्रकार पृथ्वी जिस खेत या समुद्र से अपना काम चलाती है, उसका नाम हुआ सूर्य। यह सूर्य भी एक प्रकार से उसी की सम्पत्ति है और वायुमण्डल की तरह वह भी उसी का अधिकार क्षेत्र है। दूसरे ग्रहों का भी सूर्य से सम्बन्ध हो या न हो, इससे अपना क्या बनता-बिगड़ता है। किसान का खेत होता है उसमें चूहे, दीमक, कीड़े, पतंगे भी पलते रहते हैं। चूँकि दूसरे ग्रह भी सूर्य से लाभ उठाते हैं, इसलिए धरती का अधिकार उस पर से कम नहीं हो जाता। पृथ्वी की असली परिधि नापनी हो तो उसकी लपेट के भीतर सूर्य को भी लेना पड़ेगा।

क्या अनन्त अन्तरिक्ष का अन्त कहीं है, इस प्रश्न के उत्तर में विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन एवं मिन्कोवस्की ने 'है' के रूप में दिया है। वे कहते हैं सीधी चलते हुए भी कोई वस्तु अन्ततः अपने मूल उद्गम पर घूमकर आ जाती है। इस गणित सिद्धान्त के आधार पर अन्तरिक्ष का अन्त भी वहीं होना चाहिए जहाँ से उसका आरम्भ होता है अर्थात् अनादि और अनन्त कहे जाने वाले अन्तरिक्ष का किसी एक बिन्दु पर मिलन अवश्य होता है, भले ही वह कितना ही दूरवर्ती क्यों न हो।

'अनन्त के अन्त' की बात उन्होंने सीधेपन की घुमाव प्रक्रिया के साथ जोड़ी है। यूक्लिड के रेखा गणित सिद्धान्त के अनुसार, एक सीधी रेखा लम्बाई में असीमित होने के बावजूद अपने उद्गम पर आ पहुँचेगी और मिल जायेगी। गणितज्ञ कहते हैं कि इस रेखा के मिलन घुमाव क्रम में पचास खरब प्रकाशवर्ष लग सकते हैं पर अन्ततः वह मिल जरूर जायेगी। ग्रह नक्षत्र सीधे ही दौड़ते हैं पर वह 'सीध' भी सीधी न रहकर आखिर गोलाई में ही घूम जाती है और हर पिण्ड को अपनी कक्ष निर्धारित करके उसी में चक्र की तरह घूमते रहना पड़ता है। गति कितनी ही सीधी या तीव्र क्यों न हो उसे झुकाव या घुमाव के प्रकृति बन्धनों को स्वीकार ही करना पड़ेगा। यह सिद्धान्त अन्तरिक्ष पर भी लागू होता है, उसे भी गोल होना चाहिए और जहाँ भी उसका आरम्भ बिन्दु माना जाय उसी से जुड़ा हुआ उसका अन्त भी जानना चाहिए।

पृथ्वी की तरह ही जीवन का ओर-छोर कहाँ है—इस प्रश्न के उत्तर में यदि गहरे मंथन पर उतरें तो प्रतीत होगा यह मोटी मान्यता सर्वथा अपूर्ण है, कि हम जन्म दिन पर जन्मे हैं, मरण दिन पर अपना अस्तित्व गँवा देंगे। वस्तुतः जीवन का दायरा

बहुत बड़ा है । हम महान् से जन्मे हैं और महान् की ओर चल रहे हैं । मृत्यु न हमारा अन्त है और न जन्म आदि । यह एक दिन के प्रभात और दिनान्त जैसा उपक्रम है । इस स्थूल परिधि को ही हम सब कुछ न मानें, वरन् यह मानकर चलें कि सूर्य की परिधि तथा फैली हुई पृथ्वी की सीमाएँ जिस तरह अत्यन्त विस्तीर्ण हैं, उसी तरह जीवन एक शरीर में दृश्यमान होते हुए भी उसका विस्तार समस्त जड़ चेतन की परिधि तक व्यापक है । सीम को असीम तक फैला देखना यहीं तत्वज्ञान है । पृथ्वी के ओर-छोर और जीवन के आदि अन्त का सही उत्तर इसी तथ्य के आधार पर उपलब्ध किया जा सकता है ।

पृथ्वी कब बनी ? मनुष्य कब बना ?

विकासवाद के समर्थक प्रो. सोलस, शिम्पर, हैकेल कीथ और डॉक्टर चर्च आदि ने इस सिद्धान्त के आधार पर पृथ्वी पर प्राणियों का जीवनकाल कुल ८२०००० वर्ष स्थिर किया है । इसमें जीवों के क्रमिक विकास में ही अधिकांश समय लग जाता है और मनुष्य की उत्पत्ति का समय कुछ हजार वर्ष ही रह जाता है । ईसाई मत में आदम में नोआ की ११ पीढ़ियों का कुल समय २२६२ वर्ष और नोआ के शेग से इबराहीम तक १३१० वर्ष कुल ३५७२ वर्ष मनुष्य की उत्पत्ति के होते हैं । स्पीगल की मान्यता में थोड़ा अन्तर है उन्होंने यह अवधि ६६६३ वर्ष की मानी है कुछ और संशोधनवादियों ने यह समय ७२०० वर्ष भी माना है । अधिक से अधिक इतने समय से ही मनुष्य का आविर्भाव अन्य धर्मावलम्बियों के विश्वास में आता है । इतने दिन के इतिहास को ही विभिन्न कालों में बाँट कर धर्म, सभ्यता और दर्शन के विभिन्न स्वरूप इन लोगों ने निकाले हैं ।

संसार के इतिहास और संवत्सरों की गणना पर दृष्टि डालें तो भी पाश्चात्य मान्यताओं का खण्डन तो तुरन्त हो जाता है । ईसाई संवत् महापुरुष ईसा के जन्म से मानते हैं । वह सबसे छोटा अर्थात् अब तक १९६५ वर्षों का है । इससे अधिक मूसा द्वारा प्रसारित मूसाई सम्वत् ३५३६ वर्ष का है । इससे भी प्राचीन सम्वत् युधिष्ठिर के प्रथम राज्यारोहण से प्रारम्भ हुआ था, उसे ४१२५ वर्ष हो गए कलियुगी सम्वत् को ५०७० वर्ष, इबरानियन सम्वत् के अनुसार ५९८२ वर्ष, इजिप्शियन सम्वत् २८६२२ वर्ष, फिनीशियन संवत् ३००४० वर्ष । ईरान में शासन पद्धति प्रारम्भ हुई थी, तब से ईरानियन सम्वत् चला और उसे अब तक १८९९४८ वर्ष हो गए । ज्योतिष के आधार पर चल रहे चाल्डियन सम्वत् का २१५०००४० वर्ष हो गए । खताई धर्म वालों का भी हमारे भारतीयों की तरह ही विश्वास है कि उनका आविर्भाव आदि पुरुष खता से हुआ । उनका वर्तमान सम्वत् ८८८४०३४१ वर्ष का है । चीन का संवत् जो उनके प्रथम राजा से प्रारम्भ होता है, वह और भी प्राचीन ९६००२४६६ वर्ष का है । अब हम अपने वैवस्वत मनु का सम्वत् लेते हैं जो चौदह मन्वन्तरों में से एक है, उससे अब तक का मनुष्योत्पत्ति काल १२०५३३०७० वर्ष का हो जाता है, जबकि हमारे आदि ऋषियों ने किसी भी धर्मानुष्ठान और मांगलिक कर्मकाण्ड के अवसर पर जो संकल्प पाठ का नियम निर्धारित किया था और जो आज तक ज्यों का त्यों चला आता है उसके, अनुसार मनुष्य के आविर्भाव का समय १९७२९४००३० वर्ष होता है ।

भूगर्भशास्त्री पृथ्वी की आयु चार प्रकार से निकालते हैं पहली गणना पर्तदार चट्टानों के निर्माण की गति से करते हैं । इस अनुमान का आधार यह है कि जब से महाद्वीप और महासागरों की रचना हुई, वर्षा तभी से प्रारम्भ हो गई होगी । सूर्य के ताप के कारण समुद्र से वाष्प बनना और वृष्टि होना तभी से प्रारम्भ हो गया होगा । वर्षा के साथ ही नदियाँ भी अस्तित्व में आ गई होंगी और समुद्र के साथ उनका लेने और देने का सिद्धान्त भी तभी से चल पड़ा होगा ।

विचार और शोध से मनुष्य न जाने कैसी-कैसी आश्चर्यजनक खोजें कर लेता है । मनुष्य के इस छोटे से चिन्तन ने एक बड़े कार्यक्रम को जन्म दिया । सोचा गया कि पृथ्वी में पायी जाने वाली पर्तदार चट्टानें नदियों द्वारा पृथ्वी के बहाव के कारण हैं, नदियाँ बहती हैं तो अपने साथ मिट्टी भी छीलती जाती हैं । यह मिट्टी किसी एक स्थान पर जमा होती गई और उस पर अनेक पर्तें चढ़ती गईं । बहुत अध्ययन के बाद पता चला कि १ फुट मोटी पर्त ८८० वर्ष में तैयार होती है, जबकि अब तक अधिकतम मोटाई वाली चट्टान ५ लाख १४ हजार फुट की मिली है । इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की आयु ५१४०००× ८८० = ५४२३८२०००० वर्ष होती है । इनमें कल्पनाओं का अंश अधिक होने से यह हल भूगर्भशास्त्रियों ने बाद में स्वयं ही अमान्य कर दिया ।

समुद्र के खारीपन से पृथ्वी की आयु निकालने का दूसरा सिद्धान्त भी ऐसा ही है । नदियाँ अपने साथ स्थान-स्थान का खनिज लवण लेकर समुद्र में गिरती हैं, इससे स्वाध्यायशील के ज्ञान और अनुभवों की तरह समुद्र का खारीपन प्रतिवर्ष कुछ न कुछ अधिक हो जाता है । सूर्य की किरणें समुद्र में बड़वाग्नि पैदा करती हैं और उसका जल सदैव भाप बनकर उड़ता रहता है । इस विराट् हलचल में भी समुद्री नमक वाष्पीकृत नहीं हो पाता, इस तरह खारीपन को कोई नुकसान नहीं पहुँचता । अब एक गैलन जल में नमक का औसत और कुल समुद्र में जल का औसत लेकर कुल नमक का परिमाण निकाला गया । अब प्रतिवर्ष नदियाँ समुद्र को कितना नमक देती हैं यह हिसाब लगाकर उसका कुल प्राप्त नमक की राशि में भाग दिया गया, उससे पृथ्वी की आयु १२ करोड़ वर्ष निकली जो पहले नियम से भी कम थी, इसलिए वह भी अमान्य हो गया ।

लॉर्ड कैल्विन को एक और तुक सूझी । उन्होंने अनुमान किया कि पृथ्वी जब अस्तित्व में आयी तब उसका तापमान ३९०० डिग्री सेन्टीग्रेड रहा होगा । अब का भूताप निकाल कर उन्होंने अब तक कम हो गए ताप को निकाला और फिर उसमें प्रतिवर्ष कम हो जाने वाले ताप से भाग देकर भी १० करोड़ वर्षों की ही पृथ्वी की आयु प्राप्त की ।

अन्तिम रेडियो सक्रिय तत्वों के विघटन का सिद्धान्त सर्वाधिक प्रामाणिक है । हम भारतीयों का मत है कि आदिकाल में पूर्ण शुद्ध चेतन और आनन्दस्वरूप एक परमात्मा की ही सत्ता थी । बाद में इच्छा-शक्ति उत्पन्न होने से वह स्थूल और स्थूल होती गई । यूरेनियम, थोरियम, रेडियम आदि अनेक तत्व भी ऐसे ही होते हैं, जो अपनी सूक्ष्म अवस्था से स्थूलता में विघटित होते रहते हैं । इन्हें रेडियोधर्मी तत्व कहा जाता है । इनके परमाणुओं से अल्फा, बीटा, गामा किरणें अपने आप विच्छिन्न

[डिसइन्टीग्रेट] होती रहती हैं। कालान्तर में यह तत्व ही सीसा धातु (लेड) में बदल जाते हैं।

यह परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है और बहुत अनियमित होता है, इसलिए उसका निश्चित अनुमान करना तो सम्भव नहीं होता पर इन तत्वों की अर्द्ध- जीवन अवधि निकाल ली जाती है। अर्द्ध-जीवन अवधि का अर्थ यह होता है कि कितने वर्षों में वह पदार्थ आधा रह जायेगा।

एक प्राचीन चट्टान में यूरेनियम की ११६ ग्राम मात्रा पायी जाती है। उसी के पास एक चट्टान में सीसा भी मिलता है, जो यूरेनियम से विच्छिन्न होकर बना था, उसे तौलने पर भार ३०६ ग्राम निकला। प्रयोग में देखा गया कि २०६ ग्राम सीसा २३८ ग्राम यूरेनियम के विच्छिन्न होने से बनता है, इसलिए ३०६ ग्राम का सीसा २३८×३०६/२०६ = ३५७ ग्राम यूरेनियम से बना होगा। अब यह जो ११६ ग्राम यूरेनियम बच रहा है यह प्रारम्भ में ३५७+११६ = ४७६ ग्राम रहा होगा।

यूरेनियम की अर्द्ध-जीवन अवधि ४५६ करोड़ वर्ष की है। ४७६ ग्राम यूरेनियम आधा-आधा बनने [२३८ ग्राम होने] में ४५६ करोड़ वर्ष लगे, फिर ११६ ग्राम बच रहने में भी ४५६ करोड़ वर्ष लगे अर्थात् अब तक उस चट्टान को बने ४५६ + ४५६ = ९१२ करोड़ वर्ष हो गए हैं। उल्लेखनीय है कि रेडियोधर्मी तत्व अस्तित्व में आते ही विच्छिन्न होना प्रारम्भ कर देते हैं और उन पर वायुदाब, ताप और रासायनिक क्रियाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे यह बात भी पुष्ट होती है, कि यदि शरीर भी प्रकाश और प्राकृतिक तत्वों का सम्मिश्रण है तो आज की अपेक्षा पूर्व पुरुषों की बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक और आत्मिक क्षमताएँ वस्तुतः बहुत अधिक प्रखर और स्पष्ट रही होंगी। हमारे शरीरों का सूक्ष्म तत्व भी तो विच्छिन्न होता रहा है और इसी कारण हम आज अधिक स्थूल हैं। सम्भवतः इस जानकारी के आधार पर ही गुणवार युगों की कल्पना ऋषियों ने की होगी।

रेडियो सक्रिय तत्वों की खोज का यह उदाहरण मात्र था। अब तक ऐसी सबसे प्राचीन चट्टान कनाडा में पायी गई है और उपर्युक्त गणना की तरह उसकी आयु १९८ करोड़ वर्ष निकाली गई है। अगली पंक्तियों में भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर जब पृथ्वी की उत्पत्ति का समय निकालेंगे तो पाठक देखेंगे कि भारतीय सिद्धान्त जो परम्परागत रूप में चले आते रहे हैं, कितने प्रामाणिक हैं।

"ॐ तत्सदध ब्रह्मणो द्वितीय परार्धे श्री श्वेत वाराह कल्पे जम्बूद्वीपे भारत खण्डे आर्यावर्तेक देशान्तर्गत कुमारिका नाम क्षेत्रे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे .... ।"

यह वह संकल्प है जिसका पाठ प्रत्येक धार्मिक और मांगलिक अनुष्ठान के प्रारम्भ में किया जाता है।

परार्ध की व्याख्या करते हुए श्री मद्भागवत पुराण में लिखा है—

एवं विधैरहोरात्रैः काल गत्योप लक्षितैः।
अपक्षितामि वास्यापि [ब्रह्मणः] परमापुर्वयः शतम्॥
यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते।
पूर्वः परार्धोउपक्रान्तो ह्यरोऽद्य प्रवर्तते॥

—३/११-३२-३३

अर्थात् ब्रह्माजी की आयु १०० वर्ष की है, उसमें पूर्व परार्ध [५० वर्ष] बीत चुका, द्वितीय परार्ध प्रारम्भ हो चुका। त्रैलोक्य की सृष्टि ब्रह्माजी के दिन प्रारम्भ होने से होती है और दिन समाप्त होने पर उतनी ही लम्बी रात्रि होती है। एक दिन एक कल्प कहलाता है।

मनुस्मृति में कल्प की लम्बाई के लिए लिखा है—

देविकानां युगानां तु सहस्त्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च॥

—१/७२

अर्थात् ब्रह्माजी का एक दिन [कल्प] देवताओं के १००० युगों [चतुर्युगों] के बराबर होता है उतनी ही लम्बी रात्रि होती है।

यह एक दिन १—स्वायम्भुव, २—स्वारोचिष, ३—उत्तम, ४—तामस, ५—रैवत, ६—चाक्षुष ७—वैवस्वत, ८—सावर्णिक, ९—दक्ष सावर्णिक, १०—ब्रह्म सावर्णिक, ११—धर्म सावर्णिक, १२—रुद्र सावर्णिक, १३—देव सावर्णिक और १४—इन्द्र सावर्णिक। इन १४ मन्वन्तरों में विभाजित किया गया है, इनमें से सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। एक मन्वन्तर १०००/१४ चतुर्युगों के बराबर अर्थात् ७१$\frac{३}{८}$ चतुर्युगों के बराबर होता है। भिन्न संख्या पृथ्वी के २७$\frac{१}{४}$ प्रतिशत झुके होने और ३६५$\frac{१}{४}$ दिन में पृथ्वी की परिक्रमा करने के कारण होती है। इस भिन्न को जैसा कि सूर्य सिद्धान्त $\frac{१}{१९}$ के अनुसार दो मन्वन्तरों के बीच का सन्धिकाल मान लिया गया है जिसका परिमाण ४८०० दिव्य वर्ष सत्ययुग काल माना गया है अतः अब

मन्वन्तरों का काल = १४×७१ = ९९४ चतुर्युग

१५ सन्धियों का समय = ४८००×१५ = ७२००० = ६ चतुर्युग

कुल ९९४ + ६ = १००० चतुर्युगों में मन्वन्तर बँटे हैं और एक चतुर्युग १२०० दिव्य वर्षों का हुआ। यहाँ प्रत्येक मन्वन्तर के बीच ४८०० वर्ष का सतयुग होना बताया गया है। उससे यह बात पुष्ट हो जाती है कि कलियुग का द्वितीय चरण प्रारम्भ होने से पूर्व ४८०० वर्षों तक धर्म की चरम उन्नति होगी और सत्युग जैसा सुख लोगों को मिलेगा। एक युग में अनेक युग वर्तने के सिद्धान्त के आधार पर ऐसा प्रत्येक मन्वन्तर में होता रहेगा।

महाभारत वन पर्व १८८/२२-२६ में चतुर्युगों का परिमाण अलग-अलग बताते हुए लिखा है—"४००० दिव्य वर्षों [अर्थात् ४-४ सौ वर्ष] उसके सन्ध्या व सन्ध्यांश होते हैं अर्थात् कुल ४८०० वर्ष का सतयुग, ३००० वर्षों का त्रेता युग उसकी संध्या व सन्ध्यांश के ३-३ सौ वर्ष कुल ३६०० वर्ष, २००० दिव्य वर्ष और २-२ सौ सन्ध्या व सन्ध्यांश = २४०० वर्ष का द्वापर और १००० वर्ष व १-१ सौ वर्ष का कुल १२०० वर्ष का कलियुग। इस हिसाब से एक चतुर्युग ४८००+३६००+२४००+१२०० वर्ष = १२०० दिव्य वर्ष हुए।

अब दिव्य वर्ष का मनुष्य वर्ष से हिसाब लगायें तो मनुस्मृति के अनुसार—

देव रात्रहनी वर्ष प्रविभागस्तयोःपुन ।
अहस्तत्रोद गयनं रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम् ॥

अर्थात् एक दिव्य रात-दिन मनुष्य के १ वर्ष के बराबर होती है। उत्तरायण सूर्य देवताओं का दिन और दक्षिणायन रात्रि होती है। देववर्ष और दिनों के वर्णन के आधार पर कभी भारतीय ज्योतिर्गणित का विवरण और उसके साथ सामयिक परिवर्तनों की चर्चा करेंगे तो पाठक यह देखकर आश्चर्य करेंगे, कि प्राचीन गणितज्ञ किस प्रकार आज के एक-एक दिन के इतिहास से परिचित रहे होंगे ।

इन गणनाओं से निम्न बातें हो गईं । १—ब्रह्माजी [पृथ्वी की उत्पत्ति काल] १५वें वर्ष के प्रथम दिन के ६ मन्वन्तर और ७ सन्धियाँ बिता चुके । २—७ वें वैवस्व मन्वन्तर के २७ चतुर्युग अपनी सन्धियों के साथ बीत चुके, ३—प्रचलित २८वें चतुर्युग में भी प्रथम तीनों [सतयुग, द्वापर, त्रेता] युग बीत चुके, ४—अब कलियुग के विक्रम संवत् २०२६ तक ५०६६ वर्ष बीत चुके ।

इस हिसाब से ६ मन्वन्तर = ६ ×७१ चतुर्युग= ६×७१×१२०० दिव्यवर्ष = ५११२००० दिव्यवर्ष । इनकी ७ सन्धियों का समय ३३६०० दिव्यवर्ष, ७वें वैवस्वत मन्वन्तर के १२००×२७ = ३२४००० दिव्यवर्ष, ३ युग इस वैवस्वत के बीत चुके, उनका योग ४८००+ ३६००+२४०० दिव्यवर्ष = १०८०० कुल, ५११- २००० + ३३६०० + ३२४००० + १०८०० = ५४८०४०० दिव्यवर्ष । दिव्यवर्ष में ३६० का गुणा करने से मनुष्य वर्ष आ जाते हैं । [भारतीय मतानुसार वर्ष ३६० दिन का ही होता है । प्रक्षेप सन्धियों के रूप में जुड़ गया ।] वह ५४८०४००× ३६० = १९७२९४४००० मनुष्यवर्ष होते हैं । इसमें कलियुग के ५०६६ वर्ष जोड़ने से १९७२९४४०००+५०६६ = १९७२९४९०६६ वर्ष अक्षरों में एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्तीस लाख उनचास हजार उनहत्तर वर्ष पृथ्वी की आयु हुई । भूगर्भशास्त्री यह आयु एक अरब अट्ठानवे करोड़ वर्ष निकालते हैं, जबकि उनकी गणना पदार्थों के गुण से संयुक्त है और भारतीय आँकड़े शुद्ध गणित । दोनों से इतनी सीमा तक साम्य भारतीय दर्शन की सत्यता और प्रामाणिकता ही सिद्ध करता है ।

यह दोनों तरह के तुलनात्मक अध्ययन यह बताते हैं कि पृथ्वी के आविर्भाव काल से ही शुद्ध ज्ञान [वेदों] के रूप में भारतीय धर्म और संस्कृति का अपौरुषेय विस्तार हुआ । हम अल्पबुद्धि लोग उस ज्ञान का अवगाहन न कर पायें तो उसमें संस्कृति का क्या दोष, ज्ञान का क्या दोष ? दोष तो अपना ही है जो उस ज्ञान को पकड़ने और अपना मनुष्य जीवन धन्य बनाने की अपेक्षा हम भौतिक जीवन, जगत और पदार्थों में उलझे पड़े अपनी मानवीय क्षमताओं को व्यर्थ गँवा रहे हैं ।

बुद्धि से परे विराट् का ज्ञान

दृश्यमान संसार के सम्बन्ध में कई बातें कही जा सकती हैं । एक यह कि भगवान ने इस सृष्टि को अपने स्तर की खेल-खिलवाड़ करने के लिए रचा है । एक यह कि इसके अन्तर्गत काम करने वाले नियमोपनियम इतने संतुलित हैं कि एक-दूसरे से बिना टकराये अपना रास्ता बनाते और तालमेल बिठाते रहते हैं ।

यह भी कहा जा सकता है कि प्रकृति के हर घटक में अनन्त शक्ति भरी पड़ी है, पर वह प्रसुप्त स्थिति में रहती है । यदि वह किसी प्रकार जग पड़े, तो पदार्थ से लेकर मनुष्य तक प्रचण्ड शक्तिशाली हो सकता है ।

जहाँ एक ओर नियम है, वहाँ साथ ही उसके अपवाद भी मौजूद हैं । ऐसी दशा में यही उचित है कि सृष्टि की उन समस्याओं को जो अविज्ञान हैं—खोजने के स्थान पर अपने कर्त्तव्यों और आधारों का चिन्तन करना पर्याप्त समझें, जो हमें किसी अनुभूत एवं सुनिश्चित दिशा की ओर ले जाती हैं ।

बड़ी शक्तियाँ छोटी शक्तियों का शोषण करें, यह प्राकृतिक नियम नहीं । प्रकृति आश्रित को जीवन देने और उसके विकास में सहायता करने का कार्य करती है । 'छोटी पीपल' महत्त्वपूर्ण औषधि है, वह अपना विकास किसी घने छायादार वृक्ष के नीचे ही कर सकती है । इलायची, नारियल के वृक्ष की छाया में बढ़ती है । बड़ा पेड़ अपने नीचे के छोटे पेड़ों को खा ही जाय यह सार्वभौम नियम नहीं है । धरती से सूर्य और चन्द्रमा दोनों बराबर दिखायी देते हैं पर वस्तुतः सूर्य चन्द्रमा की तुलना में ४०० गुना बड़ा है । इतना ही नहीं पृथ्वी से चन्द्रमा जितनी दूर हैं, उसकी तुलना में सूर्य की दूरी भी ४०० गुनी अधिक है । यही कारण है कि पृथ्वी से दोनों का आकार लगभग समान दीखता है ।

इसके अतिरिक्त एक नई बात और भी है कि चन्द्रमा का आकार क्रमशः हर पूर्णिमा से छोटा होता जाता है, कारण कि वह पृथ्वी से दूर हटता जाता है । पृथ्वी का सूर्य ज्वार-भाटों के समय उसकी शक्ति खींचता रहता है, इसलिए उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति का घटना भी दूर हटने का प्रमुख कारण है । बताया जाता है कि यह दूरी हर महीने ३० हजार मील बढ़ जाती है ।

जब चन्द्रमा की दूरी इतनी बढ़ जायेगी कि समुद्र में ज्वार-भाटे लाने योग्य न रहे तो वह एक स्थान पर रुक जायेगा और दुर्बल होने पर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उसे वापस अपनी ओर खींचने लगेगी । उन दिनों धरती का अपनी धुरी पर घूमना भी धीमा पड़ जायेगा । तब दिन भी बड़े होने लगेंगे और महीनों का विस्तार भी बढ़ जायेगा । तब सूर्य और चन्द्र ग्रहण भी वैसे सघन न दीखेंगे जैसे अब दीखते हैं । हो सकता है तब महीना ४० दिनों का होने लगे और दिन भी ड्योढ़ा बढ़ जायेगा । समुद्र में ज्वार न उठना भी उसके पानी को अस्वच्छ बनाता जायेगा । पर यह सब जल्दी नहीं हो रहा है । उसमें अभी हजारों वर्ष लगेंगे ।

न्यू कास्टल विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड के लूनर एण्ड प्लेनेटरी साइंस विभाग के मूर्धन्य वैज्ञानिक डॉ. केथ रनकोर्न के अनुसार कुछ समय पूर्व इस पृथ्वी कक्ष में दर्जनों चन्द्रमा दृष्टिगोचर होते थे, परन्तु ४.२ से ३.८ अरब वर्ष पूर्व उनमें से एक दो को छोड़कर सभी गिरकर धूल में मिलते चले गए । चन्द्रमा के इस प्रकार पतन का कारण बताते हुए उसने कहा है कि उन सबका विषुवत् वृत्त के चारों ओर परिभ्रमण पथ अस्थाई एवं अव्यवस्थित था ।

नवीनतम खोजों में अपने सौर-मण्डल में उपग्रहों की सदस्यता के बारे में बताया गया है कि मंगल पर २, बृहस्पति पर १२, शनि पर ९, यूरेनस पर ५ और नेपच्यून पर २ चन्द्रमा

भ्रमण करते हैं । मात्र हमारा एक चन्द्रमा ही सौर-मण्डल का एक उपग्रह नहीं है । कुल मिलाकर इनकी संख्या ३१ है । इनमें से सर्वाधिक तीव्रगामी चन्द्रमा की भी पहचान की गई है, जो प्रत्येक सात घण्टे में एक बार बृहस्पति का चक्कर लगा लेता है । इस उपग्रह की भ्रमण गति ७०४०० मील प्रति घण्टा अर्थात् पृथ्वी कक्ष में स्थित चन्द्रमा से तीन गुनी अधिक है ।

खगोल विज्ञानियों ने सौर-परिवार के सबसे गरम पिण्ड आयो' को खोज निकाला है । 'आयो' बृहस्पति का एक चन्द्रमा है, जो अभी तक ज्ञात सभी उपग्रहों से सर्वाधिक गर्म है । अमेरिकी अंतरिक्षयान वोयेजर द्वारा इन्फ्रारेड टेलिस्कोप से किए गए एक अध्ययन के अनुसार यह ग्रह पिण्ड करीब ७०×१०^{१२} वॉट ऊर्जा उत्पन्न कर रहा है । जिस प्रकार पृथ्वी का चन्द्रमा समुद्र जल पर खिंचाव उत्पन्न कर उसमें ज्वार-भाटे उत्पन्न करता है, उसी प्रकार बृहस्पति भी सम्पूर्ण 'आयो' पर एक प्रकार का आकर्षण बल आरोपित करता है, जिससे उसका आकार कुछ टेढ़ा हो जाता है । इस बल के कारण उसमें उत्पन्न झुकाव से गर्मी पैदा होती है और गर्भ में स्थित द्रव्य पिघल कर द्रव अवस्था में आ जाता है । द्रवीभूत गन्धक समय-समय पर चन्द्रमा के बाह्य पटल को छेदकर बाहर निकलता रहता है और ज्वालामुखी का कारण बनता है । वैज्ञानिकों के अनुसार इस चन्द्रमा में गर्मी उत्पादन और उत्सर्जन का एक चक्र चलता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप ज्वालामुखियों का निर्माण होता है । जिस समय गर्मी बढ़ती है, उस समय 'आयो' अत्यन्त ठण्डा हो जाता है, क्योंकि उस वक्त इस तपन को वह अपने गर्भ में छिपाये रहता है, जो आगामी ज्वालामुखी शृंखला के रूप में बाहर आ जाती है, जिसका अस्तित्व कई दशकों तक बना रहता है ।

अन्तरिक्ष में सबसे समीपवर्ती तारा प्रथम किन्नरी है, जो हमसे प्रायः चार प्रकाश वर्ष दूर है । यह सभी दृश्यमान तारक अपनी आकाशगंगा के सदस्य हैं । अपनी मंदाकिनी आकाशगंगा का व्यास प्रायः एक लाख, उसकी मोटाई २० हजार प्रकाशवर्ष है । इस मंदाकिनी परिवार में प्रायः डेढ़ अरब तारे हैं । वे सभी तो अपनी दूरी या प्रकाश न्यूनता के कारण दीख नहीं पाते, पर उनमें से हजारों ऐसे हैं, जिन्हें हमारी आँखें देख पाती हैं । रात्रि को वे ही आकाश में टँगे, घूमते और जगमगाते दीखते हैं ।

तारों का भी अन्त होता है । वैज्ञानिकों के अनुसार यह तीन प्रकार से हो सकता है । यदि तारा सूर्य के आकार का है तो इसका हाइड्रोजन ईंधन समाप्त हो जायेगा और यह एक लाल महादैत्य के रूप में विस्तृत होकर धीरे-धीरे सिकुड़ जायेगा । अन्त में ठण्डा होकर काले पदार्थ के रूप में बदल जायेगा जो इतना भारी होगा कि एक माचिस के बराबर पदार्थ में टनों भार हो । यदि यह सूर्य से कुछ बड़ा हुआ तो एक "सुपरनोवो" के रूप में फूट पड़ेगा और सघन न्यूट्रॉन छोड़ेगा जिन्हें खगोलविद् 'पुल्सर' कहते हैं जो हमेशा रेडियो किरणें तथा कभी-कभी प्रकाश छोड़ा करते हैं ।

यदि तारक सूर्य से बहुत ज्यादा बड़ा होगा तो उसका अन्त एक तरह की रहस्यमय पहेली है । इसका विस्फोट विपरीत दिशा में हो । इसके न्यूट्रॉन्स इसके गुरुत्व बल को सहन न कर सकें । सभी कण पिसकर नष्ट हो जायें, जिन पर भौतिकी के नियम लागू न किए जा सकें । जिसे 'ब्लेक होल' अवस्था कह सकते हैं ।

हमारी मंदाकिनी में दो प्रकार के तारे हैं । छोटे और बड़े किन्तु तीसरे प्रकार के ब्लेक होल्स अभी खोज का विषय हैं । यह सत्य है कि आकाश में कुछ ऐसे स्थान हैं, जिन्हें ब्लेक होल कहा जा सकता है । इनके पास से एक्स किरणों के विकिरण आ रहे हैं । इन पर खोज करना अभी बाकी है ।

खगोल वैज्ञानिकों के अनुसार आरम्भिक महाविस्फोट के उपरान्त आकाशगंगाएँ एक-दूसरे से दूर तेजी के साथ भाग रही हैं । इस घुड़दौड़ की गति को लाल सरकाव (रेड शिफ्ट) कहते हैं । इसमें पड़ने वाले अब तक के अन्तर को देखते हुए यह अनुमान लगाया गया है कि महाविस्फोट हुए बीस अरब वर्ष बीत गए हैं । इस काल अनुमान के विज्ञान को 'कास्मोगोनी' कहा जाता है ।

खगोल विद्या की अब अनेक धारा-उपधाराएँ बन गई हैं । रेडियो-एस्ट्रोनॉमी, एक्सरे-एस्ट्रोनॉमी, गामा-रे एस्ट्रोनॉमी जैसी उपधाराओं के सहारे यह पता लगाया जाता है कि तारकों की गति, जवानी, प्रकृति एवं सम्भावना में क्या अन्तर पड़ा और अगले दिनों क्या परिवर्तन होने जा रहा है ।

सौर-मण्डल का ताजा नक्शा विज्ञान की प्रसिद्ध पत्रिका 'नेशनल ज्योग्राफी' में छपा है । उसके अनुसार सूर्य परिवार के सदस्य ग्रह-उपग्रहों से सम्बन्धित मान्यताओं में भारी सुधार परिवर्तन किया गया है ।

ग्रहों की संख्या में कुछ समय पूर्व ही तीन का नया समावेश हुआ है । यदि उनके विस्तार को प्रधानता न दी जाय तो छोटे ग्रह जो और भी इस परिधि में हैं जिन्हें स्वतन्त्र, सत्ता, धुरी, परिभ्रमण और सूर्य परिक्रमाओं की विशेषताओं के कारण ग्रह ठहराया जा सकता है और उनकी संख्या तीस से भी अधिक हो सकती है । जिस बहुचर्चित दसवें ग्रह की खोज अभी वैज्ञानिकों ने की है । उसके बारे में कहा जाता है कि वह उल्टी दिशा में चक्कर काट रहा है । इसी तरह नेपच्यून के सबसे बड़े उपग्रह 'टाइटोन' के परिभ्रमण पथ के सम्बन्ध में भी सोवियत वैज्ञानिकों ने ढूँढ निकाला है कि वह अपने मूल ग्रह के विपरीत दिशा में परिभ्रमण कर रहा है जिसके कारण कुछ लाख वर्ष बाद नेपच्यून से इसके टकरा जाने की पूर्ण सम्भावना है ।

सृष्टि में संव्याप्त भौगोलिक शक्तियों का पारस्परिक सन्तुलन इतना बढ़िया तथा निर्णायक है, कि उसमें कहीं भी व्यतिरेक या व्यवधान नहीं पड़ता है, परन्तु यदि संयोगवश ऐसा हुआ तो उनका आंशिक परिवर्तन भी समस्त मानव जाति के लिए विनाश का सूचक बन सकता है ।

ब्रह्माण्ड परिवार के सदस्य ग्रह-नक्षत्र जहाँ विकास की दिशा में बढ़ रहे हैं, वहीं उनमें वृद्धता, मरण और पतन का क्रम भी अपने ढंग से चल रहा है । उसे देखते हुए यह सम्भावना स्पष्ट है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड को भी एक दिन मरण के मुख में जाना पड़ेगा । तारक और आकाशगंगायें स्वाभाविक वृद्धता के शिकार होकर मृत्यु के ग्रास होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे । जब समस्त ब्रह्माण्ड बूढ़ा हो जायेगा तो महाकाल उसे भी अपनी कराल डाढ़ों से चबाकर रख देगा । जन्म के बाद विकास, विकास के बाद मरण का सिद्धान्त तो ब्रह्माण्ड को भी चपेट में लिए बिना छोड़ने वाला नहीं है ।

स्थूल को ही न देखते रहें, सूक्ष्म को भी समझें

मोटी आँखों से जब हम अपने चारों ओर नजर उठाकर देखते हैं तो जमीन, पेड़, खेत, आसमान, सूरज, तारे जैसी मोटी वस्तुएँ ही देखकर रह जाते हैं पर जब बारीकी के साथ खोज-बीन करते हैं तब पता चलता है कि हम प्रचण्ड शक्ति से भरे-पूरे एक ऐसे समुद्र में मछली की तरह रह रहे हैं जिसके एक-एक कण को अद्भुत और आश्चर्यजनक कहा जा सकता है ।

मिट्टी का एक ढेला, छदाम से भी कम कीमत का होता है । उसमें अणु-परमाणुओं की एक अगणित संख्या रहती है, ऐसी दशा में मूल्य और महत्त्व की दृष्टि से उसकी कीमत नगण्य ही होगी । छोटे ढेले के प्रहार का परिणाम स्वल्प-सा होता है, फिर हाथ से छूने और आँख से देखने तक में न आने वाले परमाणु की प्रतिक्रिया ही कितनी हो सकती है ?

यह मोटी दृष्टि हुई । शक्ति के अनन्त भण्डारागार की प्रत्येक छोटी इकाई अपने आप में इतनी महत्ता संजोये बैठी है कि दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है । जब एक कण का यह हाल है तो फिर इन अगणित इकाइयों के पुंज की सत्ता और महत्ता को किस प्रकार समझा और आँका जाय ।

अतिलघु से अतिविशाल कितना बड़ा है ? इसकी गणना तो दूर, कल्पना कर सकना भी मानवी बुद्धि से बाहर की बात है । परमाणु भी अब सबसे छोटी इकाई नहीं रही । उनके भी भेद-उपभेद हैं । वह भी एक सौर-मण्डल है और इस सबसे छोटी इकाई की सूक्ष्मता के अन्तर्गत अपना एक अलग संसार भरा और बसा पड़ा है । उसकी अद्भुतता विराट् ब्रह्माण्ड की विलक्षणता से कम रहस्यमय है ।

फिर विराट् कितना बड़ा है ? इसकी थोड़ी कल्पना करने के लिए पहले उस दूरी का नाप लेने के फीते का स्वरूप समझना चाहिए प्रकाश एक सेकण्ड में एक लाख छियासी हजार मील चलता है । यह प्रकाश समस्त पृथ्वी का एक चक्कर एक सेकण्ड के सातवें हिस्से जैसे स्वल्प समय में लगा लेता है । पृथ्वी से चन्द्रमा तक पहुँचने में डेढ़ मिनट और सूर्य तक पहुँचने में आठ मिनट लगते हैं । यह है प्रकाश की चाल, इस चाल से चलते हुए एक वर्ष में जितनी दूरी तक पहुँच सके, वह हुआ एक प्रकाशवर्ष । खगोल भौतिकी में गणना की माप यह प्रकाशवर्ष ही है ।

हमारे सबसे निकट का तारा प्रोक्सिमा सेन्टोरी चार प्रकाशवर्ष मील दूर है । ऐसे तारों में एक सूर्य भी है जिसके सौर परिवार में अपनी पृथ्वी जुड़ी हुई है । अपनी आकाशगंगा जिसमें ऐसे-ऐसे हजारों तारे हैं, उसका नाम मन्दाकिनी है । मन्दाकिनी आकाशगंगा का व्यास लगभग एक लाख प्रकाशवर्ष है ।

अपनी आकाशगंगा ध्रुव द्वीप की १९ आकाशगंगाओं में से एक है । पर ऐसे ध्रुव द्वीप भी विराट् में असंख्य बिखरे पड़े हैं । माउण्ट पैलोमर पर लगी हुई २०० इंच व्यास के लेन्स वाली संसार की सबसे बड़ी 'हाले' दुरबीन से पता लगाया गया है कि विराट् में कम से कम एक अरब आकाशगंगाएँ हैं ।

एक के ऊपर एक रखते हुए परमाणुओं की एक सीधी रेखा खड़ी की जाय तो मनुष्य की ऊँचाई तक पहुँचने में १० अरब परमाणुओं की एक विशाल श्रृंखला होगी । मनुष्य के शरीर में कुल मिलाकर ७ के ऊपर २० शून्य लगा दिए जायें तो उसकी संख्या जितनी होगी उतने परमाणु होते हैं । जब एक मनुष्य का शरीर इतने परमाणुओं का समूह है तो धरती के सम्पूर्ण व्यास में कितने परमाणु होंगे, इसकी गणना या कल्पना करना गणितशास्त्र की परिधि से आगे निकल जाना है । फिर प्रश्न पृथ्वी का ही कहाँ रहा ? बात विराट् ब्रह्माण्ड की हो रही है । धरती सौर-मण्डल का एक नन्हा-सा ग्रह—सूर्य एक तारा—ऐसे तारों की लाखों की संख्या वाली अपनी आकाशगंगा और फिर एक अरब आकाशगंगाओं से भरा-पूरा विराट् ब्रह्माण्ड । परमाणु के उसके खण्डकों को सबसे छोटा मानें तो उसकी तुलना में यह विराट् कितना बड़ा है, यह गणित की अथवा कल्पना की परिधि में कैसे समा सकेगा ।

विज्ञानी नीत्सेवोर कहते थे कि अस्तित्व के विशाल नाटक में हम ही अभिनेता हैं और हम ही दर्शक हैं । मनुष्य अपने आप में एक रहस्य है । मावनी कलेवर शरीर और मस्तिष्क, उन्हीं तत्वों से बना है जिनसे कि यह ब्रह्माण्ड । अपने आपकी खोज और ब्रह्माण्ड की खोज में असाधारण साम्य है । अणु की रचनात्मक शक्ति का अभी विकास नहीं किया गया और विनाशोन्मुख मानवी चित्त वृत्ति केवल ध्वंस सोचती है और उसी का उपक्रम खड़ा करती है । अस्तु अणु की शक्ति को अभी ध्वंसात्मक बमों की परिभाषा के अन्तर्गत ही देखा समझा जाता है । उसकी सृजनात्मक शक्ति का जब सृजनोन्मुख मनुष्य उपयोग करेगा तब पता चलेगा कि उसकी सृजन सम्भावना ध्वंस से कम नहीं वरन् अधिक ही है ।

अणु बम तथा हाइड्रोजन बम चार प्रकार की हानियाँ पहुँचाते हैं—(१) धमक, (२) ताप, (३) आरम्भिक न्यूक्लीय अभिक्रिया, (४) रेडियो सक्रिय विकिरण । औसत बम की धमक से ६ मील के घेरे की वस्तुओं का पूर्ण विनाश, १२ मील तक भयंकर क्षति और २५ मील तक आंशिक हानि होती है । ताप के प्रभाव से १० मील की परिधि में ६५ प्रतिशत प्राणियों की तत्काल मृत्यु हो जाती है । १७ मील के घेरे में लोग भयंकर रूप से बीमार अथवा ऐसे अपंग हो जायेंगे जिनका जीना मरने से भी महँगा पड़ेगा । ३० राण्टजेन इकाई का रेडियो विकिरण मनुष्य को घुला-घुला कर मारता है और उन्हें जल्दी ही मौत के मुँह में धकेल देता है । छोटे जीव उस विकिरण से और भी जल्दी मरते हैं । यह विकिरण वर्षा की तरह धूल के रूप में बरसता है और १२ मील तक ५००० (र. शक्ति) से १०० मील तक २३०० की शक्ति से, १७० मील तक ५०० की शक्ति से और २५० मील तक ३० र. की शक्ति से बरसता है । यह ३० र. शक्ति भी २५० मील के घेरे को ऐसा बना देती है, जिसमें रहना प्राण संकट का खतरा मोल लेना है ।

यह विकिरण धूल घूम-फिरकर समुद्र में पहुँचती है । जल जन्तु उससे प्रभावित होकर बीमार पड़ते और मरते हैं । वह जल बादल बनेगा और जमीन पर बरसेगा । यह विकिरण प्रभाव उनमें भी प्रवेश करेगा । वर्षा का जल ही तो कुएँ, तालाब, नदी आदि के माध्यम से प्राणी पीते हैं । वर्षा का जल ही तो घास-पात और वृक्ष-वनस्पतियों का जीवन है । अन्न, शाक और फल वर्षा के कारण ही उगते, बढ़ते और फलते हैं । इन सब में जब

विषाक्तता भर जायेगी तो मनुष्य का शरीर ही नहीं, मन भी विषैला हो जायेगा और वह साँप की तरह अपनी साँस से विषाक्त फुसकारें छोड़ता हुआ एक-दूसरे के प्राण हरण का प्रयास करेगा ।

यह ध्वंसात्मक परिचय हुआ । सृजन की सम्भावनाओं में कितनी ही बातें ऐसी स्वीकार कर ली गई हैं, जो वैज्ञानिक प्रयासों से अगले ही दिनों साकार हो जायेंगी । सर्दी-गर्मी-वर्षा ऋतुओं में हेर-फेर करना मानवीय इच्छा के अन्तर्गत आ जायेगा । समुद्र की अथाह जल राशि से उसके खारीपन को विलग करके मीठा पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध किया जा सकेगा । मरुस्थल तथा ऊबड़-खाबड़, पहाड़ी और अनुत्पादक भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकेगा । समुद्र में वनस्पतियाँ उगाकर आहार की समस्या का समाधान सम्भव होगा । मानुषी श्रम का बोझ बिजली सँभाल लेगी और लोग केवल मनोरंजन जैसा श्रम करके गुजर कर लिया करेंगे । संसार के एक कोने में रहने वाले मनुष्यों का सम्पर्क दूसरे छोर पर रहने वाले के साथ क्षण भर में स्थापित हो सकेगा आदि-आदि ।

मौसम को मनुष्य की आवश्यकता के अनुरूप बनाया जा सके, इसका आधार तो विदित हो गया है और इस सम्भावना को स्वीकार कर लिया गया है । प्रश्न खर्चे का है । यदि उतने साधन उपकरण जुटाये जा सकें तो निःसन्देह मौसम को इच्छानुकूल बना लेना मनुष्य के हाथ में होगा । दुनिया में सारी हवा को इच्छानुसार बहाया जा सकता है पर उसके लिए हर दिन इतनी शक्ति का प्रयोग करना होगा जितनी दस लाख परमाणु बमों के विस्फोट से उत्पन्न होती है । वायुमण्डल में एक सेन्टीग्रेड तापमान बढ़ाना हो तो दो हजार परमाणु बम विस्फोट जितनी शक्ति चाहिए । मध्यम श्रेणी के तूफान को रोकने में मेगाटन अणु शक्ति खर्च करनी पड़ेगी ।

इतनी शक्ति जुटाकर मौसम को सदा अनुकूल बनाये रखने के लायक शक्ति सम्पादित कर सकना, कम से कम इस शताब्दी में तो सम्भव नहीं ही हो सकेगा । इसलिए अभीष्ट ऋतु परिवर्तन की बात सोचने का अभी समय नहीं आया । अभी तो हमें इसी की तैयारी करनी चाहिए कि अपने को ऋतुओं के अनुकूल ढालें और उनके प्रभावों से कोई संकट उत्पन्न होने से पूर्व उसकी रोकथाम कर लें । स्वास्थ्य रक्षा के लिए जिस प्रकार कपड़े, मकान, छाता, हीटर, कूलर आदि का प्रबन्ध करते हैं, उसी तरह भूमि और वनस्पतियों पर पड़ने वाले ऋतु प्रभाव से कोई संकट उत्पन्न होता हो तो उसकी रोकथाम करें । भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि की पूर्व सूचनाएँ यदि प्राप्त की जा सकें तो उस चेतावनी के आधार पर आपत्ति से बचाव के लिए बहुत कुछ सोचा और बहुत कुछ किया जा सकता है । इसके लिए एन्टीना उपग्रह एक डेढ़ हजार किलोमीटर की ऊँचाई पर निरन्तर पृथ्वी की परिक्रमा करते रहने के लिए भेजे गए हैं । वे उपलब्ध सूचनाएँ भेजकर धरती निवासियों को मौसम की तात्कालिक सम्भावनाओं से अवगत कराते रहते हैं । इन उपग्रहों में ओटोमेटिक पिक्चर ट्रांसमीशन और फ्रीक्वेंसी माडलेटेड ट्रान्समीटर लगे रहते हैं और उनके आधार पर इस प्रयोजन के लिए संसार भर में स्थापित साठ वेधशालाओं में चित्र आते रहते हैं । उन्हीं के आधार पर मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणियाँ की जाती रहती हैं ।

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि मौसम को अनुकूल बनाने और बदलने में इतनी प्रचण्ड शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी तो अनागत क्रम से जो ऋतु परिवर्तन होते रहते हैं, वे अनायास ही क्यों होते होंगे ? उनके लिए भी किसी अतिरिक्त शक्ति स्रोत की आवश्यकता क्यों न पड़ती होगी ? बात सही है । शक्ति के बिना कोई हलचल नहीं हो सकती । शरीर से लेकर संसार के किसी भी काम को देखा जा सकता है । हलचलें शक्ति की ही प्रतिक्रिया हैं । अशक्तता और गतिहीनता एक ही बात है । शक्ति के बिना किसी भी स्तर की गति नहीं हो सकती, फिर ऋतु परिवर्तन जैसी उलट-पुलट अनायास ही कैसे हो सकती है ।

सूर्य द्वारा प्रतिक्षण, ताप एवं प्रकाश के रूप में, प्रचण्ड ऊर्जा प्रवाहित होती है । उसका बहुत बड़ा विकिरण अंश पृथ्वी के ऊपर की विरल पर्तों द्वारा सोख लिया जाता है और उस संग्रहीत विकिरण भण्डार में से छन-छनकर जो ऊर्जा सघन वायुमण्डल में आती है उसी के आधार पर मौसम बदलता है, वायुमण्डल की सघन पर्त ऊपर की विरल पर्त से जब, जितनी, जिस प्रकार प्रभावित होगी, ऋतु परिवर्तन का उतना ही स्वरूप सामने आवेगा । कहना न होगा कि सूर्य विकिरण से संचित ऊर्जा विरल पर्त पर इतनी अधिक है कि यदि किसी प्रकार वह सघन पर्त को चीरकर ज्यों की त्यों नीचे उतर आये तो इस धरती को क्षण भर में भूनभान कर रख दे ।

यह कुछ थोड़ी-सी सम्भावनाएँ हैं जो अणु शक्ति के सृजनात्मक सदुपयोग द्वारा अगले दिनों सहज ही उपलब्ध की जा सकेंगी । फिर यह भी याद रखना चाहिए कि केवल अणु शक्ति की विस्फोटपरक ही एक नहीं है । अग्नि, जल, वायु, आकाश—इन चार तत्वों की अनेक ऐसी प्रचण्ड शक्ति हैं जिनके माध्यम से इतना कुछ हो सकता है, जिसे स्वर्ग की पौराणिक कल्पनाओं की तुलना में न्यून नहीं वरन् अधिक ही कहा जा सके ।

मोटी आँख से देखने पर विश्व के दृश्यमान पदार्थों का मूल्यांकन अकिंचन ही ठहरता है, पर गहन स्तर पर उतरने से उसकी क्षमता असामान्य सिद्ध होती है । ठीक इसी प्रकार हाड़-माँस का पुतला मनुष्य दीखता भर तुच्छ है, वस्तुतः इसकी महत्ता इतनी बड़ी है कि यह अपनी समग्र शक्ति का उपयोग कर सकने में समर्थ हो तो दूसरा परमेश्वर सिद्ध हो सकता है ।

ऊँचाई की मनःस्थिति और परिस्थिति

पृथ्वी के धरातल पर सब कुछ सामान्य है । जितना ऊँचा उठना होगा अन्तरिक्ष विचरण में उतना ही आनन्द मिलेगा । जमीन पर पड़े-खड़े होने वाले को इर्द-गिर्द की चीजें ही दीखती हैं । पर पहाड़ की चोटी पर खड़ा या वायुयान पर चढ़ा व्यक्ति दूर-दूर तक के क्षेत्र का पर्यवेक्षण कर सकता है । यह आँखों की विशेषता नहीं, ऊँचाई पर पहुँचने पर सहज ही मिलने वाली विशालता की उपलब्धि है ।

जमीन पर धूल उड़ती, धुन्ध छायी और गर्मी अनुभव होती है, पर यदि कुछ ऊँचाई पर पहुँचा जाय तो इनमें से एक भी गड़बड़ी शेष नहीं रह जाती । सब कुछ साफ स्वच्छ दीखता है । मैदानी इलाकों की अपेक्षा पहाड़ों पर रहने वाले अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ रहते हैं । गर्मी के दिनों में साधन सम्पन्न लोग पहाड़ी स्थानों पर चले जाते हैं । शीतलता अनुभव करते और स्वास्थ्य

लाभ करते हैं । यह ऊँचा चढ़ने का चमत्कार है । सर्वविदित है कि जितना ऊँचा उठा जायेगा उतनी ठण्डक मिलेगी । जीवन-क्रम में उत्कृष्टता की दिशा में उठना व्यक्तित्व का मूल्य बढ़ाता और सुख-शान्ति प्रदान करता है ।

पृथ्वी की एक सीमा तक ही वायुमण्डल है और थोड़ी दूर तक गुरुत्वाकर्षण । उस परिधि को पार कर लेने पर रॉकेट अन्तरिक्ष में पहुँचकर अपने को भार रहित स्थिति में पाते हैं । इतना ही नहीं वे बिना किसी ईंधन की सहायता के अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करने लगते हैं । धरातल पर थोड़ी-सी दूर चलना भी कठिन पड़ता है और वाहनों को गति देने के लिए ईंधन का प्रबन्ध करना पड़ता है किन्तु ऊँचा उठ जाने पर ऐसे किसी अवरोध का सामना नहीं करना पड़ता । अवरोध, विग्रह और संकट नीचे के स्तर पर रहने वालों को ही हैरान करते हैं । ऊँचे पर खड़े होने वाले पर नीचे से फेंके गए पत्थर पहुँचते ही नहीं, वरन् उलटकर उसी के सिर पर गिरते हैं । जबकि नीचे खड़े या गड्ढे में गिरे व्यक्ति पर एक बच्चा भी पथराव करके कचूमर निकाल सकता है । प्रकृति के यही सिद्धान्त मानव जीवन की अगति-अवगति पर भी लागू होते हैं ।

परिधियों के पार करने में ही प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है । थोड़ा ऊँचा उठ जाने पर तो सर्वत्र आनन्द और सन्तोष ही शेष रह जाता है । रॉकेट ऊपर उछालते समय भारी शक्ति नियोजित करनी पड़ती है । आवाज भी होती है और खतरा भी रहता है । पर जैसे ही निचली परिधि से आगे उठ सकना सम्भव हुआ कि सब कुछ सरल ही सरल बन जाता है । रॉकेटों से लेकर मनुष्यों तक को एक ही तरह का अनुभव होता है ।

पृथ्वी से ६५ मील की ऊँचाई तक वायुमण्डल की सामान्य प्रकृति में विशेष अन्तर नहीं आता । इससे ऊपर सूर्य वायु के अणुओं को परमाणुओं में, ऑक्सीजन को ओजोन में, तोड़ने की प्रक्रिया द्वारा ही दिन-रात गर्म किए रहता है ।

अन्तरिक्ष में एक स्थान वह आता है, जहाँ वायु अत्यधिक विरल हो जाती है । वहाँ की गर्मी को तेज गर्मी कहने की अपेक्षा 'विकिरण की अवशोषण क्रिया' कहना अधिक उपयुक्त है अर्थात् वायु प्राणभूत होती रहती है । सूर्य की ऊष्मा एक तरह से यहीं वायु कणों में सवारी करती है ।

पृथ्वी के ऊपर पाये जाने वाले आयन मण्डल की अनेकानेक विशेषताएँ हैं । ऐसी जिन्हें चमत्कारी विभूतियाँ या उच्चस्तरीय विशेषताएँ कह सकते हैं । पृथ्वी वाले उनकी कल्पना ही कर सकते हैं । यदि उस क्षेत्र में पहुँचने का और आँखें पसार कर देखने का अवसर मिल सके तो किसी अद्भुत लोक में जा पहुँचने की ही अनुभूति उसे होगी । चमत्कारों की कल्पनाएँ करने वाले देवलोक की अलौकिकताओं के सम्बन्ध में जिन्होंने कुछ सुना-पढ़ा है, वे उस क्षेत्र को लगभग मिलता-जुलता ही अनुभव कर सकते हैं । ऊँचाई अपने आप में चमत्कार है । उस दिशा में जो जितना उठता है उसे अपनी मनःस्थिति ही नहीं बाहर की परिस्थिति भी जादुई, प्रसन्नतादायक एवं उल्लासभरी अद्भुत दिखायी पड़ती है ।

आयन मण्डल (आयनोस्फियर) केवल सूर्य की ही अति बैंगनी किरणों के प्रभाव को कम नहीं करता, अपितु अन्य ग्रह-नक्षत्रों और तारों से जो प्रकाश और उनका विकिरण पृथ्वी की ओर प्रवाहित करता है, उसे भी संशोधित करता रहता है परन्तु 'आयनोस्फियर' अधिकांशतः सूर्य से प्रभावित होते हैं । उन पर सूर्य के द्वारा प्रक्षेपित किरणों के प्रभाव से ही ऋतुओं के परिवर्तन होते हैं । ये प्रभाव कभी कम और कभी अधिक होते हैं ।

आयनोस्फियर के मुख्यतः चार स्तर होते हैं । इन स्तरों को वैज्ञानिकों ने डी, ई, एफ-वन और एफ-टू अक्षरों द्वारा सम्बोधित किया है । 'डी' क्षेत्र केवल दिन के समय बनता है । पृथ्वी की सतह से इसकी ऊँचाई ३५ से ४५ मील ऊपर तक है । 'ई' क्षेत्र अधिक आयनीकृत है । यह ४५ से ७० मील ऊपर तक है । इसके १२० मील ऊपर तक एफ-वन स्तर है और फिर २५० मील की ऊँचाई तक एफ-टू । एफ-टू सबसे ज्यादा अस्थायी होता है और यह सर्दियों के मौसम में एफ-वन स्तर से मिलकर एक रूप हो जाता है ।

सूर्य से निःसृत होने वाली शक्तिशाली किरणों में कुछ अदृश्य किरणें ऐसी भी होती हैं, जिनसे हमारी चमड़ी का रंग बदल सकता है । इन अदृश्य किरणों को पराबैंगनी किरणें कहा जाता है । यदि ये अधिक मात्रा में आने लगें तो शरीर निष्प्राण भी हो सकता है । आयन मण्डल इन किरणों के घातक प्रभाव को ऊपर ही रोक लेता है ।

आयनोस्फियर की उपस्थिति पृथ्वी के ऊपरी धरातल पर रेडियो-तरंगों के प्रसारण का कारण है । इसके कारण दूसरे अन्य ग्रहों के प्रभाव पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाते । सूर्य में होने वाले परिवर्तनों का इस आयन मण्डल (आयनोस्फियर) पर भी प्रभाव पड़ता है । सूर्य की अल्ट्रावायलेट विकिरण तथा विद्युत प्रभावित कणों की शक्तिशाली धाराएँ, जो सूर्य के ऊपरी धरातल से तेज़ी से निकल रही हैं, उस समय, जब सूर्य पर कोई परिवर्तन होते हैं, हलचलें होती हैं, तो उसका प्रभाव आयन मण्डल के कवच को प्रभावित करता है । उस समय पृथ्वी का वातावरण अचानक बदलने लगता है, उस समय पृथ्वी पर सबसे अधिक संख्या में चुम्बकीय तूफान, आयन मण्डल में जलजलाहट तथा रेडियो सम्बन्धों के कटाव होते हैं । इसी समय मध्यरात्रि में अक्षांशों तक में ध्रुवीय आभाएँ विचित्र प्रकाश रश्मियाँ आदि देखे जाते हैं ।

पृथ्वी के ऊपरी वातावरण की परिस्थितियों को देखने से लगता है यह पृथ्वी को अनिष्ट से बचाने वाला छाता तथा अनेकानेक उपयोगी अनुदान बरसाने वाला मेघ मण्डल है । सूर्य को, अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों को, धरती निवासियों के लिए अनेक अनुदान भेजने का माध्यम यह आयनोस्फियर ही है ।

मनुष्य जीवन को भूलोक माना जाय तो उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और श्रेष्ठ व्यक्तित्व ही उसका आयनोस्फियर है । उसकी सहायता से ही सुरक्षा और प्रगति, शान्ति और समृद्धि के बहुमुखी उद्देश्य पूरे होते हैं ।

आकाश की तरह हमारी चेतना की उच्च पर्तें

भूतकाल में जो कुछ जाना या माना गया था उसे सच ही माना जाय, यह आवश्यक नहीं । ज्ञान अनन्त है, सत्य असीम है । उसका एक अंश ही मनुष्य की सीमित बुद्धि के लिए जान सकना सम्भव है । प्रगति की क्रमबद्ध यात्रा पर चलते हुए हम

सत्य के अधिक निकट पहुँचते जाते हैं । इसलिए हमें सत्य की हर नई किरण का स्वागत करने के लिए तैयार रहना चाहिए । पूर्वाग्रहों पर अड़कर बैठ जाना और जो कहा जाता रहा है, उसी को सच मानते रहना बुद्धिमत्ता का चिह्न नहीं है ।

कभी धरती के केन्द्र और अन्य ग्रह-तारकों को उसकी परिक्रमा करता हुआ माना जाता था । आकाश को चादर की तरह चपटा माना जाता था पर अब वैसी मान्यता नहीं रही । चन्द्रमा की गणना अब नव-ग्रहों में से हटा कर पृथ्वी के एक उपग्रह में कर दी गई है । सौर-मण्डल में तीन ग्रह और नये सम्मिलित हो गए हैं ।

आकाश के बारे में अतीतकाल के लोग विभिन्न मान्यताएँ रखते हैं । यूनानी लोगों की मान्यता थी कि बादलों में निवास करने वाले देवताओं का सारे आकाश पर राज्य है । वह लोहे की तरह कड़ा है और धरती के कन्धों पर टिका है ।

मैक्सिकोवासी २२ आकाश मानते थे । धरती से ऊपर १३ आकाश स्वर्ग हैं जिनमें से सिर्फ पहला ही आँखों से दीखता है । धरती के नीचे ९ आकाश हैं जो नरक हैं ।

दक्षिण अमेरिका के रेड इण्डियन सात आकाश मानते हैं, जिनमें से पाँच पृथ्वी के ऊपर तथा दो नीचे हैं । वे इनके रंग भी भिन्न बताते हैं, क्रमशः नीला, हरा, पीला, लाल, सुनहरा, बैंगनी और सफेद । इन सब के अधिपति अलग-अलग आकृति-प्रकृति के देवता लोग हैं ।

आकाश यों एक और अनन्त है । ऊँचाई के अनुपात से उसकी स्थिति में जो अन्तर पड़ता है उसे ध्यान में रखते हुए गणनाकर्ताओं ने उसका ही पर्तों के हिसाब से विभाजन कर दिया है ।

पृथ्वी के धरातल से लगभग १००० मील ऊँचाई तक भारी-हल्की हवा का अस्तित्व है । इस ऊँचाई को चार भागों में विभक्त किया गया है—

(१) ट्रोपोस्फीयर (क्षोम मण्डल)—यह समुद्र सतह से ३५ हजार फुट तक है । समस्त वायु का लगभग तीन चौथाई वजन इसी क्षेत्र में है । हमारे जीवनोपयोगी तत्व का अधिकांश भाग इसी क्षेत्र में भरा पड़ा है । आसानी से श्वास ले सकना २० हजार फुट तक ही सम्भव है । इससे ऊपर उठना हो तो ऑक्सीजन का मॉस्क चेहरे पर बाँध कर ही उड़ सकते हैं । इस ऊँचाई पर बर्फानी हवायें चलती हैं, जिनके कारण मुँह और कान के अवयव तक काँपने लगते हैं और बोलना ही नहीं, सुनना भी कठिन हो जाता है । बोलने, सुनने की कठिनाई तो इससे ऊपर उठने पर भी बनी ही रहेगी । ऊपर क्रमशः हवा पतली होती जाती है जिसमें मुँह के लिए ध्वनि कम्पनों को छोड़ सकना कठिन है । बोलने का प्रयत्न करने पर मुँह से सिर्फ 'गों-गों' सरीखी कुछ ऐसी आवाजें निकलेंगी जैसी कोई-कोई जीव-जन्तु बोलते हैं ।

(२) स्ट्रैटोस्फीयर (समतापमण्डल)—क्षोम मण्डल की ३५ हजार फुट ऊँचाई पार करने के उपरान्त स्ट्रैटोस्फीयर का क्षेत्र आरम्भ होता है जो धरती से ६५ मील की ऊँचाई तक चला जाता है । ४५ हजार फुट से ऊपर खुला शरीर नहीं जा सकता । इसके लिए एयरकन्डीशन जेट या बी-३६ किस्म का वायुयान चाहिए । यदि वहाँ कोई प्राणी खुला घूमे तो हवा का दबाव कम होने से उसकी नसें फट जायेंगी । मस्तिष्क विक्षप्त हो जायेगा । इस परिधि में ऐसे आवरण ओढ़ना आवश्यक है जिनके कारण वायु का उतना ही दबाव बना रहे जितने का कि शरीर अभ्यस्त है । इस क्षेत्र की वायु शून्य से नीचे ६७ डिग्री ठण्डी होती है जिसे बिना सुरक्षा आवरण के सहन नहीं किया जा सकता । समुद्र की गहरी सतह में रहने वाले जल-जन्तुओं को यदि ऊपर ले आया जाय तो जल का दबाव कम हो जाने से वे गुब्बारे की तरह फट जायेंगे । उपर्युक्त ऊँचाई पर कोई प्राणी यदि बिना आवरण होगा तो स्वभावतः वह भी गुब्बारे की तरह फटकर आकाश में छितरा जायेगा ।

१६ हजार मील की ऊँचाई पर ब्रह्माण्ड किरणों की वर्षा शुरू हो जाती है । वे सूर्य से निकल कर अन्य ग्रहों की तरह अपनी पृथ्वी पर भी बरसती हैं । वे इतनी घातक होती हैं कि देखते-देखते मृत्यु उपस्थित कर दें । अच्छाई यही है कि वे धरती तक पहुँच ही नहीं पातीं ऊपर आकाश में अवरुद्ध हो जाती हैं इससे ऊपर का आकाश ही उन्हें रोक लेता है । इस पर्त पर तो वह छुट-पुट बूँदा-बाँदी ही कर पाती हैं ।

(३) ओजोनोफीयर (ओजोनमण्डल)—यह पृथ्वी से २०-२५ मील ऊँचाई पर है । यह विचित्र है । नीचे वाले आकाश की शून्य से ६७ डिग्री नीचे की ठण्ड अचानक १७० डिग्री फारेनहाइट गर्मी में परिवर्तित हो जाती है । यहाँ गाढ़ी ऑक्सीजन है जो सूर्य द्वारा फेंकी गई ब्रह्माण्ड किरणों और अल्ट्रावायलेट किरणों को रोक कर अपने में आत्मसात कर लेती है । इसी किरणें सोखने की क्रिया के कारण ऑक्सीजन इतनी गर्म हो जाती है । चालीस मील ऊपर जाने पर कभी रात नहीं होती है ।

(४) एक्साफीयर—यह अन्तिम आकाश अत्यन्त भयावह है । यहाँ घोर अन्धकार छाया रहता है । रंग-बिरंगी रोशनियों के तूफान उठते रहते हैं । कुछ दूरी तक तो शून्य से २८ डिग्री नीचे तक की ठण्ड रहती है, पीछे अकल्पनीय गर्मी बढ़ जाती है । पानी खौलने की गर्मी २१२ डिग्री फारेनहाइट होती है, पर यहाँ तो वह अंक ४००० डिग्री जा पहुँचता है । यह गर्मी कल्पना शक्ति से बाहर की है । पृथ्वी के आयन मण्डल की ऊपरी पर्त से सूर्य की ब्रह्माण्ड किरणों और अल्ट्रावायलेट किरणों के साथ घोर संघर्ष होता है । वे नीचे उतरना चाहती हैं । वायु की तह उन्हें रोकती हैं ।

इस पर्त की वायु इतनी पतली होती है कि तोप छोड़ने की आवाज भी निकटवर्ती को सुनाई न पड़ेगी । इसी क्षेत्र में उल्काओं की वर्षा भी होती है । विदित है कि अनन्त आकाश में किन्हीं ग्रह-नक्षत्रों के टूटे हुए खण्ड उल्काओं के रूप में उड़ते रहते हैं, वे कभी-कभी घूमते-घामते पृथ्वी के आयन मण्डल में आ धँसते हैं । इनकी चाल प्रायः १७०००० मील प्रति घण्टा की होती है । उनमें कोई तो मटर के दाने जितनी ही होती है, कोई बहुत बड़ी । एक्साफीयर में प्रवेश करते ही वे जल-भुन कर नष्ट हो जाती हैं । इनमें से जो बड़ी होती हैं, उनका जलना तारे टूटने के रूप में हमें रात को दिखायी पड़ता है । कुछ उल्काएँ बहुत बड़ी भी होती हैं और जलते-भुनते अपना कुछ अंश धरती तक भी पहुँचा देती हैं । वह टुकड़ा भी कई बार धरती से टकरा कर गहरा गड्ढा बना देता है ।

स्पष्ट है कि आकाश के ऊँचे स्तर पर हवा हल्की और पतली पड़ती जाती है, साथ ही सूर्य एवं अन्य ग्रहों का वह प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, जो भूतल पर प्रायः बहुत ही कम मात्रा में आ पाता है, उसे तो मध्यवर्ती आच्छदन ही बीच में रोक लेते हैं ।

मानवीय सत्ता भी अनन्त आकाश की तरह ही सुविस्तृत है । उसके ऊँचे पर्त क्रमशः धूल, धुंध और सघन भारीपन में युक्त होते जाते हैं और अन्ततः वह स्तर आ जाता है जिसमें ब्रह्म के प्रकाश और प्रभाव को अधिक स्पष्टतापूर्वक देखा-समझा जा सके । नीचे स्तर पर रह रही अन्तःचेतना भारीपन और ओछेपन से ही लदी रहती है किन्तु जब भावनाओं की उच्च भूमिका में उठा जाता है तो क्रमशः हम अधिक उज्ज्वल एवं विशिष्ट अनुभूतियों का रसास्वादन करते हैं । ऊँचा उठने वाले ही वह देखते और पाते हैं, निम्न भूमिका में पड़े हुए लोगों के लिए वह आश्चर्यजनक ही है, पर उपलब्ध कर सकना सम्भव नहीं ।

जीवात्मा, परमात्म सत्ता का प्रतिनिधि

ईश्वर और जीव में लघुता और महानता की दृष्टि से अकल्पनीा अन्तर है । इतने पर भी अंश और अंशी के नाते वे सभी विशेषताएँ जीव में विद्यमान हैं जो उसके उद्गम स्रोत ईश्वर में होती हैं । प्रश्न केवल विकसित और अविकसित स्थिति का है । अविकसित जीव तुच्छ है, इस पर भी उसमें वे सभी सम्भावनाएँ मौजूद हैं, जिनसे उसका विकास सहज ही विराट् रूप धारण कर सकता है । आग की छोटी-सी चिन्गारी, मूलतः ब्रह्माण्ड व्यापी अग्नि तत्व का एक घटक है । जिसे अवसर मिले तो प्रचण्ड दावानल बनकर सुदूर क्षेत्रों को अपनी लपेट में ले सकती है । वह चाहे तो अपना चिन्गारी स्वरूप समाप्त करके विश्वव्यापी अग्नि तत्व में विलीन हो सकती है । जीव जब तक चाहे अपनी छोटी स्थिति में रहे—संकल्प करे तो महान् बन जाय और उसको उत्कण्ठा हो तो अपने उद्गम में विलीन होकर पूर्ण ब्रह्म भी बन सकता है । तुच्छता से महानता में विकसित होने में प्रधान बाधा उसकी संकल्प शक्ति की ही तो है । उसी की अभिवृद्धि के लिए साधना का मार्ग अपनाया जाता है ।

विराट् और लघु की परमात्मा और आत्मा की प्रत्यक्ष तुलना सूर्य और परमाणु से कर सकते हैं । सूर्य का विस्तार और शक्ति भण्डार असीम है, पर नगण्य-सा दीखने वाला परमाणु भी तुच्छ नहीं है । अपनी छोटी स्थिति में उसकी शक्ति भी उतनी ही है जितनी कि विस्तृत स्थिति में विशालकाय सूर्य की । ब्रह्म और जीव का अनुपात भी इसी प्रकार है ।

सूर्य का व्यास पृथ्वी से १०९ गुना बड़ा है । व्यास ८६५३८० मील, परिधि २७००००० मील और उसका क्षेत्र ३३६३००० अरब वर्ग मील है । यदि वह पृथ्वी से ९३०००००० मील की दूरी पर न होकर कुल १०००००० मील दूर होता तो हमें आकाश में एकमात्र सूर्य ही सूर्य दिखायी देता ।

सूर्य की शक्ति का कोई वारापार नहीं है । उसकी सतह का तापक्रम ६०० डिग्री सेन्टीग्रेड है, तो अन्दर का अनुमानित ताप १५०००००० डिग्री सेन्टीग्रेड । १२ हजार अरब टन कोयला जलाने से जितनी गर्मी पैदा हो सकती है उतनी सूर्य एक सेकण्ड में निकाल देता है । अनुमान है कि सूर्य का प्रत्येक वर्ग इन्च क्षेत्र ६० अश्वों की शक्ति (हॉर्स पावर) के बराबर शक्ति उत्सर्जित करता है । उसके सम्पूर्ण ३३६३०००००००००००० वर्ग मील क्षेत्र में शक्ति का अनुमान करना हो तो इस गुणनखण्ड को हल करना चाहिए—३३६३०००००००००००० × १७६० × ३ × १२ इतने हार्स पावर की शक्ति न होती तो यह जो इतनी विशाल पृथ्वी और विराट सौर जगत आँखों के सम्मुख प्रस्तुत है, वह अन्धकार के गर्त में बिना किसी अस्तित्व के डूबा पड़ा होता ।

इस प्रचण्ड क्षमता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि ९३०००००० मील लम्बी और ८८० गज मोटी बर्फ की झिल्ली के ऊपर उसको केन्द्रित (फोकस) कर दिया जाय तो सारी बर्फ एक सेकण्ड में गलकर बह निकलेगी । सूर्य के १ वर्ग इन्च में जिस ऊर्जा व प्रकाश की कल्पना की गई है, वह ५ लाख मोमबत्तियों के एक साथ जलाने की शक्ति के बराबर होता है । यह सारी शक्ति एक साथ पृथ्वी पर फेंक दी जाती है तो यहाँ की मिट्टी भी जलने लगती । जलने ही नहीं लगती, यह भी एक प्रकार का सूर्य पिण्ड हो जाती जबकि सामान्य स्थिति में पृथ्वी को सूर्य शक्ति का २२० करोड़वाँ हिस्सा ही मिलता है । ३ अरब आबादी मनुष्यों की, १०० अरब आबादी पक्षियों की, १००० अरब आबादी अन्य जीव-जन्तुओं की और पृथ्वी पर पाये जाने वाले विशाल वनस्पति जगत तथा ऋतु संचालन का सारा कार्य उस २२० करोड़वें हिस्से जितनी शक्ति से सम्पन्न हो रहा है । पूरी शक्ति, जो सौर-मण्डल के करोड़ों ग्रहों, उपग्रहों तथा क्षुद्र ग्रहों का नियमन करती है, प्रकाश और गर्मी देती है । अपने १९ करोड़ ९८ लाख महाशंख भार को २०० मील प्रति सेकण्ड की भयानक गति से २५ करोड़ वर्ष में पूरी होने वाली विराट् आकाश की परिक्रमा भी वह अपनी इसी शक्ति से पूरी करता है । उस सम्पूर्ण शक्ति और सक्रियता को जाँचा जाना सम्भव नहीं है, उसे भावनाओं में केवल मात्र उतारा जाना सम्भव है ।

सूर्य और पृथ्वी की तुलना नहीं हो सकती किन्तु अपने स्थान पर पृथ्वी और उस पर रहने वाले प्राणियों की सामर्थ्य को देखकर भी दाँतों तले उँगुली दबानी पड़ती है और सोचना पड़ता है कि विश्व की प्रत्येक इकाई अपने आप में एक परिपूर्ण सूर्य है ।

पृथ्वी के लोग भी इस तरह का विकास किया करते हैं । मनुष्य जाति ९०००००००००००००००००० फुट पौण्ड ऊर्जा प्रतिवर्ष आकाश में भेजती रहती हैं जबकि हमारे जीवन को अपने समस्त ब्रह्माण्ड को गतिशील रखने के लिए सूर्य प्रति सेकण्ड चार सौ सेक्टीलियन अर्थात् दस अरब इक्कीस करोड़ किलोवाट शक्ति अपने सारे मण्डल को बिखेरता और गतिशील रखता है । परमाणु की इस महाशक्ति की सूर्य की महाशक्ति से उसी प्रकार तुलना की जा सकती है, जिस प्रकार परमाणु की रचना से सौर-मण्डल की रचना की तुलना की जाती है । वस्तुतः परमाणु सूर्य और समस्त ब्रह्माण्ड के समान त्रिक है । जो परमाणु में है, वही सौर-मण्डल में है, जिस प्रकार परमाणु अपने नाभिक के बिना रह नहीं सकता, प्रकृति और ब्रह्म की एकता का रहस्य भी यही है ।

हाइड्रोजन परमाणु का एक इलेक्ट्रॉन अपने केन्द्र के चारों ओर एक सेकण्ड में ६००० खरब चक्कर काटता है। परमाणु की रचना सौर-मण्डल के सदृश है। उनके भीतर विद्युत कण भयंकर गति से घूमते हैं फिर भी उसके पेट में बड़ा-सा आकाश भरा रहता है। परमाणुओं के गर्भ में चल रही भ्रमणशीलता के कारण ही इस संसार में विभिन्न हलचलें हो रही हैं। यदि वे सब रुक जायें तो आधा इन्च धातु का वजन तीस लाख टन हो जायेगा और सर्वत्र अकल्पनीय भार जड़ता भरा दिखायी पड़ेगा।

हाइड्रोजन संसार का सबसे हल्का तत्व है और वह सारे विश्व में व्याप्त है। उसके एक अंणु का विस्फोट कर दिया जाय तो उसकी शक्ति संसार के किसी भी तत्व की तुलना में अधिक होगी। जो जितना हल्का है वह उतना ही आग्नेय, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान और विश्वव्यापी। यह कुछ अटपटा-सा लगता है, पर है ऐसा ही।

किसी गुब्बारे में ३०० पौण्ड हवा भरी जा सकती है तो हाइड्रोजन उतने स्थान के लिए १०० पौण्ड ही पर्याप्त होगा, उसी प्रकार जितने स्थान में एक औंस पानी या २/३ औंस हाइड्रोजन रहेगा, उतने स्थान को मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के प्रकाश अणुओं का १२२४ वाँ भाग ही घेर लेगा। यदि प्रयत्न किया जाय तो इन अणुओं की सूक्ष्मतम अवस्था में पहुँच कर विराट विश्वव्यापी आत्म-चेतना के रूप में अपने आपको विकसित और परिपूर्ण बनाया जा सकता है।

सर्गे सर्गे पृथग्रूपं सन्ति सर्गान्तराण्यपि।
तेष्वप्यन्तः स्थसर्गोधाः कदलीदल पीठवत्॥

—योगवशिष्ठ ४/१८/१६-१७

आकाशे परमाण्वन्तर्द्रव्यादेरणुकेऽपि च।
जीवाणुर्यत्र तत्रेदं जगद्वेत्ति निजं वपुः॥

—योगवशिष्ठ ३/४४/३४-३५

अर्थात् "जिस प्रकार केले के तने के अन्दर एक के बाद एक पर्तें निकलती चली आती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक सृष्टि के भीतर नाना प्रकार के सृष्टि-क्रम विद्यमान हैं। इस प्रकार एक के अन्दर अनेक सृष्टियों का क्रम चलता है। संसार में व्याप्त चेतना के प्रत्येक परमाणु में जिस प्रकार स्वप्न लोक विद्यमान है उसी प्रकार जगत में अनन्त द्रव्य के अनन्त परमाणुओं के भीतर अनेक प्रकार के जीव और उनके जगत विद्यमान हैं।"

हमारे लिए वर्ष ३६५$\frac{1}{4}$ दिन का होता है, पर सूर्य के लिए वह अपनी एक हजार किरणों के घूमने भर का समय, सूर्य का प्रकाश हर क्षण पृथ्वी के आधे भाग पर पड़ता है अर्थात् सूर्य का एक सेकण्ड पृथ्वी के निवासी के लिए १२ घण्टे। कीट-पतंगों के लिए तो उसे कल्प ही कहना चाहिए। सूर्य अरबों वर्ष से जी रहा है और करोड़ों वर्ष तक जियेगा पर इतनी अवधि में तो मनुष्यों की लाखों पीढ़ियाँ मर-खप चुकीं, यदि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक जितने लोग जन्म ले चुके, उन सबके नाम लिखना सम्भव हो तो उसके लिए पृथ्वी के भार से कम कागज की आवश्यकता न पड़ेगी। सूर्य का एक जन्म इतना बड़ा है कि मनुष्य उसकी तुलना में अरबवें हिस्से की भी जिन्दगी नहीं ले पाया। ठीक यही बात मनुष्य की तुलना में कीट-पतंगों की है। वायुमण्डल में ऐसे जीव हैं जो इतने सूक्ष्म हैं कि उनको इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से ही देखना सम्भव है, उनमें एक ही कोश (सेल) होता है। उसमें केन्द्रक सूर्य का ही एक कण होता है, अन्य तत्वों में कोई भी खनिज, लवण या प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट मिलेंगे अर्थात् जीव, चेतना और प्रकृति का समन्वय ही दृश्य जगत है।

मनुष्य में गर्मी अधिक है, १०० वर्ष का जीवन उसे प्राप्त है, पर कीड़े-मकोड़े शक्ति के एक अणु और शरीर के एक कोश से ही मनुष्य जैसी आयु भोग लेते हैं। मनुष्य जितने दिन में एक आयु भोगता है, उतने में कीटं-पतंगों के कई कल्प हो जाते हैं। प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक एन. एस. श्चेरविनोवस्की एक कृषि विशेषज्ञ थे, उन्होंने ५० वर्ष तक कीट-पतंगों के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया और उससे कृषि नाशक कीटाणुओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण खोजें कीं। उन्हीं खोजों में भारतीय दर्शन को प्रमाणित करने वाले तथ्य भी प्रकाश में आये। वे लिखते हैं—टिड्डियों की सामूहिक वंशवृद्धि की अवधि सूर्य के एक चक्र अर्थात् ११ वर्ष से है अर्थात् ११ वर्ष में उनकी प्रलय और नई सृष्टि का एक क्रम पूरा हो जाता है। बीविल, जो चुकन्दर कुतरने वाला कीड़ा होता है, भी ११ वर्षीय चक्र से सम्बन्धित है, पर कुछ कीड़ों की सामूहिक वृद्धि २२ वर्ष, कुछ की ३३ वर्ष है। इस आधार पर उन्होंने लिखा है कि पृथ्वी का सारा जीवन ही सूर्य पर आधारित है। सिद्ध होता है कि नन्हें-नन्हें जीवाणु (बैक्टीरिया) तथा विषाणु (वायरस) सभी का जीवन कोश (नाभिक या न्यूक्लियस) सूर्य का ही प्रकाश स्फुलिंग और चेतन परमाणु है, जबकि उसके कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) में अन्य पार्थिव तत्व जीवन-चेतना सर्वत्र एक-सी है, परिभ्रमण केवल मन की वासना के अनुसार चलता रहता है। नाभिक में भी नाभिक (न्यूक्लिओलस) होते हैं, जिससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस प्रकार कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) का सूर्य नाभिक होता है, नाभिक अग्नि तत्व होता है, अग्नि या प्राण में ही मन होता है, उसी प्रकार मन की चेतना में ही विश्व-चेतना या ईश्वरीय चेतना समासीन होनी चाहिए।

सूर्य की तुलना में परमाणु तुच्छ है किन्तु परमाणु के भीतर भी उतना ही बड़ा संसार विद्यमान है जितना सूर्य के घेरे में उसका सौर परिवार। इस विश्व की सबसे छोटी इकाई क्या है? कुछ कहा नहीं जा सकता। परमाणु को कुछ समय पूर्व सबसे छोटी इकाई माना गया था, पर अब लगता है वह भी एक पूरा सौरपरिवार है और उसके भीतर भी सूक्ष्मता की पर्तें एक के भीतर एक छिपी पड़ी हैं और वे भी इतनी ही अधिक हैं जितनी कि विराट् की व्यापकता।

प्रसिद्ध डच व्यापारी एन्टानवान लीवेनहीक को जब भी अवकाश मिलता वह शीशों के कोने रगड़-रगड़ कर लेन्स बनाया करता। उसने एक बार एक ऐसा लेन्स बनाया जो वस्तु को २७० गुना बड़ा करके दिखा सकता था। उसने पहली बार गन्दे पानी और सड़े अन्न में हजारों जीवों की सृष्टि देखी। कौतूहलवश एक बार उसने वर्षा का शुद्ध जल एकत्र किया, उसकी मंशा यह जानने की थी कि वर्षा के शुद्ध जल में भी कीटाणु होते हैं क्या? वह यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसमें भी जीवाणु उपस्थित थे। उसने अपनी पुत्री मारिया को बुलाकर एक विलक्षण संसार दिखाया—यह जीवाणु जल में तैर ही नहीं रहे थे, वरन् तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हुए यह दिखा रहे थे कि उनमें यह इच्छाएँ, आकांक्षाएँ मनुष्य के समान ही हैं, भले ही मनुष्य जटिल कोश

प्रणाली वाला जीव क्यों न हो पर चेतना के गुणों की दृष्टि से मनुष्य और उन छोटे जीवाणुओं में कोई अन्तर नहीं था। यह जीवाणु हवा से पानी में आये थे।

इतना विशाल वट वृक्ष जिस बीज से अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित और बड़ा हुआ है, वह आधे सेण्टीमीटर व्यास से भी छोटा घटक रहा होगा। उस बीज की चेतना ने जब विस्तार करना प्रारम्भ किया, तब तना, तने से डालें, डालों से पत्ते, फूल, फल, जड़ें आदि बढ़ते चले गए।

मनुष्य शरीर की आकृति और विकास प्रक्रिया भी ठीक ऐसी ही है। वीर्य के छोटे से छोटे कोष (स्पर्म) को स्त्री के प्रजनन कोष ने धारण किया था। पीछे वही कोष, जिनमें मनुष्य स्त्री या पुरुष के शरीर की सारी सम्भानाएँ आकृति-प्रकृति, रंग-रूप, ऊँचाई, नाक-नक्शा आदि सब कुछ विद्यमान था, उसने जब बढ़ना प्रारम्भ किया तो वह अन्तरिक्ष की अनन्त शक्तियों को खींच-खींचकर शरीर रूप में विकसित होता चला गया। एक सेण्टीमीटर स्थान में कई अरब कोष आ सकते थे, जो उसी सूक्ष्मतम कोष से ५ फुट ६ इंच का मोटा शरीर दिखायी देने लगता है।

गर्भ के भीतर रहने तक तो यह लघुता याद रहती है, किन्तु बाहर की हवा लगते ही जीवन का मूलभूत आधार भूल जाता है और मनुष्य अपने आपको स्थूल पदार्थों का पिण्ड मात्र मानकर मनुष्य जीवन जैसी बहुमूल्य ईश्वरीय विरासत को गँवा बैठता है। हम यदि छोटे से छोटे अणु में भी जीवन की अनुभूति कर सके होते तो, जन-चेतना के प्रति हमारा दृष्टिकोण आज की अपेक्षा कुछ भिन्न ही होता है।

धरती पर जीवनोपयोगी परिस्थितियों का आधार जिन रासायनिक हलचलों और आण्विक गतिविधियों पर निर्भर है, वे अन्तरिक्ष से आने वाली रेडियो तरंगों पर अवलम्बित हैं। शक्ति के स्रोत उन्हीं में हैं। विविध-विधि हलचलों की अधिष्ठात्री इन्हीं को कहना चाहिए। हमारा परिवार, हमारा शरीर, हमारा अस्तित्व सब कुछ प्रकारान्तर से इन रेडियो तरंगों पर निर्भर है, जिन्हें हम आत्मा की तरह जानते भले ही नहीं, पर निश्चित रूप से अवलम्बित उन्हीं पर हैं। जीवन लगता भर अपना है, पर उसमें समाविष्ट प्राण इसी अदृश्य सत्ता पर निर्भर हैं, जिन्हें विज्ञान की भाषा में रेडियो तरंग पुंज कहते हैं।

यह तरंगें कहाँ से आती हैं? क्या यह धरती की अपनी सम्पत्ति या उपज हैं? इस प्रश्न का उत्तर विज्ञान इस रूप में देता है कि धरती के पास जो जीवन सम्पदा है, वह पूरी की पूरी उधार ली हुई है। सूर्य की ऊर्जा धरती पर एक सन्तुलित मात्रा में बिखरती है। रोशनी और गर्मी के रूप में उसे हम अनुभव करते हैं, अप्रत्यक्ष रूप से उसमें जीवन तत्व भी सम्मिलित है। सूर्य यदि न हो, अधिक दूर या अधिक पास हो तो फिर पृथ्वी भी अन्य ग्रहों की तरह किसी प्राणधारी के निवास के लिए सर्वथा अनुपयुक्त बन जायेगी। सूर्य की ऊर्जा को बहुत बड़ा श्रेय इस धरती को जीवन प्रदान करने का है।

लगता है सूर्य असीम शक्ति का भण्डार है, पर वस्तुतः वह भी विराट् ब्रह्माण्ड के महा संचालक ब्रह्म सूर्य का एक नगण्य-सा घटक ही है। सूर्य अपनी शक्ति उसी प्रकार अपने सूत्र संचालक से महासूर्य से प्राप्त करता है जैसे कि अपने पृथ्वी सौर-मण्डल के अधिष्ठता अपने सूर्य से।

जीव और ईश्वर की दूरी ही उसकी शक्ति को दुर्बल बनाती है। यदि यह दूरी घटती जाय तो निश्चित रूप से सामर्थ्य बढ़ेगी और स्थिति वह न रहेगी, जो आज कृमिकीटकों जैसी दिखायी पड़ रही है।

ब्रह्माण्ड की दूरी का अनुमान नहीं किया जा सकता। पर परमाणु के नाभिक के अन्दर के प्रोटॉनों की दूरी तो कुल १/२०००००००००००० इंच होती है। यदि यह दूरी आधा इंच होती, तो उन दोनों के बीच की दूरी १/४ इंच होने पर शक्ति सोलह गुनी होती है। १/२ इंच होने पर ६४ गुनी—तात्पर्य यह हैं कि ब्रह्माण्ड की जो शक्ति विस्तार में है, परमाणु में वही शक्ति प्रोटॉनों की समीपता में है। पति-पत्नी जितने प्रेम और आत्मीयता से रहते हैं, उनकी शक्ति उतनी ही अधिक होती है। इसका अनुमान इस व्याख्या से चलता है अर्थात् दो प्रोटॉनों के बीच में १/२०१०००.००००००० इंच की दूरी के बीच इतनी शक्ति होगी, जो इस्पात की १० इंच मोटी चादर को भी काटकर रख देगी। जीव और ईश्वर की समीपता का भी ऐसा ही सत्परिणाम हो सकता है। इस समीपता के आधार पर सामान्य को असमान्य देखा जा सकता है।

ध्यान—मन की एकाग्रता द्वारा अपनी प्राणमय चेतना (नाभिकीय चेतना) को सूर्य या किसी अन्य चेतना के साथ जोड़ देने से दो तत्वों का मिलन ऐसे ही हो जाता है जैसे दो दीपकों की लौ मिलकर एक हो जाती है। व्यक्ति अपनी अहंता भूलकर जब किसी अन्य अहंता से जोड़ लेता है तो उसकी अनुभूतियाँ और शक्तियाँ भी वैसी ही—इष्टदेव जैसी ही हो जाती हैं। ध्यान की परिपक्वता को एक प्रकार का संलग्न ही कहना चाहिए। वैज्ञानिक भी मानते हैं कि वह शक्ति विस्फोट की शक्ति से भी अधिक प्रखर होती है। आत्म-चेतना का ब्राह्मी-चेतना से मिलकर ब्रह्म साक्षात्कार इसी सिद्धान्त पर होता है।

आत्म चेतना का प्रबल आकर्षण बल

जीव और ब्रह्म में, आत्मा और परमात्मा में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए विभिन्न योग साधनाओं का सहारा लिया जाता है। उन सभी योग साधनाओं में, चाहे वह भक्तिपरक हों या ज्ञानपरक, कर्मपरक हों अथवा तन्त्र मार्गी, ध्यान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि यही वह सेतु है जिससे चढ़ कर आत्मा परमात्मा तक पहुँचती है, यही वह डोर है जिससे जीव ब्रह्म से बँधता है।

ध्यान में अपनी बिखरी हुई चित्तवृत्तियों को सब ओर से समेट कर एक दिशा में, इष्ट में नियोजित किया जाता है। शास्त्रकारों का कथन है कि ईश्वर का अनन्य भाव से चिन्तन, साधक को भी ईश्वर बना देता है। अग्नि में पड़ कर ईंधन जिस प्रकार अग्निमय हो जाता है, उसी प्रकार ध्यान द्वारा साधक अपनी चेतना को ईश्वर में आहुत कर स्वयं भी ईश्वर स्वरूप हो जाता है। यह ध्यान साधना का आलंकारिक प्रतिपादन नहीं है। ईश्वरीय सत्ता का तन्मयतापूर्वक भाव-भरा चिन्तन व्यक्ति चेतना को क्रमशः विकसित करता चलता है और आत्मा से परमात्मा की मंजिल तक पहुँचा जा सकता है। यह यात्रा किस प्रकार सम्पन्न होती है यह तो अनुभवगम्य ही है परन्तु इस साधना के पीछे छिपे तत्व दर्शन का विश्लेषण तो किया ही जा सकता है। सर्वविदित है कि बिखरी हुई शक्तियाँ और वस्तुएँ बहुत दुर्बल

होती हैं । बिखरी हुई बुहारी की सीकों से धूल का एक कण भी साफ नहीं किया जा सकता, परन्तु वे जुड़ कर एक सूत्र में बँध कर एक दिशा में कार्य करने लगती हैं तो सारी गन्दगी देखते ही देखते साफ हो जाती है । बिखरी हुई सूर्य किरणों से साधारण गर्मी तथा प्रकाश ही मिलता है परन्तु उन्हें केन्द्रित कर लिया जाय तो विराट् ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है । आजकल सौर ऊर्जा के माध्यम से कारखाने चलाने और बिजली पैदा करने की बात सोची जाती है, उसका उत्पादन भी सूर्य किरणों को केन्द्रित करके ही किया जाना सम्भव है ।

ईश्वरीय सत्ता की उल्लेखित विशेषताओं की तुलना में जीव की सामर्थ्य निःसन्देह तुच्छ हैं परन्तु उसमें विकास की भी उतनी ही सम्भावना है जितनी कि बीज के वृक्ष होने की । ध्यान के द्वारा उस सम्भावना को साकार करने से उपयुक्त पात्रता का विकास ही किया जाता है । यह सम्भावना किस प्रकार साकार होती है, यह उदाहरण द्वारा ही भली-भाँति समझा जा सकता है । प्रवाहमान नदी की धारा में कई बार भयंकर प्रवाह पड़ते देखे गए हैं । इनकी सामर्थ्य इतनी अधिक होती है कि उधर से गुजरने वाली नावों और जहाजों का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है । यह भंवर इसलिए पड़ते हैं कि नदी का सम्पूर्ण प्रवाह सब दिशाओं से उसी स्थान पर केन्द्रित हो जाता है । विभिन्न दिशाओं में बहने वाली हवा जब किसी बिन्दु पर केन्द्रित होने लगती है, एक स्थान पर आकर मिलने लगती है तो चक्रवात उत्पन्न हो जाते हैं । चक्रवातों की क्षमता कितनी विघातक है ? यह उदाहरण है किन्तु मानवीय चेतना में ध्यान के द्वारा जो शक्ति जाग्रत होती है वह व्यक्ति की समस्त क्षुद्रताओं, मलीनताओं, अवांछनीयताओं को उखाड़ फेंकने और मनुष्य को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर ले पहुँचने में समर्थ है ।

पिण्ड ब्रह्माण्ड की ही एक छोटी अनुकृति है । एक परमाणु भी अब उतना रहस्यमय हो गया है जितना कि ब्रह्माण्ड । केन्द्रीभूत होकर सिकुड़ कर कई ग्रह-नक्षत्र और तारे भी इतने शक्तिशाली हो गए हैं कि वे दिखायी पड़ने में तो ६० किलोमीटर व्यास के लगते हैं, परन्तु हमारे सौर-मण्डल के सूर्य जैसे दस सूर्यों के बराबर शक्ति रखते हैं और ऐसे एक-दो या दस-बीस नहीं, दो सौ तारों का पता लगाया जा चुका है । वे आकार में दिल्ली जैसे शहर से भी छोटे होने के बावजूद भी पृथ्वी को अपनी कक्षा में खींच कर अलग हटा सकते हैं ।

कैसे निर्माण होता है इन शक्तिशाली तेज पुर्जों का, यह भी कम रोचक-रोमांचक नहीं है । अन्तरिक्ष में फैली हुई हाइड्रोजन गैस का बादल, जिसे 'नेब्यूल' कहा जाता है, धीरे-धीरे सघन होता जाता है । जैसे-जैसे वह सघन होता है, उसमें ऊर्जा उत्पन्न होने लगती है । इनकी मध्यम चमक, असंख्य मीलों दूर देखी जा सकती है । इन तारों से निरन्तर शक्ति प्रवाह निकलता रहता है और उसके साथ ही इसका सिकुड़ना शुरू हो जाता है । यह प्रक्रिया अरबों-खरबों वर्ष में जा कर पूरी तरह होती है । तारे जैसे-जैसे सिकुड़ने लगते हैं उनका घनत्व भी बढ़ता जाता है । यह तो सर्वमान्य बात है कि वस्तु का घनत्व जितना अधिक होगा उसका आकर्षण बल और भार भी उतना ही बढ़ जाता है । निरन्तर सिकुड़ते रहने के बाद एक स्थिति ऐसी आ जाती है कि तारे उससे ज्यादा नहीं सिकुड़ सकते और एक ऐसे ऊर्जा स्रोत में बदल जाते हैं, जो आकार में अपने से कई गुने बड़े ग्रह-नक्षत्रों को भी उसकी कक्षा से खींच कर अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं । वैज्ञानिकों ने इन तारों को 'ब्लैक होल' का नाम दिया है ।

बिखराव इकाइयों की शक्ति को तो बिखेरता ही है, उसके वजन को भी हल्का कर देता है । कागज की बड़ी रील को, जिसका उपयोग अखबार छापने में किया जाता है, एक नदी पर फैलाया जाय तो वह पानी पर तैरने लगेगी, उसे लपेट कर पानी में डाला जाय तो वह अपने ही बराबर वजनदार दूसरी वस्तु को भी पानी में ले डूबेगी । कागज का वजन वही है परन्तु उसका फैलाव सिकुड़ने के कारण शक्ति बढ़ जाती है । मनुष्य की बिखरी हुई चित्तवृत्तियाँ भी जब एक केन्द्र पर एकत्रित होने लगती हैं तो वही शक्ति मिलकर कमाल कर दिखाती है ।

'ब्लैक होल' में भी इसी तरह की शक्ति सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है । उसके सीमा क्षेत्र में कणों के प्रबल आकर्षण से घनत्व असामान्य रूप में बढ़ जाने के कारण एक पिन के आकार की वस्तु का वजन दस हाथियों के बराबर हो जाता है । इस बात को यों भी कहा जा सकता है कि यदि दस हाथियों को ब्लैक होल के सीमा क्षेत्र में पहुँचाया जाय तो वहाँ उन सबका सम्मिलित आकार एक पिन से अधिक नहीं होगा अर्थात् ब्लैक होल का एक पिन यदि हाथी की पीठ पर रख दिया जाय तो उसके बोझ से दबकर हाथी जमीन पर बैठ जायेगा ।

असामान्य घनत्व और प्रबल आकर्षण शक्ति के कारण 'ब्लैक होल' क्षेत्र में प्रवेश करने वाली वस्तुओं की गति भी प्रकाश वेग के बराबर हो जायेगी । इसे यों भी समझा जा सकता है कि यदि कोई मनुष्य ब्लैक होल के क्षेत्र में प्रवेश कर जाय, तो वह गुरुत्वबल के कारण अस्तित्वहीन हो जायेगा, किन्तु उसकी गति प्रकाश की गति के बराबर हो जायेगी । प्रकाश की गति से चलने पर समय का अस्तित्व भी नहीं रह जाता है । अर्थात् ब्लैक होल की यात्रा करने और दस हजार अरब किमी. घूम लेने के बाद पृथ्वी पर वापस आयेगा तो वह घड़ी के हिसाब से वहीं का वहीं होगा ।

अणुओं की सघन स्थिति और प्रबल आकर्षण शक्ति वाला 'ब्लैक होल' साइगन्स एक्स—१ सूर्य से भी अधिक शक्ति उत्सर्जित करता है । इस ब्लैक होल से एक सेकण्ड में इतनी शक्ति उत्सर्जित होती है कि उससे पृथ्वी पर कारों को १०० किमी. प्रति घण्टा की गति से निरन्तर दौड़ाया जाय तो उन्हें १० अरब वर्षों तक चलाया जा सकता है ।

यह तो फैले हुए स्थूल कणों के सिकुड़ने और सघन होने से उत्पन्न हुई प्रचण्ड शक्ति है । अभी तक इससे कोई लाभ उठाने की सम्भावना नहीं दिखायी पड़ी है । कुछ लोगों ने यह विचार जरूर किया है कि पृथ्वी पर जब प्राकृतिक ऊर्जा के स्रोत निरन्तर सूखते जा रहे हैं तो किसी प्रकार इन 'ब्लैक होलों' की शक्ति का उपयोग किया जाय परन्तु यह विचार अभी कल्पना ही है ।

लेकिन चेतना के विशृंखलित और अनियन्त्रित फैले स्वरूप को, बिखरी हुई चित्तवृत्तियों को संगठित किया जाय तो इसी जीवन में प्रचण्ड शक्ति प्रवाह अपने भीतर ही पैदा किए जा सकते हैं । उस सम्भावना के बीज भी जीव में विद्यमान हैं, आवश्यकता है ध्यान और साधना का खाद पानी भर देने की । फिर तो ब्रह्म

के समान समर्थ बनने का अवसर मिल सकता है । तपस्वी, ज्ञानी, तत्वज्ञ इन्हीं शक्ति स्रोतों को प्रचण्ड बनाने और उनका आत्म-कल्याण तथा लोक- कल्याण के प्रयोजन में उपयोग करने का प्रयत्न करते रहते हैं ।

तस्मिन ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा

पदार्थ विज्ञान का जन्म और अभिवर्द्धन कुछ शताब्दियों का है, जबकि सृष्टि का जीवन अरबों-खरबों वर्षों का है । हर्मनबेल के अनुसार, "हम प्रकृति के रहस्यों का परिचय प्राप्त करने की दिशा में क्रमशः बढ़ रहे हैं । इसमें अधीर नहीं हो रहे हैं, फिर चेतना के रहस्यों को जानने के लिए विज्ञान की वर्तमान अपरिपक्व स्थिति को ही क्यों प्रमाणभूत आधार मानें ? हमें धैर्य रखना होगा और वैज्ञानिक प्रगति की उस स्थिति के लिए प्रतीक्षा करनी होगी, जहाँ पहुँच कर यह चेतना विज्ञान को भी अपने साथ सम्मिलित कर सके और अपने विकसित ज्ञान के आधार पर जीवन तन्त्र की व्याख्या कर सके ।"

शरीरशास्त्री चार्ल्स शैरिंगटन ने अपनी पुस्तक 'मैन ऑन हिज नेचर' में लिखा है—"चेतना के स्तर की परीक्षा हम ऊर्जा नापने के उपकरणों से नहीं कर सकते । भावनाएँ और विचारधाराएँ किस स्तर की हैं और व्यक्ति के आदर्श एवं आचरण किस श्रेणी के हैं, यह जानने के लिए किसी शरीर का रासायनिक विश्लेषण करने से क्या काम चलेगा ? व्यक्तित्व अपने आप में एक रहस्य है, उसकी गहराई में उतरने के लिए वे परीक्षण पद्धतियाँ असफल ही रहेंगी, जो कोशिकाओं एवं ऊतकों की संरचना तक ही साथ लेकर समाप्त हो जाती हैं । मनुष्य का कलेवर ही पदार्थों से बना है । इसीलिए इसी का विश्लेषण, वर्गीकरण तत्व परीक्षण द्वारा सम्भव हो सकता है । चेतना एवं उसके स्तर जिस संरचना से बने हैं उसका निरूपण एवं सुधार परिवर्तन करने के लिए भौतिकी के नियम, परीक्षण एवं उपकरण निरर्थक सिद्ध होंगे ।"

भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. ई. पी. बिगनर कहते हैं कि "आधुनिक भौतिकी के सिद्धान्तों से चेतना की संरचना, स्थिति एवं उतार-चढ़ावों की व्याख्या नहीं हो सकती । जिन कारणों से चेतना में उभार, उतार-चढ़ाव, परिवर्तन आते हैं और उत्थान- पतन के आधार खड़े होते हैं । वे तत्व कुछ और ही हैं । वस्तुओं को जिस आधार पर प्रभावित, परिवर्तित किया जाता है, वे सिद्धान्त चेतना को परखने और सुधारने के लिए किसी प्रकार काम नहीं आ सकते । मस्तिष्क विद्या शरीर के एक अवयव की हलचलों का विश्लेषण तो कर सकती है, पर उस आधार पर किसी के विचार बदलने या सम्वेदनाओं को प्रभावित करने जैसे प्रयोजन बहुत ही स्वल्प मात्रा में हो सकते हैं । भौतिकी के आधार पर चेतना की व्याख्या करने के लिए जो प्रयत्न किए जाते हैं, उनमें विसंगतियाँ ही भरी रह जाती हैं ।"

इन प्रतिपादनों के बावजूद चेतना जगत की गुंत्थियों का हल सुलझाने में ब्रह्माण्ड के कुछ क्रिया-कलाप हमारी कुछ मदद अवश्य करते हैं । ब्रह्माण्ड भौतिकी में ब्राह्मी चेतना की झाँकी ढूँढ़ने का प्रयास करने वाले दर्शन की ओर रुझान रखने वाले वैज्ञानिक कहते हैं कि "यह ब्रह्माण्ड निरन्तर बढ़ और फैल रहा है । विराट् की पोल में प्रत्यक्ष ग्रह-नक्षत्र किसी असीम अनन्त की दिशा में द्रुतगति से भागते चले जा रहे हैं । यों यह पिण्ड अपनी धुरी और कक्षा में भी घूमते हैं, पर हो यह रहा है कि वह कक्षा, धुरी और मण्डली तीनों ही असीम की ओर दौड़ रहे हैं । सौर-मण्डल एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं । यह दौड़ प्रकाश की गति से भी कहीं अधिक है । जो तारे कुछ समय पूर्व दीखते थे, अब अधिक दूरी पर चले जाने के कारण अदृश्य हो गए ।" खगोल वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रक्रिया को विस्तार भी कह सकते हैं, विघटन भी, और यह भी कह सकते हैं कि इसका अन्त एकता में होगा । गोलाई का सिद्धान्त अकाट्य है । प्रत्येक गतिशील वस्तु गोल हो जाती है । स्वयं ग्रह-नक्षत्र इसी सिद्धान्त के अनुसार चोकोर, तिकोने, आयताकार न होकर गोल हुए हैं । यह ब्रह्माण्ड भी गोल है । नक्षत्रों की कक्षाएँ भी गोल हैं । इस गोल वृत्त की लपेट में आगे यह दौड़ अन्त में किसी न किसी बिन्दु पर पहुँचकर मिल ही जायेगी और इस वियोग को संयोग में परिणत होना पड़ेगा ।

ब्रह्माण्ड के निरन्तर विकास का अर्थ यह हुआ कि सृष्टि में जो कुछ भी है, चाहे वह पदार्थ हो, ऊर्जा हो, चुम्बकत्व हो, प्रकाश हो अथवा विचार-सत्ता, जो भी स्थूल या सूक्ष्म अस्तित्व में है वह सब एक ही केन्द्र-बिन्दु पर समाहित है । इस सन्दर्भ में भारतीय दर्शन और वैज्ञानिक दोनों की धारणाएँ एक जैसी हैं । आरम्भ में एक महापिण्ड था, यह विज्ञान की मान्यता है एवं यह भी कि उस ब्रह्माण्ड में किसी समय एकाएक विस्फोट हुआ । विस्फोट से समस्त दिशाओं में आकाशगंगा के रूप में ही पदार्थ बह निकला । अब तक की शोधों के अनुसार ब्रह्माण्ड में १६ अरब आकाशगंगायें हैं और हर आकाशगंगा में १० अरब तारे हैं ।

सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी सवा नौ करोड़ मील है । वहाँ से यहाँ तक प्रकाश आने में सवा आठ मिनट लगते हैं । यदि किसी तारे का प्रकाश पृथ्वी तक ८ हजार वर्षों में आता है तो उसका अर्थ यह हुआ कि वह पृथ्वी से ४७ पदम मील दूर है । उनका प्रकाश पृथ्वी तक आने में ही अरबों वर्ष लग जायेंगे अर्थात् उस दूरी का तो अनुमान ही असम्भव है । इस तरह सृष्टि की अनन्त गहराई में अनन्त प्रकृति अनन्त रूपों में विद्यमान है ।

भारतीय दर्शन की मान्यता चेतना को मूल मानकर ज्यों की त्यों है । आरम्भ में एक ही तत्व परमात्मा पिण्ड रूप में था । उसके नाभि देश से "एकोऽहं बहुस्यामि" (मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ) इस तरह की स्फुरणा, भावना या विचार उठी । इससे वह फट पड़ा और महाप्रकृति की रचना हुई, उसमें सत्, रज, तम तीन गुणों का सम्मिलन था, इन्हीं से सृष्टि में जीवन का निर्माण हुआ और सृष्टि के विस्तार की तरह ही ८४ लाख जीव योनियों का निरन्तर विस्तार होता चला गया । जिस तरह ब्रह्माण्ड विकसित हो रहा है । नाना प्रकार की जीवन सृष्टि का भी विकास होता जा रहा है, यह सब अत्यधिक करुणामूलक, स्नेहजनक, मातृसंज्ञक रूप से चल रहा है । भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों में आकाशगंगायें इस विशाल माता का हृदय कही जा सकती है ।

ब्रह्माण्ड के विस्तार की व्याख्या अपने जीवन को घटनाओं व दैनन्दिन जीवन की गतिविधियों से जोड़ते हुए भौतिक वैज्ञानिक डॉ. वैलेस टैकर ने की है । वे लिखते हैं—"विगत बसन्त जब हम और हमारी पत्नी अपने मकान के नजदीक गाँव की एक सड़क पर जा रहे थे, तो फली फटने जैसी विचित्र आवाज से हम

लोग चौंक गए । सुबह के धुँधलके में देखा तो पाया, सचमुच ही पास की जंगली घास की कलियाँ फट रही थीं । कलियाँ फट-फट कर अपने बीज आसपास फैला रही थीं । फटने की यह आवाज मुश्किल से एक मिनट रही होगी । इस प्रकार जंगली वनस्पति की वह एक पीढ़ी समाप्त हो गई, कईयों में बँट गई । इसी प्रकार आसपास ही वहीं अथवा किसी के बगीचे में अन्य फलियाँ भी फटकर बीज फैला रही होंगी ।"

वैलेस का कहना है—"फलियों की तरह प्रकृति में भी ज्वालामुखियों एवं सुपर नोवा का विस्फोट होता रहता है । इन विस्फोटों के माध्यम से ही प्रकृति अपने अन्तराल में छिपी बीजों की सम्पदा पृथ्वी सतह पर पहुँचाती है । यदि यह विस्फोट न हो तो बीज अन्दर ही रह जाय । इस प्रकार जब कोई फली फूटती है तो इसके बीज आस-पड़ौस में फैल जाते हैं और समयान्तर में उनसे फिर वैसी ही पौध उत्पन्न हो जाती है, किन्तु इन बीजों का एक गाँव से दूसरे गाँव तक इस विधि द्वारा पहुँचना काफी लम्बा समय ले सकता है अथवा ऐसा भी हो सकता है कि दूसरे गाँव तक कभी पहुँचे ही नहीं ।"

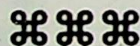
ठीस इसी प्रकार भयंकर ज्वालामुखी अथवा विशालकाय उष्णोत्स के प्रस्फुटन के बिना जल, जो कि उच्चस्तरीय प्राणियों के विकास के लिए एक आवश्यक घटक माना जाता है, भी पृथ्वी के गर्भ में ही छिपा पड़ा रहता है और किसी प्रकार पृथ्वी पर जीवन सम्भव नहीं हो पाता । जल जैसे अनिवार्य तत्व की उत्पत्ति भी उस महा विस्फोट का परिणाम है ।

यह सूर्य, यह पृथ्वी एवं इसके प्राणी सम्भवतः आज नहीं होते, यदि प्रकृति के विस्फोट न हुए होते । धूल और गैस के विशालकाय बादल, जिनसे हमारा सौर परिवार बना, सम्भवतः अभी भी अव्यवस्थित बेडौल बादल ही बने रहते, यदि किसी अन्तर तारक कम्पन तरंग, सुपर नोवा ने बादलों को ठोस रूप में परिणत न कर दिया होता ।

यह ज्ञातव्य है कि हर ५० साल में हमारी आकाशगंगा के किसी विशालकाय तारे में सुपर नोवा विस्फोट होता है । इस विस्फोट से अन्तरिक्ष में बड़े पैमाने पर विकिरण एवं पदार्थ किसी भावी खगोलीय पिण्ड के 'बीज' के रूप में आते हैं और पूरी आकाशगंगा में एक तीव्र कम्पन उत्पन्न करते हैं । यह कम्पन्न तरंग अन्तर-तारक गैसों में गर्म करती है, बादलों के छोटे टुकड़ों को वाष्पीभूत करती है और बड़ों पर गहरा दबाव डालती है, जिससे वे बादल उसी स्थान पर अपने स्वयं के गुरुत्व बल के कारण दबकर ठोस रूप में परिणत हो जाते हैं और नये तारे का निर्माण करते हैं ।

सुपर नोवा ऐसे विस्फोट हैं, जो आकाशगंगा के इंजन को विकास की दिशा में आगे की ओर बढ़ाते हैं । इस विस्फोट से अन्तर-तारक गैसों में भारी-भारी तत्व आ जाते हैं । फिर इसे विस्फोट एवं अपनी विकिरण ऊर्जा द्वारा गर्म करते हैं । तत्पश्चात् अपनी भयंकर ऊर्जा एवं कम्पन से इसमें हलचल पैदा करते हैं और इस नये प्रकार के नये तारक पिण्डों के निर्माण में अपना योगदान देते हैं । इस प्रकार बने तारों में से कुछ तो अत्यन्त विशालकाय होते हैं । अरबों वर्ष पहले पृथ्वी पर भी प्राकृतिक विक्षोभों की शृंखला द्वारा ही जीवन का उद्‌भव सम्भव हुआ । तारक पिण्डों का अपना एक जीवन-चक्र होता है, जिसमें वे घूमते रहते हैं । तारों के निर्माण के कुछ काल पश्चात् उनमें विस्फोट होता है । इस विस्फोट से वे नये-नये भारी तत्वों को अन्तर-तारक गैसों में समाविष्ट करते हैं । फिर इनसे दूसरे खगोलीय पिण्ड का निर्माण होता है जो कुछ काल पश्चात् पुनः सुपर नोवा विस्फोट से फटते हैं । इस प्रकार खगोल ब्रह्माण्ड में सृजन विध्वंस का यह क्रम सदा चलता रहता है ।

ब्रह्माण्ड भौतिकी के इस विवेचन एवं विस्फोट विस्तार के माध्यम से, दृश्य ब्रह्माण्ड के स्वरूप की व्याख्या से, उस परब्रह्म की कार्य-पद्धति का एक आभास भर मिलता है । वह विराट जब स्थूल परिवार के रूप में उस प्रचण्ड रूप में क्रियाशील है तो उसकी चेतन सत्ता कितनी सुव्यवस्थित, सुनियोजित होगी इसकी कल्पना भर की जा सकती है । ऋग्वेद में ऋषि ने उसे उपमा दी है—"एको विश्वस्य भुवनस्य राजा" तथा आगे यह भी कहा है—"तस्मिन ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा" (उस परमात्मा में ही सम्पूर्ण लोक स्थित है)। सेण्ट आगस्टीन का यह कथन सच ही है कि "ईश्वर एक वृत्त है, जिसका केन्द्र तो सर्वत्र है, किन्तु वृत्त रेखा कहीं नहीं ।"



सृष्टि के अविज्ञात रहस्य

प्रकृति के अजूबे, जिन्हें विज्ञान नकारता है

प्रकृति रहस्यमय है । उसकी पहेलियों को समझ पाना सामान्य बुद्धि के लिए सम्भव नहीं । कई बार स्थूल बुद्धि उसकी अपने ढंग से व्याख्या तो कर देती है, पर यह बता पाने में समर्थ नहीं हो पाती कि प्रकृति-नियमों की सर्वथा अवहेलना करते हुए यह विचित्रताएँ यत्र-तत्र क्योंकर पैदा हुईं ? वास्तविकता तो यह है कि जब तक सृष्टि के मूल को न समझा जाय उसके रहस्यों को समझ पाना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है । इसी बात की उद्घोषणा करते हुए निसर्ग में ऐसी कितनी ही अद्भुतताएँ अब भी अस्तित्व में हैं, जो अविज्ञात स्तर की आश्चर्य बनी हुई हैं ।

इन्हीं विलक्षणताओं में सें एक है—क्रोय ब्राई, आयर-स्ट्रेथक्लाइड, स्कॉटलैण्ड का दृष्टि-भ्रम । जब कोई मोटर गाड़ी इस रास्ते से होकर गुजरती है, तो उसका चालक बहुत उलझन में पड़ जाता है और गाड़ी को वहाँ से सुरक्षित निकाल ले जाने में मुसीबतों का सामना करना पड़ता है । इस स्थान पर जब उत्तर की दिशा से कोई मोटर आती है, तो उसके चालक को बड़ी अद्भुत अनुभूति होती है । वह संभ्रम में पड़ जाता है । रोड वहाँ ढलवाँ दिखाई पड़ती है । चालक जब उसकी गति धीमी करता है, तो गाड़ी ढलान में तेजी से लुढ़कने की बजाय धीरे-धीरे रुक जाती है और फिर पीछे की ओर लुढ़कने लगती है ।

इसी प्रकार जब गाड़ी दक्षिण की दिशा से आती है, तो चालक रास्ते की चढ़ाई को देख कर गति तीव्र कर लेता है, पर यह क्या ! गति जितनी बढ़ायी गई थी, उससे भी तेज रफ्तार से गाड़ी दौड़ने लगती है और चालक विस्मय-विमूढ़ बना रहता है ।

इस तरह की अद्भुतता मात्र आयर की एक मात्र घटना नहीं है । विश्व के कई स्थानों में ऐसी विचित्रता देखी गई है । एक ऐसा ही स्थान कनाडा के न्यूब्रूनसविक, मोंक्टन नामक स्थल पर 'मैग्नेटिक हिल'' है । जनुश्रुति के अनुसार इस जगह की विलक्षणता का पता पहली बार सन् १९३० में तब चला, जब एक दूध बेचने वाला गाड़ीवान उक्त पहाड़ी की तलहटी में गाड़ी खड़ी कर ग्राहकों को दूध देने गया । वापस लौटा, तो आश्चर्यचकित रह गया । गाड़ी आधी चढ़ाई चढ़ कर दूर जा रुकी थी, जबकि घोड़ा लगभग उसी स्थान पर अब भी चर रहा था, जहाँ वह छोड़ गया था । पहले तो इसे उसने किसी की शरारत समझा, अतः उस ओर विशेष ध्यान न दिया, पर जब प्रायः प्रतिदिन ऐसा होने लगा, तो उसे चिन्ता हुई । उसने शरारती का पता लगाने का निश्चय किया ।

एक दिन उक्त स्थान पर गाड़ी खड़ी करके उसने घोड़ों को खोल दिया और स्वयं एक झाड़ी के पीछे छिप गया । अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे, हल्की हवा चली और इसी के साथ गाड़ी चढ़ाई पर तेजी से चढ़ने लगी । वह स्तब्ध रह गया । उसने बहुत माथा-पच्ची की, पर उसकी एवं अन्य स्थानीय लोगों की समझ में कुछ न आया । अन्ततः उसे स्थान का रहस्य मानकर उसने सन्तोष कर लिया ।

इसी प्रकार का एक उल्लेख कई वर्ष पूर्व प्रसिद्ध पत्रिका 'द टाइम्स'' में छपा था । सम्पादक के नाम पत्र में एक ब्रिटिश नागरिक हेनरी आर. बेक ने अपनी उस अनुभूति की चर्चा की थी, जो उसे कनाडा यात्रा के दौरान बैंकुवर के एक निकटवर्ती स्थान में हुई थी । वे लिखते हैं कि उक्त स्थल के भ्रमण के दौरान एक जगह गाड़ी खड़ी कर दी गई । गाड़ी रोड पर जहाँ पार्क की गई थी, वहीं से चढ़ाई की शुरूआत होती थी । कार में कुल आठ यात्री थे । ड्राइवर ने गाड़ी बन्द कर दी । इससे पूर्व कि लोग उससे बाहर निकल पाते, कार बन्द स्थिति में ही तेजी से चढ़ाई चढ़ने लगी । एक यात्री ने जल्दी से कार के बाहर छलांग लगायी, थोड़ी ही दूर पर स्थित एक नल से पानी लाया और उसे कार के सामने रोड पर यह सोच कर उँडेल दिया कि शायद इससे पहिए फिसलने लगें और वह ऊपर न चढ़ पायें, पर इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, उससे सभी अचम्भे में पड़ गए । पानी स्वयं भी ऊपर चढ़ने लगा । लोगों को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ । उन्होंनें बार-बार आँखें मलीं, किन्तु दृश्य यथावत् बना रहा । गाड़ी और जल दोनों ही ऊपर चढ़ते अब भी दृष्टिगोचर हो रहे थे । इस अलौकिक पहेली को उनमें से कोई सुलझा न सका ।

येरूशलम जाने वाली सड़क पर जबल मुकाबर गाँव के समीप इसरायल में भी दृष्टि भ्रम पैदा करने वाला एक ऐसा ही क्षेत्र है ।

कुल मिला कर इन सब स्थलों में स्थिति महाभारत के ''जल में थल एवं थल में जल'' जैसी ही है, जहाँ दुर्योधन को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा था । विशेषज्ञ बताते हैं कि जहाँ हमारी आँखें चढ़ायी पर गाड़ी चढ़ती देखती हैं, वस्तुतः वह चढ़ायी न होकर ढलवाँ सड़क होती है, किन्तु किसी कारणवश हमारी इन्द्रियाँ वहाँ चढ़ायी को ढलवाँ और ढलवें को चढ़ायी देखने व अनुभव करने लगती हैं, इसी कारण प्रत्यक्ष और परोक्ष में यह विरोधाभास पैदा होता है । वैज्ञानिक इस नैसर्गिक कौतुक की विज्ञानसम्मत व्याख्या कर पाने में अब तक विफल रहे हैं । हाँ, उन्होंने इस सम्बन्ध में तरह-तरह के अनुमान अवश्य लगाए हैं । एक अनुमान के अनुसार, ऐसा उन क्षेत्रों की स्थानीय चुम्बकीयता में विविधता के कारण है । यह भू-चुम्बकीय भिन्नता सम्भवतः हमारी इन्द्रियों को प्रभावित करती है, फलतः उन-उन भागों में हमारी दृष्टि और अनुभूति परिवर्तित हो जाती है । दूसरी सम्भाव्यता के बारे में विशेषज्ञ वहाँ की विशिष्ट टोपोग्राफी (स्थानाकृति-विज्ञान) को जिम्मेदार ठहराते हैं, किन्तु यह सब सम्भावना मात्र हैं । यथार्थ रहस्य का उद्घाटन तो तभी हो सकेगा, जब प्रकृति के गर्भ में प्रवेश कर सकने की सामर्थ्य हम में हो ।

अविज्ञात रहस्यों से भरा-पूरा संसार

यह संसार एक विचित्र रंगमंच है, जिस पर तरह-तरह के विलक्षण अजूबे देखने को मिलते हैं । वैज्ञानिक प्रयास करते हैं, कि हर प्रत्यक्ष दृश्यमान वस्तु या घटनाक्रम का वे कारण बता सकें, फिर भी अनेकों रहस्यों का समाधान वे अपनी तर्कबुद्धि से देने में सक्षम नहीं हैं । ऐसी विचित्रताएँ हमें यह सोचने पर विवश करती हैं, कि अविज्ञात क्रिया-कलापों एवं दृश्यों से भरी यह दुनिया आखिर किसने बनाई ?

महाराष्ट्र के जलगाँव में अंजिष्ठा मार्ग पर पहुर नामक एक छोटा-सा गाँव है । वहाँ से सेंदुणी जाने वाली कच्ची सड़क पर ३ मील दूर पर 'सोप' गाँव अवस्थित है । इस गाँव में वाणी सिद्धि का एक अद्भुत चमत्कारी नीम का पेड़ है, जिसकी प्रत्येक डाल के पत्ते कड़वे हैं, किन्तु सिर्फ एक डाल ऐसी है, जिसके पत्तों का स्वाद अत्यन्त मीठा लगता है । कहते हैं, कड़ोवा महाराज नाम के एक साधु ने ईश्वर के अस्तित्व और उसकी शक्ति का परिचय देने के लिए ऐसा किया था ।

हिन्द महासागर के रियूनियन द्वीप में कैक्टस जाति का एक विचित्र पौधा पाया जाता है । वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों में प्रायः पचास वर्ष बाद एक बार ही फूलता है । इसके बाद उसके जीवन का अन्त हो जाता है ।

बाई डाँगो अफ्रीका के गाँव मवाई तथा फ्रांस के 'केन्द्री' स्थान में एक प्रकार का वृक्ष पाया जाता है जो वनस्पति विज्ञान के नियमों का उल्लंघन कर वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य का विषय बना हुआ है । इस वृक्ष की जड़ें कील या चूलनुमा होती हैं । जब कभी तूफान इस पेड़ के पास पहुँचता है तो वृक्ष चूलनुमा जड़ के सहारे लट्टू जैसे चक्कर काटने लगता है, जबकि अन्य जाति के हजारों पेड़ धराशायी हो जाते हैं । जितनी देर तूफान रहता है, वृक्ष नाचता रहता है । तूफान बन्द होने पर उसका नाचना बन्द और उसकी अगली विकास यात्रा प्रारम्भ हो जाती है ।

नदिया (प. बंगाल) जिले के भामजुआन गाँव में एक शिक्षक के घर एक नारियल का ऐसा पेड़ लगा हुआ है, जिसकी शाखाओं से ही उसकी सन्तानें जन्मने लगती हैं । पिछले पाँच वर्षों से इस पेड़ ने करीब १०० पौधों को जन्म दिया और सभी पौधे उस पेड़ के पत्तों के मूल स्थान से उगे हैं । उस शिक्षक का कहना है कि पहली बार जब मैंने पेड़ के एक पत्ते में छोटा-सा अंकुर फूटते देखा तो आश्चर्यचकित रह गया । उस अंकुर को दूसरी जगह रोप दिया । कुछ दिनों बाद उसी पेड़ पर पुनः वैसा ही अंकुर फूटा । पेड़ में नारियल तो लगते ही थे, यह अंकुर भी फूटने लगे । इस प्रकार पिछले पाँच वर्षों में करीब १०० नये पेड़ों को अलग स्थानों पर लगाया गया । यदि उन अंकुरों को पेड़ से अलग नहीं किया जाय तो वे नष्ट हो जाते हैं । अंकुर फूटने का क्रम अब भी जारी है ।

वृक्ष वनस्पतियों में ऐसी अनेक प्रकार की विचित्रता पायी जाती है जिसे देखकर सामान्य बुद्धि आश्चर्यचकित रह जाती है । गर्म प्रदेशों में पाया जाने वाला वृक्ष 'समानी सनम' वनस्पति जगत में अपने ढंग का अनोखा वृक्ष है । वह रात्रि में बादल की तरह पानी बरसाता है । उस क्षेत्र के निवासी उसी से अपनी जल की आवश्यकता पूरी करते हैं । यह पेड़ दिन भर अपने डण्ठलों से हवा की नमी सोखता रहता है और अपना भण्डार भर लेता है । जैसे ही मौसम की गर्मी शान्त होती है वह उस भण्डार को खाली करके उस क्षेत्र के प्राणियों की प्यास बुझाता है । सभी रात्रि की प्रतीक्षा में उसके इर्द-गिर्द जमा रहते हैं । वृक्ष प्राण-वायु तो देते ही हैं, हमारा उगला विष भी सोखते हैं, पर बादलों को माध्यम बनाकर पानी के अतिरिक्त भी बरसा सकते हैं, उसका यह अपने में एक अनूठा उदाहरण है ।

मानव शरीर स्वयं में अद्भुत है । उस कलाकार को मस्तक नवाने की इच्छा होती है, जिसने कई विचित्रताएँ इसके साथ जोड़ दी हैं । इटली में एक बार दो व्यक्ति ऐसे पैदा हुए जो आकृति और प्रकृति की दृष्टि से इतने समान थे, कि साधारणतया उन्हें पहचानना कठिन पड़ता था । दोनों के नाम भी एक जैसे थे । इनमें से एक किंग अम्बर्टो प्रथम था । दूसरा अम्बर्टो एक होटल में पहरेदार था । टोकियो नगर में वे दोनों एक ही दिन पैदा हुए । दोनों ने अपने-अपने पद एक ही दिन सँभाले । दोनों की पत्नियों के नाम एक ही थे—'मारघेरिटा' । दोनों के ही एक-एक पुत्र पैदा हुआ । दोनों ने अनजाने में पुत्रों का नाम 'विहोरियो' रखा । इतना ही नहीं, ये दोनों अम्बर्टो मरे भी एक ही दिन, एक ही प्रकार । राजा को उसके दरबारियों ने गोली से उड़ा दिया, जबकि दूसरा संयोगवश बन्दूक चल जाने से घायल हुआ और मर गया । यह संयोग कहा जाय अथवा कुछ और, इस पर मतैक्य नहीं है । साम्य, वह भी ऐसा विलक्षण, विरला ही देखने को मिलता है ।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सन् १९१४ में एक जर्मन जासूस पीटर कार्पन पकड़ा गया । फ्रांसीसियों ने गिरफ्तारी को गुप्त रखा । साथ ही एक दूसरी चाल चली कि पीटर के नाम से झूठे समाचार जर्मनी भेजते रहे । साथ ही, जो वेतन-भत्ता जर्मनी से आता उसे झूठे दस्तखतों से वसूल करते रहे । सन् १९१७ में पीटर का दाँव लगा और वह जेल से निकल भागा । दूसरी ओर पीटर नाम से मिले वेतन से फ्राँसीसी गुप्तचर विभाग के लिए एक गाड़ी खरीदी गई । संयोग की बात कि शहर में घूमते समय एक व्यक्ति उस गाड़ी की चपेट में आया और मर गया । मृतक की खोजबीन की गई तो पता चला कि वह और कोई नहीं, बैरक से भागा हुआ जासूस पीटर ही था ।

ओहियो के फिलिप रेण्ड डेल के दाएँ फेफड़े में गोली लगी और इतनी गहरी घुस गई कि उन दिनों के साधनों को देखते हुए उसे निकालना सम्भव नहीं था । शल्य चिकित्सक ने निराशा व्यक्त की और ऑपरेशन करने से इन्कार कर दिया । घायल ऐसे ही अस्पताल में पड़ा रहा । एक दिन उसे जोरों से खाँसी आयी और गोली मुँह के रास्ते बलगम के साथ बाहर निकल गई ।

प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन का एक टोही वायुयान मोर्चे का सर्वेक्षण कर रहा था । उसके चालक और सर्वेक्षणकर्त्ता शत्रु की मशीनगन के शिकार हुए और जहाज में ही मर गए । इतने पर भी वायुयान दुर्घटनाग्रस्त नहीं हुआ । वह घण्टों आसमान में बेतुके चक्कर काटता रहा और अन्त में ईंधन चुक जाने पर शान्ति के साथ समतल भूमि पर उतर आया । आखिर वह कौन-सी चेतन शक्ति थी, जो उस जड़ यन्त्र का संचालन कर रही थी ?

जापान के सासवो नगर का एक नागरिक नियमित रूप से बाइबिल का पाठ पढ़ता था, जिस पृष्ठ पर वह पाठ छोड़ता उसमें एक हरी पत्ती का विराम संकेत लगा देता । वह अपने जीवन-भर उसी पत्ती का उपयोग करता रहा । वह कभी सूखी नहीं, सदा हरी ही बनी रही । वह पत्ती अभी तक प्रख्यात है और हरी बनी हुई है । पवित्र ग्रन्थ के सामीप्य से इतना विलक्षण प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल परिवर्तन सहज ही हतप्रभ कर देता है ।

आस्ट्रेलिया में एक चलती-फिरती पहाड़ी है । यह 'ग्रासमीन' के नाम से प्रसिद्ध है और पर्यटकों के लिए एक छोटे ग्राम एवं होटल की तरह है । वह अपना स्थान बदलती रहती है । कभी यहाँ तो कभी वहाँ स्थान बदलता रहता है । कारण यह बताया जाता है कि उसकी तली में १०० फुट मोटी नमक की चट्टान है । पहाड़ी की जड़ उसी पर टिकी हुई है । नीचे का नमक नमी, गर्मी और सर्दी से प्रभावित होकर उथल-पुथल करता रहता है और पहाड़ी को इधर-उधर खींचता-धकेलता रहता है ।

आस्ट्रिया के टौर्न पर्वत का नोड्रन जल-प्रपात संसार के प्राकृतिक आश्चर्यों में से एक है । वह झरना यों तो निरन्तर गिरता रहता है, किन्तु तीसरे पहर ठीक ३.३० पर उस पर एक इन्द्रधनुष उदय होता है । इसका समय इतना सुनिश्चित है कि लोग उससे अपनी घड़ी मिलाकर टाइम सही करते हैं ।

ब्राजील के एक नगर वेलम डोपारा पर दोपहर को २ से ४ बजे तक पूरे दो घण्टे नियमित रूप से वर्षा होती है । इसमें व्यतिरेक कदाचित् ही कभी होता है । उस क्षेत्र के निवासी इन दो घण्टों में मध्यान्ह अवकाश मनाते हैं । इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के देवबन्द में (प्राचीन नाम देववृन्द), जो दारूल उलूम के कारण प्रसिद्ध है, एक देवी का मन्दिर है । प्रतिवर्ष हरियाली तीज के आस-पास एक विशेष मुहूर्त में उसकी विशेष पूजा होती है व वहाँ मेला लगता है । चाहे आसमान साफ हो, दूर-दूर तक बादलों का नामोनिशान न हो, पट खुलते ही न जाने कहाँ से काली घटाएँ आ जाती हैं एवं कुछ देर घनघोर बारिश होने लगती है । हर वर्ष हजारों व्यक्ति इस चमत्कार व प्रकृति की इस लीला पर आश्चर्य करते देखे जाते हैं ।

गरम और ठण्डे जल के स्रोते संसार में अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं, किन्तु इटली के आर्मिया क्षेत्र में अपने ढंग का एक विचित्र स्रोता है । उसमें सर्दी के दिनों गरम पानी निकलता है और भाप के बादल उठते हैं, जबकि गर्मी के मौसम में उसका पानी बर्फ जैसा ठंडा बना रहता है । सम्भव है, मनुष्य की आवश्यकता के अनुकूल इस स्रोते ने अपनी प्रकृति बदल ली हो । कितना विचित्र है यह प्रकृति का मायावी संसार ?

जिरिनाज पर्वत इण्डोनेशिया में स्थित एक शान्त ज्वालामुखी है । कभी वह गर्म लावा उगलता था, पर अब वैसा कुछ नहीं है । फिर भी उसका चुम्बकीय चक्रवात अभी भी विद्यमान है । एक चपटा सा बादल उसके गति-चक्र में इस प्रकार फँसा है, कि वह इस परिधि से बाहर नहीं जा सकता । उस शिखर के ऊपर ही मँडराता और चक्र की तरह अनवरत घूमता रहता है । इसका एक कारण ज्वालामुखी की नोंक से निकलने वाली गर्म हवा का कोई विचित्र प्रत्यावर्तन ही समझा जाता है । यहाँ तो वैज्ञानिक कारण भी बताते हैं, पर चुरू जिले (राजस्थान) में ढिगारला स्थान पर कस्बे से उत्तर व पश्चिम दिशा में क्षितिज पर कभी-कभी अनायास ही अर्द्ध-वृत्ताकार सफेद धुएँ का गोला उठता है व काफी ऊँचाई तक जाकर आकाश में धुँधला-सा घण्टों दिखायी पड़ता है । अच्छी खासी खोज करने पर भी वैज्ञानिकों से इसका पता न लगाया जा सका ।

अमेरिका के ओहियो प्रान्त में क्लीवलैण्ड शहर से तीस मील पूर्व की ओर एक छोटे-से गाँव में एक टीला आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है । उसे देखने के लिए प्रवासी लोग कौतूहल वश वहाँ तक आते हैं और अपनी गाड़ी टीले की तलहटी में बन्द कर देते हैं और जैसे ही अपना पैर ब्रेक पर से हटा लेते हैं, गाड़ी धीरे-धीरे पहाड़ी पर चढ़ने लगती है । प्रारम्भ में गाड़ी की गति धीमी रहती है, किन्तु चढ़ने के साथ-साथ उसमें तेजी आने लगती है । चोटी तक पहुँचते-पहुँचते लगभग २० किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार हो जाती है । इस तरह से प्रवासी गुरुत्वाकर्षण के नियम का उल्लंघन करके एक निरीह, किन्तु आनन्दपूर्ण यात्रा करके लौट जाते हैं, जिसमें उनके लिए ऊर्जा की बचत का एक सुखद संयोग और भी जुड़ा रहता है ।

किर्टलैण्ड हिल अथवा ग्रेविटी हिल के नाम से प्रसिद्ध उस टीले में ऐसा कौन-सा आकर्षण है, जिसके कारण चौदह टन की एक गाड़ी बिना ऊर्जा का व्यय किए सरलतापूर्वक आरोहण कर सके अथवा प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर सके ?

तिब्बत में एक विचित्र झील है—'ऊँरुत्सी' । इसका पानी बारह वर्ष खारा रहता है और बारह वर्ष के लिए मीठा हो जाता है । यह परिवर्तन क्रम अतीत से इसी प्रकार चला आ रहा है । इटली के टैरेण्टो क्षेत्र के समीप समुद्र में सफेद रंग के पानी का एक फुहारा फूटता है । इसका पानी मीठा है । खारे समुद्र में मीठे पानी का फुहारा फूटना प्रकृति की किस विचित्रता का परिणाम है, यह अभी तक जाना नहीं जा सका ?

ये सभी विलक्षण अजूबे प्रकृति जगत में ऐसे उदाहरणों के रूप में विद्यमान हैं, जिन्हें अपवाद भर मानकर मन को सन्तुष्ट कर लिया जाता है, पर यह मान लेने व स्वीकार कर लेने में हमारी गरिमा तो गिरती नहीं, कि अभी हमें बहुत कुछ जानना शेष है । हम पूर्ण नहीं हैं ।

प्रत्यक्ष के गर्भ में छिपी रहस्यमयी ध्वनियाँ

ध्वनियों का अपना एक पृथक संसार है । इनमें से कुछ सूक्ष्म स्तर की कर्णातीत होती हैं, तो कुछ स्थूल । इस भौतिक दुनिया में रह कर अपनी स्थूल इन्द्रियों से हम स्थूल ध्वनियाँ ही सुन सकते हैं, किन्तु कई बार यह श्रव्य आवाजें भी इतनी रहस्यमय होती हैं कि लाख छानबीन करने के बावजूद भी इनके उद्गम और हेतु का कोई अता-पता नहीं चल पाता, न ही इस बात की ही जानकारी मिल पाती है, कि ऐसी ध्वनियों के पीछे प्रकृति का प्रयोजन क्या है ।

ऐसी ही अनसुलझी आवाजें विश्व के कई स्थलों में समय-समय पर सुनी जाती रही हैं । इनमें ब्रिटेन के डार्टमर, स्काटलैण्ड के कई स्थानों एवं लाफ निघ के तटीय क्षेत्रों में प्रायः घटित होती देखी जाती रही हैं । यहाँ एण्ट्रिम निवासी मूर्धन्य वैज्ञानिक डब्ल्यू. एस. स्मिथ द्वारा सन् १८६६ में इंग्लैण्ड की प्रसिद्ध पत्रिका "नेचर" में प्रकाशित उनके संस्मरण उल्लेखनीय हैं ।

वे लिखते हैं, कि इंग्लैण्ड की ओर से एक मन्त्री के पद पर वहाँ उनकी नियुक्ति हुई । अनेक वर्षों तक वे उस पद पर कार्य करते रहे । उनका कहना है कि इस मध्य अनेकानेक अवसरों पर लाफ निघ नामक विशाल झील के किनारे तोप जैसी तीव्र डेसिबल की एक समय में थोड़े-थोड़े अन्तराल पर कई ध्वनियाँ सुनाई पड़ती थीं जबकि सच्चाई यह है कि उस क्षेत्र में आस-पास कोई भी मिलिट्री बेस नहीं था, जिससे यह माना जा सके कि यह तोप जैसी आवाजें वहीं से उत्पन्न होती थीं । वे लिखते हैं, कि आरम्भ में उनका अनुमान था, कि यह आवाजें झील के उस पार से आती हैं, किन्तु बाद में पता चला कि यह झील के अन्दर से उद्भूत होती हैं । इस सन्दर्भ में उन्होंने वहाँ के निवासियों एवं मछुआरों से भी सम्पर्क किया ताकि इस सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी इकट्ठी की जा सके, पर वे भी इसका कारण बताने में सर्वथा विफल रहे । हाँ, समय-समय पर होने वाले धमाके की पुष्टि उन्होंने अवश्य की, किन्तु इसमें प्रकृति का प्रयोजन क्या है, यह बताने में वे असफल रहे । इस घटना में सबसे विचित्र बात यह देखी गई कि आवाज सर्वदा झील के अन्दर से व दूर से आती सुनाई पड़ती और इससे भी बड़ी विलक्षणता तो यह थी कि इतने भारी विस्फोट से झील का पानी तनिक भी नहीं उछलता, न कोई तीव्र तरंग ही जल में पैदा होती दिखाई पड़ती । श्री स्मिथ लिखते हैं, कि इस प्रकार के धमाके उन्होंने केवल एक वर्ष में (१८६५) कम से कम बीस बार सुने ।

ऐसे ही विस्फोटों का वर्णन बेल्जियम के विख्यात प्रकृतिविद् ई. वान डेन ब्रोएक ने अपनी चर्चित कृति 'सिमेल एट टेरे' में किया है, जो आज भी ब्रूसेल्स के 'नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम' में सुरक्षित रखी पड़ी है । इसमें उन्होंने ऐसे अनेकानेक विस्फोटों का उल्लेख किया है, जो समय-समय पर बेल्जियम के समुद्र तट पर सुने जाते रहे हैं और जिनके स्रोत का गहन जाँच-पड़ताल के बावजूद भी पता न चल सका । अभी भी ऐसी तीव्र आवाजें उस क्षेत्र में यदाकदा सुनी जाती रही हैं, पर रहस्य पर से पर्दा अब तक उठ नहीं सका है ।

इसी प्रकार की गन-फायर जैसी अनसुलझी ध्वनियाँ अविभाज्य भारत के सुन्दरबन (सुन्दरबन्दस) क्षेत्र में लम्बे काल से सुनी जाती रही हैं । आजकल यह क्षेत्र बंग्लादेश में पड़ता है । गंगा नदी से कुछ पश्चिम की ओर सुन्दरबन में बारीसाल नामक एक गाँव है, जो मुख्य शहर ढाका से लगभग सत्तर मील दक्षिण में स्थित है । बारीसाल और गंगा के पठार में विभिन्न स्थलों में ऐसी ध्वनियाँ अक्सर कर्णगत होती हैं । सन् १८८६ की 'नेचर' पत्रिका में इस आशय की प्रकृतिविद् जी. बी. स्कॉट की विस्तृत रिपोर्ट छपी थी, जिसमें उन्होंने लिखा था कि जब वे सुन्दरबन होते हुए, सन् १८७१ के दिसम्बर माह में कलकत्ता से आसाम जा रहे थे, तो उन्होंने पहली बार यह रहस्यमय ध्वनि बारीसाल में सुनी थी, और इस सम्बन्ध में उक्त गाँव के लोगों से पूछताछ की थी, पर कोई भी इसके निमित्त व उपादान कारण को बताने में सफल न हो सका था । हाँ, सभी ने इतना अवश्य स्वीकारा कि इस प्रकार के अविज्ञात धमाके प्रायः यहाँ हुआ करते हैं एवं इसका क्रम वर्षों पूर्व से चलता आ रहा है । उनका कहना था कि कई शोधार्थी अनेकों बार यहाँ आये और इसका कारण जानने का भगीरथ प्रयास किया, किन्तु परिणाम सदा निराशाजनक ही हाथ लगा । कठिन परिश्रम के बावजूद भी किसी अनुसंधानकर्मी को यह विदित न हो सका, कि दक्षिण में समुद्र की ओर से यह विस्फोट किस प्रकार व बार-बार क्यों उत्पन्न होते हैं । श्री स्कॉट अपनी रिपोर्ट में कहते हैं कि एक बार इस सन्दर्भ में उसने उक्त गाँव के एक वयोवृद्ध व्यक्ति से पूछताछ की, तो उसने सिर्फ इतना ही कहा कि यह रहस्यमय आवाज यहाँ 'बारीसाल गन्स' के नाम से प्रसिद्ध है ।

जी. बी. स्कॉट ने अपनी रिपोर्ताज में ब्रह्मपुत्र नदी से तीन सौ मील दूर चिलमारी गाँव में भी नदी-तट के आस-पास ऐसी ही विलक्षण गर्जनाओं का उल्लेख किया है । लम्बे समय से कर्णगत होने वाली इस विचित्र ध्वनि के बारे में भी लोगों को कुछ ज्ञात नहीं है । ऐसी बात नहीं कि इस सम्बन्ध में जानने की कोशिश ही न की गई हो । अनेक प्रयास यहाँ भी किए गए, पर हर बार बारीसाल की तरह यहाँ भी दुराशा ही पल्ले बँधी ।

प्रख्यात थियोसोफिस्ट कर्नल एच. एस. आलकॉट ने अपने संस्मरण में बारीसाल के रहस्यमय विस्फोटों एवं जी. बी. स्कॉट के रिपोर्ट की सत्यता की पुष्टि की है । उनके अनुसार बारीसाल की गर्जनाएँ इतनी तीक्ष्ण और कर्ण वेधी होती थीं, मानो निकट के ही किसी सैनिक शिविर से तोप छोड़ी गई हो, जबकि तथ्य यह था, कि वहाँ मीलों दूर तक ऐसा कोई सैन्य शिविर नहीं था । वे लिखते हैं कि अभी भी वहाँ की तोप जैसी आवाजें रहस्य के गर्भ में छिपी हुई हैं ।

इसी से मिलती-जुलती हृदयविदारक तीक्ष्ण आवाजें आस्ट्रेलिया के कई भागों में सुनी गई थीं, जिनका कारण अब तक जाना नहीं जा सका । एक ऐसी ही विस्मयभरी ध्वनि की चर्चा करते हुए तत्कालीन समय के लब्धप्रतिष्ठित भौतिक विज्ञानी ए. स्टुअर्ट अपने एक निबन्ध 'टू एक्सपेडीशन्स इन टू दि इण्टीरियर ऑफ सदर्न ऑस्ट्रिलिया' में कहते हैं, कि फरवरी १८२९ में डार्लिंग नामक नदी तट पर वे और उनके एक मित्र श्री ह्यूम रुके हुए थे । ७ फरवरी के दिन लगभग ३ बजे वे लोग घूमने निकले । आकाश बिल्कुल स्वच्छ और निरभ्र था । बादलों के कहीं नामोनिशान नहीं थे । तभी अचानक तीव्र गर्जना हुई । यह न तो किसी ज्वालामुखी के फटने जैसी थी, न किसी विशाल वृक्ष के गिरने जैसी, वरन् ध्वनि किसी बारूदी धमाके से मिलती-जुलती थी । वे लिखते हैं, कि वहाँ पहुँचते ही उन्हें स्थानीय लोगों के द्वारा यह ज्ञात हो गया था कि इस प्रकार के प्राकृतिक विस्फोट रह-रह कर कई-कई दिनों में यहाँ होते रहते हैं । अतः जैसे ही उक्त दिन उन्हें वह धमाका सुनाई पड़ा, तुरन्त ही उसकी दिशा का अनुमान कर एक व्यक्ति को ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर उसका निरीक्षण, परीक्षण करने को कहा । कई घण्टे तक वह वहाँ टंगा रहा पर कोई असामान्यता उस ओर नजर नहीं आयी । वह क्षेत्र घने पेड़ों से ढँका हुआ वन्य प्रदेश था, और नजदीक के शहर से काफी दूर बीच जंगल में पड़ता था । अस्तु, किसी प्रकार की कोई सैन्य गतिविधि की भी कोई सम्भावना नहीं थी । एक अन्य यात्रा के दौरान दोनों मित्रों ने उस क्षेत्र की उस अनसुलझी पहेली का रहस्य जानने का बहुतेरा प्रयास किया, पर सफलता की जगह, उन्हें हताशा का ही मुँह देखना पड़ा । आज भी वहाँ के धमाके पहेली बने हुए हैं ।

कर्नल गॉडविन आस्टिन ने भारत यात्रा के दौरान अपने यात्रा-विवरण में ऐसे अगणित विस्फोटों का वर्णन किया है, जिनका गहन जाँच-पड़ताल के बाद भी उनके स्रोतों का पता न चल सका। मजेदार बात तो यह है कि ये इस बात का भी निर्णय नहीं कर सके कि उक्त ध्वनियाँ जल, थल अथवा आकाश में हुईं। 'अनएक्सप्लेण्ड फैक्ट्स एनिग्माज एण्ड क्यूरियोसिटिज' पुस्तक में जे. जे. आस्टर के अनुभवों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है, कि १९७० में जब वे वायोमिंग एवं डकोटा की श्याम पहाड़ियों में अपने साथियों के साथ भ्रमण कर रहे थे, तो उन्हें रह-रहकर कर्ण-झिल्ली को फाड़ देने वाले ऐसे धमाके सुनाई पड़ते रहे, मानो आस-पास ही भयंकर बमबारी हो रही हो। उसी दिन स्थानीय लोगों के मार्गदर्शन में पूरा जंगल छान डाला गया, किन्तु कहीं भी किसी प्रकार के विस्फोट के कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़े। निकटवर्ती गाँव के लोगों से जब इस सम्बन्ध में जानकारी चाही गई, तो उनका कहना था कि यह रहस्यमय आवाजें लम्बे समय से इन वनों में होती आयी हैं। किसी को भी इन आवाजों का रहस्य विदित नहीं है। उक्त पुस्तक के लेखक श्री रपर्ट टी. गाउल्ड एवं जे. जे. ऑस्टर की अपनी धारणा है कि विश्व के अनेक देशों में घटने वाली यह घटनाएँ सम्भवतः किन्हीं प्राकृतिक कारणों से घटती हों, पर ऐसा क्यों होता है और उसके पीछे प्रकृति का उद्देश्य क्या है, इसका उद्घाटन होना ही चाहिए।

यह सत्य है कि निरर्थक और निरुद्देश्य लगने वाली यह ध्वनियाँ ऐसी हैं नहीं। इनके पीछे प्रकृति का कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य निहित है। यह बात और है कि पदार्थ विज्ञान और हमारी स्थूल बुद्धि उस तथ्य का अनावरण नहीं कर पा रहे हैं जिसके लिए प्रकृति ऐसे कौतुक रचती रहती है। सत्यान्वेषण के लिए हमें पदार्थ से अपदार्थ, भौतिक से अभौतिक, दृश्य से अदृश्य और स्थूल से सूक्ष्म की ओर उस दिशा में अग्रसर होना पड़ेगा, जिसे ऋषियों ने अध्यात्म विज्ञान के नाम से अभिहित किया है, ऐसा होने पर ही रहस्यमय लगने वाली इन स्थूल ध्वनियों का सूक्ष्म और वास्तविक कारण हम जान सकेंगे।

अविज्ञात के गर्भ में गूँजती ये रहस्यमय ध्वनियाँ

वैसे तो इस सृष्टि की उत्पत्ति ही शब्द-ब्रह्म नाद-ब्रह्म से हुई बतायी जाती है और कहा जाता है, कि तभी से यह सूक्ष्म नाद इस विश्व-ब्रह्माण्ड में गुंजायमान है। साधना विज्ञान के पथिक साधना के उच्च सोपानों में चढ़कर इस नाद को पकड़ते, सुनते एवं विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ अर्जित करते हैं, पर कई बार इस प्रकार की भौतिक ध्वनियाँ न जाने कहाँ से उत्पन्न होतीं, लोगों को सुनाई पड़तीं और थोड़ी देर पश्चात् स्वतः विलीन हो जाती हैं, जबकि सब कुछ आश्चर्यजनक लगता है। आये दिन इस प्रकार की घटनाएँ घटती ही रहती हैं।

बताया जाता है कि मध्य एशिया के आठ लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में फैले हुए गोबी मरुस्थल के तक्लामारान प्रदेश के अन्दास पारसा नामक स्थान पर यदा-कदा ऐसी ही मधुर ध्वनि निनादित होती हुई स्थानीय लोगों द्वारा सुनी जाती है। इसकी अवधि १५-२० मिनट तक होती है, तत्पश्चात् स्वतः बन्द हो जाती है। एक अमेरिकी रेडियो कम्पनी ने टेप करके इस संगीत को रेडियो से प्रसारित किया, तो कितने ही श्रोताओं की आँखों से अनायास आँसू बहने लगे। कहा जाता है, कि यह ध्वनि इतनी कारुणिक है कि अन्तस्तल को छू जाती है। इस संगीत के रहस्य का पता लगाने का प्रयास तब से अब तक अनेकों बार किया जा चुका है, पर हर बार विफलता ही हाथ लगी है। एक बार इस पूरे क्षेत्र का कई दिनों तक ऑडियो रिकॉर्डिंग व वीडियो कैमरा लगा कर फिल्मांकन भी किया गया, किन्तु फिर भी रहस्य पर से पर्दा न हट सका।

'वण्डर बुक ऑफ दि स्ट्रेंज फैक्टर्स' नामक पुस्तक में नील नदी के तट पर स्थित कारनक के खण्डहरों में दो विशालकाय प्रतिमाओं की चर्चा की गई है। इनकी परस्पर दूरी १ किलोमीटर है। इन दोनों में से एक विग्रह तो पत्थर की सामान्य प्रतिमा जान पड़ती है, पर दूसरी के निकट जाने से बोलने की कुछ अस्फुट ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। ऐसा लगता है मानो आगन्तुक से वह उसका कुशलक्षेम पूछ रही हो। जब से यह घटना प्रकाश में आयी है, तब से विश्व के कई शोध दलों ने वहाँ पहुँचकर इसका कारण जानने का प्रयास किया है, पर अब तक उन्हें निराशा ही हाथ लगी है। मूर्ति के भीतर छुपाये गए किसी सम्भावित रेडियो सेट का भी पता लगाने का प्रयास किया गया, किन्तु कोई सूत्र-संकेत हाथ नहीं लगा, जिसमें ऐसा अनुमान लगाया जा सके।

इस प्रकार की एक घटना चेकोस्लोवाकिया के उस नदी तट पर घटित हुई, जो देश के मध्यवर्ती भाग से होकर बहती है। हुआ यों कि सन् १९८० की एक शाम कुछ लोग नदी के किनारे सैर कर रहे थे। अभी १५ मिनट भी नहीं बीते थे कि पास से ही एक सुरीली धुन आती सुनायी पड़ी। पहले तो पर्यटकों ने सोचा कि कोई उन जैसा पर्यटक ही अपनी बाँसुरी बजा रहा है, मगर आस-पास जब उन्हें कोई अन्य दिखायी नहीं पड़ा, तो वे आश्चर्य में पड़ गए। खोजबीन के लिए वे ध्वनि-स्रोत की ओर बढ़े पर यह क्या! ज्यों-ज्यों वे स्रोत की ओर आगे बढ़ते, त्यों-त्यों वह खिसकता चला गया। इस क्रम में अन्ततः वे नदी तट पर जल में पहुँच गए। अब संगीत, नदी के जल के अन्दर से आता सुनाई पड़ने लगा। कुछ ही दिन पूर्व वहाँ कुछ सिपाही मारे गए थे। वे इसे उन्हीं मृतात्माओं की कारिस्तानी समझ कर डर कर भाग गए, पर अब तक भी आधिकारिक रूप से यह नहीं कहा जा सका कि यह किन्हीं भूतों का कौतुक है।

कवाई टापू हवाई द्वीप समूह के अन्तर्गत आता है। होनोलूलू से लगभग १२ किमी. दूरी पर स्थित इस टापू पर एक २० मीटर ऊँची पहाड़ी है, जो रात के समय अजीबो-गरीब ध्वनियाँ पैदा करती है। उस सुनसान पहाड़ी के आस-पास मीलों दूर तक कोई गाँव नहीं है। वहाँ जब रात का अँन्धेरा घिरता है, तो कुत्तों के भौंकने की आवाजें न मालूम कहाँ से आने लगती हैं। दिन के उजाले में उस पहाड़ी पर चढ़ कर कई खोजी दलों ने घूम-घूम कर कुत्तों को ढूँढ़ने का प्रयास किया, पर प्रयत्न निष्फल गया। वहाँ कुत्ते तो क्या, कोई अन्य जानवर भी दिखायी नहीं पड़े।

अफगानिस्तान में काबुल के निकट एक रेगिस्तानी मैदान है। उस मैदान से दिन के समय जब सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणें

बिखेर रहा होता है, ऐसी आवाजें आती हैं, मानों कई घुड़सवार एक साथ शनैः-शनैः निकट आते जा रहे हों, जबकि वास्तविकता यह है कि उस रेतीले मैदान में घुड़सवार कभी जाते ही नहीं । ऊँटों की सवारी भी उस क्षेत्र में नहीं की जाती, क्योंकि उसके आगे दूर-दूर का क्षेत्र जनहीन है । ऐसे में ऐसी ध्वनियों का होना निश्चय ही आश्चर्यजनक है ।

न्यूयॉर्क में एक बार लोग रेडियो प्रसारण सुन रहे थे । कोई बड़ी अच्छी धुन आ रही थी । सभी उसमें खोये हुए थे, तभी अचानक संगीत बन्द हो गया और नारी स्वर में ऐसी अबूझ आवाजें आने लगीं, जिन्हें कोई समझ नहीं सका । बाद में जब रेडियो स्टेशन से पत्र-व्यवहार कर उक्त घटना की जानकारी चाही गई, तो अधिकारियों ने ऐसी किसी विचित्र स्वर के बारे में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की । उन्होंने कहा कि उस दिन ऐसा कोई रिकार्ड नहीं बजाया गया था एवं संगीत कार्यक्रम के दौरान केवल धुनें ही बजायी गई थीं ।

इजरायल के सिनाई अंचल में स्थित पहाड़ी से रह-रह कर घण्टियों की आवाज आती है । इसी कारण उसका नाम 'बैल माउण्ट' रख दिया गया है । घण्टियों के बजने का कारण अब तक अविज्ञात है और न यह ज्ञात हो सका, कि यह आवाजें पर्वत से कैसे, क्यों और कहाँ से उत्पन्न होती हैं ?

इराक में जहाँ दजला नदी पहाड़ी भाग से गुजरती है, वहाँ से करीब दो किलोमीटर दूर एक पहाड़ी गुफा है । बताया जाता है कि यह कन्दरा उस समय की है, जब कभी यहाँ सभ्यता का विकास हुआ था । इस गुफा की विशेषता यह है कि इसमें सदा एक प्रकार की सुमधुर ध्वनि निनादित होती रहती है, जिसे सुनने के लिए लोग समय-समय पर इकट्ठा होते रहते हैं । कन्दराएँ तो इस क्षेत्र में कई हैं, पर संगीत लहरियाँ सिर्फ एक ही से निकलती हैं । इसकी इसी विशेषता के कारण लोग इसे 'म्यूजिकल केव' के नाम से पुकारते हैं।

प्रसिद्ध अँग्रेज लेखक और पर्यटक पाल ब्रण्टन ने अपनी पुस्तक 'इन सर्च ऑफ एन्शियेण्ट इजिप्ट' में एक स्थान पर लिखा है कि नील नदी से २० मील उत्तर में एक अत्यन्त प्राचीन खण्डहर है । यह कोई एक चौथाई किमी. क्षेत्र में फैला हुआ है । रात को कोई वहाँ जाता है, तो उसे बच्चों के खिलखिलाने की आवाजें सुनाई पड़ती हैं । ज्ञातव्य है कि वह स्थान पाँच मील की परिधि में जनहीन है । अतः रात के समय वहाँ किसी के आ पहुँचने की सम्भावना नगण्य जितनी दीखती है और यदि इसे सही मान भी लिया जाय, तो प्रतिदिन रात के समय यह घटना वहाँ कैसे घट सकती है ? मजे की बात यह है कि दिन में वहाँ सब कुछ सामान्य रहता है ।

यह रहस्यमय ध्वनियाँ क्यों व कैसे उत्पन्न होती हैं एवं इनका स्रोत क्या है ? यह अब तक अविज्ञात है और पदार्थ विज्ञान के लिए इनका उद्घाटन चुनौतीपूर्ण बना हुआ है । सम्भव है, मनुष्य जब अध्यात्म विज्ञान का अवलम्बन लेकर सामान्य से ऊपर के आयामों में पहुँचेगा, तो वह न सिर्फ इन भौतिक ध्वनियों के रहस्य को अनावृत्त कर सकेगा, वरन् उन अभौतिक एवं सूक्ष्म दिव्य ध्वनियों को भी सुनने, समझने और लाभ उठाने में सफल-समर्थ बन सकेगा, जो अनादिकाल से इस विश्व-ब्रह्माण्ड में तरंगायमान हैं, और सुपात्रों को समर्थ सहयोग प्रदान करने के लिए आकुल-व्याकुल भी ।

अविज्ञात का चमत्कार या महज एक संयोग

कई बार संयोगवश ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं, जिनकी आशा अपेक्षा नहीं की गई होती है । ऐसी घटनाएँ व्यावहारिक जीवन में तो होती ही रहती हैं, पर अनेक बार यह विचित्रता विज्ञान जगत में भी परिलक्षित हो जाती है । देखा जाता है कि वैज्ञानिक किसी विषय पर प्रयोग-परीक्षण कर रहे हैं, बनाना कोई पदार्थ चाहते हैं, पर अकस्मात् अथवा दुर्घटनावश बन कोई और पदार्थ जाता है, आविष्कार किसी अन्य वस्तु का हो जाता है । पिछले दिनों ऐसे अवसरों पर अनेक ऐसे नये पदार्थों-सिद्धान्तों का आविष्कार हुआ, जिन्हें आज के परिप्रेक्ष्य में मानवोपयोगी और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है ।

कृत्रिम रेशम का अनुसंधान एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक डॉ. शेरडोन्ने ने फोटोग्राफी के दौरान किया था । एक दिन शेरडोन्ने एक फोटोग्राफी प्लेट पर 'कोलोडियन' नामक तत्व की पुताई कर रहे थे कि अचानक मेज हिल जाने से 'कोलोडियन' से भरी बोतल फर्श पर गिर गई । दुःख एवं क्रोध के आवेश में शेरडोन्ने उसे ज्यों-का-त्यों छोड़कर घर चले आये । दूसरे दिन जब वह अपनी प्रयोगशाला की सफाई करने लगे तो जमीन पर पड़ा हुआ कोलोडियन रेशम जैसे पतले धागों में परिणत हो गया था । इन धागों से ही सर्वप्रथम १८११ में कृत्रिम रेशम का कपड़ा बनाया तथा उसे प्रदर्शित किया गया था ।

यदि डॉ. शेरडोन्ने के साथ यह आकस्मिक घटना नहीं घटी होती, तो सम्भवतः आज हम कृत्रिम रेशम का उपयोग नहीं कर रहे होते ।

इसी प्रकार एक बार दो अमेरिकी वैज्ञानिक इरारेमसिन एवं बाल्वर्क अपनी प्रयोगशाला में कोलतार पर गन्धक का प्रभाव देख रहे थे कि अचानक बाल्वर्क का हाथ होठों से टकराया, जिससे उसे मिठास का अनुभव हुआ । घर जाकर हाथ धोकर खाना खाया तो भी बाल्वर्क का हाथ इतना मीठा था कि पूरा भोजन ही मीठा हो गया था । दूसरे दिन बाल्वर्क ने पुनः प्रयोगशाला में जाकर जब अवशिष्ट पदार्थ का स्वाद लिया, तो उसे बेहद मीठा पाया । यही तत्व सैकरिन था, जो आज मधुमेह रोगी के लिए अनुदान एवं शक्कर का विकल्प बन गया है ।

एलोपैथिक दवाओं में एण्टीबायोटिक पेनिसिलिन का आविष्कार महत्त्वपूर्ण माना जाता है । इसकी भी खोज संयोगवश ही हुई ।

एक बार वैज्ञानिक 'सर अलेक्जेण्डर फ्लेमिंग' अपनी प्रयोगशाला में हानिकारक कीटाणुओं की उत्पत्ति के कारणों पर प्रयोग कर रहे थे । प्रयोग के मध्य उन्होंने देखा कि वाच ग्लास की तली में हरे रंग का पदार्थ जमा हुआ है । सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखने पर डॉ. फ्लेमिंग ने पाया कि उस पदार्थ के चारों ओर हजारों की संख्या में जीवाणु मरे हुए चिपके हैं । अनुसंधान के बाद यही पदार्थ पेनेसिलिन साबित हुआ, जो आगे की चिकित्सा की आधारशिला बना ।

तब पेनिसिलीन इतनी दुर्लभ थी कि रोगी को दिए जाने के बाद यह औषधि उसके मूत्र से वापस निकाल ली जाती थी, ताकि उसका दुबारा प्रयोग किया जा सके, पर अब जबकि इसके उद्गम-स्रोत फफूँद का भली-भाँति अध्ययन किया जा चुका है, फफूँद का व्यापारिक उत्पादन कर बड़े पैमाने पर पेनिसिलीन तैयार की जाती है । इसी कारण आज यह इतनी कम कीमत पर सरलतापूर्वक सभी को उपलब्ध हो जाती है । गुप्त रोगों के लिए तो यह रामवाण सिद्ध हुई है ।

विल्हेल्म रोएण्टजन जर्मनी के जानें-माने वैज्ञानिक थे । सन् १८९५ के एक सर्द दिन वे निर्वात् नलिका (वैक्यूम ट्यूब) के साथ कुछ प्रयोग कर रहे थे । नलिका चारों ओर से एक काले मोटे गत्ते से इस प्रकार ढकी थी, कि कोई किरण उससे बाहर न आ सके । अब वह नलिका से उच्च वोल्टेज की विद्युत धारा प्रवाहित करने लगे । उन्होंने देखा कि जब-जब नलिका से होकर विद्युत धारा गुजरती थी, सामने रखा कागज, जिस पर प्रतिदीप्तिकारक रसायन का एक लेप चढ़ा हुआ था, अँन्धेरे में चमकने लगता था । विद्युत धारा बन्द होते ही कागज का चमकना भी बन्द हो जाता था । उन्होंने यह भी देखा कि जब दोनों के बीच हथेली रखी जाती, तो उसकी हड्डियों की छाया कागज पर स्पष्ट उभर आती थी ।

घटना विलक्षण थी, अस्तु उनकी अभिरुचि इसके प्रति बढ़ी । उन्होंने गहराई से इसका अध्ययन किया और अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नलिका से एक अदृश्य किरण निकलती है, जो कागज से टकराने पर प्रदीप्ति का कारण बनती है । इसका नाम उन्होंने "एक्स किरण" रखा । अपनी वेधक प्रकृति के कारण ही चिकित्सा जगत में इसे इतना महत्त्वपूर्ण स्थान मिल सका और टूटे-फूटे अंगों की जाँच-परख में इसका प्रयोग किया जाने लगा ।

सामान्य-सी लगने वाली यह घटना अपने प्रयोग-परीक्षणों के दौरान अनेक वैज्ञानिकों ने देखी थी, जिनमें प्रख्यात भौतिकविद जे. जे. थॉमसन भी थे, परन्तु उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया । सौभाग्यवश रोएण्टजन ने इसमें रुचि दिखायी, जिससे चिकित्सा जगत को एक अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण किरण की जानकारी मिली । अन्यों की तरह यदि उसने भी उसकी उपेक्षा कर दी होती, तो उपचार जगत इसकी बहुमूल्य सेवाओं से वंचित ही बना रहता ।

कई बार ऐसे अवसरों पर भौतिकशास्त्र के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त वैज्ञानिकों के हाथ लगे । आर्कमिडिज का सिद्धान्त ऐसा ही एक सिद्धान्त है ।

सिराक्यूज के राजा ने एक बार यह घोषणा करवायी कि उसके सोने के मुकुट के असली-नकली होने की पहचान जो बता देगा, उसे भारी इनाम दिया जायेगा । आर्कमिडीज ने भी इस घोषणा को सुन रखा था । एक बार जब वह तालाब में स्नान कर रहा था, तो उसने देखा कि डुबकी लगाने के बाद उसके भार में एक आंशिक कमी आ जाती है और हल्कापन महसूस होने लगता है । एक क्षण तक उसने इस विलक्षणता पर विचार किया । सोचा कि असली-नकली सोने के विशिष्ट घनत्व में कमी-वेशी के आधार पर इस विधा द्वारा उसका खरापन सिद्ध किया जा सकता है । बस फिर पागलों की तरह "यूरेका, यूरेका" (पा लिया, पा लिया) चिल्लाते हुए वह राजा के पास पहुँचा, अपनी बात उसे बतायी और दोनों मुकुटों में विभेद कर देने का अपना दावा प्रस्तुत किया । राजा ने कुछ दिनों का समय देते हुए, निश्चित अवधि में काम पूरा कर लाने का आदेश दिया । आर्कमिडीज ने उसी सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए खरे-खोटे सोने की पहचान कर ली । बाद में यही घटना 'आर्कमिडीज सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

देखा जाय तो यह एक सामान्य-सी घटना थी, जो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति नहाते अथवा कुँआ से पानी खींचते वक्त अनुभव करता है, पर इससे पहले किसी ने इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया । संयोगवश आर्कमिडीज ने इस पर विचार किया, तो विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हाथ लगा ।

आइजक न्यूटन एक दिन अपने बगिया में सेब के पेड़ के नीचे बैठे हुए थे, कि अचानक उनके सिर पर सेब का एक फल गिरा । वह सोचने लगे कि आखिर यह फल नीचे ही क्यों गिरा ? ऊपर क्यों नहीं गया ? गहन चिन्तन के उपरान्त उसने निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी में निश्चित रूप से किसी न किसी प्रकार की आकर्षण शक्ति है, जो वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है । कालान्तर में यही शक्ति पृथ्वी की "गुरुत्वाकर्षण शक्ति" कहलायी और यह प्रसिद्ध सिद्धान्त "गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त" के नाम से जाना गया । अब इसी सिद्धान्त का प्रयोग कर बड़ी-बड़ी भौतिक एवं खगोलीय गणनाएँ की जाती हैं ।

ऐसी अनेक घटनाएँ हमारे दैनिक जीवन में घटती रहती हैं, जिसमें बड़े महत्त्वपूर्ण सूत्र-सिद्धान्त छिपे रहते हैं, पर उन्हें हम तुच्छ समझकर दर-गुजर कर देते हैं, किन्तु वैज्ञानिक स्तर के व्यक्ति उन्हीं छोटी घटनाओं में से बड़ी-बड़ी खोजें कर लेते हैं । इससे उन्हें जहाँ एक ओर स्वतन्त्र चिन्तन का अवसर मिलता है, वहीं दूसरी ओर वे नये आविष्कारों के श्रेयाधिकारी बनते हैं । वस्तुतः अविज्ञात का भण्डार अत्यन्त विराट् एवं अपरिमित है । इसमें डुबकी लगाकर, अन्तर्मुखी होकर बहुमूल्य मणि-मुक्तक खोज निकाले जा सकते हैं । महत्त्वपूर्ण आविष्कारों का इतिहास इन्हीं सम्भावनाओं को उजागर करता है ।

संयोगों के विचित्र किन्तु व्यवस्थित घटनाक्रम

संयोग सदा से ही वैज्ञानिकों के लिए चुनौती का विषय रहा है । चमत्कार कहकर वैज्ञानिक स्वयं को नासमझ-पिछड़ा हुआ घोषित नहीं करना चाहते, फिर भी उन्हें झुठला नहीं पाते । इसी कारण अपवाद कहकर बहुधा उन्हें टाल दिया जाता है । प्रसिद्ध लेखक, दार्शनिक आर्थर कोस्लर ने संयोगों को अद्भुत चमत्कार मानते हुए कहा है, कि वे दैनन्दिन जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, उन्हें नकारा नहीं जाना चाहिए ।

पिछले दिनों प्रकाशित ऐलन वॉन की पुस्तक "इनक्रेडिबल कोइन्सीडेन्स" में कोस्लर की मान्यताओं का प्रतिपादन करते हुए संयोग सम्बन्धी ऐसी एक सौ बावन घटनाओं का उल्लेख किया गया है, जिनका प्रत्यक्षतः ढूँढ़ने पर कोई कारण नहीं मिलता ।

'इनक्रेडिबल कोइन्सीडेन्स' पुस्तक में ऐलन वॉन ने एक घटना का उल्लेख किया है । प्रिंस एडवर्ड द्वीप के निवासी कोगलान की, टैक्सास स्थित गाल वेस्टन नामक स्थान पर १८९९ में एक यात्रा

के दौरान मृत्यु हुई । उन्हें वहाँ के एक मकबरे में सीसों की पर्तों में मढ़े एक ताबूत में दफना दिया गया । एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था, कि सितम्बर १६०० में गाल वेस्टन द्वीप में भीषण तूफान आया और पूरे कब्रिस्तान में पानी भर गया । तूफान की स्थिति में ही कोगलान का ताबूत मकबरे से निकलकर बहता-बहता मैक्सिको की खाड़ी जा पहुँचा । वहाँ से वह ताबूत फ्लोरिडा का चक्कर काटकर अटलांटिक महासागर में आ गया । क्रमशः पानी का प्रवाह उसे उत्तर दिशा में ले गया । आठ वर्ष बाद अक्टूबर १६०८ में प्रिंस एडवर्ड द्वीप के मछुहारों ने तूफानी लहरों के बीच पड़े डिब्बे को पानी में तैरते पाया, तो उत्सुकतावश किनारे लाकर उसे खोलकर देखा । कोगलान का नाम अंकित देख वे उसे तुरन्त पहचान गए । यह समुद्री किनारा उसके गाँव से कुछ ही मील दूरी पर था । कोगलान के शव को उचित सम्मान के साथ उस गिरजे के कब्रिस्तान में पुनः दफना दिया गया । यह ताबूत भटकते-भटकते किस प्रकार आठ वर्ष बाद मृतक के जन्म स्थान पर पहुँच गया, इस पर आश्चर्य होना स्वाभाविक है ।

आर्थर कोस्लर ने ऐसी अनेकों घटनाओं के विश्लेषण के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि "जीव-विज्ञान और भौतिक विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक खोजें प्रकृति की उस मूल शक्ति की ओर संकेत करती हैं जो अव्यवस्था में भी व्यवस्था बनाए रखती हैं । इसी को देखकर लगता है, कि हमारे ज्ञान से परे कोई शक्ति काम कर रही है ।"

अपनी पुस्तक 'द रूट्स ऑफ कोइन्सीडेन्स' में कोस्लर ने स्पष्ट लिखा है कि हम निःसन्देह संयोगपरक चमत्कारों से घिरे हैं, जिनके अस्तित्व की अब तक हम उपेक्षा करते रहे हैं । यही कारण है कि इन्हें अन्धविश्वास से अधिक कुछ माना नहीं गया है । यह रहस्य मनुष्य सदियों तक नहीं समझ पाया कि सूक्ष्म जगत कितना अद्भुत तथा विलक्षण है, ऐसी कितनी ही घटनाएँ इसकी साक्षी हैं ।

प्रसिद्ध लेखक रिचर्ड बॉक १६६६ में अमेरिका के मध्य पश्चिम क्षेत्र में दो फलक वाले एक विमान में यात्रा कर रहे थे । यह विमान दुर्लभ प्रकार का था, क्योंकि १६२६ में निर्मित डेट्राइट—पी-२ ए टाइप के विमान केवल आठ ही बने थे और इतने ही विश्व में थे । विस्कॉन्सिन स्थित पायीरो नामक स्थान में रिचर्ड ने यह विमान अपने को पायलट साथी मित्र को चलाने के लिए दिया । विमान उतारते समय मित्र से थोड़ी भूल हो गई और विमान क्षतिग्रस्त हो गया । 'नथिंग वायचांस' (कुछ भी अनायास नहीं) नामक पुस्तक में रिचर्ड बॉक स्वयं लिखते हैं, कि "हमने दबाव को रोकने वाले एक पुर्जे को छोड़कर शेष हर पुरजे की मरम्मत कर दी थी । इस पुर्जे की मरम्मत इसलिए न हो सकी कि उसके दुर्लभ होने से वह भाग कहीं भी मिलना सम्भव न था, तभी एक व्यक्ति आया जिसने स्वयं ही उत्सुकतावश उनकी परेशानी पूछी । संयोगवश उसकी विमानशाला में उस विमान के उपयुक्त ४० वर्ष पुराना पुर्जा मिल गया तथा हम विमान को फिर चला पाने में समर्थ हो गए । यह एक संयोग ही था कि उस अपरिचित इलाके में ठीक वही पुर्जा मिल गया, जिसे खोजकर हम हार गए थे ।"

न्यूजीलैण्ड के कुक जलडमरूमध्य में दो शौकिया नाविक महिलाएँ अपना सप्ताहान्त बिता रही थीं । इसी बीच उनकी नाव एक समुद्री चक्रवात में फँसकर उलट गई । दोनों महिलाएँ कुछ दूर तक तैरीं, पर किनारा मीलों दूर था, नजदीक कोई साधन नहीं । इसी बीच एक मृत ह्वेल मछली की लाश पानी में तैरती उनके समीप लहरों के साथ आयी । वे उस पर चढ़कर उसे नाव की तरह खेती हुई किनारे पर आ गई और सकुशल घर पहुँच गई ।

फैलमाऊथ (मेन—यू. एस. ए.) के एडविन रॉबिन्सन नामक व्यक्ति की आँखों की ज्योति ६ वर्ष पूर्व एक सड़क दुर्घटना में चली गई थीं । उसके चिकित्सक विलियम टेलर ने परीक्षोपरान्त बताया कि अब इसका आना सम्भव नहीं । संयोगवश १६८२ की जुलाई में वे अकेले घर लौटते हुए भयंकर वर्षा वाले तूफान में फँस गए । पेड़ के नीचे शरण पाने के लिए उन्होंने अपनी धातु की छड़ी का प्रयोग किया । तभी जोरों से विद्युत गर्जन हुआ और उन्हें लगा कि कहीं समीप ही बिजली गिरी है । वे धक्का-खाकर गिर पड़े, लेकिन ५ मिनट बाद जब किसी तरह उठे तो पाया कि उनका श्रवण यन्त्र तो बेकाम हो निकल गया, लेकिन वे इसके बिना भी सुन सकते हैं । आँखों से उन्हें सब कुछ दिखाई भी दे रहा है । प्रसन्न मन वे वापस घर लौटे । चिकित्सकों के अनुसार यह विज्ञान की समझ में न आ पाने वाले कई वैचित्र्यपूर्ण संयोगों में से एक है, जिसका कोई समाधान नहीं दिया जा सकता ।

मैरी गैलेण्ट प्रान्त के फ्रांसीसी गवर्नर की तीन वर्षीय पुत्री एक समुद्री यात्रा पर पिता के साथ थी । रास्ते में वह बीमार पड़ी और मर गई । उसकी लाश बोरे में सींकर बन्द कर दी गई, ताकि उसे जल में उपयुक्त स्थान पर डाला जा सके । कुछ समय उपरान्त देखा गया कि जहाज में पालतू बिल्ली लाश के पास चक्कर काट रही है । आमतौर से बिल्ली लाश से दूर रहती है । सन्देह हुआ कि कहीं बच्ची जीवित तो नहीं है । २४ घण्टे बीत चुके थे, फिर भी बोरा खोला गया तो देखा कि लड़की की हल्की-हल्की साँसें चल रही हैं । उसको उपचार मिला और वह ठीक हो गई । बड़ी होने पर उसका विवाह फ्रांस के राजा लुई चौदहवें के साथ हुआ और वह ८४ वर्ष की आयु तक जीवित रही ।

सन् १८२५ की घटना है । पश्चिमी जर्मनी के वाइक कस्बे के समुद्र तट पर भयानक समुद्री तूफान आया । असंख्यों परिवार उसमें डूब गए, फिर भी पालने से बँधे दो बच्चे जीवित अवस्था में किनारे पर पड़े पाये गए । किसी माता ने इन बच्चों के तैरने की सुविधा सोचकर पालने से बाँध दिया होगा । वे डूबे नहीं, किनारे आ लगे । उन्हें एक समुद्री जहाज के मालिक ने उठाया और पाल लिया । बड़े होने पर वे उस पालने वाले के उत्तराधिकारी बने और जहाजों के मालिक कहलाए । जिन्दगी उन्होंने समुद्र में ही बितायी और अन्ततः किसी समुद्री तूफान में फँसकर जहाज समेत समुद्र के गर्भ में ही समा गए ।

कैन्सास के आर्थर स्टिवैल ने एक लम्बा रेलमार्ग बनाने की जिम्मेदारी ली थी । काम ठीक तरह आरम्भ भी नहीं हो पाया था कि एक अप्रत्याशित झंझट आ खड़ा हुआ । इस जमीन पर एक व्यक्ति ने अपने अधिकार का दावा किया और कोर्ट से निषेधाज्ञा निकलवाकर काम रुकवा दिया । बहुत समय तक इस अवरोध के बाद आर्थर ने सपना देखा कि जमीन का असली मालिक कोई कर्से नामक व्यक्ति है । खोज की गई । कर्से मर चुका था ।

उसके उत्तराधिकारी भी इस जमीन के सम्बन्ध में अनभिज्ञ थे, पर जब सपने के हवाले से उसने जबरन कागजों की खोज-बीन करायी तो ऐसे प्रमाण मिल गए, जिनसे वे लोग ही जमीन के मालिक सिद्ध होते थे। अन्ततः उन लोगों से समझौता करके रेलवे लाइन का काम फिर चालू किया गया और वह यथासमय पूरा भी हो गया। यह काम पूरा होने पर उसे करोड़ों का लाभ हुआ।

ऐसी ही एक घटना १५वीं शताब्दी की है जो लन्दन के समीपस्थ शॉपहान कस्बे में प्रख्यात है। यहाँ एक चर्च है, जिसमें एक लकड़ी का पुतला विद्यमान है। इसके नीचे नाम लिखा है—फेरी वाला जॉन चैपमेन। सारे गाँव में इसकी उदारता की अब भी चर्चा होती रहती है। प्रसंग यह है कि चैपमेन को रात्रि में एक स्वप्न में संकेत मिला कि "तुम लन्दन जाओ। वहाँ थेम्स नदी के पुल पर एक आदमी तुम्हें मिलेगा जो गढ़े खजाने के सन्दर्भ में तुम्हें बताएगा। उसका उपयोग सत्कार्यों में ही करना।"

नींद खुलने पर चैपमेन ने निश्चय किया कि यदि स्वप्न सच है तो वास्तविकता का पता अवश्य लगाना चाहिए। वह पैदल की लन्दन के लिए रवाना हो ५ दिन बाद थेम्स के पुल पर पहुँचा। वहाँ तीन दिन तक वह टहलता रहा, किन्तु संकोचवश किसी को स्वप्न की बात बता नहीं पाया। उसी समय एक व्यापारी ने उसे एक पुल पर बार-बार टहलते देखकर पूछा कि तुम्हें क्या परेशानी है? चैपमेन ने स्वप्न का जिक्र उसे कह सुनाया। व्यापारी हँसकर बोला कि गाँव के लोग बड़े भोले होते हैं एवं बेकार ही स्वप्न पर विश्वास कर लेते हैं। आगे वह बोला—"मुझे भी ३ रात पूर्व एक स्वप्न में संकेत मिला था कि यहाँ से सौ मील दूर शॉपहान कस्बे में चैपमेन नामक एक व्यक्ति मिलेगा। उसके घर के पीछे पेड़ के नीचे एक खजाना गढ़ा हुआ मिलेगा। लेकिन मैं तुम्हारी तरह बेवकूफ नहीं हूँ कि ऐसे ही स्वप्न पर विश्वास कर चैपमेन को ढूँढ़ूँ व खजाने का पता लगाऊँ?" चैपमेन को इस वार्तालाप से खजाने का संकेत मिल गया। वह चुपचाप वहाँ से अपने गाँव आ गया व अपने घर के पिछवाड़े के पेड़ के नीचे की जमीन खोदना आरम्भ किया। २ घण्टे के परिश्रम के बाद ही उसे एक बड़े बर्तन में गढ़े हुए सोने एवं चाँदी के सिक्के मिले। उसने यह धन परिवार के लिए तो खर्च किया ही, लेकिन मुक्त-हस्त से गाँव वालों को भी सम्पत्ति वितरित की। एक चर्च व अस्पताल उसने बनवाया। उसकी मृत्यु के बाद वहाँ के निवासियों ने उसका एक लकड़ी का पुतला बनाकर चर्च में लगाया, ताकि उसकी स्मृति अक्षुण्ण रहे।

अद्भुत संयोग, जिनका कारण अविज्ञात ही रहा

प्रकृति और मनुष्य के बीच सामान्य सम्बन्ध इतना ही चलता है कि जिन पदार्थों पर अपना अधिकार हो उन्हें बलपूर्वक या इच्छानुसार प्रयुक्त किया जा सके। ऋतु प्रभाव जैसे कुछ ही प्रसंग हैं, जो मनुष्य को बरबस प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति और मनुष्य के बीच खाई ही बनी रहती है। दोनों एक-दूसरे की कुछ सहायता नहीं कर सकते। पिछले दिनों इस विलगता को समीपता के रूप में विकसित करने का थोड़ा-सा प्रयत्न पदार्थ विज्ञान के माध्यम से हुआ है। इस आधार पर प्रकृति की कुछ शक्तियों को हस्तगत करने का प्रयत्न हुआ। यत्किंचित्त सफलता भी हाथ लगी है। अनेक यन्त्र उपकरणों के माध्यम से तरह-तरह के सुविधा साधन उपलब्ध किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक प्रगति की विजय-दुन्दभी बजती-सुनी जाती है। इस आधार पर मनुष्य की शक्ति और सुविधा भी बहुत बढ़ी है। इतने पर भी प्रकृति और चेतना के मध्य चलने वाली शृंखला का एक बहुत बड़ा क्षेत्र ऐसा है जिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता है।

संयोग के रूप में अनेक बार ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जिससे प्रतीत होता है कि प्रकृति मनुष्य की अनायास सहायता भी करती है। अनचाहे ही ऐसे प्रसंग सामने आ खड़े होते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि अदृश्य क्षेत्र की कोई सत्ता मनुष्य की अप्रत्याशित सहायता कर रही हो। ऐसे संयोग प्रायः ऐसे ही होते हैं जिनमें मनुष्य लाभ में रहता और प्रसन्नता अनुभव करता है।

आश्चर्य यह होता है कि ये संयोग दिग्-काल की परिधि लाँघकर किसी घटना की पुनरावृत्ति के रूप मे ही क्यों घटते हैं? लगता है मानो सुनियोजित रूप में प्रकृति जगत में क्रियाशील चेतन-सत्ता उन्हें संचालित कर रही हो। क्या कारण है कि सफलता अथवा अभिशाप के रूप में पकती और समय पाकर घटती इन घटनाओं के मूल स्रोतों की जानकारी इससे अधिक मनुष्य को नहीं है, कि ये मात्र संयोग हैं? शोध का यह आयाम मात्र पृथ्वी की परिधि में ही बड़े विस्तृत रूप में फैला पड़ा है। पृथ्वी से इतर तो अन्तरिक्ष जगत्, ध्रुव प्रदेश, भूगर्भ एवं अन्यान्य ग्रह-पिण्डों में भी यह क्षेत्र खुला हुआ है। मात्र पृथ्वी के ही दृश्यमान प्रसंगों को लेते हैं तो "अनेक्सप्लेन्ड" नाम से ही फाइल में दर्ज अनेकों घटनाएँ दृश्यपटल पर गुजरती हुईं विश्व मनीषा को चुनौती देती रहती हैं तथा नित्य जुड़ती चली जाती हैं।

ग्रेमाउथ न्यूजीलैण्ड के बन्दरगाह पर वल्लवी नामक स्टीमर ५ नवम्बर, १८७० को डूब गया। लगातार कई वर्षों की कोशिशों से बड़ी मुश्किल से उसे बाहर निकाला गया। मरम्मत करके इस लायक बनाया गया कि वह फिर से अपना काम कर सके।

कई वर्ष तक वह ठीक प्रकार काम करता भी रहा, पर एक आश्चर्यजनक दुर्भाग्य फिर सामने आया। ठीक १६ वर्ष बाद वह उसी तारीख को उसी स्थान पर फिर आकर डूब गया, जिस पर कि यह पिछली बार डूबा था।

पैरिस कि एक महिला एडिग्यू रेरिइट की सोने की अंगूठी उनके रसोई घर से गायब हो गई। बहुत ढूँढ़ने पर भी वह मिली नहीं। कई वर्ष बीत गए रेरिइट एक मछली बाजार से खरीद कर लायी। पकाने के लिए जब उसका कतरव्योंत किया गया तो मछली के पेट में वही अंगूठी मिली जो कई वर्ष पूर्व रसोई घर में खोई थी और जिस पर उनका नाम भी खुदा था। हुआ यह कि अंगूठी रसोई घर से नाली में बहते हुए नदी में पहुँची और उसे मछली निगल गई। संयोग ही कहना चाहिए कि वही मछली, मछुहारों के हाथों में घूमती-फिरती फिर वहीं पहुँच गई, जहाँ अंगूठी वापस पहुँचनी थी।

माण्टिसेनी (न्यूयार्क) में पैट लेनाहन नामक व्यक्ति तालाब के किनारे लालटेन जलाकर कुछ काम कर रहा था। अचानक लालटैन की चिमनी गिरी और तालाब में डूब गई, ढूँढ़ने पर भी

वह मिली नहीं । एक लम्बा समय बीत गया । लेनाहन उसी तालाब में मछली पकड़ने बैठा । तीसरे पहर एक मछली उसके काँटे में फँसी । खींचकर बाहर निकाला तो वह आश्चर्यचकित रह गया जब उसने देखा कि पाँच वर्ष पहले जो चिमनी उसकी लालटेन से छूटकर तालाब में गिरी थी । उसी को यह मछली काँटे की तरह पहने हुई थी । इसे संयोग ही कहना चाहिए कि मछली उस चिमनी में घुस गई और उस लम्बी अवधि तक उसे यथावत् पहने रही ।

फ्रांस केडु-बेरे के गिरजे में ७५ वर्षों तक कार्यरत पादरी सेण्ट विल्स को दफनाया गया था । बहुत दिन बाद गिरजे की एक दीवार गिर पड़ी । जो भाग गिरने से बच गया था वह मनुष्य की मुखाकृति का था और गौर से देखने पर पादरी की आकृति से बिल्कुल मिलता-जुलता था । सभी उसे आश्चर्य से देखते और दाँतों तले अंगुली दबाकर रह जाते थे, इस अद्भुत संयोग पर ।

उल्कापिण्ड आमतौर से सुनसान जगहों में ही गिरते पाये गए हैं । मनुष्य पर उनका आक्रमण हुआ हो, ऐसी घटना इतिहास में एक ही मिलती है । यह व्यक्ति था इटली का मैन फ्रेडो सेट्टाला । वह वैज्ञानिक भी था । उसकी शोध भी उल्काओं के स्वरूप तथा धरती के वातावरण में प्रवेश करने के रहस्यों पर चल रही थी । शोधकाल में वह उल्कापिण्ड की चोट से बुरी तरह घायल हुआ और अनन्तः मर ही गया । खेतों पर घूमते समय एक उल्का खण्ड का छोटा-सा टुकड़ा उसके ऊपर गिरा और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

ह्वेल मछली का शिकार करने वाली नाव 'विनस्ला' के मालिक एडमण्ड गार्डनर की एक बार पेरु के समुद्र में ह्वेल से मुठभेड़ हुई । मछली भाले की चोट से आहत हुई और उसने उलटकर हमला बोल दिया । उसने जबड़े से नाव के अगले हिस्से को बुरी तरह चबा डाला और साथ ही कप्तान को भी दबोच लिया । वह किसी तरह बच तो गया, पर दाँतों के भिंचाव में उसकी खोपड़ी में छेद हो गया, गले की हड्डी चकनाचूर हो गई और एक हाथ पूरी तरह कुचल गया । कई महीने उसे अस्पताल में रहना पड़ा वह न केवल अच्छा हो गया, वरन् दुर्घटना के ३० वर्ष बाद तक जीवित रहा और तारीख के हिसाब से उसी दिन मरा जिस दिन ह्वेल मछली ने उसे चबा डाला था ।

सन् १३०० में इटली के राजा चार्ल्स ने ल्युसेरे का गिरजा एक अरबी मसजिद के मलवे से बनवाया । इसके पूर्व यह मस्जिद भी केथेड्रल के गिरजाघर के मलवे से बनाई गई थी ।

ईसा से १०५ वर्ष पूर्व जर्मनी और रोम में भयंकर लड़ाई हुई । जर्मनों ने रोमनों को हरा दिया और उनकी सेना कत्ल कर दी गई । मात्र अकेला जनरल सरटोरियस ही जीवित बच सका । उसने कत्लेआम का शिकार होने की अपेक्षा उफनती रोम नदी में छलाँग लगाकर पार जाने और किसी प्रकार प्राण बचाने की बात सोची । इस प्रयास में उसे लोहे के कवच, ढाल तथा तलवार से लदा होने के कारण अपना और शस्त्रों का भारी बोझ ढोना पड़ा तथा नदी की धार काटते हुए तैरना पड़ा । इस प्रयास में वह जिन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ता हुआ पार हुआ और अन्ततः बच ही गया । इसके दस वर्ष बाद उसकी मृत्यु ठीक उसी दिन आश्चर्यजनक ढंग से हुई । पैर फिसला, मोच आयी और सूजन बढ़ते जाने मात्र से तीन दिन में मौत हो गई ।

मनुष्य और जड़ पदार्थों के साथ घटित होते रहने वाले इन संयोगों की एक बड़ी लम्बी शृंखला है । ये बताती है कि समष्टि चेतना मानवी व्यष्टि चेतना से तथा पदार्थ जगत से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । आदान-प्रदान का क्रम भी इन्हीं के बीच चलता है । अद्भुत नजर आने वाले ये संयोग तो उस प्रक्रिया का आभास मात्र देते हैं । वस्तुतः ज्ञान उतना ही नहीं है, जितना मानव को बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अब प्राप्त है । बहुत कुछ ऐसा है, जिसे अभी जानना शेष है ।

इसे मात्र संयोग कैसे मानें ?

आयरलैण्ड के कुक हैवेन शहर में एक ही मकान में रहने वाले परिवारों में कुछ मिनटों के अन्तर से दो पुत्र हुए । एक दम्पति ने अपने बच्चे का नाम एलेनर ग्रेडी रखा, दूसरे ने अपने बच्चे का नाम पैट्रिक रखा । दोनों बच्चे धीरे-धीरे अपने जीवन के स्वाभाविक विकास-क्रम की ओर चल पड़े ।

पैट्रिक और एलेनर दोनों अलग-अलग खेलते, अलग-अलग रहते, किन्तु एक दिन दोनों रोते-रोते घर पहुँचे, दोनों के दाहिने पैर पर एक ही स्थान पर चोट लगी थी । माता-पिता ने पट्टी कर दी, कोई ध्यान न दिया । दोनों बच्चे पढ़ रहे थे, तब कई बार ऐसा हुआ कि यदि परीक्षा में पैट्रिक को ३०० अंक मिले तो दूसरे स्कूल में पढ़ रहे ग्रेडी को भी उतने ही अंक मिले । जिस दिन एलेनर के विवाह-सम्बन्ध की बात चली, ठीक उसी दिन पैट्रिक की भी और संयोग की बात यह कि दोनों का विवाह एक ही दिन हुआ । दोनों की शादी एक ही दिन तय हुई और पहला बच्चा भी एक ही दिन हुआ ।

बचपन में एक ही मकान में रहे एलेनर और पैट्रिक बड़े होने पर आपस में मिले, तब उन्होंने इन समानताओं पर ध्यान दिया और अन्तिम समय भी वे समानता का एक और उदाहरण छोड़ गए कि दोनों व्यक्तियों की मृत्यु भी एक ही समय पर हुई । उस समय दोनों अपने-अपने खेत में काम कर रहे थे ।

यह घटना जीवन की विचित्र रहस्यमयता तो प्रतिपादित करती ही है, यह भी बताती है कि मनुष्य का अस्तित्व शरीर तक ही सीमित नहीं है । बल्कि उसकी मूल सत्ता शरीर से बहुत सूक्ष्म और स्थूल नियमों से परे है । मनीषियों ने उस सूक्ष्म सत्ता को आत्मतत्व, जीवसत्ता का नाम दिया है और कहा है कि वह काय-कलेवर तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि विकसित होकर विश्व ब्रह्माण्ड की विराट् चेतना से भी जा जुड़ती है ।

'पैट्रिक' और 'एलेनर' के जीवन की समानता से भी अधिक विचित्र समानताएँ थीं इटली के सम्राट डम्बर्टो प्रथम तथा वहीं के एक होटल मालिक में उस होटल मालिक को तो सम्राट का प्रतिरूप ही कहा जाता था । दोनों की सूरत, शक्ल और चेहरे-मोहरे इस प्रकार मिलते-जुलते थे कि डम्बर्टो तथा होटल मालिक को एक समान कपड़े पहना कर खड़ा कर दिया जाय तो उनकी पत्नियों के लिए भी पहचानना असम्भव हो कि कौन उनका पति है ? सूरत-शक्ल से ही नहीं नाम भी दोनों का एक ही था । पाठक किसी भ्रम में न पड़ जायें इसलिए यहाँ एक को डम्बर्टो प्रथम तथा दूसरे डम्बर्टो को होटल मालिक कहा जा रहा था ।

सम्राट् डम्बर्टो और होटल मालिक डम्बर्टो का जन्म १४ मार्च, १८४४ को प्रातः ठीक साढ़े दस बजे हुआ था । सम्राट्

डम्बर्टो टूरिन के राजमहल में जन्मे, तो होटल मालिक एक झोंपड़े में । २ अप्रैल, १८६६ को सम्राट् डम्बर्टो का विवाह हुआ और उनकी पत्नी का नाम मर्घरिटा था । होटल मालिक का विवाह भी उसी दिन हुआ और उसकी पत्नी का नाम भी मर्घरिटा था । एक ही दिन युवराज सिंहासनारूढ़ हुए और दूसरे डम्बर्टो ने होटल खोला । २८ जुलाई, १६०० को होटल मालिक की हत्या किसी ने गोली मारकर कर दी । उसी दिन उसी समय सम्राट् डम्बर्टो को भी एक पारितोषिक वितरण के समय गोली मार दी गई ।

ये घटनाएँ सिद्ध करती हैं कि सूक्ष्म चेतना की सत्ता स्थूल सत्ता से महान् है और वह मनुष्य को किसी उद्देश्य से इस पृथ्वी पर भेजती है । अपने स्वरूप को भुलाने पर वह इन संकेतों से समझाती भी है ।

संयोग कहकर अविज्ञात को झुठलाइए नहीं

आर्थर कोसलर ने एक पुस्तक लिखी है—'रूट्स ऑफ कॉइन्सीडेन्स' । लेखक ने यह बताने और समझाने की कोशिश की है कि विराट् सृष्टि में सर्वत्र नियम और व्यवस्था का सिद्धान्त काम कर रहा है । 'संयोग' प्रकृति नियमों का एक अपवाद है जो यदा-कदा ही प्रस्तुत होता है । वस्तुतः वह भी किसी न किसी अविज्ञात नियमों द्वारा ही परिचालित है । उन नियमों से अपरिचित होने के कारण ही रहस्यमय घटनाओं को 'संयोग' की संज्ञा दे दी जाती है, अन्यथा सत्य यह है कि सृष्टि के प्रत्येक जड़-चेतना घटकों—लघुतम अणु-परमाणुओं में सुव्यवस्था का नियम काम करता दिखाई पड़ता है।

जीवन-मरण का गतिचक्र भी उस स्वसंचालित व्यवस्था का एक अंग है । यह गतिचक्र अपने सामान्य क्रम में चलता रहता है तो किसी तरह का तार्किक प्रश्न नहीं खड़ा होता । प्रकृति के नियमों से सुपरिचित होने तथा घटनाओं के कारण का बोध रहने से सब कुछ स्वाभाविक-सा लगता है । कौतूहल तब उत्पन्न होता है जब ज्ञात प्रकृति नियमों को तोड़ती हुई ऐसी रहस्यमय घटनाएँ प्रस्तुत होती हैं, जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता । बुद्धि और उसका आविष्कार विज्ञान दोनों ही उन घटनाओं की विवेचना करने में जब अपनी असमर्थता व्यक्त करता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि अदृश्य घटनाक्रमों के कुछ सूत्र ऐसे हो सकते हैं जो इनकी पकड़ सीमा के बाहर हैं । मन और बुद्धि के सामान्य स्थूल पर्तों द्वारा उन घटनाओं को समझ पाना मुश्किल ही नहीं असम्भव है । इनकी सूक्ष्मत्तर चैतन्य पर्तों को कुरेदकर ही उनका विलक्षण घटनाओं का रहस्योद्घाटन कर सकना सम्भव हो सकता है ।

उदाहरणार्थ, कितनी ही बार ऐसे अवसर आते हैं जब मनुष्य का पुरुषार्थ प्रस्तुत संकटों के निवारण में असमर्थ सिद्ध होता है, कहीं से किसी प्रकार कोई सहयोग की सम्भावना नहीं नजर आती । असहाय और असमर्थता की स्थिति में ऐसा लगता है कि जीवन का अन्त सन्निकट है, पर परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष सहयोग की आकस्मिक परिस्थितियाँ ऐसे आ खड़ी होती हैं, जैसे उनके लिए सुनियोजित ढंग से तैयारी की गई हों । मृत्यु के मुख से कितने ही व्यक्ति दैवी सहयोग पाकर बच निकलते हैं । ऐसी घटनाओं को मात्र संयोग कहकर टाला और सन्तोष नहीं किया जा सकता । समय-समय पर ऐसी कितनी ही घटनाओं के समाचार मिलते रहते हैं, जो यह सोचने को बाध्य करती हैं, कि विराट् सृष्टि में ऐसी कोई समर्थ सत्ता है जिसकी नजर ब्रह्माण्ड की प्रत्येक घटनाओं पर है । वह न केवल विश्व का संचालन और सुनियोजन करती है, वरन् आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष माध्यमों द्वारा सहयोग देकर अपनी करुणा का भी परिचय देती है ।

इंग्लैण्ड के एक गिरजाघर के विशप—'राइटरेवरेण्ड विलियम मैकक्रेट' हैरिडट काउपर नामक एक जलपोत से २८ यात्रियों तथा कर्मीटल के सदस्यों के साथ समुद्री यात्रा पर निकले । एक दुर्घटना में जहाज ध्वस्त हो गया । निकटतम थलीय प्रदेश से वह स्थान हजारों मील दूर था । जलपोत चालक सहित तीन व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी को तैरना नहीं आता था, पर समुद्र की तूफानी लहरों में उनकी शक्ति भी साथ नहीं दे रही थी । बचने का अन्य कोई उपाय नहीं नजर आ रहा था । असहाय स्थिति में समुद्री तरंगों की थपेड़ों के साथ बहते जा रहे थे । इतने में एक आश्चर्यजनक घटना घटी । एकाएक समुद्र से आग का एक विशाल गोला फूटा जो ज्वालामुखी फटने जैसा था और लगभग ५० फीट की ऊँचाई तक उठ गया । इसके साथ ही एक नया द्वीप पानी से ५० फीट ऊपर उभर आया । बहते हुए सभी व्यक्ति एक-एक करके उस द्वीप पर चढ़ आये । उन्होंने इस नये द्वीप का नाम 'टाइमली आइलैण्ड' रखा । तीन दिनों के बाद एक दूसरा ब्रिटिश जहाज उन्हें खोजता हुआ पहुँचा । नये द्वीप और सबको सुरक्षित देखकर उन्हें भारी आश्चर्य हुआ । एक स्वर से हर व्यक्ति ने कहा 'किसी अदृश्य शक्ति ने सहायता न की होती तो मृत्यु सुनिश्चित थी ।' बिटिश सरकारी रिकॉर्ड में इस घटना का विस्तृत वर्णन मौजूद है ।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ की एक घटना है । 'सैलीएन' नामक एक वजनी जहाज 'हैलीफाक्स', नोवास्काटिया से बारमूडा जा रहा था । तूफान के कारण अचानक वह उलट गया । नौ व्यक्ति जहाज पर सवार थे । सभी बहने लगे । अचानक अप्रत्याशित घटना घटी । एक दूसरी समुद्री लहर ने नाव को सीधा कर दिया । एक दूसरी लहर ने बहते हुए सभी यात्रियों को नाव के भीतर उछाल दिया । ऐसा मालूम पड़ता था कि समुद्र की लहरों को कोई शक्ति नियन्त्रित कर रही हो । यह दुर्घटना द्वारा बचाव का कार्य कुछ ही मिनटों में सम्पन्न हुआ । नाव का उलटना, अचानक सीधा हो जाना विपरीत दिशा में बहते यात्रियों को एक साथ नाव के भीतर बिना किसी दुर्घटना के उछाल दिया जाना, इन सभी घटनाओं को मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता ।

१६१७ में प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था । जर्मन वायु सेना का लेफ्टीनेण्ट बोहर्ले प्रथम विश्व युद्ध में फ्रान्सीसी सीमा के ऊपर निरीक्षण करने के लिए जहाज से उड़ान भर रहा था । अकस्मात् जहाज का इंजन बन्द हो गया । बोहर्ले तेरह हजार फुट की ऊँचाई से जहाज के बाहर उछल गया । नियन्त्रण के अभाव में जहाज नीचे गिरने लगा । इंजन बन्द हो जाने से चालक रोजेन गार्ड भी कुछ कर सकने में असमर्थ था । तभी हवा का एक तीव्र झोंका महसूस हुआ और बोहर्ले को उसने जहाज के भीतर ला पटका । आश्चर्य यह कि ठीक उसी समय जहाज का इंजन भी अपने आप चालू हो गया । इस तरह दोनों ही बच

गए । बोहर्ले ने एक पत्रकारों की भेंटवार्त्ता में कहा कि "मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि अदृश्य जगत में कुछ अदृश्य भी शक्तियाँ भी काम करतीं तथा दूसरों को संकट की हालत में सहयोग करती हैं ।"

'बिलीव इट ऑर नॉट' पुस्तक में ऐसी ही एक और घटना का उल्लेख है । पोर्ट रायल जमैका का लुइस गैल्डी नामक एक व्यक्ति एक भयंकर भूकम्प में जमीन के नीचे दब गया । दिन भर वह असहाय स्थिति में पड़ा रहा, पर एक दूसरा भूकम्प का झटका आया, जिससे जमीन पुनः फट गई । भूकम्प के झटके ने गैल्डी को उछालकर बाहर फेंक दिया । इस तरह उसके जीवन की रक्षा हो गई ।

इसी पुस्तक में एक दूसरी घटना का उल्लेख है । माटसेन्स, फ्रान्स की एक १८ माह की बच्ची 'रिनी निवरनाम' का अपहरण आठ व्यक्तियों ने मिलकर कर लिया । एक बड़ी रकम वे बालिका के अभिभावक से हड़पना चाहते थे । उसे अपहरणकर्त्ताओं ने एक समुद्री नौका पर रखा । लड़की के अभिभावक को एक निश्चित धनराशि लेकर पहुँचने की सूचना दी गई । सूचना के साथ यह धमकी भी दी गई थी कि यदि निर्धारित समय पर धन नहीं पहुँचा तो बालिका को समुद्र में डुबाकर मार दिया जायेगा, पर सम्भवतः प्रकृति को ऐसा मंजूर नहीं था । "जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय, बाल न बाका हो सके, जो जग बैरी होय ।" यह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ हुई । प्रकृति का आक्रोश उल्टा अपहरणकर्त्ताओं के ऊपर ही फूट पड़ा । तूफान ने नौका को डुबो दिया जिसमें आठों अपहरणकर्त्ता मारे गए, पर छोटी बच्ची पैकिंग के बने तख्ते पर तैरती हुई 'कासिस' फ्रान्स के समुद्र तट पर सकुशल आ लगी । तब तक वह निद्रामग्न रही जब तक कि तैरता हुआ लकड़ी का तख्ता समुद्र के किनारे न जा लगा । किनारे पर कुछ मछुआरों ने जाकर स्थानीय पुलिस को सूचना दी । रिपोर्ट पुलिस को पहले ही मिल चुकी थी । उस आधार पर बालिका को उसके माता-पिता के पास पहुँचा दिया गया ।

यदि इस घटना को मात्र एक प्रकृति संयोग माना जाय तो समाधान नहीं निकलता । समुद्री तूफान की चपेट में आना और उसमें अपहरणकर्त्ताओं का मारा जाना, बालिका का लकड़ी की तख्ती में अपने आप आ जाना तथा सकुशल समुद्र के किनारे निद्रावस्था में जा लगना आदि, घटनाओं का तारतम्य 'संयोग के सिद्धान्त' द्वारा कैसे बैठाया जा सकता है । दुर्घटना एक संयोग थी, तो उसकी चपेट में बालिका को भी आना चाहिए था, पर बिना किसी क्षति के सुरक्षित भयंकर तूफान से निकलकर समुद्र के किनारे बालिका के जा पहुँचने की घटना यह बताती है कि किसी अदृश्य सत्ता द्वारा बालिका के जीवन रक्षा की व्यवस्था बनायी गई ।

२४ दिसम्बर, १९२३, नूय. कैलेंडोनिया के निकट एक ऐसी विलक्षण घटना घटी, जो यह बताती है कि सृष्टि में सर्वत्र कोई ऐसी शक्ति काम कर रही है, जो असमर्थता की स्थिति में मनुष्य को सहयोग भी देती है । एडोल्फ पान्स नामक एक फ्रान्सीसी व्यापारी अपने एक अन्य साथी के साथ मोटर बोट से समुद्र में विहार करने के लिए निकला । अचानक एक समुद्री लहर के कारण मोटर बोट अनियन्त्रित हो गई । पान्स समुद्र में गिर पड़ा । उसके दूसरे साथी ने स्वयं भी पान्स के बचाव के लिए समुद्र में छलाँग लगा दी । लगभग आठ मील दूर दोनों ही को शार्क मछलियों के बीच छोड़कर मोटर बोट अलग जा पहुँची । मृत्यु अब सन्निकट थी । अचानक बिना किसी सवार की नौका पीछे की ओर मुड़ने लगी । ऐसा प्रतीत होता था कि किसी शक्ति ने मोटर बोट का नियन्त्रण अपने हाथों में ले लिया हो । आठ मील दूर जा पहुँची मोटर बोट तीव्र रफ्तार से ठीक वहाँ आ पहुँची गई जहाँ कि दोनों व्यक्ति अब मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे थे । दोनों ही नौका पर जा चढ़े और सुरक्षित समुद्र के किनारे जा लगे । व्यापारी पान्स का कहना था कि "मुझे विश्वास नहीं होता कि यह सब कैसे हुआ, पर जो कुछ हुआ वह संयोग नहीं था । किसी अदृश्य शक्ति ने ही हमें मृत्यु के मुँह से बचाया और नया जीवन दिया । किन्हीं-किन्हीं को इस तरह के अप्रत्याशित सहयोग मिलते हैं, जबकि कितने ही दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं । इन्हें वैसी सहायता क्यों नहीं मिलती ? क्या कर्म-फल सिद्धान्तों से ऐसी घटनाओं का कुछ तारतम्य है ? कितने ही ऐसे प्रश्न उभर कर सामने आते हैं, जिनका उत्तर सामान्य तार्किक बुद्धि देने में असमर्थ प्रतीत होती है । सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर तथा दैवीय अनुग्रह सिद्धान्त की जानकारी के लिए पिण्ड के चेतन अन्तराल में प्रविष्ट करना होगा । उन सूत्रों को ढूँढ़ना होगा, जिनके द्वारा व्यष्टि चेतना, समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़कर परस्पर दिव्य आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त करती है ।

संयोगों के मूल में निहित तर्क एवं तथ्य

संयोग की शृंखला में कई बार ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं, जो परस्पर इतने आश्चर्यजनक साम्य सँजोये होती हैं, कि देख-सुन कर आश्चर्य होता है । इतने पर भी सच्चाई यह है कि यहाँ संयोग कुछ है नहीं । संयोग और वियोग के रूप में जो कुछ भासता है, उसके पीछे भी एक सुनियोजित तारतम्य है और परोक्ष की प्रेरणा भी । यह बात और है कि उसे हमारी बुद्धि समझ व सुलझा नहीं पाती ।

अपने सौर परिवार पर विचार करें, तो पृथ्वी जैसी स्थिति, परिस्थिति और वातावरण वाले कई ग्रह-उपग्रह यहाँ विद्यमान हैं । इसके अतिरिक्त आकाश गंगा के दूसरे सौर-मण्डलों में से अनेकों में ऐसी अनुकूलताएँ हो सकती हैं, जिनमें जीवन धारण करने योग्य वातावरण हो, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है । इन सबके बावजूद वास्तविकता यह है कि विशेषज्ञ अपने लम्बे अनुसन्धान-अन्वेषण के उपरान्त भी किसी में जीवन का कोई चिह्न ढूँढ़ निकालने में अब तक विफल रहे हैं । तो फिर पृथ्वी में जीवन के विकास को आकस्मिक मान लिया जाय ? नहीं, ऐसा मानना भी अनुचित होगा । वस्तुतः इस संसार में बहुत कुछ ऐसा घटित होता रहता है, जिसे बुद्धि के स्तर पर जान-समझ पाना सम्भव नहीं और जब घटनाएँ अनबूझ स्तर की पहेली बन जाती हैं, तो उन्हें आश्चर्य, अचम्भा, संयोग, वियोग जैसे नामों से पुकारा जाने लगता है । पृथ्वी के सन्दर्भ में जब गहनतम जाँच-पड़ताल की गई, विदित हुआ कि यह अपनी धुरी पर २३$\frac{१}{२}$ डिग्री कोण से झुकी हुई है । इसके अतिरिक्त इसके चारों ओर ओजोन की सुरक्षा छतरी है । ये दोनों ही विशेषताएँ ऐसी हैं, जो सूर्य से आने वाली ऊर्जा और ऊष्मा को नियन्त्रित कर यहाँ की वनस्पतियों

तथा जीवों की रक्षा करती हैं। यदि उक्त विशिष्टताएँ नहीं रही होतीं, तो अपना यह ग्रह-पिण्ड आज आबाद नहीं होता। अन्यों में अनुकूल सूक्ष्मताओं का अभाव है, फलतः वे अपने प्रादुर्भाव काल से ही जीवनहीन दशा में पड़े हुए हैं। इससे ऐसा लगता है कि जीवन विकास के लिए महत्त्वपूर्ण मात्र बाह्य स्तर की समानता ही नहीं है, महत्त्व इस बात का भी है कि जीवनदायी सूक्ष्म अनुकूलताएँ किस प्रकार की, कितने अंशों में हैं। विधाता ग्रह-गोलकों के इस विभेद को भली-भाँति समझते हैं और तद्नुसार जीवनधारण की प्रेरणा उभारते हैं। पृथ्वी जीवनयुक्त है, इसका एक ही कारण है कि यहाँ जीवन-योग्य हर प्रकार की अनुकूलताएँ हैं। दूसरे पिण्डों में यह आधी-अधूरी हैं, इसलिए वे जीवन-शून्य हैं। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। दैनिक जीवन के प्रसंगों में हम उनके सूक्ष्म सत्यों से अनभिज्ञ रहते हैं, अतएव सत्यों को संयोगों की श्रेणी में रख देते हैं।

घटना इंग्लैण्ड की है सन् १९६२ की एक प्रातः स्टावरब्रिज शहर की एक सुनसान सड़क पर दो वाहन विपरीत दिशा में चले आ रहे थे। इनमें से एक मोटरसाइकिल और दूसरी कार थी। असावधानीवश दोनों की परस्पर टक्कर हो गई। दुर्घटना ऐसी नहीं थी, जिसे गम्भीर कहा जा सके। अन्तिम क्षणों में दोनों ने अपने-अपने वाहनों को काफी हद तक नियन्त्रित कर लिया था, फलस्वरूप छोटी हानि होकर वह टल गई। चालकों को कोई बहुत नुकसान नहीं पहुँचा। चोट भी इतनी नहीं थी, जिसके लिए उन्हें अस्पताल में भर्ती किया जाय। दोनों का परिचय पूछा गया, तो उनमें विचित्र साम्य था। दोनों ही का नाम फ्रेडरिक चान्स था और वे एक ही शहर के रहने वाले थे, पर एक-दूसरे से सर्वथा अपरिचित।

ऐसे ही एक विचित्र संयोग का उल्लेख ब्रिटिश अभिनेता एडवर्ड एच. सर्दन ने अपनी पुस्तक 'दि मेलन्कोलिक टेल ऑफ मी' में किया है। वे लिखते हैं कि एक बार उनके पिता को वेल्स के राजकुमार ने एक सुन्दर नक्काशीदार सोने की माचिस दी। आखेट के दौरान वह कहीं खो गई। पिता ने उसी की दूसरी अनुकृति बनवा ली और उसे अपने छोटे बेटे सैम को दे दी। सैम ने बाद में उसे अपने आस्ट्रेलियाई मित्र लेबर टच को भेंट कर दी। इसके बीस वर्ष बाद एक दिन सैम शिकार खेलने गया, तो रास्ते में उसकी मुलाकात एक वृद्ध किसान से हो गई। प्रातः जब वह खेत जोत रहा था, तो अचानक उसके हाथ वही सोने की माचिस लग गई, जो उसके पिता से शिकार के दौरान खोई थी। वह इस घटना से इतना प्रभावित हुआ कि अपने बड़े भाई एडवर्ड को इस सम्बन्ध में एक चिट्ठी लिखी, जो कि तब अमेरिका की यात्रा पर था। एडवर्ड ने जब उसका पत्र खोला तब वह एक ट्रेन से सफर कर रहा था। संयोग की बात है, उस समय उसके बगल में एक अन्य अभिनेता आर्थर लॉरेन्स भी मौजूद था। जब उसने अपने भाई और मूल माचिस की प्राप्ति की कथा उसे सुनाई, तो हैरान लॉरेन्स ने उसकी दूसरी अनुकृति तुरन्त प्रस्तुत कर दी, जो लेबरटच ने उसे कुछ वर्ष पूर्व प्रदान की थी।

एक अन्य घटना बर्कले, कैलिफोर्निया की है। टीटा नामक एक महिला एक दिन खरीददारी करने बाजार गई। जब वह वापस लौटी, तो कमरे की चाबी रास्ते में खो चुकी थी। वह ताला खोलने का उपाय करने लगी, पर सफल न हो सकी। दस मिनट बीत गए, तभी डाकिया आया और उसके हाथ में एक लिफाफा थमा गया। चिट्ठी सीटल से आयी थी और उसके भाई की थी। उसने पत्र खोला, तो आश्चर्यचकित रह गई। लिफाफे में चिट्ठी के साथ उस कमरे की एक दूसरी चाबी भी पड़ी थी, जो वर्षों पहले सामान के साथ उसके भाई के पास पहुँच गई थी। पत्र के माध्यम से उसको ही उसने लौटाया था। यह कुँजी भी तब मिली जब उसकी स्वयं की खो चुकी थी। कैसी विचित्र बात है ? इस सम्पूर्ण घटना का विवरण माइकेल एस गेजेनिगा ने अपने ग्रन्थ 'सटल साइन्स' में दिया है।

उक्त घटनाएँ विस्मयकारी लग सकती हैं, पर वह साधारण है, संयोग है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी मत का समर्थन करते हुए मूर्धन्य मनोविज्ञानी डी. स्कॉट रोगो अपनी रचना 'पेरानॉर्मल फेनोमेना इन डे-टू-डे लाइफ' में लिखते हैं कि दैनिक जीवन में जिन्हें हम महज संयोग कह कर टाल देते हैं, उनमें कई बार ऐसी असाधारणता नजर आ सकती है, जो अलौकिक हो। सम्भव है, अनुसन्धान द्वारा इस पर से पर्दा हटाया जा सके और यह जाना जा सके कि सामान्य स्थिति में जो संयोग जैसा प्रतीत होता था, उसमें किसी असाधारण अलौकिक सत्ता का हाथ है।

प्रख्यात दार्शनिक जुंग ने अपने जीवन-काल में ऐसी घटनाओं का बहुत गहन अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि ये सब घटनाएँ पूर्णतः मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्तियाँ हैं। अपने जीवन के अधिकांश भाग में वे इसी विचार पर दृढ़ रहे, किन्तु जिन्दगी के अन्तिम कुछ वर्षों में उन्हें अपनी यह अवधारणा बदलनी पड़ी। इसका एक बड़ा कारण उनका मनःचिकित्सक होना था। इस नाते कई बार उनका ऐसे रोगियों से पाला पड़ जाता, जिनकी समस्याओं से वे स्वयं उलझन में पड़ जाते और मान्यता बदलने के लिए विवश होते। एक ऐसे ही अवसर पर उनका सामना एक महिला रोगी से हो गया। जुंग के लिए सबसे बड़ी समस्या उक्त स्त्री का तर्कशील स्वभाव था। उसकी दलीलें इतनी सटीक होतीं कि कई बार जुंग को भी निरुत्तर हो जाना पड़ता। ऐसी स्थिति में वे उसका सही उपचार नहीं कर पा रहे थे और न इसी बात का विश्वास दिला पा रहे थे कि मन का एक अवचेतन स्तर भी होता है। रोगों की जड़ें इसी स्तर पर जमी होती हैं। अभी वे कोई अन्य उपाय सोचते, इसी बीच एक घटना घट गई। मरीज ने एक स्वप्न देखा कि उसे कोई सुनहरा स्कैरब (गुबरैले की शक्ल का आभूषण) दे रहा है। वह अपने चिकित्सक से इसकी चर्चा कर ही रही थी कि जुंग को अपने पीछे खट-खट की तेज ध्वनि सुनाई पड़ी। पलट कर देखा तो पता चला कि एक सुनहरा गुबरैला अन्दर प्रवेश पाने के लिए खिड़की के काँच पर टक्कर मार रहा है। उसने खिड़की खोल दी। गुबरैला अन्दर घुसा, तो उसे पकड़ लिया। उसका सुनहरा रंग काफी हद तक गोल्डन स्कैरब से मिलता-जुलता था। जुंग ने रोगी की ओर यह कहते हुए गुबरैला बढ़ाया कि यह रहा तुम्हारा गोल्डन स्कैरब। इस घटना से महिला हतप्रभ रह गई। उसका तर्कशील मस्तिष्क परिवर्तित हो गया। जुंग को सफलता मिली और स्त्री कुछ ही महीनों में ठीक हो गई।

उक्त घटना ने जुंग को संयोग सम्बन्धी अपनी मान्यता बदलने के लिए बाध्य कर दिया। वे लिखते हैं कि इसे संयोग नहीं माना जा सकता। इसमें निश्चित रूप से किसी सत्ता अथवा

व्यवस्था का सूक्ष्म हाथ है । यदि ऐसा नहीं है, तो गुबरैले को वहाँ आने की प्रेरणा कहाँ से मिली अथवा महिला को स्वप्न-संकेत किसने दिया ? इन सब प्रश्नों का उत्तर दे पाना कठिन हो जायेगा । समाधान के लिए प्रख्यात भौतिकशास्त्री एवं नोबेल पुरस्कार विजेता उल्फ़गैंग पॉली के साथ मिलकर सन् १९५२ में उन्होंने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया और कहा कि ऐसे प्रसंगों में एक अज्ञात सिद्धान्त कार्य करता है । उनका मानना था कि कार्य-कारण सिद्धान्त से परे कोई चीज इसके पीछे कारणभूत है । उनकी दृढ़ धारणा थी कि दिक्काल के दूसरे प्रकार यदि सचमुच अस्तित्व में हैं,तो यह सुनिश्चित है कि संयोग जैसी लगने वाली ये घटनाएँ एक-दूसरे से अविज्ञात रूप से सम्बद्ध हैं ।

कुछ ऐसा ही मंतव्य विख्यात विज्ञानवेत्ता एवं अंग्रेज गणिवज्ञ आर्थर कोयेस्लर ने अपनी कृतियों 'दि रूट्स ऑफ कोइन्सिडेन्स' एवं 'जेनस' में प्रकट किया है । इससे स्पष्ट है कि यहाँ संयोग जैसा कुछ नहीं है । जो है वह यह कि हम सब चेतना की एक अविच्छिन्न डोर से परस्पर बँधे हुए हैं और परोक्ष रूप से एक-दूसरे से जुड़े हैं । जिस दिन यह पारस्परिकता और अविच्छिन्नता समझ में आ जायेगी, उस दिन संयोगों का रहस्य उद्घाटित हो जायेगा और यह भी कि सम्पर्क-सूत्र को और अधिक प्रगाढ़ व प्रबल कैसे किया जाय ?

संयोगों से परे एक बुद्धिमत्तापूर्ण सत्ता

इस संसार में कोई भी वस्तु निरुद्देश्य अथवा निरर्थक नहीं है । मनुष्य के क्रिया-कलाप इस स्तर के हो सकते हैं, पर जहाँ विवेकशील सृष्टा की बात आती है, वहाँ उसके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि मात्र कौतूहल उत्पन्न करने के लिए यह कौतुकपूर्ण संरचना उसने गढ़ी है । सच्चाई तो यह है कि उसकी विवेक-बुद्धि मनुष्य से इतनी अधिक है कि उसकी इंजीनियरी मनुष्य की छोटी बुद्धि की समझ में आती ही नहीं । उसके जो क्रिया-कलाप मानव की स्थूल बुद्धि समझ लेती है, उसे तो मनुष्य सामान्य और सुविज्ञात कह कर पुकारने लगता है, पर जो समझ के परे होता है, उसे रहस्य रोमांच की संज्ञा दे देता है । संसार भर में ऐसी कितनी ही ज्ञात प्रकृतिगत रचनाएँ हैं, जिन्हें समझ नहीं पाने के कारण इसी श्रेणी में रख दिया गया है ।

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की सीमाएँ जहाँ एक दूसरे से मिलती हैं, वहाँ एक विशाल चट्टान है, जिस पर यदि कोई व्यक्ति चढ़ जाय, तो वह काँपने लगती है और इसी के साथ एक विचित्र ध्वनि भी निकलने लगती है । बताया जाता है कि बहुत पहले उस क्षेत्र के राजा ने उस पर एक महल बनाया था, सुख-साधनों के लिए थोड़े-थोड़े समय तक के लिए उसमें निवास करता था । यद्यपि आज किसी इमारत का चिह्न वहाँ मौजूद नहीं है, किन्तु उस शैल-खण्ड को अभी भी यथावत् देखा जा सकता है । विश्व के कई देशों के वैज्ञानिकों ने उसका गहन पर्यवेक्षण किया है, पर किसी की समझ में यह नहीं आया कि उस पर सवार होते ही वह कम्पन व ध्वनि उत्पन्न क्यों करने लगती है ?

ऐसे ही दक्षिण कोरिया के पूर्वी किनारे पर स्थित तुंग सू नदी के तट पर एक विशाल चट्टान है । चीन ने जब उस राज्य पर आक्रमण किया था, तो वहाँ का राजा पराजित हो गया । उसे बन्दी बना लिया गया । उसकी सात रानियाँ थीं । अपमान से बचने के लिए उन सभी ने एक साथ समीपवर्ती नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली । तब से हर वर्ष तटवर्ती चट्टान में फूल के सात पौधे उगते हैं । धीरे-धीरे वे बढ़ते हैं, उनमें फूल आते हैं और घटना के दिन सभी फूल एक साथ नदी जल में गिर जाते हैं । प्रति वर्ष इस घटना को देखने के लिए हजारों की संख्या में लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं व प्रकृति की इस अद्भुत घटना को घटते अपनी आँखों से देखते हैं । पता नहीं, क्यों प्रकृति उस घटना को अविस्मरणीय बनाना चाहती है । उपस्थित लोगों की समझ में यह भी नहीं आता कि किसी पत्थर पर पौधे कैसे उग आते हैं ? वह भी एक ही किस्म के एवं संख्या में सिर्फ सात, फिर वर्ष के एक निश्चित दिन ही क्यों झड़ जाते हैं, यह सब कुछ रहस्य बना हुआ है ।

मोरक्को के उत्तरी भाग के एक गाँव में दो ताड़ के पेड़ आस-पास खड़े हैं । बगल में एक बड़ा तालाब है । दिन के समय तो ये पेड़ सीधे-खड़े रहते हैं, किन्तु ज्यों-ज्यों सूर्य ढलता जाता है, ये पेड़ तालाब की ओर झुकने लगते हैं और जैसे ही सूर्य अस्ताचलगामी होता है, ताड़ के पत्ते और वृक्ष के शीर्ष पानी में डूब जाते हैं, मानो संध्या वन्दन के निमित्त स्नान कर रहे हों । फिर जैसे-जैसे रात गहराती जाती है, ये अपनी पूर्व स्थिति में आने लगते हैं तथा मध्य रात्रि तक सीधे खड़े हो जाते हैं । यह इनका प्रतिदिन का नियम है । ऐसा क्यों होता है ? वनस्पतिशास्त्री अब तक इसका कारण नहीं जान पाये हैं ।

इजराइल अधिकृत लेबनान की गोलान पहाड़ियों में प्रकृतिदत्त एक ऐसी गुफा है, जिसमें यदि कोई मनुष्य अथवा जानवर प्रवेश करता है, तो उसकी छत की एक दरार से पानी के फुब्बारे छूटने लगते हैं । आश्चर्य तो यह है कि उस जानवर अथवा व्यक्ति के बाहर निकलते ही फुब्बारे स्वतः बन्द भी हो जाते हैं । कई शोध दल प्रकृति के इस रहस्य को समझने हेतु वहाँ गए भी, पर कारण जान पाने में सर्वथा विफल रहे ।

वस्तुतः संयोगों व रहस्य-रोमांचों का कोई विधान भगवतसत्ता की बनाई इस सृष्टि में नहीं है, हमें वैसा प्रतीत इसलिए होता है कि हमारी स्थूल बुद्धि प्रत्यक्ष के पीछे के सूक्ष्म रहस्य को समझ नहीं पाती । नियन्ता कर्त्ता की बुद्धि की इसलिए सराहना की जानी चाहिए कि उसने मानव की शोध-वृत्ति जिन्दा रखने के लिए यहाँ इस संसार में कुछ भी निरुद्देश्य नहीं बनाया है । यह सोचकर ही हम उस पर विश्वास सुदृढ़ करते हैं ।

मात्र संयोग ही नहीं, अदृश्य सहयोग भी

बिहार में एक बार जोरदार भूकम्प आया । कई दिन तक रह-रह कर पृथ्वी काँपी और जब स्थिर हुई तब पता चला कि नगर के नगर ध्वस्त हो चुके हैं । इस दुर्घटना में हजारों व्यक्तियों की जानें गईं । मुंगेर नगर में उस दिन हाट थी । दोपहर का समय था, हजारों व्यक्ति क्रय-विक्रय करने में तल्लीन थे, तभी आया भूचाल और उन हजारों दूकानदारों तथा खरीदारों को मकानों के मलवे में दाब कर चला गया ।

पीछे आये सहायता दल—सिपाही, सैनिक और समाजसेवी सस्थाएँ । मलवे की खुदाई प्रारम्भ हुई । एक, दो दिन तक तो कुछ लोग जीवित, कुछ चोट खाये निकलते रहे पर तीसरे दिन

से जो लाशें निकलनीं शुरू हुईं तो फिर पन्द्रह दिन तक लाशें ही निकलती रहीं । ढेर लग गया मृतकों का ।

गिरे हुए मकानों का मलवा निकालने का काम अभी तक बराबर चल रहा था । एक स्थान पर काम चल रहा था, एकाएक कुछ लोग चौंके, क्योंकि नीचे से आवाज आ रही थी—'थोड़ा धीरे से खोदना ।' १५ दिन तक जमीन में दबे रहने पर भी यह कौन जीवित पड़ा है, इस आश्चर्य और विस्मय से सभी का मन भर गया । सावधानी से मिट्टी हटाई जाने लगी ।

कई बड़ी-बड़ी धन्नियाँ तथा शहतीरें निकालने के बाद निकला एक अधेड़ आयु का व्यक्ति, केले के छिलकों में पड़ा हुआ, एक भी चोट या खरोंच नहीं थी उसे । सबसे आश्चर्य भरी बात तो यह थी कि ढेर सारी मिट्टी और तख्तों के नीचे दबे उस आदमी ने बिना खाये पिए साँस लिए १५ दिन कैसे काट दिए ।

उसी से पूछा गया—भाई, तुम कैसे बच निकले तो उसने आप बीती घटना इस प्रकार सुनाई—

"मैं आया था केले बेचने । इस मकान की दालान के नीचे सिर पर टोकरी रखे खड़ा था कि भूचाल आ गया । छत टूट कर ऊपर आ गिरी । मैं दब गया टोकरी कुछ इस प्रकार उल्टी की कि सारे केले उसके नीचे आ गए और इस तरह पिचकने या सड़ने-गलने से बच गए । इसी में से निकाल-निकाल कर केले खाता रहा ।"

"पेट के नीचे का भाग कुछ इस तरह मिट्टी से पट गया कि शिरोभाग से कमर भाग का सम्बन्ध ही टूट गया । टट्टी-पेशाब की बदबू से इस प्रकार बचाव हो गया ।"

"एक बार पृथ्वी फिर हिली और उसके साथ ही हिला यह मलवा, न जाने कैसे एक सूराख हो गया जो वह हल्की-सी धूप की गर्मी भी देता रहा और शुद्ध हवा भी । अब जीते रहने के लिए एक ही वस्तु आवश्यक रह गई थी, वह थी पानी । दैवयोग से पृथ्वी तीसरी बार काँपी तब इस दूकान का फर्श टूटा और उसके साथ ही पानी की एक लहर इधर आ गई और इस गड्ढे को पानी से ऊपर तक भर गई, हवा और धूप इस छेद से मिल गए । केले पास थे ही, पानी भी परमात्मा ने भेज दिया । यह सब व्यवस्थाएँ भगवान ने जुटा दीं तो मुझे विश्वास हो गया कि मुझे अभी नहीं मरना ।

"इस विश्वास के सहारे आज तक जीवित रहा । आज का दिन आखिरी दिन है, जबकि सभी केले समाप्त हो गए हैं, पानी नहीं बचा है, रोशनी भी नहीं आ रही थी, पर आप सब लोग आ गए सो मैं आप लोगों को भगवान की मदद ही मानता हूँ ।" इतना कहकर उसने कृतज्ञता की दो बूँद आँखों से लुढ़का दीं ।

इस घटना का वर्णन महात्मा आनन्द स्वामी ने 'एक ही रास्ता' पुस्तक में किया है और लिखा है कि इस तरह की घटनाएँ बताती हैं कि संसार अपने कर्त्ता और स्वामी से रिक्त नहीं है ।

किमाश्चर्यमतः परम् ?

शक्ति, सामर्थ्य और विलक्षणता की दृष्टि से ज्ञात सृष्टि की तुलना में अविज्ञात का क्षेत्र कई गुना अधिक है । अभी तो प्रकृति की स्थूल शक्ति का एक छोटा-सा परिचय मात्र मिला है । जिसे प्राप्त कर दम्भी मनुष्य अपने को प्रकृति का स्वामी—नियन्त्रणकर्त्ता मानने लगा है, पर सचमुच ही जिस दिन मानव को सृष्टि के स्थूल एवं सूक्ष्म घटकों—चेतना की रहस्यमय पर्तों तथा उनमें सन्निहित सामर्थ्यों की सही जानकारी प्राप्त होगी उसे यह अनुभव होगा कि सर्वत्र शक्ति का भण्डार भरा पड़ा है, जिसमें एक से बढ़कर एक सम्पदाएँ भी विद्यमान हैं ।

दृश्य की अपेक्षा अदृश्य जितना रहस्यमय है उतना ही सामर्थ्यवान भी । जड़ की तुलना में चेतन अधिक शक्ति सम्पन्न है । जड़ जगत की हलचलें भी उसी की शक्ति से प्रेरित हैं । प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर न होते हुए भी जड़ एवं चेतन के बीच गहरा तारतम्य तथा अविच्छिन्न सम्बन्ध है । दोनों के परस्पर तालमेल एवं सहयोग से ही संसार का चक्र अविराम गति से गतिशील है । इन दोनों से भी विलक्षण है, वह सूत्राधार जो सृष्टि का नियन्ता या संचालक है । मनुष्य तो अभी जड़ प्रकृति में उलझा पड़ा है । पदार्थ की शक्ति को प्राप्त कर ही गर्व करने लगा है । जिस दिन चेतना की अकूत सामर्थ्य और जड़-चेतन की सामर्थ्यों के आदि केन्द्र सृष्टा के वास्तविक स्वरूप का भान होगा, सचमुच ही वह दिन मनुष्य के लिए सर्वाधिक सौभाग्य का होगा ।

कभी-कभी प्रकृति भी ऐसे घटनाक्रमों का परिचय देती है, जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता जिसे देखकर मानवी बुद्धि हतप्रभ रह जाती तथा उसे यह मानना पड़ता है कि उसकी जानकारियाँ सृष्टि के सन्दर्भ में अत्यल्प हैं । समय-समय पर घटित होने वाले घटनाक्रमों की कुछ गुत्थियाँ ऐसी हैं जो लम्बे समय बाद भी अब तक नहीं सुलझाई जा सकीं । प्रकृति के स्थूल नियमों का उल्लंघन करने वाली ये घटनाएँ आज भी रहस्यमय बनी हुई हैं ।

विश्व में कितने ही ऐसे स्थान हैं, जो अपनी विलक्षणता के लिए विख्यात हैं । एविग्नान के निकट एक ठण्डे पानी का कुण्ड है । उसे वाडक्लुर्स का स्रोत कहते हैं । समीप में ही सोरग्यू नामक नदी बहती है । नदी के दूसरे तट पर एक अंजीर का खूबसूरत पेड़ उगा हुआ है । बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के नदी का जल स्तर मार्च माह में हर वर्ष अपने आप बढ़ जाता है और बाढ़ जैसी स्थिति आ जाती है । सबसे आश्चर्य की बात यह है कि नदी का जल-प्रवाह उल्टी दिशा में ऊँचाई पर अवस्थित अंजीर के पेड़ की ओर बढ़ने लगता है और पेड़ की जड़ को स्पर्श करके वापस लौट जाता है । इस घटना की पुनरावृत्ति हर वर्ष नियत समय पर मार्च में होती है । वैज्ञानिक लम्बे समय से सोरग्यू नदी के जल-स्तर के बढ़ने तथा मार्च माह में अंजीर के पेड़ को छूने के लिए चल पड़ने का कारण खोज रहे हैं, पर यह रहस्य अभी भी अविज्ञात बना हुआ है । एविग्नान के लोगों में लोक कथा प्रचलित है कि वृक्ष यक्ष है और नदी कोई अप्सरा, जो किसी देवता के कोपभाजन बने हुए हैं उन्हें केवल मार्च माह में मिलने की छूट देवता द्वारा दी गई है । किंवदन्ती कहाँ तक सत्य है, नहीं मालूम, पर इस विलक्षण दृश्य को देखने के लिए प्रति वर्ष वहाँ निश्चित समय पर भीड़ एकत्रित होती है ।

कोरिया में कोयम नदी के किनारे नाक्वाह्म नामक पत्थर की चट्टान है । सन् ६६० में सम्बन्धित क्षेत्र पर चीन के राजा ने आक्रमण कर दिया । उसने स्थानीय राजा, मन्त्री तथा सेना के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को बन्दी बनाकर चीन भेज दिया । राज्य साम्राज्ञी सहित ७१ रानियों ने नाक्वाह्म चट्टान से नदी

में कूदकर आत्महत्या कर ली । इस घटना को बीते लगभग १४०० वर्ष हुए, पर उसके बाद प्रति वर्ष चट्टान के पास एक ही नस्ल के मात्र ७१ पौधे एक साथ उगते हैं और निश्चित समय पर ७१ ही फूल आते हैं । ये फूल एक साथ ही कलियों के रूप में विकसित होते हुए पुष्पित होते हैं । ऐसा उल्लेख मिलता है कि बसन्त ऋतु के एक निर्धारित दिन को राज-रानियों ने जौहर किया था, ठीक उसी दिन सभी ७१ पुष्प एक साथ नदी में गिर जाते हैं । इस दृश्य को देखने तथा अपने श्रद्धा भाव को समर्पित करने के लिए हजारों व्यक्ति उस स्थान पर आते हैं । उनका विश्वास है कि प्रति वर्ष पौधों के रूप में रानियाँ शरीर धारण करती हैं तथा उस जौहर की घटना की पुनरावृत्ति करके फूलों के रूप में नदी में गिरकर देशवासियों को यह प्रेरणा देती हैं कि "अनीति या अत्याचार के समक्ष कभी सिर न झुकाओ, भले ही मृत्यु को वरण कर लो ।"

'एलवर्टा' का एक किसान पानी भरने के लिए जब भी अपने कुएँ की चादर हटाता था तो कुएँ के तल से तालबद्ध संगीत सुनाई पड़ता था । यह खबर समीपवर्ती क्षेत्र में फैल गई । अविश्वसनीय, किन्तु सत्य घटना की पुष्टि अनेकों व्यक्तियों ने की । वैज्ञानिकों के एक दल को यह सन्देह हुआ कि शायद किसान ने कुएँ में कहीं रेडियो सैट छुपाकर रख दिया हो । इसलिए उन्होंने कुएँ के चप्पे-चप्पे की जाँच-पड़ताल कर ली, पर सन्देह निराधार निकला । दूसरा सन्देह यह हुआ कि रेडियो संगीत को पकड़कर प्रतिध्वनित करने वाला कोई ऐसा स्रोत कुएँ में विद्यमान हो, यह सोचकर गाँव के सभी रेडियो सैट बन्द करा दिए गए, पर आश्चर्य यह कि कुएँ से तालबद्ध संगीत की ध्वनि निरन्तर आती रही । थक कर वैज्ञानिकों ने संगीत प्रसारित होने का कारण बता पाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की । ऐसा ही एक विचित्र अनुभव नाइरियाल की एक महिला को हुआ । वह जब भी स्नान करने टब में जाती थी तो उसमें से मधुर संगीत ध्वनियाँ आने लगती थीं । प्रत्यक्षदर्शियों ने भी यथार्थता की पुष्टि की । ध्वनि विशेषज्ञ लम्बे समय तक ध्वनि का कारण पता लगाते रहे, पर कुछ बता पाने में असमर्थ सिद्ध हुए । उनका कहना था कि प्रस्तुत घटना का कारण अदृश्य, अभौतिक तथा विज्ञान के नियमों की पकड़ सीमा के बाहर है ।

ये घटनाक्रम प्रकृति की विलक्षणता तथा अदृश्य सृष्टि के रहस्यमय पक्षों पर प्रकाश डालता है ।

दृश्य प्रकृति की अविज्ञात विलक्षणताएँ

प्रकृति की विलक्षणताएँ भी किन्हीं नियमों के आधार पर ही प्रकट एवं घटित होती हैं । उन्हें जाना जा सके तो उपलब्ध विचित्रताओं को सहज स्वाभाविक बनाया जा सकता है । साथ ही, इतना महत्त्वपूर्ण लाभ उठाया जा सकता है, जो अब तक मनुष्य के हाथ नहीं लग सका है ।

आज तक जितनी भी विलक्षणताएँ अंकित की गई हैं, उन सब में सर्वसाधारण है अप्राकृतिक वर्षा । २८ मई, १८८१ के दिन इंग्लैण्ड के वारसेस्टर शहर के परिसर में गरजते तूफान के साथ केंकड़ों और घोंघों को टनों के हिसाब से वर्षा के रूप में गिरते देखा गया । यह समाचार जब वारसेस्टरवासियों को मिला, तब वे उन्हें थैलों तथा गाड़ियों में लाद कर शहर की मण्डी में बेचने के लिए ले गए ।

मछली, मेंढक, सीपी, गिरगिट तथा अन्य प्राणियों के समाचार कम ही मिलते हैं, किन्तु उपर्युक्त घटना से २० वर्ष पूर्व ऐसी ही एक विचित्र घटना का विवरण सिंगापुर में स्थित 'टाइम पत्रिका' के एक फ्रेन्च सम्वाददाता ने 'ला साइन्स फॉर टॉस' के लिए भेजा था । यह घटना १६ फरवरी, १८६१ के दिन घटी । उस दिन वर्षा एकदम तेज होने के कारण १० फीट दूर तक देखना असम्भव-सा प्रतीत हो उठा था । वर्षा के साथ समुद्र में तूफान आ जाने के कारण समुद्र अपनी मर्यादा लाँघकर शहर की गलियों तक अपना विस्तार फैला चुका था । बाद में जब वर्षा कम हुई और रास्ते से पानी उतर गया, तब देखने को मिला कि रास्ते में ढेर सारी मछलियाँ बिखरी पड़ी हैं । इसके साथ उस फ्रेन्च प्रतिवेदक को यह भी देखने को मिला कि उसके घर के पिछले आँगन में भी मछलियाँ बिखरी पड़ी हैं जबकि उसका घर पूरी तरह से दीवारों से घिरा हुआ था । इसलिए उसने यह सुनिश्चित अनुमान लगाया कि मछलियाँ समुद्र के पानी के साथ आयी हों या न आयी हों, किन्तु उनकी वर्षा निश्चित रूप से हुई है ।

ऐसी सब मछलियों की वर्षा के जितने भी विवरण मिले हैं, उस सब में प्रायः यह देखा गया है कि जमीन पर गिरने के साथ भी यदि उन्हें पकड़ लिया जाता है तब भी वे जीवित नहीं मिलतीं, जिससे यह अनुमान लगाना असम्भव हो जाता है कि वे कितनी देर तक हवा में रहीं, किन्तु एक असाधारण वर्षा की घटना जीवित मछलियों की भी पढ़ने को मिलती है । ११ फरवरी, १८५६ को वेल्स की एश पहाड़ी की ढलान में काम करने वाले एक किसान 'जॉन लेविस' ने निकटवर्ती शहर अबेरडार के पादरी के साथ मुलाकात में बताया कि उस दिन दोपहर खेत में काम करते समय अचानक उसकी पीठ पर कुछ टकराने लगा । अगल-बगल झाँकने से उसे जो दृश्य देखने को मिला उसे देखकर उसकी आँखें चौंधिया गईं । सारा खेत छोटी-छोटी मछलियों से भर गया था, फिर भी ऊपर से उनकी वर्षा चालू ही थी । उसने अपनी टोपी उतार कर हवा में फैला दी तो कुछ ही क्षणों में वह टोपी भी मछलियों से भर गई तब अचम्भे के साथ उसे देखने को मिला कि वे सारी मछलियाँ प्रायः जीवित थीं और उछल-कूद मचा रही थीं । उन सबको बचाने के लिए उसने उन्हें समुद्री मछली समझ कर नमकीन पानी में डाला, किन्तु जैसे ही उसने कुछ मछलियाँ पहली बार डालीं वे तत्काल मर गईं, इसलिए बाकी को खारे पानी में न डालकर उसने साफ पानी में डाला । फलस्वरूप वे सारी बच गईं । अन्ततः जब वे बड़ी हुई तब पादरी द्वारा उन्हें 'स्टीकल बेकस' प्रकार की मछलियों के रूप में पहचाना गया । इस घटना का विवरण उन दिनों विस्तार से लन्दन के दैनिक 'टाइम्स' में छपा था । 'मिस्ट्रीस अनरिबील्ड' नामक पुस्तक में ऐसी अनेकों घटनाएँ वर्णित हैं ।

जीवित वस्तु की वर्षा अपेक्षाकृत कम क्षेत्र पर ही होती है, किन्तु अन्य पदार्थों की अप्राकृतिक वर्षा कभी-कभी पूरे राष्ट्र और महाद्वीप के एक भू-भाग तक को आच्छादित कर देती है । सन् १९८२ की फरवरी में पश्चिमी यूरोप का विस्तृत भू-भाग सहारा रेगिस्तान काली रेत से भर गया था । जगह-जगह पर उसके रंगों में विभिन्नता देखने को मिली थी । कहीं-कहीं तो उसे

लाल-पीले अथवा धुँधले रंग से पहचाना गया अथवा कत्थई रंग से उसका वर्णन किया गया था । अनुमान यह लगाया गया था कि लगभग १ करोड़ टन की वर्षा तो केवल इंग्लैण्ड भर में ही हुई थी । इसी तरह की रेत की वर्षा का विवरण ३० जून, १९६८ को इंग्लैण्ड और वेल्स में दोबारा घटने के रूप में भी मिलता है और वहाँ भी उसकी उत्पत्ति सहारा मरुभूमि ही बताई जाती है ।

इन प्राणियों तथा पदार्थों की वर्षा की जानकारी के बाद जब फफूँदों की वर्षा का विलक्षण वर्णन भी पढ़ने में आता है, तब माथा ठनकते ही बन पड़ता है । ऐसी घटना सन् १८१९ में १३ अगस्त की रात को अमेरिका के मेरोच्युसेट शहर में घटी । दिनभर की सख्त गर्मी के बाद लगभग पूरी रात वर्षा की हल्की बौछार रही । वातावरण में हल्की ठण्डक आ जाने से लोग अपनी सुस्ती दूर करने के लिए जब बाहर निकले तब बाहर का वातावरण देखते ही वे आश्चर्यचकित रह गए । जगह-जगह पर उन्हें लगभग आठ इंच व्यास तथा एक इंच मोटाई के चमकीले गोल पदार्थ देखने को मिले, जिनका सिरा रोएँदार था । पहले तो उनकी समझ में कुछ आया ही नहीं कि वह कौन-सा पदार्थ या प्राणी है किन्तु कुछ समय बाद के अन्वेषण ने इस बात की जानकारी प्रदान की कि वह एक प्रकार की फफूँद है, जो हवा में तैरती रहती है और उचित अवसर मिलने पर जमीन पर आ गिरती है । विश्व के आदि पुरातन ग्रन्थों में इसकी जानकारी 'नोस्टॉक' के नाम से मिलती है । इस फफूँद में विशेषता यह रहती है, कि यह सूखे दिनों में कागज की तरह पतली हो जाती है, किन्तु आर्द्रता अथवा जल का समागम प्राप्त करते ही देखते-देखते द्राक्षाकार की हो जाती है । इनके अचानक प्रकटन से ऐसा प्रतीत होता है मानो उनकी वर्षा हुई हो ।

केवल पदार्थ या प्राणी ही नहीं, आग की वर्षा भी होती देखी गई है । १३ नवम्बर, १८३३ को उत्तरी अमेरिका में आम बरसने का विवरण मिलता है । उस इतिहास प्रसिद्ध घटना का कारण था, अन्तरिक्ष से छोटी-छोटी उल्काओं का एक-साथ बरस पड़ना । अनुमानतः २ लाख छोटे-बड़े जलते अंगारे आकाश से जमीन की ओर तेजी के साथ दौड़ते हुए देखे गए । गनीमत इतनी ही रही कि वे सभी जमीन तक पहुँचने से पहले ही बुझ गए । एक भी उल्का धरती को छू नहीं सकी और आकाश में धूल बनकर बिखर गई ।

विचित्र वर्षा की तरह ही विचित्र ध्वनियों के सुनाई देने की घटनाएँ भी ऐसी हैं जिनसे प्रतीत होता है कि कान मात्र टेलीफोन, रेडियो जैसे उपकरण ही अन्तरिक्ष में भ्रमण करने वाले ध्वनि प्रवाहों को पकड़ने के कारण नहीं है वरन् अन्य माध्यमों से भी वे सुनने में आ सकती हैं ।

इनमें से कुछ ध्वनियाँ इन्हीं दिनों की हो सकती हैं, किन्तु कुछ के बारे में यही कहा जा सकता है कि वे पूर्व-संचित हैं, कहीं जगह पकड़ कर बैठ गई हैं तथा किसी प्रकृति नियम के अनुसार अपनी पुनरावृत्ति करती रहती हैं ।

एक बार चेकोस्लावाकिया की एक नदी में कुछ लोग स्नान कर रहे थे, तभी सामने से कुछ मधुर संगीत सुनाई देने लगा । लोगों ने छान मारा, पर पता न चला कि कौन और कहाँ से गा रहा है, जबकि आवाज उनके पास ही हो रही थी । उस स्थान पर कुछ समय पूर्व कुछ सिपाही मारे गए थे, इसलिए यह मानकर उस बात को टाल दिया गया कि उन सिपाहियों की मृतात्माएँ ही गा रही होंगी ।

प्रकृति के ऐसे अनेकों रहस्य हैं, जो मनुष्य को अभी तक अविज्ञात हैं । प्रकृति विलक्षण है, अचिन्त्य-अगोचर परब्रह्म की एक ऐसी माया है जिसे अध्यात्म विधान अदृश्य जगत की सत्ता से संचालित मानता चला आया है । अविज्ञात कारणों की खोज करनी हो तो हमें पहले अध्यात्म की मान्यताओं को भी विज्ञान की एक सशक्त धारा के रूप में स्वीकार करना होगा । पूर्वाग्रह, दुराग्रह हटें तो अवरोध भी हटें । अदृश्य जगत का अनुसन्धान सभी विज्ञानविदों के लिए एक ऐसा ही चुनौतीभरा क्षेत्र है ।

वे अजूबे जिनका कोई समाधान नहीं

इस संसार में ऐसी चित्र-विचित्र घटनाएँ घटती रहती हैं, जिनका कोई तर्कसम्मत आधार नहीं, पर वे घटती क्यों हैं ? यह अभी भी अविज्ञात है । आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में १९६० और १९६१ में लगातार कीचड़ की बारिश हुई । सारी सड़कें कीचड़ से भरी रहीं । सफाई एक समस्या बन गई । मार्च १८७९ में स्टोनहाउस नेवेदा में भी इसी प्रकार कीचड़ की वर्षा एक घण्टे तक सतत् होती रही, जिससे एक रेलगाड़ी का इंजन एवं डिब्बे लाइन से उतर कर नष्ट हो गए अनेक व्यक्तियों की जानें गईं । इसी प्रकार २६ मार्च, १९४८ को ओहियो के डेटन में हरी वर्षा हुई । वहाँ के पेट्रोल पम्प, मकान, कपड़े, गहने और दीवारें सब हरी हो गईं । यह रंग कुछ देर बाद अपने आप फीका पड़ गया । अगस्त १८७० में कैलीफोर्निया के सैक्रामेंटो शहर में जीवित अविज्ञात प्राणियों की वर्षा हुई जो २ से ८ इंच तक लम्बे थे । ये सड़कों और दीवारों पर छा गए ।

कैलीफोर्निया के बूट काउण्टी में ११ सितम्बर, १८७८ को पानी के साथ कैटफिश की बारिश हुई । लेबनान में जुलाई १८४१ में वैज्ञानिकों के अनुसार माँस, खून और रंगीन पदार्थ की बारिश दिन में ११ और १२ बजे के बीच हुई । बादल उस समय लाल थे । खून पृथ्वी और पदार्थों में जमकर गाढ़ा हो गया । यह बारिश आधा मील लम्बे और ७५ मीटर चौड़े क्षेत्र में हुई । विशेषज्ञ डॉ. स्याल के अनुसार इस बारिश में सारे लेबनान देश में सैकड़ों पौण्ड खून और माँस की वर्षा हुई । प्रयोग करने पर पाया गया कि यह जीवधारियों का रक्त ही था । वर्जीनिया के क्लोवरली प्रान्त में १८५० को शाम ४ बजे खून की बूँदों और महीन कटे ताजे माँस के टुकड़ों की बारिश हुई । ये माँसपेशी, लिवर और हृदय के टुकड़ों के रूप में थे । रंगीन बादलों के छँटने पर यह खून व माँस की बारिश भी बन्द हो गई ।

इसी प्रकार सिम्पसन काउण्टी, उत्तरी केरोलीना में १५ फरवरी, १८५० को ६०० फीट लम्बे और ३० फीट चौड़े क्षेत्र में ताजे खून, मस्तिष्क और भीतरी अंगों के टुकड़ों की वर्षा हुई । उस समय आकाश पर लाल बादल थे । २४ जुलाई, १८५१ को सेनफ्रांसिस्को में सेना के कैम्प में खून और माँस के बारीक टुकड़ों की वर्षा हुई । हर माँस का टुकड़ा १/८ इंच से भी कम मोटा और चतुरता से स्लाइस किया हुआ था । इस समय आकाश साफ था और कोई पक्षी नहीं मँडरा रहा था । समझ में नहीं

आता कि मानवी रक्त व माँस क्योंकर कहीं से आकर किसी स्थान विशेष पर बरस गए ।

अगस्त १९६२ में सेनेडीयागो कैलीफोर्निया के केनेथ स्नाइडर के यहाँ मकान के आस-पास छोटे-छोटे पत्थरों की वर्षा प्रतिदिन सुबह १० से २ बजे दोपहर तक होती थी । ये पत्थर हल्के थे और शरीर में लगने पर इनसे चोट भी नहीं आती थी ।

अक्टूबर १९५८ में मैकेग्री के अनुसार उसके बगीचे में दो फ्रेंक का एक सिक्का आकाश से गिरा । इस समय मौसम साफ था । मैकेग्री १००५, वूडलैण्डड्राइव्ह, गेस्टोनिया नॉर्थ कैरोलिना में रहते हैं । अमेरिका में फ्रेंच करेंसी कैसे पहुँच गई, इसका जवाब किसी के पास नहीं है । इन समस्त घटनाओं का रहस्य नहीं जाना जा सका है । आश्चर्य यह कि इस प्रकार की विचित्र वस्तुओं की बारिश कहाँ से व क्योंकर हुई ?

मार्च १९३९ में पश्चिम अफ्रीका के मध्य अंगोला में भीषण अकाल पड़ा । मनुष्य, जानवर और पक्षी सब मर गए या अन्यत्र चले गए । वहाँ की पुरानी एक जाति सीलिज को भूखा रहने की आदत है और वे प्रायः सब बिना भोजन के भी किसी तरह जीवित रहे । दो सप्ताह बाद देखा गया कि वहाँ झाड़ियों के मध्य आधा एकड़ के क्षेत्र में अचानक मधु जैसा गाढ़ा पदार्थ जमा होने लगा है । इसे सभी लोगों ने थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खाकर प्राण रक्षा की । यह पदार्थ प्रतिदिन जमा होने लगा । आश्चर्य यह कि यह कहाँ से आया और किसने उन लोगों की जान बचाई ?

एक और घटना ऐसी है, जिसका कोई जवाब वैज्ञानिकों के पास नहीं है । १९६० में अमेरिका का ३०० पौंड का डिसकवरर सैटेलाइट जमीन पर उतरा तब उसका वजन १२५ पौंड था और रोज इसका वजन कम होता रहा । इसके गिरने से जिस मकान में आग लगी, उसमें धातुओं के मिश्रण का एक टुकड़ा मिला जो बहुत हल्का था । इससे खूब रेडिएशन निकल रहा था । यह ऐसी धातु थी जिसका प्रयोग निर्माण में नहीं किया गया था । एयर फोर्स ने इसे सत्य घटना बताया और वैज्ञानिक आश्चर्य करने लगे कि अन्तरिक्ष में वजन क्यों घटा ? यह वस्तु कहाँ से आयी ? उस वस्तु में रेडिएशन कहाँ से आया ?

१९२१ की शीत ऋतु में मिनीआपोलिस में एक लड़की एडिना एलिस की हत्या हो गई । डॉ. ओ. ए. अल्स्टे का कथन है, कि उसी मृतक लड़की, जो उनसे पूर्व में चिकित्सा कराती रही थी, उनसे प्रार्थना करने सूक्ष्म रूप में कुछ घण्टों बाद आयी व बोली कि मेरी मृत्यु का सही पता मिसोरी पुलिस से लगाकर इसकी सूचना मेरे माता-पिता को भेज दें, ताकि उन्हें सही स्थिति मालूम हो जाय ।

पुलिस से पता लगा कि वास्तव में एडिना एलिस की मृत्यु हो गई है और उसका हत्यारा बताए विवरण अनुसार पकड़ा गया है । रहस्यमय बात यह है कि मृतक एलीस सशरीर प्रकट हुई और बोली भी !

१९५३ की एक रात्रि को वाशिंगटन के मि. व मिसेज फ्रेड ने देखा कि एक प्रकाशपुंज पेन्सिल के आकार में आया, जो थोड़ी ही देर में बॉल जितना बड़ा गोला बन गया । वह अग्नि का गोला कुछ देर तक मँडराया, फिर अदृश्य हो गया । जनवरी १९६२ आस्ट्रेलिया में चेल्टनहम की श्रीमती डोरिस विल ने देखा कि उनके कन्धे के पास एक अग्नि गोला आया जो उनके बेडरूम में चला गया और वहाँ तत्काल हानिरहित विस्फोट हो गया । इस तरह के अग्नि के गोले कहाँ से आते हैं और क्यों आते हैं, यह रहस्यमय हैं ।

दिसम्बर १९४१ को निकोलस ह्वाइट के यहाँ पचास बार आग एक ही रात्रि में जगह-जगह प्रकट हुई । अलग-अलग जगह विभिन्न वस्तुएँ इससे जल गईं । बार-बार आग को बुझाया गया । कई बार फायर ब्रिगेड और इन्श्योरेन्स कम्पनी वाले आये । कागज, पर्दा, कपड़ा, सूट, बिस्तर, फर्नीचर, टेबल आदि में एक बार में एक ही जगह आग पकड़ती और वह वस्तु जलती । ऐसी ही अपने देश में अनेकों घटनाएँ घटित होती रही हैं व जादू-टोने के मत्थे मढ़ी जाती रही हैं, पर वस्तुतः उनका कारण अभी तक ज्ञात नहीं । १९५६ में श्रीमती एवा ओलागोल्डफ्रे का शरीर अचनाक सिर से पैर तक तब जल गया जब वह सोई थीं । परन्तु उनके ढके कपड़ों और उनके बालों में जलने का कोई निशान नहीं था । यह घटना विचिटा, कन्सास की है ।

१९५५ के ग्रीष्म काल में शाम को केस्टन, इंग्लैण्ड की श्रीमती विनीफ्रेड मानसेल बगीचे में काम कर रही थीं । वहाँ उसे डायमण्ड के अनेक टुकड़े मिले, जिनमें से प्रत्येक की कीमत १०० डालर थी । आश्चर्य हुआ कि यह हीरे कहाँ से आये ? उसकी प्यारी बिल्ली के पैर से चिपके ये हीरे रहस्यमय हैं । अमेरिकी महाद्वीप में बंकर हिल सिल्वर माइन इडाहो उत्कृष्ट श्रेणी की है, जिसे एक खच्चर ने ढूँढ़ा था । उसका मालिक उस खच्चर पर कहीं जा रहा था । रास्ते में एक जगह खच्चर ने मालिक को गिरा दिया और उसे फिर लात मारना चाहा । क्रोधित मालिक ने वहाँ पड़े पत्थर को उठाकर उससे खच्चर को मारना चाहा । आश्चर्य कि यह पत्थर चाँदी का था और बाद में वहाँ चाँदी की एक बड़ी खदान मिली ।

ऐसे अविज्ञात घटनाक्रमों से जुड़े कुछ ऐसे संयोग भी हैं जो यदा-कदा घटते रहते हैं, पर अंकात्मक दृष्टि से उनकी सुनिश्चतता हमें आश्चर्यचकित कर देती है ।

आस्ट्रेलिया के लोगों का विश्वास है कि अकारण लाटरी जीतने वालों या पैसा प्राप्त करने वालों की शीघ्र मौत हो जाती है । अनेक घटनाओं से यह बात सही मालूम पड़ती है, यथा—मुगी की हर्बर्ट चुने ७०००० डालर जीता, पर उसी दिन हार्ट फेल से वह मर गया । विलिमय लोन २५०००० डालर जीता, परन्तु ६ सप्ताह बाद कैंसर से मर गया । हेरोल्ड रिचर्ड्स २००००० डालर जीता, पर चार माह के भीतर उसकी मृत्यु हो गई । कारण अज्ञात था । एनी हेरिस २०००० डालर जीती, पर वह खबर सुनकर ही मर गई । जेम्स कपूर २५००० डालर जीता, परन्तु उसने एक पुलिस मैन की हत्या कर दी । अन्ततः वह पागलखाने में डाल दिया गया । वाल्टर वेस्टरर ने एक प्रतियोगिता में एक लाख डालर का इनाम जीता, उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई । ये सारे घटनाक्रम आस्ट्रेलिया में धटे हैं ।

जॉन टी. विलियमसन ने कैनेडा के उत्तम हीरों की खदान, टांगानिका में अपने माँगरेल कुत्ते के ढूँढ़ने से पायी और पृथ्वी का वह सर्वाधिक धनी व्यक्ति बन गया । घटना यों थी कि—थका, गरमी से त्रस्त और निरुत्साहित विलियमसन पेड़ के नीचे विश्राम कर रहा था । वहीं पास में उसका कुत्ता गड्ढा खोद रहा था । उस गड्ढे में हीरे की एक बड़ी खदान मिली । कुत्ते की होशियारी

ने उसे धनी बनाया । उसने अपने कुत्ते के नाम पर उस स्थान का नाम रखा व अन्त तक वे साथ रहे । मरे भी साथ-साथ ।

१६१२ में उत्तरी मिचिगन में हल्बर्ट नामक एक किसान अपना सूअर ढूँढ़ रहा था । जहाँ पर उसका सूअर खड़ा था, वहाँ ताँबे की एक बड़ी खदान मिली । इससे ५ लाख डालर से अधिक वार्षिक आय उन्हें हुई ।

११ मार्च, १६६२ को इण्डियानापोलिस में श्रीमती रीनेट बेक के यहाँ अनेकों आश्चर्यजनक घटनाएँ एक साथ घटीं । रात्रि में एक दर्पण को किसी शक्ति द्वारा दीवार पर फेंका गया । वह टूटकर फर्श पर बिखर गया । फिर एक भारी तस्तरी दीवार में जाकर लगी । फिर ग्लास फेंका गया । फिर चीनी मिट्टी का कप फेंका गया और फूट गया । फ्रीज के भीतर रखे १२५ डालर का बैग गायब हो गया । आवाज भी आने लगी । फिर उस घर में रहने वाली तीनों औरतों के शरीरों को विभिन्न जगहों में कोई काटने लगा जिससे जगह-जगह छिद्र के निशान शरीर में पड़ गए । पुलिस पार्टी ने खूब जाँच-पड़ताल की, पर कुछ भी समझ में नहीं आया । कोई रहस्य इसका नहीं खुल पाया । तब समझा गया कि यह किसी अविज्ञात शक्ति की करामात है, परन्तु इसका कोई कारण प्रत्यक्षतः नहीं मिला । घटनाक्रम सहसा स्वयंमेव बन्द हो गए ।

क्या वस्तुतः उपरोक्त घटनाक्रमों का किसी के पास कोई तर्कसम्मत समाधान है ? वैज्ञानिक तो इस सम्बन्ध में जवाब देने में असमर्थ हैं ।

मधु वर्षा किसने की ?

सन् १८५७ भारतवर्ष में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (गदर) के नाम से विख्यात है, यही वर्ष कैलीफोर्निया की नापाकाउण्टी स्टेट में एक ऐसे आश्चर्य के लिए विख्यात है, जिसने देववाद की यथार्थता का एक अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत कर लाखों लोगों को विस्मित कर दिया ।

२७ अगस्त, कई दिन से बादल घुमड़ रहे थे पर वर्षा नहीं हो रही थी और तभी एकाएक बूँदें गिरनी प्रारम्भ हुई । वर्षा से बचाव के लिए लोग जल्दी-जल्दी घरों में छिपने लगे । तो भी कुछ लोग जो बाहर जंगल में काम कर रहे थे वे जल्दी ही घर नहीं पहुँच सके । घर तो पहुँचे पर देर से भीगते हुए पहुँचे ।

बरसात का पानी सिर से पाँव तक बह रहा था कुछ बूँदें एक चरवाहे के ओठों पर लगीं । पानी क्या था, पूरा शर्बत था । अब उसने अपनी हथेली आगे कर दी और पूरा चुल्लू पानी इकट्ठा कर पीया तो वह आश्चर्य में डूब गया, क्योंकि वह पानी नहीं वास्तव में शर्बत था । ठीक वैसा ही जैसा कि चीनी घोल कर शर्बत बनाया जाता है ।

एक चरवाहे को ही नहीं, कई किसानों, कुछ अध्यापकों और शहर के अनेक लोगों को भी एक साथ ही यही अनुभव हुआ कि आज जो पानी बरस रहा है, वह सामान्य वर्षा से बिल्कुल भिन्न है अर्थात् पूरे नापाकाउण्टी क्षेत्र में बरसे जल में भरी-पूरी मिठास थी, ऐसा नहीं कोई हल्का मीठापन रहा हो ।

बात की बात में चर्चा सारे क्षेत्र में फैल गई । जो जहाँ था उसने वहीं वर्षा का जल पीया और पाया कि उस दिन की बरसात में मिश्री घोली हुई थी ।

पुराणों में ऐसी कथाएँ बहुतायत से पढ़ने को मिलती हैं जिनमें यह बताया गया होता है कि किसी देवता ने किसी भूखे-प्यासे व्यक्ति को आकाश से भोजन भेजा, सवारी भेजी, वाहन भेजे, सहायताएँ प्रस्तुत कीं । भूखे-प्यासे उत्तंक को देवराज इन्द्र ने अन्न-जल दिया था । अश्वनी कुमार आकाश मार्ग से देव औषधि लेकर च्यवन ऋषि के पास आये थे और उन्हें अच्छा किया था । ग्राह से गज की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र भगवान की अदृश्य सहायता के रूप में उतरा था । भगवान राम को 'विरथ' देख इन्द्र ने अपना रथ भेजा था । द्रोपदी की सहायतार्थ कृष्ण भगवान ने उसकी साड़ी को योजनों लम्बा कर दिया था । बाइबिल में ऐसे वर्णन आते हैं जब महाप्रभु ईसा को देवताओं ने देवभोग भेजे थे । इन कथाओं में बहुत-सा अन्धविश्वास भी हो सकता है, पर विज्ञान और तथ्य भी कम नहीं हो सकता । प्रस्तुत घटना इस बात का प्रमाण है कि विशाल ब्रह्माण्ड में ऐसी शक्तियों का अस्तित्व असम्भव नहीं, जो पदार्थ के परमाणुओं को अदृश्य सहायता के रूप में प्रकट कर देने की क्षमता न रखती हों । योग सिद्धियों का मूल-सिद्धान्त भी यही है कि जो कुछ व्यक्त है, दृश्य है, वह सब सूक्ष्म व अव्यक्त से एक क्रम-व्यवस्था द्वारा उभर रहा है । संकल्प सत्ता में वह शक्ति है जो उस क्रमिक नियम को भी बदल सकती है और उसके स्थान पर आश्चर्य अजूबे प्रस्तुत कर सकती है ।

यह घटना उसी का प्रमाण थी । कई दिन लोगों ने बरसात के एकत्र किए जल का, शर्बत के रूप में प्रयोग किया । नापाकाउण्टी के वैज्ञानिकों ने उस जल के परीक्षण किए । कई लोगों ने घरों में जल को सुखाया और उसमें घुली हुई मिश्री को अलग किया । बरसात के साथ घुली हुई इस मिश्री की जब स्टोरों में जमा मिश्री के साथ रासायनिक तुलना की गई तो पाया कि दोनों के कण एक ही तरह के हैं, मिठास भी एक ही तरह का है ।

बरसात में यह मिश्री कहाँ से आयी, वैज्ञानिक इस बात का आज तक कोई उत्तर नहीं दे सके जबकि वे इस बात को मानते हैं, कि गन्ने के रूप में खेतों से मिलने वाली शक्कर के कण मिट्टी में नहीं आकाश में भी हैं ।

अजूबों से भरी यह मायावी दुनिया

प्रकृति की लीला कितनी विचित्र और विलक्षण है, इसे मानवी बुद्धि अभी पूर्णतः समझ नहीं पायी है । इस प्रकार की न जाने कितनी अनबूझ पहेलियाँ उसके गर्भ में छिपी पड़ी हैं, जिन्हें शायद अब तक पूरी तरह खोजा भी नहीं जा सकता है । कदाचित आगामी समय में इन्हें खोज भी लिया जाय, फिर भी इनके रहस्यों का पता लगा पाना सामान्य बुद्धि के लिए कठिन ही नहीं, असम्भव भी है, क्योंकि सामान्य बुद्धि सदा विज्ञान का सहारा लेती है और विज्ञान की पहुँच मात्र स्थूल जगत तक सीमित है । वह कार्य का स्थूल कारण ही बता सकता है, किन्तु जहाँ कारण सूक्ष्म हो, वहाँ विज्ञान का अवलम्बन निराशाजनक ही सिद्ध होगा । इसके लिए प्रज्ञा स्तर की बुद्धि चाहिए । वही उनका

सही और समुचित कारण ढूँढ़ सकती है । आये-दिन देखे जाने वाले अजीबोगरीब प्राकृतिक कारनामे अपने रहस्य अनावरण के लिए इसी स्तर की बुद्धि की माँग करते हैं और आशा रखते हैं कि अगले ही दिनों मनुष्य इन्हें समझने में सफल हो सकेगा ।

कांगो नदी के पूर्वी तट पर, तट से ५ किलोमीटर दूर, एक सघन वन है । उसमें एक छोटी-सी गुफा है । गुफा का प्रवेश द्वार इतना छोटा है कि कोई व्यक्ति यदि उसके अन्दर जाना चाहे, तो खड़ा-खड़ा प्रविष्ट नहीं हो सकता । व्यक्ति के झुकने से भी काम नहीं चलता । भीतर जाने के लिए घुटने के बल पर हाथों का सहारा लेकर चलना पड़ता है, तभी उसमें प्रवेश पा सकना सम्भव है । अन्दर धीरे-धीरे कन्दरा चौड़ी और बड़ी होती चली गई है । कन्दरा के मुख से करीब ३० कदम अन्दर उसकी दायीं दीवार पर एक पत्थर की कील जैसी संरचना उभरी हुई है । यदि कोई व्यक्ति उसे छू दे तो दीवार फटने जैसी आवाज अन्दर गूँजने लगती है । यह आवाज ठीक पाँच सेकण्ड तक होती है, तदुपरान्त वह स्वतः बन्द हो जाती है, भले ही व्यक्ति पत्थर की कील दबाये ही क्यों न रहे । कई बार इस समय में व्यतिरेक होता देखा गया है । अनेक बार ध्वनि ८-१० सेकण्ड तक होती रहती है, पर अधिकांश अवसरों पर यह ठीक पाँच सेकण्ड बाद बन्द हो जाती है । दुबारा ध्वनि तभी उत्पन्न होती है, जब उसे छोड़ने के पश्चात् पुनः दबाया जाय । विश्व के अनेक वैज्ञानिक दल उस रहस्यमय ध्वनि को जानने और समझने के लिए कई बार उस गुफा की यात्रा कर चुके हैं, पर गुत्थी को सुलझाने में वे अब तक विफल रहे हैं ।

अमेरिका में 'क्रेटर लेक' नामक एक विशाल झील है । इसके मध्य में 'विजार्ड आइलैण्ड' नाम का एक छोटा-सा टापू है, जो सम्भवतः कभी किसी ज्वालामुखी के फटने के कारण झील के मध्य उभर आया हो, विशेषज्ञों का इस सम्बन्ध में ऐसा ही अनुमान है ।

प्रकृति का एक कौतुकपूर्ण दृश्य हमें तब देखने को मिलता है, जब हम साइबेरिया में स्थित 'वेली ऑफ गीजर्स' नामक तंग घाटी की यात्रा करते हैं । सन् १९४१ तक इस फुब्बारे की घाटी का किसी को पता न था, किन्तु इसके उपरान्त यहाँ लगभग २० ऐसे गीजरों का पता चला है, जो अपनी रंग-बिरंगी छटा से दर्शकों का मन मोह लेते हैं । इन फुब्बारों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये १० मिनट से लेकर ६ घण्टे तक के नियमित अन्तराल में छूटते रहते हैं । इनकी नियमितता इतनी सुनियोजित और अटल है, जिसे देख दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है । जो गीजर १० मिनट की अवधि में निःसृत होते हैं वह सदा दस-दस मिनट पर छूटते ही रहते हैं । ऐसी ही नियमितता अन्यों के साथ भी देखी जा सकती है । वहाँ का सबसे बड़ा फुब्बारा, जिसे 'फर्स्ट बोर्न' का नाम दिया गया है, हर घण्टे पर विभिन्न रंग के फुहारों के साथ जमीन से निकालता रहता है । यह जल के ४० फुट ऊँचे स्तम्भ का निर्माण करता है और इनसे छिटकने वाली फुहारों की ऊँचाई पाँच सौ फुट तक चली जाती है । पूरी घाटी में इन गीजरों के छूटने और मिटने का क्रम बड़े ही लयबद्ध ढंग से होता रहता है ।

पश्चिमी ईरान की जागरण पहाड़ियों में भूमिगत एक ऐसी विशाल गुफा है, जिसमें प्रवेश करने पर अनेक ऊँचे-ऊँचे व मोटे पाषाण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं । इन स्तम्भों को देखने के उपरान्त यह स्वीकार कर पाना मुश्किल हो जाता है, कि यह मानवीयकृत न होकर प्रकृति की कुशल कारीगरी का नमूना है । इनकी सुगढ़ता किसी भी वास्तुकार को चुनौती देने के लिए पर्याप्त है । इस 'धार पराऊ' कन्दरा में सबसे ऊँचे प्रस्तर स्तम्भ का नाम खोजी दल ने 'शहंशाह' रखा । इसकी ऊँचाई १३८ फुट है । इस प्रकार के और भी अनेक स्तम्भ वहाँ हैं, पर ऊँचाई में सब इससे कम हैं । सम्भवतः इसी कारण अन्वेषणकर्त्ताओं ने इसका नाम 'शहंशाह' अथवा 'सम्राट' रख दिया ।

मनुष्य यदि वास्तुशिल्प का कोई आकर्षक और उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करे, तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है, क्योंकि वह सृष्टि का सबसे बुद्धिमान और कार्यकुशल प्राणी है, किन्तु यदि प्रकृति ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करती है, तो निश्चय ही यह आश्चर्य की बात है । ऐसा ही एक आश्चर्य उत्तरी आयरलैण्ड के काउण्टी एण्ट्रीम समुद्री तट पर स्थित है । इसे देखने से प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त संरचना किसी प्राचीन सभ्यता द्वारा निर्मित वास्तुकला का सर्वोत्तम प्रतिमान है, पर पुरातत्ववेत्ताओं का कहना है कि यह कोई मानवकृत निर्माण नहीं है, वरन् निःसर्ग की कुशल इंजीनियरी का एक अच्छा प्रमाण है । गवेषणा करने वालों ने इसका नाम 'जाइण्ट्स काउज वे' अर्थात् 'दैत्यों का पक्का मार्ग' रखा है । यह ४० हजार बहुकोणीय पाषाण-स्तम्भों की एक विशाल और विस्तृत संरचना हैं । इस सीढ़ीनुमा संरचना के तीन खण्ड हैं—निम्न, मध्य और ऊपरी । यह मध्य खण्ड ही है, जिसकी सुगढ़ता को देखकर खोजियों को आरम्भ में इसे किसी सुविकसित प्राचीन सभ्यता की कोई संरचना का भग्नावशेष होने का भ्रम हुआ था, क्योंकि इस हिस्से के प्रस्तर स्तम्भों में इतने उच्चस्तर की शिल्पकला का प्रदर्शन देखने को मिलता है, जिससे कुछ क्षण के लिए इसके प्रकृतिकृत होने का विश्वास कर पाना मुश्किल हो जाता है । इस भाग के सारे स्तम्भ पूर्णतः षट्कोणीय हैं, अन्तर सिर्फ इतना है कि वे सभी एक ही व्यास के पाषाण-खण्ड न होकर उनका विस्तार १५-२० इंच व्यास तक है, किन्तु यहाँ भी बुद्धिमत्ता और सुगढ़ता की बानगी देखने योग्य है । मध्य का निचला हिस्सा १५ इंच व्यास वाले स्तम्भों से शुरू होकर धीरे-धीरे ऊपर की ओर व्यास बढ़ते-बढ़ते इस खण्ड के शीर्ष पर अधिकतम २० इंच तक पहुँच गया है । इस प्रकार इस खण्ड को देखने से ऐसा मालूम होता है, जैसे किसी कुशल कलाकार ने बड़ी बारीकी से पत्थर के इन शैल-खण्डों को सुरुचिपूर्ण ढंग से परस्पर सटा-सटा कर फिट किया हो ।

जब किसी घाटी पर किसी मनुष्य अथवा अन्य प्राणी के पहुँच जाने पर अचानक ही जोरदार धमाका हो उठे, तो इसे क्या कहा जाय ? प्रकृति की कौतुकपूर्ण लीला, आश्चर्य या कोई ऐसा उपक्रम, जिसके द्वारा वह मानव अथवा मानवेतर प्राणियों को अपने निकट न पहुँचने देने की चेतावनी देती हो ? कदाचित ऐसा ही हो, क्योंकि अब तक रियोडीला पाज की घाटी में घटने वाली इस अनूठी घटना का रहस्योद्घाटन करने में वैज्ञानिक और प्रकृतिविद् सर्वथा असमर्थ रहे हैं । वस्तुतः यह घाटी बोलिविया में लापाज नदी के तट पर हिमाच्छादित एण्डीज पर्वत के किनारे स्थित है और पूर्णतः मिट्टी की बनी विचित्र भूल-भुलैया जैसी संरचना है । जब कभी कोई जीवधारी भूलवश इसके निकट आ

पहुँचता है तो तोप जैसी धड़ाके के साथ भयंकर गर्जना होती है और इसी के साथ धूल का एक गुब्बार वायुमण्डल में छा जाता है, जिससे थोड़े समय तक वहाँ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता । आये-दिन लोग प्रकृति के इस रहस्यमय करतब को छेड़ने और देखने के लिए घाटी के आस-पास आते ही रहते हैं । तोप जैसी इसकी गगनभेदी ध्वनि के कारण ही वह स्थानीय क्षेत्र में 'ग्रेण्ड कैनन ऑफ दि ग्रेण्ड केनाइन' अर्थात् 'भव्य घाटी का भव्य धमाका' के नाम से लोकप्रिय हो गई है ।

भगवान ने मनुष्य को जानने-समझने की बुद्धि दी है । उसके द्वारा कई अवसरों पर वह ऐसी पहेलियों को सुलझा भी लेता है, जो आरम्भ में जटिल गुत्थी जान पड़ती हैं, पर हर बार वह ऐसा कर ही लेगा, इसे दावे के साथ नहीं कहा जा सकता । अनेक मौकों पर स्थूल क्रिया के मूल में कारण स्थूल न होकर सूक्ष्म होते हैं । इन कारणों को सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही समझा जा सकता है । सूक्ष्म बुद्धि अध्यात्म-अवलम्बन के बिना सम्भव नहीं । अतः यदि मनुष्य को सृष्टि की इन रहस्यमय गुत्थियों का उत्तर पाना है, तो अध्यात्म का आश्रय लेना ही पड़ेगा । इससे कम में काम चलने वाला नहीं । यदि मनुष्य आगामी सदी में प्रज्ञा-बुद्धि विकसित कर ले और अब तक के अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ ले, तो हमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए ।

निराली है सिरजनहार की यह कारीगरी

प्रकृति की कारीगरी पर विचार किया जाय, तो हम पायेंगे कि वह सृष्टि का एक अद्‌भुत इंजीनियर है । उसने निर्माणों में एक-से-एक बढ़कर ऐसी कृतियाँ गढ़ी हैं, जिन्हें देखकर अचम्भा हुए बिना नहीं रहा जा सकता है । यदा-कदा मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि आखिर इन रचनाओं के पीछे निःसर्ग का क्या प्रयोजन है ? क्या मात्र कौतुक-कौतूहल पैदा करने के लिए ही इनका सृजन हुआ है अथवा उद्देश्य कुछ और है ? गम्भीर मन्थन से जो निष्कर्ष निकला है, वह बताता है कि सम्भव है, इनका ध्येय मनुष्य को प्रेरणा देना हो कि वह अपनी गतिविधियाँ प्रकृति की तरह रचनात्मक बनाये, ध्वंसात्मक नहीं ।

इन्हीं सम्भावनाओं को प्रकट करता हुआ भूमध्य सागर में सारडीनिया नामक एक द्वीप है । इसके उत्तर-पूर्व में कैपोडी ओरसो अर्थात् 'भालू अन्तरीप' स्थित है । जैसा कि नाम से स्पष्ट है इस अन्तरीप का मुख्य आकर्षण वहाँ की भालूनुमा एक विशाल संरचना है । जब कोई भी पर्यटक इस 'केप अन्तरीप' की चोटी तक पालू गाँव के रास्ते से आता है, तो वह प्रकृति की इस अद्‌भुत कारीगरी को देखकर आश्चर्य में पड़ जाता है । भालू एक विशाल चट्टान से विनिर्मित है, जिसे पास से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह उस टापू और समुद्र के विहंगम दृश्य को देखने में निमग्न है ।

प्रकृति की इंजीनियरी का ऐसा ही एक नमूना दक्षिणी चीन के युन्नान प्रान्त में देखने को मिलता है । उक्त प्रान्त की राजधानी कुनमिंग से लगभग ६० मील दक्षिण-पूर्व में एक ऊँचे पठार पर पत्थरों का एक सघन जंगल है । पत्थरों के इस वन को लोग दूर-दूर से देखने के लिए आते हैं । 'पत्थरों का जंगल' इस नाम से तनिक आश्चर्य अवश्य होता है, किन्तु उसे देखने के बाद नाम की सार्थकता सत्य जान पड़ती है । वस्तुतः वह हरीतिमा रहित अरण्य ही है । जब कोई पर्यटक दूर से अकस्मात् उस ओर दृष्टि दौड़ाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई विस्तृत वन सामने फैला हुआ हो—ऐसा वन, जिसमें पेड़ों की टहनियाँ और पत्ते न हों, सिर्फ तने शेष रह गए हों । भिन्न-भिन्न आकार और ऊँचाई वाले पाषाण-स्तम्भों से युक्त यह स्थल प्रथम दृष्टि में किसी घने वन का भ्रम पैदा करता है ।

थीसली, ग्रीस में पिण्डस पर्वत की तराई में एक छोटा शहर है—कलाम्बका । इसकी पृष्ठभूमि में उत्तर की ओर विशाल चट्टानी स्तम्भों के तीन समूह हैं । ये विशाल स्तम्भ देखने में ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो कोई बौद्ध स्तूप हों । इन समूहों में स्तूपों के अतिरिक्त और भी कितनी ही संरचनाओं की नैसर्गिक अनुकृतियाँ बनी हुई हैं । इनमें से दो, यात्रियों का ध्यान विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करते हैं । ये हैं वहाँ के विशाल स्तूप एवं अगणित कँगूरे वाली गढ़ियाँ । इस सम्पूर्ण प्राकृतिक निर्माण को तनिक हटकर देखने से ऐसा आभास मिलता है, जैसे रजवाड़ों की यह छोटी-छोटी गढ़ियाँ हैं और उन्हीं के निकट उनके पृथक-पृथक शिक्षाओं और सिद्धान्तों का उद्घोष करते उनके अपने-अपने स्तम्भ । इस प्रस्तर रचना को 'मिटिओरा' के नाम से पुकारा जाता है । ग्रीक में इसका अर्थ 'गगनचुम्बी' होता है । स्तम्भों में से कई-कई तो १८०० फुट ऊँचे हैं । इन स्तूपों की शोभा को तब चार चाँद लग गए, जब प्रकृतिगत निर्माणों के ऊपर मानवीकृत संरचनाएँ खड़ी की गईं । यह अद्‌भुत निर्माण का विचार कुछ संन्यासियों के मन में तब आया, जब उन्हें संसार से विरक्ति अनुभव होने लगी । ऐसी स्थिति में इन सर्वथा अगम्य स्तूप शृंगों पर छोटे निवास बनाकर उन्होंने अपनी इच्छा-पूर्ति की । चोटी पर स्थित उनके मठ सचमुच ही सर्वसाधारण की पहुँच से परे थे । यदि उनसे जुड़ी, अलग होने और मुड़ने वाली सीढ़ी को हटा दिया जाय, तो मठ का सम्बन्ध समाज से बिलकुल ही विच्छिन्न हो जाता है और उनमें रहने वाले व्यक्ति समाज में मनुष्य के बीच रहकर भी उनका सम्पर्क मनुष्य और समाज से एकदम टूट जाता है । निर्माणों की विशेषता यह है, कि जब तक ध्यानपूर्वक इन्हें नहीं देखा जाय, तब तक यह ज्ञात नहीं होता कि इनके ऊपर मानवकृत संरचना भी विनिर्मित है । ऐसे मठ वहाँ के खम्भों में बीस से अधिक हैं । इनका निर्माण १४वीं एवं १५वीं सदी में किया गया था और ये १६वीं शताब्दी तक आबाद रहे । अब ये खाली पड़े हुए हैं । जो भी पर्यटक यहाँ आते हैं वे प्रकृति और मनुष्य की इन मिली-जुली रचनाओं को देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं ।

प्रकृति के वास्तुशिल्प का एक अच्छा उदाहरण 'फ्रसासी गुफाओं' के रूप में देखा जा सकता है । ये कन्दराएँ इटली में एसीनो नदी से लगे पहाड़ पर स्थित हैं । इन गुफाओं की सबसे बड़ी विशेषता उनमें स्थित अनेकानेक कक्ष हैं । हर कक्ष की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ हैं । उन्हीं के आधार पर उनका नामकरण किया गया है । उदाहरण के लिए, उसका एक भाग ऐसा है, जिसमें सिर्फ चमगादड़ रहते हैं । इस आधार पर उस प्रकोष्ठ का नाम 'ग्रोटाडिले नोटोले' अर्थात् 'चमगादड़ों की गुफा' रखा गया । उसके एक अन्य कक्ष का नाम 'ग्रोटो ग्रेण्डे डेल वेण्टो' अर्थात् 'ग्रेट केव ऑफ विण्ड' है । कन्दरा के इस भाग में अनेक प्रकोष्ठ हैं । इनका आकार-प्रकार इतना बड़ा है कि उनमें बड़े-बड़े

मठ समा जायें । इनमें से कुछ में प्राकृतिक प्रकाश की अच्छी व्यवस्था है । विशाल गुफा का एक भाग 'साला डिले कैण्डेलाइन' कहलाता है । उक्त नाम उस हिस्से में स्थित उन अगणित छोटे-छोटे मोमबत्तीनुमा निर्माणों की ओर इंगित करता है जो देखने से ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो वही जल-जल कर उस भाग को प्रकाशित कर रहे हों । इसी कारण उसका नाम 'मोमबत्ती वाला कमरा' रखा गया है । एक अन्य कक्ष 'साला डेल इनफिनिटो' या 'रूम ऑफ इनफाइनाइट' कहलाता है । इस प्रकोष्ठ में बड़े एवं विशाल सुसज्जित स्तम्भ हैं, जो गुफा की छत को सँभाले हुए हैं । इन्हें देखने से ऐसा लगता है, जैसे प्रकृति ने विशाल खम्भों का निर्माण कर विस्तृत छत को दृढ़ता प्रदान की हो, ठीक वैसे ही जैसे मानवी निर्माणों में देखा जाता है । इनमें से अकेले ग्रोटा ग्रेण्डे डेल वेण्टों की लम्बाई आठ मील है । उल्लेखनीय है कि फ्रासासी गुफाओं के प्रत्येक कक्ष एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार विशाल इमारतों में कमरे परस्पर जुड़े होते हैं ।

संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलोरैडी नदी के तट पर उसके दक्षिण-पूर्व भाग में 'उटाह' नामक स्थान है । यहाँ एक नेशनल पार्क है, जो 'मेहराबों वाला पार्क' के नाम से प्रसिद्ध है । इस पार्क की विशेषता यह है कि यहाँ छोटे-बड़े कितने ही आकर्षक पत्थरों के मेहराब हैं । इन्हें देखने पर प्रकृति की उस कलाकारिता पर आश्चर्य होता है, जिसने कुशलतापूर्वक इन्हें गढ़कर खड़ा किया । इनमें से कई इतने नाजुक और पतले हैं, कि विश्वास नहीं होता यह लम्बे समय से अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं । ऐसे में निःसर्ग की निर्माण-कुशलता पर विस्मय होना स्वाभाविक ही है । इस पार्क का सबसे लम्बा मेहराब 'लैण्डस्केप आर्च' है । विश्व का यह अपने प्रकार का सबसे बड़ा आर्च है । इसकी लम्बाई २९१ फुट है ।

प्रकृति की कृतियों में कांगो (दक्षिण अफ्रीका) की कन्दराओं की चर्चा न की जाय, तो उल्लेख अधूरा होगा, माना जाता है कि कन्दरा प्रस्तर युग में आदि मानवों का निवास रही होगी । यह अनुमान उनकी दीवारों में उत्कीर्ण तस्वीरों के आधार पर विशेषज्ञ लगाते हैं, किन्तु जिन कारणों से यह विश्व-प्रसिद्ध बनीं, वे कारण मानवीकृत चित्र नहीं हैं, वरन् प्रकृति की विलक्षण कारीगरी है । इनके अलग-अलग प्रकोष्ठों में विस्मय विमुग्ध करने वाली रचनाएँ हैं । विशेष दर्शनीय हैं वहाँ के 'क्रिस्टल पैलेस', 'डेविल्स वर्कशाप' एवं तहखाना । इनमें कहीं पर्दे की आकृति जैसी रचना है, तो कहीं बड़े-बड़े बबूले जैसा निर्माण, कहीं बाँसुरी, तो कहीं लम्बी-लम्बी सुइयाँ । एक स्थान पर ऐसा ड्रम है, जो रचना की दृष्टि से ही ड्रम नहीं है, वरन् वह ड्रमों जैसी ध्वनि भी निरन्तर निकालता रहता है । वहाँ प्रवेश करने पर ऐसा लगता है, जैसे यह सभी, पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धा कर रहे हों ।

कैलिफिर्निया में नेवादा के निकट एक घाटी है 'डेथ वेली' या मृत्यु घाटी । इस घाटी का आकर्षण वहाँ की भूमि में विनिर्मित सुन्दर बीहड़ है । इसे देखने से ऐसा आभास होता है, जैसे किसी कुशल शिल्पी ने अपने सधे और निष्णात हाथों से इसे तराशा हो । इसका नाम मृत्यु घाटी इसलिए रखा गया है, क्योंकि गर्मियों में वहाँ का तापमान अति उच्च हो जाता है । इसके बावजूद छोटे-छोटे जीवधारी वहाँ मजे से रहते हैं ।

प्रकृति की ये रचनाएँ अपनी मूक भाषा में मनुष्य को यह शिक्षा देती रहती हैं, कि वह अपने सृजन और सृजनात्मक गतिविधियों से चाहे तो समाज का नवनिर्माण कर सकते हैं, पर दुःख की बात यह है कि निःसर्ग के इस महत्त्वपूर्ण सन्देश की उपेक्षा करते हुए हम इन दिनों निर्माण में न जुटकर ध्वंस को गले लगाये हुए ऐसे कार्यों में संलग्न हैं, जो थके मन को कुछ राहत देने की तुलना में विषाद का हलाहल पिलाने में व्यस्त हैं । हम संहारक नहीं सर्जक बनें—दुःखद समाज को सुखद संसार में बदलने का यही एकमात्र उपाय है ।

प्रकृति से मानव सीखे, तकनीकी ज्ञान

प्रकृति के रहस्यों पर यदि दृष्टिपात करें, तो कई बार हमें ऐसे कौशल दिखाई पड़ेंगे, जिन्हें देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है । आश्चर्य यह होता है कि जिन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए मनुष्य जैसे बुद्धि-सम्पन्न प्राणी को ऐड़ी से चोटी तक का पसीना एक करना पड़ता है, विपुल जनशक्ति एवं बौद्धिक कुशलता की आवश्यकता पड़ती है, उन क्रियाओं को वह इतनी आसानी से कैसे कर लेता है । इनमें से जिन रहस्यों को हमारी बुद्धि समझ और सुलझा लेती है उन्हें हम सामान्य की श्रेणी में रख देते हैं और जहाँ वह चकराने लगती है, वहाँ रहस्यों को अविज्ञात कह कर पिण्ड छुड़ा लिया जाता है ।

वस्तुतः निसर्ग में निरुद्देश्य कुछ है नहीं । जहाँ ऐसा लगता है, वहाँ हमारी बुद्धि की ससीमता ही कारणभूत है । असीम का वह अंशधर है—इसे समझ नहीं पाने के कारण ही मनुष्य प्रयोजनहीन कार्यों में संलग्न रह कर अपनी शक्ति, समय और सम्पदा का दुरुपयोग करता रहता है । सदुपयोग की बात सोचते-समझते उससे बन नहीं पड़ती है । यदि ऐसा हुआ होता, जो जिन विपदाओं से आज उसे गुजरना पड़ रहा है, स्थिति वैसी गम्भीर कभी आती ही नहीं, पर उस दुर्भाग्य को क्या कहा जाय, जो सन्निपात की तरह नासमझी को ही सदा ढोते रहता है ? प्रकृति इस सन्दर्भ में अधिक समझदार है । वह अपने वैभव का सदुपयोग कर ऐसी क्रिया-प्रक्रिया सम्पन्न करने में निरत रहती है, जो मानवोपयोगी हो ।

उसकी ऐसी ही एक अद्भुतता ग्वाइमस बेसिन में देखी जा सकती है । वहाँ भूगर्भ में उसकी एक अनूठी रिफाइनरी है, जो सदा कच्चे तेल को साफ करने में तत्पर रहती है । प्रकृति के इस तेलशोधक कारखाने का पता पहली बार तब चला, जब सन् १९८० में 'स्क्रीप्स इन्स्टीट्यूट ऑफ असनोग्राफी, सैनडियागो' के डॉ. पीटर लोन्सडेल एक खोजी यात्रा पर थे । 'मेलविले' जहाज पर सवार कैलिफोर्निया की खाड़ी में वे यह पता लगाने की कोशिश कर रहे थे, कि ज्वालामुखीय गतिविधियों से समुद्र तल के नीचे की जमीन में खनिज, धातु आदि इकट्ठे हुए हैं क्या ? इसी प्रयास में वहाँ एक मील नीचे स्थित 'ग्वाइमस बेसिन' से मिट्टी निकाली गई । मिट्टी में कुछ खनिजों की उपस्थिति का आभास मिलने पर लोन्सडेल उसका और गहराई से निरीक्षण करने लगे । तभी वे अचानक चौंक पड़े । मिट्टी से एक विशेष प्रकार की गन्ध आ रही थी, जो इस बात की सूचक थी कि वहाँ तेल मौजूद है ।

द्वितीय बार उक्त क्षेत्र का दौरा सन् १९८२ में किया गया। इस बार का सर्वेक्षण और भी विस्मयकारी साबित हुआ। सर्वेक्षण दल ने इस बार गहरे समुद्र में एक विशेष प्रकार का उपकरण उतारा। इसके माध्यम से समुद्र-तल का अध्ययन किया, तो ज्ञात हुआ कि बहुत सारे प्राकृतिक गैस के बबूले और तेल की बूँदें समुद्र तल की भूमि से बाहर आ रहे हैं। इस प्रकार पहली बार यह पता चला कि धरती में प्राकृतिक तेलशोधक कारखाने भी मौजूद हैं।

भूगर्भशास्त्रियों ने कैलीफोर्निया की खाड़ी को 'युवा' समुद्री बेसिन की संज्ञा दी है। उनके अनुसार पिछले ३० लाख वर्षों के दौरान उत्तरी अमेरिका महाद्वीप की प्राचीन और मोटी प्लेट अपेक्षाकृत नवीन और पतली प्रशान्त महासागरीय प्लेट से दूर हटती गई। ऐसी स्थिति में ज्वालामुखी विस्फोट अवश्यम्भावी है, लेकिन चूँकि कैलिफोर्निया की खाड़ी में आकर अनेक नदियाँ मिलती हैं, अतः इनके द्वारा लायी गई विशाल परिमाण में मिट्टी और बालू विस्फोट को शान्त कर देती हैं। ऐसी स्थिति में ज्वालामुखी अपना स्वाभाविक उग्र रूप दिखाने की बजाय, लावा को समुद्र तल पर बिखेर कर ही शान्त हो जाते हैं। बाद में पिघली चट्टानें ठण्डी हो जाती हैं।

फिर तेल बनने की प्रक्रिया क्या है ? इस सम्बन्ध में भूगर्भवित्ताओं का कहना है कि जो तलछट नदियों द्वारा खाड़ी में लायी जाती है, वह कार्बनिक अवयवों से काफी समृद्ध होती है। इसमें मृत प्लवक (प्लांकटन) एवं दूसरे समुद्री जीवों के अवशेष भी सम्मिलित होते हैं। ज्वालामुखीय गतिविधियों के दौरान जब पिघली चट्टानें समुद्र तल पर आती हैं, तो नीचे से इनकी भीषण गर्मी और ऊपर से नवीन तलछटों एवं मीलों तक फैली हुई विशाल जल-राशि का प्रचण्ड दबाव यह दोनों मिलकर वहाँ विशाल प्रेशर-कुकर जैसी परिस्थिति पैदा कर देते हैं, जिससे कार्बनिक पदार्थ पैट्रोलियम में परिवर्तित हो जाते हैं। सामान्य स्थिति में जो क्रिया लाखों वर्षों में सम्पन्न होनी चाहिए, वह असाधारण अवस्था में कुछ हजार वर्षों में ही सम्पादित हो जाती है।

अब यह सवाल पैदा होता है कि इस प्रकार से विनिर्मित कच्चा तेल का परिशोधक कैसे होता है ? प्रकृति में इसकी क्या व्यवस्था है ? इस बारे में विशेषज्ञों का कहना है कि ग्वाइमस बेसिन की भौगोलिक स्थिति कुछ ऐसी है, कि वहाँ कच्चा तेल स्वयमेव ही परिशोधित होता रहता है। इसीलिए उसे 'प्रकृति की रिफाइनरी' कहा गया है। इसकी तेलशोधन प्रक्रिया समझाते हुए वैज्ञानिक कहते हैं कि भूगर्भीय टेक्टोनिक प्लेटों की गतिविधियों के कारण ग्वाइमस बेसिन के नीचे की चट्टानों में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई हैं। इन दरारों से समुद्री जल रिस-रिस कर काफी नीचे पृथ्वी के गर्भ में पहुँचता रहता है, जहाँ वह पिघली चट्टानों की गर्मी से गर्म होकर पुनः ऊपर उठने लगता है। इस प्रक्रिया में जब वह चट्टानों के सम्पर्क में आता है, और उसके खनिजों को भी अपने में घुला-मिला लेता है, तो इस प्रकार वह सामान्य जल न रहकर खनिज लवणों से युक्त एक प्रकार का रासायनिक घोल बन जाता है। जब यह घोल समुद्र-तल में पहुँचता है, तो वहाँ ठण्डे पानी के संसर्ग में आकर तेजी से ठण्डा होने लगता है, फलतः जल में घुले लवण अलग होकर घनीभूत ठोस का रूप धारण कर लेते हैं। पर्यवेक्षण के दौरान सन् १९८० में इन्हीं खनिजों को लोन्सडेल ने देखा था।

जहाँ उक्त रासायनिक घोल नवनिर्मित तेल की पर्त से होकर गुजरता है वहाँ वह तेल को ठीक उसी रीति से उतना गर्म कर देता है, जैसा व जितना तेलशोधक कारखानों में तप्त किया जाता है। परिणाम यह होता है कि गर्म होकर तेल अपेक्षाकृत ठण्डे भाग की ओर ऊपर उठने लगता है और समुद्र-तल के शीतल जल के सान्निध्य में आकर वाष्प से द्रव रूप में परिणत होने लगता है। इस प्रकार यहाँ वाष्पीभूत अंश के तीन भाग पृथक हो जाते हैं। एक भाग कचरे के रूप में 'टार' बन जाता है, दूसरा भाग परिशोधित तेल होता है और तीसरा बाइप्रोडक्ट गैस अर्थात् वही सब घटक, जो कच्चे, तेल में रिफाइनरी से प्राप्त होते हैं। टार और भारी तेल समुद्र-तल पर खनिज लवणों के साथ बने रहते हैं, जबकि उसका हल्का हिस्सा, और गैस बबूले पानी में इधर-उधर तैरते फिरते हैं।

इस विलक्षण भूगर्भीय रिफाइनरी के अन्वेषण से ही यह पहली बार जाना जा सका है कि प्रकृति अपनी नैसर्गिक गति से भी दस गुनी तेज रफ्तार से कच्चा तेल बनाने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त वह इस तेल का परिशोधन भी कर सकती है, यह भी प्रथम बार जाना जा सका। उक्त गवेषणा के उपरान्त अब वैज्ञानिक इसी प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थों को गुजार कर तेल बनाने का विचार कर रहे हैं। इस समय-साध्य प्रयोग में वैज्ञानिक कितने सफल हो पायेंगे, यह और बात है, पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रकृति द्वारा विज्ञान को प्रदत्त यह एक अपूर्व टेक्नोलॉजी है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक इस बात की भी आशा प्रकट कर रहे हैं, कि भविष्य में ग्वाइमस बेसिन तेल का अच्छा भण्डार साबित होगा।

इस दृष्टि से देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि प्रकृति अपने अनुदानों से मनुष्य को ओत-प्रोत करती रहती है। वह स्वार्थी नहीं, परमार्थी है। एक मनुष्य ही ऐसा है, जो अपने उपार्जन का उपभोग स्वयं ही करना चाहता है। पेड़-पौधों से लेकर मानवेतर प्राणी तक सभी प्रकृति का अनुसरण करते हैं, जबकि प्रकृति के सान्निध्य में रहने वाले मनुष्य का स्वभाव न जाने क्यों इसके विपरीत है। उपर्युक्त घटना द्वारा हम प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। प्रेरणादायक प्रकृति को सम्पूर्ण रूप से समझ पाना बड़ा ही दुरूह है। जितने अंशों में अब तक इसे समझा गया है, उससे यही विदित होता है कि निःसर्ग परोपकारी है। जिन रहस्यों को समझने में मानवी बुद्धि असमर्थ रही, उन्हें अनबूझ, अलौकिक अथवा अनुपयोगी कहकर टाल दिया गया, पर वास्तविकता ऐसी नहीं। निःसर्ग की क्रियाएँ न तो निरुद्देश्य हैं, न निष्प्रयोजनः यदि इसके इस पक्ष को समझा जा सके, तो भली-भाँति इस तथ्य को हृदयंगम किया जा सकेगा, कि प्रकृति का स्वभाव परमार्थपरायण है और इसी की शिक्षा वह सम्पूर्ण मनुष्य जाति को सदा देती रहती है।

दो विरोधाभासों का समुच्चय हमारा जगत

छाया की प्रतिच्छाया, बिम्ब का प्रतिबिम्ब, ध्वनि की प्रतिध्वनि, मीटर का एण्टीमीटर एवं यूनीवर्स का एण्टीयूनीवर्स अस्तित्व में होते हैं—यह तो सर्वविदित तथ्य है, किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि समुद्री जलों और वायु-प्रवाहों में भी इसी प्रकार की प्रतिकूलता प्रतिकृति अस्तित्व में पायी जाती है। यह निःसर्ग का शाश्वत नियम है कि जहाँ देव हैं, वहाँ दानव भी रहेंगे; जहाँ विकास है, वहाँ विनाश का ताण्डव नर्तन भी होगा; जहाँ सीधा है, वहाँ उल्टा क्रम भी देखने को मिलेगा, इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं। परमाणुओं में इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन दो सर्वथा विपरीत प्रकृति के कण साथ-साथ होते हैं। ऋतुओं में सर्दी-गर्मी दोनों होती हैं। जहाँ दिन है, वहाँ रात भी होगी ही।

समुद्री जलों और वायु-स्तरों में विपरीत प्रवाह इसी शृंखला की कड़ी हैं, जो इन्हीं दिनों प्रकाश में आये हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व पोन्स डी लीयोन नामक स्पेनिस यात्री जहाज से अटलांटिक महासागर में दक्षिण दिशा की ओर यात्रा कर रहा था और हवा भी उसी दिशा में बह रही थी। जहाज में लगे पाल से यह स्पष्ट विदित हो रहा था, किन्तु लीयोन को आश्चर्य तब हुआ, जब यह पता चला कि जहाज वास्तव में दक्षिण की ओर नहीं, वरन् उत्तर की दिशा में बढ़ रहा है। इस विलक्षणता की छानबीन करने पर मालूम हुआ कि समुद्र सतह और नीचे के जल-प्रवाह में आश्चर्यजनक विपरीतता है। जाँच-पड़ताल से पाया गया कि नीचे का जल-प्रवाह ऊपर की तुलना में अधिक तीव्र और प्रचण्ड था तथा वह उत्तर की ओर प्रवाहित हो रहा था। चूँकि जहाज का जल के नीचे का भाग इस प्रचण्ड प्रवाह के अन्तर्गत आता था, अतः ऊपर का जल-प्रवाह दक्षिण दिशा की ओर बहने के बावजूद भी जहाज निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ा जा रहा था। यह फ्लोरिडा-प्रवाह अटलांटिक महासागर में खाड़ी क्षेत्र से प्रारम्भ होकर नार्वे तक करीब तीन हजार मील की परिधि में फैला हुआ है। खाड़ी प्रदेश से आरम्भ होने के कारण यह 'गल्फ स्ट्रीम' के नाम से भी जाना जाता है।

इससे पूर्व भी अठारहवीं सदी में जब अमेरिका ब्रिटेन का उपनिवेश था, तब भी व्यापारियों एवं नाविकों को इस अद्भुत प्रवाह के बारे में जानकारी थी। क्योंकि व्यापार के सन्दर्भ में अथवा व्यापार हेतु उन्हें इंग्लैण्ड से अमेरिका की यात्रा करनी होती, तो वे सदा इस 'गल्फ स्ट्रीम' नामक प्रवाह से बच कर निकलते, जिससे अमेरिका काफी समय पूर्व पहुँच जाते, जबकि अंग्रेजी सरकार के जहाजों को इसका पता न होने और 'गल्फ स्ट्रीम' से होकर यात्रा करने से उन्हें वहाँ पहुँचने में कम-से-कम दो सप्ताह का विलम्ब हो जाता, कारण था कि गल्फ स्ट्रीम में प्रचण्ड विपरीत प्रवाह होने के कारण जहाजों की गति वहाँ काफी धीमी हो जाती है। बाद में जब इसका पता चला तो वे भी उस प्रवाह से बचकर निकलने लगे, जिससे समय और ईंधन की काफी बचत होने लगी। सन् १९७० में मैक्सिको की खाड़ी से अमेरिका के पूर्वी तट तक इस स्ट्रीम का लाभ उठाने से प्रति यात्रा दस हजार डालर ईंधन की बचत होती पायी गई, क्योंकि इस यात्रा में स्ट्रीम का प्रवाह अनुकूल होता था, जिससे जहाजों की गति काफी तेज हो जाती थी और वे निर्धारित समय से पूर्व गन्तव्य पर पहुँच जाते थे। इसी प्रकार मियामी विश्वविद्यालय के ओसनोग्राफी विभाग के विशेषज्ञों ने सन् १९६३ में अटलांटिक महासागर में एक अन्य ऐसे ही प्रवाह की खोज की थी।

यह बात नहीं कि सिर्फ अटलांटिक महासागर में ही जल की दो विपरीत धाराएँ साथ-साथ बहती हैं। प्रशान्त महासागर में भी ऐसी अनेक धाराएँ देखी गई हैं। इसमें इस तरह की प्रथम घटना का पता सन् १९५२ में तब चला, जब अमेरिकी सरकार के मत्स्य विभाग के एक अधिकारी टाउनसेण्ड क्रोमवेल मछलियों के अध्ययन हेतु एक जहाज में पश्चिम की ओर बढ़ रहे थे। मछलियाँ पकड़ने के लिए जब इस दौरान एक जाल समुद्र के गहरे जल में डाला गया, तो मछलियों समेत जाल पूर्व की ओर बलपूर्वक खिंचने लगा। यह देख अधिकारी को बहुत हैरानी हुई। जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त ही यह जाना जा सका कि भीतर का जल विपरीत दिशा में प्रवाहमान है और उसकी गति बाहरी प्रवाह की तुलना में कहीं अधिक तीव्र है। इसी के कारण यह विलक्षण दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था। बाद में इस स्ट्रीम का नाम 'क्रोमवेल प्रवाह' रखा गया। उत्तरी प्रशान्त महासागर में भी एक ऐसा ही प्रवाह पाया जाता है, जिसे 'कुरोसिओ प्रवाह' कहते हैं, जो जापान के द्वीप समूहों तक जाकर पूरब की ओर मुड़ जाता है। यहाँ इसे 'कैलिफोर्निया प्रवाह' कहते हैं। अफ्रीका के पश्चिम तट के निकट बहने वाला उक्त प्रवाह 'बेनेजुएला' और पेरू से आने वाला स्ट्रीम 'हम्बोल्ट प्रवाह' कहलाता है। दोनों प्रवाह परस्पर मिलते हैं।

जब ऊपर-नीचे बहने वाले विपरीत जल-प्रवाहों की चपेट में पड़ कर व्यापारियों का काफी समय बर्बाद होने लगा और व्यापार में उसका प्रतिकूल असर पड़ने लगा, तो विश्व के समस्त व्यापारिक संगठनों और मियामी विश्वविद्यालयों के विशेषज्ञों ने मिलकर लम्बे समय के परिश्रम के पश्चात् समस्त सागर क्षेत्र का एक ऐसा नक्शा तैयार किया, जिसमें इस प्रकार के प्रवाहों को दर्शाया गया था। इससे व्यापारियों को काफी लाभ हुआ और इन प्रवाहों में पड़ कर व्यापारिक जहाजों का जो अनावश्यक समय बर्बाद होता था, उसे वे बचाने में इसके बाद सफल हो सके।

यह तो समुद्री प्रवाहों की चर्चा हुई, किन्तु इस प्रकार के विपरीत प्रवाह केवल जल तक ही सीमित होते हों, ऐसी बात नहीं है। ऐसे परस्पर विरोधी प्रवाह वायुमण्डल की हवा में भी पाये जाते हैं। ऐसे वायु-प्रवाहों की ऊँचाई समुद्री सतह से २० हजार से ३५ हजार फुट तक होती है। इनमें वायु ४०० मील प्रति घण्टे की प्रचण्ड गति से बहती है, जिसका लाभ वायुयान के चालक ईंधन की बचत करने और गन्तव्य तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने में उठाते हैं।

यह प्रकृति भी कितनी विचित्र और विलक्षण है। इसमें न जाने कैसे-कैसे प्रवाह निरन्तर बहते रहते हैं। स्थूल जगत को देखें, तो यहाँ भी दो प्रकार के लोग दिखाई पड़ते हैं—एक, जो सदा सन्मार्गगामी कार्यों में संलग्न प्रतीत होते हैं, और दूसरे जो कुमार्गगामी प्रवृत्ति अपनाते देखे जाते हैं। ऐसे लोग निरन्तर अपने स्वार्थ के लिए, औरों को, समाज को, राष्ट्र को पतन के गर्त में धकेलने में तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं करते। यह भी प्रकारान्तर से दो विपरीत श्रेष्ठ और निकृष्ट चेतना-प्रवाह के

प्रभाव-परिणाम हैं । ये दोनों प्रकार की धाराएँ हर काल में परोक्ष जगत में साथ-साथ बहती हैं, अन्तर सिर्फ इतना होता है, कि कभी निकृष्ट प्रवाह प्रबल हो उठता है, तो कभी श्रेष्ठ चिन्तन-चेतना प्रभावी होती दिखाई पड़ती है । इन दिनों दैवी सत्ता का उदात्त चेतन-प्रवाह बलवती हो उठने के कारण ही समस्त संसार में सर्वत्र विवेक-बुद्धि जाग्रत होती दिखाई पड़ने लगी है । इसका स्पष्ट प्रमाण तथा परिचय समूचे विश्व में होने वाले युगान्तरकारी परिवर्तनों से मिलने लगा है । अस्तु, अगले दिनों यदि आसुरी सत्ता लुक-छिप कर अपना अस्तित्व बचाने की फिराक में इधर-उधर भयभीत होकर भागती दिखाई पड़े, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए अपितु, इसे नियन्ता का एक सुनिश्चित पूर्व-निर्धारण मानना चाहिए ।

अदृश्य के गर्भ में छिपी अलौकिकताएँ

एक घटना सन् १८५६ में प्रशिया में घटी । ६५० फ्रान्सीसी सैनिकों का एक जत्था निकटवर्ती जर्मन चौकी पर हमला करने के लिए बढ़ रहा था । सभी सैनिक अस्त्र-शस्त्रों से लैस थे । अचानक हवा का हल्का बवण्डर आया और देखते ही देखते ६४५ सैनिक हवा में विलुप्त हो गए । बचे हुए पाँच सैनिकों के लिए यह घटना अचम्भित कर देने वाली थी । भयभीत इन सैनिकों ने आस-पास का चप्पा-चप्पा छान मारा, पर साथी सैनिकों का कहीं पता नहीं चला । सेना की दूसरी टुकड़ी को जाकर इन पाँचों ने घटना की सूचना दी । महीनों खोजबीन चलती रही, पर उन सैनिकों का, विलुप्त साथियों का कोई चिह्न तक न मिला ।

वियतनाम तब फ्रेंच इण्डोचीन के नाम से जाना जाता था । सन् १८८५ में वहाँ की केन्द्रीय छावनी से ६०० सशस्त्र फ्रान्सीसी सैनिक सैगोन के लिए भेजे गए । निर्दिष्ट स्थान जब १५ मील दूर रह गया था, तभी सारा जत्था इस प्रकार गायब हो गया मानो वह वहाँ था ही नहीं । मुद्दतों तक ढूँढ़ खोज चलती रही पर ऐसा एक भी सुराग न मिला जिससे उनके अदृश्य होने का कारण समझा जा सके । न तो वे किसी के द्वारा पकड़े गए, न मरे, न भागे, न कोई अस्त्र-शस्त्र या पदचिह्न ही छोड़े गए, जिनके सहारे खोजी लोग किसी सम्भावना की कल्पना कर सकें ।

इसी तरह सन् १९३९ में चीन और जापान के बीच युद्ध चल रहा था । तीन हजार चीनी सैनिकों की एक टुकड़ी नानकिंग नामक स्थान पर पड़ाव डाले पड़ी थी । एक दिन प्रातः अचानक केन्द्र से उनका संचार-सम्पर्क टूट गया । केन्द्रीय सैनिक कमाण्डर ने अविलम्ब उक्त टुकड़ी के सैनिकों की खोज आरम्भ कर दी । पड़ाव के स्थान पर सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र एवं खाद्य सामग्री तो विद्यमान थे, पर वहाँ न तो किसी प्रकार के युद्ध का चिह्न मिला, न ही सैनिकों के अवशेष । खोजी कुत्ते उक्त स्थान पर जाकर भौंकते रहे । वे वहाँ से आगे बढ़ने का नाम नहीं लेते थे । दो फर्लांग (१ फर्लांग = ०.२० किलोमीटर) दूरी पर दो सैनिक सुरक्षा पहरे पर नियुक्त थे, मात्र वे ही बच सके । उत्तरी कनाडा के 'अजिकुनी' गाँव की घटना उक्त घटनाओं से भी अधिक आश्चर्यजनक है । सन् १९३० में प्रकाशित नक्शे में उत्तरी कनाडा के चर्चिल पुलिस स्टेशन से ५० मील दूर बसा यह गाँव तब एस्किमो लोगों की आबादी से भरापूरा था, किन्तु १९३० के अगस्त मास में एक दिन कुछ ऐसी अनहोनी हुई कि उस पूरे गाँव के मनुष्यों, जानवरों का ही नहीं, मलवे तक का अस्तित्व पूरी तरह गायब हो गया । भूमि ऐसी हो गई, मानो किसी आबादी का अस्तित्व था ही नहीं । इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात एक और थी कि वहाँ के कब्रिस्तान में पूर्व से गड़े एक भी मुर्दे के अवशेष नहीं रह गए । लगता था उन्हें भी उखाड़ कर ले जाया गया । उस सारे प्रान्त को छान डालने पर भी इसका कोई कारण या निशान उपलब्ध नहीं हुआ ।

अदृश्य सत्ता जहाँ इस तरह के कौतुक-कौतूहल कभी-कभी प्रस्तुत करती रहती है, वहीं संकटकालीन परिस्थितियों में लोगों को प्रत्यक्ष या परोक्ष सहायता भी प्रदान करती है । द्वितीय महायुद्ध के समय मोन्स की लड़ाई में ब्रिटिश सेनाओं की बुरी तरह हार हो गई, मात्र ५०० सैनिक बचे । वे भी बुरी तरह हौसला पस्त हो चुके थे । दूसरी ओर जर्मनों की १० हजार की संख्या वाली विशाल सेना थी जिसकी कोई समानता न थी । तभी ऐसे आड़े समय में ब्रिटिश सेनाधिकारी ने परमसत्ता से सहायता की याचना की और अपने सभी सैनिकों सहित तन्मय भाव से उसके स्मरण में व्यस्त हो गया । अचानक एक बिजली सी कौंधी और पाँच सौ सैनिकों की एक शुभ्र आभा प्रकट होती दिखाई दी । सबने देखा कि कुछ ही क्षणों में सभी दस हजार जर्मन सैनिक रणभूमि में मरे पड़े थे ।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि भगवान के लिए कुछ भी कठिन नहीं है । कलियुग को सतयुग में बदलता है, त्रेता में धर्मराज्य की स्थापना करता है । रावण, वृत्रासुर, कंस जैसों के मद को चूर्ण-विचूर्ण करता है । सुदामा, विभीषण, सुग्रीव जैसे विपन्नों को सुसम्पन्न बनाता है । हारे हुए देवताओं को महाप्रलय के गर्त में डुबो देता है और सर्वव्यापी जल में से नई सृष्टि रचकर खड़ी कर देता है । वह मानवोचित विचारों को, मानवी वर्चस्व की गरिमा को पुनर्जीवित करने के लिए अन्तःकरणों में भारी उथल-पुथल उत्पन कर दे, तो क्या असम्भव है ? जिसके कौशल से निखिल ब्रह्माण्ड में ग्रह-तारक अधर में टँगे और घुड़दौड़ लगाते हुए ऐसा क्रम चला रहे हैं, जिसे देखते हुए आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । इक्कीसवीं सदी की उज्ज्वल सम्भावनाओं को साकार कर दिखाने और सड़ी-गली व्यवस्था को गर्त में झौंक देने तथा उसके अनुग्रह से नवयुग का आगमन सम्पन्न होने को असम्भव नहीं मानना चाहिए ।

अचानक लुप्त होने वाली वस्तुएँ

मनुष्य भूलवश अपनी वस्तुओं को खोता-गवाँता तो रहता ही है पर कई बार ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जिनमें गायब हुई वस्तु के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह रास्ते में कहीं छूट गई होंगी या किसी ने चुरा लिया होगा ।

भारी चीजें धीरे-धीरे गुम हों तो यह अनुमान भी लगाया जा सकता है, कि किसी ने उन्हें काट-पीट कर कहीं से कहीं पहुँचाया होगा, पर उनमें भी समय तो लगेगा ही और जहाँ ले जायी गई हैं वहाँ तक का कोई पदचिह्न सुराग तो मिलेगा ही, पर जब ऐसा कुछ नहीं होता और भारी चीजें यकायक लुप्त हो जाती हैं तो उनका बुद्धिसंगत समाधान नहीं सूझता और उसके पीछे कोई देव-दानव काम करता प्रतीत होता है । ऐसी

आश्चर्यजनक घटनाएँ भूतकाल में भी होती रही हैं और कभी-कभी अभी भी घटित होती हैं ।

बारमूडा त्रिकोण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उस क्षेत्र में से गुजरने वाले अनेकों जलयान एवं वायुयान खो चुके हैं । साधारण खोजबीन से पता न चला तो वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष सम्बन्धी रहस्यों को आधार बनाया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस क्षेत्र में किसी छोटे 'ब्लैक होल' का प्रभाव होना चाहिए । बड़ा ब्लैक होल तो समूची पृथ्वी को भी निगल सकता है । मृत तारों का प्रेत ब्लैक होल बन जाता है । उसके मुँह में जो भी समाता है उसे निगल लेता है । उसका अन्त कहाँ है, इसके बारे में अभी कोई निर्णय नहीं हो सका ।

किन्तु छुटपुट स्थानों से जब बड़ी वस्तुओं के गायब होने के समाचार मिलते हैं, तो ब्लैक होल की करतूत उसे नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसका मुँह चौड़ा होता है और एक दायरे की समूची वस्तुओं को प्रचण्ड चक्रवात की तरह उड़ा ले आता है, पर कम वस्तुओं की, कम घेर की वस्तुओं के सम्बन्ध में वैसा अनुमान नहीं लगाया जा सकता ।

सेण्ट न्याटस के गैरिज से १६ फुट लम्बा एक केबिन जहाज गुम हो गया । उसे कौन ले गया ? कहाँ ले गया ? कैसे ले गया ? इसकी लम्बे समय तक तलाशी होती रही पर कुछ पता न चला ।

एक जलयान गुम होने की ऐसी ही घटना इसी प्रकार की और घटी । एक १६ हजार टन का जहाज २११ यात्रियों को लेकर रवाना हुआ । लाइफ वोट आदि का पूरा सुरक्षा सामान साथ था । सूचना देने के रेडियो यन्त्र भी, पर वह बिना कोई सूचना दिए, बिना किसी आदमी के जीवित बचे अचानक गायब हो गया । सम्भावित क्षेत्र की गहराई में उसके मलवे की तलाश की गई पर इस घटना का कोई सूत्र हाथ न लगा ।

इसके कुछ ही समय पश्चात् सन् १८७२ की घटना है, एक जहाज मिसीसिपी बन्दरगाह से रवाना हुआ था । इस व्यापारी जहाज में कपास लदा था और ८८ यात्री भी सवार थे । कुछ दूर चलने के बाद वह भी यकायक गुम हो गया । अग्निकाण्ड जैसी दुर्घटना का भी कोई चिह्न कहीं नहीं था । एक शताब्दी तक सब स्तर की खोज चलती रही, बाद में भी निराश होकर उसकी खोज फाइल बन्द करनी पड़ी ।

अबरैल नदी में एक ३५ फुट लम्बा जलयान एक नाविक ने खाली बहता हुआ देखा । वह अपनी डोंगी लेकर उस तक पहुँचा और चढ़ने पर देखा कि उसमें न तो कोई सामान है और न व्यक्ति । वह उसे किसी प्रकार घसीटता हुआ निकटवर्ती नगर तक लाया और पुलिस को सौंप दिया । पुलिस ने सभी साधनों से संसार के सभी देशों को इस सम्बन्ध में सूचना दी, पर उसके मालिक का कोई पता न चलने पर उस पकड़ने वाले नाविक की सुपुर्दगी में तब तक के लिए छोड़ दिया जब तक असली मालिक का पता न चले । अन्ततः उसका पता चला ही नहीं ।

सन् १९४५ में पाँच बमवर्षक हवाई जहाज प्रशिक्षण की उड़ानों पर उड़ रहे थे । अचानक कन्ट्रोल रूम से उन सभी का सम्बन्ध टूट गया और वे कहाँ गए इसका किसी भी प्रकार पता न चला । हवाई जहाजों के एक बड़े बेड़े ने उनका समूचा मार्ग छान मारा पर कहीं कोई पता नहीं चला ।

ऐसी ही एक विचित्र घटना ऑक्सफोर्ड शायन की है । इस क्षेत्र में जमीन के नीचे एक बड़ी नाली बनाई जा रही थी । इस निमित्त एक खास जगह के लिए ६ टन भारी पत्थर की आवश्यकता हुई और उसे काट-छाँटकर काम योग्य बनाया गया । लेकिन अकस्मात ही वह पत्थर लापता हो गया । कई दिनों ढूँढ़ने और जासूस छोड़ने के उपरान्त भी जब कुछ पता न लगा तो उसे ढूँढ़ने के लिए ५ हजार का सरकारी इनाम घोषित किया गया, फिर भी उसकी कोई जानकारी न मिल सकी । गुम सो गुम ।

१८वीं सदी की सबसे बड़ी चोरी वह है, जिसमें स्पेनिश युद्ध में लड़ने वाले सैनिकों की एक पूरी कम्पनी ही गायब हो गई । इस कम्पनी में चार हजार सैनिक थे । रात को अच्छे-भले सोये लेकिन पर सबेरे उनका कोई अता-पता न लगा । न भागने का कोई चिह्न था । न शत्रु पक्ष से मिलने का । शत्रु पक्ष से सम्पर्क मिलाया तो उसने भी इस सेना के सम्बन्ध में कोई जानकारी न होने का उत्तर दिया । सेना का कैम्प पियरेनीस के बाद दूसरे दिन मार्चकिन में पड़ाव डाले था । सैनिकों के घरों पर इन्क्वायरी की गई लेकिन इस कम्पनी का एक भी आदमी अपने घर-परिवार में नहीं लौटा था ।

इस प्रकार की छुटपुट घटनाएँ तो होती रहती हैं, पर उन्हें मनुष्यकृत चोरी-छिपे की घटना माना जाता है, पर ऐसी घटनाएँ जिसमें जमीन में समा जाने या आकाश में उड़ जाने भर की कल्पना की जा सके कदाचित ही कभी-कभी घटित होती हैं ।

उड़न तश्तरियों के सम्बन्ध में कभी-कभी अवश्य सुना जाता है कि वे जीवित मनुष्यों या बहुमूल्य उपकरणों को अन्तरिक्ष में पृथ्वी सम्बन्धी जानकारियाँ अधिक विस्तारपूर्वक जानने के लिए उड़ा ले जाती हैं । कहा जाता है कि विकसित सभ्यता वाले किसी अन्य लोकवासी पृथ्वी के सम्बन्ध में विशेष दिलचस्पी रखते हैं । वे पहले भी यहाँ आते रहे हैं और अपने आगमन के प्रमाण छोड़ते रहे हैं । इस आधार पर कल्पना की जाती है कि उपर्युक्त घटनाओं में उनका हाथ रहा हो । ऐसा भी हो सकता है कि अन्तरिक्ष में पड़ने वाला वायुमण्डलीय या विद्युत चुम्बकीय भँवरों की कोई लहर इस तरह अपनी चपेट में लेकर उनका अस्तित्व विलुप्त कर देती हो ।

पर ये सभी कल्पनाएँ हैं । मानवी सूझ-बूझ और खोजबीन की भी एक छोटी सीमा है और उससे बाहर भी बहुत कुछ होता रहता है, अभी तो इतना ही कहा जा सकता है ।

देखते-देखते वे धरती के गर्भ में विलुप्त हो गए

प्रकृति को सृष्टि की संचालिका के रूप में मान्यता मिली हुई है । मानव भी सृष्टि का एक अंग है, अतः वह भी इस व्यवस्था के अधीन है । उसके जीवन में भले-बुरे जो भी प्रसंग उपस्थित होते हैं, उन्हें अकस्मात् या अकारण कह कर नहीं टाला जा सकता । वह क्रिया की सुनिश्चित और स्वाभाविक प्रतिक्रिया है । भले ही हमारी बुद्धि इन दोनों के बीच कोई तारतम्य बिठाने में असफल रहे ।

ऐसी ही एक घटना ब्रिस्टल, इंग्लैण्ड की है । ९ दिसम्बर, १८७३ की सुबह जब एक गश्ती पुलिस पार्टी स्थानीय स्टेशन के

निकट पहुँची, तो वहाँ एक दम्पत्ति को अत्यन्त भयभीत स्थिति में पाया । दोनों रात्रिकालीन पोशाक में थे । पति के हाथ में एक पिस्तौल थी और वह लगातार उससे गोली दाग रहा था । यह देखकर पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया । टामस बी. कम्पस्टन नामधारी वह व्यक्ति इतना आतंकित था कि थाने में भी मुश्किल से ही कुछ बोल सका । उसने बताया कि वह पति-पत्नी कल लीड्स शहर से यहाँ आये थे और पड़ोस के विक्टोरिया होटल में एक कमरा किराये पर लेकर ठहरे हुए थे । थके होने के कारण रात गहरी नींद आयी । अभी सो रहे थे कि एक विचित्र ध्वनि से उनकी नींद खुल गई । फर्श पर दृष्टि गई, तो देखा कि वह एक ओर खिसक रहा है और उसमें एक विवर पैदा हो रहा है । उसकी असाधारण शक्ति से कम्पस्टन उसमें समाने लगे । बड़ी मुश्किल से उसकी पत्नी ने उसे उसके अन्दर खिंचने से रोका । इस घटना से वे दोनों इतने डरे कि खिड़की से बाहर कूद पड़े और दौड़ते हुए स्टेशन पहुँचे । तब से वे वहीं बैठे दिन निकलने का इन्तजार कर रहे थे ।

बाद में कम्पस्टन की पत्नी ने घटना को और विस्तार से बताया । उसका कहना था कि रात जब वे सोने की तैयारी कर रहे थे, तो एक अनोखी ध्वनि से चौंक उठे । होटल मैनेजर से इस सम्बन्ध में पूछताछ करने पर उसे सामान्य ध्वनि कहकर आश्वस्त कर दिया । लगभग ४ बजे प्रातः पुनः वही ध्वनि सुनाई पड़ी । वे दोनों उठ बैठे । फर्श हिलता प्रतीत हो रहा था । जब नीचे दृष्टि गई, तो उसमें एक छिद्र पैदा होता दिखाई पड़ा, जो धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था । डर से उनकी चींखें निकल गईं । विवर अब तक काफी बड़ा हो चुका था और उसी अनुपात में उसकी आकर्षण शक्ति बढ़ गई थी । कम्पस्टन उस ओर खिंचने लगे और भीषण संघर्ष के बाद ही उसे बाहर निकाला जा सका है ।

होटल मैनेजर ने भी यह स्वीकार किया कि कुछ अजीबोगरीब आवाजें पिछली रात सुनाई पड़ी थीं, पर इसके अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की असामान्यता से उसने स्पष्ट इन्कार किया । पुलिस ने जब उस कमरे की जाँच की, तो उसमें सब कुछ सामान्य नजर आया, पर कम्पस्टन दम्पत्ति बार-बार यही कहते पाये गए कि वे जो कुछ कह रहे हैं, वह शत-प्रतिशत सच है ।

इसी से मिलती-जुलती घटना इंग्लैण्ड के ही शेफ्टन मैलेट शहर की है । ओवेन पारफिट एक भूतपूर्व सैनिक था । अवकाश ग्रहण के बाद वह पक्षाघात का शिकार हो गया । उसकी दोनों टाँगें बेकार हो गईं । एक और दुर्भाग्य आया कि दाएँ हाथ को भी आंशिक लकवा लग गया । इस प्रकार वह दूसरे की सहायता के बिना एक इंच भी नहीं खिसक सकता था । उसकी देख-रेख उसकी बड़ी बहन एवं एक अन्य महिला करती थी । उन दोनों ने ऐसा नियम बना लिया था कि जब एक किसी काम से घर के अन्दर होती तो दूसरी उसके सामने मौजूद अवश्य रहती ।

उस दिन सुसाना स्नूक नामक दूसरी स्त्री किसी कारणवश बाहर गई हुई थी । ओवेन के समक्ष उसकी बहन बैठी थी । दोनों किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे, तभी एक गगनभेदी घोष सुनाई पड़ा । दोनों बुरी तरह डर गए । ओवेन तो इतना भयभीत हुआ कि देर तक सामान्य नहीं हो सका । जब कुछ साहस बँधा, तो पानी का इशारा किया । बहन जब जल लेकर वापस आयी, तो देखा कि ओवेन कुर्सी से बाहर एक ओर लुढ़का पड़ा है और मुँह से गों-गों की आवाज आ रही है । फर्श में दरार पड़ी हुई थी । उसने गिलास को एक ओर रखा और भाई को उठाना चाहा, पर समीप पहुँचने पर तीव्र खिंचाव का अनुभव किया । वह तुरन्त दूर हट गई । दरार का फैलाव बढ़ता जा रहा था । ओवेन उसके तीव्रतर आकर्षण से शनैः-शनैः उस ओर घिसट रहा था । कुछ ही देर में उसके दोनों हाथ दरार में झूल गए । बहन भय से चीख उठी । चिल्लाहट सुनकर पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे होते और बचाने का कुछ उपाय सोचते, इससे पूर्व ही धरती उसे निगल चुकी थी । बहन सब कुछ असहाय बनी देखती रह गई । भीड़ जब जमा हुई, तब तक फर्श भी पहले जैसा जुड़ चुका था और अब दरार का कोई निशान भी वहाँ शेष नहीं था ।

एक अन्य घटना लिमिंगटन, इंग्लैण्ड की है । जेम्स वार्सन नामक एक मोची रहता था । वह बहुत मद्यपी था । जब शराब के नशे में होता, तो अपनी शारीरिक क्षमता का बहुत बढ़-चढ़ कर बखान करता और अक्सर शक्ति-परीक्षण सम्बन्धी अत्यन्त मूर्खतापूर्ण शर्तें रख देता ।

एक दिन ऐसी ही हालत में उसने अपने एक मित्र से बाजी लगाई कि वह कॉवेण्ट्री तक ४० मील की दूरी दौड़कर ही तय कर सकता है और फिर दौड़ते हुए ही वापस भी लौट सकता है। शर्त के अनुसार दौड़ प्रारम्भ हुई । उसके तीन मित्र गाड़ी पर पीछे-पीछे चल रहे थे । आरम्भ की कुछ दूरी वार्सन ने बड़ी सरलता से तय कर ली । शरीर पर थकान के बिल्कुल ही चिह्न नहीं थे । वह बढ़ा जा रहा था । तभी अचानक वार्सन लड़खड़ाया, गिरा, उसकी तेज चीख निकल गई, पर यह क्या ? गिरते ही वार्सन न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गया । गाड़ी तुरन्त रोकी गई । तीनों मित्र उतरे, उस स्थान का निरीक्षण किया । वहाँ अब भी एक अत्यन्त छोटे व्यास का सुरंगनुमा छिद्र मौजूद था । उसमें निकट से आँख लगाकर देखा, कुछ दिखाई तो नहीं दिया, पर तीनों ने ही उसमें एक विचित्र प्रकार का खिंचाव महसूस किया । उनके लिए सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि यदि वार्सन सचमुच ही पृथ्वी में समा गया था, तो उस जैसे डील-डौल वाले व्यक्ति का इतनी संकीर्ण सुरंग में प्रवेश कर जाना कैसे सम्भव हो सका ? यह बात समझ में नहीं आ रही थी ।

अवध नरेश भगवान श्री राम की धर्मपत्नी सीता माता का धरती में समा जाना भी ऐसी ही एक घटना ही तो है । लव-कुश से युद्ध के पश्चात् जब भगवान राम का परिचय अपने पुत्रों से हुआ, तो वे उन पर मुग्ध हुए बिना न रह सके । योग्य सन्तति का सारा श्रेय भगवान सीता को दे रहे थे । उधर सीता भी इस मिलन से मन-ही-मन हर्षित हो रही थीं और भगवान की धरोहर को उन्हें सौंपते हुए पृथ्वी से प्रार्थना कर रही थीं कि "माँ, मैंने बहुत सन्ताप झेले हैं । अब अपनी शरण में ले लो ।" प्रार्थना स्वीकार कर ली गई । धरती फटी और धरती पुत्री धरती की गोद में समा गई ।

रसिक सन्त जयदेव के जीवन से सम्बन्धित एक घटना है । एक बार उन्होंने अपने श्रद्धालु शिष्य के आग्रह पर उसके गाँव की यात्रा की । शिष्य अत्यन्त समृद्ध और उदार था । वह जानता था कि विदाई के समय वे किसी प्रकार का धन स्वीकार न करेंगे । उनका परम धन तो गोविन्द है । फिर उसने आग्रह किया कि वे पत्नी पद्मावती के लिए कुछ स्वीकार कर लें । सन्त शिष्य की

बात अस्वीकार न कर सके । एक गाड़ी में बहुत सारी सम्पदा रख दी गई । गाड़ीवान और जयदेव चल पड़े । चलते-चलते वे एक घने वन में पहुँच गए । वहाँ चोरों ने उनकी सम्पत्ति लूट ली और उनके हाथ-पाँव काटकर एक कुएँ में डाल दिए । जयदेव इसे भगवान का मंगल विधान समझ कर वहीं कीर्तन करने लगे । इसी समय राजा लक्ष्मणसेन की सवारी वहाँ से गुजर रही थी । संकीर्तन ध्वनि सुनकर वे कुएँ के निकट आये और जयदेव को बाहर निकाला और अपने साथ ले गए । उपचार से जल्द ही उनके घाव सूख गए ।

थोड़े दिन पश्चात् राजप्रासाद में एक भोज का आयोजन हुआ । इसमें साधु और भक्तगण आमन्त्रित थे । ऐसी ही एक मण्डली में साधु वेषधारी वे चोर थे, जिन्होंने जयदेव की दुर्गति की थी । सन्त ने पहली ही दृष्टि में उन्हें पहचान लिया । उनके धनाभाव से द्रवित होकर जयदेव ने उन्हें प्रचुर सम्पदा देने का राजा से निवेदन किया । अच्छी आवभगत के उपरान्त बहुत-सा वैभव देकर उन्हें विदा किया गया । जयदेव ने उनकी रक्षा के लिए कुछ कर्मचारी भी साथ कर दिए । रास्ते में उन कर्मचारियों ने साधु वेष वाले उन ठगों से जयदेव के विशेष अनुग्रह का कारण जानना चाहा । उन्होंने कहा जयदेव इससे पूर्व एक राजा के मन्त्री थे । राजा ने उनके एक बड़े अपराध पर उन्हें प्राणदण्ड दिया था, पर हमारी कृपा से जीवित बच गए । हमने केवल उनके हाथ-पैर काट कर छोड़ दिया । जयदेव हमारे आभारी हैं, इसलिए उन्होंने विदा के समय हमें विपुल धनराशि दिलायी । ठगों का इतना कहना था कि पृथ्वी फट गई और वे दोनों उसमें समा गए । राजा ने इस सम्पूर्ण प्रकरण का रहस्य जयदेव से जानना चाहा । उन्होंने बताया कि धरती माता को क्यों हस्तक्षेप करना पड़ा ?

पाप जब बढ़ जाता है, तो प्रकृति यदा-कदा ऐसा ही दण्ड पापियों को देती और उनके अवांछनीय भार से पृथ्वी को मुक्त कराती है । अनेक प्रकरणों में यह तथ्य समझ में तो आता है, पर अगणित प्रसंगों में यह अनसुलझी पहेली-सा बना रहता है कि कर्त्ता के सर्वथा पापमुक्त जीवन में भी ऐसे मामले क्यों कर देखने को मिलते हैं, जिनमें वह धरित्री द्वारा निगल लिया गया हो अथवा निगलने का प्रयास किया गया हो, इसके पीछे कोई सूक्ष्म निमित्त होना ही चाहिए, जिसे हमारी बुद्धि अभी जान नहीं सकी है और न विज्ञान उसे पहचान सका है । इसके लिए हमें सूक्ष्म की भूमिका में जाना पड़ेगा, तभी सत्य तथ्य की सही जानकारी मिल सकेगी और यह जाना जा सकेगा कि प्रकृति अनगढ़ नहीं है, यहाँ सब कुछ सुव्यवस्थित, सुनियोजित एवं किसी क्रम के अधीन है ।

पृथ्वीवासी विलुप्त क्यों होते हैं?

सृष्टि का विस्तार असीम है । इसके ज्ञात की अपेक्षा अविज्ञात का क्षेत्र अधिक व्यापक है । रहस्य के पर्दे अभी इतने अधिक हैं, कि उनके समक्ष अब तक की जानकारियाँ नगण्य लगती हैं । सूक्ष्म जगत तो अभी पूर्णतया अनजान बना हुआ है । प्रकृति रहस्य के स्थूल पक्ष कितने ही ऐसे हैं, जो अब भी मानव बुद्धि, वैज्ञानिकों के समक्ष रहस्यमय बने हुए हैं । प्रकृति को समझ लेने का दावा करने वाली वैज्ञानिक बुद्धि भी जब उन रहस्यात्मक पक्षों का पर्यवेक्षण करती है तो उसे देखकर हतप्रभ रह जाती है । ढूँढ़ने में कोई ऐसा कारण नहीं दिखाई पड़ता, जो भौतिक विज्ञान की विश्लेषणात्मक पद्धति अथवा नियमों के अन्तर्गत आता हो । बौद्धिक असमर्थता व्यक्त करते हुए हार कर उन्हें अविज्ञात रहस्य घोषित किया जाता है ।

इतने पर भी तथ्य एवं सत्य अपने स्थान पर यथावत् हैं । सृष्टि का कोई घटना-क्रम ऐसा नहीं जो कारणों से रहित अथवा अवैज्ञानिक हो । यह बात दूसरी है कि भौतिक विज्ञान उन रहस्यमय क्षेत्रों में पहुँच कर अविज्ञात सूत्रों को ढूँढ़ निकालने में असमर्थ सिद्ध हो रहा हो, जो वैज्ञानिक होते हुए भी उसकी पकड़ के बाहर हों ।

सन् १९२० में लन्दन के एक युवा सांसद पिक्टर ग्रेसर लन्दन की दूकान से जैसे ही बाहर निकले ऐसे लुप्त ही गए जैसे हवा के झोंके के साथ तिनका । इसी तरह की एक घटना १३ जुलाई, १९५० को घटी । पोलैण्ड निवासी पादरी केबरी बोर्निस्की अपने मित्र के पास जा रहे थे । अपने मकान से अभी १०० गज ही दूर गए होंगे कि गायब हो गए । आस-पास के स्थानों में खोज-बीन की गई, पर उनका कोई भी सुराग नहीं मिल सका ।

हाल की एक रोचक घटना ने वैज्ञानिकों को इन कारणों पर सोचने को बाध्य किया है, जिससे कितने ही व्यक्ति लुप्त हो गए । जून १९७६ में लन्दन की श्रीमती क्रिस्टीन जान्सटन नामक महिला ने वहाँ के न्यायालय में सम्बन्ध-विच्छेद का एक मुकदमा दायर किया । उक्त मुकदमें का आधार रोचक, किन्तु आश्चर्यजनक था । त्याग-पत्र में उल्लेख था कि उसके पति 'श्री एलन' हवा में गायब हो गए, उस कारण वैवाहिक सम्बन्ध-विच्छेद की अनुमति दी जाय । घटना इस प्रकार बताई जाती है । श्रीमती क्रिस्टीन जॉन्सटन एवं उनके पति श्री एलन सन् १९७५ के गर्मियों के अवकाश में उत्तरी ध्रुव की यात्रा पर गए । दोनों पति-पत्नी रूसी सीमा से लगे लैपलैण्ड में स्थित एक गिरजाघर के निकट से होकर गुजर रहे थे । शीतल वायु के झोंकों का आनन्द उठाते हुए दोनों आगे बढ़ रहे थे । पत्नी कुछ कदम ही आगे बढ़ गई । पीछे मुड़ कर देखा तो मि. एलन का कहीं पता न था । इस घटना को घटित होने में मात्र कुछ सेकण्ड लगे होंगे । श्रीमती क्रिस्टीन ने ढूँढ़ने के असफल प्रयासों के बाद स्थानीय लोगों से मदद माँगी । 'फिनिश' जाति के लोगों के खोजी कुत्तों की सहायता से एलन के खोजने का अथक प्रयास किया, पर कुत्ते उस मोड़ पर जाकर रुक जाते थे, जहाँ से 'एलन' गायब हुए थे । रूसी सेना का कैम्प निकट होने से सेना विशेषज्ञों का भी सहयोग लिया गया, पर अब तक इस रहस्य का उद्घाटन न हो सका कि एलन का क्या हुआ ? इन तथ्यों पर अवलोकन करने के बाद लन्दन ने मि. एलन को मृतक घोषित करते हुए श्रीमती क्रिस्टीन के पक्ष में फैसला दिया ।

उपर्युक्त घटनाओं का अब तक रहस्योद्घाटन न हो सका । बारमूडा त्रिकोण भी वैज्ञानिक के लिए रहस्य का केन्द्र बना हुआ है । कितने ही हवाई जहाज, जलयान, उक्त स्थान से गायब हो चुके हैं । वैज्ञानिकों ने वायु में चलने वाले खतरनाक चक्रवातों का एक कारण बताया है, पर इससे समाधान नहीं होता । चक्रवातों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को वस्तुएँ फेंक दी जाती हैं । उनका चिह्न तो मिल जाता है, पर उपर्युक्त घटनाओं के उपरान्त कोई भी चिह्न अब तक नहीं प्राप्त हो सके हैं । ये घटनाएँ मानव मस्तिष्क को सृष्टि के अविज्ञात रहस्यों पर सोचने को बाध्य

करती हैं । शास्त्रों में भू-लोक के अतिरिक्त अन्य छः सूक्ष्म लोकों का वर्णन आता है । सम्भव है कोई अदृश्य शक्ति उन सूक्ष्म लोकों में मनुष्य को ढकेल देती हो जहाँ से वापस पृथ्वी लोक पर आ सकना सम्भव न हो ।

शॉर्ट रेडियो वेव्स के समष्टि में विस्तार की प्रक्रिया पर शोध करने वाले डॉ. हर्बर्ट गोल्डस्टाइन ने अपने विचार विलुप्त हुए व्यक्तियों के सम्बन्ध में व्यक्त करते हुए लिखा है कि अन्तरिक्ष में यदा-कदा उठने वाले विद्युत चुम्बकीय तूफान इसका कारण हो सकते हैं । एच. जी. वेल्स, जो साइंस यूटोपिया पर अपने उपन्यासों के लिए प्रख्यात हैं ने 'द इनविजीबल मैन' पुस्तक में ऐसे आधारों को सूत्र रूप में प्रस्तुत किया है, जिनमें प्राणियों, मनुष्यों, वस्तुओं के अदृश्य होकर विशाल अन्तरिक्ष में कहीं चले जाने की यथार्थता का प्रतिपादन है । बारमूडा त्रिकोण के सम्बन्ध में यह तथ्य सर्वविदित है कि इस क्षेत्र में कितने ही जलयान, वायुयान अन्तरिक्ष के गर्भ में समा चुके हैं । ढूँढ़ने पर भी उनका कुछ अता-पता न लगा कि कौन उन्हें किस लोक में खींच ले गया ?

अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में अब यह तथ्य प्रकट होते जाते हैं कि वह मात्र पोली नीलिमा भर नहीं है । उसमें ग्रह गोलक तो विद्यमान हैं ही, इसके अतिरिक्त अणुओं-तरंगों की भी उसमें भरमार है । उन्हीं के कारण दृश्य जगत में ही विभिन्न प्राणी और पदार्थ बनते हैं । उनमें से कुछ मनुष्य को चर्मचक्षुओं से दीख पड़ते हैं, कुछ अदृश्य ही रहते हैं । वायरस बैक्टीरिया इसी में आते हैं । रंगों की संख्या ४०० से भी अधिक है, पर मनुष्य की आँखें उनमें से मात्र ४० के लगभग ही देख तथा पहचान पाती हैं ।

वायु से जीवधारी प्राण खींचते हैं । पौहारी बाबा एवं अन्य सिद्ध पुरुषों के आख्यान प्रख्यात हैं, जिनमें निराहार रह कर उन्हें ब्रह्माण्डीय प्लाज्मा पर ही जीवित एवं विभूतिसम्पन्न बताया गया है । इसी ईथर भरे पोले घटाकाश में से सर्प विष और शार्क बिजली की बहुलता खींच लेती है । इसी विराट् अन्तरिक्ष में ऐसे विवर (ब्लैक होल) पाये गए हैं, जिनमें विद्युत चुम्बकीय प्रवाह बड़े सघन अनुपात में होते हैं । इनमें प्रवेश पाने या बलात खींच लिए जाने पर कोई भी पदार्थ या जीवधारी प्रकाश-गति से उन क्षेत्रों में पहुँच सकता है, जहाँ अपने ढंग की अनोखी दुनिया है । उनमें सचेतन प्राणी भी रहते हैं और हमारी ही तरह अन्य लोकवासियों के बारे में बहुत कुछ जानना चाहते हैं । वे मानवी विशेषताओं को देखते हुए उनसे मिलता-जुलता वंशानुक्रम चलाने के लिए प्रयत्नशील हो सकते हैं । ऐसे ही किन्हीं प्रयोगों के लिए अन्तरिक्षवासी सत्ताएँ यदि इस लोक के प्राणियों को उठा ले जाती हों, तो उसे सर्वथा असम्भव नहीं कहा जा सकता । दृश्य और अदृश्य जगत के बीच आदान-प्रदान चलते रहने की सम्भावना को यदि सही माना जाय तो मनुष्यों तथा पदार्थों के विलुप्त होने का रहस्य समझा जा सकता है ।

मानवी पुरुषार्थ को चुनौती देता प्रकृति का लीला जगत !

यह दृश्य संसार अनेकानेक विचित्रताओं तथा विलक्षणताओं से भरा पड़ा है । इन सभी के मूल में सृष्टा की क्या इच्छा रही होगी, समझ में नहीं आता ? हो सकता है, उसने मनुष्य की जिज्ञासा वृत्ति को सतत जीवन्त बनाये रखने के लिए यह लीला रची हो । कुछ भी हो, प्रकृति के रहस्यों की खोज करने वालों की पराक्रम भरी गाथाओं के निष्कर्ष सदैव यही सिद्ध करते रहेंगे कि इस विराट् के समक्ष मनुष्य तुच्छ है, नगण्य है फिर भी वह कभी हार मानने वाला नहीं है । वह उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक, अलास्का से जापान के तुच्छ द्वीपों तक ज्ञात-अज्ञात क्षेत्रों में विचरण करता रहा है एवं कई खोजें ऐसी हैं जिन्होंने मनीषा को चमत्कृत कर दिया है । नेशनल ज्यॉग्राफी सोसायटी यू. एस. ए. तथा रॉयल ज्यॉग्राफी सोसायटी यू. के. के अन्वेषणकर्त्ताओं का इतिहास ऐसी ही रोमांच भरी खोजों से भरा पड़ा है ।

भू-भाग के दुर्गम क्षेत्रों में गुफाओं की खोज करने हेतु सदैव खोजी दल निकलते रहे हैं, किन्तु रॉयल ज्यॉग्राफी सोसायटी के एण्डी डेविस के नेतृत्व में तीन यात्रियों का जो दल २५ जनवरी, १९८१ को निकला, उसे अनुमान भी नहीं था कि वे विश्व की सबसे बड़ी गुफा का पता लगाने जा रहे हैं, जिसे अगले दिनों "ब्लैक होल" (भूगर्भीय) नाम से पुकारा जायेगा । एण्डी डेविस के साथ थे डेव चेकले एवं टोनी व्हाइट । ये तीनों दक्षिण-पूर्व एशिया के बोर्नियो द्वीप के उत्तरी भाग में सारावाक के मुलु जंगलों में घूम रहे थे । चूने की प्रचुरता वाले एक पहाड़ की गहरी खाई में स्थित एक गुफा, जो बहुत सँकरी थी, में तीनों ने प्रवेश किया । रेंगते-रेंगते वे अन्धकार में बढ़ते चले गए । करीब २००० फीट चलने के बाद वे एक विशाल कक्ष में पहुँचे । उनका प्रारम्भिक अन्दाज था कि यह ३०० फीट चौड़ी होगी । चौड़ाई पता चलाने के लिए चलते-चलते उन्हें अपने तेज लैम्पों के बावजूद कोई किनारा नजर नहीं आ रहा था । ८० फीट से भी अधिक ऊँचे चूने के बोल्डर्स की बाधाओं को पार करते हुए वे जब एक खुले क्षेत्र में पहुँचे तो जो कुछ वे हेड लैम्प्स से देख रहे थे, उस पर दृष्टि पड़ते ही हतप्रभ से रह गए । एक अत्यन्त विशाल खुला पठारी क्षेत्र उनके सामने था, जिसका कोई अन्त नजर नहीं आ रहा था । लगभग दो सौ तीस फीट ऊँची, तेरह सौ फीट चौड़ी एवं तेईस सौ फीट लम्बी जिस गुफा में ये तीनों व्यक्ति पहुँचे थे, उसे विश्व की अब तक ही ज्ञात भू-गर्भ की बड़ी गुफा, जो न्यू मेक्सिको के कार्ल्स बड कैवर्न में स्थित है, से तीन गुनी अधिक बड़ी मापा गया, जिसमें दस जुम्बो जेट सिरे से सिरा मिलाकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक जा सकते हैं । इस गुफा को सारावाक चेम्बर अथवा ब्लैक होल नाम दिया गया । एक अनुमान के अनुसार यह गुफा इतनी बड़ी थी, जिसमें ३८ फुटबाल फील्ड्स समा सकती थीं । यह विशालतम भूगर्भीय गुफा गत ७ वर्षों से खोजकर्त्ताओं के लिए अनुसन्धान का विषय बनी हुई है कि कैसे प्रकृति ने इतना विशाल क्षेत्र अपने गर्भ में थोड़ी-सी गहराई में छिपा रखा है ? कैसे ये बनी ? प्रश्न अनुत्तरित है ।

समुद्र अपनी गहराइयों में इसी प्रकार कई रहस्य छिपाये बैठा है । यों तो समुद्री तल की सर्वांगपूर्ण शोध बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही शुरू हो चुकी थी, विस्तार से इसकी जानकारी पिछले बीस वर्षों में अधिक मिली है, यहाँ तक कि समुद्र की सतह से एक मील नीचे जहाँ सामान्यतया तापमान ३६ डिग्री फारेनहाइट होता है, ६६० डिग्री जैसे ऊँचे तापमान पर उबलती जल धाराएँ भी पायी गई हैं, जो कहाँ से आती व निकलती हैं ? पता नहीं चलता । प्रायः यह उन स्थानों पर पायी गई हैं, जहाँ

भू-तल की गहराइयों में टेक्येनिक प्लेट्स एक-दूसरे से दूर खिसकते हैं, विशेष रूप से प्रशान्त व अटलांटिक महासागर के नीचे । पृथ्वी में चार मील गहराई तक जहाँ से उसमें क्रैक्स हैं, समुद्र का ठण्डा पानी स्पर्श करता है एवं गर्भ मैग्मा, जो कि उबलती स्थिति में चार हजार डिग्री सेग्रे. तापमान पर होता है, तक पहुँच जाता है । इससे यह ठण्डा जल सुपर हीटेड हो जाता है व गर्म पानी के फुब्बारे वहाँ से छूटने लगते हैं । यही समुद्री धरातल पर आकर हॉटस्प्रिंग्स बनाते हैं । वैज्ञानिक की जानकारी बस यहीं तक है । यह कुछ स्थान विशेष पर ही क्यों होता है ? इस सम्बन्ध में जानकारी अभी अविज्ञात है ।

जहाँ-जहाँ से ये गर्म पानी की तेज धारा ऊपर छूटती है, वहाँ समुद्र विज्ञानियों ने २०० फीट ऊँची व ६०० फीट चौड़ी खनिजों की दीवारों से बनी चिमनियाँ खोज निकाली हैं । इनमें से निकलने वाला गर्म जल इतना गहरे रंग का व कुहासे से भरा होता है कि इनकी संज्ञा 'ब्लैक स्मोकर्स' नाम से दी गई है । सूडान एवं सऊदी अरेबिया के मध्य 'रेड' सी में लगभग २३ वर्ग मील का एक क्षेत्र है जहाँ से ऐसे कई 'ब्लैक स्मोकर्स' हैं । ऐसी ही खनिज प्रधान चिमनियाँ साइप्रस के समीप भूमध्य सागर में भी पायी गई हैं । जो कि रेड सी से अधिक दूर नहीं हैं, चूँकि समुद्री गर्भ से खनिज सम्पदा ढूँढ़ निकालने के लिए विज्ञान ने अपने साधनों को काफी विकसित कर लिया है, अब क्रमशः मनुष्य इन विशाल चिमनियों के समीप तक पहुँचने लगा है । इससे और भी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ हाथ लगने की सम्भावना है । कुछ भी हो, भू-गर्भ की तरह समुद्री गर्भ भी गर्म ठण्डी जल-धाराओं को लिए तथा स्थान-स्थान पर फुब्बारों एवं खनिज भण्डारों को समाहित किए, रहस्यमयी सम्पदा को छिपाये बैठा है । वह भी मानवी पुरुषार्थ को सतत चुनौती देता रहता है ।

भू-गर्भ-समुद्र गर्भ में ऊपर चलते हुए भू-तल की चर्चा करें तो पाते हैं, कि वहाँ भी ऐसी ही विलक्षणताएँ हैं । ऐसी अनेकों में से एक है स्कॉटिश बीच की गाने वाली, म्युजिकल धुन स्पर्श के साथ देने वाली बालुई रेत । उत्तरी इंग्लैण्ड के स्कॉटलैण्ड क्षेत्र में पश्चिमी तट पर एक निर्जन द्वीप है—'ऑयल ऑफ आईग' । स्थूल दृष्टि से देखने पर यह औरों की तरह सामान्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु यदि इस बीच की सफेद बालू पर चला जाय या उन्हें स्पर्श मात्र किया जाय तो वे पियानो की धुन की तरह विविध प्रकार का संगीत सुनाने लगती हैं, ज्यों ज्यों हौले-हौले हाथ की उँगलियाँ बालू को छूती हैं, दबाव क्रमानुसार विभिन्न धुनें निकलने लगती हैं । यह ऊँची 'सोप्रेनो' स्तर की ध्वनि (मानव द्वारा गाई जाने वाली सबसे ऊँची पिचकी ध्वनि) से लेकर 'लोबॉस' सबसे धीमी स्तर की संगीत भरी धुनें होती हैं । वैज्ञानिक, जिन्होंने इस प्रक्रिया का अन्वेषण किया है, इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह संगीत रेत की विशिष्ट संरचना के कारण जन्मता है । समुद्र की लहरों के सम्पर्क में आने वाले महीन रेत के कण घिसते-घिसते गोल हो जाते हैं । इनके चारों ओर हवा का एक घेरा होता है एवं रेतीले दानों तथा हवा में परस्पर घर्षण से यह संगीत पैदा होता है, ऐसी वैज्ञानिकों की मान्यता है । यदि वातावरण में आर्द्रता अधिक हो तो संगीत बदल जाता है, किन्तु यहीं की रेत ही क्यों संगीतमय है ? एवं कहीं और ले जाने पर क्यों संगीत उनसे नहीं निकलता ? यह प्रश्न सभी के समक्ष है । इसका कोई समाधान किसी के पास नहीं है व यह जादुई रेत अपना संगीत सुनाने हेतु इसी बीच पर स्पर्श की प्रतीक्षा सतत करती रहती है । क्या कोई तर्क सम्मत उत्तर दे पाना सम्भव है ? यह चुनौती मनीषा को देती रहती हैं । मानवी बुद्धि से परे ऐसी अलौकिकताएँ एक नहीं अनेकानेक हैं एवं एक ही सन्देश देती हैं कि अभी भी बहुत कुछ ऐसा है जो खोजा नहीं जा सका । मानवी बुद्धि अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू बनती रहे, वह बात अलग है, पर प्रकृति के रहस्य प्रज्ञा को सतत चुनौती देते रहे हैं, उसकी जिज्ञासु वृत्ति को झकझोरते रहे हैं, व यही तो हमारे मानसिक विकास का मूलभूत आधार भी है ।

चरैवेति का सन्देश : मृत्यु-घाटी से

प्राणियों के पैर होते हैं । उनका चलना-फिरना स्वाभाविक और सहज लगता है, पर जब चट्टान सदृश जड़ पदार्थ एक स्थान से चल कर लम्बी दूरी तय करने लगे, तो इसे क्या कहा जाय ? प्रकृति की विलक्षणता या जड़ के जंगम बनने की अदम्य ललक ? अत्युक्ति न मानी जाय, तो इसे दूसरी श्रेणी में रखा जा सकता है और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे भी किसी स्थान विशेष से चिपक कर नहीं रहना चाहते । परिवर्तन उनकी नियति है, फिर चाहे यह स्वरूप सम्बन्धी हो, स्वभाव सम्बन्धी या स्थान सम्बन्धी, उनमें भी यह प्रक्रिया चलती रहती है ।

ऐसे ही एक विचित्र प्राकृतिक घटना कुछ वर्ष पूर्व प्रकाश में आयी है । कैलिफोर्निया (अमेरिका) में एक विशाल घाटी है—'मृत्यु घाटी' (डेथ वैली) । इस घाटी के चारों ओर पर्वत शृंखलाएँ हैं, जो चीड़ के पेड़ों एवं कुछ अन्य जंगली वृक्षों से आबाद हैं । यह समुद्र तल में ३०० फुट नीचे है और अमेरिका का सबसे गर्म, नीचा एवं सूखा प्रदेश है । इसी कारण इसे मृत्यु-घाटी के नाम से पुकारा जाता है । यहाँ कई प्रकार की नैसर्गिक विचित्रताएँ हैं, पर इनमें जो सबसे विलक्षण है, वह है यहाँ की चलती चट्टानें । घाटी में एक तीन मील लम्बी, किन्तु सूखी झील है । इसी झील की समतल सतह पर बगल के पर्वत-शृंगों से चल कर शैल-खण्ड लम्बे फासले तय कर लेते हैं और अपने पीछे आकार-प्रकार के हिसाब से चौड़ी-सँकरी पट्टी बनाते चलते हैं । पहाड़ से पत्थर का लुढ़क कर झील की सूखी सतह पर पहुँचना तो समझ में आता है, पर ढाल रहित समतल सतह पर बिना किसी बाह्य बल के इनका चलते चले जाना अत्यन्त विस्मयकारी लगता है ।

बुद्धि यहीं चकराने लगती है कि सर्वथा चिकनी सतह पर भी फिसलने के लिए वस्तु को किसी-न-किसी बल का सहारा चाहिए, फिर झील की सतह मोटे तौर पर समतल होते हुए भी हल्की ऊबड़-खाबड़ दरार युक्त है । पाषाण भी पूर्णतः चिकने नहीं होते । उनमें भी कई-कई कोने और विषम किनारे होते हैं । हवा के तेज झोंकों से भी इनका नौ-सौ फुट जैसी लम्बी दूरी तय कर पाना असम्भव ही है । फिर ऐसी कौन-सी शक्ति है, जिसके कारण वे इतनी लम्बी यात्रा करने में सफल होते हैं ? विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक और विशेषज्ञ इसका समुचित उत्तर ढूँढ़ पाने में अब तक विफल रहे हैं । हाँ, उन्होंने अपने-अपने प्रकार के अनुमान व अन्दाज अवश्य लगाये हैं, पर ऐसा कोई नहीं, जो सिद्धान्त बना सके अथवा जिसके बारे में विश्वासपूर्वक कुछ कहा जा सके । उक्त घटना को देखने और जाँचने के उपरान्त

इसका निमित्त न समझ पाने के कारण इन मूर्धन्यों ने अपनी सम्मति और सम्भावना भर प्रकट कर दी कि उनके विचार में ऐसा हो सकता है, पर किसी ने अब तक इस सम्बन्ध में तर्कयुक्त कोई ऐसा मत प्रस्तुत नहीं किया जो सर्वसम्मत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण लिए हो ।

इन्हीं अध्येताओं में एक हैं—डॉ. राबर्ट पी. शार्प । डॉ. रॉबर्ट 'कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी' में प्राध्यापक एवं प्रख्यात भूगोलवेत्ता हैं । उन्होंने अनेक वर्षों तक इस घटना का गहन अध्ययन किया । इस दौरान उन्होंने ३० पत्थरों को चुना । इनका आकार- प्रकार देखा और नामकरण किया । इनके स्थान और स्थिति को चिह्नित किया । इनमें दो पत्थर ऐसे निकले जो उनके अध्ययन में काम आये । इन दोनों पत्थरों में से एक ने अनेक बार में कुल ८६० फुट की यात्रा की, जबकि दूसरे ने एकबार ६६० फुट का सबसे लम्बा सफर तय किया । इस लम्बे और सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् भी डॉ. रॉबर्ट कोई ठोस नतीजे पर नहीं पहुँच सके । निष्कर्ष के रूप में मात्र उन्होंने उतना ही कहा कि ऐसा सम्भवतः वर्षा और वायु के कारण होता है, पर दृढ़तापूर्वक वे भी कुछ कहने में समर्थ न हुए ।

निमित्त चाहे कुछ भी हो, पर इसकी एक दार्शनिक व्याख्या यह हो सकती है कि जड़ समझे जाने वाले पत्थर भी शायद एक स्थान से चिपके रहना पसन्द नहीं करते । कदाचित् गति उन्हें भी प्रिय हो । इसलिए वे ऐसे कौतुक करते रह कर प्राणि जगत में आने वाली जड़ता के प्रति उन्हें सचेत करते हों और कोई जीवधारी तो नहीं, पर मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो चेतन होते हुए भी हानि-लाभ भला-बुरा जानते और प्रत्यक्ष रूप से गतिवान दीखते हुए भी परोक्ष रूप से जड़ता को ही अपनाये रहना चाहता है । वह अपनी इच्छाओं को, आकांक्षाओं को, मान्यताओं को, परम्पराओं को और व्यवस्थाओं को बदलने से ऐसे बचता-बिदकता है, मानो उसका सर्वस्व छिनने जा रहा हो । वह इनसे उसी प्रकार चिपके रहना चाहता है, जिस प्रकार जोंक शरीर से । दूध सामने होते हुए भी उसे रक्तपान में ही ज्यादा रस आता है । उस गुबरैले को क्या कहा जाय, जो मल में ही स्वर्ग के आनन्द की अनुभूति करता हो । जरा इससे बाहर निकल कर तो देखे, तो ज्ञात हो कि इस विशाल संसार में ऐसी और भी कितनी ही चीजें हैं, जिन्हें सुन्दर और स्वर्गोपम कहा जा सके । कुएँ का मेंढक जब एक सम्पूर्ण चक्कर जल में काट लेता है, तो ऐसे टर्राता है, जैसे समस्त संसार की सैर कर ली हो ।

मनुष्य की रीति-नीति भी क्षुद्र जीवों से कोई बहुत भिन्न नहीं । वह अपनी दीनता को, विपन्नता को, बचकानी और पुरानी प्रथा को पकड़े व जकड़े रह कर ऐसी गर्वोक्तियाँ करता है, जैसे सचमुच उसकी प्रज्ञा ऋतम्भरा बन कर फूट पड़ी हो । जब यह बाल-बुद्धि व्यक्ति पर सवार होती है, तो नारकिसस की तरह उसे कहीं का नहीं रहने देती । फिर वह आत्म-सम्मोहन के ऐसे भ्रम-जंजाल में उलझाती है कि व्यक्ति अपनी ही विचारणाओं और मान्यताओं के ताने-बाने में फँस कर रह जाता है । चाह कर भी उससे उबर नहीं पाता और उन्हीं में पिलते-पिसते मर जाता है ।

ग्रीक पुराण में नारकिसस की एक कथा आती है । एक बार वह अपनी खोई बहन की तलाश में इधर-उधर भटक रहा था । चलते-चलते एक स्वच्छ झरने के समीप पहुँचा । पानी साफ लगा तो पीने की इच्छा हुई । जब वह झरने में झुका, तो उसमें उसे अपना सुन्दर मुखड़ा दिखाई पड़ा । शायद तब आईने का आविष्कार नहीं हुआ था, अतः चेहरा भी पहली बार देख रहा था । अपने रूप-लावण्य पर नारकिसस इस कदर मोहित हुआ कि फिर उठ कर अन्यत्र नहीं जा सका । यहाँ तक की अपनी प्रिय भगिनी को भी भूल गया और अपनी ही छवि को निहारते-निहारते मर गया ।

किसी स्थिर मान्यता, भावना, विचारणा, प्रथा, परम्परा से चिपक जाने की भी ऐसी ही दुःखद परिणति होती है। व्यक्ति स्वयं अपनी अवगति के लिए दावत देता है और प्रगति के द्वार बन्द कर लेता है। नदी का जल प्रवाहमान होता है, अतः लोग उसका आचमन करते और देवताओं पर चढ़ाते हैं, किन्तु तालाब अपनी क्षुद्र सीमा में बँधे रहने व प्रवाहहीन होने के कारण सड़न युक्त बना रहता है, जिससे न तो वह आचमन योग्य रह जाता है, न पवित्र देवालयों में अर्घ्य चढ़ाने योग्य । हम समयानुरूप अपनी मान्यताओं और प्रचलनों को छोड़ने-अपनाने के लिए तैयार रह सकें, इसी में हमारी प्रगति है । अवगति तो तब आड़े आती हैं, जब ऐसे परिवर्तनों के प्रति दृढ़वादी बनते और अनुपयुक्त को ही अपनाने का आग्रह करते हैं ।

प्रकृति के गर्भ में घटित हो रहे कुयोग व सुयोग

कुयोगों और सुयोगों के सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष तर्क तो इतना लागू नहीं होता कि अमुक वस्तु, पल विशेष या घटना को किस कारण शुभ या अशुभ होना चाहिए, क्योंकि उसके कारण दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ घटनी चाहिए और क्यों उसकी उपस्थिति में सुखद सम्भावनाओं की शृंखला चल पड़नी चाहिए । फिर भी देखा यह गया है कि कभी-कभी यह कुयोग-सुयोग के संयोग इस तरह वस्तुओं के साथ जुड़ जाते हैं, मानो वे जड़ न होकर चेतन हों, मानो उनकी भी बुरी या भली प्रकृति हो ।

'मेरी सेलीस्टी' नामक जलयान सदा ऐसे ही कुयोग से जुड़ा रहा । वह जब तक जिया, मालिकों, चालकों एवं यात्रियों को त्रास ही देता रहा । सन् १८६१ में स्पेंसर द्वीप नोबा स्कोशिया में जब वह बना तो उसका नाम 'आमेजन' रखा गया । उसका कप्तान अपनी नियुक्ति के दो दिन पश्चात् ही एक दुर्घटना में मारा गया । क्षतिग्रस्त जहाज की मरम्मत कराते समय दूसरा कैप्टन आग से जल कर मर गया, जब तीसरे की नियुक्ति हुई तो जहाज लेकर वह चला और 'डोवर की खाड़ी' में एक अन्य जलयान से टकरा गया, स्वयं हानि उठायी और दूसरे जहाज को भी नुकसान पहुँचाया । अपनी चौथी यात्रा में वह 'केप ब्रेटन द्वीप' में जमीन में धँस गया, जिससे उसका निचला हिस्सा टूट गया । मरम्मत पुनः करायी गई । अब तक जेम्स इस्ट्रीच इससे काफी क्षति उठा चुके थे । उन्होंने उसे बेच दिया । जेराल्ड स्नुफर अब इसके स्वामी बने । जहाज से जुड़े दुर्भाग्य ने उनका भी पीछा न छोड़ा । अनेक दुर्घटनाओं में उन्हें भारी घाटा उठाना पड़ा, अस्तु, उसे बेच देना ही उपयुक्त समझा गया । इस क्रय-विक्रय से होते हुए जलयान अन्ततः जेम्स विंचेस्टर के स्वामित्व में आया । उन्होंने

जहाज को नई शक्ल दी। पुराने यन्त्र-उपकरण बदल दिए गए। नाम भी परिवर्तित कर दिया गया अब वह 'मेरी सेलीस्टी' था। १८७२ के उत्तरार्ध में उसमें व्यापारिक सामान पुर्तगाल ले जाने के लिए लादा गया। कप्तान थे बेंजामिन स्नूपर। स्नूपर के अतिरिक्त जहाज में उनकी पत्नी, दो पुत्रियाँ एवं सात अन्य कर्मचारी सवार थे। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में यात्रा आरम्भ हुई। इसके दस दिन पश्चात् 'डीग्रेशिया' नामक जहाज ने भी पुर्तगाल के लिए प्रस्थान किया। इसके कैप्टन थे, एडवर्ड मोरहाउस। कुछ दिन बाद जब 'डीग्रेशिया' पुर्तगाल से लगभग ५०० मील दूर था, तो कप्तान ने एजोर्स और पुर्तगाल के मध्य एक जहाज को ऐसी स्थिति में देखा, जिससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि जलयान नियन्त्रण से बाहर है। कैप्टन मोरहाउस और कुछ साथी नाविक एक नाव में बैठ कर उस ओर चल पड़े, ताकि वस्तुस्थिति का पता लगाया जा सके। कई घण्टे के प्रयास के बाद जब वे वहाँ पहुँचे, तो पता चला कि यह 'मेरी सेलीस्टी' है, किन्तु जब उन्होंने अन्दर कदम रखा, तो आश्चर्यचकित रह गए। वह सर्वथा खाली था। उसमें जीवित या मृत कोई भी व्यक्ति नहीं था। सामान सभी ज्यों-के-त्यों लदे पड़े थे। जहाज को देखने से किसी प्रकार की दुर्घटना की भी आशंका नहीं होती थी। फिर इसके नाविक कहाँ अन्तर्ध्यान हो गए? मोरहाउस और उसके साथियों के लिए यह रहस्यमय बन गया। निरीक्षण आरम्भ किया तो पता चला कि मेज पर अध खाया भोजन पड़ा हुआ था एवं कुछ पकने के लिए स्टोव पर रखा हुआ था।

कैप्टन के कैबिन की तलाशी ली गई, तो उसमें लॉग, बुक पड़ी मिली, जिसमें आठ बजे प्रातः २५ नवम्बर की तिथि अंकित थी, साथ ही यह नोट था—"सान्तामेरिया द्वीप से हम आगे बढ़ गए।" डीग्रेशिया के कप्तान मोरहाउस ने जिस दिन यह देखा, उस दिन ५ दिसम्बर था, अर्थात् लॉग-बुक में अन्तिम प्रविष्टि के दस दिन बीत चुके थे और जलयान बिना किसी नाविक के ६०० मील की यात्रा कर चुका था।

मोरहाउस उसे अपने साथ जिब्राल्टर ले आया। सुरक्षित जहाज और सामान को उसके मालिक तक पहुँचा देने के पारिश्रमिक के रूप में कप्तान को लदे सामान की कुल कीमत का पाँचवाँ हिस्सा विंचेस्टर की ओर से प्राप्त हुआ। न्यूयॉर्क पहुँचने पर विंचेस्टर ने 'मेरी सेलीस्टी' को तत्काल बेच दिया। उसे एक दूसरी व्यापारिक कम्पनी ने खरीद लिया पर बदकिस्मती का वहाँ भी अन्त न हुआ। कई कप्तान और कर्मचारियों की आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर वर्तमान मालिक ने भी उसे अपने पास न रखा। इस प्रकार खरीद-फरोख्त का यह सिलसिला अनेक वर्षों तक चलता रहा। इस क्रम में अन्ततः वह जलयान १८८४ में गिलमैन पार्कर नामक व्यापारी के पास पहुँचा। जहाज के विगत इतिहास को ध्यान में रखते हुए उसने उसका बीमा करा लिया। इन्हीं दिनों एक बार जब वह वेस्ट इण्डीज की खाड़ी से होकर गुजर रहा था, तो दुर्घटनाग्रस्त हो गया। घटना के आठ माह बाद गिलमन की अचानक मृत्यु हो गई। कर्मचारी दल में से चार पागल हो गए और दो ने आत्महत्या कर ली।

'मेरी सेलीस्टी' के दुर्भाग्य का यह अन्तहीन सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक समुद्र में डूब कर उसका अस्तित्व समाप्त न हो गया। टाइटेनिक जलयान के बारे में कहा जाता है, कि वह भी दुर्भाग्य का शिकार हुआ था, होप डायमन्ड और कोहेनूर हीरे का भी ऐसा ही इतिहास है। वे जब, जहाँ, जिसके पास भी गए, वहीं विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। न जाने कितनों को इनके कारण जान से हाथ धोना पड़ा, कितने ही पागल हो गए। अनेकों ने आत्महत्या कर ली। फिर भी इनसे जुड़ी विपदा का अन्त न हुआ।

अभिशप्त वस्तुओं के अनगिनत घटनाक्रमों में से यहाँ कुछ का जिक्रमात्र किया गया है। सौभाग्य या दुर्भाग्य कभी-कभी जड़ वस्तुओं के भी सिर पर चढ़कर बोलता है व ऐसे-ऐसे क्रियाकलाप कर दिखाता है जिनसे दाँतों तले उँगली दबाकर रह जाना पड़ जाता है। जब नितान्त जड़ समझे जाने वाले पदार्थ भी कुयोगों के कुचक्र में चेतन जगत के जीवधारियों को इस प्रकार खींच-घसीट लेते हैं तो चेतना के समुच्चय मनुष्य का तो कहना ही क्या? वह चाहे तो कुयोग पैदाकर अपने ही पैरों कुल्हाड़ी मार ले अथवा सुयोग पैदाकर अपना भविष्य अपने हाथों विनिर्मित करले।

देखने में यही आता है कि मनुष्य अपनी मनःस्थिति अभिशप्त बनाये हुए अपने लिए दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों का चयन स्वयं करता है। वस्तुतः अभागा कोई होता नहीं, बनता है स्वयं को बनाता है। वातावरण भी सहधर्मी विचारों के एकत्र होते चले जाने के कारण वैसा ही बन जाता है। 'द रूट्स ऑफ कोइन्सीडेन्स' तथा 'आर्ट ऑफ क्रिएशन' के विद्वान लेखक आर्थर कोसलर का मानना है कि हर संयोगों के मूल में प्रकृति का गणितीय क्रम चलता रहता है। कहीं न कहीं कोई मनुष्यकृत ऐसी विपत्ति इस परिस्थिति का मूल कारण होती है जो हमें बहिरंग में विभिन्न घटनाक्रमों के रूप में दिखाई देती है।" इस प्रकार उनके अनुसार यहाँ कुछ भी संयोग न ही सुव्यवस्थित है और न क्रिया की प्रतिक्रिया है। सर्वज्ञ के इस स्वरूप को समझते हुए, यदि हम मनःस्थिति उत्कृष्ट बनाकर वैसे ही कृत्य करें तो निश्चित ही परिस्थितियाँ भी श्रेष्ठतर होंगी। यह अध्यात्म का सनातन ध्रुव पक्ष है जो सदा से व्यक्ति को आत्मावलम्बन का पुरुषार्थ पढ़ाता चला आया है।

विचित्रताओं से भरा-पूरा यह संसार

गंगा यों उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है, पर उसके बीच-बीच में कई स्थानों पर ऐसे मोड़-मरोड़ हैं जिनमें वह दिशा लगभग उलट-सी जाती है। उत्तर काशी में कई मील तक गंगा दक्षिण से उत्तर की ओर बहने लगी है। यही क्रम वाराणसी में दुहराया गया है। हवा में चक्रवात और पानी में भँवर भी सामान्य प्रवाह में व्यक्तिक्रम ही उत्पन्न करते हैं। यद्यपि होते वे भी किसी प्रकृति नियम के अन्तर्गत ही हैं। भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट आदि की घटनाएँ आकस्मिक अप्रत्याशित होती हैं, आश्चर्यजनक लगती हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रकृति नियमों के अन्तर्गत नहीं हैं। यह बात दूसरी है कि उनके कारण एवं रहस्य मनुष्य की पकड़ में अभी न आये हों।

सामान्य व्यवस्था से भिन्न प्रकार के आश्चर्य जब दृष्टिगोचर हों तो यह नहीं समझा जाना चाहिए कि प्रकृतिक्रम अनगढ़ है और कुछ भी उल्टा-पुल्टा होता रहता है। नियति के सुनियोजित

व्यवस्था-क्रम में इस प्रकार के व्यतिरेक की सम्भावना कहीं भी नहीं है ।

प्रकृति के अनुसन्धान क्रम में यह तथ्य भी ध्यान रखने योग्य है कि घटनाओं और सम्भावनाओं में ऐसे मोड़ भी विद्यमान हैं, जो सर्वदा नहीं यदा-कदा ही दृष्टिगोचर होते हैं । सामान्यतया इन्हें देखकर कौतूहल का आनन्द लेने की बात ही बन पड़ती है, किन्तु विज्ञजनों के सामने यह चुनौती आती है, कि वे प्रवाह क्रम को ही अकाट्य न मानें, वरन् प्रकृति के अन्तराल में चलते रहने वाले चित्र-विचित्र मोड़-मरोड़ों की सम्भावना भी ध्यान में रखें और उनके कारणों को खोज निकालने और अधिक रहस्यों का उद्‌घाटन करने हेतु दत्त चित्त हों ।

गुरुत्वाकर्षण के नियम को शाश्वत माना जाता है । कोई भी घटना अथवा गतिक्रम जो इसके विपरीत हो, हमें स्वीकार नहीं । परन्तु पृथ्वी पर एक स्थान ऐसा है, जहाँ यह नियम काम नहीं करता और बार-बार सोचने पर विवश कर देता है कि ऐसा क्यों व कैसे होता है ? अमेरिका के ओहियो प्रान्त की क्लीवलैण्ड नगरी से तीस मील पूर्व की ओर किर्टलैण्ड पर चढ़ने का प्रयास करें तो तली में खड़ी मोटर गाड़ी अपने आप बिना प्रयास सड़क पर चलती हुई चोटी तक पहुँच जाती है । इस टीले के अलावा इस शान्त स्थान पर और कुछ विशेषता है नहीं । लेकिन मात्र इस चमत्कार को देखने के लिए कई पर्यटक प्रतिदिन यहाँ आते हैं । पहाड़ी की तलहटी पर चलती गाड़ी का इन्जन बन्द करने पर ब्रेक से पैर हटाते ही गाड़ी धीरे-धीरे पहाड़ी चढ़ने लगती है । आरम्भ में तो गति धीमी रहती है, परन्तु धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते यह २० से २२ किलोमीटर प्रति घण्टे की चाल से चलते हुए चोटी पर पहुँच जाती है । बहुसंख्यक व्यक्ति प्रकृति के आश्चर्य, भौतिकी का उपहास उड़ाने वाले इस दृश्य की स्वयं अनुभूति करने के लिए अपनी गाड़ी लेकर आते व आनन्द लेकर चले जाते हैं । इसे 'ग्रेवीटी हिल' नाम भी दिया गया है, जहाँ चौदह टन भार की गाड़ियाँ बिना ऊर्जा अथवा शक्ति के अपव्यय के यात्रा करती देखी जाती हैं ।

'टाइम' पत्रिका के २४ अप्रैल, १९४४ के अंक में एक घटना प्रकाशित हुई थी, जिसने पाठकों को चौंका दिया था । डकोटा प्रान्त (अमेरिका) के रिचर्डसन नगर में एक महिला अध्यापिका पाल्मिन रैवेल आठवीं कक्षा के बच्चों को पढ़ा रही थीं, कि एकायक उस कमरे में गर्म करने को रखी अंगीठी के कोयले स्वयं प्रज्ज्वलित होने लगे । थोड़ी ही देर में वे उछलकर दीवारों से जा-जाकर टकराने लगे । कुछ छात्रों को भी लगे । इसके बाद अंगीठी स्वतः दूसरी जगह जाकर खड़ी हो गई एवं वहाँ रखी पुस्तकों का बण्डल तेजी से जलने लगा । श्रीमती रैवेल व अन्य बच्चे तमाशा देख ही रहे थे, कि एक बच्चे की सूचना पर फायर ब्रिगेड आ पहुँची । अग्नि उससे भी शान्त नहीं हुई । कुछ मिनटों बाद वह स्वतः शान्त हो गई । वैज्ञानिकों ने इस विचित्र अग्निकाण्ड की जाँच की लेकिन कोई कारण वे खोज नहीं पाये ।

ऐसे अनेकानेक विचित्र अविज्ञात स्थान हमारी इस पृथ्वी पर विद्यमान हैं, जिनके कारणों की कोई जानकारी वैज्ञानिक समुदाय को नहीं है । वे इसे 'मिस्ट्री ऑफ नेचर' कहकर टाल देते हैं जबकि यह क्षेत्र गहन अनुसन्धान का है ।

आयरलैण्ड के एण्ट्रिल प्रदेश में एक बड़ी झील है—'लौधारिना' । साधारणतया वह पानी से लबालब भरी होती है, किन्तु कभी-कभी एक विचित्र आश्चर्य होता कि झील का पानी पूरी तरह अदृश्य हो जाता है । मात्र कीचड़ ही उसके स्मृति चिह्न के रूप में दृष्टिगोचर होती है । इतना पानी इतनी जल्दी कहाँ चला जाता है, इतना विशाल जलागार कुछ ही घण्टों में कहाँ गायब हो जाता है, इसकी खोज मुद्दतों से चल रही है, लेकिन अभी तक किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं हो पाया है ।

प्रकृति की ये सभी चित्र-विचित्र गतिविधियाँ यह रहस्योद्‌घाटन करती हैं, कि शोध-अनुसन्धान की परिधि बड़ी व्यापक है । हमें अपने व आस-पास के ही कुछ तथ्यों को देख-समझकर यह नहीं मान लेना चाहिए कि विज्ञान प्रदत्त दृष्टि ने हमें सब कुछ बता दिया है । ईश्वर की लीला विचित्र है । मनुष्य का क्षेत्र सीमित है, फिर भी उद्देश्य यही होना चाहिए, कि कारण जानने के प्रयास चलते रहें ताकि मानवी पुरुषार्थ सीमाबद्ध होकर न रह जाय ।

शान्त रातों को बरसते हैं वहाँ, पत्थर

यह दृश्य जगत एक धुँधली छाया की तरह है । इसकी मूलभूत सत्ता अदृश्य जगत में सन्निहित है । छाया को समझने के लिए मूल सत्ता को समझना अनिवार्य होता है । इसके उपरान्त प्रतिबिम्ब सम्बन्धी ज्ञान अर्जित कर लेना कठिन नहीं रह जाता । आये दिन इस भौतिक जगत में कितने ही प्रकार की घटनाएँ घटती रहती हैं । इनमें से कई महज लौकिक क्रिया-प्रतिक्रिया की परिणति होती हैं, जबकि अनेक परोक्ष संसार से सम्बन्ध रखती हैं । लौकिक घटनाएँ तो आसानी से ज्ञेय होती हैं, पर अलौकिक घटनाक्रमों के सूत्र संकेत समझ पाने में हमारी बुद्धि असहाय बनी रहती है । उसको असमर्थता तब और बढ़ जाती है, जब मस्तिष्क को भ्रमाने वाले प्रकरण सामने आते हैं ।

ऐसे ही एक प्रसंग की चर्चा विलियम जी. रॉल ने अपनी पुस्तक 'दि पोल्टरगाइस्ट' में की है । वे लिखते हैं कि सन् १९२८ में एक बार मूर्द्धन्य लेखक और प्रकृतिविद् इवान सैण्डरसन ने रबड़ की खेती देखने सुमात्रा (इण्डोनेशिया) की यात्रा की । जब वे वहाँ पहुँचे, तब धुँधलका घिर चुका था । स्नानादि से निवृत्त होने के उपरान्त अतिथि और आतिथेय सभी रात्रि भोजन के लिए इकट्ठे हुए । भोजन के पश्चात् सब बरामदे में आये । अभी वहाँ बैठे हुए कुछ ही क्षण बीते होंगे कि अचानक बरामदे की छत पर पत्थरों की बौछार होने लगी । सैण्डरसन चूँकि उस अतिथि के यहाँ पहली बार गए थे, अतः उक्त घटना से वे हतप्रद रह गए । बाद में मेजबान ने बताया है कि यह यहाँ की सामान्य बात है । वे इसके अभ्यस्त हो चुके हैं और निर्भय भी । उनका कहना था कि रात में अक्सर यह घटना घटती देखी जाती है । बौछार प्रायः उन्हीं रातों को होती हैं, जो आमतौर पर शान्त होती हैं, आँधी, तूफान वाली रातों में यह अनहोनी नहीं होती । गहन अँधेरी अथवा चाँदनी वाली रात्रि से भी इसका कोई सम्बन्ध नहीं । यह कौतुक खिली चाँदनी अथवा सघन तमिस्रा, चाहे किसी में भी हो सकता है । इतना बताने के बाद उन्होंने सैण्डरसन को एक सलाह दी, कहा—आप इन पत्थरों को बटोर कर उन्हें चिह्नित कर दें । पहचान के लिए उन पर निशान लगा लें और फिर उन्हें घर के

बाहर, वाटिका में अथवा सघन वृक्षावलियों वाले रबड़ के खेतों में कहीं भी फेंक दें, वे पुनः आपके पास वापस आ जायेंगे ।

सैण्डरसन को यह बात कुछ अविश्वसनीय-सी लगी । अविश्वास का कारण भी मौजूद था । उनके मस्तिष्क में यह बात किसी कदर नहीं बैठ पा रही थी कि रबड़ के सघन खेतों में फेंके गए छोटे पत्थरों को कोई किस भाँति ढूँढ़ कर वापस कर सकता है, सो उन्होंने सन्देह प्रकट किया, तो मित्र ने परीक्षा कर लेने का परामर्श दिया और पेन्सिल, स्याही एवं कुछ रंग सामने रख दिए । सभी ने मिलकर उन पत्थरों को एकत्रित किया और उन पर तरह-तरह की डिजाइन बनाने लगे । कुछ पर नम्बर डाल दिए, कुछ को रंग डाला । यह कार्य पूरा होने के उपरान्त सभी ने मिलकर उन्हें फेंकना आरम्भ किया । कुछ पत्थर दूर रबड़ के घने खेतों में फेंके गए, कुछ को मकान के बाहर थोड़ी ही दूरी पर डाल दिया गया, कुछ उद्यान में ऐसे ही पटक दिए गए । सैण्डरसन के आश्चर्य का तब ठिकाना न रहा जब कुछ ही पल में अधिकांश पत्थर बरामदे की छत पर बरस पड़े । उन्होंने जाकर देखा, तो पाया कि छत पर जिन पत्थरों की बरसात हुई थी, वे सभी उनके द्वारा फेंके गए चिह्नित प्रस्तर टुकड़े ही थे ।

उस रात घटना की सूक्ष्मतापूर्वक जाँच करने के उपरान्त सैण्डरसन ने अन्त में कहा कि यह कोई मानवीय प्रयास नहीं हो सकता । यह लोकोत्तर सत्ता का स्पष्ट प्रमाण है, किन्तु उसकी चेष्टा के पीछे छिपे रहस्यों को स्थूल जाँच-पड़तालों द्वारा नहीं जाना जा सकता । इसके लिए स्वयं को सूक्ष्म बनाना और सूक्ष्म लोक में गति रखने वाली सामर्थ्य अर्जित करना अपरिहार्य है, तभी ऐसी अद्भुतताओं का सही कारण ढूँढ़ा और समाधान पाया जा सकता है ।

किन्तु देखा गया है कि ऐसे प्रसंगों में हम प्रायः स्थूल में उलझ कर रह जाते हैं और उसी में उसके वास्तविक कारण की तलाश करते रहते हैं । भूल यहीं हो जाती है, अतः कठिन प्रयास के बावजूद प्रयत्न निष्फल रह जाते हैं, जबकि स्थूल का निमित्त सूक्ष्म है और व्यक्त क्रियाविधि अव्यक्त पर आधारित है । गोचर सत्ता को समझने के लिए अगोचर अस्तित्व को जानना जरूरी है । आज व्यतिक्रम यह हो गया है कि हम पहले दृश्य को समझना चाहते हैं, फिर अदृश्य की ओर आगे बढ़ते हैं । सारी गड़बड़ इस उलटबाँसी के कारण ही है । होना यह चाहिए कि पहले परोक्ष का अन्वेषण किया जाय तत्पश्चात् प्रत्यक्ष को समझने में कठिनाई रह ही नहीं सकती ।

आश्चर्यजनक, किन्तु सत्य

प्रकृति का ढर्रा एक सामान्य क्रम से लुढ़कता दीखता है, किन्तु कितनी बार ऐसे दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं, जिनके रहस्यों का पता लगाना कठिन पड़ता है । यों वैज्ञानिकों का कहना है कि ये अचरज भी ऐसे प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत होते हैं, जिनके वास्तविक कारणों को जानने में हम अभी समर्थ नहीं हो सके हैं ।

सन् १८५७ हमारे लिए गदर की लड़ाई के नाम से महत्त्वपूर्ण है, किन्तु अमेरिकावासियों के लिए कुछ और कारणों से यह यादगार वर्ष है । इस वर्ष कैलिफोर्निया की नापा-काउण्टी में कई दिनों तक ऐसा पानी बरसा जो शर्बत से भी अधिक मीठा था, कुछ लोगों ने तो इसे भावी उपयोग के लिए बड़े-बड़े पात्रों में जमा कर लिया और कई दिनों तक शर्बत के रूप में उसका सेवन करते रहे । वैज्ञानिकों का मत था कि पानी में घुली हुई मिश्री इसका कारण थी । प्रकृति की इस अबूझ पहेली को वैज्ञानिक अब तक सुलझा नहीं पाये हैं ।

जीवित प्राणियों के अलावा अन्य पदार्थों की अप्राकृतिक वर्षा के भी अनेकों उदाहरण सामने आये हैं । फरवरी १९०३ में पश्चिम यूरोप का विस्तृत भू-भाग सहारा रेगिस्तान के काले रेत से भर गया था । पदार्थों के रंग कई तरह के थे । ठीक ऐसी ही वर्षा इंग्लैण्ड के लीड्स शहर एवं वेल्स में ३० जून, १९६८ को हुई थी ।

सन् १८१९ में १३ अगस्त की रात को अमेरिका के मेसाच्युसेट्स शहर में घनघोर वर्षा हुई । आकाश मार्ग से गिरते हुए आठ इंच व्यास तथा एक इंच मोटाई के चिकने गोल पदार्थ देखे गए । कुछ दिन पश्चात् शोध-अनुसन्धानों से पता चला कि वे फफूँद हैं ।

१३ नवम्बर, १८३३ को उत्तरी-अमेरिका में आग बरसते सभी ने देखी थी । उस इतिहास प्रसिद्ध घटना का कारण था अन्तरिक्ष से छोटी-छोटी अगणित उल्काओं का एक साथ बरस पड़ना । अनुमानतः २ लाख छोटे-बड़े जलते अंगारे आकाश से जमीन की ओर तेजी के साथ दौड़ते हुए देखे गए । गनीमत इतनी ही रही कि वे सभी जमीन तक पहुँचाने से पहले ही बुझ गए । एक भी उल्का धरती को छू नहीं सकी और आकाश में धूल बनकर बिखर गई ।

छोटी बड़ी ढेरों मीनारें सारे विश्व में हैं, किन्तु इनमें सबसे निराली, विचित्र एक भारत में भी है । ये अहमदाबाद में है एवं झूलती हुई मीनारों के नाम से प्रसिद्ध है । ये मीनारें अहमदाबाद रेलवे स्टेशन के समीप कालूपुर क्षेत्र में वशीर मसजिद के अहाते में है । इतिहास प्रसिद्ध मौलवी हाफिज सिद्दकी वशीर साहेब के नाम से यह मसजिद स्थापित है । ये मीनारें अद्भुत है । नीचे करीब २० वर्ग फुट मोटे दो स्तम्भों से जुड़ी दीवार के ऊपर ये मीनारें बनी हैं । इनकी लम्बाई ७५ फुट है । इन मीनारों की असली खूबी यह है कि अगर किसी एक मीनार के ऊपर चढ़कर खड़े हो जायें और कुछ लोग अगर दूसरी मीनार को पकड़कर हिलाएँ तो दोनों झूले की तरह झूलने लगती हैं । पत्थर की मोटी-मोटी मीनारें जो जमीन में पता नहीं कहाँ तक गड़ी हैं, झूले की तरह झूलती हैं । पिछले करीब छः सौ साल से ये मीनारें इसी तरह झूलती चली आ रही हैं । विश्व में ऐसी कोई दूसरी मीनार नहीं है, जो झूलती हो ।

इन झूलती मीनारों को ईस्वी सन् १४५८ में मल्लिक साहरंग ने बनवाया था । यह वह समय था जब यहाँ सुल्तान मुहम्मद का शासन था । सुल्तान मुहम्मद यों तो कठोर शासक था, परन्तु वह कला प्रेमी भी था । कहते हैं कि जब पहली बार इन मीनारों के विषय में सुल्तान को बताया गया तो उसे विश्वास नहीं हुआ । भला पत्थर की मीनारें झूल कैसे सकती हैं ? इस बात की सत्यता को जानने के लिए वह खुद एक बार अहमदाबाद गया और एक मीनार पर चढ़कर देखा ।

इन झूलती मीनारों का रहस्य क्या है, यह आज तक अज्ञात है । अंग्रेज जब भारत पर शासन करने लगे, तब उन लोगों ने भी बहुत कोशिश की कि इन झूलती मीनारों के रहस्य का पता

लगाया जाय, परन्तु अब तक सारे प्रयत्न बेकार ही रहे हैं। सदियों का रहस्य आज भी रहस्य ही बना हुआ है।

प्रकृतिगत विशेषताएँ ही नहीं, मानवी जीवन में भी बहुधा ऐसा कुछ घटित होते देखा गया है, जिसके सम्बन्ध में मात्र अचरज ही व्यक्त किया जाता है, पर यह प्रतीत नहीं होता है कि यह असम्भव समझी जाने वाली बातें किस कारण घटित हो सकीं ?

प. जर्मनी के म्यूनिख शहर में चारों तरफ से बन्द दरवाजे और खिड़कियों वाले कमरे में एक मनुष्य जलता हुआ पाया गया, जबकि दूसरी किसी वस्तु ने आग नहीं पकड़ी थी। उसकी ५ रक्त नाड़ियाँ भी कटी हुई थीं और खून काफी निकला हुआ था।

आश्चर्य है कि आग कैसे पकड़ी ? सम्भवतः आत्महत्या की गई हो। वहाँ पर माचिस बीड़ी-सिगरेट या कोई अन्य चीज नहीं थी। जिससे आग पकड़ने की पुष्टि हो। अधिक खून निकलने के कारण वह इतना दुर्बल था कि स्वयं भी आग नहीं लगा सकता था। किसी तेल पेट्रोल आदि की गन्ध भी नहीं थी।

एक दूसरा केस इसी इंग्लैण्ड में हुआ था, जिसमें उसकी समस्त माँसपेशियाँ जल गई थीं परन्तु उसके बाल, भौंहें और अण्डरवीयर व अन्य कपड़े बिल्कुल नहीं जले थे। क्या वह आत्महत्या का केस हो सकता था ? जब जवाब किसी के पास नहीं था। ऐसी ही एक घटना में पार्टी चालू थी, लोगों का नाच-गाना चल रहा था कि अचानक कमरे के मध्य में एक नर्तकी के शरीर से नीली रोशनी निकलने लगी और कुछ ही मिनटों में जलकर राख हो गई। इंग्लैण्ड की इस घटना का कोई हल निकल नहीं पाया।

ऐसी ही एक घटना २ जुलाई, १९५१ की है। जिसमें मिसेज रोजर का शरीर अचानक जल कर राख हो गया फिर भी उस कमरे में कोई भी अन्य वस्तु नहीं जली और न आग की लपटें ही दीखीं, मात्र गर्मी मालूम पड़ रही थी, उनकी हड्डियाँ मात्र शेष थीं। इसका रहस्य नहीं समझा जा सका।

अनेक स्तरों की जाँच-पड़ताल, विशेषज्ञों द्वारा परीक्षणों एवं उन्नत देशों की जाँचों से भी इन अग्निकाण्डों का रहस्य समझ के बाहर रहा। इन रहस्यों को 'स्पाण्टेनियस कम्बशन' नाम दिया गया है व एक परिकल्पना यह की गई कि सम्भवतः पृथ्वी की जियोमैग्नेटिक वेन्स की पकड़ में आने से ये घटनाक्रम घटे हों, पर यह भी एक तुक्का भर है क्योंकि ये घटनाएँ वहाँ घटी हैं जहाँ इन वेन्स या विद्युत तरंगों की सघनता नहीं के बराबर होती है।

ये प्रसंग चाहे मानवी काया के हो अथवा विराट् प्रकृति जगत के, अविज्ञात अनोखे करतबों के एक प्रश्न चिह्न विज्ञान जगत के समक्ष खड़ा करते हैं। जब हर बातों का जवाब देने का दावा वैज्ञानिक करते हैं। तो फिर ऐसे विचित्र घटनाक्रमों को संयोग मात्र अथवा अपवाद कहकर क्यों टाल देते हैं ?

मरियम के आँसू व अन्य अनसुलझी पहेलियाँ

इस संसार में अभी जितना कुछ जाना जा चुका है, उससे अनेक गुना ज्यादा अविज्ञात है, जो ज्ञात हो चुका, उसे लौकिक की श्रेणी में रख दिया गया और जिनके रहस्य अनावृत्त होने बाकी हैं, उन्हें आश्चर्य, अचम्भा, अनबूझ, अज्ञात, अलौकिक जैसे नामों से पुकारा जाने लगा। ऐसे रहस्यों में प्रकृति और ब्रह्माण्डगत पहेलियों से लेकर जड़ जगत के जड़ पिण्डों की अद्‌भुतताएँ सम्मिलित हैं। यही अद्‌भुतताएँ यदाकदा प्रकट और प्रत्यक्ष होकर लोगों को चमत्कृत करती रहती हैं।

घटना ६ अगस्त, १९४५ की है। पिट्सवर्ग के व्यापारी एलेन डेमेट्रियस की आर्ट गैलरी में अनेक पेंटिंग्स एवं प्रतिमाएँ रखी हुई थीं। इन्हीं प्रतिमाओं में जापानी लड़की की एक काँसे की मूर्ति भी थी। उक्त दिन वह विग्रह न जाने क्यों रोने लगा। डेमेट्रियस ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसी प्रकार वहाँ पानी के छींटे तो नहीं पहुँच गए, उन्होंने उसे कपड़े से पोंछ दिया, पर तब वह आश्चर्यचकित रह गए, जब थोड़ी ही देर में आँखें पुनः गीली हो गईं। डेमेट्रियस ने उन्हें पुनः सुखाया, किन्तु कुछ क्षण पश्चात् वह फिर नम हो गईं। इस प्रकार के कई प्रयासों के बाद डेमेट्रियस को यह निश्चय हो गया कि आँखों से लुढ़कने वाला तरल असावधानी वश पड़ने वाला कोई जल-बिन्दु नहीं वरन् वह मूर्ति के रुदन की परिणति है। नेत्रों से बहने वाला पानी आँसू ही हैं—इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने स्थायी रसायनवेत्ताओं को जाँच के लिए आमन्त्रित किया। कई मूर्धन्य रसायनज्ञों ने इसकी अलग-अलग पड़ताल की, पर सभी का निष्कर्ष एक ही था कि चक्षु से बहने वाला तरल मानवी आँसू ही हैं। उल्लेखनीय है कि प्रतिमा ने उसी दिन से रोना आरम्भ किया, जिस दिन हिरोशिमा में अणु बम गिराया गया था। विलाप के कारण का पता अब तक नहीं चल सका। सम्भव है अगणित दिवंगत लोगों की प्रतिमाएँ अपनी सम्वेदना प्रकट कर रही हों।

एक अन्य घटना आइलैण्ड पार्क, न्यूयार्क के कैटसोनिस दम्पत्ति से सम्बद्ध है। गृहस्वामिनी पगोना धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। वह प्रतिदिन सोने से पूर्व मरियम की मूर्ति के सामने प्रार्थना किया करती थी। यह उसकी नियमित चर्या थी और लम्बे समय से चली आ रही थी।

१६ मार्च, १९६० की रात भी वह अन्य दिनों की तरह प्रार्थना करने लगी। आँखें उसकी मरियम पर टिकी थीं। तभी अकस्मात प्रतिमा की आँखें अश्रुपूरित हो गईं और कुछ ही पल में दोनों नेत्रों से दो बड़ी-बड़ी बूँदें कपोलों पर ढुलक पड़ीं। आरम्भ में उसे अपने चक्षुओं पर विश्वास नहीं हुआ। उसने उन बिन्दुओं को स्पर्श कर देखा। वे सचमुच अश्रु-बिन्दु ही थे। इसके उपरान्त उसने अपने पति पैगियोनाइटिस को आवाज दी और विग्रह-रुदन की बात बतायी। पैगियोनाइटिस स्वयं एक रसायनशास्त्री थे। उन्होंने नयनों से कुछ बूँदें इकट्ठी कीं और प्रयोगशाला में परीक्षण हेतु ले गए। जाँच के पश्चात् नयन-नीर में वे ही सारे गुण पाये गए, जो मानवी आँसू में पाये जाते हैं। मरियम पूरे एक सप्ताह तक रोती रहीं। इस बीच दर्शकों और श्रद्धालुओं का वहाँ लम्बा ताँता लगा रहा। बाद में उसको गृह दम्पति और लोगों की सुविधा के लिए सैण्ट पॉल गिरजाघर में रखवा दिया गया।

कई बार ऐसे मामलों में विग्रहों से रक्तस्राव भी होते देखा गया है। ऐसा ही एक दृश्य १९२० के उपद्रवों के दौरान आयरलैण्ड में दिखाई पड़ा। उक्त वर्ष ब्रिटिश सरकार ने वहाँ के राष्ट्रवादी आन्दोलन सिन-फिन को अवैध घोषित कर उस पर निषेध लगा दिया। इससे क्रुद्ध होकर आन्दोलनकारियों ने वहाँ

नियुक्त सैनिकों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया । भयंकर मारकाट मची । सैकड़ों की जानें गईं और करोड़ों की सम्पत्ति बर्बाद हो गई । अराजकता चरम सीमा पर थी । १५ अगस्त के दिन टेम्पलीमोर के टाउनहॉल को जलाकर राख कर दिया गया । इसके साथ कई अन्य इमारतें भी भस्म कर दी गईं ।

इस अग्निकाण्ड के ठीक एक सप्ताह बाद वहाँ के एक धार्मिक नेता टामस ड्वान के घर रखी महापुरुषों, सन्तों और देवियों की सभी मूर्तियों से अचानक खून बहने लगा । रक्त-स्राव लगभग एक महीने तक सतत जारी रहा, फिर स्वतः बन्द हो गया । शरीरशास्त्री पत्थर की मूर्तियों से मानवी रक्त निकलने के रहस्य का किसी भी प्रकार उद्घाटन नहीं कर सके । उक्त प्रकरण का उल्लेख करते हुए, चार्ल्स फोर्ट ने अपनी पुस्तक 'दि कम्प्लीट बुक्स ऑफ चार्ल्स फोर्ट' में लिखा है कि जितने दिन ड्वान के घर की मूर्तियों में रक्त-स्राव जारी रहा, उतने दिन वहाँ एक अलौकिक शक्ति की अनुभूति निरन्तर होती रही । वहाँ जो कोई बीमार आता, वह आश्चर्यजनक ढंग से स्वस्थ हो जाता है । लोग इसे सन्त प्रतिमाओं का आशीर्वाद मानते और स्वास्थ्य लाभ कर फूले नहीं समाते ।

इसी प्रकार की एक घटना ब्राजील के पोर्टो एलिगर गिरिजाघर में सन् १९६८ में प्रकाश में आयी । उस चर्च में करीब तीन सौ वर्ष पुरानी ईसा मसीह की लकड़ी की एक क्रूस मूर्ति रखी हुई है । उक्त दिन अकस्मात् उससे रक्त बहने लगा । कुछ ही समय में ईसा के हाथ-पैर, कंधे रक्त-रंजित हो उठे । खून की परीक्षा करने पर वह मानवी रक्त पाया गया । आशंका-निवारण के लिए विशेषज्ञों ने काष्ठ प्रतिमा की गहराई से छानबीन की, किन्तु किसी तरह के सन्देह की कोई गुंजाइश नजर नहीं पायी गई । रहस्य अब तक अविज्ञात बना हुआ है ।

इससे मिलता-जुलता प्रकरण लिम्पियास चर्च का है । उत्तरी स्पेन के सैनटैण्डर शहर के नजदीक इस गिरिजाघर में ईसा मसीह की लकड़ी में उत्कीर्ण एक सुन्दर क्रूस-प्रतिमा है । ३० मार्च, १९१९ को इस मूर्ति ने अद्भुत चेष्टाएँ करनी आरम्भ कीं । कभी भगवान ईसा के नेत्र गोलक दाएँ से बाएँ घूमते प्रतीत होते, तो कभी विपरीत दिशा में । कभी गर्दन में हलचल होती तो, यदा-कदा भौंहें गतिशील दिखाई पड़तीं । बीच-बीच में उनके चेहरे की भंगिमा बदलती रहती । कभी करुणा उमड़ पड़ती, तो कभी कठोरता का, गम्भीरता का गम्भीर पुट विराजमान होता, कुछ पल पूर्व जिन अधरों पर मृदु हास्य खेलता होता, अगले ही क्षण उसमें एक अजीब भाव-शून्यता नाचने लगती ।

यह सब वहाँ उपस्थित लोगों के अपने-अपने निजी अनुभव थे । जब से उस विग्रह के भाव-परिवर्तन की जनश्रुति फैली थी, तब से वहाँ हजारों लोगों ने हजारों प्रकार की ऐसी अनुभूतियाँ प्राप्त की थीं । दर्शकों में एक चिकित्साशास्त्री डॉ. मैक्सीमिलयन ओर्ट्स भी वहाँ मौजूद थे । उन्होंने ईसा के चेहरे का सात गज दूर से एक बायनाकुलर्स के माध्यम से कई घण्टे तक अध्ययन किया । जैसे ही चिकित्सक ने अपना यन्त्र प्रतिमा के चेहरे पर केन्द्रित किया, एक ताजा रक्त बूँद दाहिने नेत्र से ढुलकते हुए कपोलों पर छलक गई । डॉक्टर ने उपकरण अपनी आँखों से हटाया । कुछ क्षण नेत्र मले और उस दृष्टिभ्रम पर पल भर विचार किया, जो भी अभी-अभी दिखाई पड़ा था । तनिक सोचने के उपरान्त पुनः बायनाकुलर्स चक्षु से आ लगा । रक्तस्राव अब भी यथावत् हो रहा था । उन्होंने उसका गहराई से निरीक्षण किया, तो उन शोणित बिन्दुओं में उन्हें जीवन प्रतीत हुआ । बाद में उन्होंने उपस्थित लोगों को बताया कि भले ही यह अनुभूतियाँ सूक्ष्म स्तर की हों, पर हैं एकदम जीवन्त-स्थूल जैसी ।

विलक्षणताएँ रहस्य परिधि में तभी तक बँधी रहती हैं, जब तक उनका कारण न जाना गया हो । हेतु ज्ञात हो जाने के बाद फिर वह अनबूझ-अज्ञात नहीं रह जातीं । ज्ञात से अज्ञात एवं स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने का क्रम हमारा लम्बे काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा, किन्तु भौतिक स्तर पर होने वाले इन प्रयासों की भूमिका फिर भी स्थूल ही बनी रहेगी । बीस वर्ष पूर्व की तुलना में आज के विज्ञान ने निश्चय ही अधिक गहराई और अधिक सूक्ष्मता में प्रवेश किया है, इसके बावजूद उसका स्तर स्थूल बना हुआ है । प्रयास जब तक भौतिक स्तर पर जारी रहेंगे, रहस्यों को समझ पाना असम्भव बना रहेगा । सम्भव और सुसाध्य वे तभी बन सकेंगे, जब अध्यात्म का अवलम्बन लेकर चेतना को इतना पवित्र और परिष्कृत बना लिया जाय, कि आत्म चेतना एवं परमात्म चेतना में किसी प्रकार का कोई अन्तर न रह जाय । स्थिति जब एकात्म-अद्वैत जैसी बन पड़ेगी, तो फिर सृष्टि और उसके पदार्थों का रहस्य समझते देर न लगेगी ।

सराक्यूज की रोती हुई प्रतिमा

हम जिस सौर-मण्डल में निवास करते हैं, वह 'स्पाइरल' नामक आकाश गंगा से प्रकाश पाता है । उससे एक नीहारिका कहते हैं और उसमें कई करोड़ तारे हैं । सूर्य उन करोड़ों तारों में से एक बहुत ही सामान्य तारा है । विशाल ब्रह्माण्ड में अकेले नीहारिकाओं की संख्या ही अरबों की संख्या में है । वैज्ञानिक कहते हैं अपना सौर-मण्डल ब्रह्माण्ड की कोई अनौखी घटना नहीं है । अनन्त ब्रह्माण्ड की तुलना में वह पृथ्वी की तुलना में चींटी के हजारवें अंश से भी छोटा है । इतने बड़े विशाल ब्रह्माण्ड का संचालन कितनी विधि- व्यवस्था से चल रहा है, उस पर थोड़ा चिन्तन करें तो ऐसा स्वयं ही जान पड़ता है कि कोई महामन्त शक्ति ही उसका संचालन कर रही है । उसका यह चमत्कार ही अद्भुत है मनुष्य तो इस सृष्टि की तुलना में कुछ भी नहीं के बराबर है ।

रामायण कहती है—

गिरा अरथ, जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
बन्दुउँ सीता राम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥

वह परम पिता परमात्मा सृष्टि के कण-कण में कुछ इस प्रकार समा गया है कि वह प्रकृति से कोई विगल सत्ता नहीं समझ पड़ती, पर उस नियामक ने अपने आपको स्वतन्त्र भी रखा है, जिससे वह सृष्टि के किसी भी क्षेत्र में दुःखी आत्माओं की रक्षा के लिए इच्छानुसार प्रकट होता रहता है । ऐसे चमत्कारों का भी अभी २०वीं शताब्दी में अभाव नहीं हुआ, भले ही अब नृसिंह भगवान के खम्भे से प्रकट होना, मीरा के विष को मधुर रस में बदल देना, प्रह्लाद को अग्नि में से जीवित निकाल लेना, लोगों को अनहोनी बात लगती है । उस सर्वशक्तिमान सत्ता की महत्ता इस युग में भी प्रगट हुए रहती नहीं ।

२९ अगस्त, १९५३ को अभी बहुत दिन नहीं हुए, जबकि सराक्यूज अमेरिका में एक पत्थर की मूर्ति (प्लास्टर ऑफ पेरिस) की आँखों से आँसू निकल पड़े और कई दिन तक आँसुओं का प्रवाह रुका नहीं। वैज्ञानिक आधार पर इन आँसुओं का विश्लेषण किया गया तो यह पाया गया कि मूर्ति की आँखों से स्रवित आँसुओं और मनुष्य के आँसुओं में कोई अन्तर नहीं है, इस घटना का आँखों देखा सत्य विवरण और उसके अद्‌भुत प्रभावों का प्रमाण सहित वर्णन डच विद्वान् फादर ए. सोमर्स एस. एम. एम. ने अच्छी प्रकार स्वयं मूर्ति का परीक्षण करके लिखा। फादर एच. जोंगेन ने उसका अनुवाद कर विश्व के शेष भागों तक पहुँचाया, पर इस घटना से एक बार सारे अमेरिका में हलचल मच गई। सैकड़ों आदमियों ने मूर्ति के आँसुओं का परीक्षण किया। हजारों ने उसके दर्शन किए, लाखों नास्तिकों को भी अपना विश्वास परिवर्तित करने को विवश होना पड़ा।

घटना का पूर्वारम्भ २१ मार्च, १९५३ को हुआ। उस दिन सराक्यूज में कुमारी एण्टोनियेटा और श्री ऐंग्लो जेन्यूसो का पाणिग्रहण संस्कार था। उस पुण्य तिथि पर मित्रों अभ्यागतों ने अनेक उपहार दिए। उन सामग्रियों में जो एण्टोनियेटा को उपहार में मिली, मीरा के गिरधर गोपाल मूर्ति की तरह, एक छोटी-सी प्रतिमा भी थी, जिसे जेन्यूसो के भाई और भाभी ने भेंट दी थी। २ इंच की यह छोटी-सी मूर्ति प्लास्टर की बनी हुई थी, अन्दर से खोखली और ऊपर पालिस (एनामेल) की हुई थी। एण्टोनियेटा को वह मूर्ति बड़ी प्यारी लगी। भावना ही तो है, जिस वस्तु पर आरोपित हो जाती है, खराब से खराब मिट्टी की वस्तु भी हीरे जैसी बन जाती है। भावनाओं की शक्ति का कोई पारावार नहीं। भावनाएँ ही खींचकर लाती थीं और निर्जन एकान्त में मीरा का भगवान साकार रूप में उनके साथ नृत्य करने लगता था। एण्टोनियेटा की भावनाओं के कारण वह मूर्ति साधारण प्रतिमा न होकर उसकी इष्टदेवी (मेडेना) बन गई। उसने उसे पलंग के सिरहाने लगा लिया। जिस तरह बालक किसी कष्ट या पीड़ा में माँ को भावनाओं का बल देकर पुकारता है और माँ हजार काम छोड़कर भागी हुई चली आती है, उसी प्रकार एण्टोनियेटा जब भी कभी दुःखी होती, अपनी साथिन मूर्ति से भावनात्मक वार्तालाप करती, उससे उसे बड़ा सन्तोष मिलता।

धीरे-धीरे एण्टोनियेटा गर्भवती हुई। गर्भ जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे एण्टोनियेटा का शारीरिक कष्ट न जाने क्यों बढ़ने लगा। वह सूख कर काँटा हो गई, आँखें धँस गईं और एक दिन दिखाई देना भी बन्द हो गया। जुबान ने बोलने से भी इन्कार कर दिया। मिरगी के से दौरे आते और वह एण्टोनियेटा मृत तुल्य हो जाती।

डॉक्टरी जाँच की गई। डॉक्टरों ने बताया भ्रूण में जहर फैल गया है, उसके फलस्वरूप ही शरीर में जहर बढ़ रहा है। डॉक्टर कोई निदान न ढूँढ़ पा रहे थे। एण्टोनियेटा पीड़ित दशा में अपलक उसी मेडेना की मूर्ति को निहारे जा रही थी, मानो उसे कोई शिकायत हो—हे प्रभु ! यदि तेरी सृष्टि मंगलमय है, तूने प्यार से मनुष्य को बनाया है तो क्या तेरे लिए यह उचित है, कि अपने ही बन्दों को इतना कष्ट दें ?

कहते हैं परमात्मा बड़ा न्यायकारी है, अपने न्याय के लिए वह जीवात्मा को बार-बार तपाता, कष्ट देता है और विभिन्न योनियों में पहुँचाते हुए भी वह जरा भी विचलित नहीं होता, किन्तु उसके हृदय की करुणा भी उस सिन्धु के समान है, जिसका जल प्रलय हो जाने पर भी समाप्त नहीं होता। ऐसा लगता है भगवान प्रारब्ध कर्मों को भोगने में कुछ भी हस्तक्षेप न करने को विवश थे, पर उनकी अनन्त करुणा उस दिन रुक न सकी और वह पत्थर की आँखें फोड़कर निकल ही पड़ीं।

२९ अगस्त, १९५३ को तीव्र दौरा आया तब एण्टोनियेटा का कष्ट असह्य हो उठा। ७ बजे जेन्यूसो को अपनी ड्यूटी पर विवश होकर जाना पड़ा। पलंग पर पड़ी एण्टोनियेटा अकेले तड़फड़ाकर उसी मूर्ति से अपनी भावना भरी वही प्रश्नमूलक दृष्टि डाले थी, उसी क्षण मूर्ति की आँखों से आँसू ढलके, एण्टोनियेटा को विश्वास नहीं हुआ, क्या यह सचमुच आँसू हैं ? या वह कोई स्वप्न देख रही है। उसने अपना सब कुछ निरीक्षण किया और पाया कि वह कोई स्वप्नावस्था में नहीं देख रही, वरन् सचमुच ही मूर्ति की आँखों से आँसू ढुलक रहे हैं।

कई दिन बाद आज पहली चीख सुनी गई। एण्टोनियेटा चिल्लाई, मेडेना रो रही है। तब पड़ोस की दो और स्त्रियाँ आयीं तथा उन्होंने भी सचमुच मेडेना को रोते हुए पाया। दोनों महिलाओं ने मूर्ति के सामने घुटने टेक कर प्रार्थना की और फिर बाहर निकल गईं। देखते-देखते सारे मुहल्ले में खबर दौड़ गई। जिसने सुना वही भागा, मूर्ति उपहार में देने वाली जेन्यूसो की भाभी ने भी आकर देखा, तब तक मूर्ति के इतने आँसू निकल चुके थे, जिससे सिरहाने का बिस्तर काफी भीग चुका था।

प्रारम्भ में लड़कियाँ और स्त्रियाँ ही यह दृश्य देखने दौड़ीं। कुछ लड़के भी आये। पड़ोस में एक सिपाही की धर्मपत्नी ने यह दृश्य देखा और अपने पति को बताया कि वाया डेगली ओरटी में एण्टोनियेटा की मेडेना की आँखों में आँसू झर रहे हैं। सिपाही ने जाकर सारी घटना पुलिस को सुनाई, इस बीच घर स्त्रियों से भर गया था। कई स्त्रियाँ प्रार्थनाएँ कर रही थीं और मूर्ति थी कि उसकी आँखों से बरसने वाले अश्रु-कण कम न होते थे।

उसी दिन दोपहर को डॉ. मारियो मेसीना, जो वाइआ कारसो में रहते थे, स्वयं घटना का निरीक्षण करने पहुँचे। उन्होंने जाकर मूर्ति को उठा लिया। दीवार जहाँ वह टँगी थी, उसे अच्छी तरह देखा कहीं कुछ भी गीला या पानी की बूँदें वहाँ नहीं थीं। मूर्ति की छाती, पेट भी सूखे थे। वह जो ताज पहने थी, उसे भी हटाकर साफ कर दिया। अच्छी तरह जब झाड़-पोंछ कर मूर्ति को पुनः रखा गया तो भी आँसुओं का वही प्रवाह अविरल गति से पुनः बह निकला।

डॉ. मारियो उस समय भावातिरेक से चिल्ला उठे मेडेना सचमुच रो रही है। उन्होंने बाहर आकर सैकड़ों लोगों को बताया—"यह एक अलौकिक प्रसंग है, जबकि न तो आँखें धोखा दे रही हैं और न बुद्धि साथ। विज्ञान उसका कोई उत्तर दे सकता है, हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। यही कह सकते हैं कि भगवान की माया सचमुच विलक्षण है।"

अब तक जेन्यूसो भी घर आ गया था, मूर्ति के रुदन को देखकर अपनी पत्नी के प्रति दर्द की सहानुभूति कुछ ऐसी उमड़ी कि वह भी दहाड़ मार कर रो पड़ा। उस दिन सैकड़ों-हजारों आँखें मूर्ति के साथ रोईं और भगवान की प्रतिमा मानो इसलिए और रोये जा रही थी कि मुझ पर विश्वास करने से अच्छा होता,

आप लोग संसार के दुःख और दुःखों के कारण ढूँढ़ते और उन्हें मिटाते।

अब तक पुलिस स्टेशन में भी इस घटना पर क्रम से विचार हो चुका था। उच्च-पदाधिकारियों की मीटिंग में यह निश्चित किया गया कि लगता है यह बहुत सुनियोजित प्रपंच है, इसलिए मूर्ति को यहीं थाने लाया जाय और उसका डॉक्टरी और वैज्ञानिक परीक्षण भी यहीं किया जाय।

रात १० बजे पुलिस जेन्यूसो के मकान पर पहुँची। जेन्यूसो सहित उसने मूर्ति को अपने अधिकार में ले लिया और थाने के लिए चल पड़ी। रास्ते में मूर्ति के आँसुओं का प्रवाह इतना बढ़ा कि सिपाही जिसके हाथ में मूर्ति थी उसकी सारी बर्दी ही भीग गई। थाने पर मूर्ति का पक्का निरीक्षण किया गया। जहाँ से भी सम्भव था खोलकर उसे देखा और साफ किया गया पर आँखों से मनुष्य जैसे आँसू कहाँ से आ रहे हैं, इस बात का कोई अन्तिम निर्णय न निकल सका। पुलिस अधिकारियों की भी आँखें गीली हो चलीं, उन्होंने भी प्रार्थनाएँ की और मूर्ति जहाँ लगी थी, सादर वहीं पहुँचा दिया। "यह ऐसी विलक्षण घटना है, जिसका कोई उत्तर पुलिस के पास नहीं है।" ऐसा कहकर पुलिस ने जेन्यूसो को भी मुक्त कर दिया।

३० अगस्त को सारे प्रान्त में यह खबर तेजी से फैल गई। लोग अखबारों और पत्रकारों से पूछताछ करने लगे। 'ला सिसीलिया' दैनिक पत्र के सम्पादक ने भी इस घटना का विस्तृत निरीक्षण किया और अपने रविवासरीय अंक में बड़े विश्वास के साथ लिखा—"हम स्वयं मेडेना के बहते आँसू देख चुके हैं। सायरेक्यूंस स्टेशन आगन्तुक दर्शनार्थियों के लिए छोटा पड़ रहा है। इस घटना ने सर्वत्र तहलका मचा दिया है, लगता है परमात्मा अपने विश्वास को प्रकट करने के लिए स्वयं ही आँसुओं को अभिव्यक्त कर रहा है। यह वह क्षण है, जब हम सब विचारशील लोग यह सोचने को विवश होते हैं, कि सचमुच विज्ञान से भी बड़ी कोई ताकत संसार में है, जो दिखाई न देने पर भी मानवीय शक्ति से प्रबल है। तब उसके हस्तक्षेप से परे कुछ भी न होना चाहिए।"

इसी प्रकार का एक बयान मिस्टर मासूमेकी ने भी प्रकाशित कराया। बाद में उन्हें, इस मूर्ति के दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों की सुविधा और सुरक्षा के लिए जो एक कमेटी बनाई गई, वह उसके अध्यक्ष भी नियुक्त किए गए। इस तरह सैकड़ों प्रामाणिक व्यक्तियों ने रोती हुई मूर्ति का आँखों देखा हाल छापा। इसी दिन 'ला सिसीलिया डेल लुनेडी' अखबार के एक रिपोर्टर ने अखबार को टेलीफोन में बताया कि—"मेडेना के आँसू बन्द नहीं हो रहे। यह एक महान् आश्चर्य है जिसके रहस्य का पता लगाया ही जाना चाहिए। यदि यह सच है कि मूर्ति के आँसुओं का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है तो हमें उस सत्ता की खोज के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए जो पदार्थ विज्ञान को भी नियन्त्रण में रख सकती है उस पर स्वतन्त्र आधिपत्य स्थिर कर सकती है।" इसी तरह के अनेक सुझाव और परामर्श भिन्न-भिन्न पेशों के अनेक लोगों ने व्यक्त किए। इधर मूर्ति के दर्शनों के लिए हजारों लोग खिंचे चले आ रहे थे।

मूर्ति रुदन के चौथे और अन्तिम दिन 'ला सिसीलिया' के इस कथन—"मेडेना के दर्शनार्थियों की भीड़ जिस तेजी से बढ़ रही है, यह रहस्य उतना ही उलझता जा रहा है। यह निर्विवाद है कि वहाँ कोई मनगढ़न्त कहानी, हिप्नोटिज्म अथवा जादूगरी की कोई सम्भावना नहीं है तो फिर आँसुओं के बहने का वैज्ञानिक कारण क्या है, उसका पता लगाया ही जाना चाहिए"—पर सरकारी तौर पर तीव्र प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की गई।

उसी दिन १० पुरोहितों (प्रीस्ट्स) के एक दल (डेलीगेशन) ने भी यह घटना देखी। फादर वेंसेन्जो ने रोती हुई प्रतिमा के कैमरा फोटो लिए। बाद में और भी बहुत से लोगों ने फोटो लिए। उसी दिन इटालियन क्रिश्चियन लेबर यूनियन के अध्यक्ष प्रो. पावलो अलबानी ने भी यह घटना अपनी आँखों से देखी। उसी दिन पुलिस अधिकारियों ने सारी घटना की दुबारा ब्योरेवार जाँच की, पर फिर भी उन्होंने यही पाया कि यह आँसू किसी कृत्रिम उपकरण की देन नहीं, वास्तविक मूर्ति के ही आँसू हैं। आँखों के अतिरिक्त मूर्ति का कोई अंग गीला नहीं मिला। उसी दिन सरकारी तौर पर एक न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) का संगठन किया गया। उसमें पुलिस के अधिकारी, विशेषज्ञ और वैज्ञानिक भी थे और उनसे घटना का निश्चित उत्तर देने को पूछा गया।

१ सितम्बर, १९५३ का दिन था। फादर ब्रूनो, जाँच विशेषज्ञ और पुलिस अधिकारी उस मकान में पहुँचे, जहाँ वह आँसू बहाने वाली प्रतिमा रखी थी। बड़ी मुश्किल से पुलिस की सहायता से सब लोग मूर्ति तक पहुँच सके। भीड़ का कोई आदि था, न अन्त। जिन चार व्यक्तियों की देख-रेख में परीक्षण प्रारम्भ हुआ वह—(१) जोसेफ ब्रूनो पी. पी., (२) डॉ. माइकेल केसैला, डाइरेक्टर ऑफ माइक्रोग्रेफिक डिपार्टमेण्ट, (३) डॉ. फ्रैंक कोटजिया असि. डाइरेक्टर, (४) डॉ. लूड डी. उर्सो थे। इनके अतिरिक्त निस सैम्परिसी, चीफ कान्स्टेबुल प्रो. जी. पास्क्विलीनो डी. फ्लोरिडा, डॉ. ब्रिटिनी (केमिस्ट) फैरिगो उम्ब्रर्टो (स्टेट पुलिस के ब्रिगेडियर) तथा प्रेसीडेण्ट ऑफिस के प्रथम लेफ्टिनेण्ट कारमेलो रमानों भी थे।

जब चारों वैज्ञानिक और विशेषज्ञों ने आवश्यक जाँच के कागज तैयार कर लिए, तब उन्होंने मूर्ति देने के लिए एण्टोनियेटा से प्रार्थना की। मूर्ति अलमारी में एक कागज में लिपटी हुई बन्द थी। एण्टोनियेटा के शारीरिक लक्षण तेजी से बदल रहे थे। डॉक्टर का उपचार भी काम कर रहा था, अब तक उसकी आँखों में प्रकाश भी आ चुका था और जुबान का लड़खड़ाना भी बन्द हो चुका था। डॉक्टर उसे भगवान की कृपा ही मान रहे थे, क्योंकि चार दिन पूर्व तक उस पर किसी दवा का प्रभाव नहीं हो रहा था।

उसने मूर्ति का द्वार खोल दिया। उक्त विशेषज्ञों ने दाईं और बाईं दोनों आँखों से पिपेट की सहायता से एक-एक सी. सी. आँसू इकट्ठा किए। उन्होंने सब तरफ से परीक्षण किया पर आँसू कहाँ से आ रहे हैं, यह कुछ न जान सके, पर अब इधर इण्टोनियेटा भी चंगी हो चुकी थी और आँसुओं की भी वह अन्तिम किश्त थी, जिसे जाँच कमेटी एकत्रित कर सकी थी, बस तभी अचानक मूर्ति की आँखों से आँसू आने बन्द हो गए।

अगले दिन आँसुओं का विश्लेषण (एनालिसिस) किया गया । प्रो. ला रोजा ने लिखा—

श्री पूज्य एम. डी. कास्ट्रो,

प्रीस्ट ऑफ सेण्टिगो डी. सूडाड रिकाल स्पेन,

आपकी प्रार्थना पर वह सब कुछ लिख रहा हूँ—कमीशन ने आँसू इकट्ठे किए हैं, मूर्ति दो पेचों के द्वारा जुड़ी हुई थी । मूर्ति का प्लास्टर बिल्कुल सूखा हुआ था, आँसुओं का निरीक्षण आर्कबिशप क्यूरियो द्वारा नियुक्त कमीशन ने किया है, माइक्रो किरणों से देखने पर इन आँसुओं में वे सभी तत्व पाये गए हैं, जो तीन वर्ष के बच्चे के आँसुओं में होते हैं, यहाँ तक कि क्लोरेटियम के पानी का घोल, प्रोटीन व क्वार्टरनरी साफ झलक दे रहा था । मेरी पूर्ण जानकारी में मेरे हस्ताक्षर साक्षी हैं—

हस्ताक्षर

प्रो. एल. रोजा

बाद में मूर्ति बनाने वाला कारीगर भी आया, उसने अपने हाथ से बनाई हुई ऐसी अनेक मूर्तियों के बारे में बताया, जो बाजार में बिकीं पर उनमें से किसी के साथ भी ऐसी कोई घटना नहीं हुई ।

अन्ततः वैज्ञानिक हैरान ही रहे, कि जब तक एण्टोनियेटा को अत्यधिक पीड़ा रही, मूर्ति क्यों रोती रही और डॉक्टरी सहायता के बावजूद भी जो अच्छी न हुई थी । वह कैसे अच्छी हुई और उस असहाय का कष्ट दूर होते ही मूर्ति के आँसू क्यों बन्द हो गए ? इसका कोई निश्चित निष्कर्ष वे न निकाल सके पर उन्होंने यह अवश्य स्वीकार किया कि इस विज्ञान से भी बढ़कर कोई भावनाओं का विज्ञान अवश्य है, जिसका मनुष्य जीवन से सीधा और गहरा सम्बन्ध है, जब तक मनुष्य उस पर विश्वास नहीं करता, उसे जानता नहीं, तब तक उसकी मूल समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं ।

व्यक्तित्वों के बीच असाधारण साम्य संयोग

यों हर व्यक्ति का अस्तित्व पृथक-पृथक है । रक्त, माँस आदि का स्वरूप एक जैसा दीखने पर भी उनके रासायनिक पदार्थों में न्यूनाधिकता पायी जाती है । इसी आधार पर आकृति और प्रकृति की भिन्नता दृष्टिगोचर होती है । सृष्टा के कला-कौशल का यह एक अद्भुत प्रयोग है कि एक ढाँचे में उसने किसी भी घटक को नहीं ढाला । सबमें थोड़ा बहुत अन्तर रहता है । एक ही पेड़ की पत्तियाँ मोटी दृष्टि से देखने में एक जैसी लगती हैं, पर बारीकी से देखने पर उनमें से हरेक के बीच अन्तर पाया जाता है ।

भेड़ें एक जैसी लगती हैं । अजनबी के लिए उनमें अन्तर करना कठिन है, किन्तु गड़ेरिया अपने झुण्ड की हर भेड़ का अन्तर पहचानता है । उनमें से कोई किसी अन्य के झुण्ड में जा मिले, तो उससे सहज ही पहचान कर पकड़ निकालता है । मनुष्यों की आकृति और प्रकृति के सम्बन्ध में भी यही बात है । सर्वथा एक जैसे कोई दो कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होते । कितने ही समान क्यों न लगते हों, पर अन्तर अवश्य रहेगा । हाथ के अँगूठे की छाप लेने के पीछे भी यही कारण है, कि संसार में किन्हीं भी दो व्यक्तियों के अँगूठे की त्वचा पर रहने वाली लकीर एक जैसे आकार-प्रकार की नहीं होतीं ।

इतने पर भी कभी-कभी संयोगवश ऐसे लोग मिलते हैं, जिनके बीच असाधारण साम्य पाया जाता है । न केवल उनके स्वरूप एवं स्वभाव में समानता होती है, वरन् कई बार तो उनके साथ घटित होने वाले घटनाक्रम भी इस प्रकार साम्य लिए होते हैं, कि उस कथन पर सहज विश्वास नहीं होता और इस संयोग का कारण समझ में नहीं आता । फिर भी जो प्रत्यक्ष है, उसे झुठलाया भी कैसे जाय ? ऐसे प्रसंग कई बार अनबूझ पहेली जैसे जटिल प्रतीत होते हैं । ऐसे विचित्र संयोगों की घटनाओं में कुछ का विवरण प्रामाणिक उल्लेखों में इस प्रकार मिलता है ।

अमेरिकी राष्ट्रपति थामस जेफर्सन 'डिक्लेरेशन ऑफ इण्डिपेन्डेन्स' पुस्तक के प्रख्यात लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त है और जॉन आदम्स उनके मुख्य शिक्षकों में से एक थे । आदम्स यूनाइटेड स्टेट्स के द्वितीय राष्ट्रपति चुने गए और जेकर्सन तृतीय राष्ट्रपति बने । इन दोनों व्यक्तियों की प्रगाढ़ आत्मीयता बेमिशाल थी । दोनों महान् विभूतियों की मृत्यु ५० वर्ष की आयु में ४ जुलाई, १८२६ को हुई । जेफर्सन की यह इच्छा सदैव बलवती बनी रही कि वह आदम्स के साथ निरन्तर घनिष्ठतम सम्बन्ध बनाये रहें । अपने अन्तिम क्षणों में जेफर्सन ने उपस्थित लोगों से यही पूछा था—क्या आज चौथी तारीख है ?

राष्ट्रपति जॉन आदम्स १८०१ में अपने सामाजिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर चुके थे, फिर भी वे राष्ट्रपति जेफर्सन से अपने अन्तिम दिनों तक जीवन सम्पर्क बनाये रहे । जीवन के अन्तिम क्षणों में उनके वाक्य थे—जेफर्सन सुनिश्चित रूप से जीवित होंगे । हम साथ-साथ जायेंगे और सचमुच उनका हमसफर ५ घण्टे बाद मृत्यु को प्यारा हुआ ।

२८ जुलाई, १६०० में इटली के राजा अम्बेर्टो प्रथम अपने परिसहायक जनरल एमीलिओ पोन्जिओ वैग्लिया मिलान शहर के कुछ मील दूर स्थित मोन्जा नामक कस्बे में पहुँचे । अगले दिन वहाँ उन्हें खिलाड़ियों को पुरस्कार वितरण करना था । रात्रि के समय राजा अपने सहायक के साथ एक रेस्टोरेण्ट में भोजन करने गए । रेस्तरां के मालिक को ऑर्डर देते हुए अम्बेर्टो ने बताया कि एक ही नाम और शक्ल सूरत में दो व्यक्ति अलग हैं । दोनों का जन्म एक ही दिन एक ही समय में १४ मार्च, १८४४ को एक ही कस्बे में हुआ और दोनों के नाम अम्बेर्टो रखे गए थे । दोनों का विवाह २२ अप्रैल, १८६८ के दिन मार्घेरिता नाम की दो अलग-अलग लड़कियों के साथ सम्पन्न हुआ । दोनों को एक-एक पुत्र हुआ जिनका नाम विक्टोरिया रखा गया । जिस दिन राजा अम्बेर्टो का राज्याभिषेक हुआ ठीक उसी दिन दूसरे द्वितीय अम्बेर्टो ने अपना रेस्तरां खोला ।

जुलाई १६०० में जिस दिन अम्बेर्टो मोन्जा के उस रेस्तराँ में ठहरे थे उसी दिन एक हत्यारे ने गोली चला कर रेस्तरां मालिक अम्बेर्टो की हत्या कर दी । रेस्तरां मालिक के दाह संस्कार में भाग लेने गए राजा अम्बेर्टो भी एक अज्ञात हत्यारे की गोली का निशाना बन गए और वहीं उन्होंने दम तोड़ दिया । दोनों की शव यात्रा साथ-साथ निकाली गई ।

१६७६ में रीडर डाइजेस्ट के जर्मन संस्करण 'दास वेस्टे' ने एक प्रतियोगिता आयोजित की । विषय था—दास बेस्टे के

पाठकों द्वारा निजी अनुभवों से सम्बन्धित सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ प्रेषित करना । पुरस्कार वितरण का समय ६ दिसम्बर को रखा गया ।

सम्पादक के पास लगभग ७००० कहानियों का पुलिन्दा एकत्र हो गया, जिनमें से म्यूनिख के वायुयान चालक वाल्टर केल्नर की कहानी को सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में चुना गया जो वाल्टर की उनके अपने जीवन में घटित घटना से सम्बन्धित थी । वाल्टर का जहाज सेसना-४२१, १०००० फीट गहरे टाइरेनियन समुद्र में गिर कर दुर्घटनाग्रस्त हो गया था । दैवयोग से वाल्टर रबर की एक डोंगी पर सवार होकर सुरक्षित समुद्र से निकल आये थे । पुरस्कार वितरण के समय वाल्टर उस डोंगी को अपने साथ लेकर सम्पादक के कार्यालय पर उपस्थित हुए । उसी समय आस्ट्रिया के वाल्टर केल्नर नाम के दूसरे पायलट ने उस पुरस्कार पर अपना अधिकार जाहिर किया । उसे भी उसी कहानी के लिए उक्त आवश्यक का पत्र मिला था । दोनों पायलट थे और और एक ही नाम व नम्बर के जहाज लेकर उड़ानें भरते थे । दोनों के वायुयान टाइरेनियन समुद्र में एक ही ऊँचाई से गिरकर एक ही स्थान पर डूबे थे । दोनों के चालकों को वायुयान, ईंजन की खराबी के कारण विवश होकर नीचे सारडिनिआ के पास समुद्र में उतारने पड़े थे । दोनों ही भाग्यशाली थे और इस विचित्र संयोग के आधार पर दोनों को पुरस्कृत किया गया ।

सन् १९७५ की एक घटना है । इस्टेबल, बेडफोर्ड इंग्लैण्ड के मेल्किस नामक भवन में एक परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे थे । अचानक छत को तोड़ता हुआ बर्फ का एक बहुत बड़ा टुकड़ा नीचे फर्श पर आ गिरा । खोज करने पर मालूम हुआ कि सभी व्यक्तियों के मन में ठीक उसी समय तीव्र गर्मी के कारण बर्फखाने की इच्छा हो रही थी ।

१६ वर्षीय फ्रैंज रिचर आस्ट्रियन ट्रान्सपोर्ट कोर में कर्मचारी था । प्रथम विश्वयुद्ध के समय प्रस्तुत विषाक्त वातावरण से उसे न्यूमोनिया हो गया और अस्पताल की शरण लेनी पड़ी । उसी अस्पताल में फ्रैंज रिचर नाम का एक दूसरा रुग्ण व्यक्ति भी भर्ती था । उसकी उम्र १६ वर्ष ही थी और वह भी न्यूमोनिया से पीड़ित था । वह नवयुवक भी ट्रान्सपोर्ट कोर में ही कर्मचारी था । दोनों युवक साइलेशिया के रहने वाले थे ।

४० वर्ष पूर्व ओहियो शहर में एक दम्पत्ति के यहाँ समान रूप रंग के दो जुड़वाँ बच्चों ने जन्म लिया । बाल्यावस्था में ही दोनों अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा गोद ले लिए गए । ३९ वर्ष बाद १९७९ में वे फिर से मिले । खोज करने पर पाया गया कि दोनों के नाम जेम्स थे और दोनों ने मेकेनिकल ड्राईंग और कारपेण्ट्री में डिप्लोमा ले रखा था । दोनों की पत्नियों का नाम लिण्डा था और दोनों को एक-एक पुत्र था, जिनके नाम क्रमशः जेम्स एलन और जेम्स एलन था । दोनों ने अपनी पत्नियों को तलाक देकर दूसरा विवाह किया । संयोग से दोनों की नव- विवाहिताओं का नाम बेट्टी था । दोनों के पास 'टाय' नामक एक-एक कुत्ता था । दोनों पीटर्सबर्ग, फ्लोरिडा में निवास कर रहे थे । यों दोनों के बीच कोई नियमित सम्पर्क या स्नेह सम्बन्ध या आदान-प्रदान का सिलसिला नहीं चला, तो भी इस प्रकार के अद्‌भुत साम्य का घटनाक्रम घटित हुआ ।

२० अप्रैल, १९७८ के 'द वाशिंगटन पोस्ट' में एक ही नाम की दो महिलाओं की कहानी प्रकाशित हुई थीं । दोनों का नाम वान्डामेरी जॉन्स था । इनमें से एक महिला एडेल्फी, मेरीलैण्ड, प्रिंस जॉर्ज काउण्टी की रहने वाली है और इस समय वाशिंगटन के यूनियन स्टेशन में वैगेज क्लर्क हैं । दूसरी महिला सूइटलैण्ड, मेरीलैण्ड प्रिंन्स जॉर्ज काउण्टी की रहने वाली और वाशिंगटन के डी. सी. जनरल हॉस्पिटल में नर्स का काम कर रही है ।

दोनों वान्डा मेरी का जन्म १५ जून, १९५६ को वाशिंगटन शहर में हुआ था और दोनों ही इस शहर को छोड़कर प्रिंस जॉर्ज काउण्टी चली गई । दोनों के दो-दो बच्चे हैं, जिनका जन्म एक ही अस्पताल में हुआ । दोनों महिलाओं के पास अपनी-अपनी फोर्ड कारें हैं, जिनका नम्बर भी ११ की संख्या में अन्तिम तीन अंकों को छोड़कर समान है ।

ऐसी घटनाएँ यह सोचने के लिए विवश करती हैं कि सृष्टि के अन्तराल में कोई ऐसा सूत्र है, जो प्राणियों को एक-दूसरे के साथ बाँधने के अतिरिक्त उनके बीच समानता ही नहीं एकात्मता के भी सूत्र जोड़ता है । स्वभाव और व्यक्तित्व की दृष्टि से तो कितने ही लोगों के बीच बहुत कुछ समता पायी जाती है । सन्त, सज्जनों के भी अपने समुदाय होते हैं और दुष्ट दुरात्मा भी अपनी खलमण्डली जुटा लेते हैं । यह समीपता संगठन स्वभाव साम्य के आधार पर ही बन पड़ती है । यह साधारण बात हुई । विशेषता का आरम्भ वहाँ से होता है, जहाँ दो व्यक्तियों के मध्य घटनाक्रम भी एक ही प्रकार से घटित होता और जीवनचर्या के साथ जुड़े हुए विशेष प्रसंगों में आश्चर्यजनक साम्य संयोग बिठा देता है ।

जुड़वाँ बच्चों के बीच कई बार असाधारण समता पायी जाती है । उनकी जीवनचर्या का तारतम्य भी एक जैसा चलता है । इसका कारण एक ही माता के उदर से एक ही समय एक ही ढंग से पालन होने को माना जाता है, पर जो लोग भिन्न स्थानों में जन्मे, उनके बीच साम्य संयोग का क्रम कैसे चला ? इसका समाधान इसी प्रकार होता है, कि प्रकृति माता की उदर गुहा में भी कुछ अदृश्य परिपालन में असाधारण समीपता और घनिष्ठता जुड़ी हो सकती है और वे एक ही उँगली में बँधे कई धागों द्वारा कई कठपुतलियों के नाचने जैसा दृश्य प्रस्तुत कर सकते हैं । यह संयोगवश होने वाले घटनाक्रम बनाते हैं, कि प्रयत्नपूर्वक भी ऐसे साम्य बनाये जा सकते हैं और एक ही व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व कइयों द्वारा किया जाना भी सम्भव हो सकता है ।

कुछ अनसुलझी गुत्थियाँ

आमतौर से शरीर मृत्यु के उपरान्त तेजी से सड़ने लगता है और स्वयमेव बिखर जाने के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । भीतर से कृमि-कीटक उत्पन्न होते हैं और वे उसे खा-पीकर समाप्त कर देते हैं । यह कार्य और भी जल्दी हो, इसके लिए प्रकृति ने कुछ ऐसे प्राणी उत्पन्न किए हैं, जो मृत शरीरों की तलाश करते रहते हैं और जहाँ कहीं वे मिलते हैं, उन्हें समाप्त कर देने के कार्य में जुट जाते हैं । पक्षियों में गिद्ध और चील इसी वर्ग के हैं । सियार और कुत्तों को भी किसी मृतक पशु की काया का अस्तित्व समाप्त करने की जल्दी पड़ती है और वे गन्ध पाते ही दौड़ कर वहाँ जा पहुँचते हैं । कुटुम्बी जन अपने ढंग से इस कार्य को पूरा करते हैं । प्रचलनों के अनुसार उन्हें जलाया, गाड़ा या बहाया जाता है ।

यह प्रकृति व्यवस्था की बात हुई । मृत शरीर को सुरक्षित रखने का प्रयास मनुष्य भी करता रहा है । मिस्र के पिरामिडों में मसाले से लिपटे हुए ऐसे शरीर पाये गए हैं, जो हजारों वर्ष बीत जाने पर भी पूरी तरह नष्ट नहीं हुए और पहचाने जाने योग्य स्थिति में बने रहे । इस सन्दर्भ में रूसी वैज्ञानिकों का वह प्रयास भी अनुपम है, जिसके अनुसार लेनिन के शरीर को उसी रूप में सुरक्षित रखने का प्रयत्न हुआ है । इस मृत काया को देखने के लिए अभी भी सुदूर देशों के लोग पहुँचते हैं और इस मानवी कौशल पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं ।

इसी प्रकार के प्रयोग अमेरिका में भी हुए हैं । पिछले दिनों तक वहाँ ऐसे ११ शव सुरक्षित रखे गए थे, ताकि उन्हें पुनर्जीवित किया जा सके । इन सभी शवों से मलादि निकाल कर उनमें चाँदी की पतली पर्त लपेटी गई है और फिर दो पर्त वाले ताबूत में उन्हें बन्द कर वहाँ हवा न पहुँचे, ऐसी व्यवस्था की गई है ।

प्रकृतिगत और मनुष्यकृत उपर्युक्त उपाय-उपचारों के अतिरिक्त इस सन्दर्भ में कभी-कभी आत्म शक्ति को भी कुछ विलक्षणता प्रकट करते हुए देखा गया है । ऐसी घटनाएँ सामने आती रही हैं, जिनमें लम्बे समय तक मृत शरीरों का अस्तित्व इस रूप में बना रहा, जिससे उनमें किसी ऐसी प्राण-चेतना की संभाव्यता पायी गई, जिसने उन्हें सड़ने नहीं दिया । ऐसी घटनाओं में सन्त स्तर के शरीरों की प्रमुखता रही है । इनमें गोवा के सन्त फ्रांसिस का उदाहरण प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है, जहाँ लाखों क्रिश्चियन नर-नारी उनके दर्शन करने पहुँचते हैं । एक निश्चित दिन ही दर्शन हेतु सबके लिए चर्च खोला जाता है ।

अनाया, लेबनान के सेण्ट मेरोन मठ के मठाधीश चार्बेल मेकोफ की १८६८ ई. में मृत्यु हो गई । मठ के नियमानुसार अन्य मठाधीश की तरह उन्हें भी एक कब्र में दफना दिया गया । उनकी कब्र के चारों ओर एक विशेष प्रकाश कई सप्ताह तक बना रहा । एक दिन तीव्र मूसलाधार वर्षा के कारण चार्बेल का शव उफनता हुआ कब्र से बाहर आ गया । शरीर पर सड़ने-गलने के नामोनिशान तक नहीं थे । शव को धोकर साफ किया गया और लकड़ी के एक ताबूत में बन्द करके मठ के एक प्रार्थनालय में सुरक्षित रख दिया गया । कुछ दिनों बाद उस शरीर से एक विलक्षण तैलीय पदार्थ बाहर निकलने लगा और इससे रक्त और मीठे की सम्मिश्रित सुगन्ध निकल कर वातावरण में चारों ओर फैलने लगी । इस तरल पदार्थ से शरीर पर ढँके कपड़े भीग जाते थे, जिससे एक सप्ताह में उन्हें दो बार बदल कर पहनाया जाने लगा ।

सन् १९२७ में चार्बेल की मृत्यु के २९ वर्ष बाद उनके शरीर का चिकित्सकों द्वारा निरीक्षण किया गया और उसे निर्दोष पाया । चिकित्सकों की रिपोर्ट और उपस्थित जनसमुदाय के साक्षात्कार को लिपिबद्ध करके जिंक के एक ट्यूब में बन्द करके ताबूत को सामने वाली दीवार में रख कर ईंटों से चिनाई करा दी गई ।

सन् १९५० में रक्षकों ने सूचित किया कि ताबूत के सामने मठ की दीवार से एक विचित्र सा तरल द्रव बाहर निकल रहा है । कब्र को तोड़कर ताबूत को बाहर निकाला गया और पादरी तथा चिकित्सा अधिकारियों के सामने शरीर का निरीक्षण परीक्षण किया गया । चार्बेल के शरीर को देखने पर लगता था, जैसे चार्बेल गहन निद्रा में सो रहे हों । शरीर पर ढँके कपड़े फट गए थे और विशेष प्रकार के एक तैलीय द्रव में भीगे हुए थे । ताबूत में तीन इंच मोटी तैलीय परत जम गई थी, जिसे निकाल कर ताबूत की सफाई की गई । ताबूत के पास दफन की गई जिंक ट्यूब को खोला गया, जिसमें वर्णित पूर्व घटना की तुलना वर्तमान घटना से की गई, तो दोनों में समानता ही मिली । चार्बेल का शव फिर से ताबूत में बन्द करके वहीं दफना दिया गया ।

इलाई महिला मारिया अन्ना का शरीर उसकी मृत्यु के १०७ वर्ष बाद सन् १७३१ में एक खुदाई में प्राप्त हुआ । मूर्धन्य चिकित्सकों और सर्जनों की ग्यारह सदस्यीय टीम ने मारिया की मृतक देह का परीक्षण किया । शरीर पर कहीं विकृति उत्पन्न नहीं हुई थी । सम्पूर्ण शरीर कोमल, सुन्दर ओस से परिपूर्ण था एवं उससे एक विशेष प्रकार की सुगन्ध निकल रही थी । शरीर के बाहरी अंगों एवं अन्तरागों में एक प्रकार की चिकनाई लगी हुई थी ।

अनुसन्धान की कड़ी में कुछ नया पाने के लालच में चिकित्सकों ने शरीर का शवोच्छेदन किया । कोई नयी कड़ी तो उनके हाथ नहीं लगी, परन्तु विशेष प्रकार की खुशबू से उनके हाथ कई दिनों तक सुवासित बने रहे ।

पोलैण्ड के जेसूइट सन्त एण्डयू बोबोला रूस से रूढ़िवादियों के मध्य अपने मिशन का प्रचार-प्रसार बड़ी सफलतापूर्वक कर रहे थे । अपने इस कार्य के लिए वे प्रतिष्ठित हो चुके थे । सर्वत्र अनेक कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जा रही थी । सन् १६५७ में ६७ वर्ष की अवस्था में छापामार कोसैक्स ने सन्त की नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी और क्षत-विक्षत शव को पिंस्क के जेसूइट चर्च के पास गोबर के ढेर में दफना दिया ।

हत्या के ४४ वर्ष जेसूइट कॉलेज के प्राचार्य को एक स्वप्न आया, जिसके बाद फादर बोबोला के शव को गोबर के ढेर से खोदकर बाहर निकाला गया ।

सन्त का शरीर बेदाग बिना सड़ा हुआ एकदम ताजा-सा प्रतीत हो रहा था । वह मुलायम भी था और लोचयुक्त भी, ठीक वैसी ही जैसी जीवित काया होती है । अकड़न उसे छू तक नहीं पायी थी ।

मृत्यु के ७३ वर्ष बाद ६ पादरियों और ५ मेडीकल विशेषज्ञों के एक दल ने फादर बोबोला के शरीर का अध्ययन किया और इस प्रकार शरीर के सुरक्षित रहने को अप्राकृतिक परिणाम की संज्ञा दी । यों अध्ययन दल के चिकित्सक सदस्यों का कहना था कि सम्भव है ऐसा गोबर में पड़े रहने के कारण हुआ हो । कदाचित् उसमें कोई ऐसा तत्व हो, जो शरीर की सड़न को रोकता हो, इसलिए इतने वर्षों के उपरान्त भी देह यथावत् बनी रही, पर चिकित्सकों की यह मान्यता निराधार साबित हुई, क्योंकि शरीर पर गोबर की गन्दगी को साफ करने के बावजूद भी वह अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है ।

पैडुआ के सन्त एन्थनी १२वीं सदी में फ्रांस के प्रतिष्ठित धर्मोपदेशक माने जाते थे । वे न केवल अपनी पवित्रता, वरन् अपनी वाक्पटुता और विद्वता के लिए भी विख्यात थे । मृत्यु के एक वर्ष बाद सन् १२३२ में इन्हें सन्त की पदवी प्रदान की गई । मृत्यु के ४३० वर्ष बाद किन्हीं कारणों से उनकी कब्र खोदनी पड़ी तो लोग यह देखकर चकित रह गए कि उनकी मृत काया जीवितों

के सदृश्य प्रतीत हो रही थी । सन्त की सम्पूर्ण काया भूरे रंग की धूल में लिपटी थी ।

बहाई धर्म के महात्मा बाब की मृत्यु आज से करीब एक शताब्दी पूर्व हुई । मृत्यु के उपरान्त उनके शव को धार्मिक कर्मकाण्डों के साथ दफना दिया गया, पर शायद जीवित अवस्था की तरह मृत्यु के उपरान्त भी लोग उनके शरीर को कब्र में चैन से नहीं रहने देना चाहते । इस लम्बी अवधि में उनकी मृत देह को अनेक कारणों से दो बार निकालना पड़ा । सब यह देखकर हैरान रह गए कि महात्मा मृत्यु के बाद चिरनिद्रा में जिस प्रकार सोये पड़े थे, उन अवसरों पर भी उनकी उस अवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था । गाल और पेट अन्दर की ओर कुछ पिचक गए थे, शरीर की त्वचा जीवन्त और तरोताजा प्रतीत होती थी ।

सत्रहवीं सदी के फ्रांसीसी सन्त एण्ड्रयू इमेनुएल के बारे में कहा जाता है कि अस्सी वर्ष की अवस्था में जब उनकी मृत्यु हुई, तो दर्शनार्थियों की भारी भीड़ के कारण चार दिनों तक उनके शरीर को पेरिस के एक हाल में दर्शनार्थ रखा गया । इस दौरान न तो उसमें कोई सड़न देखी गई और न ऐसी कोई प्रक्रिया आरम्भ हुई, जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सके कि देह का विघटन कब प्रारम्भ हो गया । इन चारों दिनों में उनके शरीर के चारों ओर एक विशेष आभा देखी गई और यह भी अनुभव किया गया जैसे कोई विशेष सुगन्ध उनके शरीर से निकल कर वातावरण को सुवासित कर रही हो । चार दिनों बाद जब उनके शरीर को दफनाया गया, तब वह आभा यथावत् बनी हुई थी ।

ऐसी ही एक घटना एलिसबरी चर्च के फादर लैंग के बारे में विख्यात है । कहा जाता है कि फादर को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था । १८८० में १७ अक्टूबर को जब उनकी मृत्यु हुई, इससे एक माह पूर्व से ही वे धार्मिक कर्मकाण्डों में अत्यधिक व्यस्त देखे गए, जबकि सामान्य जीवनक्रम में वे उतने व्यस्त कभी दिखाई नहीं पड़े । अधिकांश समय ईसा के चित्र के समक्ष प्रार्थना करते देखे गए । इस बीच उन्होंने बोलना एकदम कम कर दिया था । कहा जाता है कि उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य थियोडोर से इस बात की चर्चा की थी, कि यदि मृत्यु के उपरान्त उनकी देह एक सप्ताह तक भी यों ही पड़ी रही, तो भी उसमें विकृति नहीं आयेगी और बराबर एक खुशबू उससे निकाल कर वातावरण को सुगंधित बनाये रखेगी । हुआ भी ऐसा ही । एक सप्ताह तक उससे लगातार एक सुगन्धि निकलती रही और शरीर देखने से ऐसा लगता था, जैसे फादर गहरी निद्रा में सोये हों ।

चेतना का तनिक भी अंश मृत्यु के उपरान्त देह में बना रहा, तो शरीर की सड़न रुक जाती है, इसे अब विज्ञान भी अपने ढंग से स्वीकारने लगा है । सम्भवतः इन सभी में ऐसा ही कुछ हुआ हो व प्रकृति के नियम झुठला दिए गए हों ।

मनुष्य हतप्रभ है, इन अबूझ पहेलियों से

आये-दिन प्रकृति जगत में एवं दैनिक जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटती रहती हैं, जिनका कारण जानना अत्यन्त कठिन होता है । इतना सुनिश्चित है कि ये निरुद्देश्य नहीं होतीं । उनमें कोई-न-कोई रहस्य छिपा होता है । हम उन्हें नहीं समझ पाते, यह बात दूसरी है । यदि इन्हें जाना जा सके, तो इन अबूझ जैसी लगने वाली कितनी ही पहेलियों को सरलतापूर्वक समझ कर अपनी जिज्ञासा को शान्त किया व पिण्ड-ब्रह्माण्ड सम्बन्धों को जाना जा सकता है ।

केण्ट, इंग्लैण्ड की कु. मोयट ने जून १९५३ में एक स्वप्न देखा, जिसमें एक अजनबी उससे अपना चित्र बनाने पर जोर दे रहा था । मोयट को सपना कुछ अटपटा-सा लगा । उसे यह समझ में नहीं आया कि वह व्यक्ति ऐसा क्यों कह रहा है, फिर भी अनमने मन से दूसरे दिन स्मृति के आधार पर उसने तस्वीर बनायी । देखने वालों ने बताया कि यह स्थानीय गिरजाघर के पादरी ह्यूज का चित्र है, जो अब से २५ वर्ष पूर्व दिवंगत हो चुके हैं । दोनों की कभी मुलाकात नहीं हुई, फिर क्यों पादरी ने मोयट को अपनी तस्वीर बनाने के लिए प्रेरित किया । यह आज भी उसके लिए एक पहेली बनी हुई है ।

इसी प्रकार की एक घटना २८ जून, १९१४ को इंग्लैण्ड में घटी । हेम्पशायर के एक पादरी जोसेफ डील्यानी को एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—'फादर ! हमारी पत्नी और हम एक गहरी दुरभि सन्धि में फँस चुके हैं । बचने की कोई उम्मीद नहीं है । आपकी सहायता की आवश्यकता है ।" पादरी अभी इस विषय में सोच ही रहा था, कि उन्हें सहायता कैसे पहुँचायी जाय कि देखते-ही-देखते चिट्ठी के सारे अक्षर गायब हो गए और कोरा पत्र उसके हाथ में रह गया । पादरी को बहुत आश्चर्य हुआ । लगा कि कोई जादुई पत्र है । बहुत सोचने के बाद भी जब उसकी समझ में कुछ नहीं आया, तो कोरी चिट्ठी उसने मेज पर रख दी । तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब इसके ठीक १० घण्टे बाद उस पत्र में पुनः कुछ शब्द उभरे जिनमें कहा गया था कि "आर्कड्यूक फर्डीनाण्ड एवं उनकी पत्नी की गोली मार कर हत्या कर दी गई है ।" बाद में अखबारों द्वारा इसकी पुष्टि भी हो गई । यह चिट्ठी आज भी उस परिवार के पास सुरक्षित है । अचम्भा तो इस बात का है, कि आरम्भिक सूचना के माध्यम से संकेत देकर उसमें नई खबर कैसे अंकित हो गई ।

मेसाचुसेट्स का जान जेकप सन् १९५६ में अपने मधुमक्खी पालन केन्द्र पर ही मर गया । जब वह मरा तो हजारों-लाखों की संख्या में मधुमक्खियाँ उसके पार्थिव शरीर के चारों और एक घण्टे तक मँडराती रहीं । इस दौरान मक्खियों ने किसी को भी लाश के निकट नहीं आने दिया । इसके बाद वे किसी अन्य स्थान की ओर चल पड़ीं और फिर कभी लौट कर नहीं आयीं ।

ऐसी ही एक घटना आस्ट्रेलिया की है । सेम रोजर्स सिडनी में मधुमक्खी पालने का धन्धा करता था । ६६ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई । जब उसका ताबूत कब्रगाह के लिए उठा तो उसके ऊपर हजारों मधुमक्खियाँ उड़ती रहीं और कब्रिस्तान तक साथ-साथ चलीं । मधुमक्खियाँ वहाँ तब तक बनी रहीं, जब तक मृतक को दफना नहीं दिया गया । इसके बाद वे वहाँ से चली गईं ।

न्यू हेम्पशायर में श्रीमती माबेल मेटकाफ नामक एक महिला रहती थी । २३ जुलाई, १९६१ के दिन उसके यहाँ एक विचित्र घटना घटी । वह जिस कमरे में रहती थी, उसकी एक दीवार गर्म होकर खूब लाल हो गई, मानो किसी ने उसे भट्टी में रख कर तपाया हो । बाद में अग्नि शमन दस्ते ने उसकी आग बुझायी ।

यद्यपि बिजली सम्बन्धी उसके कमरे में कोई गड़बड़ी नहीं थी, फिर ऐसा क्यों हुआ ? यह विशेषज्ञों की समझ में नहीं आया ।

न्यूजर्सी, अमेरिका की एक महिला को दाँतों द्वारा अचानक रेडियो-समाचार सुनाई पड़ने लगा । जब लोगों से उसने इस अजीबो-गरीब घटना का उल्लेख किया, तो सब ने इसे उसकी सनक समझी और उसकी उपेक्षा कर दी, किन्तु जब उसने रेडियो में प्रसारित हो रहे समाचार का सार सुनाया तो सभी दंग रह गए । सचमुच उस समय वे ही समाचार प्रसारित हुए थे ।

ब्रिजयात कनेक्टोकर के एक कर्मचारी को संगीत की स्वर लहरियाँ अचानक तब सुनाई पड़ने लगीं, जब एक दिन उसने अपने एक दाँत में चाँदी भरवायी तब से रेडियो की संगीत धुन उसके कानों में गूँजने लगीं, जिसका कारण अन्त तक नहीं जाना जा सका । सम्भवतः धातु ही ध्वनि तरंगों को ग्रहण करने का माध्यम बन गई थी ।

श्रीमती वर्जीनिया किम्मी 'टेक्सास' की रहने वाली थी । नवम्बर १९६० में उसके साथ यह व्यथा जुड़ गई कि जब भी वह गर्म पानी के सम्पर्क में आती उसे चित्र-विचित्र ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती थीं । मैसाचुसेण्ट्स की एण्ड्रिया वेलन ने एक खरगोश पाल रखा था । जब भी वह खरगोश को पकड़ती तो उसकी आवाज मात्र से टेलीविजन का चैनल बदल जाता था । इस रहस्यमय प्रसंग का कोई भी विज्ञान सम्मत हल नहीं दे पाया ।

कई बार लोग देखते-देखते अचानक गायब हो जाते हैं । फिर उनका कोई सूत्र संकेत हाथ नहीं लगता, कि वे कैसे-कहाँ खो गए ? टेनेसी का डेविड लैन्स एक दिन अपने खेत में काम कर रहा था, साथ में अन्य कृषक भी थे । कुछ घण्टे बाद वह न जाने कहाँ गायब हो गया ? किसी को पता न चला । कई महीनों तक उसकी दूर-दूर तक खोज की गई, पर परिणाम निराशाजनक ही रहा । ऐसी ही एक घटना का उल्लेख 'स्ट्रैन्जर दैन साइन्स' नामक पुस्तक में मिलता है । घटना 'एन्जीकुनी' नामक एक एस्किमो बस्ती की है । उस बस्ती के सभी स्त्री, पुरुष और बच्चे अकस्मात कहाँ गायब हो गए, आज तक किसी को पता न चल सका । आश्चर्य की बात तो यह थी कि उनकी झोपड़ियाँ, कुत्ते और शिकार करने के हथियार सभी सुरक्षित थे । सिर्फ उन्हीं का कहीं पता नहीं था ।

जुलाई १८७७ में नेवादा, अमेरिका के स्प्रिंग पहाड़ी में एक ऐसे भीमकाय मनुष्य के टखने (ऐंकल) की हड्डी पायी गई, जिसकी लम्बाई ३९ इंच थी । लगातार कई दिनों तक विशेषज्ञों के माथापच्ची के बाद भी पिछले किसी काल में इतने विशालकाय मनुष्य जाति के अस्तित्व की कोई जानकारी नहीं मिल सकी । फिर यह हड्डी किसकी हो सकती है ? आज भी अविज्ञात है ।

६ सितम्बर, १८२१ को मांटगोमरी में चोरी के अपराध में जॉन थॉमस को फाँसी की सजा दी गई । मरने से पूर्व उसने चीख-चीख कर मजिस्ट्रेट से कहा—"मैं निर्दोष हूँ, मुझ पर झूठा आरोप लगाया गया है । इसका सबूत आपको अवश्य मिलेगा । मेरे निरपराध होने का सबसे बड़ा प्रमाण यही होगा कि मेरी कब्र पर कभी भी घास नहीं उगेगी ।" इतना कहकर वह कुछ क्षण के लिए मौन हो गया और भगवान से प्रार्थना करने लगा । प्रार्थना समाप्त होने पर उसे फन्दे से लटका दिया गया । इसके बाद लाश परिवार वालों ने दफना दी । डेविस की घोषणा के अनुसार सचमुच ही उसकी कब्र पर एक भी घास अब तक नहीं उगी, जबकि आस-पास के अन्य कब्रों पर ढेर सारे खरपतवार उग आये । सरकार ने आस-पास की दो फुट गहरी मिट्टी कई-कई बार बदली और घास लगायी, पर एक भी बार उसमें तृण नहीं उगा । इस प्रकार उसके निर्दोष होने की बात साबित हो गई, किन्तु उसकी कब्र में वनस्पति नहीं उगने की घटना किसी की समझ में नहीं आयी ।

अनेक अवसरों पर पक्षियों की सामूहिक आत्महत्या की घटनाएँ प्रकाश में आयी हैं । भारत में आसाम के जटिण्डा क्षेत्र में प्रति वर्ष यह घटना घटती है । हर बार हजारों-हजार की संख्या में ये साल की एक निश्चित अवधि में अपने प्राणोत्सर्ग करते हैं । ऐसा क्यों होता है ? कौन व क्यों कोई उन्हें आत्मघात के लिए प्रेरित करता है ? शोधार्थी इसका रहस्य अब तक नहीं जान सके । इसी से मिलता-जुलता एक प्रकरण फ्रान्स का है । अक्टूबर १८४६ की रात्रि को अचानक अगणित पक्षी आकाश से धरती पर गिरने लगे । गिरने से पूर्व कुछ समय तक वे ऊपर मँडराते और फिर एकाएक जमीन की ओर गोता लगा देते । धरती से टकराने पर उनकी मौत हो जाती । उस रात पेट्रे गाँव की पूरी धरती चिड़ियों से ढक गई थी । जुलाई १८९६ में लुइशियाना में भी सामूहिक रूप से पक्षियों ने आत्मोत्सर्ग किया था ।

प्रकृति भी कोई कम रहस्यमय नहीं है । इसमें असंख्य ऐसी विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं, जिनका रहस्य वैज्ञानिक अभी तक नहीं जान पाये ।

ईस्टर द्वीप के विशाल प्रस्तर खण्डों का रहस्य

मनुष्य पुरुषार्थपरायण प्राणी है । वह चाहे तो असम्भव भी सम्भव बन जाता है और अकर्मण्य-आलसियों के लिए सरल-सम्भव भी अशक्य स्तर का बना रहता है । यह उसके मनोबल और मानसिक संरचना पर निर्भर है कि कठिन-से-कठिन कार्य भी सहज रूप से सम्पादित हो जाय और आसान लगने वाली क्रिया भी दुरूह प्रतीत होने लगे ।

इसी तथ्य की पुष्टि ईस्टर-द्वीप की खोज से भी हुई है । इस टापू के बारे में प्रथम जानकारी सबसे पहले डच एडमिरल जैकब रोगिबीन द्वारा सन् १७२२ में मिली । जब वह अपने तीन जहाजों के साथ उक्त द्वीप के निकट पहुँचा, तो उसे दूर से ही विशालकाय मानवाकृति दिखाई पड़ी । नजदीक आने पर ही उसे यह ज्ञात हो सका कि वह कोई जीवित व्यक्ति नहीं, वरन् विशाल प्रस्तर प्रतिमा है । उस भव्य मूर्ति के साथ सामान्य आकार-प्रकार की एक विशाल पाषाण सेना थी । उस दिन ईस्टर सण्डे था, इसलिए उसने उसका नाम ईस्टर द्वीप रख दिया ।

टापू की खोज के करीब सौ वर्ष बाद उसका गहन अध्ययन कार्य प्रारम्भ हुआ । तब तक भव्य विग्रह भूलुण्ठित हो चुके थे । अध्येताओं के अनुसार यह पत्थर की आकृतियाँ ज्वालामुखी के दौरान बनी विशालकाय चट्टानों को तराशकर बनायी गई हैं । उक्त द्वीप में रैनो राराकू के प्रसुप्त ज्वालामुखी के मुख के आस-पास अभी भी भीमाकार प्रस्तर खण्ड देखे जा सकते हैं । विशेषज्ञों का कहना है, कि इन्हें ज्वालामुखी के मुख की दीवार से तोड़कर एकत्र

किया गया है। इनमें से कितने ही टुकड़े मूर्ति की शक्ल में गढ़े हुए हैं और कितने ही अनगढ़ स्थिति में पड़े हुए हैं। इन्हीं में से अनेकों को बड़ी-बड़ी चट्टान की बनी पीठिका पर बाद में खड़ा किया गया जबकि चार सौ के लगभग अर्धनिर्मित विग्रह ज्वालामुखी के मुख के भीतर अभी भी पड़े हुए हैं। इन अर्धनिर्मित मूर्तियों में से कुछ में तो केवल छैनी के कुछ एक निशान मात्र हैं, जबकि कतिपय खण्ड अधूर पड़े हुए हैं। इनमें से आधे के आस-पास पूर्णरूप से तैयार हैं, जिन्हें मात्र ऊपर लाना भर था, किन्तु किसी कारणवश बाहर लाया नहीं जा सका। ज्वालामुखी के अन्दर प्रवेश करते ही इस प्रकार के तैयार विग्रह बीच-बीच में रखे अब भी देखे जा सकते हैं। इनमें से कइयों के वजन ३० से ५० टन के बीच हैं। वहाँ की सबसे बड़ी मूर्ति ६६ फुट ऊँची है। अनुसंधानकर्त्ताओं का अनुमान है कि ज्वालामुखी के भीतर रास्ते के इर्द-गिर्द प्रतिमाओं का पड़ा रहना इस बात का प्रतीक है कि वे बाहर आने की प्रक्रिया में सम्मिलित थीं, किन्तु प्रक्रिया पूरी होने से पूर्व ही उसे त्याग दिया गया और मूर्तियाँ बाहर नहीं आ सकीं। इस अनुमान को तब और बल मिला, जब अन्दर में वास्तुकारों के पत्थर के औजार भी मिले। इन औजारों की उपस्थिति यह बताती है कि शिल्पकार दुबारा अन्दर प्रवेश करने वाले थे, पर सम्भव है किसी असामान्य परिस्थितिवश वे ऐसा नहीं कर सके और सब कुछ वहाँ छोड़ देना पड़ा। यह भी शक्य है कि अचानक ज्वालामुखी के भीतर कुछ असाधारण हलचल शुरू हो गई हो। अन्वेषणकर्त्ताओं का एक विचार यह भी है, कि शायद मूर्तिकारों को अपने श्रम और समय का महत्त्व अकस्मात मालूम हो गया हो और इन बहुमूल्य सम्पदाओं के निरर्थक अपव्यय किसी कौतुकक्रिया से करने की तुलना में किन्हीं उच्चस्तरीय निर्माणों में लगाने की बात उनकी समझ में आ गई हो, अतएव बीच में ही वह कार्य रोक दिया गया हो।

तथ्य चाहे जो हो, शोधकर्त्ताओं को जिस बात ने सबसे अधिक परेशान किया है, वह है उन विशाल प्रतिमाओं का परिवहन। वे इस बात का तनिक भी अन्दाज नहीं लगा पा रहे हैं, कि सर्वथा साधनविहीन स्थिति में उन वृहद मानवाकृतियों को निर्माण स्थल से १० मील जितनी दूरी तक किस भाँति ले जा सकना सम्भव हो सका?

एक मत के अनुसार कदाचित ऐसा लकड़ी के मोटे-मोटे लट्ठों के माध्यम से किया गया हो, पर टापू के मृदा-परीक्षण से जिस बात की जानकारी मिली, उसके अनुसार वह मिट्टी उतने विशाल वृक्षों को खड़ा रख पाने में समर्थ नहीं है, जितने बड़े और मोटे पेड़ इस कार्य के लिए आवश्यक हैं। एक अन्य विचार वनस्पतियों से बने रस्सों के प्रयोग का पक्ष प्रस्तुत करता है, पर ५० टन जितना भारी वजन इन रस्सों की सहायता से खींच पाना तर्कसंगत नहीं लगता, अतः इसे भी अमान्य कर दिया गया।

वास्तविकता चाहे जो हो, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता, कि संकल्प यदि प्रबल हो और पराक्रम प्रखर, तो बड़ी से बड़ी बाधा भी छोटी हो जाती है, पर हीनमनोबल वालों के समक्ष छोटा व्यवधान भी हिमालय जितना बड़ा और दुसाध्य लगने लगता है। दूसरी ओर साहस बढ़ा-चढ़ा होने पर प्रकृति और परिस्थिति भी कर्त्ता को सहयोग देने के लिए विवश हो जाती है और ऐसे उपाय-उपचार सुझाने लगती है जो सामान्य स्थिति और मानसिक स्तर की अवस्था में असम्भव बना रहता है। लकीर बड़ी हो, तो उसके आगे और बड़ी रेखा खींच देना ही उसे छोटी बनाने का एकमात्र तरीका हो सकता है। मुसीबतों के सम्बन्ध में भी यही बात है। मनोबल और पुरुषार्थ को प्रखर बना लिया जाय, तो वे स्वतः ही तुच्छ हो जाती है, इसमें दो मत नहीं।

तथ्यहीन कौतुक किस काम का ?

विशालकाय संरचनाएँ गढ़ने और अद्‌भुत इमारतें खड़ी करने का महत्त्व तब है, जब वह लाभदायक और उपयोगी सिद्ध हों अन्यथा वे कौतुक कौतूहल मात्र बनकर रह जाती हैं। ऐसे आश्चर्य तो प्रकृति में ही असंख्यों भरे हैं, फिर बहुमूल्य साधन-सामग्री नियोजित कर, इन अचम्भों को खड़ा करने की कोई तुक रह नहीं जाती। इतने पर भी न जाने क्यों मनुष्य ऐसे कृत्यों में संलग्न देखा जाता है।

यह प्रवृत्ति मात्र वर्तमान समाज की है, सो बात नहीं। सभ्यता के प्रारम्भ से ही इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ मनुष्य में पकने-पनपने लगी थीं, जो बाद में मूर्त रूप धारण कर ऐसे निर्माणों की शृंखला खड़ी करने में तत्पर हो गईं, जिस पर अंकुश अब तक नहीं लगाया जा सका है।

ऐसा ही एक निर्माण अपनी विलक्षणता की गाथा गाते लेबनान में देखा जा सकता है। बेरूत से ५३ मील दूर यह भव्य संरचनाएँ रोमन मन्दिरों की हैं, जिनके निर्माण काल के बारे में पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि यह प्रथम शताब्दी के आस-पास विनिर्मित हुए। मन्दिर समूह एक ऊँचे प्लेटफार्म पर स्थित है, जहाँ से प्राकृतिक दृश्यों का विहंगावलोकन अत्यन्त मनोहारी लगता है, किन्तु उक्त निर्माण की यही एकमात्र विशिष्टता नहीं है। सबसे बड़ी विचित्रता वहाँ की वह विशाल दीवार है, जो मन्दिर के चारों ओर बनी हुई है। यह दीवार आज भी विशेषज्ञों को अपनी विशालता के कारण स्तम्भित किए हुए है। दीवार के पश्चिमी सिरे पर तीन भीमकाय चट्टानें काट कर तराशी हुई स्थिति में रखी गई हैं। यह शिलाखण्ड अपने विराट् आकार के कारण अजूबे और विश्व प्रसिद्ध बने हुए हैं। आधुनिक इंजीनियरों के लिए सर्वाधिक आश्चर्य की बात यह है कि इतने बड़े शिलाखण्ड खदान से उस स्थान तक लाये किस प्रकार गए और यदि किसी विशेष युक्ति से यह सम्भव हो सका, तो फिर उन्हें वर्तमान स्थान और स्थिति में रख पाना किस भाँति शक्य हो सका? इसके लिए यही सबसे जटिल प्रश्न बना हुआ है, जिसका उत्तर दे पाना अभी शेष है, क्योंकि उनका मानना है, कि आज के वैज्ञानिक युग में अत्याधुनिक युग परिष्कृत यन्त्रों के माध्यम से भी यह कार्य सम्पादित कर पाना एक प्रकार से टेढ़ी खीर है, फिर भी रोमन साम्राज्य के दौरान इसे सम्पन्न किया गया और तब से लेकर अब तक की करीब दो हजार साल की अवधि तक में वे अपनी स्थिति यथावत् बनाये हुए हैं। यह और भी विस्मयकारी है।

चट्टानें 'ट्रायलीथन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आकार-प्रकार में यह इतनी विस्तृत हैं, कि यदि वे खड़ी की जा सकें, तो प्रत्येक प्रस्तर खण्ड आज की छः मंजिली इमारत जितने ऊँचे होंगे। सबसे बड़ा खण्ड ६४ फुट ऊँचा, १२ फुट चौड़ा और १४ फुट

लम्बा है, इसका वजन करीब आठ सौ टन है । यह शिलाएँ बारबेक स्थित मन्दिर स्थल से लगभग एक मील दूर एक खदान से काट कर निकाली और निर्माण-स्थल तक लायी गईं, जहाँ उन्हें २५ फुट ऊँचे छोटे पत्थरों से बने प्लेटफार्म पर रखा गया । इनके सिरों को इतनी दक्षतापूर्वक परस्पर मिलाया और जोड़ा गया है, कि उनके बीच ब्लेड को भी घुसा पाना सम्भव नहीं । इससे तब की उच्चस्तरीय शिल्पकला का संकेत मिलता है । रहस्य तब और गहरा होता जाता है जब यह ज्ञात होता है कि खदान में ट्रायलीथन से भी विराट् आयतन वाला एक पाषाण-खण्ड अब भी पड़ा हुआ है, इसका वजन हजार टन जितना आँका गया है । इसके सम्बन्ध में कोई यह नहीं जानता कि इस अन्तिम खण्ड का प्रयोग क्यों नहीं किया गया ? शायद आज के विशेषज्ञ इसका यह कहकर उत्तर दें कि तत्कालीन समय की वैज्ञानिक प्रगति के हिसाब से यह चट्टान इतनी भारी साबित हुई कि उसे स्थानान्तरित कर पाना असम्भव बन गया हो । फलतः वह अनुपयोगी दशा में अपने मूल स्थान में पड़ी रह गई हो ।

कारण चाहे जो हो, रोमनों की इस प्रकार की विलक्षण निपुणता के बावजूद भी ऐसा कोई दूसरा उदाहरण रोमन साम्राज्य में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी सनकी सम्राट ने स्वयं को श्रेष्ठ व यशस्वी बनाने के लिए यह संरचना खड़ी की हो और यथास्थिति बनाये रखने के लिए बाद में निर्माताओं का वध कर दिया हो । इतने पर भी आज न तो उसके सृजेता का पता है और न ही उस अद्भुत सृजन को अक्षुण्ण रखने में वह सफल हो सका है । फिर इस अनुपयोगी श्रम का लाभ, लगभग नगण्य जितना ही है । यदि इतना परिश्रम उसने अपने व्यक्तित्व को गढ़ने और खुद को उत्कृष्ट बनाने में किया होता, तो न सिर्फ वर्तमान में दूसरों के लिए प्रेरणा-स्रोत साबित होता, वरन् उच्चादर्शों के कारण इतिहास-पुरुष बन कर इन दिनों भी जी रहा होता, पर आडम्बर के उलझाव ने उसे कहीं का नहीं रहने दिया । न तो जीवन का श्रेष्ठतम सदुपयोग बन पड़ा, न वही प्रयोजन सध सका, जिसमें वह आजीवन संलग्न रहा । हम आकर्षक व्यक्तित्व की संरचना गढ़ें, अनावश्यक कौतुक खड़ा न करें—यही समाज की सर्वोपरि आवश्यकता और समय की माँग है ।

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दे

एक स्त्री थी, उसने सुन्दर रूमाल निकाला, उसमें उसने एक बूँद इत्र डाला । इत्र सूख गया । रूमाल को तौला गया तो इत्र डालने से पूर्व उसका जितना वजन था, उससे अब .०००००००१ (दशमलव शून्य शून्य शून्य शून्य शून्य शून्य १) ग्राम अधिक निकला । वह इस रूमाल को लेकर यात्रा पर निकल पड़ी । प्रतिदिन १० मील (१ मील = १.६१ किलोमीटर) चली । तीन दिन तक चली । ३० मील की दूरी तक गई । उसका पति उसे ढूँढ़ने निकला । प्रति एक गज की दूरी पर उसने एक क्यूबिक सेण्टीमीटर हवा की गन्ध ली । उसमें उसे इत्र (सेण्ट) की खुशबू मिलती चली गई । इस तरह गन्ध के सहारे उसने अपनी रूठी हुई प्रियतमा का ठिकाना पा लिया, उसे मना कर अपने घर ले आया ।

इस एक घटना में तीन चमत्कार जुड़े हैं । दो कोई भी जान सकता है, तीसरे को गोपनीय रखा गया है, जो उसे जान लेगा वही चतुर, सुजान, ज्ञानी और पण्डित कहा जायेगा ।

पहला चमत्कार तो उस आविष्कार का है, जिसमें वस्तु को इतना सूक्ष्म कर देना है, जिसमें सारा द्रव्य गुण इस तरह समा जाय कि वह लघुता विराट् बन जाय । .०००००००१ ग्राम भार की वस्तु को न्यूनतम १७६०×३×२ (पथ के १+१ गज दोनों ओर) अर्थात् १०५६० वर्ग गज दूरी में व्यापक बना देना सचमुच चमत्कार ही है और यह भी चमत्कार ही है कि १ एक वर्ग इंच की नाक मनुष्य को उसका भान कराती हुई चली जाती है । मानवीय बुद्धि की इस क्षमता को वन्दनीय कहा जाय तो इसमें कुछ बुरा नहीं है ।

किन्तु सच पूछा जाय तो इसमें मनुष्य का कोई कमाल नहीं है । उसने आविष्कार स्वयं नहीं किया, नकल की है, नकलची विद्यार्थी बुद्धू कहलाते हैं । योग्यता तो उनकी सराही जाती है जिनके हल सही होते हैं । मनुष्य ने वह योग्यता प्रकृति के उन कलाकारों से चुराई है जिन्हें वह निर्बल, असहाय और तुच्छ श्रेणी का जीव मानता है । पतंगा नितान्त उपेक्षणीय जीव है, किन्तु यदि मनुष्य का असाधारण इन्द्रियबोध ही उसकी श्रेष्ठता का मापदण्ड हो तो पतंगे को उससे निम्न स्तर का नहीं उच्च ही माना जायेगा, जिसके पास यह क्षमता है कि अपनी दो मील दूर बैठी हुई मादा को मात्र उसकी गन्ध से ही पहचान लेता है । यह नहीं कि यह गन्ध उसी जाति की किसी भी मादा की ही नहीं वरन् उसमें केवल मात्र अपनी दुल्हन की गन्ध पहचान लेने की क्षमता है, जबकि उसी तरह की सैकड़ों लाखों पतंगिनियाँ दो मील के घेरे में चक्कर काट रही होंगी । मनुष्य में तो वैसी क्षमता किसी-किसी में होती है ।

अनेक लोग दूषित स्थानों में, गन्दी नालियों के किनारे रहते-रहते उस गन्ध के अभ्यस्त हो जाते हैं । उन्हें उससे अरुचि तक नहीं होती, वे यह तक विचार नहीं कर पाते कि यह गन्दगी उनके लिए कितनी हानिकारक है । उनकी बौद्धिक क्षमताएँ इतनी स्वच्छ और निर्मल नहीं होतीं । आहार, विहार कि अनियमितता और अप्राकृतिकता के कारण वे घ्राण ही क्यों दूसरी इन्द्रियों की सूक्ष्म सम्वेदनशीलता तक खो बैठते हैं, पर मनुष्येतर जीव अपनी यह क्षमताएँ आजीवन बनाये रखते हैं । इसलिए गन्ध (सेण्ट) का आविष्कार करके भी मनुष्य अपूर्ण रहा । इन जीवों ने तो भी इतना तो उपकार किया कि मनुष्य को गन्ध की इस असाधारण शक्ति की जानकारी दे दी । पुलिस का बहुत बड़ा कार्य इस गन्ध की असाधारण क्षमता का उपयोग कर प्रशिक्षित कुत्ते ही निबटाते हैं, इनको तो भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वाभास तक हो जाता है । बिल्लियों, दीमक, चींटियों तक में यह क्षमता पायी जाती है । मनुष्य तो अपनी साधारण देखने, चबाने, सुनने और विचार करने तक की क्षमताएँ खो देता है, फिर उसकी समझदारी कहाँ रही ?

बात केवल गन्ध तक सीमित नहीं, दुनिया के हर आविष्कार के लिए मनुष्य ने प्रकृति का ही अनुसरण किया है । हवाई जहाज की कल्पना उसे उड़ते हुए नभचरों से मिली है, तो पनडुब्बियों की जलचरों से । बिजली आज जीवनोपयोगी वस्तुओं की श्रेणी में आ गई है । उसके लिए आविष्कारकर्त्ताओं को इलेक्ट्रिक ईल

(विद्युत मछली) का ऋणी होना चाहिए । आज के सामान्य विद्युत सरकिटों की अपेक्षा चार से छः गुना अधिक तक बिजली उत्पादन कर सकने वाली यह मछली एक हजार वोल्ट विद्युत शक्ति पैदा कर लेती है । इसका अर्थ यह हुआ कि वह अपनी जिन्दगी भर सामान्यतः पचास वोल्ट क्षमता के बीस बल्ब जलाये रख कर प्रकाश देती रह सकती है । मनुष्य के लिए तो यह भी नहीं बन पड़ता कि वह अपनी बुद्धि से ही न कुछ तो अपने परिवार वालों को ही नीति, सदाचार, ईमानदारी, धर्म और अध्यात्म का प्रकाश देता रहे ।

मनुष्य ने बड़ी-बड़ा शक्ति वाली दूरबीनें बनाई हैं । २४ व्यास के लेन्स की पालोमोर बोधशाला की दूरबीन से चन्द्रमा की दूरी लाखों मील से सिमट कर हजारों में आ जाती है पर क्या इसका श्रेय अकेले मनुष्य को ही है । दूरबीन की प्रेरणा वाले गिद्धों ने मनुष्य को इस आविष्कार के लिए प्रेरित किया जो सैकड़ों मील दूर से ही यह देख लेते हैं कि किस स्थान पर जानवर की खाल उतार ली गई है । वे न केवल अपनी इस क्षमता का उपयोग अपने उदर पोषण के लिए करते हैं अपितु मानवीय अस्तित्व के लिए संकट बनाने की सम्भावना वाले प्रदूषण को भी मिटा डालते हैं ।

द्वि-नाभिक ताल (बाईफोकल) चश्मों का आविष्कार पहले प्रकृति ने किया, पीछे मनुष्य ने । "मेरीआष्थेलमस" नाम की मछली को दोनों आँखों में एक के ऊपर एक दो-दो पुतलियाँ उभरी रहती हैं । जब तक वह पानी में रहती है नीचे वाली पुतली से देखती है । इसके बाद वह हवा में आ जाती है तब वह नीचे वाली पुतली से देखना बन्द कर देती है और ऊपर की पुतली से देखने लगती है । इस तरह वह जलचर जीवन जितना आनन्द और सुविधापूर्वक जीती है, उतना ही थलचर जीवन । चाहे तो मनुष्य भी 'उभय दृष्टि' रखकर लोक और परलोक दोनों को सँवार ले । विचार इस दृश्य संसार को देखने और समीक्षा करने के लिए है, तो भावनाएँ दृश्य जीवन से परे की अनुभूति के लिए । अपनी इस दूसरी पुतली का उपयोग न करने के कारण ही वह मृत्यु जैसी आनन्ददायक, उल्लासवर्द्धक घटना से भयभीत रहता है, लोकजीवन में तो चतुर बना रहता है, पर लोकोत्तर के प्रति आस्थाएँ ही स्थिर नहीं रख पाता । उसने बाईफोकल को बना लिया पर अन्तः चक्षुओं को इतना सक्षम नहीं बनाया कि इस लेख के प्रारम्भ में चर्चित तीसरे चमत्कार को भी समझ लेता ।

इन पंक्तियों में जो कुछ लिखा और कहा जा रहा है, उसका उद्देश्य मनुष्य को घटिया और जीव जन्तुओं की विशेषताएँ, उपयोगिताएँ प्रतिपादित करना नहीं है, अपितु इस तथ्य का बोध कराना है कि मनुष्य अपने में अनेक दुरूह आविष्कार कर लेने का अहंकार न करे, वरन् उसे यह देखना चाहिए कि वह स्वयं ही कितना बड़ा आविष्कार है—यह कि जिस तरह उसके अपने आविष्कार मानव जाति के कल्याण, प्रसन्नता और ऐश्वर्य वृद्धि के लिए हैं, उसी तरह यदि उसका जीवन भी उद्देश्यपूर्ण है, तो उसे भी सृष्टि में देवत्व एवं मंगल कामनाएँ विकसित करने, प्राणियों के आनन्द की वृद्धि करने और नियंता के ऐश्वर्य वृद्धि के उत्तरदायित्वों को भी सम्पूर्ण ईमानदारी से पालन करना आवश्यक है ।

उद्देश्यों के प्रति ईमानदार न होने के कारण ही लगता है उसकी बुद्धि का विधेय पक्ष नष्ट हो गया है और वह प्रकृति से मात्र विध्वंसक प्रेरणाएँ ग्रहण करने में लग गया है । आजकल किसी भी देश की सेनाएँ विध्वंसकों के अभाव में अपूर्ण मानी जाती हैं ऐसे बाम्बर विमान बने हैं चालक जिन्हें 'डाइव' (जहाज के एकदम नीचे कूदने को डाइव कहते हैं), करके जहाज को पृथ्वी स्पर्श जैसे समीपता तक ले जाते हैं और बम फेंक कर सीधे ६० डिग्री पर ऊपर उड़ जाते हैं, अहं प्रदर्शन के लिए मनुष्य ने उसे गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त पर आश्रित कला बताया, पर सच पूछा जाय तो यह 'मनेर' पक्षी की कला का अनुकरण मात्र है । यह अपने शिकार पर बहुत तेजी से झपटता है और उसे पकड़कर सीधे ऊपर उड़ जाता है । जर्मनी ने राडार नामक यन्त्र बनाया, जो पदार्थ की विद्युत चुम्बकीय तरंगों को पकड़ कर यह बता देता है कि किस स्थान पर शत्रु की क्या गतिविधियाँ चल रही हैं । अब यह यन्त्र प्रत्येक देश की सैन्य सज्जा में सम्मिलित है । ईमानदारी की बात यह है कि चमगादड़ को इस सत्य का पता अनादिकाल से है । कहते हैं कि चमगादड़ को दिन में दिखाई नहीं देता पर वह चूँ-चूँ की एक विशेष प्रकार की नियन्त्रित ध्वनि निकालता है और परावर्तित विद्युत चुम्बकीय तरंगों के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म धागे तक का स्थान ज्ञात कर लेता है । किसी भी जाल में उसे चौबीस घण्टे उड़ाया जाय तो भी वह किसी पदार्थ से टकराता नहीं । मनुष्य ने उसकी इसी क्षमता का अनुकरण कर राडार यन्त्र बनाया है ।

सेना को यह ज्ञात हो कि किसी स्थान विशेष में शत्रु है, उसे पास से गुजर कर अन्यत्र जाना हो तो एक विशेष प्रकार के गोलों की फायरिंग करके वह धुएँ की ऐसी लम्बी और ऊँची दीवार खड़ी कर देती है जिससे दूसरी तरफ के लोगों को इस ओर की हलचल का पता ही नहीं चल पाता है । सेनाएँ इस तरह अपने खेमे बदलती रहती हैं । 'ऑक्टोपस' नामक जीव न होता तो सम्भवतः मनुष्य को इस 'स्मोक स्क्रीन' (धुएँ की दीवार) की कल्पना ही न होती । यह ऑक्टोपस अपने शरीर के थैले में काली स्याही की तरह का एक पदार्थ छिपाये रहता है । जब कभी उसे शत्रु से बचकर निकलना होता है, वह थैले में बन्द इस स्याही को उड़ाकर धुएँ की दीवार खड़ी कर देता है और चैन से निकल भागता है । जेट-प्रापल्शन की क्रिया में भी ऑक्टोपस दक्ष होता है । इस स्थिति में वह दूसरी थैली में भरे पानी का उपयोग करता है । आज कल जहाजों को मार गिराने वाली 'एण्टी एयरगन क्राफ्ट' का भी युद्ध कला में विशेष स्थान है । इस तोप की विशेषता यह होती है, वह किसी भी कोण में यहाँ तक कि ६० डिग्री में भी खड़ी होकर ट्रेशर गोलियों (जलती हुई गोलियों) की ऐसी बौछार करती है कि जहाज को किसी न किसी गोली का शिकार अवश्य हो जाना पड़ता है । आरचर मछली न होती तो शायद मनुष्य को इस आविष्कार की सूझती भी नहीं । यह हवा में उड़ते कीड़ों को पानी की ऐसी धार मारती है कि कीड़े उसी धार के शिकार होकर मछली के मुँह में चले जाते हैं ।

मनुष्य की अपेक्षा हजारों वर्ष पूर्व से ही कबूतरों को पृथ्वी की चुम्बकीय धाराओं का ज्ञान रहा है । जिसके सहारे किसी भी पाठशाला से अ, ब, स, भी न पढ़ने वाला यह साधारण पक्षी दुर्गम स्थानों से होता हुआ भी अपने परिचितों के पास जा पहुँचता है । छिपना (कैमोफ्लेज) आज युद्ध में विध्वंसक आयुधों से भी अधिक महत्त्व रखता है । यह कला मनुष्य ने गिरगिर जन्तु

(वाकिंग स्टिक) से सीखी है जो हरी घास के बीच शत्रु से बचने के लिए इस तरह निश्चेष्ट हो जाता है मानो वह स्वयं ही किसी पौधे का नन्हा तना या पत्ती हो । इन दिनों 'इन्फ्रारेड' किरणों का महत्त्व बहुत अधिक समझा जा रहा है । इन किरणों से शरीर या पृथ्वी के अन्तराल की वे वस्तुएँ तक देख ली जाती हैं जहाँ तक दृश्य प्रकाश की पहुँच ही नहीं होती, रैटिल स्नेक (एक विशेष जाति के सर्प) से ही इन किरणों का पता लगाया गया है, उसकी आँखें बन्द कर देने पर भी वह प्रकाश की दिशा को बिना भूल किए पहचान लेता है । ऐसी-ऐसी सैकड़ों विलक्षण शक्तियाँ जिन्हें सिद्धियाँ कहते हैं, मनुष्य शरीर में बड़ी चतुराई से सँजोई गई हैं, किन्तु मनुष्य उनका लाभ प्राप्त करना तो दूर उन पर विश्वास ही नहीं कर पाता इसी कारण साधना विज्ञान का विशाल काय कलेवर अब तक विज्ञान की दृष्टि से ओझल पड़ा हुआ है । कितने आश्चर्य की बात है, कि अमेरिका के राष्ट्रपति कार्टर की बातचीत और रूस के प्रेसीडेण्ट ब्रेजनेव के भाषणों की प्रतिध्वनि जहाँ भी वायुमण्डल है, वहाँ तक जाती है । हम जहाँ रहते हैं वहीं सारी पृथ्वी की प्रतिध्वनियाँ आती हैं, चाहें तो वायरलैस से भी उच्च श्रेणी के यन्त्र की तरह घर बैठे सृष्टि के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति की वार्ता सुन लें पर अभी तक मनुष्य के लिए यह सुलभ नहीं हुआ, जबकि कंगारू रैट (एक विशेष चूहा) पृथ्वी में कई तरह की प्रतिध्वनि खोलियाँ बना कर उनमें से बदल-बदल अपनी आधी खोपड़ी जमा कर चारों तरफ की प्रतिध्वनियाँ सुनता और भूमि कम्पनों के माध्यम से सम्भावित संकटों की पूर्व जानकारी लेता और अपने जीवन का बचाव करता रहता है । आविष्कारीय सम्भावनाओं का क्षेत्र जितना जाना जा सका, अभी उससे असंख्य गुना व्यापक क्षेत्र प्रकृति के गर्भ में छुपा हुआ है, उन्हें जानने और उन सुविधाओं का लाभ प्राप्त करने में मनुष्य को करोड़ों वर्ष लग जायेंगे तो भी वह इति न पा सकेगा ।

फ्रैंकलिन इन्स्टीट्यूट के वारटोल रिसर्च फाउण्डेशन के डाइरेक्टर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डब्लू. एफ. जे. स्वान ने इन तथ्यों को स्वीकारते हुए लिखा है—कि सृष्टि में अन्तर्निहित इस ज्ञान विज्ञान के अपार भाण्डागार को गणितीय सिद्धान्तों से समझा जाना और प्रकृति की इन क्षमताओं में बौद्धिक संस्कारों का जुड़ा होना, इस बात का प्रमाण है कि संसार को किसी अति समर्थ इंजीनियरिंग सत्ता ने बनाया है । वैज्ञानिक तो उनमें से कुछ को समुद्र की रेत में पड़े स्वर्ण कणों की भाँति अनायास ही पा लेते हैं । उनमें उनकी इतनी ही प्रशंसा है कि उन्होंने शोधकार्य में अपना मनोयोग लगाया और परिश्रम का प्रतिफल प्राप्त किया । ऐसा नया कुछ न बनाया, न बन सकेगा जो उस अभियन्ता ने पहले से बनाकर न रखा हो । तरह-तरह के जीव-जन्तु पेड़-पौधे, फूल-पत्तियाँ, पदार्थजन्य और अपदार्थीय शक्तियाँ बनाने के प्रयोग वह चुपचाप अपनी प्रयोगशाला में बैठा किया करता है और हम उसे जानकर भी जानने का प्रयास नहीं करते । उसकी बनाई हुई वस्तुओं का उपभोग करके आनन्द प्राप्त करने, सुविधाएँ जुटाने, ऐश्वर्य वृद्धि करने में लगे रहने के अतिरिक्त उस इंजीनियर को कुछ वेतन भी दिया जाता है, उसे भूख-प्यास भी लगती होगी, उसे दर्द भी होता होगा, उसकी कुछ जिम्मेदारियाँ होंगी । उनमें हाथ बटाना तो दूर उनकी ओर ध्यान तक नहीं देते, आज के अपराधों की बाढ़, अनाचार, आँधी और मानव जाति के संकट उसी का प्रतिफल हैं ।

ऐसा कोई आविष्कार नहीं जो प्रकृति में न हो, मनुष्य ने जिसे आज प्रकट किया वह कल से ही विद्यमान था अर्थात् महान् आविष्कारों का जनक मनुष्य नहीं कोई सुपर इंजीनियर है, जिसने जीवन-सत्ता को प्रकट किया, उसके पालन-पोषण, विकास, सुख-सुविधा, सौन्दर्य आदि के इतने वैज्ञानिक और सटीक साधन प्रस्तुत किए हैं, जितने आज का कोई बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी प्रस्तुत नहीं कर सका । प्रकृति ने लोहे जैसा कठोर और पानी जैसा कोमल दोनों तरह के तत्व दिए हैं । लोहा कठोर से कठोर वस्तु को काट सकता है और पानी कठोर से कठोर वस्तु को भी घुला सकता है । जीवन के लिए यह दोनों ही तरह के कार्य आवश्यक हैं । मनुष्य आटा, दाल, चावल आदि सैकड़ों वस्तुओं से, सैकड़ों प्रकार के व्यंजन बना सकता है, किन्तु प्रकृति अपनी 'फोटो सिन्थेसिस' (पत्तियाँ सूर्य की ऊर्जा में क्लोरोफिल मिलाकर शर्करा पैदा करती है, उसी से तरह-तरह के फल पैदा होते हैं । इस क्रिया को फोटो सिन्थेसिस कहते हैं ।) की रसोई में एक ही पदार्थ पेड़ों के क्लोरोफिल को सूर्य ऊर्जा में पका कर सभी तरह के व्यंजन बना देता है । ऐसी रसोई मनुष्य के लिए सम्भवतः करोड़ वर्षों में भी उपलब्ध न हो ।

परस्पर वार्तालाप और विकिरण से सुरक्षा के लिए वायुमण्डल का कवच प्रकृति के वात्सल्य का अनोखा उदाहरण है, फूलों में सौन्दर्य और सुगन्ध उसकी विलक्षण कलाकारिता का परिचय देता है । सांसारिक इंजीनियर तो अपने स्वार्थों के लिए आत्म प्रतारणा के शिकार और कर्त्तव्य च्युत होते हुए भी पग-पग पर मिल जाते हैं, पर उस चीफ इंजीनियर में सर्वज्ञता ही नहीं, सर्व समर्थता ही नहीं, माँ का सा वात्सल्य और पिता का सा संरक्षण भी है । प्रकृति की संरचना और नियम इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं । यह देखते हुए भी लोग उसे जानने और पाने का प्रयास नहीं करते । जिसने भी उसे श्रद्धा वन्दन किया जो भी उसका हो गया उसे वह अपनी ही अनन्त विभूतियों का स्वामी बना देता है ।

प्रकृति की अनेक रहस्यमय क्रियाओं के अनुरूप यदि कोई इंजीनियर योजनाएँ बना सकता तो उसे निश्चित रूप से सर्वोच्च प्रतिभा का व्यक्ति मानते । यह प्रतिभा अनादिकाल से अभिव्यक्त है । वही सर्वोपरि चमत्कार है । उसे अनुभव करने वाला, जानने वाला ही सच्चे अर्थों में अपना जीवन सार्थक कर पाता है ।

अविज्ञात सम्पदा खोजी और खोदी निकाली जाय

पृथ्वी का धरातल जितना है उतना ही रहेगा । उसे खींचतान कर बढ़ाया नहीं जा सकता, पर उसके ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जिनसे सम्पर्क नहीं साधा गया और दोहन नहीं किया गया । यदि इस सारी सम्पदा को अधिकार क्षेत्र में लिया जा सके और उसका सदुपयोग किया जा सके, तो निश्चित है कि इन दिनों वस्तुओं का जो अभाव दीख पड़ता है, वह भविष्य में न रहेगा और पीढ़ियों तक उसके सहारे सुखपूर्वक जिया जा सके । अभी तो सिर्फ एक मीटर गहरी धरती की उर्वरा तक जो कुछ उगाया

जा सकता है उसी से काम चलाना पड़ता है । उतने भर को ही हम उपलब्धियों की चरम सीमा मानते हैं ।

धरती की गहराई में प्रवेश करने का सिलसिला जब से चला है, तब से खनिज सम्पदा के भण्डार हस्तगत होते चले गए हैं । किसी जमाने में गोबर और पेड़ों को ही जला कर ऊर्जा उत्पन्न की जाती थी, पर अब पत्थर का कोयला, गैस और तेल के भण्डार भू-तल से कुरेद कर उस आवश्यकता की बहुत कुछ पूर्ति की जा रही है । यह सम्पदा थी तो अनादिकाल से, पर मनुष्य ने उसे उपलब्ध करने तथा प्रयोग में लाने की विधि नहीं सीखी थी । अब भौतिक जगत को अधिक तत्परतापूर्वक खोजा जाना आरम्भ हुआ है तो सम्पदाएँ भी प्रचुर परिमाण में हाथ लगी हैं । लोहा, सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा जैसी अनेक धातुएँ एवं पेट्रोलियम आदि भी धरातल की गहरी परतें खोदने पर ही हाथ लगे हैं ।

समुद्र में मोटेतौर पर खारा और भारी पानी भरा दीखता है । उसकी खतरनाक स्थिति को समझते हुए कभी समुद्र पार करने का निषेध रहा है । कारण कि अन्य क्षेत्रों में एक तो भाषा सम्बन्धी कठिनाइयाँ थीं, दूसरी समुद्र के तूफान ज्वार-भाटों के कारण भी नौकायान को खतरे से भरा हुआ देखा जाता था । कितनी ही किंवदन्तियाँ भी डराती थीं, पर वह समय चला गया । अब बढ़े हुए ज्ञान के आधार पर समुद्र की गोद में मनुष्य जाति खेलती है । पानी की सतह का सड़क जैसा उपयोग करने वाले छोटे-बड़े अनेकों द्रुतगामी जलयानों का आविष्कार हो चुका है । हजारों यान उस क्षेत्र में दौड़ते हैं और कइयों टन माल इधर से उधर ढोते हैं । ऐसे यान की योजना विचाराधीन है, जिसके अनुसार समुद्र में तैरते हुए नगर बनाये जा सकेंगे और भूमि पर आबादी के रहने के लिए जो कमी पड़ती जा रही है, उसकी पूर्ति हो सकेगी । समुद्र में बहुमूल्य धातुओं के भण्डार भी हैं । कहा जाता है कि भू-गर्भ से मनुष्य ने जितना अधिक पाया है उतना ही वैभव उसे अगले दिनों समुद्र से मिलने जा रहा है । थल एक तिहाई है और जल दो तिहाई । समुद्र के सुविस्तृत क्षेत्र से ही बादल उठते और थल को सींचते हैं । पानी से वनस्पति उगती और मनुष्य के जीवन का आधार बनती है । अन्न, जल ही नहीं, हवा भी समुद्र के थपेड़ों की चोट सहकर ही गतिशील रहती है । इस प्रकार धरती पर रहने वाले मनुष्य सहित सभी प्राणियों का परोक्ष आधार समुद्र को माना जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी । अगले दिनों उसके भीतर पायी जाने वाली शैवाल जैसी वनस्पतियों का भी अन्न जैसा उपयोग होने लगेगा । समुद्र तल से तेल और गैस मिलने की पूरी सम्भावना है । पनडुब्बियों और युद्ध पोतों ने समुद्र क्षेत्र को भी कुरुक्षेत्र की भूमिका निभाने योग्य बना दिया है । समुद्र भी पृथ्वी के साथ ही जुड़ा हुआ है, पर उसका दृश्य देखा जाता है । उपयोगिता नहीं खोजी गई थी और न कुछ पा सकने का सुयोग बना । अब गम्भीर ज्ञान के सहारे प्रकृति के रहस्यों को खोजने का ही परिणाम है कि हम पूर्वजों की तुलना में अधिक बड़े क्षेत्र में क्रीड़ा कल्लोल करते हैं और कहीं अधिक वैभव के अधिकारी हैं ।

प्रकृति कंगाल नहीं है, उसके पास इतना कुछ है जिसे देखकर आश्चर्यचकित रहा जा सकता है, आवश्यकता अब रहस्यमय पर्तों तक पहुँच सकने वाली और कुरेदने की लगन दिखा सकने वाली प्रतिभा की है । वह प्रसुप्त स्थिति में मनुष्य के पास प्रचुर परिमाण में विद्यमान है । आवश्यकता उसे जाग्रत करने भर की है । अनजान बने रहने वाले अनगढ़ जन तो अच्छी खरी परिस्थितियों में भी अभाव का रोना रोते रहते हैं ।

अभी-अभी दक्षिणी ध्रुव का विशाल क्षेत्र खोज निकाला गया है । कुछ दशाब्दियों तक इसकी स्थिति का सामान्य ज्ञान भी लोगों को न था । उत्तरी ध्रुव अपेक्षाकृत छोटा, कम ठण्डा और मनुष्य की पहुँच के अन्तर्गत है । उसमें आने-जाने और प्रकृति की वातावरण की अन्तर्ग्रही परिस्थितियों की उस सम्पर्क से महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती रही हैं । वहाँ के तटीय क्षेत्र में बसने वाले एस्किमो कबीले भी उस क्षेत्र की खोज में सहायक सिद्ध होते रहे हैं, किन्तु दक्षिणी ध्रुव के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है । उसका आकार सुविस्तृत है । धरती के महाद्वीपों में से उसे भी पाँचवाँ महाद्वीप माना जा सकता है । इतने बड़े क्षेत्र का ओर-छोर ढूँढ़ निकालना पिछले दिनों सम्भव न था । वैसे साधन भी नहीं थे । पूरे द्वीप पर एक भी मनुष्य नहीं बसता, कारण कि ठण्ड इतनी अधिक पड़ती है, कि तथाकथित गर्मी के मौसम में भी हड्डियाँ तड़का देने वाली ठण्ड पड़ती है । फिर बर्फ की इतनी मोटी चादर जमी है जिसे मीलों की ऊँचाई में नापा जा सकता है ।

किन्तु आज का तरुण समझा जाने वाला मनुष्य पूर्वजों को बालकों जैसी स्थिति का समझता, मानता है । प्रगति ने उसे तरुणाई प्रदान की है और साथ ही ऐसी बौद्धिक चेतना, साधन-सुविधा भी दी है, जिसके सहारे वह प्रकृति के अनुद्घाटित रहस्यों को समझने और उनसे लाभ उठाने का सफल प्रयास कर सके । भौतिक क्षेत्र में की गई इस मानवी प्रगति को जितना सराहा जा सके उतना ही कम है ।

विशालकाय किसी भी महाद्वीप की तुलना में अग्रणी बैठने वाला दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र इतना अद्भुत और सुसम्पन्न है कि उसके वैभव को ललचाई दृष्टि से देखा जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के विशाल परिकर में बर्फ की ऊपरी पर्त को छेदकर इतनी अधिक खनिज सम्पदा उपलब्ध की जा सकती है, जितनी कि पिछले दो सौ वर्षों में खुले क्षेत्र से निकाली गई है । इस प्रकार पता चलता है कि दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र में आड़े वक्त के लिए प्रकृति ने जो सम्पदा छिपाकर रखी थी, उसे प्राप्त करके मनुष्य अगली शताब्दियों के लिए निश्चिन्त हो सकेगा ।

हमारा विदित तथा विज्ञात काय-कलेवर तथा परिचय क्षेत्र सीमित है । वह हमें अपर्याप्त मालूम पड़ता है और अभावों की बात सोचकर हम असन्तुष्ट बने रहते हैं, किन्तु यदि अपने रहस्यमय क्षेत्र को अन्तर्जगत में ढूँढ़ें तथा बाह्य जगत के उन देवी क्षेत्रों में प्रवेश करें, जिनसे कि अभी तक हम अपरिचित ही बने रहे हैं, तो वैभव और सन्तोष का नया द्वार खुल सकता है । जरूरत आन्तरिक रहस्यों को उद्घाटित करने और बाह्य जगत में आदर्शवादिता के दैवी क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आवश्यक साहस जुटाने भर की है ।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः

प्रकृति का नियम है कि जो पुरुषार्थी हैं, ईमान की कमाई पर जीना पसन्द करते हैं, उन्हें हर तरह से सहयोग मिलता है, किन्तु इस वैचित्र्यपूर्ण संसार में लुटेरों, मुफ्त का माल बटोरने

वालों की कमी नहीं है । गढ़े खजानों, डूबे जहाजों में छिपे स्वर्ण भण्डार इत्यादि की खोज आदिकाल से होती रही है । कई व्यक्ति अपनी पास की जमा पूँजी एवं जान तक गवाँते रहे हैं, फिर भी किसी ने सबक नहीं लिया । अभिशप्त सम्पदा को पाने के प्रयास लगभग असफल ही रहे हैं ।

कोलम्बस 'सोने की चिड़िया' (भारत) को खोजने निकाला था, पर पहुँच गया—बहामा, बारबेडोस एवं पोर्ट ऑफ स्पेन वेस्टइण्डीज द्वीप समूह में । इतने ही क्षेत्र में चक्कर लगाकर स्पेन लौटकर उसने बताया कि वह प्रकृति खनिज सम्पदा से भरपूर एक 'नई दुनिया' का पता लगा कर आया है । यूरोप भर में चर्चा फैली और उस सम्पदा पर अधिकार जमाने हेतु कई देशों के गोरे चढ़ दौड़े और पश्चिम में जाने पर अमेरिका रूपी विशाल भूखण्ड का पता चला । उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका की खोज इन स्पेनी, ब्रिटिश, पुर्तगाली लुटेरों के दुस्साहस भरे अभियान के कारण ही हो पायी । बाद में पता चला कि वह भूखण्ड मनुष्यों से खाली नहीं है । वहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियन वहीं चिरकाल से मौजूद थे । 'मय' एवं 'इंका' सभ्यता के अवशेष भी खोज निकाले गए ।

भूमि के अनुपात में जनसंख्या कम होने के कारण उस स्थान को बीहड़ भले ही समझा गया हो, पर वस्तुतः वह वैसा था नहीं । वहाँ खनिज सम्पदा का बाहुल्य पाया गया । दक्षिण अफ्रीका से लेकर दक्षिण अमेरिका तक ऐसी पट्टी पायी गई, जिसमें सोना ही सोना छिपा पड़ा था ।

दक्षिण अफ्रीका पर तो इंग्लैण्ड मूल के गोरे मजबूती से जम बैठे और उस पर उन्होंने अपने पंजे गहराई तक घुसा दिए, पर दक्षिण अमेरिका पर कई देशों के गोरे छुट-पुट जमीनों की घेराबन्दी करके मात्र अपने छोटे-छोटे अधिकार क्षेत्र ही बना सके । साधनों के सीमित व घने जंगल होने के कारण वे उत्तरी अमेरिका जैसे सम्पन्न भी न हो सके ।

वीरान स्थानों के सम्बन्ध में दन्त कथाएँ और किंवदन्तियाँ परलोक की कहानियों की तरह तेजी से फैलती हैं और उन पर विश्वास भी कर लिया जाता है । अफवाह यह पनपी कि दक्षिण अमेरिका के जंगलों में शुद्ध सोना कंकड़ पत्थरों की तरह बिखरा पड़ा है । उसे समेटने का कोई साहस कर सके तो देखते-देखते धन कुबेर हो सकता है ।

जहाँ-तहाँ पाये गए स्वर्ण खण्ड और हीरे-पन्ने इस अफवाह का बल देने के लिए काफी थे कि उस भूमि की ऊपरी पर्तों पर ही अपार सम्पदा विद्यमान है । उसकी खुदाई की जाय तो सोने के पर्वत हाथ लग सकते हैं । इस कल्पना को मान्यता स्तर तक पहुँचाने वाले कुछ प्रमाण भी मिल गए ।

एल्डोरेडो के बारे में बाद में बताया गया कि वह क्षेत्र या नाम सोने के राजा का है, जिसके अधिकांश उपकरण सोने के थे और वह अपार स्वर्ण सम्पदा का स्वामी था । उस क्षेत्र में एक सोने की नाव व राजा की प्रतिमा भी पायी गई । वह बताती थी कि सचमुच ही यह क्षेत्र कभी स्वर्ण सम्पदाओं का अधिपति रहा होगा । विश्वास यह बना कि मनुष्यों के न रहने पर भी उस धातु वैभव का अस्तित्व तो यहाँ बना ही रहना चाहिए ।

स्वर्ण नौका का मिलना था कि न केवल उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका में वरन् यूरोप के अन्यान्य देशों में भी यह कथा बिना पर लगाये उड़ गई । उससे खोजी दुस्साहसियों का जोश जगा और जो दक्षिण अमेरिका जैसे सुविधा रहित क्षेत्र में बसने की बात उपेक्षा में डाल चुके थे, उन्होंने नये सिरे से अपना उत्साह उभारा और सोना बटोरने की अपनी-अपनी योजनाएँ बनाने लगे ।

सर्वप्रथम अमेरिका में पहले से बसे गोरों ने यह कार्य अपने हाथ में लिया । उन्होंने स्थानीय कुलियों और मार्गदर्शकों का महँगे मोल पर सहयोग प्राप्त कर सोने के बड़े-बड़े डले एवं पन्ने की किस्म के बहुमूल्य किस्म के पत्थर खोज निकाले । उपलब्धकर्त्ताओं ने प्राप्त सम्पदा का खूब प्रदर्शन किया । कल्पनाओं की उड़ान भरने वाले कुछ दुस्साहसियों ने योजना बनायी, कि स्थानीय आदिवासियों को मटियामेट कर वहाँ खोज-बीन की प्रक्रिया में सहयोग देने वाले व्यक्ति एवं साधन जुटाए जायें । मौका मिलने पर इन लालची व्यक्तियों की हत्या कर, सारी सम्पदा कब्जे में कर ली जाय ।

दक्षिण अमेरिका एवं मध्य अमेरिका से उपजा सोने की खोज का बुखार सारे यूरोप पर छा गया । खोजी दस्युओं की मण्डली बनने लगीं । मार्ग व्यय एवं मशीनी साधनों के लिए कम्पनियाँ बनने लगीं । विभिन्न नागरिकता व वर्ग के लोग अपने-अपने लिए खोज का क्षेत्र निर्धारित करने लगे । मतभेद व झंझट भी खड़े हुए पर वे जबर्दस्त की कमजोर पर जीत के आधार पर सुलझते भी रहे । खोजें इतनी अधिक हुई कि उन सबकी गणना करना कठिन है । फिर भी कुछ बड़े दलों की सूचना तथा प्रतिक्रिया उपलब्ध है । 'सीका' नामक झील के समीप सोने की नाव मिली थी । समझा गया कि उस झील में सोना होना चाहिए । ब्रिटेन तथा स्पेन वालों ने मिलकर इस क्षेत्र को गम्भीरतापूर्वक खोजा ।

सोलहवीं सदी के आरम्भ से ही यह स्वर्ण की खोज का बुखार आरम्भ हुआ और बीसवीं सदी के आरम्भ तक पूरे जोर-शोर-से चलता रहा । आशा की केन्द्र बनी, उस झील की तली में लाखों डॉलर कीमत की मशीनों द्वारा छेद किया गया और उसका पानी नीचे की दिशा में बहाया गया, पर पानी सिर्फ १५ फुट ही घट पाया, जो माल मिला वह इतना कम था कि उसे लागत की तुलना में सौवाँ भाग ही कहा जा सकता है । अन्यत्र भी छुट-पुट कुछ मिला, पर उतने भर से किसी भी मण्डली का समाधान न हुआ । बड़े अभियानों को विशेष रूप से बड़े घाटे में रहना पड़ा ।

कोलम्बिया के उत्तरी तट पर एक खोजी दल ६०० व्यक्ति लेकर क्वेऐडो के नेतृत्व में अग्रसर हुआ । प्राकृतिक प्रकोप तथा रास्ते की कठिनाई के कारण लौटते समय मात्र २०० व्यक्ति शेष रहे और अन्य सब मर गए । घोड़ों और खच्चरों का काफिला भी ठिकाने लग गया । उसमें से भी इतने ही बचे जो मालिकों को लाद कर ठहराव केन्द्र तक बीमार हालत में वापस पहुँचा सके ।

निराश लौटते हुए दलों ने जब नये जोशीले दलों को आते देखा तो उनकी आशा एक बार फिर जगी—सोचने लगे कि वह इनके साथी बन जायें । उन्होंने अपना कमाया सोना उन्हें भेंट किया और अपनी खोज का अनुभव तथा निष्कर्ष भी बताया । साथ ही यह भी कहा कि उन्हें किस क्षेत्र में किन साधनों के साथ जाना चाहिए । सामग्री हेतु एक केन्द्र बना लेना चाहिए ताकि जरूरत के समय वहाँ से रसद-गोला-बारूद इत्यादि मँगाई जा

सके। बात नपी-तुली लगी सो उन्होंने विश्वास कर लिया और सोचा कि इन थके अनुभवी लोगों को ही केन्द्र का रखवाला बना दिया जाय। निराश लोग तो यही चाहते थे। कुछ ही समय बाद उन्होंने सामान को गायब कर दिया और कीमत हाथ लगी उससे अपने वेतन लौट गए। इस प्रकार इन खोजियों को कई ओर से मार सहनी पड़ी। आदिवासियों की सिद्धहस्त तीरन्दाजी सतत् उनके प्राण लेती रही। जंगलों में ठहरना और चलना शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत महँगा पड़ा। इसके अतिरिक्त निराश साथियों का लौटने के लिए आग्रह बढ़ता गया। सबसे बड़ी बात यह थी, कि जिस आशा से धन कुबेर बनने की योजना लेकर चले थे, उसका एक अंश भी पूरा न हो सका। कई व्यक्ति जान गवाँ बैठे। इतना जरूर हुआ कि वन खण्डों में पुरातन काल के बने मन्दिर-महल खण्डहर रूप में दृष्टिगोचर अवश्य हुए जिसके आधार पर पुरातत्व अन्वेषकों को विदित हुआ कि अमेरिका सभ्य समुन्नत रहा है, पर अब तो वहाँ लुटेरों की ही तूती बोलती है। सोने की खोज असफल हुई।

पराई भूमि पर किए गए अतिक्रमण कभी सफल हो सकते हैं क्या ? इस आशा और सम्भावना पर स्वर्ण खोजियों की असफलता ने प्रश्न चिह्न लगा दिया है। वस्तुतः सम्पदा जब अपनी कमाई हुई न हो तो उसको हस्तगत करने के लिए किए गए प्रयास कभी सफल नहीं होते। सृष्टा का बनाया यह नियम कभी टूटता नहीं।

आश्चर्य से भरी ये वसीयतें

धन कमाना एक बात है और खर्च करना सर्वथा दूसरी। सनकी किस्म के व्यक्ति यदि किसी प्रकार सम्पत्ति कमा लेते हैं, तो उपयोग न मालूम होने की स्थिति में उसका अपव्यय ही होता है। इस प्रकार जीवनभर की कमाई बेकार चली जाती है। उससे न व्यक्ति का अपना भला होता है, न राष्ट्र का। इसके विपरीत यदि समाज निर्माण के रचनात्मक कार्यों में उपयोग हो, तो इसका दुहरा लाभ मिलता है। व्यक्ति पुण्य का भागी बनता है और राष्ट्रीय प्रगति में उसके महत्त्वपूर्ण योगदान की सर्वत्र सराहना होती है; किन्तु सनकियों को न अपनी चिन्ता, न देश की। ऐसे ही लोग सम्पत्ति का सर्वाधिक दुरुपयोग करते देखे जाते हैं।

कैटांजरो, इटली की एक धनी महिला मारिया टलारिका ने अपने वसीयतनामे में लिखा कि मृत्युपरान्त उसके धन को उसकी सन्तानों को न दिया जाय और उससे एक ऊँची मीनार बनवायी जाय। मीनार के ऊपर एक छोटा एवं सुन्दर कमरा हो, जिसमें वह अपना मरणोत्तर जीवन दुनिया की अशान्ति से अलग शान्तिपूर्वक बिता सके।

मार्टिन गुहरे फ्राँस के आर्टिगैट गाँव का रहने वाला था। उसकी पत्नी पहले ही दिवंगत हो चुकी थी। दो पुत्र उससे दूर अन्य शहरों में नौकरी करते थे। गाँव में वह अकेला रहता था। जब उसे लगा कि मृत्यु निकट है, तो उसने अपने वकील को बुलवाया और उसे एक लिफाफा दिया। उसमें उसके इस आशय की इच्छा का उल्लेख था, कि उसके बाद उसकी सम्पत्ति का क्या किया जाय ? मार्टिन गुहरे का उसमें स्पष्ट निर्देश था कि सम्पदा उसकी स्वयं की कमायी हुई है। पुत्रों ने कभी उनका तनिक भी ध्यान नहीं रखा। अतः इससे उनका उत्तराधिकार स्वतः समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में सम्पत्ति का उपयोग एक भव्य हवादार कब्र के निर्माण में कर देने का उल्लेख किया था। बाद में इसी कमरे में अपने मृत शरीर को अन्तिम रूप से दफना देने की प्रार्थना थी। इस निर्माण से जो धन बचे, उससे पत्नी की समाधि विनिर्मित करने का निर्देश था।

जेवियर मर्ट्ज मोरक्को के उद्योगपति थे। फुटबाल खेल से उनका गहरा लगाव था। अपने छात्र जीवन में वे इसके अच्छे खिलाड़ी रह चुके थे। आरम्भ में उन्होंने निश्चय किया था, कि वे अपना जीवन इसी खेल के लिए समर्पित कर देंगे; पर नियति कुछ और थी। उन्हें इससे नाता तोड़ना पड़ा। पारिवारिक दायित्व को पूरा करने के लिए विवश होकर उन्हें एक फैक्टरी में काम करना पड़ा; किन्तु इतनी स्वल्प आय उनके बड़े परिवार के लिए कम पड़ती थी, अतः गियर बनाने की आरम्भ में उन्होंने एक छोटी फैक्टरी खोली। बाद में बढ़ते-बढ़ते यह काफी बड़ी हो गई और शुरू के गरीब जेवियर अपने उत्तरार्द्ध जीवन में एक उद्योगपति के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके लड़कों का अपना स्वतन्त्र व्यापार था, पर पिता-पुत्र के बीच सम्बन्ध मधुर न थे। अपना अन्तिम समय निकट जानकर जेवियर ने एक वसीयतनामा तैयार किया, जिसमें लिखा कि उसकी सारी सम्पत्ति मोरक्को के उस फुटबाल खिलाड़ी को दे दी जाय, जो उसकी मृत्यु के पश्चात् के तीन वर्षों में जिसने देशी-विदेशी टूर्नामेण्टों में कुल मिला कर एक सौ पाँच गोल किए हों।

जर्मनी के हैमलिन शहर के एक करोड़पति आर्थर एकमैन ने अपने इच्छा-पत्र में लिखा कि उसकी मृत्यु के उपरान्त अन्तिम-क्रिया में जो लोग सम्मिलित हों, उनमें उसकी दौलत वितरित कर दी जाय। बाद में वैसा ही किया गया।

कैनन हैरी समरसैट, इंग्लैण्ड का एक धनी भिखारी था। वह अपने धन का अधिकांश भाग बैंक में जमा कर देता और थोड़े से में जैसे-तैसे स्वयं गुजारा करता। अन्तिम दिनों में उसके पास लगभग एक हजार पौण्ड जमा था। वह बीमार पड़ गया, तो उसने मैजिस्ट्रेट के नाम एक पत्र लिखा और प्रार्थना की कि उसके देहावसान के पश्चात् उस रकम से एक मनोरंजन गृह बनवाया जाय, ताकि भिक्षा-वृत्ति के बाद का समय भिक्षुक उसमें गुजार सकें।

क्वांग जुफू सोल, कोरिया के एक प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। पत्रकारिता से उन्होंने काफी धन कमाया था। इसके अतिरिक्त पेय बनाने की एक फैक्टरी भी थी। उनके कोई सन्तान नहीं थी। पत्नी ने भी अपना घर कहीं अन्यत्र बसा लिया था। धन का उपयोग उनकी समझ में नहीं आ रहा था। एक दिन उनके दिमाग में एक विचार कौंधा और वैभव के उत्तराधिकार के निमित्त एक इच्छा-पत्र लिख डाला। उस पत्र में उन्होंने न्यायाधीश से अपील की थी, कि उसके शरीरान्त के बाद धन का दावेदार वही हो सकता है, जो राजधानी में डेढ़ हजार मीटर ऊँचा टावर उसकी स्मृति में बनवाये। शर्त को किसी व्यक्ति द्वारा पूरी नहीं किए जाने के कारण सम्पत्ति को सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया।

धन कमाना बुरा नहीं है। बुरा तो वह तब बन जाता है, जब उसका दुरुपयोग होने लगे, जबकि सदुपयोग से न सिर्फ व्यक्ति

यशस्वी बनता है, वरन् उससे राष्ट्र की प्रगति भी आगे बढ़ती है। कमाने से पूर्व खर्च करना सीखें, समाज के लिए नियोजित करना सीखें, विवेकशीलता इसी में है और समय की माँग भी यही है।

दुर्भाग्यग्रस्तों की दुनिया

महापुरुषों, ऋषि कल्प व्यक्तियों के प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ सुरक्षित रखी जाती हैं। भगवान बुद्ध के दाँत, हजरत मुहम्मद साहब के बाल, ईसा के वस्त्र इसलिए सुरक्षित रखे गए हैं कि उन दिवंगत आत्माओं के साथ सम्बद्ध रहने के कारण वे पदार्थ भी विशिष्ट पवित्रता और प्रखरता युक्त समझे गए हैं। महामानवों के हाथ का प्रसाद ग्रहण करके भी लोग कृत-कृत्य होते हैं। इसमें प्रसाद के खाद्य पदार्थ की नहीं उन स्पर्शकर्त्ताओं की प्राण प्रतिभा का समावेश रहने से ही विशेषता उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार दुरात्माओं के दुष्कृतों से भी स्थान, उपकरण आदि पर भी उनका प्रभाव देखा जाता है। बूचरखानों, वेश्यालय, मद्यशालाओं के भीतर तथा इर्द-गिर्द ऐसा वातावरण रहता है, जिससे सौम्य सज्जनों का मन भी विक्षुब्ध होने लगे। इसलिए ऐसे स्थानों से दूर रहना ही श्रेयस्कर माना जाता है।

कई बार कुछ मकान, आभूषण, वस्त्र, उपकरण आदि में भली-बुरी विशेषताएँ सम्बन्धित लोगों के सम्पर्क से उत्पन्न होती देखी गई हैं। जहाँ अचिन्तन-चिन्तन का, अकरणीय कृत्यों का बाहुल्य रहा है। जहाँ उत्पीड़न, शोषण, अन्याय, आतंक का दौर चला है। वहाँ ऐसी विभीषिकाएँ जम जाती हैं, जिनके सम्पर्क में आने वालों का अहित अनिष्ट होने लगता है। ऐसे स्थान अभिशप्त कहलाते हैं। भुतहे मकान, मरघट आदि में डेरा डालने पर जिस प्रकार भय, आतंक की अनुभूति होती है, उसी प्रकार अभिशप्त मकान या पदार्थ भी उपयोग करने वालों का अनिष्ट करते देखे गए हैं। इसे चेतना के चुम्बकत्व का प्रभाव प्रमाण ही समझना चाहिए।

मिशीगन की विशालकाय झील में मुसाफिर और सामान इधर से उधर ढोने के लिए सन् १८८८ में एक स्टीमर बना। उसका आदि, मध्य और अन्त सभी दुर्भाग्य से जुड़ा रहा। जल प्रवेश को एक वर्ष भी न होने पाया था कि वह टकरा कर क्षतिग्रस्त हो गया। १८६० में वह डूबकर तली में बैठ गया। बड़ी कठिनाई से उसे निकाला और तैराया गया। चलाने वाली कम्पनी भी मुसीबत में पड़ी और ढोए गए मुसाफिर तथा अस्वाव भी क्षतिग्रस्त होते रहे। १८६३ और १६०२ में वह डूबते-डूबते बचाया जा सका। १६१७ में एक पुल से जा टकराया। १६२० में एक बर्फीली चट्टान से जा टकराया और उलट गया। अन्त में इस आये दिन की क्लेश से पीछा छुड़ाने के लिए १६२१ में उसे कबाड़ियों के हाथ बेच दिया गया।

पेरु की सेण्ट्रल रेलवे का एक इन्जन जिस दिन से बना उसी दिन से दुर्घटना करने लगा। आये दिन कभी अपने कलपुर्जे तोड़ लेता, कभी दूसरों के प्राण संकट खड़ा करता। वह पाँच बार पटरी से उतरा, जमीन में घुसा और क्रेन पर लादकर यथास्थान लाया गया। संचालकों को उसका दुर्भाग्य मिटाने के लिए एक उपाय सूझा। उसका नम्बर ३७ था। बदल कर ३३ कर दिया गया, प्लेट उसी नम्बर की और कागजात में इन्दराज उसी नम्बर का। तो भी उसका दुर्भाग्य छूटा नहीं वरन् और भी उग्र हो गया। ब्रेक फेल हुआ और एक दूसरी ट्रेन से जा टकराया। टक्कर बहुत भयानक थी, उसने समूचे रेल के पुल को ही उखाड़ दिया। उखड़ा पुल नीचे नदी में गिरा और धन-जन की बहुत क्षति हुई।

सन् १६८५ की बात है। जापान के एक फ्रेन्सी ड्रेस विक्रेता ने एक बहुमूल्य-किमोनो-महिला परिधान तैयार किया। उसे देखने तो अनेकों लड़कियाँ आईं पर मूल्य को देखते हुए खरीदने की हिम्मत किसी की न पड़ी। एक धनी लड़की ने उसे खरीदा। घर ले जाने के बाद वह उसे पहनने भी न पायी थी कि मर गई। घर वालों ने कुछ कम मूल्य पर उसी विक्रेता को लौटा दिया। दूसरी बार जिसने खरीदा वह भी इसी तरह मरी और पोशाक वापस लौटी। तीसरी बार भी ठीक यही हुआ। इस अभागे परिधान की सुन्दरता, कीमत के साथ-साथ उसके अभागी होने की चर्चा पूरे जापान में फैल गई। देखने कौतूहलवश बहुत आते, पर उसे खरीदना तो दूर कोई छूता तक नहीं था।

मामला राज दरबार तक पहुँचा। पोशाक कचहरी में पेश हुई। विवरण सुनने के बाद धर्मगुरु ने उसे आग में जला देने की दण्डता सुना दी। परिधान जिस समय जलाया जा रहा था, ठीक उसी समय भयंकर आँधी आयी। चिन्गारियाँ उड़-उड़कर दूर-दूर तक पहुँची और उससे भयंकर अग्निकाण्ड खड़ा हो गया। उससे इतनी बड़ी क्षति हुई जितनी कि उससे पूर्व कभी भी नहीं हुई थी। प्रायः तीन-चौथाई टोकियो शहर जल गया। इस अभूतपूर्व अग्निकाण्ड में ३०० मन्दिर, ५०० शाही महल, ६००० स्टोर, ६१ पुल और हजारों लाख घर-झोंपड़ी जलकर स्वाहा हो गए। इतना ही नहीं उस अग्निकाण्ड में लगभग एक लाख मनुष्य भी जलकर खाक हो गए।

ब्रिटिश म्यूजियम में एक अभिशप्त ममी रखी हुई है। यह ममी सन् १८६४ में अरब देश की एक खुदाई से प्राप्त हुई थी। आकर्षण से प्रभावित होकर बाबसिसरो नामक एक पूँजीपति ने उसे खरीद लिया। दो माह के भीतर उसे व्यापार में इतना बड़ा घाटा हुआ कि वह अपने को सन्तुलित न रख सका। हृदय की धड़कन रुक जाने से उसकी मृत्यु हो गई। ममी की देख-रेख करने वाले दो नौकर भी बिना किसी रोग के बिस्तर पर सोए हुए मृत पाये गए। उक्त पूँजीपति का इकलौता बेटा ट्रक दुर्घटना की चपेट में आ गया और उसे अपनी दोनों टाँगें कटानी पड़ीं। अभिशप्त जानकर घरवालों ने बिना कोई मूल्य लिए एक फोटो ग्राफर को वह ममी सौंप दी। फोटोग्राफर जे. एस. सैक्सन ने अधिक कीमत प्राप्त करने के उद्देश्य से ममी का फोटो लेना चाहा, जिससे विभिन्न पत्रिकाओं में उसे प्रकाशन के लिए दिया जा सके। फोटो साफ करने पर यह देखकर विस्मित रह गया कि उसमें मिस्र की अधेड़ महिला का स्पष्ट चित्र आ गया है। चित्र लेने के दूसरे दिन ही वह पागल हो गया तथा कुछ ही दिनों में मर गया। उसकी पत्नी ने परेशान होकर लन्दन स्थित ब्रिटिश म्यूजियम को ममी को वापस सौंप दिया। ममी को म्यूजियम में पहुँचाने वाले दो मजदूरों में से एक तो एक सप्ताह के भीतर ही मर गया, दूसरा कार दुर्घटना में हाथ-पैर गवाँ बैठा। म्यूजियम में पहुँचने के बाद भी अभिशप्त ममी का प्रकोप कम नहीं हुआ।

शहर की मशहूर फोटोग्राफर कम्पनी मेसर्स डब्ल्यू. ए. मैनसल ने इस ममी का चित्र लेने का प्रयास किया । उक्त कम्पनी मालिक का लड़का फोटोग्राफर को लेकर ममी का निरीक्षण करने आया । निरीक्षण के उपरान्त वापस लौटते समय कार दुर्घटना में उसका हाथ टूट गया । फोटोग्राफर का लड़का घर में खिड़की के पास बैठा था । इतने में खिड़की में लगा काँच अपने आप निकलकर उसके ऊपर गिर पड़ा । फलस्वरूप वह बुरी तरह घायल हो गया । फोटोग्राफर इन संकेतों को न समझ सका । दूसरे दिन म्यूजियम से उक्त ताबूत का चित्र खींचकर वह लौट ही रहा था कि कहीं दूर से एक काँच का टुकड़ा उसकी नाक में आकर टकराया । नाक कट गई । उक्त संकटों को देखकर म्यूजियम के अधिकारियों ने उसका चित्र लेना ही वर्जित कर दिया । इन घटनाओं को देखकर म्यूजियम के अधिकारियों ने ममी के इतिहास का पता लगाने का कार्य पुरातत्ववेत्ताओं को सौंपा । पर्यवेक्षण करने पर मालूम हुआ कि ताबूत मिस्र की एक ऐसी महिला का है जो अथाह सम्पत्ति की मालकिन थी । अनैतिक कार्यों द्वारा उसने यह सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी । जीवन के अन्तिम दिनों में कुछ व्यक्तियों ने उसके साथ षडयन्त्र करके सम्पत्ति हड़प ली । वह विक्षिप्तावस्था में मरी । विशिष्ट सूत्रों द्वारा जानकारी मिली कि वह ताबूत पहले भी अनेकों व्यक्तियों की मृत्यु का कारण बन चुका है । उसकी आत्मा निरन्तर ताबूत के साथ बनी रही जो भी उसे छूता अथवा छेड़छाड़ करने का प्रयत्न करता, उसके कोप का भाजन होता ।

ब्रिटेन के एक अपराधी के घर से एक ऐसा चित्र बरामद हुआ जो बिल्ली का था तथा नीले पेपर पर काले चाक से बनाया हुआ था । ध्यान से देखने पर इस अस्पष्ट चित्र में खूँखार जानवर की आँखें चमकती दिखाई देती थीं । सर्वप्रथम वन विभाग के एक अधिकारी ने उसे प्राप्त किया । उसने उसे अपने शयन कक्ष में लगाया । अभी कुछ ही दिन बीते होंगे कि वन अधिकारी ने आत्महत्या कर ली । चित्र आकर्षक था, पर उसे दुर्भाग्यशाली जानकर पत्नी ने काउण्ट अलेक्जेण्डर नामक व्यक्ति के हाथों बेच दिया । जिसे उसने अपने ड्रेसिंग रूम में सजाया । काउण्ट अलेक्जेण्डर जब भी ध्यान से चित्र को देखता उसे दो हिंसात्मक आँखें घूरती दिखाई पड़तीं । एक दिन विक्षिप्तावस्था में उसने स्वयं को गोली मार ली । इस चित्र ने अपना तीसरा शिकार काउण्ट अलेक्जेण्डर के युवा पुत्र को बनाया । दुर्लभ वस्तुओं को एकत्रित करने के शौक को पूरा करने के लिए वह उस चित्र को अपने घर ले आया । चित्र को एक दिन वह ध्यान से देख रहा था । अचानक डरने लगा कि किसी व्यक्ति की खूनी आँखें उसे घूर रही हैं । असन्तुलन की स्थिति में उसने भी आत्महत्या कर ली । चौथा शिकार उस युवक का एक रिश्तेदार बना । चित्र की पेंटिंग बनाने के लिए वह उसे अपने घर ले आया । दूसरे दिन वह अपने बिस्तर पर मृत पाया गया । इसके साथ ही वह रहस्यमय चित्र भी न जाने कहाँ गायब हो गया ।

जिस अपराधी के घर से उक्त चित्र बरामद हुआ उसकी विस्तृत जानकारी एकत्रित करने पर कई रोचक तथ्य सामने आये । इण्टेलिजेन्स डिपार्टमेण्ट के विवरण में वर्णन था, कि वह रहस्यमय चित्र एक अपराधी गिरोह का कोई संकेत था । जिस घर से वह प्राप्त हुआ उसका मालिक उक्त गिरोह का सरदार था । वह चित्र उसे अत्यधिक प्रिय था तथा सदा अपने पास रखता था । उसके ऊपर अनेकों हत्याओं एवं अपराधों का आरोप दर्ज था ।

इटली का एक जहाज द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अटलांटिक महासागर से होकर जा रहा था । नाविकों को सागर की लहरों पर कोई चीज तैरती दिखायी दी । जाल डालकर खींचने पर वह काठ की एक आदमकद युवती की प्रतिमा निकली । प्रतिमा के जहाज पर आते ही नाविक एवं यात्री चारों ओर एकत्रित होकर देखने लगे । नारी सौन्दर्य की इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति उस काष्ठमूर्ति में हुई थी कि सभी मन्त्रमुग्ध बने देखते रहे । प्रतिमा की लकड़ी की चौकी पर नाम अंकित था 'एटलांश' । प्रतिमा पर आसक्त दो नाविक अपना सन्तुलन गवाँ बैठे । उन्होंने अथाह समुद्र में छलांग लगा दी । नाव के कप्तान ने इस आकस्मिक घटना के फलस्वरूप प्रतिमा को केबिन में मजबूत ताले के भीतर बन्द कर दिया । इटली बन्दरगाह पर पहुँचकर जहाज के कप्तान ने प्रतिमा को निकटवर्ती अजायबघर को सौंप दिया । प्रतिमा में आकर्षण इतना अधिक था कि वहाँ भी दर्शकों की भीड़ जमा हो गई । कितने ही व्यक्ति तो देखकर पागल हो गए । जर्मन सेना के एक लेफ्टिनेण्ट ने १३ अक्टूबर, १९४४ को प्रतिमा के समक्ष सीने में गोली मारकर आत्महत्या कर ली । एक अन्य व्यक्ति ने भी इसी प्रकार गोली मार ली । अजायबघर के अधिकारियों ने यह स्थिति देखकर विचार किया कि उस प्रतिमा को हटा देना चाहिए, पर दुर्लभ एवं अनोखी कलाकृति होने के कारण उसे हटाया न जा सका । हाँ, अधिकारियों ने उसके प्रदर्शन पर रोक अवश्य लगा दी । प्रतिमा के कलाकार का नाम पता नहीं मालूम हो सका, पर ऐसा अनुमान लगाया गया कि प्रतिमा किसी द्वीप की राजकुमारी की है जो अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी थी एवं यौवनकाल में ही राजकीय दुष्चक्रों के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी ।

ऐसे प्रसंग घटते हैं तो दुर्भाग्यग्रस्तों एवं उनसे जुड़ी वस्तुओं के अभिशापों का स्मरण दिला देते हैं । यह तथ्य अपनी जगह अटल है, कि अभिशप्त वातावरण चेतन जगत के प्रवाह का ही एक निषेधात्मक पहलू है । इनसे बचना व सुसंस्कारी वातावरण के सान्निध्य में आना ही श्रेयस्कर है, भले ही तुरन्त आकर्षण पहली ओर ही घसीटता हो ।

अनीति का प्रतिकार

कई बार अनीतिकर्त्ताओं को सताने वालों की हाय ले बैठती है । कई बार दुरात्माओं को दण्डस्वरूप आत्मबल सम्पन्न शाप देते भी देखे गए हैं । कोई व्यक्ति पूर्व संचित संस्कारों पर अविज्ञात कारणों से ऐसे दुर्भाग्यग्रस्त होते हैं, कि सामान्य घटनाएँ भी उनके विपरीत पड़ती हैं । कई बार दूसरों को सताने वाला व्यक्ति एवं पदार्थ कर्म फल भुगतते और दैवी प्रकोप से ग्रसित होते देखे गए हैं । ऐसे अभागे अभिशप्त के अनेक उदाहरण जहाँ-तहाँ मिलते रहते हैं ।

ब्राजील की भूतकालीन राजधानी 'रियो-डि-डिनरो' के सम्बन्ध में पुरातत्व अभिलेखागार में सन् १७३४ का दस्तावेज रखा है । क्रमांक है इसका— ५१२/१७३४ । इन दस्तावेजों के अनुसार वोलोविया और ब्राजील की सीमा के निकट एक

हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखला के निकटवर्ती सघन वन में ऐसे ध्वंसावशेष नगर की चर्चा है, जहाँ किसी समय सम्भवतः ब्राजील की राजधानी रही होगी और कोई सभ्य जाति शासन करती रही होगी । उन ध्वंसावशेषों में बहुमूल्य स्वर्ण खण्ड बिखरे पड़े हैं । अनुमान है कि खुदाई करने पर वहाँ सोने और चाँदी के बहुमूल्य भण्डार मिल सकते हैं ।

विवरण के अनुसार अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में एक खोजी दल इस क्षेत्र में दबे स्वर्ण खजाने का पता लगाने के लिए चला । कई महीनों के बाद वह इन खण्डहरों तक पहुँचा और इन खण्डहरों में जहाँ-तहाँ सोने के सिक्के, सलाखें, बर्तन, शस्त्र आदि बिखरे पड़े पाये । खोजी दल आवश्यक जानकारी एकत्रित करके वापस लौटा तो परागुआसु, नदी के तट पर बसे आदिवासियों के हाथों अपने साथियों को आने के लिए एक पत्र भेजा, जिसमें उस स्वर्ण नगरी का नक्शा, वहाँ की सम्पदा, पहुँचने का मार्ग आदि के बारे में सांकेतिक भाषा में लिखा । यही है वह ५१२ नम्बर का दस्तावेज जिसकी खोज में अब तक कितनों ने अपनी जानें गवाँयीं हैं । पत्र यथास्थान पहुँच गया । सहायक दल पहुँचा भी पर उसे अपने अग्रणी साथियों का कहीं पता नहीं चल सका ।

सन् १९४७ में लन्दन के एक प्रोफसर ऐरिक हेमण्ड उस खोज पर निकले । उन्होंने दस्तावेजों का बारीकी से अध्ययन किया और हवाई जहाज, जीप, मोटर साइकिल आदि का सहारा लेकर चले । आगे बीहड़ रास्ते से पैदल ही चल पड़े । वे इस वन प्रदेश में ईसाई धर्म के प्रचारक पादरी जोनायन वेल्स से मिले । उन्होंने आगे जाने से मना किया फिर भी हेमण्ड नहीं माने । तब उस पादरी ने हेमण्ड को तेरह प्रशिक्षित कबूतर दिए और कहा—एक-एक करके वह इनके पैरों में पत्र बाँधकर उन तक सन्देश पहुँचाते रहें । हेमण्ड ने किया भी ऐसा ही किया परन्तु छठे, ग्यारहवें और तेरहवें नम्बर के कबूतर ही पहुँचे, शेष रास्ते में ही गायब हो गए । तेरहवें पत्र में हेमण्ड ने लिखा—"मैं बीमार पड़ गया हूँ, मेरा मृत्युकाल निकट है लेकिन फार्सेट द्वारा आरम्भ की गई खोज का अन्तिम चरण पूरा कर लिया ।" पादरी जोनायन ने स्वयं खोजबीन की, पर बाद में इन सज्जन (श्री हेमण्ड) का कहीं पता नहीं चला ।

दूसरी घटना है—सन् १८३२ की । पाईलीन बीवर नामक व्यक्ति को कहीं से पता चला कि समीपवर्ती सघन वन की पर्वत श्रृंखला में न केवल सोने का भण्डार दबा पड़ा है, वरन् वहाँ रात को स्वर्ण कणों की वर्षा भी होती है । पता लगाने वह उस स्थान पर पहुँचा, खेमा गाढ़ा । रात्रि के समय उसने स्वर्ण कणों की वर्षा होते देखी और लगा सोना समेटने । ऊपर सिर उठाया तो कुछ छायाओं के खिलखिलाते चेहरे दिखाई दिए । भयभीत हो जैसे ही खेमें की ओर नजर दौड़ायी, खेमा गायब था । वह भयभीत हो सोना छोड़कर वापस घर लौट आया । ठीक इसी से मिलता-जुलता अनुभव मैक्सिको निवासी एक युवक 'डान पैरेलता' भी कर चुका था । वह तो कम से कम अपनी जान बचा सकने में सफल हो गया लेकिन उसके साथी इसी कुचक्र में अपनी जान गवाँ बैठे ।

स्टेनले फर्नेड को 'जेम्स' नामक व्यक्ति की लिखी एक डायरी मिली, जिसमें अमेरिका स्थित एक खूनी पहाड़ का वर्णन था, जहाँ सोना दबा ही नहीं पड़ा है वरन् बरसता भी है । जेम्स इसी खोज में अपनी जान गवाँ बैठा था, लेकिन इसके पूर्व वह वहाँ के समस्त विवरण लिख चुका था । फर्नेड उस डायरी के आधार पर अपने साथी बेंजामिन फरेश को साथ ले सौ मील लम्बे निस्तब्ध वनों को पार करते हुए सायंकाल तीन बजे उस पर्वत के निकट पहुँच गए । ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश कर रहे थे कि अचानक फरेश के सिर में कहीं से आकर दो गोलियाँ लगीं और वह खून से लथपथ होकर वहीं गिर पड़ा । स्टेनले वापस भाग तो आया, पर वह पागल हो गया । यह समाचार मैक्सिको और अमेरिका के समाचार-पत्रों में सविस्तार छपा । मामला अमेरिकी खुफिया पुलिस के एफ. बी. आई. को सौंपा गया । कुछ समय पूर्व रॉबर्ट नामक व्यक्ति के साथ भी यही घटना घट चुकी थी । अतः मामले की गहराई से जाँच की गई लेकिन कुछ भी ज्ञात न हो सका ।

बाल्ज नामक युवक ने इस दिशा में अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण कदम उठाने का निश्चय किया । उसने उस क्षेत्र के आदिवासियों के साथ घनिष्ठता बढ़ाई और एक आदिवासी युवती से शादी कर ली जिससे उस क्षेत्र में देर तक टिक सके एवं उनकी सहायता से अधिक जानकारी प्राप्त कर सके । बस जाने पर सोना समेटने और भेजने का काम तो करता रहा पर आदिवासियों से उद्गम की अधिक जानकारी प्राप्त करने में सफल न हो सका, उस क्षेत्र में सबसे अधिक दिन तक रहने और अधिक खोज करने का काम बाल्ज ने किया । अपने विवरणों के सम्बन्ध में उसने एक ऐसी सुरंग का उल्लेख किया है, जिसमें सैकड़ों नर-कंकाल भरे पड़े थे । सम्भवतः इस क्षेत्र के रखवाले देवताओं या तान्त्रिकों का तूफानी आक्रमण ही स्वर्ण खोजियों की जान ले बैठता है । प्रथम महायुद्ध के पराक्रमी योद्धा बरेनी ने भी इस क्षेत्र में अधिक दिन रहकर अधिक खोजें कीं । उनका मत था कि इस क्षेत्र में विपुल सम्पदा है जिसका रहस्य वहाँ के कबीले आदिवासी जानते हैं पर वे किसी को उस क्षेत्र में आने नहीं देते और तान्त्रिक पुरोहितों की आज्ञानुसार आगन्तुकों की हत्या कर देते हैं ।

सगर पुत्रों का कपिल मुनि के शाप से भस्म हो जाना, श्रृंगी ऋषि के शाप से परीक्षित को साँप द्वारा काटा जाना, मेघदूत वर्णन में यक्ष का वियोग दुःख सहना, गान्धारी के शाप से यदुकुल का लड़कर समाप्त होना, नहुष का सर्प बनना, त्रिशंकु का उल्टा लटकना, दमयन्ती के शाप से व्याघ्र की दुर्गति होना जैसी असंख्य पुराण कथाएँ सुनी जाती हैं । पुराण के इन घटनाक्रमों की साक्षी आज भी देखने को मिलती है ।

केप कॉलानी के उच्च गवर्नर की अदालत से ६ सैनिकों को फाँसी की सजा सुनाई थी । गवर्नर का काम था । पीटर जिव्वर्ट नार्दन सैनिकों पर इल्जाम था कि वे भागने की कोशिश कर रहे थे । वस्तुतः सैनिक निर्दोष थे । फिर भी उन्हें फाँसी के तख्ते पर चढ़ना पड़ा ।

अन्तिम सिपाही जब मृत्यु वेदी की ओर जा रहा था, तो वह जोर से चिल्लाया—"नार्दन, जरा ठहरो, मैं कुछ ही समय में

तुझे ईश्वर के दरबार में जवाब देने के लिए घसीटकर ले चलूँगा ।" फाँसी लगा दी गई । देखा गया कि कुछ ही मिनटों के उपरान्त गवर्नर अपने दफ्तर में कुर्सी पर बैठा-बैठा मर गया ।

वेनिस के वैज्ञानिक फ्रान्सेस्को डेले वार्न ने युद्ध में काम आने वाले एक विचित्र रॉकेट का आविष्कार किया । वह ३००० पौण्ड भारी गोला लेकर उड़ता था और लक्ष्य तक जा पहुँचता था । उन दिनों इस आविष्कार की बहुत चर्चा थी ।

एक बार इस आविष्कार का उपयोग युगोस्लाविया की घेराबन्दी तोड़ने में किया जाना था । गोला दागा गया । संयोग की बात कि दंगित समय आविष्कारक खुद उस मशीन में फँस गया और गोले के साथ उड़ता हुआ निर्धारित निशाने के नजदीक मरा । वह एक महिला से जा टकराया । महिला और कोई नहीं उसकी पत्नी जो किसी काम से उस इलाके में आयी थी । टक्कर में पति-पत्नी दोनों चूर-चूर हो गए । दोनों एक साथ दफनाए गए ।

३० मई, १८८७ को इटली के टोरिओटिकाने की राजकुमारी का विवाह इटली के राजकुमार ड्यूक डिआडस्टा के साथ हुआ । विवाह का दिन ऐसा अभागा निकला कि उस समारोह में भाग लेने वालों में से कितनों को ही अपनी जान से हाथ धोना पड़ा । उन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) राजकुमारी की निजी नौकरानी ने उसी दिन फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली ।

(२) द्वारपाल ने अपना गला काट डाला ।

(३) बारात के जुलूस का नेतृत्व करने वाला कर्नल लू लगने से ऐसा बीमार पड़ा और मरने के बाद ही चारपाई से उठा ।

(४) जिस ट्रेन से वे दोनों सुहाग रात मनाने जा रहे थे, उसका स्टेशन मास्टर गाड़ी के नीचे आ गया और कुचल कर मर गया ।

(५) राजा का व्यक्तिगत सहायक घोड़े से सिर के बल गिरा और वहीं मर गया ।

(६) विवाह के विशेष प्रबन्धक वेस्ट मैन अर्द्धविक्षिप्त स्थिति में असन्तुलित हो गए और प्राण गवाँ बैठे ।

ऐण्टोनिया रोम के राजा क्लाईडयस की बेटी थी । राजकुमारी तथा सुन्दरी होने के कारण उसके सामने विवाह प्रस्ताव सदा पड़े ही रहे । दो बार उसने विवाह किया था पर उनमें से सफल एक भी नहीं हुआ । विभिन्न कारणों से उसके यह पति कुछ ही दिन पीछे किसी अपराध में फँसे और मृत्युदण्ड के अधिकारी बने । एण्टोनिया ने उन दोनों की भयानक मृत्यु अपनी आँखों से देखी । तीसरी बार सम्राट् नीरो की बारी आयी । उनसे जोशीला विवाह प्रस्ताव भेजा, पर वह स्वीकृत न हुआ । इस पर अपमानित और क्षुब्ध नीरो ने स्वयं अपने आपको फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली ।

अभिशाप जिस भी वस्तु अथवा व्यक्ति के साथ जुड़ा हो, अन्ततः उन्हें विनाश की ओर ही ले जाता है । यह प्रकृति की एक सुनिश्चित विधि व्यवस्था है । दुस्साहस की चरम सीमा और वह भी गलत दिशा में हो तो परिणाम निश्चित ही दुःखद होंगे । यदि यही प्रयास सही दिशा में हों तो फिर सुखद परिणतियों की कल्पना ही की जा सकती है ।

सौभाग्यों और दुर्भाग्यों की अविज्ञात शृंखला

सौभाग्य की तरह दुर्भाग्य का भी अपना अस्तित्व है । व्यक्ति अपने बुद्धि कौशल और पराक्रम से अनेकों सम्पदाएँ-सफलताएँ प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु यह भी सच है कि कितनों ही को अनायास ही उतना कुछ मिल जाता है, जिसको उनकी योग्यता तत्परता से कहीं अधिक ही कहा जा सकता है । स्वल्प प्रयास से अधिक बढ़ी-चढ़ी सफलताओं की तरह अनेकों के सम्मुख ऐसा दुर्भाग्य प्रकट होते भी देखा गया है, जिसमें सही प्रयास करने पर भी असफलता का मुँह देखना पड़ा । इसी प्रकार ऐसा भी होता रहता है, कि किन्हीं को अकारण संकट में फँसना और त्रास सहना पड़ा । ऐसे प्रसंगों को दुर्भाग्य कहा जाता है ।

दुर्भाग्य जैसी दुर्घटनाओं का कारण अविज्ञात है । पूर्व जन्म का संचित कर्मफल, ग्रह दशा, दैवी प्रकोप, भाग्य विधान कहकर इन प्रसंगों का निमित्त कारण समझने का प्रयत्न किया जाता है । फिर भी इतने भर में सन्तोष नहीं होता । अभी उन वास्तविक कारणों का जानना शेष है, जो सौभाग्य और दुर्भाग्य की तरह प्रकट होते और अप्रत्याशित परिणतियाँ प्रस्तुत करते हैं ।

इस सन्दर्भ के रहस्य तब और भी अधिक जटिल हो जाते हैं, जब दुर्भाग्यों को कई व्यक्तियों के साथ एक ही घटनाक्रम के साथ जुड़ते हुए देखा जाता है अथवा एक ही समय में एक जैसी घटनाएँ घटित होती देखी जाती हैं । संयोग भी तो आखिर किसी-किसी नियम के अन्तर्गत ही होने चाहिए । यहाँ अकस्मात् या अपवाद जैसा घटित होने की भी तो, इस सुनियोजित सृष्टि में कोई गुंजाइश नहीं है ।

मनुष्यों के साथ कई प्रकार की घटनाएँ एक ही क्रम से घटित होती देखी जाती हैं । इन दुर्भाग्यों के पीछे क्या तारतम्य है, इसका कारण विदित न होने पर भी इतना अवश्य है, कि सृष्टि के कुछ नियम ऐसे हैं जो इस प्रकार के संयोग बिठाने के लिए आधारभूत कारण हैं । भले ही हम उन्हें समझ न पाये हों । चेतना के अदृश्य क्षेत्र का अनुसन्धान क्रम जब चलेगा, तब प्रतीत होगा कि सौभाग्यों और दुर्भाग्यों का सूत्र संचालन किस केन्द्र से होता है । उसका स्वरूप, स्थान और विधान समझ सकने पर हमें सौभाग्य से लाभान्वित हो सकने और दुर्भाग्य से बच सकने की स्थिति में भी पहुँचा सकते हैं ।

संसार में विभिन्न अवसरों पर घटित होने वाले योजनाबद्ध दुर्भाग्य में से कुछ विशेष रूप से विचारणीय हैं ।

प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होते ही फ्राँस के इण्टेलिजेन्स विभाग ने एक जर्मन जासूस पेटर कार्पिन को देश में प्रवेश करते ही गिरफ्तार कर लिया और उसे गुप्त स्थान में कैदी बनाकर रखवाया । सन् १९१७ में छद्मवेश बनाकर फ्राँस की जेल से पेटर भाग निकला । इसके पूर्व उसने एक जाली दस्तावेज बनाकर अपने अधिकारियों को इस आशय का पत्र भेजा, जिसमें उसने अपने ऊपर किए जा रहे व्यय को बन्द कर देने और उससे एक वाहन खरीदने के लिए निवेदन किया था । १९१९ में रूहर में एक सड़क दुर्घटना में उसी वाहन से एक व्यक्ति कुचल कर मर

गया । अब तक यह फ्राँस के अधिकार में था । जाँच-पड़ताल करने पर पाया गया कि यह वही पेटर कार्पिन था, जिसने तीन वर्ष पूर्व फ्रांस की सरकार की आँखों में धूल झोंकी थी ।

हनी ग्रीव, टेक्सास के हेनरी जीगलैण्ड ने १८८३ में अपनी प्रेमिका से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया । उसके इस व्यवहार से प्रेमिका के भाई ने जीगलैण्ड को मार डालने के इरादे से उस पर प्राण घातक हमला किया, परन्तु निशाना ठीक नहीं बैठा और गोली उसके चेहरे को स्पर्श करती हुई निकल कर समीप के एक पेड़ में जा धँसी । हमलावर ने समझ लिया कि जीगलैण्ड मारा गया और वह वहाँ से भाग निकला ।

सन् १९१३ में जीगलैण्ड ने उस पेड़ को काटना चाहा, परन्तु स्तम्भ मोटा और मजबूत होने के कारण उसे मुश्किल जान पड़ी । पेड़ काटने के लिए उसने डायनामाइट का इस्तेमाल किया । दुर्भाग्य से पेड़ में धँसी गोली विस्फोट के कारण निकल कर जीगलैण्ड के सिर में जा समाई । जीगलैण्ड वहीं ढेर हो गया ।

सन् १९३० में डेट्राइड की सड़कों पर जोसेफ फिगलाक चहलकदमी कर रहे थे, कि अचानक एक हृष्ट-पुष्ट मोटा-ताजा लड़का ऊँचाई पर स्थित एक खिड़की से उनके ऊपर आ गिरा । एक वर्ष बाद उसी दिन उसी खिड़की से वही बालक फिर से फिगलाक के ऊपर कूद पड़ा । फिगलाक और वह बालक दोनों अभी जीवित हैं ।

क्लौडे वालबोने नामक हत्यारे ने १८७२ में फ्रान्स के बैरन रोडेमायर डि ताराजोन नामक प्रख्यात व्यक्ति की हत्या कर दी । इससे २१ वर्ष पूर्व इसी नाम के एक अन्य हत्यारे ने बैरन के पिता को मौत के घाट उतार दिया था । इन दोनों हत्यारों में कोई आपसी सम्बन्ध नहीं था ।

मार्सीले फ्रांस के हेनरी ट्रैग्ने की गणना महान् द्वन्द्व योद्धाओं में की जाती है । सन् १८६१ से १८७८ तक उसने पाँच लड़ाइयाँ लड़ीं । चार युद्धों में उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियों, दुश्मनों को मात्र एक-एक गोलियों के अचूक निशाने से ही धाराशायी किया था । पाँचवें युद्ध में गोलियों के आदान-प्रदान से वह स्वयं मारा गया, फिर भी उसका निशाना अचूक रहा और अपने प्रतिद्वन्द्वी की जान लेकर ही रहा ।

जोसेफ एनर अपने समय के प्रख्यात चित्रकार थे । सन् १८३६ में एनर १८ वर्ष की अल्पायु में वियना में रस्सी के फन्दे को गले में डालकर आत्महत्या करने जा रहे थे, कि अचानक कैपचियन सन्त उनके सम्मुख प्रकट हो गए और इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना से उनकी रक्षा की । चार वर्ष बाद बुडापेस्ट में एनर ने फिर से रस्सी से लटककर मरना चाहा, परन्तु इस बार भी सन्त ने अचानक प्रकट होकर फाँसी के फन्दे से त्राण दिलाया, आठ वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त क्रान्ति का समर्थन करने और राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने के आरोप में एनर को फाँसी की सजा मिली । कैपुचियन सन्त की प्रेरणा से जोसेफ एनर का प्राण दण्ड स्थगित कर दिया गया ।

१८८६ में ६८ वर्ष की आयु में जोसेफ ने एक दिन अपनी ही पिस्तौल से गोली मारकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली । उसके अन्तिम दाह संस्कार का पूरा प्रबन्ध उसी प्राणरक्षक सन्त ने किया, जिसके नाम तक को एनर नहीं जानता था ।

फ्रान्स के लूइस पन्द्रहवें के शैशवकाल से ही प्रत्येक महीने की २१वीं तिथि को एक ज्योतिषी उनके घर आता और बालक की सुरक्षा के लिए अभिभावकों को विशेष चेतावनी देकर चला जाता । बार-बार की चेतावनी ने नवयुवक लूइस को आतंकित कर दिया । परिणामस्वरूप उस तारीख को लूइस किसी कार्य विशेष को या व्यापारिक मामले को हाथ में न लेता ।

संयोग से २१ जून, १७९१ को अत्यन्त सावधानी बरतने पर भी वह बड़े ही रहस्यमय ढंग से पकड़ लिया गया । लूइस और उसकी रानी अण्टोइनेटी को वारेन्नेस में उस समय गिरफ्तार किया गया, जब वे क्रान्ति से निकलकर भागने की तैयारी में थे । दूसरे वर्ष २१ सितम्बर को फ्रान्स में क्रान्तिकारियों ने राजशाही को समाप्त कर गणतन्त्र की घोषणा कर दी । २१ जनवरी, १७९३ को लूइस पन्द्रहवें को फाँसी दे दी गई ।

कभी-कभी कुछ वस्तुएँ किसी कारण ऐसी अभिशापग्रस्त होती पायी गई हैं कि उनके प्रयोग करने वाले अकारण ही विपत्ति में फँसते और संकट झेलते देखे गए हैं ।

लीडेन, मेसाचूसेट निवासी जावेज स्पाइसर को शेयस के विद्रोह के समय २५ जनवरी, १७८७ को स्प्रिंग फील्ड में उस समय दो गोलियाँ आकर लगीं, जब वह एक संघीय शस्त्रागार में कार्यरत था और वह वहीं ढेर हो गया । उस समय वह अपने भाई डैनिमल का कोट पहने हुए था, जिसे ५ मार्च, १७८४ को उसी संघीय शस्त्रागार पर दो गोलियाँ आकर लगी थीं । यह गोलियाँ उसी छिद्र से होकर निकली थीं जिससे स्पाइसर का भाई डेनियल मारा गया था ।

फ्रान्स के राजा लूइस चौदहवें के पास डच वैज्ञानिक क्रिश्चियन हायजेन्स द्वारा प्रदत्त एक अलंकृत घड़ी थी । १ सितम्बर, १७१५ को प्रातःकालीन बेला में ७.४५ पर अचानक राजा की मृत्यु हो गई । तब से आज तक उस घड़ी में ७.४५ ही बजे हैं । उस घड़ी को सुधारने के अनेकों प्रयत्न किए गए, परन्तु एक भी प्रयास सफल नहीं हुआ । सुइयाँ यथावत् ७.४५ पर ही टिकी हुई हैं ।

जॉन माइकेल और रॉबर्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "फेनामिना : ए बुक ऑफ वण्डर्स" में एक दुर्घटना का वर्णन करते हुए लिखा है, कि १९७५ में एक व्यक्ति मोपेड पर सवार बारमूडा की सड़क से गुजर रहा था, कि अचानक उसकी भिड़न्त एक टैक्सी से हो गई और वह वहीं ढेर हो गया । इस घटना के ठीक एक वर्ष बाद उसी दिन उसका छोटा भाई बारमूडा की उसी सड़क पर अपने भाई की उसी मोपेड पर बैठा जा रहा था कि सामने से आती हुई टैक्सी से दुर्घटनाग्रस्त होकर वहीं मर गया । यह वही टैक्सी थी, जिसने उसके भाई की जान ली थी और संयोग से वही व्यक्ति उस टैक्सी ड्राइवर के साथ गाड़ी में बैठा था, जो एक साल पहले बड़े भाई की दुर्घटना के समय टैक्सी पर सवार था ।

मनुष्य ने अपने विकास-क्रम में लम्बी यात्रा की है, इसमें उसे बहुत कुछ मिला भी है । प्राकृतिक अनुसंधान करते-करते वह अन्यान्य प्राणियों की तुलना में इतना समृद्ध, समर्थ और समुन्नत बना है । उस प्रक्रिया को मात्र भौतिक क्षेत्र तक ही सीमित न रखकर चेतना की रहस्यमयी पर्तों को समझने का भी प्रयत्न करना चाहिए । अनुसंधान का यह क्षेत्र और भी अधिक

महत्त्वपूर्ण है । अदृश्य जगत के साथ घनिष्ठता स्थापित कर सकना, प्रगतिशील एवं खोजप्रिय मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है । दुर्भाग्यों का कारण और निवारण समझा जाना चाहिए और सौभाग्यों की उपलब्धि का मार्ग खोजा जाना चाहिए । इसके लिए और आध्यात्मिक अनुसंधानों में हमारी अभिरुचि और तत्परता की अधिक बढ़ोत्तरी आवश्यक है ।

अभिशप्त सम्पदा को ढूँढ़ निकालने के असफल प्रयास

प्रस्तुत एक शताब्दी में दो महायुद्ध लड़े गए और उनमें युद्ध कला का आमूलचूल परिवर्तन हो गया है । पुराने जमाने में राजा या सेनापति आगे चलता था । अपने पराक्रम के जौहर दिखाता था और पीछे चलने वाले सैनिक अपनी वफादरी साबित करते थे । अब सेनापति किसी गुप्त स्थान पर बैठा हुआ नक्शा बनाता रहता है और वायरलैस से विभागाध्यक्ष को सूचना देता रहता है । गोला-बारूद के भण्डार पीछे रहते हैं और जरूरत के मुताबिक सप्लाई होते रहते हैं । पुराने जमाने में रास्ते में पड़ने वाले गाँवों को लूटकर राशन, नकदी और दास-दासी पकड़े जाते थे और उसी के सहारे आगे का प्रयाण चलता था । छोटी कोठियाँ, किले लूटते हुए बड़े राज पर चढ़ाई की जाती थी । आज की रण-नीति अर्थ प्रधान है । हर चीज बाजार से खरीदनी पड़ती है और उसका असली मूल्य नोट नहीं, सोना होता है । इसलिए दोनों पक्ष अपने पैर मजबूत करने के लिए जहाँ से भी उपलब्ध हो—जैसे भी हाथ लगे, सोना एकत्रित करने का प्रयत्न करते हैं । मित्र पक्ष अपनी बदनामी नहीं उड़ने देते पर शत्रु को जो भी ऐसे स्रोत हाथ लगते हैं उनका अच्छा खासा विज्ञापन करते हैं ।

हिटलर ने हार के दिनों या जीत के दिनों में प्रचुर परिमाण में सोने के भण्डार भरे थे और सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें नितान्त गोपनीय स्थानों पर रखा था । जीत के दिनों इसलिए अस्त-व्यस्त हुए कि अपने देश या अधीनस्थ देशों को अपने पैरों खड़ा करने के लिए वह सोना काम आये । हारने की स्थिति में जमा इसलिए किया जाता था कि पीछे हट कर कोई और मोर्चा खोलना पड़े तो पूँजी की आवश्यकता जुटाई जा सके । यदि पूर्णतया हार ही हार होती है तो प्रमुख लोग अपने और अपने परिवार के गुजारे के लिए एक बड़ी राशि सुरक्षित छोड़ रखें ।

उपलब्ध विवरणों से हिटलर द्वारा छिपाकर रखे हुए सोने की कुछ जानकारी हाथ लगी है, पर वह है इतनी गोपनीय कि विजेता राष्ट्र उसका पता लगाकर लाभ न ले सके । जर्मन पराजय के बाद युद्ध बन्दी पकड़ने के साथ-साथ सर्वाधिक प्रयत्न इसी बात का हुआ कि छिपाया हुआ सोना कहाँ है ? और उसे किस प्रकार हस्तगत किया जा सकता है ? जो नहीं मिल सका उसकी जानकारियाँ प्रकाश में लायी गई हैं ।

जर्मनी के मूर्धन्य अधिकारियों की पराजय के बाद जो पकड़-धकड़ हुई उससे कुछेक सूत्र ऐसे मिले हैं जिनमें छिपाये हुए सोने की कुछ जानकारी मिलती है ।

स्विट्जरलैण्ड, स्वीडन और पुर्तगाल में गुप्त तहखाने बनाकर उनमें छिपाया हुआ सोना १३० टन, जर्मनी के बैंकों से समेटा गया सोना ५७ टन, उच्च अधिकारी, जिस सोने को मिलजुल कर पचा गए २२५ टन । आस्ट्रिया की कई झीलों में डुबाया हुआ सोना ५०० टन । अपने भण्डार में ७० टन । मौडसी झील में डुबाया हुआ सोना ४०० टन । उत्तरी आस्ट्रिया के गवर्नर की निजी जानकारी पर छोड़ा गया सोना १५० टन । निवेसु जैन भण्डार का सोना ८० टन । सत्कालेगा सागर में डुबाया हुआ सोना २०० टन । यहूदियों से संग्रह किया गया सोना ६११ टन ।

यह जानकारी उन सूत्रों के सहारे मिली है जो नाजी गुप्तचरों के मूर्धन्य लोगों द्वारा हिटलर की कड़ी जानकारी में रखे गए हैं । ऐसे १४ स्थानों में जितना निकल सकता था, उतना निकाला भी गया है । बाकी स्थानों की खोज जारी रखी गई है और उसमें से यदाकदा कुछ हाथ लगता भी रहता है । बाकी स्थान ऐसे हैं, जिनके स्थानों का अनुमान भी नहीं है । क्योंकि या तो उन्हें रखने वाले मर गए या जितना उनके हाथ पड़ा उसे लेकर गायब हो गए । अनुमान है कि जितने सूत्र हाथ लगे हैं, उनसे भी अधिक अविज्ञात हैं । अभिशप्त होने के कारण यह भी हाथ लगेगा नहीं ।

किसी समय अमेरिका में डाकुओं का बड़ा आतंक था । एक डाकू दल ने सम्पत्ति लूटकर एक होले के घड़े में भरकर मिसीसिपी नदी के डेल्टा के पास जमीन में दबा दिया । इस भूमि पर आजकल एक बड़ा कृषि फार्म है, जिसका स्वामी 'रीडर वोव' है । इस भूमि को 'रीडर वोव' के पूर्वजों ने धन के लालच में खरीद लिया था ।

'रीडर वोव' के पूर्वजों ने वहाँ एक मकान भी बनवा लिया परन्तु इस सात फुट चौड़े, चार फुट ऊँचे घड़े को निकालने के लिए उनके सारे प्रयास विफल हो गए । कुछेक ऐसी विचित्र घटनाएँ घटीं कि उन्हें वह स्थान ही छोड़ देना पड़ा ।

'रीडर वोव' ने पूर्वजों द्वारा छोड़े गए नक्शों के आधार पर इस खजाने को निकालने का प्रयास किया । 'रीडर वोव' कीचड़ निकालते-निकालते घड़े के पास तक पहुँच गए, परन्तु ज्यों-ज्यों घड़े के आसपास से कीचड़ निकालते थे, घड़ा अन्दर धँसता जाता था । 'रीडर वोव' स्वयं इस बुरी तरह कीचड़ में फँस गए कि उन्होंने उस घड़े को निकालने का विचार ही त्याग दिया ।

सन् १६३६ में 'बूलेक व स्टिक्लोन' ने कुशल इन्जीनियरों द्वारा बुलडोजरों तथा क्रेनों से कीचड़ निकालने की मशीन आदि की सहायता से इस घड़े को निकालने का प्रयत्न किया । घड़े का मुँह क्रेन में फँसा दिया गया । ठीक उसी समय बिजली की भयानक गर्जना के साथ इतनी तेज अप्रत्याशित वर्षा शुरू हो गई कि वहाँ ठहरना असम्भव हो गया । इसके बाद इस अभिशप्त खजाने को ढूँढ़ने के प्रयास बन्द कर दिए गए ।

कहते हैं, कि मुसोलिनी ने भी मृत्यु के बाद भयंकर प्रेत-पिशाच का रूप धारण कर लिया । वह अपने खजाने का लाभ किसी और को नहीं लेने देना चाहता था, खुद तो अशीरी होने से उसका लाभ उठा ही क्या सकता था । कहा जाता है कि उसी ने प्रेत रूप में खुद खजाना छिपाया और खुद ही रखवाली की । जिन्होंने उसका पता लगाने की कोशिश की, उनके प्राण लेकर छोड़े, इतना ही नहीं जिनके प्रति उनके मन में प्रतिहिंसा की आग धधक रही थी, उन्हें उसने मार कर ही चैन लिया ।

हिटलर की भी सदैव यह नीति रही कि जिस देश को जीता, उसके बैंकों तथा व्यावसायिक संस्थाओं को खाली करा लिया ।

जब हारने लगा तो भी उसने यही किया कि जो क्षेत्र छोड़ने पड़ेंगे उन्हें पूरी तरह खोखला करने के बाद खाली किया जाय । यह कठोरता प्रजाजनों के साथ भी बरती गई । सम्पत्तिवानों से सम्पत्ति आपस में बेचबाच कर उसके बदले का सोना नाजियों के हवाले करने को कहा गया । हिसाब तो सही रहता नहीं था, इसलिए बीच के लोग लूटपाट भी बहुत करते थे । इस प्रकार जानकारी वाली सोने की तुलना में गैर जानकारी वाला और भी अधिक रहता है । इसे खोज निकालना विजेताओं के लिए भी सरल नहीं पड़ता था । नाजियों के लूटे जाने में से अधिकांश को अभी तक खोजा नहीं जा सका है ।

भारतवर्ष में भी छोटे-बड़े खजानों की खोज अभी भी होती रहती है । यह कहाँ से आये, किसने गाड़े, कहाँ से लाये ? इसका अनुमान हिटलर की एकतन्त्री व्यवस्था के साथ तालमेल बिठाकर अनुमान लगाया जा सकता है । विजेता इसलिए जमा करते थे कि भविष्य में उसके सहारे राज्य विस्तार कर सकें । पराजित होने की सम्भावना देखकर भी खजाने इसलिए गाड़े जाते थे कि अवसर मिलेगा तो उन्हें निकालकर अपनी कठिनाई का हल निकालेंगे ।

खजाने एवं बहुमूल्य सम्पदा, जो अनीति अनाचार की कमाई होती है, कभी भी किसी व्यक्ति विशेष के हाथ नहीं लगती । सृष्टि की नियम व्यवस्था का उल्लंघन कोई कर नहीं सकता । छप्पर फाड़कर सोना बरसते व गढ़ा खुदा खजाने मिलने की कथाएँ तो बालकों के एडबेन्चर साहित्य की उपज भर हैं । सम्पदा इस तरह कुपात्रों को प्राप्त होने लगे तो श्रम से उपलब्धि का सिद्धान्त ही समाप्त हो जायेगा । इस तथ्य को भलीभाँति समझ लिया जाना चाहिए ।

पहाड़ से सोना बरसता है और सोने से शैतान

पाइलीन बीवर के जीवन का वह सबसे अधिक रोमांचक दिन था जब उसने किसी पहाड़ को स्वर्ण जैसी चमकती हुई धातु उगलते देखा । खेमे पहाड़ी से कुछ ही दूर पर थे । जहाँ बीवर के अन्य सब सहकर्मी प्रगाढ़ निद्रा में सो रहे थे । बीवर अकेले ही उठकर गया और धातु का एक टुकड़ा हाथ में लेकर देखा तो विस्मित रह गया शत-प्रतिशत शुद्ध सोना था । जल्दी-जल्दी में उसने काफी टुकड़े इकट्ठे किए और पड़ाव की ओर चलने के लिए खड़ा हुआ तभी उसके पैरों के नीचे की जमीन धँसती हुई जान पड़ी । उसने देखा खेमे का कहीं पता भी नहीं है वह स्थान जली हुई राख की ढेरी में परिवर्तित श्मशान जैसा लग रहा है ।

बीने हुए सोने के ढेर सारे टुकड़े वहीं बिखर गए । भय से शरीर काँप गया । बात क्या है यह समझने के लिए उसने फिर दृष्टि पीछे घुमाई तो एक और विलक्षण दृश्य दिखाई दिया । पर्वत की चोटी पर से हजारों छायाएँ उतर रही थीं और भयंकर आवाज के साथ उसी की ओर सेना के सिपाहियों की तरह दौड़ी आ रही थीं । बीवर चिल्लाया और अचेत होकर वहीं गिर गया । चेतना वापस लौटी तब वहाँ कुछ नहीं था । अब उसे भागते ही बना । बीवर ने फिर कभी उधर जाने की हिम्मत नहीं की ।

१६ वर्ष बाद ठीक वैसी ही घटना मैक्सिको के युवक पैरेलटा के साथ घटी उसके भी सभी साथी इस अभियान में मारे गए थे, वह तो उसका भाग्य था जो किसी तरह वह स्वयं शैतानी शिकंजे से बचकर निकल सका ।

पाइलीन बीवर और डान पैरेलटा दोनों ने अपने-अपने संस्मरण छपवाये तब लोगों को सोना बरसाने वाले इस अद्भुत पहाड़ का पता चला । जिसके बारे में यह कहा जाता है कि आज तक वहाँ सोने के लालच में जो भी गया जीवित नहीं लौट पाया, जो जिन्दा लौटा वह सोने का एक कण भी नहीं ला पाया है, हाँ वह भय अवश्य लाया जिससे बाद में फिर उसने उधर जाने की कभी भी हिम्मत नहीं की । यह पहाड़ अमेरिका के एरिजोना प्रान्त में पाया जाता है और आज तक वह प्रकृति के एक विलक्षण आश्चर्य के रूप में विद्यमान है । एरिजोना रूस के साइबेरिया प्रान्त जैसा क्षेत्र है, जिस तरह साइबेरिया अत्यन्त विकिरण वाला क्षेत्र है वैसे ही यह भी विचित्र आश्चर्यों से परिपूर्ण है । एक मील लम्बा और ६०० फीट गहराई वाला बहुत बड़ा क्रेटर जो किसी उल्का पिण्ड के आघात से बना बताया जाता है, यहीं पर है । इससे बड़ा ६ मील लम्बा और ७०० फीट वाला क्रेटर केवल कनाडा में है और कहीं इतना बड़ा क्रेटर नहीं है ।

डान पैरेलटा की यात्रा के २ वर्ष बाद सोने के लालच में दुनिया के सैकड़ों लोगों ने एरिजोना की यात्रा की, इनमें अमेरिका के ही युवक सबसे अधिक संख्या में गए और अपने प्राणों की आहुति चढ़ाकर शान्त हो गए ।

एक बार अमेरिका के प्रसिद्ध डॉक्टर लवरेन रोअली भी उधर पहुँच गए । लालच चाहे जिसे पागल कर सकता है । लवरेन किसी प्रकार पहाड़ी के पास तक पहुँचने में सफल हो गए पर घूर्णन जैसी एक भयंकर आवाज और सैकड़ों मायाविनी छायाओं ने उन्हें घेर लिया । थोड़ी देर में उनका शरीर मृत होकर पड़ा था । इस मृत्यु ने अमेरिका में खलबली मचा दी । डॉक्टरी जाँच से पता चला कि रोअली का रक्त चूस लिया गया है, पर कैसे यह पता किसी भी तरह नहीं चल पाया । तब से इस पहाड़ का एक नाम "खूनी पहाड़" भी पड़ गया ।

इस पहाड़ के बारे में विचित्रताएँ हैं, वह यह है वह निश्चित समय पर ही सोना बरसाता है, उसी प्रकार वहाँ पर जितनी भी हत्याएँ अब तक हुई वह दिन के ठीक ४ बजे हुईं । ४ बजे ही इस चोटी की परछाईं पृथ्वी को छूती हैं । मरने वालों के शरीरों की एफ. बी. आई. द्वारा जाँच की गई, उससे पता चलता है कि यहाँ आकर जिस की भी हत्या हुई उसकी मृत्यु रक्त चूस लेने के कारण हुई, जबकि किसी भी शव में घाव या चोट का कोई निशान नहीं मिलता । आस्ट्रेलिया के युवक फ्रैंज हेर होमर तथा होनोलूलू के कई व्यापारियों की हत्याएँ इसी पहाड़ के किन्हीं तान्त्रिक रहस्यों द्वारा ही हुई । सबसे रोमांचक प्रसंग जर्मनी के इंजीनियर वाल्ज का है । वाल्ज इस पहाड़ के रहस्यों का पता भले ही न लगा पाया हो पर उसकी खोज में संघर्ष का तथा सोना प्राप्ति का सबसे अधिक आनन्द उसी ने पाया ।

वाल्ज इंजीनियर बनकर एरिजोना की खानों में काम कर रहा था तभी उसके मन में सोना बरसाने वाले इस पहाड़ के रहस्य जानने की तीव्र जिज्ञासा जाग्रत हुई । वाल्ज का अनुमान था कि पहाड़ी का रहस्य अपैची कबीले के प्रमुख तान्त्रिकों के हाथ में ही

हो सकता है, क्योंकि वही लोग उसके आस-पास बसे हैं । अपैची बड़े खूँखार होते हैं । श्वेतों से उन्हें बड़ी घृणा होती है । कई बार अमेरिकियों ने उनका विधिवत् संहार किया है, जिससे उनके मन में गोरों के प्रति और भी तीव्र घृणा के भाव हैं । १८७२ का 'अपैची लीप' विश्व प्रसिद्ध है, जिसमें जान वाकर ने अपैचियों को बुरी तरह काटा था । इसके बाद अपैचियों के सरदार गैरोनियो ने गोरों पर गोरिल्ला धावे किए, उसे नष्ट करने के लिए १८८६ में जनरल नेल्सन ने युद्ध किया था और उन्हें पीछे धकेल दिया था तब से यह तान्त्रिक इसी पहाड़ पर शरण लिए हुए हैं जो भी आज तक वहाँ गया जीवित वापस नहीं लौट सका ।

वाल्ज ने चतुराई से काम लिया । उसने एक अपैची युवती केन. टी. से प्रेम कर लिया और उसी से शादी भी कर ली । आदिवासियों का सद्भाव प्राप्त करने के लिए यह एक बड़ी बात थी जिससे वाल्ज को पहाड़ तक आने-जाने का रास्ता खुल गया । उसने केन. टी. से ही रहस्य जानने के प्रयास किए पर उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि केन. टी. क्या तमाम आदिवासियों में कुछ ही तान्त्रिक ऐसे हैं, जो इस रहस्य को जानते हैं, सब नहीं ।

उसने पहले तो केन. टी. के सहयोग से काफी सोना इकट्ठा किया फिर जैकब विजनर नामक युवक से मित्रता करके इस पहाड़ के अन्तरंग रहस्यों का पता लगाने का काम शुरू किया । वह कई बार सामने से पहाड़ की ओर गया पर हर बार उसकी भयावनी छायाएँ उसकी ओर झपटीं हर बार उसे जान बचाकर भागना पड़ा, इन्हीं प्रयत्नों में केन. टी. का अपहरण कर लिया गया और अपैचियों ने उसकी जीभ काट ली । अन्ततः निराश वाल्ज ने रास्ता बदला और लम्बा रेगिस्तान पार कर वह पीछे से पहाड़ी के पास पहुँचने में सफल हो गया ।

रेगिस्तानी मैदान में तम्बू गाढ़कर वाल्ज जैकब के साथ बाहर निकला अभी वह कुछ ही दूर जा पाया था कि उसे आग की सी चिन्गारियाँ अपनी ओर बढ़ती दिखाई दीं । रात थी, पर देखते-देखते दिन का सा प्रकाश फैल गया । उस प्रकाश में विचित्र भयंकरता थी । दोनों वहाँ से भागे तभी कुछ पत्थर उनके आस-पास गिरे । वाल्ज ने भागते-भागते एक पत्थर को छुआ तो देखा वह बिल्कुल ठण्डा था वह रुक गया पीछे मुड़कर देखा अब बरसने वाली लपटें भी शान्त हो चली थीं इसलिए वह फिर पहाड़ की ओर लौट पड़ा । उसे केन. टी. से इतना मालूम हो गया था कि पहाड़ के अन्दर जाने के लिए एक सुरंग जाती है, वाल्ज कुछ ही देर के परिश्रम से सुरंग का दरवाजा पा गया । सहमता हुआ वह भीतर घुसा । वहाँ उसे कुछ कमरे और हजारों की संख्या में नर-कंकाल बिछे मिले । देखने से लगता था यह कंकाल हजारों वर्षों से पूर्व तक के हैं । आगे बढ़ने पर उसे वह खड्ड भी दीख गया जहाँ सोने का लावा निकलता था पर सोने के वास्तविक स्रोत का उसे पता नहीं चल सका, न ही आगे का रास्ता मिल सका । वहाँ की भीषण गर्मी के कारण आगे बढ़ना कठिन हो गया । दलदल के पास उन्हें बहुत-सा सोना भी मिला पर लौटते समय तान्त्रिकों ने उन्हें देख लिया । जैकब तो वहीं मार दिया गया वाल्ज किसी तरह बच निकला । १८९१ में उसकी मृत्यु हो गई । उसकी डायरी के सहारे पीछे बरेनी आदि ने भी यात्राएँ कीं, पर सोना बरसाने वाले इस पहाड़ के मूल स्रोत का कोई पता न लगा सका । १९५९ में स्टेनले फर्नेण्ड तथा फरेश ने पुनः इस पहाड़ के रहस्यों का पता लगाने का प्रयत्न किया, जिसमें फरेश तो मारा गया और स्टेनले फिर निराश लौट आया । इस तरह आज तक सोना बरसाने वाले इस पहाड़ की वास्तविकता पर पर्दा ही पड़ा हुआ है, न कोई मृत्यु के कारणों को जानता है न सोने के मूल स्रोत को ।

अविज्ञात की विज्ञान जगत को चुनौती

प्रकृति का प्रत्येक घटक महत्त्वपूर्ण है और अपने में अनेकों प्रकार की सम्भावनाएँ समाहित किए हुए है । घटनाएँ विलक्षण, आश्चर्यजनक और रहस्यमय इसलिए प्रतीत होती हैं कि अनेक वे कारण एवं नियम नहीं मालूम होते जो उन्हें एक सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं । प्राचीन काल से लेकर अब तक मनुष्य को प्रकृति की कितनी रहस्यमय घटनाओं का ज्ञान हुआ । जिन्हें कभी आश्चर्य और चमत्कार के रूप में देखा जाता था वे आज सहज जानकारी के विषय बने हुए हैं । आदिकाल में आग का ज्ञान नहीं था । किसी तरह कहीं जंगलों आदि में आग लग जाती थी, तो आदिम कालीन मनुष्य यह मानता था कि यह किसी देवी या देवता के प्रकोप का प्रतिफल है । कालान्तर में अग्नि उत्पन्न करने का विज्ञान मालूम हुआ, तो मानवी सभ्यता के विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण शक्ति हाथ लग गई ।

बिजली की शक्ति प्रकृति के गर्भ में ही विद्यमान थी, पर उसे करतलगत करने की विद्या हजारों-लाखों वर्ष तक अविज्ञात रही । फलतः उससे कुछ लाभ उठाते नहीं बन पड़ा । जैसे ही जिज्ञासु वैज्ञानिकों ने प्रकृति की पर्तों को पढ़ने एवं विद्युत शक्ति के नियमों को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया तो विकास शृंखला में एक और ऐतिहासिक कड़ी जुड़ गई । बिजली ने दुनिया की काया को ही पलट कर रख दिया । अन्धकार की गहरी तमिस्रा में डूबी रात्रि अत्यन्त डरावनी लगती थी । अब रात और दिन में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा । रात्रि का आगमन होते ही डर के मारे आदिम मानव गुफाओं में जा घुसता था, विद्युत का आविष्कार होते ही वह भय जाता रहा । अब तो रात्रि में काम की दृष्टि से यातायात, कल-कारखानों आदि में हलचल बनी रहती है । आदिम मानव यदि किसी तरह आज की विकसित दुनिया में पहुँच जाय, तो उसे यहाँ सब कुछ जादू और चमत्कार जैसा प्रतीत होगा ।

नाभिकीय शक्ति पैरों से रौंदे जाने वाले नगण्य से परमाणु कणों में आदि काल से ही विद्यमान है, पर किसी को कहाँ जानकारी थी, कि पदार्थ का सूक्ष्मतम कण भी इतना अधिक सामर्थ्यवान हो सकता है, पर जैसे ही परमाणु शक्ति को हस्तगत करने के वैज्ञानिक नियमों का पता चला, एक नये युग की शुरुआत हो गई । ऐसे युग की जिसने मनुष्य जाति को पहली बार सर्वाधिक भयभीत किया तथा यह सोचने को बाध्य किया कि प्रकृति की शक्तियों का उपयोग यदि सृजन के लिए नहीं किया गया वे मनुष्य जाति को ही एक दिन भस्मीभूत करके रख देंगी । एटामिक पावर के आधार पर अब संसार के वैज्ञानिक बड़े-बड़े सपने देख रहे हैं, सृजन और ध्वंस दोनों की बातें सोच रहे हैं । सम्भावना यह की जा रही है कि अगले दिनों ऊर्जा की समस्त आवश्यकताएँ नाभिकीय स्रोत से पूरी की जायेंगी । आज भी जो जातियाँ

पिछड़ी और अविकसित अवस्था में हैं, उनके लिए परमाणु शक्ति एक अविज्ञात आश्चर्य बनी हुई है ।

विपुला प्रकृति की प्रत्येक पर्त महत्त्वपूर्ण है । प्रायः उसके मोटे रहस्य आसानी से पकड़ में आ जाते हैं, पर सूक्ष्म रहस्यों को समझने तथा सूक्ष्म शक्तियों को प्राप्त करने के लिए कठिन पुरुषार्थ करना पड़ता है । समुद्र का खारा पानी विपुल परिमाण में उपलब्ध रहता है, पर यदि मोती प्राप्त करना हो तो गोताखोरों जैसा दुस्साहस जुटाना और पुरुषार्थ करना पड़ता है । पृथ्वी के गर्भ से खनिज लोहा, तेल आदि के स्रोतों का पता लगाने के लिए उतना अधिक पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा है, जितना कि परमाणु शक्ति के आविष्कार के लिए करना पड़ा । कितने ही वैज्ञानिकों को शोध कार्यों में खपना पड़ा । तब कहीं जाकर वे सूत्र ज्ञात हुए जो परमाणु के विखण्डित तथा उत्सर्जित शक्ति के सुनियोजन के कारण बने ।

अभी तक प्रकृति के बारे में जितना ज्ञात हुआ उसकी अपेक्षा अविज्ञात का क्षेत्र कई गुना अधिक है । जिन शक्ति स्रोतों का पता चला है उनसे भी अधिक सामर्थ्यवान स्रोत प्रकृति के गर्भ में विद्यमान हैं । जिनके विषय में वैज्ञानिकों की जानकारी अत्यल्प है । उदाहरणार्थ 'ब्लैक होल' । जो थोड़ी बातें जानी जा सकी हैं वे यह हैं कि 'ब्लैक होल' ऐसे केन्द्र हैं, जो अन्तरिक्ष और पृथ्वी दोनों ही में विद्यमान हैं । इनकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति इतनी अधिक होती है कि ये छोटे-मोटे तारों और ग्रहों को भी अपने प्रचण्ड खिंचाव द्वारा अजगर की भाँति लील सकते हैं । उसकी आकर्षण सीमा में आने वाली कोई भी छोटी बड़ी वस्तु तेजी से खिंचती हुई चली जाती है । अनुमान है कि ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेकों रहस्यमय केन्द्र मौजूद हैं, जिनकी विस्तृत जानकारी वैज्ञानिकों को नहीं है ।

खगोल विज्ञान की परिकल्पना यह है कि तारों का जन्म होता है, वे विकसित होते और अन्त में नष्ट हो जाते हैं और अन्ततः किसी अविज्ञात प्रक्रिया द्वारा ब्लैक होल में परिवर्तित हो जाते हैं । तारों की आयु उनके भीतर विद्यमान हाइड्रोजन की मात्रा के ऊपर निर्भर करती है । हाइड्रोजन जब जलकर समाप्त हो जाता है, तब तारा धीरे-धीरे सिकुड़ने लगता है तथा वह अपने मूल रूप से कई करोड़ गुना सिकुड़कर ब्लैक होल में बदल जाता है । ब्लैक होल नाम इसलिए पड़ा कि अन्तरिक्ष में मात्र ऐसे काले धब्बों के आधार पर ब्लैक होल का अनुमान लगाया गया है । उसके भीतर क्या है, यह अत्यन्त ही रहस्यमय है । कुछ दशकों पूर्व तक यह अनुमान था कि ऐसे केन्द्र मात्र अन्तरिक्ष में हैं, पर नवीनतम शोधों के आधार पर यह मालूम हुआ है कि पृथ्वी पर भी ऐसे अनेकों स्थल हैं, जहाँ कि ब्लैक होल के अस्तित्व का परिचय मिला है ।

इन स्थानों के अतिरिक्त भी ऐसे अनेकों स्थानों के प्रमाण मिले हैं जहाँ से कितने ही व्यक्ति कुछ ही क्षणों में दृश्य जगत से ओझल हो गए । विज्ञान विशारदों का मत है कि अस्थायी तौर पर भी किसी स्थान विशेष पर ब्लैक होल बनते और समाप्त होते रहते हैं । उनके स्वरूप और कारण का ज्ञान तो अब तक नहीं हो सका है, पर समय-समय पर विलुप्त हुए व्यक्तियों तथा वस्तुओं के प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं । ब्लैक होल अस्थायी तौर से भी पृथ्वी पर बनते रहते हैं, पर वे क्षणिक होते हैं तथा थोड़े ही समय बाद समाप्त हो जाते हैं । उनकी प्रचण्ड शक्ति का बोध नजरों के सामने से अचानक गायब हो जाने वाले व्यक्तियों की घटनाओं से होता है ।

स्थायी और अस्थायी प्रचण्ड शक्ति के सामर्थ्य ये ब्लैक होल क्या है ? इनके बनने की प्रक्रिया क्या है ? इनके भीतर इतनी अधिक आकर्षण शक्ति किस तरह पैदा होती है ? इनकी चपेट में आने पर वस्तुएँ तथा व्यक्ति लुप्त क्यों हो जाते हैं ? अन्ततः वे कहाँ चले जाते हैं ? क्या वे अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान के अविज्ञात केन्द्र हैं ? इन स्थानों से किसी अन्य लोक से आवागमन का कोई महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध तो नहीं जुड़ा हुआ है ।

पौराणिक कथा के अनुसार रावण, अहिरावण आदि राक्षस पाताल लोक को अपनी इच्छानुसार चले जाते थे । सम्भव है उनके जाने का माध्यम ये ही रहे हैं । ब्लैक होल के प्रचण्ड गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर नियन्त्रण करने और उसका उपयोग करने के वैज्ञानिक नियमों की सम्भव है उस समय जानकारी रही हो । तथ्य चाहे जो भी है पर यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रकृति की प्रचण्ड सामर्थ्य ब्लैक होल जैसे केन्द्रों में भरी पड़ी है । शक्ति ही नहीं उनमें सन्निहित अनेकों रहस्यमय सूत्रों के पता लगने की सम्भावना है ।

ब्लैक होल की शक्ति का यह तो एक उदाहरण मात्र है । भूकम्प आने, ज्वालामुखी फटने आदि घटनाओं का सुनिश्चित कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है । तत्वदर्शियों का कहना है कि प्रकृति की प्रत्येक घटना सकारण है । वह कभी भूल नहीं करती । उसके प्रत्येक घटक सुव्यवस्थित हैं । आश्चर्यजनक घटनाओं के माध्यम से वह बोध कराती है कि उसकी सूक्ष्म पर्तों को पढ़ा जाय । सन्निहित शक्तियों को करतलगत करने के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ किया जाय । उन अविज्ञात नियमों एवं सूत्रों को ढूँढ़ा जाय जो विलक्षण घटनाओं के घटित होने के कारण बनते हैं । प्रकृति के गर्भ में विद्यमान अनेकानेक सूक्ष्म शक्ति स्रोतों को जानने तथा उनमें समाहित प्रचण्ड सामर्थ्य को करतलगत किया जा सके, तो मनुष्य के विकास तथा सुख-सुविधाओं से युक्त परिस्थितियों के निर्माण में असाधारण सहयोग मिल सकता है ।

चेतना क्षेत्र के रहस्यमय भण्डार को भी कुरेदा जाय

व्यक्तियों, हलचलों तथा परिस्थितियों के उतार-चढ़ावों से कई प्रकार के घटनाक्रम घटित होते रहते हैं । इनमें एक जैसे दृश्य कभी-कभी किसी दुर्घटना जैसे प्रसंग में ही देखे जाते हैं । बाढ़ में बहने, महामारी में मरने और युद्ध में आहत होने वालों का दृश्य एक जैसा हो सकता है, पर सामान्यतया व्यक्तियों के जीवनक्रम सदा अपने-अपने ढंग से चलते हैं । एक ही समय में एक ही क्रम से एक जैसी घटनाएँ घटित हों, तो इसे असाधारण ही कहा जायेगा ।

प्रकृति के अनेकों रहस्यपूर्ण नियम हैं । मनुष्य के हाथ तो अभी कुछ मोटी-मोटी जानकारियाँ ही लगी हैं । उसने खोज का विषय पदार्थों की संरचना जानने और उन्हें अधिक उपयोगी बनाने तक सीमित रखा है । संक्षेप में यही भौतिक विज्ञान है । विगत शताब्दियों में इसी क्षेत्र में अनुसंधानों और आविष्कारों की श्रृंखला

चली है । उपलब्धियाँ भी इसी स्तर की हुई हैं । चेतना पक्ष एक प्रकार से अछूता ही छोड़ दिया गया है । जबकि वस्तुतः मानवी विशेषता, समर्थता, प्रगति, प्रसन्नता का वास्तविक क्षेत्र चेतना के साथ ही सुसम्बद्ध है ।

कभी-कभी अपवाद दृष्टिगोचर होते हैं । उन्हें प्रकृति की भूल या आश्चर्य-चमत्कार जैसा कुछ मान लिया जाता है, वस्तुतः इस सुनियोजित सृष्टि व्यवस्था में व्यतिरेक जैसा कुछ है नहीं जो कुछ घटित होता है उस सबके पीछे प्रकृति के नियम ही काम कर रहे होते हैं । यह दूसरी बात है कि उन अविज्ञात-असाधारण नियमों से हम परिचित न हों और उन्हें चरितार्थ होते यदा-कदा ही देखा जाता है ।

यों प्रकृति के रहस्य भी कम नहीं । वे क्रमशः प्रकट होते रहे हैं और पिछली जानकारियों की तुलना में इन नयी उपलब्धियों को चमत्कार कहा जाता रहा है, पर वस्तुतः यहाँ चमत्कार जैसा कुछ है नहीं । अविज्ञात का आकस्मिक प्रकटीकरण ही चमत्कार कहा जा सकता है । यह बात पदार्थ जगत के बारे में समझी जाने लगी है, किन्तु उपेक्षित चेतना क्षेत्र के रहस्य भरे नियमों के बारे में तो इन दिनों उत्साह ही नहीं उभरा, अनुसंधान ही नहीं हुआ—महत्त्व ही नहीं समझा गया, ऐसी दशा में उस क्षेत्र के असाधारण नियमों को ऋद्धि-सिद्धि या दैवी हलचल समझा जाय तो आश्चर्य ही क्या है ?

पंच भौतिक प्रकृति की तुलना में पंच प्राणों का चेतना क्षेत्र कहीं अधिक समर्थ और रहस्यमय है । उन विशिष्टताओं का कभी-कभी प्रकटीकरण होता है तो उन्हें रहस्यवाद का नाम दे दिया जाता है । गुत्थी न सुलझा सकने वाली बुद्धि, प्रायः ऐसा कुछ बहाना मन-सन्तोष के लिए बना लेती है और अधिक गहराई में उतरकर तथ्यों तक पहुँचने के झंझट से बचने का प्रयत्न करती रहती है ।

चेतना क्षेत्र के संयोग साम्यों के कई बार ऐसे घटनाक्रम सामने आते हैं, जिन्हें देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है । दो व्यक्तियों के समक्ष एक जैसे घटनाक्रमों का प्रवाह क्यों कर जुड़ गया, इसका कोई स्पष्ट समाधान नहीं मिलता । जब वैयक्तिक हलचलों और विभिन्न परिस्थितियों के तालमेल से घटनाक्रमों में भी स्वाभाविक भिन्नता रहती है तो फिर ऐसा क्यों होता है कि दो अपरिचित व्यक्ति एक ही प्रवाह में बहें, एक जैसे घटनाक्रम से अनायास ही प्रभावित हो चलें । ऐसे कुछ प्रसंग दृष्टव्य हैं—

उन दिनों इंगलिश स्टील कम्पनी के धातु विज्ञानी एरिक डब्ल्यू. स्मिथ शेफील्ड नामक उपनगर में निवास कर रहे थे । उनके घर के पीछे एक जंगल था, जहाँ लोग घोड़ों पर सवारियाँ करने आते थे । वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में स्मिथ का नियम था कि वे उस स्थान पर आकर काफी समय शान्ति और प्रसन्नता के साथ व्यतीत करते और चलते वक्त घोड़े की लीद एकत्र कर अपने साथ घर ले जाते । इसको खाद के रूप में अपने बाग में टमाटर के खेतों में डालते ।

सन् १९५० में एक दिन स्मिथ जंगल में टमाटर के खेतों में खाद डालने के लिए लीद एकत्र करते आगे बढ़ रहे थे । अचानक उनकी नजर सामने से आते एक व्यक्ति पर पड़ी । वह व्यक्ति भी वही कार्य कर रहा था, जिसे वर्षों से स्मिथ करते आ रहे थे ।

रास्ते में आकर दोनों व्यक्ति एक बेंच पर बैठ गए । संयोग से दोनों के पास एक छोटा-सा डस्टपैन लीद एकत्र करने के लिए तथा पुराना मोमजामा खरीददारी के लिए साथ था । दोनों ही अपने-अपने टमाटर के खेतों के लिए खाद एकत्र किया करते थे । परिचय पूछे जाने पर दोनों ने अपना नाम एरिक स्मिथ बताया । दोनों के पास एक ही प्रकार की वर्जिनिया तम्बाकू और पीने का पाइप भी समान आकार के थे । इस वैचित्र्यपूर्ण संयोग को देखकर दोनों आश्चर्यचकित रह गए ।

जॉन और आर्थर मॉफोर्थ दोनों ही जुड़वाँ भाई थे । इनमें परस्पर घनिष्ठ आत्मीयता थी । एक दिन २२ मई, १९७५ को दोनों को अपने सीने में अचानक भयानक दर्द हुआ और दोनों अस्पताल में भर्ती हो गए । जॉन ब्रिस्टल अस्पताल में और दूसरा भाई ऑर्थर ७०-८० मील दूर विण्डसोर अस्पताल में भर्ती हुआ । भर्ती होने के कुछ क्षणों बाद इनमें से दोनों की हृदयाघात के कारण एक साथ, एक समय मृत्यु हो गई ।

सुप्रसिद्ध मेजवान और स्तम्भ लेखक इर्व कुपकिनेट 'कुप' सन् १९५३ में एलिजावेथ द्वितीय के राज्याभिषेक में भाग लेने के लिए सेवाय होटल में ठहरे हुए थे । अपने कमरे के एक दराज से उन्हें अपने पुराने घनिष्ठतम मित्र बास्केटवाल संयोजक हैरी हेनिन से सम्बन्धित कुछ लेख मिले । दो दिन बाद हेनरी हेनिन का पत्र पाकर वे और आश्चर्यचकित रह गए, जिसमें लिखा गया था कि "आप कभी विश्वास नहीं करेंगे परन्तु यह सत्य है कि जैसे ही मैंने पेरिस के म्यूरिक होटल में, जिसमें मैं ठहरा हुआ हूँ, के एक दराज को खोला उसमें एक टाई पर आपका नाम लिखा मिला ।"

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार एनी पेरिस ने १९२० में अपने पति के साथ पेरिस नगर की यात्रा की । साइन नदी के किनारे बसे 'इलेडि ला साइट' नामक स्थान पर एक सेकण्ड-हैण्ड बुक स्टाल पर खड़े होकर पुस्तकों के पन्ने पलट रहे थे, कि अचानक 'जैक फ्रास्ट एण्ड अदर स्टोरीज' नामक एक पुरानी पुस्तक हाथ लगी । अपने पुराने मित्र को पाकर एनी पेरिस अत्यन्त खुश हुई । कोलोरैडो स्प्रिंग्स में अपने बाल्यकाल में उन्हें यह पुस्तक सर्वाधिक प्रिय थी, जो बाद में कहीं खो गई थी । पुस्तक के पन्ने पलटने पर उनके पतिदेव ने देखा कि एक पन्ने के किनारे पर 'एन्नी पेरिस २०६ एन बेवर स्ट्रीट, कोलोरेडा स्प्रिंग्स' लिखा था । बड़ी ही विचित्रता थी इस घटनाक्रम में, जिसमें वही पुस्तक उसी व्यक्ति को वर्षों बाद संयोगवश मिल गई ।

डबलिन आयरलैण्ड के निवासी अन्थोनी एस. क्लैन्सी ने 'द रूट्स ऑफ क्रोइन्सीडेन्स' के प्रख्यात लेखक आर्थर कोएस्लर को १९७३ में एक पत्र लिखा । अपने जीवन में घटित होने वाले ७ अंकों को भाग्यशाली बतलाते हुए क्लैन्सी ने लिखा कि उनका जन्म वर्ष के सातवें महीने में महीने के सातवें दिन और सप्ताह के सातवें दिन तथा शताब्दी के सातवें वर्ष में हुआ । वे अपने पिता की सातवीं सन्तान थे । उनके पिता के सात भाई थे जिनमें से प्रत्येक के सात-सात पुत्र थे । अपनी २७वीं वर्षगाँठ पर वे एक घुड़दौड़ देखने गए जहाँ उन्हें सातवें नम्बर का रेस कार्ड मिला । उस सातवें घोड़े का नाम 'सेवन हैवन' था जिस पर क्लैन्सी ने सात शिलिंग रखे और वह सात पर ही समाप्त हुआ । इसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक में किया है ।

प्रख्यात मनोवैज्ञानिक डॉ. लॉरेंस ली शान द्वारा लिखा गया ध्यान और पैरानॉर्मल फेनामिना पर एक लेख सन् १९६८ में इण्टरनेशनल जनरल ऑफ पैरासाइकोलॉजी नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ ।

दिसम्बर १९६७ में लॉरेंस में रहस्यवाद में लिखी गई अपनी एक अनुपम कृति को पढ़ने और उस पर अपने बहुमूल्य सुझाव देने के लिए सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ. नीना रिडिनौर के पास भेजा । नीना रहस्यवाद की विशेषज्ञ मानी जाती थी । ११ दिसम्बर को लॉरेंस डॉ. नीना से एक लंच पर मिले और अपने पेपर से सम्बन्धित उनके विचारों और समीक्षाओं को ध्यान से नोट करने लगे । लेख से सम्बन्धित रहस्यवाद पर आठ पुस्तकों के नाम नीना ने सुधारे जिनके पाँचवीं पुस्तक एम. ए. क्रेमरसग द्वारा लिखित 'दी वीजन ऑफ एशिया' थी ।

डॉ. लॉरेंस ने इस पुस्तक की खोज अनेक विख्यात पुस्तकालयों में की, परन्तु कहीं भी यह पुस्तक उपलब्ध नहीं थी । एक दिन निराश लॉरेंस अपने घर लौठ रहे थे कि अचानक रास्ते में एक पुरानी पुस्तक पड़ी हुई मिली । उठाकर देखने पर 'दी वीजन ऑफ एशिया' शीर्षक से वह पुस्तक रखी मिली । लॉरेंस के विस्मय मिश्रित हर्ष का ठिकाना न रहा ।

दूसरे दिन प्रातः लॉरेंस डॉ. रिडिनौर से मिले और उन्हें अपनी रहस्यात्मक कहानी कह सुनाई । पुस्तक का नाम सुनते ही लारेंस चौंक पड़ी और बोली— "मैंने तो इस पुस्तक का नाम तक नहीं सुना ।" यह एक और दूसरी पहेली सामने आ उपस्थित हुई, जिसका कोई उत्तर दोनों के पास नहीं था । दोनों के मुख से एक ही समाधान सुना गया कि यह किसी अदृश्य सहायक का अनुदान है, जिसने आवश्यकता का महत्त्व समझा और उसे पूरी करने का सुयोग बिठा दिया। शोध कार्य में इस पुस्तक से उन्हें बड़ी मदद मिली । अदृश्य आत्माओं की करतूत सम्बन्धी एक और भी ऐसी ही घटना है ।

१९वीं सदी के सुप्रसिद्ध खगोलविद् कैमाइल फ्लेमैरिआन गुह्य विद्या के भी विद्यार्थी थे । अपनी पुस्तक 'द अननोन' में मृत्यु के बाद जीवन की पहेलियों का वर्णन करते समय उन्हें एक प्रेतात्मा से साक्षात्कार हुआ था । इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १९०० में हुआ । कैमाइल अपने कमरे में बैठे वायुमण्डल की गतिविधियों के बारे में लिख रहे थे कि अचानक तेज झंझावात आया और खिड़कियों के शीशे तोड़ता हुआ कमरे में प्रवेश कर गया । लेखक की मेज पर फैले कागज के पन्नों को उड़ाता हुआ सड़क पर, बिखेरता चला गया । कुछ दिनों बाद जब यह पुस्तक छपने प्रकाशक के पास भेजी गई तो उसमें हवा के प्रभाव वाला चैप्टर गायब था, जिसकी सूचना प्रकाशक ने श्री कैमाइल को अपने एक दरबान के माध्यम से भेज दी । संयोग से दरबान को रास्ते में बिखरे हुए कुछ पन्ने मिले, जिन्हें समेटकर उसने अपने मालिक को दे दिया । प्रकाशक को उन खोये हुए पन्नों के मिल जाने पर प्रसन्नता मिश्रित आश्चर्य हुआ ।

यह समझना भूल होगी कि जो कुछ हम जानते हैं, वह पूर्ण है, सच तो यह है कि संसार के अगणित रहस्यों में से हमें अभी तक जो हस्तगत हुआ है उसे बहुत ही स्वल्प कहा जा सकता है, जो जानना शेष है उसे विज्ञात की तुलना में असंख्यों गुना अधिक कहा जा सकता है । प्रभृति ज्ञान के सम्वर्धन में जब उस क्षेत्र के विशेषज्ञ तक अपनी अपूर्णता को स्वीकारते हैं तो उस चेतना क्षेत्र का तो कहना ही क्या, जिसके सम्बन्ध में हजारों वर्षों से कोई कहने लायक अनुसन्धान ही नहीं हुआ और जो पुरातन काल में उपलब्ध था, उसे भी प्रमादवश गवाँ दिया गया ।

चेतना क्षेत्र के उपरोक्त रहस्यों को देखते हुए इस सन्दर्भ में विश्वास और उत्साह रखने वालों को चाहिए कि खोज के लिए भौतिक विज्ञानियों जैसी तत्परता बरतें और देखें, कि चेतना अदृश्य जगत में संव्याप्त अति महत्त्वपूर्ण विभूतियों में से किन्हें, किस प्रकार मनुष्य के लिए हस्तगत कर सकना सम्भव हो सकता है ।

परोक्ष संसार और उसकी अनसुलझी गुत्थियाँ

सामान्य दशा में काया की सत्ता जितनी असमर्थ और अशक्त दिखाई पड़ती है, वस्तुतः उतनी है नहीं । सिर पर भारी बोझ लदे रहने पर जिस प्रकार मनुष्य की हलचल सीमाबद्ध और कमजोर हो जाती है, वैसी ही बात इस शरीर के साथ भी है । कल्मष का वजन हटते ही वह सम्पूर्ण रूप से सक्रिय हो उठती है और ऐसे-ऐसे कौशल कर दिखाती है, जिन्हें अचम्भा कहा जा सके । विस्मय तो तब होता है, जब भार की सामान्य स्थिति में भी कई बार उसकी सूक्ष्म सत्ता इतना आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाती है, कि उसे देख कर बार-बार यही सोचना पड़ता है, कि अपरिष्कृत स्थिति में जो इतनी अद्‌भुत हो सकती है, परिष्कृत अवस्था में वह कितनी असाधारण होगी इसकी कल्पना नहीं की जा सकती ।

घटना 'रॉक' नामक एक ब्रिटिश जहाज की है । लिवरपूल से चल कर ठीक पश्चिम की ओर स्थित नोवा स्कोटिया की ओर वह अटलांटिक महासागर में बढ़ा चला जा रहा था । यात्रा में कई सप्ताह बीत गए । एक दिन जहाज के एक कर्मचारी रॉबर्ट ब्रूश ने कप्तान के केबिन में एक अजनबी को देखा वह श्यामपट पर कुछ लिख रहा था । एक नितान्त अपरिचित को जहाज में देख कर ब्रूश चौंक पड़ा । उसने इस बात की सूचना कप्तान को दी । कैप्टन को ब्रूश की बातों पर विश्वास नहीं हुआ, किन्तु फिर भी वस्तुस्थिति जानने वह चल पड़ा । अपने केबिन में पहुँचा, तो उसकी नजर ब्लैक बोर्ड पर जा टिकी, उस पर सुस्पष्ट शब्दों में लिखा था—'उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ें' । कमरे को उसने अच्छी तरह देखा । वहाँ कोई नहीं था, किन्तु श्यामपट पर लिखे निर्देश से उसे इतना आभास तो मिल गया कि सहकर्मी जो कुछ कह रहा है, वह सत्य है । कमरे के अन्दर निश्चित ही कोई-न-कोई आया है । वह कौन हो सकता है और फिर अचानक कहाँ गायब हो गया ? उसकी समझ में कुछ न आया । फिर भी मन को आश्वत करने के लिए उसने सहयोगियों से पूछताछ की । हर किसी ने इस बात से स्पष्ट इन्कार किया कि उसने कप्तान के कमरे में प्रवेश किया था । इतने पर अधिकारी को सन्तोष न हुआ । उसने सभी की हैण्ड राइटिंग की जाँच की, पर किसी की राइटिंग श्यामपट के अक्षरों से न मिली ।

जहाज पर लिखे निर्देश के अनुसार उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ने लगा । काफी दूर चलने के उपरान्त कर्मचारियों ने देखा

कि सामने बर्फ में एक अन्य जहाज फँसा पड़ा है । सभी यात्रियों को उससे बाहर निकाला गया । वे जब दूसरे जहाज पर सवार हो रहे थे, तो अकस्मात् एक व्यक्ति पर ब्रूस की आँखें स्थिर हो गईं । ध्यान से देखा, तो वह आश्चर्यचकित रह गया । यह वही व्यक्ति था, जो कप्तान के कक्ष में उक्त निर्देश लिखता दिखाई पड़ा था । अधिकारी को जब इस बात का पता चला, तो उसने उस व्यक्ति से वही वाक्य लिखने को कहा, जो उसके कमरे के ब्लैकबोर्ड पर लिखा हुआ था । बिल्कुल वही हैण्ड राइटिंग थी, किन्तु इस विचित्र घटना के बारे में वह कुछ भी बता पाने में असमर्थ था । दुर्भाग्यग्रस्त जहाज के कप्तान ने इतना अवश्य बताया कि लगभग उसी समय, जब दूसरे जहाज में इसकी अनुकृति देखी गई, तब वह सो रहा था । उठने पर पूर्ण विश्वास के साथ यह कहता पाया गया कि सभी सुरक्षित बच जायेंगे । उक्त वृत्तान्त का उल्लेख रॉबर्ट डेल ओवेन ने अपनी पुस्तक 'फुटफॉल्स ऑन दि बाउण्ड्री ऑफ अनॉदर वर्ल्ड' में विस्तारपूर्वक किया है ।

ऐसी ही एक अन्य घटना की चर्चा हैरोल्ड ओवेन ने अपनी रचना 'जर्नी फ्रॉम आब्सक्यूरिटी' में की है । बात उन दिनों की है, जब प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हुए कुछ ही दिन बीते थे । तब हैरोल्ड ओवेन 'एच. एम. एस. आस्ट्रिया' नामक पोत पर एक अफसर थे । पोत उस समय टेबुल की खाड़ी पर लंगर डाले खड़ा था । युद्ध की समाप्ति की खुशी में जहाज के कप्तान ने एक भोज का आयोजन किया और उसमें सभी अफसरों को निमन्त्रित किया । लेकिन ओवेन प्रसन्न नहीं लग रहे थे । उन्हें एक विचित्र प्रकार का अवसाद घेरे हुए था । न जाने क्यों उनके मस्तिष्क में बार-बार एक ही विचार आ रहा था कि क्या उनका भाई इस लड़ाई में जीवित बच सका है ? जल्दी ही पोत ने कैमरून के लिए प्रस्थान कर दिया । वहाँ जाकर ओवेन बीमार पड़ गए । इसी अवस्था में उन्हें एक विलक्षण अनुभूति हुई, जिसका उल्लेख करते हुए लिखते हैं, कि एक दिन चिट्ठी लिखने के विचार से वे अपने कक्ष में गए । दरवाजे के पर्दे को हटाकर ज्यों ही उन्होंने केबिन में कदम रखा, वे चौंक पड़े । सामने ही कुर्सी पर उनका भाई विल्फ्रेड बैठा दिखाई पड़ा । उसे देखते ही एक विचित्र सिहरन समस्त शरीर में दौड़ गई । हाथ-पैर पस्त से हो गए । उन्होंने धीरे से पूछा कि वह किस प्रकार यहाँ आ गया ? विल्फ्रेड ने इसका जवाब तो नहीं दिया, पर उसकी भंगिमा से यह स्पष्ट प्रकट हो रहा था कि वह चाह कर भी कोई चेष्टा नहीं कर पा रहा था और जड़वत् बना हुआ था । प्रश्न का उत्तर मात्र एक बेजान मुसकान से दिया । अल्फ्रेड को वहाँ पाकर ओवेन को प्रसन्नता भी हो रही थी और अचम्भा भी । उत्सुकतावश ओवेन ने एक बार पुनः प्रश्न दुहराया, किन्तु इस बार भी वह मौन रहा । उत्तर स्वरूप एक फीकी हँसी हँस दी । ओवेन लिखते हैं, कि उन्हें अपने भाई से असीम प्यार था, अतः उसकी उपस्थिति उस समय सुखद प्रतीत हो रही थी । उन्होंने आगे फिर इस बात को जानने का प्रयास नहीं किया कि वह किस प्रकार केबिन में आ पहुँचा ? कुल मिलाकर उस क्षण उसे पाकर वे सन्तुष्ट थे । उस समय अल्फ्रेड अपनी सैनिक पोशाक में था । यह देखकर ओवेन सोचने लगे कि इस शालीन और सुरुचिपूर्ण कक्ष में यह ड्रेस कितनी अवांछनीय प्रतीत हो रही है । इसी के साथ उनकी आँखें कुछ पल के लिए कक्ष की सज्जा पर जा टिकीं । दृष्टि जब वापस मुड़ी, तो कुर्सी खाली थी । वहाँ अल्फ्रेड नहीं था । इसके साथ ही ओवेन को ऐसा महसूस हुआ, जैसे उनके हाथ-पाँव अनयास ही सामान्य स्थिति में आ गए हों और यह भी आभास मिला, मानों कोई अपूरणीय क्षति हुई हो । वे अत्यधिक थकान अनुभव करने लगे और सुस्ताने के लिए लेट गए । गहरी नींद के उपरान्त जब जगे, तो उनका मन पूरी तरह आश्वस्त हो चुका था कि अल्फ्रेड अब इस दुनिया में नहीं रहा । कुछ दिन पश्चात् सैनिक हैडक्वार्टर की ओर से इस आशय की सूचना मिल गई ।

इन घटनाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर की सुषुप्ति की स्थिति या इसके विनष्ट होने पर भी मनुष्य की सूक्ष्म सत्ता यथावत् बनी रहती है और इस सूक्ष्म शरीर से वह चाहे जहाँ आ-जा सकती और चाहे कभी भी किसी को भी कोई सूचना, मार्गदर्शन या सहायता दे सकती है । सर्वसामान्य में यह शरीर अत्यन्त निम्न स्थिति में उपेक्षणीय पड़ा रहता है, अतः कोई समर्थ सहायता कर पाना तो दूर अपना आभास तक भी वह नहीं दे पाता । मरणोपरान्त ही उसकी थोड़ी-बहुत झलक-झाँकी कौतुक-कौतूहल के रूप में देखने को मिलती है, अन्यथा वह बिल्कुल ही अनजान, असमर्थ जैसी दशा में पड़ा-पड़ा सड़ता रहता है । जब हाड़-माँस के शरीर की सशक्तता के लिए पौष्टिक भोजन और नियमित व्यायाम अनिवार्य हैं, तो फिर सूक्ष्म स्तर के शरीरों के लिए यह शर्त क्यों भुला दी जानी चाहिए ? निश्चय ही उनकी सामर्थ्य का परिचय हम तभी पा सकते हैं, जब उन्हें बलवान बनाने वाले आध्यात्मिक आहार-उपचार की व्यवस्था की जा सके । आत्मिकी तन्त्र में इसकी पूरी-पूरी व्यवस्था है । आध्यात्मिक जीवन के अन्तर्गत जब इन्हें परिपुष्ट करते हुए जगाया और उभारा जाता है, तो वे स्वामिभक्त सेवक की भूमिका निभाते देखे जाते हैं ।

तिब्बती भाषा में छाया पुरुष, जो सूक्ष्म शरीरधारी होते हैं, को तुल्पा कहलाते हैं । दक्ष योगी अपना ही अथवा किसी अन्य व्यक्ति का तुल्पा प्रयासपूर्वक तैयार कर उससे तरह-तरह के काम लिया करते हैं । कई बार यह तुल्पा इतना सामर्थ्यवान होता है कि वह अपनी ही जैसी सन्तति पैदा करने लगता है । प्रथम पीढ़ी की यह सन्तति 'यांग-तुल' कहलाती है । यह भी यदि सशक्त हुई, तो इससे पीढ़ी का आविर्भाव होता है । यह तुल्पा 'नाइंग-तुल' कहलाता है । इस प्रकार समर्थ तुल्पा लम्बी वंशावली के निर्माण में अनेक बार सफल होता देखा जाता है । तुल्पा-वंशज भी अपने मूल, आदि तुल्पा की तरह क्षमतावान होते हैं और अनेक अद्भुत कार्य करते देखे जाते हैं । लामाओं के अनुसार यह छाया जैसी अनुकृतियाँ मनुष्यों की भी विनिर्मित की जा सकती हैं और पशुओं की भी । दोनों समान रूप से शक्तिशाली होती हैं । कई बार तो एक-एक तिब्बती योगी मनुष्य, पशु सहित दशाधिक तुल्पाओं का निर्माण कर लेते हैं और उनसे विभिन्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण काम करा लेते हैं, ऐसा गुह्यविदों का मत है ।

ऐसे ही एक प्रसंग का वर्णन सुप्रसिद्ध फ्रान्सीसी पर्यटक एवं मूर्द्धन्य तन्त्रविद् एलेक्जेण्ड्रा डेविड नील ने अपने ग्रन्थ 'मैजिक एण्ड मिस्ट्री इन तिब्बत' में किया है । वे लिखती हैं कि तिब्बत के १४ वर्षीय प्रवास काल में यद्यपि उन्होंने इस प्रकार की कई छाया कृतियों को कई अवसरों पर इधर-उधर तैरते देखा था,

किन्तु न जाने क्यों उन्हें इन पर सहज में विश्वास न हो सका था, अतः एलेजेण्ड्रा ने स्वयं इस साधना को सम्पन्न करके इसकी सच्चाई को जानने का निश्चय किया । इस निमित्त जिस व्यक्ति का उन्होंने चयन किया, वह एक सीधा-सादा ठिगने कद का संन्यासी था । कई महीनों तक एकान्त साधना करने के पश्चात् वह उस व्यक्ति का तुल्पा बनाने में सफल हो गई ।

कई महीने बाद फ्रान्सीसी महिला ने तिब्बत के दूसरे भागों को देखने का कार्यक्रम बनाया और अपने नौकर के साथ एक दिन चल पड़ीं । उन्हें यह देख कर घोर आश्चर्य हुआ कि उनका तुल्पा भी यात्रा में साथ-साथ चल रहा है । वे लिखती हैं कि यद्यपि यह संरचना पूर्णरूप से दृश्य सूक्ष्माकृति थी, किन्तु यदा-कदा उसके स्पर्श की स्पष्ट प्रतीत भी होती थी । एलेक्जेण्ड्रा ने इससे कई आवश्यक पर असम्भव जैसे लगने वाले कार्य लिए, ऐसा वे लिखती हैं, अन्ततः फ्रान्स लौटने से पूर्व उन्होंने इसे विगलित कर दिया ।

यह सूक्ष्म की शक्ति है । सूक्ष्म में स्थूल से महान् सामर्थ्य होती है । प्रयासपूर्वक हाड़-माँस की देह से गुँथी हुई सूक्ष्म सत्ता को पृथक किया जा सके, तो दृश्य कलेवर से अनेक गुने चमत्कारी कार्य स्वल्प समय में इनके अदृश्य शरीरों द्वारा लिए जा सकते हैं, पर इसके लिए शोधन-प्रक्रिया से गुजरना आवश्यक है । कषाय-कल्मषों से लदा शरीर वैसा कुछ भी कर पाने में असमर्थ होता है, जैसी कि इसकी वास्तविक क्षमता और योग्यता बताई गई है । यह भार उठते ही उसकी विशिष्टताएँ स्वयमेव प्रतिभासित होने लगती हैं । विभिन्न अवयवों का जैसे-जैसे शोधन परिमार्जन होता चलता है, वैसे-ही-वैसे उनमें दिव्य सूक्ष्म तत्वों का विस्तार भी बढ़ता जाता है और इसी के साथ सूक्ष्म शरीर की विशेषताएँ भी शनैः-शनैः अप्रकट से प्रकट होने लगती हैं । शरीर, मन की शुद्धि-क्रिया जब सम्पूर्ण हो जाती है, तो सूक्ष्म काया की दिव्यता अपनी पूर्ण प्रखरता के साथ दृष्टिगोचर होने लगती है और उन विभूतियों से व्यक्ति को सम्पन्न कर देती हैं, जिन्हें प्रायः महापुरुषों से जुड़ा हुआ माना जाता है । इसी को सिद्धियों का जागरण कहा गया है, जो हर किसी के लिए सम्भव है ।

सूक्ष्म जगत से सम्बन्धित कुछ अनसुलझे रहस्य

जैसे-जैसे विज्ञान स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश कर रहा है, वैसे-वैसे अनेक रहस्यों पर से पर्दा उठता चला जा रहा है । कल तक जो उसके लिए अविश्वसनीय स्तर के आश्चर्य थे, आज वह तथ्य के रूप में स्थापित हो चुके हैं और वर्तमान में जो अनसूझ पहेली हैं, आगामी समय में सम्भवतः उन्हें भी सुलझा लिया जाय । इन दिनों उसके लिए एक ही असमंजस है, कि इन्द्रियों और यन्त्रों से परे सूक्ष्म लोकों की सम्भावना शक्य हो सकती है क्या ? अधिकांश वैज्ञानिक इस मान्यता से सर्वथा इन्कार नहीं करते, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें यह स्वीकार नहीं, उनके लिए यह बेतुकी कल्पना भर है, पर जब यदा-कदा इस प्रकार की घटनाएँ प्रकाश में आती हैं, तो वे निरुत्तर हो यही कहते पाये जाते हैं कि जो दृश्य नहीं है, सम्भवतः उसके मूल में कुछ ऐसे वैज्ञानिक रहस्य हैं, जिन्हें विज्ञान अभी ढूँढ़ नहीं पाया है ।

घटना २३ सितम्बर, १८८० की है । टेनेसी (यू. एस. ए.) के एक कृषक डेविड लैंग का फार्म हाउस समनर काउण्टी में गैलेटीन टाउनशिप से १२ मील दूर था । उक्त दिन दोपहर को वह अपनी पत्नी और दो बच्चों के सामने अपने चालीस एकड़ क्षेत्र में फैले खेत में गया और देखते-देखते अचानक न जाने कहाँ गायब हो गया । जब यह सब हुआ, तब उसका भाई फार्म हाउस की ओर बग्घी लिए आ रहा था । उसने देखा कि लैंग चरागाह के मध्य से गुजर रहा है । वह उसे पुकारना चाह ही रहा था कि दूसरे ही पल लैंग तिरोहित हो चुका था, मानो भूमि ने उसे निगल लिया हो । भाई और उसकी पत्नी तुरन्त उस स्थान पर पहुँचे, पर वहाँ जमीन में किसी प्रकार की कोई दरार नहीं दिखाई पड़ी जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि वह खेत में धँस गया और न ऐसा कोई दूसरा चिह्न मौजूद था, जिससे उसकी विलुप्ति के बारे में कोई अन्दाज लगाया जा सके । बाद में पुलिस ने सूक्ष्मता से उस स्थान की जाँच-पड़ताल की, किन्तु परिणाम निराशाजनक रहा । भू-गर्भवित्ताओं ने भी बारीकी से उक्त क्षेत्र की छानबीन की, पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके । खोज कार्य महीनों चलता रहा, किन्तु किसी तरह का सूत्र-संकेत ढूँढ़ा नहीं जा सका ।

इसके दस माह उपरान्त, लैंग पुत्र-पुत्री एक दिन उसी चरागाह में घूम रहे थे कि उन्होंने देखा कि जिस स्थान से उनके पिता अदृश्य हुए थे, वहाँ लगभग २० फुट व्यास का एक बड़ा वृत्त था । वृत्त के अन्दर लम्बी-लम्बी जंगली घास उगी हुई थीं । बाहर की घासों को पशु भली-भाँति चर चुके थे, किन्तु वृत्त के भीतर की इन घासों को खाने की हिम्मत किसी ने नहीं की थी । इसी बीच किसी अज्ञात कारण से लड़की चिल्ला उठी— "पिताजी ! पिताजी ! क्या आप यहीं कहीं पास में हैं ?" चार-पाँच बार ऐसा कहने के पश्चात् उसे अपनी पुकार के निरर्थक होने का भान हुआ और वह वहाँ से चलने को ही थी कि अकस्मात् एक स्वर सुनाई पड़ा, जिसमें सहायता की याचना थी । आवाज कहीं दूर से आती प्रतीत हो रही थी, पर वह लौकिक नहीं थी । जब उन दोनों ने इसकी जानकारी अपनी माँ को दी, तो वह कई दिनों तक वहाँ आती और पुकारती रहीं । उसे हर गुहार का जवाब मिलता । धीरे-धीरे आवाज मन्द पड़ती गई और एक दिन बिल्कुल बन्द हो गई ।

वैज्ञानिक इस घटना की व्याख्या यह कहकर करते हैं कि ऐसा दो लोकों के बीच की विभाजन-भित्ति पर किसी छिद्र की उपस्थिति के कारण होता है । दुर्भाग्य से यदि कोई व्यक्ति उस सुरंग के मुँह पर पहुँचा जाय, तो वह उससे खिंच कर किसी अन्य लोक में चला जायेगा, जहाँ से उसकी वापसी की सम्भावना नगण्य जितनी होगी, पर यदि किसी प्रकार यह सम्भव हुआ भी, तो उस व्यक्ति की स्थिति वैसी ही होगी, जैसी स्मृति-लुप्त व्यक्ति की, अर्थात् वह घटना से पूर्व, मध्य और पश्चात् की सारी बातें भूल चुका होगा ।

एक अन्य सम्भावना प्रकट करते हुए विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि दुर्भाग्यग्रस्त के लिए बाहर आने का एक दूसरा तरीका यह हो सकता है, कि वह अतीन्द्रिय शक्ति सम्पन्न हो । इस सामर्थ्य के द्वारा वह दो संसारों को पृथक करने वाली दीवार में एक मानसिक धक्का लगाकर दरवाजा उसी प्रकार खोलने में समर्थ हो सकेगा,

जिस प्रकार चाबी ताले को एक झटके के साथ खोल लेती है । यदि कोई ऐसी विभूति अनजाने में अथवा असावधानीवश कभी दिक्काल के भँवर में फँसी भी, तो वह उसी तरह उससे सुरक्षित बाहर आ जायेगी, जैसे गोताखोर समुद्र से, किन्तु इसके लिए उस द्वार को ढूँढ़ निकालना आवश्यक होगा, जिसके द्वारा वह उस दूसरे लोक में पहुँच गया । यदि इसमें वह विफल रहा, तो उससे बाहर निकलने में किसी प्रकार सफल न हो सकेगा ।

विशेषज्ञों का कहना है कि यदि ऐसी घटनाएँ घटती हैं, तो इसे दो तरफा होना चाहिए, अर्थात् इस जगत से व्यक्ति दूसरे लोक में पहुँचता है, तो दूसरे विश्व से इस संसार में आगमन की घटनाएँ भी होनी चाहिए । ऐसे ही एक अद्भुत प्रसंग की चर्चा १२वीं सदी के ब्रिडलिंगटन के प्रख्यात सन्त विलियम ऑफ न्यूवर्ग ने अपनी रचना 'हिस्टोरिया रेरम ऐंग्लिकैरम' में की है । वे लिखते हैं, कि आज भी इंग्लैण्ड में यत्र-तत्र दो अलौकिक हरे बालकों का जिक्र होता रहता है । घटना तब की है, जब इंग्लैण्ड में हेनरी द्वितीय (११५४-८९) का शासन था । एक दिन दो हरी त्वचा वाले भाई-बहन 'मेरी डी उल्पिट्स' नामक स्थान पर एक छिद्र से बाहर आये । उनके हाथ-पैर मनुष्यों जैसे थे, चमड़ी का रंग गहरा हरा था । वे विचित्र रंग की पोशाक पहने थे । वस्त्र किस पदार्थ का बना था, यह नहीं जाना जा सका । जब वे सुराख से बाहर आये, तो बड़ी देर तक आश्चर्यचकित हो मैदान में इधर-उधर टहलते रहे । अनन्तः किसानों ने उन्हें पकड़ लिया और वाइक्स में रिचर्ड डी कैल्नी के घर ले आये । कई महीनों के उपरान्त उनका वर्ण बदल गया । वे सामान्य मनुष्यों के रंग के हो गए । इसी बीच भाई बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई । बहन जीवित रही । बाद में उसने लीन के सम्राट से शादी कर ली ।

जब लड़की से इस दुनिया में पहुँचने का रहस्य पूछा गया, तो उसने कहा कि एक दिन वे दोनों भेड़ चराते हुए एक गुफा के द्वार पर पहुँच गए । जब उसमें प्रवेश किया, तो उससे घण्टी जैसी अत्यन्त सुरीली ध्वनि आती सुनाई पड़ी । इसके उद्गम-स्रोत का पता लगाने के लिए वे बड़ी देर तक उस माँद में घूमते रहे और अन्ततोगत्वा इस विश्व में पहुँच गए । लड़की का कहना था कि इस लोक में आने के पश्चात् वे बहुत समय तक मैदान में यहाँ-वहाँ फिरते रहे । जब-ऊब गए, तो पुनः अपने लोक में लौट जाने की इच्छा हुई । उन्होंने गुफा-द्वार खोजना आरम्भ किया, पर उसे ढूँढ़ पाने में सफल न हो सके और ग्रामीणों द्वारा पकड़ लिए गए ।

जब उसके जगत के सम्बन्ध में पूछा गया, तो बालिका का कहना था, कि वहाँ न तो यहाँ जैसी गर्मी है, न प्रकाश उस लोक को प्रकाशित करने वाला सूर्य जैसा कोई देदीप्यमान पिण्ड वहाँ नहीं है, किन्तु ऐसा भी नहीं कि वह पूर्णतः अंधकारमय हो । एक मन्द-शीतल प्रकाश उस संसार को सदा आलोकित करता रहता है । वह स्वयं को सन्त मार्टिन के राज्य का बताया करती थी और यह भी उसे पता नहीं कि उक्त लोक किस ओर है । वह प्रायः कहा करती थी कि उसके अपने विश्व के नजदीक ही यहाँ जैसा प्रकाशवान एक अन्य लोक है, पर दोनों के बीच एक विशाल अगम्य नदी है ।

राल्फ ऑफ कॉगशैल (एसेक्स) ने इस घटना का उल्लेख अपनी पुस्तक 'क्रोनिकन ऐंग्लिकैरम' में किया है । इसके अतिरिक्त जारवेस ऑफ टिलबरी की कृति में भी इसका वर्णन आता है । प्रतिष्ठित विद्वान् अगस्टीनियन संन्यासी न्यूबर्ग अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर उक्त प्रकरण पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं कि यद्यपि अनेकों ने इस प्रसंग की दावे के साथ चर्चा की है, फिर भी लम्बे समय तक वे इस सम्बन्ध में सन्देहशील बने रहे । उनका कथन है कि जिसका कोई तर्काधार ही न हो, उस पर अचानक कैसे विश्वास कर लिया जाय ? उसे स्वीकारने के लिए बुद्धि को कैसे सहमत किया जाय ? किन्तु फिर भी बाध्य होकर उन्हें ऐसा करना पड़ा । इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं, कि उनकी मुलाकात ऐसी कितनी ही प्रामाणिक साक्षियों से हुई, जिन पर शक करने का कोई कारण नहीं था, अस्तु इसे सत्य मान लेना पड़ा, यद्यपि उनकी स्वयं की बुद्धि इसे समझ और सुलझा नहीं पायी ।

वैज्ञानिक ऐसे प्रसंगों की विवेचना ब्लैक होल के आधार पर करते हैं । उनका मत है कि इस प्रकार के सन्दर्भों में श्याम विवर की उपस्थिति ही तर्क संगत और मान्य हो सकती है । इससे कम में इसकी वैज्ञानिक मीमाँसा सम्भव नहीं । अपनी धरती पर अब तक इस तरह के दो ब्लैक होल ढूँढ़े जा चुके हैं । इनमें से एक फ्लोरिडा कोस्टारिका और बारमूडा के बीच बारमूडा त्रिकोण हैं, जबकि दूसरे की खोज अभी हाल ही में १८ अगस्त, १९९० को हुई । जापान, ताइवान तथा गुगुआन के मध्य स्थित यह त्रिभुज 'ड्रेगन्स ट्राइएंगल' अथवा 'डेविल्स ट्राइएंगल' के नाम से प्रसिद्ध है ।

उल्लेखनीय है कि हरे रंग की उस अलौकिक लड़की ने अपने वृत्तान्त में एक लम्बी सुरंग से बहुत दूर चलने के उपरान्त पृथ्वी लोक में निकलने की बात कही थी । विज्ञान विशारद भी ब्लैक होल में फँसे व्यक्ति की भवितव्यता का कुछ ऐसा ही अनुमान लगाते हैं । मूर्धन्य अंग्रेज भौतिकीविद् और गणितज्ञ प्रो. जॉन टेलर अपनी कृति 'ब्लैक होल—दि एण्ड ऑफ दि यूनिवर्स ?' में लिखते हैं, कि श्याम विवर के अन्दर खिंचाव इतना भीषण होता है कि उसमें स्पेस पतली लम्बी गर्दन की शक्ल ग्रहण कर सकती है, जिसका दूसरा सिरा किसी अन्य लोक से जुड़ा हो । वे कहते हैं कि यदि सचमुच ऐसा होता है और ब्लैक होल के भीतर का व्यक्ति सुरक्षित बचा रहता है, तो वह उस सँकरी गली के माध्यम से किसी बिल्कुल ही पृथक विश्व में पहुँच जायेगा । वहाँ जीवित रहने पर भी वह किसी भी परिष्कृत यन्त्र से अपने लोक से सम्पर्क स्थापित करने में असफल रहेगा । ऐसी स्थिति में वह अपने यान को पुनः श्याम विवर में इस आशा के साथ प्रविष्ट करा सकता है, कि वह फिर इसके माध्यम से अपने विश्व में पहुँच जायेगा, किन्तु उसका इस प्रकार का हर प्रयास निरर्थक साबित होगा और प्रत्येक प्रयत्न उसे हर बार एक नई दुनिया देगा । इस तरह वह अपने मूल जगत में पहुँचने में कदाचित् कभी भी सक्षम न हो सके । यह ब्रह्माण्डव्यापी श्याम विवर की चर्चा हुई ।

पृथ्वी पर स्थित ब्लैक होलों के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के एक दल का विश्वास है कि इस प्रकार के अनेक छोटे ब्लैक होल्स इसके स्थल भाग में स्थित हो सकते हैं, पर किन्हीं कारणों से उनके मुँह बन्द रहते हैं और यदा-कदा ही खुलते हैं, किन्तु जब खुलते हैं,

तो उसी प्रकार की घटनाएँ देखने सुनने को मिलती हैं, जैसी कि ऊपर वर्णित हैं । इनके मुख कभी-कभी ही क्यों खुलते हैं और अधिकांश समय बन्द क्यों रहते हैं ? इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक अब पृथ्वी स्थित अपनी प्रयोगशाला में ही छोटे आकार के श्याम विवर विनिर्मित करने का विचार कर रहे हैं, ताकि उनकी प्रकृति के बारे में गहराई से अध्ययन किया जा सके । यदि ऐसा हुआ, तो फिर लोक-लोकान्तरों की यात्रा बिना किसी कठिनाई के कर सकना सम्भव हो सकेगा और व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी लोक का सफर किसी भी समय सरलतापूर्वक कर सकेगा ।

ऐसी यात्राएँ प्राचीन समय में सफलतापूर्वक सम्पन्न की जाती थीं । अब यह सम्भव ही नहीं, अविश्वसनीय स्तर की इसलिए लगने लगी हैं, क्योंकि इन दिनों आत्मविद्या का न तो वह उत्कर्ष शेष रहा है, न भौतिक विज्ञान का विकास । फलतः ऐसा कुछ भी कर पाने में असमर्थता ही सामने आयी है, जो ज्ञान-विज्ञान की उच्चस्तरीय उपलब्धि कहला सके । तब परा-अपरा दोनों विधाएँ चरम पर थीं, अतः इनके संयोग से ऐसे कार्य निष्पन्न कर दिखाये जाते थे, जिन्हें सम्प्रति अचम्भा माना जाता है । लोकान्तर यात्रा इन्हीं में से एक थी । ऐसे गमनागमन का आर्ष साहित्यों में यत्र-तत्र वर्णन भी मिलता है । महाभारत में एक इसी तरह के प्रसंग का उल्लेख वन पर्व के तीर्थयात्रा प्रकरण में मौजूद है, जिसमें बन्दी नामक एक पंडित ने यज्ञायोजन हेतु विद्वान ब्राह्मणों को समुद्र मार्ग से वरुण लोक भेजा था । चर्चा यह भी है कि यज्ञ के उपरान्त वे सकुशल पुनः उसी मार्ग से पृथ्वी लोक आ गए थे । इससे स्पष्ट है कि तब लोग उस विद्या में निष्णात् हुआ करते थे, जिसे आत्मिकी का उच्चस्तरीय रूप माना जाता है । यदि ऐसा नहीं होता, तो उनका वापस लौट पाना एक प्रकार से अशक्य बना रहता । आज इसी अशक्तता के कारण ऐसी घटनाओं में व्यक्ति एक लोक से दूसरे में पहुँच तो जाता है, पर फिर अपने पूर्व लोक में वापस नहीं आ पाता । इससे यह भी साबित होता है कि अन्य लोकों का सुनिश्चित अस्तित्व असंदिग्ध रूप से विद्यमान है ।

इसी का समर्थन करते हुए प्रसिद्ध विज्ञानी रिचर्ड एच. ब्रायण्ट अपनी कृति 'अदर वर्ल्डस' में लिखते हैं कि स्थूल आयामों से परे अपने ही जैसे किसी अन्य विश्व के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्त चार आयामों के अतिरिक्त और चार आयाम हों । ये आयाम प्रत्यक्ष आयामों को ढकेंगे नहीं, वरन् हर नया आयाम प्रत्येक दूसरे से समकोण पर स्थित होगा । वे कहते हैं, कि यद्यपि इस प्रकार की विचारधारा सिद्धान्त रूप में सम्भव नहीं है, फिर भी गणितीय रूप से इसे दर्शाया जा सकता है । उनके अनुसार यदि भौतिक विज्ञान की पहुँच से बाहर गोचर आयामों से परे कोई पड़ोसी अगोचर संसार सचमुच है, तो इसे पाँचवें, छठवें, सातवें और आठवें आयामों से बना होना चाहिए । इस प्रकार विज्ञानी ने भी सूक्ष्म लोकों के अस्तित्व पर एक प्रकार से मुहर लगा दी है । यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि वास्तव में ऐसे अव्यक्त लोक हैं, तो उनकी अनुभूति कैसे की जाय ? उनसे सम्पर्क करने का उपाय क्यों हो ? अध्यात्म विद्या के विशेषज्ञ इसका एक ही मार्ग सुझाते हैं—स्वयं को परिष्कृत कर इतना सूक्ष्म स्तर का बना लेना कि सूक्ष्म अस्तित्व से एकाकार हुआ जा सके । शक्कर और नमक के कण जब स्थूल होते हैं. तो सूक्ष्म जल कण से उनका आपा पृथक बना रहता है, किन्तु जब वे स्वयं को उसी स्तर और आकार का बना लेते हैं, तो दोनों के बीच की पृथकता समाप्त हो जाती है, दोनों एक आकार और स्वभाव के बन जाते हैं । इहलोक और परलोक के बीच का अन्तर सिर्फ इसलिए है, कि हम अपनी स्थूलता त्यागना नहीं चाहते, अपने को धुलाई और रंगाई कर निखारना नहीं चाहते अन्यथा जिस दिन ऐसा हुआ, उस दिन हम उस विभाजन भित्ति को भी वेधने में समर्थ हो सकेंगे, जो स्थूल-सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य, व्यक्त-अव्यक्त के दो लोकों के बीच अटल चट्टान की तरह अड़ी हुई है ।

इस संसार में रहस्य कुछ नहीं, सर्वत्र नियम और व्यवस्था ही है

इस संसार की समस्त गतिविधियाँ सुव्यवस्थित रीति से चल रही हैं । प्रकृति के नियम ऐसे हैं, जिनमें व्यतिरेक की तनिक भी गुंजाइश नहीं है । जिन नियमों को हम जानते हैं, उन्हें सामान्य समझते हैं । जिनका पता अभी तक चल नहीं पाया है, उन्हें रहस्य कहते हैं । रहस्य का तात्पर्य उन घटनाक्रमों से है जो असामान्य होती हैं और जिनके घटित होने के कारणों का पता नहीं है ।

ऐसे घटनाक्रमों को दैवी कहकर सन्तोष कर लिया जाता है । अभी भी सूर्य और चन्द्र ग्रहण को असाधारणतः कोई दैवी प्रकोप समझा जाता है । बिजली का कड़कना पिछड़े इलाकों में देवता-दैत्यों के विग्रह का प्रतीक है । विज्ञान के विद्यार्थी इन्हें प्रकृति क्रम की एक नियत विधि व्यवस्था के अन्तर्गत प्रकट होने वाले सामयिक घटनाक्रम मात्र मानते हैं । उन्हें ऐसे कारणों में आश्चर्य जैसी कोई बात प्रतीत नहीं होती ।

मिस्र के पिरामिडों को 'जादुई' माना जाता है और उनके निर्माण की अलौकिकताओं का सम्बन्ध किन्हीं दैवी-देवताओं के साथ जोड़ा जाता है । अब उन आधारों का पता लगाया जा रहा है, जिनके सहारे इनके निर्माण में कई प्रकार के 'अद्भुत' दृष्टिगोचर होते हैं ।

इलेक्ट्रॉनिक विज्ञानी ऐरिक मेहलोइन के यह सिद्ध किया है, कि पिरामिडों में पायी जाने वाली सभी अलौकिकताएँ आज भी उन्हीं वैज्ञानिक नियमों के आधार पर खड़ी की जा सकती हैं, जिनके सहारे कि वे प्राचीन काल में की गई थीं । उन्होंने अठारह इन्च ऊँचा तक पिरामिड मॉडल प्लेक्सीग्लास का बनाया है । उसके भीतर माँस के टुकड़े तथा अन्य पदार्थ उसी स्थिति में रखे गए हैं जैसे कि पिरामिडों में रखे हुए हैं । प्रायः सभी पदार्थ वही प्रतिक्रिया उत्पन्न करने लगे जो उन प्राचीन निर्माणों में पायी जाती और जादुई कही जाती है ।

ताबूतों में बन्द 'ममी' हजारों वर्ष बाद भी क्यों सुरक्षित हैं ? इन्हें पिछले लोग भूत-प्रेतों की चौकीदारी मानते थे, पर अब प्रतीत हुआ है कि जैसा वातावरण पिरामिडों के बाहर और भीतर है वैसा ही बना लेने पर माँस की सड़न रुक सकती है और वैसा ही रहस्य दृष्टिगोचर हो सकते हैं, जैसे कि पिरामिडों की कथा-गाथाओं के साथ जुड़े हुए हैं ।

आग के बारे में मान्यता सर्वविदित है कि उसके जलने के लिए ईंधन और ऑक्सीजन दोनों की आवश्यकता है । वे दोनों जब तक उपलब्ध रहेंगे तब तक आग जलेगी । एक भी समाप्त हो जाने पर वह बुझ जायेगी, किन्तु ऐसे प्रमाण भी मिले हैं, जिनमें इस सर्वविदित मान्यता का खण्डन होता है । मामूली आकार के दीपकों में भरी हुई चिकनाई कुछ घण्टों ही जल सकती हैं, पर यदि कोई छोटा दीपक सैकड़ों वर्षों तक जलता रहे तो ईंधन के आधार पर अग्नि प्रज्ज्वलन का सिद्धान्त कट जाता है । यही बात ऑक्सीजन के सम्बन्ध में भी है । एक बन्द सन्दूक के भीतर की हवा दो-चार दिन ही काम दे सकती है, उतने से घेरे की हवा सैकड़ों वर्षों तक किसी दीपक का काम दे सकती है इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता । तो भी प्रमाण पाये गए हैं जो अग्नि विज्ञान की प्रचलित मान्यताओं के सही-गलत होने के सम्बन्ध में प्रश्न चिह्न लगाते हैं ।

इतिहासकार विलयम कैमडन ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटेन' में पुराने खण्डहरों में खुदाई में मिले ऐसे जलते दीपकों का वर्णन किया है जो सैकड़ों वर्षों से बन्द खिड़की के भीतर जलते चले आ रहे थे । कैमडन ने इस आश्चर्य का समाधान यह लिखकर किया है, कि प्राचीनकाल के रसायनवेत्ता सोने को पिघलाकर तेल जैसा बना देते थे । उसी से यह दीपक सैकड़ों वर्षों तक जलते थे । सेण्ट अमास्टाइन ने अपनी संस्मरण पुस्तक में लिखा है कि देवी वीनस के मन्दिर में एक ऐसा अखण्ड दीपक खुली जगह में जलता था, जिस पर वर्षा और तेज हवा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था । पुरातत्व विभाग ने सन् १८४० में स्पेन के कुर्तण क्षेत्र की एक कब्र को खोदकर जलता दीपक उपलब्ध किया था । उस ज्योति को कई सौ वर्षों से जलती आ रही माना गया है ।

इटली के नसीदा द्वीप में एक किसान ने अपने खेत में एक कब्र पायी थी । उसे खोदकर देखा गया तो काँच के बर्तन में एक ऐसा दीपक पाया जो मुद्दतों से जल रहा था । इतिहासकार ऐसेलाईस ने ऐस्टेनाग की खुदाई में निकली एक कब्र का वर्णन किया है, जिसमें जलता हुआ दीपक पाया गया । उसके पास ही अभिलेख पाया गया, जिसमें लिखा था, खबरदार, कोई दीपक को छुए नहीं यह देवता फ्लोटी का उपहार है । ऐसेलाईस ने इस दीपक को चौथी शताब्दी में जलाया गया माना है ।

अनुसन्धानकर्त्ता ओडोपेन्सी रोलेस ने सम्राट कान्स्टेट क्लोर्स के राज्य भहल का वर्णन किया है और लिखा है उसमें कभी न बुझने वाले दीपक जला करते थे, उनमें मामूली तेल नहीं वरन् कोई विशेष रासायनिक पदार्थ जलता था । सिसरो की बेटी टोल्या की कब्र में भी एक ऐसा ही दीपक पाया गया जो बिना तेल और हवा के जल रहा था । उसे हवा में निकाला गया तो तुरन्त ही बुझ गया ।

उड़न तश्तरियों के सम्बन्ध में पिछले ३० वर्षों से बहुत चर्चा चली है । उनके आँखों देखे विवरण इतने अधिक छपे और रिकॉर्ड किए गए हैं कि उन्हें कपोल कल्पनाएँ मनगढ़न्त कहकर झुठलाया नहीं जा सकता । आँखों न देखा गया तो काण्डरों और कमराओं ने उन्हें क्यों अंकित किया ? अप्रैल ७७ में उड़न तश्तरियों के सन्दर्भ में विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस अमेरिका में सम्पन्न हुई । उसमें अनुसन्धानकर्त्ताओं ने अपने विभिन्न निष्कर्ष बताये । उनमें से एक शोधकर्त्ता सालवाडोर फ्रीक्सेडो ने कहा—'अच्छा हो यह शोध भौतिक विज्ञान तक सीमित न रहे इसमें आत्म-विद्या विशारद भी भाग लें और तलाश करें कि क्या इसमें किन्हीं प्रत्यक्ष या अदृश्य प्राणियों की हलचलें तो जुड़ी हुई नहीं हैं ?'

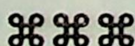
अन्तरिक्ष विज्ञानी एलन हाईनेक का कथन है—वे भौतिक क्षेत्र की ही इकाइयाँ हैं । अभी बहुत से प्रकृति रहस्य जानने के लिए शेष हैं । उन्हीं में से एक उड़न तश्तरियों का प्रसंग भी सम्मिलित रखा जाना चाहिए और उस सन्दर्भ में धैर्य और प्रयत्नपूर्वक प्रयत्न किया जाना चाहिए ।

अमेरिका वायु सेना के एक जाँच कमीशन ने अपने देशवासियों को आश्वस्त किया था कि वे जो भी हों सार्वजनिक सुरक्षा के लिए उनसे कोई खतरा नहीं है । इतने पर भी जनता को कोई समाधान न हो सका और यह भय बना ही रहा, कि यदि वे कभी नीचे उतर आईं तो न जाने क्या कहर बरसाने लगेंगी ।

मानसिक रोग और स्नायविक दुर्बलता से उत्पन्न ज्ञान तन्तुओं की विकृतियाँ भूत-पलीतों का सृजन करती हैं । किंवदन्तियों और अन्धविश्वासों का जाल-जंजाल उन्हें इस प्रकार धुएँ से बादल गढ़ देता है, मानो वे सचमुच ही चोर उचक्कों की तरह हर किसी को परेशान करने पर उतारू हो रहे हों ।

जादूगरी, बाजीगरी के अनेकों खेल लोगों को अचम्भे में डाल देते हैं और लगता है वह किसी जिन्न दैत्य की करामात है । इसका खण्डन प्रायः भले बाजीगर करते भी रहते हैं और यही बताते हैं कि यह केवल हाथ की सफाई है फिर भी कितने ही अन्धविश्वासी उन्हें चमत्कार ही कहते रहते हैं ।

स्मरण रखने योग्य यही है कि विश्व ब्रह्माण्ड अपने आप में रहस्य है । उसके नियम विधान भी रहस्य जैसे हैं । उसके अतिरिक्त वैसा कोई रहस्य नहीं है, जैसा कि अन्धविश्वासी क्षेत्र में फैला हुआ है ।



अन्तर्ग्रही देवमानवों का धरती पर आगमन

ब्रह्माण्ड में हम अकेले नहीं हैं

मनुष्य सृष्टि के जिस छोटे से घटक पृथ्वी पर निवास करता है, प्राणियों का अस्तित्व इसी तक सीमित नहीं है । अनन्त अन्तरिक्ष में अनेकानेक ग्रहों, उपग्रहों, नीहारिकाओं तथा मंदाकिनियों की परिस्थितियाँ, जलवायु एवं वातावरण ऐसा है, जहाँ जीवन की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है । वैज्ञानिक अनुसंधानों से जो तथ्य सामने आये हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि हमसे भी कहीं अधिक बुद्धिमान स्तर का जीवन, समाज और सभ्यता अन्य ग्रहों पर विद्यमान है ।

लोकान्तर स्थित बुद्धिमान प्राणियों के पता लगाने एवं सम्पर्क साधने में निरत अमेरिका के मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय के रासायनिक विकास संस्थान के निर्देशक डॉ. सिरिल पोन्नेमपेरुपा के अनुसार हमारे नभ मण्डल में दस लाख सभ्यताएँ अस्तित्व में हैं । उनका अध्ययन करने के लिए विभिन्न देशों में विशालकाय रेडियो, टेलिस्कोप, कम्प्यूटर आदि लगाये गए हैं । उनसे संदेश प्राप्त करने का प्रयास निरन्तर चल रहा है । रेडियो एस्ट्रोनॉमी के विकास ने हमारे लिए सुदूर ग्रह-नक्षत्रों के प्राणियों से सम्बन्ध स्थापित करने एवं उनसे विचारों का आदान-प्रदान करने की एक नई खिड़की खोल दी है ।

लोकान्तर स्थित सभ्यता का अनुसंधान कार्य पश्चिमी वर्जीनिया स्थित ग्रीन बैंक की 'नेशनल रेडियो एस्ट्रोनॉमी ऑब्जरवेट्री' में सन् १९५९-६० में मूर्धन्य वैज्ञानिक डॉ. फ्रैंक ड्रैक की देख-रेख में आरम्भ हुआ था । इस योजना का नाम 'प्रोजेक्ट ओज्मा' रखा गया था । इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक फिलिप मौरीसन के निर्देशन में नासा प्रोजेक्ट कमेटी, मौशाचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी की स्थापना की गई । इन वैज्ञानिकों ने शोध परीक्षणों के पश्चात् जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसमें कहा गया है कि इस दिशा में अभी और अत्यधिक शक्तिशाली रेडियो, कम्प्यूटर, टेलीविजन आदि की आवश्यकता पड़ेगी, जिसके आधार पर दूरस्थ प्राणियों से आदान-प्रदान की सम्भावना साकार हो सके ।

न्यूयार्क के इटाहका शहर स्थित 'नक्षत्र मण्डल अध्ययन प्रयोगशाला' के निर्देशक प्रख्यात वैज्ञानिक कार्ल सैगन ने खगोल विद्या के अति महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालते हुए प्रतिपादित किया है कि हमारी पृथ्वी की सभ्यता से अन्तरिक्ष स्थित ग्रह-नक्षत्रों की सभ्यता कहीं अधिक उन्नतशील है । उन्होंने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पुस्तकों—'दि ड्रैगन्स ऑफ ईडन', 'ब्रोकास ब्रेन' तथा 'कास्मॉस' में भी इसी प्रकार का वर्णन किया है । उनका कहना है कि आकाशगंगा में दस लाख तकनीकी सभ्यताएँ निवास कर रही हैं । यदि उनसे किसी प्रकार सम्बन्ध जोड़ा जा सके और आदान-प्रदान का क्रम चल पड़े तो मनुष्य उन्नति पथ पर कहाँ से कहाँ पहुँच सकता है ।

विश्व की सबसे बड़ी बेधशाला पोर्टारिको में है । उसमें अन्तर्ग्रही ध्वनि प्रवाहों के जो भी संकेत प्राप्त किए गए हैं उनमें बीप-बीप की आवाज के साथ १, २, ३, ५, ७, ११, १३, १७, १९, २३, २९, ३१ संख्याओं के अंक भी नोट किए गए हैं । वैज्ञानिकों के अनुसार सम्भवतः ये अन्तरिक्षीय लोकों के बुद्धिमान प्राणियों के संकेत सूत्र हैं, जिनके माध्यम से वे अपनी उपस्थिति की जानकारी देते हैं, साथ ही पृथ्वीवासियों से सम्पर्क साधने का भी प्रयत्न करते हैं । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अब वैज्ञानिकों ने उनसे विचार विनिमय के लिए अंक गणितीय संख्याओं के संक्षिप्त सूत्र बनाकर भेजे जाने पर अनुसंधान कार्य आरम्भ कर दिया है । कम्प्यूटर के माध्यम से प्राप्त किए गए आँकड़ों से भी यह स्पष्ट हो चुका है कि वहाँ पाँच रासायनिक तत्व विशेष मात्रा में विद्यमान हैं, जैसे हाइड्रोजन, मीथेन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा फॉस्फोरस । इसके अतिरिक्त कार्बन तथा अमोनिया की मात्रा भी अधिक है । आज से अरबों वर्ष पहले यही सब तत्व पृथ्वी की आरम्भिक अवस्था में बिखरे पड़े थे । कालान्तर में अणु, परमाणुओं के संगठन, स्वरूप रासायनिक तत्वों के उथल-पुथल होते रहने से पृथ्वी वर्तमान स्वरूप में आ सकी है । अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के तत्व वाले ग्रहों पर जीवन, समाज व सभ्यता अवश्य ही होंगे ।

अन्तरिक्षीय अन्तर्ग्रही सभ्यताओं और पृथ्वी की सभ्यता के मध्य अत्यधिक दूरी का अन्तर है, परन्तु यदि प्रकाश से अधिक तीव्र गति से चलने वाले फोटोन प्रवाह पर नियन्त्रण किया जा सके तो उसके माध्यम से यह दूरी कुछ ही वर्षों में पूरी की जा सकती है । इस सन्दर्भ में अन्तरिक्ष भौतिकी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री वैलेस सालीवाल ने एक पुस्तक लिखी है—"हम अकेले नहीं हैं ।" इसमें ब्रह्माण्डव्यापी संचार व्यवस्था पर बल देते हुए उन्होंने एक नई वेवलेंथ प्रस्तुत की है जो प्रकाश गति से कई गुनी तीव्र बताई गई है । यह वेवलेंथ पद्धति १४२० मेगासाइकिल्स वेवलेंथ के रेडियो कम्पनों पर आधारित है । अणु विकिरण की यह स्वाभाविक गति है । अन्तरिक्ष संचार व्यवस्था में इस गति को यदि अपनाया जा सके तो अन्य लोकों के प्राणियों से आसानी से सम्पर्क साधा जा सकता है । हमारे लिए जो दूरी पार करना सम्भव नहीं, अंतरिक्षवासी सम्भवतः इस गति को प्राप्त कर चुके हैं तभी वे ऐसे यान बनाने में सफल हुए हैं ।

अंतरिक्ष में उन्नत सभ्यता के अवस्थित होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए वैज्ञानिकों ने कहा है कि न केवल मनुष्य उनसे सम्पर्क साधने का प्रयत्न कर रहा है वरन् लोकान्तरवासी भी पृथ्वी के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं । इसका अनुमान धरती पर उड़नतश्तरियों के आवागमन से सहज ही लगाया जा सकता है । सन् १९४७ से अब तक हजारों उड़नतश्तरियाँ सामान्य जनों, वैज्ञानिकों, अंतरिक्ष विज्ञानियों द्वारा आकाश में मंडराते एवं धरती पर उतरते देखी गई हैं । इनके

अनेकों प्रमाण भी मौजूद हैं । राडारों एवं फोटो कैमरों द्वारा भी इनकी पुष्टि की जा चुकी है ।

आस्ट्रेलियन अंतरिक्ष विशेषज्ञ प्रोफेसर रोनाल्ड ब्रेसवेल ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि उड़नतश्तरियाँ वस्तुतः दूसरे ग्रहों के सर्वेयान हैं जो पृथ्वी की उन्नत सभ्यता और विज्ञान का पता लगाने के लिए यहाँ आते हैं । ये संकेत सूत्रों के माध्यम से यहाँ की जानकारी अपने देश को भेजते हैं । फ्रेंच परमाणु वैज्ञानिक जैक्स बल्ली का कहना है कि ब्रह्माण्ड की सर्वोत्कृष्ट शक्तियाँ इन तश्तरियों के द्वारा मानव से सम्बन्ध स्थापित करने आती हैं । इनके संचालक कद में छोटे होते हैं किन्तु इनकी बुद्धि प्रखर है । इनकी भाषा हमारी समझ में नहीं आती फिर भी उनकी सभ्यता हमारे लिए अनुकरणीय है । इवान सैंडर्सन एवं अमेरिका के एलन हाइनेक जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने इन्हें उच्च मनःशक्ति सम्पन्न एवं अतीन्द्रिय सामर्थ्ययुक्त माना है । इंग्लैण्ड के गार्डन क्रीटर ने लोकान्तर वासियों से घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करने को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया है ।

प्रख्यात मनोवैज्ञानिक कार्लजुंग का कहना है कि उड़नतश्तरियाँ अन्य ग्रहों से आने वाले अद्भुत शक्ति सम्पन्न लोगों के यान हैं । ये अनेक प्रकार की होती हैं और विश्व के सभी देशों में देखी गई हैं । सन् १९५८ के एक लेख में उन्होंने कहा है कि सारा संसार इनकी यथार्थता को अब मानने लगा है । ये चेतना के अज्ञात रहस्यों के द्योतक हैं । इन्हें एकता, मित्रता एवं सहानुभूति का द्योतक माना जा सकता है । सुविख्यात वैज्ञानिक विशेषज्ञ डेबिड टान्सले के अनुसार "ये तश्तरियाँ मनुष्य को दूसरे लोकों की समर्थता एवं रहस्यों का बोध कराती हैं । मानवी चेतना में नये भाव एवं विचार पैदा करके मानसिक एवं भौतिक उन्नति करने को प्रेरित करती हैं ।"

मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मानव जाति दूसरे ग्रहों के अनुदान से जीवित है । अपनी प्रजा के सुख-दुःख एवं उन्नति का पता लगाने के लिए ये ग्रहवासी उड़नतश्तरियों से पृथ्वी का भ्रमण करते हैं । जर्मन विशेषज्ञ एरिक वान डानिकेन ने अपनी कृति 'रिटर्न टू दि स्टोर्स' एवं 'चैरियट्स ऑफ द गॉड्स' में ऐसे अनेकों प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जिनसे प्रतीत होता है कि अन्य ग्रहों में उन्नत सभ्यता वाले बुद्धिमान प्राणी विद्यमान हैं जो समय-समय पर धरतीवासियों की सहायता करने के लिए आते हैं । मनीषियों की मान्यता है कि निकट भविष्य में अन्तरिक्षवासियों के साथ हमारे सम्बन्ध जुड़ेंगे और प्रतिभा के आदान-प्रदान का एक नया क्रम आरम्भ होगा ।

पृथ्वी से परे भी जीवन विद्यमान है

प्राचीनकाल में लोकान्तरवासियों का सीधा सम्बन्ध धरतीवासियों से था । पृथ्वीवासियों से सम्पर्क साधने एवं ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान के लिए वे अपने विशेष यानों-विमानों में बैठकर आते-जाते रहते थे । इसके अनेकों प्रमाण आज भी विश्व के विभिन्न भागों में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं । वर्तमान में धरती पर उतरने वाली उड़नतश्तरियाँ अन्तर्ग्रही आवागमन के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

वैदिक ग्रंथों में देवी-देवताओं का विमानों में सवार होकर आकाश गमन का वर्णन मिलता है । सुमेरू पर्वत, विन्ध्याचल, हिमालय की घाटियों में देवयानों के उतरने का भी उल्लेख है । ऋग्वेद में एक ऐसे रथ का वर्णन है, जो पृथ्वी, जल और आकाश तीनों में चलता था । अश्विनी कुमारों का त्रिचक्र रथ अश्व के बिना ही अंतरिक्ष में भ्रमण करता था । महर्षि भारद्वाज ने 'यन्त्र सर्वस्व' में बिजली, वाष्प, सौर ऊर्जा, जल, वायु-तेल और चुम्बक से चलने वाले विमानों का वर्णन किया है । रामायण में पुष्पक विमान गरुड़ विमान, 'यन्त्र कल्पतरु' में व्योम विमान, महाभारत में शाल्व के विमान का उल्लेख मिलता है । प्राचीन चीनी लोक-कथाओं में भी आकाश गमन करने वाले विमानों का वर्णन मिलता है । बाइबिल में कहा गया है कि उत्तर दिशा से एक प्रकाश का वबंडर उत्पन्न हुआ जिसमें से एक विमान प्रकट हुआ । उसके अन्दर चार सजीव प्राणी थे जिनकी आकृति मनुष्यों जैसी थी ।

यूनानी कथाओं में आकाश गमन करने वाले देवी-देवताओं का वर्णन मिलता है । मिस्र और बेवीलोन की प्राचीन सभ्यता में भी ऐसे अनेक प्रमाण मिले हैं, जिनसे अन्तर्ग्रही विमानों के आवागमन का वर्णन सही सिद्ध होता है ।

स्विट्जरलैण्ड के सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता एरिकफ्रॉम के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में बाह्य अन्तरिक्ष से यात्री यानों में बैठकर आते थे । इस कथन की पुष्टि मूर्धन्य वैज्ञानिक डॉ. पीटर कोलोसिमो ने भी की है । उनका कहना है कि कभी-कभी तो अन्तरिक्ष यात्री धरतीवासियों से विवाह सम्बन्ध बनाकर घर बसा लेते थे और गृहस्थी का सुख भोगकर लम्बे समय बाद अन्तरिक्ष में लौट जाते थे ।

विश्व के अनेक भागों—जैसे उत्तरी अमेरिका, पेरू तथा चिली आदि की गुफाओं में ऐसे अनेक भित्ति चित्र मिले हैं, जिनसे प्रकट होता है कि पुरातन काल में इस धरती पर दूर ग्रहों के उन्नत सभ्यता वाले लोग आते रहे हैं । इसकी पुष्टि आस्ट्रेलिया में सिडनी के पास गुफा में शिला पर अंकित सुसज्जित स्पेश शूट पहने उस अंतरिक्ष यात्री से भी होती है जिसके सिर पर पृथ्वी से अन्य लोकों को संकेत सूत्र भेजने वाले एन्टिनायुक्त उपकरण बने हैं ।

पेरू के एक पार्वत्य प्रदेश में 'नाजका' नामक एक अति प्राचीन किन्तु सुविकसित नगर के ध्वंसावशेष पाये गए हैं । इस क्षेत्र का निरीक्षण करने पर पार्श्व की पाल्पाघाटी में ज्यामितीय ढंग से विनिर्मित एवं एक-दूसरे के समानान्तर अनेकानेक हवाई पट्टियाँ पायी गई हैं । ये पट्टियाँ ४० मील लम्बी तथा एक मील चौड़ी सपाट-समतल भूमि पर बड़े ही व्यवस्थित क्रम से बनी हुई हैं । जिस तरह इन पट्टियों का आकस्मिक शुभारम्भ होता है, ठीक उसी तरह एकाएक अंत भी होता है । अतः इन्हें सामान्य आवागमन के मार्ग अथवा सड़क नहीं कहा जा सकता ।

लीमा के दक्षिण में एक पर्वत श्रृंखला पर ८२० फुट ऊँचा प्रस्तर का एक विशालकाय त्रिशूल खड़ा है जिसे जमीन पर १२ मील की दूरी से एवं अंतरिक्ष में उत्तुंग ऊँचाई से देखा जा सकता है । इसी तरह उत्तर चिली के तारापाकार मरुस्थल के बगल में स्थित एक पहाड़ी पर ३३० फुट ऊँची एक मानव मूर्ति खड़ी है । इस प्रतिमा का आकार आयताकार है किन्तु उसका सिर वर्गाकार है जिसमें समान लम्बाई के बारह एण्टिना लगे हैं । मूर्ति के कटि

प्रदेश में सुपरसोनिक फाइटर्स की भाँति अनेक त्रिभुजाकार पंख लगे हैं।

सन् १६६८ में चिली में ही एक अन्य रहस्यमय पठार का अन्वेषण किया गया। 'एन्ला डिल्लोडो' नामक दो मील लम्बे एवं ८५० गज चौड़े इस पठार पर सर्वत्र १२ से १६ फुट ऊँचे और २० से ३० फुट लम्बे शिलाखण्ड बिछे हुए हैं। एक अन्य गवेषण में 'नाजका' शहर से एक सौ मील की दूरी पर विशालकाय पत्थरों पर पशु-पक्षियों के चित्र-विचित्र रेखांकन मिले हैं। इनमें से एक चित्र ३०० गज लम्बा है।

उपरोक्त तथ्यों का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों की मान्यता है कि इन पट्टियों का उपयोग प्राच्यकाल में हवाई पट्टियों के रूप में किया जाता था। इन स्थलों का निरीक्षण करने वाले प्रख्यात विद्वान 'एरिक वॉन डैनिकेन' का कहना है कि—ये स्थान अवश्य ही अंतरिक्ष से आने वाले वायुयानों के अवतरण क्षेत्र रहे होंगे जिनका उपयोग अन्य ग्रहवासी अपने यानों को उतारने के लिए करते रहे होंगे। विशालकाय त्रिशूल, मानव प्रतिमा एवं पशुपक्षियों के चित्र हवाई पट्टी के संकेत के रूप में प्रयुक्त होते रहे होंगे जिन्हें देखते ही विमान चालकों को हवाई पट्टियों का सही-सही अनुमान प्राप्त होता होगा।

प्रसिद्ध पुस्तक 'चैरियट्स ऑफ गॉड्स' में डेनिकेन ने एक ऐसे नक्शे का वर्णन किया है जिसमें भूमध्य सागर, मृत सागर, उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के साथ-साथ अन्टार्कटिका के कुछ प्रान्त स्पष्ट दिखाये गए हैं। यह नक्शा टोपकाशी पैलेस में मिला है। विशेषज्ञों का कहना है कि यह नक्शा हजारों वर्ष पुराना है, जो किसी अन्य ग्रहवासियों द्वारा वायुयान से खींचा गया है।

वैज्ञानिकों ने अन्य कई ऐसे प्रामाणिक तथ्य ढूँढ़ निकाले हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि कभी धरती पर अन्य ग्रहों से लोग आते थे। डॉ. पीटर कोलोसिमो ने तिब्बत के मठों में सुरक्षित रखे हुए कुछ ऐसे शवों का वर्णन किया है जो अन्तरिक्ष शूट पहने हुए हैं। पीटर के अनुसार ये शव उन लोकान्तरवासियों के हैं जिनके अन्तरिक्ष यान में खराबी आ गई थी और वे वापस अपने लोक को नहीं लौट सके। उन्होंने मय सभ्यता कालीन एक खण्डहर में ऐसी समाधि का भी उल्लेख किया है जो किसी यान आकृति की है और उसके अन्दर अन्तरिक्ष यात्री बैठा है।

वैज्ञानिक निरन्तर इसी दिशा में प्रयत्नशील हैं कि अन्य ग्रहों में जीवन की खोज की जाय। अब तक जो भी शोध अनुसंधान इस सम्बन्ध में हुए हैं, उनसे स्पष्ट संकेत मिलता है कि आकाशगंगा में ऐसे अनेक ग्रह होने चाहिए जिनमें विकसित सभ्यता का निवास हो सकता है। मूर्धन्य वैज्ञानिक डॉ. बिली के अनुसार हमारी आकाशगंगा में ऐसे ग्रहों की संख्या बीस हजार होनी चाहिए जिनमें पृथ्वी जैसे बुद्धिमान प्राणी निवास करते हैं।

यों उल्काएँ जो पृथ्वी पर आती रहती हैं, उनके धूलिकणों का अन्वेषण करने से भी प्रतीत होता है कि सौर-मण्डलीय धूलि में भी जीवन तत्व मौजूद हैं भले ही वह अविकसित रूप में ही क्यों न हों? उल्काओं में जीवित एवं मृतक बैक्टीरिया तथा दूसरे तरह के जीवन चिह्न पाये जाते हैं। इस आधार पर अनुमान लगाया जाना भी असंगत नहीं है कि पृथ्वी पर पाया जाने वाला जीवन बहुत करके अन्तरिक्ष से उतरा है और इनसे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही अंतरिक्षवासी यहाँ आते रहे हैं।

उड़नतश्तरियों तथा अन्य दृश्य-अदृश्य माध्यमों से यह आवागमन अभी भी किसी रूप में चल रहा हो तो आश्चर्य नहीं। सौर-मण्डल के ग्रह-उपग्रहों की खोज में यों मनुष्य जैसे विकसित प्राणियों का पता नहीं चला है तो भी यह नहीं माना जाना चाहिए कि उनमें जीवन का सर्वथा अभाव है। फिर यह भी हो सकता है कि सौर-मण्डल से बाहर के जीवधारी प्रकृति नियमों से भिन्न चेतना नियमों के आधार पर पृथ्वी के साथ भूतकाल में अधिक सम्बन्ध बनाये रहे हों और अब यहाँ की स्थिति काम चलाऊ देखकर अन्य किसी उपयुक्त ग्रह को विकसित करने में लग गए हों और यदा-कदा यहाँ की भी खोज खबर लेते रहते हों।

हम ब्रह्माण्ड में अकेले हैं क्या?

रात आती है तो आकाश में अरबों जगमगाते तारागणों, आकाशगंगाओं और नीहारिकाओं से ऐसे जगमगा उठता है मानो किसी बहुत बड़े राजकुमार की बारात निकल रही हो। टिमटिमाते हुए तारागण चिरकाल से मानव मन में यह जिज्ञासा जगाते रहे हैं कि क्या इस ब्रह्माण्ड में हम अकेले हैं या फिर पृथ्वी की तरह अन्यत्र भी जीवन और विकसित सभ्यता की सम्भावना है।

इस प्रश्न के सुलझ जाने से और कोई लाभ हो या नहीं पर एक बात निश्चित है, तब मानवीय दृष्टिकोण और चिन्तन स्वार्थ-संकीर्णता की अंधेरी गुफा में ही कैद नहीं रह सकेगा। संसार के यथार्थ को समझने में कोई बहुत बड़ी बाधाएँ नहीं हैं। विराट् के साथ तादात्म्य की अनुभूति की सारी सम्भावनाएँ मानव-मन में विद्यमान हैं, पर जब उसे अन्तःप्रक्रिया पर दृष्टिपात का अवसर मिले तब न? उसने तो माया-मोह के भ्रम जाल में, मेरे-तेरे की संकीर्णता, काम-क्रोध की कुत्सा और इन्द्रिय सुखों की ललक इस चारदीवारी में ही अपने को उसी तरह बन्दी बना लिया है जिस तरह पिंजड़े में कैद शुक पिंजड़े के द्वार खोल देने पर भी उन्मुक्ति को कपोल कल्पना मान लेता है और फिर-फिर पिंजड़े में कैद हो जाता है। दृष्टिकोण विशाल बने तो ही यह सम्भव है कि जीवन के उच्च रहस्य हमारे सामने अभिव्यक्त हों और हम उच्च आदर्शों और कर्त्तव्यों में आरूढ़ हों।

आकाश की ओर नंगी आँखों से देखें तो अधिकतम ४५०० तारागण हमारी दृष्टि में आते हैं। साधारण दूरबीन (टेलेस्कोप) से देखने पर २००००० ग्रह-नक्षत्र देखे जा सकते हैं उससे भी विकसित किस्म के दूरबीनों से मन्दाकिनियाँ, जिनके अपने परिवार में लाखों करोड़ों ग्रह-नक्षत्र होते हैं, देखी जा सकती हैं। अब आण्विक दूरबीनों (इलेक्ट्रॉनिक टेलेस्कोप) ने इस क्षमता को और भी कई गुना बढ़ा दिया है जिससे २० अरब प्रकाशवर्ष तक के प्रकाश स्रोतों को देख सकना और उनका रासायनिक विश्लेषण यहीं पृथ्वी पर बैठे-बैठे कर सकना सम्भव हो गया है। सृष्टि चाहे कितनी ही विराट् हो पर उन तत्वों से भी इन्कार नहीं किया जा सकता जो "यत्ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे" अर्थात् ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है उसे एक नन्हें से पिण्ड में—अणु में भी झाँककर देखा जा सकता है। भले ही उस तत्व तक पहुँचने में अभी समय लगे।

इन दूरबीनों के माध्यम से देखे गए सुदूर नक्षत्रों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. डॉ. बिल्ली ने स्पष्ट

किया है कि ब्रह्माण्ड में १८००००००० ग्रह ऐसे हैं जहाँ किसी न किसी रूप में जीवन अवश्यम्भावी है । १८ हजार ऐसे हैं जिनमें मनुष्य की तरह के विचारशील प्राणी तथा न्यूनतम १८० तो ऐसे हैं जो पंचभौतिक तत्वों की अत्यन्त सूक्ष्मतम जानकारियों से ओत-प्रोत हैं । हमारे उपनिषद् और पुराण तो इन तथ्यों का विधिवत् समर्थन करते हैं ।

इस कल्पना को हवाई उड़ान नहीं कह सकते । एक समय के वैज्ञानिक पूर्वानुमान (यूरोपिया) आज सच हो रहे हैं तो यह आधार नितान्त कल्पनाएँ हों ऐसा नहीं कहा जा सकता । पृथ्वी का आविर्भाव ४००००००००० वर्ष पूर्व माना जाता है और आदमी की तरह के जीव का जन्म १० लाख वर्ष पूर्व माना जाता है । देखने में यह अवधि बहुत लम्बी लगती है किन्तु यदि ब्रह्माण्ड के साथ उसकी तुलना करें तो यह मात्र कल की घटना लगेगी ।

ब्रह्माण्ड की आयु ८ से १२ मिलियर्ड वर्ष प्राचीन मानते हैं । अब तक जो दूरतम आकाशगंगा देखी गई उसके प्रकाश के विश्लेषण से पता चलता है कि २० अरब प्रकाशवर्ष पूर्व वह अस्तित्व में थी अर्थात २० अरब प्रकाशवर्ष की आयु तो निश्चित हो ही गई, आगे बढ़ेगी तब की तब देखी जायेगी । २० अरब प्रकाशवर्ष का अर्थ हुआ—६२७६६६०००००००००००० वर्ष । इस दृष्टि से यदि जीवन की रचना दस लाख वर्ष पूर्व सर्वत्र एक हुई मानें तो भी ६२७६६६०००००० ग्रह-नक्षत्रों में जीवन के अंश अवश्य विद्यमान होने चाहिए । यह ग्रह एक से एक सम्पन्न खनिजों वाले, एक से एक सुन्दर वातावरण वाले और सुंदर रश्मियों और दृश्य वाले होंगे । तब फिर यदि मनुष्य को भौतिक जीवन ही इष्ट और अभीष्ट हो तो आकांक्षा इतनी उच्च क्यों न की जाय, क्यों इस धरती के सीमित साधनों के लिए ही मनुष्य जैसा भावनाशील प्राणी लड़े-झगड़े, चोरी-बेईमानी करे और अपने नाम पर कलंक का टीका लगाये ।

बायोकेमिस्ट डॉ. एस. मिलर ने प्रकाश स्रोतों की रासायनिक संरचना के विश्लेषण के बाद यह बताया है कि ऐसे समुन्नत और जीवधारी ग्रहों की संख्या १ लाख से किसी भी स्थिति में कम नहीं होनी चाहिए । अन्य वैज्ञानिक गन्वेषणाओं से १.२ मिलियन अर्थात १२ लाख तारों में जीवधारियों की उपस्थिति के पुष्ट प्रमाण मिले हैं । उनकी शारीरिक बनावट, अंग सज्जा, शारीरिक रसायन, स्वभाव, खान-पान, रहन-सहन भिन्न प्रकार के हो सकते हैं किन्तु जीवधारी होने का अर्थ उनमें विचार, ज्ञान, अनुभूति, भावनाओं, सम्वेदनाओं वाला अंश वही होगा जो जीवन के लक्षण के रूप में अपनी धरती में विद्यमान है । यह तथ्य जीवन की सार्वभौमिकता के सिद्धान्त की भी पुष्टि करते हैं और विस्फोट से ब्रह्माण्ड विकास की तरह वे "एक तत्व से सब जग निर्मया" सिद्धान्त से भी इन्कार नहीं करते ।

ऑक्सीजन के बिना जीवन नहीं रहता । अब तक लोगों की यह मान्यता थी पानी न मिले तो अधिक से अधिक २-४-१० दिन काटे जा सकते हैं किन्तु हवा न मिलने पर तो एक क्षण भी जीवित रहना असम्भव है—यह बात अब गए जमाने की बात हो गई । अभी एक ऐसे एनोरोबिक जीवाणु का पता चला है जिसे ऑक्सीजन जहर की तरह लगती है । ऑक्सीजन जहाँ न हो वह ऐसे ही मनुष्य के लिए विषाक्त वातावरण में जन्म लेता और परिपुष्ट होता रहता है । उसने अपनी एक न्यारी दुनिया बनाई हुई है जहाँ न कोई और जा सकता है और न वह स्वयं भी दूसरा जगह जाता है । "खग जाने खग ही की भाषा, ताते उमा गुप्त करि राखा" वाली कहावत है । एक-दूसरे के भेद का पता न लगे इसीलिए विधाता ने संसार को एक-दूसरे से छिपाकर बनाया है । अन्यन्त्र जीवन न होने की कल्पना सम्भवतः इसी कारण उठती है कि लोग अपनी भाषा के अतिरिक्त किसी और की पूर्णता पर विश्वास ही न रखते हों । इस संकीर्ण दृष्टिकोण के बिना तो हम अपने पड़ौसी से भी अनभिज्ञ बने रहते हैं विराट् सृष्टि के बारे में तो कहना ही क्या ?

अभी-अभी संसार के उच्च श्रेणी के वैज्ञानिकों के दो प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी से भिन्नतर परिस्थितियों, वातावरण, जलवायु, भूगुरुत्वाकर्षण, विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र और अणु विकिरण वाले क्षेत्रों में भी जीवन रह सकता है । ब्रिस्टल यूनिवर्सिटी के नक्षत्रविद् डॉ. हिटेन व डॉ. ब्लम ने कुछ गिनीपैग को १०० से. ग्रे. पर सुखाया (स्वाभाविक है कि उनकी मृत्यु हो गई) फिर उन्हें हीलियम द्रव्य में डाला गया जिसका शून्य डिग्री से भी नीचे, तापमान होता है । फिर उस पर तेज विकिरण डाला गया । वह स्वयं भी यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि उन गिनीपिगों में फिर से जीवन आ गया । उनका शरीर ठीक काम करने लगा उन्होंने बच्चे भी दिए जो पूर्ण स्वस्थ थे । यह तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि जीवन कठोर ग्रीष्म और भयंकर शीत में भी रह सकता है । ज्वालामुखी क्षेत्रों में तो विधिवत ऐसे जीवाणु (बैक्टीरिया) पाये जाते हैं जो पत्थर खाते और मल के रूप में लोहा बनाते हैं ।

डॉ. सीगेल ने तो अपनी प्रयोगशाला में बृहस्पति का वातावरण तैयार कर उसमें बैक्टीरिया और माइट्स को उत्पन्न भी कर दिखाया (वृहस्पति अमोनिया, मीथेन और हाइड्रोजन का क्षेत्र है) । इस वातावरण में यह जीव नहीं हुए, तब फिर यह नहीं कहा जा सकता है कि चन्द्रमा के अति शीतल और बुध के उस भाग में जो आजीवन सूर्य की ओर उन्मुख है उस महा ग्रीष्म में जीवन नहीं हो सकता, यह तथ्य उस मान्यता को ध्वस्त कर डालते हैं ।

कुछ भी हो ब्रह्माण्ड में जीवन की दृष्टि से पृथ्वी का एकाधिकार नहीं हो सकता है । इसकी तरह के अरबों नक्षत्र हवा में तैर रहे हैं । उनमें लाखों जीवधारियों की विकसित और समुन्नत बस्तियाँ होंगी, न जाने कब मनुष्य उन्हें देख पायेगा, वहाँ तक जा भी पायेगा ?

हमसे भी विकसित सभ्यता की सुनिश्चित सम्भावनाएँ

मनुष्य ने अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में इतनी प्रगति कर ली है कि सौर-मण्डल के समीपवर्ती ग्रहों तक मानव रहित यान पहुँच चुके हैं । अगले दिनों मंगल, बुध ग्रहों तक मनुष्य समेत यान भेजने की योजना है । हो सकता है किसी दिन आगे बढ़ते-बढ़ते लोक-लोकान्तरों तक यात्रा कर सकने वाले वाहनों का विकास करके वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड की, अभीष्ट ग्रह-तारकों की, खोज-खबर लेने के लिए चल पड़ें ।

मनुष्यों का किन्हीं अदृश्य लोकों तक पहुँचना और लोक-लोकान्तरों के बुद्धिमान प्राणियों का मनुष्य लोक के साथ सम्पर्क बनाने के लिए दौड़ लगाना आश्चर्यजनक तो लगता है, पर सर्वथा अविश्वस्त भी नहीं है । अन्तर्ग्रही सभ्यता की खोज के लिए दशाब्दियों से चले आ रहे वैज्ञानिकों के अथक् प्रयत्न अब सफल सिद्ध होते जा रहे हैं । रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्राँस, पश्चिम जर्मनी, आस्ट्रेलिया और कनाड़ा के अन्तरिक्ष विज्ञान विशेषज्ञों के अनुसार आगामी १० वर्षों में सम्भवतः इक्कीसवीं सदी आरम्भ होने के पूर्व ही अपने सौर-मण्डल के अतिरिक्त अन्य सौर-मण्डल के ग्रह-तारकों की सभ्यता का सरलतापूर्वक पता लगाया जा सकेगा । ४ जुलाई, १९८९ को फ्राँस के टोलोज शहर में अन्तरिक्ष अनुसन्धानों की २६वीं संगोष्ठी आयोजित की गई जिसमें 'सर्च फॉर इक्स्ट्राटेरेस्ट्रियल इण्टेलीजेन्स लाइफ' (एस. ई. टी. आई.) की योजना को क्रियान्वित करने के लिए कदम उठाने की चर्चा हुई । विश्व के लगभग १३४० वैज्ञानिकों ने इसमें भाग लिया । वैज्ञानिकों के सामूहिक प्रयत्नों के आधार पर, 'रेडियो स्पैक्ट्रम सर्वीलेस सिस्टम' नामक एक नयी तकनीकी का विकास किया गया है, जो १ से १० जी. एच. जैड. (मेगाहर्ट) की दूरी की आवृत्तियों का मापन कर सकेगी । ग्रहों के अनुसन्धान की यह एक स्वसंचालित प्रक्रिया है जिसमें किसी व्यक्ति अथवा यन्त्र, उपकरण की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती । एस. ई. टी. आई. के मार्ग में आने वाले सम्भावित अवरोधों के तथ्य एवं प्रमाण इसी के द्वारा रिकॉर्ड किए जायेंगे । अन्तरिक्ष विज्ञानियों का कहना है कि सौर-मण्डल से परे यदि कोई अन्य विकसित सभ्यता है, तो उसके साथ संचार व्यवस्था का उपक्रम बिठाने में रेडियो तरंगों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी । अन्तर्ग्रही सभ्यता सम्भवतः भू-लोक से कहीं अधिक बुद्धिमान है । संचार व्यवस्था में वे रेडियो तरंगों का प्रयोग नहीं करते, उनकी संचार प्रणाली बिल्कुल भिन्न स्तर की है, जो आधुनिक विज्ञान की पकड़ में नहीं आ रही है । कुछ सभ्यताएँ ऐसी भी हैं, जिनकी वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी धरती के निवासियों से भी काफी पीछे है ।

कॉर्नल यूनीवर्सिटी (यू. एस. ए.) के डॉ. डेक के अनुसार यदि अन्य लोकों के बुद्धिमान प्राणी धरातल पर आते हैं तो हमें इससे भयभीत होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं । वस्तुतः वे समर्थ एवं समुन्नत किस्म के प्राणी हैं । ऐसे लोगों की विशिष्टता ही यह है कि वे आवश्यकताएँ स्वल्प और उत्पादन अधिक रखते हैं, ताकि अपने लिए माँगने या चाहने की आवश्यकता ही न पड़े । वे दूसरों की सहायता करने, अनुदान बरसाने हेतु ही यदाकदा धरती पर आते रहते हैं ।

जीव विकास के नवीनतम सिद्धान्तों के प्रतिपादन- कर्त्ताओं के मतानुसार मानवी सत्ता किसी अन्य लोक से आयी है । जिस लोक से आयी है, वहाँ उसका विकास और भी ऊँचे स्तर का हो चुका होगा । अन्य लोकवासी अपनी उत्सुकता को भी मनुष्यों की तरह रोक नहीं पा रहे हैं और यहाँ की अधिक खोज-खबर लेकर तदनुरूप अधिक सघन सम्पर्क बनाने की कोई योजना बना रहे हैं । उड़नतश्तरियों का दृश्य दर्शन सम्भवतः इसी श्रृंखला की कोई कड़ी हो । द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ही उड़नतश्तरियों का अस्तित्व प्रकाश में आया है । सर्वप्रथम वर्ष १९४८ में अमेरिका की वायु सेना ने इसकी खोज की । खोजी दलों ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए बताया कि ९० प्रतिशत दृश्यों का सम्बन्ध अन्तर्ग्रही सभ्यता के अस्तित्व की ओर इंगित करना है । सन् १९६६ में एक और वैज्ञानिक मिशन की स्थापना हुई जिसने ५९ उड़नतश्तरियों के प्रत्यक्षदर्शी प्रमाण प्रस्तुत किए । अधिक संख्या में प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष देखी जाने के कारण उनका अस्तित्व झुठलाया जाना सम्भव नहीं । वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में भले ही कुछ ठीक से न बता पाये हों, पर इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार पृथ्वी के वैज्ञानिक अन्य ग्रह-नक्षत्रों की खोज के लिए समय-समय पर अपने उपग्रह भेजते रहे हैं, उसी तरह अन्य ग्रहों के निवासी भी पृथ्वी पर खोज के लिए अपने यान भेजते हैं ।

अब कुछ ऐसे ही उदाहरण सामने आये हैं जिनमें इन उड़नतश्तरियों तथा विद्युत गेदों ने विपत्तियाँ भी खड़ी की हैं । ३० जून, १९०८ को सेंट्रल साइबेरिया के सैकड़ों स्त्री-पुरुषों ने एक बेलनाकार वस्तु को आकाश में चमकते हुए देखा और देखते-देखते वह प्रकाश अचानक विलुप्त हो गया । पृथ्वी उसी क्षण थरथर काँपने लगी । काली वर्षा से सैकड़ों मील लम्बा क्षेत्र प्रदूषित हो गया । लन्दन का दिन, रात्रि में बदल गया एवं भूकम्प के झटके मास्को से ब्लाडीवॉस्टक एवं पेरिस न्यूयार्क तक महसूस किए गए । 'द ग्रेट शिकागो फायर' नाम से भयावह विभीषिका अमेरिकावासियों को भी याद है ।

सामान्यतया ये सारे घटनाक्रम प्रकृति के विधि विधान के रूप में परमसत्ता की व्यवस्था के हस्तक्षेप से मिले दण्ड के रूप में ही घटित हुए बताये जाते हैं । फिर भी इनके आकस्मिक प्रकटीकरण और विलुप्त होने के पीछे छिपी शक्तियों का पता लगाना अनुसंधान का विषय है । इससे हम लोकोत्तरवासियों की योजनाओं और क्रियाकलापों को भी समझ सकेंगे व उनसे सम्पर्क स्थापित कर सम्भवतः अपने ज्ञान की अपूर्णता को पूर्णता में बदल सकने में समर्थ होंगे ।

अन्य लोकों में बुद्धि विकास के प्रमाण

आकाश अब वैज्ञानिकों की दृष्टि में सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु है । ऐसा समझा जाता है कि जो स्थान स्थूल आँखों से भी नहीं दिखाई देते, वहाँ भी मानवीय सभ्यता विद्यमान है । पार्थिव जीव का यदि उन ग्रहों-उपग्रहों और नक्षत्रों में आदान-प्रदान होता हो तो कुछ आश्चर्य नहीं ।

परलोक दर्शन का आधार भी यही है कि ऊपर के कुछ लोक अत्यन्त सुखदायक और प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करने वाले हैं । यदि आत्म-चेतना का विस्तार उन परिस्थितियों के अनुरूप किया जा सके तो मरणोपरान्त भी मनुष्य स्वर्गीय सुखों का आस्वादन कर सकता है । पहले इन शास्त्रीय मान्यताओं को अतिरंजन कहा जाता था, पर अब इन तथ्यों के लिए पर्याप्त प्रमाण मिल रहे हैं कि आकाश के गर्भ में अति विकसित सभ्यताएँ सचमुच विद्यमान हैं और उनसे यान्त्रिक रूप से भी सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है ।

लगता है कि पहले भी पृथ्वी के निवासी अन्य लोकों में जाने का अभ्यास करते रहे हैं । योग-दर्शन में बताया है—

काया काशयोस्सम्बन्ध
संयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम् ॥४२॥

३.६ विज्ञान और अध्यात्म : परस्पर पूरक

शरीर व आकाश के मध्य सम्बन्ध स्थापित कर और रुई से लेकर परमाणु तक में समाधि सिद्ध करने से योगी लघु और हलका हो जाता है । लघु होने और हल्कापन से प्रथम तो वह जल पर चलता है, फिर सूर्य की किरणों में विहार करता है, इसके पश्चात् इच्छापूर्वक आकाश में उड़ता है ।

योग की यह सिद्धियाँ पूर्वकाश में आकाश यात्रा में बड़ी सहायक रही होंगी । उन्हें आज की स्थिति में तापीय (एअर टेम्परेचर) और दबाव (एअर प्रेसर) की वह कठिनाइयाँ न होती होंगी, जो आज वैज्ञानिक अनुभव कर रहे हैं । योग क्या 'आकाश की खोज' में सहायक हो सकता है, इस सम्बन्ध में रूस व्यापक खोज भी कर रहा है ।

अन्य ग्रहों में जीवन की सम्भावना और उनसे सम्पर्क स्थापित करने की पुष्टि आज उन उड़ती हुई वस्तुओं से हो रही है, जिन्हें उड़नतश्तरी (फ्लाइंग साइसर्स) या अनजान उड़ती वस्तु (अन-आइडेन्टीफाइड ऑब्जेक्ट) के नाम से जाना जाता है और १९५४ के बाद से जिन पर व्यापक छानबीन हो रही है । यह समझ में न आने वाली अन्तरिक्ष से प्रेषित अनुसन्धानिकाएँ अण्डाकार, सिगार की तरह लम्बी, बिल्कुल गोल और तिकोनी भी होती हैं । वह ऊपर से उड़ती हुई सी भी आती हैं, हेलीकोप्टर की तरह कहीं भी ठहर जाती हैं, उनमें कैपसूल की तरह उपखण्ड भी बाहर निकलती हैं, विभिन्न प्रकार की किरणें और रंग भी दिखाई देते हैं, समुद्र में वे गोता भी लगाती देखी गई हैं और कई बार तो उनकी गतिविधियाँ और भी विचित्र और कौतूहलवर्धक पायी गई हैं ।

२३ अगस्त, १९५४ में पेरिस से कोई ५० मील दूर वरनान में एक विचित्र घटना हुई । पुलिस स्टेशन में एक साथ कई नागरिक पहुँचे और उन सबने एक ऐसी घटना की रिपोर्ट लिखाई जो कई लोगों के द्वारा लिखाए जाने पर भी एक थी केवल दिशाओं आदि में थोड़ा अन्तर था, जैसे कि शहर के पूर्व भाग वाले ने तो यह बताया कि वह वस्तु पश्चिम को झपटी और पश्चिम वाले ने कहा हमारी ओर आयी बस यही सामान्य अन्तर था, बाकी सबकी रिपोर्टें बिल्कुल एक थीं ।

बर्नार्ड माइसरे नामक एक व्यापारी का बयान सबसे दिलचस्प था । उसने बताया कि—"आधी रात जब वह अपनी गैरेज से कार निकालने गया तो वहाँ पूरी तरह अँधेरा था, कार लेकर बाहर आया तब सारा शहर एक विचित्र हरे रंग की किरणों के प्रकाश से छा रहा था । ऊपर आँख उठाकर देखा तो कोई डेढ़ फर्लांग दूर नदी के ऊपर एक १०० गज लम्बी कोई वस्तु लटक रही थी, उसी में से एक प्रकाश निकलकर फैल रहा था । बर्नार्ड बड़े असमंजस में उसे देख ही रहा था कि उसके पेंदे से एक गोल तश्तरी की तरह की कोई वस्तु जो किसी धातु की बनी मालूम पड़ती थी, निकली हवा में झूलती हुई थोड़ी देर ठहरी रही, फिर बर्नार्ड की ओर झपटी और जब तक बर्नार्ड अपने को सम्भाले तब तक वह कहीं अदृश्य हो गई । अब उस गोलाकार नक्षत्र यान से दूसरी तश्तरी निकली, वह पानी के ऊपर इस तरह हिलती-डुलती रही, जैसे पानी में से कोई वस्तु ढूँढ़नी हो । फिर तीसरी, चौथी और पाँचवी तश्तरी—इस तरह पाँच तश्तरियाँ उसमें से निकलीं और विभिन्न दिशाओं में जा-जाकर लौटती हुई उसी पेन्सिलाकार ट्यूब में समाती गईं । इसके बाद उस वस्तु का प्रकाश धूमिल उड़ने लगा और वह अदृश्य हो गई ।"

इस प्रकार की रिपोर्ट लिखाने वाला बर्नार्ड माइसरे अकेला ही नहीं था, मिलिटरी का एक इन्जीनियर, दो सिपाही, स्त्रियाँ और कुछ और लोग भी थे, उन सबका एक ही कहना था कि उन्होंने जो कुछ देखा वह केवल दृष्टि भ्रम न था ।

एक और घटना १ मई, १९१७ में फातिमा नगर (लिस्बन (पुर्तगाल) से कोई ६२ मील दूर) में घटित हुई, जिसमें अन्तरिक्षवासियों ने पृथ्वी में उतर कर वाकायदा बच्चों को अपने विचार भी दिए । यह सब कुछ ऐसा हुआ कि वैज्ञानिकों को भी उसकी सम्भावना से सहमत होना पड़ा । लूसिया, फ्रेंकिस्कोमार्तो और जेसिन्तोमार्तो नामक उक्त तीन बच्चे 'कारवा द इरिया' नामक झरने के समीप अपने जानवर चरा रहे थे । १३ मई का दिन था, एक यान उतरा और उसमें से एक सफेद वस्त्र-सी धारण किए हुए अत्यन्त सुन्दर युवती उत्तरी, बच्चों पर उसने कुछ सम्मोहन किरणें सी फेंकी उससे वे बहुत प्रसन्न हुए । उनका डर जाता रहा । बच्चों ने बताया कि उस समय उन्हें ऐसा लग रहा था, जैसे उसने हमसे कहा हो—"तुम हमें बहुत अच्छे लगते हो ।" पर बच्चों की इस बात पर किसी ने विश्वास न किया ।

ठीक वैसी ही घटना १३ जून को हुई, फिर १३ जुलाई को भी बच्चों ने उस युवती के दर्शन किए तब तक बच्चों की बात सारे नगर में फैल चुकी थी, किन्तु कोई भी उस बात को मानने के लिए तैयार न हुआ । पुलिस ने भ्रामक अफवाह फैलाने के आरोप में बच्चों को गिरफ्तार कर लिया, पर जब उनके बयान लिए गए और भेंट की प्रत्येक तारीख १३ ही बताई गई तो लोगों ने कहा कि क्या अगली १३ अक्टूबर को भी वह वस्तु आयेगी । बच्चों ने कहा हो सकता है आये । इसी बात पर उन्हें छोड़ दिया गया ।

१३ अक्टूबर, १९१७ को उस आकाश यान और अज्ञात यात्रियों के दर्शनों के लिए झरने के पास ७०००० हजार नगरवासियों की भीड़ जमा हुई । रेवरेण्ड जनरल भी, 'विर्कर ऑफ लीरिया' भी, उन दर्शकों में से एक थे । अपने नास्तिक पत्रकार, साहित्यकार और पदाधिकारी भी घटना-स्थल पर पहुँचे । कोइम्ब्रा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक प्रो. अलमीदा गैरेन भी उन विशिष्ट व्यक्तियों में से एक थे ।

इसके बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन स्वयं प्रोफेसर अलमीदा गैरेन ने इस प्रकार किया है—"थोड़ी ही देर में घने बादलों के बीच से चमकते हुए सूर्य की तरह कोई वस्तु आकाश से पृथ्वी की ओर आती दिखाई दी । उसे देखकर आँखें चौंधिया जाती थीं । वह चाँदी मिश्रित किसी धातु की बनी गोल तश्तरीनुमा आकृति थी । वेग से घूमने में उसका रंग बदल रहा था । पृथ्वी के समीप आकर तश्तरी रुक गई । उसमें से सफेद-सी कोई वस्तु निकल कर उसकी छत पर दिखाई दी पर आज वह ठहरी नहीं, थोड़ी ही देर में वह सूर्य की ओर कुछ दूर जाकर विलुप्त हो गई । उसकी गति प्रकाश की गति से भी तेज थी ।"

ये दो घटनाएँ यह सोचने को विवश करती हैं कि हमें केवल 'पृथ्वी में ही जीवन' के संकुचित दृष्टिकोण का परित्याग कर देना चाहिए और यह देखना चाहिए कि ब्रह्माण्ड से दूर भी कुछ है और उससे पार्थिव जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध भी है ।

काल्पनिक गाथाएँ जान पड़ने वाली इन घटनाओं की पुष्टि अब पुरातत्व-संग्रहों (ऑर्कोलॉजिकल्स) से ही होने लगी है। दुनिया के कुछ संग्रहालयों में ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जो यह प्रमाणिक करती हैं कि अब की अपेक्षा प्राचीनकाल में लोगों ने ब्रह्माण्ड का कहीं अधिक स्पष्ट अध्ययन किया था। उस समय अन्य लोकों से निःसन्देह प्राणी आते रहे हैं।

सात्जवर्ग म्यूजियम (आस्ट्रिया) में ७८५ ग्राम और ७.७५ आपेक्षिक घनत्व का एक अवशेष १८७७ में लोअर ऑस्ट्रिया की एक कोयला खान में खुदाई करते हुए मिला था। रेडियो सक्रियता से सम्बन्धित परीक्षण करने के बाद वैज्ञानिकों ने बताया कि इस कठोर टुकड़े का निर्माण तीन लाख वर्ष पूर्व हुआ था जबकि पाश्चात्य वैज्ञानिक आधुनिक सभ्यता का सर्वाधिक ऋग्वेदीय काल कुल सात हजार वर्ष मानते हैं। इतने वर्ष पूर्व यदि पृथ्वी पर मानवीय सभ्यता न रही होगी तो यह टुकड़ा निःसन्देह किसी अन्तरिक्ष से आये हुए यान का ही होगा और इसे बनाने वाले कुशल कलाकार ही नहीं बौद्धिक कारीगर भी रहे होंगे, क्योंकि उसकी लम्बाई-चौड़ाई में एक सूत का भी अन्तर नहीं है। गहराई की दोनों करवटें उन्नतोत्तर (कॉन्वेक्स) हैं और उभारों में इतनी समतलता है, मानों उसे किसी मशीन से खरादकर बनाया गया हो। बीच में छोटा-सा छेद भी है, जो आमने-सामने की समतल दीवारों के पार निकल गया है, वह छेद भी किसी यन्त्र से ही बनाया गया है।

वैज्ञानिक अब उसे किसी ग्रह द्वारा निक्षेपित (सूटेड) किसी यन्त्र का ही टुकड़ा मानते हैं। कारनेल विश्वविद्यालय में खगोल शास्त्र के प्राध्यापक डॉ. थॉमस गोल्ड की तो यहाँ तक मान्यता है कि—"ऊपर से आने वाले अज्ञात पृथ्वी के ही प्राणी होंगे और दूर नक्षत्रों से यह देखने आते होंगे कि हम जिस पृथ्वी पर रहते थे, अब उसकी क्या स्थिति है। भाषा और ध्वनि में अन्तर होने के कारण भले ही उनके सन्देश ग्रहण करने की स्थिति में न हों पर वहाँ भी तिथि, नक्षत्र, काल-विभाजन आदि नियमों की जानकारी और व्यवस्था है, क्योंकि उनका आना, सन्देश भेजना आदि सब निश्चित समय और अन्तर (इन्टरवेल) में होता है।"

२२ जून, १८४४ में इसी प्रकार आठ फुट गहराई में रदरफोर्ड गिल्स (लन्दन) में एक तार निकला था, वह भी ऐसी सभ्यता की पुष्टि करता है। १६०८ में साइबेरिया में जो विस्फोट हुआ था, उसकी शक्ति तीन करोड़ टन टी. एन. टी. थी, वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वह किसी उल्कापात के कारण नहीं वरन् किसी नियमित रूप से प्रेषित अज्ञात यान में रखे किसी अणु-अस्त्र का विस्फोट थी।

इन प्रमाणों के बावजूद भी पृथ्वी में किसी के आने या यहाँ से किसी के जाने की बात प्रमाणित करने की सबसे बड़ी कठिनाई गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त है। उसके रहते प्रकाश की गति से भी अधिक तीव्र गति देना किसी यान के लिए सम्भव नहीं और जब तक यह स्थिति न बने दूरवर्ती नक्षत्रों में पहुँचना और समय की सीमा में ही लौट आना कठिन है, पर अब वैज्ञानिक मानने लगे हैं कि किसी वस्तु और उसके अन्दर के वायुमण्डल को गुरुत्वाकर्षण से मुक्त किया जा सकता है।

हमारी मान्यता उससे भिन्न और यह है कि शून्य अन्तरिक्ष में शक्तियों के कुछ ऐसे सूक्ष्म प्रवाह हैं, जहाँ यदि कोई वस्तु पहुँच जाय तो फिर वह किसी नक्षत्र में खिंचकर जा सकती है, ऐसी विचित्र शक्ति-गंगाओं का पृथ्वी के समीप ही पता भी चला है, उसका वर्णन किसी अगले लेख में करेंगे।

ब्रह्माण्डव्यापी चेतना में घनिष्ठता होने की सुखद सम्भावना

इस विशाल ब्रह्माण्ड में अकेली पृथ्वी पर ही जीवधारी नहीं रहते वरन् अन्यत्र ग्रह-नक्षत्रों पर भी जीवन विद्यमान है, अब यह सम्भावना स्पष्टतः स्वीकार करली गई है। परिस्थितियों के अनुरूप जीवधारियों की आकृति और प्रकृति में अन्तर हो सकता है, पर उसका अस्तित्व अन्यत्र भी अवश्य।

इस दिशा में खगोलवेत्ताओं की उपलब्धियाँ क्रमशः यही सिद्ध करती जा रही हैं कि अपने सौर-मण्डल में भी जीवन का अस्तित्व मौजूद है और इसके बाहर के अन्य तारकों में बुद्धिमान जीवधारियों की सत्ता मौजूद है।

जैसे-जैसे अन्यत्र जीवन के अस्तित्व का पता चलता जा रहा है वैसे-वैसे यह चेष्टा भी तीव्र होती जा रही है कि इन जीवधारियों के साथ किस प्रकार सम्पर्क बनाया जाय और पारस्परिक सहयोग के आधार पर निखिल चेतना को किस प्रकार सम्बन्ध सूत्र में पिरोया जाय। धरती के निवासी मानवों के परस्पर सहयोग ने इस छोटे से ग्रह पिण्ड को कैसा सुन्दर बना डाला—यदि ब्रह्माण्डजीवी जीवन सत्ता के बीच घनिष्टता स्थापित हो सके तो उस सहयोग का न जाने कितना बढ़ा-चढ़ा चमत्कारी परिणाम उत्पन्न हो सकता है। इस दिशा में चल रहे प्रयास को चेतना की उज्ज्वल संभावनाओं के रूप में बड़े मनोयोगपूर्वक विज्ञ समाज द्वारा देखा जा रहा है।

फेनेमारिया (कैलीफोर्निया) विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. मेथ्यू नार्टन का कथन है कि मानवी प्रयत्नों से शुक्र ग्रह में कुछ स्थानों पर वनस्पतियाँ उगाई जा सकती हैं और अन्य रेडियो प्रयत्नों द्वारा संव्याप्त कार्बन डाईऑक्साइड के मूल तत्व कार्बन को अलग किया जा सकता है। शुक्रग्रह सम्बन्धी अपने शोध-निबन्ध में नार्टन महोदय ने इन गैसों के विच्छेदीकरण और वनस्पति उत्पादन की प्रक्रिया को 'फोटो सेंथेसिस' की एक विशिष्ट प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया है और कहा है कि इस आधार पर शुक्र में जल वर्षा आरम्भ हो सकती है तथा वहाँ का वातावरण कुछ दिन में ऐसा ही हो सकता है जैसा कि जीवधारियों के रहने योग्य अपनी पृथ्वी का है।

पुल्कोवो रेडियो टैलिस्कोप द्वारा प्राप्त सूचनाएँ ऐसी नहीं हैं कि शुक्र ग्रह पर जीवन के अस्तित्व से सर्वथा इन्कार किया जा सके और न डॉ. री का वह कथन अभी तक पूरी तरह रद्द किया गया है जिसमें उन्होंने शुक्र में प्राणधारियों का बड़ी संख्या में होना सम्भावित बताया था।

मंगल ग्रह से कई हजार मील दूर रहकर अन्तरिक्ष यानों ने जो ८० हजार फोटो भेजे हैं उन्हें देखने पर यह निश्चित नहीं किया जा सका कि उनमें जीवन विद्यमान है। ग्रीनवेक्स (वर्जीनिया) के पर्यवेक्षकों ने भी उपलब्ध रेडियो सन्देशों के आधार पर अभी यह निष्कर्ष नहीं निकाला है कि उनकी पहुँच के क्षेत्र में पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र भी जीवन है।

वर्जीनिया के ग्रीनवैक नामक स्थान पर अवस्थित रेडियो वेधशाला के खगोलशास्त्री फ्रैंकड्रेक ने एक तारे से आने वाले रेडियो संकेतों का अध्ययन किया था। जहाँ से यह संकेत आते थे, उस तारे का नाम उन्होंने 'ओज्मा' रखा था और इसी नामकरण के आधार पर उनकी अनुसन्धाशाला को ओज्मा प्रोजेक्ट कहा जाता था। उन्होंने २१ सेण्टीमीटर वेवलेंथ पर १५० घण्टे तक संकेत सुने थे। यद्यपि उस समय किसी निष्कर्ष पर न पहुँचा जा सका फिर भी ड्रेक महोदय ने यह भविष्यवाणी की थी कि अब न सही, फिर कभी सही, हम अन्तर्ग्रही प्राणियों के साथ आदान-प्रदान में सफलता प्राप्त करके रहेंगे।

जहाँ-तहाँ पाये गए उल्का पिण्डों में जीवन तत्व पाये जाते हैं, इससे अनुमान होता है कि अन्यत्र भी जीवन होना चाहिए। अपने लोक में कभी-कभी ऐसे वाइरस (विषाण्ड) आ धमकते हैं जिनकी ताप सहन शक्ति इतनी अधिक होती है जितनी पृथ्वी पर सम्भव नहीं। इन आधारों को देखते हुए इस मान्यता की पुष्टि होती है कि अन्यत्र भी जीवन होना ही चाहिए।

जीवन कहीं भी—किसी भी रूप में क्यों न प्राप्त हो उसके मूल में डी. एन. ए. के यौगिकों के रूप में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थ ही हैं। इन रसायनों का अस्तित्व अन्य लोकों में भी है। इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

प्रख्यात रूसी खगोलवेत्ता निकालाई कार्दाशेव ने अन्तरिक्ष से अवतरित होने वाली विभिन्न रेडियो ध्वनि तरंगों को वर्णछटा में परिवर्तित करके ऐसे चार्ट तैयार किए थे जिनसे यह प्रकट होता था कि प्रकृतिगत परिवर्तनों से रेडियो कम्पनों की क्या स्थिति होती है, और अन्तर्ग्रहीय रेडियो संकेतों की उन से क्या भिन्नता है।

इस अन्वेषण को आगे जारी रखते हुए सोवियत संघ के एक अन्य ज्योतिर्विद गेन्नादी शोलोमित्स्को ने पता लगाया कि सौ दिन के अन्तर से एक जैसे अन्तर्ग्रही रेडियो संकेत नियमित रूप से—नियमित क्रम से आते हैं। इस नियमितता के पीछे किन्हीं प्रबुद्ध प्राणियों का प्रयास ही होना चाहिए।

खगोलज्ञ मानते हैं कि हमारी आकाशगंगा में एक करोड़ के लगभग ग्रह ऐसे हैं जो अपने-अपने सूर्यों की परिक्रमा करते हुए ऐसे क्षेत्र में रहते हैं जहाँ न अधिक सर्दी है न गर्मी, वहाँ हमारी धरती की तरह ही मध्यवर्ती शीत-ताप की ही नहीं अन्य परिस्थितियाँ भी ऐसी हैं जिन पर जीवन अपने आप पनप सकता है। जीव विज्ञानी पहले यह मानते थे कि जीवन का आधार कठिन है पर अब यह माना जाने लगा है कि सिलिकन में भी कार्बन जैसी ही जीवन को उत्पन्न कर सकने वाली क्षमता मौजूद है। सिलिकन प्रचुर मात्रा में अन्य ग्रहों पर मौजूद है तो वहाँ जीवन भी होना ही चाहिए।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो. मार्टिन रॉयल ने २५ ऐसे रेडियो तारकों की सूची तैयार की है जो अपने सूर्य की अपेक्षा सैकड़ों गुने बड़े और तेजस्वी हैं। उनकी ऊर्जा कल्पनातीत है। प्रो. फ्रड हायल के अनुसार उन रेडियो तारकों से अनेक ग्रह-उपग्रह जुड़े हुए हैं। उनमें अनेकों की स्थिति जीवन के लिए अनुकूल उपयुक्त होने की पूरी-पूरी सम्भावना मानी जा सकती है। ऐसी ही उपलब्धियों से प्रभावित होकर ब्रिटेन के अन्तरिक्ष विज्ञानी लॉर्डस्नो ने आशा व्यक्त करते हुए कहा था कि वह दिन हम सबके लिए बेहद खुशी का होगा जब ब्रह्माण्ड के अन्य प्राणियों के साथ हमारा सम्पर्क बनेगा।

एक प्रश्न यह भी है कि यदि अन्य ग्रहों पर जीवन हो तो क्या हमारा आवागमन सम्भव हो सकता है ? क्योंकि बिना प्रत्यक्ष सम्पर्क अथवा आदान-प्रदान के जीव सत्ताएँ ब्रह्माण्ड में अपने स्थान पर बनी रहकर भी अन्य लोकवासियों के लिए कुछ अधिक उपयोगी सिद्ध न हो सकेंगी।

तारकों की दूरी को देखते हुए और मनुष्य-प्राण की सीमित आयु को देखते हुए यह खाई पटती नहीं दीखती कि उन लोकों तक पहुँचना और वापिस लौटना सम्भव हो सके। अपने आधुनिकतम अन्तरिक्ष यान द्वारा यदि निकटतम तारक की यात्रा की जाय तो उसमें कम से कम चार प्रकाशवर्ष लगेंगे। एक प्रकाशवर्ष अर्थात लगभग ६० खरब मील की दूरी।

वैलेस सलीवान ने अपनी पुस्तक 'वी आर नॉट अलोन' (हम अकेले नहीं हैं) पुस्तक में अन्तरिक्ष यात्राओं के एक नवीन आधार का उल्लेख किया है। यह आधार २१ सेण्टीमीटर अथवा १४२० मेगा साइकिल वेवलेंथ के रेडियो कम्पनों पर अवलम्बित हैं। हाइड्रोजन परमाणुओं के विकिरण की यह स्वाभाविक कम्पन गति है। इसे करतलगत किया जा सकता है। तब अन्तरिक्ष यात्रा के लिए कम समय, कम श्रम एवं धन लगाकर ही अन्तर्ग्रही आवागमन सम्भव हो सकता है।

प्रकाश की चाल से चल सकने वाले अन्तर्ग्रही यान तारकों की दूरी को देखते हुए वहाँ पहुँचने और लौटने में जितना समय लेंगे उसमें मनुष्य की कई पीढ़ियों बीत जायेंगी। इतनी लम्बी प्रतीक्षा में बैठा रहना अन्तरिक्ष जिज्ञासुओं के लिए कठिन है, अस्तु वह आधार ढूँढ़े जा रहे हैं जो उस गति में तीव्रता ला सकें। सौभाग्य से वह आधार मिल भी गया है। मेगा साइकिल वेवलेंथ के सहारे यान इतनी तेजी से उड़ सकेंगे कि अभीष्ट अवधि के अन्दर अन्तर्ग्रही आवागमन सम्भव हो सके।

मनुष्य की गरिमा महान् है। उसकी बुद्धि को दैवी वरदान ही कहा गया है। अलभ्य आकाँक्षा—तन्मय, तत्परता, समग्र एकाग्रता और प्रचण्ड श्रमशीलता के चारों आधार मिल जाने पर मानवी बुद्धिमत्ता सीमा की समस्त मर्यादाओं को लाँघ जाती है। बलि भगवान की तरह वह तीन चरणों में समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को नाप सकती है। नापने जा भी रही है। इस बुद्धिमत्ता का जब कभी सदुपयोग होगा तो मनुष्य पर देवताओं को निछावर किया जा सकेगा और तब इस धरती की गरिमा स्वर्ग से बढ़ी-चढ़ी ही होगी।

लोकान्तर आवागमन : एक तथ्य, एक सत्य

अप्रेल सन् १९६६ के एक दिन रूसी रेडियो खगोलशास्त्री एन. कर्दाशेव और जी. शोलोमित्स्की ने एक समाचार प्रस्तुत कर सर्वत्र सनसनी पैदा कर दी। उन्होंने दावा किया सी. टी. ए. १०२ नामक एक सुदूर रेडियो स्रोत एक विशेष गति से अपनी फ्रीक्वेन्सी बदल रहा है, जो इस बात का प्रमाण है कि वहाँ कोई सभ्य, समुन्नत और सुशिक्षित जाति का अस्तित्व है। यद्यपि इस समाचार का बाद में खण्डन कर दिया गया किन्तु तो भी वैज्ञानिक

इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं कि अन्य ग्रहों में समुन्नत जीवन नहीं है ।

दिसम्बर १६०० की एक दोपहर को इसी तरह का एक सनसनीखेज समाचार कई प्रमुख पत्रों में छपा था— "पिछली रात को मंगलवासियों ने पृथ्वीवासियों को एक महत्त्वपूर्ण सन्देश भेजा था ।" कुछ खगोलशास्त्रियों ने इसकी पुष्टि भी की और बताया कि मंगल-ग्रह से एक विलक्षण ज्योति-पुंज पृथ्वी की ओर फेंका गया, जो सम्भवतः पृथ्वीवासियों के लिए कोई सन्देश रहा होगा ।

तब से अमेरिका इस सम्बन्ध में सतर्क रहने लगा । आखिर १६२४ में एक बार फिर से मंगल-ग्रह से इस तरह का एक सन्देश आया । न्यूयार्क के कुछ रेडियो इन्जीनियरों ने इस सन्देश का उत्तर भेजने का प्रयत्न भी किया, किन्तु अन्य ग्रहों के संकेत और भाषा न समझ सकने के कारण कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त न हो सकी । हाँ, एक बात जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हुई वह यह थी कि वैज्ञानिक यह अनुभव करने लगे कि शरीरों की आकृति में भले ही भिन्नता हो पर लोक-लोकान्तरों में निवसित जीवों में कोई सूक्ष्म एवं अदृश्य एकता अवश्य है ! यदि उस सम्बन्ध में विधिवत् जानकारी प्राप्त की जा सके तो अन्य ग्रहवासियों से सम्पर्क स्थापित करना सरल हो सकता है । यही नहीं उनसे परस्पर बातचीत, भेंट, मुलाकात भी हो सकती हैं । इस तरह पहली बार पाश्चात्य देशों में आवागमन की सत्यता की बात लोगों के मस्तिष्क में पैदा हुई ।

अब थोड़ा भारतीय दर्शन की ओर आना चाहिए । हमारे शास्त्रों में मनुष्य के तीन शरीर माने गए हैं—(१) स्थूल, (२) सूक्ष्म और (३) कारण शरीर ।

स्थूल शरीर वह है, जो हमें दिखाई देता है । जो पार्थिव अणु संकुलन से बना है, जिसे स्पर्श कर अनुभव करते हैं ।

दूसरा सूक्ष्म शरीर—हल्का एवं सूक्ष्म परमाणुओं से बना होता है । यह परमाणु-विज्ञान में माने गए परमाणुओं से भिन्न होते हैं, सजीव एवं चेतन होते हैं । इसे प्राण शरीर भी कहा जाता है । इस शरीर में भी वर्षा, शीत, उष्णता, सुख-दुःख का अनुभव उसी तरह होता है जिस तरह स्थूल शरीर में । किन्तु सूक्ष्म शरीर में पोषण के लिए अन्न की आवश्यकता नहीं होती । विचार और भाव उसका पोषण करते हैं । इसलिए सूक्ष्म शरीर के आने-जाने में समय नहीं लगता । वह क्षण मात्र में न्यूयार्क, जर्मनी, इटली या स्विट्जरलैण्ड पहुँच सकता है । साधी हुई विचार-शक्ति (मनोयोग) से बन्द अलमारियों की पुस्तकें तक पढ़ी जा सकती हैं । अन्यान्य चमत्कारपूर्ण जानकारियाँ हासिल की जा सकती हैं, सूक्ष्म शरीर की सत्ता और महत्ता पर कहीं अन्यत्र विस्तृत प्रकाश डाला जायेगा । अभी इतना ही जानना चाहिए कि सूक्ष्म शरीर सभी जड़-वस्तुओं के लिए भी पारदर्शक होता है । प्रेत आत्माओं का शरीर सूक्ष्म शरीर का बना होता है । इस शरीर के आस-पास हल्के रंग का प्रकाश भी चारों ओर फैला रहता है । जो आत्मा जितनी अधिक पवित्र होती है, उसका प्रकाश भी अधिक फैला और चमकदार होता है । महापुरुषों के मुख-मण्डल पर प्रदर्शित तेजोवलय इसी पवित्रता और तेजस्विता का प्रतीक होता है ।

हिन्दु-दर्शन की मान्यता यह है कि जब जीवात्मा स्थूल शरीर छोड़ देता है, तभी मृत्यु हो जाती है । अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) तथा कारण शरीर सहित जीवात्मा सूक्ष्म शरीर में ही होता है । इसलिए उसका वह व्यक्तित्व वहीं बना रहता है । यथासमय यही सूक्ष्म शरीर पुनर्जन्म ग्रहण करता है । यह भी कहा जाता है कि स्वाधीनावस्था में सूक्ष्म शरीर ही अलग होकर लोक-लोकान्तरों की अनुभूतियाँ ग्रहण करता है ।

कुछ जीवात्माएँ महान् तेजस्वी, विकार-रहित, निष्काम तथा इतनी संकल्पवान् होती हैं कि वे मृत्यु के उपरान्त किन्हीं लोकों में जा सकती हैं, स्थूल शरीर भी धारण कर सकती हैं, अपने सगे-सम्बन्धियों को अथवा करुणावश किन्हीं भी मनुष्यों को सन्देश और प्रेरणाएँ भी दे सकते हैं । भगवान कृष्ण ने शोक-ग्रस्त अर्जुन को अभिमन्यु के दर्शन कराये थे, तब अभिमन्यु ने अर्जुन से कहा था—"इस संसार में कौन किसका ? किसका पिता, कौन पुत्र ? सब जीव-कर्मवश शरीर धारण करते और फिर अपने लोक को लौट जाते हैं ।"

'गोकर्ण की मुक्ति' की पौराणिक कथा ऐसी ही है । जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपने सूक्ष्म-शरीर से ही माहिष्मती के मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया था और काम कला का ज्ञान प्राप्त किया था । सन्त एकनाथ के यहाँ श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों ने भोजन करने से इन्कार कर दिया । तब उन्होंने अपने पितरों का आह्वान कर उन्हें साक्षात् भोजन कराया । इस घटना ने सन्त एकनाथ को चमत्कारी व्यक्ति सिद्ध कर दिया था । सूक्ष्म शरीर के चमत्कार और भी आश्चर्यजनक हैं । वह लोकान्तरों में भी प्रसन्नतापूर्वक गमन कर सकता है ।

वैज्ञानिकों को भी विश्वास हो गया है कि हमारे तारक पुंजों के अतिरिक्त ब्रह्माण्ड में जो अन्यान्य अदृश्य तारागण हैं, उनमें से अनेकों में जीवंतता अवश्य होनी चाहिए और इस जीवन में स्थान-परिवर्तन का भाव और ज्ञान भी होना चाहिए । आजकल उड़नतश्तरियों के अनेकों प्रमाण सामने आ रहे हैं, वह काल्पनिक नहीं हैं । भले ही समाचारों में कुछ अफवाहें हों पर अधिकांश तथ्यपूर्ण भी हैं, उनसे यह प्रकट होता है कि अन्य ग्रहों में जीवन है और ये बौद्धिक क्षमता वाले भी हैं, उन्हें पृथ्वी का ज्ञान है, वे पृथ्वी से सम्पर्क भी स्थापित करते रहते हैं । कठिनाई यह है कि स्थूल शरीर से उन सन्देशों को पकड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि भाषा और ज्ञान की स्थिति एक जैसी नहीं है ।

दूरी और समय का मेल भी एक कठिनाई है । उदाहरणार्थ, 'एप्सीलॉन एरीडानी' पृथ्वी के निकटस्थ तारों में से एक है और हमसे केवल $१०\frac{१}{२}$ प्रकाशवर्ष की दूरी पर है । यदि वहाँ से कोई सन्देश सन् १६५८ में भेजा गया हो तो वह पृथ्वी पर वर्ष १६६८ में आयेगा और यदि उसका उत्तर तत्काल प्रेषित कर दिया जाय तो वह वहाँ सन् २००८ तक पहुँचेगा ।

१६०८ में साइबेरिया में एक उल्का गिरी थी । उसकी जाँच करने से पता चला था कि यह सिग्नी ६१ नामक नक्षत्र से सम्बद्ध किसी ग्रह से आने वाला सूचना-पिण्ड था, अनुमान था कि 'क्रामातोआ' ज्वालामुखी फटने से पृथ्वी में जो प्रकाश पुंज जला था, वह उसका ही प्रत्युत्तर होगा ।

जीव-विज्ञान के डॉ. अल्पातोव की कल्पना भारतीय कल्पना से स्पष्ट मेल खा जाती है । उन्होंने जीवन को दो रूपों में बाँटा है—(१) सक्रिय स्वरूप, (२) निष्क्रिय स्वरूप । सक्रिय स्वरूप के अन्तर्गत ऐसे जीवित प्राणी आते हैं, जो वातावरण में रहकर उसके सम्पर्क से अपने आपकी वृद्धि करते रहते हैं । जीवन के निष्क्रिय स्वरूप का क्षेत्र उससे अधिक व्यापक, विस्तृत एवं अनन्त है । निष्क्रिय स्वरूप बीजों या बीजाणुओं के रूप में जीवित होने की शक्तियुक्त अवस्था में पाये जाते हैं ।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि शरीर की बीज अवस्था बिल्कुल सूक्ष्म और अदृश्य है, उसे प्रकाशस्वरूप भी कह सकते हैं, उसकी ऊर्ध्वगति या अधोगति अच्छे और बुरे भावों, विचारों, संकल्पों एवं क्रियाकलापों से होती है । इसलिए जीव के अन्यान्य ग्रहों में आवागमन का कारण भी सूक्ष्म रूप में विचार और भावनाएँ तथा स्थूल रूप में क्रिया-कलाप, रहन-सहन और खान-पान होता है अर्थात् स्वर्ग और नर्क की प्राप्ति या उनसे छूटना एक ओर स्थूल शरीर की शुद्धि पर भी आश्रित है और सूक्ष्म शरीर की शुद्धता पर भी ।

यहाँ तक दो बातें निर्विवाद सत्य सिद्ध होती हैं—(१) पारलौकिक जीवन, (२) आवागमन की स्थिति में सुख और दुःख की अनुभूति । तब फिर हमें उपनिषदों की इस मान्यता की ओर लौटना ही पड़ता—

"न ह्यन्ततरतो रूपं किंचन सिध्येत् । नो एतन्नाना । तद्यथा रथस्यारेषु नेमिरर्पिता नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूत मात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः प्रज्ञामात्रा प्राणे अर्पिताः । एष लोकपाल एष लोकधिपतिरेष सर्वेश्वरः स म आत्मेति विद्यात् स म आत्मेति विद्यात् ।"

—कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् ६

अर्थात्—प्रज्ञामात्रा और भूतमात्रा के स्वरूप में कोई विभिन्नता नहीं है । जैसे रथ की नेमि अरों में और अरे रथ-नाभि के आश्रित रहते हैं, वैसे ही भूत-मात्राएँ प्रज्ञा-मात्राओं में और प्रज्ञा-मात्राएँ प्राण में स्थित हैं । यह प्राण ही अजर-अमर, सुखमय और प्रज्ञामात्रा है । यद्यपि वह श्रेष्ठ कर्मों से न तो बढ़ता है और न बुरे कर्मों से घटता है, किन्तु जो शुभ कर्म करते हैं, प्रज्ञा और प्राण रूप परमेश्वर उन्हें ऊपर के लोकों (स्वर्ग) में पहुँचाता है तथा जो बुरे कर्म करते हैं, उन्हें नीचे के लोकों (नर्क) में धकेल देता है । यह आत्मा सब लोकों का अधीश्वर, लोकपाल एवं सबका स्वामी, गुणों वाला प्राण ही आत्मा है ।

वैज्ञानिक मान्यताएँ या तीर-तुक्का ?

अनेक दिशाओं में बिखरा-फैला, ज्ञान और अनुभवों का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं विशाल है । हमारे प्राचीन पूर्वज मनीषियों ने इसीलिए इस बात पर सदा बल दिया था कि ज्ञान के प्रति हमें अपना मस्तिष्क सदा खुला रखना चाहिए ताकि हर क्षेत्र की नई से नई जानकारी होती रह सके । यह खुलापन, जागरूकता और परिश्रम ही प्रतिभा है । प्रतिभा का अर्थ है क्षमतावान मनुष्य । प्रतिभाशालियों की संख्या जितना अधिक होती है और उनमें आपसी सहयोग जितनी प्रगाढ़ होता है, ज्ञान-विज्ञान का उतना ही बहुमुखी विकास होता है । जहाँ और जब संख्या और सहयोग कम होता है, तब वहाँ संकीर्णता बढ़ती-फैलती है ।

आधुनिक वैज्ञानिक विकास-क्रम के प्राथमिक चरणों में ऐसी ही संकीर्णता का बोलबाला था । यद्यपि उसके पीछे प्रगति की सत्प्रेरणा और सदुत्साह ही था, किन्तु ज्ञानराशि से अपरिचय के कारण वह बाल-उत्साह अनेक काल्पनिक मान्यताओं को वास्तविक मान बैठा था । उस बाल-कल्पना की उड़ान कभी ठीक दिशा में हो जाती रही, तो तीर बनती रही, लक्ष्य-वेध में सफल होती रही । कभी वह यों ही तुक्का होकर रह जाती थी । गम्भीर उद्योगों प्रयासों के सत्परिणाम देखकर लोग प्रत्येक वैज्ञानिक परिकल्पना और मान्यता को ही सत्य मानने लगे । किन्तु प्रगति के साथ-साथ यह स्पष्ट होता जा रहा है कि उन परिकल्पनाओं-मान्यताओं में तथ्यों-नियमों के साथ ही पूर्वाग्रह-प्रेरित कल्पनाओं का अच्छा-खासा सम्मिश्रण है । नियम और तथ्य अपनी जगह पर हैं । उनसे सभी लाभान्वित होते और प्रगति करते हैं । मान्यताएँ भिन्न हैं । वे आपसी खींचतान का कारण बनती हैं । समझदारी का तकाजा है कि मान्यताओं को कसौटी पर कसने के लिए सदा तैयार रहा जाय, उन्हें सदा सही सिद्ध करने के मोह से मुक्त रहा जाय ।

विज्ञानवादियों की विकासवादी मान्यताएँ भी ऐसी ही हैं, जिन्हें लोग विज्ञान द्वारा प्रमाणित और पुष्ट, निर्विवाद सत्य मान बैठे हैं ।

यह माना जाने लगा है कि सृष्टि के विकास-प्रयोजन एवं कार्य-कारण की पूरी-पूरी जानकारी विज्ञान को हो चुकी है और वैज्ञानिक फॉर्मूलों द्वारा हर बात की सही-सही जाँच हो सकती है । दूध का दूध, पानी का पानी किया जा सकता है ।

विकासवाद की मान्यता है कि "सृष्टि एक निश्चित क्रम से क्रमशः विकसित हो रही है । पृथ्वी पर मानवीय सभ्यता का भी निरन्तर विकास हो रहा है । आज का मनुष्य जितना उन्नत है, सुसंस्कृत है, उतना पहले कभी नहीं था । आध्यात्मिकता, आत्मसत्ता पर विश्वास, ईश्वर भक्ति आदि पुराने पिछड़े युग की मान्यताएँ हैं जब मनुष्य को प्रकृति पर विजय प्राप्त नहीं थी और यह प्रकृति की विचित्रता से विमोहित, आतंकित, चकित और विचलित होकर इन रहस्यवादी भावनाओं की शरण में जाता था । आज के उन्नत मनुष्य को विश्व के सभी रहस्य ज्ञात होने का सूत्र प्राप्त है । उसे इन मान्यताओं से चिपटे रहने के पिछड़ेपन से पूरी तरह मुक्त होना चाहिए ।"

सर्वप्रथम तो डार्विन के विकासवादी जोड़-तोड़ की सैद्धांतिक परीक्षा ही की जा सकती है । उनके अनुसार एककोशीय जीव अमीबा प्रारम्भ में हुआ । फिर वह हाइड्रा में विकसित हुआ । उससे मछली, मेंढक, सर्पणशील पक्षी, स्तनधारी जीव आदि के श्रेणी-विकास पथ से बात बंदर तक पहुँची । वही बंदर प्रागैतिहासिक मानव के रूप में परिवर्तित हुआ । मनुष्य निरन्तर अपना विकास करता बढ़ रहा है । विकासवाद द्वारा यह नहीं बताया जा सकता कि अमीबा से ही नर-मादा दो श्रेणियाँ कैसे विकसित हुई ? उस एककोशीय जीव से दोकोशीय हाइड्रा कैसे पैदा हुआ ? क्या अन्य सब जीव भी इसी गुणोत्तर श्रेणी में रखे जा सकते हैं । सर्पणशील जीव श्रेणी-विकास के क्रम में पंखधारी बने । तब चींटे, पतंगे, मच्छर जैसे कृमि किस प्रक्रिया में पनपे ? माँसाहारी पक्षी, जल-जन्तु आदि विकसित हुए तो गाय, भैंस, बकरी, हाथी जैसे शाकाहारी प्राणी कैसे बन गए ? सहसा माँसाहार

से शाकाहार की प्रवृत्ति-परिवर्तन किस इच्छा के कारण हुआ ? फिर एक ही जीव के नर-मादा में अन्तर का कारण क्या है ? हाथी के दाँत होते हैं हथिनियों के नहीं । मुर्गे में कलंगी होती है, मुर्गियों में नहीं । मोर जैसे रंग-बिरंगे पंखों वाले की मादा मोरनी बिना पंख के क्यों ? पक्षियों की उम्र कुछ ही वर्ष होती है, सर्प और कछुओं की आयु सैकड़ों वर्ष होती है, ऐसा क्यों ? एक जीव से दूसरी किस्म का उसी से मिलता जीव इच्छा के कारण विकसित हुआ, तब एक ही विकास-श्रेणी में और एक-दूसरी से जुड़ी विकास-श्रेणी में इतनी भिन्नताएँ क्यों हैं ?

सुविधापूर्ण जीवन की इच्छा ने शरीर संस्थानों में इच्छित परिवर्तन किए, तो मनुष्य की इच्छा-शक्ति तो अत्यधिक प्रबल और विकसित है । वह पक्षियों को आकाश में उड़ते देखकर खुद ही वैसा गगनचारी होने को लालायित है । मछलियों की तरह अगाध जल-प्रवाह में निर्द्वन्द्व विचरण करने को तरस रहा है और गोते मारने का अभ्यास कर रहा है । तब भी वह इन विशेषताओं से सम्पन्न क्यों नहीं बन पा रहा ? हजार- हजार वर्षों से मनुष्य द्वारा की जा रही सामूहिक इच्छा कोई प्रभाव नहीं दिखा रही ?

शायद विकासवादी कह दें कि वह ऐसी इच्छाओं में उतना समय और शक्ति नहीं लगाता । अपितु औद्योगिक-वैज्ञानिक विकास में प्रवृत्त है—और इन क्षेत्रों में निरन्तर अभूतपूर्व प्रगति कर रहा है । परन्तु नित नए ऐतिहासिक-पुरातात्विक तथ्य सामने आकर उनका यह दावा भी खंडित कर रहे हैं । यह स्पष्ट होता जा रहा है कि प्राचीन काल का मनुष्य पिछड़ा होने के स्थान पर बौद्धिक सामर्थ्य, विज्ञान, तकनीक, उद्योग, वाणिज्य, नभ संचरण, स्थापत्य, वास्तुकला और अध्यात्म सभी में इतना विकसित था कि वहाँ तक पहुँचने में आधुनिक विज्ञान को शताब्दियाँ लग सकती हैं ।

अन्तरिक्ष-अभियान को विज्ञान की रोमांचकारी प्रगति बताया जाता है । किन्तु 'भारद्वाज संहिता' के वैज्ञानिक प्रकरण में विमान की विकसित तकनीक का वर्णन है, जो पुष्पक विमान समेत अतीत के विभिन्न विमानों की वास्तविकता पर प्रकाश डालता है ।

दमिश्क की 'टेरेस ऑफ बाल बैक' कभी आधुनिक 'एरोड्रम' से अधिक सुरक्षित अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा था, ऐसा विचार रूसी विद्वान अगरेस्ट ने व्यक्त किया है । यहाँ पहाड़ी छत पर एक सुन्दर 'प्लेट फार्म' बना है, इसमें २ हजार टन तक के वजन वाले ६५-६५ फुट लम्बे पत्थर प्रयुक्त हुए हैं । टिहानको की १३ हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित पहाड़ी छत भी पुराना अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा होने का अनुमान है । यह सुमेरियन सभ्यता का विकसित शहर था । ४७८४ वर्ग फुट क्षेत्र को समतल बनाकर विमान तल इसका निर्माण किया गया था । इस समतल में एक सूत भी ऊँचाई-निचाई का अन्तर नहीं है । टिहानको नगर का पर्यावरणीय दबाव समुद्र तल से आधा है '। वहाँ वायु में ऑक्सीजन बहुत कम रही होगी तब शहर कैसे बना ?

अन्तरिक्ष-अभियान में नक्षत्रीय गणना और वेधशालाएँ आवश्यक हैं । चिली से छत्तीस सौ किलो मीटर दूर स्थित ईस्टर द्वीप 'ह्यूमन वर्ड आइसलैण्ड' (मानव पक्षी द्वीप) के नाम से प्रसिद्ध है । यह मय-सभ्यता का केन्द्र था । टिहानको से यह द्वीप ५ हजार किलोमीटर दूर है, तो भी यहाँ उपलब्ध साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि इन दोनों केन्द्रों में पारस्परिक सम्पर्क था । इस द्वीप में उन दिनों एक अति विकसित वेधशाला थी । वहाँ ज्वालामुखी की चट्टानों को काट-काट कर ३३ से ६६ फुट तक की ऊँचाइयों वाली और ४० से ५० टन तक भार वाली विशाल पाषाण-प्रतिमाएँ गोलाकार में खड़ी हैं । इनके खूबसूरती से तराशे अंग-प्रत्यंग उनके सजीव होने का भ्रम पैदा कर देते हैं, मानो वे बस बोलने ही वाली हैं । यहाँ लकड़ी की पट्टियों में नक्षत्र गणना के विचित्र संकेत मिले हैं । अनुमान है कि इन आकृतियों की छाया से गणितीय सूत्रों के हल और नक्षत्रमण्डल की नाप जोख का काम होता रहा है । इस द्वीप के निवासी विद्या के उस स्रोत से विच्छिन्न हो जाने पर भी अभी तक यह बताने में समर्थ होते हैं कि प्रकृति का अमुक परिवर्तन, भूकम्प वर्षा, समुद्री तूफान आदि का परिचायक है । नक्षत्रों और चन्द्रमा आदि ग्रहों की भी उन्हें बहुत बारीकी से जानकारी है ।

मय-सभ्यता के समय के कैलेण्डर प्राप्त हुए हैं, जो आगामी ४ हजार लाख वर्ष तक सूर्य-चन्द्र ग्रहण की प्रतिवर्ष की घोषणाएँ करने में सक्षम हैं और इतने वर्षों तक पंचांग का काम करते रहेंगे । इन कैलेण्डरों में पृथ्वी का वर्ष ३६५·२४२० दिनों का बताया गया है । आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से निकाली गई अवधि ३६५·२४२२ दिन की है । अभी भी यह नहीं कहा जा सकता कि मय-कैलेण्डर में जो ·०००२ का अन्तर है, वह गलत ही है । हो सकता है, आज के वैज्ञानिकों की गणना में ही अभी कुछ कमी हो । इन कैलेण्डरों द्वारा किसी स्थान पर पड़ने वाले विशेष नक्षत्रीय विकिरण तक जाने जा सकते थे । उसी आधार पर दुर्गों, प्रासादों, नगरों और नक्षत्र-वेधशालाओं का निर्माण होता था । 'इन्का' सभ्यता में भी मय-कैलेण्डरों का ही आधार लिया जाता था ।

वैबीलोनिया में कुछ पट्टियों में चन्द्र ग्रहणों की तिथियाँ अंकित हैं, जो आज भी सच निकलती हैं । चींचा की वेधशाला की सीढ़ियाँ, छत, गुम्बद सब इस प्रकार बनाए गए थे कि वे गणितीय समीकरणों और नक्षत्रीय गवेषणाओं में सहायक थे । ब्रेसिया (इटली) की गुफाओं की भित्तियों में अन्तरिक्ष यात्रियों की वेश-भूषा से सज्जित आकृतियाँ हैं ।

विस्तृत भौगोलिक ज्ञान भी पूर्वजों को था । ईसा पूर्व १८वीं शताब्दी यानी ३८ सौ वर्ष पहले का एक एटलस तुर्की के टापाकापी राजप्रासाद में मिला है । इसमें अमेरिका के पठार समेत विभिन्न महाद्वीपों के पर्वत-शिखर और पठार, नदियाँ, समुद्र, द्वीप, भूमध्य रेखीय राज्य, दक्षिणी ध्रुव आदि को दिखाया गया है । आधुनिक सभ्यता के इतिहास में सन् १९५२ में पहली बार दक्षिणी ध्रुव का सर्वेक्षण सम्भव हो सका, उनके पूर्व तक इतनी वैज्ञानिक सामर्थ्य नहीं थी । 'ईको साउण्ड' यन्त्रों द्वारा ही यह सर्वेक्षण सम्भव हो सका । क्योंकि जहाजों का वहाँ पहुँच सकना सम्भव नहीं था । तब इतने वर्षों पूर्व दक्षिणी ध्रुव का वैसा ही भौगोलिक स्वरूप कैसे दर्शाया जा सका, जो १९५२ के सर्वेक्षण के ही अनुसार है ।

आधुनिक इन्जीनियरी अति विकसित मानी जाती है, किन्तु काहिरा और अलेक्जेन्ड्रिया के मध्य बने विशाल पिरामिड कुछ और ही तथ्य प्रकट करते हैं । 'च्योप्स के पिरामिड' आधुनिक आभियान्त्रिकी एवं स्थापत्य को चुनौती देते हैं । ये पिरामिड उस स्थान पर बने हैं जो गुरुत्वाकर्षण शक्ति के मध्य में हैं । इसका

अर्थ है कि उस समय के लोगों को चुम्बकीय बलों और नक्षत्रीय विकिरणों की जानकारी थी । यहाँ से महाद्वीपों और समुद्रों को बराबर के दो भागों में बाँटा जा सकता है । ऐसा पृथ्वी का मध्यवर्ती यह स्थान है । बिना अति विकसित यन्त्रों के यह गणना सम्भव नहीं थी ।

पत्थर के २६ लाख आकर्षक डिजाइन इन पिरामिडों में पाये गए हैं । दो पत्थरों के बीच एक सेण्टीमीटर के पाँच सौवें भाग के करीब ही झिरी है । यानि लगभग बिल्कुल नहीं, अदृश्य सी एक-एक पत्थर का ब्लॉक १२ टन भार वाला है । गैलरी सुन्दर रंगों से रंगी-पुती हैं । पिरामिडों की सुरंगें पचीसों मीटर लम्बी हैं । वे भी सुन्दर ढंग से रंगी-पुती हैं । मशालें वहाँ ले जाई जा नहीं सकती थी अन्यथा श्रमिकों का दम कार्बन डाइऑक्साइड से घुट जाता । दीवारें काली हो जातीं । विकासवादी प्रतिपादन सत्य है तो उस समय टार्च और बिजली की जानकारी थी नहीं । भीतर प्रकाश की क्या कैसे व्यवस्था हुई ? पत्थरों की ऐसी शानदार कटाई कैसे हुई ?

विकासवाद के अनुसार सन् १६०० के आस-पास आदमी ने पहली बार बैलगाड़ी और घोड़ा-गाड़ी का प्रयोग किया । डायनामाइट का तो कहीं नामोनिशान था नहीं ? ये १२-१५ टन के पत्थर कैसे खदानों से निकाले गए, किस साधन से ढोये गए । इस विशाल मात्रा में कैसे ऊपर चढ़ाए गए । ये पिरामिड एक ही निर्माता 'फराह खूफ' द्वारा बनाए गए, यानी सौ-पचास वर्ष नहीं, कम ही समय लगा होगा । टनों वजनी २६ लाख पत्थर इतने कम समय में कैसे चढ़ाये और बिठाये गए ? यदि रोलर्स से ढोये गए तो रोलर्स बने कैसे ? उस रेगिस्तानी इलाके में तो बस ताड़ के पेड़ हैं । वही भोजन का आधार हैं । उन्हें इतनी तादाद में क्यों काटेंगे ? क्या अपना पेट काटकर कोई इमारतें बनवाता है ? यदि रोलर्स बाहर से मँगवाए गए तो क्या समुद्री मार्ग से जलयानों द्वारा मंगवाए गए ?

मैक्सिको की राजधानी से ६० मील दक्षिण चोसला में भी ऐसे ही विशाल खंडहर मिले हैं । ग्वाटेमाला के जंगलों में तूतमखान के भव्य पिरामिड नक्षत्रों की गणना के आधार पर बनाए गए हैं ।

लीमा के दक्षिण पिस्को की खाड़ी में ८२० फुट ऊँची सीधी चट्टानों की लाल दीवार है, जो २० किलोमीटर दूर से देखी जा सकती है । इस दीवार पर मनोरम चित्रकारी की गई है ।

पेरू की पल्पाघाटी में ३७ मील लम्बा तथा १ मील चौड़ा विस्तृत क्षेत्र पत्थरों के सुडौल टुकड़ों से भरा पड़ा है । ये पत्थर जंग लगे लोहे जैसे लगते हैं ।

मिश्र-सभ्यता, मय-सभ्यता और इन्का-सभ्यता के खंडहर इस तथ्य के प्रमाण हैं कि उस समय अत्याधुनिक किस्म के नगर बसते थे । मन्दिर, मूर्तियाँ, सड़कें, जल-मल निष्कासन की नालियाँ, स्टेडियम आदि परिष्कृत ढंग से बनाए जाते थे । भाषा, गणित, इतिहास, विज्ञान, दर्शन, अध्यात्म, संगीत की शोध होती थी और ग्रन्थ रचे जाते थे । तिहानको नगर में भवनों हेतु १००-१०० टन पत्थरों का प्रयोग किया गया दिखता है । ६ फीट लम्बे और डेढ़ फुट चौड़े पत्थरों से बनी सुन्दर सुघड़ नालियाँ हैं, जो आज की कंक्रीट नालियों से भी अच्छी हैं । एक ४ मंजिला इमारत के बराबर ऊँचा भवन है, जो २० हजार टन का एक ही स्टोन-ब्लॉक है और उल्टा खड़ा किया लगता है । इस भवन से ८०० मीटर दूरी पर पत्थरों को पिघलाकर एक प्रकोष्ठ बनाया गया है । पत्थर अत्युच्च ताप-ऊर्जा से ही पिघल सकते हैं ? इसे पैदा करने की विधि उन्हें कैसे ज्ञात थी ?

तात्पर्य यही है कि विकासवाद की स्थापना के विरोध में इतने सारे प्रमाण मिलते हैं कि इसकी धज्जियाँ उड़ती हैं । यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वज जीवन के सभी क्षेत्रों में हम से अधिक विकसित थे । हाँ, अनास्था में जरूर पिछड़े थे । सम्भवतः किसी भयंकर युद्ध में या जल-प्रलय, हिम-प्रलय, भूस्खलन आदि की चपेट में वे संस्कृतियाँ और उनका इतिहास नष्ट-भ्रष्ट अवश्य हो गया है, पर बचे अवशेष भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि वे अति समर्थ पूर्व पुरुष आध्यात्मिक सिद्धान्तों का दैनन्दिन जीवन में परिपालन करते थे । उनकी आध्यात्मिक क्षमताएँ अति विकसित थीं । इस पर भी आत्म विज्ञान को रूढ़िवादी कहना और पदार्थ विज्ञान के वर्तमान विकास को मानवीय इतिहास के अभूतपूर्व बताना, तथ्यों से आँखें चुराना और वैज्ञानिक प्रतिपादन के नाम पर यों ही तीर-तुक्का चलाना है । साक्ष्यों और अनुभवों का तकाजा है कि इस तरह के पूर्वाग्रहों से मुक्त हुआ जाय और अपने दृष्टिकोण में पूर्वजों द्वारा निर्दिष्ट आध्यात्मिकता का समावेश किया जाय, तभी जीवन में आनन्द-उल्लास का नव-संचार हो सकेगा ।

हम अकेले नहीं हैं

रूस के सुप्रसिद्ध खगोल-विशारद आई. एस. श्क्लोव्स्की ने 'इण्टेलीजेण्ट लाइफ इन दि यूनिवर्स' नामक पुस्तक न लिखी होती तो भारतीय तत्व दर्शन का परलोकवाद सिद्धान्त पूरी तरह धूल धूसरित हो गया होता । अनेक तर्कों और वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर यह लिखा है कि—"हमारी आकाशगंगा क्षेत्र में, जिसमें कि अपना समस्त सौर-मण्डल भी आता है, लगभग १० लाख ऐसे ग्रह हैं जहाँ कि धरती के समान ही बुद्धिमान और सभ्य लोग निवास करते हैं । इनमें से कई लोक तो इतने सुन्दर हैं कि उनकी तुलना स्वर्ग से की जा सकती है ।"

जीवात्मा के अन्य लोकों में गमन की बात को अन्धविश्वास माना जाय तो विज्ञान की उक्त धारणा को भी अज्ञानग्रस्त काल्पनिक उड़ान ही कहा जायेगा, क्योंकि ब्रह्माण्ड कितना अनन्त और असीम है उसकी कुछ यथार्थ जानकारी अभी तक भी पूर्ण सत्य नहीं मिल पायी । हम जिस सौर-मण्डल में रहते हैं वह 'स्पाइल' नामक आकाशगंगा से प्रकाश पाता है और इस आकाशगंगा की चौड़ाई १००००० (एक लाख) प्रकाशवर्ष है । एक प्रकाशवर्ष अनुमानतः ६००००००००००००००००० मील की दूरी को कहते हैं । तात्पर्य यह है कि समस्त आकाशगंगा वाले ब्रह्माण्ड की दूरी इससे भी १ लाख गुना अर्थात् ६०००००००००००००००००००००० मील की है । श्री श्क्लोव्स्की के अनुसार इस दूरी में बसे बौद्धिक शक्ति वाले लोगों वाले उन ग्रहों की परस्पर दूरी ३०० प्रकाशवर्ष अर्थात् १८००००००००००००००००-००० मील की दूरी पर है ।

विज्ञान के महारथी अल्बर्ट आइन्स्टीन का मत है कि संसार में अधिकतम वेग वाला विमान प्रकाश की गति वाला हो सकता है । इससे अधिक तीव्र गति भौतिक जगत में सम्भव नहीं है,

अतएव कितना भी कोई प्रयत्न करे बुद्धि सम्पदा वाले प्राणियों से सम्बद्ध इन ग्रहों में आवागमन सम्भव नहीं हो सकता । हमारे सबसे समीप का तारा 'प्राक्सिम सेण्टारी' है । यद्यपि वह एक वीरान क्षेत्र है तथापि यदि वहीं जाया जाय तो एकबार की यात्रा से ४ वर्ष ४ महीने लगेंगे । इतनी लम्बी यात्रा की थकान इतनी भयंकर होगी कि व्यक्ति लगभग अर्द्धमृत हो जायेगा ।

भौतिक दृष्टि से सभ्यता वाले सितारों की यात्राएँ असम्भव हैं । किन्तु जब हम 'मन' नामक शक्ति की कल्पना करते हैं और उसकी गति का अनुमान करते हैं तब पता चलता है कि नियन्त्रित मन तो एक सेकण्ड में हजारों प्रकाशवर्ष की सीमाओं को पार कर सकता है । एक सेकण्ड में जितनी कल्पनाएँ हो सकती हैं, उतनी बड़ी से बड़ी दूरियाँ मन पार कर सकने में समर्थ है । इस मानसिक चेतना को कहीं ठहरा दिया जाय तो भौतिक दृष्टि से अदृश्य होने पर भी विद्युत् चुम्बकीय स्पन्दनों की भाँति उससे किसी भी अज्ञात स्थान की जानकारी ली जा सकती है । ब्रह्माण्ड के ज्ञान का और आत्माओं के परलोक गमन का आधार यह मन ही है । जब उस सूक्ष्मता में चित्तवृत्तियों का निरोध किया जाता है तो सारा ब्रह्माण्ड भ्रू-मध्य में उतर आया दीखता है । तब योगी चाहे, तो किसी मन चाहे ग्रह में प्रवेश कर उसके आत्म-रूप हो सकता है, स्वर्ग अथवा मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है ।

इस ब्रह्माण्ड में अनेकों जीवन युक्त ग्रहपिण्ड

अन्तरिक्ष यान अपोलो—११, २ लाख ९६ हजार किलोमीटर अर्थात् १ लाख ६० हजार अन्तरिक्षीय मील दूर स्पेस में था । ह्यूस्टन के मिशन कण्ट्रोल में अपोलो-११ से अनेकों जीवों के एक साथ हुँकार भरने एवं विचित्र स्वर में हँसने की आवाज सुनाई पड़ी । कण्ट्रोल अधिकारी ने चन्द्र यात्रियों से सम्पर्क साधा तथा इस डरावनी आवाज के विषय में पूछा । अन्तरिक्षीय यान में मौजूद नील आर्मस्ट्रांग, एडविन एल्ड्रिन तथा माइकेल कालिन ने भी उक्त आवाज को सुना और उत्तर दिया कि उन्हें ऐसा लग रहा है कि यान के आस-पास कुछ जीव मंडरा रहे हैं । वे अदृश्य हैं, किन्तु उनकी उपस्थिति का आभास मिल रहा है ।

बहुत दिनों तक यह घटना चर्चा का विषय बनी रही किन्तु विचित्र आवाज का कारण न जाना जा सका । क्या पृथ्वी से परे भी जीवन का अस्तित्व है ? यदि है, तो कैसा है ? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक क्षेत्र में खोजबीन चल रही है, जो प्रमाण मिल रहे हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्यान्य ग्रहों पर जीवन है । सम्भव है अन्य ग्रहों पर रहने वाले जीवों का स्वरूप पृथ्वी जैसा न हो । वे अदृश्य प्राणी भी हो सकते हैं । चन्द्र यात्रा के बीच सुनाई पड़ने वाली विचित्र ध्वनि उन अदृश्य जीवों की हो सकती है ।

सन् १९७१ में पृथ्वीत्तर जीवन की खोज के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी बनायी गई जिसकी बैठक रूस के आर्मीनिया प्रदेश में हुई । अनेकों वैज्ञानिकों ने यह सम्भावना व्यक्त की कि अन्य ग्रहों पर भी जीवन है । सन् १९६९ में आस्ट्रेलिया में गिरी एक उल्का के विश्लेषण-परीक्षण से ज्ञात हुआ कि उनमें पाँच अमीनो-एसिड् ऐसे हैं—जो पृथ्वी पर जीवित प्राणियों में पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त ११ प्रकार के अन्य अमीनो एसिड और भी हैं जो पृथ्वी पर कुछ ही जीवित प्राणियों में विशेष रूप से पाये जाते हैं । ये अमीनो एसिड वाम-हस्त एवं दक्षिण-हस्त दोनों प्रकार के थे । जबकि पृथ्वी पर मात्र वाम-हस्त अमीनो एसिड ही पाये जाते हैं । वैज्ञानिकों ने अमीनो एसिड की इस विकसित स्थिति के आधार पर घोषणा की कि जिन ग्रहों-उपग्रहों से उल्का पिण्ड टूट कर गिरा, वहाँ पृथ्वी से भी अधिक विकसित एवं बुद्धिमान प्राणियों के होने की सम्भावना है । १९५३ में अमेरिका के भौतिकविद् श्री मिलर ने जीवन के उद्गम की सम्भावना के लिए गैसों में विद्युत विसर्जन का प्रयोग किया जिससे अमीनो एसिड, प्रोटीन तथा एल्डीहाइड और अन्त में न्यूकिलक एसिड बना, जो पृथ्वी पर के जीवन रहस्य को अपने अन्दर छिपाये हुए है । उन्होंने अपनी खोज के उपरान्त कहा कि पृथ्वी पर गिरने वाली उल्काओं में पानी, हाइड्रोजन, सायनाइड, फॉरमैल्डीहाइड आदि गैलेक्सी के सघन धूर-पेटिकाओं में मिले हैं । यह इस बात का परिचायक है कि अन्य ग्रहों में भी जीवों के होने की सम्भावना है ।

अमेरिका के जीव विज्ञानी डॉ. कार्ल सौगन का कहना है कि अन्य ग्रहों एवं नक्षत्रों में वैसी ही रासायनिक एवं भूगर्भीय प्रक्रियाएँ चल रही हैं, जैसी कि पृथ्वी पर जीवन के उद्गम के समय चली थीं । उनका कहना है कि ब्रह्माण्ड में प्राणियों का अस्तित्व एक नहीं अनेकों स्थानों पर है क्योंकि जीवन के अनुकूल परिस्थितियाँ ब्रह्माण्ड में कई स्थानों में विद्यमान हैं । सी. एस. लेविस अपनी पुस्तक 'ऑउट ऑफ दी सायलेण्ट प्लेनेट' में लिखते हैं कि पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य लोकों में भी मनुष्य से मिलते-जुलते प्राणी रहते हैं । सन् १९५० में डॉ. फ्रेंड ड्रेक ने 'ताउसेटी और एप्सिलोन' नामक सूर्य तारों से प्राप्त तरंगों का पता एक शक्तिशाली रेडियो-दूरबीन द्वारा लगाया । १९७५ से ही डॉ. कार्ल सैगन एवं डॉ. ड्रेक प्यूरिटोरिको के एरिक्वो नामक स्थान में स्थापित विशाल रेडियो दूरबीन से पृथ्वीत्तर जीवों के सन्देश सुनने का प्रयास कर रहे हैं । रूस और ब्रिटेन में भी इस प्रकार के प्रयास चल रहे हैं । अमेरिका में तो पृथ्वीत्तर प्राणियों की खोज के लिए वैज्ञानिकों ने सेटी (सर्च फॉर एक्स्ट्रा टैरेस्ट्रियल इण्टेलिजेन्स) नामक योजना बनाई है, जिसके अनुसार अन्य लोकों के प्राणियों से सम्पर्क जोड़ने का प्रयास चल रहा है ।

गत वर्ष अमेरिका में ही एक गोष्ठी खगोलशास्त्रियों की हुई । इसमें बताया गया कि शनि के उपग्रह टाइटन में वायुमण्डल का दबाव पृथ्वी जैसा ही है । शनि के वायुमण्डल में एथेन गैस प्रचुर मात्रा में है । 'बेस्तर' नामक ताराखण्ड में हाइड्रो कार्बन है । वृहस्पति के वायुमण्डल में पानी की भाप विद्यमान है जो इस बात की ओर संकेत करती है कि इन पर यदि जीवन हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

यह तो वातावरण के आधार पर निकले वैज्ञानिक निष्कर्षों की बात हुई । समय-समय पर दिखाई पड़ने वाली उड़नतश्तरियों के प्रमाण भी उस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अन्य ग्रहों पर न केवल जीवों का निवास है वरन् सभ्यता की दृष्टि से वे कहीं मनुष्य से भी अधिक विकसित हैं । १९७३ में ट्यूपेलो क्लीवलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका के एक मजिस्ट्रेट तथा चार वन-विभाग के रेंजरों ने तश्तरीनुमा आकृति को देखा जो आकार में दो कमरे

वाले मकान के बराबर थी । उक्त यान से लाल, पीली एवं हरी रोशनी निकल रही थी । इसके ठीक दो सप्ताह बाद इसी नगर के ८० किलोमीटर दक्षिण में एक सैनिक हेलीकॉप्टर एक गुम्बदादार धातु से बने सिगार के आकार के यान से टकराते-टकराते बचा । यान चालक कप्तान क्वायन का कहना था कि उसका हेलीकॉप्टर उस विचित्र यान के निकट आते ही अपने आप उसके साथ ६०० मीटर ऊँचाई तक उठता गया । कण्ट्रोलिंग कक्ष का हेलीकॉप्टर पर नियन्त्रण न रहा । ६०० मीटर ऊँचे उठने के बाद उसका हेलीकॉप्टर एक झटके के साथ दूर धकेल दिया गया । बड़ी कठिनाई से नियन्त्रण हो सका । कप्तान 'क्वायन' का कहना था कि वह विलक्षण यान कुछ ही क्षणों में जाने कहाँ लुप्त हो गया ।

कोरिया युद्ध के समय वहाँ के एक सैनिक एवं उसके साथी ने हल्की नीली रोशनी फेंकने वाले, आकाश में पृथ्वी के अत्यन्त निकट एक विचित्र यान को मंडराते हुए देखा । उस यान से तीन साँवले से जीव उतरे । जिनकी लम्बाई लगभग ४ फीट रही होगी । यान से वे उसी प्रकार उतरे जैसे चिड़ियाएँ पृथ्वी पर उतरती हैं । उन दोनों सैनिकों में से एक तो बेहोश हो गया । दूसरे ने जो वर्णन किया वह विस्मित कर देने वाला था । दूसरे व्यक्ति ने बताया कि उसे विचित्र जीव यान में खींच ले गए । ऐसा अनुभव हो रहा था ! मानो कोई शक्तिशाली चुम्बक यान को भीतर खींचे ले जा रही हो । यान के भीतर इलेक्ट्रॉनिक आँख जैसे यन्त्र द्वारा उसके प्रत्येक अंग का परीक्षण किया गया । परीक्षण की अवधि में वह बेहोश हो गया । होश आने पर उसने अपने को भूमि पर पड़ा पाया । यान का कहीं नामोनिशान नहीं था । वहाँ पर विद्यमान रेडियो धर्मिता को यह अवश्य संकेत मिलता था कि कोई ऐसी घटना यहाँ घटी है । उसका सैनिक कई दिनों तक भयभीत बना रहा । वैज्ञानिकों ने उसके शरीर का परीक्षण किया किन्तु सभी अवयव ठीक प्रकार काम कर रहे थे ।

इस प्रकार की घटनाएँ विश्व के अनेकों स्थानों पर घटित हो चुकी हैं किन्तु अब तक यह ज्ञात न हो सका कि उड़नतश्तरियों जैसे यान अचानक कहाँ से आते हैं और देखते-देखते कहाँ लुप्त हो जाते हैं । यह अभी मानव मस्तिष्क के लिए रहस्य ही बना हुआ है । आधुनिकतम यन्त्रों से सुसज्जित इन यानों की संरचना तथा अचानक प्रकट होकर इनके गायब हो जाने की प्रक्रिया, इस बात की परिचायक है कि वे किन्हीं ऐसे ग्रहों से आते हैं जहाँ की भौतिक सभ्यता पृथ्वी की तुलना में कहीं अधिक विकसित है । ग्रह- नक्षत्र कौन से हैं तथा वहाँ के प्राणी कैसे हैं, यह रहस्य तो अभी अविज्ञात है किन्तु यह तथ्य तो एक मत से स्वीकार किया जा रहा है कि अन्यान्य ग्रहों पर जीवन है । सम्भव है प्रगति के आगामी सोपानों में उनसे परस्पर सम्पर्क का, ज्ञान के आदान-प्रदान का, क्रम बन जाय ।

अन्य लोकों में भी जीवन है

हमारी आकाशगंगा में प्रायः एक करोड़ नक्षत्र हैं । ऐसी अगणित आकाशगंगाएँ विराट् ब्रह्माण्ड में हैं । प्रत्येक आकाशगंगा में प्रायः इतने ही नक्षत्रों की सम्भावना है जितनी कि अपनी आकाशगंगा में । इतने ग्रह-नक्षत्रों को सर्वथा निर्जीव नहीं माना जा सकता । अनुमान है कि समूचे ब्रह्माण्ड में प्रायः एक हजार तो ऐसे नक्षत्र होने चाहिए जैसे कि पृथ्वी की विकसित सभ्यता है । उनमें से कितने ही अविकसित स्तर के प्राणी हो सकते हैं पर कितनों में ही मनुष्य की तुलना में अधिक बुद्धिमान प्राणी हो सकते हैं ।

दक्षिण अमेरिका के सेरो डिपास्को क्षेत्र के प्यूरियोरिकन कस्बे में एक शक्तिशाली रेडियो दूरबीन लगाई गई है, जिसका व्यास एक हजार फुट है । इसके शक्तिशाली लेन्सों द्वारा देखे जाने पर ब्रह्माण्ड की स्थिति सम्बन्धी बहुत कुछ जानकारियाँ मिलती हैं । मिली सूचनाओं में से एक यह भी है कि सम्भवतः मनुष्य की तुलना में कहीं अधिक बुद्धिमान प्राणी अन्य लोकों में विद्यमान हैं । इतना ही नहीं, वे अन्य ग्रहवासी बुद्धिमानों के साथ अपने सम्बन्ध बनाने के लिए, उनकी जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए, निरन्तर अपने विकसित साधनों के सहारे प्रयत्न करते रहते हैं ।

सुप्रसिद्ध खगोलशास्त्री कार्ल एडवर्ड सैगन ने खगोल विज्ञान सम्बन्धी नहीं शोधें की हैं और इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्ड में अन्यत्र भी जीवन है और वह मनुष्य से कहीं अधिक बुद्धिमान तथा साधन सम्पन्न है ।

कहा जाता है कि अन्य ग्रहों में भी पृथ्वी जैसी परिस्थितियाँ न होने से वहाँ विकसित स्तर का जीवन होने में सन्देह है । इस सन्देह का निवारण शिकागो विश्वविद्यालय के विज्ञानी स्टेनले मिलर ने अपनी प्रयोगशाला में अन्यान्य परिस्थितियों में जीवन को विकसित करके दिखाया है । रूस के वैज्ञानिक इयोशेफ्लेवलीवस्की ने अपने ग्रन्थ 'द इण्टेलिजेण्ट लाइफ इन द यूनिवर्स' में इस तथ्य की पुष्टि की है कि अकेले पृथ्वी पर ही बुद्धिमान प्राणी नहीं रहते ।

अमेरिकन एसोशिएसन फॉर द एडवान्समेण्ट ऑफ साइंसेज (ए. ए. ए. एस.) नामक संस्था ने उड़नतश्तरियों के सम्बन्ध में अपना अभिमत 'साइन्स' पत्रिका में व्यक्त किया है कि वे दृष्टिभ्रम अथवा प्रकृति प्रवाह का मायाजाल नहीं हैं । इनमें से अनेकों में जीवनधारी प्राणियों और खोजी उपकरणों का प्रमाण पाया गया है । अमेरीका की यू. एफ. ओ. एसोशिएन तो बाकायदा ऐसे कई प्रामाणिक तथ्यों का संकलन कर चुकी है ।

कहा जाता है कि शीत या ताप की अधिकता में जीवन विकसित नहीं हो सकता किन्तु पाया गया है- कि १६० डिग्री फा. तक के उबलते हुए तापमान में भी जीवन अपना अस्तित्व बनाये रखता है । साथ ही शून्य से १०० डिग्री फा. कम वाली ठण्डक में भी वे हो सकते हैं । उनकी शारीरिक संरचना ऐसी होती है कि असह्य शीत या ताप के मध्य भी अपना क्रिया-कलाप जारी रख सकते हैं ।

सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में भी जो नवीनतम खोजें हुई हैं, उनसे सिद्ध होता है कि उनमें भी विकसित जीवन रहा है और वह सिकुड़े हुए रूप में अभी भी स्वाभाविक स्थिति में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं । जीवन तत्व (प्रोटोप्लाज्म) अन्तरिक्ष की घातक किरणों से केवल मूर्छित होता है, नष्ट नहीं । पानी को जीवन का आधार माना गया है । वह ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के सम्मिश्रण से बनता है, किन्तु उसके दूसरे विकल्प भी हैं । पृथ्वी के आरम्भिक काल में जब जीवन का प्रादुर्भाव हो रहा था, तब यहाँ के वायुमण्डल में हाइड्रोजन, अमोनिया, मीथेन

आदि गैसीय तत्वों का बाहुल्य था । पानी इस रूप में नहीं था । पानी की आवश्यकता अमोनिया से भी पूरी होती रह सकती है, ऐसा ब्रह्माण्ड वैज्ञानिकों का मत है ।

चन्द्रमा, मंगल और शुक्र पृथ्वी के निकटतम पड़ौसी हैं । इनके बीच कितनी ही तरंगों का आदान-प्रदान चलता रहता है । इस आधार पर अभी भी वैज्ञानिक क्षेत्र की यह मान्यता है कि इन ग्रहों से पृथ्वी पर या पृथ्वी से इन ग्रहों पर भी जीवन तत्व का आदान-प्रदान होता रहता होगा । इससे निष्कर्ष निकलता है कि वहाँ किसी न किसी प्रकार का ऐसा जीवन होगा जो अपने क्षेत्र में न पायी जाने वाली सामग्री को एक-दूसरे के अनुदानों के सहारे उपलब्ध करता होगा ।

सेविलें (स्पेन) में सम्पन्न हुए जीव विज्ञान के २४वें अन्तरिक्षीय सम्मेलन (कॉस्मो बायोलॉजिस्टर कॉन्फ्रेन्स) में विश्व के प्रमुख वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को मान्यता प्रदान की कि ब्रह्माण्ड में विकसित स्तर का जीवन मौजूद है । उसके साथ सम्पर्क बढ़ाकर हमें अपने ज्ञान एवं सुविधा साधनों की अभिवृद्धि करनी चाहिए ।

मेरी लैण्ड यूनिवर्सिटी (यू. एस. ए.) के विकास विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ. सिरिल पेरुमान ने कहा कि परिस्थितियाँ जीवन को सीमित नहीं कर सकतीं । जीवन तत्व की यह विशेषता है कि वह हर प्रकार की परिस्थितियों में अपने आपको ढाल लेता है और अपनी सत्ता को परिस्थितियों के अनुरूप ढाँचे में ढालकर अपनी सत्ता बनाये रह सकता है ।

इस मान्यता को यू. सी. एल. ए. के मैलकिन कालनन शिकागो, यूनिवर्सिटी के डॉ. हैराल्ड पूरे, मियामी यूनिवर्सिटी के सिडनी फाक्स आदि ने अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया है । एल्डुअस हक्सले ने अपने ग्रन्थ 'दि ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में यह अनुमान लगाया है कि किस ग्रह की कैसी परिस्थितियों में वहाँ किस प्रकार के किस आकृति-प्रकृति के जीवधारी हो सकते हैं और वे किस प्रकार प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना कर सकते हैं ।

पृथ्वी पर उल्कापात का सिलसिला बराबर चलता रहता है । जैसाकि सभी जानते हैं, आयन मण्डल रूपी छत्र के कारण कुछ तो वायुमण्डल में प्रवेश करते ही जल जाती हैं लेकिन कुछ कभी-कभी जमीन तक आ पहुँचती हैं । ऐसे कितने ही खण्ड अभी तक पाये गए हैं, उनसे पता चलता है कि उल्का क्षेत्र में खनिजों, गैसों तथा रसायनों का ऐसा बाहुल्य है, जिनमें किसी न किसी प्रकार के जीवन का उद्भव हो सकता है । जीवन विकास के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर अन्य लोकों में जीवन विकास की पूरी-पूरी गुंजाइश है ।

आज तो हम मनुष्य-मनुष्य के बीच सद्भाव-सहकार का क्रम तक चलता रहता नहीं देखा जाता । मनुष्यों और पालतू पशुओं के बीच तक वह तारतम्य नहीं बना है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि समानता और एकता के सिद्धान्तों का निर्वाह बन पड़ा है । एक-दूसरे शोषण की आपाधापी ही इन दिनों चल रही है किन्तु वह दिन दूर नहीं कि प्रस्तुत अनगढ़पन का अन्त होगा और स्नेह, सहयोग के सहारे न्यायोचित निर्वाह का क्रम चल पड़ेगा । नवयुग की यही विशेषता होगी कि पदार्थों को ही सब कुछ न मानकर आदर्शों को व्यवहार में उतारा जायेगा ।

इससे भी एक कदम आगे बढ़कर सच्चे विज्ञान की प्रगति हमें यह भी सिखायेगी कि ग्रह-नक्षत्रों के बीच भी जीवधारी आदान-प्रदान की शैली अपनाएँ और अपनी उपलब्धियों से अन्य लोकवासियों को उसी प्रकार का लाभ पहुँचाएँ जैसा कि जीवात्मा की गरिमा के अनुरूप पहुँचाया जाना चाहिए ।

ग्रह-नक्षत्र में जीवन का अस्तित्व

पृथ्वी से अनेक उपग्रह आकाश स्थिति ग्रहों के वातावरण और वहाँ की प्राकृतिक परिस्थितियों के अध्ययन के लिए भेजे जाते हैं । यह उपग्रह वहाँ जो कुछ देखते और अनुभव करते हैं, उन्हें रेडीय टेलीमेट्री से पृथ्वी पर भेजते हैं । सन्देश संचार की क्रिया दो प्रकार से होती है, एक तो यह कि उपग्रह कोई संकेत ग्रहण करने के साथ ही उसे पृथ्वी की ओर प्रेषित कर देता है । पृथ्वी के रिसीविंग स्टेशन (ग्रहण-केन्द्र) उन्हें ग्रहण कर लेते हैं । दूसरी स्थिति में जानकारी उपग्रह के अन्दर ही इकट्ठी होती रहते हैं, बाद में नियन्त्रण केन्द्र रेडीय तरंगों के माध्यम से आदेश देता है, तब ये उपग्रह अपनी संचित जानकारी संकेत में (कोड) भेजना प्रारम्भ कर देते हैं । पहली प्रणाली में उपग्रहों से भेजे गए फोटो और सन्देश दुनिया के तमाम ग्रहण केन्द्र प्राप्त कर लेते हैं, जबकि दूसरी स्थिति में कई बातें केवल उन्हीं लोगों को मालूम हो पाती हैं, जिन्होंने उपग्रह भेजा होता है ।

इसलिए अन्तरिक्ष यात्रा के अनेक कौतूहल और आश्चर्यजनक तथ्य तो अन्तरिक्ष टेक्नोलॉजी के अग्रणी देश अमेरिका और रूस के ही पास हैं पर जो सन्देश रूप से पकड़े जा चुके हैं, वही इतने काफी हैं कि वे पाश्चात्य देशों की 'अनात्मावादी और परलोक कुछ नहीं', मान्यता को नष्ट कर देते हैं । रूस और अमेरिका भी अब यह बेचैनी से अनुभव करने लगे हैं कि पार्थिव जीवन ही सब कुछ नहीं उसका परलोक से भी कुछ सम्बन्ध अवश्य है ।

चन्द्रमा के बारे में पहले लोगों की कल्पना थी कि वहाँ धूल है पर वहाँ से प्राप्त चित्रों से यह पता चलता है कि उसकी सतह ज्वालामुखी चट्टानों की तरह है और पत्थरों के ढेलों और ढोकों से छितरी हुई है । वह इतनी कड़ी है कि २२० पौण्ड भार के अन्तरिक्ष यान को सम्भाल सकती है । लूना-९ से यह जानकारियाँ मिलीं । सर्वेयर जो तूफान सागर (ओशन ऑफ स्टार्म, चन्द्रमा में कल्पित नाम) में उतरा था, वहाँ की स्थिति भी ऐसी ही थी । रूसी अन्तरिक्ष यान लूना-२ और जौण्ड-३ के द्वारा चन्द्रमा के उस हिस्से के चित्र लिए गए, जो पृथ्वीवासियों को दिखाई नहीं देता, अनुमान है कि यहाँ पहाड़ियों से घिरे हुए दो समुद्र हैं । ज्वालामुखी के गर्त और पहाड़ियाँ भी बहुतायत से होने का अनुमान है ।

चन्द्रमा के अतिरिक्त सर्वाधिक जानकारी वाले ग्रह मंगल और शुक्र हैं । शुक्र की सतह को चमकीले और घने बादल स्थायी रूप से ढँके रहते हैं । शुक्र जब पृथ्वी और सूर्य के बीच से गुजरता है तो उसका वायुमण्डल जगमगाते हुए प्रकाश वलय की तरह लगता है । इसमें कम मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड है । मैरीनर-२ जो २७ अगस्त, १९६२ को आकाश में छोड़ा गया था, तीन महीने बाद शुक्र की कक्ष को वेध कर शुक्र के क्षेत्र में पहुँचा । उसमें लगे यन्त्रों ने जो जानकारी प्रेषित की उनसे पता चलता है कि शुक्र की सतह गर्म और सर्वत्र तापमान लगभग एक समान है । वायु-मण्डल में हमेशा बादल छाये रहते हैं ।

वायु-मण्डल (एटमास्फेयर) के सबसे ऊपरी भाग में थोड़ी कार्बन डाइऑक्साइड भी है । अभी शुक्र ग्रह के विस्तृत अध्ययन के लिए चन्द्रमा में एक उप-केन्द्र तैयार करने की बात चल रही है, उससे कुछ और नये तथ्य सामाने आने की सम्भावना है ।

अब तक जहाँ मानव-विज्ञान पहुँचा, उन ग्रहों में तीसरा मंगल है । उसकी जानकारी के लिए सर्वप्रथम मेरीनर-४ छोड़ा गया । इस उपग्रह ने २२८ दिन बाद २० हजार मील की दूरी से मंगल के चित्र भेजने प्रारम्भ किए । पहला चित्र एक चौड़े रेगिस्तान का था उसके किनारों में कुछ पहाड़ियाँ थीं । ज्वालामुखी गर्तों का प्रमाण देने वाले चित्र भी आये । ७० से अधिक चित्र तो बिल्कुल स्पष्ट और साफ आये । अनुमान है कि मंगल की सतह ५ अरब वर्ष के लगभग पुरानी है । यहाँ के ज्वालामुखी लगभग १०० मीटर ऊँचे हैं । कहीं-कहीं बर्फ जमने के भी चित्र आये । यद्यपि वहाँ जीवन होने के कोई प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं हुए, किन्तु यह निश्चित हो चुका है कि इस ग्रह का भी हमारी पृथ्वी की तरह ही अयन मॉडल (हॉरिजन) है और १२५ किलोमीटर की ऊँचाई पर इलेक्ट्रॉन्स का अधिकतम घनत्व १ लाख प्रति घन सेण्टीमीटर है । अभी सबसे रहस्यमय सूर्यलोक के क्रिया-कलाप तो हुए ही हैं, उसकी जानकारी तो सम्भव है, अन्तरिक्ष गवेषणा के सारे इतिहास को उलट कर रख दे ।

अब तक के यह सन्देश जो उपग्रहों ने भेजे हैं, उनसे एक बात निश्चित हो गई है कि सभी ग्रह प्रकारान्तर से पाँच महाभूतों (आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि) से बने हुए हैं । इनकी न्यूनाधिक मात्रा के अनुसार वहाँ वनस्पति भी होगी । बादल तो हैं ही, तापमान और वायु भार भी है, पर इनका अपनी पृथ्वी के तापमान और वायुभार से सामंजस्य नहीं है । इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि वहाँ के प्राणधारियों की मानसिक और शारीरिक स्थिति कैसी है, किन्तु जीवन के अस्तित्व के बारे में बिल्कुल इन्कार नहीं किया जा सकता ।

हारवर्ड वेधशाला (न्यूयार्क) के अवकाश प्राप्त ज्योतिषी डॉ. हारलो शेपले के अनुसार तो १० करोड़ से भी अधिक ग्रहों में घास, वृक्ष और जीव रहते हैं । यह विचार उन्होंने एक टेलिविजन कार्यक्रम में व्यक्त किया । तीन अन्य अमेरिकी वैज्ञानिकों ने भी इस विश्वास की पुष्टि की कि केवल पृथ्वी पर ही जीव नहीं रहते अन्य लोकों में भी जीवन का अस्तित्व विद्यमान है ।

७३ वर्षीय रूसी वैज्ञानिक श्री ए. आई. ओपारिन की राय में अन्य ग्रहों पर जीवन है । अकादमीशियन, ओपारिन ५० वर्ष से जीवन के उद्भव पर अनुसन्धान कर रहे हैं, उन्होंने एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि अन्य ग्रहों पर किसी तरह का जीवन होना चाहिए किन्तु यह जरूरी नहीं कि वे मानव जैसे प्राणी हों । ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रगति करेगा, उसे अन्य ग्रहों के प्राणियों के बारे में जानकारी, रासायनिक व खनिज विज्ञान की विधियों के प्रयोग और उल्का पिण्डों के द्वारा मिलती रहेगी । श्री ओपारिन, जो सोवियत विज्ञान अकादमी की जीव विज्ञान इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर और जीव शास्त्रियों की अन्तर्राष्ट्रीय सोसायटी के उपाध्यक्ष भी हैं, का कहना है कि कार्बन यौगिकों की विकास की प्रक्रिया ही पृथ्वी पर जीवन का आधार है तो अन्य ग्रहों पर जहाँ भी कार्बन यौगिक हैं, जीवन का होना बिल्कुल निश्चित है—(१) आदिमकालीन ऑर्गनिक पदार्थ हाइड्रो कार्बन, (२) विभिन्न प्रकार के जटिल ऑर्गनिक पदार्थों के जलीय घोल में प्रायमरी सूप का निर्माण और (३) जटिल बहु आण्विक खुली प्रणाली । ये तीन प्रक्रियाएँ ही प्राणियों के उद्भव के स्रोत हैं और यह विकास क्रम अन्तरिक्ष में व्यापक रूप से विद्यमान है ।

अब यदि अन्तरिक्ष में जीवन है तो उनमें बौद्धिक विकास और शब्द ध्वनि की स्थिति भी होनी चाहिए । अन्तरिक्ष वैज्ञानिक काफी समय से यह कहते आ रहे हैं कि आकाश से बहुत ही व्यवस्थित सन्देश आ रहे हैं किन्तु हमारी ग्रहणशीलता भिन्न प्रकार की होने से हम उन्हें समझ नहीं पा रहे हैं, पर यह निश्चित है कि किसी ग्रह में अत्यन्त बुद्धिमान प्राणियों का निवास है अवश्य । प्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्दाशेव ने उन विशेषताओं पर प्रकाश डाला है जिनके द्वारा अन्तरिक्ष से स्थायी तौर पर आने वाली ध्वनियों में से उन ध्वनियों को पहचाना जा सकता है, जो किसी कृत्रिम स्रोत से आ रही हैं । उन्होंने विभिन्न स्रोतों में आने वाली ध्वनि तरंगों के वर्ण छटाओं के अलग-अलग चार्ट तैयार किए हैं । एक चार्ट में उन्होंने दिखलाया है कि पृथ्वी से हजारों लाखों प्रकाश वर्षों की दूरी पर स्थित सभ्यताओं के रेडियो संकेतों की वर्ण छटा (रेडियो फोटो) किस प्रकार की होगी । यह वर्ण छटा प्राकृतिक स्रोतों से निकलने वाली वर्ण छटा से बिल्कुल भिन्न होगी ।

१९६५ में प्रसिद्ध ज्योतिर्विद गेन्नादी शोला मित्स्की ने अश्विनी के नक्षत्र मण्डल में एस. टी. ए. १०२ के रेडियो ध्वनि विक्षेपण का अध्ययन करते हुए यह पता लगाया कि उसका प्रवाह निर्धारित समय पर बदलता रहता है, यह अवधि १०० दिन की होती है । इंग्लैण्ड की जोड्रेल अन्तरिक्ष वेधशाला (एस्ट्रो लेबोरेटरी) द्वारा भी ऐसी सूचनाएँ प्राप्त की गई हैं, जिनसे निकोलाई कार्दाशेव के मत की पुष्टि होती है । इन सभी वैज्ञानिक का विश्वास है कि अश्विनी के नक्षत्र मण्डल में अवश्य ही पृथ्वीवासियों से कहीं अधिक मानसिक शक्ति और वैज्ञानिक प्रगति से सम्पन्न बुद्धिमान प्राणी निवास करते हैं और वे सैकड़ों वर्षों से पृथ्वी के साथ सम्पर्क साधने के प्रयत्न में हैं ।

इन संकेतों को पकड़ने के अनेक अनुसन्धान हो भी रहे हैं, आश्चर्य नहीं कि अगले पचास वर्षों में अन्तरिक्षवासी प्राणियों के सन्देश समझने में सफलता मिल जाय, तब यह भी सम्भव है कि जिस तरह अर्जुन इन्द्र के पास जाकर धनुर्विद्या के गूढ़ रहस्य सीख कर आया था, उसी प्रकार यहाँ के लोग अन्य ग्रहों से सम्पर्क साधकर वहाँ की अनेक विद्याएँ सीखना आरम्भ कर दें ।

अभी हाल में ही कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुछ रेडियो खगोलज्ञों ने भी घोषणा की है कि बाह्य अन्तरिक्ष से कुछ संकेत आ रहे हैं । यह घोषणा डॉ. ए. एम. हेविश ने की है । मुलाई वेधशाला के रेडियो खगोलज्ञों के बीच भाषण करते हुए उन्होंने बताया कि—उक्त संकेत सम्भवतः न्यूट्रॉन नक्षत्रों से आ रहे हैं, जो सूर्य के दूसरी ओर करोड़ों अरबों मील की दूरी स्थित माने जाते हैं ।

गणित के प्राध्यापक और खगोलविद् डॉ. फ्योदोरोव ने सोवियत रूस के रक्षा मन्त्रालय की पत्रिका 'रेड स्टार' में उद्धरित किया है—"प्राचीनकाल में अन्य ग्रहों से अन्तरिक्ष यात्रियों के पृथ्वी में आने की गाथाएँ गलत नहीं हैं । उन्होंने कहा कि उड़नतश्तरियों का आना भी, उसका एक प्रमाण है, किन्तु क्या सोडोम व गोमोरा के नगरों की विनाश लीला परमाणु विस्फोटों

से होने वाले विनाश की याद नहीं दिलाती। (ऐसा समझा जाता है कि यह अन्तरिक्ष लोक के किसी भाग का नियोजित हमला था)। ब्रह्माण्ड के अन्तरिक्ष यात्रियों ने अपनी यात्राओं के चिह्न जानबूझ कर उन दो क्षुद्रग्रहों पर छोड़े होंगे जो सूर्य और शनि ग्रह के बीच चक्कर काट रहे हैं।" इन बातों को खगोलशास्त्री बहुत गम्भीर मान रहे हैं।

पृथ्वी का अन्य लोकों से यान्त्रिक सम्पर्क तो अब बिल्कुल सत्य सिद्ध हो चुका है, किन्तु अभी वह पक्ष अधूरा है, जिसमें हमारे जहाँ मृत्योपरान्त स्वर्ग या नरक में जाने का विश्वास किया जाता है। सारा भारतीय दर्शन ही परलोकवाद पर आधारित है, परलोक में सुख और सद्गति के लिए तो इस पार्थिव जीवन को भी तपोमय बनाने की बात कही गई है, क्या उसमें भी कुछ तथ्य है इसकी पूर्ण वैज्ञानिक पुष्टि के लिए तो अभी समय है, किन्तु कोशिका के अध्ययन का क्षेत्र जब विकसित होगा तो यह कार्य भी बहुत सरल हो जायेगा।

अभी भी यह निश्चित हो गया है कि ब्रह्माण्डीय पिंड एक-सी नेचर (गुण) वाले परमाणुओं की केन्द्रीय शक्ति होती है, जो अपनी तरह के परमाणुओं को अपनी ओर खींचती और शक्ति बढ़ाती रहती है। मनुष्य की चेतना भी गुणशः अनेक भागों में विभक्त होते हुए भी अपनी एक जीवाणु स्थिति रखती है। यह जीवाणु अपने गुण से मेल खाते हुए नक्षत्र की ओर आकर्षित हो जाते हों तो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं। अब तक विषाणुओं (वायरस) की लगभग ३०० किस्मों की खोज हुई, यों इनका काम बीमारियाँ फैलाना होता है पर इनकी गति के अध्ययन से जीवाणुओं (बैक्टीरियाज) की गति से सम्बन्धित उपरोक्त मत की पुष्ट होती है। विषाणु हवा-पानी और जीव-जन्तुओं के साथ सारी दुनिया का चक्कर लगाते रहते हैं पर स्वतन्त्र रूप से भी इनकी गमन शक्ति बड़ी तीव्र है।

अविज्ञात प्राणियों की अन्तरिक्षीय खोज-बीन

सदियों से आसमान के सितारे देखते हुए मनुष्य यह सोचता आया है कि ऊँचे आकाश में टिमटिमाते असंख्य तारे क्या हमारी पृथ्वी जैसे ही वास्तविक हैं? क्या उनमें यहाँ की तरह विकसित सभ्यता हो सकती है?

आज के रेडियो टेलिस्कोप द्वारा मनुष्य की जानकारी इतनी बढ़ी है कि टिमटिमाने वाले असंख्य तारे सूर्य से भी बड़े हैं। इनमें अनेकों तारों के विभिन्न गुच्छक है जिन्हें नीहारिकाएँ कहते हैं। ऐसी अनेकों नीहारिकाएँ मिलकर आकाशगंगा-सा सफेद पट्ट बनाती हैं। अनेकों आकाशगंगाएँ ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि ब्रह्माण्ड में (अर्थात् १० से १० को २४ बार गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल की संख्या) के तारे सूर्य की तरह हैं। इतनी जानकारी होने के बावजूद भी यह जानकारी अभी तक नहीं मिल सकी है कि हमारी पृथ्वी जैसा ग्रह भी किसी सौर-मण्डल में है जहाँ मानवीय बुद्धि जैसा विकास हुआ हो।

अन्तरिक्षीय अनुसन्धानों से पता चला है कि औसतन प्रत्येक १ लाख खगोलीय पिण्डों में से कम से कम एक पिण्ड पर पृथ्वी जैसी परिस्थितियाँ हवा, बादल आदि का होना सम्भव है। इस हिसाब में तकनीकी सभ्यता वाले हमारे जैसे अनेकों खगोलीय पिण्ड ब्रह्माण्ड में होने चाहिए। दूसरा अनुमान यह है कि जिस नीहारिका में हमारी पृथ्वी आती है, इससे बहुत पुरानी नीहारिकाएँ ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। वहाँ पर यहाँ से अधिक विकसित सभ्यता होने की सम्भावना है। इस मान्यता के अनुसार १९७१ में रूस और अमेरिका ने मिलकर एक संस्था का गठन किया, जिसे 'सोवियत अमेरिका कांग्रेस ऑन एक्स्ट्रा टेरिस्टेरियस लाइफ' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह संस्था अमेरिका के 'ब्यूराकन' प्रदेश में गठित हुई।

इस संस्था ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि अपनी आकाशगंगा में पृथ्वी जैसी विकसित सभ्यता १ लाख आकाशीय पिण्डों में ही होने की सम्भावना है। इस सम्भावना की बात तय होने पर वैज्ञानिकों में यह जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता हुई कि वहाँ के लोग कैसे रहते होंगे आदि। आकाशीय पिण्डों की अति दूरी को ध्यान में रखते हुए संचार माध्यम से केवल 'रेडियो सिगनल' ही हो सकते हैं। ऐसा निश्चय होने के उपरान्त खगोल विद्याविदों एवं अन्य वैज्ञानिकों ने सेटी (एस. ई. टी. ई.—सर्च फॉर एक्स्ट्रा टेरिस्टेरियल इन्टेलीजेन्स) नामक संस्था गठित की। कई वर्षों से आकाश में 'रेडियो सिगनल' भेजे जा रहे हैं और प्रत्येक आकाशीय पिण्ड की रेडियो एक्टीविटी ज्ञात करके उनका नक्शा बनाया जा रहा है। इस कार्य की जटिलता के बारे में सेटी के पायोनियर (अग्रगामी) डॉ. फ्रैन्क डी. ड्रेक कहते हैं—"यह कार्य उस सुई को ढूँढ़ने के समान हैं जो विशाल घास के ढेर में खो गई हैं।"

रूस ने १९७० व १९७२ में क्रमशः वीनस-६ और वीनस-८ नामक यानों को 'शुक्र' ग्रह पर भेजकर पता लगाया कि शुक्र के चारों ओर कार्बनडाइ ऑक्साइड का बड़ा घना वायुमण्डल है जहाँ पृथ्वी जैसे जीवाणुओं की कल्पना सम्भव नहीं।

मंगल ग्रह पर पृथ्वी की भाँति के जीवन की जानकारी अभी नहीं मिल सकी है। फिर भी प्राप्त जानकारियों के अनुसार मंगल का पृथ्वी से काफी साम्य है। उसका दिन पृथ्वी ग्रह की तरह ही लगभग २४ घण्टे का होता है। वहाँ वायुमण्डल भी है। हवाएँ, ऋतु परिवर्तन, आँधी-तूफान, तुषार आदि होते हैं। मंगल ग्रह की विषुवत् रेखा का तापक्रम लगभग १५ डिग्री सेल्सियस तथा ध्रुवों पर—९३ डिग्री सेल्सियस रहता है। वहाँ के ध्रुवों पर पानी की वर्षा नहीं वरन् सूखी बर्फ (ठोस कार्बनडाइ ऑक्साइड) पायी गई है।

प्राप्त सूचनाओं से पता चला है कि मंगल भी पृथ्वी की भाँति पूर्व में आग का गर्म गोला था। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि मंगल पर पानी बर्फ या भाप के रूप में ही तल पर हो सकता है तथा दो मीटर तक पूरे ग्रह पर जमे पाले के नीचे तरल रूप में प्राप्य है।

पायनियर—१० यान द्वारा बृहस्पति ग्रह के बारे में लगभग २० अरब तथ्यांश और ५०० रंगीन चित्र प्राप्त किए गए हैं। यह यान मार्च १९७२ में छोड़ा गया था। तथ्यों से ज्ञात हुआ है कि सौर-मण्डल का सूर्य के बाहर का लगभग २ तिहाई द्रव्य इस विशाल ग्रह में समाया हुआ है। इस ग्रह के १२ उपग्रह (चन्द्रमा) हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी यानों की शृंखला द्वारा १९७२ में लगभग १ दर्जन अन्तरिक्ष यात्रियों को चन्द्रमा पर उतार दिया था। यह तो निश्चित ही हो गया है कि चन्द्रमा पर वायुमण्डल का अभाव है और वहाँ के वातावरण में किसी प्रकार के जीवाणु नहीं हैं।

बृहस्पति ग्रह के सम्बन्ध में कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि वहाँ वायुमण्डल में हाइड्रोजन, हीलियम, मेथेन, अमोनिया तथा जल आदि सभी के ऐसे तत्व विद्यमान हैं जो जीवन तत्वों के उत्पन्न करने में सहायक हैं तथा जिन तत्वों के द्वारा प्रयोगशालाओं में 'जीवन की ईंटें' समझी जाने वाली 'अमीनो एसिड' सफलतापूर्वक बनाये जा चुके हैं। १९७५ में वहाँ जल के होने की पुष्टि हो चुकी है।

बृहस्पति ग्रह के कई उपग्रहों में भी वायुमण्डल होने का अनुमान किया जाता है। यह ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा ८५०० गुना प्रकाशमान दिखाई देता है।

आज भी रूस और अमेरिका के कितने ही ऐसे उपग्रह आकाश में घूम रहे हैं जिनमें बड़े-बड़े रेडियो टेलिस्कोप भी एवं कम्प्यूटर आदि लगे हुए हैं, जिनसे आशा की जा रही है कि निकट भविष्य में अन्यत्र मानवीय सभ्यता के संकेत मिल सकेंगे। लेकिन कुछ समय पूर्व रूस के कुछ ज्योतिर्विदों ने घोषणा की है कि उत्तरी आकाश का कई दशकों से गहन अवलोकन करने पर भी कहीं मानवीय सभ्यता होने की सम्भावना के संकेत नहीं मिले हैं और कहा है—"इसके पीछे समय खराब करना बुद्धिमानी नहीं है।"

इस घोषणा एवं कथन से वैज्ञानिकों के इस दिशा में उत्साहपूर्वक किए जाने वाले प्रयास कुछ ढीले पड़ गए। परन्तु दूसरी ओर अमेरिका के ज्योतिर्विज्ञानी आशावादी दृष्टिकोण वाले हैं। उनका कहना है कि 'सेटी' के कार्य को तीव्रतर किया जाय और इसके लिए अमेरिकन सरकार से अधिक ग्राण्ट की माँग की है। डॉ. फ्रैंक डी. ड्रेक ने 'वेस्ट वरजीनिया' की 'ग्रीन बैंक' वेधशाला से हमारे निकटतम सूर्य जैसे दो तारों 'रप्सिलोन एरिडिनी' और 'ताओ सिटी' का डेढ़ सौ घण्टे तक गहन निरीक्षण किया। उनका कहना है कि अन्यत्र मानवीय संस्कृति मिलने की अभी भी सम्भावना है। अभी तक वैज्ञानिकों ने ऐसे १००० तारों का अध्ययन किया है और उस पर आशा केन्द्रित की है।

मनुष्य के इस एकाकीपन का कब समाधान निकलेगा और अन्य लोकों में बसने वाले मनुष्य देहधारियों से कब सम्पर्क जुड़ेगा? कब सृष्टि के पुरातन सभ्यताओं को चर्म चक्षुओं से देखने का अवसर मिलेगा? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ब्रह्माण्ड का विस्तार असीम है और मनुष्य का साधन पराक्रम इतना सीमित है कि बिन्दु के लिए सिन्धु की थाह पा सकना कठिन प्रतीत होता है। इस प्रयास में इतना समय भी लग सकता है जिसमें पीढ़ियों की परिस्थितियाँ कहीं से कहीं चली जायें और इसकी आवश्यकता ही प्रतीत न हो कि अन्य ग्रह-नक्षत्रों पर जीवन होने न होने की बात को महत्त्व मिले और परिश्रम लगे।

अध्यात्म क्षेत्र में इस एकाकीपन को दूर करने और अविज्ञात जीवन लोकों को ढूँढ़ निकालने का सरल एवं सुनिश्चित मार्ग मौजूद है। सब प्राणियों का अपनी ही आत्मा से समाया हुआ समझा जाय। समस्त जड़ चेतन विश्व वैभव में चेतना की ज्योति जलती हुई अनुभव की जाय। प्रत्यक्ष का अपना स्थान एवं महत्त्व है किन्तु भावना एवं श्रद्धा सम्वेदना की सामर्थ्य भी नगण्य नहीं है। उसके सहारे पाषाण में भगवान का दर्शन ही नहीं, अनुभव भी हो सकता है। मानवी गरिमा और उसकी सरस सम्वेदनाओं की ही विशिष्टता है। इसी आधार पर उसकी वरिष्ठता विकसित हुई है।

आत्मसत्ता को सर्वव्यापी समझा जाय तो जड़ पदार्थ भी सचेतनों की तरह ही आत्मीय एवं श्रद्धास्पद बन सकते हैं। पवित्र नदी, पर्वतों, सरोवरों और तीर्थों की विशिष्टता मानवी भाव श्रद्धा पर ही अवलम्बित है। पुण्य-परलोक का समग्र ढाँचा इस भाव सम्वेदना पर ही अवलम्बित है। यदि अन्य प्राणियों को आत्मवत् माना जा सके और अपनी दुनिया में बरते हुए उपेक्षित जन-समुदाय के साथ सघन आत्मीयता का भाव-बन्धन बाँधा जा सके तो प्रतीत होगा कि इसी धरती पर अनेकानेक लोक-लोकान्तरों में निवास करने वाले प्राणियों के साथ सम्बन्ध ही नहीं जुड़ा, वरन् उनके साथ मैत्री भी सघन हो गई।

अपनी ही दुनिया में बरतने वाले अपरिचित, उपेक्षित जैसे जन-समुदाय के साथ आत्म भाव जोड़ लेना इतना उत्साहवर्धक और आनन्ददायक हो सकता है जितना कि अपरिचित लोकवासियों का परिचय उपलब्ध होने पर भी सम्भव नहीं है। अन्य लोकों की सभ्यताएँ खोजने की अपेक्षा यदि मानवी देव संस्कृति को पुनर्जीवित करने में लगा जा सके तो प्रतीत होगा कि उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सफलता हस्तगत हो गई जो अन्य लोकों के निवासियों का पता लगाने के साथ जुड़ी।

अन्तरिक्षीय आवागमन की सम्भावनाएँ

इस ब्रह्माण्ड के अगणित ग्रह-पिण्डों में से कितनों में ही जीवन होने की सच्चाई अब अन्तरिक्ष विज्ञानियों के गले अधिक गहराई तक उतरने लगी है। अपनी इस पृथ्वी पर विकसित सभ्यता वाले अन्तरिक्षवासी कितनी ही बार आते रहे हैं।

अब इस मान्यता की पुष्टि करने वाले अनेकों प्रमाण मिल रहे हैं कि चिर अतीत में पृथ्वी पर अब से भी अधिक विकसित सभ्यता थी और जीव विज्ञान एवं भौतिक विज्ञान की जानकारी अब की अपेक्षा तब कहीं अधिक थी। उन्हीं की देन इन धरतीवासी मनुष्यों को मिली है और कड़ी में कड़ी जुड़ती चली आयी हैं।

पृथ्वी पर अन्तरिक्षवासियों के आगमन के ऐसे प्रमाण क्रमशः अधिकाधिक संख्या में मिलते जा रहे हैं जिनके बारे में समझा जाता है कि वे उनके छोड़े हुए परिचय चिह्न हैं।

सीरिया के सासनिक नामक क्षेत्र में एक उत्खनन में पत्थरों के बड़े-बड़े भारी-भरकम औजार पाये गए हैं। इनकी लम्बाई साढ़े बारह इंच, चौड़ाई साढ़े आठ इंच एवं वजन साढ़े आठ से साढ़े नौ पौण्ड पाया गया। इनके आधार पर इन्हें चलाने वाले प्राणियों के शारीरिक गठन का अनुमान लगाया जाय, तो निश्चय ही वे कोई दैत्याकार प्राणी साबित होंगे, जिनकी शारीरिक लम्बाई किसी भी प्रकार १२ फुट से कम नहीं होगी। प्रागैतिहासिक काल से सम्बद्ध फ्रांसीसी शोधकर्त्ता डॉ. लोविस बुरखाल्टर भी इसका समर्थन करते हैं।

'ओल्ड टेस्टामेन्ट' भी इसी तथ्य का समर्थन करता है। पैगम्बर मॉजेस की उक्ति थी कि जब देवमानवों का पृथ्वी पर

वितरण हुआ, तो पृथ्वीवासियों से सहवास कर भीमकाय मानवों को उन्होंने जन्म दिया ।

मूर्धन्य पुरातत्ववेत्ता एवं 'सन्स ऑफ दि सन' के प्रख्यात लेखक प्रो. मारसल होमेट को उत्तरी आमेजेन्स (ब्राजील) के रियो ब्रैंको क्षेत्र में एक विशालकाय अण्डा मिला है । यह पत्थर का बना है । इसकी लम्बाई ३२८ फुट तथा ऊँचाई ९८ फुट पायी गई । इसमें कुछ लिखा हुआ है, तथा यत्र-तत्र सूर्य के नमूने खुदे हुए हैं । खुदे हुए भाग का आयाम ७०० वर्ग गज है ।

मध्य अमेरिका के कोस्टारिका राज्य में भी जहाँ-तहाँ ढेरों पाषाण-गेदें पायी गई हैं । इनका व्यास कुछ इंच से लेकर आठ फुट तक है । खुदाई में सबसे वजनी पाषाण पिण्ड आठ टन का प्राप्त हुआ है । इन्हें देखने से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ये किन्हीं प्राकृतिक घटनाओं के परिणाम हैं । स्वतः इतनी सही, पूर्णतः गोल एवं पॉलिश की हुई गेंदे नहीं बन सकतीं । निश्चय ही इनके निर्माण के पीछे मानवी श्रम नियोजित हुआ है ।

कोस्टारिका में प्राप्त गेंदों में से कोई भी ऐसी नहीं जिसका व्यास दिए गए व्यास से कम-बेशी हो । एक गेंद का व्यास चारों ओर से एक-सा है । इससे यह स्पष्ट है, कि इनके निर्माताओं को रेखागणित का अच्छा ज्ञान था । साथ ही उनके पास अच्छे धात्विक औजार भी थे । क्योंकि पॉलिश किए हुए ऐसे गोले पाषाण औजारों से विनिर्मित कर पाना सम्भव नहीं ।

पेरू के लीमा क्षेत्र में एक सीधी रेखा में २०६ खन्दकें मिली हैं । इनका व्यास २३ इंच तथा गहराई ५ फुट ७ इंच है । ये क्या थे ? किस उद्देश्य से खोदे गए ? इसका ठीक-ठीक पता नहीं ।

जापान के होण्डो टापू में एक उत्खनन के मध्य तीन काँसे की मूर्तियाँ मिली हैं । ये मूर्तियाँ रूस के एक म्यूजियम में आज भी सुरक्षित हैं । मूर्त्तियाँ स्पेश-सूट पहनी दिखाई गई हैं । सूटें अन्तरिक्ष यात्रियों की भाँति ही शरीर में बिल्कुल कसी हुई है । सीट से आबद्ध करने वाला कमर का बेल्ट भी स्पष्ट दीखता है । ऑक्सीजन पात्र भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । मूर्त्ति की आँखों में चश्मा चढ़ा हुआ है ।

नाजका की एक पहाड़ी में एक विशालकाय मनुष्य का रेखाचित्र मिला है । चित्र की सीमा-रेखा बालू में पत्थर गाढ़कर बनायी गई है । सिर में बारह सीधी व समान लम्बाई की एण्टिनी लगी हुई हैं । नितम्ब एवं जंघाओं में त्रिकोण फिन दिखाए गए हैं, जैसा कि सुपर सोनिक लड़ाकू जहाजों में होता है ।

चिली के एल-एनलैड्रिलैडो प्लेटो के मध्य में तीन प्रस्तर खण्ड खड़े हैं । इनका व्यास ३ फुट से लेकर ४ फुट तक है । जब इनकी स्थिति के बारे में अध्ययन किया गया, तो पाया गया कि दो चट्टानें उत्तर की दिक्सूचक रेखा पर बिल्कुल सही-सही स्थित हैं । सम्भवतः ये सभी निर्माण वेध कार्य हेतु देवमानवों द्वारा किए गए थे ।

पेरू की एक पहाड़ी में प्रागैतिहासिक काल से एक भीमकाय पत्थर पड़ा हुआ है । चट्टान ८ फुट ऊँची है । इसकी परिधि ३३ फुट है । इसमें मन्दिर और घरों के कलात्मक चित्र खुदे हैं । गन्दे पानी के निकास के लिए नालियों की भी व्यवस्था दिखाई गई है । इसके अतिरिक्त उसमें किसी गूढ़ भाषा में कुछ लिखा हुआ है, जिसे अब तक पढ़ा नहीं जा सका ।

इसके आस-पास के क्षेत्रों में ऐसे एक-दो और प्रस्तर खण्ड पाये गए हैं । इनमें भी विकसित सभ्यता के परिचायक चित्र बने हुए हैं ।

पेरिस की सॉरबोन लाइब्रेरी में एक अति प्राचीन पुस्तक-काब्बाला है । इसके सात खण्ड हैं । पुस्तक में अत्यन्त गूढ़ चित्र बने हुए हैं । सम्बद्ध लोगों का कहना है, कि पुस्तक भगवान के निर्देश पर लिखी गई है । इसमें रहस्यमय चित्र, संकेत, चिह्न एवं गणितीय सूत्र लिखे हुए हैं । इसी पुस्तक में सात प्रकार के संसारों का उल्लेख है । प्रत्येक की विस्तृत व्याख्या-विवेचना भी की गई है । इनकी संगति आर्ष ग्रन्थों में वर्णित सप्त लोकों से भली-भाँति बैठती है ।

एक अन्य पुस्तक 'जोहार' में पृथ्वीवासी एवं एक ग्रहवासी के बीच का सम्भाषण है । अजनबी स्वयं को 'आरका' संसार का बताता है । इस पर पृथ्वीवासी साश्चर्य पूछता है, कि क्या वह संसार भी आबाद है ? अजनबी सकारात्मक उत्तर देकर कहता है, कि जब मैंने यहाँ जीवों को विचरते देखा, तो इस ग्रह का अध्ययन करने एवं इसके निवासी जीव-जन्तुओं के बारे में जानकारी लेने की जिज्ञासा हुई । उसने यहाँ तक बताया कि हमारे यहाँ की परिस्थितियाँ इस संसार से भिन्न हैं । मौसम व ऋतु सभी अलग तरह के हैं ।

प्राचीन समय में अन्य ग्रहवासियों का पृथ्वी पर समय-समय पर अवतरण होता रहा है—यह कोई कपोल कल्पना नहीं, विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकारते हैं । सापेक्षवाद का प्रसिद्ध सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाला जर्मन वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन भी इस बात से सहमत है, कि प्रागैतिहासिक काल में किन्हीं अति विकसित अन्तरिक्षीय सभ्यताओं का समय-समय पर पृथ्वी पर आगमन हुआ है ।

वर्तमान समय के विद्वान रूसी एस्ट्रोभौतिकविद् एवं प्रख्याति रेडियो खगोलविद् प्रो. जोसेफ सैम्यूइलोविच शक्लोवस्की की भी यही आवधारणा है । उनका कहना है, कि अनेक बार नहीं तो कम से कम एक बार तो अवश्य ही पृथ्वी वर्षों तक अन्तरिक्षीय देवमानवों का पर्यटन ग्रह रह चुकी है । अमेरिका के प्रख्यात स्पेस जीवविज्ञानी का सैगन एवं 'रॉकेट' के जनक प्रो. हरमन ऑबर्थ भी उपरोक्त अभिमत का समर्थन करते हैं ।

अब विज्ञान जगत में एक प्रश्न उठ रहा है कि क्या देव मानवों की भाँति पृथ्वीवासी मनुष्य भी उन विकसित सभ्यता वालों के साथ सम्पर्क साधने और आदान-प्रदान का द्वार खोलने वाली यात्राएँ कर सकते हैं । कुछ समय पूर्व सुदूर स्थिति ग्रह पिण्डों की दूरी, मनुष्य की अल्प आयु तथा इस प्रयोजन के लिए अनुपयुक्त वाहनों को देखते हुए ऐसी यात्रा असम्भव मानी जाती थी पर अब वैसी बात नहीं रही और वे उपाय सोचे जा रहे हैं जिनके आधार पर अन्तर्ग्रही यात्रा सम्भव हो सके ।

अन्तरिक्ष विज्ञानी कहते हैं, कि यदि अन्तरिक्ष यात्री को निश्चित दूरी तक के लिए फ्रीज कर दिया जाय और वांछित दूरी तय करने के बाद पिघला दिया, तो उसके शरीर की फिजियोलॉजी फिर पूर्ववत् हो सकती है तथा अभीष्ट ग्रह पर पहुँचकर वह अपना प्रयोग-परीक्षण भली प्रकार सम्पन्न करता रह सकता है ।

उनका कहना है, कि जब प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं, तो मेंढक कीचड़ में धँसते और भालू बर्फ में जम जाते हैं, किन्तु

जब परिस्थितियाँ सामान्य बनती हैं, तो फिर से वे अपना सामान्य जीवनक्रम आरम्भ करते और सक्रिय होते देखे जाते हैं ।

अन्तरिक्ष यात्रियों के मामले में भी ऐसी स्थिति उत्पन्न कर उन्हें वांछित समय तक निष्क्रिय बनाए रखा जा सकता है और फिर लक्ष्य तक पहुँचने के बाद पूर्ववत् स्थिति में लाया जा सकता है ।

कुछ वैज्ञानिक इससे भी आगे की बात सोचते हैं । उनका कहना है, कि आगामी वर्षों का अन्तरिक्ष यात्री हाड़-माँस का मनुष्य नहीं, वरन् एक विलक्षण अर्ध-जीवित अर्ध-मृत प्राणी होगा । इसके काय-कलेवर तो यान्त्रिक ही होंगे, पर उसका संचालन मानवी मस्तिष्क करेगा । वैज्ञानिकों ने इस विशेष जीवन का नाम 'साइबरनेटिक ऑरगैनिज्म' रखा है । यह एक प्रकार का यन्त्र मानव ही होगा, किन्तु सिलिकन मस्तिष्क के स्थान पर इसमें जीवित मानवी मस्तिष्क प्रत्यारोपित होगा ।

अपनी पुस्तक 'दि प्लैनेट ऑफ इम्पोसिबल पॉसिबिलिटीज' में फ्रांसीसी लेखक द्वय लुईस पावेल्स एवं जेक्स बर्जियर ने प्रख्यात रूसी वैज्ञानिक के. पी. स्टैनियूकोविच की अद्भुत अन्तर्ग्राही योजना का उल्लेख किया है । उनके अनुसार इसका वेग असीम होगा । इस उड़न-लैम्प में बैठे यात्रियों को कुछ भी असामान्य अनुभव नहीं होगा । यान के अन्दर गुरुत्व, पृथ्वी के बराबर ही होगा । समय भी उन्हें सामान्य गति से बीतता महसूस होगा । जबकि वस्तुतः ऐसा होता नहीं । इस प्रकार थोड़े ही समय में वे विशालतम दूरी तय कर सकेंगे । इस प्रकार उनका २१ वर्ष पृथ्वी के ७५ हजार प्रकाशवर्ष के बराबर होगा । इतने समय में यान पृथ्वी से आकाशगंगा के हृद-केन्द्र तक में पहुँच चुका होगा । २८ वर्षों में वे पृथ्वी की पड़ोसी मन्दाकिनी एण्ड्रोमैटा में पहुँच जायेंगे, जो पृथ्वी से २२ लाख ५० हजार प्रकाशवर्ष दूर है ।

स्टैनियूकोविच की एक गणना के अनुसार 'उड़न-लैम्प' के यात्रियों के जब ६५ वर्ष पूरे होंगे, उतने समय में पृथ्वी पर साढ़े चालीस लाख वर्ष गुजर चुके होंगे । यह यूटोपिया जैसा लगे तो भी पौराणिक आख्यानों से संगति खाता है एवं हमारी तकनीकी उपलब्धियों के कारण लगता भी यही है कि सम्भवतः किसी सीमा तक यह सम्भव हो सकेगा ।

भगवान करे, वह दिन जल्दी आये जिसमें धरती में मनुष्यों और देवलोकवासियों के बीच आवागमन का प्रत्यक्ष द्वार खुले । आध्यात्मवादी दिव्य शक्तियों के आधार पर सूक्ष्म शरीर द्वारा इस सम्भावना को पहले से ही स्वीकारते रहे हैं ।

धरती से लोक लोकान्तरों का आवागमन मार्ग

पृथ्वी के अतिरिक्त इस अन्तरिक्ष में अनेकानेक ग्रह-उपग्रहों, नीहारिकाओं, आकाश-गंगाओं के अस्तित्व के सम्बन्ध में सभी जानते हैं । यह पदार्थ पिण्डों की बात हुई । इसके अतिरिक्त एक और मान्यता भी प्रचलित है—लोक-लोकान्तरों के सम्बन्ध में । मान्यता है कि धरती पर रहने वाले जीवधारियों की तरह निकृष्ट एवं उत्कृष्ट स्तर के प्राणी कहीं अन्यत्र भी रहते हैं । उन निवास स्थानों को 'लोक' कहा जाता है । धरती, आसमान, पाताल के तीन लोक भी सर्वविदित हैं । इन्हें ऊपर, नीचे और मध्यवर्ती स्थान स्पेस भी कहा जा सकता है । ऊपर स्वर्ग अर्थात् श्रेष्ठ स्तर के देव जीवधारी । नीचे नरक अर्थात् निकृष्ट स्तर के दैत्य जीवधारी । धरती तो मनुष्य की है ही । इन तीन वर्गों में विभाजित समुन्नत जीवधारियों के निवास स्थान का ऊहापोह पौराणिक परम्परा में इसी प्रकार होता रहा है । पशु-पक्षी, कृमि-कीटक वर्ग के प्राणी इसके अतिरिक्त हैं ।

तीन लोकों की तरह सात लोकों की भी चर्चा है । भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् के नाम से सात लोकों का वर्णन किया जाता रहा है । उनके अधिष्ठाता सप्तऋषि माने जाते हैं । इस्लाम धर्म में भी सात आसमान हैं । ईसाई, बौद्ध, पारसी, यहूदी आदि धर्मों में भी प्रकारान्तर से ऐसे लोक-लोकान्तरों की मान्यता है जहाँ, वहाँ के स्थायी प्राणी तो बसते ही हैं, मनुष्य लोक के प्राणी भी भले-बुरे कर्मों का फल पाने के लिए वहाँ जाते और बसते रहते हैं ।

देखना यह है कि क्या ग्रह-नक्षत्रों की तरह इस ब्रह्माण्ड में कहीं लोक-लोकान्तरों का भी अस्तित्व है ? और यदि है तो उसके अस्तित्व एवं क्रिया-कलाप का स्वरूप क्या हो सकता है ? क्या मरने के बाद ही प्राणी वहाँ पहुँचते हैं अथवा जीवित अवस्था में भी वहाँ का आवागमन हो सकता है ? पुराणों में देवर्षि नारद के बार-बार विष्णुलोक में सशरीर आते-जाते रहने की चर्चा है । अर्जुन तथा दशरथ देवताओं के आमन्त्रण पर उनकी सहायता करने देवलोक में गए थे । मेनका स्वर्गलोक से धरती पर आयी थी और विश्वामित्र के साथ रहकर एक कन्या को जन्म देने के उपरान्त वापिस चली गई थी । इसी प्रकार समय-समय पर अन्य देवताओं के धरती पर आने और मनुष्यों की सहायता करने के प्रसंगों से धर्मों का कथा-साहित्य भरा पड़ा है । देखना यह है कि इसमें कुछ तथ्य भी हैं या ऐसे ही यह कथा-कल्पनाओं की उपन्यास उपाख्यान जैसी मनगढ़न्त भर है ।

थियोसोफी ने मनुष्य शरीर में विद्यमान सात सूक्ष्म परतों को सात लोक कहा है । उस मान्यता के अनुसार यह ब्रह्माण्डव्यापी आयाम भी होने चाहिए । लम्बाई, चौड़ाई, गहराई के तीन आयाम सर्वविदित हैं । इसके अतिरिक्त 'होलोग्राफी' जैसे आविष्कारों से अब चतुर्थ आयाम भी सिद्ध हो चुका है । आइन्सटीन के अनुसार टाइम, स्पेस और कॉंजेशन भी तीन अन्य आयाम हैं । आध्यात्मवेत्ता इसी ब्रह्माण्ड में लोकों की संगति स्थूल, सूक्ष्म, कारण की तरह अधिक व्यापक एवं अधिक सूक्ष्म स्तर की उन परिस्थितियों को लोक कहते हैं जिनमें चेतन सत्ता को भी अपना अस्तित्व बनाये रहने तथा काम करने, अनुभूति लेने का अवसर मिलता है । आकाश में वायुमण्डल की, तरंगों की, ऊर्जा की परतें उपलब्ध होती हैं । लोकों की भी चेतना-जगत की ऐसी ही परतें होनी चाहिए । इस प्रकार की अनेकों संगतियाँ लोकसत्ता के समर्थक बुद्धिजीवी अपने-अपने ढंग से बिठाते रहते हैं ।

देखना यह है कि विज्ञान के आधार पर लोक-लोकान्तरों की परम्परागत मान्यता के साथ संगति खाने वाली कोई तुक बैठती है या नहीं ? इस सन्दर्भ में उड़नतश्तरियों की बात बहुचर्चित है । आसमान से जमीन पर आने वाले किन्हीं यानों की, उनसे उतर कर कुछ हलचल करने वाले प्राणियों की आश्चर्यजनक और कौतूहलवर्धक अनेकानेक घटनाएँ पिछले दिनों चर्चा का विषय

रही हैं । उपलब्ध प्रमाणों में सार देखकर अमेरिका सरकार ने इस सम्बन्ध में एक उच्चस्तरीय जाँच आयोग भी बिठाया था । घटनाओं को उसने तथ्यपूर्ण तो माना पर यह निष्कर्ष अनिर्णीत ही छोड़ दिया गया कि वे घटनाएँ किस प्रकार घटीं । विज्ञान की कसौटी पर जो कारण सही सिद्ध हो सकते थे वे मिल नहीं सके और अध्यात्म मान्यता के आधार पर जिस प्रकार की संगति बैठ सकती थी उसे अपनाया नहीं गया । अस्तु समय-समय पर दृश्यमान होती रहने वाली उड़नतश्तरियों और उनकी समझदार प्राणियों जैसी गतिविधियों का अस्तित्व अभी भी रहस्यमय बना हुआ है ।

विज्ञान ने इन्हीं दिनों कुछ नये आधार ऐसे पाये हैं जिनके आधार पर आकाशस्थ पदार्थ पिंडों की ही तरह ऐसे अदृश्य लोकों के सम्बन्ध में पता चलता है, जिनमें मनुष्य जैसे प्राणियों के निवास की सम्भावना का आधार बनता है । वहाँ से आवागमन का मार्ग भी धरती पर हो सकता है । इस सन्दर्भ में भी कुछ ठोस तथ्य सामने आये हैं और वे ऐसे जिन्हें ऐसे ही मजाक में नहीं उड़ाया जा सकता ।

इस प्रसंग में पृथ्वी पर एक 'ब्लैक होल' के अस्तित्व का होना, कभी रहस्य भर था, पर अब यह माना जाने लगा है कि प्रकृति के अगणित कौतूहलों में से एक यह भी है । भयावह होते हुए भी उसकी सत्ता प्रत्यक्ष प्रमाण की तरह सामने है ।

३० जनवरी, १९४८ को लन्दन से 'स्टार-टाइगर' नामक हवाई जहाज 'किंगस्टन' जा रहा था । बारमूडा हवाई अड्डे पर उसे ईंधन लेना था । जहाज में २५ यात्री और ६ कर्मचारी थे । हवाई जहाज के कैप्टेन 'ब्रियन मैकमिलन' थे जो द्वितीय विश्वयुद्ध में 'रॉयल एयर फोर्स' में ३,००० घण्टों से अधिक उड़ान किए हुए थे ।

बारमूडा से पहले के हवाई अड्डे 'एजोर्स' पर आँधी-तूफान के संकेत मिलने पर कैप्टेन ने वहीं ईंधन की सभी टंकियों को पूरी तरह भर लिया जिससे रास्ते में आँधी द्वारा भटक जाने पर भी ईंधन की कमी न हो ।

रात्रि के १२ बजे से ३-१५ बजे के बीच इस हवाई जहाज ने बारमूडा हवाई अड्डे से रेडियो सम्पर्क किया । हवाई जहाज से बारमूडा की दूरी के अनुसार कण्ट्रोल टावर ने बताया कि बारमूडा पहुँचने का समय ३-५६ ए. एम. की बजाय ५.०० ए. एम. होगा । यह विलम्ब विपरीत तेज हवा के द्वारा हवाई जहाज को घसीटे जाने के कारण होने की सम्भावना थी । इसके तुरन्त बाद वह हवाई जहाज गायब हो गया ।

इस दुर्घटना के बाद इंग्लैण्ड की 'ब्रिटिश मिनिस्ट्री ऑफ सिविल एविएशन' ने 'कोर्ट ऑफ इनवेस्टीगेशन' नियुक्त किया । इसके प्रमुख मि. लॉरेन्स कुशे ने कहा—"आज तक जाँच-पड़ताल के लिए दी गई समस्याओं में यह समस्या सर्वाधिक जटिल एवं रहस्यमय है ।" उन्होंने आगे कहा—"स्टार-टाइगर हवाई जहाज गायब होने का रहस्य सर्वदा के लिए रहस्य ही रहेगा ।"

ब्रिटिश मिनिस्ट्री द्वारा इस घटना के कारणों की खोज के लिए कुछ उठा न रखा गया । फिर भी किसी प्रकार की कोई जानकारी न मिल सकी । 'कोर्ट ऑफ इन्वेस्टीगेशन' ने निम्न पक्षों पर जाँच कराई—

(१) यान्त्रिक संचरना की कमियाँ,
(२) मौसम सम्बन्धी विपत्तियाँ,
(३) ऊँचाई की भूलें,
(४) इंजिनों की असफलता ।

इस हवाई जहाज में १७६० हॉर्सपावर के चार इंजिन लगे थे । चार में से किन्हीं दो इंजनों के द्वारा वह अच्छी तरह उड़ान कर सकता था । इंजिन में कोई कमी होने पर खतरे के संकेत मिलने की स्वसंचालित व्यवस्था थी ।

इसके अतिरिक्त आग लगना रेडियो फेल्योर, हवाई जहाज पर नियन्त्रण न होना और ईंधन की कमी (परिस्थितियों को देखते हुए) जैसी कोई सम्भावना नहीं थी ।

कोर्ट ने यह भी बताया कि वायुमण्डल में उस समय कोई ऐसा गम्भीर परिवर्तन नहीं हुआ, न कोई विद्युतीय तूफान था । इस घटना के तुरन्त बाद ४८ घण्टों तक इतना तीव्र आँधी-तूफान चलता रहा है कि उसकी हवाई शोध को स्थगित कर देना पड़ा । ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उस समय पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति में अति तीव्र परिवर्तन हुआ होगा । अन्य आयामों के बारे में भी विचार किया जा सकता है ।

इस घटना के लगभग एक वर्ष बाद १७ जनवरी, १९४९ को 'स्टार-टाइगर', 'कासिस्टर प्लेन', 'स्टार एरियल', 'किण्डली-फील्ड' बारमूडा हवाई अड्डे से ८-४१ ए. एम. पर किंगस्टन के लिए रवाना हुआ । उड़ान शुरू करने के १ घण्टे बाद हवाई जहाज के पायलेट कैप्टेन जे. मैक्फी की ओर से रेडियो संकेत मिले कि वह अपने रास्ते पर ठीक प्रकार चला जा रहा है । उसके तुरन्त बाद उससे संदेश मिलना बन्द हो गए और वह अदृश्य हो गया ।

इसकी जाँच के लिए समुद्री एवं हवाई बेड़ों का सशस्त्र जहाजी दस्ता पाँच दिन तक लगा रहा । फिर भी उसका कोई अवशेष चिह्न न मिला । 'स्टार-एरियल' की दुर्घटना का कारण अभी तक अज्ञात है ।

यह इसी शताब्दी की घटनाएँ हैं जिन्होंने वैज्ञानिकों के मामले को गम्भीर समझने, अधिक खोज-बीन करने और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाधित किया है । इससे पूर्व पिछली शताब्दी में ऐसी ही अनेकों ज्ञात-अविज्ञात घटनाएँ होती रही हैं जिनका कारण समझ में न आने पर उन्हें दैवी दुर्विपाक मान लिया गया और रहस्य कहकर किसी प्रकार मन समझा लिया गया । ऐसी घटनाओं में से कुछ इस प्रकार हैं ।

सन् १८०० ई. की २० अगस्त को 'यू. एस. एस. पिकरिंग' नामक जलयान जो 'न्यू कैसिल' से ग्वाडेलोय जा रहा था, गायब हो गया जिसमें जहाज के ९० कर्मचारी थे ।

अगस्त १८०० में दूसरा जहाज, जिसका नाम था 'यू. एस. एस. इन्सर्जेण्ट', ३४० यात्रियों सहित बारमूडा त्रिकोण में लापता हो गया ।

इसी प्रकार अक्टूबर १८१४ में 'यू. एस. एस. वास्व' नामक जलयान, जिसमें १४० कर्मचारी थे, बारमूडा में गायब हो गया ।

सन् १८४० में 'रौसेली' नामक मालवाहक जलयान में से सबके सब कर्मचारी गायब हो गए । केवल कुछ पीड़ित बिल्लियाँ और कनारी चिड़ियों के कुछ पिजड़े रह गए । बहुमूल्य सामान सब ज्यों का त्यों पड़ा रहा । 'रौसेली' नामक जहाज को बचाने

के लिए 'नासो' नामक जहाज से बाँधकर खींचा गया तो दोनों का कहीं नामोनिशान भी न रहा ।

अप्रैल १९७४ में एक ५४ फीट लम्बी 'साबा बैंक' नामक नाव कैरिबियन समुद्र में परिभ्रमण के लिए जा रही थी (जो सुरक्षा के आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित थी) । नासो और मियामी के बीच अदृश्य हो गई । उसका आज तक कोई पता न चला ।

सारा समुद्र तट 'कोस्ट-गार्ड' की ओर से खोज डाला गया । यात्रियों के सम्बधियों ने नाव की जानकारी देने वाले को इनाम की मोटी रकम घोषित की । इसके वाबजूद भी कोई नहीं मिली ।

जनवरी १९२१ में गन्धक ले जाने वाला 'हेविट' नामक जहाजी बेड़ा 'सेबिन पास टेक्सास' से रवाना हुआ लेकिन अपनी मंजिल बोसृन तक कभी न पहुँच सका । मात्र उसका अन्तिम सन्देश फ्लोरिडा के 'जुपिटर' नामक टापू के पास एक दूसरे जहाज पर सुना गया । १९२१ के प्रथम तीन महीनों में ही ऐसे १० भारी जहाज इस बारमूडा ट्रैंगिल में ही गायब हो गए ।

जुलाई १९७३ में इसी स्थान के समीप ६३ लम्बी मछली पकड़ने की यान्त्रिक बोट साफ मौसम में भी गायब हो गईं । नाव किंगस्टन से जमैका की ८० मील की समुद्री यात्रा पर थी । उसमें ४० आदमी थे । उसका कुछ पता न चला केवल कुछ टूटे-फूटे टुकड़े पाये गए ।

फरवरी १९७२ में एक ५७२ फुट का 'बी. ए. फाग' नामक टैंकर मैक्सिको की खाड़ी की यात्रा पर जा रहा था, 'गाल्वेस्टन' के दक्षिण में कहीं गायब हो गया । नियत समय पर न पहुँच पाने के कारण उसकी खोज-बीन करने पर मात्र पोत का भग्नावशेष और उसमें बुरी तरह फँसकर मरे कर्मचारियों के शव हाथ लगे ।

यह सब कहाँ समा गए ? इसका उत्तर विज्ञान ने अन्तरिक्ष में ऐसे 'ब्लैक होलों' का अस्तित्व खोज कर दिया है जो मात्र अदृश्य आकाशीय भँवर ही नहीं वरन् लोक-लोकान्तर तक जाने वाली गुप्त सुरंगों का काम भी देते हैं ।

अपनी धरती पर अब तक मात्र एक ही 'ब्लैक होल' का पता चला है—'बारमूडा त्रिकोण' । क्योंकि वह जलयानों और वायुयानों के आवागमन मार्ग पर है । आवश्यक नहीं कि मात्र यह एक ही हो । अपने पृथ्वी पर ऐसे अनेकों सुविस्तृत क्षेत्र हैं जिनमें मानवी आवागमन अभी सम्भव नहीं हुआ है या आवश्यक नहीं समझा गया है । हो सकता है कि उन क्षेत्रों में कोई और ब्लैक होल हो । आवश्यक नहीं कि वे धरती के पदार्थ को ऊपर ही उड़ा ले जाते हों, हो सकता है उनमें से कुछ ऐसी प्रकृति के भी हों जो अन्य लोकों के पदार्थों एवं प्राणियों को अपनी धरती पर भी लाते हैं और हवाई पट्टी का काम करते हैं ।

पिछले पृष्ठों में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया गया है जिनमें समय-समय पर धरती के पदार्थों और प्राणियों के अदृश्य हो जाने का विवरण है । यह शृंखला बहुत लम्बी है । पिछली शताब्दियों की ज्ञात और अविज्ञात घटनाओं का तारतम्य जैसे-जैसे प्रकाश में आता जायेगा, यह विदित होगा कि यदि समय रहते यह जानकारी मनुष्य के हाथ लग गई होती तो उस क्षेत्र से दूर रहा जा सकता था और होती रही भयावह क्षति से बचाव हो सकता था ।

१२ सितम्बर, १९७१ को कैप्टेन जॉन रोमेरो एवं उसके साथी पायलेट ने फ्लोरिडा के 'होम स्टेड एअर बेस' से 'जेट-फेन्टम द्वितीय' में उड़ान की । रेडार यन्त्र से 'मियामी' के दक्षिण-पूर्व में जेट को उड़ते देखा गया, उसके तुरन्त बाद वह रेडार के परदे पर दिखाई न दिया । 'एअर फोर्स' एवं 'कोस्टल गार्ड' के द्वारा बड़े पैमाने पर विस्तृत खोज की गई, परन्तु गायब हुए 'जेट एअर लाइनर' का चिह्न प्राप्त नहीं हुआ । आधिकारिक निर्णय खुला छोड़ दिया गया अर्थात् कोई निष्कर्ष नहीं निकला ।

जून १९६५ में 'फ्लाइंग बॉक्सर ए. सी. ११९ विस्कान्सिन' की उड़ान प्रारम्भ हुई । उसमें १० कर्मचारी थे । 'ग्रान्ड ट्रन्क रोड-द्वीप' पर माल पहुँचाना था । उड़ान के कुछ समय बाद 'बहरमा' के उत्तर तट से जहाज का आखिरी रेडियो सन्देश मिला । उसके तुरन्त बाद वह अदृश्य हो गया । शोध करने पर कुछ ऐसे अवशेष चोक आदि पाये गए जो यह प्रदर्शित करते थे कि वे जहाज से गिर गए हों । दुर्घटना या यान्त्रिक संरचना की गड़बड़ी का कोई संकेत नहीं मिला । उस समय मौसम भी अच्छा था ।

उस समय 'जेमिनी चार' नामक उपग्रह भ्रमण-कक्षा में था । उसके संकेतों से 'कैरेबियन' समुद्र तट पर एक सफेद धब्बा दिखाई दे रहा था । सम्भवतः वह यूफो (यू. एफ. ओ.) था । वैज्ञानिक उस सफेद धब्बे का कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सके ।

जुलाई १९४९ को 'मियामी इन्टरनेशनल एअर पोर्ट के 'फ्लाइट-कन्ट्रोलर' 'कार्लटन हेमिल्टन' एक हवाई जहाज सी-४६ के पायलेट को गाइड कर रहे थे । पायलेट 'बोगोटा' से आ रहा था और कन्ट्रोलर का परिचित था । कन्ट्रोल टॉवर से ४० मील से कम दूरी पर से उसके संकेत मिल रहे थे, परन्तु एकाएक वह अदृश्य हो गया । बार-बार विभिन्न रेडियो सूत्रों से सम्पर्क करने का प्रयत्न किया गया परन्तु सम्पर्क न हो सका । १५ मिनट के अन्दर ही उसकी खोज की गई—उसका कोई अवशेष चिह्न नहीं मिला । अधिकारीगण कोई निर्णय न कर सके ।

कार्लटन हैमिल्टन के अनुसार समय-समय पर कुछ अदृश्य इलेक्ट्रोमैग्नेटिक विक्षोभों के कारण रेडियो एवं इलेक्ट्रॉनिक उपकरण अपना कार्य करना बन्द कर देते हैं जिसके फलस्वरूप यन्त्र तथा मानव शरीर भी अदृश्य हो जाते हैं । नवम्बर १९७१ में 'लकीएडर' नामक मछली पकड़ने वाली २५ फुट लम्बी यान्त्रिक नाव 'जरसी' के दक्षिणी समुद्र तट पर पायी गई । किसी भी कर्मचारी का पता न चला । 'लाइफ-प्रिजर्बर्स' दस रखे थे—ज्यों के त्यों रखे पाये गए । विस्तृत खोज किए जाने पर भी कोई जानकारी न मिल सकी कि आखिर कर्मचारी कहाँ गायब हो गए । दिसम्बर १९४५ में पाँच फाइटर हवाई जहाज फ्लोरिडा के 'फोर्टलाडर डेल' हवाई अड्डे से नियमित 'ट्रेनिंग एक्सरसाइज' की उन्नीसवीं उड़ान कर रहे थे जिनकी उड़ान पूरी होने का समय ३-४५ (पी. एम.) था । उड़ान के पूर्व प्रत्येक हवाई जहाज की यान्त्रिक कमियों की जाँच की गई थी । सुरक्षा के सभी उपकरणों से हवाई जहाज सुसज्जित थे एवं दुर्घटना होने पर बाहर निकलने थे । मौसम बिल्कुल साफ था । ३-४५ उड़ान पूरी होने का समय था—उस समय तक किसी भी हवाई जहाज से कोई सन्देश नहीं पाया गया । ६-३० से कुछ मिनट पूर्व इन हवाई जहाजों

से संकेत मिले और रेडार पर भी दिखाई दिए, उसके तुरन्त बाद वे अदृश्य हो गए ।

इनकी शोध के लिए आठ-दस 'रेस्क्यू प्लेन' भेजे गए । उनमें से एक रेस्क्यू प्लेन भी गायब हो गया । अधिक जानकारी प्राप्त करने पर पता चला कि फ्लाइट के कप्तान ने उस दिन उड़ान की अनिच्छा प्रकट की थी, अपनी घड़ी भी नहीं पहनी और रेडियो को 'इमरजेन्सी चैनल' पर भी रखने से इन्कार कर दिया । बचाव के लिए भेजा गया 'रेस्क्यू प्लेन' उसी दिन ७-२७ पर निकला । ८-३० तक उसकी प्रतीक्षा करने के उपरान्त उसको गायब समझा गया । कन्ट्रोल टॉवर से उसने सम्पर्क भी नहीं किया । ७-५० पर हवा में विस्फोट होने की रिपोर्ट भर मिली थी । अधिकारिक जाँच करने वाले किसी निर्णय पर न पहुँच सके । आत्म-विस्मृति और अदृश्य होने की सम्भावना बतायी ।

ब्लैक होलों के माध्यम से अदृश्य हुए मनुष्य और पदार्थ आखिर चले कहाँ जाते हैं और फिर जहाँ पहुँचते हैं वहाँ उनकी क्या स्थिति होती है ? इस सम्बन्ध में विज्ञान की पहुँच अभी उतनी लम्बी नहीं हुई है जितनी कि ऐसे रहस्यों पर से पर्दा उठाने के लिए आवश्यक है । फिर भी कुछ अतिरिक्त सूत्र ऐसे हाथ लगे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि यह 'ब्लैक होल' किसी अन्य लोक के साथ धरती का सम्बन्ध जोड़ते हैं और जो कुछ इस मार्ग से खींचा घसीटा जाता है वह नष्ट नहीं होता वरन् सुरक्षित रहने के साथ-साथ अच्छी स्थिति में भी बना रहता है ।

इस सन्दर्भ में अनायास ही एक रेडियो वार्ता किसी ऐसे मनुष्य के साथ हो गई जिससे मनुष्य लोक से 'ब्लैक होल' के मार्ग से पहुँचे हुए मनुष्यों की स्थिति का कुछ आभास मिलता है ।

सन् १९७५ की १८ अप्रैल की रेडियो सुनने वाले डब्ल्यू. एफ. टी. एल. स्टूडियो (फ्लोरिडा के लॉडरडेल स्टूडियो) से अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए सम्पर्क करने का प्रयत्न कर रहे थे । स्टूडियो के प्रोग्राम डायरेक्टर रे. स्मिथर्स की टेबिल पर एक 'की बोर्ड' था । जिसमें उपयोक्ता (सब्सक्राइवर) नम्बर संकेत मिल जाता था । संकेत के क्रमानुसार उन्होंने फोन उठाए—पहले फोन से कोई जबाव नहीं आया, दूसरा उठाया—कोई जबाव नहीं मिला । दुबारा इसी प्रकार नौ टेलीफोन उठाने पर भी उन्हें जबाव नहीं मिला ।

अचानक एक सन्देश सुनाई दिया जिसमें अदृश्य लोक की स्थिति की जानकारी पृथ्वी वालों को बताने की चेष्टा की गई थी । संदेश इस प्रकार था—(१) जिस लोक से हम बात कर रहे हैं । वहाँ प्रत्येक जीवित वस्तु की आभा (औरा) होती है । (२) उसी प्रकार इस लोक की भी अपनी आभा है । जिस क्षेत्र से सम्बन्धित आप बात कर रहे हैं, वह इस 'औरा-प्रदेश' में पड़ता है । (३) 'मिलियन काउन्सिल' इस ग्रह का नियन्त्रण कर रहा है । बारमूडा प्रदेश उस नियन्त्रण माध्यम का क्षेत्र है । (४) 'चैनल, खुली होने के समय इसमें जो प्रवेश करते हैं, वे अदृश्य नहीं हो जाते । जीवित स्वस्थ अवस्था में कालातीत शून्य में हैं । (५) इस ग्रह के साथ कौंसिल से सम्पर्क स्थापित करने के लिए केवल यही एक मार्ग है । बात अधूरी रह गई और वार्ताक्रम टूट गया ।

इस रहस्य को सुलझाने के लिए अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न प्रसिद्ध महिला 'प्रेग ब्रायन्ट' को बुलाया गया जो ऐसे प्रसंगों पर प्रकाश डालने—रहस्योद्घाटन करने के लिए प्रख्यात थी । 'रेडियो स्टुडियो' में आते ही वह ध्यानमग्न हो गई । कुछ मिनट बाद उसकी आँखों से आँसू बहने लगे । रे. स्मिथर्स के द्वारा पूछे जाने पर उस महिला ने बताया "मैंने एक मृतक वायुयान चालक को देखा है जो सन् १९६९ में बारमूडा क्षेत्र से गायब हो गया था ।"

दूसरी बार स्मिथर्स महोदय ने उस महिला से— १९६९ में गायब हवाई बेड़े के कप्तान 'गलीबान' से सम्पर्क करने को कहा । 'प्रेग-ब्रायन्ट' ने कहा—"इसके ठीक-ठीक संकेत नहीं मिल रहे हैं । सही संकेत प्राप्त करने के लिए वह घटनास्थल पर कई बार गई । अन्त में उसने बताया कि वे लोग ऐसे आयाम में रहते हैं जिसे हम मृतलोक कहते हैं ।

रे. स्मिथर्स ने 'प्रेग' से तीसरा प्रश्न पूछा—"वहाँ क्या विशेषता है ? उसने बताया कि उस त्रिकोण क्षेत्र में चुम्बकीय ऊर्जा मालूम होती है जिसका शरीर व मन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप आत्म-विस्मृति हो जाती है ।"

इस रेडियो वार्त्ता को यदि प्रामाणिक माना जा सके तो अन्य लोकों की स्थिति के सम्बन्ध में—वहाँ के आवागमन मार्ग के सम्बन्ध में ऐसी आशा बँधती है कि भविष्य में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध हो सकेंगी ।

बारमूडा त्रिकोण क्षेत्र में पाये गए 'ब्लैक होल' के प्रसंग को ध्यान में रखते हुए शताब्दी के खगोल-वेत्ताओं ने भारी खोज-बीन की है और यह जानने में सफलता पायी है कि आखिर आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले यह अदृश्य भँवर हैं क्या ?

पता चला है कि वह विस्तार के तारे जब मरते हैं तो अपनी स्मृति में एक विचित्र कुतुबमीनार या अशोक की लाठ खड़ी कर जाते हैं। इस विजय स्तम्भों के साथ जितनी विभीषिकाएँ जुड़ी हुई हैं उतने ही असीम शक्ति स्रोत के रूप में उनकी विशेषता भी प्रकाश में आती है । धरती निवासियों को एक ही ब्लैक होल से पाला पड़ा है और वह नितान्त कटु तथा भयानकता भरी छाप ही छोड़कर गया है । इतने पर भी यह कहा जा सकता है कि इस निमित्त जो खोजें हुई हैं वे भावी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में बिजली कोंधने जैसी आशा भरी चमक दिखाते हैं । ब्लैक होलों के माध्यम से लोकलोकान्तरों के मध्य आवागमन की एक कड़ी जुड़ती है । इन भंवरों से भरी असीम शक्ति स्रोत के साथ सम्बन्ध जुड़ जाने पर इतनी ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है कि आवश्यकताएँ बिना किसी कठिनाई के सहज पूरी होती रह सकें ।

ग्रह-तारकों के जीवन-मरण की अन्त्येष्टि और पिण्ड तर्पण प्रक्रिया पर भी इस खोज ने ऐसा प्रकाश डाला है जो इससे पूर्व उपलब्ध नहीं था । प्रयासों को गति मिली तो धरती निवासियों को अपनी मातृभूमि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रह-नक्षत्रों की रिश्तेदारी, बिरादरी का भी बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो सकेगा । कहना न होगा कि जिस प्रकार प्रकृति के अविज्ञात रहस्यों को जाकर मनुष्य निवासी न केवल प्राणि जगत का मूर्धन्य बना है वरन् इस ब्रह्माण्ड में अपनी विशेष स्थिति बनाकर रह रहा है । यह जानकारियाँ जिस अनुपात से बढ़ेंगी उतने ही नये शक्ति स्रोत हाथ लगेंगे । सदुपयोग बन पड़ा तो मनुष्य धरती का नहीं समूची प्रकृति का भी अधिष्ठाता बन सकेगा ।

ब्लैक होलों को मृतक तारा पिण्डों की समाधि कहा जा सकता है । मिस्र के पिरामिड वहाँ के शासकों की सजीव स्मृति हैं । ताजमहल का नाम भी इस सिलसिले में अविस्मरणीय ही

रहेगा । ब्लैक होलों को, मृत तारकों को, कौतूहल युक्त तथा अनेक सम्भावनाओं-रहस्यों से भरी-पूरी वाली समाधि कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी ।

खगोलशास्त्रियों का कहना है कि यदि ब्लैक होल के शक्ति भण्डार का उपयोग किया जा सके तो ऊर्जा के लिए मोहताज न होना पड़े । ब्लैक होल का शक्ति भण्डार अनन्त काल तक चलने वाला होता है, ऐसी मान्यता है ।

कोई एक विशालकाय तारा जब मृत्यु के सन्निकट पहुँचता है तब उस दृश्य का अवलोकन करते हुए खगोलशास्त्रियों ने बताया कि उस अवधि के तारे का प्रकाश करोड़ों गुना बढ़ जाता है । यह इतना अधिक बढ़ता है कि सम्पूर्ण तारा समूह का प्रकाश एक ओर और इस मृतप्राय: तारे का प्रकाश और विकिरण एक ओर । कई अरब वर्षों में एक तारे से जो प्रकाश शक्ति नि:सृत होती है मृत्यु के कुछ घण्टे पूर्व उतनी ही मात्रा में शक्ति व प्रकाश प्रवाहित हो जाता है । यदि अति विशालकाय तारे की मृत्यु का गहराई से अध्ययन किया जाय तो उसकी मृत्यु के साथ कभी-कभी एक ब्लैक होल का जन्म हो जाता है । खगोलशास्त्रियों ने मृतप्राय: तारे की तुलना करते हुए बताया है कि जिस पर ज्वलनशील पदार्थ या लकड़ी से निर्मित ४०-५० मंजिल का मकान जलते-जलते ही टूटकर गिरने लगता है और अन्त में बहुत छोटे रूप में शेष रह जाता है, उसी प्रकार तारा भी जलते-जलते अपने करोड़ों गुने छोटे रूप में संकुचित हो जाता है ।

तारों के सामान्यत: तीन प्रकार होते हैं—(१) वामन, (२) विराट् और (३) समरूप । तारों की पहचान सामान्यत: उनके तापमान से की जाती है, रंग उनके तापमान का द्योतक है । लाल तारे औसतन ठण्डे तारे हैं जबकि नीले तारे अत्यन्त गरम । इन दोनों के बीच नारंगी, पीले, पीत-श्वेत और नील-श्वेत तारे आते हैं । लाल तारों का तापमान दो हजार से तीन हजार सेंटीग्रेट तक है, नारंगी का ४ हजार, पीले का ६ हजार, पीत-श्वेत का ८ हजार और नीले-श्वेत १० हजार । अति नीले तारे का तापमान २० हजार से ३० हजार से सेंटीग्रेट होता है । हमारा सूर्य ६ हजार सेंटीग्रेट तापमान वाला एक पीला तारा है ।

तेजस्वी तारों को 'विराट्' तथा निस्तेज को 'वामन' कहा गया है । हमारा सूर्य 'समरूप' है । श्वेत वामन का तापमान ज्यादा होने पर भी उनकी सतह बहुत छोटी होती है क्योंकि वामन तारे के द्रव्य की घनता बहुत अधिक है ।

सभी तारों की तुलना में नील तारे कम उम्र वाले होते हैं । इन्हें युवा तारे कहते हैं । लाल तारे अधेड़ उम्र के होते हैं । सूर्य जैसे समक्रम तारे अपना स्वरूप कई अरब वर्षों के बाद बदलकर लाल विराट् तारे के रूप में परिवर्तित होते हैं । लेकिन इस स्थिति को प्राप्त करने से पूर्व कई परिवर्तन होते हैं । उसे रूपविकारा (पलसेटिंग) तारा कहते हैं । कई अरबों वर्ष बाद वह श्वेत तारा बनता है ।

अपने सूर्य से जो तारे कम से कम तीन गुने बड़े हैं, उनका ही ब्लैक होल में परिवर्तन हो सकता है । इससे छोटे श्वेत वामन बन जाते हैं । वैज्ञानिकों का कहना है कि जब कोई विराट् तारा अपनी ऊर्जा शक्ति समाप्त कर चुका हो तब वह इतना संकुचित हो जाता है कि प्रकाश भी बाहर नहीं निकल पाता ।

यदि कोई विराट् तारा जो सूर्य से १० गुना बड़ा हो, उसकी मृत्यु हो तो वह ब्लैक होल में परिवर्तित होता है । उस स्थिति में वह कितना संकुचित होता है इसे इस प्रकार समझा जा सकता है । गुरु पृथ्वी से १३ सौ गुना बड़ा है और सूर्य गुरु से १ हजार गुना बड़ा है, तो १० सूर्य जितने आकार का तारा पृथ्वी से १३० लाख गुना बढ़ा होगा । ब्लैक होल बनने के बाद यह विराट् तारा पृथ्वी पर स्थित किसी 'हवाई टापू' जितना रह जाता है । अपने स्वरूप से कितने ही अरबों गुना छोटा हो जाता है ।

ब्लैक होल २ प्रकार के होते हैं—(१) भँवरदार और (२) बिना भँवर वाले । जैसे नदियों में कई स्थान पर गहरे पानी में भँवर होती हैं ठीक उसी प्रकार ब्लैक होल भी अपने पास जाने वाली किसी भी वस्तु को अपनी ओर खींच लेता है । इसी एक लक्षण द्वारा ब्लैक होल का अनुमान लगाया जा सकता है । क्योंकि यह प्रकाश भी सोख लेता है ।

सर्वप्रथम ब्लैक होल सिग्नस (नराश्व) तारा विश्व में पाया गया जिसे सिग्नस एक्स-१ नाम दिया गया । वृश्चिक राशि (स्कोरपिओ) में भी एक ब्लैक होल पाया गया है जिसे जी एक्स ३३९-४ नाम दिया गया है । दिनों-दिन और अधिक ब्लैक होलों का पता लगाया जा रहा है ।

हमारे मंदाकिनी 'तारा विश्व' में ही ५० लाख से अधिक ब्लैक होल होने की सम्भावना है । एक बड़ा ब्लैक होल कन्या राशि में पाया गया है जिसका नाम एम-८५ है एवं पृथ्वी से ६ करोड़ प्रकाशवर्ष दूर है ।

प्रसिद्ध भौतिकविद् 'जॉन ए विलर' की मान्यता है कि एक ब्रह्माण्ड से दूसरे ब्रह्माण्ड में जाने के लिए गुप्त सुरंग मार्ग ब्लैक होल हो सकते हैं ।

क्रैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के अनुसन्धानकर्त्ता स्टीफन होडिंग के अनुसार ब्लैक होल में स्थल और समय का कोई बन्धन नहीं होता । ब्लैक होल के माध्यम से मनुष्य वर्तमान से कई लाखों वर्ष पूर्व और लाखों वर्ष आगे भी पहुँच सकता है ।

स्टीफन ने कहा है कि ब्लैक होल में कण और प्रति कण एक-दूसरे को नष्ट करते रहते हैं ।

जिस प्रकार ब्लैक होल प्रत्येक प्रकार के पदार्थ एवं प्रकाश किरण सोख लेता है और कहीं कुछ दिखाई नहीं देता । इसी ब्रह्माण्ड में खगोलविदों ने ऐसे स्थान पाये हैं जहाँ पहले कुछ नहीं था वहाँ तीव्र गति से प्रकाश एवं अनेकों प्रकार के आयोनाइज कण पाये गए । ऐसे स्थानों को 'ह्वाइट होल' नाम से जाना जाता है । खगोलशास्त्रियों की कल्पना है कि 'ब्लैक होल' और 'ह्वाइट होल' के बीच आपसी सम्बन्ध के माध्यम को 'वर्म होल' कहते हैं ।

ह्वाइट होल की खोज के बाद वैज्ञानिक अनुमान लगा रहे हैं कि संलग्न ह्वाइट होल और ब्लैक होल के माध्यम से किसी अन्य ब्रह्माण्ड में भी पहुँचा जा सकता है क्या ? इस सन्दर्भ में वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि इन संलग्न ब्लैक और व्हाइट होलों के माध्यम से किसी अन्य ब्रह्माण्ड में कुछ ही समय में पहुँच सकते हैं जबकि यदि सीधे मार्ग से चला जाय तो कई अरब वर्ष लग जायेंगे ।

महाभारत काल में भगीरथ से पूर्व सगर राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया था । इस यज्ञ का घोड़ा घूमते-घूमते किसी ऐसे अज्ञात

स्थान में पहुँच गया जिसका पता नहीं लगा । उसे ढूँढ़ने में ६० हजार का जन-समुदाय भी गायब हो गया । किंवदन्ति है कि वे सब पाताल पहुँच गए और भगीरथ ने तप द्वारा गंगा अवतरण कर उनका उद्धार किया । सम्भवतः ऐसी ही कुछ गति इन तारकों की भी होती होगी ।

१९८० में 'स्पेस शटल' नामक अन्तरिक्ष यान पर गामा-किरण सम्वेदनशील टेलिस्कोप लगाने की योजना थी । जो ऐसे ब्लैक होलों का पता लगा सके । वर्ष १९८२ में यह योजना पूरी हो गई है ।

यदि हमारे सूर्य-मण्डल में ऐसे कुछेक ब्लैक होलों का पता लग सके तो उसके ऊर्जा भण्डार का उपयोग कर सकते हैं । ब्लैक होल की प्रचण्ड ऊर्जा शक्ति को माइक्रोवेव में परिवर्तित करके पृथ्वी की भ्रमण कक्षा में प्रवेश करने की कल्पना वैज्ञानिक कर रहे हैं । अनुमान है कि अनन्त काल तक विश्व की ऊर्जा ईंधन की समस्या का हल हो सकता है ।

यह अनुमान उन अनन्त सम्भावनाओं में से एक है जिनमें ब्लैक होलों से लाभान्वित होने की बात सोची गई है । अधिक महत्त्वपूर्ण बात वह है जिसमें लोक-लोकान्तरों के आवागमन का द्वार खुलता है और उनके साथ आदान-प्रदान का सिलसिला चल पड़ने पर ऐसी सम्भावनाओं का स्वरूप निखरता है जिसमें मनुष्य की स्थिति पौराणिक देवताओं से कम नहीं वरन् अधिक अच्छी ही रहेगी ।

ब्रह्माण्ड में विद्यमान विकसित सभ्यताएँ

सृष्टि का विस्तार असीम है । जितनी जानकारियाँ अब तक मिल पायी हैं वे इतनी अल्प हैं कि उनके आधार पर सब कुछ जानने का दावा नहीं किया जा सकता । सीमित बुद्धि अपनी प्रतिभा, योग्यता एवं वर्चस्व का गुणगान भले ही कर ले पर इतने मात्र से वह सर्वज्ञ नहीं हो सकती । कितने ही तथ्य एवं रहस्य ऐसे हैं जिनके सन्दर्भ में मनुष्य अब भी कुछ नहीं जान सका है । बुद्धि, बल एवं विज्ञान भी उनको समझ सकने में असमर्थ रहा है । अपनी सभ्यता के लिए भी वह अभिमान नहीं कर सकता न ही इस बात की घोषणा की जा सकती है कि चेतन प्राणियों का अस्तित्व मात्र पृथ्वी तक सीमित है । जो प्रमाण मिले हैं उनसे पता लगा है कि अन्यान्य ग्रहों पर भी जीवन है । ब्रह्माण्ड में पृथ्वी से अधिक विकसित सभ्यताओं की सम्भावना भी की जा रही है ।

सम्भव है अन्य ग्रहों के जीवों का आकार-प्रकार, जीवन-यापन का तरीका पृथ्वीवासियों से सर्वथा भिन्न हो । आवश्यक नहीं कि यहाँ की परिस्थितियाँ जीवित रहने के लिए पृथ्वी जैसी हों । उनकी आवश्यकताएँ तथा अभिरुचियाँ भिन्न भी हो सकती हैं । जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन जीवधारियों के लिए आवश्यक है । पर अन्य ग्रहों पर स्थिति उल्टी भी हो सकती है । जरूरी नहीं है कि वे इन आँखों से दिखाई ही पड़ें । त्रिआयामिक दृश्य जगत से उनकी स्थिति अलग भी हो सकती है । सम्भव है वे सशरीर अन्य ग्रहों में पृथ्वी आदि की टोह लेने के लिए भी उतरते हों । हमारी आँखें उनको देख पाने में असमर्थ हों ।

यह मात्र कल्पना नहीं वरन् एक तथ्य है । समय-समय पर दिखाई पड़ने वाली उड़नतश्तरियों के प्रमाण उस तथ्य की पुष्टि करते हैं । उड़नतश्तरियों की बनावट, अचानक प्रकट होकर लुप्त हो जाना कुशल वैज्ञानिक मस्तिष्क एवं विकसित सभ्यता का प्रमाण देती है । सैकड़ों वर्षों से वैज्ञानिक यह जानने का प्रयत्न कर रहे हैं कि ये अचानक कहाँ से प्रकट होती तथा कहाँ चली जाती हैं पर उनके ये प्रयत्न असफल ही सिद्ध हुए हैं । मात्र उनकी संरचना एवं मिले प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि जहाँ से उड़नतश्तरियाँ आती हैं, वहाँ की सभ्यता पृथ्वी की तुलना में कहीं अधिक विकसित है ।

उड़नतश्तरियाँ अनेकों बार देखी गई हैं तथा अपने रहस्यों को साथ समेटे देखते-देखते आँखों से ओझल हो गई हैं । सन् १९४७ में अमेरिका के पश्चिमी तट राकोमा के निकट मोटर बोट में बैठे दो रक्षक एच. ए. डहल एवं फ्रैड के क्रैसवैल समुद्र तट की निगरानी कर रहे थे । अचानक डहल ने दो हजार फीट की ऊँचाई पर आकाश में छः फुटबाल की तरह गोल आकृति की मशीनों को घूमते हुए देखा, पाँच मशीनें एक के चारों ओर घूम रही थीं । वे क्रमशः नीचे उतरने लगीं और सागर से मात्र ५०० फुट की ऊँचाई पर आकर रुक गईं । तट के रक्षक डहल ने अपने साथी की सहायता से अपने कैमरे से एक फोटो खींचने का प्रयत्न किया । अभी कैमरे का स्विच दबाया ही था कि आकाश में जोर का धमाका हुआ । आकाश में उड़ने वाली मशीनों में से बीच की मशीन फट गई । मोटर बोट में सवार अंगरक्षक छलाँग लगा कर पास की एक गुफा में घुस गए । पर उनके साथ का कुत्ता वहीं मर गया । कुछ देर बाद बाहर निकले तो देखा आकाश में उड़ने वाली वस्तुओं का नामोनिशान नहीं है । विस्फोट से फटी मशीन के टुकड़े तट पर बिखरे थे जो चमकीले एवं गरम थे । दुर्घटना की सूचना तट रक्षकों ने मोटरबोट में लगे ट्रान्समीटर द्वारा देनी चाही पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि किसी ने रेडियोलॉजीकल मशीन से मोटर बोट में लगे ट्रान्समीटर को जाम कर दिया है ।

निरीक्षण को आये अनुसन्धान दल ने वाशिंगटन के उक्त टापू मरे पर लगभग २० टन धातु के टुकड़े एकत्रित किए । परीक्षा पर मालूम हुआ कि धातु के टुकड़ों में अन्य सोलह धातुओं का सम्मिश्रण हैं तथा उनके ऊपर कैल्सियम की मोटी चादर चढ़ी है । वैज्ञानिकों को यह जानकर विशेष आश्चर्य हुआ कि इन धातुओं में से एक भी पृथ्वी पर नहीं पायी जाती । वे इनके नाम तक बता पाने में असमर्थ रहे । उन्होंने सम्भावना व्यक्त की कि अन्तरिक्ष यान विशेष शक्तिशाली आण्विक यन्त्रों से संचालित था ।

लेकन हीथ (इंग्लैण्ड) १३ अगस्त, १९५६ को रात्रि तीन बजे रायल एयरफोर्स के दो राडार स्टेशनों से तेज गति से उड़ती हुई उड़नतश्तरियों को देखा । पृथ्वी से मात्र ११०० मीटर की ऊँचाई पर साढ़े तीन हजार किलोमीटर प्रति घण्टा की गति से ये विचित्र संरचनाएँ पश्चिम दिशा की ओर उड़ रही थीं । रायल एयरफोर्स के एक लड़ाकू विमान ने इनका पीछा किया किन्तु देखते-देखते वे अदृश्य हो गईं ।

१० अक्टूबर, १९६६ को सायं ५ बजकर २० मिनट पर 'न्यूटन इलिनाय' (अमेरिका) में पृथ्वी से मात्र १५ मीटर की ऊँचाई पर एक यान जैसी वस्तु उड़ती दिखाई दी । देखने वालों

ने बताया कि वह मात्र ६ मीटर लम्बी, २ मीटर व्यास वाली, 'सिगार' की शक्ल जैसी थी । जो एल्युमिनियम जैसी किसी चमकीली धातु से बनी प्रतीत होती थी । अग्रभाग का छिद्र प्रवेश द्वार जैसा लगता था, उड़ती हुई वस्तु के चारों ओर हलकी नीली रंग की धुंध छाई थी । यान से किसी प्रकार की ध्वनि तो नहीं सुनाई पड़ रही थी पर वातावरण में एक विचित्र प्रकार के कंपन का आभास मिल रहा था । कुछ मिनटों के बाद यह वस्तु गायब हो गई ।

पिछले दिनों भारत में भी उड़तश्तरियाँ देखी गईं । ३ अप्रैल, १९७८ को अहमदाबाद में उदयपुर विश्व- विद्यालय के प्रो. दिनेश भारद्वाज ने रात्रि नौ बजे तश्तरी जैसी किन्हीं चीजों को उड़ते देखा । वे प्रकाश पुन्ज जैसी समानान्तर एक साथ उड़ती रही थीं । पर अचानक एक-दूसरे के विपरीत दिशा की ओर मुड़ गईं तथा कुछ देर बाद लुप्त हो गईं । वैज्ञानिकों का कहना है कि उन्हें उल्का पिण्ड नहीं माना जा सकता क्योंकि उल्का पिण्ड अपनी इच्छानुसार दिशा नहीं बदल सकते । उन्हें किसी कुशल मस्तिष्क द्वारा संचालित माना जाना चाहिए ।

अपने अन्दर अनेकों रहस्य छिपाये हुए वैज्ञानिकों को चुनौती देती हुई ये उड़नतश्तरियाँ समय-समय पर दिखाई पड़ती हैं । पृथ्वीवासियों की वैज्ञानिक क्षमता, बुद्धि का उपहास करते हुए आँखों से ओझल हो जाती हैं । उनकी शक्ति, सामर्थ्य का अनुमान इस बात से लगता है अनकों बार प्रयत्न किए जाने के बाद भी मनुष्य उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जान सका है । पीछा करने वाले यान असमर्थ रहे हैं । इन विचित्र आकृतियों के साथ सुरक्षा की भी पूरी व्यवस्था है । यही नहीं खतरे की सम्भावना भी उन्हें तुरन्त मिल जाती है ।

कितनी बार तो पीछा करने वाले यानों के चालकों को जीवन से हाथ धोना पड़ा है । उनकी वैज्ञानिक क्षमता बढ़ी-चढ़ी है इसका अनुमान इस घटना से लगता है । 'मेलबोर्न' २४ अक्टूबर, ७८ को एक विमान चालक सहित एक उड़नतश्तरी जैसी धातु को देखने के बाद लापता हो गया । बीस वर्षीय युवा चालक श्री 'फ्रेडरिक वाकेटिच' ने आस्ट्रेलिया एवं तस्मानिया के बीच चाटर्ड उड़ान भरी । चालक फ्रेडरिक ने हवाई अड्डे के ऊपर से चाटर्ड रेडियो सन्देश द्वारा अधिकारियों से पूछा कि १५२४ मीटर की ऊँचाई पर उसी क्षेत्र में कोई दूसरा विमान तो नहीं उड़ रहा है । फ्लाइट सर्विस ने नकारात्मक उत्तर दिया । फ्रेडरिक ने अधिकारियों से बताया कि वह १८२ मील दूर १३७ मीटर की ऊँचाई पर किंग आइसलैंड के पास से उड़ रहा है । उसे एक लम्बी आकार की वस्तु तेज गति से उड़ती दिखाई पड़ रही है । वह मेरे विमान के ऊपर आकर चक्कर काट रही है । तभी धातु के टकराने जैसा शोर सुनाई पड़ा तथा विमान का सम्पर्क नियन्त्रण कक्ष से टूट गया । मेलबोर्न हवाई अड्डे से अनेकों जहाजों ने खोज के लिए उड़ान भरी किन्तु चालक और यान का कुछ भी पता न चल सका । न ही दुर्घटना का कोई चिह्न मिला ।

पृथ्वी के वैज्ञानिक अन्यान्य ग्रहों की स्थिति का पता लगाने के लिए प्रयत्नशील हैं । समय-समय पर वैज्ञानिकों के दल अन्तरिक्ष में खोज के लिए जाते हैं । अन्य ग्रहों की स्थिति के खोज का कार्य मात्र मनुष्यों द्वारा ही नहीं किया जा रहा है वरन् जो प्रमाण मिले हैं उनसे पता चलता है कि अन्य ग्रहों पर पृथ्वी की तुलना में अधिक विकसित सभ्यताएँ हैं । वे भी खोज के लिए पृथ्वी पर आते रहते हैं । 'इन्डियन एक्सप्रेस' ५ जनवरी, १९७९ में प्रकाशित समाचार के अनुसार दक्षिण अफ्रीका जोहान्सबर्ग के निकट एक महिला एवं उसके पुत्र ने अपने घर के निकट एक उड़नतश्तरी को उतरता हुआ देखा । उड़नतश्तरी की अन्य घटनाओं से इसमें भिन्नता यह थी कि श्रीमती की गन क्वीगेट ने यान जैसी आकृति के निकट पाँच मनुष्य की शक्ल से मिलते जीवों को खड़े देखा ।

अलग-अलग इन्टरव्यू लेने पर उसके पुत्र ने भी यही बात बताई । श्रीमती क्वीगेट ने बताया कि जैसे ही उसने अपने पुत्र से कहा कि, "अपने पिता को बुलाओ" यान के निकट खड़े सभी व्यक्ति उड़नतश्तरी में बैठ गए और कुछ ही क्षणों में वह यान हवा में विलीन हो गया । पूरी घटना में ५ या ६ मिनट लगे होंगे ।

अमेरिकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर ने भी उड़नतश्तरी देखी । अमेरिका के वैज्ञानिकों ने उड़नतश्तरियों को अपने शोध का विषय बनाया है । इसका नाम उन्होंने रखा है अनाइडेण्टीफाइड फ्लाइंग ऑब्जेक्टस, (यू. एफ. ओ.), 'जे. एल. हाइनेक' ने नॉर्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी में यू. एफ. ओ. अध्ययन केन्द्र की स्थापना की है । इस शोध संस्थान का कार्य रहस्यमय उड़ने वाली वस्तुओं के सन्दर्भ में तथ्य एवं जानकारी एकत्रित करना है ।

अब वैज्ञानिकों में भी यह मान्यता परिपुष्ट हो रही है कि सभ्यता पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है । डॉ. फ्रेडमैन जैसे वैज्ञानिकों का विश्वास है क़ि जीवन और सभ्यता अन्य ग्रहों पर भी है जो पृथ्वी की तुलना में कहीं अधिक विकसित है । इसका प्रमाण है कुशल वैज्ञानिक यन्त्रों से सुसज्जित रहस्यमय उड़नतश्तरियाँ । जिनका रहस्योद्घाटन कर सकना वैज्ञानिकों द्वारा अब तक सम्भव नहीं हो सका है । डॉ. फ्रेडमैन ने सम्भावना व्यक्त करते हुए कहा कि पृथ्वी ऊर्जा का स्रोत है । सम्भव है अन्य ग्रहों के निवासी पृथ्वी पर ऊर्जा संग्रह करने आते हैं और इस कार्य के लिए उन्होंने वैज्ञानिक तकनीकी का विकास कर लिया हो ।

बहुत समय पूर्व सन् १९५९ में रूसी वैज्ञानिक एलेक्जेंडर काजन्तसेव ने अपने अनुसंधान कार्यों के उपरान्त घोषणा की थी कि जिस प्रकार हम चन्द्रमा और अन्य ग्रहों की जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के यानों का प्रयोग कर रहे हैं, उसी प्रकार की खोजबीन अन्य ग्रहों के निवासियों द्वारा भी की जा रही है । जर्मन वैज्ञानिक 'एरिकबन डेनिकेन' ने अपनी पुस्तकें 'चैरियटस ऑफ गॉडस' और 'रिटर्नमद स्टार्स' में भी इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि अन्य ग्रहों के निवासी पृथ्वीवासियों की टोह लेने के लिए समय-समय पर उतरते हैं । यहाँ के वैज्ञानिकों की तुलना में विज्ञान के क्षेत्र में उनकी पहुँच अधिक है ।

बुद्धिमता एवं सभ्यता के क्षेत्र में मनुष्य ही सबसे अग्रणी नहीं है । पृथ्वी की तुलना में विकसित सभ्यताएँ भी ब्रह्माण्ड में मौजूद हैं । मनुष्य को अपनी तुच्छता समझनी चाहिए । मिथ्या गर्व की अपेक्षा ईश्वर प्रदत्त क्षमता का उपयोग मानवोचित रीति-नीति अपनाने में करना ही श्रेयस्कर है ।

अन्तरिक्षीय रहस्यों का एक नया दौर

अपनी इस विशाल धरती पर कई स्थान ऐसे हैं जो उनसे जुड़े रहस्यमय घटनाक्रमों के कारण सुर्खियों के विषय बनते रहे हैं । इन घटनाओं के पीछे वैज्ञानिकों ने अटकलबाजियाँ लगाकर विद्युत चुम्बकीय अथवा क्वान्टम भौतिकी, गुरुत्वबल कारण बताकर छुट्टी पाली है, पर सच पूछा जाय तो ये सभी रहस्य अभी भी 'अविज्ञात' नामक फाइल में बन्द हैं । ये सभी यह सोचने पर विवश करते हैं कि मानवी बुद्धि अभी विकास की चरम अवस्था तक नहीं पहुँच पायी है । बहुत कुछ जानना समझना अभी शेष है ।

भारत में आसाम प्रान्त के जटिंगा घाटी स्थान पर हर वर्ष एक विशेष मौसम में रात की बत्तियाँ जलते ही पक्षियों का उड़-उड़ कर आकर आत्महत्या कर लेना, साथ ही अन्य छोटे कीट-जीव जन्तुओं की सामूहिक आत्महत्या अभी भी एक अचम्भा बनी हुई है । अभी तक साइबेरिया के तुंगुस्का प्रान्त में एवं अमेरिका के एरीजोना में उल्कापात के प्रमाण रूप में दो विशाल गड्ढे पाये गए थे । अब महाराष्ट्र के चन्द्रपुर के समीप एक अत्यन्त विशाल गर्त्त मिला है जो बताता है कि एक बहुत बड़ी उल्का यहाँ कभी गिरी होगी । इसका आकार पहले पाये गए दोनों गड्ढों से दुगुना बड़ा है एवं भू-गर्भ विशेषज्ञों के अनुसार उल्का गिरने की अवधि भी हजारों वर्षों में गिनी जा सकती है । हो सकता है कि ऐसे और भी कोई चिह्न हों जो बताते हों कि अन्तरिक्षीय रहस्यों के उद्घाटन का दौर अभी चल ही रहा है ।

अमेरिका के दक्षिण पूर्व तट पर उत्तर में बारमूडा द्वीप, दक्षिण में फ्लोरिडा तथा पूर्व में बहामा द्वीप के बीच का लगभग ४० अक्षांश पश्चिमी देशान्तर तक फैला इलाका, जो बारमूडा त्रिकोण कहलाता है, अपनी रहस्यमयी घटनाओं की शृंखला के कारण काफी समय से शोध का केन्द्र बना हुआ है । इस क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले वायुयान तथा जलयानों के अदृश्य होने का सिलसिला चलता ही रहा है किन्तु न तो जहाजों के अवशेष ही मिल पाये हैं, न ही वायुयानों का मलबा । सारे आधुनिक यन्त्रों को शोध प्रक्रिया में झोंक देने पर भी यह ज्ञात न हो सका कि वे सभी कहाँ, किस लोक में विलुप्त हो गए ?

सन् १९४५ के नवम्बर माह की घटना है । एक जलयान वायुसेना का नीचे चल रहा था और उसका सही मार्गदर्शन करने के लिए विमान ऊपर उड़ रहे थे कि अचानक अमेरिकी कन्ट्रोल टॉवर से उनका सम्बन्ध टूट गया । कप्तान की घबराई-सी आवाज जरूर सुनाई दी । इसके बाद सम्पर्क पूरी तरह समाप्त हो गया । वायुयान 'मार्टिन मेसन्स' का कप्तान इतना ही बता सका कि "हमारे सभी यन्त्र बेकाबू हैं और हम नहीं जानते कि अगले क्षणों में हमारा क्या होने जा रहा है ।"

विभिन्न दिशाओं में इस सारे क्षेत्र को खोजने के लिए २१८ नौकाएँ भेजी गईं और १९ वायुयानों की एक टुकड़ी । खोजी विमानों में से एक का अन्तिम सन्देश था । हम अपने को असहाय अनुभव कर रहे हैं । कोई भी मशीन हमारा साथ नहीं दे रही है । लगता है हम किसी अज्ञात लोक की ओर उड़े जा रहे हैं । हमारे पीछे मत आओ खतरा है .... । फिर कोई संकेत न मिला । इसके बाद ऐसी ही दुर्घटना का सिलसिला उस क्षेत्र में लगातार चल पड़ा ।

सन् १९६० में चार वायुयान और १० जलयान उसी क्षेत्र में गायब हुए । इनमें से एक के बारे में भी अनुमान तक नहीं लगाया जा सका कि आखिर इनका क्या हुआ ? सन् १९६१ के अन्तिम माह में एक जलयान अमेरिका से इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुआ इसमें २६० व्यक्ति सवार थे । मशीनों की भली प्रकार जाँच-पड़ताल कर ली गई थी । फिर भी उस यान की भी वही दुर्गति हुई । वह रहस्य के गर्त में समा गया और सभी सम्भव खोजें कोई भी संकेत न दे सकीं ।

उस क्षेत्र में थोड़ी दूर रहकर दुर्घटना का स्वरूप देखने वालों ने पाया है कि पहले उस क्षेत्र में कुहासा सा छाने लगता है । फिर ऐसा लगता है कि यान किसी चुम्बकीय तूफान में फँस गया और भँवर में फँसने जैसी स्थिति में चक्कर काटता हुआ वह गायब हो गया । अन्वेषकों में से कुछ ने उन यात्रियों को आकाश में पक्षी की तरह एक दिशा विशेष में उड़ते देखा । फिर वे दृष्टि से ओझल हो गए ।

वस्तुतः बारमूडा त्रिकोण वैज्ञानिकों, रहस्यवादियों और अन्तरिक्षवेत्ताओं के लिए बहुत समय तक रहस्य का विषय बना रहा । सभी अपनी-अपनी समझ के अनुसार अनुमान लगाते रहे । इस सन्दर्भ में अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेख छापे पर उनमें से किसी ने भी दावे के साथ अपने मत की पुष्टि न की । मात्र अनुमान ही लगाये जाते रहे । इनमें से सभी खोजियों का मत यही था कि यह रहस्य अभी भी ऐसा है जिसके सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता ।

'हेराल्ड कनाडा' पत्रिका में प्रकाशित एक लेख अधिक प्रामाणिक माना गया कि किसी अन्य लोक के बुद्धिमान प्राणी मनुष्य की संरचना और प्रगति के बारे में खोज-बीन कर रहे हैं और वे अन्वेषण के लिए यहाँ से विभिन्न स्तर के यात्रा साधनों एवं बुद्धिमान मनुष्यों को अपने लोक में किसी विशेष आकर्षण शक्ति के सहारे घसीट ले जाते हैं । पृथ्वी पर अन्य लोकवासियों का अन्तरिक्ष से कुछ हजार वर्षों पूर्व से विशेष रूप से आवागमन रहा भी है ।

एक लम्बी अवधि बीत जाने के उपरान्त विगत एक शताब्दी से उड़नतश्तरियों के आवागमन का पृथ्वी पर नया सिलसिला आरम्भ हुआ है । कुछ दिनों इन्हें अन्तरिक्षीय भ्रम-जंजाल माना गया था । पर उनके छोड़े अवशेष तथा यहाँ से उठाकर ले जायी गई वस्तुओं की बात प्रमाणित हुई है तो ऐसा सोचा जाता है कि वे अन्तर्ग्रही देवमानव फिर से पृथ्वी के साथ आवागमन सम्पर्क जोड़ रहे हैं, ताकि यहाँ की वैज्ञानिक प्रगति का, मानवी बुद्धिमत्ता का, वे पर्यवेक्षण कर सकें और इससे आगे का प्रसंग या तो मनुष्यों को सिखा सकें या उनसे सीख सकें । सम्भवतः इसी प्रसंग में उन्हें बारमूडा क्षेत्र आदान-प्रदान के लिए उपयुक्त जँचा हो ।

उड़नतश्तरियों को बहुत समय तक दृष्टिदोष, विभ्रम मात्र माना जाता रहा और यह भी कहा जाता रहा कि वे अन्तरिक्ष में पहुँचने वाले चुम्बकीय भँवर जैसे कुछ हो सकते हैं । इन अटकलों के उपरान्त जब उनका पीछा करना शुरू किया गया तो ऐसी हरकतें सामने आईं जिनसे सिद्ध हुआ कि उनके साथ कोई

बुद्धिमान प्राणी भी होना चाहिए और उनका पृथ्वी पर आना भटकाव नहीं सोद्देश्य होना चाहिए ।

इस सन्दर्भ में कई खोज करने वालों को अदृश्य चेतावनियाँ मिलती रही हैं कि वे यह प्रयास बन्द करें अन्यथा जोखिम उठाएँगे । समझा गया कि यह किसी मनुष्य द्वारा की गई मखौल है किन्तु खोज जारी रखने पर नया तथ्य सामने आया कि वे खोजी अदृश्य हो गए और किसी प्रकार यह पता न चल सका कि उनका कहाँ, कब, कैसे अदृश्य हो जाना घटित हुआ ।

जिन्होंने उड़नतश्तरियों को बिना घबराए और गौर से देखा, उन्होंने बताया है कि जिस प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा पर जाने वाले अन्तरिक्षीय सूट पहनकर गए थे, प्रायः वैसी ही पोशाक वे यात्री भी पहन हुए थे । वे भूमि के समीप आये और यहाँ से कई धातु पात्र तथा जीवित प्राणी अपने यान में लेकर वापस लौट गए । सम्भवतः वे उन पर जैव प्रौद्योगिकी का कोई अनुसंधान करना चाहते हों ।

इन अजूबों का वास्तविक कारण क्या है ? यह अभी स्पष्ट नहीं हो पाया है । सम्पत्ति की हानि एवं जन हानि न हो, ऐसा रास्ता भी मनुष्य ने निकाल लिया है । पर वे घटनाक्रम भिन्न-भिन्न रूपों में भौतिकी के सारे सिद्धान्त काटते हुए घटित होते रहे हैं । फिर भी यह आशा की जाती है कि अन्ततः बारमूडा त्रिकोण, जटिंगा घाटी, उड़नतश्तरियों जैसे अनेकानेक रहस्यों का जब भी उद्घाटन होगा, तो मनुष्य को ऐसी कई नई जानकारियाँ मिलेंगी जो उसे अब तक उपलब्ध नहीं हुईं ।

हमारा सम्पर्क क्षेत्र अगले दिनों अधिक विस्तृत होगा

अन्तरिक्ष में अन्यत्र भी जीवन होने की सम्भावना अब संदिग्ध होती जा रही है । उन प्रमाणों का बाहुल्य बढ़ रहा है जो यह सिद्ध करते हैं कि हम इस ब्रह्माण्ड में अकेले ही बुद्धिमान प्राणी नहीं हैं, हमारे समतुल्य और भी अधिक समर्थ शक्तिवान अन्यत्र हो सकते हैं । ऐसे प्रमाणों ने अब उस अन्धविश्वास को दूर कर दिया है जिसके अनुसार यह दावा किया जाता था कि मात्र पृथ्वी का ही वातावरण ऐसा है जिसमें जीवन स्थित रहे और प्रगति कर सके । वैसी स्थितियाँ अन्य लोकों में होने के सम्बन्ध में ऐसे प्रमाण मिलते चले जा रहे हैं जिन्हें प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण कहा जा सके ।

अन्य ग्रहों पर जीवन होने न होने का अनुमान इस आधार पर लगाया जाता है कि वहाँ उसके निर्वाह के लिए खाने को वनस्पति, पीने को पानी एवं साँस लेने के लिए ऑक्सीजन है या नहीं । यह अनुमान धरती के प्राणियों की आवश्यकताओं को देखते हुए लगाया गया है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि धरती जैसी बनावट वाले प्राणी ही अन्य लोकों में भी हों । जीवन के असंख्य स्वरूप हो सकते हैं उनमें से एक वह भी है जो पृथ्वी पर पाया जाता है ।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हेज होवेर ने ऐसे जीवों का अस्तित्व भी सिद्ध किया है जो उपरोक्त तीन प्रकार के साधनों के अभाव में भी दूसरे माध्यमों में अपना निर्वाह क्रम चलाते हैं । वे कहते हैं शुक्र जैसे गैसीय वातावरण में भी उसी प्रकार का जीवन हो सकता है जैसा कि धरती पर उन्हीं परिस्थितियों में आरम्भ वाले दिनों में वाष्पीय समुद्रों के बीच पनपा । ये परिस्थितियाँ जैसे-जैसे बदलती गईं वैसे-वैसे प्राणियों के आकार-प्रकार ही नहीं आहार-विहार भी बदलते गए ।

प्रोफेसर होवेर कहते हैं कि अन्य ग्रहों से वहाँ की परिस्थितियों में निर्वाह कर सकने योग्य शरीरों वाले तथा उन्हीं साधनों पर निर्वाह कर सकने वाले प्राणी हो सकते हैं । अपने सौर-मण्डल में मंगल और शुक्र की परिस्थितियाँ ऐसी मानी जा सकती हैं जहाँ धरातल पर न सही भूमिगत या उड़नशील जीवन हो सकता है । सम्भव है वहाँ हवा में तैरते हुए नगर हों और उनमें उसी प्रकृति के जीवधारी अपना निर्वाह कर रहे हैं । धरती पर आने वाली उड़नतश्तरियों का आधार खोजने वाले एक कारण यह भी सोचते हैं कि सम्भव है किसी ग्रह के उड़नशील नगरों के नभचर प्राणी किसी प्रयोजन के लिए धरती पर आवागमन की सुविधा बनाने का प्रयत्न कर रहे हों ।

अपने सौर-मण्डल में अधिक तापमान और ऑक्सीजन का अभाव होते हुए भी यह माना जा रहा है कि वहाँ की परिस्थितियों में फलने-फूलने वाला जीवन पाया जा सकता है । वृहस्पति पर भी ऐसी सम्भावना प्रतीत होती है । शनि के चन्द्रमा टाइटन पर भी ऐसी परिस्थितियाँ पायी गई हैं जिनमें मनुष्य लोक से भिन्न प्रकार के जीवन की सम्भावना हो सकती है ।

कार्लसांगों की विश्वविख्यात और बहुचर्चित पुस्तकों में खगोल विद्या के अति महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालते हुए प्रतिपादित किया गया है कि इस ब्रह्माण्ड में निश्चय ही ऐसे अनेक ग्रह-नक्षत्र होंगे जिनमें मनुष्य लोक जैसा या अन्य प्रकार का जीवन विद्यमान हो । उनकी 'दि ड्रेगन्स ऑफ ईडन' और 'ब्रोकाज ब्रेन' में इस सन्दर्भ में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है और 'कास्मोस' ग्रन्थ में भी ऐसे ही कारण एवं प्रमाण प्रस्तुत किए हैं ।

खगोल विद्या के विश्वविख्यात विज्ञानी कास्टेन्टिन राइडिन ने अन्तरिक्ष में भ्रमणशील महा उद्घोषों को टैप किया है । इन शब्द धाराओं की अपनी-अपनी फ्रीक्वेन्सी हैं । जो समाप्त नहीं होती, वरन् चक्कर काटती और अपने परिभ्रमण क्षेत्र की जानकारियाँ समेट-समेटकर घसीटती फिरती हैं । राइडिन ने प्रायः ७२००० ऐसे अन्तरिक्ष ध्वनि प्रवाह पकड़े और टैप किए हैं । संसार भर के भौतिकविदों, इलेक्ट्रॉनिक इन्जीनियरों, खगोलवेत्ताओं तथा परामनोवैज्ञानिकों ने इनके अर्थ अपने-अपने ढंग से लगाये हैं । पर उनका अस्तित्व सभी ने स्वीकारा है । भ्रमजन्य नहीं ठहराया । कई बार तो यह शब्द किन्हीं जीवधारियों की चीख-पुकार से मिलते-जुलते और भावनाओं का प्रतिनिधित्व तक करते प्रतीत होते हैं ।

सुने गए अन्तरिक्षीय ध्वनि प्रवाहों में क्रमबद्ध संकेत— बीप-बीप के रूप में उपलब्ध होते हैं । आश्चर्य यह है कि इनके मध्य ठीक ३१६ सेकण्ड का अन्तर होता है । यदि वे किसी प्रकृति घटना का कारण होता तो यह अन्तर यथावत् न बना रहता उसमें अन्तर पड़ता रहता । अनुमान लगाया गया है कि यह किसी तारक पर निवास करने वाले बुद्धिमान प्राणियों का प्रयास है जो हम तक सांकेतिक भाषा में कुछ सन्देश पहुँचाने— सम्बन्ध साधने के लिए इस संकेत आधार का उपयोग कर रहे हैं ।

अन्तरिक्षवासी पृथ्वी पर आते रहे हैं और यहाँ की परिस्थितियों को जीवन विकास के लिए उपयुक्त बनाने का प्रयत्न करते रहे हैं । इसके कितने ही प्रमाण पुरातत्ववेत्ताओं को मिले हैं । उनमें से बहुतों का विश्वास है कि पृथ्वी को वर्तमान स्तर तक पहुँचाने में अन्तरिक्षवासियों का महत्त्वपूर्ण योगदान चिरकाल तक चलता रहा है । उन्होंने अपने हाथ तब खींचे जबकि यह विश्वास कर लिया कि विकसित मनुष्य के हाथों इस भू-मण्डल का भाग्य सुरक्षित है ।

स्विट्जरलैण्ड के जीव विज्ञानी डॉ. डैनिकेन का प्रतिपादन है कि धरती पर जीवन किसी विकसित ध्रुवतारे से उतरा है । कोई अन्तरिक्षवासी यहाँ आये और जीवन बीज बखेर गए, उन्हीं से धरती पर विभिन्न जीव-धारियों की फसल उगी और फैली है । वे अपने कथन की पुष्टि से केवल ब्रह्माण्ड विद्या का ही नहीं वरन् पौराणिक उपाख्यानों का भी सहारा लेते हैं ।

श्रीलंका के खगोलशास्त्री प्रो. विक्रम सिन्धे ने भी तथा कार्डिफ विश्वविद्यालय के सर फ्रेड मोले के संयुक्त अन्वेषण ने भी इसी सम्भावना की पुष्टि की है कि पृथ्वी को जीवन किसी अन्य विकसित सौर-मण्डल से अनुदान मिला है । इतना ही नहीं उसे विकसित करने से अन्य लोक निवासियों ने बहुत समय तक बहुत कुछ करते रहने का उत्तरदायित्व वहन किया है ।

बर्लिन की स्टेट लाइब्रेरी में ऐसा मानचित्र रखा हुआ है जिस पर संसार के अनेकानेक मूर्धन्य मस्तिष्कों ने भारी माथा पच्ची की है और उन्हें एक प्रामाणिक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज माना है । यह मानचित्र अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में तुर्की नौसेना के एडीमरल पीटी केईस में प्राप्त हुआ था । इसके साथ दो एटलस भी प्राप्त हुए थे । इनमें 'डैड सौ' तथा 'मेड्रीट्रेनियम' क्षेत्रों का सारगर्भित चित्रण है ।

अमेरिकी मानचित्र विशेषज्ञ अलिन्यटन एच मैलरी ने इसमें धरती की सही परिस्थितियों की अधिक अच्छी जानकारी प्राप्त की । नौसेना के नक्शा नवीस वाल्टर्स की इस कार्य में सहायता ली गई और पाया कि न केवल समुद्र भाग की वरन् अमेरिका के बाहरी और भीतरी भागों की भी उसमें सही जानकारी विद्यमान है । वेधशाला निर्देशक फादर लिनहेम ने पाया कि इनमें दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र की उन पहाड़ियों के भी चित्र हैं जो अब से कुछ समय पूर्व तक बर्फ से ढकी थीं और अभी ही वे प्रकट हुई हैं । सन् १९५२ तक इनकी किसी को कोई जानकारी न थी ।

अन्वेषक चार्ल्स हौपगुड़ और रिचर्ड स्ट्राचन का कथन है कि ऐसे सही चित्र ऊँचे आकाश से ही लिए जा सकते हैं । धरती से नहीं । यह ऊँचाई भी किसी ग्रह-उपग्रह के स्तर की होनी चाहिए । वर्तमान अन्तरिक्ष यानों में लगे शक्तिशाली कैमरे भी मात्र ५००० मील की परिधि के चित्र सही खींच पाते हैं । इसमें भागों की सीमा के चित्र कैमरे की पकड़ एवं पृथ्वी की गोलाई के कारण बिगड़ जाते हैं । ऐसी दशा में इतनी लम्बी परिधि के इतने सही चित्र खींचने के लिए किसी बहुत ऊँचे ग्रह पर बैठकर ही सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है । अठारहवीं सदी में तो कोई इस सम्भावना की कल्पना तक नहीं कर सकता था ।

पेरू के कुचक्री क्षेत्र में अति पुरातन 'तिआहुन' की सभ्यता के प्रमाण मिले हैं । वह १३००० फुट ऊँचाई का क्षेत्र है । समुद्र की सतह से वातावरण का दबाव प्रायः आधा है । ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम है । ऐसी दशा में वहाँ पहुँचकर कोई बड़ा शारीरिक परिश्रम कर सकना सम्भव नहीं । फिर भी वहाँ के अवशेष बताते हैं कि वहाँ कभी बुद्धिमान शिल्पियों का निवास और पुरुषार्थ भली प्रकार सक्रिय रहा है ।

इतिहास की वर्तमान साक्षियाँ मात्र ६ हजार वर्ष पूर्व तक ही कुछ प्रामाणित कर सकने में समर्थ हैं । प्रस्तुत इतिहास इतना ही पुराना है । पर 'तिआहुन की सभ्यता' के चिह्न अवशेष इससे कहीं अधिक पुराने हैं । कभी के इस सुविकसित रहे नगर की चहार दीवारी १०० टन भारी पत्थरों पर ६० टन के पत्थर रखकर बनाई गई है । इनका धरातल इतना चिकना है मानो किसी सुविकसित स्तर के यन्त्र द्वारा घिसा गया हो । पत्थरों के जोड़ और खाँचे इतने सही हैं कि उनमें राई-रत्ती भी अन्तर नहीं दिखता । यह काम पाषाण युग का मनुष्य नहीं कर सकता था । इतना कर सकने की तो आज के विकसित साधन-सम्पन्न भी हिम्मत नहीं कर सकते । इस खण्डहर में एक २४ फुट ऊँची और २० टन भारी ऐसी मूर्ति भी है जो एक ही पत्थर की बनी है । उसकी कलाकृति इतनी सुन्दर है कि आज के मूर्तिकारों को भी चुनौती दे सके ।

इन निर्माणों पर प्रकाश डालने वाली पुस्तक एच. वेलसी और पी. एलन के संयुक्त प्रयास से लिखी गई थी । इसका नाम है—'दि ग्रेट आइडल ऑफ तिआहुनकी' । यह सन् १९५९ में प्रकाशित हुई उसमें प्रमाणों सहित यह सिद्ध किया गया है कि इन अवशेषों में खगोलीय जानकारियाँ रहस्यमय ढंग से अंकित हैं । इससे पता चलता है कि चिर अतीत में पृथ्वी ने किसी अन्तरिक्षीय उपग्रह को अपनी पकड़ में जकड़ लिया था । इस उपग्रह पर २८२ दिन का वर्ष होता था और साल में पृथ्वी की ४२५ परिक्रमा करता था । अन्त में वह छितरा गया और उसका मलबा वर्तमान चन्द्रमा के रूप में विद्यमान है । यह घटना २८ हजार वर्ष पुरानी बताई गई है ।

चिली से प्रायः २५०० मील दूर ईस्टर द्वीप में सैकड़ों की संख्या में ऐसी पाषाण प्रतिमाएँ पायी गई हैं जो ३३ से लेकर ६६ फुट तक ऊँची और ५० टन तक भारी हैं । वह किसने बनाईं ? किन साधनों से बनाईं ? क्यों बनाईं ? जैसे प्रश्न इसलिए और भी अधिक रहस्यमय हो जाते हैं कि यह टापू भूमि से २००० मील दूर निपट जलराशि के बीच घिरा पड़ा है । साधनों का सर्वथा अभाव । वहाँ मुश्किल से २००० आदिवासी रहते हैं । इससे अधिक के लिए उस क्षेत्र में वनस्पति भी नहीं है । ज्वालामुखियों का कठोर लावा ही वहाँ पत्थरों रूप में पड़ा है । उसे कौन काटे ? कैसे काटे ? इतनी भारी मूर्तियाँ कैसे बनें ? फिर एक चट्टान से इतनी बारीक कलाकृतियाँ किस प्रकार विनिर्मित हों ? इन प्रश्नों का सही उत्तर तो नहीं मिलता, पर उसकी विवेचना में कुछ प्रामाणिक पुस्तकें छपी हैं । इनसे तत्कालीन स्थिति पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है और अनुमान लगता है । 'आकू वाकू', 'चेरियट्स ऑफ गाइड', 'गाइड फ्रॉम दी आउटर स्पेश' ग्रन्थों में अन्यान्य अनुमान के साथ-साथ यह सम्भावना भी व्यक्त की गई है कि किसी अन्य लोकवासियों ने धरती पर आकार इस प्रकार अपने कौशल का परिचय दिया हो ।

सन् १९३८ में चीन-तिब्बत सीमा पर पहाड़ी की गुफाओं में एक सीधी कतार में आश्चर्यजनक कब्रें पायी गईं । खुदाई करने

पर गढ़े मनुष्यों के शिर बहुत बड़े और शरीर छोटे थे । समीपवर्ती चट्टानों पर कुछ अभिलेख एवं चित्र हैं जिनका रहस्योद्घाटन करते हुए एकेदमी ऑफ फ्री हिस्टोरिक रिसर्च, पीकिंग के प्रो. तस्नुम उनतुई ने किसी अन्य लोकवासियों के साथ इनकी संगति बिठाई थी । उनका प्रतिपादन चीन में तो नहीं छपा पर सोवियत यूनियन की पत्रिका 'स्पूर्तिनिक' में वह प्रकाशित हुआ है कि तुई की मान्यता थी कि १२ हजार वर्ष पूर्व कोई अन्तरिक्षवासी धरती पर आये थे । यह उन्हीं के अवशेष हैं । उनके यान धरती पर आकर खराब हो गए जिनकी वे मरम्मत नहीं करा सके । इन्होंने धरतीवासियों के साथ मित्रता करने और तालमेल बिठाने का भी प्रयत्न किया पर वे सफल न हो सके ।

अभी कुछ समय पूर्व अमेरिका में एक विशेष प्रकार की उड़नतश्तरी का प्रसंग चर्चा का विषय बना रहा है, जिसके बारे में कहा जाता है कि अन्तरिक्ष यात्रियों की लाशें तथा उनके एक विशेष यान का मलवा मनुष्य के हाथ लग गया है ।

उड़नतश्तरियों का लम्बा इतिहास है । वे पृथ्वी के अनेक भागों में परिभ्रमण करती देखी गई हैं । उनका आभास भर मिला है और दृश्यों के आकाश में विलीन होते रहने के कारण यह पता नहीं चला कि वे कोई ऊर्जा भ्रम अथवा दृष्टि भ्रम तो नहीं हैं । ऐसी घटनाएँ बहुत कम हुई हैं जिनमें इनसे सीधे टकराने एवं प्रभावित होने का प्रत्यक्ष अवसर किसी को मिला हो । जिन्हें मिला है उन्हें भी उन घटनाओं को किन्हीं अन्य कारणों से सम्बद्ध होने का भी तारतम्य बिठाया गया है ।

इन सब दृश्यों और घटनाओं में एक घटना ऐसी है जिसे असाधारण रूप से विस्मयकारी और अब तक के घटनाक्रमों में अद्भुत कहा जा सकता है । उसमें अन्तरिक्ष यान का मलवा और प्राणियों के शव हाथ लगने की बात कही जाती है । यों इस घटना को अनेक कारणों से गोपनीय रखा गया होने की बात जनश्रुति के रूप प्रख्यात है । वस्तुस्थिति क्या है ? इसका सही रहस्योद्घाटन तो तथ्यों के स्पष्टतया सामने आने पर ही हो सकेगा अभी तक उस सम्बन्ध में जो अटकलें हैं उन्हें देखते हुए किसी नई उपलब्धि की आशा अवश्य की जाती है ।

चार्ल्स वर्लिट्स और विलियम मूर ने इस सम्बन्ध में जो तथ्य एकत्रित किए हैं उन्हें उन दोनों ने संयुक्त रूप से एक पुस्तक में लिखकर प्रकाशित किया है । इस पुस्तक का नाम है—'दि रूजवेल इन्सीडेन्ट' । पुस्तक में वर्णित घटनाक्रमों के अनुसार न्यू मैक्सिको के निकटवर्ती क्षेत्र में ७ जुलाई, १९४० की शाम के ४ बजे एक अन्तरिक्ष यान का मलवा टूटकर जमीन पर गिरा उसमें कुछ ऐसे मृतकों के शरीर भी मिले जो धरती निवासियों से सर्वथा भिन्न प्रकार के थे ।

रूजवेल प्रक्षेपणास्त्रों और अणुबमों की शोध तथा निर्माण का गुप्त नगर था । सुरक्षा के लिए उस क्षेत्र पर वायु सेना का ५०९वाँ जत्था सदा मँडराता रहता था ।

अन्तरिक्ष यान का मलवा देखने वाले प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार यह ऐसी बहुत पतली चमकीली धातु का बना था जो कपड़े जैसी मोटाई के होने पर भी हथौड़ों से नहीं मोड़ी जा सकती थी । मलवा एक-सवा मील के घेरे में बिखरा पड़ा था । उसका मध्य भाग तीस फुट घेरे की तश्तरी जैसा था । उससे निकलकर जो शव बाहर गिरे थे वे मनुष्यों से मिलते-जुलते तो थे पर मनुष्य नहीं थे । उनके सिर गेंद जैसे गोल, आँखें छोटी, बाल बिलकुल नहीं । एक ही सिलेटी रंग का कपड़ा के ओढ़े हुए थे । औसत मनुष्य से उनके सिर बड़े और दोनों आँखों के मध्यवर्ती दायरे अधिक फैले हुए थे ।

भयभीत, आश्चर्यचकित और कौतूहलग्रस्त लोगों में से कुछ ने हिम्मत करके उस क्षेत्र तक पहुँचने का प्रयत्न किया और सूचना बड़े अफसरों तक पहुँचाई । वे साज-सामान के साथ आये और सारे मलवे को समेट कर गुप्त स्थान को ले गए । उसमें क्या था, इस सम्बन्ध में अधिक जानने के उत्सुक कितने ही पत्रकार तथा वैज्ञानिक वहाँ पहुँचे पर सेना विभाग ने उस रहस्य को बताया नहीं । ऐसे ही गुब्बारा गिरने जैसा कुछ बहाना बताकर उन्हें टरका देने की कोशिश की । सभी जानते थे कि गुब्बारा होने की बात गलत है । इन दिनों दूर-दूर तक कोई गुब्बारा छोड़ा भी नहीं गया था । वाशिंगटन 'पोस्ट' जैसे जिम्मेदार पत्र ने इस आशंका की पुष्टि की कि वस्तु कोई रहस्यमय थी और उसका विवरण छिपाया गया है ।

कहा जाता है कि अन्तरिक्ष रहस्यों के सम्बन्ध में इस मलवे के आधार पर ऐसी जानकारियाँ मिल सकती हैं जिन्हें अमेरिका अन्य देशों के हाथ न लगने देकर उस क्षेत्र पर अपना अधिकार करने का उत्सुक है ।

कारण जो भी हो, यह रहस्य अभी भी अपने स्थान पर यथावत् है कि ६ जुलाई को जो मलवा आकाश से गिरा वह रहस्यपूर्ण था और उसे गहरे अनुसन्धान के लिए अभी तक छिपाकर रखा गया है और उस आधार पर अन्तरिक्ष के रहस्य जानने तथा उस पर एकाधिकार रखने का प्रयत्न चल रहा है । पूछताछ करने के लिए गए मूर्धन्य लोगों को जिस प्रकार निराशाजनक ढंग से टरका दिया गया उससे उन्होंने भी ऐसे ही किसी रहस्य के होने की सम्भावना व्यक्त की है ।

जो हो, वह घड़ी दिन-दिन निकट आती जा रही है जिसमें मनुष्य के लिए अन्तरिक्षवासी सुविकसित मनुष्यों देवताओं के साथ सम्पर्क साधने, आदान-प्रदान का द्वार खोलने और सामान्य से असामान्य बनने का अवसर मिलेगा ।

हम जल्दी ही विशाल बिरादरी के सदस्य बनेंगे

क्या इस सुविस्तृत ब्रह्माण्ड में, क्या अपनी पृथ्वी पर ही जीवन है ? अन्यत्र सुनसान निस्तब्ध ही पड़ा है क्या ? क्या बुद्धिमान प्राणी एकमात्र मनुष्य ही है ? और क्या अन्यत्र कहीं इसके समतुल्य या श्रेष्ठ प्राणी कहीं नहीं है । इन प्रश्नों के उत्तर में 'न' नहीं कहा जा सकता है । यह बात किसी के गले नहीं उतरती कि कहीं अन्यत्र जीवन होगा ही नहीं । यह सन्देह उन तथाकथित वैज्ञानिकों ने उपस्थित किया था जो इन्द्रियों की या यन्त्रों की पकड़ से जो कुछ बाहर है, उसे अस्वीकार ही करते जा रहे हैं । इसे धृष्टता ही कहना चाहिए कि हम अपनी नगण्य-सी जानकारी को सर्वज्ञ पायें और जिसे जाना जा सका उसे अमान्य ठहरायें ।

अब अन्तरिक्ष के शोध साधन इतने हो गए हैं कि उनके द्वारा पिछली शताब्दी की तुलना में अधिक जानकारी प्राप्त होने

का दावा किया जा सके । अब खगोलवेत्ताओं को ऐसे प्रमाण मिलने लगे हैं जिनके आधार पर ब्रह्माण्ड में अन्यत्र भी जीवन होने की बात को तथ्यों के आधार पर विश्वस्त माना जा सके और उस सन्दर्भ में शोध प्रयत्नों को आगे बढ़ाया जा सके ।

अन्तरिक्षीय जीवविज्ञान के संशोधकों का अनुमान है कि जिन परिस्थितियों में अपनी धरती पर जीवन का विकास हुआ है, वैसी इस विशाल ब्रह्माण्ड के अन्यान्य ग्रहों में भी मौजूद हैं । अपनी मन्दाकिनी नीहारिका में प्रायः १२.५ अरब ग्रह आँके गए हैं । इनमें से न्यूनतम पाँच हजार तो ऐसे ही हो सकते हैं जिनमें पृथ्वी जैसी परिस्थितियाँ हों और किसी न किसी रूप में जीवन का अस्तित्व पनप और बढ़ रहा हो । फिर अपनी एक ही नीहारिका तो इस ब्रह्माण्ड में नहीं है । वे भी अरबों की संख्या में अपने-अपने सौर-मण्डलों के साथ अपने अस्तित्व का परिचय देती हैं । उनमें भी यदि करोड़ पीछे एक में जीवन हो तो फिर जीवन युक्त पिण्डों की संख्या इस समूचे ब्रह्माण्ड में अरबों हो सकती है ।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के नक्षत्र विज्ञानी सरफ्रेड ने रायल इन्स्टीट्यूट के वैज्ञानिकों के समक्ष अपना प्रतिवेदन रखते हुए कहा कि—'जीवन की उत्पत्ति रासायनिक पदार्थों से घुर्णाक्ष न्याय की तरह अकस्मात् ही नहीं हो सकती । उसका डिजायन किसी कुशल कलाकार का किया हुआ है ।' सरफ्रेड ने अपनी 'अन्तरिक्ष से विकास' और 'अन्तरिक्ष से बीमारियाँ' नामक दो पुस्तकों में यह सम्भावना व्यक्त की है कि जीवन अन्तरिक्ष में आरम्भ में भी इसी प्रकार बरसा होगा जैसा कि अब भी आये दिन उसकी बौछार होती रहती है ।

जिन ग्रहों की परिस्थितियाँ भिन्न हैं वहाँ उनसे तालमेल बिठाकर निर्वाह करने वाला जीवन हो सकता है । ऐसे भी जीव हो सकते हैं जो पानी की जगह अमोनिया पर गुजारा करें । कार्बन की जगह वे सिलीकॉन के सहारे जी सकते हैं । घनीभूत गैसों में उड़ने वाला हलका जीवन भी सम्भव हो सकता है ।

अपनी धरती पर पाये जाने वाले गन्धक के खोलते गर्म स्रोतों में जीवाणु तैरते पाये गए हैं । समुद्र की तली में सतह की तुलना में हजारों गुना दबाव अधिक होता है । वहाँ के अधिकार की सघनता का भी ठिकाना नहीं तो भी वहाँ जीव रहते और वंश बढ़ाते देखे गए हैं । चट्टानों की तनिक-सी दरार में फफूंदी और शैवाल जिन्दा रहते पाये गए हैं । घोर शीत वाले ध्रुव प्रदेशों में भी घूमता और जमा हुआ जीवन इसी प्रकार गुजारा करता है जैसा कि जल, थल और नभ में जीवित रहने वाले प्राणी सामान्य मौसम में दिन काटते हैं । ऐसी दशा में अन्य ग्रहों की परिस्थितियों से तालमेल बिठाकर वहाँ की जीवन सत्ता न केवल निर्वाह वरन् प्रगति पथ पर अग्रसर होते रहने में भी सफल रह सकती है ।

कुछ समय पूर्व अमेरिका की नेशनल रेडियो एस्ट्रोनॉमी ऑवर्जेक्टरी के तत्वावधान में संसार भर के खगोलवेत्ताओं का एक विशाल सम्मेलन हुआ था । ग्रीन बैंक के इस समारोह में उपस्थित अधिकांश शोधकर्ताओं ने अपना अभिमत इसी पक्ष में व्यक्त किया कि पृथ्वी से इतर लोकान्तरों में जीवन विद्यमान है और कितने ही ग्रहों में इस सम्बन्ध में मनुष्य की तुलना में अधिक समुन्नत हैं । उनके साथ सम्पर्क साधने का हमें अपेक्षाकृत अधिक प्रयत्न करना चाहिए ।

उस समारोह में उपस्थित वैज्ञानिकों में से बर्तरवॉन, सीकिल-पोन्नमपेरुमा, थॉमस गोल्ड, एन्थोनी ड्यूविस आदि ने अपने-अपने प्रतिपादनों से लोकान्तरीय जीवन के समर्थन में अनेकों परिपुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए और कहा कि धरती का भाग्य बदल देने में समर्थ इस विषय की खोजें आगे बढ़ाने के लिए हमें अधिक तत्परता बरतनी चाहिए ।

खगोल विद्या के विशेषज्ञ समझे जाने वाले विज्ञानी ह्यवर्ड रिक्स ने अपनी खोजों के आधार पर कहा है कि आकाश की पोल में ऐसे धूलि बादल उड़ते देखे गए हैं जिनमें न केवल ग्रह गोलकों में पाया जाने वाला पदार्थ वरन् जीवन का आधारभूत रसायन भी विद्यमान पाया गया है । उन कणों में से कुछ ऐसे हैं जो जीवन में बने हैं या जीवन बना सकने में समर्थ हैं ।

रीक्स की खोजों में धरती पर गिरे उल्का पिण्डों का ऐसा अनुसंधान भी सम्मिलित है जिसमें उनके मध्य जीवन के अस्तित्व का भी प्रमाण मिलता है । एमीनो अम्ल 'जीवन संरचना' का निमित्त कारण समझा जाता है, उनका मस्तिष्क उल्का खण्डों में पाया गया है । इस आधार पर अन्तरिक्ष में जीवन होने की सम्भावना एवं आशा अधिक बलवती होती है ।

अन्तर्ग्रही जीवन में अनुसन्धानी और नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. फ्रासिस क्रिक ने यह माना है कि जीवन धरती की अपनी सम्पदा नहीं है वरन् वह अन्तरिक्ष से बरसा अनुदान है । डॉ. लेस्त्री आर्गल ने भी अपने जीव अनुसन्धानों में यह मत सम्मिलित किया है कि धरती के रसायन इस स्थिति में नहीं हैं कि वे मनुष्य जैसी जटिल बौद्धिक संरचना का आविर्भाव कर सकें । वे अधिक से अधिक सूक्ष्मजीवी एवं वनस्पति स्तर का जीवन उत्पन्न कर सकते हैं । उपरोक्त दोनों ही वैज्ञानिक अपने-अपने तर्कों और प्रमाणों के आधार पर धरती के जीवन को अन्तरिक्ष से उतरा अनुदान या उपहार मानते हैं । निजी उत्पादन नहीं ।

कार्ल सांगो ने ऐसे अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जिनके आधार पर अन्य ग्रहों पर विद्यमान रसायनों में एक या दूसरे तरह का जीवन हो सकता है । अमोनिया, मीथेन, हाइड्रोजन ही तो पृथ्वी के आरम्भिक जीवन में भरा पड़ा था । उसकी उथल-पुथल में जब वायुमण्डल और जलाशयों का उद्भव हो सकता है तो उस स्थिति वाले अन्य ग्रहों में क्यों जीवन विकसित न हुआ होगा ? या क्यों न हो रहा होगा ?

खगोलवेत्ता एडिंगटन ने कहा है कि सुविस्तृत ब्रह्माण्ड में हमारी पृथ्वी जैसी परिस्थितियों वाले लाखों ग्रह नक्षत्र हैं । उनमें जीवन का विकास वैसा ही हुआ होगा जैसा कि पृथ्वी पर हुआ है । हो सकता है उनमें से कितनों में ही मनुष्य से अधिक बुद्धिमान प्राणी रहते हों । यह भी हो सकता है कि उनका विकासक्रम आरम्भिक स्थिति में चल रहा है । यह भी हो सकता है कि उनकी जीवनचर्या एवं प्रगति मनुष्य जैसी न होकर किसी अन्य दिशा में मुड़ गई हो ।

डॉ. लेन ने इस समस्त ब्रह्माण्ड में न्यूनतम अठारह हजार ऐसे लोकों की सम्भावना व्यक्त की है जिनमें जीवन मनुष्य जैसा या उससे भी ऊँचे स्तर का विद्यमान है ।

सर जेम्स ने अपनी पुस्तक 'दि मिस्टीरियस युनिवर्स' में लिखा है—"समुद्र तल की बालुका कणों की तरह बिखरे हुए ब्रह्माण्ड क्षेत्र के ग्रह-तारकों में अगणित ऐसे हैं जिनमें जीवन मनुष्यों से भी अधिक समुन्नत स्तर का है ।"

अन्य लोकों में मात्र अविकसित जीवन ही रहा हो ऐसी बात नहीं है । अब विकसित सभ्यताओं के अन्यत्र होने की बात स्वीकार की जा रही है । यह माना जा रहा है कि उन बुद्धिमानों की ओर से अपनी पृथ्वी निवासियों के साथ सम्पर्क साधने का, वार्तालाप के आदान-प्रदान का प्रयत्न किया जा रहा है । उसके जो सन्देश आ रहे हैं उन्हें समझने का प्रयत्न होना चाहिए और अपनी ओर से भी कुछ ऐसा किया जाना चाहिए, जिससे वे पृथ्वी की, यहाँ के निवासियों की स्थिति को समझते हुए आदान-प्रदान के लिए जो सम्भव हो सो कर सकें ।

संसार की सबसे बड़ी वेधशाला पोर्टारिको में है । उसमें अन्तर्ग्रही संवाद क्रमबद्ध रूप से सुने गए हैं किन्तु उनका अर्थ समझने में अभी सफलता नहीं मिली है । न्यूयार्क विश्वविद्यालय की एयरीस्पेस वेधशाला ने भी ऐसे सन्देश नोट किए हैं । इस सन्दर्भ में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा के एक सिरे पर अधिक समुन्नत स्तर की वेधशाला बनाने का भी प्रस्ताव है ।

स्टैन फोर्ड विश्वविद्यालय के रेडियो एस्ट्रोनॉमी इन्स्टीट्यूट के निर्देशक रोनाल्ड ब्रेसवेल ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है—"अन्य लोकों की विकसित सभ्यताएँ मनुष्य लोक से सम्पर्क स्थापित करने के लिए हमारी अपेक्षा अधिक उत्सुक हैं और उनके साधन भी इस योग्य हैं ।"

रूसी अन्तरिक्ष विज्ञानी वेलारिन जुरावलेबा ने कहा है, "पृथ्वी के साथ सम्बन्ध साधने के लिए प्रयत्नशील लोगों के अन्य लोकवासियों के क्रमबद्ध सन्देश आते रहते हैं, उन्हें हमने सुना है, पर अभी उनका तात्पर्य समझ सकना सम्भव नहीं हो सका है । सम्भवतः वे 'स्वान' तारा समूह के किसी ग्रह-नक्षत्र से भेजे जा रहे हैं ।"

लोकान्तर निवासी प्राणियों के साथ सम्पर्क साधने के लिए हमें क्या करना चाहिए ? इस सन्दर्भ में प्रोजेक्ट ओज्या के अनुसन्धानी डॉ. फ्रेक ड्रेक ने ऐसे श्रवण यन्त्रों के विकास पर जोर दिया है जो अन्यत्र से आने वाली ध्वनियों को सुन सकें । कारण कि प्रकाश तरंगें मात्र वस्तुओं के अस्तित्व की जानकारी देती हैं । जबकि ध्वनियों से प्राणियों की हलचलें तथा परिस्थितियों का पता चलता है । आमतौर से ब्रह्माण्डीय हलचलों में मात्र खड़बड़ की आवाजें सुनाई पड़ती हैं जबकि एप्सिलोन—तोसेटी—सितारों से क्रमबद्ध आवाजें आ रही हैं और उनका तारतम्य बिठा लेने पर कुछ अर्थ समझ सकना सम्भव हो सकता है । प्यूटि टोरिको में एरिकियो स्थित विशालकाय रेडियो टैलिस्कोप द्वारा ऐसे ही दूरगामी क्रमबद्ध शब्द प्रवाहों को सुनने और समझने का प्रयत्न किया जा रहा है । अमेरिका ने 'सर्च फॉर एक्ट्रा टेरिस्ट्रियल इण्टेलीजेन्स (सेटी) की स्थापना इसी प्रयोजन के लिए की है ।

पायोनियर नामक मनुष्य रहित अन्तरिक्ष यान सौर-मण्डल की परिधि से आगे बढ़कर विशाल अन्तरिक्ष में कहीं भी उड़ जाने के लिए भेजा गया है । उसमें पृथ्वी के पदार्थों का, प्राणियों का सार संक्षेप में अंकित है और यह बताया गया है कि यह मनुष्य लोक किस सूर्य के किस ग्रह के रूप में किस स्थान पर विद्यमान है । यह यान किसी अन्य बुद्धिमानों के लोक में जा पहुँचा तो वे स्थिति से अवगत होकर अपनी ओर से सम्पर्क साधने का प्रयत्न कर सकते हैं अथवा पायोनियर की हरकतें ही उस सम्पर्क का सन्देश धरती वालों तक भेज सकती हैं ।

प्रसिद्ध गणितज्ञ और भाषाविद हास फायद नयाख एक ऐसी भाषा गढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं जिससे अपरिचित प्राणियों के मात्र वैचारिक आदान-प्रदान सम्भव हो सके । अभी जो संकेत सुने जाते हैं उनकी ध्वनियाँ विप या पिपपिप से मिलती-जुलती हैं । टेलीग्राम की डैमी 'गरगट्ट' की दो ध्वनियों से समूची वर्णमाला का काम चला लेती हैं तो उपरोक्त दो शब्दों के आधार पर ब्रह्माण्ड भाषा का आधार खड़ा हो सकता है ।

एक विचार यह भी है कि शब्द तक सीमित न रहकर प्रकाश रंगों का भी इस निमित्त उपयोग किया जाय । इस सन्दर्भ में रेडियो तरंगों की तुलना में टेलिविजन प्रक्रिया अधिक सक्षम पायी गई है । रेडियो तरंगें एक दूरी तक सीधी जाती हैं, वायुमण्डल से टकराकर वापस लौट आती हैं किन्तु टेलीविजन तरंगें थोड़ी दूर सीधी चलने के बाद विशाल अन्तरिक्ष में बिखर जाती हैं । इसलिए सम्पर्क माध्यम रेडियो स्तर का न होकर टेलीविजन का हो तो उस आधार पर दूरगामी आदान-प्रदानों की सम्भावना कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी रहेगी ।

प्रकाश से भी अधिक तेजी से चल सकने वाले ऐसे फोटॉन प्रवाह की कल्पना के साकार होने की सम्भावना भी अभी त्यागी नहीं गई है जिस आधार पर प्रकाश गति से भी अधिक तीव्रगति अपनाई जा सकेगी । यह व्यवस्था बन पड़ी तो १००० वर्षो का काम १० वर्ष में भी पूरा हो सकेगा और अन्तरिक्ष की जो दूरियाँ सम्पर्क में प्रमुख बाधा बनी हुई हैं वे बहुत हद तक सफल हो जायेंगी ।

ब्रह्माण्ड के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए हमारे पास दो ही साधन हैं—एक प्रकाश किरणें और दूसरी रेडियो दूरबीनों की ध्वनियाँ । इनमें से ध्वनियों को अधिक प्रामाणिक माना गया है । अन्य माध्यम धरती निवासियों के हाथ में नहीं हैं क्योंकि ऊपरी परतों में जो सघन वातावरण की परत हैं वे संचार माध्यमों को रोकती हैं । न नीचे की जानकारी ऊपर जाने देती हैं और न ऊपर की नीचे आने देती हैं । यदि उन अन्य माध्यमों का आश्रय लेना हो तो पृथ्वी के आयनोस्फीयर परतों को लाँघकर कहीं से खोज-बीन की जा सकती है । इसके लिए चन्द्रमा पर अन्तरिक्षीय वेधशाला बनाने की बात सोची जा रही है । मंगल तो अधिक दूर पड़ेगा और वहाँ से देखभाल कर सकना भी कठिन रहेगा । रेडियो किरणों के अतिरिक्त लैसर एवं एक्स किरणों को भी किसी हद तक उस उपयोग में लाया जा सकता है ।

कार्नल विश्वविद्यालय के नक्षत्र विज्ञानी फेंक ड्रैक ने एक अन्तरिक्षीय ग्रह पिण्डों के नाम १६७६ 'द्विकों' का रेडियो सन्देश प्रसारित किया था । द्विक में एक (0) और दूसरा (१) का संकेत था । अपने 'गर-गट्ट' की तरह अन्तरिक्ष के लिए इन दो संकेतों को उपयुक्त समझा गया । यह संकेत सुदूर ग्रह-नक्षत्रों के इर्द-गिर्द अभी भी भ्रमण कर रहा है और आगे बढ़ रहा है । कहा नहीं जा सकता कि इसे कोई सुनेगा समझेगा भी या नहीं । यदि कहीं से उसे सुना-समझा गया तो कहा नहीं जा सकता कि उसका उत्तर

वापस आने में कितना समय लगेगा । उपरोक्त टेलीग्राम में सन्देश बाहर पृथ्वी ग्रह का परिचय, स्थान और विवरण भेजा गया है और जो रुके इससे सम्पर्क साधने का अनुरोध किया गया है । यह सन्देश १२.६ सेंटीमीटर लम्बाई की रेडियो तरंगों के माध्यम से प्रेषित किया गया है ।

अन्य ग्रह-नक्षत्रों में यदि जीवन हुआ तो आवश्यक नहीं कि वह मनुष्य जैसा ही हो । उनकी शरीर रचना वहाँ के गुरुत्वाकर्षण और रासायनिक वातावरण पर निर्भर रहेगी । हारवर्ड विश्वविद्यालय के जीवविज्ञानी जॉर्ज गेलर्ड सिम्पसन का मत है कि यदि वह ग्रह पृथ्वी से छोटा हुआ हो गुरुत्वाकर्षण की कमी से जिराफ से भी दूने-चौगुने ऊँचे हो सकते हैं और यदि ग्रह बड़ा हुआ और गुरुत्वाकर्षण का भार बढ़ा तो जीवों की काया छोटी कछुए जैसी भी हो सकती है । थोड़ा और अन्तर पड़ने पर वे प्राणी चमगादड़ जैसे भी हो सकते हैं । जल की प्रधानता होने पर वे मेंढक-मछली से मिलते-जुलते भी हो सकते हैं, केंकड़े जैसे भी ।

अन्य लोकों के साथ सन्देशों का आदान-प्रदान कर सकने का माध्यम क्या है ? इस सन्दर्भ में २१ सेण्टीमीटर—हाइड्रोजन परमाणु बेण्ड अधिक उपयुक्त पाया गया है । उसी को ग्रहण सम्प्रेषण के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है ।

इन प्रयत्नों में कितनी देर में कितनी सफलता मिलेगी । उस सम्बन्ध में निश्चित रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु विश्वास यह किया जाने लगा है कि वह दिन दूर नहीं जब लोक-लोकान्तरों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध जुड़ेंगे और उसका दायरा वर्तमान की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत होगा ।

डॉ. श्वार्ट्ज और विज्ञानी ड्रेक अभी तक अन्तरिक्ष और पृथ्वी के जीवन में कोई सुनिश्चित सूत्र न जुड़ पाने पर भी निराश नहीं हैं । वे कहते हैं देर-सबेरे में ऐसा समय अवश्य आवेगा जब मनुष्य अपनी धरती पर एकाकी सुविकसित प्राणी होने का दावा छोड़ देगा और किसी ब्रह्माण्डव्यापी चेतना से प्रमाणित होने वाले तथा प्रभावित करने वाले विराट् समुदाय का सदस्य बनकर रहेगा ।

किसी अन्य लोक में जा बसने की तैयारी

प्रस्तुत अन्तरिक्षीय खोज के कई कारण हो सकते हैं । अधिकाधिक जानने की इच्छा, अन्तरिक्ष का दोहन, प्रतिकूलताओं के समाधान के खोज से लेकर भावी युद्ध के लिए रणक्षेत्र तैयार करना आदि । कारण कुछ भी हो आखिर इतनी मँहगी योजनाओं का परिवहन करने में योजना निर्माताओं की दृष्टि किसी बड़ी बात पर होनी चाहिए ।

इन सम्भावनाओं में एक कड़ी और जुड़ती है कि मनुष्य जिस उद्दण्डता पर उतारू है उसके फलस्वरूप इस धरती पर वे जीवन की आवश्यक सामग्री ही समाप्त हो जायें और सर्वत्र विष ही विष भरा दीखे अथवा इस सुन्दर धरातल को हाइड्रोजन बमों और लैसर किरणों से नेस्तनाबूद ही कर दिया जाय । तब मनुष्य को अपने अस्तित्व को किसी अन्य लोक में भेजना भी पड़ सकता है । सब लोग न सही कुछ लोग ही किसी उपयुक्त वातावरण वाले लोक में चले जायें तो आदम-हब्बा की तरह अपनी वंश वृद्धि करते हुए अन्यत्र कहीं पृथ्वी जैसी परिस्थितियाँ बना सकते हैं । इसलिए कहाँ मानव जीवन की सम्भावना है । इस निमित्त भी यह ढूँढ़-खोज चल रही हो सकती है ।

जर्मन शोध संस्थान से सम्बन्धित जीर्वेन विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री प्रो. हांस डीटर फ्लग ने कुछ ऐसे अवयवों के अवशेष खोज निकाले हैं जो कभी तारों के टूटने से इस धरती पर आये ।

प्रो. फ्लग ने पश्चिम ग्रीन लैण्ड की इसूजा चट्टान में पाये गए इन सूक्ष्म अवशेषों का इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से अध्ययन करने पर पाया कि इनमें प्राप्त अवशेष वर्तमान जीवित अवयवों का मात्र १ प्रतिशत ही हैं फिर भी जीवन के समग्र लक्षण इनमें किसी न किसी मात्रा में आज भी मौजूद हैं । यह चट्टान विश्व की सबसे प्राचीन चट्टान है ।

अब से लगभग १०० वर्ष पूर्व स्वीडन के नोबल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वांटे अरहेतियस ने उस समय एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था, जिसमें उन्होंने लिखा था—'जीन्स' ने सर्वप्रथम बाह्य अन्तरिक्ष में जन्म लिया था । वहीं से शक्तिशाली जीवाणु अन्य ग्रहों में गए । पृथ्वी भी उनमें से एक है और धीरे-धीरे जीव विकास-क्रम में आज की स्थिति में विश्व पहुँचा ।

प्रो. फ्लग इस सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध करते हुए उल्काओं के जन्म को भी सौर-मण्डल के निर्माण के साथ मानते हैं । इनका कहना है कि इसूजा चट्टान में पाये गए जीवांश अरबों वर्षों तक जीवित रह सकते हैं ।

'इन्टेलीजेंट यूनीवर्स' के लेखक फ्रेड होयल ने अपनी पुस्तक में 'पृथ्वी के बाहर भी जीवन है' इस बात को प्रामाणित करने के लिए विभिन्न कालों में तदाशय के वैज्ञानिक खोजों का ब्यौरा प्रस्तुत किया है ।

लेखक के अनुसार पहली बार १८६४ में, दक्षिणी-पश्चिमी फ्रांस में उल्कापात के अवयवों का सूक्ष्म वीक्षण यन्त्रों द्वारा परीक्षण करने पर इस बात की सम्भावना व्यक्त की जा सकी कि पृथ्वी के बाहर अन्य ग्रहों पर भी जीवन है ।

१६३० में परीक्षण के दौरान पाया गया कि पृथ्वी के बाहर से आने वाले उल्का शिलाखण्डों के बीच कुछ ऐसे जीव हैं जिनकी बाहरी खाल होती है जिनमें 'कार्बन' की परत सी चढ़ी रहती है ।

पृथ्वी पर अन्तरिक्षवासियों के आवागमन सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के अतिरिक्त संसार के पौराणिक मिथकों में भी इसका वर्णन मिलता है । प्रो. वॉन डेनीकेन ने उनका एक विवरण सम्पादित किया है । पुस्तक का नाम है—'इंजेकेले', उसमें काश्मीर में श्रीनगर शहर से २० मील दूर बने प्रांतीय क्षेत्र में अवस्थित एक सूर्य मन्दिर का उल्लेख है जिसके भग्नावशेष अभी भी देखने को मिलते हैं ।

राष्ट्रीय वैज्ञानिक और अन्तरिक्ष प्रशासन (नासा), जो अमेरिका में स्थित है, ने आशा व्यक्त की है कि २०८५ तक लोग चाँद और मंगल पर बस जायेंगे और वहीं से शनि, वृहस्पति, यूरेनस और नैपच्यून के उपग्रहों की यात्रा शुरू कर देंगे ।

डी. पी. ए. की हाल ही में एक बैठक के अनुसार कहा गया कि मंगल और चाँद पर बस्तियाँ बसाना सम्भव है और इस दिशा में प्रगति हो रही है ।

प्रो. एल्बर्ट किंग (ह्यूस्टन विश्वविद्यालय) के अनुसार मंगल हमारे सौर-मण्डल का एकमात्र ग्रह है जहाँ पृथ्वी की तरह ही जीवन हो सकता है, इस सौर-मण्डल में मंगल ग्रह पृथ्वी के निवासियों के लिए सबसे ज्यादा आकर्षक भी रहा है ।

मंगल ग्रह की जाँच-पड़ताल के सिलसिले में भेजे गए 'वाइकिंग' अन्तरिक्ष यान से जो चित्र भेजे हैं उसमें एक विशाल काय बन्दर की तथा पिरामिड जैसे किसी भव्य भवन की आकृति पायी गई है । इतना ही नहीं उसके ध्रुवों पर बर्फ भी देखी गई है । मंगल ग्रह पृथ्वी से बहुत कुछ मिलता-जुलता भी है । भारतीय खगोल विद्या में ही उसे पृथ्वी का पुत्र ही माना गया है । वैज्ञानिकों की आशा का केन्द्र अब चन्द्रमा से हटकर क्षुद्र ग्रहों तथा मंगल बनता जा रहा है । क्षुद्र ग्रहों की एक बड़ी शृंखला मंगल और वृहस्पति के मध्य भ्रमणरत रहती है । उनमें भी समुद्री टापुओं की तरह अन्तरिक्ष में जा बसने की बात सोची जा रही है ।

जीवन के उत्पन्न होने तथा विकसित हो सकने की परिस्थितियाँ अन्य ग्रहों पर भी तलाशी जा रही हैं ताकि यदि पृथ्वी का वातावरण प्रकृति प्रकोप से या मानवी दुर्बुद्धि में रहने लायक न रहे तो कहीं अन्यत्र जा बसने और मनुष्य की अपनी विकसित सत्ता का अस्तित्व बनाये रहने की कहीं गुंजाइश मिल सके । पर सन्देह इस बात का भी है कि कहीं अन्यत्र बस जाने पर भी मनुष्य पृथ्वी की तरह चैन से रह सकेगा या नहीं, साथियों को चैन से रहने देगा या नहीं ?

यदि उसने प्रदूषण बढ़ाने, संसाधन नष्ट करने, अधिकाधिक उपभोग एवं अनियन्त्रित प्रजनन जैसी गतिविधियाँ वहाँ भी चालू रखीं तो भगवान से यही प्रार्थना करना चाहिए कि या तो मानव को सद्बुद्धि दे या उसके ये प्रयास असफल सिद्ध हों । कम से कम मानव द्वारा उत्पन्न वैचारिक व अन्यान्य विकृतियाँ एक ही ग्रह तक सीमित रहें तो यह कौन-सा बुरा सौदा है ।

अन्य लोकवासियों का पृथ्वी से सम्पर्क

३० जून, १९०८ साइबेरिया के ताइना प्रदेश में एक ऐसा भयंकर धमाका हुआ, जिसका कारण अभी तक ठीक तरह समझा नहीं जा सका । संध्या के बाद अँधेरी बढ़ती आ रही थी, अचानक सारा आसमान ऐसे तेज प्रकाश से जगमगा उठा मानो कई सूर्य एक साथ निकल पड़े हों । गर्मी इतनी बढ़ी कि लोग प्राण बचाने के लिए जहाँ-जहाँ दौड़े । हजारों हवाई जहाज एक साथ उड़ने जैसी भर्राहट आसमान में गूँजने लगी, उसी समय ऐसी तेज-आँधी पैदा हुई कि सैकड़ों वर्गमील के पेड़ उखड़ गए और मकानों की छतें उड़ गईं ।

इस भयंकर विग्रह को दूर-दूर तक सुना, समझा, देखा और अनुभव किया गया । जहाजों जैसी भर्राहट हजारों मील तक सुनी गई । यूरोप भर में तीन रातें अँधेरे से रहित पूरे प्रकाश में बीतीं । आकाश में बादल छाये रहे । लाल, नीले और हरे रंग की किरणें चमकती रहीं, वेधशालाओं के यन्त्रों ने भूकम्प अंकित किया । इर्कतुस्क की वेधशाला ने लम्बी पूँछ वाली तेज प्रकाश जैसी कोई वस्तु दौड़ती हुई नोट की और पुंछल तारे जैसी आकृति बताई ।

बेनोबरा तक पहुँचते-पहुँचते यह प्रकाश और भी अधिक चमक से भर गया । आग के गोले जैसा उछला और भयंकर धमाके के साथ फट गया । इस विस्फोट की गर्मी तीन दिन तक छाई रही । इसके बाद स्थिति सँभली तो जाँच-पड़ताल की जा सकी । देखा गया तो सारा जंगल जलकर खाक हो गया था । बड़े पेड़ों के ठूँठ जहाँ-तहाँ सुलग रहे थे । पशु-पक्षी कोयले की तरह जले-भुने पड़े थे । उस समय यही अनुमान लगाया कि आकाश से कोई उल्का जमीन पर गिरी है और उसी के पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करने पर जलने से यह विस्फोट हुआ है । पर यह समाधान भी पूरा और सन्तोषजनक नहीं था ।

घटना के बीस वर्ष बाद सुयोग्य वैज्ञानिकों का एक दल नये सिरे से उस दुर्घटना की जाँच करने भेजा गया । दल ने पूरे इलाके की छान-बीन की पर उल्कापात में अनिवार्य रूप से उपलब्ध होने वाले धातुओं के टुकड़े कहीं भी नहीं मिले । उल्का छोटी चीज तो होती नहीं, उसका आकार बड़ा होता है । जमीन में धँसने की शंका का निवारण करने के लिए भी सारी धरती कुरेद ली गई पर उसके किसी परत में भी कुछ न मिला, उल्का धँसने पर जमीन में गड्ढा होना चाहिए सो भी कहीं न था ।

एक और विशेष बात यह देखी गई कि पूरे ताइना प्रदेश की जमीन पर राख फैली पड़ी थी और उसमें रेडियो सक्रिय तत्व बड़ी मात्रा में मौजूद थे । उल्काओं में ऐसे तत्व कभी नहीं होते ।

वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जमीन से ३ मील ऊपर अति शक्तिशाली हाइड्रोजन बम जैसा विस्फोट हुआ है । पर यह हुआ कैसे ? किया किसने ? बम बना कहाँ ? आया कहाँ से ? उस समय तक संसार में विज्ञान की जो स्थिति थी, उसमें इस प्रकार के अणु बम बनने की कतई सम्भावना नहीं थी ।

रूसी वैज्ञानिकों के अग्रणी ऐलेग्जेण्डर काजनसोव ने सन् १९५९ में अपना प्रतिपादन यह प्रस्तुत किया कि अणु शक्ति से चलने वाला कोई अन्तरिक्षयान धरती पर आया, उतरने की टैक्निक ठीक तरह न बन पड़ने से यान का आकाश में विस्फोट हो गया । इसके बाद समस्त संसार के वैज्ञानिक यह पता लगाने के लिए प्रयास करने लगे कि क्या अन्य ग्रहों में जीवन है ? और क्या वहाँ के निवासी अन्तरिक्षयान बनाने और उन्हें पृथ्वी तक ला सकने में समर्थ हैं ?

मानवी बुद्धि सीमित है उसकी जानकारी बहुत समझी जाने पर भी एक प्रकार के अति स्वल्प ही है । ब्रह्माण्ड का विस्तार ही नहीं रहस्य भी इतना बड़ा है कि उसे पूरी तरह समझ पाना भौतिक उपकरणों के आधार पर शायद कभी भी सम्भव न हो सकेगा ।

व्यापकता की परिधि को स्पर्श करने वाला माध्यम केवल एक ही है—आत्मा की साधना समुद्भूत ब्रह्मवर्चस । उसे जाग्रत, परिष्कृत और सूक्ष्म बनाकर उन रहस्यों को भी समझा जा सकता है जो भौतिक उपकरणों और लौकिक चिन्तन तक सीमित बुद्धि के लिए एक प्रकार से सदा रहस्यमय ही बने रहेंगे ।

इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी अकेला ही बुद्धिधारी जीवों का ग्रह नहीं है, ऐसे-ऐसे असंख्यों पिण्ड इस विशाल ब्रह्माण्ड में भरे पड़े हैं । उनमें से कितने ही ग्रहों के निवासी हम धरती के मनुष्यों की अपेक्षा अत्यधिक ज्ञान और साधन सम्पन्न हैं । जिस तरह हम लोग चन्द्रमा पर उतर चुके, सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों की खोज के लिए अन्तरिक्ष यान भेज रहे हैं, सौर-मण्डल से बाहर

के तारकों के साथ रेडियो सम्पर्क जोड़ रहे हैं, उसी प्रकार अन्य ग्रहों के बुद्धिमान मनुष्यों का हमारी धरती के साथ सम्पर्क बनाने, अनुसन्धान करने का प्रयत्न चल रहा हो तो उसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है।

अति दूरवर्ती यात्राओं में साधारण ईंधन कारगर नहीं हो सकते, उनमें परमाणु शक्ति को ही आधार बनाया जा सकता है। सम्भव है कि अन्य ग्रहों का अन्तरिक्ष यान पृथ्वी से सम्पर्क स्थापित करने आया हो और किसी गैर-जानकारी और खराबी के कारण वह नष्ट हो गया हो, उसे ही साइबेरिया में हुए अणु-विस्फोट जैसी स्थिति में देखा गया हो।

इससे पूर्व भी ऐसे कितने ही बिखरे हुए प्रमाण मिलते रहे हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि किन्हीं ग्रह लोकों के निवासी पृथ्वी पर आवागमन करने में किसी हद तक सफलता प्राप्त भी कर चुके हैं।

सहारा के रेगिस्तान में—सेफारा पर्वत पर ऐसी विचित्र गुफाएँ पायी गईं जिनमें अन्य लोकवासी मनुष्यों की आकृतियाँ थीं। प्रो. हेनरी ल्होत के अन्वेषक दल ने, इन विचित्र अवशेषों को देखकर उन्हें, विशाल मंगल ग्रही देवता की अनुकृति बताया।

रूस के इटरुस्किया प्रदेश में भी ऐसे ही अवशेष मिले हैं जिनमें अन्य ग्रह निवासियों के साथ पृथ्वी वासियों का सम्बन्ध होने पर प्रकाश पड़ता है।

दक्षिणी अमेरिका की ऐंडीज पर्वतमाला में चस्का पठार पर ऐसे चमकीले पत्थर जड़े हुए पाये गए हैं जो अन्तरिक्षयानों के प्रकाश से प्रकाशित होकर उन्हें सिंगनल देते रहे होंगे। इसी पर्वतमाला पर एक जगह विचित्र भाषा में कलेण्डर खुदा मिला है। तत्ववेत्ताओं के अनुसार इस कलेण्डर में २९० दिन का वर्ष और २४ तथा २५ दिन के महीने प्रदर्शित किए गए हैं। ऐसा वर्ष किसी अन्य ग्रह पर ही हो सकता है।

आस्ट्रिया में सौ वर्ष पूर्व ७८५ ग्राम भारी एक ऐसी इस्पात नली मिली है जिसे ५ करोड़ वर्ष पुरानी बताया जाता है। तब मनुष्य अपने पूर्वज बन्दरों के रूप में था। उस समय तक आग का आविष्कार नहीं हुआ था तब इस्पात कौन ढालता। सोचा जाता है कि यह भी किन्हीं अन्तर्ग्रही यात्रियों का छोड़ा हुआ उपकरण है। गोबी मरुस्थल के चपटे पत्थरों पर पाये गए पद चिह्नों की करोड़ों वर्ष पुरानी स्थिति में किन्हीं अन्य ग्रह निवासियों के आगमन की स्मृति आँकी जाती है।

समृद्ध लोकों में समुन्नत प्राणियों के अस्तित्व की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। विज्ञान इसकी शक्यता स्वीकार करता है। अन्य लोकों से आने वाली ध्वनि तरंगों से किन्हीं प्रसारणों को सुना गया है और उनका विश्लेषण हो रहा है।

भौतिक उपकरण और भौतिक क्रिया-कलाप इस दिशा में किस हद तक कब सफल होगा इसे भविष्य ही बतावेगा। पर भूतकाल यह बताता है कि आत्मिक सशक्तता बढ़ाकर उसके आधार पर लोक-लोकान्तर की समुन्नत आत्माओं से न केवल सम्पर्क ही सम्भव है वरन् उनके साथ महत्त्वपूर्ण सहयोगात्मक आदान-प्रदान भी सम्भव है। स्वर्गलोकवासी देवताओं के साथ मनुष्य के सम्पर्क सम्बन्ध की पौराणिक गाथाओं में ऐसे ही तथ्य विद्यमान हैं। उस विज्ञान को पुनः समुन्नत करके लोकान्तर व्यापी आत्मचेतना के साथ घनिष्टता उपलब्ध की जा सकती है और इस प्रकार विश्व बन्धुत्व के लक्ष्य को ब्रह्माण्ड बन्धुत्व तक विकसित किया जा सकता है। साइबेरिया विस्फोट सम्भव है इसी दिशा में अँगुलि निर्देश करता हो।

लोक लोकान्तरों का पारस्परिक आदान-प्रदान

मनुष्यों का किन्हीं अदृश्य लोकों तक पहुँचना और लोक-लोकान्तरों के बुद्धिमान प्राणियों का मनुष्य लोक के साथ सम्पर्क बनाने के लिए दौड़ लगाना आश्चर्यजनक तो लगता है, पर सर्वथा अविश्वस्त नहीं है।

कुछ दिन पहले मनुष्यों ने चन्द्रमा के धरातल पर पैर रखा था और वहाँ की परिस्थितियों की जानकारी विस्तार-पूर्वक दी थी। अन्तरिक्ष में इन दिनों सैकड़ों यान पृथ्वी की परिक्रमा लगा रहे हैं। इनमें से कितनों में ही मनुष्य उड़े और अभीष्ट जाँच-पड़ताल के उपरान्त वापस लौटे हैं। सौर-मण्डल के समीपवर्ती ग्रहों तक मानव रहित यान पहुँच चुके हैं। अगले दिनों वहाँ तक मनुष्य समेत यान भेजने की योजना है। हो सकता है यह प्रयास किसी दिन आगे बढ़ते-बढ़ते लोक-लोकान्तरों तक यात्रा कर सकने वाले वाहनों का विकास करते और उनमें बैठकर वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड की, अभीष्ट ग्रह-तारकों की खोज-खबर लेने के लिए चल पड़े।

जब समर्थ जलयानों का आविष्कार नहीं हुआ था तब सुविस्तृत समुद्रों का पार कर सकना सम्भव नहीं था। उन दिनों महाद्वीप भी एक प्रकार से अविज्ञात लोक ही बने हुए थे। कोलम्बस ने अमेरिका को इसी स्थिति में खोजा था। समर्थ जलयानों ने जिस प्रकार भू-लोक के विभिन्न खण्डों को आपस में जोड़ दिया, हो सकता है अगले दिनों अन्तरिक्षयान दूरवर्ती लोक-लोकान्तरों के बीच भी आवागमन का, आदान-प्रदान का, रास्ता खोलें।

पौराणिक गाथाओं में धरती और स्वर्ग के बीच आवागमन की अनेकों चर्चाएँ सम्मिलित हैं। देवर्षि नारद धरती से विष्णुलोक और विष्णुलोक से धरती पर दौड़ लगाते रहते थे। अर्जुन और दशरथ के सशरीर देव-लोक पहुँचने, अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति के उपरान्त वापस लौटने की कथाएँ कही-सुनी जाती हैं। समय-समय पर देवता भी धरती की समस्याओं को सुलझाने के लिए आते, ठहरते एवं अवतार धारण करते रहे हैं। लोक-लोकान्तरों के मध्य चलने वाले आवागमन सूत्रों का यह पौराणिक उल्लेख है। आज के वैज्ञानिक प्रयत्नों का पौराणिक गाथाओं के साथ तालमेल बिठाने पर सम्भावना यह उभरती है कि आज की स्थिति में यह कठिन भले ही हो, पर असम्भव नहीं। कम-से-कम सैद्धान्तिक दृष्टि में उसे मान्यता दी ही जा सकती है।

इस चर्चा में एक की उड़नतश्तरियों और विद्युत जेटों की भी जुड़ती है। वे इतनी अधिक संख्या में प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष देखी जा चुकी हैं कि उनका अस्तित्व झुठलाया जाना सम्भव नहीं। वैज्ञानिक इस सन्दर्भ में कुछ ठीक से बता नहीं पाते। अब तक अन्तरिक्ष ज्ञान द्वारा कोई निश्चित निष्कर्ष निकला नहीं। ऐसी दशा में उन्हें लोक-लोकान्तरों के साथ आवागमन

का एक सूत्र होने की बात सोची जाय तो उसे उपहासास्पद नहीं कहा जाना चाहिए ।

उड़नतश्तरियों को अन्तरिक्षयान समझा जा सकता है । विद्युत गेंदें किसी अन्य लोक के सुविकसित जीवधारी हो सकते हैं । यदि वे दोनों प्रकृति के कोई विशिष्ट आधार हैं तो पता चलना चाहिए कि इनके आकस्मिक प्रकटीकरण और विलुप्तीकरण के पीछे किन शक्तियों एवं सिद्धान्तों का रहस्य सन्निहित हो सकता है । दोनों में से कोई भी कारण हो, यह हर दृष्टि से विचारणीय और अनुसंधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझा जाने योग्य है ।

ब्राजील के दो युवा इन्जीनियर मिगले बायना और मैनुअल क्रूज उड़नतश्तरियों के रहस्य ज्ञात करने के प्रयोग कर रहे थे । इसके लिए दोनों ने मिलकर एक प्रयोगशाला बनायी थी और उसमें विभिन्न प्रकार के प्रयोग करते थे ।

अगस्त १९६६ की बात है । दोनों इन्जीनियर सुबह ही विन्टेम पहाड़ी पर चढ़ने के लिए चल पड़े । यह पहाड़ी घने जंगलों से भरी है और पिछले २५ वर्षों से वहाँ अक्सर उड़नतश्तरियाँ देखी जाती रही हैं । वहाँ प्रायः प्रतिदिन कोई विचित्र वस्तु आकाश से उतरती और कुछ देर ठहर कर चली जाती है । समझा जाता है कि अन्तरिक्षवासियों ने ब्राजील की इस पहाड़ी को धरती की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए स्टेशन बनाया है ।

जैसे ही दोनों पहाड़ी पर चढ़े, कोई उड़नतश्तरी के प्रकार की वस्तु पहाड़ी पर उतरती दिखाई दी । नगर के अनेक प्रामाणिक व्यक्तियों ने इसकी पुष्टि की ।

दूसरे दिन प्रातःकाल कुछ लड़के शिकार खेलने के उद्देश्य से उस पहाड़ी चढ़े तो वहाँ दोनों इन्जीनियर मृत पाये गए । सूचना पुलिस को दी गई । पुलिस आयी, पर मृत्यु का कारण का पता नहीं लगा सकी, क्योंकि उनके हाथ कोई ऐसा सुराग नहीं लगा जो मुत्यु का कोई ठोस कारण बता सके । शव परीक्षा में भी उनके शरीर में किसी प्रकार के विष का कोई प्रभाव नहीं पाया । इसी शृंखला की एक दूसरी कड़ी है—'आग की गेंद' । यह अनेक स्थानों पर प्रकट और लुप्त होती देखी गई है । उनके प्रत्यक्षदर्शियों में ऐसे प्रामाणिक व्यक्ति हैं, जिनकी साक्षियों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है । उन्हें मनगढ़न्त अफवाहें फैलाने वाले बचकाने लोगों में भी किसी प्रकार गिना नहीं जा सकता ।

१५ मार्च सन् १९६३ की बात है । न्यूयार्क से वाशिंगटन जाने वाले 'ईस्टर्न एयर लाइन' फ्लाइट नं. ५३९ विमान में सुबह पाँच बजे एक आग की गेंद घूमती हुई देखी गई । वह एक छोर से प्रविष्ट हुई और दूसरे छोर में शौचालय के पास जाकर अदृश्य हो गई । देखा तो उसे अनेकों ने पर किसी का कोई नुकसान न हुआ । मात्र गंधक या नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी गन्ध भरी पायी गई ।

यह घटना विश्वविख्यात वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' में छपी । विश्लेषणकर्त्ताओं ने उसके सम्बन्ध में अनेक कारणों और सम्भावनाओं का प्रस्तुतीकरण किया, पर निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सका । आग या बिजली की गेंद का आखिर कुछ तो प्रभाव होना ही चाहिए था ।

अन्यत्र भी बहुत स्थानों पर इन विद्युत गेंदों को देखा गया है । वैज्ञानिक संस्था 'नासा' के इस सन्दर्भ में एकत्रित उदाहरणों की संख्या ६०० से भी अधिक है । इनके आकार १ सेण्टीमीटर से लेकर १ मीटर तक देखे गए हैं । इनके अस्तित्व को सिद्ध करने वाली ४००० साक्षियाँ उपलब्ध हैं, पर यह नहीं कहा जा सका कि वे आखिर हैं क्या, और क्यों इस प्रकार उछलती-कूदती दौड़ती प्रकट और लुप्त होते हुए भी किसी वस्तु को अपनी दृश्यमान ऊर्जा से प्रभावित नहीं करतीं ।

उड़नतश्तरियों की तरह इन विद्युत गेंदों ने भी उन मनुष्यों को कोई हानि नहीं पहुँचाई जिनके समीप से वे निकलीं या सटकर अपनी ऊर्जा अस्तित्व का छोटा-मोटा प्रमाण देती गईं ।

अधिक सम्भावना इसी बात की है कि यह किन्हीं विकसित सभ्यता वाले लोकों के निवासियों द्वारा धरती वालों के साथ सम्पर्क साधने और यहाँ की परिस्थितियाँ समझने का प्रयत्न है । एक ओर से बढ़ाए गए हाथ के उत्तर में दूसरी ओर से भी हाथ बढ़ाना चाहिए और ब्रह्माण्डव्यापी चेतना के घटकों को मिल-जुलकर किसी बड़े लक्ष्य की पूर्ति के लिए सहयोगपूर्वक आगे बढ़ना चाहिए ।

इस सन्दर्भ में प्रकृति के एक रहस्य का कुछ दिन पूर्व ही पता चला है कि ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेकों अरबों खरबों मील लम्बे-चौड़े छिद्र हैं जहाँ विद्यमान चुम्बकत्व के सहारे पदार्थों या प्राणियों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की दूरी पार कर लेना नितान्त सरल है । इन मार्गों को 'अन्ध छिद्र' कहते हैं । अन्ध इसलिए कि उनमें प्रकाश का सर्वथा अभाव रहने के कारण यह पता नहीं चलता है कि इस मार्ग पर दौड़ाने वाले किस दिशा में कितनी तेजी से दौड़ रहे हैं और वे अन्ततः कब और कहाँ पहुँचने वाले हैं । इस अनिश्चय की स्थिति के कारण ही उसे अन्ध तमिस्रा कहा गया है । यह राह अपने आप यात्री को घसीटती-धकेलती है । उस पर चलने वाले को तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ता है । समझा जाता है कि मार्ग पर प्रकाश गति की तुलना में कहीं अधिक तेजी से चलने वाले पदार्थों का प्रमाण है ।

'ह्वाइट होल' अन्तरिक्ष में पाये जाने वाले ऐसे सुविस्तृत क्षेत्र हैं जहाँ न तारे होते हैं न आकाशगंगाएँ । यह ब्लैक होल से गुण और प्रकृति में पूर्णतः भिन्न होते हैं । इनमें न तो उनकी जैसी विलक्षण आकर्षण क्षमता होती है, और न उसके समतुल्य कोई अन्य गुण । हाँ, विस्तार में ये अवश्य काफी बड़े होते हैं । अब तक इस प्रकार के करीब दस होलों की गवेषणा की जा चुकी है जिनमें अन्तिम होल क्षेत्रफल में सबसे बड़ा है । इसका आयाम ३० करोड़ लाख प्रकाशवर्ष है ।

अमरीकी शोधकर्त्ताओं ने आकाश में जब एक प्रकाश बम फैंका तो पाया कि ५० करोड़ लाख प्रकाशवर्ष दूर भी अन्तरिक्ष में बहुत सारी आकाशगंगाएँ हैं । इसी प्रकार ८० करोड़ लाख प्रकाशवर्ष दूर भी आकाशगंगाएँ पायी गईं, किन्तु इन दोनों के बीच का ३० करोड़ लाख प्रकाशवर्ष का विस्तृत क्षेत्र तारा एवं आकाशगंगा से पूर्णतः रहित था । इसे ही ह्वाइट होल की संज्ञा दी गई ।

जुलाई १७६८ की घटना है । इंग्लैण्ड के सिफ्टन मैलेट नामक गाँव में ७० वर्षीय दर्जी, पारफिट अपनी बड़ी बहन के साथ रहता था । युद्ध के दौरान वह लंगड़ा हो गया था अतः आजीविका के लिए उसने दर्जी का काम आरम्भ किया । वह

इतना कमजोर था कि चलना-फिरना तो दूर स्वयं बिस्तर से भी नहीं उठ सकता था । एक दिन प्रातः उसने दरवाजे के पास बैठने की इच्छा प्रकट की । पड़ौस की एक लड़की तथा उसकी बहन ने मिलकर उसे दरवाजे के पास कुर्सी पर बिठाया । फिर दोनों अपने-अपने काम में लग गईं । उसकी बहन ऊपर की मंजिल में काम करने चली गई । पारफिट के घर का दरवाजा मुख्य सड़क की ओर खुलता था । उसी दरवाजे पर वह बैठा था । १५ मिनट बाद जब उसकी बहन वहाँ पहुँची तो पारफिट गायब था । दूर-दूर तक उसकी खोज-बीन की गई पर कहीं उसका पता न चला, न ही कोई ऐसा सुराग मिला जिससे लापता का कारण जाना जा सके ।

यह घटना उस व्यक्ति की है जिसने डीजल इन्जन का आविष्कार किया । रूडोल्फ डीजल एक दिन किसी आवश्यक कार्यवश अमेरिका जा रहा था । २६ सितम्बर, १६१३ को ड्रेस्टन जहाज से यात्रा के लिए रवाना हुआ । रात्रि भोजन के उपरान्त डीजल अपने इन्जीनियर मित्र लुकमान के साथ जहाज पर घूमने निकला । १० बजे दोनों वापस लौट आये और अपने-अपने केबिन में चले गए । दूसरे दिन सवेरे डीजल लापता था । कमरे की जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि उसने सोने की पूरी तैयारी कर ली थी । घड़ी इतनी ऊँचाई पर रखी थी कि वह सोते हुए भी समय ठीक प्रकार देख सके किन्तु बिस्तर पर किसी प्रकार की सिकुड़न नहीं थी । शायद वह बिस्तर पर लेट नहीं सका था और इससे पहले ही घटना घटी तथा वह गायब हो गया । उसकी काफी खोज-बीन की गई, पर कहीं पता न चला ।

सन् १६२० का अक्टूबर माह । ब्रिटिश पार्लियामेंट में लेबर पार्टी के सदस्य विक्टर ग्रेसन लीवर पुल से रवाना होकर एक सभा को सम्बोधित करने जा रहे थे । उन्हें लेने कई लोग स्टेशन पहुँचे, पर वे ट्रेन में थे ही नहीं । पुलिस को जाँच का दायित्व सौंपा गया । खोज-बीन से उसका बैग लन्दन के एक होटल मैनेजर के पास पाया गया । मैनेजर ने बताया कि एक व्यक्ति ने यहाँ यह छोड़ दिया है, मगर इसे लेने वह अब तक नहीं आया । उसके सिर में पट्टी बँधी थी, किन्तु मैनेजर के बताये हुलिए से ग्रेसन बिल्कुल ही नहीं मिलता था । ग्रेसन का अब तक कहीं पता नहीं चल सका ।

मनुष्यों का इस प्रकार अचानक अदृश्य हो जाना क्यों कर होता है ? इसका कारण लोकान्तर आवागमन का पथ प्रशस्त करने वाले किन्हीं शोधकर्त्ताओं का आवश्यकता के साथ जोड़ा जा सकता है अथवा ऐसा भी हो सकता है कि कोई छोटे ब्लैक होल उसी तरह जहाँ-तहाँ पकड़ते-खींचते, घसीटते-फिरते हों, जिस तरह की विद्युत गेंदें, उड़नतश्तरियों के छोटे प्रतिकृति के रूप में यदा-कदा दृष्टिगोचर होती हैं ।

अन्तरिक्ष पर आधिपत्य के मानवीय प्रयत्नों की रोकथाम

अन्तरिक्ष में दृष्टिगोचर होने वाली चमत्कारी हलचलों को पिछले दिनों उड़नतश्तरियों का नाम दिया और उन्हें भूत की करतूत जैसे कौतुक कौतूहलों में गिना जाता रहा है । इनके अस्तित्व से तो इन्कार नहीं किया गया और न दृष्टि भ्रम कहकर महत्त्वहीन ठहराया गया है फिर भी वैज्ञानिक यह अनुमान लगाते रहे हैं कि प्रकृति प्रवाह में उत्पन्न होते रहने वाले व्यतिक्रमों से भी ऐसा आभास हो सकता है ।

अनुमानों का यह सिलसिला अभी भी समाप्त नहीं हुआ है । प्रतिपादनकर्त्ता अपने अनुमानों के पक्ष में कितने ही तर्क प्रमाण प्रस्तुत करते रहते हैं फिर भी इस सम्भावना को सर्वथा अमान्य नहीं ठहराया गया कि यह लोकान्तर निवासियों का भू-लोक वालों के साथ सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास भी हो सकता है ।

धरती वाले अन्तरिक्ष क्षेत्र में प्रवेश पाने और उस पर आधिपत्य करने से मिलने वाले लाभों को बटोरने के लिए तत्परतापूर्वक प्रयत्नशील हैं । इस दृष्टि से वे बड़ी राशि भी झोंकते और वैज्ञानिक परामर्शों के अनुरूप प्रचुर साधन जुटाने में भी जुआरी जैसे दाँव लगा रहे हैं । धरती अब मनुष्य की बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं की तुलना में कम पड़ती है । खारा समुद्र भी इतना वैभव प्रदान करने की स्थिति में नहीं जिससे बढ़ती संख्या और आकांक्षा की पूर्ति हो सके । इस निमित्त आकाश को अधिक व्यापक और समृद्ध पाया गया है । अस्तु ! उस क्षेत्र के अनुसंधान और आधिपत्य के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा जा रहा है । इस दिशा में रूस और अमेरिका की प्रतिस्पर्धा और सफलता के समाचार पढ़ने पर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है ।

हो सकता है ऐसा ही उत्साह अन्य लोकवासियों में भी हो, उन्हें ब्रह्माण्ड में पृथ्वी की विशेष स्थिति का परिचय मिला हो और वे कोलम्बस जैसा साहस जुटाकर यहीं उतरने तथा सम्बन्ध साधने की सम्भावनाओं का पता लगा रहे हों । हो सकता है उड़नतश्तरियों के पीछे ऐसा ही कुछ रहस्य हो ।

उड़नतश्तरियों के रहस्य का सबसे बड़ा दृश्य पायलट केन अर्नोल्ड ने वाशिंगटन के समीप माउन्ट रैनर में देखा । तश्तरीनुमा ३ प्रकार के दृश्य उनको पर्वत के ऊपर घूमते हुए स्पष्ट दृष्टिगोचर हुए । घटना १६४७ की है ।

कोलोराडो विश्वविद्यालय के डॉक्टर ऐडवर्ड यू. कंडन ने सरकारी सहयोग के आधार पर १६६६ में 'प्रोजेक्ट ब्लू बुक' नामक एक प्रकाशन में उड़नतश्तरियों के वैज्ञानिक अनुसन्धान के कुछ आँकड़े प्रस्तुत किए ।

सन् १६७३ में उड़नतश्तरियों के वास्तविक तथ्यों का रहस्योद्घाटन हुआ है । म्युचुअल यू. एफ. ओ. नेटवर्क रिसर्च योजना के अन्तर्गत ओहियो में ७५० घटनाओं का सविस्तार वर्णन किया गया है ।

मार्च १६५४ में तश्तरियों को रूस और अमेरिका के गुप्तचर विभाग के हथियार नहीं समझा जाने लगा । फ्रैन्क ऐडवर्ड ने वाशिंगटन में म्युचुअल ब्रॉडकास्टिंग योजना के अन्तर्गत १ करोड़ ऐसे श्रोताओं से पत्र-व्यवहार किया जिन्होंने तश्तरियों के सम्बन्ध में कुछ सुना-देखा । एक सप्ताह के भीतर बाक्स नं. १८५५ में ६००० की संख्या में प्रामाणिक पत्र मिले । जिनसे इन उड़नतश्तरियों का अस्तित्व समझ में आने लगा । ६ सितम्बर, १६५५ को हवाई सेना के कैप्टन ह्यू एमसीनैजे, जो कोलम्बिया (ओहियो) के निवासी हैं, ने उड़नतश्तरियों के सिद्धान्त की पहली बार पूरी तरह व्याख्या की ।

२३ अगस्त, १६५५ को एक घटना घटी । जेट विमान की आकृति की एक उड़नतश्तरी कोलम्बिया में ही २० हजार फीट की ऊँचाई पर उड़ती हुई दृष्टिगोचर हुई । जो १२ मिनट तक एक ही स्थान पर यथावत् स्थिर बनी रही ।

सन् १६५७ में सिविल रिसर्च इन प्लेनेटरी फ्लाइंग ऑब्जेक्ट ने 'ओर्विट' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया । वस्तुतः इन प्रयासों ने आत्मा-परमात्मा की विलक्षणताओं के सम्बन्ध में तथ्यों का उद्घोष किया है । उसी तरह का एक और अनुसन्धान केन्द्र उड़नतश्तरियों की जानकारी हेतु बना, जिसे नेशनल इन्वेस्टीगेशन कमेटी और ऐरियल फैनोमिना के नाम से जाना जाता है । इसका प्रमुख कार्य मैरीमोन्ट हाईस्कूल में यूफौलॉजी (उड़नतश्तरी-विज्ञान) की सायंकालीन कक्षाओं की व्यवस्था करना है जिससे हर व्यक्ति को इस विज्ञान की जानकारी मिल सके ।

डॉ. हाइनेक की अध्यक्षता में अमेरिकी इन्स्टीट्यूट ऑफ ऐरोनॉटिक्स एण्ड ऐस्ट्रोनॉटिक्स की एक संयुक्त गोष्ठी २७ सितम्बर, १६७५ को लॉस ऐन्जिल्स में सम्पन्न हुई, जिसमें यूफोलॉजी विज्ञान के रहस्यों का सांगोपांग पर्यवेक्षण किया गया ।

सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद जैक्स बैली को हाइनेक के समतुल्य ही समझा जाता है । उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेकानेक पुस्तकें लिखी हैं । उनकी अन्तिम पुस्तक डॉ. हाइनेक के सहयोग के आधार पर लिखी गई है जिसका नाम है 'दी इनविजिबुल कॉलेज' । इसमें उन्होंने उड़नतश्तरियों के विलक्षण रहस्यों को लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया है । 'साइको-फिजिकल नेचर ऑफ दी यूफो' विषय पर विस्तृत बिवेचन करते हुए वैली ने विज्ञात तीन आयामों के अतिरिक्त कई अन्य आयामों का अस्तित्व सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । यह एक कपोल कल्पना नहीं है अपितु विज्ञान सम्मत सिद्धान्त है जिसे मान्यता भी दी जाने लगी है ।

सबसे अलौकिक घटना लिंस वर्ग (ओहियो) की समझी जाती है । डैन रिचले नामक नवयुवक, जो ज्योतिष विद्या में अभिरुचि रखता था, ने २६ सितम्बर, १६७४ की रात्रि के १० बजे आकाश की ओर से एक बहुत चमकीला प्रकाश देखा । इस घटना से भयभीत होकर लड़का अपने पिता वाल्टर रिचले की तरफ दौड़ा । प्रकाश इतना चमकीला था जितना कि १३२००० मोमबत्तियों को जलाया जाय । एकाएक प्रकाश सफेद रंग से लाल होता गया और उसके नजदीक पहुँचने लगा । रिचले के साथ दो पालतू कुत्ते भी थे । कुत्तों ने यह दृश्य देखा तो एक की गर्दन झुकी ही रह गई और दूसरा खड्ड में जा गिरा ।

११ बजे डैन रिचले अपने कमरे में पढ़ने के लिए बैठा तो एक हेलीकॉप्टर उसके दरवाजे पर उतरने लगा । उसकी ध्वनि बड़ी तेज थी । उसकी बहुत-सी खिड़कियाँ चाँदी की लगी हुई देखी गई । थोड़ी ही देर में डैन ने देखा कि उसके दरवाजे पर कोई भी बेहिकिल नहीं है । श्रीमान् रिचले ने सरकार से दावा किया कि इस विलक्षण घटना से जो क्षति उसे उठानी पड़ी उसकी पूर्ति अविलम्ब की जाय । एन. ड्रैफैल ने तत्काल 'मिस्ट्रीज ऑफ हेलीकॉप्टर' लिखी । फरवरी १६७५ में इसी को 'स्काईलुक' नाम दिया गया ।

७ अगस्त, १६७० को इथोपिया के सलाडेन गाँव में एक उड़नतश्तरी के गिरने से घर जल गए, पेड़ उखड़े, घास जली तथा सड़कें पिघलने लगीं । पत्थर के पुल चकनाचूर हो गए । ५० इमारतें बिलकुल समाप्त हो गईं । आठ व्यक्ति बुरी तरह घायल हो गए और एक बच्ची को तो अपनी जीवन-लीला ही समाप्त करनी पड़ी ।

डॉ. ऐरेन्को करेनूटो वोटा इटली के नागरिक हैं । उनकी आयु ४० वर्ष है । अप्रैल १६५५ में सर्वप्रथम उन्होंने एक ऐसे अलौकिक दृश्य को बताया जो लोगों की आँखों को चकाचौंध कर देने वाला था । यह घटना होरेसियो गोंजाल्स सरासस की है । डॉ. वोटा ऐवान्स वार पाइलट, ऐरोनॉटिक इन्जीनियर थे । अब सरासस में आर्चीटैक्चर इन्जीनियर के पद को सम्भाल रहे हैं ।

रॉबर्ट सी. गार्डनर को उड़नतश्तरी विज्ञान का विशेषज्ञ माना जाता है । वे कैलीफोर्निया में ही प्रवक्ता एवं लेखक का कार्यभार सम्भालते हैं । उन्होंने तश्तरियों के अनेकों ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता ।

कॉमेट जेट लाइनर विमान की दुर्घटना सर्वविदित है । २ मई, १६५३ को दमदम हवाई अड्डा कलकत्ता से इस विमान ने उड़ान भरी । ५ मिनट के बाद ही हवाई जहाज एक फेयरी हेवी बॉडी उड़नतश्तरी से टकरा गया । विमान इतना बुरी तरह से जला कि ५३ यात्रियों की जीवन-लीला समाप्त हो गई । रिकॉर्ड किए गए सम्वादों से इस दृश्य की पुष्टि होती है कि यह दो विमानों की टक्कर नहीं थी ।

अमेरिका के ६५ प्रतिशत लोगों का पूर्ण विश्वास है कि उड़नतश्तरियों के अस्तित्व को विस्मृत नहीं किया जा सकता । डेढ़ करोड़ अमेरिकावासी लोगों ने इन उड़नतश्तरियों को घूमते हुए स्पष्ट देखा है, लेकिन वे उन घटनाओं का उल्लेख करने में असमर्थ रहे हैं । संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्कालीन महासचिव श्री कूर्ट वाल्डेहम ने भी अपनी स्वीकृति प्रदान की थी और कहा था कि उड़नतश्तरियों के अस्तित्व को गलत साबित नहीं किया जा सकता ।

ओटावा के पास नेशनल रिसर्च काउन्सिल के अन्तर्गत ऐटमॉस्फीयरिक रिसर्च काउन्सिल की स्थापना की गई जो ऐसे दृश्यों के तथ्य उजागर कर सकने में सक्षम रहे ।

धरातल, भू-गर्भ, समुद्र तल की गहरी खोज-बीन करने के उपरान्त मनुष्य ने अन्तरिक्ष को खोजने और हथियाने के लिए कदम बढ़ाये हैं । उसके लिए उड़नतश्तरियाँ एक अनबूझ पहेली बन रही हैं । सोचने वाले यह भी सोचते हैं कि अन्तरिक्ष का क्षेत्र असीम है, उस पर सभी लोकान्तरवासियों का समान अधिकार है । धरती का मनुष्य उसे हथियाने की जिस अनाधिकार चेष्टा में प्रवृत्त है, उससे हो सकता है अन्य लोकों में खलबली मची हो और समय रहते निपटने के लिए उड़नतश्तरियाँ भेजना शुरू किया हो ।

विश्व ब्रह्माण्ड के साथ सम्पर्क साधना

बहुत दिनों से यह सिद्धान्त विज्ञान क्षेत्र में मान्यता प्राप्त करता रहा है कि प्रकाश की गति एक सेकिण्ड में १८६००० मील है । इससे तीव्र और कोई गति नहीं । यदि ब्रह्माण्ड की यात्रा पर निकला जाय तो कहाँ कितने समय में पहुँचा जा सकेगा, इसका अनुमान इस आधार पर लगाया जाना चाहिए कि इस गति से चलने वाला कोई वाहन मिल जायेगा किन्तु मनुष्य का चिन्तन और कर्त्तव्य अभी इतना विकसित नहीं हुआ कि प्रकाश की गति

से अधिक चलने वाले किसी वाहन के निर्माण की कल्पना की जा सके ।

दूसरा तथ्य इस सन्दर्भ में विचारणीय है कि ग्रहों की गुरुत्वाकर्षण शक्ति उसे अपने दायरे से कितना किस प्रकार आगे बढ़ने देगी । गुरुत्वाकर्षण ग्रह के भार और विस्तार से सम्बन्धित है । पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति एक सेकण्ड में ११०२ किलोमीटर है । इससे अधिक तेज चाल से फेंकी जाने वाली वस्तु ही पृथ्वी की पकड़ के दायरे का उल्लंघन कर सकती है ।

अन्तरिक्ष में गतिशील ग्रह गोलकों की स्थिति में गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्ध में समानता नहीं है । सूर्य का गुरुत्वाकर्षण प्रति सेकण्ड ३१७ है । कारण कि पृथ्वी का व्यास मात्र १२७०० किलोमीटर है जबकि सूर्य का व्यास १४ लाख किलोमीटर । कितने ही ग्रह इतने भारी और विस्तृत हैं कि उनकी गुरुत्वाकर्षण सीमा लाँघने के लिए प्रकाश गति की तुलना में कहीं अधिक द्रुतगामी होना चाहिए ।

ऐसे ग्रहों का अस्तित्व इस ब्रह्माण्ड में है जिनका गुरुत्वाकर्षण प्रकाश गति से अधिक है । ऐसी दशा में उनकी रोशनी उसी ग्रह की पकड़ में आ सकती है और उनकी परिधि से बाहर कहीं भी दीख न पड़ेगी । चमकदार होते हुए भी वह पिण्ड अन्धकारमय दृष्टिगोचर होगा । फिर भी उसकी शक्ति और सत्ता तो बनी ही रहेगी ।

एक और सिद्धान्त 'ग्रैविटेशन रिएक्शन' का है । इस परिधि में आने वाला पिण्ड सिगनल एक्स बन जाता है । यही बहुचर्चित 'ब्लैक होल' है । इसका आकर्षण और विस्तार इतना अधिक होता है कि उसकी पकड़ में आ जाने पर पृथ्वी जैसे विशाल पिण्ड भी खिंचते चले जा सकते हैं और इतनी तेजी से इतनी दूर पहुँच सकते हैं कि उसका कुछ अता-पता ही न लगे ।

नवीन शोधों के अनुसार ग्रह वृद्धता को प्राप्त होने पर अपने अंग-प्रत्यंग सिकोड़ना शुरू करते हैं । सिकुड़न बढ़ने किन्तु भार कम न होने की स्थिति में एक और विचित्रता उत्पन्न हो जाती है जिससे वह जीवित होते हुए भी मृतक की श्रेणी में पहुँच जाता है । ऐसी दशा में भी ऊर्जा उसके पास बनी रहती है । वह इतनी अधिक होती है कि संसार भर की समस्त मोटर गाड़ियाँ १०० मील प्रति घण्टे की चाल से १०० अरब वर्षों तक दौड़ती रहें ।

सभी ऊर्जाएँ शक्ति की प्रतीक होती हैं, पर यह आवश्यक नहीं कि वह सम्पर्क में आने वाली वस्तु को जला ही दे । वह खींचते रहने के काम भी आ सकती हैं ।

ब्रह्माण्ड का किसी को दौरा करना हो तो उसे प्रकाश से अधिक गति वाले वाहन बनाकर हजारों वर्ष में दूरवर्ती ग्रह गोलकों की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं । वह इन ब्लैक होलों की आकर्षण शक्ति का सहारा लेकर थोड़े ही समय में अभीष्ट स्थान तक पहुँच सकता है ।

ब्लैक होल इस अनत आकाश में अनेकों हैं । वे सीधी लाइन की तरह या खड़े अण्डे की तरह नहीं हैं । वरन् एक ऐसी सड़क की तरह हैं, जिसमें स्थान-स्थान पर चौराहे फटते हैं । उनमें मुड़कर सीधे जाने की अपेक्षा तिरछा या दाँया-बाँया भी जाया जा सकता है ।

ब्लैक होलों में छोटी-बड़ी पगडण्डियाँ भी हैं । वे राजमार्ग की तरह साफ-सीधी तो नहीं हैं, पर उनका सहारा पकड़ कर यात्री अपनी दिशा बदल सकता है और चाल में धीमापन या तीव्रता ला सकता है ।

इस प्रकार लोक-लोकान्तरों की यात्रा सम्भव हो सकती है । ब्लैक होल पर सवार होकर ग्रहों की गुरुत्वाकर्षण का बन्धन भी बाधक नहीं बनता और गति सम्बन्धी किसी व्यवधान के आड़े आने का भी झंझट नहीं रहता ।

प्राचीनकाल में अन्य लोकों के निवासी पृथ्वी पर आते रहे हैं और पृथ्वी निवासियों को अन्तर्ग्रही ही नहीं अन्तर-निहारिकीय यात्रा की भी सुविधा मिली है । मार्ग की दूरी, उसे पूरी करने में लगने वाली लम्बी अवधि के कारण जीवन का अधिकांश भाग यात्रा में ही व्यतीत हो जाने का खतरा भी नहीं रहता । अपना अभीष्ट काम पूरा करने में जितना समय लगाने की आवश्यकता है उसे लगाकर उतनी ही तेजी से वापस भी लौटा जा सकता है जितनी तेजी से कि पहुँचा गया था ।

इस प्रकार की यात्रा में आवश्यक साधन सामग्री साथ ले जाने या वहाँ की कोई वस्तु साथ लाने में भी कठिनाई नहीं पड़ती । मात्र उसे किसी मालूमी धागे से शरीर के साथ बाँधे रहना पड़ता है ताकि वह साथ चलती रहे और विलग न होने पावे ।

विज्ञान ने अभी पदार्थ की शक्ति का ही पता लगाया है । उसमें सम्मिश्रण-विकर्षण की जो प्रतिक्रिया होती है उसे भी एक सीमा तक समझ लिया गया है । ग्रह-उपग्रह भी जो भेजे गए हैं वे सौर-मण्डल के ग्रहों और चन्द्रमाओं के इर्द-गिर्द तक नहीं पहुँच पाये हैं । इस परिधि का उल्लंघन करने के उपरान्त वे पृथ्वी के साथ किसी सम्बन्ध सूत्र से बँधे नहीं रहते और यह आशा नहीं की जा सकती कि वे फिर वापस लौट सकेंगे ।

'ब्लैक होल' अभी तो एक भय का कारण बने हुए हैं । बारमूडा त्रिकोण के पास उसकी एक पतली सी नोंक आती है, उसकी पकड़ में जो जलयान-वायुयान आ जाते हैं वे ऊपर उठते और अदृश्य हो जाते हैं । इसके बाद उनका कुछ अता-पता नहीं लगता कि वे किस दिशा में किस कारण कहाँ चले गए । उनके वापस लौटने की भी प्रतीक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि विश्व ब्रह्माण्ड में फैले हुए ब्लैक होलों के जाल और उनसे सम्बन्धित मार्गों और पगडण्डियों का कुछ पता प्राप्त नहीं किया जा सकता है । इतना जान लेने के उपरान्त भी ज्ञातव्य लोक के बारे में यह समझना बाकी रह जाता है कि मनुष्य की जीवन-यापन सम्बन्धी सुविधा वहाँ है या नहीं ? विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है या नहीं । इसके साथ ही उस सम्पर्क का परिणाम भी समझना है कि इतनी जोखिम उठाकर आने या जाने वाले प्राणी एक-दूसरे का कुछ हित साधन कर सकते हैं या नहीं ।

अन्तरिक्ष विज्ञान और उसके द्रुतगामी वाहनों के सम्बन्ध में हमारा भौतिक विज्ञान या अध्यात्म विज्ञान पता लगा सकेगा, उस दिन उसे विश्व ब्रह्माण्ड की अनन्त विभूतियों के साथ जुड़ने का अवसर भी मिलेगा ।

अन्तर्ग्रहीय आदान-प्रदान के दिन दूर नहीं

क्या इस निखिल ब्रह्माण्ड में एकमात्र पृथ्वी ही मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणियों की क्रीड़ा स्थली है अथवा किसी अन्य ग्रह-नक्षत्र में भी ऐसे ही जीवधारियों का अस्तित्व है ? यदि है, तो क्या उनका परस्पर मिलन एवं सहयोग सम्भव है ? इस प्रश्न पर जितना अधिक

विचार किया गया है उतना ही इस निष्कर्ष पर अधिक विश्वासपूर्वक पहुँचा गया है कि इस असीम ब्रह्माण्ड में पृथ्वी जैसे अनेक लोक विद्यमान हैं और उनमें मनुष्य जैसे ही नहीं वरन् उससे भी कहीं अधिक विकसित स्तर के जीवधारी मौजूद हैं ।

जिस प्रकार पृथ्वी निवासी चन्द्रमा पर पहुँच चुके और सौर-मण्डल के अन्यान्य ग्रहों की खोज में तत्पर हैं, उसी प्रकार उन बुद्धिमान प्राणियों का भी यह प्रयास है कि वे विकसित जीवधारियों की दुनिया से सम्पर्क स्थापित करें और परस्पर आदान-प्रदान के अनेक उपाय एवं मार्ग ढूँढ़ निकाले ।

पृथ्वी पर कई प्रकार के ऐसे संकेत समय-समय पर मिलते रहते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि अन्य लोकों के बुद्धिमान प्राणियों को पृथ्वी की सुविकसित स्थिति का भी ज्ञान है और वे मनुष्य जाति के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लालायित एवं प्रयत्नशील हैं । प्रकाश पुंजों के अवतरण के रूप में यह अनुभव पृथ्वी निवासियों को होते भी रहते हैं । पाश्चात्य जगत में इन्हें उड़नतश्तरियाँ नाम दिया जाता है ।

कैलीफोर्निया के कार्निंग शहर में बैठे हुए लोगों ने आकाश में एक चमकदार अनौखी चीज देखी जो काफी नीचे उड़ रही थी और उसमें से चमकदार प्रकाश किरणें निकल रही थीं, वह एक विशाल धातु निर्मित सिगार जैसी थी जो ३०० से ५०० फीट की ऊँचाई पर उड़ रही थी । इसके सिरे से चमकदार प्रकाश किरणें निकल रही थीं और पैंदे में से हलकी नीली रोशनी फूट रही थी । फिर उसकी चाल बढ़ी और तेजी से आकाश में विलीन हो गई । इन दर्शकों में से कितनों ने ही कहा—उड़नतश्तरियों की बात वे गप्प समझते थे पर आज उन्होंने आँखों से देखकर यह विश्वास कर लिया कि वह वस्तुतः एक सचाई है ।

रूसी वैज्ञानिकों ने कुछ समय पूर्व यह घोषणा की थी कि उन्होंने ब्रह्माण्ड के किन्हीं अन्य तारकों द्वारा भेजे गए संकेत सुने हैं । यह एक क्रमबद्ध टिमटिमाहट के साथ जुड़े हुए ज्योति संकेतों के रूप में हैं । वे कहते हैं कि ऐसा कर सकना किसी प्रबुद्ध स्तर के प्राणधारियों के लिए ही सम्भव हो सकता है ।

आरम्भ में उनकी बात को ज्यादा महत्त्व नहीं मिला पर अब उसे एक तथ्य माना गया है । एक 'क्वासर' तारा, जिसे खगोल विद्या की भाषा में 'सी. टी. ए.—१०२' कहा जाता है, निःसन्देह पृथ्वी पर ऐसी टिमटिमाहट और रेडियो धाराएँ भेज रहा है जिसे कर सकना किन्हीं विचारवान प्राणियों के लिए ही सम्भव है ।

ब्रिटेन के विज्ञानी लार्डस्नो ने वैज्ञानिक सम्मेलन में आशा प्रकट की थी कि अन्तरिक्ष से किसी प्रबुद्ध जाति के सन्देश प्राप्त करने का सुअवसर मनुष्य को निकट भविष्य में ही मिलेगा । यह आशा अकारण ही नहीं थी । अन्तरिक्ष सम्पर्क के लिए बढ़ते हुए मनुष्य के चरण क्रमशः इस आशा बिन्दु की समीपता का ही आभास देते हैं ।

अमेरिका के रेडियो खगोलशास्त्री प्रो. कोनाल्ड ब्रैस वैल ने 'नेचर' पत्रिका में एक लेख छपाकर यह सम्भावना व्यक्त की है कि हो सकता है उड़नतश्तरियाँ किसी विकसित सभ्यता वाले तारे से सूचना यान के रूप में आयी और रह रही हों । सम्भव है वे यहाँ की स्थिति की जानकारी अपने उद्गम स्थान को रेडियो सन्देशों एवं टेलीविजन चित्रों के रूप में भेज रही हों ।

अन्तरिक्ष भौतिकी के शोधकर्ता श्री वै बैलेस सलीवान ने अपनी पुस्तक—बी. आर. नॉट अलोन—हम अकेले नहीं हैं—में ब्रह्माण्डव्यापी संचार साधन के लिए एक नई पद्धति 'वेवलेंग्थ' की प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार प्रकाश की चाल इतनी ही पीछे रह जाती है जितनी हवाई जहाज की तुलना में पतंग की । यह तरीका ठीक २१ सेण्टीमीटर अथवा १४२० मेगा साइकिल वेवलेंग्थ के रेडियो कम्पनों पर आधारित हैं । अणु विकिरण की यह स्वाभाविक कम्पन गति है । अन्तरिक्ष संचार व्यवस्था में इसी गति को अपनाने से ही अन्य लोकों के प्राणियों के साथ सम्पर्क साधा जा सकता है । यह पद्धति अन्य लोकवासी विकसित कर चुके हैं और जितनी दूरी पार करना हमें कठिन या असम्भव लगता है, सम्भव है उनके लिए वह सरल हो गई हो ।

एक फ्रान्सीसी खगोल विद्याविशारद ने खोजकर बताया कि यह उड़नतश्तरियाँ इन्हीं दिनों आने लगी हों ऐसी बात नहीं है, इनका आवागमन बहुत समय से चल रहा है । रोम में ईसा से २१२ वर्ष पूर्व उड़नतश्तरी देखी गई थी । शेक्सपियर के ग्रन्थों में ही नहीं बाइबिल में भी उनका उल्लेख है । अमेरिका में उड़नतश्तरी अनुसन्धान कार्य १९४७ से ही चल रहा है जबकि प्रथम बार वायुयान चालक केनिथ आर्नोल्ड, ने माउण्ट रेनियर के निकट अपने विमान से उड़नतश्तरी देखी थी ।

हिन्दी के प्रख्यात लेखक श्री इलाचन्द जोशी ने २३ जून, १९६३ के 'धर्म युग' में अपनी निज की एक अनुभूति छपाई थी । वे नैनीताल जिले के ताकुला गाँव के एक बँगले के ठहरे थे । रात्रि को उन्हें पास ही कहीं जाना था कि उस घोर अन्धकार में उन्होंने देखा कि—'सहसा दक्षिण-पश्चिम की ओर का पहाड़ी क्षितिज तीव्र प्रकाश से उद्भाषित हो उठा । क्षण भर के लिए अभ्यासवश मैंने समझा कि बिजली कौंध उठी है । पर जब प्रकाश पूरे आठ सेकण्ड तक स्थिर रहा और बिजली की तरह एक ही सेकण्ड के बाद ही मैंने आश्चर्य से देखा कि जलते हुए बड़े बल्ले की तरह की कोई चीज बिना तनिक भी शब्द किए क्षितिज को लांघती हुई सीधे मेरे सिर के ऊपर से आकाश की ओर बड़ी तेजी से उड़ी जा रही है । उसकी पूँछ से तीव्रतम शुभ्र और श्वेत प्रकाश एक सर्चलाइट की तरह पीछे की ओर बिखर रहा था—और उसका धड़ पूरे का पूरा एक बहुत बड़ी चिता की सी पीली लपटों सा दहक रहा था । कुछ क्षणों के लिए मुझे लगा कि कोई भटका हुआ विमान जल गया है और क्षण भर में कहीं गिरना ही चाहता है । पर वह बड़ी तेज रफ्तार से बिना तनिक भी शब्द किए मेरे सिर के ऊपर से होता हुआ सीधा आगे की ओर निकलकर कुछ ही क्षणों बाद आँखों से ओझल हो गया । तब मैं हक्का-बक्का रह गया ।"

इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों की अटकलें तरह-तरह की हैं—'साइन्स' और 'दी न्यू साइंटिस्ट' पत्रों के स्तम्भ लेखकों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह उड़नतश्तरियाँ अन्य ग्रहों से आने वाले सन्देशवाहक हैं । वे पृथ्वी की खोज-खबर लेने आते हैं । अन्य देशों में मनुष्य से भी विकसित किस्म के प्राणी हो सकते हैं और वे भी इस बात के इच्छुक हो सकते हैं कि प्रगतिशील प्राणियों के साथ सम्पर्क बढ़ाकर ब्रह्माण्ड में जहाँ सम्भव हो प्रगतिशीलता का अधिक संवर्धन किया जाय ।

रूसी खगोलवेत्ता आई. एस. श्कलोव्सकी ने अपने ग्रन्थ 'इण्टेलिजेन्ट लाइफ इन द यूनिवर्स' में विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किया है कि—'पृथ्वी पर से सबसे पहली ऐसी शब्द ध्वनि अब से बीस वर्ष पूर्व अन्तरिक्ष में फेंकी गई थी जो अन्य ग्रहों के प्रगतिशील प्राणियों द्वारा सुनी या समझी जा सके । यदि वह ध्वनि बिना कोई व्यवधान पड़े बढ़ती चली जा रही होगी तो सौर-मण्डल से बाहर के सबसे निकटवर्ती तारे तक पहुँचने में अभी सफल नहीं हुई होगी । शब्द की गति ११ हजार मील प्रति घण्टा है । पृथ्वी से निकटतम तारा 'प्राक्सियाँ सेन्टरी' है । इसकी दूरी ४.३ प्रकाशवर्ष है । प्रकाशवर्ष का अर्थ है छः की संख्या के आगे १८ शून्य रख देने पर जो संख्या बनती है—अर्थात् छः पद्म मील—इतनी दूर तक बीस वर्ष पूर्व फेंकी गई आवाज को पहुँचने में अभी मुद्दतों लगेंगे । वह आवाज सुनी जा सकी तो वे लोग पृथ्वी की उपयोगिता समझेंगे और यहाँ तक पहुँचने का रास्ता निकालेंगे । उनकी यात्रा को भी बहुत समय लगेगा तब कहीं उनका पृथ्वी से सम्बन्ध हो सकता है । इस धरती के निवासियों को कुछ कहने लायक वैज्ञानिक प्रगति में अभी मुश्किल से तीस वर्ष हुए हैं । इससे पहले तो भौतिक समृद्धि की दृष्टि से भी पृथ्वी के लिए बहुत पिछड़े हुए थे और विचार, आदर्श एवं व्यवस्था की दृष्टि से तो हजार के पीछे ९९९ व्यक्ति अभी भी फूहड़ जिन्दगी ही जी रहे हैं, ऐसी दशा में अन्य ग्रह निवासियों को यदि वे सचमुच प्रगतिशील होंगे तो उन्हें कुछ भी आकर्षण न होगा । हम लोग गए-गुजरे ही दीखेंगे । ऐसी दशा में वे क्यों इतना श्रम करेंगे । फिर यह कहना भी कठिन है कि सबसे निकटवर्ती तारे पर ही सभ्यता का विकास हो गया हो । यदि विकसित तारे और भी आगे हुए तो उनका आवागमन और भी अधिक समय साध्य होगा । ऐसी दशा में यदि यह भी मान लिया जाय कि किन्हीं तारों पर प्रगतिशीलता है तो उनके साथ सम्पर्क बनना इतना सरल नहीं है । सौर-मण्डल के ग्रहों और उपग्रहों की इतनी खोज तो पहले हो चुकी है कि उनमें से किसी पर भी किसी विकसित प्राणधारी के होने की सम्भावना नहीं है । जीवन का आरम्भिक चिह्न भले ही उनमें से किसी पर मिल जाय । अस्तु उड़नतश्तरियों की संगति अन्य लोकवासी प्राणियों के साथ नहीं मिलाई जानी चाहिए ।

श्री सी. जी. जुंग का कथन है—"ईश्वर अपनी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञानी एवं सर्व-शक्तिमान होने का आभास देने के लिए इस प्रकार के चौंकाने वाले प्रदर्शन उपस्थित करता है ।"

बोस्टन के साईक्याट्रिस्ट श्री वेंजामिन साइमन का कथन है आत्माओं की अपूर्णता जब पूर्णता में परिणत होती है तब उसका विकास प्रकाश पुन्ज के रूप में देखा जा सकता है ।

अगले दिनों मनुष्य देश, जाति और धर्मों की संकीर्ण परिधि में बँधा न रहेगा । पृथ्वी निवासी मनुष्यों की एक ही जाति बिरादरी होगी । विश्वराष्ट्र, विश्वधर्म, विश्वभाषा, विश्वसंस्कृति के आधार पर विश्व-मानव का विकसित रूप सामने आयेगा और विश्व-बन्धुत्व के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के बीच स्नेह सौहार्द्र के सम्बन्ध सुदृढ़ होंगे ।

इतना ही नहीं विश्व ब्रह्माण्ड के सुविकसित प्राणी परस्पर एकता स्थापित करेंगे और आत्मीयता भरे आदान-प्रदान की रीति-नीति विकसित करेंगे । उस सुदिन के आगमन की घड़ी जल्दी आये इसके लिए हमें प्रार्थना और आशा करनी चाहिए साथ ही चेष्टा भी ।

अदृश्य शक्तियों का हस्तक्षेप

अन्तरिक्ष में उड़ जाने की मानवी चेष्टाएँ इसलिए हैं कि वह अपने प्रतिपक्षी वर्गों का विनाश सिर पर चढ़कर कर सकें । कमाने या निवास की बस्ती बसाने की बात तो लोगों को भ्रम में डालने भर के लिए है । वायुयानों से यात्रा बन पड़ी । इसके आगे के रॉकिटों में से अधिकांश का उद्देश्य अपने को सुरक्षित रखकर दूसरों का विनाश करना भर है । मानवी दुर्बुद्धि इससे आगे की बात न तो सोच पाती है और न कर सकती है ।

पर इस उद्दण्डता को विकसित देव सभ्यताएँ गम्भीरतापूर्वक देखती और साझे के अन्तरिक्ष में ऐसी मनमानी नहीं चलने दे सकतीं जिससे पृथ्वी के जीवधारियों, पदार्थों के लिए संकट उत्पन्न हो और अन्तरिक्ष में विषाक्तता भर जाने से समूचे ब्रह्माण्ड को खतरा पैदा हो । यदा-कदा दृष्टिगोचर होने वाली उड़नतश्तरियों का एक उद्देश्य है, धरती के वातावरण की टोह लेना और उस क्षेत्र में चलने वाली उच्छृंखलता की रोकथाम करना है । उड़नतश्तरियों के माध्यम से इन दिनों अन्तरिक्ष की अधीष्ठात्री सत्ताओं को पृथ्वी के साथ सम्पर्क साधना पड़ रहा है, साथ ही हस्तक्षेप का उपक्रम भी वे चला रही हैं ।

२४ जून, १९४७ को केनेथ आर्नोल्ड ने प्रथम बार नौ अपरिचित तश्तरियों को एक साथ वाशिंगटन के ऊपर उड़ते देखा । इसके बाद से अब तक इन तश्तरियों को अमेरिका के हर प्रान्त में प्रमुख सैनिक अड्डों, व्यावसायिक केन्द्रों एवं यूरोप के अन्यान्य स्थलों में आकाश में उड़ते हुए देखा गया है । इनमें विशेष आकर्षण शक्ति होती है और आसपास उड़ने वाले वायुयानों एवं हेलीकॉप्टरों को सैकड़ों मीटर अपनी ओर खींच लेती हैं । ये तश्तरीनुमा, धातु के ठोस बने होते हैं और कई मीटर चौड़े होते हैं । ये गोल, सिगारनुमा या गुंबज सदृश होते हैं । इनमें कोई चालक नहीं दिखता परन्तु ये काफी तीव्र गति से उड़ते हैं । देखने वाले भयभीत हो जाते हैं ।

ये तश्तरियाँ निरन्तर अमेरिका के स्पेस का अतिक्रमण करती हैं पर कभी पकड़ में नहीं आतीं । ये टेलीविजन और रेडियो प्रोग्राम में बाधा डालती हैं । कारों के इंजिनों को बन्द कर देती हैं, जानवरों को भयभीत कर देती हैं । ये बहुत दूर से ही अपना प्रभाव स्पष्ट रूप से डालती हैं । जहाँ कहीं जमीन में उतरती हैं, तो वहाँ जमीन पर बेलबूटा सा निशान छोड़ती हैं, जमीन में रासायनिक परिवर्तन करती हैं, और जमीन को झुलसा देती हैं । डेविड सन्डर्स ने ६०००० रिपोर्टों का संग्रह गवाहों से लेकर किया है । ये शरीर पर सनबर्न, अस्थायी लकवा और रेडिएशन सिकनेस भी पैदा करती हैं । ये सैकड़ों बार देखी गई हैं ।

स्वस्थ मस्तिष्क के लोगों और विद्वानों द्वारा देखे जाने पर एवं उनकी रिपोर्ट्स के आधार पर यह बड़ा आश्चर्यजनक लगता है । इनसे निकलने वाली फ्लैशलाइट यानों एवं मोटरों पर पड़ने से वे तुरन्त रुक जाते हैं । इन तश्तरियों में (यान जैसे) पंख नहीं होते, अपने प्रकाश के ये रंग बदलते हैं, व हवा में ये स्थिर हो जाते हैं । सैनिक प्रमुखों, चालकों और विशेषज्ञों ने भी इन तश्तरियों को देखा है, पर कोई उन्हें नहीं समझ सके हैं । इन

पर उनका अध्ययन एवं विश्लेषण चालू है । प्रेस और रेडियो में सर्वत्र ये रिपोर्ट्स तहलका मचा रही हैं और सबको आश्चर्य में डाल रही हैं । गत ३८ वर्षों में सैकड़ों बार हजारों लोगों द्वारा देखे जाने और उन्नत देशों के द्वारा इनके रहस्यों को जानने के पूर्ण प्रयास होने पर भी वे तश्तरियों के रहस्यों को आज तक नहीं समझ पाये हैं । इनके चित्र लिए गए हैं । ३० अगस्त, १९७३ को जार्जिया के २२ शहरों में रात्रि में ये एक साथ देखे गए थे ।

ये उड़नतश्तरियाँ गत वर्ष अमेरिका में १४७४ बार लोगों द्वारा देखी गईं और इंग्लैण्ड में ५०० बार । कुल मिलाकर १५० लाख अमेरिका वासियों ने इन तश्तरियों को देखा है । इनमें से ५१% लोगों ने इन तश्तरियों को सत्य पाया है । बाकी लोग नहीं समझ पाये । रूस, अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशों में सर्वत्र ये उड़नशील तश्तरियाँ देखी गई हैं । अधिक छानबीन करने पर कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकने के कारण १९६९ से अमेरिका ने अभी इस पर छानबीन करना बन्द कर दिया है ।

ये अपरिचित उड़ने वाली तश्तरियाँ क्या हैं ? कहाँ से आती हैं ? क्यों आती हैं ? आदि के बारे में लोगों की जानकारी पाने की उत्कण्ठा नित्य बढ़ती ही जा रही है । रेडार विशेषज्ञों, सुरक्षा पुलिसवालों और पायलटों से निरन्तर इन तश्तरियों के उड़ने की सूचनाएँ मिल रही हैं । अधिकांश वैज्ञानिकों का कथन है कि हमारी आकाशगंगा में अनेक स्थानों में हमसे चतुर और विशेष जानकारी रखने वाले अत्यधिक विकसित साधनों से युक्त लोग मौजूद हैं । इनके समक्ष हमारी उन्नति नगण्य है । ये हम से सम्पर्क साध रहे हैं और निगरानी रख रहे हैं । ये तश्तरियाँ हमारे यानों एवं अन्तरिक्ष यानों से भी अधिक विकसित हैं । भविष्य में हम उनके सारे रहस्य समझ सकेंगे ।

वैज्ञानिक विशेषताओं के अहंकार में मनुष्य जिस मार्ग से चलकर महाविनाश का संरजाम जुटा रहा है, यह न केवल विचारशील वर्ग के लिए चिन्ता का विषय है, वरन् दैवी शक्तियाँ भी इस बारूदी खिलवाड़ से उद्विग्न हैं । इसलिए वे समझने, मोड़ने-मरोड़ने वाले प्रयास इस प्रकार कर रही हैं, जिन्हें अतिमानवी हस्तक्षेप ही कह सकते हैं ।

इन्हीं दिनों भोपाल की गैस त्रासदी और यूक्रेन (रूस) की अनुविकिरण लीक करने वाली घटना ऐसी है जिससे समूचे विज्ञान क्षेत्र को चेतावनी मिली है कि जोश के साथ होश भी कायम रखा जाय । बारूद से न खेला जाय । ऐसे यन्त्र उपकरण न बनाये जायें, ऐसे आधार खड़े न किए जायें जो किसी कारण काबू से बाहर हो चलें तो फिर उनको समेट सकना प्रायः असम्भव हो जाय । जापान पर अणुबम गिराने का कार्य तो योजनाबद्ध था किन्तु अणुशक्ति का विकास शान्ति के नाम पर या युद्ध के नाम पर किया ही जा रहा है ।

कहावत है, "अन्धा रस्सी बँटता जाय, बछड़ा उसको खाता जाय" । प्रगति के अत्युत्साह में उन शक्तियों को माध्यम बनाया जा रहा है जो उलट कर भस्मासुर की तरह निर्माताओं के लिए ही विनाशकारी हो सकती हैं ।

उद्धत अहंकार अपने अनौचित्य पर विचार करेगा या नहीं, पर जनमानस में विशेषतया विचारशील वैज्ञानिक वर्ग में इन घटनाओं की तीव्र प्रतिक्रिया हुई है । चार अन्तरिक्ष रॉकेट अभी-अभी और कितने ही इससे पूर्व असफल रहने से उनकी प्रतिक्रिया समाप्त नहीं हो गई, व्यापक अन्तरिक्ष में जो उपद्रव उन असफलताओं से खड़े होते होंगे सो हो चुके ।

इन्हीं दिनों अमेरिका के ६५०० वैज्ञानिकों ने एक संयुक्त घोषणा की है कि वे विनाशकारी आयुधों के लिए अपना योगदान नहीं देंगे, ऐसा ही मानस अनेक देशों में, विश्व भर में, भी बन सकता है, और अदृश्य क्षेत्र की वह चेतावनी सुनने, समझने को बाधित होना पड़ा सकता है, जिसमें उन्होंने विनाशकारी प्रयासों को रोक देने की प्रेरणा एवं चेतावनी दी है ।

अन्तरिक्ष के अविज्ञात जासूस

इन दिनों अद्भुत, अनुपम और असाधारण वस्तुओं के दृश्य अन्तरिक्ष में उड़ते हुए बहुलता के साथ दीख पड़ते हैं । इनके अस्तित्व को नकारा तो नहीं जा सकता, पर यह अनुमान अवश्य लगाया जा रहा है कि जो घटना-क्रम सहस्राब्दियों से दृष्टिगोचर नहीं हुए, वे अब इन दिनों क्यों बहुलता के साथ प्रकट हो रहे हैं ?

आरम्भ में उन्हें उड़नतश्तरी (यू. एफ. ओ.) नाम दिया गया था । गोल चमकदार वस्तु के रूप में आकाश में से इन्हें मंडराते हुए देखकर किसी चक्र आकृति का बोध होता था । इसलिए उन दृश्य पदार्थों को वह नाम दिया जाता था । पर अब वैसी स्थिति नहीं रही उनकी अनेकानेक आकृतियाँ देखी गई हैं और पुराना क्रम भी उनका नहीं रहा कि प्रकट होना और लुप्त हो जाना । वे अब लुप्त नहीं होतीं और अपने लक्ष्य के अनुसार काम करती हैं ।

धरती की स्थिति को जानने-परखने के लिए उसके ठोस पदार्थों को ही प्रयोजन के लिए प्रयुक्त करना पर्याप्त नहीं, वरन् अधिक गहरी छानबीन करने और पदार्थ को अन्यत्र किसी दूरवर्ती ग्रह-उपग्रह में ले जाने की आवश्यकता पड़ती है । इन दिनों तूफान का उभार है । एशिया, अफ्रीका, यूरोप और अमेरिका के भू-भागों में इन दिनों ऐसे तूफानी चक्रवात प्रकट हो रहे हैं, जिनकी ऋतु को देखते हुए सम्भावना या आशंका सोचते नहीं बनती ।

सहस्राब्दियों पूर्व महामारी, दुर्भिक्ष, अति वर्षा, टिड्डी एवं तूफान की लम्बी लहरें आती थीं । वे किसी बड़े क्षेत्र को प्रभावित करती थीं और दूरवर्ती लम्बाई पार करने के उपरान्त शान्त होती थीं । उनका प्रभाव भी देर तक रहता था । इससे प्रतीत होता था कि धरती की भीतरी या ऊपरी परत में कोई गड़बड़ी आयी है और यह विग्रह खड़ा हुआ है । पर अब ऐसा नहीं होता । भयंकर तूफान कहीं भी आ जाते हैं और वे थोड़ी परिधि में अपना ताण्डव नृत्य दिखा कर समाप्त हो जाते हैं ।

इस वर्ष बंगला देश के तटीय क्षेत्र से लेकर केरल तक के समुद्र तट के किनारे-किनारे खण्ड तूफान आये हैं । वे लगातार नहीं चले और न उनकी अवधि लम्बे काल की रही । परन्तु तीव्रता इतनी देखी गई कि जिस क्षेत्र को भी उनकी चपेट में आना पड़ा उसका कचूमर निकल गया । राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, जयपुर आदि में भी यह खण्ड विग्रह उतरे, वे आँख-मिचौनी खेलते रहे । हिमालय क्षेत्र में इस बार इतनी बर्फ पड़ी और वर्षा हुई कि यातायात के मार्ग रुक गए और उन क्षेत्रों में बसने वालों के लिए निर्वाह साधन जुटाने कठिन पड़े ।

कुछ वर्षों पूर्व दिल्ली नगर में असाधारण बवंडर (चक्रवात) आया था । वैसा उससे पूर्व एवं पश्चात् कभी नहीं देखा गया । इस बवंडर के मध्य के एक प्रकाश का गोला भी गुजरता उठता देखा गया था । ऐसी ही घटनाएँ संसार में अन्यत्र भी प्रकाश में आयी हैं ।

उड़नतश्तरियाँ कोई प्रकृति में दृश्यमान् गुत्थी या दृष्टिदोष हैं, अब ऐसा नहीं माना जाता । उनकी आकृति एवं चाल भी ऐसी उलटी-सीधी देखी गई है, जिससे उनका पीछा किसी विशाल प्रक्षेपणास्त्र से भी नहीं किया जा सकता ।

अब ये अनचीह्नी वस्तुएँ वैज्ञानिकों के लिए गुत्थी बन गई हैं । अन्तरिक्ष में छाया हुआ उपग्रहों का कबाड़ भी इस तरह बरस सकता है, यह बात भी समझी नहीं जा सकती । जिस बात पर मन जमता है, वह एक ही यह मान्य अनुमान है कि सम्भवतः अन्तर्ग्रही नियन्त्रण कक्ष पृथ्वी के बिगड़ते हुए वातावरण और चिन्तन के विक्षिप्तों जैसे उन्माद को समूचे ब्रह्माण्ड के लिए संकट मानते हैं और बर्बादी से पूर्व स्थिति का जायजा लेकर उस पर नियन्त्रण स्थापित करने का उपाय सोच या खोज रहे हों ।

अन्य लोकवासियों की धरती पर हलचलें

अन्य लोकों से आने वाले अन्तरिक्षीय यान, जिन्हें हम आमतौर से 'उड़नतश्तरी' कहते हैं हमारे मानव रहित शोध रॉकिटों की तरह नहीं होते, वरन् उनमें जीवित प्राणी रहते हैं, इस बात के भी प्रमाण मिले हैं । यह प्राणी अपनी पृथ्वी की परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं और आवश्यक सूचनाएँ अपने लोकों को भेजते हैं । इतना ही नहीं वे यहाँ के मनुष्यों से भी सम्पर्क स्थापित करते हैं, ताकि उनकी जानकारियों का आधार विस्तृत एवं प्रामाणिक बन सके ।

उड़नतश्तरी अनुसन्धान संस्था 'निकैप' ने ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण प्रकाशित कराया है, जिनसे अन्य लोकों के प्रबुद्ध व्यक्तियों का अपनी धरती पर आना सिद्ध होता है । मई १९६७ में कालरैडो हवाई अड्डे के रेडार से उडनतश्तरी के आगमन की जो सूचना प्राप्त हुई थी उसे झुठलाना उनसे भी नहीं बन पड़ा जो उड़नतश्तरी मान्यता का उपहास उड़ाते थे । अमेरिकी सरकार ने इस सन्दर्भ में एक अनुसंधान समिति की स्थापना की थी । उसके एक सदस्य जेम्स मेकोन ओल्ड ने दल की रिपोर्ट से प्रथम अपनी पुस्तक लिखी है—'उड़नतश्तरियाँ—हाँ,' इसमें उन्होंने इन यानों की सम्भावना का समर्थन किया है ।

डॉ. एस. मिलर और डॉ. विलीले का कथन है— "इस विशाल ब्रह्माण्ड में एक लाख से अधिक ऐसे ग्रह पिण्ड हो सकते हैं जिनमें प्राणियों का अस्तित्व हो । इनमें से सैकड़ों ऐसे भी होंगे जिनमें हम मनुष्यों से अधिक विकसित स्तर के प्राणी रहते हों । हम पृथ्वी निवासियों के लिए ऑक्सीजन और नाइट्रोजन गैसें आवश्यक हो सकती हैं, पर अन्य लोकों के प्राणी ऐसे पदार्थों से बने हो सकते हैं, जिनके लिए इन गैसों की तनिक भी आवश्यकता न हो । इसी प्रकार जितना शीत-ताप हमारे शरीर सह सकते हैं, उसकी तुलना में हजारों गुने शीत, ताप में जीवित बने रहने वाले प्राणियों का अस्तित्व होना भी पूर्णतया सम्भव है । हम अन्न, जल और वायु के जिस आहार पर जीवन धारण करते हैं अन्य लोकों के निवासी अपनी स्थानीय उपलब्धियों से भी निर्वाह प्राप्त कर सकते हैं ।

डॉ. ले के कथनानुसार अन्तरिक्ष में १००० अरब तारे हैं, उनमें से १ करोड़ में जीवित प्राणियों के रह सकने योग्य अवश्य होंगे ।

अन्तरिक्ष विज्ञानी डॉ. फानवन का कथन है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड में ऐसे प्राणियों का अस्तित्व निश्चित रूप से विद्यमान है जो हम मनुष्यों की तुलना में कहीं अधिक समुन्नत हैं ।

कैलीफोर्निया के रेडियो एस्ट्रोनॉमी इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर डॉ. रोनाल्ड एन. ब्रेस्वेल ने ऐसे आधार प्रस्तुत किए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि अन्य ग्रह-तारकों में समुन्नत सभ्यता वाले प्राणी निवास करते हैं और वे अपनी पृथ्वी के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं । वे इस प्रयोजन के लिए लगातार संचार उपग्रह भेज रहे हैं । ये उपग्रह कैसे हैं, इसका विशेष विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है, वे फुटबाल की गेंद जितने होते हैं । उनमें कितने रेडियो यन्त्र और कम्प्यूटर लगे रहते हैं, उनमें सचेतन जीव सत्ता भी उपस्थित रहती है जो बुद्धिपूर्वक देखती-सोचती और निर्णय लेती है । इन उपग्रहों द्वारा पृथ्वी निवासियों के लिए कुछ विशेष रेडियो सन्देश भी प्रेषित किए जाते हैं जिन्हें सुन तो सकते हैं पर समझ नहीं पाते ।

अन्य ग्रहों पर निवास करने वाले प्राणी आवश्यक नहीं कि मनुष्य जैसी आकृति-प्रकृति के ही हों, वे वनस्पति, कृमि-कीटक, झाग, धुँआ जैसे भी हो सकते हैं और महादैत्यों जैसे विशालकाय भी । जिस प्रकार की इन्द्रियाँ हमारे पास हैं उनसे सर्वथा भिन्न प्रकार के ज्ञान तथा कर्म साधन उनके पास हो सकते हैं ।

उड़नतश्तरियों के क्रिया-कलाप में मनुष्य जाति को अधिक दिलचस्पी लेना शायद उनके संचालकों को पसन्द नहीं आया है अथवा वे प्राणी एवं वाहन ऐसी विलक्षण शक्ति से सम्पन्न हैं जिसके सम्पर्क में आने पर मनुष्य की सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है ।

२४ जून, १९६७ को न्यूयार्क में उड़नतश्तरी शोध सम्मेलन चल रहा था । उसी समय सूचना मिली कि इस रहस्य की अनेकों जानकारियाँ संग्रह करने वाले फ्रेंक एडवर्ड का अचानक हृदय गति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया । यह मृत्यु ठीक उसी तारीख को हुई जिससे कि उन्होंने यह शोध कार्य हाथ में लिया था । २४ जून ऐसा अभागा दिन है जिसमें इस शोध कार्य में संलग्न बहुत से वैज्ञानिक एक-एक करके मरते चले गए हैं । अकेले फ्रेंक एडवर्ड ही नहीं, क्वीनथ अरनोल्ड, आर्थर ब्रायेट, रिचर्ड चर्च, फ्रेंक सकली, विले ली आदि सब इसी तारीख को मरे हैं । दस वर्षों में १३७ उड़नतश्तरी विज्ञानियों का मरना अत्यन्त आश्चर्यजनक है । इस अनुपात से तो कभी किसी विज्ञान क्षेत्र के शोधकर्त्ताओं की मृत्यु दर नहीं पहुँची । जार्ज आदमस्की ने कैलीफोर्निया के दक्षिण पार्श्व में एक उड़नतश्तरी आँखों से देखी थी । दर्शकों में एक प्रत्यक्षदर्शी जार्ज हैट विलियमसन भी था । वे घटना का विस्तृत विवरण प्रकाशित कराने में संलग्न थे । इतने में आदमस्की की हृदय गति रुकने से मृत्यु हो गई और हैट न जाने कहाँ गुम हो गया, फिर कभी किसी ने उसका अता-पता नहीं पाया । ट्रूमेन वैथाम अपनी आँखों देखी गवाही छपाने की तैयारी ही कर रहा था कि अपने

विस्तर पर ही अचानक लुढ़क कर मर गया। ऐसी ही दुर्गति, वर्नी हिल नामक एक गवाह की हुई।

डॉ. रेमेण्ड बर्नाड ने उड़नतश्तरियों पर कई पुस्तकें लिखी हैं। अचानक एक दिन उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी गई। पर कोई नहीं जानता था कि वे कब मरे, कहाँ मरे, कैसे मरे? सन्देह है कि वे अभी भी जीवित हैं पर कोई नहीं जानता कि वे कहाँ हैं? इसी विषय पर एक अन्य पुस्तक प्रकाशित करने वाले डॉ. मौरिस केजेसप ने खुद ही आत्महत्या करली। अपने मोजों से गला घोट कर आत्महत्या करने वाली 'डोली' के बारे में कहा जाता है कि एक उड़नतश्तरी के चालकों से भेंट के उपरान्त उन्हें ऐसा ही निर्देश मिला था जिसे वे टाल नहीं सकीं। केप्टन एडवर्ड रूपेल्ट और विलवर्ट स्मिथ अपनी मौत के स्वयं ही उत्तरदायी थे। राष्ट्र संघ के प्रमुख डाग हेयर शोल्ड का वायुयान १६ सितम्बर, १६६१ को जलकर नष्ट हुआ था और वे उसी में मरे थे। दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी टिमोथी मानास्का ने शपथ पूर्वक कहा था कि उसने उस यान पर एक चमकदार तश्तरी झपट्टा मारती देखी थी। ये सभी लोग वे थे जिन्होंने उड़नतश्तरियों का पता लगाने के सम्बन्ध में गहरी दिलचस्पी ली थी।

कुछ को चेतावनी देकर भी छोड़ दिया गया है। ग्रे वारकर इस विषय पर एक पुस्तक प्रकाशित कर रहे थे कि उनके दरबाजे पर एक सबेरे प्रातःकाल पर्चा चिपका मिला, "उड़नतश्तरियों के बारे में चुप रहो नहीं तो बेमौत मारे जाओगे।" एक विज्ञानी रॉबर्ट एल. ईसले २५ फरवरी, १६६८ को इस विषय पर भाषण देकर लौट रहे थे कि किसी दिशा से उनकी कार पर दनादन गोलियाँ बरसने लगीं। घर पहुँचते ही टेलीफोन पर उन्होंने किसी का सन्देश सुना—"आगे से इस विषय पर कुछ मत बोलो नहीं तो दुरस्त कर दिए जाओगे।"

यों उड़नतश्तरी अभी भी एक रहस्य ही है और उनके संचालकों का क्रिया-कलाप और भी अधिक विचित्र है। फिर भी यह विश्वास किया जाता है कि कल नहीं तो परसों उन रहस्यों पर से पर्दा उठेगा और हम ऐसे युग में प्रवेश करेंगे जिसमें क्षुद्र आपापूती की संकीर्णता से ऊपर उठकर हमें विस्तृत, अत्यन्त सुविस्तृत, को ध्यान में रखकर सोचना पड़ेगा और उसी आधार पर अपनी गतिविधियों का निर्धारण करना पड़ेगा।

धरती की टोह लेने वाली ब्रह्माण्डीय शक्तियाँ

अब यह कपोल कल्पना मात्र नहीं रही कि मानव का उद्‌भव इस धरित्री पर नहीं हुआ अपितु जीव जगत की यह विशिष्टता सत्ता परोक्ष जगत अवस्थित किसी अन्य लोक से यहाँ आयी है। जैव विकास सम्बन्धी अनुसन्धानों से ये पूर्वाग्रह मिटते जा रहे हैं क्योंकि अनेकानेक ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे शोधकर्त्ताओं के इस दावे को बल मिलता है कि अन्यान्य ग्रहों में भी जीवन है। सम्भव है मनुष्य का आगमन ऐसे ही किसी ग्रह से यहाँ हुआ हो एवं यहाँ उसने सभ्यता का विस्तार कर यह दुनिया विनिर्मित करली हो। प्रख्यात लेखक एरिक वॉन डैनिकेन ने, जो पुरातत्वविद् भी हैं, अपना सारा जीवन ही इस मान्यता को दृढ़ बनाने के निमित्त खपा दिया कि मानव देवपुत्र है। उनका कथन है कि बहुत समय पूर्व किसी अति विकसित अन्तरिक्षीय ग्रह गोलक से देवमानव पृथ्वी पर आये और अपनी विकसित तकनीक द्वारा उन्होंने पृथ्वी को रहने योग्य बनाया। 'चेरिअट्स ऑफ गॉड्स', 'गॉड्स ऑफ गॉड्स', 'इन सर्च ऑफ दी एन्शीएण्ट गॉड्स' जैसी वेस्ट सेल पुस्तकों के सृजेता इस जर्मन मनीषी का मत है कि पृथ्वी से इतर अन्यान्य ग्रहों में निश्चित ही कोई अति विकसित सभ्यता निवास करती है। अपने कथन की पुष्टि हेतु उन्होंने वैदिक विज्ञान की विकसित तकनीक का इतिहास, आर्यों का पृथ्वी पर अवतरण तथा तात्कालीन सतयुगी परिस्थितियों का भी वेदों के माध्यम से हवाला दिया है।

साइन्स डाइजेस्ट (जुलाई ८२) में प्रकाशित एक शोध प्रबन्ध में डॉ. नेल्सन विगनर ने यह प्रामाणित करने की कोशिश की है कि भले ही पृथ्वी स्थित वैज्ञानिक इस विराट् अन्तरिक्ष में सभ्य विकसित ग्रहों द्वारा सम्प्रेषित सन्देशों को 'डिकोड' कर पाने (मूल अर्थ समझ पाने) में सफल न हो पाये हों, अन्तरिक्ष में जीवन अवश्य है। इसके लिए उन्होंने आज से बीस वर्ष पूर्व सुझाव दिया था कि हमारे लिए वैज्ञानिक को भी प्रकाश से अधिक सम्प्रेषण गति वाले सन्देश भेजना चाहिए। यूफॉलॉजी में रुचि रखने वाले डॉ. मिल्टन वैली जो खगोल भौतिकीविद् हैं, इस सुझाव से सहमत हुए व उन्होंने १६६६ में रेडियो तरंगों द्वारा सम्प्रेषण कार्य आरम्भ कर दिया। डॉ. नेल्सन का मत है कि गत ६ वर्षों में राडार पर देखी जाने वाली उड़नतश्तरियों की संख्या में तथा बाहर से आने वाले रेडियो संकेतों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। उनके अनुसार सम्भवतः ये घटनाक्रम उन सन्देश के प्रत्युत्तर में है जो यहाँ से भेजे गए थे। अब तक बीस से अधिक तारों, जिन पर जीवन होने की सम्भावना वैज्ञानिकों को प्रतीत होती है तथा पृथ्वी से भेजे सन्देश पहुँच चुके हैं। यह परिकल्पना सत्य प्रतीत होती है कि अन्यान्य ग्रहवासी उत्सुकता वश खोज-खबर लेने अपने सन्देश ही नहीं, सन्देश वाहक भी भेज रहे हैं ताकि पृथ्वीवासियों से सम्पर्क शृंखला जारी रहे। पारस्परिक आदान-प्रदान की उनकी अभिरुचि को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि न केवल राडार पर उन्हें देखा गया अपितु मनुष्यों पर भी उन्होंने घात लगाई है। कई ऐसे घटनाक्रम प्रकाश में आये हैं जिनमें कुछ व्यक्ति या समूहों द्वारा उन्हें प्रत्यक्ष आँखों से देखा गया है।

२३ अगस्त, १६८३ को स्टॉक होम से प्रकाशित 'ऑकलैण्ड स्टार' नामक पत्र में स्वीडन के कैप्टन लेनर्ट वर्ग स्टोर्म की उड़नतश्तरी सम्बन्धी एक आँखों देखी घटना प्रकाशित हुई थी। उन्होंने १७ दिसम्बर, १६८२ की सन्ध्या ५ बजे एक विचित्र दृश्य देखा। पृथ्वी की ओर गतिशील एक चपटा सा यान तेज चमचमाते प्रकाश के साथ उनके सामने से गुजरा व लगभग ३ किलोमीटर दूर जंगल में जाकर रुक गया। प्रारम्भ में उन्होंने इसे मिलिट्री ट्रान्सपोर्ट हेलीकाप्टर समझा, किन्तु ध्वनि रहित इस यान को देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए। जब इसमें से दो छोटे-छोटे यान निकलकर उनके समीप से गुजरे कुछ दूर जाकर रुक गए। थोड़ी देर में वहीं रहकर दोनों यान मूल यान से जुड़कर दूर आकाश में उड़ गए। कैप्टन का कहना है कि "मेरी आँखें २५ वर्ष का सेना का अनुभव होने के कारण धोखा नहीं खा सकतीं। यह स्पष्टतः दूरस्थ आकाशगंगा से आयी हुई एक उड़नतश्तरी है जो सम्भवतः जीवन के चिह्न तलाशने यहाँ आयी थी।"

अन्यान्य वैज्ञानिक, जो पृथ्वी से इतर जीवन में दिलचस्पी रखते हैं, अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि पृथ्वी पर गिरे उल्का पिण्डों का विश्लेषण करने पर अन्यत्र जीवन की सम्भावना प्रबल प्रतीत होती है । डॉ. कैल्विन तथा उनके सहयोगियों ने उल्का पिण्डों में ऐसे फॉसिल्स (जीवाष्मों) तथा न्यूकलीयर अम्लों को पाया है, जो पार्थिव जीवन के अंश नहीं हो सकते । यह एक संयोग ही है कि जहाँ-जहाँ उड़नतश्तरियाँ पायी गई हैं, उस स्थान से लिए गए नमूनों का विश्लेषण करने पर रेडियो धर्मिता के साथ-साथ न्यूकलीयर अम्लों का प्राचुर्य भी पाया गया है ।

अमेरिका की नेशनल एरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) संस्था ने पृथ्वी से इतर सभ्यता की खोज की दिशा में काफी कदम उठाए हैं । यूफॉलॉजी नामक एक विद्या ही इस क्षेत्र में विकसित हो गई है । यहाँ कार्यरत एक वैज्ञानिक का कथन है कि पृथ्वी पर कहीं काल-पात्र के छिपे होने की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता । इससे पुरातन सभ्यता के रहस्यों को उजागर कर पाना भी सम्भव हो सकेगा । सम्भवतः इस काल-पात्र की खोज में ही ये अन्तरिक्ष यान आते हैं । चूँकि अधिकतम उड़नतश्तरियाँ इंग्लैण्ड के पश्चिमी तट, अमेरिका के पूर्वी किनारे एवं मध्य-पूर्व एशिया में देखी गई हैं, प्रतीत होता है कि अपनी विकसित तकनीक के बलबूते उन्होंने यह जान लिया है कि यह काल-पात्र कहाँ छिपा है ?

पिछले दिनों स्टेन फोर्ड यूनिवर्सिटी एवं नासा के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा कम्प्यूटराइज्ड यन्त्र बनाया है जो एक बड़ी रेडियो फ्रिक्वेन्सी को स्कैन कर सकता है । इस मल्टीचैनेल इलेक्ट्रॉनिक स्कैन से अन्य ग्रहों से प्रसारित सन्देशों को पकड़ सकने में मदद मिल सकेगी । एक करोड़ चैनल वाले इस उपकरण का रेडियो स्पेक्ट्रम वर्तमान एक हर्ट्ज से एक हजार गुना से भी कम है । इतने प्रयास चलने पर भी उड़नतश्तरियों के आने व संकेतों के प्रसारण का क्रम जारी है । अभी तक यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि कौन-सा या कौन-से ग्रह ये विशिष्ट यान पृथ्वी पर भेज रहे हैं ।

नासा के वैज्ञानिक कुतुब मीनार व यहाँ की लाट, पेरू की प्रसिद्ध नाज्का लाइन तथा मिस्र के पिरामिडों को पुरातन काल के वैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त अन्तर्ग्रहीय सभ्यता से आदान-प्रदान का माध्यम मानते हैं । इन तीनों के ही रहस्यों को अभी सुलझाया नहीं जा सकता है । उड़नतश्तरियाँ अभी ही आती हों, ऐसी बात नहीं । पहले भी आती रही होंगी व आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता होगा । कहीं-कहीं ये आरोप लगाया गया है कि ये मानव विनिर्मित नहीं हैं । इसके प्रत्युत्तर में 'नासा' के वैज्ञानिक कहते हैं कि इन्हें सामान्य पृथ्वीवासियों ने ही नहीं, एरोनॉटिक्स के ऐसे विशेषज्ञों ने देखा है जो कभी धोखा नहीं खा सकते । इनका एकदम स्थिर हो जाना, कभी-कभी गोल घूमना, फिर घूमकर अदृश्य हो जाना, राडार की चैनेल्स को ब्लॉक कर देना यह बताता है कि ये कदापि मानव विनिर्मित नहीं है । सेटी (सर्च फॉर एक्सट्राटेरेस्ट्रियल इन्टेलीजेन्स) के निर्देशक जान वगिंघम का कहना है कि प्रबुद्ध जीवन समग्र अन्तरिक्ष में फैला पड़ा है एवं अन्यान्य ग्रहों से सतत् पृथ्वी की निगरानी की जा रही है ।

किसी अपरिचित स्थान पर वहां की भाषा न जानने वाला जा पहुँचे तो सकपकाना स्वाभाविक है । ऐसी ही कुछ स्थिति सम्भवतः ग्रहों से आने वाले यानों की हुई है, जो कुछ व्यक्त तो करना चाहते हैं पर सम्पर्क माध्यम के अभाव में न कह सकने पर अपनी कौतुक लीला दिखाकर वापस लौट जाते हैं । इसे मात्र प्रकृति की लीला, उल्कापात, अदृश्य किरणों का दृश्य रूपान्तरण मात्र कहकर नहीं टाला जा सकता । घटनाक्रमों की समीक्षा करने पर लगता है कि कहीं न कहीं कोई विधिवत् योजना इसके मूल में निहित होनी चाहिए ।

इंग्लैण्ड की ज्योतिर्विज्ञान विद्या के निदेशक सर वर्नाड पावेल, जो रेडियो टेलिस्कोप से निरन्तर किसी भूले-भटके अन्तरिक्षीय यान की टोह लगाते रहते हैं, का कहना है कि मात्र हमारी आकाशगंगा में लगभग पाँच प्रतिशत तारे ऐसे हैं जिन पर जीवन की सम्भावना है । ब्रह्माण्ड तो अत्यन्त विराट् है । पूरे ब्रह्माण्ड में हमारा सौर-परिवार तो एक जुगनूँ के समान है । हमारी आकाशगंगा जैसी नौ खरब आकाशगंगाएँ और भी हैं जिनकी हमें कोई जानकारी नहीं । यदि हम इतना भर मान लें कि आकाशगंगा के पाँच नहीं, एक प्रतिशत में जीवन है तो १०० अरब तारों में से १ अरब तारों के ग्रहों पर जीवन की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता । अन्यान्य आकाशगंगाओं की बात सोची जाय तो दिमाग चकरा ही जायेगा ।

किन्तु मानवी प्रयास जारी है । अन्यान्य ग्रहों पर जीवन के प्रमाण स्वरूप प्रकट होने वाले यानों से उन्होंने काफी निष्कर्ष निकाले हैं । अब तक लगभग १६०० से भी अधिक ऐसी घटनाओं की जानकारी मिली है जिनसे अन्यान्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व सिद्ध होता है । आने वाले इन अन्तरिक्षीय यानों से किसी प्रकार की हानि मानव जाति को पहुँची हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता । दूसरे 'पृथ्वी पर जीवन कैसे आया', इस गुत्थी को सुलझाने में वैज्ञानिकों को काफी मदद मिली है । 'इकैरस' नामक जापानी पत्रिका में प्रकाशित हिरोमित्सू योकू एवं तैरो ओशिमा नामक दो वैज्ञानिकों ने लिखा है कि 'बैक्टीरियोफाज एक्स १७४ डी. एन. ए.' अन्तरिक्षीय सभ्यता का सन्देशवाहक है एवं यह भू-मण्डल पर पाया जाता है, इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पृथ्वी में जीवन का उद्भव अन्तरिक्ष से आयी विकसित सभ्यता द्वारा हुआ है । इन कणों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि जटिल कार्बनिक अणु मानवेत्तर ग्रहों से यहाँ आये हैं, साथ ही जीवन भी ।

जीवन के अस्तित्व का एक प्रधान प्रमाण है डी. एन. ए. का पाया जाना । जीव संरचना के इस मूल आधार के अन्तरिक्ष में होने, प्रमाण मिलने, उड़नतश्तरियों के आते-जाते रहने तथा उन स्थानों पर जहाँ वे ठहरी हों—डी. एन. ए. के कार्बनिक अणु व रेडियो धर्मी विकिरण के पाये जाने से अन्यान्य ग्रहों पर जीवन के प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं । डॉ. वार्लीकर, जो एस्ट्रोफिजीक्स के जाने माने विद्वान हैं, लिखते हैं कि 'अति मानवी सभ्यता को मानवी चिन्तन के ज्ञात आयामों से परे जाकर ढूँढ़ना देखना होगा ।' उनके अनुसार जिस प्रकार हम चिड़ियाघर के पशु-पक्षियों पर निगाह रखते हैं, ठीक उसी प्रकार अन्य ग्रहों के जीव हम पर अपनी निगाह जमाए हुए हैं । उनका इरादा पृथ्वी पर हमला बोलने का नहीं लगता । ये तो पृथ्वीवासी ही हैं जो आपसी टकराव हेतु आयुधों का भण्डार जमा किए बैठे हैं ।

हमें अन्तरिक्षीय सभ्यता के विषय में सोचना भी चाहिए तो न केवल तकनीकी दृष्टि से, वरन् चिन्तन भावना की दृष्टि से भी सुविकसित देवमानवों के विषय में धारणा बनानी चाहिए। पुरातन काल में जैसे मनुष्य इस पृथ्वी पर अवतरित हुए थे, वैसे ही विकसित सभ्यता के सन्देशवाहक ये दूत भी टोह लगाने, सम्पर्क माध्यम बनाने का प्रयास कर रहे हैं। इनसे भयभीत होने के स्थान पर हम स्वयं को देवोपम बनाने का प्रयास करें ताकि विकसित तकनीकी के बलबूते आगे कभी सम्पर्क बनाने—उनकी भाषा समझ पाने का पुरुषार्थ सफल हो सके तो वे हमें उस स्थिति से श्रेष्ठ ही पायें जिस स्थिति में करोड़ों वर्ष पूर्व हमें पृथ्वी पर छोड़ गए थे।

लोकान्तरों के अन्तरिक्ष यान भूलोक में

ग्रह-नक्षत्रों का परिवार भी मानवी परिवार की तरह नियति की एक विशिष्ट सहयोग शृंखला में बँधा हुआ है। इन पिण्ड गोलकों में दृश्य और अदृश्य स्तर के पारस्परिक आदान-प्रदान क्रम अनेकानेक रूपों में चलते रहते हैं। अपना सौर-मण्डल भी एक सद्गृहस्थ की तरह मिल-जुलकर निर्वाह करता और मिल बाँट कर रखा है। विशाल ब्रह्माण्ड में विद्यमान अगणित सौर-मण्डल अपने-अपने ध्रुव केन्द्रों की प्रदक्षिणा करने के साथ-साथ किसी अविज्ञात किन्तु महान् लक्ष्य की ओर अनवरत क्रम से बढ़ते चले जाते हैं।

आधुनिक तकनीकी विकास से मनुष्य यदि यह समझे कि वह वैज्ञानिक प्रगति के शिखर पर जा पहुँचा तो यह उसका भ्रम है। उसकी इस मान्यता को झुठलाने एवं अधिक प्रगतिशील अन्तर्ग्रही सभ्यताओं का प्रमाण देने हेतु समय-समय पर ऐसे घटनाक्रम घटित होते हैं जिनका प्रत्यक्षवादी कोई उत्तर नहीं दे पाते। परोक्ष में जो है, जो जाना नहीं जा सका, उसका अस्तित्व भी हो सकता है। इस तथ्य को पूर्वाग्रहों को छोड़कर मानना ही श्रेयस्कर है। शोध प्रक्रिया चलती रहे किन्तु परोक्ष के रहस्यों को नकारा नहीं जाना चाहिए।

अकल्पनीय दूरी पार करके धरती पर गृहों-नक्षत्रों का आदान-प्रदान अदृश्य स्थिति में शक्य है। ऊर्जा किरणें ही प्रकाश की गति से भी तीव्र चाल से दौड़ लगाती हुई सीमित अवधि में धरती तक सतत् आती रहती हैं। यदि उनका आकार अन्तरिक्ष यानों जैसा ठोस दृश्यमान हो तो निश्चय ही लोक-लोकान्तरों के बीच आदान-प्रदान अति कठिन ही बना रहेगा। यही कारण है कि प्रकृति सम्पदा का अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान तरंग स्तर का होने के कारण अदृश्य ही बना रहता है।

ब्रह्माण्ड में अधिकांश 'ग्रह गोलक' निर्जीव हैं। इतने पर भी इस विशाल परिकर में अगणित ऐसे भी लोक हैं जिनमें जीवन विद्यमान हैं, जिनमें धरती जैसी ही सजीवता विद्यमान है। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिनकी सभ्यता, सम्पदा एवं वैज्ञानिक विभूति मनुष्य लोक की तुलना में कहीं अधिक विकसित है। सजातियों के मध्य आकर्षण एवं सद्भाव होना स्वाभाविक है। विकसित सभ्यता वाले लोक-लोकान्तरों के निवासी निश्चय ही इस भूलोक से परिचित हों और सम्पर्क, सद्भाव एवं आदान-प्रदान के लिए आतुर रहते हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

प्रमाण मिलते हैं कि अन्य लोकों के चैतन्य प्राणी जो सम्भवतः बुद्धि और विज्ञान के क्षेत्र में कुछ अधिक आगे बढ़े होंगे, भूलोक से सम्पर्क स्थापित करने के इच्छुक एवं प्रयत्नशील हैं। इस सन्दर्भ में अधिक प्रामाणिक साक्षी ऐसे अन्तरिक्ष यानों की हैं जो धरती तक आते एवं अपना अस्तित्व का प्रमाण-परिचय देते रहते हैं। सम्भवतः पिछली शताब्दियों में भी उनका आवागमन रहा हो और उपेक्षा के कारण उसे नोट न किया गया हो पर इस शताब्दी में उन्हें बड़ी संख्या में अधिक व्यापक क्षेत्र में देखा गया है। इन्हें 'उड़नतश्तरी' (यू. एफ. ओ.) नाम से जाना जाता है, पर हैं वे दृश्यमान अन्तरिक्षयान ही। किसी विकसित सभ्यता ने लम्बी यात्रा करने वाले—द्रुतगामी वाहनों का आविष्कार कर लिया प्रतीत होता है। उड़नतश्तरियों की सत्ता को इसी रूप में मान्यता मिल रही है।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में जीवन विज्ञान के प्राध्यापक डॉ. जॉर्ज वाल्ड के अनुसार हमारी आकाशगंगा में ही एक अरब ग्रह हैं, इससे परे एक अरब अन्य आकाशगंगाएँ हैं जिनमें से प्रत्येक में एक अरब ग्रह हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार इन सभी ग्रहों में से एक से पाँच प्रतिशत तक ग्रहों में जीवन अवश्य विद्यमान है।

अमेरिका के मेरीलैंड विश्वविद्यालय के रासायनिक विकास संस्थान के निर्देशक डॉ. सिरिल पोन्नेमपेरूमा ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस में बताया कि ब्रह्माण्ड से सन्देश प्राप्त करने का प्रयास निरन्तर चल रहा है। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि हमारे ही नभ मण्डल में दस लाख सभ्यताएँ अस्तित्व में हैं जिनका अध्ययन करने के लिए विशाल कम्प्यूटराइज्ड उपकरणों का प्रयोग वे कर रहे हैं।

सन् १९४७ में अमेरिका के पश्चिमी तट रार्कामा के निकट मोटर वोट में बैठे दो रक्षक एच. ए. डहल तथा फ्रैड. एल. क्रैसवेल समुद्र तट की निगरानी कर रहे थे। अचानक आकाश में दो हजार फुट की ऊँचाई पर गोल आकृति की प्रकाशमान छः मशीनें दिखाई दीं। पाँच मशीनें एक के चारों ओर घूम रही थीं। धीरे-धीरे नीचे उतरकर ५०० फुट की ऊँचाई पर रुक गईं। तभी डहल ने अपने कैमरे निकाल फोटो लेने के लिए कैमरे का स्विच दबाया ही था कि अचानक बीच वाली मशीन फट गई। दोनों अंगरक्षक तुरन्त छलांग लगाकर पास की एक गुफा में घुस गए पर उनके साथ का कुत्ता वहीं मर गया। कुछ देर बाद बाहर निकलने पर देखा कि विस्फोट से फटे मशीन के टुकड़े तट पर बिखरे थे जो चमकीले एवं गरम थे। उनकी वोट में लगे ट्रांसमीटर भी जाम हो गए थे।

निरीक्षण दल ने वाशिंगटन के उक्त टापू पर फैले २० टन धातु के टुकड़ों को एकत्र कर परीक्षण किया तो ज्ञात हुआ कि ये टुकड़े सोलह धातुओं के सम्मिश्रण से बने हैं जिन पर कैल्सियम की मोटी चादर चढ़ी है। वैज्ञानिक के लिए आश्चर्य यह रहा कि इन १६ धातुओं में से एक भी धातु पृथ्वी पर नहीं पायी जाती। वे इनके नाम तक बता पाने में असमर्थ रहे एवं अभी तक उनका विश्लेषण सम्भव नहीं हो पाया है।

'मेलबोर्न' २४ अक्टूबर, ७८ को बीस वर्षीय युवा विमान चालक श्री फ्रेडरिक वाके च ने आस्ट्रेलिया एवं तस्मानियाँ के बीच चार्टर्ड उड़ान भरी। उसने अधिकारियों से बताया कि वह १३७ मीटर की ऊँचाई पर किंग आइसलैण्ड के पास से उड़ रहा है और

उसके विमान के ऊपर बहुत तेज गति से एक तश्तरी जैसी आकृति की लम्बी वस्तु उड़ रही है जिसके भीतर हरी रोशनी का प्रकाश आ रहा है । यान सहित लुप्त होने के पूर्व फ्रेडरिक के अन्तिम शब्द थे कि "मेरे विमान के ईंजन में रुकावट आ रही है तथा वह विचित्र यान अब भी मेरे विमान के ऊपर छाया है ।" इसके बाद रेडियो पर धातु के जोरों से टकराने का शोर सुनाई पड़ा तथा विमान का निगन्त्रण कक्ष से सम्पर्क टूट गया । मेलबोर्न हवाई अड्डे से अनेक जहाजों ने खोज के लिए उड़ान भरी लेकिन दुर्घटना का कोई चिह्न तक न मिला ।

ऐसे अनेकों उदाहरण अमेरिका के अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा गठित यू. एफ. ओ. विभाग में संग्रहीत देखे जा सकते हैं जिनमें यान चालकों, वायरलेस ऑपरेटरों के अन्तिम शब्द टेप रिकॉर्डेड हैं एवं जिनका कोई चिह्न निश्चित स्थान पर न मिला, मात्र रेडियो धर्मिता से भरे वातावरण को छोड़कर । कई हेलीकॉप्टर चालक सहित इस तलाश में गायब हो चुके हैं । वे कहाँ, किस लोक में गमन कर गए, कोई जानकारी वैज्ञानिकों के पास इस सम्बन्ध में नहीं है ।

२५ अगस्त, १९७६ की बात है । अमेरिका के नॉर्थ डकोटा प्रान्त में एक वायु सेना अधिकारी को रेडियो तरंगों द्वारा सन्देश भेजने में अचानक बाधा का सामना करना पड़ा । खोजबीन करने पर पता चला कि इसी समय एक उड़नतश्तरी गहरे लाल रंग के प्रकाश बिखेरती ऊपर नीचे उड़ रही थी । इसी समय राडार ने भी दस हजार मीटर की ऊँचाई पर उड़ती हुई एक गोल तश्तरी की सूचना दी । थोड़ी देर बाद यह उड़नतश्तरी दक्षिण को मुड़ गई और यह अनुमान लगाया गया कि कोई १५ मील की दूरी पर वह पृथ्वी पर उतर गई है । उस स्थान पर वायु सेना की टुकड़ी पहुँची तो वह आठ मिनट पहले ही वहाँ से गायब हो चुकी थी । इस बीच दूसरी तश्तरी उत्तर की ओर दिखाई दी, उसे भी राडार ने देखा पर जब तक दस्ता उधर दौड़े वह भी गायब हो गई । इस आँख मिचौनी को राडार पर तो देखा जाता रहा, लेकिन इस सम्बन्ध में कोई सूत्र वैज्ञानिकों को हाथ न लगा ।

२४ अक्टूबर, १९७७ की शाम को कनाडा के समुद्री तट पर शागहार्बर के सैकड़ों निवासियों ने आकाश में कोई चमकदार उड़ती हुई वस्तु देखी । देखते-देखते ही वह समुद्र सतह पर जाकर विलीन हो गई । २० मिनट के भीतर ही पुलिस कर्मचारी एक जहाज और आठ नावों सहित उस स्थान पर निरीक्षण करने पहुँच गए, जहाँ उड़नतश्तरी विलीन हुई थी । वहाँ 'सर्चलाइट' के तेज प्रकाश में वे केवल समुद्र के एक स्थान से पीला झाग निकलता देख सके । दो दिनों तक सैनिक गोताखोर उस स्थान पर गोता लगाते रहे पर वहाँ किसी वस्तु या उड़नतश्तरी का कोई प्रमाण नहीं मिला ।

ये घटनाक्रम अभी ही नहीं, काफी पूर्व से घटते रहे हैं । १३ मई, १९१७ का दिन था । फातिमा नगर लिस्बन (पुर्तगाल) से कोई ६२ मील दूर 'कारवाँ द इरिया' नामक झरने के समीप तीन बालक लूसिया, फ्रैकिस्कोमार्तो और जेसिन्तोमार्तो अपने जानवर चरा रहे थे कि एक यान से अन्तरिक्ष यात्री उतरे और उन बालकों से बातचीत की । बालक भाषा तो न समझ सके । यह घटना उन्होंने अपने अभिभावकों को सुनाई किन्तु इससे वे सहमत न हुए । किन्तु ठीक एक माह उपरान्त १३ जून को फिर एक अन्तरिक्ष यान आया उसमें से कुछ यात्री उतरे अब की बार सम्मोहन किरणें जैसी फेंकी । बालकों से कुछ कहा । बालक समझे तो नहीं पर हाव-भाव से ऐसा लगा कि कह रहे हों "कि तुम बहुत अच्छे लगते हो । फिर १३ जुलाई को इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई । अब यह बात सारा नगर जान चुका था । जो हजारों दर्शक उस स्थान पर जमा हो गए थे, उन्हें निराशा ही हाथ लगी । कुछ नहीं दिखाई दिया । अब अगली १३ तारीख के इन्तजार में ७०००० नगर निवासी नदी के किनारे जमा हो गए । थोड़ी ही देर में बादलों के बीच से कोई चौंधियाने वाली वस्तु आकाश से पृथ्वी की ओर आती दिखाई दी । वह तेज घूमती तश्तरीनुमा कोई चाँदी जैसी धातु से निर्मित वस्तु थी । भीड़ के समक्ष उस दिन वह ठहरी नहीं । सूरज की तरफ जाकर लुप्त हो गई । देखने वालों का कहना था कि उसकी गति प्रकाश से भी अधिक थी । उन दिनों वैज्ञानिक प्रगति इतनी हुई नहीं थी, अतः शोध की दिशा में कोई विशेष कदम नहीं उठे ।

सन् १९३० में प्लूटो ग्रह की खोज करने वाले अन्तरिक्ष विज्ञानी क्लाइड डब्ल्यू टाम्बा ने कहा था कि "मैंने व मेरी पत्नी ने उड़नतश्तरियाँ आकाश में उड़ती देखी हैं । मैं उन पर, अन्तर्ग्रही सभ्यता के अस्तित्व पर पूरा विश्वास रखता हूँ ।" इंग्लैण्ड के अन्तरिक्ष विज्ञानी एच. पर्सी विल्किस ने भी १९३५ में ५०० फीट व्यास की उड़नतश्तरी देखने का विवरण 'साईंस' पत्रिका में दिया था ।

अब वैज्ञानिकों के पास अन्तरिक्ष के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है । अपने सौर-मण्डल में विद्यमान अनेकानेक ग्रहों पर वे जीवन की सम्भावनाएँ बताते हैं । यह अकारण नहीं हो सकता कि विकसित सभ्यता वाले अन्यान्य ग्रहवासी इस छोटे से ग्रह पृथ्वी के बारे में जानने को उत्सुक न हों । जब मनुष्य चन्द्रमा पर जा सकता है एवं चैलेन्जर, सोयुज-सैल्यूत यानों द्वारा अन्तरिक्ष में प्रयोगशाला खड़ी कर सकता है, अन्य ग्रहों के निवासी अपने यान यहाँ क्यों नहीं भेज सकते ? अभी-अभी 'नेचर' व 'साईंस' पत्रिका में छपे प्रख्यात एस्ट्रोफिजीसिस्ट प्रो. कौनाल्ड ब्रेस के एक लेख के अनुसार "आने वाले रेडियो सन्देशों से निश्चित ही पता लगता है कि दिक्-काल की परिधि से ऊपर विकसित सभ्यता वाले ग्रह पिण्ड हैं, जहाँ जीवन है । बारमूडा कोण जैसे स्थानों से सम्भवतः नमूने के रूप में पृथ्वीवासियों को—उनके यानों को—परीक्षण के लिए वे ले जाते हैं ।" कुछ भी हो, हमें अपने अकेले के ही सौर-मण्डलवासी होने का गर्व नहीं करना चाहिए अभी जानकारी नहीं मिली तो यह अर्थ तो निकलता नहीं कि ऐसी एक और पृथ्वी का या कई जीवनधारी ग्रहों का अस्तित्व ही नहीं है, ये घटनाएँ इसी की साक्षी देती हैं ।

अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान की तैयारी

अब तक जाने जा सके ब्रह्माण्ड का विस्तार १० अरब प्रकाशवर्ष माना जाता है और उसे उतना ही, पुराना कहा जाता है । अपनी पृथ्वी जैसी स्थिति के ग्रह इस समस्त ब्रह्माण्ड में १००,००० अरब माने जाते हैं । इनमें से एक हजार पीछे एक ऐसा जरूर होगा जिनमें जीवन विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ मौजूद हों । उनमें से भी एक हजार पीछे एक ग्रह जरूर ऐसा होगा जिसमें मनुष्य जैसे समुन्नत प्राणियों का अस्तित्व

हो । यदि यह कल्पना सही है तो कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में १० करोड़ ग्रह ऐसे होने चाहिए जिनमें बुद्धिमान प्राणी निवास करते हों । पृथ्वी पर जिस प्रकार के अणु-परमाणु पाये जाते हैं उन्हीं से मिलते-जुलते अन्य ग्रहों में भी हैं । शीत-ताप जहाँ भी मध्यवर्ती होगा वहाँ निश्चय ही प्राणियों की उत्पत्ति होने लगेगी और क्रमशः अधिकाधिक विकसित होते चले जायेंगे ।

आर्थर क्लार्क की 'टू थाउजेन्ड वन ए स्पेस ऑडिसी', एच. जी. वेल्स की 'दी वार ऑफ दी वर्ल्डस', क्लिफर्ड सिमैक की 'इमिग्रैन्ट' फ्रेड होयल की 'फिपरप्लैनेट', एडगर राइसवरी की 'ग्रीन मैंन फ्राममार्स' जैसी पुस्तकों में प्रस्तुत प्रतिपादन से यह सहज ही विश्वास होता है कि अनन्त ब्रह्माण्ड में अनेकों में सम्मुन्नत जीवन का अस्तित्व अवश्य होगा । जियूलवर्ग, एडगर एलन, जेम्स ओब्रिएन्स, कार्ल सागन, आइजेक आसियोव आदि विद्वानों ने कल्पना और तर्कों के आधार पर ही अन्तर्ग्रही जीवन के सन्दर्भ में अनुमान लगाया है । इन मनीषियों ने कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं किए हैं तो भी जो सम्भावनाएँ और तथ्य प्रस्तुत किए हैं वे उपेक्षणीय नहीं हैं ।

डॉ. फ्रेड होयल ने एक पुस्तक लिखी है 'ऑफ मेन एन्ड गैलेक्सीज', उसमें उन्होंने बताया है कि अपनी आकाशगंगा में अन्तर्ग्रही सन्देशों के आदान-प्रदान की कोई एक लाख रेडियो संचार धाराएँ बहती हैं जिनसे कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रह परस्पर कई तरह के आदान-प्रदान करते हैं । इस संचार व्यवस्था में धरती निवासी भी एक दिन भागीदार होकर रहेंगे ।

रूस के नक्षत्र विज्ञानी एन. एस. ब्लारदेशेव ने बताया है कि "क्वासर सी. टी. ए. १०२ में पृथ्वी पर जो रेडियो संकेत निरन्तर आ रहे हैं वे निश्चित रूप से किसी बुद्धिमान जाति के द्वारा प्रेषित हैं । उनमें पूर्ण नियमितता है, साथ ही 'धड़कन' भी । १०० दिनों के अन्तर से १० वर्षों के अन्तर से, ठीक एक ही प्रक्रिया का बार-बार दुहराया जाना यह बताता है कि इस क्रमबद्धता के पीछे कोई सोद्देश्य प्रयास काम कर रहे हैं ।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की मुलाई रेडियो एस्ट्रोनॉमी ऑब्जरवेटरी के अधिकारी मार्टिन रॉयल ने किसी ग्रह के नियमित रूप से धरती पर आने वाले रेडियो सन्देश सुने हैं । यह निश्चित समय पर एक क्रमबद्ध शृंखला के साथ आते हैं । श्री रॉयल का कथन है कि वे 'पर्ल्स' तारक से आते हैं और बताते हैं कि कोई विकसित सभ्यता के बुद्धिमान प्राणी पृथ्वी वालों के साथ सम्पर्क साधने में प्रयत्नशील हैं ।

आर्मेनिया (रूस) की ब्यूरोकन एस्ट्रोफिजीकल ऑब्जरवेटरी में दर्जनों मूर्धन्य खगोल विज्ञानी सन् १९७१ से इस प्रयास में जुटे हैं कि अन्तर्ग्रही सन्देशों का आदान-प्रदान किसी प्रकार सम्भव हो सके । इसी प्रकार अमेरिका के ग्रीन बैंक नेशनल रेडियो ऑब्जरवेटरी द्वारा भी ऐसे ही प्रयास चल रहे हैं । कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डॉ. लियोडमोज का यह विश्वास है कि हम भले ही लम्बी अन्तर्ग्रही यात्राएँ न कर सकें पर समुन्नत सभ्यताओं वाले ग्रहों के साथ रेडियो सम्पर्क अवश्य स्थापित कर सकेंगे ।

जो सूचनाएँ अन्य ग्रहों से हमारे उपकरणों ने प्रस्तुत की हैं उनके आधार पर मोटा निष्कर्ष यह निकाला गया है कि अपने सौर-मण्डल में पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं जीवन की सम्भावना नहीं है । पर यह निष्कर्ष सही ही हो इसकी कोई गारण्टी नहीं । मौसम की खोज-खबर लेने वाले उपग्रह अक्सर आकाश में उड़ते रहते हैं । उन्होंने पृथ्वी के जो चित्र भेजे हैं उनके आधार पर कई वैज्ञानिकों ने ठीक वैसे ही निष्कर्ष निकाले हैं और अन्तरिक्षवेत्ताओं को चुनौती दी है कि इन चित्रों का वैसा ही निष्कर्ष उन्हीं आधारों पर निकालें जैसा कि अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में निकाला गया है । इससे यही सिद्ध होगा कि पृथ्वी पर कोई जीवन नहीं है । वहाँ जीवित प्राणियों के रहने की कोई सम्भावना नहीं है । यह चुनौती प्रस्तुत करने वालों में कार्नेल विश्वविद्यालय के खगोलवेत्ता प्रो. कार्ल सागन अग्रणी हैं, वे चुनौती देते हैं कि इन उपग्रह प्रेषित चित्रों के आधार पर कोई यह साबित करे कि धरती पर भी जीवन हो सकता है, जिस तरह जीवन रहते हुए भी धरती के प्रस्तुत उपकरणों ने यही निर्जीवता दर्शाई है उसी तरह उनकी खोज-खबर को इतना प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है कि सौर-मण्डल में अन्यत्र कहीं जीवन की सम्भावना का स्पष्टतया खण्डन किया जा सके ।

मंगल पर जो परिस्थितियाँ हैं उनमें धरती से भेजे हुए जीव भी जी सकते हैं, इस तथ्य का प्रतिपादन कैलीफोर्निया की एक्सरिसर्च लेबोरेटरी के डॉ. सीरल पोन्नमपेरूया तथा डॉ. हैरल्ड क्लीन ने किया है । उन्होंने 'रिव्यू ऑफ बायोलॉजी' के अक्टूबर १९७० के अंक में एक तर्कपूर्ण लेख छपाया है जिसमें यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी पर उन जटिल परिस्थितियों में जीवन-यापन करने वाले प्राणी मौजूद हैं जैसे कि मंगल ग्रह पर हैं । पृथ्वी पर १४° से लेकर २०५° तक तापमान में जीवित रहने वाले प्राणी मौजूद हैं जब कि मंगल ग्रह पर वह न्यूनतम ८५° और अधिकतम ११२° ही आँका गया है । उबलते पानी और तीव्र ऐसिडों में भी प्राणी पाये गए हैं । मंगल पर अल्ट्रा वायलेट रेडिएशन, वायुमण्डलीय घनत्व तथा ऑक्सिजन के अभाव को देखते हुए जीवन के अस्तित्व से इन्कार किया गया है पर इन तीनों ही परिस्थितियों में जीवन के फलने-फूलने की पूरी-पूरी गुंजाइश है । इस प्रतिपादन के पक्ष में सबसे मजबूत दलील यह है कि पृथ्वी पर अब से ४.६ अरब वर्ष पहले जीवन आरम्भ हुआ, उस समय तक यह अग्निपिण्ड थोड़ा ही ठण्डा हो पाया था । उस समय सिर्फ अमोनिया, मीथस, हाइड्रोजन और भाप के सघन बादल ही आकाश में छाए हुए थे । सूर्य की पराबैंगनी किरणों की वर्षा से और ज्वालामुखी विस्फोटों की गर्मी से सर्वत्र बिखरे अणु टूट-टूटकर विभिन्न रूपों में परिणत हुए । उन्हीं से अमीनो अम्ल एवं कार्बनिक पदार्थ बने जिनसे जीवन का प्रादुर्भाव सम्भव हो सका । इन्हीं तत्वों का संयोजन डी. एन. ए. के रूप में सामने आया । प्रोटीन की रचना हुई और जीवित कोशिकाओं की हलचल उत्पन्न हुई । उसी का क्रमिक विकास विभिन्न जीव-जन्तुओं के रूप में सामने आया । यह पृथ्वी पर जीवन उद्भव का इतिहास अन्य ग्रहों पर भी दुहराया जा सकता है । शिकागो विश्वविद्यालय के जीव विज्ञानी स्टेनले विलर—फ्लोरिया विश्वविद्यालय के सिड़नी फोक्से, ह्यूस्टन विश्वविद्यालय के जुआन जोरो इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अन्य ग्रहों में इन दिनों जो परिस्थितियाँ हैं उनमें भी जीवन विकास की सम्भावना है, भले ही पृथ्वी निवासियों से भिन्न प्रकार का ही क्यों न हो ।

संसार के विभिन्न भागों में अन्तरिक्ष से टूटे हुए उल्का पिण्डों के जो अवशेष पाये गए हैं उनमें कार्बोनिशियस, काड्राइट

जैसे अमीनो अम्ल मिले हैं, साथ ही प्राणियों के फासिलपिंजर भी उनमें देखे गए हैं । सन् १९७० में ऑस्ट्रेलिया में गिरी उल्का से १७ प्रकार के अमीनो अम्ल पाये गए थे । मैसाचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी के एक प्रतिवेदन में शनि के तथा वृहस्पति के उपग्रहों में जीवन होने की सम्भावना की गई है ।

जीवन के स्वरूप और आधार के बारे में हम पृथ्वी निवासियों की जो मान्यताएँ हैं वे अपने लोक की स्थिति का अन्वेषण करके बनाई गई हैं । आवश्यक नहीं है कि अन्य लोकों में भी यही आधार काम करे या जीवन का यही स्वरूप हो । जिस तापमान में अपने यहाँ जीवन विकास होता है आवश्यक नहीं कि अन्य ग्रहों की स्थिति में भी उतना ही तापमान आवश्यक हो । अतिशीत और अति उष्णता के मध्य भी जीवन की स्थिति अपनी पृथ्वी पर असम्भव मानी जाती है किन्तु अन्य तारकों में ऐसे जीव भी हो सकते हैं जो हमारी दृष्टि में असह्य वातावरण में भी भली प्रकार फल-फूले रहे हों ।

अब धरती के विज्ञानी भी मानने लगे हैं कि अन्य परिस्थितियों में भी जीवन का विकास एवं परिपोषण हो सकता है । पृथ्वी पर कार्बन, ऑक्सीजन, कार्बन डाई ऑक्साइड और पानी की उपस्थित में ही जीवन फलता है, सो ठीक है, पर अब यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि 'सिल्किन' भी कुछ अन्य यौगिकों के साथ मिलकर जीवन का आधार हो सकता है । पानी की जगह द्रव अमोनिया, द्रव मीथेना, हाइड्रोजन सल्फाइड भी काम दे सकते हैं । ऑक्सीजन की जरूरत गन्धक भी पूरी कर सकता है ।

हम कई ग्रहों के बारे में यह जानते हैं कि वहाँ बहुत ठण्डक अथवा गर्मी होनी चाहिए पर यह अनुभव सही नहीं है । पृथ्वी के इर्द-गिर्द हवा और धूप की मजबूत छतरी तनी हुई है वह पृथ्वी पर आने वाली सूर्य किरणों को रोककर उपयुक्त गर्मी बनाये हुए हैं । इस छतरी की एक परत में अतिशीत की और एक परत में अति ताप की स्थिति है । यदि अन्य किसी ग्रह के निवासी पृथ्वी का पता लगा रहे हों और उनके हाथ इन दो परतों में से जो भी लगेगी उसी के आधार पर यह मान बैठेंगे कि इस लोक का तापमान इसी स्तर का है, जबकि वस्तु स्थिति इससे सर्वथा भिन्न प्रकार की होगी । धरती पर तापमान जीवन के उपयुक्त सह्य है । ठीक इसी प्रकार अन्य ग्रहों में वहाँ के निवासियों के लिए उपयुक्त तापमान किसी गैसीय छतरी में ढका छिपा हो सकता है । वहाँ की स्थिति के बारे में हमें बहुत ही कम जानकारी है । ऐसी दशा में किसी उचित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है । इन परिस्थितियों में हम यह कल्पना कर बैठें कि अन्य ग्रहों में जीवन नहीं होगा, सर्वथा अनुचित है । सौर-मण्डल भर की हमें थोड़ी जानकारी है । यदि इस छोटे क्षेत्र में जीवन नहीं भी हो तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि पृथ्वी ही एकमात्र सजीव है और अन्यत्र सर्वत्र निर्जीवता और निस्तब्धता का साम्राज्य है ।

कभी यह कहा जाता था कि अन्तर्ग्रही उड़ान की गति अधिक से अधिक प्रकाश की गति हो सकती है । ब्रह्माण्ड विस्तार को ध्यान में रखते हुए इस मन्द गति से अन्य ग्रहों की खोज-खोबर ला सकना अति कठिन है । उतनी लम्बी उड़ान के लिए ईंधन ले चलने से वे यान अत्यन्त भारी हो जायेंगे । फिर उतने लम्बे समय तक मनुष्य जीवित भी नहीं रह सकेंगे । उतने दिन तक खाने-पीने की सामग्री लेकर चलना भी सम्भव नहीं ।

उस सभी कठिनाइयों का हल अब मिलता जाता है । लम्बी मंजिल पार करने के लिए अपने यानों को थोड़ी ही दूर उड़ना पड़ेगा उसके बाद अभीष्ट ग्रह की आकर्षण शक्ति में जब प्रवेश पा लिया जायेगा तो अपने यान को उड़ने की जरूरत न पड़ेगी । मंजिल स्वयं ही खिंचती हुई अपने पास चली आयेगी अर्थात् वे ग्रह स्वयं ही हमें खींचने लगेंगे । अपने यान के इंजन बन्द कर दिए जायेंगे किन्तु यात्रा क्रम मजे में चलता रहेगा । ऐसी दशा में अधिक ईंधन लेकर चलने की जरूरत न पड़ेगी । शीत निद्रा में सुला कर यात्री को दीर्घजीवी बनाया जा सकेगा और अन्न-जल तथा वायु की जितनी मात्रा यान में भरी जायेगी उसी को बार-बार शुद्ध करके प्रयुक्त होने योग्य बनाया जाता रहेगा और उतनी ही सामग्री से मुद्दतों तक गुजर बसर होती रहेगी । अतएव निकट भविष्य में उन सभी कठिनाइयों को सरल बना लिया जायेगा जो इन दिनों अतीव कठिन और निराशाजनक प्रतीत होती हैं ।

ब्रह्माण्ड शोध-कार्य के उपयुक्त एक अति महत्त्वपूर्ण विज्ञान हाथ में आया है—रिलेटिविस्टिक वेलोसिटी अर्थात् आपेक्षित तीव्र गति । इस आधार पर पाँच हजार वर्षों की यात्रा दस वर्ष में ही की जा सकेगी । इस विज्ञान का विवेचन करते हुए विज्ञानी डोनाल्ड ने उसे गुरुत्वाकर्षण का उल्लंघन कहा है । उड़नतश्तरियों का दूरवर्ती ग्रह-नक्षत्रों से धरती पर आना-जाना इसी आधार पर सम्भव है ।

पृथ्वी द्रुतगति से अपनी धुरी पर घूमती है और सूर्य की परिक्रमा करती हुई बिना पंख के उड़ती है इस गति के फलस्वरूप उसमें गुरुत्वाकर्षण पैदा होता है । धरती की चीजों को यह गुरुत्वाकर्षण ही बाँधे रहता है और हमें पता भी नहीं चलता कि हम सब भी घूम रहे हैं । यदि गुरुत्वाकर्षण न होता तो यह गति हमें उछाल कर ब्रह्माण्ड में ऐसा फेंक दे कि फिर कभी प्रता ठिकाना ही न मिल सके ।

यदि किसी वस्तु का अपना गुरुत्वाकर्षण हो और उसका वेग पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को निरस्त कर सके तो फिर वह अनन्त ब्रह्माण्ड में कहीं भी सरलतापूर्वक आ-जा सकता है । पृथ्वी से जो रॉकिट अन्तरिक्ष में फेंके जाते हैं, उनमें भारी मात्रा में ईंधन खर्च करने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि गुरुत्वाकर्षण के दबाव से संघर्ष करते हुए वे ऊपर उठ सकें । यदि किसी यान में अपना गुरुत्वाकर्षण हो तो फिर उसकी गति अन्तरिक्षीय स्तर की होगी । तब दिल्ली से अमेरिका पहुँचने के लिए केवल पाँच मिनिट पर्याप्त होंगे । अभी तो हर यान को अन्तरिक्ष में अपनी ही शक्ति से किसी दिशा में आगे बढ़ना ही पड़ता है वह ठहर नहीं सकता । यदि ठहर जाय तो कोई न कोई ग्रह-नक्षत्र उसे अपनी आकर्षण शक्ति से पकड़कर घसीट लेगा । ठहरना उसी यान के लिए सम्भव हो सकता है जिसमें अपना गुरुत्वाकर्षण हो । यदि ऐसा कोई यान हो तो उसे पृथ्वी की पकड़ से बाहर निकलने के लिए तो थोड़ा जोर लगाना पड़ेगा । पीछे स्वतन्त्र होकर जब वह कहीं ठहरेगा तो वहाँ किसी ग्रह की आकर्षण शक्ति उसे अपनी ओर अपनी शक्ति से बुलाने लगेगी । इसका अर्थ यह हुआ कि उस यान को वहाँ तक चलना पड़ेगा, जहाँ ठहरने पर वह इच्छित ग्रह की ओर सीधा जाने लगे । बस वहाँ से वह मंजिल की ओर

चलेगा । यह कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि मंजिल उसकी ओर चलेगी । बस यात्रा तुर्त-फुर्त पूरी होगी । यह सफलता मिलने पर चन्द्रमा पर पहुँचने के लिए 'साढ़े तीन घण्टे, शुक्र के लिए ३६ घण्टे, मंगल के लिए ४८ घण्टे और वृहस्पति तक पहुँचने के लिए ६ दिन पर्याप्त होंगे । यह विलोम गुरुत्वाकर्षण की शक्ति है, उसी का विकास करने में रिलेटिविस्टिक वैलोसिटी की गहरी शोध की जा रही है । ऐलेग्जेण्डर सेवेरस्की और वर्क हार्ड हीम इस शोध के अग्रणी माने जाते हैं । विभिन्न देशों की अनुसन्धानशालाएँ इस दिशा में अनेकानेक प्रयोग परीक्षण करने में संलग्न हैं ।

लम्बे वर्षों में पूरी हो सकने वाली यात्रा के लिए यह तरीका ढूँढ़ निकाला गया है कि अन्तरिक्ष यान के रवाना होते ही 'हाइबरनेशन' प्रक्रिया द्वारा यात्री को शीतल करके गहरी निद्रा में सुला दिया जाय और जब लक्ष्य स्थान निकट आये तब स्वसंचालित प्रक्रिया उसे गर्मी पहुँचाकर जगा दे । ऐसा करने से उस यात्री पर समय का प्रभाव न पड़ेगा । वह जिस आयु का सोया था उसी आयु का शरीर लेकर जगेगा । लौटने पर भी इसी पद्धति को अपनाया जायेगा फलतः सैकड़ों वर्षों की लम्बी अन्तरिक्षीय यात्रा कर लेने पर भी वह न तो बूढ़ा होगा और न मरेगा, उसकी जवानी यथावत् बनी रहेगी ।

मनुष्य द्वारा विसर्जित मल को काई, फफूँदी अथवा खाने योग्य सब्जी के रूप में बदलना अब सरल हो गया है । त्यागे हुए मूत्र को शुद्ध करके पेय बना लिया गया है । छोड़ी हुई श्वास से विषैली वायु को प्राण वायु के रूप में पुनः बदल देने की विधि प्राप्त हो गई है । ऐसी दशा में अन्तरिक्षीय उड़ानों में अन्न, जल एवं वायु की व्यवस्था करने का भी झंझट टल गया है । ऐसी अन्तर्ग्रही भाषा तैयार करने की दिशा में काफी प्रगति हो चुकी है जिसके आधार पर रेडियो संचार द्वारा अपनी परिस्थितियों तथा जानकारियों की सूचना अन्य ग्रह निवासियों को चित्र बनाकर दिखाई बताई जा सके ।

'ब्रह्माण्डीय भाषा का स्वरूप', इस प्रश्न पर विचार करने के लिए विशेषज्ञों के दो अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके हैं । इनका कहना है कि गणित सिद्धान्तों के आधार पर ऐसी भाषा बन सकती है । गणित की आवश्यकता किसी भी लोक के निवासियों को पड़ेगी ही और उसका क्रम वही १, २, ३, ४, ५ वाला सर्वत्र होगा । वृत्त की परिधि और उसके व्यास का अनुपात एक स्थिर संख्या होती है । इसी आधार पर ऐसी भाषा बन सकती है जिसे अन्य लोक के बुद्धिमान प्राणी समझ सकें । सन् १९६१ में ड्रेक और औलिवर नामक—वैज्ञानिकों ने ऐसी भाषा की एक रूपरेखा भी तैयार की थी, यह रेडियो तरंगों पर आधारित है । हाइड्रोजन अणु से निकलने वाले विकिरण को इकाई माना गया है । इन तरंगों की लम्बाई पर १२७१ रेडियो धड़कनें भेजी जायेंगी और हर दो धड़कनों के बीच समान अन्तराल डाला जायेगा । इस आधार पर किसी भी लोकवासियों के लिए चित्र भेजे जा सकेंगे । इन आकृतियों को देखकर चित्रों के आदान-प्रदान का सिलसिला चलेगा । पृथ्वी पर भी भाषा का विकास इसी चित्र प्रक्रिया के आधार पर हुआ है । अभी भी जहाँ भाषा का आधार न मिले वहाँ चित्र बनाकर ही पृथ्वीवासी विचारों का आदान-प्रदान करते हैं । ब्रह्माण्डीय भाषा का सिलसिला भी इसी माध्यम से आरम्भ होगा ।

अन्य लोकों के साथ रेडियो सम्पर्क बनाने के लिए २१ सेमी. हाइड्रोजन बैण्ड उपयुक्त समझा गया है । स्कॉटिश वैज्ञानिकों ने सूर्य के इर्द-गिर्द एक अन्तरिक्ष यान घूमते देखा है । इसे एप्साइलॉन वाटिस तारे के निवासियों द्वारा अपने सौर-मण्डल की खोज-खबर लेने के लिए भेजा हुआ माना गया है । वैज्ञानिक इस प्रयत्न में हैं कि उससे सम्पर्क बनाकर अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान की एक नई कड़ी जोड़ी जाय ।

इन सम्भावनाओं और प्रयत्नों के देखते हुए यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में ब्रह्माण्ड में अवस्थित बुद्धिमान प्राणी परस्पर सम्पर्क स्थापित करेंगे और परस्पर आदान-प्रदान की व्यवस्था बनायेंगे । सम्भवतः वे अपने अनुभवों के आधार पर एक-दूसरे को यह बतायें कि संकीर्ण स्वार्थपरता में नहीं—सबके विशाल विस्तार में ही बुद्धिमान प्राणियों की हित साधना सम्भव है ।

अन्तरिक्षीय सहयोग की प्रयास प्रक्रिया

मनुष्य की अदम्य जिज्ञासा इस प्रयत्न में संलग्न है कि वह धरती की परिधि में ही कूप-मण्डूक की तरह सीमाबद्ध न रहकर यह जाने कि अनन्त आकाश में कहाँ क्या है ? खगोल विद्या का विकास विस्तार इसी आधार पर सम्भव हुआ है । चन्द्रमा तक मनुष्य पहुँच चुका । उसकी भूमि पर झण्डा पहुँचा चुका । वहाँ क्या है और क्या नहीं ? यह जान चुका । इस प्रयास से उसे भार हीनता में रहने—गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रवेश प्राप्त करने एवं उससे निकलने, अन्तरिक्षीय परिस्थितियाँ जानने जैसी अगणित ऐसी जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं जो धरती पर रहते हुए उपलब्ध नहीं हो सकती हैं । इस प्रयास का अभी प्रत्यक्ष लाभ कुछ बहुत बड़ा प्रतीत न होता हो पर जो ज्ञान संचय किया गया है वह भावी मानवी प्रगति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा यह निश्चित है ।

इस सुविस्तृत ब्रह्माण्ड में हम पृथ्वी निवासी ही बुद्धिमान प्राणी हों, ऐसी बात नहीं है । असंख्य ग्रह पिण्डों में अवश्य ही ऐसे लोग होंगे जहाँ मनुष्य से भी अधिक बुद्धिमान प्राणी निवास करते हों । हम जिस प्रकार अन्य ग्रहों की खोज-खबर लेने के लिए अपने मानव सहित और मानव रहित यान आये दिन भेजते रहते हैं, उसी प्रकार यह भी स्वाभाविक है कि उन विकसित ग्रह-तारकों के निवासी पृथ्वी की परिस्थितियों का पता लगाने के लिए अपने यान भेजते हों ।

कभी-कभी ऐसे यान अपने आकाश में उड़ते और उतरते देखे भी गए हैं जिन्हें पृथ्वी निवासियों ने नहीं भेजा है । वे दृष्टि भ्रम भी नहीं थे । जाँच-पड़ताल के उपरान्त उन्हें सचाई के रूप में स्वीकार किया गया है । इन यानों की उपस्थिति और उनकी हलचलों से इस विश्वास को बहुत बल मिलता है कि अन्य लोकों में भी बुद्धिमान प्राणी मौजूद हैं और वे भी हमारी ही तरह ब्रह्माण्डव्यापी परिस्थितियों को जानने एवं जहाँ बुद्धिमान प्राणी मिलें वहाँ सम्पर्क स्थापित करने के लिए उत्सुक हैं । समय-समय पर देखे गए ऐसे अन्तरिक्षीय यान जिन्हें 'उड़नतश्तरी' कहा जाता है—इस तथ्य को साक्षी रूप में परिपुष्ट करते हैं ।

जर्मनी के रॉकेट विशेषज्ञ हरमन ओवर्थ उन दिनों अमेरिकी सरकार के एक अत्यन्त गोपनीय प्रक्षेपणास्त्र शोध कार्य में संलग्न थे । उन्होंने एक भरी सभा में उड़नतश्तरियों के अस्तित्व का समर्थन ही नहीं किया वरन् यहाँ तक कह डाला कि इस सम्बन्ध में कितनी ही महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ सरकार के पास हैं । उन्होंने इसके सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला और बताया कि वे 'एप्सिलोन एरिडैनी' और 'ताओ सेटि' तारकों के किसी ग्रह से आती हैं ।

जिन्होंने सन् ३० में 'प्लूटो' ग्रह खोज निकाला था वे अन्तरिक्ष विज्ञानी क्लाइड डब्ल्यू टाम्वा पिछले दिनों अमेरिका में प्राकृतिक उपग्रहों की खोज में संलग्न थे । उन्होंने भी अपनी सार्वजनिक साक्षी देते हुए कहा था—"मैंने ही नहीं मेरी पत्नी ने भी इन्हीं आँखों से उड़नतश्तरियाँ आकाश में उड़ते देखीं ।" इंग्लैण्ड के अन्तरिक्ष विज्ञानी एच. पर्सी विल्किस ने ५० फुट व्यास की उड़नतश्तरियाँ को अपनी आँखों देखा था । विज्ञान- वेत्ता सिल्योर हेस ने कहा था उन्होंने एरिजोना क्षेत्र में एक ऐसी उड़नतश्तरी देखी जो धातु की बनी और ईंधन से चलती दिखाई देती थी ।

ब्राजील की वायु सेना ने तो एक ऐसा प्रतिवेदन सन् १९५५ में सार्वजनिक रूप से प्रकाशित कराया था जिसमें उस देश के वैज्ञानिकों द्वारा उड़नतश्तरियों के विवरण सम्बन्धी विचार निष्कर्षों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया था । कनाडा की सरकार ने ओटावा के समीप अवस्थित एक अनुसन्धानशाला द्वारा सन् १९५३ में उड़नतश्तरियों सम्बन्धी खोज कराई थी । उनके निर्देशक विल्वर्ट स्मिथ ने घोषित किया था—"उड़नतश्तरियों के अस्तित्व सम्बन्धी ठोस प्रमाण मौजूद हैं । वे किसी अन्य ग्रह से आती हैं ।" अर्जेण्टाइन के विज्ञानी ने मार्कस ग्युएकि तथा अन्य कई अफसरों ने दो उड़नतश्तरियाँ कारडोवा हवाई अड्डे के पास देखी थीं । यह वहाँ की सरकार द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति द्वारा स्पष्ट है । रूस के दो वैज्ञानिक केजैन्त्सेव और एग्रेस्त उनका अस्तित्व सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर चुके हैं ।

फ्रांस के 'रेसिस्तैन्स' पत्र में स्वीडन में अनेक लोगों द्वारा देखी गई उड़नतश्तरियों का विस्तृत विवरण अपने ११ जुलाई, १९४६ के अंक में विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया था । स्टॉक होम में ऐसी ही ज्योतियाँ देखी गईं उनका विवरण 'लामोन्द' समाचार ने 'रहस्यमय ज्योति बम' नाम देकर प्रकाशित किया था । ब्रिटेन के 'डेली मेल' ने अपना प्रतिनिधि इन समाचारों का पता लगाने भेजा, उसने स्वीडन तथा डेन्मार्क के फौजी अफसरों तक को इस चिन्ता से ग्रसित पाया कि कहीं उड़नतश्तरियाँ कोई खतरा तो उत्पन्न नहीं करने वाली हैं । इन देशों के अनेक सम्भ्रान्त नागरिक आँखों देखे विवरण को साक्षी रूप से प्रस्तुत करते हुए उड़नतश्तरियों के स्वरूप की बात स्पष्ट कर रहे थे ।

केनेथ आरनल्ड का वह विवरण अनेक पत्रों में छपा था जो उसने अपने वायुयान के निकट नौ उड़नतश्तरियों का एक जत्था आँखों से देखने के पश्चात् प्रकाशित कराया था ।

अमेरिकी सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान कराया था उसका विवरण कमाण्डर मैक्लाफलिन ने एक प्रतिवेदन के रूप में छपाया है । उसमें उन्होंने उड़नतश्तरियों को किसी अन्य ग्रह के बुद्धिमान प्राणियों द्वारा भेजा गया बताया है और उनका आकार औसत ४० फुट चौड़ा तथा १०० फुट लम्बा बताया है तथा उनकी चाल २५ हजार मील प्रति घण्टा एवं उड़ने की ऊँचाई कोई २ लाख फुट निर्धारित की ।

इस सन्दर्भ में वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन बुलाया गया था । उसमें जनरल सैमफोर्ड ने न केवल उड़नतश्तरियों के अस्तित्व को स्वीकार किया वरन् उनकी शक्ति का उल्लेख करते हुए यह भी माना कि उनमें इतनी शक्ति है जिसको हम न तो समझ पाते हैं और न नाप सकते हैं ।

सन् १९६१ में जब केप केनेडी से फोलरिस नामक रॉकेट उड़ाया गया तो राडार ने नोट किया कि उसके ऊपर किसी 'अज्ञात वस्तु' ने भयंकर झपट्टा मारा और फिर वह गायब हो गई । इस आघात ने रॉकेट के साथ वैज्ञानिकों का सम्पर्क ही तोड़ दिया । बहुत प्रयत्न करने पर १४ मिनट बाद फिर कहीं उसे ढूँढ़ा देखा जा सका । ऐसा ही एक झपट्टा इस 'अज्ञात वस्तु' ने ब्यूनस आयर्स के एजेजिया हवाई अड्डे के समीप उड़ते हुए 'पैनिग्रा डी. सी. ८' नामक जेट विमान पर मारा और उसे नियत समय पर उतरने से रोक दिया । यों सरकारी विज्ञप्ति ने इन समाचारों पर पर्दा डालने की कोशिश की पर जिन्होंने इन दृश्यों को आँखों से देखा वे उन विज्ञप्तियों को कैसे अस्वीकार करते ?

ऐसे ही और भी कई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हैं । यथा—न्यू मैक्सिको के प्रक्षेपणास्त्र अधिकारी स्टोक्स द्वारा उलामागोर्दो के निकट अपनी कार के समीप से एक भीमकाय यन्त्र को उड़ते हुए देखा जाना—१८ जून, १९६३ में कैलीफोर्निया में जेट विमानों द्वारा उड़नतश्तरी का पीछा किया जाना—केनेवरा (आस्ट्रेलिया) में एक लड़खड़ाते लाल प्रकाश पिण्ड को अनेकों द्वारा देखा जाना—लिस्वन की वेधशाला द्वारा उड़नतश्तरियों का आक्रमण नोट किया जाना, आदि-आदि ।

जन-साधारण द्वारा अनेकों बार खुले आकाश में विचरण करती हुई उड़नतश्तरियाँ देखी गई हैं । एक-दो ने नहीं वरन् असंख्यों ने उन्हें इन्हीं आँखों से देखा है । इनके समाचार समय-समय पर अखबारों में छपते रहे हैं ।

(१) पैरिस के निकट वरनान नगर के निकट अँधेरी रात में पौन घण्टे तक एक नीली रोशनी वाले प्रकाश पिण्ड का घुमड़ते रहना और उसका व्यापारी वर्नार्ड तथा दूसरे अनेकों प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा देखा जाना, (२) क्वारोबल के निकट एक उड़नतश्तरी का उतरना और उसमें से समुद्री पोशाक जैसे वस्त्रों वाले दो व्यक्तियों का निकलना, उन्हें मेरियस डिवाइल्ड का अपने साथियों सहित देखना एवं उस दृश्य के सहस्रों साक्षी मिलना, (३) लिस्वन के निकट फातिमा में और न्यूगिनी में बच्चों द्वारा छः बार देव मानवों के साथ भेंट का विवरण प्रस्तुत किया जाना, (४) पादरी विर्कर लीरिया द्वारा आकाश में किसी देवदूत का प्रकाश विमान में बैठकर आना और उसकी कैथोलिक चर्च द्वारा पुष्टि किया जाना, (५) कोइम्ब्रा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक अलमीदा गैरत द्वारा एक भयंकर अन्तरिक्षयान के गुजरने का विस्तृत वर्णन उसकी साक्षी ७०००० दर्शकों का समर्थन, (६) रेवेण्डर विलियम बूथ गिल, डॉ. के. हाउस्टन, मेजर डोनाल्ड की हो जैसे सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा आँखों देखी घटनाक्रम उड़नतश्तरियों की गतिविधियों का वर्णन, (७) कनाडा के समुद्री तट 'शाका हार्वर' पर ४ अक्टूबर, १९६७ को सहस्रों दर्शकों द्वारा एक विशालकाय अग्निपिण्ड का आकाश से उतर कर समुद्र

में प्रवेश करते हुए देखा जाना, (८) अन्तरिक्ष शोधक एंडयूब्लासम की प्रकाशित डायरी में अनेकों आकाश पिण्डों के धरती पर आवागमन के देखे गए विवरणों का संग्रह, (९) ब्रिटेन के विक्टोरिया जलयान द्वारा माल्टा के निकट तीन चमकदार उड़नतश्तरियों का समुद्र से निकलकर आकाश में उड़ जाने का विवरण उसके नाविकों द्वारा प्रकाशित कराया जाना, (१०) अमेरिकी जलपोत अलास्का का सेतल के निकट समुद्र से एक २५० फुट व्यास के पिण्ड का निकलना और आकाश में उड़ना, जहाज पर सवार विज्ञानी रॉबर्ट एस. क्राफर्ड द्वारा उसका वह विवरण बताया जाना जिसमें उस पिण्ड पर तोपें दागने की भी नाविकों ने तैयारी कर ली थी ।

ऊपर कुछ प्रमुख घटनाएँ हैं, इनके अतिरिक्त संसार के विभिन्न भागों में असंख्य लोगों द्वारा देखी गई ऐसी हजारों साक्षियाँ हैं जिनसे 'उड़नतश्तरियों' के अस्तित्व, स्वरूप एवं क्रिया-कलाप पर प्रकाश पड़ता है । यह प्रमाण इतने अधिक हैं और ऐसे लोगों के हैं जिन्हें सहज ही झुठलाया नहीं जा सकता ।

'फेट' पत्रिका में ए. मार्शल का वह प्रत्यक्ष दर्शन छपा है जिसमें उन्होंने वर्जीनिया के मैनबोरो स्थान पर एक आकाशयान को निकट से गुजरने की बात का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । लेखक एम. के. जेसप ने अपनी 'उड़नतश्तरियों की खोज' पुस्तक में उन कितनी ही घटनाओं का उल्लेख किया है जो बहुचर्चित बन चुकी हैं और जिनकी साक्षी अनेकानेक प्रत्यक्षदर्शी प्रस्तुत किए जा सकते हैं—(१) स्कॉटलैण्ड में इववनिस नगर के लोगों द्वारा रात्रि के घने अँधेरे में उछल-कूद मचाते हुए दो प्रकाश पिण्ड, (२) इटली के वेनिस नगर में रात को बादलों के बीच एक घण्टे तक दौड़-धूप करने वाले दो प्रकाश पुन्ज, (३) इंग्लैण्ड के वेल्सद्वीप पर तेज रफ्तार से चक्कर काटती हुईं दो दीप्ति धाराएँ, (४) लेनिनग्राद के जंगली नाले के निकट आँख-मिचौली खेलते हुए तीन प्रकाश-गोलक, (५) चीन सागर में ब्रिटिश जलयान कैरोलीन के कप्तान द्वारा लगातार दो घण्टे तक समुद्र में देखी गईं दो प्रकाश नौकाएँ, (६) ब्रिटिश जलयान लिएन्डर के नाविकों द्वारा समुद्र की सतह पर सात घण्टे ठना रहा प्रकाश नृत्य, (७) जान फिलिप वेसर द्वारा बताया गया उड़नतश्तरियों का क्रीड़ा विवरण आदि-आदि ।

संसार के विभिन्न क्षेत्रों में देखी गईं उड़नतश्तरियों के बारे में जब विस्तृत विवरण 'डेली मिरर' और 'न्यूयार्क टाइम्स' जैसे प्रख्यात पत्रों ने छापे तो उनकी उपेक्षा सम्भव न हो सकी । प्रक्षेपणास्त्र योजना के रियर एडमिरल डी. एस. फाहर ने और हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव के स्पीकर जॉन मैककोर मैन तक को प्रामाणिक साक्षियों पर विचार करने के बाद यह कहना पड़ा—'अन्य ग्रहों द्वारा धरती से सम्बन्ध बढ़ाने की जो हलचलें इन दिनों चल रही हैं उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ।'

उड़नतश्तरियों के अस्तित्व सम्बन्धी पक्ष-विपक्ष के प्रमाण एकत्रित करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था वाशिंगटन में गठित हुई, जिसका नाम है—'नेशनल इन्वेस्टिगेशन कमेटी एरियल फिनोमिना' इसका संक्षिप्तीकरण है—'निकैप' । इससे सम्बन्धित विषय में दखल रखने वाले विशेषज्ञों को ही सदस्य बनाया गया है । संसार भर में उनकी संख्या पाँच हजार के लगभग है । उसने जो प्रमाण सामग्री एकत्रित की है वह एक महापुराण जितनी है । इनमें से जो अधिक महत्त्वपूर्ण था उसका प्रकाशन भी हुआ है । जो नहीं छापे जा सके वे घटनाक्रम भी अपने ढंग के अनोखे हैं और उन्हें प्रस्तुत करने वाले ऐसे नहीं जिन्हें सिर फिरे अथवा गपबाज कहकर झुठलाया जा सके ।

जो साक्षियाँ इन प्रकाश पुन्ज आकाशीय पिण्डों के सम्बन्ध में प्राप्त हुई हैं, उनमें से एक चौथाई वायुसेना के ऐसे प्रतिष्ठित पदाधिकारियों की हैं, जिन्हें गपबाजी फैलाने का दोषी कदाचित् ही कोई ठहरा सके । कुछ घटनाएँ तो ऐसी हैं जिनमें उन्हीं पर मुसीबत टूटी ।

जुलाई १९४८ की बात है अमेरिका में मेडिसन विलकेन्टुकी की पुलिस को सूचना मिली कि गाडमैन हवाई अड्डे के ईर्द-गिर्द एक विशालकाय उड़नतश्तरी चक्कर काट रही है । उसका पीछा करने के लिए 'एफ. ५१' किस्म के तीन लड़ाकू विमान कप्तान थॉमस मेन्टल के नेतृत्व में उड़ाए गए । कप्तान ने आकाश में पहुँच कर रेडियो से सूचना दी, "हमें उड़नतश्तरी प्रत्यक्ष दीख रही है । उसे हमारे पीछा करने का पता चल गया है । इसलिए वह तेजी से भागने लगी है । हम भी ३६० मील की चाल से उसका पीछा कर रहे हैं १ २० हजार फुट की ऊँचाई तक उसका पीछा करेंगे यदि पकड़ में न आयी तो इसके बाद लौट पड़ेंगे ।" बाद में कप्तान के दो साथियों ने बताया कि मेन्टल का जहाज भी उड़नतश्तरी के साथ गायब हो गया । सरकार ने दो वर्ष तक इस विषय पर चुप्पी साधे रहने के पश्चात् इतना ही कहा—"मेन्टल अपना सन्तुलन खो बैठा और उसका जहाज नष्ट हो गया ।"

इसी से मिलती-जुलती २३ नवम्बर, १९५३ की वह घटना है । लेक सुपीरियर आकाश में राडार यन्त्र ने एक विशालकाय उड़नतश्तरी के चक्कर काटने की खबर दी । उसका पीछा करने किनरास हवाई अड्डे से एक एफ. ८९ जेट उड़ाया गया । संचालक था—मौन्कला विल्सन । राडार पर अंकित होता रहा कि जेट तेजी से उड़ता हुआ तश्तरी के निकट जा पहुँचा है । इसके बाद दृश्यांकन यकायक बन्द हो गया । दोनों ही गायब हो गए । जेट का मलवा उस पूरे क्षेत्र में तलाश किया गया पर कहीं कोई सुराग नहीं मिला । उस रहस्य पर पर्दा डालने के अतिरिक्त और कोई रास्ता न था ।

कप्तान विलियम ने अमेरिकी पत्रकारों के सामने बताया कि २४ फरवरी, १९५६ की रात को डी. सी. ६ यान जब पेन्सिलवेनिया से डिट्राएट की ओर उड़ता जा रहा था उसके सामने तीन उड़नतश्तरियाँ एकाकी और देर तक चक्कर काटती रहीं मानों वे जहाज का गम्भीर अध्ययन कर रही हों । इसके बाद वे एक भयंकर झटका देकर उसी अँधेरे आकाश में खो गईं जिसमें से कि प्रकट हुई थीं । इस घटना को उस क्षेत्र में उड़ते हुए अन्य हवाबाजों ने भी देखा था ।

६ नवम्बर, १९५७ को ओटावा के आकाश में वास्काटांग झील के ऊपर रात्रि के ९ बजे एक उड़नतश्तरी देखी गई । उसने उस क्षेत्र का रेडियो संचार नष्ट करके रख दिया । शॉर्ट वेव और मीडियम वेव दोनों ही बेकार हो गए । केवल किट-किट की आवाज रिसीवरों पर सुनी जाती रही । जो सम्भवतः उस उड़नतश्तरी की हरकतों की हो रही होगी । शायद वह अपने लोक को कोई सन्देश भेज रही हो । पुनः संचार तब आरम्भ हुआ जब उनका आतंक समाप्त हो गया ।

अन्तरिक्षीय यानों के धरती पर आवागमन की इन साक्षियों से हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँच सकते हैं कि इस ब्रह्माण्ड में हम मनुष्यों की अपेक्षा कहीं विकसित सम्पदाएँ मौजूद हैं। हमारे उड्डयन ज्ञान एवं साधनों की अपेक्षा वे कहीं आगे हैं। यदि ब्रह्माण्डव्यापी चेतना सत्ता पारम्परिक सहयोग के आधार पर आदान-प्रदान का द्वार खोल सके तो दूरवर्ती ग्रह-तारकों के भी निकटवर्ती पड़ौसी बनकर रहने की सुखद परिस्थितियाँ प्राप्त हो सकती हैं। विज्ञान ने इस पृथ्वी पर रहने वाले सुदूरवर्ती लोगों को यातायात साधनों के आधार पर एक गली-मुहल्ले में रहने वालों की तरह बना दिया, अब अन्तर्ग्रही सहयोग एवं आदान-प्रदान का द्वार खुलने की बारी है।

एक ओर अन्तर्ग्रही सहयोग के प्रयास और दूसरी ओर मनुष्य का अधिकाधिक संकीर्णतावादी स्वार्थपरायण बनते जाना— कैसी है यह विधि की विचित्र विडम्बना।

अगले दिनों ब्रह्माण्ड भर के प्राणी एक होंगे

101688

कई वैज्ञानिकों का अनुमान है कि ब्रह्माण्ड में कम से कम १० लाख सभ्यताएँ हमारी पृथ्वी की इस सभ्यता जैसी ही विकसित हैं।

इस सुविस्तृत ब्रह्माण्ड में पृथ्वी निवासी ही एकमेव बुद्धिमान प्राणी हो, यह बात तर्क-सम्मत नहीं प्रतीत होती।

मनुष्य चन्द्रमा तक पहुँच चुका और मंगल की भी खोज-खबर ला रहा है। मंगल में जीवन के लक्षणों की पुष्टी हुई है। यद्यपि उस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी अभी नहीं मिल सकी है। यद्यपि लावेल आदि अनेक विख्यात खगोलविदों की यह धारणा है कि मंगल ग्रह पर पृथ्वी से ज्यादा उन्नत जीवन है, सही सिद्ध नहीं हुआ है। पर यह अनुमान अवश्य है कि वहाँ ऐसे प्राणी हो सकते हैं, जिनकी जैव तत्व-रचना हमारी जैव तत्व-रचना से सर्वतः भिन्न प्रकार की होगी। अन्तरिक्षीय अभियान से संचित ज्ञान मानव-कल्याण की दिशा में प्रगति में अत्यधिक सहायक सिद्ध होगा अभी भले ही इन प्रयासों का प्रत्यक्ष लाभ कुछ न दिखाई देता हो।

जिस प्रकार अन्य ग्रहों की खोज-खबर में हमें दिलचस्पी है, स्वाभाविक ही है कि अन्य विकसित ग्रह-नक्षत्रों के सुसंस्कृत-समुन्नत निवासी उसी तरह हमारी पृथ्वी की जाँच-पड़ताल करने के लिए यहाँ अपने यान भेजें।

अब तक कई ऐसे यान अपने आकाश में उड़ते और पृथ्वी तल पर उतरते देखे-पाये गए हैं। परीक्षण के बाद इन्हें सच्चाई के रूप में स्वीकार किया गया है। इन अन्तरिक्षयानों को उड़नतश्तरी ही कहा जाता है।

सन् १९३० में 'प्लूटो' ग्रह की खोज करने वाले अन्तरिक्ष विज्ञानी क्लाइड डब्ल्यू टाम्बा ने भी पिछले दिनों कहा था—"मैंने व मेरी पत्नी ने उड़नतश्तरियाँ आकाश में उड़ती देखी हैं।" इंग्लैण्ड के अन्तरिक्ष वैज्ञानिक एच. पर्सी विल्किस ने ५०० फुट व्यास की उड़नतश्तरियाँ देखने का विवरण दिया था। वैज्ञानिक सिल्योर हेस ने एरिजोना क्षेत्र में धातु निर्मित और ईंधन चालित एक उड़नतश्तरी देखने की बात कही। जर्मनी के रॉकिट-विशेषज्ञ हरमन औवर्थ ने भी उड़नतश्तरियों के बावत महत्त्वपूर्ण जानकारियों के संचित होने की घोषणा की थी।

ब्राजील की वायुसेना द्वारा १९५५ में सार्वजनिक रूप से प्रकाशित प्रतिवेदन के अनुसार भी उड़नतश्तरियों को देखा-परखा गया था। कनाडा सरकार की ओटावा स्थित अनुसन्धानशाला के निर्देशक विल्वर्ट स्मिथ ने उड़नतश्तरियों के ठोस प्रमाण होने की बात कही थी।

अर्जेन्टीना के वैज्ञानिक मार्क्स ग्युएकी तथा कई अफसरों ने कारडोवा विमानतल दो पास दें उड़नतश्तरियाँ देखीं। दो रूसी वैज्ञानिक कैजेन्तसेव तथा एग्रेस्त भी उनके अस्तित्व की घोषणा कर चुके हैं। स्वीडन के अनेक लोगों ने उड़नतश्तरियाँ देखीं, जिनका विवरण ११ जुलाई, १९४६ के अंक में 'रेजिस्तेन्स' नामक फ्रेंच अखबार ने छापा था और स्टॉक होम के 'ल-मांद' अखबार ने भी इसके विवरण छापे थे। प्रख्यात ब्रिटिश पत्र 'डेली मेल' के प्रतिनिधि ने स्वीडन व डेन्मार्क का दौरा कर पाया कि—इन देशों में अनेक सम्भ्रान्त नागरिकों ने उड़नतश्तरियाँ प्रत्यक्ष देखी हैं तथा यहाँ के फौजी अफसर भी इस बात को लेकर चिन्तित थे कि कहीं उड़नतश्तरियों से कोई खतरा पैदा न हो।

अमरीकी कमाण्डर मैक्लाफलिन के प्रतिवेदन के अनुसार उड़नतश्तरियाँ किसी अन्य ग्रह के बुद्धिमान प्राणियों द्वारा प्रेषित विमान हैं। इनका औसत आकार ४० फुट चौड़ा और १०० फुट लम्बा पाया गया है, गति २५ हजार मील प्रति घण्टा तथा उड़ने की ऊँचाई २ लाख फुट देखी गई। अमरीकी वैज्ञानिकों के एतद् विषयक सम्मेलन में जनरल ममफोर्ड ने इन उड़नतश्तरियों को अत्यन्त शक्तिशाली निरूपित किया।

१९६१ में केपनेडी अन्तरिक्ष केन्द्र से 'पोलारिम' नामक रॉकिट उड़ने के तुरन्त बाद उस पर एक 'अज्ञात वस्तु' ने भयंकर झपट्टा मारा। यह प्रहार राडार ने नोट किया। रॉकिट का वैज्ञानिकों से सम्पर्क ही इस प्रहार के कारण टूट गया। बहुत प्रयास के बाद १४ मिनट पश्चात् उसे खोजा, देखा जा सकता। इसी तरह का एक झपट्टा ब्यूनसआयर्स के एजेजिया विमान अड्डे के पास 'पैनिग्रा डी. सी. ८' नामक जेट वायुयान पर मारा गया। सरकारी विज्ञप्ति में इन घटनाओं पर पर्दा डालने के प्रयास किए गए, पर प्रत्यक्षदर्शी तथ्य जानते ही थे। न्यून मैक्सिको के प्रक्षेपणास्त्र अधिकारी श्री स्टोक्स ने ऊलामागोर्दो के पास एक भीमकाय यन्त्र अपनी कार के पास से उड़ते हुए देखा। १८ जून, १९६३ को कैलीफोर्निया में जेट विमानों का एक उड़नतश्तरी ने पीछा किया। केनबरा (आस्ट्रेलिया) में अनेक लोगों ने एक लड़खड़ाता-सा लाल रंग का प्रकाश पिण्ड देखा, लिस्वन की वेधशाला ने एक बार उड़नतश्तरियों का आक्रमण नोट किया।

विश्व भर में उड़नतश्तरियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न पहलुओं की सत्यता की परख के लिए एक संस्था वाशिंगटन में गठित की गई—'निकैप' (नेशनल इन्वेस्टीगेशन कमेटी ऑन एरियल फिनोमिना')। इसमें इस विषय से सम्बन्धित विशिष्ट जानकारी रखने वाले दुनिया के ५ हजार व्यक्ति सदस्य हैं। इस

कमेटी ने विशाल सामग्री सम्बद्ध विषयों पर एकत्रित की है । ये प्रामाणिक विवरण हैं और हजारों प्रतिष्ठित व्यक्तियों की साक्षियाँ हैं । इनमें से मुख्य ये है—

(१) मई १९६७ में कालरैडी हवाई अड्डे के राडार ने भी उड़नतश्तरी की उड़ान की सूचना दी ।

अमेरिका सरकार द्वारा स्थापित अनुसन्धान समिति के एक सदस्य ने इन यानों की सम्भावना के समर्थन में एक पुस्तक लिखी है—'उड़नतश्तरियाँ ? हाँ ।'

'नेचर' पत्रिका में अमरीकी रेडियो खगोलवेत्ता प्रो. कोनाल्ड ब्रैसवैल का एक लेख छपा है, जिसमें यह सम्भावना सभ्यता व्यक्त की गई है कि उड़नतश्तरियाँ किसी विकसित सभ्यता वाले तारे से सूचना यान के रूप में आयी हों और यहाँ के विवरण अपने केन्द्रों को भेज रही हों । अन्तरिक्ष भौतिकी के वैज्ञानिक श्री वैलेस सलीवान ने एक पुस्तक लिखी है—'ह्वी आर नाट एलोन'—'हम अकेले नहीं' । इसमें ब्रह्माण्डव्यापी संचार साधन पर बल देते हुए एक नई 'वेवलेंथ प्रस्तुत की हैं, जो प्रकाश गति से कई गुनी तीव्र होगी । यह 'वेवलेथ' पद्धति २१ सेमी. अथवा १४२० मेगासाइकिल वेवलेंथ के रेडियो कम्पनों पर आधारित हैं । अणु-विकिरण की यह स्वाभाविक कम्पन गति है । उनके अनुसार अन्तरिक्ष संचार व्यवस्था में इसी गति को अपनाने से अन्य लोकों के प्राणियों से सम्पर्क साधा जा सकता है । हमारे लिए जो दूरी पार करनी कठिन या असम्भव लगती है, सम्भव है अन्य लोकवासी विकसित पद्धति के कारण वह दूरी सरलता से पार कर लेते हों, ऐसा श्री सलीवान का अनुमान है ।

इस धरती पर उल्लेखनीय प्रगति तो विगत तीन वर्षों में हुई है । उसके पूर्व तो हमारे यहाँ भौतिक पिछड़ापन अत्यधिक था । विचार, आदर्श और समाज व्यवस्था की दृष्टि से तो भी अभी व्यापक पिछड़ापन ही है । ऐसी स्थिति में अन्य लोकों के वे निवासी, जो सचमुच प्रगतिशील होंगे, हमारी दयनीय दशा के प्रति आकर्षित क्योंकर होंगे ? यहाँ से सम्पर्क साधने का प्रयास वे क्योंकर करेंगे ?

यह तो सम्भव है कि वे अनेक अन्य लोकों का अध्ययन करने के साथ ही इस पृथ्वी लोक की भी छान-बीन करते हों, किन्तु यहाँ के लोक-जीवन से उनके आकर्षित होने और सम्पर्क साधने की इच्छा करने की सम्भावना अत्यल्प ही है ।

उधर 'साइन्स' और 'द न्यू साइन्टिस्ट' पत्रों के स्तम्भ लेखकों का कहना है कि ये उड़नतश्तरियाँ निश्चय ही अन्य ग्रहों से आने वाले सन्देशवाहक हैं । अन्य लोकों के प्राणी भी ब्रह्माण्ड में प्रगतिशीलता के सम्बर्धन की दृष्टि से सम्पर्क के लिए उत्सुक हो सकते हैं ।

डॉ. एस. मिलर और डॉ. विलीले की मान्यता है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड में एक लाख से अधिक ग्रहपिण्डों पर प्राणियों के अस्तित्व की सम्भावना है । इनमें से सैकड़ों हम पृथ्वीवासियों से अधिक विकसित हो सकते हैं ।

अन्तरिक्ष विज्ञानी डॉ. फानवान का कथन है कि इन विशाल ब्रह्माण्ड में ऐसे प्राणियों का अस्तित्व निश्चित रूप से विद्यमान है, जो मनुष्यों से बहुत अधिक समुन्नत हैं ।

अन्य ग्रहों के निवासी मनुष्यों जैसी आकृति-प्रकृति के ही हों, यह भी कतई जरूरी नहीं । वे वनस्पति, कृमिकीटक, झाग, धुँआ जैसे भी हो सकते हैं और विशाल दैत्यों जैसे भी । हमारे पास जो इन्द्रियाँ हैं, उनसे सर्वथा भिन्न प्रकार के ज्ञान तथा कर्म साधन उनके पास हो सकते हैं ।

कैलीफोर्नियॉ के रेडियो एस्ट्रॉनामी इन्स्टीच्यूट निदेशक डॉ. रोनाल्ड एन. ब्रेस्वेल ने विभिन्न आधारों द्वारा अन्य ग्रह-तारकों में समुन्नत सभ्यताओं का अस्तित्व सिद्ध किया है और कहा है कि वे पृथ्वी से सम्पर्क स्थापित करने का सतत् प्रयास कर रहे हैं एवं इस हेतु संचार उपग्रह भेज रहे हैं । उनके अनुसार फुटबाल जैसे इन उपग्रहों में अनेक रेडियो यन्त्र कम्प्यूटर लगे रहते हैं और इनमें सचेतन जीवसत्ता भी उपस्थित रहती है । इन उपग्रहों द्वारा लिए विशेष रेडियो सन्देश भी भेजे जाते हैं । इन्हें अभी तक सुना तो गया है, पाना सम्भव नहीं हो सका है । वहरहाल उड़नतश्तरियों के संचालकों ने पृथ्वीवासियों की छेड़छाड़ को पसन्द नहीं किया है ।

दस वर्षों में १३७ उड़नतश्तरी वैज्ञानिकों को प्राण गँवाने पड़े हैं । कभी किसी विज्ञान क्षेत्र के शोधकर्त्ताओं की मृत्यु दर इतनी नहीं रही ।

अन्तरिक्ष में लेसर व क्वासर यन्त्रों की स्थापना द्वारा लोकान्तरों के संकेतों का ग्रहण-विश्लेषण तथा उन तक संकेत सम्प्रेषण का कार्य सहज हो सकता है । तब अन्तरिक्ष में विकसित सभ्यताओं का पता लगने की सम्भावना बढ़ जायेगी ।

ऐसी स्थिति में विश्व ब्रह्माण्ड के सुविकसित प्राणियों में पारस्परिक एकता एवं आत्मीयतापूर्ण आदान-प्रदान विकसित होने की सम्भावना है । तब क्षुद्र संकीर्णताओं की आपा-धापी का घटियापन स्पष्ट हो जायेगा और मात्र इसी शरीर को जीवन का रूप, सर्वत्र मानकर भौतिक सुखों के संचय एवं उपयोग की उन्मत्त दौड़ लज्जास्पद प्रतीत होगी । विश्व-बन्धुत्व का विकास होगा और विज्ञान आध्यात्मवाद से प्रभावित होगा । मनुष्य-मनुष्य के बीच स्नेह-सौहार्द के सम्बन्ध सुदृढ़ होंगे ।

अन्तर्ग्रही जीवधारियों में स्नेह, सहयोग भी बढ़ेगा

ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेक ग्रह-नक्षत्रों का अस्तित्व है जिनमें हमारे ही समान अथवा हम से भी अधिक विकसित सभ्यता वाले प्राणी निवास करते हैं । यह तथ्य अब कल्पनामात्र नहीं रहा वरन् प्रमाणों के आधार पर अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है ।

इन सुविकसित प्राणियों के साथ सम्पर्क बनाकर जीवधारिओं की समग्र चेतना को अधिक सुविकसित किया जा सकेगा और लोक-लोकान्तरों के सहयोगी आदान-प्रदान से कितना लाभ उठाया जा सकेगा उसकी मधुर कल्पना ही रोमांचित कर देती है ।

ब्रह्माण्ड में पिछड़े हुए प्राणी भी हो सकते हैं और उन्हें समुन्नत बनाने में विकसित वर्ग वाले बहुत कुछ योगदान दे सकते हैं । आवश्यक शिक्षा देने तथा प्रगति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में जब ब्रह्माण्डव्यापी सहयोग का द्वार खुलेगा तब विश्व में प्रगति और शान्ति की सम्भानाएँ अत्यधिक आगे बढ़ जायेगी ।

आज विनाश और विग्रह के साधन जुटाने में ही हमारी बुद्धिमत्ता निरत है पर वह दिन भी दूर नहीं जब उदारता और विशालता की दिशा में बढ़ते हुए विज्ञान के चरण अन्तर्ग्रहीय सहयोग की स्थापना करने न केवल विश्वमानव को वरन् ब्रह्माण्डीय चेतना को घनिष्ट एवं समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण योग देंगे ।

मास्को स्थित 'स्टर्नवर्ग राज्य ज्योति इन्स्टीट्यूट' के डॉ. निकोलाई एसो. कादर्शिव का दावा है कि "एक अत्यन्त विकसित सभ्यता का पता लगा लिया गया है ।" उन्होंने सी. टी. ए. १०२ और सी. टी. ए. २१ की दो ऐसी रेडियो संकेत धाराएँ ढूँढ़ी जिनमें एक निश्चित क्रम से उतार-चढ़ाव आता है । हर सौ दिन पर इनकी तीव्रता घटती-बढ़ती है । यह प्रेषण किन्हीं सभ्य स्तर के विकसित प्राणियों का धरती तथा अन्य ग्रहों के साथ सम्पर्क बनाने का अनवरत प्रयास है । कादर्शिव ने अपनी इस खोज को, रेडियो ज्योतिष के इतिहास में इस उपलब्धि को, महानतम कहकर पुकारा है ।

इस विराट् विश्व में जीवन तत्व की संभावना किस-किस उपग्रह पर हो सकती है । इसके लिए विभिन्न स्तर की खोंजे विभिन्न यन्त्र-उपकरणों द्वारा बहुत ही गम्भीरतापूर्वक हो रही हैं । अमेरिका की 'नेशनल रेडियो एस्ट्रोनोमी आब्जरवेटरी' द्वारा विनिर्मित ओजमा प्रोजेक्ट यन्त्र पर रेडियोटेलिस्कोप और एस्टोरेडियो सिस्टम की दोनों पद्धतियाँ काम कर रही हैं, जिनकी सहायता से ग्रह-नक्षत्रों की परिस्थितियों का क्रमिक ज्ञान सन्तोषप्रद रूप से प्राप्त होता चला जा रहा है । अब तक की उपलब्धियों से अमेरिकी वैज्ञानिक इस तथ्य को अधिक दृढ़तापूर्वक व्यक्त करने लगे हैं कि पृथ्वी जैसा न सही-किसी न किसी प्रकार का जीवन अन्य अनेक ग्रहों में भी मौजूद है ।

पोलिश खगोलवेत्ता जॉन गाडोमिस्की ने अपने अनुसन्धानों का विस्तृत विवरण 'मेनुअल ऑन स्टेलर एकोस्फियर्स' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित कराया है । उन्होंने अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि १० या ११ प्रकाशवर्ष दूरी पर स्थित कम से कम तीन ग्रह ऐसे अवश्य हैं जिनमें विकसित स्तर का जीवन विद्यमान है ।

अमेरिकी ज्योलॉजीकल सर्वे के माइक्रोबायोलॉजिस्ट डॉ. सिसलर ने पृथ्वी पर गिरी एक उल्का का अध्ययन करके यह बताया कि अमीनो, नाइट्राइड एवं हाइड्रोकार्बन जैसे पदार्थों के मूलक उनमें मौजूद है । इसी उल्का खण्ड पर कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉ. कान्बिन ने नये सिरे से शोध की । उन्होंने और भी अधिक जोरदार शब्दों में कहा कि जिस ग्रह से यह उल्का खण्ड आया वहाँ जीवन का अस्तित्व होना ही चाहिए ।

अब प्रयत्न यह किया जा रहा है कि पचास मील ऊँचा उड़ सकने वाला एक रॉकिट बनाया जाय तो अन्तरिक्ष में उड़ती हुई उल्काओं को पकड़ कर धरती पर जीती जागती स्थिति में ला सके ताकि उन उल्काओं के साथ जुड़े हुए जीवन तत्वों का अध्ययन करके यह जाना जा सके कि इस सौर-मण्डल में और उससे बाहर जीवन किस स्तर का और कहाँ है ? होता यह है कि जब कोई उल्का पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करती है तो वह तीव्र घर्षण की आग में जलकर भस्म हो जाती है । ओजो पूरी तरह जलती नहीं, उसकी भी बाहरी परत बेतरह झुलस जाती है और मध्य भाग में असाधारण रूप में परिवर्तित हो जाती है । ऐसी दशा में इस योग्य नहीं रहती कि उद्गम सम्बन्धी उपयुक्त जानकारियाँ दे सके । उपरोक्त जीवित उल्काश्म का ऊपर उल्लेख किया गया है वैसे खण्ड तो यदा-कदा ही मिलते हैं । इस कठिनाई को हल करने के लिए ही ऐसे जाल रॉकिट के निर्माण की तैयारियाँ हो रही हैं जो अन्तरिक्ष सागर में तैरती हुई उल्का मछलियों को जीवित पकड़ कर धरती पर लाने में सफल हो सकें ।

पोले आकाश में विविध रसायनों के धूलि कण ही नहीं प्रचुर परिमाण में जीवाणु भी उड़ते रहते हैं । उनमें से कुछ जो धरातल से वायु ऊपर उठाए उड़ाए जाते हैं और कुछ अन्तरिक्ष से विविध ग्रह-नक्षत्रों से उतरते-बरसते रहते हैं । इन जीवाणुओं की जीवनचर्या विचित्र है । अन्तरिक्ष में विद्यमान उड़नशील अदृश्य पदार्थों को ही वे अपनी चुम्बकीय शक्ति से उपलब्ध करके आहार का प्रयोजन पूरा करते रहते हैं और बिना युग्म संयोग के एकाकी नर-नारी की उभय पक्षी आवश्यकता पूरी करते हुए द्रुतिगति से अंश वृद्धि करते रहते हैं ।

शिकागो विश्वविद्यालय के 'एनरिको इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूलियर स्टडीज' के शोध प्राध्यापक जॉन. एच. वार्कर ने अपना निष्कर्ष व्यक्त करते हुए कहा है कि अन्य ग्रह-नक्षत्रों द्वारा हमारी पृथ्वी पर लगभग एक लाख टन अन्तरिक्ष धूलि बरसाई जाती है जिसमें में बहुमूल्य खनिज, रसायन ही नहीं ऐसे जीवाणु भी होते हैं जिन्हें धरती पर उत्पन्न हुए नहीं कहा जा सकता । वार्कर महोदय का कथन यह भी है कि स्वभावतः अपनी धरती भी अन्य ग्रह पिण्डों तक अपनी धूलि बखेरती होगी और इस धुलेड़ी में धूलि बखेरने के पारस्परिक हुड़दंग में वह भी नहीं रहती होंगी ।

ग्रह पिण्डों की दुनिया का यह धूलि मार प्रमोद ही महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकालता है । पहला यह कि ग्रह-नक्षत्रों के बीच जड़ और चेतन स्तर का आदान-प्रदान अनन्त काल से चला आ रहा है । इस प्रकार वे एक-दूसरे की भली-बुरी उपलब्धियों को परस्पर मिल-बाँटकर उपयोग करने की रीति-नीति का अनुसरण कर रहे हैं । दूसरा निष्कर्ष यह है कि जीवन अकेली पृथ्वी की ही बपोती नहीं है । जिस प्रकार के जीवधारी धरती पर रहते हैं वैसी आकृति-प्रकृति के न सही, किसी न किसी आकार-प्रकार के प्राणी इस विशाल ब्रह्माण्ड में अन्यत्र भी रहते हैं । यदि ऐसा न होता तो अन्तरिक्ष धूलि के साथ बरसने वाले ऐसे जीवाणुओं का अस्तित्व कहाँ से होता जो धरती के जीवन से भिन्न प्रकार के हैं ।

जीवशास्त्रियों का एक कथन यह भी है कि अन्तरिक्ष में उड़ते पाये जाने वाले जीवाणु भ्रमणशील आदिवासी हैं जो कहीं एक जगह नहीं टिकते । एक ग्रह पर ठहरने में इन्हें चैन नहीं पड़ता । यहाँ से वहाँ इनका अहेतुकी पर्यटन चालू रहता है और ग्रहों की दुनिया में चलते रहने वाले आकर्षण-विकर्षण की तरंगों पर सवार होकर वे करोड़ों मील की द्रुतिगामी यात्राएँ मुफ्त में और सहज में पूरी किया करते हैं ।

इसी संदर्भ में यह भी बताया गया है कि ३५ करोड़ वर्ष जब धरती बनी थी जो जीवन का उद्भव उसने अपने भीतर नहीं किया वरन् यहाँ की अनुकूल परिस्थितियों में अन्तरिक्षीय जीवाणु आकर बस गए और उनके विविध वंशजों ने क्रमशः इस समस्त लोक पर कब्जा कर लिया ।

ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, प्रोटीन प्रभृति रसायनों के सहारे ये जीवाणु तेजी से विकसित होते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप आकृति-प्रकृति के शरीर उत्पन्न करते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जीवन अमुक रसायनों की अथवा तापमानों की स्थिति तक ही सीमित हो वह धरती से भिन्न प्रकार की परिस्थितियों में भी स्थिर रह सकता है और विकसित हो सकता है । अपने सौर-मण्डल के बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून ग्रहों के धरातल का तापमान शून्य से भी १४० से लेकर २०० डिग्री सेण्टीग्रेड तक नीचे चला जाता है । उनमें मीथेन एवं अमोनिया गैस का आधिक्य है । मोटे तौर पर इन परिस्थितियों में जीवन के अस्तित्व की कल्पना हम जीवधारी नहीं कर सकते पर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अन्य ग्रहों के जीवाणु ऐसे भी हो सकते हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों में जीवित रह सकने के अभ्यस्त हो गए हों । इतनी बड़ी मात्रा में उपरोक्त ग्रहों में मीथेन और अमोनिया गैसें क्यों कर उत्पन्न हो गईं ? इसका उत्तर देते हुए वैज्ञानिक एक ही बात कहते हैं कि इन गैसों का उद्भव जीवधारियों की हलचलों के बिना नहीं हो सकता । अस्तु वहाँ जीवन भले ही किसी भी स्तर का क्यों न हो, होगा अवश्य ।

प्लेटो ग्रह में हाइड्रोजन, हीलियम और निओन गैस की प्रधानता है तथा तापमान शून्य से नीचे ४०० डिग्री फारेनहाइट है । शुक्रग्रह का धरातल कार्बन डाईऑक्साइड से भरा है और तापमान १०० डिग्री सेन्टीग्रेट से ऊपर है । अमरीकी खगोलवेत्ता ह्विपल और मेंजेल की खोज के अनुसार इस स्थिति में भी वहाँ जीवन के लक्षण विद्यमान हैं ।

चन्द्र यात्री यन्त्र और व्यक्ति जो सूचनाएँ लेकर आये हैं उनसे पता चला है कि दिन में वहाँ तापमान १३४ डिग्री ग्रेड और रात को १५३ सेन्टीग्रेड रहता है । पृथ्वी पर २७३ डिग्री सेण्टीग्रेड नीचे तापमान तक में जीवाणु जीवित रह सकते हैं । ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि चन्द्रमा अथवा वैसे ही ग्रहों पर जीवाणुओं का अस्तित्व सम्भव न हो ।

अधिक शीत या अधिक गर्मी में भी जीवन तत्व का अस्तित्व सम्भव हो सकता है । प्राणधारी किसी भी जटिल परिस्थिति में निर्वाह कर सकने में समर्थ हैं यह तथ्य अब वैज्ञानिक खोज के लिए नया आधार मिला है और यह समझा जा रहा है कि प्रकृति के हर अवरोध को सहन कर सकने में जीवन सत्ता समर्थ है तो कोई कारण नहीं कि अति शीतल और अति उष्ण समझे जाने वाले ग्रह-तारकों में जीवधारियों का निवास न हो ।

आवश्यक नहीं कि अन्य ग्रहों के निवासी मनुष्य जैसी ही आकृति-प्रकृति के हों । वहाँ की मिट्टी और परिस्थिति जैसी भी होगी वैसे ही उनके शरीर बन गए होंगे, वैसे ही आहार-विहार के अभ्यस्त बने होंगे । इतने पर भी जीव का स्वाभाविक गुण चिन्तन और विकास उनमें अवश्य ही विद्यमान रहा होगा । चेतना का स्वभाव विकासोन्मुख होता है । विकसित चिन्तन विकसित परिस्थितियाँ भी उत्पन्न कर सकता है । यह ऐसे मूलभूत आधार हैं जिनको सामने रखने से उस आशा की चमक बढ़ती ही चली जा रही है कि अंतरग्रही जीवन का अस्तित्व विद्यमान है और इसे पारस्परिक सहयोग से अधिक शीघ्र और अधिक मात्रा में विकासोन्मुख बनाया जा सकता है ।

वह दिन कितना सुखद होगा जब विश्व मानव की सुखद सम्भावनाओं को ही कार्यान्वित करने तक सीमित न रहेंगे वरन् ब्रह्माण्ड जीवन को स्नेह सहयोग से सींचकर, विसंगठित बिखरे हुए जीवन को एकता के सूत्र में बाँधकर, स्वर्गीय सम्भावनाओं को साकार कर सकने में समर्थ होंगे ।

ऊँट के नीचे पहाड़

इस युग में जब भी कोई नई मान्यता, नूतन दर्शन और विचारधारा फैलाई जाती है तब पूर्व मान्यताओं को चुनौती देने की परम्परा बन गई है । पंचतत्वों से भी ऊपर चेतन परमाणु तक की भी आण्विक संरचना, प्रकाश, अग्नि और वरुण (पानी) की गति, स्थिति और उसके प्रयोग पर प्रकाश डालने वाली वैदिक ऋचाओं को गप्प माना जाने लगा है । पूर्वजों को आदिवासी सभ्यता का अंग बताया जाता है । अब तो तथाकथित बुद्धिवाद इस सीमा तक उद्धत हो चला कि रामायण और महाभारत को भी इस आधार पर काल्पनिक ठहराया जाने लगा है कि उसमें वर्णित इतिहास असम्भव से भी असम्भव है । यह कि उस युग के मानव का बौद्धिक स्तर इस योग्य था ही नहीं कि वह कोई चमत्कारिक कार्य कर सकता ।

सच पूछा जाय तो बौद्धिक दृष्टि, विज्ञान, तकनीक, उद्योग, वाणिज्य, वास्तुकला, स्थापत्य, विमान आदि समस्त क्षेत्रों में जैसी प्रगति प्राचीन काल में हुई वैसी स्थिति तक पहुँचने में आधुनिक विज्ञान को कई शताब्दियाँ लग जायेंगी । 'चैरियट्स ऑफ गॉड्स' नामक पुस्तक में सुप्रसिद्ध जर्मन इतिहासवेत्ता डॉ. एरिचवान डनिकेन ने सारे संसार का पर्यटन किया और उन तथ्यों का संग्रहण संकलन किया जिन्हें इस युग में आश्चर्य की संज्ञा दी जाती है । इस अध्ययन का निष्कर्ष विद्वान् लेखक ने भी इसी तरह के शब्दों में निकाला है और लिखा है जहाँ से हमारा इतिहास लिखा गया है उसके पूर्व वैदिक युग की सभ्यता, संस्कृति और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आज की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक थीं । हमारे पूर्वजों की शक्ति, सामर्थ्य, बौद्धिक और आत्मिक क्षमताएँ ऐसी थीं जिनका वर्णन कर सकना भी असम्भव है । उस युग का तकनीकी ज्ञान भी अब से किसी भी स्थिति में कम न था ।

मिस्र के पिरामिडों को ही लें । यदि उस युग में विज्ञान और तकनीक का विकास नहीं था तो मिस्र में यह पिरामिड, बड़े-बड़े शहर, मन्दिर, मूर्तियाँ, सड़कें, पानी निकास की नालियाँ, चट्टानें काट कर बनाये गए मकबरे और भयंकर आकार-प्रकार के पिरामिड्स कहाँ से आ गए । इन सबका कोई पूर्व इतिहास नहीं मिलता इसका अर्थ मिस्र के विशेषज्ञ भी यह निकालते हैं कि तब इस तरह की क्षमताएँ सामान्य बात रही होंगी किसी ने उस सभ्यता के विनाश और भविष्य में परिघटित मानवीय सामर्थ्यों की कल्पना ही न की होगी इसीलिए सम्भवतः वह इतिहास लिखने के आदी नहीं रहे । एक कल्पना यह भी है कि किसी भयंकर युद्ध (महाभारत के समान), जिसमें अणु आयुध भी प्रयुक्त हुए हों, रेडियो धर्मिता, जल प्रलय, हिम प्रलय, भूस्खलन या ज्वालामुखियों ने उस सभ्यता और उसके इतिहास को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया हो । जहाँ-तहाँ जो सामग्री बच गई वही आज पुरातत्व अवशेषों में देखी जाती है ।

तत्कालीन शारीरिक क्षमता, बुद्धिमत्ता, कला-कौशल के प्रतीक के रूप 'च्योप्स के पिरामिड' को लिया जा सकता है। जहाँ यह पिरामिड बना है वह स्थान अत्यधिक ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र है, उसे समतल बनाने में ही भयंकर परिश्रम करना पड़ा होगा फिर यही स्थान क्यों चुना गया ? इसे प्रागैतिहासिक युग की सूक्ष्मतम बौद्धिक सामर्थ्य का प्रतीक कह सकते हैं। यह स्थान महाद्वीपों तथा समुद्रों को ठीक दो बराबर-बराबर भागों में विभक्त करता है। स्पष्ट है यह कार्य न तो सागर नापकर किया जा सकता है और न ही धरती। तो फिर बहुत सुधरे किस्म के यन्त्रों से प्राप्त जानकारियों को गणित में बदल कर स्थान ज्ञात किया गया होगा। यह स्थान गुरुत्वाकर्षण शक्ति के बिल्कुल मध्य में जो है जो यह दर्शाता है कि तब के लोग नक्षत्र विद्या में भी पारंगत थे। चुम्बकीय-बलों से अच्छी तरह परिचित थे।

च्योप्स के इस दैत्याकार पिरामिड में २६ लाख पत्थर के सुन्दर डिजाइन किए हुए पत्थर लगे हैं। इनकी फिटिंग इतनी साफ है कि दो पत्थरों के बीच की अधिकतम झिरी १/१००० इंच से भी कम अर्थात् नहीं के बराबर है। इसमें जो गैलरी है उसकी दीवारें सुन्दर रंगों से पेंट की हुई हैं। १ ब्लॉक पत्थर का वजन १२ टन का है। आज के स्तर से हिसाब लगाया जाय तो प्रतिदिन अधिक से अधिक दस पत्थर-ब्लॉक ही चढ़ाये जा सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि २६ लाख पत्थर २ लाख ६० हजार दिनों में अर्थात् ७१२ वर्षों में उसका निर्माण सम्भव है जब कि पिरामिड में उसके एक ही निर्माता का नाम 'फाराह खुफू' अंकित है।

इस विशाल निर्माण पर आश्चर्य कर लेना एक बात हुई, पर विचारक को तो तब तक सन्तोष नहीं जब तक वस्तुस्थिति की समीक्षा न हो। इस आश्चर्य के पीछे निम्नांकित प्रश्न उभरते हैं और आज के बौद्धिक दम्भ से उसका समाधान चाहते हैं—

(१) १२ टन के पत्थर बनाने के लिए खान से कम से कम १५ टन भार के पत्थर तो निकाले ही गए हैं, यदि उस समय डायनामाइट जैसे तत्व और उपकरण न थे तो इतने भारी वजन के ब्लॉक खानों से निकालना कैसे सम्भव हुआ ?

(२) यह पिरामिड काहिरा और अलेक्जेण्ड्रिया के मध्य बने हैं। गाड़ी व घोड़ों का प्रचलन भी सन् १६०० ई. में माना जाता है। फिर यह भारी पत्थर बिना किसी संशक्त यातायात साधन के खान से पिरामिड क्षेत्र तक ढोए कैसे गए ?

(३) मिस्र रेगिस्तानी प्रदेश है जहाँ ताड़ वृक्षों के अतिरिक्त और कोई लकड़ियाँ उपलब्ध नहीं। इतने भारी भार के पत्थर सिवाय रोलर्स से और किसी तरह स्थानान्तरित नहीं हो सकते। इतने बड़े कार्य के लिए इतने रोलर कहाँ से आये ? ताड़ वृक्ष वहाँ के निवासियों का मुख्य आहार-आधार है, वे उसे काट नहीं सकते फिर क्या यह रोलर समुद्री मार्ग से आयात किए गए ? यदि ऐसा हुआ तो क्या तब जलयान नहीं थे ?

(४) अरब विशेषज्ञों ने इन पिरामिडों, भूमिगत शहरी खण्डहरों और इन पिरामिडों के निर्माण में लगी जन-शक्ति का अनुमान करते हुए अरब की जनसंख्या ५ करोड़ निश्चित की है जब कि वहाँ नील डेल्टे के दाएँ-बाएँ बाजू का ही एकमात्र क्षेत्र कृषि की उपज के योग्य है। सो भी अधिकांश नील ही वहाँ पैदा की जाती है। आज से ५००० वर्ष पूर्व समूचे विश्व की आबादी २ करोड़ अनुमानित की गई है। फिर उससे पूर्व यह ५ करोड़ आबादी अकेले मिस्र में कहाँ से आ गई ? उनके भोजन की व्यवस्था क्या पड़ौस देशों से होती थी ?

(५) उस युग में विद्युत नहीं थी, टार्च नहीं थे, जबकि पिरामिड की सैकड़ों फीट लम्बी सुरंगों की विधिवत् रंगाई-पुताई हुई है। मशालों से वहाँ के मजदूरों का दम घुट सकता था। दीवारें काली हो सकती थीं अतएव उनका प्रयोग कदापि न होने की बात एक स्वर से पुरातत्ववेत्ता भी स्वीकार करते हैं। फिर इस प्रकाश की व्यवस्था कैसे हुई ?

(६) पत्थरों की इतनी अच्छी कटाई कैसे हुई कि दो पत्थर जोड़ने पर झिरी १/१००० इंच से भी कम अर्थात् हर पत्थर एक-दूसरे से चिपक कर बैठा हो ?

इस युग को विज्ञान और तकनीक का युग कहते हैं, वजन उठाने वाली अच्छी से अच्छी क्रेनें, सामान ढोने के लिए यातायात के साधन, उन्नत निर्माण यन्त्र, अच्छी से अच्छी इंजीनियरी जो भाखड़ा जैसे बाँध विनिर्मित कर सके, पर यह पिरामिड उन्नत विज्ञान के भी वश की बात नहीं ? तब फिर यह आश्चर्यजनक रचना सम्भव कैसे हुई ? एक ही उत्तर मिलेगा तब के लोग आज के लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक सशक्त समर्थ, बुद्धिमान और हर क्षेत्र में विकसित थे। तब न केवल समुद्री भागों से अपितु वायुमार्गों से भी विमान चलते थे, इसके पुष्ट प्रमाण हैं। भारद्वाज संहिता का 'वैमानिक प्रकरण', जिसमें विमान की विकसित तकनीक का वर्णन है, वह तो प्रमाण है ही, पुरातत्व विभाग ने वह स्थल भी खोजे हैं जो आज की अपेक्षा अधिक सुरक्षित 'एरोड्रम' तथा 'हवाई पट्टी' के रूप में प्रयुक्त होते थे।

दमिश्क की 'टैरेस ऑफ बाल बैक' जोकि छत पर बना एक सुन्दर प्लेटफार्म है। यह स्थापत्य कला का भी एक आश्चर्य है इसमें ६५-६५ फुट और २००० टन तक के पत्थर प्रयुक्त हुए हैं। इतना वजन या तो इलेक्ट्रॉन शक्ति चालित क्रेन उठा सकती है या फिर हनुमान जैसे प्रचण्ड बलधारी महापुरुष जो सुमेरु को उठाने में भी सक्षम रहे थे। दोनों में से कोई बात हो, पहाड़ ऊँट के नीचे नहीं आता, ऊँट ही पहाड़ के नीचे आता है। आज का मनुष्य उस ऊँट की तरह है जो यह समझता है हमसे ऊँचा कोई है ही नहीं, जब वह इस तरह के पहाड़ों के समीप से गुजरता है तब कहीं दर्प चूर होता है और यह मानने को विवश होना पड़ता है कि आत्मिक, आध्यात्मिक, धार्मिक दृष्टि से समुन्नत होकर भौतिक उपलब्धियाँ न केवल विकसित की जा सकती हैं अपितु उनका यथार्थ और मनुष्य जीवन के लिए हितकारक उपभोग भी तभी सम्भव है। अकेला विज्ञान उस शेर की तरह है जो शक्तिशाली तो है, पर उसकी नर-भक्षी नीति विश्व सभ्यता के विनाश का ही कारण बनती जा रही है।

'टेरेस ऑफ बाल बैक' के प्रति अपना विश्वास व्यक्त करते हुए रसियन विद्वान अगरेस्ट का भी अनुमान है कि निश्चित ही यह अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा था जहाँ दूसरे देशों के भी जहाज आते जाते थे। टिहानको की कृत्रिम पहाड़ी छत भी इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। ४७८४ वर्ग क्षेत्र में पूरी पहाड़ी को इस तरह समतल बनाया गया है कि उसमें एक सूत भी ऊँचाई-निचाई का अन्तर नहीं मिलता।

टिहानको नगर सुमेरिन सभ्यता का वैसा ही विकसित अंग माना जाता है जैसे सिन्धु घाटी के 'हड़प्पा व मोहिन जोदड़ो' । सबके अधिक उन्नति राजा 'कुमुन्दजित' के समय में हुई । 'सुमेरु' से बना शब्द सुमेरियन तथा 'कुयुन्दजित' से 'कुमुन्दजित' दोनों ही स्पष्टतः भारतीय नाम हैं और इस बात के प्रमाण हैं कि विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में भारत विश्व शिरोमणि था। अन्य देशो को यहाँ से न केवल बौद्धिक प्रशिक्षण तथा मार्ग-दर्शन मिलता था अपितु आत्म-विद्या के साथ-साथ भवन निर्माण, कलाकारी, विमान विद्या, कृषि और वाणिज्य, भाषा, साहित्य और गणित आदि पढ़ने यहाँ संसार भर के लोग आते थे ।

पश्चिमी विद्वान 'ग्रीक' सभ्यता को अति प्राचीन बताते हैं । इतिहास पूर्व युग में वहाँ संख्या की दृष्टि से १०००० सबसे बड़ी संख्या प्रयुक्त होती थी, इसके बाद से अनन्त शब्द प्रयुक्त होता था जबकि कुमुन्दजित पहाड़ी पर एक गणना अंकित है जिस पर १९५९५५२०००००००० संख्या अंकित है । यह संख्या किसलिए लिखी गई, किस तरह किसलिए निकाली गई, यह तो ज्ञात नहीं, पर इतना स्पष्ट है कि इतनी बड़ी संख्या या तो किन्हीं ग्रह-नक्षत्रों की दूरी ज्ञात करने के लिए निकाली गई होगी, तब फिर गणित के क्षेत्र में आज से ऊँची स्थिति का अनुमान स्वाभाविक है । भारत से जहाँ भी सभ्यताएँ गईं यह तथ्य सर्वत्र विद्यमान हैं । अम्पीरियन सम्राट असुर बनीपाल के पुस्तकालय में बहुत बढ़िया किस्म की मिट्टी से बनाई गई १२ टिकियों में पूरा एक ग्रन्थ अंकित है । इसमें भावनाओं की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति का प्रमाण है । उसकी प्रतिलिपि एकेडियन लिपि में 'हमुराबी राजा' के संग्रहालय में भी मिली है । इसका अर्थ यह हुआ कि उस युग में भाषा, गणित और इतिहास की शोधें, उनका प्रकाशन भी होता था अपितु वह प्रयत्न भी किए जाते थे जिनसे विद्या का सर्वत्र प्रसार होता था ।

पुरातत्व की यह शोध सामग्री, यह आश्चर्यजनक निर्माण और उपलब्धियाँ निःसन्देह इस बात के प्रमाण हैं कि हमारे पूर्वज किसी भी क्षेत्र में हमसे कम नहीं थे । विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, आवास-निर्माण, विज्ञान तकनीक, शरीर स्वास्थ्य, विमानन, वाणिज्य, कृषि आदि में उनकी उपलब्धियाँ हमारी अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी थीं फिर भी उनका मूल ध्येय आत्म-निर्माण जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति था । आज स्थिति उल्टी है आत्म-तत्व की शोध के लिए जब कि विराट् ज्ञान उपलब्ध है तब वह भौतिक साधनों की मृग-मरीचिका में भटक गया है फिर भी स्वयं को सही तथा पूर्वजों को पिछड़ा हुआ मानने के दम्भ पर उसे लज्जा भी नहीं आती ।

अद्भुत इमारतें और रहस्यमय सुरंग

इन विचार ने कि मनुष्य क्रमशः अपनी बुद्धि और सभ्यता का विकास करते हुए वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है, आधुनिक विचारकों के मन में एक भ्रम और मिथ्या अहंकार पैदा कर दिया है । भ्रम यह है कि हम अपने पूर्वजों से कहीं अधिक उन्नत हैं, श्रेष्ठ हैं और अहंकार यह कि हमने जितनी प्रगति की है उतनी कभी भी किसी भी काल में किसी समाज ने नहीं की ।

सामाजिक सन्दर्भ में प्रगति या विकास कोई वृक्ष नहीं है जो धीरे-धीरे अंकुरित हो, बढ़े और फले-फूले । समाज की तुलना तो उस वन से की जानी चाहिए जिसमें हजारों वृक्ष होते हैं, लाखों अंकुर होते हैं और करोड़ों बीज होते हैं । सभी बीज, अंकुर या वृक्ष अपनी अलग-अलग ऊँचाइयाँ तय करते हैं और एक समुदाय का स्वरूप बनाते हैं । समाज में रहने वाले व्यक्तियों के बौद्धिक स्तर में अन्तर हो सकता है, परन्तु औसत दृष्टि से कोई समाज कभी आज की तुलना में पिछड़ा या अविकसित नहीं रहा होगा । अधुनातन शोधों और पुरातत्व के मिले प्रमाणों के आधार पर इतिहासकारों को भी यह मानना पड़ रहा है । कईयों का तो कहना है कि हो सकता है मनुष्य समाज आज की तुलना में पहले कभी बहुत अधिक विकसित रहा हो । यह बात और है कि उस युग की दिशाओं तथा प्रवृत्तियों की भिन्न रही हों ।

दिशाओं और प्रवृत्तियों की भिन्नता का अन्तर तो यों भी समझा जा सकता है । आधुनिक समाज की प्रगति दिशा तकनीकी कही जा सकती है । एक से एक विस्मयकारी और मनुष्य के श्रम को बचाने वाले यन्त्र इन दिनों बन रहे हैं । किसी युग में मनुष्य ने आत्मिक दिशा पकड़ी हो और सुखशान्ति, आनन्द, आह्लाद, प्रसन्नता की दृष्टि से वह आज की तुलना में कहीं अधिक विकसित रहा हो । किसी युग में मनुष्य अपने शरीर को बलिष्ठ पुष्ट बनाने में ही प्रवृत्त रहा हो ।

इन प्रकार दिशाएँ और प्रवृत्तियाँ भिन्न हो सकती हैं किन्तु इस भिन्नता को पिछड़ापन नहीं कहा जाना चाहिए । यदि यान्त्रिक प्रगति के आधार पर हम पिछली पीढ़ियों को पिछड़ी, अविकसित मानते हैं तो कई दृष्टियों से वर्तमान सभ्यता पुरातन युग से बहुत पिछड़ी है । उदाहरण के लिए सेक्साह्यमन में स्थित इनके किले की तुलना की कोई भी इमारत आज तक संसार में नहीं है । इस किले की दीवारें १८ फीट ऊँची हैं और छत की दीवारें ५५ फीट ऊँची तथा १५०० फीट लम्बी हैं । इस छत को स्थिर रखने के लिए नीचे कोई खम्भे नहीं लगाये गए हैं जबकि उसमें एक-एक पत्थर सौ टन वजन तक का है ।

इनका किले से करीब आधा मील दूर ११४८० फीट की ऊँचाई पर विशालकाय पत्थरों का एक ब्लॉक बना हुआ है । यह ब्लॉक इतनी ऊँचाई पर स्थित है कि चढ़ते-चढ़ते साँस फूलने लगती है परन्तु ब्लॉक में ७ से ११ फीट की लम्बाई-चौड़ाई वाले समकोण पत्थर प्रयुक्त किए गए हैं । बताया जाता है कि यह इमारत ३३ फीट ऊँची और ५४ फीट चौड़ी चट्टान को काटकर बनाई गई है । ३६ फीट ऊँची यह इमारत इतनी भव्य और सुन्दर है कि लगता है अभी ही इसका निर्माण हुआ है । संसार भर के वास्तुकलाविद् करीब दो हजार वर्ष पूर्व बने इनके किले और उसके पास स्थित इस इमारत को देखकर दंग रह जाते हैं ।

आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्व में कोई १५०० हजार द्वीप हैं । इन द्वीपों के मध्य में सबसे बड़ा द्वीप है 'पोनापे', जिसका क्षेत्रफल १८३ वर्गमील है । पोनापे की स्थिति इस प्रकार है कि वहाँ कोई भी वजनी चीज ले जाना आसान नहीं है और न ही वहाँ कोई इमारती सामान पैदा किया जाना सम्भव ही है, परन्तु पोनापे में एक विशाल खण्डहर मिला है जो काफी बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है । आश्चर्य किया जाता है कि इतने बड़े भवन को उस युग में जब मानव सभ्यता का शैशवकाल ही बताया जाता है, किसने और कैसे इन भवनों का निर्माण कराया होगा । जो खण्डहर मिले हैं उनकी दीवारें अभी भी १२५ फुट ऊँची हैं और उसमें लगे

कई पत्थर दस टन वजन के हैं । २५८० फीट लम्बी इस इमारत में १२ से १७ फुट तक के कई ब्लॉक हैं । उस जमाने में जबकि न तो यातायात के इतने प्रचुर साधन थे और न ही इस वीरान उजाड़ टापू में लोग बसते थे । किसने और किसलिए इन भवनों का निर्माण कराया होगा ? इमारत जितने बड़े क्षेत्र में फैली हुई है उसे यदि आज के समय में बनवाया जाय तो बताया जाता है कि इतनी बड़ी इतनी मजबूत और सुन्दर इमारत, करीब ३०० वर्षों में ही बन सकती है ।

एरिकवान डेनिकेन ने अपनी पुस्तक—'दि गोल्ड ऑफ दि गॉड्स' में कुछ ऐसी सुरंगों का उल्लेख किया है जो साउथ अमेरिका में स्थित हैं और हजारों मील लम्बी हैं । ये सुरंगें कहाँ से कहाँ तक गई हैं इसका कोई पता नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि ये देखने में जितनी सुन्दर हैं अन्दर जाने पर उतनी ही भयावनी भी लगती हैं ।

फिर भी पेरू और इप्रयोग में सैकड़ों मील तक इन सुरंगों के भीतर खोजी दल जा चुके हैं । इसके बाद भी इनका अन्त नहीं आया और न ही यह पता चल सका कि उनके बनाने का ध्येय क्या था । कुछ सौ मील, तक जहाँ कि खोजी दल ने यात्रा की, बीच-बीच में कई बाहरी द्वार देखे । इतना ही नहीं सुरंगों के नीचे २५० और ५०० फुट नीचे भी दोहरी तिहरी अन्तरंग सुरंगें भी देखी गईं ।

सुरंगों की दीवारों पर विभिन्न रंगों में अलग-अलग चित्र बनाये गए थे । पत्थरों पर खोदे गए अथवा धातुओं की प्लेटों से विनिर्मित इन चित्रों का निर्माण किन्हीं उद्देश्यपूर्ण प्रयोजनों के लिए किया गया लगता है । धातु प्लेटों पर इतने संकेत लिखे हुए हैं कि सुरंग की जितनी यात्रा की जा सकी, उस भाग के संकेतों को ही संकलित किया जाय तो एक विशाल लाइब्रेरी बन सकती है । एक खोजी दल, जिसमें एरिचवान डेनीकेन भी सम्मिलित थे, उन सुरंगों में गए तो दल के सभी सदस्यों ने बड़े विचित्र अनुभव किए । डेनीकेन ने लिखा है कि—"हम लोग अपने हेलमेट पर जो बैट्री लगाकर गए थे वह सुरंग में घुसते ही बुझ जाती थी । एकाध व्यक्ति की बैट्री खराब भी हो सकती है पर सभी यात्रियों की बैट्रियाँ खराब हो गई हों ऐसा नहीं कहा जा सकता । वस्तुतः ऐसा सुरंग के भीतर होने वाली रेडिएशन प्रक्रिया के कारण होता था ।"

"सुरंग के जिस भाग की हमने यात्रा की उसकी दीवारें बेहद चिकनी थीं—मानो संगमरमर की बनी हुई हों । कहीं-कहीं दीवारों में पॉलिश जैसी चमक सी थी । छतों पर ऐसी प्लेट्स लगी हुई थीं कि उन्हें उकेरने में सदियाँ लगी हों ऐसा आभास होता था । इन सुरंगों में एक बात बहुत ही विचित्र देखने में आयी, वहाँ न विद्युत यन्त्र काम कर रहे थे और न ही कोई चुम्बकीय यन्त्र । यहाँ तक कि दिशाओं का ज्ञान कराने वाला कुतुबनुमा भी बन्द हो गया था । दीवारों पर खुदे हुए चित्रों का हम फोटोग्राफ भी नहीं ले सके क्योंकि वहाँ हमारे कैमरे भी काम नहीं कर रहे थे ।"

"सुरंग के बगल में कहीं-कहीं कमरेनुमा गैलरियाँ भी थीं । कहीं-कहीं बहुत बड़े कमरे थे जिन्हें हाल कहना ही ज्यादा उपयुक्त होगा । ऐसे एक हाल को हमने नापा तो उसकी लम्बाई १८३ गज तथा चौड़ाई १६४ गज थी । इन कमरों का क्या उपयोग होता होगा अनुमान लगाना कठिन है । इतने बड़े हाल में १२-१३ हजार व्यक्ति आसानी से बैठ सकते हैं ।"

ऐसे ही एक छोटे हाल में हमने एक नरकंकाल पड़ा देखा । उस कमरे में प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी फिर भी कमरे में अन्धकार नहीं था । लगता था प्रकाश दीवारों से आ रहा था । नरकंकाल इस ढंग से रखा हुआ था जैसे किसी मेडिकल कॉलेज की प्रयोगशाला में छात्रों को पढ़ाने के लिए रखा जाता हो । इन गैलरियों के निर्माण का भी कोई उद्देश्य या रहस्य मानवी समझ से परे था ।"

"कुछ कमरों में हमने पत्थर से बनी मेज-कुर्सियाँ भी देखीं । हालाँकि देखने में वे सनमाइका की तरह चिकनी और चमकदार लगती थीं, पर छूने या उठाने पर पत्थर अथवा पत्थर जैसी ही किसी धातु की बनी प्रतीत होती हैं । इतनी वजनदार कुर्सियों को कहाँ बनाया गया होगा तथा वहाँ किस प्रकार लगाया गया होगा—हम इसका भी कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं खोज सके । कुर्सियों के पीछे दीवारों पर कई तरह के चित्र बने हुए थे । इन चित्रों के समान सुन्दर चित्र मैंने तो अपनी जिन्दगी में कहीं नहीं देखे । गोह, हाथी, शेर, घड़ियाल, ऊँट, रीछ, बन्दर, मुँह पर सींग वाला भैंसा, भेड़िया तथा घोंघा आदि जानवरों के सजीव चित्र वहाँ बने हुए थे ।"

"एक हॉल में हमने सोने, चाँदी, पीतल आदि धातुओं के करीब ३ हजार पतरे देखे, जिनकी मोटाई लगभग १ मिलीमीटर रही होगी । इन पतरों का आकार ३२ इंच लम्बा तथा १६ इंच चौड़ा था । एक ही साइज में बने-कटे इन पतरों पर किसी पुरानी भाषा में कुछ लिखा हुआ था जिन्हें हम स्पष्ट देख तो सकते थे पर उन्हें पढ़ नहीं सकते थे क्योंकि उस तरह की लिपि हमने कहीं नहीं देखी । किन्हीं-किन्हीं पतरों पर चित्र भी बने हुए थे । ऐसे एक चित्र में हमने गोलाकार पृथ्वी पर खड़ी मानव आकृति का चित्र भी देखा ।"

ऐरिकवान डिनीकेन ने अपनी पुस्तक में इन सुरंगों का विस्तृत विवरण लिखा है और प्रश्न उठाया है कि इनका निर्माण पिछले दो-चार सौ या पाँच-सात सौ वर्षों के भीतर नहीं हुआ है—यह तो तय है । यह किसी ऐसे युग में बनाई गई लगती हैं जबकि किन्हीं निर्माणों का इतिहास रखने की परम्परा न रही हो अथवा जब तक का इतिहास हमारे पास उपलब्ध है उससे पहले इनका निर्माण हुआ हो और इसके बाद की वह कड़ी लुप्त हो गई हो जिससे कि इन सुरंगों का उपयोग और उद्देश्य जाना समझा जा सके ।

दक्षिण अमेरिका के ही ग्वाटेमाला द्वीप समूह के यूकेटन जंगलों में प्राप्त खण्डहरों इजिप्ट की विशाल इमारतों के खण्डहर के समान हैं । इस क्षेत्र में पिरामिड भी पाये जाते हैं जो ठीक मिस्र के पिरामिडों की तरह हैं । इन पिरामिडों को बहुत भारी चट्टानों से बनाया गया । चट्टानों को जोड़ने के लिए किसी मसाले का उपयोग नहीं किया गया, लगता है फिर भी एक चट्टान के ऊपर दूसरी चट्टान इस ढंग से जमी हुई है कि उनके बीच कहीं भी जोड़ नहीं दिखाई देता । बहुत ध्यानपूर्वक देखने पर एक हल्की सी बाल बराबर रेखा भर दिखाई देती है । किसने की होगी इन चट्टानों की इतनी बारीक और सूक्ष्म घिसाई तथा एक चट्टान के ऊपर दूसरी चट्टान को किस प्रकार जमाया होगा ?

मैक्सिको के पास ८ वर्ग मील के क्षेत्र में ऐसी इमारतें मिली हैं जिनका निर्माण, लगता है, अन्तरिक्ष वेधशाला के रूप में कराया गया हो । क्योंकि वहाँ उन सभी यन्त्रों के चिह्न अवशेष प्राप्त होते हैं जो किसी वेधशाला में मिलते हैं । कुछ इमारतों का निर्माण ग्रह-नक्षत्रों की गणना के आधार पर किया गया भी प्रमाणित होता है ।

संसार में इतने बड़े-बड़े आश्चर्य भरे पड़े हैं और उनका निर्माण उस युग में हो चुका है जबकि हम समझते हैं लोग गुफाओं में रहते थे और एकदम पशुओं का सा जीवन जीते थे । पिछड़े और अविकसित लोग हर युग में हर समाज में रहते हैं, पर उनके आधार पर तत्कालीन समाज व सभ्यता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता । अब जब कि अति प्राचीनकाल में विनिर्मित इमारतों, सुरंगों और स्थापत्यों के ऐसे विस्मयकारी अवशेष प्राप्त हो रहे हैं जो अपने आपको अब तक की सृष्टि का सर्वाधिक विकसित, उन्नत और बुद्धिमान मनुष्य होने की घोषणा करना तथा स्वयं ही उसकी प्रसन्नता मना लेना, अपने आपको धोखा देने अथवा झूठा आडम्बर ओढ़ने के सिवा और कुछ नहीं है ।

दूसरे लोकों से भी लोग आते हैं ?

मोण्टाना के ग्रेट फाल्स के समीप बैठे दो इंजीनियर आपस में बातचीत कर रहे थे तभी उन्हें आकाश में उतरती हुई दो गोल-गोल सी वस्तुएँ दिखाई दीं । सन् १९५२ की बात है । उन दिनों उड़नतश्तरियों पर दुनिया भर में तरह-तरह के विवाद और किम्वदन्तियाँ फैल रही थीं । कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल रहा था जिसके आधार पर सरकारी तौर पर उड़नतश्तरियों के किसी ग्रह-नक्षत्र से धरती पर उतरने की बात सत्य घोषित की जाती ।

दोनों इंजीनियरों ने बात की बात में तय कर लिया कि यह गोल वस्तुएँ उड़नतश्तरियाँ ही हैं । उन्होंने अपने कैमरे निकाल लिए और जब तक वह गायब हों, उनके सैकड़ों चित्र उतार लिए । सरकारी तौर पर इन चित्रों को नकली सिद्ध करने की लगातार कोशिश की गई पर वैसा हो नहीं सका । पहली बार यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि उड़नतश्तरियाँ आकाश के किसी ग्रह-नक्षत्र से भेजे गए कोई विशेष शोध-यन्त्र हैं । कुछ तो यानों जैसी बड़ी भी दिखाई दी हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि बुद्धि का अस्तित्व, मात्र पृथ्वी तक ही सीमित नहीं । जीवन का स्वरूप कुछ भी हो पर उसकी सत्ता लोकान्तर ग्रहों में भी विद्यमान अवश्य है ।

सन् १९५७ में इसी प्रकार की घटना घटी, न्यूमैक्सिको के पास । यहाँ के प्रक्षेपास्त्र विकास केन्द्र में काम करने वाले एक इंजीनियर श्री अलामागोर्दो कहीं जा रहे थे । कार के सभी यन्त्र ठीक काम कर रहे थे, तभी वह एकाएक जाम हो गई, कार में लगा रेडियो भी चुप हो गया । कौतूहलवश अलामागोर्दो ने दृष्टि ऊपर उठाई और उसने जो कुछ देखा हक्का-बक्का रह गया । एक भीमकाय यन्त्र, जो अनुमानतः दो-ढाई हजार मील प्रति घण्टे की रफ्तार से आकाश की ओर जा रहा था, सिर के ऊपर से होकर गुजर रहा था । देखते-देखते वह जाकर कहीं आकाश में विलीन हो गया । ज्यों-ज्यों यह यन्त्र दूर हटा, कार के पुर्जे, रेडियो काम करने लायक होते गए । इस यन्त्र की सूचना देते हुए अलामागार्दो ने बताया यह यन्त्र विद्युत चुम्बकीय शक्ति द्वारा ही चालित होना चाहिए । जो इस बात का प्रमाण है कि अन्य लोकों में बुद्धि ही नहीं विज्ञान भी सम्भावित है ।

दो माह बाद ऐसी ही एक घटना घटी, ब्राजील में । समुद्र में खड़ा ब्राजीलियन जलपोत कुछ परीक्षण कर रहा था । उसके ऊपर उतरती हुई वैसी ही एक गोल तश्तरीनुमा वस्तु दिखाई दी । फोटोग्राफर बैरोना ने बात की बात में उसके चार फोटो ले लिए । यह फोटो धुलकर आये, वैज्ञानिकों ने उनका अध्ययन कर पाया कि यन्त्र छल्लेनुमा प्लेटफार्म पर बना था और चित्र वास्तविक था । इस घटना ने यह भी सिद्ध कर दिया कि अन्य लोकों में बुद्धि और विज्ञान ही नहीं कला-कौशल भी है । शायद वे लोग पृथ्वी के निवासियों के ज्ञान-विज्ञान की जानकारी और लाभ लेना चाहते हों तभी यह उड़नतश्तरियाँ प्रायः विशेष स्थानों के पास ही उतरती पायी गई हैं ।

'वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्वेज' तस्मानियाँ के सेक्रेटरी श्रीमान् लियोनेल ब्राउनिंग का इस प्रकार की खबरों में कोई विश्वास नहीं था । उड़नतश्तरियों को वे कल्पना की उड़ान कहा करते थे । दैवयोग से ४ अक्टूबर, १९६० को एक घटना तस्मानियाँ के पास कैस्सी में ही घट गई । एक साथ छः हवाई जहाज उतरते दिखाई दिए, आकाश उनकी चमक और गड़गड़ाहट में गूंज उठा, तभी आकाश को चीर कर आती हुई गोल तश्तरियाँ उतरती दिखाई दीं । वे इन जहाजों की ओर विचित्र प्रकार से झपटीं । तश्तरियाँ नीचे चपटी थीं और उनके ऊपर की शक्ल गुम्बदाकार थी । इन्हें देखने के लिए हजारों लोग सड़कों पर इकट्ठा हो गए, पर तभी वह सब के सब यान बादलों के बीच कहीं इस तरह खो गए कि उनका पता ही न चला—जाने कहाँ गए ।

इस घटनां की कई बातें काफी समय तक रहस्य जैसी बनी रहीं । इसके पाँच वर्ष बाद सन् १९६५ में कैनबरा (आस्ट्रेलिया) में फिर वैसी ही घटना घटी । आकाश में से एक गोल वस्तु लड़खड़ाती हुई नीचे गिरती-सी जान पड़ी । इसी बीच एक विलक्षण लाल किरण इस तश्तरी की ओर झपटी और ऐसा लगा जैसा वह उस सफेद वस्तु के भीतर घुस गई होगी । अब उस उड़नतश्तरी का लड़खड़ाना बन्द हो गया और वह नीचे आने की अपेक्षा ऊपर की ओर बढ़ी और उस लाल किरण के सहारे वहाँ तक उड़ती चली गई जहाँ एक लाल चन्द्रमा की तरह नक्षत्र जैसी कोई वस्तु चमक रही थी । दोनों वस्तुएँ देखते-देखते एकाकार हुई और फिर न जाने वे कहाँ खो गईं । १९६१ में ऐसी घटना वियूला मिशान के पास घटी थी पर उसका विश्लेषण नहीं किया जा सका था । इस घटना से यह पता चला कि उड़नतश्तरियाँ किसी सुनियोजित 'अन्तरिक्ष मिशन' का अंग होती हैं और जिस प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा की ओर जाने वाले चन्द्रयान कई चरण के होते हैं यह भी कई चरणों वाले तथा एक-दूसरे से परस्पर सम्बद्ध होते हैं । एक-दूसरे से जुड़ने, एक-दूसरे को शक्ति देने की, गल्ती ठीक करने की, सारी क्रियाओं का नियन्त्रण कहीं और से ठीक उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार ह्यूस्टन में बैठे कुछ वैज्ञानिक चन्द्रमा की ओर जाने वाले यात्रियों का जमीन से ही संरक्षण और दिशा निर्देश करते रहते हैं । प्रकाश शक्ति की और भी जानकारी के साथ-साथ अपने यहाँ से जाने वाले अन्तरिक्ष यानों के आकार-प्रकार, गति और नियन्त्रण में अन्तर पड़ सकता है और

यह चन्द्रयान भी इन उड़नतश्तरियों जैसा रूप लेकर अनेक प्रकाश वर्षों की दूरी वाले ग्रह-नक्षत्रों में भी जाना सम्भव हो सकता है। आस्ट्रेलिया की इस घटना की पुष्टी पीछे लिस्बन की वेधशाला के खगोलशास्त्रियों ने भी की थी।

कैलिफोर्निया में एक उड़नतश्तरी का जेट विमानों से पीछा भी किया गया पर वे विमान उसे पकड़ न सके जिससे पता चला कि अन्य लोकवासी बुद्धिमान भी हैं और विचारशील भी। हर सम्भावित खतरों का पूर्वानुमान करके ही वे अगले कदम निर्धारित करते हैं।

यह समझना भूल होगी कि इस ब्रह्माण्ड में हम पृथ्वी निवासी मनुष्य ही अकेले उन्नतिशील हैं। वस्तुतः इस विराट् विश्व में हमारी जैसी अगणित पृथ्वी विद्यमान हैं और उनके निवासी हमसे भी अनेक बातों में आगे बढ़े-चढ़े हैं। यदि आत्म तत्व के विकास द्वारा इन लोक-लोकान्तरों के बुद्धिजीवी प्राणी परस्पर सम्बन्ध बना सकें और समग्र शान्ति की दिशा में कुछ मिल-जुलकर प्रयत्न कर सकें तो कितना अच्छा हो। असम्भव है उड़नतश्तरियों के पीछे अन्य लोकवासियों में से कोई ऐसे ही प्रयत्न कर रहे हों।

अन्तरिक्ष में समर्थ और बुद्धिमान प्राणी

क्या इस पृथ्वी पर ही बुद्धिमान प्राणी रहते हैं? क्या मानवी प्रगति इस विश्वब्रह्माण्ड में अनौखी और एकाकी है? इस प्रश्न का उत्तर अदूरदर्शिता और अहमन्यता के आधार पर ही 'हाँ' में दिया जा सकता है। किन्तु यदि अन्वेषण बुद्धि का उपयोग किया जाय और प्रमाणों को टटोला जाय तो प्रतीत होगा कि प्रगति की प्रक्रिया अन्यत्र भी चल रही है, चलती रही है और इतनी आगे है कि मनुष्य को वहाँ तक पहुँचने में अभी काफी देर लगेगी।

ब्रह्माण्ड की समग्रता और प्राणियों का योगदान विषय पर जो अन्वेषण चल रहा है उससे ऐसे आधार उभरकर आते हैं जिनके सहारे यह स्वीकार किए बिना नहीं रहा जा सकता कि ईश्वर का कर्त्तव्य इतना ही सीमित नहीं है जितना कि हम देखते और समझते हैं। उसने एक से एक छोटे और बड़े सृजन किए हैं। उसकी सृष्टि के घटक कितने अणु और विभु हैं, इसकी हम पूरी तरह कल्पना भी नहीं कर सकते।

शोधकर्त्ताओं का कथन है कि इस ब्रह्माण्ड में प्रायः दस हजार ग्रहों में विकसित स्तर का जीवन है, जिन्हें हम अपने शब्दों में देव या दैत्य भी कह सकते हैं। पृथ्वी वाले अन्य लोकों के प्राणवानों के साथ सम्पर्क नहीं साध सके हैं, वे इसलिए आरम्भिक चरण ही उठा रहे हैं और अन्तरिक्ष में भ्रमण कर सकने वाले साधन ही जुटा रहे हैं। पर उन्होंने सम्भवतः पृथ्वी के जन्मकाल से ही इसे अण्डे-बच्चे की तरह पाला है और अपनी संचित पूँजी में से मूल्यवान अनुदान दिया है अन्यथा यहाँ आदिम काल के अमीबा जैसे क्षुद्र और डायनासौर जैसे वृहतकाय प्राणी ही रहते। पीढ़ियों के विकास में मूल सत्ता यथावत् ही रहती है। परिस्थितियों के अनुरूप उनमें यत्किंचित परिवर्तन ही होता है। बन्दर से मनुष्य नहीं हो सकता। यदि हो सका होता तो मनुष्य की संरचना में भी अब तक भारी हेर-फेर हो गया होता या हो जाता। पर ऐसी कोई सम्भावना नहीं है। मनुष्य वर्तमान स्तर पर ही उत्पन्न हुआ है। आदिम काल में वह वनमानुष नहीं था वरन् वैसा था जैसा कि देवत्व सम्पन्नों को होना चाहिए। उन दिनों जबकि मानवी प्रतिभा को सुपुर्द किया जा रहा था, उच्च लोकवासियों ने उसे सुव्यवस्थित एवं सुयोग्य बनाने में भारी योगदान दिया।

यह सुनिश्चित है कि उच्च लोकों के निवासी पृथ्वी की खोज-खबर लेने बीच-बीच में भी आते रहे हैं। किन्तु वैज्ञानिक विकास की कमी से एक स्थान की जानकारी सर्वत्र फैलने में सुविधा नहीं रही। किन्तु अब संचार साधनों की अभिवृद्धि से वह स्थिति आ गई है, जिसमें अद्भुत अनुभव का विस्तार एक कोने से दूसरे कोने तक हो सके।

उड़नतश्तरियों के पृथ्वी के वातावरण में आते-जाते रहने के प्रमाण प्रायः एक शताब्दी से मिलते रहे हैं। दृष्टिभ्रम, प्रकृति के गुच्छक आदि रूपों में उन दृश्यों को झुठलाया भी जाता रहा है पर कुछ ऐसे अकाट्य प्रमाण भी हैं जो अपने अस्तित्व और कर्त्तव्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

पुरातत्ववेत्ताओं ने भी पृथ्वी पर ऐसे प्रमाण उपलब्ध किए हैं जो बिना असाधारण बुद्धिमत्ता एवं साधन सामग्री के विनिर्मित नहीं हो सकते। ऐसे प्रमाणों की इतनी बड़ी श्रृंखला है कि उसे देखते हुए तथ्यों की पुष्टि दर पुष्टि होती चली जाती है। जैसाकि बच्चों को इतिहास की पुस्तकों में पढ़ाया जाता है, यदि वैसी ही स्थिति आदिम कालीन मनुष्य की पिछड़ी रही होती तो उनका कर्त्तव्य ऐसा नहीं हो सकता था कि आधुनिकतम शिल्पियों को भी आश्चर्य से चकित कर दे।

पिछले दो दशकों में रॉकेट विमानों द्वारा मनुष्य सहित चन्द्रयात्रा हुई। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयोजनों के लिए कई ऐसी ही अन्तरिक्ष यात्राएँ सम्पन्न हुईं जिनमें मनुष्य गए थे। उनका अन्य लोकवासियों के साथ प्रत्यक्ष मिलन तो नहीं हुआ पर उनके द्वारा जो कहा-सुना गया वह भी रिकॉर्ड किया गया। यह कोई भ्रम तो नहीं है? यान्त्रिक गड़बड़ी तो नहीं है? पृथ्वी की आवाजें ही तो यानों से टकराकर इस प्रकार की प्रतिक्रिया तो उत्पन्न नहीं कर रहीं हैं, इस प्रकार की आशंकाओं का अनेक प्रकार से निकाराकरण किया गया। टोह के लिए पृथ्वी पर अवस्थित कण्ट्रोल रूम से पूछताछ की गई किन्तु उससे ऐसे कुछ सिद्ध न हुआ कि पृथ्वी से उनका पीछा करने के लिए या वार्तालाप करने के लिए उपकरण भेजा गया है।

अपोलो १२ चन्द्रमा की यात्रा पर गया था। उसमें तीन अन्तरिक्ष यात्री थे। उन्होंने देखा कि यान के साथ ही समान दूरी एवं निश्चित कोण पर दो पदार्थ पीछा कर रहे थे। नासा के कण्ट्रौल रूम से पूछताछ की गई तो उन्होंने बताया कि "पृथ्वी से ऐसी कोई वस्तु नहीं भेजी गई है। यह आकाश की ही कोई वस्तु होनी चाहिए अथवा तुम लोगों का दृष्टि-भ्रम है।"

इसी प्रकार अन्तरिक्ष यान कमाण्ड माड्यूल से पृथक् होकर जब चन्द्रमा के तल की ओर बढ़ा तो ऐसी विचित्र ध्वनियाँ आरम्भ हो गईं, मानो कुछ लोग आपस में जोर-जोर से वार्तालाप कर रहे हैं। यह ध्वनियाँ यान के भीतर भी सुनी जाती रहीं और पृथ्वी के कण्ट्रोल रूम में भी। रिकॉर्ड उसका भी किया गया पर ऐसा कोई समाधान न निकला जिससे वस्तुस्थिति को जाना जा सके। यह क्रम १५ मिनट तक चलता रहा और बाद में अपने आप बन्द हो गया।

अपोलो ७ के यात्री अपने कमरे में एक विचित्र संगीत सुनते रहे । रात को दस बजे वे आवाजें किसी रेलगाड़ी की धड़धड़ाहट में बदल गई । कई संकेत बोधक सीटियाँ बजतीं और बदलती रहीं पर यह पता न चला कि यह सब कौन कर रहा और क्यों कर रहा है ?

खगोल विज्ञानियों ने पिछले ५० वर्षों में ऐसी अनेकों गतिविधियाँ रेडियो दूरबीनों द्वारा देखी हैं, जिनसे प्रतीत होता है मानों किन्हीं समझदार प्राणियों द्वारा वहाँ कुछ उलट-पुलट की जा रही है । विज्ञानी जॉन नील का अनुमान था कि चन्द्रमा प्राणिरहित नहीं है । वहाँ से पृथ्वी के साथ जुड़ने वाला कोई अविज्ञात तारतम्य चल रहा है ।

अपोलो १२ को धरती से उठे ६० मिनट ही हुए थे कि उस पर किसी तेज रोशनी ने कसकर एक लात जमाई और यान के भीतर का सारा सामान उलट-पुलट करके रख दिया ।

जर्मनी यान के संचालक मेजर एडवर्ड ह्वाइड ने भी ऐसे ही अनुभव किए । उनके यान की बिजली बार-बार जलती और बुझती रही । साथ ही तीन अज्ञात गोले उस यान के इर्द-गिर्द मँडराते रहे, मानों किसी जासूसी के उद्देश्य से वे पीछे लगे हों । उन पदार्थों में से लम्बी-लम्बी बाहें बाहर आतीं, फैलतीं और सिकुड़ती रहीं । उन यात्रियों ने अपनी पुस्तक 'वी सेवन' में ऐसे ही विचित्र अनुभवों का उल्लेख किया है जो उस यात्रा के बीच उन्हें होते रहे और हैरत में डालते रहे ।

वैकानूर के ब्रह्माण्डीय अड्डे से दो यात्रियों समेत एक अन्तरिक्ष यान भेजा गया । वह कुछ ही दूर जा पाया था कि पीछे से कोई बला साथ लग गई । यात्री अड्डे को सूचनाएँ देते, पर उसकी सहायता सम्भव न हो सकी, तो वह आकाश में ही अपना अस्तित्व खो बैठे ।

यद्यपि इस प्रकार की घटनाएँ अभी गोपनीय रखी गई हैं, ताकि प्रतिपक्षियों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त हो सके । तो भी यह किसी से छिपा नहीं है कि अन्तरिक्ष यान निर्विघ्न अपनी यात्राएँ पूरी नहीं करते उनकी मुठभेड़ किन्हीं ऐसी शक्तियों के साथ होती रहती हैं जो मनुष्य से अधिक सामर्थ्यवान एवं प्रगतिशील है ।

जितने सितारे उतने रहस्य

घटना २३ नवम्बर, १९५३ की है । मिशिगन (अमेरिका) के कैनरास एअर बेस (हवाई अड्डे) पर राडार यन्त्र सक्रिय था । वह प्रशिक्षण चालकों की उड़ान का अवलोकन और नियन्त्रण कर रहा था । राडार एक ऐसा यन्त्र है जिससे दूर उड़ रहे विमानों की दिशा, दूरी, स्थिति आदि का अध्ययन किया जाता है । अभी उड़ान प्रारम्भ ही हुई थी कि राडार पर बैठा ऑपरेटर एकाएक चौंक पड़ा, स्क्रीन (दृश्य पटल) पर ऐसी वस्तु उभर आयी थी जिसे आज तक कभी भी आकाश में न तो देखा गया था न कल्पना की गई थी, अत्यधिक तेज चमक वाली यह गोलाकार वस्तु हवाई जहाज की गति से भी अधिक तीव्र गति से हवाई अड्डे की ओर उन्मुख उड़ती चली आ रही थी । एक क्षण तो ऑपरेटर हक्का-बक्का हो गए । दूसरे क्षण उच्च अधिकारियों को सूचना दी गई, जो बात नई हो, उसके बारे में अधिकारी ही क्यों न हो अनभिज्ञ ही होता है, सो वे भी कुछ समझ न पाये । यह वस्तु है क्या, उसका लक्ष्य क्या है तथा प्रस्तुत परिस्थिति से निबटा कैसे जाय ?

ऐसी अजनबी परिस्थितियों में फौजी निर्णयों से काम नहीं चलता, उसके लिए विचार मन्थन के बाद ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक होता है, पर यहाँ अवसर होता तब न ? उस समय फ्लाइट लेफ्टिनेन्ट आर विल्सन अपने एफ-८६ जेट हवाई जहाज के साथ प्रशिक्षण उड़ान पर थे । उन्हें बेतार के तार (वायरलेस) से इस अजनबी वस्तु का पीछा करने और वह है क्या, इसकी खोज खबर लेने का निर्देश दिया गया । अब तक वस्तु (ऑब्जेक्ट) पश्चिमोत्तर में मुड़ चुका था । आर. विल्सन ने उसका तेज गति से पीछा किया और १६० मील तक पीछे लगे रहे । इस बीच उन्होंने जो सन्देश दिए वह इस प्रकार हैं—(१) यह कोई गोलाकार यान लगता है पर वह किस धातु से बना हो सकता है कुछ समझ में नहीं आता ? (२) उसके भीतर कोई दिखाई नहीं दे रहा पर उसकी गति, मुड़ना, दिशा नियन्त्रण इस बात के प्रतीक हैं कि अन्दर या बाहर कोई अत्यन्त कुशल बुद्धि उसका नियन्त्रण कर रही .... है ।

अभी यह शब्द पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाये थे कि ऐसा लगा कि वह वस्तु और आर. विल्सन का जेट दोनों परस्पर मिल गए और एक-दूसरे में आत्म-सात हो गए । कन्ट्रोलर बहुतेरा हैलो विल्सन ! हैलो विल्सन !! चिल्लाते रहे; पर कोई प्रत्युत्तर नहीं आया । वह वस्तु और भी तेज गति से अन्तरिक्ष पार क्षितिज के पेट में जा समाई ।

हवाई अड्डे का खोजी दल वाहनों में भागा, फायर बिग्रेड सक्रिय हुई, दूसरे जहाज उड़ाये गए, जिस स्थान पर इस घटना का राडार ने संकेत दिया था वहाँ से बीसियों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का चप्पा-चप्पा छान मारा गया किन्तु विल्सन तो दूर जहाज का रत्ती भर टुकड़ा तक कहीं नहीं मिला । इस खोज का क्रम कई दिनों तक चला । अन्त में विशेषज्ञ समिति ने "आर. विल्सन कहाँ गए यह एक रहस्य भरी पहेली बन गया है ।" कहकर अपनी असमर्थता और हार स्वीकार कर ली ।

इस दुर्घटना के बाद से कई ऐसे रहस्य उभरते हैं जिनका आज तक कोई समाधान नहीं निकल सका । क्या यह अन्तरिक्ष के विकिरण का कोई 'बगुला' या 'भँवर' था जिसने विल्सन को आकाश के गहरे विकिरण सागर में डुबो दिया या फिर अन्य ग्रह से आया कोई यान था जो पृथ्वीवासियों के रहस्यों का पता लगाने के लिए योजनाबद्ध ढंग से भेजा गया हो ? दोनों ही तरह पाठक सोच सकते हैं और जी में आये वह निष्कर्ष निकाल सकते हैं क्योंकि तथ्य किसी को ज्ञात नहीं, यदि कोई एक बात तथ्य रूप में सामने आती है तो वह मात्र यह कि इस ब्रह्माण्ड में जितने सितारे चमक रहे हैं, रहस्य उससे भी अनेक गुने अधिक हैं ? क्या मनुष्य उनमें से कुछ जान सकता है ? इतनी दूर की क्यों मनुष्य शरीर ही विलक्षण शक्ति केन्द्रों की, सामर्थ्यों की चलती-फिरती रहस्यमय मशीन है यदि वह इसी को भली प्रकार जान ले सो ही बहुत है ।

तब से देश-विदेश में ऐसी अनेक घटनाएँ घट रही हैं—रहस्य नित्य प्रति गहरा रहा है पर समझ में कुछ नहीं आ रहा । ३ मई, १९६४ को आस्ट्रेलिया की राजधानी कैनबरा में कुछ लोगों ने ऐसी ही किसी रहस्यमय वस्तु की सूचना दी । सूचना

देने वालों में ३ ऋतु विशेषज्ञ भी थे जो उस समय अपने राडार यन्त्रों पर मौसम का अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने बताया यह अत्यन्त चमकदार और तश्तरी की सी बनावट की वस्तु में से, कंगारु के पेट से बाहर आये बच्चे की तरह, एक वैसी ही लघु आकृति भी बाहर आयी । उसके रंग में पूर्ववर्ती के रंग में कुछ अन्तर था । थोड़ी देर में छोटा बड़े की ओर लपका दोनों एक हो गए और न जाने कहाँ अन्तरिक्ष में विलीन हो गए ।

नासा अधिकारी अभी बात की छानबीन में ही थे कि २६ जनवरी, १९६५ में स्वयं अमेरिका में ही इस तरह की एक और घटना घटी जबकि मेरीलैण्ड समुद्री हवाई अड्डे के दो ऑपरेटरों ने वैसी ही सूचना दी । यह वस्तु हवाई अड्डे के ३० मील पास तक चली आयी । खतरे की घन्टियाँ तो बजाई गईं पर पहले का सबक साथ था । अतएव इस बार उसका पीछा करने का साहस किसी ने नहीं किया ।

६ नवम्बर, १९६७ जर्मन में 'टेलीविजन नं. २' पर आकाश-युद्ध पर ट्रान्समिशन चल रहा था । लुफ्तहंसा एअर क्राफ्ट के एक कैप्टन ने अपने चार साथियों के साथ बताया कि १५ फरवरी, १९६७ को उनका जहाज सन फ्रांसिस्को हवाई अड्डे को ओर बढ़ रहा था । उस समय एक तेज चमकदार मशीन ने १५ मिनट तक हमारा पीछा किया । वह ३३ फुट व्यास की वस्तु थी, इस घटना से एक ओर घबराहट हुई, दूसरी ओर आश्चर्य भी कि यह है क्या ? १५ मिनट के पश्चात् उसने स्वतः पीछा छोड़ दिया और वह दूसरी ओर मुड़ कर भाग गई ।

बी. टी. ए. न्यूज एजेन्सी की २३ नवम्बर, १९६७ की एक खबर में बताया गया है उससे ३ दिन पूर्व बलगारिया की राजधानी सोफिया में ऐसी वस्तु देखी गई जिसे अब तक कभी पहचाना नहीं गया (इसे अपने इसी गुण के कारण वैज्ञानिक नाम 'यू. एफ. ओ.—अन आइडेन्टीफाइड फ्लाइंग ऑब्जेक्ट' नाम दिया गया है । (सामान्य लोग उड़नतश्तरी कहते हैं) । उससे शक्तिशाली किरणें निकलने की भी सूचना थी जिसे वहाँ के हाइड्रोलॉजी (जल-शक्ति विज्ञान) तथा मेट्रोलॉजी (मौसम विज्ञान) के अधिकारियों ने भी देखा और बताया कि उड़ती वस्तु अपनी शक्ति से चालित थी तथा पृथ्वी से १८ मील ऊपर उड़ रही थी ।

अमेरिका, फिलीपीन्स, रूस, प. जर्मनी, मैक्सिको आदि अनेकों देशों में यह उड़नतश्तरियाँ देखी गई हैं—यदि यह मान लिया जाय कि ९८ प्रतिशत व्यक्तियों को यह भ्रम बाल लाइटनिंग, मौसम विभाग द्वारा छोड़े गए गुब्बारे देखकर अजब तरह के बादल और उन पर पड़ी किरणें देखकर, धुँधले में प्रकाश व छाया से बने दृश्य या किसी नए तरह के हवाई जहाज को देखकर हुआ होगा तो भी २ प्रतिशत लोग तो ऐसे हैं ही जिनके कथन असत्य नहीं कहे जा सकते उनकी जानकारियाँ प्रामाणिक होनी चाहिए । इन लोगों में एअर क्राफ्ट (हवाई जहाज के लोग) तथा मौसम विज्ञान के लोग आते हैं । दूसरा भूल कर सकता है पर अनुभवी पाइलट, जो उड़ान के समय शराब नहीं पीते, व्यर्थ बात नहीं करते, ऐसा करें तो उन्हें सर्विस से हाथ धोना पड़े—झूठ क्यों बोलेंगे । तब फिर इन रहस्यों का कोई समाधान हो सकता है क्या ? उसके लिए तब तक प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं जब तक सारे ब्रह्माण्ड के स्वरूप और नियति की जानकारी नहीं मिल जाती ।

अन्तरिक्षवासी पृथ्वी पर आते रहे हैं

क्या पृथ्वी से इतर भी कोई विकसित सभ्यता है ? इस सम्बन्ध में आजीवन शोध में निरत रहने वाले स्विस पुरातत्व विद् एरिखवान डैनिकेन ने अनेकों विस्मयकारी प्रमाण खोज निकाले हैं । इन निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि सदियों पूर्व से अन्तरिक्षवासी, अन्यान्य ग्रहों के निवासी अपनी जिज्ञासा पूर्ति हेतु धरती पर आते रहे हैं । पुरातत्व विदों ने पेरू के दक्षिण-पश्चिम में एरीक्वीपा प्रान्त के नाजका क्षेत्र में सैंतीस मील लम्बी एक पट्टी ढूँढ़ निकाली है जहाँ ज्यामिति क्रमानुसार गहरी खाइयाँ खुदी पायी गई हैं । इनमें से कुछ मीलों लम्बी समानान्तर क्रम में गई हैं तो कुछ परस्पर काटती हुई एक विशेष आकार में देखी गई हैं । यहाँ कुछ जानवरों के चित्र भी खुदे पाये गए हैं । पुरातत्वविद् मानते हैं कि ये निर्माण शताब्दियों पूर्व इंका सभ्यता के निवासियों द्वारा विनिर्मित सड़कों के ध्वंसावशेष हैं । भूचुम्बकीय आधार पर वैज्ञानिकों ने इनका खगोलकीय महत्त्व भी बताया है ।

एरिकवान डैनिकेन अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि नाजमा के ये चिह्नित स्थान अन्तरिक्षवासियों के हवाई अड्डे हैं, जिन्हें उन्होंने आज से कई सदी पूर्व स्वयं के आवागमन के लिए बनाया था । बाद में उस क्षेत्र के निवासियों ने अन्तरिक्षवासियों के आदर सम्मान में जानवरों के एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बनाए । धरतीवासियों ने उन्हें देवता रूप माना । श्री डैनिकेन की मान्यता है कि 'आधुनिक मानव' जिसे 'होमोसैपिएन्स' कहा जाता है, अन्तरिक्षवासियों और बंदर की संकर संतान है । उस समय धरती पर केवल बंदर ही थे, मनुष्य नहीं । मनुष्य कृत्रिम प्रेरित उत्परिवर्तन से उत्पन्न हुआ है ।'' उन्हें नाजका मात्र ही नहीं, वरन् अन्य स्थानों पर भी लाखों वर्षों पूर्व अन्तरिक्षवासियों के आते-जाते रहने के प्रमाण मिले हैं । अपने कथन की पुष्टि में श्री डैनिकेन ने ऐसे अनेकों सशक्त पुरातत्वीय प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जिनसे यह साबित होता है कि इतरवासी अपने वायुयानों से धरती पर उतरते थे । विश्व के विभिन्न शिलालेखों, पेंटिंग, शैल चित्रों, विचित्र मूर्ति कलाओं से यह बात भली प्रकार प्रमाणित हो जाती है अल्जीरियन सहारा की तास्मिली पर्वत शृंखला पर बने चित्र यह बताते हैं कि अन्तरिक्षवासी गोल हेल्मेट पहनकर भार रहित हो अन्तरिक्ष में तैरते थे । इनके उड़ती हुई स्थिति में चित्र यहाँ देखने को मिलते हैं । ऐसा लगता है कि अत्यन्त उच्चस्तरीय तकनीकी क्षमता वाले अन्तरिक्षवासियों के लिए पृथ्वी एक अस्थायी क्रीड़ा स्थली थी । एल एनलैड्रिलैडो केचिलियन पठार में फैली विशालकाय पत्थर की २३३ चट्टानें इस तरह खड़ी हैं जैसे पहले यहाँ प्राथमिक रंगशाला या अखाड़े रहे हों । इतने बड़े भीमकाय पत्थर बिना किसी साधन क्रेन जैसे यन्त्र के उस पिछड़ी असभ्य समझी जाने वाली जनजातियों द्वारा उस पठार तक किसी भी हालत में नहीं पहुँचाए जा सकते । निश्चित रूप से ये पत्थर अन्तरिक्षवासियों द्वारा अपनी तकनीक का प्रयोग कर लाये गए और वहाँ के निवासियों की सहायता से अपने कुशल इंजीनियरिंग देख-रेख में ज्यामितिय आकार देकर उन्होंने बनवाया ताकि उनकी मदद से पाइलटों को उस पठार पर यान आदि उतारने में सुविधा रहे ।

चिली के समुद्र तट से २००० मील की दूरी पर पेसिफिक समुद्र में खड़ी ईस्टर आइलैण्ड की मूर्तियाँ भी इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि समय-समय पर अन्तरिक्षवासी धरती पर आते रहे हैं। इन मूर्तियों में से सैकड़ों ऐसी हैं जिनकी ऊँचाई ३३ से लेकर ६६ फीट तक है। इनके उद्भव और उपयोग महत्त्व के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं है। वहाँ के निवासियों द्वारा भी इस तरह के कोई निर्माण कार्य नहीं किए गए। निःसन्देह ये मूर्तियाँ अन्तरिक्षवासियों की अन्तर्ग्रही सभ्यता की ही निर्मित लगती हैं।

इक्वेडोर में जमीन के अन्दर बने विशालतम जटिल गलियारे और बड़े-बड़े हाल भी उपरोक्त तथ्य को प्रमाणित करते हैं। हाल की दीवारें और भीतरी छत की बनावट को देखकर यही मालूम होता है कि यह किसी अनुभवी कुशल इंजीनियर द्वारा विनिर्मित हैं। इन हालों के अन्दर बड़े से बड़े जुम्बोजेट को लटकाया जा सकता है। एक बड़े हाल से जुड़े अनेकों गलियारे और उनकी शाखा-प्रशाखाएँ हैं जो बड़े-बड़े समानुपातिक कक्षों में खुलती हैं। बड़े हाल के मध्य में एक बड़ी टेबल और कुछ कुर्सियाँ रखी पायी गई हैं जो प्लास्टिक जैसे किसी पदार्थ की बनी हैं। ये स्टील से भी अधिक मजबूत और वजनी हैं। इस फर्नीचर के चारों ओर स्वर्ण के ठोस प्लेटों पर हाथी, मगर, शेर, भालू, भेड़िये, केकड़े, घोंघे जैसे अनेकों जीवधारियों के चित्र खुदे पड़े हैं। इन प्लेटों की लम्बाई ३ फुट २ इंच और चौड़ाई १ फुट ७ इंच है। सभी प्लेटों पर विचित्र भाषा में कुछ लिखा है और इन पर किसी मशीन विशेष से एम्बोस्ड मुहर लगी पायी गई है। वैज्ञानिकों का मत है कि ये स्वर्ण प्लेटें पुस्तकालय की पुस्तकों के पृष्ठ हैं, जो अन्तरिक्षवासियों द्वारा सदियों पूर्व अपनी पृथ्वी यात्रा के दौरान छोड़े गए। इस हाल के साथ जुड़े रास्तों, गलियारों की खोज की जाय तो सम्भव है कि बहुत से ऐसे अन्य स्थान और वस्तुएँ मिलें, जिनसे इस तथ्य की पुष्टि हो सकती है कि अन्तरिक्षवासी पृथ्वी पर आते-जाते रहे हैं। ब्रिटनी, फ्रांस के कोर्नेक नामक स्थान में भी एक लम्बी पट्टी विशाल महापाषाणों की पायी गई है, मानों वह राजमार्ग हो। इनसे अनुमान होता है कि अन्तरिक्षवासी इसी मार्ग से धरती पर आते थे। डेनमार्क राष्ट्र की उत्पत्ति के विषय में भी पुरातत्वविद् बड़ी आश्चर्यजनक खोज कर लाये हैं। वे बताते हैं कि इसका मूल नाम धेनुमार्ग था जो बाद में अपभ्रंश होकर डेनमार्क हो गया। इसी राष्ट्र में अन्तरिक्ष से गाय (धेनु) नामक प्राणी धरती पर अवतरित हुआ एवं सारी पृथ्वी पर फैल गया। डेनमार्क में गायों की प्रचुरता देखकर इस मान्यता की पुष्टि होती है। वहाँ की भाषा, लिपि की भी संस्कृत से अधिक निकटता पायी गई है।

डॉ. टेरेन्स डिकिन्सन 'एस्ट्रानॉमी' जनरल में प्रकाशित (वॉल्यूम २, क्र. १२ दिसम्बर, १९७४) 'द जेटा रेटीक्युली इन्सीडेण्ट' में लिखते हैं कि हमारे नजदीकी १६ तारा मण्डलों में से एक जेटा रेटीकुली सिस्टम भी है। वहाँ की परिस्थितियाँ हमारे सौर-मण्डल से बिल्कुल मिलती-जुलती हैं व ऐसा सुनिश्चित लगता है कि वहाँ अभी भी जीवन हो। यदि निकट भविष्य में हमारे दक्षिणी गोलार्द्ध के ऊपर स्थित इस तारा-मण्डल तक, जो हमसे ३७ प्रकाशवर्ष (एक प्रकाशवर्ष-नब्बे खरब किलोमीटर) दूरी पर स्थित है, जाना सम्भव हो सका तो हो सकता है कि हमें वहाँ विकसित सभ्यता के दर्शन हों। उड़नतश्तरियों द्वारा धरतीवासियों को पकड़ कर ले जाने व उनसे जानकारियाँ उगल कर वापस धरती पर छोड़ने के कई घटनाक्रम गत तीन दशकों से चर्चित होते रहे हैं। पहले यह मजाक लगता था, किन्तु मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययन (डॉ. लियो स्प्रीकंल—वायोनिंग विश्वविद्यालय) बताते हैं कि यह सर्वथा मिथ्या नहीं है। 'आउट ऑफ बॉडी जर्नी' (शरीर से बाहर सूक्ष्म शरीर की यात्रा) पर बहुत कुछ पाश्चात्य जगत में शोधकार्य हो चुका है व प्राप्त निष्कर्ष इस मान्यता का समाधान करते हैं कि अन्तरिक्षवासी इस धरती पर आते हैं व सूक्ष्म रूप में चेतना सत्ता से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करते हैं। सन् १८९९ में जेनेवा विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक डॉ. थियोडोर फ्लार्नी ने एक पुस्तक लिखी थी— 'फ्रॉम इण्डिया टू प्लेनेट मार्स' (भारत से मंगल ग्रह तक)। इस पुस्तक में उन्होंने बताया था कि श्रीमती कैथेरीन मुलर नामक एक महिला में मंगल ग्रह निवासियों से सम्पर्क स्थापित कर चर्चा करने की अद्भुत क्षमता पायी गई। 'मंगलग्रह लिपि', जो संस्कृत से मिलती- जुलती थी, में उन्होंने कई निर्देश सम्मोहन की स्थिति में लिखकर भी दिए। डॉ. कार्लजुंग ने इसे कलेक्टीव कांशसनेस प्रक्रिया के अन्तर्गत घटने वाली एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नाम दिया था। इसे उन्होंने मनुष्य द्वारा अचेतन में 'कॉस्मिक यूनिटी' (ब्राह्मी तादात्म्य) स्थापित करने के प्रयास का नाम दिया था।

सभी उपलब्ध प्रमाण व वैज्ञानिक शोधों के रहते यह कहना उपयुक्त होगा कि विकासवाद की मूल थ्योरी पर पुनः दृष्टि डालना चाहिए एवं यह मानना चाहिए कि आज से भी विकसित सभ्यता पहले धरती पर रह चुकी है अथवा आज का मनुष्य कहीं और से इस धरती पर अवतरित हुआ व उस समय वह और भी श्रेष्ठ स्थिति में रहा होगा। यदि यह सच है तो निष्कर्ष यही निकलता है कि पूर्वजों की तुलना में हम हर क्षेत्र में नीचे ही गिरते आये हैं, प्रगति कम की है।

अन्तरिक्ष से आये अपरिचित अतिथि

१० अक्टूबर, १९६६ को सायं ५ बजकर २० मिनट पर न्यूटन एलिनाथ (अमेरिका) नामक स्थान पर पाँच व्यक्ति एक साथ घूमने के लिए निकले। अचानक उनकी दृष्टि धरती से मात्र १५ मीटर ऊपर उड़ती एक यान जैसी वस्तु पर पड़ी। कुछ ही मिनट बीते होंगे कि उड़ती हुई वस्तु का अगला हिस्सा ऊपर की ओर उठा और देखते ही देखते वह अदृश्य हो गई। देखने वाले उन व्यक्तियों ने बताया कि वह उड़ने वाली वस्तु लगभग ६ मीटर लम्बी, २ मीटर व्यास वाली, एलुम्युनियम जैसी चमकदार धातु से बनी सिगार जैसी शक्ल की थी। उसके अगले हिस्से में छोटा-सा छेद था जो प्रवेश द्वार जैसा लगता था। पैंदे के पिछले भाग का रंग हल्का हरा भूरा था। उसके चारों ओर हल्की नीली धुंध थी। यान से किसी प्रकार की ध्वनि तो सुनाई नहीं पड़ रही थी किन्तु वातावरण में एक विचित्र प्रकार के कम्पन का आभास मिल रहा था। उस स्थान से दस किलोमीटर दूर भी कुछ व्यक्तियों ने ऐसे ही यान को कुछ ही सैकेन्ड के अन्तर पर देखा। उनके द्वारा बताए गए विवरण भी ठीक उसी प्रकार के थे।

२४ अक्टूबर, १९७८ 'मेलबोर्न' में एक छोटा विमान चालक सहित उड़नतश्तरी को देखने के बाद लापता हो गया। घटना इस प्रकार बताई जाती है। बीस वर्षीय युवा चालक

फ्रेडरिक वालेटिच ने आस्ट्रेलिया एवं तस्मानियां के बीच चार्टर्ड उड़ान भरी । चालक फ्रेडरिक ने मेलबोर्न हवाई अड्डे के ऊपर से रेडियो संदेश में हवाई अधिकारियों से पूछा कि १५०० मीटर की ऊँचाई पर उसी क्षेत्र में कोई दूसरा विमान तो नहीं उड़ रहा है । उसने अधिकारियों को सूचना देते हुए कहा कि वह इसलिए पूछ रहा है कि उसे मेलबोर्न से १८२ मील दूर किंग आइसलैण्ड के पास से उड़ते हुए एक लम्बी आकार की वस्तु तेज गति से उड़ती हुई दिखाई पड़ रही है । हवाई अड्डे के अधिकारियों के उत्तर की बिना प्रतीक्षा किए उसने अपना सन्देश जारी रखा । उसने बताया कि लम्बी आकार की वस्तु तीव्र गति से उड़ती हुई मेरे यान की ओर आ रही है । अब मेरे विमान के ठीक ऊपर आकर चक्कर काट रही है । उसके भीतर से हरा प्रकाश निकल रहा है । फ्रेडरिक के अन्तिम शब्द थे कि "मेरे विमान के इंजन में रुकावट-सी आ रही है । यान अब भी मेरे ऊपर छाया है । इसके बाद रेडियो पर धातु के टकराने जैसा शब्द, तेज शोर, सुनाई पड़ा तथा विमान का नियन्त्रण कक्ष से सम्बन्ध टूट गया । मेलबोर्न हवाई-अड्डे से अनेकों जहाजों ने खोज के लिए उड़ान भरी किन्तु चालक एवं यान का कुछ भी पता न चल सका और न ही किसी प्रकार की दुर्घटना का कोई चिह्न ही मिला ।

कहीं ये जासूसी करने की दृष्टि से छोड़े गए किसी देश के विमान तो नहीं हैं, पर प्राप्त तथ्य बताते हैं कि इतने विकसित किस्म के विमान अभी तक धरती पर बने नहीं हैं । कम से कम इंजन के बारे में तो स्थिति सर्वत्र एक जैसी है जबकि यह विलक्षण तश्तरियाँ हर बार किसी अविज्ञात ऊर्जा द्वारा संचालित पायी गईं ।

५ जनवरी, १९७९ इंडियन एक्सप्रेस दैनिक पत्र में एक घटना प्रकाशित हुई थी जो इस तरह है । दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सवर्ग नगर के समीप एक महिला एवं उसके पुत्र ने अपने घर के निकट एक उड़नतश्तरीनुमा वस्तु को उतरते देखा । प्रत्यक्षदर्शी श्रीमती भीगन क्वीजेट ने एक इन्टरव्यू में बताया कि उनके लड़के ने रात्रि को कुत्ते को भौंकता देखकर उन्हें जगाया । दोनों बाहर आये तो कुत्ता एक दिशा की ओर दौड़ा । दोनों कुत्ते के पीछे-पीछे चल पड़े । लगभग बीस गज की दूरी पर एक तश्तरी जैसी आकृति की वस्तु खड़ी थी । सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यान से सटे हुए मनुष्याकृति से मिलते-जुलते पाँच व्यक्ति खड़े थे । अलग-अलग लिए गए इन्टरव्यू में उसके पुत्र ने भी यही बात बताई । श्रीमती क्वीजेट ने अपने पुत्र से कहा कि जल्दी से अपने पिता को बुला लाओ । इतने में ही पाँचों मनुष्याकृतियाँ तश्तरी के खोह में समा गईं और देखते ही देखते उड़नतश्तरी हवा में गायब हो गई ।

ऐसी घटनाएँ भारतवर्ष में भी घटित हो चुकी हैं । ३ अप्रैल, १९७८ को रात्रि ९ और १० बजे के बीच अहमदाबाद (गुजरात), राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के अनेकों स्थानों पर सैकड़ों व्यक्तियों ने उड़नतश्तरी देखी । अमेरिका के वैज्ञानिकों ने इसे अपने शोध का विषय बनाया है । उन्होंने इसका नाम यू. एफ. ओ. (अन आइडेण्टीफाइड फ्लांइग ऑब्जेक्ट) दिया है । शोध के लिए जे. एलन हाइनेक ने नॉर्थ वेस्टर्न विश्वविद्यालय में यू. एफ. ओ. केन्द्र की स्थापना की है जिसका लक्ष्य है रहस्यमय उड़नतश्तरियों की जानकारियाँ एकत्रित करना ।

डॉ. फ्रेडमैन जैसे वैज्ञानिक का विश्वास है कि सभ्यता एवं जीवन का केन्द्र पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है । अन्य ग्रहों की अभी पूरी जानकारी हमें नहीं है किन्तु ऐसा लगता है कि जीवन अन्यन्त्र भी है । हमारी तुलना में वहाँ सभ्यता कहीं अधिक विकसित है । इसका एक प्रमाण है—उड़नतश्तरियाँ । उन्होंने यह भी कहा कि पृथ्वी ऊर्जा का स्रोत है । यह भी सम्भावना है कि अन्य ग्रहों के निवासी पृथ्वी पर ऊर्जा संग्रह करने आते हों और इसकी तकनीक उन्होंने विकसित कर ली हो ।

निःसन्देह अभी भी मानवी जानकारियाँ सीमित हैं । एक सामान्य-सी उड़नतश्तरी वर्षों से रहस्यमय बनी हुई है और इस तथ्य का बोध कराती है कि ब्रह्माण्ड की असीम जानकारियों के लिए उसे पुरुषार्थ की एक लम्बी मंजिल पूरी करनी होगी ।

अन्तर्ग्रही सुविज्ञों का पृथ्वी पर आगमन

पृथ्वी पर अन्य लोकवासियों के आवागमन के प्रमाण चिह्नों में उड़नतश्तरियों की चर्चा होती है । पिछले वर्षों में टेलीविजन पर एक सीरियल 'प्रोजेक्ट यू. एफ. ओ.' भी प्रकारित हुआ है जो कथा प्रसंग नहीं अपितु ऐसी घटनाओं पर आधारित एक तथ्यपूर्ण फिल्म है, इससे वैज्ञानिकों की रुचि का पता लगता है । वस्तुतः प्रागैतिहासिक काल के चिह्न जहाँ-जहाँ ऐसे पाये गए हैं जिन्हें किन्हीं अतिमानवों की कृतियाँ ही माना जा सकता है । सबसे बड़ी बात है मनुष्य के अन्तराल में पायी जाने वाली आदर्शवादी सदाशयता और योगाभ्यास के आधार पर अथवा कई बार बिना प्रयास के भी अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकसित होना । ये सभी बातें ऐसी हैं जो डार्विन की विकास थ्योरी से तालमेल नहीं बिठातीं । क्रमिक विकास का सिद्धान्त मनुष्येत्तर छोटे जीव-जन्तुओं पर तो किसी कदर लागू हो सकता है, पर मनुष्यों पर नहीं । उनकी मानसिक स्थिति ही असाधारण नहीं है वरन् भाव संरचना भी ऐसी है जिसे वंशानुक्रम प्रवाह से उपलब्ध हुआ सिद्ध करना कठिन है । वह स्व-उपार्जित भी नहीं है । क्योंकि जिन परिस्थितियों में मनुष्य रहता है उसमें ऐसी गुंजाइश है नहीं कि आदर्शवादी दृढ़ता को इतने क्रमबद्ध ढंग से नियोजित किया जा सके । मनुष्य प्राणी समाज में अनेक दृष्टियों से एक मौलिक संरचना है । उसमें शारीरिक और मानसिक क्षेत्र में ऐसी विलक्षणताएँ बीज रूप में विद्यमान हैं कि उनके विकास का तनिक सा प्रयास करने पर ही वह अपनी विलक्षण विभूतियों का परिचय देने लगता है । यह क्यों है ? इसका उत्तर वंशानुक्रम परम्परा के आधार पर दिया जा सकना शक्य नहीं है ।

आध्यात्मवादी इस रहस्य का समाधान इस प्रकार करते हैं कि मनुष्य दैवी परिवार का एक घटक है । वह देवताओं की सन्तति है । पुरातत्ववेत्ता और जीवन- विज्ञानी ऐसा ही कुछ सोचते हैं कि मानवी संरचना मात्र रासायनिक पदार्थ की परिणति नहीं है कि वे विकास-क्रम को नभचरों एवं थल में विचरण कर सकने वाले पक्षियों से आगे बढ़ने में अत्यन्त कठिनाई अनुभव करते हैं । वे जीव-विज्ञानी भी सब कुछ इसी तरह से सोचते हैं कि मनुष्य स्तर का जीवन किसी अन्य ग्रह से धरती पर उतरा है । ग्रह-नक्षत्रों को सर्वथा रासायनिक संरचना नहीं माना जाता है वरन् इस मान्यता को बहुत हद तक सही माना जाता है कि

पृथ्वी से भी पुरानी और विकसित सभ्यताएँ इस ब्रह्माण्ड के कितने ही तारकों में विद्यमान रही होंगी ।

इस दिशा में विशिष्ट प्रमाण व अवशेष हैं जो उड़नतश्तरियां के धरती पर गिरने के उपरान्त हस्तगत हुए हैं । चमकने और घूमने वाले और लुप्त होने वाले घटकों को प्रकृति के चमत्कार एवं मानवी दृष्टिभ्रम कहा जाता है पर उन अवशेषों को क्या कहा जाय जो टूटकर धरती पर गिरे हैं । इतना ही नहीं ऐसे प्राणियों के अस्तित्व को भी एक विचारणीय रहस्य माना गया है जो उड़नतश्तरियों के साथ पृथ्वी पर आये किन्तु परिस्थितियाँ गड़बड़ा जाने से वापस न लौट सके । यह मान्यता इसलिए और भी पुष्ट होती है कि इन अवशेषों और आगन्तुकों को जिन्होंने देखा या हस्तगत किया है उन्हें इस सन्दर्भ की कोई बात न कहने के लिए प्रतिबन्धित किया गया है । हो सकता है कि मनुष्य कृत अन्तरिक्षीय खोज में इन उपलब्धियों से कुछ ऐसे सूत्र हाथ लगें जो अन्तर्ग्रही आवागमन सम्बन्धी तथ्यों का कोई रहस्योद्घाटन कर सकें और मानवी प्रयासों में सहयोगी सिद्ध हो सकें ? इस सन्दर्भ में जहाँ भी जो जानकारियाँ मिली हैं, उन्हें इतना गोपनीय रखा गया है कि बात जहाँ की तहाँ रुक जाय । सहयोगी या विपक्षी उस सम्बन्ध में कोई सुरक्षा हस्तगत न कर सके ।

अमेरिका के न्यू मैक्सिको क्षेत्र में सन् १९४६ से १९४८ तक इतनी उड़नतश्तरियाँ देखी गईं कि इस बात को आश्चर्यजनक माना गया कि संसार के अन्य स्थानों की अपेक्षा यह अभिवर्धन लगातार एक ही क्षेत्र में इतना अधिक क्यों होता है । अनुमान लगाया गया कि लुप्तप्रायः मय-सभ्यता के पुरातन अवशेष इसी क्षेत्र में सर्वाधिक पाये जाते हैं । हो सकता है उस सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वालों का सम्पर्क अभी भी उस क्षेत्र से बना हुआ हो ।

जुलाई १९४७ में एक अन्य उड़नतश्तरी पृथ्वी से टकरा कर गिर पड़ी थी । इन्हीं दिनों अमेरिकी गुप्तचर विभाग को अन्तरिक्ष में ऐसी ही विचित्र वस्तुओं से पाला पड़ा था । इसलिए गश्त तेज कर दी गई ताकि वस्तुस्थिति का पता लगाया जाय । २५ जून को इससे पहले डॉक्टर आर. एफ. सेन से बाबर ने ऐसी घटना पहले भी देखी थी । उन्होंने इस सम्बन्ध में कितने ही अन्य प्रत्यक्षदर्शियों से पूछताछ की थी । २६ जून को ऐसा ही एक अद्‌भूत प्रमाण कैंटकी के डॉक्टर लियो आरगिह ने देखा । २७ जून को मेजर जॉर्ज विलिवाक्स ने उसे और भी नजदीक से देखा । डॉ. विलिमोर की धर्मपत्नी ने भी उसे पास से देखा । इस सन्दर्भ में जो ऊहापोह हुआ उसके एक सप्ताह के तारतम्य का सिलसिला जोड़ते हुए रीजवेल के स्थानीय सम्वाददाता ने खबर को प्रकाशनार्थ भेजने की जैसे ही तैयारी की वैसे ही उसके पास प्रतिबन्ध पहुँचा कि खुफिया पुलिस नहीं चाहती कि यह समाचार प्रकाश में आये । यह मामला टॉप सीक्रेट का है । इसी प्रकार की पाबन्दी वायु सेना पर भी लगा दी गई और कहा गया कि वे इस सन्दर्भ में किसी से कुछ न कहें ।

दूसरे दिन सरकार की ओर से एक फौजी दफ्तर में प्रेस कॉन्फ्रेन्स बुलाकर इतना भर कह दिया गया कि "वह एक मौसमी आँकड़े एकत्रित करने वाला गुब्बारा भर था ।" पर इस सम्बन्ध में कोई प्रकाश न डाला गया कि जो मलवा फैजिनको में भर-भर कर ले जाया गया था उसका क्या हुआ ? ब्रिटेन की रायल फोर्स से सम्बन्धित एक अधिकारी ने तो इस पर भी कह दिया कि एक उड़नतश्तरी 'रीजवेल' क्षेत्र में गिरी है ।

इसके अतिरिक्त प्रत्यक्षदर्शी गवाहों का तांता लगा रहा । श्रीमती बैनेट ने कहा उन्होंने वह तश्तरी जमीन से टकराती स्वयं देखी है और उसमें कुछ मृत प्राणी भी थे ।

एक दूसरी सूचना के अनुसार १९४७ में सेन्ट आगिस्टियान के मैदान में एक उड़नतश्तरी गिरी थी । जिसमें १६ मृत और १ जीवित प्राणी भी थे । इस सूचना का विस्तृत विवरण 'स्प्रिंग फील्ड' नामक जासूस ने एकत्रित किया था, किन्तु उसे भी यह रहस्य प्रकट न करने की हिदायत कर दी गई ।

इन प्रतिबन्धों के बावजूद एक सैनिक ने अपने बेटे को जो पत्र लिखा था उसमें गिरे हुए मृतकों तथा जीवितों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी । उसमें प्राणियों को चार फूट का बताया गया था और शरीर बलदार होने के कारण किसी प्रकार की पोशाक न पहने होने का उल्लेख किया गया था । यह पत्र अखबारों के हाथ लग गया और उसकी चर्चा जनता की जानकारी तक पहुँची । किन्तु उसके बाद यह पता नहीं चला कि उस मलवे का तथा मृत एवं जीवित शरीरों का क्या हुआ ।

यह एक विवरण है जिससे कुछ घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है । रूस में, दूसरे देशों में, पर्वतों, जंगलों या जलाशयों में भी ऐसी घटनाएँ घटी हैं और उन्हें जिन्होंने पाया हो उन्होंने 'टॉप सीक्रेट' की तरह अपने कब्जे में कर लिया हो तो क्या आश्चर्य है ।

फिर यह आवश्यक नहीं कि जो अन्तरिक्षीय विमान धरती पर आते हों वे सभी गिर पड़ते हैं । यह हो सकता है कि सकुशल वापस लौटने वालों और अपने जन्म नक्षत्रों में पृथ्वी की वर्तमान स्थिति के विवरण पहुँचाते हों ।

निश्चय ही यह कोई आक्रामक योजना नहीं है जिससे हमें किसी अन्तर्ग्रही विपत्ति का आशंका से भयभीत होना पड़े । यह एक खोज प्रयास है जिसका उद्देश्य पारस्परिक आदान-प्रदान और सहयोग का सिलसिला आगे बढ़ाना ही हो सकता है । जैसा कि मय-सभ्यता अथवा दूसरे अन्य अवसरों पर होता रहा है ।

कभी इस पृथ्वी पर विकसित सभ्यता भी रही है ?

भारत के कई भागों में कुछ ऐसी विशालकाय गुफाएँ पायी जाती हैं जो प्राकृतिक नहीं मनुष्यकृत हैं । इनके बारे में कहा जाता है कि यह किन्हीं सिद्ध पुरुष स्तर के शासकों के राजमहल तथा किले की तरह प्रयुक्त होती थीं ।

आन्ध्र प्रदेश के कर्नूल जिले में फैली 'बेलुम गुफाएँ' संसार की सबसे लम्बी और प्राचीन गुफाएँ मानी जाती हैं । इसका पता १९८१-८२ में पश्चिम जर्मनी के डेनियल गेवर ने लगाया था और सवा दो किलोमीटर अन्दर तक प्रविष्ट होने में सफल हुए थे । उनका कहना है कि सम्पूर्ण गुफा का सर्वेक्षण करने में चार वर्ष का समय लग सकता है ।

'बेलुम गुफाएँ' चहुँ ओर पर्वत शृंखलाओं से घिरे हुए बेलुम नामक गाँव में स्थित हैं । सभी गुफाओं के प्रवेश द्वार बड़ी-बड़ी चट्टानों से ढके हुए हैं । गाँव के मध्य एक जलकुंड है जिसके अन्दर

पानी का प्रवाह इतनी तीव्र गति से होता रहता है जिससे बड़ी-बड़ी भवरें बनती रहती हैं । दस हॉर्स पावर की मोटर लगाकर पानी को बाहर फेंकने के घण्टों प्रयास किए गए किन्तु पानी का स्तर एक इंच भी कम नहीं हुआ । कुंड से सौ मीटर की दूरी पर एक शिव मन्दिर है जो वर्षा के दिनों में डूब जाता है । यह जलराशि शिवलिंग के चारों ओर वलयाकार चक्कर काटती है जिसके कारणों का पता अभी तक वैज्ञानिक नहीं लगा पाये हैं ।

यहाँ की एक गुफा के तीन प्रवेश द्वार हैं जिनमें से एक कुँए जैसा गहरा है और दूसरे की गहराई कम है । यह झाड़ियों से ढका हुआ है । इस रास्ते से होकर अन्दर प्रवेश किया जा सकता है । तीसरा द्वार खड़ा है जहाँ पानी बहुत अधिक गहरा है । इसमें मत्स्याकार छोटे-छोटे पत्थर लगे हुए हैं । ऊपर सौ मीटर तक साफ चिकनी अण्डाकार छत है । देखने पर यह एक छोटा-सा आधुनिक ऑडिटोरियम जैसा लगता है । सौ मीटर संकरे मार्ग को तय करने के पश्चात् सुन्दर पत्थरों से सजा हुआ एक विशालकाय राजमहल जैसा स्थान आता है । इसका दृश्य बहुत ही मनोरम है । स्थानीय लोग बताते हैं कि कभी-कभी यहाँ एक संन्यासी तपस्या करने आते थे ।

गेबर ने अन्वेषी दल के अपने अन्य सहयोगियों के साथ इन गुफाओं का २१०० मीटर तक सर्वेक्षण किया है । उन्हें इनके भीतर लाल और काले रंग के तीन मिट्टी के पात्र मिले हैं जिन्हें कार्बोनीफेरस युग का माना जाता है । गुफाओं के बीच में पानी की धाराएँ बहती हैं जिनका तापमान सदैव एक-सा बना रहता है ।

गेबर के अनुसार विश्व की सबसे लम्बी गुफाएँ एवं प्राचीन गुफाओं की शृंखला में बेलुम गुफाएँ प्रथम एवं द्वितीय स्थान पर हैं । विशाखापट्टनम् की बोरी गुफाएँ तृतीय, कर्नूल के मांगटी की गुफाएँ चतुर्थ एवं सोरंगम् गुफाएँ पाँचवें नम्बर पर हैं । बोरी गुफाएँ जमीन के अन्दर ४० मीटर गहराई तक गई हैं । इन विशालकाय गुफाओं के भीतर ४० मीटर चौड़ी तथा ६० मीटर लम्बी रिक्त जगह है । यहाँ से एक अन्य गुफा को ८६ मीटर गहरा दूसरा मार्ग गया है जिसकी लम्बाई २५० मीटर है । द्रोणाचलम् ताल्लुका के 'नल्लमेकलपल्ली' और 'जक्कसानिकुंटला' की गुफाओं में से एक के भीतर एक सरोवर और मण्डप है । मण्डप पर 'सांद्रवेदम्' अंकित है जिसका अर्थ होता है— गुफाशास्त्र । इनके अन्दर का वातावरण बहुत ही विलक्षण बताया जाता है । ये गुफाएँ भारत की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नत अवस्था का रहस्योद्घाटन करती हैं ।

दक्षिण साइबेरिया के हरे-भरे घास के मैदान, मैक्सिको के घने जंगल तथा मध्य एशिया के रेगिस्तान अपनी प्राकृतिक विलक्षणताओं के लिए प्रख्यात तो हैं हीं, साथ ही अपने गर्भ में कुछ ऐसे रहस्य भी छुपाये हुए हैं जो यह बताते हैं कि कभी यहाँ विकसित मानव सभ्यता का निवास था ।

रूस के प्रख्यात इतिहासवेत्ता वेसली रेडलोव ने उन्नीसवीं शताब्दी में दक्षिण साइबेरिया के 'अल्टाई पर्वतों' पर विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े टीलों को खोज निकाला था । ये दो हजार वर्ष से भी अधिक पुराने हैं । कहा जाता है कि पश्चिम योरोप से आये स्काइथियन्स योद्धाओं की ये कब्रें हैं, जिनमें उनके शव दफ्न हैं ।

रूस के दक्षिण भाग मे एक विशाल भू-क्षेत्र पर खुदाई करने पर बहुत ही प्राचीन इमारतों के खण्डहर मिले हैं । बर्फ की चट्टानों से ढके अन्धकारयुक्त कमरों में मृतकों के शरीर, स्वर्ण आभूषण, पोशाकें एवं सुन्दर फर्नीचर पाये गए हैं । मध्य रूस के 'सोलाखा' नामक स्थान से खुदाई के समय एक स्वर्णनिर्मित कंघा प्राप्त हुआ है जिस पर स्काइथियन्स योद्धाओं के चित्र बने हुए हैं । इसी तरह कटंडा के निकट पेजीयर्क घाटी की कई पहाड़ियों में विभिन्न तरह के मुलायम चमड़े एवं काष्ठ निर्मित वस्तुएँ, कपड़े, आभूषण आदि प्राप्त हुए हैं । सुन्दर कसीदाकारी की हुई दरियाँ, शाल आदि उपलब्ध हुए हैं । इन पहाड़ियों पर उत्खनन के समय दीवालों पर पशु-पक्षियों, बैल-गाड़ियों, राक्षसों आदि के चित्रांकन की उत्कृष्ट शैली देखने को मिलती है । चिकित्सा उपचार एवं बेहोश करने में प्रयुक्त होने वाली जड़ी बूटियाँ व उन्हें पीसने एवं गरम करने के यन्त्र उपकरण भी प्राप्त हुए हैं । कम्बल और बर्फ में लपेटकर रखे गए सुरक्षित शव इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उस समय के लोगों का ज्ञान वर्तमान वैज्ञानिक युग के लोगों से कम नहीं था । भवन निर्माण की कला में भी वे दक्ष थे । वन्य प्रदेश में ऊँचाई पर निर्मित गुम्बज वाले महलों के ध्वंशावशेष अभी भी जहाँ-तहाँ बिखरे दिखाई देते हैं । इनकी संरचना रेफ्रीजरेटर जैसी है । यहाँ की इमारतों और गूढ़ाक्षरों से बने कैलण्डरों की तुलना मध्य अमेरिका के 'मय' सभ्यता से की जा सकती है ।

मूर्धन्य वैज्ञानिक एलवर्टो रुज ने १९४९ में एक अति प्राचीन धर्म स्थल को ढूँढ़ निकाला है जिसे प्लेंक्यू मन्दिर के नाम से जाना जाता था । सारा मन्दिर कलात्मक पत्थरों से बना हुआ है । इसमें मनुष्य के त्याग बलिदान को प्रदर्शित करने वाले सुन्दर दृश्य चित्रांकित किए गए हैं ।

प्राचीन विकसित सभ्यता के अनेक अलौकिक दृश्य आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान में १९६१ में सुप्रसिद्ध खान विशेषज्ञ माइकेल टेरी ने खोज निकाले हैं । इनमें मानव के सिर में सींग तथा मुकुट भी पाये गए हैं । जिसकी पुष्टि 'आस्ट्रेलियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एवो-रिजिनल्सटडीर्ज' ने भी की है । इसका अध्ययन साउथ आस्ट्रेलियन म्यूजियम के सुप्रसिद्ध शरीर विज्ञानी रॉबर्ट एडवर्ड ने किया और उनसे सम्बन्धित अनेक तथ्यों को प्रकाशित किया है । उन्होंने उस समय की अनेकानेक कलाकृतियों का भी अध्ययन किया है । उनका कथन है कि ये कलाकार वस्तुतः आस्ट्रेलिया के बाहर से आये थे ।

दक्षिण अमेरिका के पहाड़ों पर यक्सुना से कोवा तक ३० से ४० फीट चौड़ी एवं ६२.५ मील लम्बी पक्की सड़क बनी हुई है जिसकी ऊपरी सतह सीमेन्ट की है । पूर्वजों की प्रखर बुद्धि एवं कुशल इंजीनियर होने का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है । इसके अतिरिक्त पूर्व पाषाण एवं उत्तर पाषाण काल के कुछ अवशेषों पर विभिन्न प्रकार की रचनाएँ रेखांकन आदि पाये गए हैं जो तत्कालीन सभ्यता के बौद्धिक विकास की ओर इंगित करते हैं । इस तरह के अवशेष योरोप के अधिकांश भागों में पाये जाते हैं, जिन पर पेड़-पौधे, सर्प एवं अन्यान्य सुन्दर आकृतियाँ अंकित की हुई हैं । निसर्ग में फैले जहाँ-जहाँ मानवीय कृत्यों को देखते हुए नृतत्ववेत्ता भी अब यह मानने लगे हैं कि पूर्वकालिक लोग हमसे कहीं अधिक सक्षम एवं सभ्य थे ।

उपरोक्त पुरातन प्रमाणों के रहते अब यह कहना अनुपयुक्त ही होगा कि बंदर ही विकसित होकर मनुष्य बना है । सच तो यह है कि हम पूर्वजों की तुलना में हर क्षेत्र में नीचे गिरते आये हैं ।

देव सत्ताओं का धरा-द्वार पर आगमन

सर्वांगपूर्ण मनुष्य जिस बीज से उत्पन्न हुआ है, उसके कोई लक्षण इस धरती की रासायनिक संरचना से दृष्टिगोचर नहीं होते । यहाँ सभी कुछ ऐसा अलौकिक है कि यदि उसे दैवी अनुदान कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी ।

पृथ्वी पर यदाकदा ऐसे विलक्षण घटनाक्रम घटते रहते हैं, जो इस मान्यता की पुष्टि करते हैं । उड़नतश्तरियों (यू. एफ. ओ.—अनआइडेन्टीफाइड फ्लाइंग ऑब्जेक्ट्स) का पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रकट होकर फिर चले जाना ऐसा ही अबूझ पहेलियों में से है ।

पाश्चात्य देशों में उड़नतश्तरियों को यू. एफ. ओ. के नाम से जाना जाता है । सन् १९६९ में अमेरिका की हवाई सेना ने यू. एफ. ओ. अनुसन्धान की २२वीं वर्षगाँठ को मनाया । इसकी रिपोर्ट को ८४०० पृष्ठों में प्रकाशित किया गया, जिसमें १२८६४ मायावी दृश्यों का प्रदर्शन किया गया है ।

अमेरिका के ५४ प्रतिशत व्यक्ति उड़नतश्तरी को सत्य मानते हैं । ११ प्रतिशत का मत है कि इस प्रकार के दृश्य ब्रह्माण्ड की विलक्षणता के कारण हो सकते हैं । अमेरिका के प्रसिद्ध उड़नतश्तरी विशेषज्ञों (यूफोलॉजिस्ट) जे. एलैन हाइनेक एवं जेम्स हार्डर को मान्यता दी जाती है । वे आजकल कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं । इन्होंने वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं अनुभवों से यू. एफ. ओ. के अस्तित्व को प्रमाणित किया है । समय-समय पर जिन अनेकों व्यक्तियों ने उड़नतश्तरियाँ देखीं उनके व्यक्तित्वों को भी इन्होंने एकत्र किया है ।

१८ अक्टूबर, १९७३ को मैंसफील्ड के पास ७५० मीटर की ऊँचाई पर एक अलौकिक दृश्य देखा गया । अमेरिकी सेना के कैप्टेन लॉरेंस कौहन ने उस चमकीले दृश्य को देखा तो उसने भयभीत होकर अपने हैलीकोप्टर को नीचे उतारा । उसके साथ चार व्यक्ति और भी थे । कैप्टेन लॉरेंस ने बताया कि धातु निर्मित यह एक उड़नतश्तरी १५० मीटर की ऊँचाई पर उनके निकट स्थिर बनी रही । इसकी लम्बाई १५-१८ मीटर तक थी । उसने बताया कि मुझे अचानक धक्का सा लगा । मेरा हैलीकॉप्टर उस विचित्र तश्तरी की आकर्षण शक्ति से १००० मीटर की ऊँचाई तक उठता चला गया ।

२ नवम्बर, १९७१ को हैल्फोस के निवासी रोनाल्ड जॉन्सन ने अचानक ही एक गड़गड़ाहट की ध्वनि सुनी । जमीन से ६० सेमी. की ऊँचाई पर उसने एक चमकीले दृश्य को देखा और वह उड़नतश्तरी सीधी ऊपर की ओर चढ़ती चली गई । रोनाल्ड १० मिनट तक बेहोश रहा । उसने २.५ मीटर व्यास की उड़नतश्तरी को अपने माता-पिता को भी दिखाया । धीरे-धीरे यह चमक कम होती चली गई ।

५ नवम्बर, १९७५ को सात नवयुवक लकड़हारे अपने घर को लौट रहे थे । अचानक ही उन्हें परिभ्रमण करती हुई उड़नतश्तरी दृष्टिगोचर हुई । २२ वर्षीय ट्रेविस वाल्टन ट्रक से कूद कर इसकी ओर दौड़ा । उसके साथी तो भयभीत होकर लौट गए लेकिन वह वहाँ से गायब हो गया । ६ दिन बाद उसने अपने साथी हैवर को टेलीफोन से सूचित किया कि "मुझे यू. एफ. ओ. के बैठे व्यक्ति ले गए थे, जिसकी लम्बाई १५ मीटर थी । उनकी विशाल भूरी आँखें थीं और सिर पर बाल भी नहीं थे ।" इस सभी व्यक्तियों के साक्षात्कार के लिए लाइडिटैक्टर का प्रयोग किया गया, जिसमें पाँच व्यक्तियों को प्रमाणित ठहराया गया ।

श्रीमती जॉन्सन ने उड़नतश्तरियों के फोटो भी लिए हैं । क्योंकि उनके कृषि फार्म पर ये कई बार उतर चुकी हैं । इनमें भेड़िए जैसी आकृति की लड़की को उन्होंने अपने समीप आते हुए कई बार देखा है ।

यू. एफ. ओ. की विलक्षणताओं का पता लगाने हेतु 'एरियल फैनोमैना रिचर्स ऑर्गनाइजेशन' की स्थापना हुई है । जिसमें विभिन्न प्रकार की घटनाओं को प्रामाणिकता की कसौटी पर कसा जाता है ।

इतिहासकार एरिक ह्वोन दानिकेन के अनुसार विश्व के परिभ्रमण के समय उन्होंने ऐसे तथ्य एकत्र किए हैं जिनमें ज्ञात होता है कि बाह्य अन्तरिक्ष के जीवधारी पृथ्वी पर आये हैं ।

अफ्रीका के दोयो जाति और दक्षिण अमेरिका के कपायो जाति का विश्वास है कि उनके त्यौहारों में उनके देवता अन्तरिक्ष से आते हैं और त्यौहार के बाद चले जाते हैं । पेरू देश के लीमा शहर के पास मरुस्थल में दो यान उतरने का प्रमाण उन्होंने पाया है । जो अपने ग्रह के नहीं हैं । इनके लोक-लोकान्तरों से आने की बात ही सही मालूम पड़ती है ।

सन् १९७९ में ब्रेवेर्सवाइल, इन्डियाना में पत्थरों के कब्रिस्तानी टीले की खुदाई कराने पर ६ फीट आठ इंच लम्बा एक नर कंकाल निकाला । कंकाल की गरदन के चारों तरफ माइका से बना हार लिपटा हुआ था और पैर के पास कच्ची मिट्टी से बनी मनुष्य की एक प्रतिमा खड़ी थी । ५ फीट ऊँचे और ७१ फीट घेरे वाले इस टीले की खुदाई इन्डियाना के सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञों, न्यूयार्क तथा ओहियो के मूर्धन्य वैज्ञानिकों और एक स्थानीय चिकित्सक डॉ. चार्ल्स ग्रीन की देखरेख में कराई गई थी । यह टीला मि. रॉबिन्सन के निजी स्वामित्व में था । अतः नर कंकाल रॉबिन्सन के पास ही सुरक्षित एक मिल में रख दिया गया था । बाद में यह एक भयंकर बाढ़ में बह गया । इस विलक्षण आकार-प्रकार के जीव की पृथ्वीवासी होने की मान्यता नहीं स्पष्ट होती । इस कंकाल की बनावट भी विचित्र थी तथा यह अधिक पुराना भी न होने से लगता है पिछले एक-दो शतकों में कभी किसी उड़नतश्तरी के ध्वस्त होने पर यह यहीं रह गया ।

सुप्रसिद्ध जीवाश्म विज्ञानी विलियम जे. मीस्टर को पुराने जीव-जन्तुओं के फासिल्स एकत्र करने का बहुत शौक था । जून सन् १९६८ में ट्राइलोवाइट नामक अकेशरुकीय जीव के जीवाश्म ढूँढ़ते हुए वे सपरिवार डेल्टा, यूटाह से ४३ मील पश्चिम एन्टिलोप स्प्रिंग पहुँच गए । यह ट्राइलोवाइट से भरा पूरा माना जाता था । मीस्टर ने जैसे ही दो इंच मोटे पत्थर के पहिए पर हथौड़े से बार किया, वैसे ही शैल पट्ट दो भागों में पुस्तक की भाँति खुल गया । शैल पट्ट पर सैण्डिल पहने हुए मनुष्य के पद चिह्न अंकित थे । सैण्डिल पहने हुए व्यक्ति द्वारा पैरों तले अनेकों

जीवित ट्राइलोवाइट कुचल दिए गए थे । सैण्डिल सवा दस इंच लम्बी और साढ़े तीन इंच चौड़ी थी ।

ट्राइलोवाइट, केंकड़े और झींगी समुदाय के सदस्य थे जो समुद्र में पाये जाते थे । ३२०००००००० वर्ष तक फलते-फूलते रहने के बाद २८०००००००० वर्ष पूर्व ट्राइलोवाइट विलुप्त हो गए थे । मनुष्य के उद्भव विकास के सम्बन्ध में वैज्ञानिक मान्यताओं-धारणाओं के आधार पर मानव का इस धरती पर पदार्पण १०००००० से २०००००० वर्ष से अधिक पुराना नहीं है और सभ्य बनने तथा जूते बनाने-पहनने की कला तो उसने कुछ हजार वर्षों से ही सीखी है ।

मीस्टर ने पद चिह्न युक्त शैल खण्ड को यूटाह विश्वविद्यालय के धातु विज्ञानी प्राध्यापक मेल्विन कूक को दिखाया जिन्होंने इस दुर्लभ फुट प्रिन्ट को किसी भू-विज्ञानी विशेषज्ञ को दिखाने के लिए परामर्श दिया । मीस्टर ने 'द डेजर्ट न्यूज' नामक पत्रिका में इस पद चिह्न के बारे में पूर्ण विवरण प्रकाशित कराया, जिससे प्रभावित होकर यूटाह विश्वविद्यालय के म्यूजियम ऑफ अर्थसाइन्सेस के संग्रहाध्यक्ष जेम्स मेडसन ने पद चिह्नों का निरीक्षण विश्लेषण करने पर पाया कि ये पद चिह्न ३० से ६० करोड़ वर्ष पुराने हैं । जेम्स ने बताया है कि ६०००००००० वर्ष पूर्व इस धरती पर न तो मनुष्य थे और न ही बन्दरों का उद्भव विकास हुआ था । यह पहेली बनी हुई है कि वह फॉसिल फिर किसका था ?

ऐसे घटनाक्रम जिनका कोई तर्कसम्मत समाधान नहीं है एवं ऐसी विलक्षण खोजें जो अति मानवी मालूम पड़ती हैं, इस मान्यता की पुष्टि करती हैं कि मनुष्य यहाँ नहीं उपजा, कहीं और से सम्भवतः देवलोक से आया है । अभी जब तक इस सम्बन्ध में गुत्थियाँ नहीं सुलझ जातीं, इस अविज्ञात पर शोध जारी रहना चाहिए ।

आत्माएँ धरती पर उतरीं और ....

ब्राजील के दो टेलीविजन इंजीनियर मिगले वायना जिसकी आयु कोई ३५ वर्ष होगी तथा मैनुअल क्रूज, जो ३२ वर्ष का था—दोनों की अन्तरिक्ष के रहस्य जानने की उत्कट अभिलाषा रहती थी । दोनों ने मिलकर एक प्रयोगशाला बनाई थी और उसमें वे विभिन्न प्रकार के प्रयोग किया करते थे । कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने अन्तरिक्षवासियों को सन्देश प्रेषित करने के कुछ सूत्र ढूँढ़ लिए थे । वे कितने सत्य थे, इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता ।

किन्तु उनकी मृत्यु ऐसे रहस्यमय ढंग से हुई, जिसका वर्णन सुनकर महर्षि वेदव्यास के वेदान्त दर्शन में अध्यात्म ३, पाद ३ के ५३-५४ सूत्रों में जीवात्मा की स्थिति सत्य प्रमाणित होने लगती हैं, कहा है—

व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ।

—उत्तर मीमांसा ३/३/५४

अर्थात्—शरीर से आत्मा भिन्न है, क्योंकि शरीर के विद्यमान होते हुए भी उसमें आत्मा नहीं रहती ।"

तात्पर्य यह कि शरीर एक प्रकार का क्षेत्र है । उसे आत्मा का वाहन भी कह सकते हैं । आत्मा अति सूक्ष्म और क्षेत्र है, वह अपने संकल्प और कर्मानुसार शरीर बदल सकती और लोकान्तरों में भी जा सकती है । जर्मन वैज्ञानिक हेकल ने अपने ग्रन्थ 'दि रिडल ऑफ दि यूनिवर्स' में यह सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए बताया है कि परमाणुओं में चेतनता निहित है । जब तक आत्मा शरीर में रहता है, तब तक वह चेतनवत् प्रतीत होता है । आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि इन्द्रियों की सहायता के बिना भी बाह्य जगत् का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, आत्मा किसी भी लोक और प्रदेश में विचरण कर वहाँ की तन्मात्राओं की अनुभूति कर सकती है ।

अगस्त १९६६ की बात है । उक्त दोनों वैज्ञानिक कैम्पोस से रिडो-डि-जानेरियो के लिए निकले । इसी वर्ष साओ पोलो में कोई १०० मील उत्तर-पश्चिम की ओर आकाश में कोई गोलाकार वस्तु तेजी से चक्कर काट रही थी । बाद में उससे कोई द्रव्य निकला, जिससे कम्पिनास कस्बे की सारी सड़कें गीली हो गईं । वैज्ञानिकों ने उक्त द्रव्य का विश्लेषण किया तो यह पाया कि वह पिघला हुआ शुद्ध द्रव्य था । अनुमान है कि वह गोलाकार वस्तु कोई उड़नतश्तरी था, किसी अन्य ग्रह से आयी थी । उसमें बैठी हुई आत्माओं ने या तो प्रयोग के लिए या फिर संकेत देने की दृष्टि से ही वह द्रव्य पृथ्वी में डाला होगा ।

दोनों इंजीनियर घर से ६ बचकर ३० मिनट पर निकले । क्रूज की धर्मपत्नी नेली ने एक हजार पाउण्ड के नोट एक कागज में बाँधकर क्रूज को दिए, जिससे वह आवश्यक वस्तुएँ खरीद सके । उन्हें टेलीविजन के कुछ पुर्जे और कार खरीदनी थी । दोपहर के बाद दोनों नितराय शहर पहुँचे। वहाँ उन्होंने बरसाती कोट खरीदे । दुकानदार हैरान था कि इतनी भयंकर गर्मी में बरसाती कोट खरीदने का क्या कारण हो सकता है ?

वहाँ से चलकर दोनों का एक होटल में आये और 'मिनरल वाटर' की कुछ बोतलें खरीदीं । यह होटल विन्टेम पहाड़ी की तलहटी में है । वहाँ से निकलकर क्रूज और वायना दोनों विन्टेम पहाड़ी चढ़ने लगे । उन्हें ऊपर चढ़ते हुए बहुत लोगों ने देखें । होटल की नौकरानी मारिया सिल्वा ने उन्हें १००० फुट ऊँची पहाड़ी पर पहुँचते देखा और उसके बाद जो कुछ हुआ, वह अब तक भी लोगों के लिए महान् आश्चर्य एवं रहस्य का कारण बना हुआ है ।

जैसे ही दोनों पहाड़ पर चढ़े कोई उड़नतश्तरी के आकार की वस्तु पहाड़ी पर उतरती दिखाई दी । उस समाचार की पुष्टि नगर के प्रमुख दलाल की पत्नी श्रीमती ग्रासिन्द्रा सूजा ने भी की है । उन्होंने लोगों को बताया कि कोई विचित्र वस्तु आकाश से विन्टेम पहाड़ी पर उतर रही थी । उसका रंग हरा, पीला और किनारे आग की तरह लाल रंग के थे ।

विन्टेम पहाड़ी घने जंगलों वाला स्थान है और पिछले २५ वर्षों से वहाँ अक्सर उड़नतश्तरियाँ देखी जाती रही हैं । कुछ लोगों की तो निश्चित धारणा ही हो गई है कि जिस तरह पृथ्वीवासी मंगल, शुक्र आदि ग्रहों में जाने के लिए चन्द्रमा को स्टेशन बना रहे हैं, उसी प्रकार अन्तरिक्षवासियों ने ब्राजील के विन्टेम पहाड़ को यहाँ की परिस्थितियों के अध्ययन का स्टेशन बनाया है । वहाँ प्रायः प्रतिदिन कोई विचित्र वस्तु आकाश से उतरती और कुछ देर ठहरकर चली जाती है ।

क्रूज और वायना के वहाँ पहुँचने के बाद लोगों ने उड़नतश्तरी तो देखी किन्तु रात तक क्या हुआ, इस सम्बन्ध में

कुछ पता नहीं चल पाया । प्रातःकाल कुछ लड़के शिकार खेलने के लिए पहाड़ी पर चढ़े । वहाँ उन्होंने दोनों युवकों को मरा हुआ पड़ा देखा । बाद में यह खबर सारे शहर में फैल गई । पुलिस ने जाकर देखा तो आश्चर्यचकित रह गई । उनकी मृत्यु बड़े ही रहस्यमय ढंग से हुई ।

दोनों बरसाती कोट पहने थे । पर कोट के नीचे कपड़ों में जरा भी कहीं सलवट न थी जिससे स्पष्ट है कि किसी से हाथा-पायी नहीं हुई । दोनों के शरीर में कोई घाव नहीं थे । उसके पास एक पर्चा पड़ा पाया गया, उसमें कई दिन के प्रयोग के लिए कुछ गोलियों के नाम लिखे थे, उससे यह आशंका हुई कि सम्भवतः उन्होंने जहरीली औषधि खाई होगी पर अन्त्यपरीक्षा में उनके शरीर में किसी प्रकार के विष का कोई प्रभाव नहीं पाया गया ।

लाश के पास दो मुखौटे भी थे, उनमें साँस लेने के छेद तो थे पर आँखों के लिए कोई स्थान न था । कुछ रंगीन कागज भी बिखरे थे, उनमें कोई ऐसा सूत्र लिखा था, जिसका कोई भी वैज्ञानिक अर्थ नहीं निकाल पाया । दूसरे दो पर्चों में कुछ संकेत इस तरह थे—"बुधवार—एक गोली, दवा तब नीचे लेट जाओ । दूसरी पर लिखा था शाम को ६ बजकर ३० मिनट पर गोली खाकर चेहरा मुखौटों से ढक लो और संकेत की राह देखो ।"

तिलस्म सी दिखने वाली इन तमाम बातों से अनुमान लगाया कि क्रूज और वायना अन्तरिक्ष से आने वाले उस यान पर चढ़कर किसी अन्य ग्रह को चले गए । उनका सूक्ष्म शरीर ही गया । सम्भवतः वे शरीर को इस तरह सुरक्षित इसलिए छोड़ गए होंगे कि बाद में वे अन्तरिक्ष से लौटकर आयेंगे और अपने शरीर में पुनः प्रवेश लेंगे ।

सूक्ष्म शरीर को बाहर निकालकर पुनः मृत शरीर में प्रवेश के उदाहरण अनेक पौराणिक गाथाओं में मिलते हैं । १९५९ में १७ मई को हिन्दुस्तान में भारतीय सेना के अंग्रेज अफसर श्री एल. पी. फैरल का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त अत्यन्त रोचक वर्णन छपा था । उन्होंने उसमें बताया था—"मैंने एक वृद्ध योगी को एक मृत युवक के शरीर में प्रवेश करते देखा और उससे सम्पर्क स्थापित कर सारा रहस्य ज्ञात किया ।" उन्होंने इस लेख में स्वीकार किया है कि आत्मा की सत्ता शरीर से पृथक् और स्वतन्त्र है और वह अपने अच्छे-बुरे कर्मानुसार पुनर्जन्म और अन्य लोकों का भी आवागमन करता है ।

प्रो. जे. बी. राइन ने भी विचार सक्रमण (टेलीपैथी) और दिव्य-दृष्टि (क्लेयर वायेन्स) के कई प्रयोगात्मक अनुसन्धानों के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि भौतिक उपकरण न हों तो भी दूसरे के विचार और अति दूरस्थ या भविष्य की घटनाओं का ज्ञान हो सकता है । यह भी प्रमाणित किया कि संसार के भिन्न-भिन्न भागों में जीव एक देह का परित्यागकर नया जन्म ग्रहण करते हैं । उनमें से कई को तो पूर्वजन्मों की स्मृति ऐसे ही बनी रहती है, जैसे सोकर जागने के बाद भी पिछले दिन की सारी घटनाएँ याद रहती हैं ।

क्रूज और वायना की लाशों को सुरक्षित रखा जाता तो सम्भव था, उक्त तथ्यों की आश्चर्यजनक खोज होती, किन्तु पुलिस इन सब बातों को मानने के लिए तैयार न थी । पुलिस इन्सपेक्टर जोंस ब्रिटेन-कोर्ट ने दोनों मुखौटे परीक्षण के लिए भेजे पर उनमें किसी प्रकार की रेडियोधर्मी तरंगों की बात पुष्ट नहीं हुई । ब्रिटेन-कोर्ट का दावा था कि जब वे लोग पहाड़ी पर आकर खड़े हुए होंगे, तब उनसे कोई वस्तु टकराई होगी । पर इस स्थिति में भी उनके शरीर में कहीं चोट के निशान तो होते । जिन परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हुई, उन्हें देखकर तो यही लगता है कि उनके साथ सुनियोजित प्रयोग किया जा रहा था ।

वायना के पिता ने उनके प्रयोग की कई विचित्र बातें बताईं और यह आशंका व्यक्त की कि इन दोनों का अन्तरिक्षवासियों से कोई रेडियो सम्बन्ध था और उनकी हत्या अन्तरिक्षवासियों ने ही की ।

जो सबसे आश्चर्य की बात है, वह है कि उस पर्चे का खो जाना जो पुलिस ने मृतकों के पास से प्राप्त किया । उस पर्चे को पुलिस ने तिजोरियों के अन्दर पहरे में रखा था पर उस कागज को कोई बड़े ही रहस्यपूर्ण ढंग से निकाल ले गया । उसका आज तक पता नहीं चल पाया ।

यद्यपि यह सब अनुमान ही है कि हत्या अन्तरिक्षवासियों ने की । सम्भवतः मृत-आत्माएँ वापस आतीं पर उनके शव सुरक्षित नहीं रखे गए और वह कि उस पुर्जे में कुछ ऐसे सूत्र थे, जिनके सहारे उड़नतश्तरियों का रहस्य पकड़ा जा सकता है । यदि भौतिक उपकरणों के माध्यम से पृथ्वीवासी दूसरे ग्रहों में जा सकते हैं तो अन्तरिक्षवासी भी यहाँ आ सकते हैं । हमें तो यह देखना चाहिए कि क्या हम आत्मा का समीप से अध्ययन कर इस तरह की मान्यताओं के द्वारा कल्याण का कोई उपयुक्त हल निकाल सकते हैं और कोई ऐसा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जो जन्म-मृत्यु, लोक-परलोक, पुनर्जन्म के सम्बन्ध में हमारी जिज्ञासाओं का समाधान कर सकता है ?

जिस प्रकार एक देश या एक ही द्वीप के निवासी दूसरे देश या द्वीपों के साथ सम्बन्ध जोड़कर प्रगति, समृद्धि, सुविधा और प्रसन्नता के अनेक साधन उपलब्ध करते हैं, निःसन्देह उसी प्रकार अन्य लोकों के प्रबुद्ध प्राण-धारियों के साथ सम्पर्क साधकर हम अधिकाधिक समर्थ एवं लाभान्वित हो सकते हैं ।

मनुष्य और भूलोक को देवताओं के अनुदान

इस धरती पर जो जीवन है, वह उत्पन्न हुआ या अन्तरिक्ष के किसी लोक से अनुदान की तरह प्राप्त हुआ ? इस सन्दर्भ में अब विश्वस्त तथ्य सामने आते जा रहे हैं और यह माना जाने लगा है कि मनुष्य की सत्ता एवं संरचना पृथ्वी निवासी अन्य प्राणियों की तुलना में इतनी भिन्न है कि उसे किसी देव लोक की सन्तति कहा जाय तो इसे स्वीकार करने के लिए पर्याप्त प्रमाण मिल सकेंगे ।

विकासक्रम के अनुसार मनुष्य की योग्यता तथा साधन सुविधा का विकास अभी थोड़े ही दिन पूर्व हुआ है । उससे पूर्व नर वानरों के रूप में वनमानुषों की तरह निर्वाह करता माना जाता रहा है । यदि यह सही है तो प्रागैतिहासिक काल की ऐसी संरचनाएँ संसार भर में क्यों कर फैली हुई हैं, जिन्हें आज के समुन्नत लोगों से भी कहीं अधिक विकसित और साधन सम्पन्न लोगों द्वारा विनिर्मित ही कहा जा सकता है । जिनके बारे में कोई स्पष्टीकरण विद्वान दे नहीं पाते ।

पृथ्वी पर देव लोक निवासियों के आवागमन के प्रमाण समय-समय पर मिलते रहे हैं और अभी भी मिलते रहते हैं। उड़नतश्तरियों के सम्बन्ध में कई जानकारियाँ ऐसी मिली हैं जिन्हें दृष्टि भ्रम या प्रकृति विपर्यय मात्र कहकर नहीं टाला जा सकता। इसी प्रकार कुछ घटनाएँ ऐसी भी सामने आती रहती हैं जिनमें कई मनुष्य देखते-देखते अदृश्य हो गए। वे या तो फिर लौटे ही नहीं या लौटे तो भिन्न स्थानों पर देखे गए या भिन्न-भिन्न स्थिति में पाये गए।

इन साक्षियों पर दृष्टिपात करने से यह विश्वास करने के अधिकाधिक कारण प्रत्यक्ष होते जाते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि इस धरती के साथ अन्य लोकवासियों-देवताओं का चिरकाल से किसी न किसी रूप में सम्पर्क बना हुआ है और वे अभी भी उसे किसी न किसी रूप में बनाये रहने के लिए अपनी ओर से प्रयत्न करते रहते हैं। अब अपनी बारी है कि उस आदान-प्रदान को अधिक सरल और सफल बनाने के लिए स्वयं भी कुछ प्रयत्न करें और एक ब्रह्माण्ड विरादरी के सदस्य बनकर आज की अपेक्षा अधिक समुन्नत बनने का सौभाग्य कमाएँ।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध खगोलवेत्ता सरफ्रेड हालल ने अपना नवीनतम अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है—'प्रस्तुत प्रमाणों और तथ्यों को देखते हुए डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त सही नहीं मालूम पड़ता है जिसमें एककोशीय जीवों से क्रमशः विकसित होते-होते प्राणियों के वर्त्तमान स्वरूप की शृंखला जोड़ी गई है। जीवन की संरचना इतनी जटिल है कि उसे प्रोटीनों और रसायनों की परिणत नहीं कहा जा सकता। जीवन के विभिन्न घटक अपने आप में पूर्ण हैं और वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी न्यूनाधिक हेर-फेर के साथ यथावत् बने रहते हैं। उदाहरण के लिए मछली को करोड़ों वर्ष अपनी इसी रूप में निर्वाह करते हो गए पर उसमें कोई चमत्कारी परिवर्तन नहीं हुआ है। यही बात अन्य जीवधारियों के सम्बन्ध में भी सोची जा सकती है। यदि बन्दर से विकसित होकर आदमी बना तो फिर शेष जाति के बन्दर दृष्टिगोचर होते हैं वे क्यों उसी आदिम स्थिति में बने हुए हैं?

संसार भर में उपलब्ध होने वाले अद्भुत अवशेषों से इस बात की पुष्टि होती है कि पुरातन काल में किसी उच्च सभ्यता का अस्तित्व रहा है और वह अति मानवी स्तर की रही होगी।

मैक्सिको क्षेत्र में मिले वेधशाला स्तर के प्रायः १०० खण्डहरों को न तो प्रकृति कृत कहा जा सकता है और न मानव निर्मित कहने की बात में कुछ तुक है। फिर वे सब क्या हैं? पेरू की भूमि पर सैकड़ों मील लम्बी ज्यामिति रेखाएँ प्राकृत नहीं वरन् किन्हीं बुद्धिमानों द्वारा हाथ से खोदकर बनाई गई हैं। ये कैसे बनीं? किसने बनाईं?

मध्य एशिया में जावा—कम्पोडिया—अनकोरवाट आदि के खण्डहर भी यही कथा कहते हैं कि मात्र इन्हीं दिनों विज्ञान का बोलवाला नहीं है। इससे पूर्व भी बढ़ी-चढ़ी संस्कृतियों और क्षमताओं वाले लोग रहते थे। मिस्र के पिरामिड इसी तथ्य की साक्षी प्रस्तुत करते हैं। ईस्टर द्वीप तट पर अनेकों विशालकाय पाषाणों से बनी मानवाकृति प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी हैं। इन्हें आकू वाकू कहा जाता है पर इसका पता नहीं चलता कि इस निस्तब्ध क्षेत्र में किसने, किसलिए उतना अति कष्टसाध्य श्रम किया होगा।

गोवा मरुस्थल की चट्टानों पर मनुष्यों के विशालकाय पद चिह्नों के निशान पाये गए हैं। यह करोड़ों वर्ष पुराने हैं! कहा जाता है कि उन दिनों यहाँ कीचड़ थी जो अब जमकर चट्टान बन गई हैं। हो सकता है कोई मनुष्य उधर से निकले हों और उनके भारी चरण चिह्नें उस स्थान पर अपनी स्मृति छोड़ गए हों। ओडेसा नदी के तट पर गुफाओं की एक लम्बी शृंखला है। इनका निर्माण प्राकृत नहीं है, वरन् उन्हीं विकसित उपकरणों के माध्यम से हुआ है। लाखों वर्ष पूर्व आदिम मनुष्य के लिए ऐसे साधन जुटाना कैसे सम्भव हुआ होगा। सहारा मरुस्थल की सफारा पहाड़ियों के समीप फ्रान्सीसी सैनिकों ने विचित्र गुफाओं, चट्टानों और प्रतिमाओं का पता पुरातत्व विभाग को दिया था। इन १६ फुट ऊँची असाधारण प्रतिमाओं को शोधकर्त्ता प्रो. लहोते ने 'मंगल ग्रह के देवता' नाम दिया था। उन्होंने वैसे ही वस्त्र पहन रखे हैं जो कि इन दिनों अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा पहने जाते हैं।

रूस के इटरूस्किया क्षेत्र में एक अति प्राचीन पाषाण शिला मिली है। जिस पर राडार उड़नतश्तरी की आकृति है और उसमें बैठने वाला अन्तरिक्ष-सूट पहने हुए है।

आस्ट्रिया के माल्जवर्ग नगर के कुछ समय पूर्व एक ७८५ ग्राम का पादप का टुकड़ा मिला है। यह पाँच करोड़ वर्ष से भी अधिक पुराना आंका गया है। यह इतना पुराना है जिस समय तक मनुष्य का अस्तित्व भी नहीं बन पाया था।

दक्षिण अमेरिका में एण्डीज पर्वत माला के अंचल में एक झील है रिरिकाज। इसके तट पर अत्यन्त प्राचीन सूर्य मन्दिर मिला है। उसमें एक ऐसी वेधशाला मिली है जो तत्कालीन काल गणना का परिचय देती है। इनमें २६० दिन का वर्ष और २४-२५ दिन के महीने के हिसाब से सारा गणित किया हुआ है। इस क्षेत्र में लम्बी दूरी तक मीलों तक बिखरी हुई ज्यामिति रेखाएँ खुदी हुई पायी गई हैं। आश्चर्य यह है कि यह खुदाई करके चमकदार पत्थरों से भरी गई हैं। इन्हें चाँदनी रात में हवाई जहाज से भली प्रकार चमकता देखा जा सकता है।

यह कृतियाँ ऐसी हैं जिनसे उस समय की सभ्यता तथा दक्षता का पता चलता है जबकि जीव विज्ञानियों के अनुसार मनुष्य नंगा फिरता था और मात्र पत्थरों के उपकरण काम में लाता था। ऐसी दशा में ये निर्माण किसने किए? इतनी जानकारी और साधन सामग्री कहाँ से आयी? इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए किन्हीं अन्य लोकवासियों की कृति या सहायता की संगति बिठानी पड़ती है।

सभी देशों में पाये जाने वाले विभिन्न पुराण गाथाओं में अन्य लोकवासियों के साथ पृथ्वी वालों के चलते रहे सम्बन्ध सूत्रों का वर्णन है। इनके पीछे कुछ आधार होने की बात भी सर्वथा उपहासास्पद नहीं समझी जानी चाहिए। अभी भी उस स्तर के प्रमाण पुरातत्व वेत्ताओं को मिल रहे हैं जिनमें उन पदार्थों को इतर लोक वाली कोई अनुकृति कह कर झुठलाया नहीं जा सकता।

'इन्टेलिजेंट लाइफ इन दि युनिवर्स' ग्रन्थ में वेबोलीन क्षेत्र के भूतकालीन इतिहास के साथ जुड़े हुए अध्यायों पर सुविस्तृत प्रकाश डाला गया है और तथ्यों के साथ यह प्रमाणित किया गया है कि सुमेर तथा अक्कद देशवासियों की कला, संस्कृति तथा वैज्ञानिक क्षमता बहुत आगे बढ़ी-चढ़ी थी। यह सब उन दिनों की बात है जब मानवी विकास का पिछड़ा अध्याय कहा जाता

है । उन पिछड़ी परिस्थितियों में आज की प्रगति से भी ऊँची स्थिति पर होना यह बताता है कि विकास क्रमिक गति से नहीं हुआ, वरन् या तो सनातन प्रवाह से बढ़ा या अनायास उछला है । जो हो, इस प्रगति प्रक्रिया में अन्य लोकवासियों का हाथ अवश्य रहा है ।

अन्तरिक्ष में जीवन विषय पर लम्बी शोध करने वाले प्रो. जे. हाइन ने विश्वासपूर्वक कहा है—'अन्य लोकों में भी बुद्धिमान प्राणियों का निवास, उसके साथ साधने के लिए हम भूलोक निवासियों को विशेष रूप से प्रयत्न करने चाहिए ।'

अब से २५०० वर्ष पूर्व जन्मे तत्कालीन महान् तत्व वेत्ता 'हेराल्कीट्स' ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया था कि ब्रह्माण्ड के लोक-लोकान्तरों में न केवल समुन्नत स्तर के देव मानव रहते हैं वरन् वे धरती के साथ सम्पर्क साधने तथा सहयोग, आदान-प्रदान के लिए भी उत्सुक रहते हैं । इस प्रतिपादन के पक्ष में उन्होंने अनेकों तर्क और तथ्य भी प्रस्तुत किए थे । साथ ही वे यह भी कहते थे कि सत्य अनन्त है । मनुष्य उसमें से अपने विकास स्तर के अनुरूप एक सीमित भाग ही उपलब्ध कर पाता है । इसलिए जो इन दिनों देखा समझा जा रहा है, उसी को सब कुछ नहीं मान बैठना चाहिए, वरन् अविज्ञात की खोज के लिए प्रयत्नरत रहना चाहिए । वे देव मानवों के सम्बन्ध में भी यह तर्क प्रस्तुत करते थे । इस तथ्य के समर्थन में जो तथ्य मिलते हैं उन्हें आधार मानकर यदि चलते रहा जाय तो हम चैतन्य जगत की किसी सुविकसित बिरादरी के सदस्य बन सकते हैं ।

हेराल्कीट्स के प्रतिपादनों से प्रभावित कितने ही मनीषियों ने इस सन्दर्भ में अपने प्रस्तुतीकरण किए हैं । उन्होंने इस शृंखला को और भी आगे बढ़ाया है और विज्ञजनों में यह आशा विश्वास उत्पन्न किया है कि वे इस क्षेत्र का महत्त्व समझें और अनुसन्धान में शिथिलता न आने दें । ऐसे विद्वानों में क्रेम अमलेण्ड, एण्ड्र थॉमस, हरमन कान, एल, दियोन, लेविस, रिचर्ड, यंग, एरिक वान डेनिकेन आदि की गणना अग्रणियों में की जाती है ।

महान् वैज्ञानिकों में से कुछ के विचार इस सन्दर्भ में बहुत विचारणीय हैं । आइन्स्टीन ने एक भेंट वार्ता में प्रो. चार्ल्स हैप गुड से कहा था कि अन्य लोकवासियों के सम्बन्ध में समुचित प्रमाण एकत्रित किए बिना सार्वजनिक प्रतिपादन करना तो ठीक न होगा किन्तु मैं व्यक्तिगत रूप से यह विश्वास करता हूँ कि प्रागैतिहासिक अवधि में अन्य लोकवासियों का आवागमन हमारी धरती पर रहा है ।

अमेरिकी वैज्ञानिक चार्ल्सफोर्ट ने अपने ग्रन्थ 'दि बुक ऑफ दि डैम्ड' में लिखा है कि मनुष्य के वास्तविक पूर्वज अन्तरिक्षवासी उच्च सभ्यता निभाते रहे हैं । प्रो. हरमैन हरवर्थ, जिन्हें रॉकिट सिद्धान्तों का जनक माना है, ने कहा था—भूतकाल में पृथ्वी पर अन्य लोकवासियों के आवागमन का सिद्धान्त मुझे असत्य नहीं लगता ।

'स्टेंजर्स फ्रॉम दि इकाइ' ग्रन्थ के लेखक विज्ञानी ब्रेड स्टेयर ने इन दिनों धरती पर उतरने वाली उड़नतश्तरियों की विवेचना करते हुए कहा है—ये उन्हीं लोगों का परिचय देती हैं जिन्होंने भूतकाल में मानव अस्तित्व उसके विकास को समर्थ बनाने में योगदान दिया होगा । वे धरतीवासी नहीं वरन् अन्य लोक से आते हैं, बुद्धि की दृष्टि से समर्थ प्रतिभावान हैं । जीवशास्त्री टी. ऐन्डरसन ने अपने ग्रन्थ 'ए बायोलॉजिस्ट लुक्स एवं यू. एफ. ओ.' में उड़नतश्तरियों को दृष्टिभ्रम नहीं माना और उन्हें किसी बुद्धिमत्ता भरे प्रयासों का अंग कहा है । वे कहते हैं—उन विकसित लोगों की नस्ल इस पृथ्वी पर भी उत्पन्न हो सकती है । सम्भव है, वे 'मैक्रोमॉलिक्युल्स' अणुओं को किसी विशेष विधि से निषेचित करके धरती पर भी देव मानवों की एक समुन्नत बिरादरी उत्पन्न कर सकें ।

अमेरिका के एक अन्तरिक्ष ज्ञाता ट्रेवर जेम्स ने अदृश्य आकाश की परिस्थितियों के इन्फ्रारेड फिल्म उतारे हैं । उनमें अन्य जानकारियों के अतिरिक्त आकाशगामी ऐसे प्राणियों के भी चित्र हैं जिन्हें सामान्य आँखों से नहीं देखा जा सकता । ये विचित्र प्राणी रचना में भिन्न प्रतीत होते हैं ।

सन् १९६३ में अमेरिका का एक जेट विमान जार्जिया के आकाश में ऐसे ही एक प्रहार में जलकर नष्ट हो गया । पायलट सिर्फ इतना ही सन्देश दे सका—"जो आक्रमण हुआ है उससे अब किसी के बचने की सम्भावना नहीं है ।" स्पष्ट है कि वहाँ न कोई मानवी शत्रु का आक्रमण ही सम्भव था और न अग्निकाण्ड जैसी कोई घटना ही घटित हुई । आकाश से किसी विद्युत पिण्ड के गिरने की ही सम्भवतः यह घटना थी ।

प्यूर्टोरिको जाने वाले एक विमान पर भी ऐसा ही आकाशी आक्रमण हुआ और देखते-देखते वह नष्ट हो गया । चीनी समुद्र के ऊपर उड़ता हुआ एक वायुयान भी उसी प्रकार नष्ट हुआ था । उसमें सवार सभी यात्री मारे गए थे ।

१९५३ में दक्षिण जार्जिया के आकाश में ऐसा ही एक अग्नि पिण्ड दौड़ता हुआ पाया गया । अमेरिकी वायु सेना के एफ. ८९ लड़ाकू विमान ने लगातार उसका एक घण्टे तक पीछा किया, बाद में लुप्त हो जाने के कारण उसे वापस लौटना पड़ा ।

इस प्रकार की छोटी-बड़ी अनेकों घटनाएँ, आकाश से अग्निबाण टूटने की तरह, समय-समय पर सामने आती रही हैं । इसके सम्बन्ध में दो अनुमान लगाये जाते रहे हैं कि यह किसी टूटी हुई उल्का के अधजले टुकड़े हो सकते हैं या फिर कोई सौर ऊर्जा से सम्बन्धित भँवर प्रवाह हो सकते हैं किन्तु इन दोनों ही कारणों की पुष्टि कर सकने वाले कोई प्रमाण कहीं उपलब्ध नहीं हुए, जिनसे इन सम्भावनाओं की पुष्टि हो सके । अस्तु आशंका यही की जाती रही कि यह किसी अन्य लोक से आया हुआ कोई भला या बुरा उपकरण ही हो सकता है ।

वेस्वे प्राइज ने अपनी 'भूतों की दुनिया' पुस्तक में इस प्रकार के कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनसे अदृश्य प्राणियों के आकाश में विचरण करने की मान्यता पुष्ट होती है ।

धरती पर अन्य लोकवासी आते रहे हैं, यह बहुचर्चित विषय है । इसके साथ ही एक और सम्भावना व्यक्त की जाती है कि मनुष्य लोकवासियों को अन्य लोकवासी किसी जाँच-पड़ताल के लिए पकड़ तो नहीं ले जाते । कई व्यक्तियों के अचानक गायब हो जाने और कुछ समय बाद अन्यत्र प्रकट होने की घटनाएँ ऐसी हैं जिन्हें सहज बुद्धि से अविश्वस्त ठहराया जा सकता है, पर गहरी जाँच-पड़ताल करने पर उपलब्ध विवरणों से यह पता भी चलता है कि ऐसे विवरणों में तथ्य और प्रमाण भी ऐसे पाये गए हैं जिन्हें सहज ही उपहासास्पद भी नहीं ठहराया जा सकता ।

लियोनार्ड अपने घर वैथम वेलवर्थ से गायब होकर किसी सुदूर वन प्रदेश में प्रकट हुआ। अगाथा क्रिस्टी के सम्बन्ध में १६२६ की प्रख्यात रिपोर्ट है कि वे गुम हुई और स्मृति गँवाकर कई वर्ष बाद प्रकट हुईं। कारलोस ने आप बीती सुनाते हुए कहा—'उसे कोई हवा में उड़ा ले गया और फिर बहुत दिन बाद अन्यत्र पटका। इस बीच वह कहाँ रहा और क्या करता रहा, इसका कुछ स्मरण नहीं है। लन्दन के 'डेली मिरर' में एक टैक्सी चालक का समाचार छपा था कि वह अपने कपड़े गाड़ी में छोड़कर देखते-देखते गायब हो गया।

निकोलाई रौकिक ने अपनी हिमालय यात्रा विवरण में तिब्बती लामाओं का ऐसा विवरण छापा है जिसमें उन्हें आकाश गमन और अदृश्य होने की सिद्धियों से सम्पन्न बताया गया।

इन तथ्यों के आधार पर यह मान्यता अधिकाधिक परिपुष्ट होती है कि मनुष्य देवलोक का अनुदान है और देवता उसके साथ सम्बन्ध बनाये रहने का भूतकाल में समुचित प्रयत्न कर रहे हैं और अब भी उनके वे प्रयास चल ही रहे हैं।

वरिष्ठ आत्माओं के इस धरती को विशिष्ट अनुदान

मिस्र में बने पिरामिडों के सम्बन्ध में अनेकों जन-श्रुतियाँ प्रचलित हैं। इन कथा-किंवदन्तियों में उनके अलौकिक चमत्कारी प्रभावों का वर्णन है। उनमें से एक यह भी है कि लोकान्तर वासी देव मानवों ने इन्हें अपने आवागमन के लिए डाक-बंगले की तरह बनाया। अपने लोकों के वे जिस वातावरण के अभ्यस्त हैं तथा जिन ऊर्जा तरंगों के सहारे अपना काम चलाते हैं उनका उत्पादन धरती पर भी करने के लिए इन्हें एक प्रयोगशाला के रूप में बनाया गया है।

साधारणतया ऐसी मान्यताओं को अंधविश्वास कहा और उपहास में उड़ा दिया जाता है। पर खोजबीन की गहराई में उतरने पर ऐसी अनेकों विशेषताएँ पायी गई हैं, जो बताती हैं कि इनके निर्माणों में ऐसी वस्तुकला एवं भौतिकी का प्रयोग हुआ है जिसका धरातल पर विकसित विज्ञान को कोई सुराग नहीं मिला है।

विज्ञान की अनेक धाराओं की तरह अब 'पिरामडोलॉजी' को एक स्वतन्त्र विषय माना जाने लगा है और उन इमारतों में सन्निहित रहस्यों पर से पर्दा उठाने का मूर्धन्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रयत्न किया जा रहा है। इस शोध में इमारत निर्माण की विधा, शवों को सुरक्षित रखने के मसाले और सामान्य विषयों का ही समावेश नहीं है वरन् ढूँढ़-खोज भी सम्मिलित हैं कि सामान्य नियमों से भिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ इनके भीतर क्यों पायी जाती हैं।

इन शोध प्रयोगों में लगे हुए दो वरिष्ठ विज्ञानियों ने संग्रहीत जानकारियों का कुछ अंश प्रकाशित किया है, इनसे कोई प्रत्यक्ष समाधान तो नहीं मिलता पर इस अभिमत की पुष्टि अवश्य होती है कि यह निर्माण किन्हीं ऐसे विज्ञान विशेषज्ञों द्वारा हुआ है जैसे कि अभी तक विज्ञान इतिहास में कभी भी नहीं जाने गए। इन दो वैज्ञानिकों के नाम हैं—विलसुल और एड पेटिट। इनके द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री में ऐसी ही विलक्षणताओं का उल्लेख है।

पिरामिडों के भीतर धातुओं के सिक्के या बर्तन रखने से उन पर अपने आप पॉलिश करने जैसी चमक आ जाती है। प्रदूषण से प्रभावित वस्तुएँ रख देने पर उनका विष स्वयमेव समाप्त हो जाता है। दूध रख देने पर बहुत समय तक ताजा बना रहता है फटता नहीं। फूल रख देने पर कुछ समय बाद उनका पानी तो सूख जाता है पर मुलायमी एवं सुन्दरता में कोई भी अन्तर नहीं आता। छाले, जख्म आदि अपेक्षाकृत जल्दी अच्छे हो जाते हैं। बीमारियों का दर्द भीतर घुसते ही बन्द हो जाता है। बन्द जगह में आमतौर से जो पौधे मर जाते हैं वे भी भीतर हरे बने रहते हैं। खाद्य पदार्थ बहुत समय तक रखे रहने पर भी खराब नहीं होते। तनावग्रस्त-अशान्त व्यक्तियों को भी उनमें भीतर प्रवेश करने पर राहत मिलती है।

यह सब क्या होता है ? ऐसी क्या विशेषता है, जिनके कारण वह विचित्रताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। उसका समाधान उनमें भीतर किन्हीं विशेष स्तर की ऊर्जा तरंगों के साथ जोड़ा गया है। जो इनके भीतर हो सकती हैं किन्तु उनका स्तर, स्वरूप एवं प्रभाव कभी भी नहीं जाना जा सका है।

भवन निर्माण कला की दृष्टि से भी इनमें प्रयुक्त हुई विधा, आज के विशेषज्ञ की समझ के बाहर है। इनमें एक-दो टन से लेकर सत्तर टन तक की भारी चट्टानें लगी हैं। वे जितनी ऊँचाई तक लगाई गई हैं जिस प्रकार सही कोण से लगाई गई हैं। उन्हें आज के विकसित साधनों से भी कर सकना सम्भव नहीं। मनुष्य बेचारा तो इतना पराक्रम कैसे करेगा ? विशालकाय क्रेनों से भी ऐसा करना सम्भव नहीं। इस सन्दर्भ में एक प्रयोग हो भी चुका है। आश्वासन दिलाने वाले इन्जीनियरों ने दो छोटे पिरामिडों का दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण करने का प्रयत्न किया था। टुकड़ों में उधेड़ना और भेजना भी जब किसी प्रकार सम्भव न हो सका तब वह विचार छोड़ देना पड़ा।

पिरामिडों की संरचना सही उत्तर-दक्षिण की जानकारी के आधार पर बनी है जिससे पृथ्वी के ध्रुवीय प्रवाह का आवागमन ठीक प्रकार होता है। अन्तर्ग्रहीय कॉस्मिक किरणों के आकर्षित करने के लिए इनमें विशेष प्रकार के पत्थर लगे हैं। जो ग्रेनाइट पत्थर हैं इनमें स्टोरेज बैटरी जैसी विलक्षणताएँ पायी गई हैं। भीतर निर्माण इन्हीं विशेष पाषाणों से हुआ है। मात्र बाहरी घेरा ही चूने से बनाया गया है। सम्भवतः यह भीतरी भण्डार को सुरक्षित रखने के लिए किलेबन्दी के रूप में किया गया है।

गीजा के बड़े पिरामिडों के भीतर बनी हुई सुरंगों में कुछ विशेष कोण और छेद हैं जो ऊपर आसमान की स्थिति देखने के लिए दूरबीनों का काम करते हैं। इसे वेधशाला स्तर की विशेषता माना जाता है। न केवल ग्रह-नक्षत्रों की गति जानने के लिए वरन् उनकी विशेष किरणें आकर्षित करने के लिए प्रतीत होती हैं। इन पिरामिडों में ध्वनि करने से न केवल देर तक गूँजती रहती हैं वरन् उपस्थित लोगों के शरीरों में एक प्रकार की झनझनाहट भी उत्पन्न करती हैं, ऐसा अन्यत्र नहीं होता। इससे प्रतीत होता है कि इनके भीतर किसी विलक्षण ऊर्जा तरंगों का वातावरण है। ऐसा वातावरण बनाने की किन्हीं को क्या आवश्यकता पड़ी फिर इसके लिए ऐसा विकसित विज्ञान किस प्रकार प्रयुक्त हुआ जो इन दिनों विकसित विज्ञान की पकड़ से सर्वथा बाहर है।

इन प्रश्नों का सहज उत्तर जब कहीं से नहीं मिलता तो यह सोचने से कुछ समाधान मिलता है कि हो सकता है कि पुरातन काल में अन्य लोकवासी अपने ठहरने और कार्य करने के लिए कोई धर्मशाला बना रहे हैं और उसके लिए यह पिरामिड स्तर की संरचना अपने विशिष्ट ज्ञान के अनुरूप बनाकर चले गए हैं।

जिनके साथ उन्होंने सम्पर्क साधा हो और आदान- प्रदान का सहयोग चलाया हो पुनः सम्भव है। वे आश्वासन दे गए हों कि जब दुबारा वापस लौटेंगे तब उन्हें पुनर्जीवित करके आगे की योजना चलायेंगे। इसलिए जब वे मरें तब अपने शरीरों को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध कर दें। पिरामिडों पर चढ़े हुए मसाले भी इस सन्दर्भ में एक रहस्य हैं, वैसे रसायन अभी भी मनुष्य के द्वारा बन नहीं पा रहे हैं। मिस्र के पिरामिडों की नकल पर दक्षिण अमेरिका, चीन, साइबेरिया, कम्बोडिया, फ्रांस, इंग्लैण्ड में भी कुछ जरा-जीर्ण खण्डहर पाये गए हैं। उनमें मिस्र के तीन प्रमुख पिरामिडों जैसी विशेषता तो नहीं है फिर भी वे आज के वास्तुकला विशेषज्ञों को चुनौती देते हैं कि उस स्तर के निर्माण कर दिखायें। लगता है कि उनकी संरचना अपेक्षाकृत कम विकसित लोकवासियों ने की है। यह भी हो सकता है कि इन दिनों के क्रिया कुशल लोगों ने नकल करने में अपनी अकल दौड़ाई हो और आंशिक सफलता पायी हो।

अपना धरती पर ईश्वरीय अनुदानों की अनुकम्पा तो रही है पर उसे इस स्थिति में पहुँचाने और साधारण से मनुष्य प्राणी का स्तर आश्चर्यजनक ऊँचाई तक पहुँचाने में कुछ उत्कृष्ट स्तर के महामानवों का भी हाथ रहा है। वे अन्य लोक से आये या इसी धरती पर जन्मे यह विवाद का विषय भी हो सकता है पर इतना असंदिग्ध है कि अपने भू-लोक के मनुष्यों को विकसित करने में किन्हीं विशिष्ट स्तर की आत्माओं का हाथ अवश्य रहा है।

सम्भव है, मनुष्य देवताओं का वंशज रहा हो

डार्विन के विकास सिद्धान्त में एक बड़ी खामी यह है कि उसमें मूल प्रकृति किसी की भी नहीं बदलती। आकृति में भी नाममात्र का ही अन्तर हुआ माना जाता है। मनुष्य को जिन वानरों की सन्तान बताया जाता है, वे सामान्य वानरों से बहुत बातों में भिन्न हैं। लेकिन विकास अवधि का उन पर भी कुछ विशेष अन्तर नहीं हुआ है। विचार करने की शैली, भाषण, लेखन जैसी मानवी विशेषताओं का इतने दिन बाद भी कुछ शिक्षण नहीं हो पाया है। यहाँ तक कि घर बनाना, कल के लिए आवश्यक वस्तुओं का संकलन का विचार तक नहीं उठा है। दैनिक जीवन में काम आने वाले उपकरण तक उनके पास नहीं हैं। जबकि मनुष्य ने दो शताब्दियों में ही इतने वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध कर लिए हैं कि उसकी स्थिति कहाँ से कहाँ पहुँची। रेल, मोटर, जलयान, वायुयान, तार, रेडियो एवं बारूदी अस्त्र हाथ में आ जाने से उसकी शक्ति अनेक गुनी बढ़ गई है। भाषा लिपि के साथ विचार विज्ञान का भी असाधारण विकास हुआ है। जबकि जिन वानरों को मनुष्य का पूर्वज कहा जाता है वे तो अच्छी तरह दो पैरों के सहारे तक चलना न सीख पाये। यह कारण बताते हैं कि जीवन विकास का वह क्रम ठीक नहीं है, जो डार्विन ने बताया है कि मनुष्य का अपना इतिहास जितना लम्बा है उतनी अवधि में उसकी आकृति-प्रकृति में अन्तर हुआ होता या फिर अब वह कुछ ऐसे प्रयत्न कर रहा होता जिससे उसकी अगली पीढ़ी कुछ से कुछ बन जाती।

मौसम और आहार की सुविधा के दैनिक दबाव से विवश होकर अन्य प्राणियों ने अपनी स्थिति के अनुरूप यत्किंचित सुधार किए हैं या इन्हीं समस्याओं से टकराकर अपना अस्तित्व गँवा बैठे हैं। यदि वस्तुतः प्राणी प्रगतिशील रहे होते तो उन्होंने प्रकृति को अनुकूल बनाने के लिए कुछ तो प्रयत्न किया ही होता। पर देखते हैं कि सब प्राणी यथावत् हैं।

मनुष्य अपने आप में सर्वांगपूर्ण है। उसकी पूँछ गायब नहीं हुई है वह सदा से बिना पूँछ का ही था। चार पैर से वह कभी नहीं चला। उसकी प्रकृति ही दो पैर से चलने की है। दो वर्ष का होते-होते अभिभावकों की भाषा बोलने लगते हैं और वैसे ही स्वभाव की प्रकृति बना लेता है। यह मौलिकता है विकास क्रम नहीं। जब अन्य किसी प्राणी में न पायी जाने वाली विचारणाएँ, भावनाएँ, आकांक्षाएँ, मान्यताएँ, कुशलताएँ मनुष्य की मौलिक हैं तो फिर यही मानना पड़ेगा कि यह भी मौलिक ही है।

यह मौलिक विशेषताएँ इतनी तीव्रता से कैसे बढ़ीं। इसका उत्तर यह हो सकता है कि मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं वंश परम्परा ऐसी है जो सम्भवतः अन्य किसी लोकवासी परिजनों से उसे विरासत में मिली हो। मनुष्य के देव पुत्र होने की सम्भावना बहुत कुछ सही प्रतीत होती है।

सृष्टि की आदिम अवस्था में मनुष्य ने जो संचरनाएँ की हैं, वे उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए किसी प्रकार सम्भव दिखाई नहीं पड़तीं। उदाहरण के लिए मिस्र के पिरामिडों को लिया जाय। जिस इलाके में दूर-दूर तक पत्थर नहीं हैं वहाँ इतने भारी पत्थर, इतनी ऊँचाई पर इतनी कुशलतापूर्वक परस्पर फिट किए जाना असाधारण कठिनाई का काम है। आज का विकसित विज्ञान जिस वास्तुकला पर आश्चर्यचकित है, वह उपकरणों के सर्वथा अभाव वाले समय में किस प्रकार बन पड़े होंगे। इसके उत्तर में हमें उन लोगों के अनुग्रह की ओर ताकना पड़ता है, जिनका वंशज मनुष्य रहा है।

पुरातन काल के निर्माणों में जो कुछ भी आश्चर्य जनक है, वह ऐसा है जो काल गणना ज्योतिर्विज्ञान से सम्बन्धित है अथवा अन्य लोकों के साथ आवागमन की रहस्यभरी कुंजियाँ खोलता है। यों तो देव पूर्वजों का पृथ्वी के हर भाग में आवागमन रहा है। पर अधिकता उस क्षेत्र में रही है जहाँ से आवागमन उनके लिए सुविधाजनक पड़ता रहा हो अथवा मार्ग न भटकने के संकेत सिगनल सुविधापूर्वक मिल जाते हों।

पिरामिडों को मात्र फराहो के मकबरे नहीं माना जाना चाहिए। उनमें ऐसे रहस्य भरे तथ्य पड़े हैं जो अन्य लोकों से आवागमन की कड़ी जोड़ते हैं। दक्षिण अफ्रीका में कुछ समय पूर्व मय-सभ्यता का वर्चस्व रहा है। उस क्षेत्र में उपलब्ध ध्वंसावशेषों का सीधा सम्बन्ध ज्योतिर्विज्ञान से जुड़ता है। कहना न होगा कि अन्तर्ग्रही आवागमन के लिए आवश्यकता सही काल गणना की पड़ती है। दक्षिण अमेरिका का सूर्य मन्दिर आदि से अन्त तक तत्कालीन पंचांग है, जिसमें १० महीने २४ दिन के और दो महीने साठ-साठ दिन के हैं। उस हिसाब से भी सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण,

आदि का हिसाब ठीक बैठ जाता है । आकाश पर चढ़कर देखी जा सकने वाली चमकीली रेखाएँ इस तरह सही बनाई गई हैं जिनसे उच्चस्तरीय कौशल भली प्रकार प्रकट होता है ।

पिरामिडों के बारे में अब तक मात्र वास्तुकला पर ही आश्चर्य किया जाता था । पर पृथ्वी के सही आक्षांशों पर उनका निर्माण हुआ । ऐसी वस्तुओं का प्रयोग होना, जो धरती के वातावरण का दबाव सहन कर लेती हैं, एक नयी बात है । पिरामिडों की छत में पाये जाने वाले छिद्र मात्र सुराख नहीं ग्रह-तारकों की नाप-तौल करने के लिए सोद्देश्य विनिर्मित खिड़कियाँ हैं ।

कुतुबमीनार का लोहा इस प्रकार बनाया गया है जिस पर धरती के मौसम का प्रवाह नहीं पड़ता । इस लोहे की लाट का टुकड़ा ऐसी ही धातु का बना हुआ है जो लाखों वर्ष पुराना हो जाने पर भी धरती के मौसम से प्रभावित नहीं हुआ है ।

नील नदी के तटवर्ती क्षेत्र में इस तरह की आकृतियाँ पायी गई हैं जिनमें अन्तरिक्ष यानों और उनमें बैठकर आने-जाने वाले के स्तर, डिजाइनों का पता चलता है । रूस में भी एक शिलाखण्ड पर ऐसी ही प्रतिमाओं का अंकन पाया गया है, जिनसे अनुमान लगता है कि पृथ्वी और आकाश के बीच आवागमन में किस प्रकार वाहन, वस्त्र, उपकरण आदि का प्रयोग होता रहा होगा ।

ईस्टर द्वीप में बनी हुई विशालकाय प्रतिमाएँ—उस वीरान जगह में कैसे बनी होंगी ? किस उद्देश्य के लिए बनाई गई होगीं, इसकी संगतियाँ बिठाने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इसके पीछे अन्तर्ग्रही रहस्य है । कुछ समय पहले अमेरिका के सुविस्तृत क्षेत्र पर मोटी चिनगारियों की वर्षा हुई थी, पर वे जमीन तक पहुँचने से पहले ही बुझ गई । किसी का किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ । इसे भी लोकोत्तर जीवधारियों का क्रियाकलाप माना गया था ।

साइबेरिया के ऊपरी क्षेत्र में लगभग ३००० फुट ऊँचा एक विस्फोट हुआ था जिसका प्रकाश तीन दिन हजारों मील के दायरे में छाया रहा । किन्तु उस गिरी हुई वस्तु का जमीन पर कोई अता-पता न लगा । उसकी झुलसन से पेड़-पौधे तथा प्राणी अवश्य नष्ट हो गए । अनुमान लगाया जाता है यह किसी अन्तरिक्ष यान के रास्ते में खराबी होकर गिरने का चिह्न है ।

ऐसी-ऐसी और भी कितनी ही कृत्तियाँ इस पृथ्वी पर पायी जाती हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि अब तक की विकसित सभ्यता के बलबूते ऐसे निर्माण कार्य बन नहीं सकते ।

पौराणिक कथा-गाथाओं में अन्तरिक्षीय आवागमन के अगणित प्रसंग है । नारद इस विद्या में प्रवीण माने जाते हैं । अन्य लोकवासियों पर मुसीबत आने पर अर्जुन, दशरथ आदि उनके आमन्त्रणों के सहारे पहुँचे थे और अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति उपरान्त लौटकर वापस आये थे ।

कुन्ती ने पाँच पुत्र-देवता पाँच प्रमुख देवताओं के अनुग्रह से प्राप्त किए थे । सुर और असुर दो वर्ग के अतिमानव पृथ्वी पर अथवा उसके निकटवर्ती क्षेत्र में निवास करते रहे हैं । उनकी आकृति, प्रकृति, क्षमताएँ तथा विभूतियाँ—पृथ्वीवासियों की तुलना में कहीं अधिक थीं । इन कथनोपकथनों को यदि तथ्यपूर्ण माना जाय तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि धरती के साथ देवलोकवासियों के कुछ समय तक घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं ।

वैज्ञानिकों का कहना है कि ब्रह्माण्डों में अरबों-खरबों लोकों में से कुछ हजार ऐसे अवश्य हो सकते हैं, जिनमें मनुष्य से तालमेल खाती हुई सभ्यताएँ रह रही हों और वे लोग पृथ्वी निवासियों को प्रगतिशील बनाने में समय-समय पर किसी न किसी प्रकार की सहायता करते रहे हों । सम्भव है, मनुष्य देवताओं का वंशज रहा हो ।

अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान का एकमात्र आधार : अध्यात्म

नोबल पुरस्कार विजेता अरनो पेन्जियास और रॉबर्ट विल्सन ने अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध किया है कि विश्व की उत्पत्ति 'बिग बैंग' (महत्तम विस्फोट) से हुई है । विश्व आयु की गणना भी इसी आधार पर कर ली गई है जो २० खरब वर्ष पूर्व मानी जाती है । पृथ्वी की उत्पत्ति साढ़े चार खरब वर्ष पूर्व हुई थी । हमारी आकाशगंगा के निकटतम तारों में कई ऐसे हैं जिनमें हमारे सौर-मण्डल जैसे अनेकों सौर-मण्डल हैं तथा कई ऐसे ग्रह हैं जहाँ पृथ्वी की तरह जीवन सम्भव है । हमारी पृथ्वी की अपेक्षा उन तारों के ग्रह काफी विकसित और पुराने हैं । उन ग्रहों की आयु ५, १० या १५ खरब वर्ष आँकी जाती है । पृथ्वी में जीवन का उद्भव सर्वप्रथम ३० करोड़ वर्ष पूर्व हुआ है । इस दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा अन्य तारों पर रहने वाले प्राणियों के अधिक बुद्धि सम्पन्न होने की पूरी सम्भावना है ।

पृथ्वी पर १९६० से लेकर अब तक विभिन्न केन्द्रों से रेडियो संकेत भेजे जा रहे हैं । प्रकाश की गति के हिसाब से ये संकेत २४० ट्रिलियन माइल की दूरी तय कर चुके हैं । इससे कम से कम निकटतम ४० तारों तक ये संकेत पहुँच चुके हैं । अगर उन पर कोई विकसित प्राणी जीवन-यापन कर रहे होंगे तो पृथ्वी से प्राप्त संकेतों के जबाव में भेजे गए उत्तरों को पृथ्वी पर पहुँचने में बीस वर्ष और लगेंगे । यह सम्भावना की जा सकती है कि प्रत्युत्तर के रूप में आगामी २० वर्षों में उनके संकेत पृथ्वी पर प्राप्त होंगे या फिर उनका कोई प्रतिनिधि यहाँ आयेगा ।

कुल १२ तारा-मण्डलों में मनुष्य से अधिक बुद्धिशाली प्राणियों के प्रमाण मिले हैं—इनमें से दो प्रमुख है—पहला—अल्फा सेण्टोरी—इसकी आयु सूर्य जितनी है । जीवन की सम्भावना भी अधिक है क्योंकि वहाँ जीवन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन, कार्बन जैसे तत्व हैं । दूसरा तारा-मण्डल है—'एब्सीलॉन' । इसकी आयु भी सूर्य के बराबर मानी जाती है । वहाँ पाये गए तत्वों से ज्ञात होता है कि वहाँ जीवन की सम्भावना है ।

इन अनआइडेन्टिफाइड फॉरेन ऑब्जेक्ट्स, जिन्हें 'वूफो' नाम से भी पुकारा जाता है, में यदि कोई जीवित व्यक्ति होगा तो उसे लगभग पच्ची ट्रियलयन माइल (हमारे निकटतम तारे सीरियस की दूरी) से भी अधिक लम्बी यात्रा करना होगी । इस यात्रा में वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार दस लाख वर्ष लगेंगे । हमारी तकनीकी इतनी विकसित नहीं है कि हम वहाँ जीवन की कल्पना करते हुए भी उनसे मिलने हेतु जाने की बात भी सोच सकें । इसका कारण यह तो है ही कि इतनी लम्बी यात्रा हेतु अन्तरिक्ष यान बनाने वाली स्पेस टेक्नॉलाजी विकसित होने में अभी समय लगेगा । दूसरा कारण यह भी है कि हम अपने संकेतों को सार्वभौम

बनाने एवं बाहर से आने वाले संकेतों के अर्थ को समझने में असफल रहे हैं । अमेरीका के अन्तरिक्ष विज्ञान से सम्बन्धित 'नासा' विभाग हमारे सौर-मण्डल के विभिन्न ग्रहों पर भेजे गए सेटेलाइटों द्वारा कोई ऐसा संकेत नहीं मिला है जिनसे लगता हो कि पृथ्वी से इतर भी कहीं जीवन का अस्तित्व होगा । यह मात्र हमारा सीमा बन्धन है, सम्भावनाओं की समाप्ति नहीं । हमारे कई लाख साल के वंशजों के लिए शायद यह सम्भव होगा कि वे निकटतम तारे तक पहुँच पायें । लेकिन ऐसे ग्रह जिनका विकास पृथ्वी से खरबों साल पूर्व हो चुका है वहाँ के निवासियों द्वारा पृथ्वी तक यात्रा का साहस जुटा पाना सम्भव है ।

"यूफो का धरती पर आना एक तथ्यपूर्ण वैज्ञानिक धारणा है" इस नाम से लिखे निबन्ध के रचयिता वैज्ञानिक रॉबर्ट जेस्ट्रॉ का वह दृढ़ मत है कि यह एक वास्तविकता है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता । क्या पृथ्वी पर ऐसे सुदूर ग्रह के निवासियों का आना हुआ है ? इस विषय पर बाइबिल के इजकेल के अध्याय १, ४, २४ में कई हजार वर्ष पूर्व ऐसे लोगों के आने का उल्लेख है ।

डॉ. एलेन हेनेक ने यूफो सम्बन्धी अनेकों रिपोर्टों का अनुसन्धान करके यह निष्कर्ष निकाला है कि यह केवल कल्पना की उड़ान या किंवदन्ती न होकर दृढ़ आधारों पर टिका एक तथ्य है । पृथ्वी पर से बीस वर्षों से लगातार रेडियो संकेत विश्व के सुदूर स्थानों तक भेजे जाने के कारण पहले की अपेक्षा अब अन्य ग्रह निवासियों के यहाँ आने की सम्भावना अधिक मानी जाने लगी है । इस सम्बन्ध में लिखी कथाएँ अब मात्र यूटोपिया नहीं रह गई हैं । इन्हें अगले कुछ दसकों में ही सत्य होते देखा जा सकेगा ।

नोबेल पुरस्कार विजेता एस्ट्रोफिजिस्ट डॉ. पेजियस और डॉ. विल्सन दोनों ही यह विश्वास करते हैं कि इस ब्रह्माण्ड में ऐसे ग्रहों का अस्तित्व है जिनमें मनुष्य से भी अधिक बुद्धिमान प्राणी निवास करते हैं । वे सोचते हैं कि यदि मात्र धरती पर विभिन्न क्षेत्रों के निवासी पारस्परिक आदान-प्रदान से महत्त्वपूर्ण प्रगति कर सकते हैं और उसका लाभ समस्त संसार को मिल सकता है तो ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि ब्रह्माण्ड में निवास करने वाले बुद्धिमान जीव अन्तर्ग्रही सम्बन्ध स्थापित करें और मिल-जुलकर ऐसा कुछ सोचने लगें जो ब्रह्माण्ड परिवार भर के लिए उपयोगी हो सके ।

इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई एक ही है कि अभी प्रकाश गति से अधिक द्रुतगामी और कोई संचार पद्धति हस्तगत नहीं है । अन्तर्ग्रही दूरी को देखते हुए यह गति ऐसी नहीं है जिसमें सौ वर्ष की आयुष्य वाला मनुष्य इस सम्पर्क में अभीष्ट समय के अन्तर्गत ऐसे आदान-प्रदान में समर्थ हो सके । यदि वार्तालाप में इतनी देर लग सकती है तो फिर आवागमन में लगने वाला समय कितना अधिक हो सकता है, इसकी परिकल्पना तक कठिन है । फिर इतनी दूरी पार करने और लौटाने वाले वाहनों के लिए ईंधन भी तो इतना अधिक और इतना मंहगा होगा कि उसकी व्यवस्था कर पाना असम्भव जैसा दीखता है ।

स्पष्ट है कि अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान या आवागमन यदि आवश्यक ही समझा जाय तो प्रकाश गति से अधिक दौड़ सकने वाली और बिना खर्चीले ईंधन से चल सकने वाली व्यवस्था हस्तगत करनी होगी । इस सन्दर्भ में विचार शक्ति ही एक ऐसी है जो प्रकाश गति से अधिक दौड़ सकती है । इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर का वजन और स्तर ही ऐसा है जो बिना भौतिक ईंधन की अपेक्षा किए लोक-लोकान्तरों तक दौड़ लगा सके ।

यह कार्य पदार्थ विज्ञान की परिधि से बाहर है किन्तु अध्यात्म विज्ञान के आधार पर वह सम्भव भी है और स्थूल भी । विश्व मानव का सहयोगजन्य उपलब्धियों से कितना अधिक सुविधा सम्बर्धन सम्भव हो सका यदि इस तथ्य के सहारे ब्रह्माण्डी चेतना की अस्त-व्यस्त कड़ियों को जोड़ सकने की बात सोची जा सके और उस आधार पर सम्भव हो सकने वाले लाभों का अनुमान लगाया जा सके तो फिर अध्यात्म विज्ञान का आश्रय लेने और उसे सुव्यवस्थित करने की बात सोचने के अतिरिक्त और कोई चारा है नहीं ।

देवताओं और मनुष्यों के मध्य आदान-प्रदान की कथा गाथा

इतिहास की दो धाराओं में क्रमबद्धता परिलक्षित होती है । एक तो पिछले छः हजार वर्ष का इतिहास जिसे पुस्तकों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों के सहारे ढूँढ़ निकाला गया है और कोई अन्य विकल्प न होने के कारण उसे ही प्रामाणिक मानना पड़ता है ।

दूसरी वह शृंखला है, जिसे प्राणी विकास की शृंखला कहा जा सकता है । छोटे अमीबा के विकसित होते-होते डायनासोर तक जा पहुँचना, फिर बुद्धिवादी प्रतिद्वन्द्विता में उनमें से भीमकाओं का नष्ट होना, चतुरों द्वारा बाजी मारना, इसी परिप्रेक्ष्य में वानर का मनुष्य स्तर पर विकसित होना—यह शृंखला भी मान्यता प्राप्त कर चुकी है । उस हिसाब से वर्तमान मानव पुरखों की तुलना में सर्वाधिक बुद्धिमान बैठता है । ज्ञान और विज्ञान दोनों ही पक्षों में उसने बाजी मारी है ।

इन दो धाराओं के अतिरिक्त प्रमाणों की एक संदिग्ध धारा और बच रहती है, जिसमें अब की अपेक्षा कहीं अधिक बुद्धिमान, समर्थ और सम्पन्न मानवों का पता चलता है । उनके छोड़े हुए प्रमाण, अवशेष उनके अस्तित्व की सच्चाई सिद्ध करते हैं । इनकी गणना किस शृंखला में की जाय ?

लौह युग, ताम्र युग तो आदिम मनुष्य की कहानी कहते हैं, पर ऐसे सुविकसितों को जो आज की तुलना में अधिक बुद्धिमान रहे हैं, किस वर्ग में गिना जाय ? लगता है लम्बा हिमयुग मनुष्य जाति के एक बड़े वर्ग को अपने पेट में निगल गया । पृथ्वी पर जमी हुई बर्फ की मोटी परतें जब पिघली होंगी तो समुद्र तल ऊँचा उठा होगा और उससे भौगोलिक उथल-पुथल खड़ी हुई होगी । तब पिछली सभ्यता के ध्वंसावशेष भी उसमें समा गए होंगे । समुद्र उलट-पुलट कर थल बना होगा । इस भयानक परिवर्तन ने उन विकसित सभ्यताओं को भी निगल लिया होगा । उसके यत्र-तत्र बिखरे हुए चिह्न कहीं मिल जाते हैं तो आज मनुष्य को आश्चर्य में डालते हैं ।

प्रमाणों द्वारा स्पष्ट है कि आज का आर्कटिक महासागर कभी एक सुविकसित द्वीप था । उस समुद्र में जहाँ-तहाँ जनशून्य टापुओं का पर्यवेक्षण करने से ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि इस क्षेत्र में कभी सुविकसित सभ्यता रही है । कभी एशिया और अमेरिका परस्पर जुड़े हुए थे । थल मार्ग से आवागमन था, पर हिमयुग ने बहुत-सी भूमि डुबा दी और दोनों को पृथक् कर दिया । इतने

पर भी जहाँ-तहाँ विकसित सभ्यता के चिह्न मिलते हैं । ऐसा नहीं है कि कोलम्बस ने पहलीबार अमेरिका को खोजा हो और वहाँ जंगली रेड-इण्डियन भर मिले हों ।

इस दृष्टि से समस्त भू-मण्डल का पर्यवेक्षण करते हैं तो एक क्षेत्र में नहीं लगभग समस्त भू-मण्डल में विकसित सभ्यता के चिह्न मिलते हैं । कई बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय के लोग अर्वाचीन बुद्धिमत्ता की तुलना में कहीं अधिक बढ़े-चढ़े थे । मिस्र के पिरामिडों का रहस्य अभी तक हाथ नहीं आ रहा है कि इतने बड़े पत्थरों के इतने मजबूत और इतने रहस्यमय भवन किस कला और किन साधनों के सहारे बन सके होंगे । मैक्सिको क्षेत्र में बिखरी हुई 'मय' सभ्यता के ध्वंसावशेष बताते हैं कि वहाँ की विकसित स्थिति असाधारण थी । इस्टर द्वीप की विशाल मानव आकृतियाँ अभी भी रहस्य हैं कि उन्हें किसने, किन साधनों से और क्यों विनिर्मित किया होगा । मैक्सिको की भू-रेखाएँ जो धरती से तो दिखायी नहीं पड़तीं, पर रात्रि को चन्द्रमा की चाँदनी में आकाश भली प्रकार दीख पड़ता है, विदित होता है कि वे वायुयानों के आवागमन के प्रकाश चिह्नों के रूप में ही विनिर्मित किए गए हैं ।

एरिक वान डेनिपेन लिखित 'देवताओं के रथ' नामक पुस्तक में अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया गया है कि वर्तमान मनुष्यों से पूर्व देवताओं की विकसित विरादरी हो चुकी है ।

देवताओं का एक वर्ग था—दैत्य, लंका में उन्होंने अपना वंशानुक्रम तथा शौर्य विज्ञान सुरक्षित रखा था । मनुष्यों के साथ उनका वंश सम्पर्क कदाचित कहीं हुआ था । भीम पत्नी हिडिम्बा से महापराक्रमी घटोत्कच जन्मा था । हनुमान पुत्र मकरध्वज की भी कथा है । कुन्ती ने देवताओं का विशेष अनुदान प्राप्त कर असाधारण पराक्रमी पाँच पाण्डव अपनी गोदी में खिलाये थे ।

साइबेरिया, सिन्धु घाटी, जावा, कम्बोदिया, रोम, यूनान, काला सागर, सहारा, जिब्राल्टर, एटलाण्टिक आदि क्षेत्रों का पुरातन शिल्प तथा उसके साथ बोलती हुई उस समय की सम्पन्नता तथा सभ्यता का जो पता चलता है, वह आश्चर्यचकित कर देने वाला है । कई बार तो उसे आज की विकसित सभ्यता से भी बढ़ी-चढ़ी मानना पड़ता है । सम्भवतः वह वैदिक युग रहा हो और ऋषि स्तर के लोगों को देव कहा गया हो अर्थात् सूक्ष्म देवताओं और स्थूल ऋषियों को बीच कोई घनिष्ट सम्बन्ध रहा हो ।

यह वास्तुशिल्प की चर्चा हुई । इसके अतिरिक्त असंख्यों धाराएँ हैं । तब २४ दिन का कलैण्डर था और दो महीनों को बढ़ाकर वर्ष को सही किया गया था । धातु शोधन में कुतुबमीनार की लाट के बारे में अभी तक पता नहीं लगाया जा सका कि इतनी शुद्ध धातु शोधन की प्रणाली क्या थी ?

इतिहास की इस टूटी हुई कड़ी के बारे में यह अनुमान लगाया जाता है कि कोई देव युग रहा है, जिसके बचे लोगों ने पिछड़े लोगों को खोयी हुई सभ्यता की शृंखला जोड़ने में मदद की होगी । कल्पना कीजिए कि परमाणु युद्ध हो और उसमें सभ्यता इत्यादि सभी मटियामेट हो जाय । कोई सघन वनों में रहने वाला आदिवासी मडुवे आदि बच रहे हैं । वे उनकी पीढ़ियाँ ध्वंसावशेष को देखकर आश्चर्यचकित रह जायें, कि इतने विचित्र, महान् और विज्ञान के ऐसे परिवार कितने, किस प्रकार, क्यों बनाये होंगे ? आज की पीढ़ी का कोई जानकार बच रहे और उन आदिम लोगों को ज्ञान-विज्ञान के कुछ पाठ पढ़ाए तो यही समझा जायेगा कि कोई देवता रहस्यमय अनुदान बाँट रहे हैं ।

पुरातन काल में हिमयुग, खाद्य अभाव, महामारी, भौगोलिक उलट-पलट आदि कारणों से बचे हुए लोग नितान्त जंगली रह गए होंगे । उन्हें बचे-खुचे सभ्य जन ने जो पाठ पढ़ाए होंगे, जो चमत्कार दिखाए होंगे, उस आधार पर सहज ही किसी अन्य लोक के निवासी या दिव्य शक्तियों-विभूतियों से सम्पन्न मान लिया गया होगा और उनका समुचित मान-सम्मान किया गया होगा ।

किसी अन्य लोक से देवताओं के आने के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुँचना कठिन है, क्योंकि वर्तमान खोजों ने सौर-मण्डल की स्थिति को जान लिया है और पता लगा लिया है कि इनकी स्थिति इस योग्य नहीं है कि मनुष्य शरीर जैसे प्राणियों का उन पर निर्वाह हो सके । सौर-मण्डल से बाहर कोई बुद्धिमान प्राणी हो सकता है अथवा सौर-मण्डल के भीतर सूक्ष्म शरीर धारण करके किसी भी परिस्थिति में उनमें रहा जा सकता है, पर वे होंगे अदृश्य ही । अदृश्य देवता शरीर वाले मनुष्यों को प्रशिक्षण एवं अनुदान प्रस्तुत करें—यह रहस्यमय प्रसंग है ।

देवताओं की एक पीढ़ी को स्थान दिए बिना इतिहास की दोनों ही धाराएँ अपूर्ण रह जाती हैं । संसार में जो विलक्षण ध्वंसावशेष अथवा ज्ञान परिलक्षित होते हैं, वे छः हजार वर्ष के लिखित इतिहास के साथ तालमेल नहीं बैठने देते और आदिम कालीन बन्दर से विकसित होकर बना हुआ मनुष्य भी प्रगति की उतनी लम्बी छलांग नहीं भर सकता, जो आज की प्रगतिशीलता से भी बढ़कर अपने कर्तृत्व को सिद्ध कर सके ।

ऐसी दशा में देवताओं के एक वर्ग की मान्यता आवश्यक हो जाती है । वे लुप्त महासभ्यता का प्रतिनिधित्व करते होंगे और सामान्य मनुष्य के साथ स्वेच्छापूर्वक सम्बन्ध जोड़कर उन्हें सुविकसित बनाने का प्रयत्न करते होंगे । हो सकता है कि पिछड़े लोगों के साथ देवताओं ने आनुवांशिक सम्बन्ध बनाये हों और उनसे ऋषि, दिव्य मानव, विशेषज्ञ, वैज्ञानिक, उत्पन्न किए हों ।

इस प्रकार देवताओं का पूरा न सही अधूरा ज्ञान आधुनिक लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध हुआ है और उसने इतिहास के एक शून्य को भरने में सहायता की है ।

पृथ्वी फिर स्वर्गोपम बनेगी

ब्रिटेन में जन्मा जॉन हैरिसन अपनी पालदार नौका के सहारे लम्बी यात्रा करते हुए अमेरिका पहुँचा । कुछ दिन कमाने-धमाने में लगा रहा है । पीछे कुछ पूँजी जमा होते ही यह धुन सवार हुई कि दक्षिण अमेरिका के उस क्षेत्र में चलना चाहिए जहाँ पुरातन काल में देवताओं के धरती पर आवागमन के प्रमाण अभी भी मौजूद हैं । जॉनसन विश्वास करता था कि धरती पर पाये जाने वाले पदार्थ प्रकृति की देन हो सकते हैं परन्तु मनुष्य जैसा विलक्षण प्राणी और उसमें पायी जाने वाली अद्भुत विभूतियाँ अनायास ही विकसित नहीं हुईं । वे किसी अन्य लोकवासी देवमानवों की देन हैं । अपनी मान्यता की पुष्टि में उसने अनेकानेक प्रमाण भी एकत्रित कर रखे थे ।

सन् १९०८ में तीन दिन-रात तक भयंकर अन्धेरा यूरोप भर में जिस भयानक विस्फोट के कारण छाया रहा था वह किस

विस्फोट के कारण उपजा । ईस्ट द्वीप में बनी विशालकाय मानव मूर्तियाँ किसने, किस प्रकार और क्यों बनाई ? सहारा रेगिस्तान में बड़ी विचित्र गुफाओं में देवलोकवासियों के चित्र किसने बनाये ? ओडारा नदी के तट पर पाये गए अस्थि उपकरणों को किन औजारों की सहायता से बनाया गया था ? जैसे प्रश्न उसके मस्तिष्क में निरन्तर उभरते थे और उनके सम्बन्ध में अधिक कुरेद-बीन करने पर उसे यह विश्वास दिलाते थे कि हो न हो, पृथ्वी पर कभी देवताओं का आवागमन हो, नहीं रहा हो, पर उसे प्रगतिशील स्थिति तक पहुँचाने में उनका असाधारण योगदान रहा है । वह यह भी मानता था की मनुष्य के आदिम जन्मदाता जिन्हें आदिम-हब्बा कहा जाता है किसी दिव्यलोक से ही धरती पर पधारे थे ।

ये जिज्ञासाएँ ऐसी थीं जो सदा जॉनसन को बेचैन किए रहती थीं । अस्तु उसने दक्षिण अमेरिका के उस क्षेत्र में जाने की ठान ठानी जिसमें कि देवताओं के अवतरण चिह्न विशेष रूप से पाये जाने की बात कही जाती थी । वह मात्र जिज्ञासाएँ ही नहीं थीं वरन् उनके पीछे यह आतुरता भी थी कि किस प्रकार देव लोकवासियों के साथ सम्पर्क साधा और उनकी महती विशेषताओं का कोई उपयोगी अंश पाया जा सकता है । इस सन्दर्भ में उसने मजबूत घोड़े खरीदे । चिली ब्राजील क्षेत्र की जानकारी रखने वाले मार्गदर्शक साथ लिए और चार अतिरिक्त घोड़ों पर रास्ते की आवश्यक सामग्री लादी और वह उस भयानक क्षेत्र के लिए चल पड़ा । कई वर्ष उसने इसी प्रयास में लगाए ।

लौटने के उपरान्त जॉनसन ने एक दिलचस्प पुस्तक लिखी— 'मिस्ट्रीज ऑफ एन्शिएन्ट साउथ अमेरिका' । इसमें उसने इतने प्रमाणों और अवशेषों का अंकन किया है, जिनसे प्रतीत होता है कि इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पृथ्वी को सर्वमान रूप में विकसित करने के लिए अन्य लोकवासियों का असाधारण योगदान रहा है । वे इस भू-लोक में गहरी दिलचस्पी लेते रहे हैं ।

इन विवरणों में उसने दक्षिण सागर के मध्य पाये जाने वाले एक ऐसे द्वीप का वर्णन किया है जिसमें देवता कुछ समय निवास और विश्राम भी करते थे । योजनाएँ बनाते और उन्हें कार्यान्वित करने में जुटते थे ।

उसने वाल्डीविया क्षेत्र के चिलुए द्वीप समूहों की शृंखला का वर्णन किया है, जिनमें एक द्वीप था 'मणि द्वीप', उसे उसी की खोज थी । अन्ततः उसने उसे प्राप्त भी कर लिया । इसकी बावत उसने अनेकों किम्वदन्तियाँ पढ़ीं और सुनी थीं ।

नाव को समुद्री तट के एक वृक्ष से बाँधकर जॉनसन अपने साथियों समेत मणिद्वीप का भूगोल समझने के लिए एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ा, उसने देखा कि कुछ दूर समतल मैदान में अनेक महलों और मन्दिरों के अवशेष अभी हैं ।

जॉनसन लिखता है कि उस मैदान में हम पहुँचे । दो-तीन महल अच्छी हालत में थे । एक पानी की बावड़ी थी । अनेकों टूटे खण्डहर । सुनहरे शिखर का भव्य मन्दिर । मन्दिर १००० वर्ग फुट के घेरे में बना था । दीवारों में पच्चीकारी । स्तम्भों में खुली मूर्तियाँ, बड़े स्तम्भ से फूटती प्रकाश की किरणें । स्तम्भों में जड़े हुए वेश कीमती पत्थर । फूटती हुई मशाल जैसी किरणें, मन्दिर में सिंहासन पर बैठी रत्न आभूषणों से जटित देवी की प्रतिमा । अद्भुत वृक्ष । इस द्वीप से वे लोग जो ला सकते थे सो साथ भी लाये । १५ दिन रुके और वापस लौट आये । इन सबको देखने से प्रतीत होता था कि ऐसे दूरवर्ती एकाकी टापू में इतने भव्य और अलौकिक भवन बनाने का मानवी प्रयोजन नहीं हो सकता है, वह किसी दिव्यलोक की संरचना थी ।

बात पुरानी हो गई । अब उस द्वीप का पता लगाना कठिन पड़ रहा है । हो सकता है कि दिव्य लोकवासियों को उनके गुप्त अवतरण स्थल का पता लग जाने से उसे समुद्र में डुबा दिया हो और कहीं अन्य अविज्ञात स्थल पर अपना नया केन्द्र स्थापित किया हो ।

उड़नतश्तरियाँ वस्तुतः अन्तरिक्ष यान ही हैं जिनमें बैठकर अन्य लोकों के वैज्ञानिक यहाँ आते और अपने अनुदान देने तथा यहाँ की प्रगति का लाभ उठाने का अन्वेषण करने के लिए जानकारियों का आदान-प्रदान करने का उद्देश्य लेकर चलते हैं ।

जॉर्ज एडमस्की ने अपनी पुस्तक 'फ्लाइंग सोसर्थ हैव लैण्डेड' में लिखा है कि उनकी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से हुई जो शुक्र लोक से आया था । आकृति मनुष्य से मिलती-जुलती थी पर भाषा सम्बन्धी कठिनाई के कारण विचार विनिमय न हो सका, केवल संकेतों से ही कुछ काम चलाया जा सका ।

स्कॉटलैण्ड के एडरिक अलिंगहन ने अन्तरिक्ष यात्रियों के एक समूह के साथ अपने साक्षात्कार का वर्णन किया है ।

मंगल गृह पर जमी हुई बर्फ पहाड़ों के रूप में पायी गई है और उन क्षेत्रों में जीवधारियों की हलचलों का दृश्य दूरबीनों से देख गया है ।

मैक्सिको के समीप अलस्का गार्डो में गिरी एक उड़नतश्तरी में ऐसे छोटे-छोटे मनुष्य के शरीर उपलब्ध हुए जो अन्तरिक्ष सूट पहने हुए थे पर यान के गिरने पर वे भी नष्ट हो गए थे । उनकी संख्या ६ थी ।

डॉ. रोमनीडक का कहना है कि ऐसा ही एक टूटा यान रूस को भी मिल चुका है । पर उन्होंने उस घटना को प्रचारित नहीं किया ।

कार्नेल विश्वविद्यालय के खोजियों ने शनि के उपग्रह 'टिटान' पर जीवन होने के प्रमाण प्रस्तुत किए हैं ।

चीन की वायनकाराउल नामक गुफा में ऐसे अवशेष पाये गए हैं जिन्हें किन्हीं अन्य लोकवासियों के उपकरण एवं अस्थि पिंजर कहा जा सकता है ।

आवश्यक नहीं कि जिन तत्वों से पृथ्वीवासियों के शरीर बने हैं और निर्वाह के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, उनकी ही अन्य लोकवासियों को आवश्यकता पड़े । यह हो सकता है कि उनके शरीर अन्य रसायनों के बने हों और वहाँ जो सामग्री मिलती है उसी पर निर्वाह करने के आदी हो गए हों ।

ईस्टर लैण्ड द्वीप पर विशालकाय मानव मूर्तियाँ जगह-जगह बनी हुई हैं । वहाँ के निवासी उन्हें आकू-आकू कहते हैं । उनकी ऊँचाई और बनावट देखकर यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में ऐसे यन्त्र उपकरण नहीं थे जिनके द्वारा ऐसी विशालकाय मूर्तियाँ बनाई जातीं । फिर यह भी विचारणीय है कि इन्हें क्यों बनाया गया । प्रतीत होता है कि किसी अन्य लोक के वासियों ने अपने यहाँ के निवासियों की प्रतिकृति यहाँ बनाई हो ताकि देखने वाले यह समझ सकें कि पृथ्वी के प्रति दिलचस्पी रखने वाले अन्य लोकवासियों की प्रतिमा कैसी रही होगी ।

दक्षिण अमेरिका की ऐंडीज पर्वत माला में टिटिकाँग क्षेत्र में अति प्राचीनकाल का एक बन्दरगाह और सूर्य मन्दिर पाया गया है । इसके समीप ही एक कलेण्डर खुदा है इससे प्रतीत होता है कि जिस ग्रह के लोगों ने इसे बनाया वहाँ २९० दिन का वर्ष और २४ दिनों का महीना होता था ।

प्रो. ल्होत ने एक ऐसी विशाल घाटी खोज निकाली है जिसमें १६ फुट ऊँची मानवाकृतियाँ हैं, उनके साथ कितने ही बारीक तारों से बने यंत्र भी हैं । ये मंगल ग्रह के निवासियों की प्रतिकृति मानी गई हैं ।

अल्पस् पर्वत्माला में ७८५ ग्राम भारी एक पाइप का टुकड़ा मिला है । वह किसी ऐसी धातु का बना है जिस पर लाखों वर्षों में भी जंग नहीं लगी । वह इस प्रकार ढाला गया है जिसके लिए उच्चस्तरीय धातु विज्ञान की आवश्यकता है ।

गोवी मरुस्थल की कुछ चट्टानों पर मनुष्य के पद चिह्न पाये गए हैं । समझा जाता है कि पृथ्वी के जन्म दिनों यहाँ दलदल रहा होगा और उस पर होकर अन्तरिक्ष यात्री चले होंगे । सूखने पर वे अमिट प्रमाण बन गए ।

ओडिसा नदी के तट पर गुफाओं का एक लम्बा सिलसिला है । उसमें ऐसे औजार पाये गए हैं जिनसे हड्डियों से तरह-तरह के बने हुए उपकरण भी मिले हैं ।

रूस के इर्कतुस्क क्षेत्र की वेधशाला में नोट किया गया कि साइबेरिया के ताइगा प्रदेश में सैकड़ों एटम बंम जैसा भयंकर धमाका हुआ जिसका प्रभाव हजारों मील तक पड़ा । ऐसा प्रकाश उत्पन्न हुआ कि तीन दिन तक रूस से लेकर फ्रांस तक रात को भी दिन जैसी चमक बनी रही । रंग-बिरंगी किरणें उठती और चमकती रहीं । वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी से तीन मील ऊपर कोई अन्तरिक्ष यान धरती तक पहुँचने से पहले ही फट गया और उसी से इस उत्पात का सृजन हुआ ।

एच. जी. वेल्स की प्रख्यात पुस्तक 'दि वार ऑफ वर्ल्डस' यों कथानक की दृष्टि से लिखी गई है पर उसमें वर्णित तथ्यों से पता चलता है कि अन्य लोकों में भी बुद्धिमान मनुष्यों का अस्तित्व है और वे अपनी जैसी विरादरी के लोगों के प्रति अभीष्ट दिलचस्पी रखते हैं ।

पृथ्वी स्वर्गलोक की ही प्रतिकृति है । यह देवताओं की किसी समय क्रीड़ा स्थली रही है । धरती का जीवन देव जीवन है । इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि यह मध्यकालीन अन्धकार से घिरती चली आयी और यहाँ अनाचार अविचार फलने-फूलने लगा । मनुष्यों ने अपनी गरिमा को गिराकर प्रेत-पिशाच स्तर की बना दिया । दुर्बुद्धि बढ़ी और कुकर्मों की शृंखला चली । प्रेम तिरोहित हुआ और द्वेष दुर्भाव पनपकर दसों दिशाओं को घेरने लगा । उसी का परिणाम है कि निर्वाह के प्रचुर साधन होते हुए भी सर्वत्र शोक सन्ताप के घटाटोप छाने लगे हैं ।

पर स्मरण रखना चाहिए कि सूर्यास्त के उपरान्त अन्धकार आता है पर वह देर तक ठहरता नहीं । कुछ देर स्तब्धता का साम्राज्य रहता है इसके बाद पुनः ब्राह्म मुहूर्त आता है । उषा काल की लालिमा चमकती है और प्रभातकालीन अरुणोदय होता है ।

अगले दिन फिर श्रेष्ठता और प्रगति को लेकर आ रहे हैं । जिन देवताओं ने पृथ्वी को स्वर्ग की प्रतिकृति बनाया था मनुष्य में देवत्व का अंश भरा था । वे अब पुनः इस गई-गुजरी स्थिति का जीर्णोद्धार करने कटिबद्ध हो रहे हैं । इस लोक की खबर-सुधि ले रहे हैं । हमारा भाग्योदय और पुनरुत्थान सुनिश्चित है ।

देवलोक वासियों का सत्प्रयोजन के लिए धरती पर आगमन

जीव विकास के नवीनतम अनुसन्धान इस निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे हैं कि मानवी अस्तित्व धरातल पर पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थों का संयोग नहीं हो सकता । उससे सूक्ष्म जीवी और कृमि-कीटक भर उत्पन्न हो सकते हैं । वनस्पति उत्पादन से आगे बढ़कर धरती पर पाये जाने वाले जीवाणुओं की चरम परिणति छोटे स्तर के प्राणियों को ही उत्पन्न कर सकती है । उसमें ऐसा कुछ नहीं जो मनुष्य जैसी अद्भुत संरचना में समर्थ हो सके । इस वर्ग के शोधकर्त्ता यह दावा करते हैं कि मानवी सत्ता किसी अन्य लोक से यहाँ आयी है । जिस लोक से आयी है वहाँ उसका विकास और भी ऊँचे स्तर का हो चुका होगा । इस प्रकार देवलोक की मान्यता के साथ संगति बैठती है और इस मान्यता को बल मिलता है कि अन्य लोकवासी अपनी उत्सुकता को भी मनुष्यों की तरह ही रोक न पा रहे हों और यहाँ की अधिक खोज-खबर लेकर तद्नुरूप अधिक सघन सम्पर्क बनाने की कोई योजना बना रहे हों । उड़नतश्तरियों का दृश्य दर्शन सम्भवतः इसी शृंखला की कोई कड़ी हो ।

इस सन्दर्भ में कुछ दृश्य ऐसे भी देखे जाते रहे हैं जिनमें मात्र प्रकाश पुंज या वायुयान स्तर की कोई वस्तु आकाश में उड़ती, दिशा बदलती, डुबकी या छलांग लगाती देखी गई । यह प्रकृति कौतुक रहा होता तो उसका प्रवाह एक दिशा में चलता और उल्कापात जैसा दृष्टिगोचर होता, किन्तु बुद्धिमानों जैसी उलट-पुलट होते देखकर यह सोचा जाता है कि इसके पीछे किन्हीं बुद्धिमानों की इच्छा या योजना जुड़ी होनी चाहिए ।

अब कुछ उदाहरण सामने आये हैं जिनमें इन उड़नतश्तरियों के साथ वस्तुएँ निकलती पायी गई हैं और बुद्धिमानों द्वारा सम्भव हो सकने वाली हरकतें-हलचलें देखी गई हैं । इससे इस विश्वास की पुष्टि होती है कि उड़नतश्तरियों के पीछे लोकान्तरवासियों के योजनाबद्ध प्रयासों का समावेश हो सकता है ।

अक्टूबर १९७३ में पैस्कागोला (मिसीसिपी) के सन्निकट रहने वाले मछुआरे ने तीन ऐसे विलक्षण व्यक्तियों को उड़नतश्तरियों से उतरते देखा जिनके हाथ केकड़े के सदृश्य दिखाई दे रहे थे । 'यूफो ऐक्सपीरियेंस— साइन्टिफिक इनक्वारी' के लेखक डॉ. जे. ऐलन हाईनेक ने इस घटना का सविस्तार उल्लेख किया है ।

२२ अक्टूबर, १९७५ को एक इन्जीनियर को कौविटन के समीप एक चक्राकार वस्तु घूमती हुई दिखाई पड़ी । यह दृश्य उन्होंने दूरबीन की सहायता से नगर निगम की इमारत के ऊपर चढ़कर देखा ।

गौर्डन कूपर को अन्तरिक्ष विज्ञान के इतिहास में अग्रणी समझा जाता है जिन्होंने अपने मर्करी और जैमिनी यान द्वारा लम्बी से लम्बी यात्राएँ पूरी कीं । यूफो के बारे में उनका कहना है कि ये अन्तर्ग्रही वाहन हैं जिन्हें ऐन्टी ग्रेविटी प्रोपेल्शन के प्रयोग में लाया जाता है । इसका रहस्योद्घाटन उन्होंने १९५० में किया ।

अपहरण की घटनाएँ भी उड़नतश्तरियाँ के सम्बन्ध में आये दिन घटित होती देखी जा सकती हैं । 'ऐरियल फैलोलिया रिसर्च ऑर्गेनाइजेशन' की संचालक श्रीमती लॉरेजन के अनुसार १३ अगस्त, १९७५ को स्टाफ सार्जेन्ट चार्ल्स मूडी की अपहरण की चर्चा को भुलाया नहीं जा सकता । जिसे किसी अलौकिक परछाईं ने हवाई जहाज से अचानक गायब कर दिया । यह घटना अलामोगोर्दो (न्यू मैक्सिको) की है । मूडी १ घण्टा २० मिनट तक गायब रहा । तत्पश्चात् वापस लौटा तो उसने बताया कि जिस व्यक्ति ने मेरा अपहरण किया वह पाँच फीट लम्बा, बड़ा सिर, भूरे रंग की चमड़ी तथा गोल गहरी आँखों का था । उसके शरीर के सभी वस्त्र चमड़े के बने ही प्रतीत होते थे जिनसे वह ऊपर से नीचे तक ढका हुआ था ।

पुल्किनान (फिनलैण्ड) की दो लड़कियों ने दिसम्बर १९७२ को गुम्बजाकार उड़नतश्तरियों को आकाश में चक्कर लगाते हुए देखा, जिसका प्रकाश लाल रंग का था । जैसे ही लड़कियों के ऊपर ये प्रकाश किरणें पड़ी तो दोनों का शरीर सिर से पैरों तक लकवा जैसी स्थिति में हो गया । लड़कियों की इतनी दुर्दशा हो गई कि उनमें सुनने तथा श्वास लेने की क्षमता तक नहीं रही । उनमें से एक लड़की ने साहस किया और कंपकपाती हुई सहायतार्थ अपने एक सहयोगी के पास जा पहुँची । उसके सारे कपड़े धूल से लथपथ सने हुए थे । इसी घबराहट में उसका एक जूता भी गायब हो गया ।

उड़नतश्तरियों में से उतरते हुए विलक्षण जीवों को देखा गया है जिनकी बनावट भू-लोक के व्यक्तियों से भिन्न होती है । ऐसी ही एक घटना अगस्त १९६१ में रोजर्स क्विन्स में घटी । विन्स नाम की एक महिला अपनी दो बच्चियों के साथ अपने कृषि फार्म के निरीक्षण हेतु गई । वहीं पर उसने उड़नतश्तरी के दृश्य को देखा । एक विलक्षण परछाईं ने श्रीमती विन्स का पीछा उसके बैडरूम तक किया । विन्स अपनी छोटी लड़की स्कैट के साथ सोई हुई थी । रात को डेढ़ बजे उसकी आँखें अचानक खुलीं तो उसने एक भयावह दृश्य को देखा । गोलमटोल सिर का—बिना नाक का एक विलक्षण व्यक्ति बिस्तर के पास खड़ा हुआ था । विन्स उसे देखकर काँप उठी । प्रातःकाल उसने अपने पति के साथ रोजर्स को छोड़ने तथा मिडिल टाउन (ओहियो) में निवास स्थान बनाने का दृढ़ निश्चय किया ।

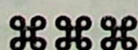
सन् १९५० की बात है । डॉ. वोटा नामक एक वैज्ञानिक पैम्पास में किसी निर्माण योजना में लगे थे । यहीं पर बहीया ब्लैका एक ऐसा स्थान है जहाँ पर यह घटना घटी । वह अपनी कार को ७५ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चला रहे थे कि एक चमकती हुई उड़नतश्तरी सुनसान क्षेत्र में ऊपर चक्कर काटते हुए नीचे उतरी और हरी-भरी घास पर उसके लोग विश्राम करने जैसी मुद्रा में देखे गए । इन लोगों की ऊँचाई ४ फीट की थी । उनके चेहरे बिल्कुल काले पाये गए । वोटा ने अपनी कार को तेजी की रफ्तार से दौड़ाया और एक होटल के पास आ पहुँचा । वहाँ पर उसके दो मित्र मिले जिनके हाथ में कैमरा व रिवाल्वर थी । वापस फिर घटना स्थल पर लौटे तो उन्हें एक राख का ढेर देखने को मिला । डॉ. वोटा ने उस राख की ढेरी में हाथ दिया तो बैंगनी रंग से रंग गया और लम्बे अर्से तक यह रंग उनके हाथ से नहीं छूटा । कुछ दिन बाद उन्होंने देखा कि तीन उड़नतश्तरियाँ वहाँ पर घूमती हुई स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही हैं । ये १०० मीटर व्यास वाली तश्तरियाँ ६०० मीटर की ऊँचाई पर डॉ. वोटा को साफ दिखाई दीं । उनका चित्र भी डॉ. वोटा द्वारा उतारा गया है । इस दृश्य को देखने के एक सप्ताह बाद ही डॉ. वोटा को बड़े जोर से बुखार ने घेर लिया जिसका उपचार किसी चिकित्सक से होना सम्भव नहीं हो पा रहा था । उसकी चमड़ी फफोलों से लद गई । यद्यपि चिकित्सकों ने विकिरणों के कुप्रभाव का भी उपचार किया फिर बात नहीं सधी ।

यूनियन टाउन, फैटेकाउन्टी (पैन्सिलवानिया) में ६ फरवरी, १९७४ को एक ऐसी घटना घटित हुई जिसमें लम्बें पैरों का एक व्यक्ति उड़नतश्तरी से उतरते हुए पृथ्वी पर देखा गया । म्यूचल यूफो नैटवर्क के डारेक्टर, जो पैन्सलवानिया प्रदेश में रहते हैं, उन्हीं के द्वारा इस घटना को उल्लेखित किया गया है । इसी प्रकार की ११८ विलक्षण घटनाओं को गौर्डन महोदय प्रामाणिक सिद्ध कर चुके हैं । जिनमें उड़नतश्तरियों से नीचे आने वाले विचित्र काया के लोगों का वर्णन किया गया है ।

उड़नतश्तरी अनुसंधान केन्द्र की रिपोर्ट के अनुसार अब तक १५०० घटनाओं का पता लगाया जा चुका है जिनमें ऐसे व्यक्तियों का अस्तित्व पाया गया है जिनकी कायिक संरचना भू-लोक के प्राणियों से बिलकुल भिन्न स्तर की पायी गई है ।

यदि अन्य लोकों के बुद्धिमान प्राणी धरातल पर आते हैं तो हमें इससे भयभीत होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं । यह सोचना सही नहीं कि वे लूटपाट करने या अपहरण-आधिपत्य करने जैसी योजना बनाकर यहाँ आ रहे हैं । ऐसा चिन्तन और आचरण तो अविकसित और अनगढ़ लोगों का ही हो सकता है । उदारमान सदा व्यापक, उदारता, आत्मीयता और सहायता की बात सोचते हैं जैसाकि देवताओं के सम्बन्ध में आमतौर से सोचा जाता है । समुन्नत लोगों की पहचान ही यह है कि आवश्यकताएँ स्वल्प और उत्पादन अधिक रखें ताकि अपने लिए माँगने या चाहने की आवश्यकता न ही पड़े । दूसरों की सहायता कर सकने की इच्छा तथा सुविधा बनी रहे । पुरातन काल के सतयुगी देवमानव इस धरती पर भी ऐसी ही स्थिति में थे । उन्होंने समस्त संसार को स्वयं जा-जाकर अनुदान बाँटे थे । समुन्नत लोकों के निवासियों की भी ऐसी ही स्थिति हो सकती है । ऐसी दशा में उनसे यह भय करना व्यर्थ है कि पृथ्वी निवासियों को कोई कष्ट देने के लिए इतनी लम्बी यात्राएँ करके यहाँ तक पहुँचने का भारी श्रम क्यों करेंगे । ऐसी तो अपनी ही क्षुद्रता है जो अणु आयुधों के भण्डार जमा करके महाप्रलय जैसी विनाशलीला का सरंजाम जुटाने में निरत हैं ।

उड़नतश्तरियाँ धरती निवासियों को आहत करें और उनमें आने वाले हमें त्रास देंगे ऐसा सोचना व्यर्थ है । यदि उनमें समुन्नत लोकों के कोई श्रेष्ठ लोग आ रहे होंगे तो उनसे यही आशा की जानी चाहिए जिससे इस धरती का कल्याण हो । अनादिकाल में मनुष्य रूप में यदि वे जीवन तत्व यहाँ बखेर गए हैं तो यह आशा क्यों न की जाय कि वे इस बार देव प्राणियों के सृजन और देवलोक जैसी परिस्थितियाँ बनाने की कोई योजना साथ लेकर आ रहे होंगे ।



आत्मिकी की एक सर्वांगपूर्ण शाखा ज्योतिर्विज्ञान

मनुष्य का सूत्र संचालन क्या अदृष्ट से होता है ?

प्रकृति के अद्भुत रहस्यों में से कुछ को मनुष्य ने एक छोटी सीमा तक जाना है और उनको वैज्ञानिक शोधों एवं यन्त्र उपकरणों के माध्यम से उपयोग में लाकर लाभ भी उठाया है। आदिमकालीन मनुष्य का ज्ञान स्वल्प था—अन्य जीव-जन्तुओं की जानकारी कम है इसलिए उन्हें वे लाभ नहीं मिल पाये जो आज का अन्वेषक मनुष्य प्राप्त करके सुविधा साधन उपलब्ध कर रहा है। प्रकृति का भण्डार इतना विशाल है कि उसे जितना खोज जा सके उतना ही कम है।

भौतिक विज्ञान से बढ़कर चेतना विज्ञान है। जड़ शक्तियों की तुलना में चेतना शक्तियों की क्षमता एवं उत्कृष्टता का बाहुल्य स्वीकार करना ही पड़ेगा। इस दिशा में और भी अधिक खोज होनी चाहिए। अध्यात्म विज्ञान की शोध में ही हमारी दिलचस्पी और तत्परता और भी अधिक होनी चाहिए। प्राचीन काल में ऋषि, तपस्वियों ने बहुत कुछ खोज की थी पर वह उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल थी। उन शोधों के बाद अब कुछ ढूँढ़ना शेष नहीं रहा ऐसी बात नहीं है। फिर प्राचीनकाल की उपलब्धियाँ भी तो लुप्त हो गईं। ऐसी दशा में उस दिशा में हमें वैज्ञानिक आत्म विज्ञान की शोधों में नये सिरे से तत्पर होना चाहिए।

मनुष्य का कर्तृत्व उसकी सफलताओं का कारण है यह तथ्य सर्वविदित है। पर यह मान्यता भी ससीम है। इसके साथ एक कारण और भी जुड़ा हुआ प्रतीत होता है—निर्धारित नियति। भले ही वह अपने ही पूर्व संचित कर्मों का फल ही हो या उसका संचालन किसी अदृष्ट से सम्बन्धित हो।

संख्या के साथ व्यक्ति विशेष का सम्बन्ध क्यों होता है ? यह तो नहीं कहा जा सकता, पर होता अवश्य देखा गया है। घटनाओं पर आश्चर्य करना भर पर्याप्त नहीं, इसके आधार को भी जानना चाहिए। जिससे उस नियति शृंखला के अनुकूल चलकर लाभान्वित होना और प्रतिकूलता से बच निकलना सम्भव हो सके।

विश्व-विख्यात चित्रकार अल्माटाडमा के जीवन में '१७' की संख्या का महत्त्व एक बड़े जादू की तरह था—यह बात वे स्वयं स्वीकार करते हुए बताया करते थे—"मैं १७ वर्ष की उम्र का था तब १७ तारीख को ही अपनी प्रिय पत्नी से मिला। मेरे पहले मकान का नम्बर १७ था और जब दुबारा मकान बनवाने की बात आयी तो बहुत प्रयत्न करने पर भी वह १७ अगस्त से पहले प्रारम्भ नहीं हो सका। नवम्बर की १७ तारीख थी जब मैंने नूतन-गृह में प्रवेश किया। अपने लिए जब "सेन्ट जोन्स वुड में चित्रकारी के लिए कमरा लिया तो वह भी १७ नम्बर ही निकला।"

निःसन्देह 'अक्षरों' की महत्ता बहुत अधिक है पर लगता है संसार का नियमन संख्या द्वारा हो रहा है। तभी तो कई बार ऐसे विचित्र सांख्यिकी संयोग उपस्थित हो जाते हैं कि गैलीलियो जैसे वैज्ञानिक तक को यह मानना पड़ा था कि संसार गणित की भाषा में बोल रहा है—विधाता संसार का हिसाब-किताब संख्या में रखता है। इस तथ्य की पुष्टि में सुप्रसिद्ध भविष्य वक्ता और ज्योतिषी कीरो ने आश्चर्यजनक घटनाएँ अपनी पुस्तक 'कीरोज बुक ऑफ नम्बर्स' में संकलित की हैं—प्रस्तुत घटनाएँ अधिकांश उस पुस्तक का ही अंश हैं।

ए. बी. फ्रेन्च के जीवन की घटनाओं में ७ संख्या का महत्त्व बताते हुए कीरो लिखते हैं कि—"उनका जन्म ७वें महीने की ७ तारीख को हुआ था। अपनी ७ वर्ष तक की उम्र में वे कभी बीमार नहीं हुए। ७वीं कक्षा तक वे कभी फेल नहीं हुए। अपने विवाह के लिए उन्होंने ७वीं लड़की को चुना और यह एक विस्मय की बात थी कि उस लड़की के लिए भी फ्रेन्च ७वें ही लड़के थे। उनके जीवन की अधिकांश घटनाएँ ७ के ही साथ घटित हुईं।

उनके एक चाचाजी थे उनकी धर्मपत्नी एक बार रेल यात्रा कर रही थीं। रेलगाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गई। जिस डिब्बे में वह बैठी थीं उसका नम्बर ८६३१ था, एक बार लाटरी खरीदी उसका नं. ८६३१ था उसमें कुछ नहीं निकला, एक बार स्वयं भी एक ट्रक की चपेट में आ गए संयोग से उसका भी नम्बर ८६३१ ही था। उनके चार पुत्र हुए, चारों मर गए। उन लड़कों की मृत्यु क्रमशः ८, ६, ३ और १ वर्ष की आयु में हुई और इन संख्याओं को मिलाने से फिर वही ८६३१ संख्या बनती है जिसने दुर्भाग्य की दृष्टि से जीवन भर उनका पीछा नहीं छोड़ा।

लोगों का अनुमान है कि १३ की संख्या अशुभ होती है किन्तु कीरो की दृष्टि में यह कोई तर्क संगत बात नहीं है उन्होंने अनेक उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि १३ की संख्या को जहाँ अशुभ माना जाता है वहाँ वह कितने ही लोगों के जीवन की सौभाग्यदायक संख्या सिद्ध हुई। उत्तरी बर्टन यार्क्स के डॉ. रूड के जीवन में १३ की संख्या दुर्भाग्य सूचक के रूप में आयी। १३ वर्ष की आयु में वे बीमार पड़े। १३ दिन तक घोर कष्ट में रहे। १३ तारीख को ही हृदय की बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गई। गाँव के क्लब में जिसमें वे कुल १३ सप्ताह रहे, उनके फण्ड में उनकी मृत्यु के समय कुल १३ शिलिंग शेष थे। उनकी मृत्यु का दिन उनके सबसे छोटे बच्चे की १३वीं वर्षगाँठ थी। उनके अन्तिम संस्कार के लिए १३ सौ मील की यात्रा करनी पड़ी। अन्तिम संस्कार के समय कुल १३ सदस्य उपस्थित हुए उनके परिवार के सदस्यों की संख्या भी १३ ही थी। उनके बड़े लड़के को नेवी में नौकरी मिली और साथ में जो नम्बर मिला वह भी १३ ही था। जिस जहाज में काम करना था उसका नम्बर भी १३ ही था। रूड का नाम फ़ूवाह था जो कि बाइबिल के १३वें छन्द में आता है। उनकी मृत्यु के समय शोक सम्वेदना के जो तार आये उनकी संख्या भी १३ ही थी।

यह तो थी दुर्भाग्य की बात, १३ जिसके साथ सौभाग्य जुड़ा हुआ है। डेनवर कोलराडो के धनाढ्य उद्योगपति शेरमैन

का जन्म १३ तारीख को हुआ। सगाई १३ तारीख को हुई और विवाह भी १३ जून १९१३ को हुआ। उनकी पत्नी का जन्मदिन भी १३ तारीख का ही था। उनके विवाहोत्सव में भी कुल १३ ही अतिथि थे। उन्हें जो फूल भेंट किए गए उनकी संख्या भी १३ थी। १३ की संख्या उनके जीवन में सदैव लाभदायक रही।

संख्या की विचित्रता का संसार बड़ा व्यापक है जन्म-मृत्यु और जीवन काल की घटनाओं को ध्यानपूर्वक देखें तो पता चलता है कि हर व्यक्ति के जीवन में जोड़, बाकी, गुणा, भाग काम करता है और यही तथ्य इस बात का प्रमाण है कि प्रकृति जड़ नहीं है वरन् उसमें एक मस्तिष्कीय प्रक्रिया हर क्षण, हर घड़ी काम कर रही है।

इस तथ्य का प्रतिपादन संख्याओं की—गणित की यह विचित्रता प्रकट करती है। फ्रान्स के प्रथम सम्राट हेनरी १४ मई १०२९ को सिंहासन पर बैठे जबकि वहाँ के आखिरी सम्राट का नाम भी हेनरी ही था १४ मई १६१० को उनकी हत्या करदी गई थी। जिस तारीख को एक को सिंहासन मिला उसी को दूसरी १४ मई को मृत्यु का उपहार। इस बीच वहाँ के अन्य सभी राजाओं के जीवन में १४ संख्या का सदैव महत्त्व बना रहा। हेनरी १४वें का पूरा नाम हेनरी डिबारबन था, पूरे नाम में १४ अक्षर होते हैं। १४वीं शताब्दी में १४वीं १० वर्षीय काल सारणी (डकेड) में ईसा के जन्म से १४ वर्ष बाद हेनरी चतुर्थ का जन्म १४ मई को ही हुआ। सन् १५५३ में जन्म हुआ यह सब अक्षर ज़ोड़ने से भी १४ की ही संख्या आती है। १४ मई को ही हेनरी द्वितीय ने फ्रान्स का राज्य विस्तार किया था। हेनरी चतुर्थ की पत्नी का जन्म भी १४ मई को हुआ। हेनरी तृतीय को १४ मई के दिन युद्ध मोर्चे पर जाना पड़ा। हेनरी चतुर्थ ने आयवरी का युद्ध १४ मार्च १५९० को जीता। १४ मई १५९० में उनकी फौज की पेरिस के फाक्सवर्ग में हार हुई। नवम्बर मास की १४ तारीख ही थी जिस दिन फ्रान्स के १६ बड़े व्यक्तियों ने हेनरी चतुर्थ की सेवा करते-करते मर जाने की ऐतिहासिक प्रतिज्ञा की थी। इसी के ठीक २ वर्ष बाद १४ नवम्बर को फ्रान्स की पार्लियामेंट ने एक कानून पास कर पापलबुल को हेनरी के स्थान पर सत्ताधिकारी चुना। १४ दिसम्बर १५९९ को सवाय के ड्यूक ने अपने आपको हेनरी को आत्म-समर्पण किया। १४ तारीख ही थी जिस दिन लार्ड डफिन ने लुई १३वें के रूप में बैपतिस्मा ग्रहण किया।

१४ मई १६४३ को हेनरी चुतर्थ के पुत्र लुई १३वें की मृत्यु हुई। लुई १४वें १६४३ में सिंहासन पर बैठे इन चारों संख्याओं का योग भी १४ ही होता है। उन्होंने ७७ वर्ष (७ + ७ = १४) तक का जीवन जिया और १७१५ में मृत्यु हुई। यह चारों अक्षर जोड़ने पर भी १४ की ही संख्या आती है। लुई १५वें ने कुल १४ वर्ष राज्य किया। इस प्रकार फ्रान्स के सिंहासन पर १४ का महत्त्व सदैव बना रहा।

जर्मनी के शासक चार्ल्स चौथे का विश्वास था कि उनके जीवन में चार की संख्या सौभाग्य सूचक है सो उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चार को महत्त्व दिया। वह चार रंग की पोशाक पहनते थे और दिन में चार बार पहनते थे। चार प्रकार का भोजन, चार मेजों पर दिन में चार बार करते थे, चार प्रकार की शराब पीते थे, उनके अंगरक्षक चार थे, बग्घी में चार पहिए और चार ही घोड़े जुतते थे। उनके राज्य में चार गवर्नर नियुक्त थे, चार सेनापति, चार ड्यूक और कप्तान भी चार ही थे। उनके चार महल थे उनमें चार-चार ही दरवाजे थे। हर महल में चार-चार कमरे, हर कमरे में चार-चार खिड़कियाँ थीं और यह एक संयोग ही था कि मृत्यु के समय चार डॉक्टर उपस्थित थे। उन्होंने चार बार 'गुड बाय' कहा और ठीक चार—बजकर चार मिनट पर इस संसार से विदा हो गए।

ज्योतिर्विज्ञान : आत्मिकी की एक सुविकसित शाखा

सृष्टि का गतिचक्र एक सुनियोजित विधि-व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। ब्रह्माण्ड अवस्थित विभिन्न नीहारिकाएँ—गृह, नक्षत्रादि परस्पर सहकार सन्तुलन के सहारे निरन्तर परिभ्रमण-विचरण करते रहते हैं। जिस ब्रह्माण्ड में मनुष्य रहता है उसकी अपनी परिधि एक लाख प्रकाश वर्ष है और ऐसे-ऐसे हजारों अविज्ञात ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं।

आधुनिकतम अन्तरिक्ष यानों की अधिकतम गति (१७ हजार मील प्रति घण्टे की चाल) से भी यदि ब्रह्माण्ड को पार करने का सोचा जाय तो भी मनुष्य को इस पुरुषार्थ में करोड़ों वर्ष लग जायेंगे। ऐसी स्थिति में अन्यान्य ग्रहों की स्थिति उनके परस्पर एक दूसरे पर प्रभाव तथा सुदूर स्थित ग्रहों के पर्यावरण एवं जीव जगत पर प्रभावों की कल्पना वैज्ञानिक दृष्टि से तो कठिन ही नहीं, असम्भव जान पड़ती है। यही वह बिन्दु है जहाँ एस्ट्रानॉमी (खगोल भौतिकी) एवं एस्ट्रालॉजी (खगोलशास्त्र) का परस्पर टकराव मतभेद होता देखा जाता है। विज्ञान सम्मत प्रतिपादन फलित ज्योतिष की सम्भावनाओं को काटते नजर आते हैं तो ज्योतिष विज्ञान के ज्ञाता भौतिकी के नियमों को अपनी परिधि में न मानकर ग्रहगणित आदि के आधार पर फलादेश की घोषणा करते दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें कौन सही है ? कौन गलत ? क्या कोई समन्वयात्मक स्वरूप बन सकना सम्भव है जिसमें गृह, नक्षत्रों की जानकारी से उनके प्रभावों से बचना, लाभान्वित हो सकना, अपने क्रिया-कलापों को तद्नुसार बदलते रह सकना शक्य हो सके ? इसका उत्तर पाने के लिए हमें खगोल भौतिकी की कुछ प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करनी होगी।

अपना भू-लोक सौरमण्डल के बृहत् परिवार का एक सदस्य है। सारे परिजन एक सूत्र में आबद्ध हैं। वे अपनी-अपनी कक्षाओं में घूमते तथा सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य स्वयं अपने परिवार के ग्रह-उपग्रहों के साथ महासूर्य की परिक्रमा करता है। यह क्रम आगे बढ़ते-बढ़ते ब्रह्माण्ड के नाभिक महा ध्रुव तक जा पहुँचता है। इतना सब कुछ जटिल क्रम होते हुए भी सारे ग्रह, नक्षत्र एक-दूसरे के साथ न केवल बँधे हुए हैं वरन् परस्पर अति महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान भी करते हैं। इन सबके संयुक्त प्रयास का ही परिणाम है कि ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति अक्षुण्ण बनी रहती है। यदि ऐसा न होता तो कहीं भी अव्यवस्था फैल सकने के अवसर उत्पन्न हो जाते। ग्रहों का पारस्परिक सहयोग एवं आदान-प्रदान इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसे ब्रह्माण्डीय प्राण संचार कहा जा सकता है।

इतनी पृष्ठभूमि को समझने के बाद उस विधा की चर्चा की जा सकती है जिसे ज्योतिर्विज्ञान कहा गया है । विज्ञान के क्षेत्र में इसे उच्चस्तरीय स्थान प्राप्त है । ऋतु परिवर्तन, वर्षा तूफान, चक्रवात, हिमपात, भूकम्प, महामारी जैसी प्रकृतिगत अनुकूलता-प्रतिकूलताओं की बहुत कुछ जानकारियाँ वैज्ञानिक लोग अन्तर्ग्रही स्थिति के आधार पर प्राप्त करते हैं । खगोल भौतिकविदों का ऐसा अनुमान है कि मौसमों की स्थिति पृथ्वी पर अन्तरिक्ष से आने वाले ऊर्जा प्रवाह के सन्तुलन-असन्तुलन पर निर्भर होती है । सामान्यतया पृथ्वी के ध्रुवों पर ही अन्तरिक्षीय ऊर्जा का संग्रहण होता है । उत्तरी ध्रुव होकर ही ब्रह्माण्ड व्यापी अगणित सूक्ष्म शक्तियाँ—सम्पदाएँ पृथ्वी को प्राप्त होती हैं । जो उपयुक्त हैं उन्हें तो पृथ्वी अवशोषित कर लेती है एवं अनुपयुक्त को दक्षिणी ध्रुवद्वार से अनन्त आकाश में खदेड़ देती है । जिस प्रकार वर्षा का प्रभाव प्राणी जगत एवं वनस्पति समुदाय पर पड़ता है उसी प्रकार अन्तर्ग्रही सूक्ष्म प्रवाहों का जो अनुदान पृथ्वी को मिलता है, उससे उसकी क्षेत्रीय एवं सामयिक स्थिति में भारी उलट-पुलट होती है । यहाँ तक कि इस अभाव से प्राणी जगत भी अछूता नहीं रहता । मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक स्थिति भी इस प्रक्रिया से बहुत कुछ प्रभावित होती है । ज्योतिर्विद्या के जानकार बताते हैं कि वर्तमान की स्थिति और भविष्य की सम्भावना के सम्बन्ध में इस विज्ञान के आधार पर पूर्व जानकारी से समय रहते अनिष्ट से बच निकलने और श्रेष्ठ से अधिक लाभ उठाने की विधा को यदि विकसित किया जा सके तो मानव का यह श्रेष्ठतम पुरुषार्थ होगा । ऋषिगणों ने इसके लिए समुचित मार्ग भी सुझाया है । आवश्यकता पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर इस विज्ञान सम्मत प्रणाली के सभी पक्षों को समझने की है ।

प्राचीन काल में ज्योतिर्विज्ञान ज्ञान की एक सर्वांगपूर्ण शाखा थी जिसमें खगोल विज्ञान, ग्रह गणित, परोक्ष विज्ञान जैसे कितने ही विषयों का समावेश था । उस ज्ञान के आधार पर कितनी ही घटनाओं का पूर्वानुमान लगा लिया जाता था । आज भी उस महान् विधा से सम्बन्धित ग्रन्थ तथा ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं जिनसे उस काल की—ज्योतिर्विज्ञान की विस्तृत जानकारी मिलती है । ऐसे अगणित ग्रन्थों एवं ज्योतिर्विदों का परिचय इतिहास के पन्नों में मिलता है ।

आर्ष साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं । अनुमान है कि वेदों की रचना ४००० ईसा पूर्व से २५०० ईसा पूर्व वर्ष के बीच हुई है । अनेकों प्रसंग वेदों में हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषि मनीषियों को ज्योर्तिविज्ञान का पर्याप्त ज्ञान था । उदाहरणार्थ—यजुर्वेद में नक्षत्र-दर्श तथा ऋग्वेद में ग्रह-राशि का वर्णन मिलता है । अथर्ववेद के अनुसार गार्ग्य ऋषि ने सर्वप्रथम अन्तरिक्ष को विभिन्न राशियों में विभाजित करने का प्रयत्न किया था । इसके अतिरिक्त अट्ठाइस नक्षत्र, सप्तर्षि मण्डल वृहत्लुब्धक, आकाश गंगा आदि की भी पर्याप्त जानकारी वेदो से मिलती है । छः ऋतुओं तथा बारह महीनों का नामकरण सर्वप्रथम भारतीय खगोल शास्त्रियों ने किया था । भौतिकविदों को बहुत समय बाद यह जानकारी मिली कि सूर्य की किरणों में सात वर्ण हैं । पर तैतिरीय संहिता जैसे प्राचीन ग्रन्थ में बहुत समय पूर्व ही सूर्य को सप्त-रश्मि कहा गया है । कुछ विद्वानों का अभिमत है कि भौतिक विदों को सूर्य रश्मियों की जानकारी का आधार वह प्राचीन ग्रन्थ ही हैं ।

वैदिक युग के बाद रामायण और महाभारत काल आता है, जो लगभग २५०० ईसा पूर्व से लेकर ईसा २००० पूर्व तक माना जाता है । कहा जाता है कि रामायण के रचयिता महर्षि बाल्मीकि न केवल तत्ववेत्ता थे वरन् महान् ज्योतिर्विद भी थे । उन्होंने रामायण में भी तारों एवं ग्रहों की गति एवं उनकी स्थिति का वर्णन करते हुए उनका मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख किया है । रामायण का खलनायक रावण स्वयं महान् ज्योतिर्विद था । ऐसा कहा जाता है कि उस काल में रावण जैसा प्रकाण्ड पण्डित तथा ज्योतिर्विद कोई दूसरा न था । रावण संहिता उसकी विलक्षण ज्योतिर्विज्ञान की जानकारी का प्रमाण है, जो ज्योतिष शास्त्र का असाधारण ग्रन्थ माना जाता है ।

गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र, मनु, याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि अपने समय के धुरन्धर ज्योतिर्विज्ञानी भी थे । 'याज्ञवल्क्य स्मृति में' तारों और तारा रश्मियों का विशद् वर्णन है जो उस समय की खगोल विद्या एवं ज्योतिर्विज्ञान की जानकारी देता है । महाभारत में भी ऋतुओं एवं ग्रह नक्षत्रों का वर्णन है । एक स्थान पर उल्लेख है कि कौरव और पाण्डवों के बीच युद्ध छिड़ने के पूर्व चन्द्रग्रहण लगा था । राहु एवं केतु के प्रभावों का भी वर्णन मिलता है ।

ईसा पूर्व के अन्य ज्योतिर्विदों में व्यास, अत्रि पाराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मारीचि, अग्र, लोमश, पौलत्स्य, च्यवन, यवन, भृगु, शौनक भी उल्लेखनीय हैं । विविध विषयों के विशेषज्ञ होने के साथ-साथ वे ज्योतिर्विद भी थे ।

५०० ईसा पूर्व से लेकर ५०० ई. तक की अवधि में विदेशी आक्रमणकारी अत्यधिक सक्रिय रहे । सिकन्दर ने इसी बीच आक्रमण किया था । पुरातत्व वेत्ताओं का कहना है कि आतताइयों ने न केवल भारत में लूट-पाट मचायी वरन् यहाँ की सांस्कृतिक धरोहरों—विशेषकर ज्योतिर्विज्ञान की महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियों तथा वेधशालाओं को भी बुरी तरह नष्ट किया । ऐसा भी अनुमान है कि कितने ही बहुमूल्य अभिलेख वे अपने साथ बाँधकर ले गए जिनका जर्मन, रोम, फ्रेन्च आदि भाषाओं में अनुवाद हुआ वे वहाँ के म्यूजियमों में अभी भी उपलब्ध हैं ।

ज्योतिर्विज्ञान को पुनर्जीवित करने का कार्य आगे चलकर पाटलिपुत्र में आर्य भट्ट प्रथम ने किया । सन् ४७ में उनका जन्म हुआ । पाटलिपुत्र की विश्व विख्यात विद्यापीठ में उन्होंने ज्योतिर्विद्या का विशद् अध्ययन किया । उन्होंने आर्य भट्टयम्, तन्त्र तथा 'दशगीतिका' नामक तीन प्रख्यात ग्रन्थ लिखे । वे सर्वप्रथम खगोलविद् थे जिन्होंने यह सिद्धान्त खोज किया कि पृथ्वी अपनी धुरी व कक्षा पर दैनिक गति करती है । इसी गति के कारण दिन और रात होते हैं ।

आर्यभट्ट के बाद ज्योतिर्विद्या पर सबसे अधिक काम आचार्य बाराहमिहिर ने किया । उनका जन्म उज्जैन के काल्पी नामक स्थान पर हुआ । उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग उज्जैन में ही अध्ययन-अध्यापन में बिताया । उनके शोध का नवनीत 'बृहद् जातक' 'बृहत्संहिता' जैसे महान् ग्रन्थों में भरा है । बृहत्संहिता में प्राकृतिक विज्ञान का इतना विस्तृत वर्णन है कि कोई भी क्षेत्र ज्योतिर्विज्ञान का बचा नहीं है । ग्रहण, उल्कापात, भूकम्प दिग्दाह, वृष्टि, प्रकृति, ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति, गति का प्रभाव

आदि विषयों पर विशद वर्णन है । कुछ विशेषज्ञों का अभिमत है कि विज्ञान की नयी शाखा—'एस्ट्रोफिजिक्स' (खगोल भौतिकी), जिसमें ग्रह, नक्षत्रों के चुम्बकीय विद्युतीय ऊष्मा आदि प्रभावों का अध्ययन किया जाता है, उसकी उत्पत्ति बाराहमिहिर के ग्रन्थों की प्रेरणा से हुई है । उनकी 'पंच सिद्धान्तिका' कृति भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है । उसमें वर्णित सूर्य सिद्धान्त अद्वितीय है । विषुवअयन की क्रिया का वर्णन भी बाराहमिहिर ने ही किया है । उन्होंने अपने विशद अध्ययन से उसका मान ५४ विकल्प (सेकण्ड) प्रति वर्ष प्राप्त किया । जिसका आधुनिक मान खगोलविदों ने ५४.२७२८ सेकण्ड खोजा है । दोनों खोजों में कितना साम्य है, यह देखकर अचरज होता है । साथ ही इस बात का भी आश्चर्य होता है कि बिना आधुनिक यन्त्रों के उस काम में इतनी सूक्ष्म तथा शुद्ध गणना करना किस प्रकार सम्भव हो सका ?

न्यूटन ने बहुत समय बाद यह खोज की कि पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है । उसके सैकड़ों वर्ष पूर्व ही महान् भारतीय वैज्ञानिक, ज्योतिर्विद भास्कराचार्य ने उपरोक्त तथ्य की खोज कर ली थी । उनकी प्रख्यात कृति 'सिद्धान्त शिरोमणि' में इस बात का प्रमाण भी मिलता है । उसमें वर्णन है—

आकृष्ट शक्तिश्च महीतया यत्,
स्वस्थं गुरुं स्वाभि मूखं स्वशक्त्या ।
आकृष्वते तत्पत नीति भाति,
समे समन्नात् क्त पतित्वयं रवे ।

अर्थात्—"पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है इससे वह अपने आस-पास की वस्तुओं को आकर्षित कर लेती है । पृथ्वी के निकट आकर्षण शक्ति अधिक होती है, जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वह घटती जाती है । यदि किसी स्थान से भारी, हल्की वस्तु छोड़ी जाय तो दोनों एक ही समय पृथ्वी पर गिरेंगी, ऐसा न होगा कि भारी वस्तु पहले गिरे तथा हल्की बाद में । ग्रह और पृथ्वी आकर्षण शक्ति के प्रभाव से ही परिभ्रमण करते हैं ।"

आज विज्ञान के पास अद्भुत जानकारियाँ हैं, बेजोड़ रडार टेलिस्कोप आदि यन्त्र हैं, जिनके सहयोग से ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में मूल्यवान खोजें की जा सकती हैं । आवश्यकता मात्र इतनी भर है कि जड़ संसार की खोज में उलझा विज्ञान, अदृश्य जगत की ओर भी अपने कदम बढ़ाए । प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान के अगणित सूत्र संकेत उसे मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं । इस महान् विधा का पुनरुद्धार किया जा सके तो अदृश्य जगत से सम्पर्क साधने, सहयोग पाने तथा परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है । यह एक ऐसी उपलब्धि होगी, जिस पर वैज्ञानिक गर्व कर सकते हैं । मारक आयुधों के निर्माण में संलग्न प्रतिभाओं को अब मनीषी की भूमिका निभाते हुए पुरातनकाल के ऋषिगणों की तरह ही ज्योतिर्विज्ञान की इस फलदायी शोध में निरत होकर अपनी बौद्धिक प्रखरता का, सार्थकता का प्रमाण देना चाहिए ।

मानव से जुड़ी परोक्ष जगत की हलचलें

नेत्रों को दृश्य का विस्तार ही नजर आता है । उसे ही जानने तथा उपलब्धियों को हस्तगत करने का प्रयत्न किया जाता है । जबकि दृश्य जगत की परिस्थितियाँ बनाने में परोक्ष की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । कितनी बार तो परोक्ष की भूमिका इतनी जबरदस्त होती है कि भू-मण्डल पर भारी उथल-पुथल मचते देखी गई है, जिनका कुछ भी प्रत्यक्ष कारण समझ में नहीं आता । आये दिन भयंकर तूफान आते हैं, ज्वालामुखी फटते हैं, भूकम्प, भूस्खलन के विप्लव भयंकर कुहराम मचाते हैं पर इनकी पूर्व यथार्थ जानकारी नहीं मिल पाती । मौसम विज्ञान तथा खगोल विज्ञान के पूर्व कथन तीर-तुक्के जितने ही सही उतरते हैं । अन्तरिक्ष विज्ञान की जानकारियों से भी विशेष मदद नहीं मिल पाती । फलतः अन्तर्ग्रही परिवर्तनों तथा उनसे पड़ने वाले व्यापक प्रभावों की जानकारी न हो पाने से पूर्व सुरक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं बन पाती । उन प्रतिकूलताओं का शिकार मानव जाति को बनना पड़ता है ।

अन्तर्ग्रही सम्बन्धों तथा पृथ्वी एवं जीव जगत पर उनकी स्थिति से पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन की एक सर्वांगपूर्ण और समुचित विकसित विधा प्राचीनकाल में थी जिसे ज्योतिर्विज्ञान के नाम से जाना जाता था । उससे जीव, प्रकृति तथा ब्रह्माण्ड के पारस्परिक सम्बन्धों की विस्तृत जानकारी मिल जाती थी । उसके अनुरूप व्यवस्था बनाने तथा अन्तर्ग्रहीय प्रतिकूलताओं को अनुकूल करने के उपचार भी चलते थे । वह विद्या कालान्तर में विलुप्त हो गई । तो भी उनके ध्वंसावशेष किसी न किसी रूप में आज भी मौजूद हैं । अति उपयोगी उस विधा का पुनर्जीवन यदि सम्भव हो सके तो आज भी अन्तर्ग्रही सम्बन्धों को समझने, उनके पारस्परिक सम्बन्धों से लाभ उठाने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है ।

विज्ञान ने भी अब यह स्वीकार कर लिया है कि जीवन तथा उसके लिए उपलब्ध परिस्थितियाँ मात्र पृथ्वी की देन नहीं हैं । उनमें दूसरे ग्रहों का भी योगदान है । जीवन की हर लय उनकी स्थिति से प्रभावित है । जीवों में प्रकृति के अनुरूप चलने वाले जैव चक्र को वैज्ञानिक भाषा में 'बायोरिदम, या बायोलॉजिकल क्लाक कहा जाता है । इसके अन्तर्गत जीवों की दिशाबोध की क्षमता ऋतुचक्र का पेड़-पादपों तथा प्राणियों पर प्रभाव, उनके व्यवहार में सम्भाव्य परिवर्तन तथा मनुष्य की रासायनिक संरचना एवं मनोभावों के उतार-चढ़ाव का विस्तृत अध्ययन किया जाता है ।

बायोलॉजिकलरिद्म को प्रभावित करने वाली सबसे बड़ी शक्ति सूर्य का प्रकाश है । मनुष्य तथा मनुष्येत्तर जीव समुदाय के शरीरों में विद्यमान जैव घड़ी का नियन्त्रण प्रकाश की ऊर्जा करती है । शरीर की हर कोशिका में भी बायोलॉजिकल क्लाक सक्रिय है । अनुसन्धानों से पता चला है कि प्रत्येक कोशिका को रात-दिन, अन्धेरा-उजाला, भूख-प्यास, सुख-दुःख तथा ब्रह्माण्ड की हर गतिविधि की पूरी-पूरी जानकारी रहती है । अरबों कोशिकाओं से बना शरीर तो उन अनुभूतियों को ग्रहण करने में और भी सक्षम है ।

मौसम में परिवर्तन, पृथ्वी की चाल तथा सूर्य के कारण होते हैं । यों ये परिवर्तन समूचे जीव जगत की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं । मानव शरीर तथा मन पर भी उसका प्रभाव पड़ता है । जीवों की जैव घड़ी की सूर्य का प्रकाश एवं ऊर्जा ही एक निश्चित लय एवं ताल से बँधे रहते हैं । प्रकाश सभी जीवों में फोटो कैमिकल प्रक्रियाओं के लिए भी जिम्मेदार है । वह सेकण्डों में धरती पर पहुँचकर जीवधारियों को प्रकाश संश्लेषण

क्रिया के लिए उत्प्रेरित करता है । प्रकाश रश्मियाँ मनुष्य शरीर में त्वचा के माध्यम से रक्त शिराओं में प्रविष्ट हो जैव रासायनिक हलचलें उत्पन्न करती हैं । आँख से होकर प्रकाश ऊर्जा मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस तक पहुँचती हैं जिससे अनेकानेक रक्त शिराएँ भी जुड़ी रहती हैं । इस प्रकार प्रकाश ऊर्जा हाइपोथैलेमस जा पहुँचती है । ज्ञातव्य है कि हाइपोथेलेमस 'थर्मोस्टेट' की भूमिका निभाता है । वातावरण के तापक्रम में होने वाले परिवर्तनों को वह तुरन्त अंकित करके शरीर की ताप स्थिति में तद्नुरूप हेर-फेर की प्रक्रिया शुरू कर देता है ।

प्राकृतिक ऊर्जा का एकमात्र स्रोत सूर्य है । प्रत्येक जीव-जन्तु, पेड़-पादप जीवनोपयोगी ऊर्जा उसी से प्राप्त करते हैं । धरती पर सर्वत्र तापक्रम एक जैसा नहीं है । विभिन्न गोलार्द्धों की बनावट में अन्तर होने से उसमें अन्तर पाया जाता है । तापक्रम तथा प्रकाश की अवधि एवं मात्रा में अन्तर के फलस्वरूप धरती के विभिन्न स्थानों पर प्राणियों एवं वृक्ष वनस्पतियों के विकास में भी अन्तर पड़ता है । प्रायः १० से ४० डिग्री सेण्टीग्रेट तापक्रम जीव जगत के विकास में सहायक होता है । अधिक पर विकास की गति अत्यन्त तीव्र तथा कम पर न्यून हो जाती है । यह दोनों ही स्थितियाँ अनूकूल नहीं मानी गई हैं ।

ऋतु, मौसम तथा अन्तर्ग्रही परिवर्तनों के जीवन पर प्रभाव का अध्ययन करने की एक नयी विधा विकसित हुई है— 'बायोलॉजिकल क्लाइमेटोलॉजी ।' इसमें वायुदाब, भू-चुम्बकत्व अन्तर्ग्रही विकिरणों तथा ब्रह्माण्डीय किरणों के जीव जगत तथा पृथ्वी के वायुमण्डल पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है । इस शाखा की अभी बाल्यावस्था है पर अब तक जो निष्कर्ष आये हैं वे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । सम्बद्ध विषय पर शोध करने वाले वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य तथा चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण का पृथ्वी के चुम्बकत्व, गुरुत्वाकर्षण, विद्युत तथा प्राणियों की हलचलों पर गहरा प्रभाव पड़ता है ।

आर्नल्ड एल. लीवर की पुस्तक 'द लूनर ए फेक्ट' रोनाल्ड ऑफ फीव की पुस्तक 'मूडस्विंग' तथा लाइएल बाढ़सन की पुस्तक 'लाइफ टाइड' (जीवन के ज्वार-भाटे) में इस विषय पर विस्तृत उल्लेख किया गया है । इन सभी का मत है कि जब भी पृथ्वी, सूर्य तथा चन्द्रमा एक सीध में एक-दूसरे के निकट स्थित होते हैं, ऐसी विषम परिस्थितियाँ उपस्थित होती हैं जो शरीरगत हलचलों एवं मन के क्रिया-कलापों को प्रभावित करती हैं । मियामी विश्वविद्यालय के मनोरोग चिकित्सक आर्नल्ड डॉ. लीवर ने चन्द्र कलाओं का सम्बन्ध मानवी व्यवहार एवं क्रिया-कलापों से जोड़ते हुए कहा है कि चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण हमारे आन्तरिक बायोलॉजिकल टाइड्स (ज्वार-भाटों) को भी उसी प्रकार प्रभावित करता है, जिस प्रकार समुद्री ज्वार-भाटों को । उनका मत है कि मनुष्य की आक्रामक प्रवृत्ति का चन्द्रमा की कलाओं के घटने-बढ़ने से गहरा सम्बन्ध है । विशेषकर शराबियों, नशीली दवा खाने के अभ्यस्तों, अपराधियों तथा मानसिक रूप से अस्थिर व्यक्तियों एवं अति भावुक लोगों के व्यवहार पर चन्द्र कलाओं का अधिक प्रभाव पड़ते देखा गया है । प्रभावों का कारण स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि "पृथ्वी की सतह की तरह मनुष्य शरीर में भी लगभग ८० प्रतिशत जलीय तथा २० प्रतिशत ठोस का अंश विद्यमान है । इसी कारण अमावस तथा पूर्णिमा के दिन मानव व्यवहार पर चन्द्रकलाओं का सर्वाधिक असर देखा गया है ।

अपने एक अध्ययन में डॉ. लीवर ने पाया कि चन्द्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी के एक सीधी रेखा में आने पर मियामी क्षेत्र में हत्या एवं आत्महत्या जैसे अपराधों की बाढ़-सी आ गई। सन् १९७१ में ग्रहों का ऐसा योग पड़ा था जिसके आरम्भिक तीन सप्ताहों में जितनी हत्याएँ हुईं उतनी पहले कभी नहीं हुई थीं । उनका अनुपात वर्ष १९७२ के जनवरी माह से दुगुना था । अध्ययन में यह भी मालूम हुआ कि पूर्णिमा तथा अमावस्या के दिन इन अपराधों के अतिरिक्त अन्य अपराधों में भी बढ़ोत्तरी हो जाती है । पुलिसमैन, फायरमैन, एम्बुलेंस चालक इन अवसरों पर ड्यूटी पर सबसे अधिक व्यस्त देखे जा सकते हैं क्योंकि बड़े पैमाने पर आत्महत्या, यौन अपराध, आगजनी, राहजनी, लूट-पाट इन्हीं दिनों होते हैं । ये घटनाएँ दिन की अपेक्षा रात को अधिक घटित होती हैं । रात्रि में तो हिंसक घटनाओं तथा सड़क दुर्घटनाओं का सैलाब आ जाता है !

'द लूनर इफेक्ट' में डॉ. लीवर के अध्ययन निष्कर्षों का सार इस प्रकार है—"ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव हमारे शरीर, हार्मोन्स, स्राव की जटिल प्रक्रिया, द्रव पदार्थों तथा स्नायुतन्त्र को शक्ति देने वाले विद्युत कणों पर पड़ता है । त्वचा ऐसी अर्ध चुम्बकीय है जो दोनों दिशाओं में विद्युत चुम्बकीय शक्तियों को आवागमन का मार्ग प्रशस्त करती है, इससे सन्तुलन बना रहता है । स्नायु की प्रत्येक तरंग, शक्ति की सामान्य विद्युतधारा उत्पन्न करती है । छोटे सौरमण्डल की भाँति हर कोशिका का अपना एक छोटा तथा हल्का विद्युत क्षेत्र होता है । डॉ. लीवर का कहना है कि ग्रह नक्षत्रों से व्यापक परिमाण में निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय शक्तियाँ शरीर तथा उसकी सूक्ष्म कोशिकाओं के सन्तुलन को प्रभावित करती हैं ।

उल्लेखनीय बात यह भी है कि सूर्य तथा चन्द्रमा जब-जब शिखर बिन्दु पर होते हैं तब-तब मनुष्य सहित सभी प्राणियों की श्वास दर तेज हो जाती है । दमे वालों की तकलीफ बढ़ जाती है । शीत ऋतु में विशेषकर जनवरी, फरवरी में श्वास की दर बाकी महीनों की तुलना में घटी रहती है जबकि सितम्बर से लेकर नवम्बर तक सबसे अधिक बढ़ जाती है ।

पृथ्वी के चारों ओर लिपटा रक्षा कवच का आवरण मैग्नेटोस्फीयर सौर हलचलों से प्रभावित होता है । चुम्बकीय आवरण की स्थिति से मनुष्य की सम्वेदना, नेत्र ज्योति, रक्त संचार, जैव रासायनिक गतिविधियाँ तथा मस्तिष्क की कार्यकुशलता आदि पर भी प्रभाव पड़ता है । यदि चुम्बकीय शक्ति में वृद्धि होती है तो शरीर के रासायनिक तत्वों के अणु आवेश बदल जाते हैं । फलस्वरूप मस्तिष्कीय केन्द्रों से स्रवित होने वाले विभिन्न रसायनों का सन्तुलन बिगड़ जाता है । इसका सीधा प्रभाव मनुष्य के चिन्तन एवं व्यवहार पर पड़ता है । अनेकों अध्ययनों में यह पाया गया कि सौर गतिविधि के ग्यारह वर्षीय चक्र में आरम्भिक छः वर्षों में सूर्य धब्बे बढ़ जाते हैं तथा बाद के पाँच वर्षों में उनमें कमी आ जाती है । सौर धब्बों के बढ़ने से दिल के मरीजों की स्थिति गम्भीर होती देखी गई है । कितने ही व्यक्तियों में दिमागी बीमारियाँ तथा तन्त्रिका तन्त्र के विकार भी इसी दौरान तेजी से उभरने लगते हैं ।

स्वीडन के तीन वैज्ञानिकों—जी. एग्रेन, ओ. विलैण्डर तथा इ. जोरेस ने १९३१ में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की खोज की। उनका कहना था कि शारीरिक क्रियाओं के जैव रासायनिक चक्रों, जोकि अन्तर्ग्रही प्रभावों के कारण परिवर्तनशील हैं, उनके अनुसार ही बीमार शरीर की चिकित्सा की जानी चाहिए। उन्हीं ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि डायबिटीज के रोगी का इन्सुलिन से उपचार करते समय दवा से भी अधिक महत्त्व इस बात का है कि उसे कब और किस समय दी जाय ? चौबीस घण्टे के रात-दिन के चक्र में रक्त में शर्करा की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। रक्त में हीमोग्लोबिन के अनुपात में भी उतार-चढ़ाव इसी प्रकार आता है। उन्होंने पाया कि २४ घण्टे के चक्र में रक्त में पोटेशियम, कैल्सियम, सोडियम, मैग्नेशियम तथा फॉस्फोरस की मात्रा भी बदलती रहती है। चिकित्सकों के लिए शारीरिक रसायनों एवं तत्वों के दैनिक उतार-चढ़ाव की विस्तृत जानकारी का होना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि निदान एवं उपचार सम्बन्धी ज्ञान का होना। बायोलॉजिकलरिद्म सौरमण्डल के घटकों की गति, लय एवं स्थिति से प्रभावित होती तथा उनसे अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ी हुई है। उन सम्बन्धों तथा प्रभावों का ज्ञान होना भी चिकित्सकों के लिए आवश्यक है।

पिछ्ली एक सदी में विज्ञान की विभिन्न शाखा प्रशाखाओं का चमत्कारी विकास हुआ है। मनुष्य की बौद्धिक क्षमता तथा तकनीकी ज्ञान में भी असाधारण वृद्धि हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि इनके सहयोग से ज्योतिर्विज्ञान रूपी महान् विधा की विलुप्त कड़ियों को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया जाय। जिससे दृश्य तथा अदृश्य जगत के पारस्परिक अन्तर्ग्रहीय सम्बन्धों एवं प्रभावों को जानने और तद्नुरूप उससे प्रभाव उठाने की सफल रीति-नीति अपनाने में मदद मिल सकती है। अध्यात्म उपचारों की सहायता से इस कड़ी को कैसे और आगे बढ़ाया जा सकता है, इसे भी शोध का विषय बनाया जाय एवं तद्नुसार प्रयास किए जायें।

ज्योतिर्विज्ञान और वेधशालाएँ

आकाश में अवस्थित ग्रह-नक्षत्रों का भला-बुरा प्रभाव धरती के वातावरण, प्राणियों, वनस्पतियों तथा ऋतु परिवर्तनों पर पड़ता देखा गया तो प्राचीनकाल के मनीषियों ने इस सम्बन्ध में अधिक खोज करने का निश्चय किया। इसके लिए सर्वप्रथम यह जानना, आवश्यक समझा गया कि आकाश में घूमते ग्रहों की स्थिति को समझा जाय कि वह कब, कहाँ, किस स्थिति में होती है ? यह कार्य आरम्भिक दिनों में लम्बी नलिकाओं के सहारे होता था। जो निष्कर्ष निकलते थे, उसके आधार पर ग्रह गणित की विधाएँ विनिर्मित की गईं। लम्बे समय तक इस गणितीय आधार पर ही ज्योतिष की गाड़ी को चलाया जाता रहा।

इतने पर भी स्थिति निश्चित न हुई। गणित का निष्कर्ष सही नहीं बैठता था। ग्रहों के उदय-अस्त में घंटों का नहीं दिनों का अन्तर पड़ने लगा तब गणित के नये-नये फार्मूले खोजे और अपनाये जाने लगे। इस पर भी अनिश्चितता किसी न किसी रूप में बनी ही रही। कारण यह था कि पृथ्वी की तरह सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रहों की चाल की नाप-तौल पृथ्वी की घड़ियों से सही नहीं हो पा रही थी। दोनों के बीच अन्तर बना ही रहता था और वह घटता-बढ़ता भी रहता था। एक दो वर्षों में ही यह आवश्यकता पड़ जाती थी कि ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति को आँखों से देखते रहा जाय और उसके आधार पर समय-समय पर किए गए गणितों की प्रक्रिया में आवश्यक हेर-फेर किया जाता रहे। इस प्रयोजन के लिए वेधशालाओं के निर्माण का सिलसिला शुरू हुआ। तब भारत की दूरवर्ती विशालता थी। यहाँ के विद्वान समूची धरती को अपना ही घर तथा कार्य क्षेत्र मानते थे। इसलिए वे मात्र भारत में ही बैठे रहने की अपेक्षा जहाँ आवश्यकता अनुभव करते थे वहाँ बस जाते थे। ज्योतिष के लिए उपयुक्त भौगोलिक स्थिति यूनान की समझी गई और वेधशालाओं का अभिनव सिलसिला उसी भूमि से चला। यद्यपि उस विधा की जन्मदात्री भारतभूमि ही बनी रही। यूनान को वह ज्ञान निर्यात होता रहा। मध्य एशिया में औरंगजेब के प्रपौत्र उलूखबेग ने खगोलवेत्ताओं की सहायता से एक वेधशाला बनाई जिसमें लकड़ी से बने यन्त्र लगाये थे। वाराहमिहिर की 'पंच सिद्धान्तिका' में इन वेधशालाओं को बनाने के सूत्र संकेत हैं। उन्हीं के आधार पर निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ।

भारत में यह स्थापनाएँ इसके उपरान्त हुई। दिल्ली की कुतुबमीनार इसी आधार पर बनी। उसमें ग्रहों तथा राशियों का मापन प्रबन्ध है। समीप ही २७ नक्षत्रों की स्थिति जानने के लिए सत्ताइस ऐसे यन्त्र बने हैं जिनकी सहायता से नक्षत्रों की स्थिति भी आँकी जा सकती थी।

इस विषय में जयपुर के तत्कालीन शासक जयसिंह ने विशेष रुचि ली। उन्होंने इस विधा के ग्रन्थ देश-देशान्तरों से मंगाये और उनके अनुवाद कराये। उन्होंने यह आवश्यक समझा कि यदि ज्योतिष शास्त्र को सही स्थिति में रखा जाना है तो उसके लिए मात्र गणित की पुरानी विधियाँ ही पर्याप्त न होंगी, वरन् इसके लिए सुनियोजित वेधशालाएँ स्थान-स्थान पर बनानी पड़ेंगी, जिससे ग्रह चाल और पृथ्वी की सीध से सम्बन्धित प्रकाश का तारतम्य सही रीति से सम्भव हो सके। इसी प्रकार उन दिनों प्रचलित नवजात शिशु की जन्मकुण्डली बनाने के लिए भी आवश्यक यह समझा गया कि समीपवर्ती वेधशाला द्वारा प्रमाणित जन्माक्षरों को ही सही माना जाय। यह सभी कारण ऐसे थे जो खगोलवेत्ताओं को इस बात के लिए बाधित करते थे कि यदि इस शास्त्र की प्रामाणिकता स्थिर रखनी हो, तो इसके लिए स्थान-स्थान पर वेधशालाएँ बनाई जायें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महाराजा जयसिंह ने अपने संग्रहीत ज्ञान तथा निजी सूझ-बूझ के आधार पर कई वेधशालाएँ एक के बाद एक खड़ी कीं। दिल्ली के तत्कालीन शासक मुहम्मदशाह से आज्ञा पत्र प्राप्त करके प्रथम वेधशाला दिल्ली में बनाई गई। जिसके उपरान्त उज्जैन में वेधशाला बनी। कर्क रेखा उज्जैन से होकर ही गुजरती है। महाकाल की गणना का भी उससे सम्बन्ध है। इसके पश्चात् मान मन्दिर में वाराणसी की छोटी वेधशाला बनी उसमें मात्र ६ प्रधान यन्त्र बनाये गए।

जयपुर की वेधशाला बनाने का कार्य सन् १७१८ से लेकर १७३८ तक सम्पन्न हुआ। उसे देश की सबसे बड़ी वेधशाला कहा जा सकता है। इसमें यन्त्र अपेक्षाकृत अधिक लगे हैं और गणकों की सुविधा के लिए कुछ बड़े आकार के भी बनाये गए हैं।

मथुरा की वेधशाला छोटी थी। मद्रास की वेधशाला तत्कालीन गवर्नर आकले ने सन् १७९२ में बनायी। इसमें

नवीनतम जानकारियों का भी समावेश किया गया । देव प्रयाग में भी ऐसी ही एक यन्त्र की वेधशाला है । पुरातन इतिहास को खोजने पर नवीं शताब्दी में राजा रतिवर्मा ने महोदय पुरा (दक्षिण भारत) में एक वेधशाला बनाई थी । रामायण काल में महर्षि अत्रि की तूर्य वेधशाला प्रसिद्ध थी । इन वेधशालाओं के माध्यम से आकाशीय पिण्डों के उन्नतांश, दिशांश, अक्षांश आदि की गणना होती थी । कई जगह मजबूत मिट्टी और चूना-पत्थर की सहायता से ज्योतिष संस्थान बने थे । उनका नाम जहाँ कहीं 'ग्रह मन्त्रालय' भी दिया गया था ।

भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्त 'शिरोमणि' और 'करण कौतूहल' ग्रन्थों में खगोल वेध के निमित्त अनेक विधान रखे हैं । पर उनमें से छोटे बड़े यन्त्र बनाने का विधान रखा है । पर उनमें से इन दिनों विनिर्मित वेधशालाएँ वक्रयन्त्र, चापयन्त्र, तर्थयन्त्र, मौलयन्त्र, नाड़ीयन्त्र, वलययन्त्र, पट्टिकायन्त्र, शंकु यन्त्र, दिगंशयन्त्र, पलभायन्त्र, पुत्तयन्त्र, भित्तियन्त्र, कपालयन्त्र आदि ही मिलते हैं । निर्माणकर्त्ताओं ने अपने नाम को प्रख्यात करने के लिए सम्राटयन्त्र, राययन्त्र, जय प्रकाशयन्त्र आदि नाम भी रख लिए । इनका पुराना वास्तविक नाम क्या था यह जाना नहीं जा सका । पीछे ऐसे भी प्रयत्न किए गए कि कुछ यन्त्र ऐसे भी बनाये जायें जिनमें कई यन्त्रों का समावेश हो और उनके सहारे कई प्रकार के गणित एक साथ किए जा सकें । इस प्रयोजन के लिए मिश्रित यन्त्र बना । नियतियन्त्र में एक साथ दिनमान, क्रान्तिवृत्त आदि की जाँच पड़ताल की जा सकती है ।

कोणार्क (उड़ीसा) का सूर्य मन्दिर वस्तुतः एक सूर्य वेधशाला है । सूर्य को खुली आँखों से देखना कठिन है । इसलिए इसकी अंशगणना अति कठिन समझी जाती है । इसको हल करने के लिए खगोलवेत्ताओं की एक मंडली ने राज-सहयोग से कोणार्क का सूर्य मंदिर बनाया और उसमें सूर्य का वेध संधान किया ।

इन दिनों ज्योतिष की मूल दिशा मरोड़कर उसे पूजा-भाष्य, भविष्य कथन, मुहूर्त शोधन, ग्रहशान्ति आदि के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है । ग्रह गणित की वस्तुस्थिति की ओर किसी का ध्यान नहीं है । यही कारण है कि छः शास्त्रों में प्रमुख गिना जाने वाला ज्योतिष शास्त्र अपनी मौलिक विशेषता और गरिमा से विलग होता चला जा रहा है ।

इस क्षेत्र में आशा की एक किरण के रूप में शान्तिकुंज की नवनिर्मित वेधशाला को देखा जा सकता है, जिसमें प्राचीन सिद्धान्तों और अर्वाचीन अनुभवों का समावेश करते हुए एक छोटा किन्तु सर्वांगपूर्ण ग्रह मन्त्रालय विनिर्मित किया गया है और नेपच्यून, यूरेनस, प्लेटो नामक तीन नवीन ग्रहों का अभिनव गणित भी सम्मिलित करते हुए दृश्य गणित पंचांग भी गत तीन वर्षों से प्रकाशित किया जाने लगा है । इस प्रसंग में अभी अधिक शोधप्रयत्नों की आवश्यकता है ।

ज्योतिष विज्ञान उपेक्षणीय नहीं है

मौसम की पूर्व जानकारी होने से तदनुरूप व्यवस्था बना ली जाती है । वर्षा ऋतु के आगमन की सूचना मिलते ही कृषकगण खेत जोतने, बीज बोने की तैयारी में जुट जाते हैं । वर्षा से सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के सरंजाम जुटाए जाते हैं । शीत ऋतु में ठण्ड से बचाव के लिए गर्म कपड़े एवं बिस्तर आदि बनवाने पड़ते हैं । गर्मी में उसके अनुरूप व्यवस्था करनी होती है । न केवल सुरक्षा का ही प्रबन्ध करना होता है वरन् दैनिक कार्यक्रमों का मौसम के अनुरूप नये सिरे से निर्धारण भी करना पड़ता है । मौसम विज्ञान की पूर्व जानकारी हर दृष्टि से उपयोगी है, मानवी विकास के लिए एक सम्मत पृष्ठभूमि बनाने वाली एक विद्या भी है ।

पृथ्वी पर उपलब्ध परिस्थितियाँ, वातावरण उसकी स्वयं की उपार्जित सम्पदा नहीं है । उसका एक बड़ा भाग अन्यान्य ग्रहों से प्राप्त होता है । सूर्य को प्रकाश, ताप और प्राण का अधिष्ठाता माना गया है । ये अनुदान पृथ्वीवासियों को सतत् सूर्य से ही प्राप्त होते रहते हैं । सूर्य ही नहीं सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रहों का पृथ्वी पर अनुकूल वातावरण विनिर्मित करने में अपने-अपने ढंग का योगदान है । समस्त सौरमण्डल ही एक 'ईकॉलाजिकल' चक्र में बँधा हुआ है । ग्रहों की गति एवं स्वरूप में होने वाले हेर-फेर से पृथ्वी का वातावरण और सम्बन्धित जीव जन्तु और वनस्पतियाँ समान रूप से प्रभावित होते हैं । मौसम में असामयिक होने वाले हेर-फेर, प्रकृति विक्षोभों और असन्तुलनों में भी अन्तर्ग्रही परिवर्तनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । वर्षा, शीत और ग्रीष्म ऋतुओं की भाँति सौरमण्डलीय गतिविधियों और उनमें होने वाले हेर-फेर से पड़ने वाले पृथ्वी पर प्रभावों की जानकारी पहले ही मिल जाय तो उनके अनुरूप सुरक्षा व्यवस्था करने में भारी सहयोग भी मिलता है ।

'ज्योतिष विज्ञान' पुरातनकाल में यही प्रयोजन पूरा करता था । कालान्तर में यह विद्या धीरे-धीरे विलुप्त होती चली गई और उसके स्थान पर भ्रान्तियों, अन्ध-विश्वासों ने जड़-जमा ली । इतने पर भी उसकी गरिमा और उपयोगिता अपने स्थान पर यथावत है । ऐसी मान्यता है कि यह विज्ञान की सबसे प्राचीन शाखा है । इस विषय पर भारत ही नहीं चीन तथा यूरोप के विभिन्न देशों में प्रामाणिक पुरातन साहित्य उपलब्ध है जो ज्योतिष विद्या पर प्रकाश डालते हैं । वृहत्तर भारत के प्रसिद्ध ज्योतिर्विदों में श्रीधर, बाराहमिहिर, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि के नाम और उनकी लिखी पुस्तकें आज भी कितने ही देशों में चर्चा और शोध के विषय बने हुए हैं ।

ज्योतिष विज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इसे सभी विज्ञानों का अधिष्ठाता माना जा सकता है । इसकी आदर्श परिभाषा के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा विज्ञान है जो खगोलीय, पार्थिव व मानवीय घटनाओं से सम्बन्ध जोड़ता तथा ब्रह्माण्ड और मनुष्य के बीच अन्तः सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है । यह आकाश गंगाओं के संसार और जीवित कोशिकाओं के संसार को एक-दूसरे से जोड़ने का प्रयत्न करता है ।

संस्कृत का 'ज्योतिष' शब्द इसके वास्तविक स्वरूप की व्याख्या करता है । ज्योतिष का अर्थ होता है—प्रकाश या ज्योति विज्ञान । प्रकाश का स्वभाव है विकिरण या प्रसरण । अस्तु ज्योतिर्विज्ञान को विकिरण विज्ञान माना जा सकता है । हजारों वर्ष पूर्व आर्ष ऋषियों को इस विषय की गहन जानकारी थी । उन्हें विभिन्न प्रकार के पार्थिव क्रिया-कलापों के आधार पर नक्षत्रों की गतियों व तारों के सापेक्ष स्थानों के बीच आपसी सम्बन्ध का ज्ञान था । फलतः समय-समय पर वे भवितव्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के

सम्बन्ध में गणनाओं के आधार पर भविष्यवाणी भी किया करते थे। हजारों वर्ष बाद भी कितने ही पुरातन ग्रन्थों में वर्णित उनके कथन समय-समय पर सही उतरते देखे गए हैं। ये ज्योतिर्विज्ञान की प्रामाणिकता का ही बोध कराते हैं।

विज्ञान की दूसरे ग्रहों में छलांग लगाने और टोह लेने का मिलसिला जब से आरम्भ हुआ है तब से यह भी अनुभव किया जा रहा है कि ज्योतिष विज्ञान का नये सिरे से अध्ययन किया जाय। चिकित्सा एवं मनोजगत में यह सत्य एक मत से स्वीकार किया जाने लगा है कि घटती-बढ़ती चन्द्र कलाओं का मानव शरीर, स्वास्थ्य और मनःस्थिति पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। जीवधारियों में पूर्णिमा के दिन सर्वाधिक व्यग्रता और विक्षोभ देखा जाता है। पागलपन के दौरे अधिक पड़ते हैं। अपराध भी इन्हीं दिनों अधिक होते हैं। भू-गर्भ एवं खगोलशास्त्रियों के निष्कर्षों के अनुसार अमावस्या और पूर्णिमा के दिन भूकम्प अधिक आते हैं। सूर्य में धब्बों की वृद्धि होने से प्रकृति प्रकोप बढ़ते हैं। 'इन्फ्लुएन्जा' और दिल के दौरे जैसी बीमारियाँ अधिक होती हैं।

'जॉन ग्रिविन' जैसे खगोलशास्त्रियों का कहना है कि वायुमण्डलीय आवेश का आयनीकरण सूर्य की लपटों से सम्बन्धित है। वायु से धनात्मक एवं ऋणात्मक आयनीकरण का स्वास्थ्य और मनोकायिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सन् १९७१ में 'अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल क्लाइमेटोलॉजी' संस्थान ने अपने शोध के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि वायुमण्डल में विद्यमान विद्युतीय आवेश हमारे अनुभवों, विचारों और व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। वायुमण्डल के ये आवेश भी सूर्य की लपटों द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

आये दिन भूकम्पों, ज्वालामुखियों के फटने से भारी क्षति उठानी पड़ती है। विपुल धनशक्ति और जनशक्ति नष्ट होती है और मनुष्य असहाय, असमर्थ बना मूक रूप से अपनी बर्वादी पर आँसू बहाता रहता है। मानवी पुरुषार्थ और विज्ञान के समर्थ साधन भी उनसे अपनी सुरक्षा नहीं कर पाते। अन्तर्ग्रही असन्तुलनों का दुष्परिणाम ही इस प्रकार के प्रकृति प्रकोपों के रूप में प्रस्तुत होता है। ज्योतिर्विज्ञान की यदि ठीक तरह जानकारी होती तो समय के पूर्व ही मौसम में हुए हेर-फेर के अनुरूप सुरक्षा व्यवस्था बनाने की तरह आवश्यक कदम उठाया जा सकता है किन्तु अभी भी महत्त्वपूर्ण विद्या अन्धकार के गर्त में पड़ी है।

विश्व के मूर्धन्य भौतिक विज्ञानी अब इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में गहन शोध की आवश्यकता है। इससे कितने ही अविज्ञात सूत्रों का रहस्योद्घाटन होगा। प्रसिद्ध नाभिकीय भौतिकविद् डॉ. 'रुडाल्फ तोमास्कोक' ने इस सत्य को हृदय से स्वीकार किया है। इन्होंने एक बार प्रख्यात भारतीय भौतिक शास्त्री 'डॉ. सी. वी. रमन' एवं नार्लीकर से कहा—"यह विचित्र बात है कि बयासी प्रतिशत से भी अधिक मामलों में भयंकर भूकम्पों के दौरान जब पृथ्वी डोलती है तो 'यूरेनस ग्रह' याम्योत्तर (मेरीडियन) के ठीक ऊपर होता है। यह एक ऐसा रहस्य है जिसकी आपको गम्भीरता से खोज-बीन करनी चाहिए।" यह एक स्मरणीय तथ्य है कि श्री रमन व नार्लीकर दोनों ही विश्व स्तर पर कॉस्मोलॉजी व एस्ट्रोनॉमी सम्बन्धी अपने सिद्धान्तों के लिए ख्याति प्राप्त विद्वान हैं।

पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों में ज्योतिर्विज्ञान के विषय में इन दिनों अभिरुचि जगी है। कितने ही देशों में इस दिशा में प्रयास भी आरम्भ हो गए हैं। 'आइन्स्टीन अट्टालिका वेधशाला, ग्रिनविच की सरकारी वेधशाला, सरकारी वेधशाला केपटाऊन (दक्षिण अफ्रीका), माउन्ट विल्सन वेधशाला (यू. एस. ए.), रूस का जाईस ज्योतिष संस्थान, एर फुर्ट (प. जर्मनी), एस्ट्रोनॉमी शोध संस्थान, हारवर्ड वेधशाला, डोमिनियन एस्ट्रो फिजिकल इन्स्टीट्यूट, रायल ऑब्जर्वेटरी एडिन वर्ग, बावेल्स वर्ग आब्जर्वेटरी (प. बर्लिन) आदि में ग्रहों की स्थिति एवं गति और उनमें होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में व्यापक स्तर पर खोज-बीन चल रही है। ये आरम्भिक चरण हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष अभी भी अछूता है—अन्तर्ग्रही प्रभावों के अन्वेषण का। जिसकी उपेक्षा अब तक होती रही है।

कार्लजुंग जैसे मनोवैज्ञानिक का कहना है कि "ज्योतिर्विज्ञान में कितनी ही महत्त्वपूर्ण सम्भावनाएँ विद्यमान हैं अब तक इस विज्ञान की उपेक्षा हुई। फलतः आधुनिक सभ्यता ने खोया अधिक पाया कम है। वस्तुतः एक प्राचीन किन्तु उपयोगी विद्या की अवहेलना से उससे मिलने वाले लाभों से हम वंचित रह गए हैं।"

फलित ज्योतिष की मूढ़ मान्यताएँ, भाग्यवाद, मुहूर्तवाद जैसे अन्ध-विश्वासों के जड़ जमा लेने के कारण भी विचारशील वर्ग द्वारा इस विज्ञान की उपेक्षा होती रही। ज्योतिष विज्ञान के प्रति अविश्वास और विरोध जो समय-समय पर प्रकट होते हैं इसका एक मात्र कारण इस विद्या के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियाँ भी हैं। आज भी कितने ही तथाकथित ज्योतिषी इस विद्या की आड़ में भ्रम एवं भय फैलाते, शोषण करते तथा जन सामान्य में अश्रद्धा उत्पन्न करते हैं। वे ज्योतिर्विज्ञान के वास्तविक स्वरूप से स्वयं तो अपरिचित होते ही हैं। साथ ही अन्ध-विश्वासों को भी बढ़ावा देते हैं।

प्रचलित भ्रान्तियों का निवारण और ज्योतिष विद्या का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया जा सके तो यह आज भी उतना ही उपयोगी हो सकता है जितना कि प्राचीन काल में था। विज्ञान की अन्यान्य शाखाओं की भाँति ही यह मानव जाति की प्रगति में सहायक हो सकता है। आवश्यकता इतनी भर है कि इस दिशा में अभिरुचि जगे और खोज के लिए सुव्यवस्थित प्रयास चलें। विश्व के विभिन्न देशों में इस सम्बन्ध में छुट-पुट प्रयास चल भी पड़े हैं। भारत में भी कर्नाटक विश्वविद्यालय ने ज्योतिष विज्ञान को अपने पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा कोर्स में सम्मिलित कर विधिवत् अध्ययन की व्यवस्था बनायी है। यह प्रसन्नता की बात है। अन्य स्थानों पर भी इस तरह के प्रयत्न चलने चाहिए।

ज्ञान की अन्यान्य विद्याओं की तुलना में ज्योतिर्विज्ञान की महत्ता कम नहीं, अधिक ही आँकी जानी चाहिए। इससे प्राप्त होने वाली जानकारियाँ समस्त मनुष्य जाति के लिए विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इसके लिए ज्योतिष शास्त्र को वैज्ञानिक स्तर पर शोध कार्य में सम्मिलित करने के प्रयास भी अब चल पड़े हैं।

अन्तरिक्षीय परिस्थितियों का धरा द्वार पर प्रभाव

ज्योतिर्विज्ञान का मुख्य उद्देश्य है ब्रह्माण्ड में बिखरे ज्योतिर्पिण्डों के सन्दर्भ में पृथ्वी ग्रह के निवासियों के वातावरण एवं जैविक परिवर्तनों का विश्लेषण । यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि अन्तरिक्षीय पिण्डों का मानव जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध है । आकाश तो अनन्त है पर उसके तीन प्रमुख भाग हैं—भू-लोक—पृथ्वी व उसका वायुमण्डल, द्यु-लोक—तारामण्डल, अन्तरिक्ष—भू-लोक तथा द्यु-लोक का सन्धिस्थल ।

एक विज्ञ—ज्योतिर्विज्ञानी अपने विशद ज्ञान के माध्यम से वर्तमान तथा भूत-भविष्य में हुए, हो सकने वाले अन्तरिक्षीय ग्रह सन्तुलन परिवर्तन का अध्ययन करता है । इसे 'वेध' करने की प्रक्रिया कहा जाता है । वेधशाला चाहे वह चिरपुरातन स्टोन आब्जर्वेटरी हो अथवा आधुनिक दूरदर्शी यन्त्रों से सुसज्जित, उसका एक ही उद्देश्य है—ग्रहों की गति एवं स्थिति का आकलन व तद्नुसार व्यवस्था का चिन्तन । मानव शरीर, मन, वनस्पति जगत, प्राणी जगत एवं एकॉलाजीकल सन्तुलन पर ग्रहों के छोटे से परिवर्तनों के बड़े महत्त्वपूर्ण प्रभाव होते देखे गए हैं । पृथ्वी का मौसम पूरी तरह ग्रहों के सन्तुलन पर निर्भर है । थोड़ा-सा भी व्यतिरेक भूकम्पों, ज्वालामुखी फूट पड़ने, उल्कापात, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसे विनाशकारी परिवर्तनों के रूप में निकलता है । इसके विपरीत ज्योतिर्विज्ञान की विद्या अपने गणितीय अनुमान तथा तथ्यों के आधार पर ऐसे कदम उठाने की दिशा निर्देश देती है जिससे वातावरण में वांछित मोड़ लाया जा सके, प्रतिकूल को पलटा जा सके । वातावरण अनुकूलन प्रक्रिया आर्षकालीन महामानवों द्वारा इसी माध्यम से सम्पन्न की जाती रही है ।

सूर्य यों तो हमसे दूर है, हमारे समीप उसकी किरणें ही पहुँच पाती हैं । यह एक वर्ण का न होकर सात वर्णों का होता है । सूर्य से प्रकाश तो एक ही वर्ण का उत्सर्जित होता है लेकिन यह बुध, शुक्र, चन्द्रमा, मंगल, गुरु, शनि आदि ग्रहों से परिवर्तित होकर मिश्रित रूप में हम तक पहुँचता है । ये सभी ग्रह हमें हमारी धरती को रश्मियों के माध्यम से ही प्रभावित करते हैं ।

इसी प्रकार सारी वनस्पतियों—आयुर्वेद वर्णित औषधियों की जीवनी शक्ति चन्द्रमा के अधीन है । इसी को सोम कहते हैं । पन्द्रह दिन तक उसकी एक-एक कला के रूप में पत्ता घटता चला जाता है । अगले पन्द्रह दिन तक बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा को यह पूर्ण हो जाता है । सारे औषधीय वनस्पति जगत पर चन्द्रकलाओं का प्रभाव पड़ता है । इसीलिए नक्षत्र विशेष में चन्द्रकलाओं की विशेष स्थिति में ही जड़ी-बूटियों को चिकित्सा हेतु चयन करने का विधान है । संक्षेप में चन्द्रमा पृथ्वी के समीपस्थ होने के कारण आकाश मण्डल में विद्यमान तारों की रश्मियों को हम तक पहुँचाने से संचार उपग्रह का काम करता है । सत्ता इसी दिन के अपने चक्र में वह २७ नक्षत्रों से भिन्न-भिन्न प्रकार की दिव्य रश्मियाँ प्रदान करता है । इसीलिए इसे 'नक्षत्राधिपति' भी कहते हैं ।

'ग्रहाधीन जगत् सर्वम्' के चिर पुरातन सिद्धान्तानुसार ग्रह संसार के सभी जड़-चेतन पदार्थों को प्रभावित करते हैं । सूर्य उदित होने पर कमल पुष्पों का खिलना, सूरजमुखी पुष्पों का क्रमशः अपनी दिशा बदलना आदि सूर्य के वनस्पतियों पर प्रत्यक्ष चमत्कारी प्रभाव के कतिपय उदाहरण हैं । कभी-कभी वे पृथ्वी से भी भयंकर छेड़-छाड़ कर बैठते हैं । ऐसे प्राकृतिक प्रकोपों में भूकम्पों का नाम अग्रणी है । एक वर्ष में बड़े लगभग २० भूकम्प आते हैं । समुद्र में तूफान, ज्वार-भाटे, पृथ्वी पर भू-चाल आदि का प्रमुख कारण ग्रहों का गुरुत्वाकर्षण प्रभाव ही है ।

सूर्य कलंकों के अनेकानेक विकिरण कारक घातक प्रभाव प्राणी जगत पर होते पाये गए हैं । सन् ८२ में ६ ग्रहों की युति का मार्च से नवम्बर तक प्रभावी होना, सौर-कलंकों की सम्भावित वृद्धि, ७ प्रकार के ग्रहणों की घटना एक अभूतपूर्व स्थिति है । इस आधार पर प्रकृति प्रकोपों की सम्भावना है । ऐसे में सूक्ष्म जगत को प्रभावित करने वाले सामूहिक धर्मानुष्ठान ही कारगर सिद्ध हो सकते हैं ।

ब्रह्माण्ड भी चैतन्य शरीर जैसा ही है

मनुष्य शरीर में किसी भी भाग पर आघात या चोट पहुँचती है तो उससे देह का रोम-रोम काँप उठता है । पाँव की अँगुली में चोट लगे तो मस्तिष्क भी उद्विग्न हो उठता है, हाथ भी काम करने से इन्कार कर देते हैं—कहने का अर्थ यह है कि शरीर का अंग-अंग प्रभावित होता है । शरीर की चेतना का यह एक चिह्न है । दृश्य और अदृश्य प्रकृति—समूचा ब्रह्माण्ड भी इसी प्रकार एक चेतन पिण्ड है, जिसमें किसी भी छोर पर कुछ घटित होता है तो अन्यान्य स्थानों पर भी उसका प्रभाव परिलक्षित होता है । वैज्ञानिक खोजों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका है कि जिसे हम जड़ समझते हैं वह वस्तुतः जड़ है नहीं; चेतना उसमें भी विद्यमान है और संसार में घटने वाले घटनाक्रमों से लेकर प्राकृतिक हलचलों का भी उस पर प्रभाव पड़ता है ।

विज्ञान जिन निष्कर्षों पर पहुँच रहा है, भारतीय तत्वमनीषी उस पर हजारों वर्ष पूर्व पहुँच चुके हैं । जड़ और चैतन्य का भेद वस्तुतः हमारी स्थूल दृष्टि के कारण ही है । वस्तुतः जड़ता कहीं भी नहीं है—सबमें आत्म-चेतना विद्यमान है । यह प्रतीत इसलिए होती है कि वह चेतना व्यक्त अलग-अलग प्रकारों से होती है । इसी आधार पर ऋषि विश्वात्मा तक पहुँच सके ।

भारत में इस तत्व दर्शन को प्रतिपादित करने के लिए जो वैज्ञानिक प्रयत्न चले उन्हें ज्योतिर्विज्ञान का नाम दिया गया । यह बात अलग है कि इस विशुद्ध विज्ञान का—जिसका उद्देश्य आकाशीय स्थिति और ग्रह, नक्षत्रों का मौसम विज्ञान और प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन था—सर्वाधिक दुरुपयोग हुआ है ।

ज्योतिर्विज्ञान की एक मान्यता है कि सूर्य, मात्र अग्नि का धधकता पिण्ड ही नहीं एक जीवन्त और सक्रिय अग्नि पुंज है । वेदों में तो सूर्य को सर्व समर्थ देवता मानकर उसकी कई ऋचाएँ लिखी गई हैं । गायत्री मन्त्र में भी सूर्य को सविता का—परमात्मा का प्रतीक माना गया है । लेकिन विज्ञान मानता आ रहा था कि सूर्य केवल आग का एक जलता हुआ गोला भर है । रूस के एक वैज्ञानिक चीनेवस्की भी अपनी वैज्ञानिक शोधों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सूर्य एक जीवित अग्नि पिण्ड है । यही नहीं १६२० में उन्होंने यह भी सिद्ध किया—"सूर्य पर प्रति ग्यारहवें वर्ष एक आणविक विस्फोट होता है और जब भी यह विस्फोट होता है तो

पृथ्वी पर युद्ध और क्रान्तियाँ जन्म लेती हैं ।" इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने तेरहवीं शताब्दी से तब तक की महत्त्वपूर्ण राज्य क्रान्तियों और ऐतिहासिक युद्धों का विवरण एकत्रित किया व प्रमाणित कर दिखाया ।

यह तो सभी जानते हैं कि सूर्य पृथ्वी के जीवन का केन्द्र है । प्रतिपल सूर्य से ही पृथ्वी के जीवों को प्रकाश और प्राण मिलते हैं । चीजेवस्की का कहना था कि पृथ्वी पर घटित होने वाले किसी भी बड़े परिवर्तन का सूर्य से सम्बन्ध होता है ।

इन्हीं आधारों पर सन् १९५० में विज्ञान की एक नयी शाखा खुली । जियोजारजी गिआरडी नामक वैज्ञानिक ने ब्रह्माण्ड रसायन को जन्म दिया । गिआरडी का कहना था कि समूचा ब्रह्माण्ड एक शरीर है और इसका कोई भी अंग अलग नहीं, वरन् संयुक्त रूप से एकात्म है । इसलिए कोई भी तारा कितनी ही दूर क्यों न हो पृथ्वी के जीवन को प्रभावित करता है और प्राणियों की हृदयगति बदल जाती है ।

ग्यारह वर्षों में हर बार सूर्य पर आणविक विस्फोट की धारणा को प्रतिपोषित करते हुए जापान के प्रख्यात जैविकी शास्त्री तोनातो इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जब भी ये विस्फोट होता है, पृथ्वी पर पुरुषों के रक्त में जल तत्व बढ़ जाते हैं और पुरुषों का खून पतला पड़ जाता है ।

सूर्य ग्रहण के समय प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव तो आसानी से देखे व समझे जा सकते हैं । जब सूर्य का ग्रहण होता है चौबीस घण्टे पूर्व से ही कुछ पक्षी चह-चहाना बन्द कर देते हैं, बन्दर वृक्षों को छोड़कर चुप-चाप जमीन पर आकर बैठ जाते हैं । सदा चंचल रहने वाला बन्दर उस समय इतना शान्त हो जाता है कि लगता है उस जैसा शान्त और सीधा प्राणी कोई है ही नहीं । बहुत से जंगली जानवर भयभीत से दीखने लगते हैं ।

अमेरिका के रिसर्च सेण्टर ऑफ ट्री रिंग ने यह पता लगाया कि वृक्षों के तनों में प्रतिवर्ष पड़ने वाला एक वृत्त हर ग्यारहवें वर्ष सामान्य वृत्तों की अपेक्षा बड़ा होता है । स्मरणीय है वनस्पति विज्ञान में वृक्षों के जीवन का अध्ययन करने के लिए वृक्ष के तनों में बनने वाले वर्तुलों का अध्ययन किया जाता है । यह एक तथ्य है कि वृक्ष में प्रतिवर्ष एक वृत्त बनता है, जो उसके द्वारा छोड़ी गई छाल से निर्मित होता है । रिसर्च सेण्टर ऑफ ट्री रिंग के प्रो. डगलस ने इस दिशा में खोज करते हुए यह भी पता लगाया कि ग्यारहवें वर्ष जब सूर्य पर आणविक विस्फोट होते हैं तब वृक्ष का तना मोटा हो जाता है और उसी कारण बड़ा वृत्त बनता है ।

कहने का अर्थ यह है कि सूर्य पर होने वाले परिवर्तनों से मनुष्य और पशु-पक्षी ही नहीं पेड़-पौधे भी प्रभावित होते हैं । यही नहीं जड़ कहे जाने वाले नदी, नाले भी प्रभावित होते हैं, उनका भी पानी घटता-बढ़ता है—बिना वर्षा और बिना गर्मी के ही सूर्य ही नहीं चन्द्रमा का भी पृथ्वी के जीवन पर असाधारण रूप से प्रभाव पड़ता है । समुद्र में पूर्णिमा के दिन ही अक्सर तूफान और ज्वार आते हैं अपेक्षाकृत अन्य दिनों के । इसके विपरीत अमावस के दिन अन्य दिनों की तुलना में समुद्र शान्त रहता है । समुद्र तट पर रहने वाले और इस सम्बन्ध में थोड़ा बहुत जानने वाले लोग यह अच्छी तरह जानते हैं । इसका कारण यह बताया जाता रहा है कि चन्द्रमा और पृथ्वी एक-दूसरे के समीप हैं इसलिए चन्द्रमा जब अपनी सोलहों कलाओं के साथ उदित होता है तो पृथ्वी के समुद्र का पानी उफनता है परन्तु अब यह भी पता लगाया जा चुका है कि न केवल समुद्र ही वरन् मनुष्य भी प्रभावित होता है ।

अमेरिका के पागलखानों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार मानसिक रोगी पूर्णिमा के दिन अधिक विक्षिप्त हो जाते हैं । साधारण और कमजोर मनोभूमि के व्यक्ति को भी इस दिन पागलपन के दौरे पड़ने लगते हैं और अमावस के दिन धरती पर लोग सबसे कम पागल होते हैं । न केवल पूर्णिमा और अमावस के दिन वरन् चाँद के बढ़ने-घटने के साथ भी मनुष्यों में पागलपन बढ़ता-घटता है । विक्षिप्त मनुष्यों के साथ-साथ सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों की चित्त दशा पर भी इन उतार-चढ़ावों का प्रभाव पड़ता है । सम्भवतया इसी कारण भारतीय तत्वदर्शियों ने प्रत्येक पूर्णिमा पर धर्म-कर्म में व्यस्त रहने का निर्देश दिया है ।

पृथ्वी सौरमण्डल का ही एक सदस्य है और चन्द्रमा उसका ही एक उपग्रह । वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी और चन्द्र की उत्पत्ति सूर्य से ही हुई है इसलिए इन तीनों के बीच एक अन्तर्सम्बन्ध बन सकता है । एक-दूसरे पर इसका प्रभाव हो सकता है परन्तु यह स्थिति मात्र यहाँ तक ही सीमित नहीं है, प्रोफेसर ब्राउन के अनुसार अन्य ग्रहों से भी पृथ्वी का जीवन प्रभावित होता है । उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि मनुष्य शरीर की संरचना और मानवीय काया की संरचना में एक अद्भुत साम्य है । पृथ्वी पर समुद्र में पानी और नमक का जितना अनुपात है वही अनुपात मनुष्य देह में भी है । यही नहीं पृथ्वी पर ६५ प्रतिशत पानी है तो मनुष्य शरीर में भी इतना ही जलतत्व है ।

प्रोफेसर ब्राउन ने मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों का अध्ययन कर यह सिद्ध किया कि उनकी गतियों और स्थितियों के परिवर्तनों का भी पृथ्वी पर प्रभाव पड़ता है । वैज्ञानिकों ने इन सबको समानुभूति का नाम दिया । पृथ्वी, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति और शुक्रादि ग्रहों का उद्भव सूर्य से हुआ । ये सभी सूर्य की सन्तान हैं इसलिए इनकी जीवन व्यवस्था एक-दूसरे से प्रभावित होती है । जुड़वाँ जन्म लेने वाले बच्चों के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त, घटित होता है ।

न केवल सौरमण्डल के सदस्यों में एक समानुभूति है वरन् दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले तारा नक्षत्र भी पृथ्वी के जीवन पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं । विभिन्न विषयों में किए गए प्रयोगों से अनायास ही जो निष्कर्ष सामने आये हैं उनसे वैज्ञानिकों का ध्यान अनायास ही ब्रह्माण्ड—रसायन की ओर आकृष्ट हुआ है । इस दिशा में जैसे-जैसे आगे बढ़ा जा रहा है यह स्पष्ट होता चल रहा है कि समूचा ब्रह्माण्ड एक चैतन्य शरीर है; जिसका हर स्पन्दन समूचे जीवन को प्रभावित करता है । जिस प्रकार कि शरीर के किसी भी हिस्से पर आघात हमारी समग्र चेतना को छूता और कष्ट या आनन्द पहुँचाता है ।

कहना नहीं होगा कि ज्योतिर्विज्ञान इसी दिशा में गहरे और ठोस प्रमाण जुटाने के लिए सचेष्ट था; परन्तु लोगों ने जैसे ही उसका दुरुपयोग किया—दिशा भटक गई । यह निश्चित है कि विज्ञान आज नहीं तो कल ऐसे प्रमाण खोज लेगा जिनके आधार पर ग्रहों की स्थिति और दूसरी अन्य वस्तुओं पर उनके प्रभाव का अध्ययन कर उससे लाभान्वित हुआ या हानि से बचा जा सकेगा । भारतवर्ष ने इस दिशा में बड़ी प्रगति की थी । आर्यभट्ट

का—ज्योतिष सिद्धान्त, कालक्रिया पाद, गोलपाद, सूर्य सिद्धान्त और उस पर नारदेव, ब्रह्मगुप्त के संशोधन परिवर्धन, भास्कर स्वामी का महाभास्करीय आदि ग्रन्थ उन अमूल्य खोजों और निष्कर्षों से भरे पड़े हैं, जिनके आधार पर कुछ प्रयत्न किए जायें तो वैज्ञानिक पद्धति से भी विश्वात्मा के साथ सम्बद्ध हुआ जा सकता है ।

समरसता एवं सहानुभूति पर आधारित ज्योतिर्विज्ञान

एक मनोरंजक आख्यान है । एक बार एक सज्जन पानी के जहाज में सफर करते हुए जुंग उठने पर एक दिन तेजी से डेक पर चहलकदमी करने लगे । शेष ने सोचा सम्भवतः टहलने का व्यायाम कर रहे हैं, किन्तु जब बहुत देर तक यही क्रम जारी रहा तो एक से रहा न गया । पूछ बैठा—भाई साहब ! क्या बात है ? तो जवाब मिला—"मुझे जरा जल्दी है । आप लोगों से जल्दी घर पहुँचना है । काफी जरूरी काम है, घर पर ! ऐसे ही बैठा रहा तो पहुँच गया समय पर ।" सब उनकी नादानी पर हँस पड़े । पर क्या यह सच नहीं है कि इस सतत् चलायमान पृथ्वी पर, जो विराट् ब्रह्माण्ड में अपने सूर्य की निरन्तर परिक्रमा कर रही है, ऐसे नादानों की संख्या अच्छी खासी है । वे विराट् चेतनसत्ता के व्यष्टि घटक होते हुए भी स्वयं को उस महासत्ता से असम्बद्ध मानते हैं । विराट् की लयबद्धता में एक ही बने रहना है, यही ज्योतिर्विज्ञान का मूलभूत दर्शन है । ज्योतिर्विज्ञान वह ज्योतिष नहीं है जिसे कुण्डली देखकर या हाथ देखकर ग्रहों की दशा का डर दिखाकर शान्ति कराने हेतु अनेकानेक चित्र-विचित्र उपचार कराने वाले एक पुरातन पन्थी एवं ठगे जाने वाले मूर्खों के रूप में देखा जा सकता है । वस्तुतः यह अध्यात्म का आद्याक्षर है, आत्मिकी की कुंजी है ।

आज ज्योतिर्विज्ञान का जो प्रचलित रूप है वह उस पुरातन विधा का खण्डहर भर है । कितने ही परिवर्तन हुए हैं, इस ब्रह्माण्डीय विज्ञान के बाह्य कलेवर में । वेदों में सविता को सृष्टि का अधिष्ठाता केन्द्र बताते हुए उसकी उपासना का प्रतिपादन किया गया है । यह मान्यता अन्तर्दृष्टि सम्पन्न ऋषियों की थी कि यह सूर्य स्थिर है, शेष ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं एवं ऐसे एक नहीं, अनेकों सूर्य हैं जो एक महासूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं । ऐसे एक नहीं, अनेकों ब्रह्माण्ड हैं जिन सबका अधिपति एक है—सृष्टि संचालन की सुव्यवस्था करने वाला परब्रह्म । सत्य की शोध मानव मूल वृत्ति है । बहुत बार सत्य मिलता है, बहुत बार खो जाता है । ईसा के जन्म से भी तीन सौ वर्ष पूर्व एरिस्टोकारिस नामक एक यूनानी ने वैदिक प्रतिपादन को सत्य बताते हुए कहा कि सूर्य केन्द्र है, पृथ्वी केन्द्र नहीं है । लेकिन ईसा के सौ वर्ष बाद (100 AD) ही टोलियों ने इस सूत्र के विलोम प्रतिपादन दिया कि पृथ्वी केन्द्र है, सूर्य उसका चक्कर लगा रहा है । १६-१७ शताब्दी लगी । कोपर्निकस एवं कैपलर को यह खोजकर सत्यापित करने एवं लोगों के गले यह तथ्य उतारने में कि पृथ्वी नहीं, सूर्य केन्द्र है एवं पृथ्वी अपनी धुरी पर भी घूमती है व सूर्य के भी चारों ओर चक्कर लगाती है । अन्तर्ग्रही प्रभावों से सभी जीवधारी प्रभावित होते हैं, आर्य भट्ट की इस मान्यता को दुराग्रही समाज की मोहर लगी बीसवीं सदी में । यह वस्तुतः सत्यान्वेषण की दिशा में चली एक यात्रा है जिसमें व्यष्टि चेतना का समुच्चय, एक छोटा-सा घटक, यह मनुष्य उस विराट् से प्राण चेतना पाते हुए भी उस विराट् को खोजता अभिभूत होता रहता है ।

अब यह बात अच्छी तरह समझ लें कि मनुष्य पृथ्वी पर बसने वाला विराट् सत्ता का एक घटक है एवं पृथ्वी उस विराट् के प्रतीक सूर्य के मण्डल का ही एक अंग है । तीनों में एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है । बच्चा गर्भावस्था में व जन्म के तुरन्त बाद तक रज्जुनाल से माँ से जुड़ा रक्त पाता रहता है । इस रक्त प्रवाह से ही जो माँ के हृदय की गंगोत्री से प्रवाहित होता है, शिशु के सारे क्रिया-कलाप चलते हैं । सारे जीवकोशों का निर्माण, एक ही निषेचित डिम्बाणु से अरबों सेल्स का बनना इसी प्रक्रिया के सहारे बन पड़ता है । इसे वैज्ञानिक अपनी भाषा में समानुभूति (एम्पैथी) कहते हैं । मनुष्य, पृथ्वी, सूर्य, महासूर्य एवं परब्रह्म ये सभी इसी समानुभूति की एक कड़ी हैं । जो भी सूर्य पर घटित होगा, वह मनुष्य एवं अन्यान्य जीवधारियों के रोम-रोम में स्पन्दित होगा । मानवी रक्त में तैर रही रक्त कोशिकाएँ एवं न्यूक्लीय एसिड जैसा जीन्स बनाने वाला लघुतम घटक सूर्य के अणुओं से समानुभूति—ऐक्य रखता है एवं अच्छे-बुरे सभी प्रभावों में बराबर हिस्सा लेता है । सूर्य के हमसे करोड़ों मील दूर अवस्थित होने पर भी इस प्रभाव में कोई अन्तर आने वाला नहीं ।

अन्तर्ग्रही प्रभाव को, सौर गतिविधियों के मानवी काया पर पड़ने वाले प्रभाव को जुड़वाँ बच्चों के उदाहरण से भली प्रकार समझा जा सकता है । एक ही अण्डे से पैदा हुए दो बच्चे जो गर्भाशय में साथ-साथ विकसित होते हैं, (मोनोव्युलरट्वीन्स) को जन्मोपरान्त कहीं कितनी भी दूर क्यों न रखा जाय, उनके व्यवहार, चिन्तन, आदतों सभी में समानता पायी जाती है । यह एक अणु से एक पर्यावरण में विकसित होने की परिणति है । मानव, पृथ्वी, सूर्य भी इसी तरह से एक ही अणु से विनिर्मित होने के कारण समानुभूति के आधार पर परस्पर प्रभावित होते हैं । यही ज्योतिर्विज्ञान का केन्द्र बिन्दु है । हर क्षण, हर पल, पृथ्वी के कण-कण का सूर्य के महाकणों से एक सम्बन्ध सूत्र जुड़ा हुआ है । इसी प्रकार मानवी जीवकोशों का भी उस विराट् से, विभु से, सम्बन्ध ऐसे जुड़ा है जैसे दो बिजली के तार जुड़े होते हैं, जिनमें सतत् विद्युत प्रवाहित होती रहती है ।

इस समानुभूति को अब विज्ञान ने एक नयी परिभाषा दी है—'क्लीनिकल इकॉलाजी' अर्थात् पर्यावरण से प्रभावित जीव विज्ञान । इसी में सूर्य पर घटने वाली सभी घटनाओं—धब्बों, सूर्य की लपटों, सौर कलंकों, भू-चुम्बकीय तूफानों, मौसम में अप्रत्याशित परिवर्तनों के जीवधारियों पर प्रभाव को शुमार किया जाता है । यह चेतन जगत की एक लयबद्धता का, परोक्ष के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है । हर ग्यारहवें वर्ष सूर्य कलंकों के आने व अति सम्वेदनशील वृक्षों में रिंग्स बनने का जो परस्पर सम्बन्ध है, वह वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित कर देता है । वृक्ष में कितने रिंग बने, यह देखकर उसकी आयु का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है । यदि मौसम अधिक गर्म होता है तो ये रिंग चौड़े बनते हैं व जब मौसम ठण्डा व शुष्क होता है तो ये रिंग सँकरी होती हैं । मौसम के इतने से व्यतिरेक से भी इतनी

दूर अवस्थित पृथ्वी के वनस्पति समुदाय पर बिल्कुल 'टु द पाइण्ट' प्रभाव पड़ सकता है, यह इसका प्रमाण है ।

जब वृक्ष वनस्पति इतने सम्वेदनशील हैं कि करोड़ों मील दूर अवस्थित सूर्य पर होने वाले परिवर्तनों को अपने ऊपर अंकित होने देते हैं तब मानवी काया के सूक्ष्मतम जीवकोशों एवं अति सूक्ष्म स्नायुकोशों का तो इन प्रभावों के प्रति और भी अधिक गहरी समानुभूति होनी चाहिए । वैज्ञानिक बताते भी हैं कि सौरमण्डल स्थित पल्सार्ज एवं ब्लैक होल्स से निकलने वाले न्यूट्रोनों कण जो प्रकाश की गति से भी तेज चलकर धरती को पार कर जाते हैं, मानवी मस्तिष्क के 'माइन्जेन' अणुओं में बहुत अधिक मेल खाते हैं । इसी प्रकार अति सूक्ष्म न्यूक्लीय अम्लों पर भी उनका प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार सौरमण्डल के परिवार के किसी भी सदस्य के धरती स्थित जीवधारियों पर पड़ने वाले प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता । मालूम नहीं वृक्ष की तरह मानवी मस्तिष्क में भी हर ग्यारहवें वर्ष वर्तुल (रिंग्स) पड़ते हैं या नहीं, किन्तु यह सत्य है कि इस अवधि में मानसिक आवेग, उत्तेजना, उन्माद, बेचैनी बहुत तेज हो जाती है । आत्म-हत्या, परस्पर आक्रामक व्यवहार एवं दुर्घटनाओं में सहसा वृद्धि हो जाती है । रेडियोधर्मिता के परिवर्तन जो इतने विराट् अन्तरिक्ष में घटते हैं कैसे समष्टिगत मानसिकता को प्रभावित करते हैं, इसका अध्ययन ज्योतिर्विज्ञान विधा के अन्तर्गत आता है ।

जैसे यह ग्यारह वर्ष का सौरचक्र चलता है, ऐसे ही बड़े धूमकेतुओं का हर छिहत्तर वर्ष में उदित होने का क्रम चलता रहता है । अपनी करोड़ों मील लम्बी पूँछ में विषाक्त गैसें समेटे यह उपग्रह ज्योंही पृथ्वी के थोड़ा समीप आता है, अपने दुष्प्रभाव छोड़ने लगता है । पहले १८३५ में, फिर १९१० में, अब १९८६ में जो विशाल धूमकेतु दृष्टिगोचर होने जा रहा है जिसका नाम इसकी खोज करने वाले सर एडमण्ड हैली के नाम पर हैली कामेट रखा गया है, अपने आने के पूर्व संकेत २ वर्ष पूर्व से ही देना आरम्भ कर चुका है । जब-जब भी ये विषाक्त धूम पृथ्वी के समीपस्थ वातावरण में आते हैं, गृह-युद्ध, विश्व-युद्ध, संक्रामक रोगों का बाहुल्य बढ़ जाता है । यह भी अन्तर्ग्रही प्रभावों का एक अंग है ।

एक ऐसा ही कास्मो बायोलॉजीकल साइकल इजिप्ट में देखा जाता है । इजिप्ट के सम्राट हमेशा से ही सूर्य देवता के आराधक रहे हैं । वे सूर्य एवं मिस्र देश के मध्य से बहने वाली नील नदी में परस्पर गहन सम्बन्ध मानते थे । सम्राट फराहो ने अपने पुरोहितों के निर्देश पर अपने वैज्ञानिक समुदाय को कहा कि नील नदी में कब जल घटता है, कब बढ़ता है, इसका वर्णन सतत् लिखा जाता रहे । ईसा के पन्द्रह सौ वर्ष से पूर्व से अब तक की लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों की जीवन गाथा इस नदी की थोड़ा भी बढ़ने या घटने, बाढ़ आने, पानी कम होने की लिखी रखी है । अब उसका अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि जो भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नील नदी में हुए हैं, वे नब्बे वर्ष के अन्तराल पर घटित हुए हैं । इजिप्शियन विद्वान तस्मान ने यह तथ्य पता लगाया है एवं आधुनिक वैज्ञानिकों के इस निष्कर्ष से उसे सम्बद्ध बताया है कि सूर्य नब्बे वर्ष में अपनी आयु के उतार-चढ़ाव का एक अन्तराल पूरा करता है । ४५ वर्ष वह जवान होता है एवं ४५ वर्ष उसकी आयु के ढलने के होते हैं । पूर्वार्द्ध क्लाइमेक्स है तो उत्तरार्द्ध एण्टी क्लाइमेक्स । जब नब्बे वर्ष पूरे होते हैं तो भू-चुम्बकीय तूफान तेजी से आते हैं, भूकम्पों की बाढ़ आ जाती है एवं सुप्त पड़े ज्वालामुखी भी फूट पड़ते हैं । यही कारण था कि नील नदी के परिवर्तनों की एक बायोग्राफी मिस्र के पुरोहितों ने बनवाई । जब भू-गर्भ तक सौर लपटों का प्रभाव पड़ता है तब मानवी काया के अरबों जीवकोश इस प्रभाव से कैसे अछूते रह सकते हैं । निश्चित ही उनके अन्दर भी उलट-पुलट भरे परिवर्तन होते हैं जो सीधे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं ।

ज्योतिर्विज्ञान की जानकारी वाला पक्ष यहीं तक सही है । जब यह कहा जाता है कि अमुक ग्रह अमुक नुकसान पहुँचाते हैं एवं उनकी शान्ति के लिए अमुक प्रकार से तन्त्र विधानादि कर दान-दक्षिणा देना चाहिए तो फिर वह कोरा अन्ध-विश्वास रह जाता है जो धूर्तों को लाभ पहुँचाता है, बुद्धिजीवियों को नास्तिक बनाता है । एस्ट्रालॉजी व एस्ट्रानॉमी में फर्क समझा जाना चाहिए एवं ज्योतिर्विज्ञान के उन ज्ञात—अविज्ञात पक्षों से लाभान्वित होने का प्रयास किया जाना चाहिए जो अब तक विज्ञान की पोथी में बन्द हो चुके हैं । चिर पुरातन ऋषि प्रणीत शोधों को इस वैज्ञानिक जानकारी से भली-भाँति समन्वित किया जा सके तो इस अमृत से निश्चित ही मनुष्य जाति को लाभ ही मिलेगा । विराट् के एक ही घटक होने की मान्यता विकसित हो सके तो सहानुभूति की भावना और भी व्यापक रूप में स्वीकारी जाने लगेगी, परस्पर सहकार और बढ़ेगा ।

ज्योतिर्विद्या की समुचित जानकारी जन-जन तक पहुँचे

ज्योतिष का अर्थ है—अन्तरिक्षीय बोधगम्य प्रकाश । यह वेदज्ञान के छः अंगों में से एक महत्त्वपूर्ण अंग है । सौरमण्डल के नवग्रहों और ब्रह्माण्डव्यापी सत्ताईस नक्षत्रों का अपनी इस पृथ्वी पर असाधारण प्रभाव पड़ता है, अन्यथा यह लाभ न मिलने पर उसकी स्थिति भी सौरमण्डल के अन्य ग्रहों, उपग्रहों की तरह निर्जीव पिण्ड जैसी रही होती ।

पृथ्वी पर कब, किस ग्रह, नक्षत्र का कितना प्रभाव एवं दबाव पड़ेगा ? कब, कौन ग्रह, नक्षत्र, कितनी दूरी पर किस स्थिति में रह रहा होगा और उसका प्रभाव अन्न, जलवायु, वनस्पति, प्राणि जगत पर क्या पड़ रहा होगा, इस विज्ञान की जानकारी हम ज्योतिष शास्त्र के आधार पर ही जान सकते हैं । ऋतु परिवर्तन, वर्षा, दुर्भिक्ष, भूकम्प, तूफान, महामारी जैसे मनुष्य जाति पर पड़ने वाले अतिशय महत्त्वपूर्ण प्रभावों की जानकारी हम इस आधार पर पा सकते हैं और प्रतिकूलताओं से बचने तथा अनुकूलताओं से लाभ उठाने की स्थिति में हो सकते हैं ।

जन्मकाल में बालक अत्यन्त कोमल स्थिति में होता है । उस पर सौरमण्डलीय परिस्थितियों का संग्राहक प्रभाव पड़ता है । उस आधार पर व्यक्ति की अभिरुचि, प्रतिभा, व्यक्तित्व, सम्भावना आदि का बहुत कुछ पता चलता है और भी ऐसी रहस्यमयी बातें हैं, जिनका मनुष्य जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । ऐसी विद्या की सही जानकारी होने पर व्यक्ति अपने क्रिया-कलापों का अदृश्य अन्तरिक्ष के साथ तालमेल बिठा सकता

है । इसीलिए इस विज्ञान को वेदांग के छः विभागों में से एक माना गया है ।

किन्तु कठिनाई यह है कि ग्रहों का सूक्ष्म गणित करने में समयानुसार जो अन्तर पड़ता रहता है उसको समय-समय पर सही करते रहने की व्यवस्था इन दिनों नहीं रही । पृथ्वी पूरे चौबीस घण्टे में अपनी धुरी पर वहीं घूमती, उसमें कुछ सेंकण्डों का अन्तर रहता है । इस प्रकार वह ३६५ दिन में नहीं ३६६.२० में अपना वर्ष चक्र पूरा करती है । पृथ्वी की एक और विशेषता है कि वह अपनी सीधी चाल नहीं दौड़ती, वरन् कुदकती, फुदकती, लहराती हुई, थरथराती, नाचती-कूदती हुई परिक्रमा पथ पर चलती है । इसलिए उसकी कक्षा में भी अन्तर पड़ जाता है । सूर्य और चन्द्रमा की गति के बारे में भी यही बात है । सूर्य क्रमशः ठण्डा पड़ता जाता है । बीच-बीच में भयंकर सौर ज्वालायें उठती रहती हैं । चन्द्रमा पृथ्वी से दूर हटता रहता है । इसलिए न केवल उसका आकार घटता जाता है, वरन् उसके प्रभाव से समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे भी हल्के पड़ते जाते हैं । सौरमण्डल के अन्य ग्रहों की चाल और कक्षा का जो हिसाब लगाया गया है वह पूर्ण शुद्ध नहीं है । उसमें पंचांग निर्माण की विधि के अनुसार सब कुछ पूर्णतया सही नहीं बैठता । कुछ समय उपरान्त उसमें अन्तर पड़ता जाता है जिसे दृश्य गणित के आधार पर आँखों या उपकरणों की सहायता से सही करते रहने की आवश्यकता पड़ती है । इस विधि को दृश्य गणित कहते हैं ।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर जो वेधशालाएँ अति पुरातन काल में बनी थीं, वह कालचक्र में अन्तर आने पर नये सिरे से विनिर्मित करनी पड़ीं । जयपुर के महाराज ने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, मथुरा, वाराणसी में पाँच वेधशालाएँ बनवाई थीं । देश में अनेकों सूर्य मन्दिर थे, उनके निर्माण में भी वेधशालाओं की विशेषता थी । कोणार्क का सूर्य मन्दिर इसी प्रयोजन के लिए काम आता था । शाम्बपुरी एवं उदयगिरि की वेधशालाएँ भी प्रसिद्ध थीं । कुतुबमीनार का दिल्ली में निर्माण विशुद्ध वेधशाला के रूप में हुआ था । उसकी सात मंजिल, सात ग्रहों का और २७ खिड़कियाँ २७ नक्षत्रों का वेध देखने के लिए हैं । पृथ्वी कुछ झुकी हुई है, इसी हिसाब से कुतुबमीनार का ऊपरी भाग भी ५ अंश झुका हुआ बताया गया है । निर्माण की गलती समझकर अंग्रेजों ने ऊपर का भाग तुड़वा दिया और अब अधूरी मीनार ही अवशेष रूप में है । २१ जून की मध्याह्न में उसकी छाया जमीन पर नहीं पड़ती ।

मिस्र के पिरामिडों की संरचना भी इसी निमित्त हुई है । उनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई इस क्रम से रखी गई है कि पृथ्वी और सूर्य की दूरी नापी जा सके । पृथ्वी का केन्द्र जहाँ पड़ता है, उस स्थान पर उनकी रचना हुई है । स्कॉटलैण्ड से बरमूडा क्षेत्र तक विशालकाय पत्थरों की संरचना भी ऐसी है, जो सूर्य और पृथ्वी के बीच पड़ने वाले अन्तर का बोध कराती है । मैक्सिको में, चीन तथा अरब देशों में भी ऐसे अवशेष पाये गए हैं जो विश्वभर में ज्योतिष का ज्ञान होने तथा सामयिक अन्तरों की जाँच-पड़ताल आवश्यक समझकर समय-समय पर वहाँ बनाये गए हैं । इसके माध्यम से दृश्य गणित के आधार पर पृथ्वी और ग्रहों के बीच पड़ते रहने वाले अन्तरों को जाना जाता था और पिछले निर्धारणों को शुद्ध किया जाता था ।

अपनी पृथ्वी का व्यास १३ हजार किलोमीटर है । उसका ७१ प्रतिशत भाग समुद्र जल में डूबा हुआ है और २९ प्रतिशत भूमि है । समुद्र की गहराई भी आश्चर्यजनक है । उसमें प्रशान्त महासागर १४,०५० फुट गहरा है । सबसे उथला आर्कटिक सागर है, जिसकी गहराई ४,२०० फुट है । समुद्रों में बड़े-बड़े पर्वत भी हैं ।

अपनी पृथ्वी का वजन ६६,००,०००,०००,००० खरब टन है । वह ३० किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की उड़ान भरती हुई ३,६५०.२० दिन में सूर्य की एक परिक्रमा करती है । पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव १४ हजार फुट गहरा और दक्षिणी ध्रुव १९ हजार फुट ऊँचा है । उत्तरी ध्रुव पर पौधों, मनुष्य तथा पशुओं का अस्तित्व है, दक्षिणी ध्रुव पर मात्र पेनगुइन पक्षी तथा एक प्रकार का मच्छर पाया जाता है । दोनों उड़ नहीं सकते ।

अन्तर्ग्रही तरंगें पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर आती हैं । जो उनमें से उपयोगी होती हैं, उन्हें पृथ्वी रोक लेती है और जो बेकार होती हैं उसे दक्षिणी ध्रुव के रास्ते निकाल बाहर करती हैं । पृथ्वी की ठण्डी परत प्रायः १५ मील है, इसके बाद गर्म द्रव भरा पड़ा है । इस गर्मी तक कभी समुद्री पानी रिस कर चला जाता है, तो भाप बनती है और ज्वालामुखी फूटते तथा भूकम्प आते हैं, जिनके कारण धरती निवासियों को भयंकर क्षति एवं अस्त-व्यस्तता का सामना करना पड़ता है ।

पृथ्वी पर जो सूर्य किरणें छनकर आती हैं उसी के आधार पर यहाँ न केवल गर्मी, रोशनी का अस्तित्व रहता है, वरन् प्राणियों की उत्पत्ति भी होती है । पृथ्वी के ऊपर वायुमण्डल का एक जीवनप्रद घेरा है । जिसमें साँस लेते हैं—उसकी ऊँचाई १०० मील से अधिक नहीं है । इसके उपरान्त पृथ्वी के ऊपर मोटी परतें चढ़ी हैं, जिनसे छनकर ग्रहों का प्रभाव उपयोगी मात्रा में पृथ्वी पर आता है । पहली परत को आयनोस्फीयर, दूसरी को ट्रोमोस्फीयर, तीसरी को स्ट्रेटोस्फीयर, चौथी को ओजोनोस्फीयर, पाँचवीं को एवजोस्फीयर कहते हैं । यह परतें ६५ हजार फुट तक ऊँची गई हैं ।

ध्रुवों की स्थिति बड़ी विचित्र होती है । वहाँ प्रायः छः महीने का दिन और छः महीने की रात होती है । दृश्यों के बीच आँख मिचौनी चलती रहती है । जमीन पर चलते हुए आदमी अधर में लटके दीखते हैं और आवाजों का गूँजना, तरह-तरह की सीटियों का बजना यह बताता है कि ध्रुवों की स्थिति में अनेक असामान्यताएँ होने के कारण ग्रह क्षेत्र, शक्तियों के पृथ्वी पर आवागमन का विशेष क्षेत्र है । इनकी समुचित जानकारी प्राप्त करके हम उस अदृश्य को जान सकते हैं, उसके ऊपर हमारा वर्तमान और भविष्य बहुत कुछ अवलम्बित है ।

सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी पर जिस अनुपात में आती है वह इतनी अधिक है कि उसका यदि सही उपयोग सम्भव हो सके तो मनुष्य की आवश्यकता के लिए अभीप्सित गर्मी उसी से मिल सकती है । इतना ही नहीं, समुद्र के खारे पानी को भाप बनाकर मीठे जल की समस्या भी हल हो सकती है ।

भूकम्पों, ज्वालामुखियों, हिमयुग और समुद्री बाढ़ आदि का सम्बन्ध जिन तथ्यों के साथ जुड़ा हुआ है वे ज्योतिर्विज्ञान की जानकारी से ही हस्तगत हो सकते हैं । उल्कापात और धूमकेतुओं का आवागमन भी कम संकट नहीं है । उपयुक्त समय पर उनके

आगमन और दिशा प्रवाह की सही गणना हो सके तो उन विपत्तियों को आधुनिक अणु आयुध प्रहार से दूर भी धकेला जा सकता है ।

मुद्दतों तक सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण देवताओं पर विपत्ति आने या कुपित होने का कारण माने जाते रहे हैं । पर अब वह भय वैज्ञानिक जानकारी ने दूर कर दिया है कि यह सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी की छाया का खेल है । आकाश के तारे टूटने को किसी देवपुरुष की मृत्यु आदि माना जाता था । अब समझा जाता है कि मंगल और बृहस्पति के बीच से किसी टूटे ग्रह का जो मलवा उल्काओं के रूप में घूमता रहता है, उसमें से कुछ टुकड़े उछलकर वातावरण में आ जाते हैं और जलकर राख हो जाते हैं, इसी का प्रकाश उल्कापात के रूप में दिखता है । भूकम्प, ज्वालामुखी आदि के सम्बन्ध में जो डरावने अन्ध-विश्वास फैले थे, वे ज्योतिर्विज्ञान की जानकारी से सहज ही दूर हो गए ।

उपर्युक्त जानकारियों के आधार पर आकाश में परिभ्रमण और यानों को ऊपर भेजकर सृष्टि के रहस्यों का पता लगाना सरल हो गया है । काम करने और लाभ उठाने के लिए आकाश एक नया क्षेत्र मिला है । मनुष्यों पर ग्रहों के पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी प्राप्त होने से पूर्व सतर्कता सम्भव हो गई है । मानसून, तूफान आदि की पूर्व सूचना मिल जाने से बचाव के कितने ही उपाय सोचे जाने लगे हैं ।

समझा जाता था कि नक्षत्र आकाश में झाड़-फानूसों की तरह टँगे हैं, पर अब पता चला है कि वे भी एक प्रकार के सूर्य हैं और एक-दूसरे से लाखों-हजारों प्रकाश मील दूर हैं । प्रकाश गणितों में प्रकाश की एक लाख छियासी हजार वर्ष प्रति सेकण्ड की चाल मानी जाती है । इस आधार पर प्रकाश वर्ष बनते हैं । इतनी दूर होने के कारण नक्षत्र पृथ्वीवासियों पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं छोड़ सकते । यह भी एक अन्ध-विश्वास विज्ञान ने हमारा दूर किया है ।

ज्योतिष का क्षेत्र बहुत बड़ा है । उससे जहाँ पृथ्वी का धरातल और अन्तरिक्ष में घटित होने वाले घटनाक्रमों का पता चलता है, वहाँ मनुष्यों के व्यक्तिगत प्रकृति के गुण-दोषों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त उसके उत्कर्ष का पथ प्रशस्त किया जा सकता है और अनर्थ की दुःखद सम्भावनाओं को टाला जा सकता है, किन्तु यह सब सम्भव तभी है, जब ज्योतिष का ज्ञान-विज्ञान समग्र रूप से जाना, सीखा और सिखाया जा सके । कठिनाई एक ही है कि स्वल्प श्रम में काम चलाने वाले और बाजारू पंचांगों के सहारे वह दोष की आशंका बताकर भोले लोगों की जेब काटने का व्यवसाय अनेक लोगों ने अपना रखा है । जब बाजारू पंचांग खरीदने भर से ज्योतिषी बना जा सकता है, तो कोई ग्रह गणित की कष्टसाध्य परिपाटी जानने का प्रयत्न क्यों करें ?

जिस प्रकार पृथ्वी के विभिन्न भागों का दिन-रात, प्रभात, मध्याह्न, सन्ध्या काल, अलग-अलग समय पर होता है, उसी प्रकार स्थान विशेष पर ग्रह, नक्षत्रों की पड़ने वाली प्रभाव क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है । इसलिए सही गणित के लिए आवश्यक यह है कि स्थानीय पलभा के अनुरूप पंचांग बने और सब लोग अपने स्थानीय पंचांगों से काम लें । बम्बई के गणित से बने हुए पंचांग से दिल्ली की स्थिति का सदा पता लगाना सम्भव नहीं । अपने या समीपवर्ती क्षेत्र के पंचांगों के सहारे ही यह प्रयोजन सही रीति से सिद्ध हो सकता है ।

ज्योतिर्विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है । हमारी उपलब्ध जानकारी को ज्योर्तिभौतिकी के क्षेत्र में हुई शोध ने और भी बड़ा आकार दिया है । फलित ज्योतिष के अन्ध-विश्वास से उबर कर ग्रह-नक्षत्रों एवं हमारे चारों ओर फैले वातावरण के जीवधारियों पर प्रभाव को अब हम खुलकर कह सकने की स्थिति में हैं । एस्ट्रॉलाजी एवं एस्ट्रानामी में अभी जो विग्रह संव्याप्त दृष्टिगोचर होता है, उसे मिटाया जा सकता है, यदि इसी वैज्ञानिक दृष्टि से प्राप्त शोध निष्कर्षों को जन-जन तक सुगम भाषा में पहुँचाया जा सके । इससे अनावश्यक भय तो मिटेगा ही, उस पुरातन ज्योतिर्विद्या की लंगड़ी वैसाखी को भी सहारा मिलेगा जिसकी मान्यताएँ आज भी गणितीय आधार पर सही हैं ।

अन्तर्ग्रही प्रभावों से आत्मरक्षा कैसे करें ?

वैदिककाल के ज्योतिर्विदों तथा आधुनिक काल के खगोल भौतिकविदों ने एक तथ्य को ही प्रमाणित किया है कि समग्र प्राणी जगत के ऊपर वातावरण तथा अन्तरिक्षीय अन्तर्ग्रही परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है । मनुष्य भी प्राणी समुदाय का एक अंग होने के नाते इससे मुक्त नहीं है । वस्तुतः यह समग्र ब्रह्माण्डीय संरचना एक सूत्र में पिरोई हुई है । उनकी बाहरी भिन्नताएँ तो बस दृष्टि भ्रम मात्र हैं । अतः ब्रह्माण्ड के एक कण में भी यदि कोई हलचल अथवा परिवर्तन हो तो उससे समस्त ब्रह्माण्ड प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता ।

मनुष्य का सबसे निकट का सम्बन्ध मौसम से है । वर्ष में अनेकों बार मौसम में परिवर्तन होता रहता है तथा तद्नुरूप मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है । 'कैनेडियन क्लाईमेट सेन्टर' के एक हाल के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि जिस दिन हवा तेज हो, आर्द्रता बढ़ रही हो, वायु दाब घट रहा हो और तापमान में तेजी से उतार-चढ़ाव आ रहा हो, उस दिन तनावजन्य माइग्रेन रोग होने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है । ऐसे व्यक्ति ऐसे मौसम में आत्मघात अधिक करते देखे जाते हैं, चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है एवं पारस्परिक कलह, झगड़ों के अवसर बढ़ जाते हैं ।

कोलम्बिया यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ की डॉ. इन्ज गोल्डस्टीन ने अपने अध्ययन निष्कर्ष में बताया है कि उच्च वायु दाब से मौसम ठण्डा रहता है तथा उस दौरान वर्षा नहीं होती । इससे दमे के मरीजों को कुछ राहत मिलती है । जैसे ही आर्द्रता बढ़ती व वातावरण उमस से भर जाता है, दमे का रोग उभर आता है । इलिनॉयस मेडिकल सेन्टर विश्वविद्यालय की डॉ. अनीता बेकर-ब्लोकर ने बताया कि दिल का दौरा भी बहुधा मौसम परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न होता है । अध्ययन के दौरान उन्होंने देखा कि दो दिन पूर्व हुई वर्षा के दौरान पुराने हृदयाघात (ओल्ड मायोकार्डियल इन फार्कशन) से मरने वालों की संख्या सामान्य की तुलना में २० प्रतिशत अधिक थी । वैसे भी हृदय रोग से मरने वालों की संख्या सर्वाधिक होती है ।

'जर्मन वेदर ब्यूरो' द्वारा मौसम विज्ञान पर आधारित दैनिक स्वास्थ्य बुलेटिन भी जारी किया जाता है जो मौसम के शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर पूर्व इंगित करता है । नित्य

बनते-बिगड़ते उच्च और न्यून दाब केन्द्रों और गर्म ठण्डी हवा की चाल के आधार पर यह मौसम पूर्वानुमान तन्त्र मौसम को छः चरणों में विभाजित करता है । मौसम विज्ञानियों के अनुसार प्रत्येक चरण स्वास्थ्य की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं—अपस्मार से लेकर पेट दर्द के बारे में बताता है । आमतौर से उच्च वायु दाब जन सामान्य में स्वास्थ्य की अच्छी स्थिति की ओर संकेत करता है, जबकि न्यून दाब और गर्मी की स्थिति स्वास्थ्य में आने वाली खराबी को ओर इंगित करती है । कितने ही चिकित्सकों ने अब मौसम विज्ञान पर आधारित सैटेलाइट की गणना पर आधारित स्वास्थ्य बुलेटिनों का प्रयोग अपने मरीजों पर करना आरम्भ कर दिया है । समय से पूर्व ही डॉक्टर स्वास्थ्य बुलेटिन के अनुरूप सारा सरंजाम जुटा लेते हैं ताकि यदि रोगियों को सचमुच ही वैसी स्थिति उत्पन्न हो जाय तो तुरन्त ही उन्हें उस स्थिति से मुक्त किया जा सके । कभी-कभी कुछ सावधानियाँ बताकर अथवा हल्की औषधियों, प्राणायाम आदि के प्रयोगों से भी रोग की स्थिति आने से बचा लिया जाता है ।

पूर्णिमा के चाँद का भी मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । इससे सम्बन्धित एक लोकोक्ति है, जिसमें पूर्णिमा के चाँद के प्रभाव से कुछ मनुष्यों को भेड़िया मानव बनते बताया जाता है, इससे भावार्थ यह है कि इसके दुष्प्रभावों से व्यक्ति में हिंसक वृत्तियाँ उभर आती हैं ।

अब अनेक वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षणों से यह तथ्य प्रामाणित हो चुका है कि पूर्णिमा के चाँद का मनुष्य पर जैविक एवं भावात्मक असर पड़ता है । देखा गया है कि पूर्णिमाकाल में न्यूरो एन्जाइम्स अपनी क्रियाशीलता सारी काया में बढ़ा देते हैं । रक्तचाप, हृदय धड़कन तथा चयापचय प्रक्रिया में भी इस समय तीव्रता अनुभव की गई है ।

शिकागो के इलिन्वाइस यूनिवर्सिटी के फॉर्मकोलॉजी प्रभाग के प्रोफेसर डॉ. राल्फ डब्ल्यू मोरिस ने अध्ययनोपरान्त पाया कि रक्तस्राव अन्य अवसरों की तुलना में पूर्णिमा के ठीक पहले अधिक क्रियाशील हो जाता है । अपस्मार (मिर्गी) भी इन्हीं दिनों काफी बढ़ते देखे गए हैं । मधुमेह के रोगियों में भी इन्हीं दिनों रक्त शर्करा चरम स्थिति पर पहुँच जाती है ।

मनःचिकित्सकों तथा पुलिस विभाग के अफसरों की मान्यता यह है कि पूर्णिमा का चाँद तनाव और चिन्ता को भी बढ़ा देता है । मनःशास्त्रियों के अनुसार पूर्णिमा के दिन व्यक्ति की हठधर्मिता और आक्रामकता अन्य दिनों की तुलना में बढ़ जाती है । इसके साथ ही अपराध दरों में भी आश्चर्यजनक वृद्धि इसी दौरान हुई पायी गई है । व्यक्तियों के व्यवहार में आमूल-चूल परिवर्तन अनुभव किए गए हैं ।

न्यूयार्क में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि इस पूर्णिमा काल में आगजनी की घटनाएँ अत्यधिक होती हैं । साथ ही देशव्यापी हत्याओं में ५० प्रतिशत की वृद्धि होते देखी गई है । डॉ. मोरिस ने अपने तथ्यों के समर्थन में एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि डेविड वरकोव्रिज डाकतार विभाग का एक कर्मचारी था । उसने कुख्यात 'सन ऑफ सैम' हत्याकाण्ड आठ रातों में सम्पन्न किया । इन आठ रातों में से पाँच पूर्णिमा की रातें थीं ।

डॉ. मोरिस के अनुसार मनुष्य के व्यवहार चिंतन में उन्माद लाने वाले इन चन्द्र प्रभावों की व्याख्या करना अत्यन्त जटिल है, क्योंकि पूर्णिमा काल में पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा तीनों एक सीधी रेखा में आ जाते हैं । अनुमानतया यह विद्युत चुम्बकीय एवं गुरुत्वाकर्षण सम्बन्ध के ही प्रमाण हैं जो काया के सूक्ष्म विद्युत प्रवाहों पर सीधा प्रभाव डालते हैं । उनमें परिवर्तन लाकर वे स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं ।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि पृथ्वी को ऊर्जा की प्राप्ति सूर्य से ही होती है परन्तु अब तो कुछेक वैज्ञानिकों ने यह भी कहना शुरू किया है कि पृथ्वी पर घटने वाली समस्त घटनाएँ सूर्य से प्रभावित होती हैं । कैलिफोर्निया के प्रसिद्ध जीवशास्त्री मारशा एडमस ने प्राकृतिक विपदाएँ, लूट-पाट, आगजनी, विस्फोट, हत्याएँ आदि के लिए सौर परिवर्तनों को जिम्मेदार ठहराया है । उन्होंने शल्य-क्रिया के दौरान हुए रक्तस्राव की मात्रा में सौर गतिविधियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप कमी महसूस की । एक चिकित्सालय में रोगियों ने भूकम्प की घटना से पूर्व भावनात्मक स्थिरता दिखलाई । कितनों को उल्टी आयी । कितनों के ऊपर एनेस्थेसिया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । जबकि उन्हें औषधि उचित से अधिक परिमाण में दी गई । एडमस ने पुनः बताया कि भूकम्प से पूर्व जानवरों के व्यवहार में परिवर्तन सौर-गतिविधियों के कारण ही होता है ।

एडमस ने इस बात का भी प्रमाण प्रस्तुत किया है कि सौर गतिविधियों में वृद्धि के एक सप्ताह के अन्दर फाकलैण्ड द्वीप में युद्ध की गतिविधियाँ आरम्भ हो गई थीं । ज्ञातव्य है कि २ वर्ष पूर्व हुए दक्षिणी महासागर के इस द्वीप को हथियाने हेतु महाशक्तियों में टकराव की नौबत आ गई थी एवं विश्वयुद्ध की स्थिति बन गई थी ।

पिछले दिनों पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय आन्ध्र प्रदेश में स्थित 'इन्स्टीट्यूट ऑफ एनवायरन्मेण्टल स्टडीज' द्वारा मनुष्य तथा प्राणियों पर सूर्य ग्रहण का क्या प्रभाव पड़ता है ? इस विषय पर विशेष अध्ययन किया गया । यह अध्ययन रक्त वर्ग से सम्बन्धित था तथा इसमें शारीरिक तापमान परिवर्तन, रक्तचाप, रुधिर शर्करा स्तर तथा नाड़ी दर पर विशेष ध्यान दिया गया था । मस्तिष्क शोध से ग्रसित बच्चों के आचरण-परिवर्तन पर भी अध्ययन किया गया । सूर्यग्रहण के परिणामस्वरूप रक्त वर्ग एबी के अलावा अन्य किसी रुधिर वर्ग के व्यक्तियों के शारीरिक तापमान, नाड़ी दर तथा रक्त-चाप में कोई विशेष परिवर्तन देखने को न मिला किन्तु 'एबी' वर्ग के व्यक्तियों के शारीरिक तापमान, नाड़ी दर तथा रक्तचाप में निश्चित रूप से गिरावट आ गई थी । साथ ही 'बी' तथा 'एबी' वर्ग के समुदाय में रुधिर शर्करा स्तर में परिवर्तन देखने को मिला जबकि अन्य वर्ग के लोगों में शर्करा स्तर वही बना रहा ।

जॉन एण्टनी वेस्ट और जान गेरहार्ड टुण्डा नामक दो पत्रकारों ने अपनी पुस्तक 'द केस फॉर एस्ट्रालॉजी' में एक ही समय में जन्मे दो व्यक्तियों के ऊपर अन्तर्ग्रहीय प्रभाव की साम्यता का उल्लेख किया है । उसने सैमुअल हेमिंग और जार्ज तृतीय नामक एक दिन ही जन्मे व्यक्तियों का उदाहरण दिया, जिन्हें एक ही दिन विरासत में राज मिला । दोनों देखने में लगभग एक से थे और स्वभाव में भी काफी एकता थी । दोनों का विवाह एक

दिन हुआ एवं दोनों की सन्तानों की संख्या भी समान थी । दोनों की एक ही दिन मृत्यु भी हुई । इसे उन्होंने संयोग या अपवाद न मानकर प्रकृति की विचित्रता का परिचायक एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण बताया है ।

लेखक ने पुनः एक ही दिन, एक ही समय व एक ही स्थान पर जन्मे वैज्ञानिक आइन्स्टाइन और लेखक जेम्स स्टीफेन्स व जेम्स जायस का उदाहरण दिया जिनकी जीवनचर्या में अद्‌भुत साम्यता थी ।

ऐसे अनेकों उदाहरण इस पुस्तक में विद्वान लेखकों ने दिए हैं जो अमुक ग्रह दशा में उत्पन्न व तद्‌जन्य प्रभावों में पले व्यक्तियों की आन्तरिक स्थिति एवं व्यवहार की एकरूपता पर प्रकाश डालते हैं । प्रकारान्तर से वे खगोल ज्योतिष के उस सिद्धान्त की पुष्टि ही करते हैं जो भास्कराचार्य, आर्यभट्ट आदि ने अपने ग्रन्थों में वर्णित किया है ।

ग्रह, नक्षत्रों का सभी प्राणियों के ऊपर निःसन्देह प्रभाव पड़ता है परन्तु मनुष्य इस ज्ञान से लाभ उठाकर अपनी विवेक बुद्धि के आधार पर उनके प्रभावों को निर्मूल तो नहीं, परन्तु उनसे अपने आपकी सुरक्षा कर सकता है । भारतीय ऋषियों ने इस विषय में कितने ही निर्देश प्रतिपादित किए हैं, जो मानव मात्र के लिए सुरक्षा कवच बन सकते हैं । सूर्य और चन्द्र ग्रहण के समय किसी प्रकार का आहार न लेना—पानी ग्रहण न करना—हो सके तो उस दिन उपवास का क्रम बनाना आदि उनमें से उल्लेखनीय मार्गदर्शन हैं । उनके द्वारा ग्रहणोपरान्त नदी स्नान का माहात्म्य भी बतलाया गया था, जिसका वैज्ञानिक कारण यह है कि ग्रहणकाल में शरीर पर घातक कॉस्मिक किरणों व विषाणुओं का आक्रमण होता है जिसे नदी के जल के स्नान द्वारा ही हटाया जा सकता है । जो प्राण-शक्ति सम्पन्न होता है । स्पष्ट है कि प्रवाहित जल में प्राण-ऊर्जा समाहित होती है जो घातक विषाणुओं को मारने में समर्थ होती है ।

इनके अतिरिक्त ऋषियों ने अन्तर्ग्रही प्रभावों से बचने हेतु सबसे महत्त्वपूर्ण रक्षा कार्य उपासना कृत्य के रूप में सुझाया था । इसके लिए प्राचीनकाल में सामूहिक धर्मानुष्ठानों—उपासना क्रमों का प्रचलन था । संकट की अवधि में प्रायः ऐसा किया जाता था और सुरक्षा व्यवस्था बना ली जाती थी । इसका वैज्ञानिक रहस्य यह है कि व्यक्ति समष्टिगत मानसिक एकाग्रता, जो उपासना का प्रधान लक्ष्य है, के आधार पर ब्रह्माण्डीय चेतना से सम्बन्ध बनाता है तथा अपने चिन्तन के अनुरूप उसे प्रभावित भी करता है ।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने ग्रह-नक्षत्रों तथा मौसम के विषय में जानकारी लेने तथा उनके घातक प्रभावों को निर्मूल बनाने हेतु यन्त्रों का सहयोग लिया है परन्तु शताब्दी का इतिहास बतलाता है कि दुष्प्रभावों की जानकारी लेने का उनका प्रयास तो ठीक है पर बचने के लिए आत्मिकी का अवलम्बन जरूरी है । कितनी ही बार देखा जाता है कि उन्हें पता भी नहीं चल पाता और हर वर्ष भूकम्प, भूस्खलन, ज्वालामुखी विस्फोट, अति-अनावृष्टि की चपेट में करोड़ों की जानें चली जाती हैं । यदि जानकारी हेतु नूतन एवं पुरातन प्रयासों का सामंजस्य बना लिया जाय एवं सुरक्षा हेतु अन्यान्य आधुनिक उपचारों के साथ जीवनी शक्तिवर्धन स्थूल एवं प्राण शक्ति वर्धक सूक्ष्म अध्यात्म उपचारों का आश्रय लेने का प्रयास किया जाय तो अधिक लाभ उठा सकना सम्भव है । योगविज्ञान, आयुर्विज्ञान एवं ज्योतिर्विज्ञान तीनों का समुच्चय मानवी स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाने में काफी लाभकारी सिद्ध हो सकता है । इसके लिए भारतीय अध्यात्मविदों द्वारा प्रणीत विधा का मार्गदर्शन लिया जाना चाहिए ताकि प्रतिकूल से बचा व अनुकूल से लाभ उठाया जा सके ।

अन्तर्ग्रहीय आदान-प्रदान के केन्द्र ध्रुव प्रदेश

मस्तिष्क और हृदय दो केन्द्र ऐसे हैं जो शरीर के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं । यों तो महत्त्व हर अंग अवयव का है । शरीर परिचालन तथा विभिन्न क्रिया-कलापों में उनकी अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं, पर जो रोल मस्तिष्क और हृदय का है, अन्य किसी भी कायिक अंग-प्रत्यंग का नहीं है । मस्तिष्क का सामान्य परिचय विभिन्न तन्त्रों के ऊपर नियन्त्रण रखने तथा हृदय का रक्त परिवहन में केन्द्रीय भूमिका निभाने के रूप में मिलता है । ये कार्य स्थूल हैं । इनकी सूक्ष्म भूमिकाएँ और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । सोचने-विचारने, निर्णय लेने आदि की क्षमता मस्तिष्क में ही होती है । हृदय से भाव सम्वेदनाएँ निस्सरित होती हैं । बाह्य जगत से आदान-प्रदान का क्रम भी इन्हीं दो केन्द्रों के माध्यम से चलता है । ये स्वयं भी बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होते तथा दूसरों को भी अपनी स्थिति के अनुरूप प्रभावित करते हैं । अत्यधिक सम्वेदनशील होने के कारण इनकी स्थिति में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं, जिसकी प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति एवं वातावरण पर दिखाई पड़ती है । समूचे शरीर में क्या परिवर्तन हो रहे हैं, उसकी सूक्ष्म जानकारी इन दो मर्मस्पर्शी केन्द्रों की स्थिति से मिल जाती है । विचारणा के स्तर तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के आधार पर उसका परिचय आसानी से मिल जाता है ।

सौरमण्डल शरीर की तरह ही एक विराट् शरीर है । ब्रह्माण्ड में ऐसे अगणित विराट् घटक क्रियाशील हैं । उनकी संख्या एवं स्वरूप की सही-सही जानकारी किसी को भी नहीं है । अपने सौरमण्डल में नौ ग्रह हैं । उल्टी कक्षा में घूमने वाले एक अन्य ग्रह का भी प्रमाण मिला है जिसे दसवाँ ग्रह समझा जा रहा है । मंगल, पृथ्वी, बृहस्पति, बुध, शनि, शुक्र, प्लेटो, नेपच्यून, यूरेनस के अतिरिक्त दसवाँ ग्रह भी उस परिवार में सम्मिलित हो गया है । ये सभी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं । हर ग्रह के एकानेक उपग्रह हैं । अपनी पृथ्वी का चन्द्रमा है । सौरमण्डल के हर घटक परस्पर एक-दूसरे से अन्योयाश्रित रूप से जुड़े हुए हैं तथा अपनी गति एवं स्थिति से एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं । पृथ्वी का निज का जितना वैभव है उससे अनेक गुना दूसरे घटकों के अनुदानों से मिला है । गर्मी, प्रकाश, वर्षा आदि अनुदान तो प्रत्यक्ष दिखते हैं पर सूक्ष्म दिखाई नहीं पड़ते । सूक्ष्म आदान-प्रदान के अति सम्वेदी केन्द्रों का परिचय पृथ्वी के ध्रुव केन्द्रों के रूप में मिला है । उनके सम्बन्ध में जो तथ्य विदित हुए हैं वे हैं तो अत्यल्प पर अत्यन्त विलक्षण तथा आश्चर्यचकित करने वाले हैं ।

पृथ्वी के अन्य भागों की अपेक्षा ध्रुवों की परिस्थितियाँ असामान्य हैं । समझा जा रहा है कि अन्तर्ग्रही विशिष्ट अनुदान

इन्हीं केन्द्रों के माध्यम से अवतरित होकर समस्त भू-मण्डल पर वितरित होते हैं तथा विजातीय द्रव्य दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से अन्तरिक्ष में फेंक दिए जाते हैं ।

इन ध्रुव प्रदेशों पर दुर्लभ मनोरम दृश्य दिखायी पड़ते हैं । उत्तरी ध्रुव पर छाया रहने वाला सुविस्तृत तेजोवलय 'आरोरा बोरिएलिस' अपनी अद्‌भुत आभा से हर किसी का मन मोह लेता है । 'दि नेशनल एरौनाटिक्स एण्ड स्पेश एडमिनिस्ट्रेशन' (नासा) द्वारा छोड़े गए डायनॉमिक्स एक्स प्लोरट—'ए' सेटेलाइट से अनेकों हाई रिजोल्यूशन फोटोग्राफ्स लिए गए । उससे आश्चर्यजनक जानकारियाँ मिलीं । अध्ययन-अन्वेषण में लगे वैज्ञानिकों का मत है कि अन्तरिक्ष से आने वाले सब एटोमिक पार्टिकल्स पृथ्वी के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में प्रवेश करके आवेशित हो जाते हैं तथा ध्रुव केन्द्रों पर ध्रुव प्रभा के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । ध्रुव प्रभा का क्षेत्र विस्तार ४००० कि.मी. व्यास है । इसकी किरणों की पट्टियाँ जो ध्रुव केन्द्र को आवृत्त किए होती हैं, उनकी चौड़ाई १००० कि.मी. हुआ करती है । यह प्रभा मण्डल जमीन से १०० कि.मी. ऊपर चमकता है तथा उसके स्वयं की ऊँचाई दस से लेकर सैकड़ों किलोमीटर तक होती है । दिन में चर्म-चक्षुओं से आरोरा को देखने में कठिनाई होती है पर रात को वह स्पष्ट दिखायी पड़ता है । दिन और रात के आरोरा में विशेष अन्तर भी पाया जाता है । सूर्य किरणों के आड़े-तिरछे पड़ने से उसका रूप-रंग बदलता रहता है । उसे शक्तिशाली कैमरों से देखा और उसका फोटो लिया जा सकता है ।

यूनाइटेड स्टेट्स के उत्तरी क्षेत्र के आकाश मार्ग से ध्रुवीय ज्योति को सत फ्रेंसिस्को, मेमफिस तथा एटलान्टा के दक्षिण छोर पर रंग बिरंगे-रूप में देखा जा सकता है । ५३ डिग्री अक्षांश पर तथा मध्य रात्रियों में उसके दर्शन किए जा सकते हैं । वैज्ञानिकों का अभिमत है कि ध्रुवीय ज्योति का प्रकाश हाइड्रोजन आयन अथवा प्रोटोन के प्रवाह से उत्पन्न होता है जो सूर्य से १५०० मील प्रति सेकण्ड की गति से फेंका जाता है । प्रकाश कण प्रोटान्स को भी साथ खींच कर लिए चलते हैं । जिनका कुछ अंश पृथ्वी तक पहुँचता है जहाँ का चुम्बकीय क्षेत्र इलेक्ट्रॉनों तथा प्रोटॉनों को अलग कर देता है । प्रोटॉनों का जल कुछ अंश पृथ्वी के वायुमण्डल से स्पर्श करता है तो ध्रुवीय ज्योति (आरोरा) के रूप में प्रकट होता है । इसका यथार्थ स्वरूप तथा भूमिका अविज्ञात होते हुए भी सम्भावना व्यक्त की गई है कि धरती पर अन्तर्ग्रहीय अनुदानों की वर्षा का स्थूल प्रकटीकरण है ।

किसी सौर टेलीस्कोप से दक्षिण ध्रुव के हिमाच्छित प्लेटो का अध्ययन किया जाय तो आश्चर्यजनक तथ्य एवं दृश्य सामने आते हैं ।' वहाँ के स्थान तो प्राकृतिक लगते हैं पर दिखाई पड़ने वाले दृश्य अत्यन्त ही अस्वाभाविक मध्य गर्मी के मौसम में वहाँ सूर्यास्त होता ही नहीं । कभी-कभी १६ दिनों तक सूर्य बिना अस्त हुए चमकता रहता है । रातें भी २० से लेकर ३० रातों जितनी लम्बी होती हैं । कितनी बार हिमखण्डों पर कितने ही नकली सूर्य चमकते दिखाई पड़ने लगते हैं जो अवास्तविक होते हुए भी वास्तविक जान पड़ते हैं ।

उत्तरी ध्रुव की तरह दक्षिणी ध्रुव में भी ध्रुव प्रभा के दर्शन होते हैं । उत्तरी ध्रुव से उसकी भिन्नता होने के कारण वैज्ञानिकों ने उसका नाम 'आरोरा आस्ट्रेलिस' दिया है । दिन यहाँ भी बहुत ही लम्बे होते हैं । जिन अन्वेषी दलों ने वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन किया है उनका कहना है कि कई दिनों तक रात्रि के दर्शन नहीं हो सके । आकाश में रग-बिरंगे गैसों के बादल मँडराते रहते हैं । तापक्रम शून्य से भी कई डिग्री नीचे बारहों माह तक बना रहता है । सदा बर्फ की मोटी परत जमी रहती है । सफेद भालू, पेन्गुइन पक्षी तथा मछलियाँ उस भयंकर शीत में भी जीवित रहते हैं । अनुसन्धान कर्त्ताओं का मत है कि उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव पर दीखने वाला प्रभा मण्डल का अन्तर्ग्रहीय परिस्थितियों के आदान-प्रदान से गहरा सम्बन्ध है जिसकी यथार्थ जानकारी तो उपलब्ध नहीं हो सकी है, पर अगले दिनों मिलने की सम्भावना है ।

पृथ्वी को सूर्य से सर्वाधिक अनुदान मिलते हैं और वह उसकी स्थिति, गति एवं परिवर्तनों से प्रभावित भी होती हैं । उन प्रभावों को इन ध्रुवों पर अध्ययन कर सकना अधिक सुगम है । ध्रुवीय ज्योति का सूर्यकलंकों से भी घना सम्बन्ध है । जब सूर्य की प्रकृति शान्त रहती है तब ध्रुवीय ज्योति मन्द दिखायी पड़ती है पर उग्र होने पर उस ज्योति का दर्शन दिन और रात को अधिक समय तक किया जा सकता है । सौर गतिविधियों का चक्र परम बिन्दु के नीचे उतरना प्रारम्भ होने पर नासा अनुसन्धान केन्द्र द्वारा उसके प्रभावों का अध्ययन करने के लिए सैटेलाइट छोड़ा गया । उससे प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार प्रति ११ वर्ष की अवधि में सूर्य हलचलों की एक अवस्था ऐसी आती है जब उसका उच्चतम उफान क्रमः नीचे उतरना आरम्भ होता है । ध्रुवीय प्रदेशों में चलने वाले ऑटोरल स्टार्म्स सर्वोच्च स्थिति में जा पहुँचते हैं जब सौर चक्र की स्थिति अपने निम्नतम बिन्दु को स्पर्श कर रही होती है । विशेषज्ञ हॉफमैन के अनुसार किन्हीं अज्ञात कारणों से ध्रुव प्रभा के अन्तर्गत सौर स्पन्दन के उतार के समय में अति उच्च गति के तूफान उठा करते हैं ।

सूर्य ग्रहण के समय दिखायी पड़ने वाले कोरोना का अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ है कि ११ वर्षीय चक्र में सबसे कम धब्बों एवं लपटों वाले समय में कोरोना का उभार भी सबसे कम होता है और जिस समय अधिकतम धब्बे व लपटें देखी जाती हैं उस समय कोरोना में भी सबसे अधिक उभार देखा जाता है । इन सब घटनाओं का सम्बन्ध सौर चुम्बकीय क्षेत्र की हलचलों से है जिसका सीधा प्रभाव पृथ्वी की परिस्थितियों पर पड़ता है । विशेषकर उस प्रभाव को ध्रुव केन्द्रों पर अधिक स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है ।

स्पेश क्राफ्ट से किए गए निरीक्षणों के अनुसार सोलर विण्ड की धाराएँ सूर्य के विषुवत वृत्त से उत्तर एवं दक्षिण की ओर क्रमशः फैलते-उतरते हुए उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव तक जा पहुँचती हैं । सोलर विण्ड की गति जब तीव्र रहती है तो सूर्य के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के पोलर होल्स अधिक चौड़े रहते हैं । जिसके कारण ध्रुव प्रदेशों में सोलर विण्ड की धारा अत्यन्त तेज पायी जाती है । जब उनकी गति कम होती है तो ध्रुव प्रदेशों में भी उस प्रवाह की गति कम दिखाई पड़ती है ।

न केवल अन्तर्ग्रहीय प्रभावों को इन ध्रुव केन्द्रों पर देखा जा सकता है बल्कि पृथ्वी एवं उसके वातावरण में हुए हेर-फेर का भी प्रभाव वहाँ देखना सम्भव है । विगत दिनों यह आश्चर्यजनक तथ्य विदित हुआ है कि पृथ्वी पर होने वाले नाभिकीय परीक्षणों

से होकर विकिरण दक्षिणी ध्रुव तक न जाने कैसे और क्यों पहुँच जाते हैं । खतरनाक विकिरणों की बड़ी मात्रा दक्षिणी ध्रुव के किनारे एकत्रित होती जा रही है ।

मानवी काया की तरह ही रहस्यमय एवं विलक्षणताओं से युक्त पृथ्वी के ध्रुव अनेकों महत्त्वपूर्ण सूत्र पिण्ड ब्रह्माण्ड के सम्बन्धों के विषय में देते हैं जिनसे अन्तर्ग्रहीय आदान-प्रदान की विधि व्यवस्था बनाने, समझने में मदद मिलती है । आवश्यकता उन केन्द्रों के विषय में अधिक बनने की तो है ही उनसे सम्पर्क बिठाकर लाभान्वित होने की भी है ।

ज्योतिर्विज्ञान, अन्तरिक्ष भौतिकी से समन्वित हो

जिस भू-भाग पर हम रहते हैं उसका विस्तार लगभग सत्रह करोड़ वर्ग मील है एवं उसका तीन चौथाई हिस्सा पानी से ढका है । मात्र जल से भरा हुआ कुल क्षेत्र १३ करोड़ १६ लाख वर्ग मील पड़ता है । अन्तरिक्ष का विस्तार असीम है । जैसे-जैसे ऊपर की ओर बढ़ते हैं अन्तरिक्ष की परिधि उसी अनुपात में बढ़ती प्रतीत होती है । प्रकृति की सम्पदाएँ जितनी पृथ्वी के गर्भ और उससे जुड़े वातावरण में सिमटी हैं उसकी तुलना में अन्तरिक्ष में कहीं अधिक परिमाण में सन्निहित हैं । अस्तु विस्तार की दृष्टि से ही नहीं वरन् भौतिक सम्पदा की दृष्टि से भी अन्तरिक्ष पृथ्वी की अपेक्षा कहीं अधिक सम्पन्न है ।

ऐसी स्थिति में अन्तरिक्ष विज्ञान का महत्त्व भू-विज्ञान की तुलना में कहीं अधिक बढ़ जाता है । जल और थल की तरह मनुष्य यदि चाहे तो अन्तरिक्षीय खोज में एक और कड़ी जोड़कर ग्रहों की गति और स्थिति से पृथ्वी के वातावरण तथा प्राणि जगत को किस प्रकार अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ सहन करनी पड़ती हैं, इस जानकारी से लाभान्वित हो सकता है । प्राचीनकाल में ज्योतिर्विज्ञान आज के भौतिक विज्ञान की भाँति ही सुविकसित था । ग्रहों की गतिविधियाँ तथा उनकी सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं के विषय में जानकारी ऋषिगणों को भली प्रकार उपलब्ध रहती थी । फलतः वे अनुकूलताओं से लाभ उठाने तथा प्रतिकूलताओं से बचने का मार्ग निकाल लेते थे । मनुष्य जाति ने ज्ञान-विज्ञान की अनेकों शाखाओं को विकसित करके प्रगति पथ पर बढ़ चलने में अप्रतिम सफलता पायी है । अन्य विज्ञान की धाराएँ सामयिक, सीमित और सम्बद्ध लोगों को प्रभावित करती हैं पर ग्रहों की सामर्थ्य अधिक प्रचण्ड और क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । ऐसी दशा में उनके साथ जुड़े हुए सम्बन्ध सूत्रों और आदान-प्रदानों के सम्बन्ध में मनुष्य की जानकारी भी विशद होनी चाहिए ।

भौतिक विज्ञान ने अन्तरिक्ष का महत्त्व समझा है । सर्वविदित है कि वायु एवं जल की अथाह सम्पदा आकाश के पोले ईथर में भरी हैं । विज्ञान के ज्ञाता इस तथ्य से परिचित हैं कि बिजली रेडियो, लैसर आदि की तरंगें आकाश में संव्याप्त होती हैं । ध्वनि, ताप, प्रकाश आदि की तरंगें आकाश में प्रवाहित होती हैं तथा अन्तर्ग्रही अनुदान भी उसी क्षेत्र में मिलते हैं । अदृश्य जगत की सम्पदा सूक्ष्म अन्तरिक्ष में ही समाहित है । विचार तरंगें इसी परिसर में परिभ्रमण करती रहती हैं । ऐसे अनेकानेक आधार हैं, जिनसे स्पष्ट है कि भू-मण्डल की तुलना में अन्तरिक्ष में विद्यमान साधन सम्पदा का महत्त्व और स्तर असंख्य गुना अधिक है ।

अध्यात्मवेत्ता अनादिकाल से ही अपनी गतिविधियों को अन्तरिक्ष पर केन्द्रीभूत रखे रहे हैं । उनकी सामर्थ्यों का उत्पादन क्षेत्र अदृश्य जगत-सूक्ष्म जगत रहा है । ऋद्धि-सिद्धियाँ—भौतिक और आध्यात्मिक विभूतियाँ दिखाई तो प्रत्यक्ष रूप में पड़ती हैं, किन्तु इनका उपार्जन परोक्ष जगत से ही सम्भव हो पाता है । मानवी अन्तराल में तो उसकी बीज सत्ता भर विद्यमान है परन्तु वह सुविकसित होने और विभूतियों को करतलगत करने में अदृश्य सूक्ष्म जगत का ही अवलम्बन लेती है । साधना की तो जाती है अन्तराल में, पर उसका प्रतिफल दैवी शक्तियों का सहयोग लेने पर ही मिलता है ।

वैज्ञानिकों को लेसर से लेकर मृत्यु किरणों तक एक से बढ़कर एक शक्तियाँ आज आकाश से ही उपलब्ध हो रही हैं, जो सृजन अथवा ध्वंस का—दोनों का ही उद्देश्य पूरी करती रह सकती हैं । इन्हें युद्ध आदि में प्रयुक्त कर अणु विस्फोट जैसी विभीषिका उत्पन्न की जा सकती है । सदुपयोग द्वारा सुविधा सम्वर्धन हेतु बहुमूल्य उपलब्धियाँ भी प्राप्त की जा सकती हैं । इन दिनों रेडियो, तार, टेलीफोन, टेलीविजन आदि संचार यन्त्रों में छोटे-छोटे उपग्रहों से अनेकों देशों में काम लिया जा रहा है जो पूर्णतया सफल रहा है । यह पद्धति सरल और सस्ती भी पड़ रही है । अब मौसम में इच्छानुकूल हेर-फेर की बात भी सोची जा रही है । ऋतुओं पर नियन्त्रण कर गर्मी-सर्दी घटा-बढ़ा लेने, इच्छानुकूल क्षेत्र में वर्षा करा लेने के प्रयोग परीक्षण भी चल रहे हैं । यदि ये सफल रहे तो मानवी सुविधा सम्वर्धन में भारी प्रगति हो सकती है । इस विपुल ऊर्जा के सर्वसुलभ होने के साथ-साथ समुद्र की लहरों से सीधे बिजली बना लेने और उसके जल को मीठा कर लेने में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी । इस स्वप्न को साकार करने में वैज्ञानिक प्रतिभाएँ जी-जान से लगी हुई हैं । उन्हें सफलता भी मिली है । लेकिन उज्ज्वल सपनों के साथ जुड़ा हुआ एक निराशाजनक पक्ष भी है । वह है—आविष्कारों एवं तकनीकी विकास से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण संकट का । इस दृष्टि से पिछली प्रगति अधिक महँगी पड़ी है ।

विषाक्तता बढ़ने से आकाश में प्रदूषण इतना भर गया है जिसके रहते मनुष्यों और प्राणियों को दुर्बलता और रुग्णता का अभिशाप सहते अकाल मृत्यु के मुँह में चले जाने के अतिरिक्त कोई चारा न रहेगा । अन्तर्ग्रही असन्तुलनों में भी वृद्धि हुई है । प्रकृति प्रकोप इन्हीं दिनों अधिक परिमाण में दृष्टिगोचर हो रहे हैं । पृथ्वी अन्य ग्रहों के प्रवाहों से निश्चित ही प्रभावित होती है । सौरमण्डल के चक्र में बँधी होने के कारण पृथ्वी का वातावरण भी अन्यान्य ग्रहों पर प्रभाव डालता है । अस्तु असन्तुलनों और प्रकृति विपदाओं में मनुष्य द्वारा प्रदूषित पृथ्वी के वातावरण का भी सहयोग हो सकता है, ऐसा पर्यावरण विशेषज्ञ मानने लगे हैं ।

विषाक्तता के परिशोधन का कोई कारगर उपाय नहीं सूझ रहा । 'किंकर्त्तव्यविमूढ़' की भाँति वैज्ञानिक यह सोच रहे हैं कि संव्याप्त आणविक एवं अन्यान्य कचरे को अनन्त अन्तरिक्ष के किसी सुदूर कोने में फेंककर छुट्टी पा ली जाय । यह युक्ति मनुष्य के लिए कोई हानिकारक प्रभाव नहीं उत्पन्न करेगी, यह संदिग्ध है । अन्तरिक्षीय क्षेत्र में बढ़ते हुए तकनीकी कदमों के साथ बढ़ते

उपग्रहों की संख्या भी भावी विभीषिकाओं का एक निराशाजनक पहलू प्रस्तुत करती है, जिसे नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता।

भौतिक विज्ञान तथा उसका तकनीकी ज्ञान प्राचीन काल में इतना सुविकसित न था। पर जिन उपलब्धियों के लिए अन्तरिक्ष विज्ञानी प्रयत्नशील हैं वे सारे प्रयोजन ज्योतिर्विज्ञान द्वारा गणना आदि के माध्यम से पूरे कर लिए जाते थे। अन्तरिक्ष के अन्तराल में ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति अनुदान तथा उनके हानिकारक प्रभावों की जानकारी ज्योतिर्विज्ञान देता था। आत्म-विज्ञान उनसे लाभ उठाने—प्रतिकूलताओं से सुरक्षा उपचार की विधिव्यवस्था जुटाता था। अतीत की खोई हुई इस महान् विद्या ज्योतिर्विज्ञान की विलुप्त कड़ियों को ढूँढ़ने की पुनः आवश्यकता है। इन विज्ञान की पुनर्प्रतिष्ठा हो सके तो विज्ञान से कदम से कदम मिलाकर चलते हुए—बिना किसी क्षति के अन्तरिक्ष जगत से एक से बढ़कर एक भौतिक एवं अन्यान्य अनुदानों के रूप में लाभान्वित हो सकना सम्भव है।

ज्योतिर्विज्ञान की असंदिग्ध प्रामाणिकता

मनुष्य की प्रकृति एवं उसके स्वभाव का गहरा सम्बन्ध ज्योतिर्विज्ञान से है। जिसके अन्तर्गत पिण्ड और ब्रह्माण्ड, व्यष्टि और समष्टि, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों का अध्ययन सम्मिलित रूप से किया जाता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ मन्दाकिनियाँ, नीहारिकाएँ एवं मनुष्य, प्राणी वृक्ष, चट्टानें आदि विश्वब्रह्माण्डीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित आकर्षित करते हैं। इन ग्रह, नक्षत्रों का मानव जीवन पर सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। वे कभी कष्ट दूर करते हैं तो कभी कष्ट भी देते हैं। ये तत्व मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं मनः संस्थानों पर कार्य करते हैं और उसकी भावनाओं तथा मानसिक स्थितियों को अधिक प्रभावित करते हैं। ज्योतिर्विज्ञान के अध्ययन और उपयोग से ज्योतिषी को मानव जीवन के सभी क्षेत्रों के बारे में गहरी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

आरम्भिक काल से ज्योतिर्विज्ञान अध्यात्मविज्ञान की ही एक शाखा थी। इसे एक पवित्र विद्या माना जाता था जिसका स्वरूप स्पष्टतः धर्म विज्ञान पर आधारित था। अपने इसी रूप में इसने चालडियन एवं मिस्री धर्मों तथा प्राचीन भारत, चीन एवं पश्चिमी यूरोप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उस समय इसकी विश्वसनीयता असंदिग्ध मानी जाती थी और उसका प्रचार-प्रसार लगभग विश्व के समस्त भागों में था। परन्तु मध्यकाल में ज्योतिर्विज्ञान पर अनेकों आघात हुए और अल्पज्ञ तथा निहित स्वार्थी लोगों के हाथों पहुँच जाने पर इस विद्या की अवनति हुई। ज्योतिष की मूलभूत तत्व मीमांसा एवं उसके आध्यात्मिक तत्व दर्शन से उस समय के ज्योतिषी बहुत अंशों में अनभिज्ञ थे। उन्होंने ज्योतिर्विज्ञान के केवल उस सिद्धान्तों पर अमल किया जिसका मेल नए यान्त्रिक भौतिक विज्ञान के तथ्यों से बैठता था। उस समय केवल वही सिद्धान्त मान्य रहे जो दृश्य जगत की बाह्य भौतिक घटनाओं एवं तथ्यों पर आधारित थे। केपलर के ज्योतिष विज्ञान को ग्रहों के चाल पर आधारित मानने के कारण भी ज्योतिष विज्ञान की दुर्गति हुई।

वास्तव में ज्योतिर्विज्ञान के सिद्धान्तों का सुदृढ़ आधार अभौतिक एवं आध्यात्मिक है। इसे भौतिक यन्त्रवाद और मात्र ग्रहों, तारों, राशियों एवं भावों को निर्धारण करने वाले एवं व्यवस्था क्रम दर्शाने वाले खगोलीय विज्ञान के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इस स्थिति से बचने के लिए समय-समय पर कुछ महान् सन्त ज्योतिषियों ने अपने-अपने सुधार प्रयत्न भी प्रस्तुत किए। आठवीं सदी में हिन्दुओं की खगोल विद्या एवं ट्रिगनामेट्री पर लिखे गए प्रख्यात शोध ग्रन्थ 'सिद्धान्तस्' तेरहवीं शताब्दी के यूरोपीय ज्योतिषी गीडी बोनाटी का लैटिन भाषा में लिखा गया ग्रन्थ 'लिबर एस्ट्रोनामिया' और सत्रहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध सन्त ज्योतिषी जीनमोरिन की श्रेष्ठ रचना 'एस्ट्रोलाजिया गोल्लिका' में ज्योतिष का प्रतिपादन विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक एवं तात्विक सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है। ज्योतिषविज्ञान के क्षेत्र में इन रचनाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान इन्हीं की देन है।

मूर्धन्य ज्योतिर्विद् राबर्ट जोलर ने अपनी पुस्तक 'द लास्ट की टू प्रेडिक्शन' (द अरेबिक पार्ट्स इन एस्ट्रोलॉजी) में अरबी ज्योतिष तत्व के प्राचीनतम किन्तु अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है। अरेबिक पार्ट्स से सम्बन्धित सिद्धान्त प्राचीन काल से ही प्रचलित है और वे मानव जीवन के सभी क्षेत्रों पर गहराई से प्रकाश डालते हैं। इस पुस्तक में ज्योतिष के ९७ मूलभूत पार्ट्स दिए गए हैं, जो प्राचीन समय में प्रयुक्त होते थे। इसके अतिरिक्त ७३ अन्य पार्ट्स भी प्रस्तुत किए गए हैं जिन्हें मध्यकालीन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किया गया था। इस ग्रन्थ की विशेषता है कि यह मनुष्य के दिव्य स्वरूप की ओर इंगित करता है और ज्योतिर्विज्ञान के माध्यम से मनुष्य के आत्मतत्व की उस महानता को उद्घाटित करता है जिसमें मनुष्य हाड़, माँस का पुतला और यन्त्रवत् संचालित मशीन मात्र नहीं वरन् वह इस धरती का मुकुटमणि ईश्वर का अविनाशी अंश उसका वरिष्ठ राजकुमार है जो इस विश्वब्रह्माण्ड में, समष्टि में विद्यमान है, वही व्यष्टिगत मानवी काया में सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। सृष्टि के कण-कण में विराजमान स्रष्टा मनुष्य के पवित्र हृदय में बैठा उसे ऊर्ध्वगामी बनने के लिए सदैव प्रेरित करता रहता है।

अरेबिक पार्ट्स के अनुसार ज्योतिष की सम्पूर्ण कला जिसमें पार्ट्स की कला भी सम्मिलित है, अंक-संख्या पर आधारित है। ज्योतिर्विज्ञान को जानने के लिए सर्वप्रथम उसके कार्य कारण सम्बन्धी ज्ञान की जानकारी होना आवश्यक है। संसार के सभी पदार्थ मूलरूप में एक ही तत्व से बाहर निकले हैं। ज्योतिष का प्रथम मूलतत्व फर्स्ट प्रिंसिपल एक अद्वितीय चेतन सत्ता मोनेड-परमात्मा है। यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड का समष्टि जीवन का आधारभूत मूल तत्व है। जिसे ही आध्यात्मवादियों, सन्तों ने विभिन्न नामों से पुकारा है। ज्योतिर्विज्ञान का प्रथम सिद्धान्त मनुष्य को आत्म-सत्ता की महानता से परिचय कराता है, जिससे सम्पूर्ण जीव जगत की विराट सत्ता समाविष्ट है।

'हरमेटिक सिद्धान्त' के अनुसार, जो नियम, विधि-विधान सृष्टि, विश्व ब्रह्माण्ड में लागू हैं वे ही पिण्ड-व्यष्टि अर्थात् मनुष्य में भी लागू हैं। मनुष्य और सृष्टि समान नियमों से बँधी हुई हैं। अतः जेनेथियोलॉजी एवं मुण्डेन एस्ट्रोलाजी-लौकिक ज्योतिष के माध्यम से पिण्ड और ब्रह्माण्ड का अध्ययन साथ-साथ किया जाता है। मनुष्य की प्रकृति एवं स्वभाव का गहरा सम्बन्ध ज्योतिर्विज्ञान से होने के कारण प्राचीन दार्शनिक ज्योतिषियों ने

मानव प्रकृति को समझने पर बहुत अधिक जोर दिया है । कुछ प्रमुख दार्शनिक ज्योतिषियों-हेनरी कार्नेलियस एग्रीपा, गिआरडेनो ब्रूनो, हरमेस ट्रिसमेजिस्टस एवं पिकोडेला मिरानडोला ने अपनी-अपनी रचनाओं में मानव प्रकृति और विश्वब्रह्माण्ड से उसके सम्बन्धों में पूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है । इन्होंने कहा है कि, "मनुष्य की आत्मा एक तात्विक अंक है, जिसका प्रकटीकरण सीधे ईश्वर से होता है । मानव आत्मा एक अलौकिक दिव्य प्रकाश है । यह अविकारी, एकरस, आत्मनिर्भर, सर्वज्ञ एवं सभी शरीरों एवं भौतिक पदार्थों से परे है । यह मूलतत्व ही सही अर्थों में मनुष्य है ।"

दार्शनिक ज्योतिषी एग्रीपा ने अपनी रचना में बताया है कि मनुष्य का विश्व ब्रह्माण्ड और मोनेड-ईश्वर से क्या सम्बन्ध है ? उन्होंने आगे कहा है कि "इस जगत का केन्द्र बिन्दु ईश्वर ही है और उसी से सृष्टि का स्फुरण हुआ है ।" इन दार्शनिक ज्योतिषियों ने यह भी प्रतिपादित किया है कि ईश्वर विश्व ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित है । ब्रूनो, हरमेस और मिरानडोला के मतानुसार, "मनुष्य विश्व ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित है । अतः ईश्वर और मनुष्य दोनों में समानता है, दोनों एक-दूसरे के अनुरूप हैं । दोनों की अनुरूपता एवं मिलन का स्थान मनुष्य का हृदय ही हो सकता है । यही जगत का केन्द्र भी है ।" ईश्वर मनुष्य एवं विश्व ब्रह्माण्ड में स्वरूपतः अभिन्नता, समरूपता एवं मूलभूत एकता होने के कारण ही सभी धर्मों एवं तत्व दर्शनों में हृदय की पवित्रता-शुचिता पर बहुत जोर दिया गया है ।

ज्योतिर्विदों के अनुसार मनुष्य की जन्मराशि हृदय की आकृति को चित्रित करती है । जिस तरह इसी मैक्रोकाज्म-विश्व ब्रह्माण्ड में स्वर्ग लोक है और यह विश्व ब्रह्माण्ड मनुष्य के हृदय में स्थित है । उसी प्रकार जिस मनुष्य की जन्मपत्री बनाई जाती है, उसके जन्म, पुनर्जन्म लेने के समय आकाशकीय राशि उसके हृदय की प्रतिमूर्ति होती है । ये ज्योतिष की राशियाँ या अंक पुनर्जन्म लेने वाले मनुष्य विशेष अथवा विश्व ब्रह्माण्ड के हृदय के संकल्पों, इच्छाओं की प्रतिमूर्ति भी होती है ।

खगोल विज्ञान में आकाशकीय भौतिक नक्षत्रों एवं ग्रहों का अध्ययन किया जाता है । जबकि ज्योतिष विज्ञान में मनुष्य के हृदय में स्थित ग्रहों एवं नक्षत्रों का अध्ययन किया जाता है अर्थात् मानव हृदय में स्थित आन्तरिक ग्रहों एवं तारों की गति का समय सूचित करने के लिए ही भौतिक नक्षत्रों का उपयोग किया जाता है । इस तथ्य को समझे बिना ज्योतिर्विज्ञान के सिद्धान्तों का भली-भाँति हृदयंगम नहीं किया जा सकता है ।

मानव जीवात्मा के केन्द्र हृदय का सृष्टि के केन्द्र से अनुरूपता होने के फलस्वरूप संकल्प स्थल हृदय में विविध प्रकार के विश्व ब्रह्माण्डीय घटना चक्र जैसे— राजनैतिक, मौसम सम्बन्धी, प्राकृतिक प्रकोप, जन्म क्रम में अन्तर, आध्यात्मिक और धार्मिक परिवर्तन, सम्प्रदायों का उत्थान-पतन, युग परिवर्तन आदि तथा व्यक्तिगत मानवी जीवन के घटना चक्र उदय होते रहते हैं । व्यक्ति एवं जगत में उनके उदय हो जाने पर उक्त विभिन्न इच्छाएँ निर्धारित ईश्वरीय नियमों के अनुसार समय-समय पर प्रकट होती हैं । इन निर्धारित नियमों की झलक इस रूप में देखी जा सकती है किस तरह व्यवस्थित रूप में सौरमण्डल के समस्त ग्रह अपने सूर्य के तथा विश्व ब्रह्माण्ड के सूर्य, महासूर्य की परिक्रमा करते हैं । यह क्रम हिन्दुओं के कर्म सिद्धान्तों पर भी लागू होता है ।

मनुष्य के शरीर के समान ही जगत का भी विराट् शरीर है । उसकी समस्त विविधताएँ एवं भिन्नताएँ मूलभूत एकत्व से ही प्रस्फुटित होती हैं तथा वे सभी अंक स्वरूप ही होती हैं । इन अंकों द्वारा सभी पदार्थों का स्वरूप एवं व्यवहार तथा कार्यविधि मापा जाता है । सृष्टि के भीतर पाया जाने वाला सामंजस्य एवं सुव्यवस्था बुनियादी रूप में संख्यापरक है इसलिए गूढ़ एवं रहस्यमय ज्योतिर्विज्ञान भी संख्या-अंक पर आधारित है ।

प्रख्यात ज्योतिर्विद् दार्शनिक बोथियस ने अपनी कृति 'फर्स्ट नेचर ऑफ दी थिंग्स' में लिखा है कि प्रथम अनादि सत्ता से जब सृष्टि के सभी पदार्थों की रचना हुई तब ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचना संख्या के अनुपात से की गई । वास्तविक रूप से यह स्रष्टा का आद्य स्वरूप ही है कि वह जगत के रूप में अपनी अभिव्यक्ति अंकों के अनुपात से करता है । सुप्रसिद्ध दार्शनिक ज्योतिषी जॉन डी ने इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "संख्या का तिगुना स्वरूप होता है—प्रथम स्वरूप सृष्टि कर्त्ता में, दूसरा सभी प्राणियों में और तीसरा देवदूतों, दिव्य आत्माओं एवं मनुष्य की आत्मा में होता है ।" मनुष्य की आत्मा से अंक-संख्या की इतनी अधिक घनिष्ठता एवं सजातीयता है, इसका इतना अधिक प्रभाव है कि कुछ प्राचीन दार्शनिक ने अपना मत व्यक्त करते हुए आत्मा को अंकस्वरूप कहा है । जान डी के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में ईश्वरीय ज्ञान के फलस्वरूप जगत के सभी पदार्थों की उत्पत्ति सुव्यवस्थित ढंग से हुई । ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, मनुष्य तथा परमाणु साथ-साथ और अविभाजित रूप से एक हैं और इनकी अनुभूति एक शुद्ध पूर्णसत्ता के रूप में ही की जा सकती है । अंकों के आदि रूप का महत्त्व है, जिसके अनुसार सृष्टि की रचना हुई । इसलिए अंक सृष्टि जगत की विभिन्नताओं एवं अनेकताओं को प्रकट करने का माध्यम है । जिसके निमित्त से मूल चेतन स्वरूप दिव्य प्रकाश, शक्ति ग्रहों तथा राशियों के रूप में स्वयं को रूपान्तरित करता है । यह अनन्त प्रकाश ही प्राण को प्रज्ज्वलित करता है तथा प्राण को शाश्वत और अनन्त सत्ता के साथ जोड़ता है । यह सारा काम एक से दस अंकों तक पूरा हो जाता है । दूसरे शब्दों में, सृष्टि का सम्पूर्ण रचनाक्रम और उसका प्रकटीकरण दस चरणों में पूरा होता है । इन अंकों से यह विदित होता है कि किस प्रकार अज्ञात अव्यक्त स्रोत से मूल उद्गम अज्ञेय स्रोत में समा जाना हुआ ।

यथार्थ में सृष्टि के रचना क्रम को समझाने तथा मानवी आत्मसत्ता के विराट् स्वरूप से परिचित कराने-उसकी गौरव गरिमा का बोध कराने एवं उसका सदुपयोग करने के उद्देश्य से ही ज्योतिर्विज्ञान की रचना की गई थी परन्तु वर्तमान समय में ज्योतिष का स्वरूप ही बदल गया है । आजकल के प्रचलित फलित ज्योतिष, अंक ज्योतिष के आधार पर लोगों को उनके भविष्य बताकर, ग्रह, नक्षत्रों के बुरे प्रभाव बताकर एवं डरा-धमका कर उनसे अपना उल्लू सीधा करना और उन्हें उल्टे उस्तरे से मूड़ना तथाकथित आधुनिक ज्योतिषियों का उद्देश्य रह गया है । इस माध्यम से अर्थोपार्जन करना उनका धंधा बन गया है । यह प्रचलन विशुद्ध रूप में ज्योतिर्विज्ञान का मखौल उड़ाना

है। लाभ के स्थान पर इससे लोगों को अनेकों मानसिक परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं, गाँठ का पैसा तो कटता ही है।

वास्तव में ग्रह, नक्षत्रों में या पदार्थों में कोई अच्छाई या बुराई नहीं होती। यह तो मात्र मनुष्य की अपनी आकर्षण शक्तियों के अनुसार भले-बुरे परिणाम देते हैं। दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति इनके कुप्रभावों से बच जाता है। परन्तु कमजोर व्यक्ति इनसे पीड़ित रहता है। सफलता-असफलता और सुख-दुःख वास्तव में मनुष्य के भले-बुरे चिन्तन के ही परिणाम हैं। इसके अनुसार ही ग्रह, नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है।

अनेकता छोड़ें, एकता अपनाएँ

क्षेत्रीय ज्योतिष ने अपने-अपने अलग-अलग मास, तिथि तथा संवत्सर चलाये। इनके पीछे उनका जातीय गौरव काम करता था। दूसरों के द्वारा निर्धारित संवत्सरों के साथ अपने को प्रतिबद्ध रखने में उन्हें हेठी लगी और अपनी मान्यता को सर्वव्यापी बनाने में गौरव का अनुभव हुआ।

सबसे पुराना कलियुग के आरम्भ वाला संवत्सर है। वह १७ फरवरी ३१०२ ई. पूर्व से आरम्भ होता है। आर्यभट्ट ने इसका उल्लेख विशेष रूप से किया है। चालुक्य के शिलालेख में भी इसका वर्णन है।

ईसा से पूर्व बेबीलोनिया के बादशाह ने अपने शासन काल में सम्वत् चलाया था। उसका समय ईसा से ७४७ वर्ष पूर्व था। इन्हीं दिनों एक सम्वत् २६ फरवरी से चला जिसे देव सम्वत् कहा गया। रोम और यूनान की दौड़ भी इस सन्दर्भ में पीछे न रही वे ईसा से ७७६ वर्ष पूर्व अपने सम्वत् चला चुके थे। कश्मीर में एक सप्तर्षि सम्वत् अलग ही चलता है।

शालिवाहन के शाके और विक्रमादित्य के विक्रमी सम्वत् सालों का भारतीय पंचांगों में विशेष रूप से उल्लेख रहता है। ईसाइयों का ईसवी और मुसलमानों का हिजरी सम्वत् इन दिनों अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में विशेष रूप में प्रचलित है।

वाराहमिहिर के ग्रन्थों में युधिष्ठिर सम्वत् का उल्लेख है वह ईसा से २४७६ वर्ष पूर्व चला था। जैन सम्वत् भगवान महावीर के स्वर्गवासी होने पर ईसा से ८७० वर्ष पूर्व चला। इसी प्रकार बौद्ध सम्वत् भी ईसा से ५४४ वर्ष पूर्व चला।

इन दिनों महाराष्ट्र में शिवाजी सम्वत् चलता है। इसे ६ जून १६७४ को राज्याभिषेक के अवसर पर प्रचलित किया गया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द की जन्मतिथि १६ फ़रवरी १८२५ से भी एक सम्वत् क्रम आरम्भ किया गया है। यह सभी अपने-अपने सीमित क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

इसके अतिरिक्त भारत के अन्यान्य क्षेत्रों में भी कई प्रकार के सम्वत् प्रचलित हैं। बंगाल, उड़ीसा में सम्वत् ५८२ ईसवी से आरम्भ हुआ माना जाता है। कटक सम्वत् का जन्म ५८२ ईसवी से ही आरम्भ हुआ। यद्यपि बंगाल और उड़ीसा दोनों पड़ौसी हैं और उनके सम्वत् भी एक ही वर्ष से आरम्भ होते हैं, पर क्षेत्रीय महात्वाकांक्षा ने उन पर अपनी-अपनी मुहर लगाना उचित समझा। बंगला सम्वत् एक और भी है जो १५५६ से प्रारम्भ हुआ है। गुजराती सम्वत् चालुक्य राजा जयसिंह द्वारा सन् १११६ में आरम्भ कराया गया।

इसी प्रकार भारत के अन्यान्य प्रान्तों में भी किसी राज्याभिषेक या जन्म-मृत्यु के दिन को आधार मानकर सम्वत् चले हैं उन सबकी संख्या बहुत बड़ी है। यदि इन सभी के लिए क्षेत्रीय काल गणना बनाई रखी जाय तो वर्षों का हिसाब जोड़ने में सर्वसाधारण को व्यावहारिक रूप से कठिनाई ही होगी!

अन्तर्राष्ट्रीय संवत्सरों की भिन्नता भी इससे पीछे नहीं है। चूँकि सम्वत् को अपने देश या क्षेत्र के बड़प्पन की निशानी समझा जाता रहा, इसलिए पंडितों और शासकों द्वारा उन्हें मान्यता दिलाने और लोकप्रिय बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किए जाते रहे, पर बात बनी नहीं। सीमित क्षेत्रीयता सर्वमान्य होती भी तो कैसे?

इन दिनों ईसवी सम्वत् ने यूरोप, अमेरिका आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, अफ्रीका एवं भारत आदि में मान्यता प्राप्त कर ली है। इन देशों में ईसवी का ही उल्लेख होता है और अपने सम्प्रदायों के प्रचलित महीनों का व्यवहार छोड़ कर लोग जनवरी-फरवरी आदि महीनों का ही उल्लेख करने लगे हैं।

चीन, जापान, रूस आदि के अपने-अपने सम्वत् तो हैं पर वे भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में अंग्रेजी काल गणना को ही मान्यता देते हैं।

विश्व एकता के सिद्धान्तों को अपनाने से ही बिखरे युग की समस्याएँ हल होंगी। अपनी-अपनी खींचतान असुविधा ही बढ़ा सकती है। धर्म सम्प्रदायों का कबीले परक विभाजन भी ऐसा ही है, जो किसी प्रकार चलता तो है पर उससे विभाजन और परायापन ही पनपता है। इस सन्दर्भ में बरती जाने वाली आपा-धापी को मिटाकर एकीकरण की ओर चला जाय तो ही अच्छा है।

भाषाओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। क्षेत्र के हिसाब से भाषाएँ फैली हुई हैं। लिपियाँ तो सीमित हैं, पर एक-एक लिपि के साथ उच्चारण व शब्दकोष की भिन्नता वाली बोलियों का इतना फैलाव है कि कोई एक व्यक्ति इन विश्व भाषाओं को पढ़ने-समझने, उनका व्याकरण शब्द कोष बनाने में लगे तो उसे कई जन्मों तक लगातार श्रम करना पड़ेगा। इतनी शक्ति बिखरते रहने से मनुष्य-मनुष्य के बीच स्थापित हो सकने वाली एकता को व्यवधान ही पहुँचता है।

सम्वत्सरों की एकता के लिए चला प्रयास सफलता की एक मंजिल पार कर चुका है। अच्छा हो, अब सम्प्रदायों और भाषाओं का भी केन्द्रीकरण किया जाय। इससे क्षेत्रीय अहंकार को भले ही ठेस लगे किन्तु सर्वजनीन हित साधन एवं एकता, निकटता, घनिष्ठता उत्पन्न करने के लिए यह कदम उठाना ही श्रेयस्कर है।

यह माना जाता है कि सांस्कृतिक भिन्नता के रहते हुए भी अविच्छिन्न एकता भारत की एक विलक्षणता है जो अन्य कहीं देखने को नहीं मिलती। पर आने वाले समय में जब आधुनिक विकास क्रम और तेजी से बढ़ेगा, भिन्नताओं का वर्तमान स्वरूप हमारी संस्कृति को और विच्छृंखलित न कर दे। समय रहते, अलगाव छोड़कर मान्यताओं की दीवारों को ढहाकर एक्य की दिशा में प्रयास किए जायें तो नवयुग को ढालने की दिशा में कुछ ठोस कार्य किए गए यह कहा जा सकता है।

अंक और उनका मनुष्य जीवन से सम्बन्ध

अंक सामान्यतया गणित सम्बन्धी कार्यों में प्रयुक्त होते हैं। उनका प्रयोजन उतने ही क्षेत्र में सीमित माना जाता है, किन्तु कभी-कभी ऐसे विलक्षण संयोग सामने आते हैं; जिनसे प्रतीत होता है कि उनका क्रम मनुष्य जीवन को भी प्रभावित करता है। कोई अंक किसी के लिए शुभ और किसी के लिए अशुभ साबित होता है यद्यपि इसका कुछ कारण समझ में नहीं आता। इसी प्रकार घटनाक्रमों की एक जैसी पुनरावृत्ति में कई बार अंकों की अद्भुत पुनरावृत्ति पायी जाती है। पंचांगकर्त्ता बताते हैं कि अमुक क्रम से ग्रह, नक्षत्र अपने चक्र में घूमकर यथा स्थान आते रहते हैं और जो पंचांग एक वर्ष का था वह इतने समय बाद फिर ज्यों का त्यों आ उपस्थित होता है।

फिर भी यह तो एक आश्चर्यजनक बात ही है कि कई अंक किसी व्यक्ति विशेष को अच्छे या बुरे आधार लेकर सामने आयें। अंकों के हिसाब से घटनाक्रमों की पुनरावृत्ति भी कई बार ऐसी ही विलक्षण होती है जिन्हें मात्र संयोग न कहकर कुछ रहस्यमय कारण होने की बात सोचनी पड़ती है।

कुछ विशेष तिथियाँ न जाने कैसा अज्ञात प्रभाव लेकर आती हैं; जिनका व्यक्ति विशेष पर कुछ विलक्षण प्रभाव पड़ता है। वे तिथियाँ जब भी आती हैं तब कुछ विचित्र संयोग बिठा देती हैं। नेपोलियन और ड्यूक ऑफ विलिंगडन के जीवन क्रम में तारीखों की दृष्टि से अद्भुत समता है, दोनों १५ अगस्त, १७६० को जन्मे। दोनों के पिताओं की मृत्यु उनके सोलहवें वर्ष में हुई। ड्यूक को जिस दिन जनरल का पद मिला उसी दिन नेपोलियन की नियुक्ति लेफ्टिनेन्ट पद पर हुई। आश्चर्य है कि वे दोनों मरे भी एक ही दिन।

हिटलर और नेपोलियन के जीवन में भी तिथियों सम्बन्धी ऐसी ही समता है। वर्षों की दृष्टि से १२६ वर्ष का अन्तर जरूर है, पर उनके क्रिया-कलापों में कितनी ही घटनाएँ पुनरावृत्ति जैसी हैं। नेपोलियन २० अप्रैल १७६० में जन्मा और हिटलर २६ अप्रैल १८७६ को। फ्रांस में राज्य-क्रान्ति १७८६ में हुई और जर्मनी में १६१८ को, नेपोलियन ने १८०४ में सत्ता हथियायी और हिटलर ने १६३३ में। नेपोलियन ने रूस पर हमला १८१२ में किया था और हिटलर ने १६४१ में। वियना सन्धि १८१५ में हुई और जर्मन सन्धि १६४४ में। यह ऐसे संयोग हैं जिनके आधार पर हिटलर को नेपोलियन का दूसरा संस्करण कहा जा सकता है।

अमेरिका के दो राष्ट्रपतियों में भी ऐसी ही विलक्षण समता है। अब्राहम लिंकन १८६० में राष्ट्रपति चुने गए और कैनेडी १६६० में। दोनों की हत्याएँ शुक्रवार के दिन हुईं और उन दुर्घटनाओं के समय दोनों की ही पत्नियाँ साथ थीं। लिंकन का हत्यारा जॉन विल्किस बूथ १८३६ में जन्मा था और कैनेडी का हत्यारा हार्वे आस्वाल्ड १६३६ में पैदा हुआ था। इन दोनों हत्यारों की अदालत द्वारा कोई सजा सुनने से पूर्व ही हत्या हो गई। ये दोनों ही दक्षिण अमेरिका में जन्मे थे। लिंकन के निजी सचिव ने उन्हें उस दिन नाट्य गृह न जाने की सलाह दी थी, जिसे उन्होंने नहीं माना। ठीक ऐसा ही कैनेडी के साथ हुआ, उनके निजी सचिव उलास ने उन्हें उस यात्रा पर न जाने के लिए कहा था। जिन्हें उन्होंने भी नहीं माना और उसी तरह गोली के शिकार हुए जिस तरह कि लिंकन मरे थे।

तिथियों का कुछ विचित्र संयोग देखिये—चन्द्रवरदाई और पृथ्वीराज चौहान घनिष्ठ मित्र थे वे दोनों एक ही दिन जन्मे और एक ही दिन मरे भी।

महाकवि शेक्सपियर के लिए २३ अप्रैल जन्म देने भी आयी और वही २३ अप्रैल उन्हें उठा भी ले गई।

विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता के जीवन में अक्टूबर मास महत्त्वपूर्ण घटनाएँ प्रस्तुत करता रहा। वे २४ अक्टूबर १८६७ में जन्मी, २२ अक्टूबर १८६५ को उन्होंने विवेकानन्द को अपना समर्पण दिया। २० अक्टूबर को उन्होंने महर्षि अरविंद से महत्त्वपूर्ण भेंट की और १३ अक्टूबर १६११ में वह संसार छोड़कर चली गईं।

वीर सावरकर के जीवन में फरवरी मास अशुभ रहा। हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने उन्हें २५ फरवरी १६११ को सजा दी और ठीक ५५ वर्ष बाद २६ फरवरी १६६६ को उनकी मृत्यु हो गई।

लोकमान्य तिलक के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ मंगलवार को घटित होती रही हैं। उनका केशरी पत्र मंगलवार को प्रकाशित हुआ। स्वतन्त्रता संग्राम में वे मंगल को पकड़े गए और जमानत पर भी मंगल के दिन ही छूटे। मंगलवार से मुकदमा चला और जेल से छूटने का दिन भी वही वार था।

शुक्रवार को लोग शोक दिवस मानते हैं। ईसा, सुकरात, गाँधी, लिंकन, कैनेडी आदि कितने ही महापुरुषों को शुक्रवार ने उदरस्थ किया है।

किन्हीं के जीवन में कुछ अंकों की विशेष महत्ता रही है। प्रिंस विस्मार्क को ३ का अंक कुछ विलक्षण संयोग लाता रहा। उन्होंने अपने तीन नाम रखे लाएन वर्ग-शोवासेनी और विस्मार्क। उन्हें तीन उपाधियाँ मिलीं—प्रिंस, ड्यूक तथा काउण्ट। वे तीन कॉलेजों में पढ़े। उनके तीन बेटे हुए। वे तीन देशों में राजदूत रहे। वे तीन युद्धों में लड़ने गए। इन्होंने तीन घोड़े गँवाए। तीन बार इन पर घातक आक्रमण हुए। तीन बार उन्होंने त्याग पत्र दिए।

लालबहादुर शास्त्री के लिए १० के अंक से कुछ अनोखे सम्बन्ध थे। वे अंग्रेजी वर्ष के दशवें महीने अक्टूबर में जन्मे। उन्होंने मन्त्रित्व आदि १० महत्त्वपूर्ण पद सँभाले। उनके दिल्ली निवास स्थान का नम्बर १० था। उनकी मृत्यु १० तारीख को हुई। रोमन लिपि में लालबहादुर शब्द लिखने में १० अक्षर ही प्रयुक्त होते हैं।

साइप्रस के शासनाध्यक्ष मकरिआस के लिए १३ का अंक कुछ ऐसे ही संयोग लाता रहा। वे १३ अगस्त १६१३ को जन्मे। १३ वर्ष की आयु में चर्च में भर्ती हुए। १३ नवम्बर १६४६ में उन्होंने प्रोस्ट दीक्षा ली। १३ जून १६४८ में वे विशप बने तथा राजगद्दी पर बैठे। १३ मार्च १६५१ में यूनान के राजा ने उनका अभिनन्दन किया। १३ दिसम्बर १६५६ को वे राष्ट्रपति चुने गए।

प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी के लिए १३ का अंक महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्हें १३ महीने की जेल भुगतनी पड़ी। उनका असली नाम प्रियदर्शिनी है जिसे रोमन लिपि में लिखने पर १३ अक्षर

प्रयुक्त होते हैं । उन्हें ४६ वर्ष की आयु में प्रधान मन्त्री पद मिला । इन ४ और ६ का जोड़ १३ होता है । उनके चुनाव में कुल संसदीय मतदान ५२६ का था । जिसमें से उन्हें ३५५ मत मिले । जो ६७ प्रतिशत हुआ इन दोनों संख्याओं के प्रयुक्त होने वाले अंकों का जोड़ १३-१३ ही होता है ।

संसार कितना विचित्र और विलक्षण है इसके रहस्यमय परत क्रमशः ही खुले और खुलते जा रहे हैं । मानवी बुद्धि प्रकृति के रहस्यों को धीरे-धीरे ही जानने समझने लायक बनी है और बनती चली जा रही है । अंकों का क्या कुछ सम्बन्ध मनुष्य जीवन के साथ जुड़े हुए घटनाक्रमों से भी है यह तथ्य की यथार्थता कभी न कभी स्पष्ट होकर ही रहेगी ।

भविष्य विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ तथ्य

मनुष्य के अतिरिक्त संसार में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसे कल की दुःखद अनुभूतियाँ स्मृति में उभर कर पीड़ित करती हों और वह आने वाले कल की चिन्ता में घुलता हो । अतीत की स्मृतियाँ और अनागत की कल्पना केवल मनुष्य के मस्तिष्क में ही उपजती है । अन्य किसी प्राणी के मन में न बीते का स्मरण होता है और न आने वालों का अनुमान । इसका कारण मनुष्य की विचारशीलता ही कही जा सकती है । विचारशीलता से उद्भुत दूरदर्शिता ही भविष्य की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में उत्सुक बनाती है ।

इस उत्सुकता का समाधान करने के लिए मनुष्य ने अनेक तरह से चिन्तन किया और यह जानने की जी तोड़ कोशिश की कि कल क्या होगा ? इस तरह के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही फलित ज्योतिष का जन्म हुआ । ज्योतिष यों एक विज्ञान है, जिसमें ग्रह, नक्षत्रों और अन्तरिक्ष की गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है । इसे विज्ञान भी कहा जाता है, क्योंकि इसके अपने सुनिश्चित सिद्धान्त हैं, जो लम्बे समय तक किए गए पर्यवेक्षण, निरीक्षण और प्रयोगों के आधार पर स्थिर किए गए हैं । फलित ज्योतिष में भी ग्रह, नक्षत्रों की गतियों को आधार मानकर भविष्य की सम्भावनाओं का अध्ययन किया जाता है ।

फलित ज्योतिष के विवेचन में ज्योतिर्विज्ञान के सिद्धान्तों को आधार मानकर यह विश्लेषण किया जाता है कि किस ग्रह का किस पर, कब, क्या प्रभाव पड़ेगा ? ज्योतिष को वेदान्त दर्शन से जोड़ने वाले विज्ञजनों का कथन है कि सारा ब्रह्माण्ड एक व्यापक विराट शरीर है और इसके प्रत्येक घटक एक-दूसरे से प्रभावित हैं ? प्रत्येक घटक एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्पर्क सूत्रों से सम्बन्धित है तथा उनमें एक विशिष्ट अन्तर्सम्बन्ध है । इसलिए एक स्थान पर होने वाली घटनाएँ दूसरे स्थान को प्रभावित करती हैं ।

स्थूल दृष्टि से ग्रह, नक्षत्र पृथ्वी से लाखों-करोड़ों मील दूर हैं, पर तात्विक दृष्टि से उसके एक प्राण होने में कोई मतभेद नहीं किया जाता । जैसे—आँख और पैर की अंगुलियों में पाँच, साड़े पाँच फीट का अन्तर है । इतनी दूरी है—पर रक्त प्रवाह, चेतना, परस्पर सम्बन्ध और एक शरीर से जुड़े होने के कारण उनकी एक रूपता में कोई अन्तर नहीं आता है । अनन्तः वे एक हैं, तथा यह भी कि पैर की अंगुली में चोट लगे तो आँख से आँसू आ जाते हैं, पीड़ा को सहने की सामर्थ्य जुटाने के लिए दाँत अपने आप भिंच जाते हैं और हाथ वहाँ सहलाने लगते हैं । आशय यह कि शरीर के एक प्रदेश, पैर के साथ बीती घटना की प्रतिक्रिया आँख पर भी होती है । हालाँकि दोनों दूर-दूर हैं । फलित ज्योतिष के आधार पर ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति देखकर व्यक्ति विशेष के भविष्य की घोषणा करने का यही एक मोटा आधार है ।

इसके और भी सूक्ष्म सिद्धान्त है, लेकिन फलित ज्योतिष का अनुसन्धान इसलिए नहीं किया गया कि मनुष्य उसके द्वारा अपनी भविष्य की स्थिति को जानकर चिन्तित होता रहे । जिस होनहार को पुरुषार्थ और संघर्षों द्वारा टाला जा सकता है—उसकी भीषणता वाला पक्ष सोच-सोच कर वह स्थिति पहले ही पैदा कर ली जाय । इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध पाश्चात्त्य ज्योतिषी नोएल जेक्विन का मत उल्लेखनीय है । उनसे किसी ने एक बार पूछा—"यूरोपीय देशों का कभी विश्व भर पर अधिकार रहा है और अपने शौर्य, साहस, बल तथा बुद्धिमत्ता के कारण उन्होंने विश्व के लगभग सभी स्थानों से सम्पदा का दोहन किया है । क्या आप ज्योतिष का प्रचार कर अब यूरोपीय जनता के पौरुष को मार्फिया देकर सुला देना चाहते हैं ।"

नोएल जेक्विन ने उत्तर दिया था कि—"ज्योतिष की गवेषणा का अर्थ—पुरुषार्थ छोड़कर अपनी प्रगति को अवरुद्ध कर लेना नहीं हैं । बल्कि मैं तो यह मानता हूँ कि यदि भविष्य में आने वाली कठिनाइयों और विपत्तियों को जान लिया जाय तो उनसे अभी ही निबटने का प्रबन्ध किया जा सकता है । यदि हमें सुदूर मंजिल पर पहुँचना है और हम मंजिल की ओर चल पड़े हैं तथा हमें मार्ग में आने वाले नदी नालों का ज्ञान है, अन्य कठिनाइयों तथा बाधाओं की जानकारी है तो उनसे पार होने का भी हम प्रबन्ध कर सकते हैं ।"

जेक्विन का यह उत्तर उन भाग्यवादियों के लिए बड़ा प्रेरक हो सकता है, जो सितारे खराब होने की कल्पना कर हाथ पर हाथ धरे बैठ जाते हैं या बुरे ग्रह तथा शनि की अर्न्तदशा देखकर अपने प्रयत्नों को भौंतरे हल समझ लेते हैं, जिनसे साधना की जमीन पर सफलता के बीज नहीं बोये जा सकते । खेती करते समय किसान जमीन की कठोरता अथवा कोमलता नहीं देखता, वह हल जोतता है और जमीन फाड़ता है । यदि एक बार में जमीन की मिट्टी भुरभुरी नहीं होती तो दुबारा वैसा ही प्रयत्न करता है, लेकिन सफलता के लिए अभीष्ट प्रयत्न करने में मनुष्य यह सोचकर क्यों हार जाता है कि उसके ग्रह खराब हैं ।

वस्तुतः जब कभी फलित ज्योतिष की खोज की गई थी, वह समय निश्चित रूप से इसके बाद का था जबकि मनुष्य ने अपनी आत्मा की अनन्त सामर्थ्य का पता चला लिया था । पहली बात तो यह है कि आत्मा की इस अनन्त सामर्थ्य के सामने ग्रह, नक्षत्रों का कोई बस ही नहीं चलता । वे इतने बलवान नहीं है कि ईश्वर पुत्र मनुष्य के सामने अड़े ही रहें, उसके प्रयत्न व पुरुषार्थ के सामने घुटने न टेक दें । जिस समय फलित ज्योतिष पर विज्ञान की एक धारा समझकर अनुसन्धान किया गया होगा, उस समय सत्य शोधकों के सामने यही लक्ष्य रहा था कि भावी जीवन में सम्भावित आपदाओं का पता चल जाय । ताकि उनको दूर करने की तैयारी पहले से ही की जा सके । उदाहरण के लिए हमें मालूम हो कि अमुक मार्ग में जंगली जानवरों का डर है और जाना अनिवार्य है तो इस ज्ञान के आधार पर हम उनसे सुरक्षा

का प्रबन्ध कर चलते हैं। जमीन के मार्ग छोड़े जा सकते हैं, पर जीवन यात्रा का पथ ऐसा है कि जिस पर चलना ही पड़ता है। परिस्थितियों में कौतूहलवश ही 'आगे क्या होगा' यह जानने की कोई संगति नहीं बैठती। संगति बैठती है तो इतनी भर कि सम्भावित विपदाओं से निबटने का प्रबन्ध कर, कदम उठाए जायें।

वैज्ञानिक आधार पर हस्त रेखाओं की हुई गवेषणाओं इस सिद्धान्त की ओर अधिक पुष्टि होती हैं। मनोवैज्ञानिक समझते हैं कि मनुष्य की मानसिक संरचना जिस प्रकार की होती है, उसी के अनुसार मनुष्य के हाथ की रेखाएँ भी बनती बिगड़ती हैं, लेकिन जिन लोगों ने हस्त रेखाओं के आधार पर भविष्य-कथन के प्रयत्न किए हैं, वे भी आश्चर्यजनक रूप से इस सिद्धान्त को समर्थन देते हैं। सेण्ट जारमन, विलियम, बेनहम आदि पश्चिमी भविष्य वक्ताओं ने तो इस विषय पर काफी अनुसन्धान किया है और पाया है कि भविष्य को बदला जा सकता है। कीरो के सम्बन्ध में तो भारतीय पाठक अनभिज्ञ भी नहीं है। उनकी भविष्यवाणियाँ सत्यता पर आधारित-सी लगती थीं और कीरो किसी भी व्यक्ति को लेकर कोई भविष्यवाणी करते थे, तो उस व्यक्ति की हस्तरेखाओं को देखकर।

जिस व्यक्ति ने हस्तरेखाओं के आधार पर अपने सम्पर्क में आये हजारों व्यक्तियों का भविष्य कथन दिया। उसका, कीरो का स्वयं का मत है—हस्त रेखाओं से केवल भविष्य की सम्भावनाओं का पता चलता है। यह मस्तिष्क और शरीर की विभिन्न प्रवृत्तियों के संचालन की दिशा बताती है। इसलिए निश्चिततापूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मनुष्य के सम्बन्ध में पूर्ण निर्धारित या पूर्व निश्चित कुछ नहीं है। उसकी सम्भावनाएँ बहुत कुछ उसके संकल्पों पर निर्भर करती हैं। वस्तुतः मनुष्य के संकल्प ही इतनी सामर्थ्य से सम्पन्न होते हैं कि अपार सम्भावनाएँ क्षण मात्र में असम्भव हो जाती हैं और घोर निराशा में भी जुगनू की चमक हथेली पर सूरज उगा देने की समर्थता रखता है। चमत्कार संकल्प बल का ही है।

कुल मिलाकर मनुष्य के लिए ही यह सम्भव है कि वह अपने पुरुषार्थ से अपने भविष्य का स्वयं निर्धारण और निर्माण कर सकता है। भाग्य के भरोसे बैठे रहना नीतिविदों ने कायरता कहा है और उद्योगी पुरुषों के लिए ही सफलता प्राप्त कर पाना सम्भव बताया है। एक हस्तरेखा विशेषज्ञ ने स्वयं पुरुषार्थ की महत्ता को स्वीकार करने और उसे भाग्य से बलवान बताते हुए लिखा है कि "जीवन आपके सामने है। प्रत्येक क्षण खुली किताब के समान आपके सामने खुला पड़ा है। आप प्रत्येक क्षण का सही-सही उपयोग करें और काल देवता की प्रत्येक धड़कन को अपने अनुरूप बनाते चलें। आप देखेंगे कि आपकी रेखाएँ बदल रही हैं और सफलता के हाथों जयमाला पहनने के लिए उत्साहपूर्वक व्यग्रता से बढ़ रही हैं।

हस्तरेखा विज्ञान के क्षेत्र मौलिक गवेषणाओं के लिए सुप्रसिद्ध विद्वान डब्ल्यू. जी. बेनहम का कथन है कि—"हथेली की रेखाएँ परिवर्तनशील हैं। क्योंकि मनुष्य एक चेतन प्राणी है और वह अपनी भावनाओं तथा संकल्पों द्वारा अपना भाग्य स्वयं चुनता है। इसीलिए कुछ विद्वान मानते हैं कि सात वर्ष में हथेली की रेखाओं में पूर्णतः परिवर्तन आ जाता है, पर मेरा अनुभव यह है कि हाथ की रेखाएँ पल-प्रतिपल बदलती रहती हैं और कुछ महीनों में ही नहीं कुछ दिनों में भी रेखाओं में परिवर्तन किया जा सकता है।"

ग्रह, नक्षत्रों के आधार पर हो अथवा हस्तरेखाओं के माध्यम से भविष्य कथन की निश्चित सम्भावना को संदिग्ध बताते हुए बेनहम ने आगे लिखा है कि, "मनुष्य की चेतना प्रवाहमान है। इसलिए उसके सम्बन्ध में कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। समुद्र के सम्बन्ध में तो कहा जा सकता है कि उसमें कब ज्वार आयेगा लेकिन नदी की बाढ़ के सम्बन्ध में पूर्व घोषणा करना कठिन ही नहीं असम्भव-सा है। किसी नगर में प्रतिदिन मरने वाले व्यक्तियों का रिकार्ड देखकर यह तो कहा जा सकता है कि एक दिन में कितने व्यक्ति मरते हैं और कल कितने मरेंगे। इसी प्रकार घण्टों-मिनटों का औसत भी निकाला जा सकता है, परन्तु व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में इस प्रकार की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती कि मरने वाले व्यक्तियों में एक यह भी होगा।

निर्धारित भाग्य कुछ होता भी हो तो भी उसकी सम्भावना मनुष्य की सम्वेदना एवं उसकी अन्तःशक्ति पर अधिक अवलम्बित होती है। इस सम्बन्ध में बंगला के एक साहित्यकार में बहुत ही रोचक आख्यान लिखा है। उस आख्यान के अनुसार विधाता ने सृष्टि का निर्माण करते समय यह परम्परा अपना ली थी कि जिस प्राणी को पृथ्वी पर भेजा जाय उसका भाग्य, भविष्य उसे पहले ही बता दिया जाय। यह परम्परा लम्बे समय तक चली। एक समय ऐसे व्यक्ति को पृथ्वी पर भेजना निश्चित किया गया जो विधाता का घोर विरोधी था। वह प्रायः लड़ता-झगड़ता रहता था। विधाता ने दण्ड स्वरूप उसके भविष्य में दुःख ही दुःख लिख दिए। वह उस व्यक्ति के दुःखद जीवन का भविष्य लेख पढ़ ही रहे थे कि सुनते-सुनते ही वह व्यक्ति पृथ्वी पर आने से पहले स्वर्ग में ही मर गया। कहते हैं तब से विधाता ने भविष्य पढ़ना बन्द कर दिया और उसके बाद मनुष्य अब तक भवितव्य को जानने के लिए बार-बार प्रयत्न करता रहता है तथा असफल होता है।

खैर! यह तो कहानी है, परन्तु इसमें यह सत्य तो निहित ही है कि भविष्य को जानना असम्भव नहीं, तो दुष्कर अवश्य ही है। भविष्य कथन की विशेषता किन्हीं विशेष व्यक्तियों में हो भी सकती है, लेकिन उसका जानना आवश्यक नहीं है। विशेषतः इस क्षेत्र में व्यावसायिक भावना के प्रवेश से 'मनुष्य को अविवेकी और मूढ़ बनाने का चक्र ही चलता दिखाई देता है।

किसी को भाग्यवादी ही बने रहना है तो यह अधिक व्यावहारिक है कि मनुष्य अपने भविष्य के प्रति आशाजनक दृष्टिकोण रखे। कठिनाइयाँ आईं तो उनसे कुछ सीखने को मिलेगा, सफलताएँ मिलीं तो प्रयत्न आगे बढ़ेंगे—यह रीति-नीति अपनाने पर न बुरे ग्रहों के प्रभाव का भय सतायेगा और न ही अनिष्ट की आशंका सालेगी। भविष्य के प्रति आशापूर्ण आस्था रखने का एक लाभ यह भी है कि उससे मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को प्रेरणा मिलेगी, वे जागेंगी और अमंगलकारी ग्रह यदि हुए भी सही—यद्यपि वे हैं नहीं—तो व्यक्ति का कुछ बिगाड़ न सकेंगे।

आकृतियों और साधनों का रहस्य

जीवन की तरह आकाश भी असीम और अनन्त सत्ताओं और सम्भावनाओं से भरा है । इसका सामान्य स्वरूप ही मोटे साधनों से देखा समझा जा सकता है । आँखों की शक्ति बहुत स्वल्प है, वह पीछे की चीजों को बिल्कुल नहीं देख सकतीं— दायाँ-बायाँ भी थोड़ा-सा ही दीखता है । चार दिशाओं में से सही रीति से वह केवल एक ही सामने वाली दिशा में देख पाती हैं । सो भी एक सीमित फासले तक और सीमित आकार तक । चर्म-चक्षुओं से सामने प्रस्तुत संसार को भी पूरी तरह नहीं देखा जा सकता, तो अन्तः क्षेत्र में काम करने वाली सत्ताओं के देखने-समझने में उनसे क्या सहायता मिल सकती है ? आत्मा-परमात्मा, अन्तःकरण और अन्तर्निहित दिव्य सत्ताओं को देख समझ सकना चर्म-चक्षुओं का नहीं, ज्ञान-चक्षुओं का काम है ।

जीवन की तरह आकाश की भी असीमता है— उसका अधिकांश भाग आँखों की पकड़ से बाहर है । ज्ञान-चक्षुओं की तरह आकाश का पर्यवेक्षण करने के लिए भी विशिष्ट उपकरण चाहिए । यह उपकरण दूरबीन है । इस साधन को जितना-जितना विकसित किया जा सका है, उसी अनुपात से आकाश सम्बन्धी जानकारियाँ बढ़ती चली आयी हैं । खगोल विद्या की उपलब्धियों का श्रेय इन दूरबीनों को दिया जायेगा, जैसा कि आत्म विद्या की उपलब्धियों का श्रेय ज्ञान-चक्षुओं की पैनी दृष्टि को मिलता रहा है ।

मेला-ठेला या प्राकृतिक दृश्यों को देखने के लिए पर्यटकों के गले में लटकती हुई दो नाली वाली दूरबीनों का जिक्र नहीं हो रहा है । इन्हें तो मनोविनोद के लिए अथवा दूर दृश्यों को अधिक समीप से दिखाने वाले 'वाइनोक्यूलर टैलिस्कोप' कहते हैं । फौजी उद्देश्यों के लिए उनसे कुछ सुधरे हुए टैलिस्कोप काम में आते हैं ।

आकाश की छान-बीन करने के उद्देश्य से गैलीलियो ने सबसे पहली दूरबीन सं. १६०६ में बनायी थी । वह वस्तुओं को सिर्फ तीस गुना बड़ा दिखाती थी । उन दिनों इतना भी बहुत था । सूर्य के धब्बे, चन्द्रमा के पहाड़, बृहस्पति चार चाँद उससे भी देख लिए गए थे ।

अमेरिकी खगोल वेत्ता एल्लरी हाले ने १६३६ में सौ इंच व्यास की दूरबीन बनायी, जिसे विल्सन पर्वत पर स्थापित किया गया । इससे ६० करोड़ प्रकाश वर्ष तक आकाशस्थ ज्योति पिण्ड देखे जा सकते थे । इसके बाद हाले ने २०० इंच व्यास की दूरबीन बनाने का काम हाथ में लिया जो उनकी मृत्यु के १० वर्ष बाद पूरा हो सका । इसे १६४८ में पालोमर पर्वत पर स्थापित किया गया । बहुत समय से वही संसार की सबसे बड़ी दूरबीन होने का गौरव प्राप्त करती रही ।

सोवियत रूस इस क्षेत्र में भी अमेरिका से बाजी मार ले गया उसने २३८ इंच व्यास वाली दूरबीन बनायी और उसे सेमिकोदनिकी पर्वत पर स्थापित किया । अमेरिकी दूरबीन ४५० करोड़ प्रकाश वर्ष दूर तक प्रकाश को दिखा सकती है तो रूसी दूरबीन ७ अरब प्रकाश वर्ष दूरी के दृश्य आँखों के सामने लाकर खड़े कर देती है ।

इस बड़ी दूरबीन से दस हजार किलोमीटर पर खड़ा हुआ मनुष्य ऐसा दिखाई पड़ेगा मानो बीस मीटर की दूरी पर खड़ा है । इतनी दूरी पर कोई माचिस की तीली जलाये तो इसकी सहायता से वह प्रकाश भी साफ दिखाई देगा । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हमारी आँखों की तुलना में इस अमेरिकी दूरबीन की ताकत दस लाख गुनी और रूसी दूरबीन की तीस लाख गुनी अधिक है ।

दूरबीनों का काँच बनाना बहुत ही मुश्किल काम है । उन्हें घिसना, पॉलिस करना इतना नाजुक है कि एक धूल का कण भी आड़े आ जाय तो सारी मेहनत बेकार हो जायेगी । इतने घिसाव में ७० ग्राम काँच की एक पर्त उतारनी पड़ेगी और उस परिवर्तन से उस मशीन को फिट करने में नये सिरे से हेर-फेर करने पड़ेंगे । तब उस खरोंच को निकालने के लिए पूरे काँच पर से एक माइक्रोन की पूरी पर्त उतारनी पड़ेगी । रूसी दूरबीन ८५० टन भारी है । इसका फोकस ठीक करने तथा दिशा घुमाने के लिए स्वसंचालित बिजली की मशीनें लगी हुई हैं ।

न तो सुविस्तृत आकाश की जानकारियाँ देने वाली दूरबीन बनाना सरल है और न अन्तर्दृष्टि को विकसित करना । यह दोनों ही, बड़े प्रयत्न और मनोयोग के सहारे विनिर्मित होती हैं । उनके लिए उपलब्ध साधनों को भी झोंकना पड़ता है, किन्तु इस उपलब्धि में जितनी सफलता मिलती है, उतनी ही सशक्तता हाथ लगती है । अन्तर्ग्रही उड़ानों की सम्भावना इन दूरबीनों के कारण ही सम्भव हुई है । भविष्य में मनुष्य विश्व ब्रह्माण्ड पर जितना आधिपत्य स्थापित कर सकेगा, उसमें भी योगदान इन दूरबीनों का ही रहेगा । अन्तःचेतना की ज्ञान दृष्टि ही मानव जीवन के असीम विकास का पथ-प्रशस्त करती है ।

दृष्टिगोचर होने वाले अनन्त आकाश को प्राचीन खगोल वेत्ताओं ने बारह भागों में बाँटा है, जिन्हें बारह राशियाँ कहते हैं । कौन-सा ग्रह, नक्षत्र किस समय कहाँ है ? इसका निर्धारण राशि क्षेत्र का विभाजन किए बिना हो ही नहीं सकता । जिस प्रकार अंक गणित में ६ तक के अंक और एक शून्य की मान्यता स्थिर कर लेने के उपरान्त ही गाड़ी आगे चलती है । उसी प्रकार खगोल विद्या में आकाश का विभाजन कर लेने पर ही किस ग्रह की स्थिति कब, कहाँ, कैसी थी या होगी ? इसका आधार खड़ा किया जा सकता है ।

बारह महीने, सूर्य की बारह राशियों के हिसाब से बने हैं । एक महीने सूर्य एक राशि पर रहता है । बारह महीनों में यह वर्ष प्रदक्षिणा पूरी हो जाती है । यों प्रदक्षिणा पृथ्वी की ही होती है और सूर्य का स्थान बदलना वस्तुतः पृथ्वी के स्थान बदलने की प्रतिक्रिया रूप से ही परिलक्षित होता है । तो भी इससे सूर्य की राशि कक्षा निर्धारित करने में कुछ अन्तर नहीं पड़ता ।

आकाश को देखकर राशियों का क्षेत्र विभाजित करने का क्रम उन चिह्नों के आधार पर निरुपित किया गया है, जो चिरस्थायी बने रहते हैं और जिनकी मूल स्थिति में अन्तर नहीं आता । यह चिह्न आकाश स्थित नीहारिकाओं के रूप में स्थिर किए गए हैं । नीहारिकाओं के अब तो नाम भी दे दिए गए हैं । प्राचीनकाल में इन्हें आकृतियों की समतुल्यता के आधार पर पहचाना जाता था । यह पहचान ऐसी है, जिसमें भूल होने की कम से कम सम्भावना है ।

खगोलवेत्ता वराहमिहिर ने अपने वृहज्जातक ग्रन्थ में बारहों राशियों की आकृतियों का निर्धारण किया है । यूनानी ज्योतिषी भी प्रायः उसी से मिलती-जुलती मान्यता रखते रहे हैं । अब नवीनतम ज्योतिष विज्ञान ने राशियों का क्षेत्र विभाजन, जिन नीहारिकाओं को मील के पत्थर मानकर किया है, उन्हें भी आकृति की दृष्टि से पुराने ज्योतिष शास्त्र की तुलना में ही लिया जा सकता है ।

वैदिक पंचांग में मेष राशि को सींग वाले मेढ़े की आकृति का माना है । नीहारिका 'एन. जी. सी.' ४४४६ का फोटो भी इसी आकृति का है । वृष राशि को सीगों वाला साँड़ । नीहारिका 'ओरायन' से बिल्कुल मिलता है । कर्क नीहारिका 'एम. १७' केकड़े की आकृति जैसी ही है । कन्या को नाव पर बैठी एक लड़की के रूप में अंकित किया जाता है यह 'एन. जी. सी. ४५६४' के चित्र से मिल जाती है । धनु राशि को आधा घोड़ा और आधा धनुर्धर मनुष्य अंकित किया गया है और एन. जी. सी. ६६१८ नीहारिका से बिल्कुल मिलता-जुलता है । मकर राशि को मगर की आकृति का माना गया है, यह एन. जी. सी. ७४७६ से बिल्कुल मिलती है । कुम्भ घड़े की आकृति है, यह एन. जी. सी. ७२६३ की छवि है । मीन की आकृति दो तैरती हुई मछलियों जैसी है जिनका मुख एक दूसरे की पूँछ की तरफ है । यह नीहारिका एन. जी. सी. २५३ से पूरी तरह मेल खाती है ।

इस प्रकार आठ राशियों की आकृति नीहारिकाओं के चित्रों से मिल जाती है । शेष चार की आकृति इसलिए नहीं मिलती कि उस क्षेत्र की नीहारिकाएँ बहुत विरल हैं और उनके फोटो उतने स्पष्ट नहीं आते । इन दिनों जितने अन्तर्ग्रही स्पष्ट चित्र खींचने वाले कैमरे उपलब्ध हैं उतना कार्य प्राचीनकाल में खुली आँखें नहीं कर पाती थीं ।

यूनानी पंचांगों में भी लगभग भारतीय पंचांगों की तरह ही राशियों की आकृतियाँ अंकित की गई हैं । राशि चित्रों को बहुत समय तक कपोल कल्पना समझा जाता रहा है, पर अब विकसित खगोल विज्ञान ने यह स्वीकार कर लिया है कि इस चित्रण के पीछे नीहारिकाओं को मील के पत्थर मानकर उनकी आकृतियों के साथ संगति मिलाते हुए राशियों का चित्रांकन किया गया है ।

नीहारिकाओं के अतिरिक्त राशि क्षेत्रों में विशेष रूप से चमकने वाले तारों को मिलाकर देखने से भी लगभग उसी प्रकार की आकृति बन जाती है, जैसी कि राशियों की भारतीय पंचांगकर्त्ताओं ने अंकित की है ।

पंचांगों में राशियों की आकृतियाँ छपी हैं । मेष—मेंढ़ा, वृष—बैल, मिथुन—पति-पत्नी, कर्क—केंकड़ा, सिंह—सिंह, कन्या—नाव में बैठी कन्या, तुला—तराजू, वृश्चिक—विच्छू, धनु—घोड़े और मनुष्य का धनुर्धारी शरीर, मकर—मगर, कुम्भ—घड़ा, मीन—मछली । इन आकृतियों को तुलनात्मक समझना चाहिए । आकाश को बारह भागों में विभाजित करके उसके एक-एक क्षेत्र में अवस्थित प्रमुख तारागणों के देखने पर किस आकृति का आभास मिलता है, इसी आधार पर उपरोक्त राशि चित्र बनाये गए हैं । यह मान लेना भूल होगी, कि आसमान में मेढ़ा, बैल, सिंह, मगर, मछली आदि प्राणी निवास और भ्रमण कर रहे हैं ।

ठीक इसी प्रकार देवी-देवताओं का चित्रांकन समझा जाना चाहिए । उस आकृति-प्रकृति के कोई जीवधारी देवता अमुक स्थान पर, अमुक प्रकार का जीवनयापन करते होंगे जो ऐसा समझते हैं, वे भूल कराते हैं । वस्तुतः विभिन्न शक्तियों और विभिन्न चेतनाओं की क्षमताओं और सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर उनकी अलंकारिक प्रतिमाएँ गढ़ ली गई हैं । इसे गढ़ने की प्रक्रिया को बालबोध कह सकते हैं । छोटे बालकों का आरम्भिक कक्षा में अ—अमरूद, आ—आम, इ—इमली, ई—ईख आदि, आकृतियाँ दिखाकर अक्षर बोध करते हैं, उसी प्रकार संघ शक्ति को दुर्गा, धन शक्ति को लक्ष्मी, ज्ञान शक्ति को सरस्वती आदि अलंकारिक प्रतिमाएँ गढ़कर यह बताया गया है कि यह सभी भौतिक और आत्मिक शक्तियाँ उपलब्ध करने योग्य हैं ।

राशियों की आकृतियाँ न तो अनावश्यक हैं और न भ्रान्त । वस्तुस्थिति समझाने का यह प्रतीक निर्धारण अलंकार है । इससे इन्हें समझना सरल पड़ता है । दिव्य शक्तियों को देव सत्ता के रूप में चित्रित किया जाना भी इसी स्तर का है । उनकी पूजा प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष रूप में उन चेष्टाओं का संकेत है जो उन विभूतियों को उपलब्ध कराने में सहायक होती हैं । आकाश खोजने के लिए दूरबीन आवश्यक है और जीवन सत्ता की असीम सम्भावनाओं को समझना तथा उस दिशा में प्रगति करने का आधार हमारी सूक्ष्म दृष्टि ही हो सकती है । शंकर का तृतीय नेत्र, मनुष्य का आज्ञाचक्र इसी ज्ञान-चक्षु उन्मूलन की आवश्यकता का संकेत करते हैं ।

सौर परिवार के सदस्यों का पारस्परिक आदान-प्रदान

पृथ्वी को न केवल सूर्य ही, प्रकाश और ताप के रूप में जीवन देता है, वरन् सौरमण्डल के अन्य ग्रह भी उसे प्रभावित करते हैं । इसी प्रकार पृथ्वी भी उन ग्रहों को बहुत कुछ देती है, यह आदान-प्रदान ही सौरमण्डल की वर्तमान स्थिति कायम रखे हुए हैं । न केवल सौरमण्डल में वरन् अन्यान्य ग्रह, नक्षत्रों में भी यही आदान-प्रदान की प्रक्रिया गतिशील हो रही है । इसी आधार पर तो यह दृश्यमान जगत अपना निर्वाह कर रहा है ।

अन्तर्ग्रही खोज का प्रयोजन उन रहस्यों का पता लगाता है, जिन्हें ग्रह, नक्षत्रों की पारस्परिक सहयोग शृंखला के रूप में समझा जा सकता है । वैज्ञानिकों ने जिन शक्ति धाराओं का स्वरूप अब तक समझा है और उन्हें मानवी सुख-सुविधा के लिए प्रयुक्त किया है । यह वस्तुतः अन्तर्ग्रही अनुदान ही है । ताप, प्रकाश, बिजली, चुम्बकत्व, ईथर, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन प्रभृति बहुमूल्य जीवन तत्वों का उद्गम धरती नहीं, वरन् सूर्य-सौर-परिवार आकाश गंगा और महतत्व का विशाल परिवार है । यह पृथ्वी का अस्तित्व इन सब से पृथक एकाकी-कल्पना में लाया जा सके तो उसे सर्वथा निर्जीव, नीरव और हलचलों से शून्य पिण्ड ही समझा जा सकेगा ।

अन्तर्ग्रही खोज से हमें यह पता चल सकता है कि अन्य ग्रह हमें क्या योगदान देते हैं और बदले में पृथ्वी उन्हें क्या देती है ? यह जानकारी निरर्थक नहीं है । अब मनुष्य के हाथ में वे सूत्र आते चले जा रहे हैं, जिनके आधार पर उस सहयोग को

आवश्यकतानुसार घटाने बढ़ाने का प्रबन्ध हो सकता है । तदनुसार ऐसी असुविधाजनक परिस्थितियों को घटाया जाना और सुविधाओं को बढ़ाया जाना सम्भव हो सकता है, जो अन्तर्ग्रही परिस्थितियों पर निर्भर है । मौसम की बात तो प्रत्यक्ष ही है, यदि अन्य ग्रहों के साथ अपने सम्बन्धों में हम यत्किंचित हेर-फेर कर सकें तो असुविधाजनक मौसम की कठिनाई से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है । उसी प्रकार उत्पादन, आयुष्य, जीवधारियों की आकृति-प्रकृति, विद्युत-विकिरण प्रभृत्ति, अगणित आधारों में उलट-पुलट जैसे परिवर्तन आवश्यकतानुसार किए जा सकते हैं । अवांछनीय परिस्थितियों को टाला जा सकता है और अवांछनीयताओं का स्तर बढ़ाया जा सकता है । अब तक शुक्र, मंगल और शनि ग्रह के सम्बन्ध में कुछ ऐसी जानकारियाँ प्राप्त हो सकी हैं, जिन्हें उत्साहवर्धक कहा जा सकता है और साहस किया जा सकता है कि सौरमण्डल के अन्य ग्रहों की भी स्थिति अधिक विस्तारपूर्वक जानी जा सकेगी । इसके बाद वह चरण उठाया जाना सम्भव है, जिसके आधार पर पृथ्वी के साथ किन ग्रहों का क्या आदान-प्रदान होता हैं, यह जाना जा सके और उसे घटा-बढ़ा कर अधिक सुविधाजनक परिस्थितियाँ प्राप्त की जा सकें ।

अन्तरिक्ष विज्ञान के शोधकर्त्ता यह दावा करते हैं कि वे इसी शताब्दी में मनुष्य मंगल ग्रह पर उसी तरह पहुँच जायेगा, जिस तरह इन दिनों चन्द्र धरातल पर जा पहुँचा है । अमेरिका सरकार इसके लिए सभी साधन जुटाने की वचनबद्ध घोषणा कर चुकी है । अन्तरिक्ष विशेषज्ञ वर्नर बान ब्राउन ने इन दिनों की उपलब्धियों से प्रोत्साहित होकर कहा है कि यदि आवश्यक धन की व्यवस्था हो सकी तो मंगल ग्रह पर सन् १९८२ में मानव सहित यान आसानी से उतारा जा सकता है । उसके लिए आवश्यक ज्ञान हमारे पास मौजूद है ।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के रसायन प्राध्यापक जार्ज पीमेण्टल ने 'मेरिनर' शोध रॉकिटों द्वारा उपलब्ध रिपोर्टों के आधार पर बताया है कि मंगल ग्रह में जीवनोपयोगी गैसें मौजूद हैं । अस्तु यह अनुमान निराधार नहीं कि इस ग्रह पर जीवधारियों का अस्तित्व होगा । नोरमन होरो ब्रिज के वहाँ वीरान रेगिस्तान एवं उग्र सूर्य किरणों के कारण समुन्नत जीवन की आशा कम है, तो भी वे यह स्वीकार करते हैं कि सूक्ष्म जीवाणुओं के रूप में वहाँ भी जीवन हो सकता है ।

मंगल को रक्त वर्ण कहा जाता है । संस्कृत में उसे 'अंगारक' कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है लाल अंगारे की तरह चमकने वाला । शुक्र के बाद मंगल की ही ताम्रवर्णी चमक पृथ्वी पर अधिक दिखाई देती है । हर पन्द्रहवें वर्ष यह लाल रंग और गहरा दिखाई पड़ता है ।

मंगल हमारी पृथ्वी की तुलना में बहुत छोटा है । इसका वक्रपृष्ठ पृथ्वी के पृष्ठ का एक चौथाई तथा आयतन सातवाँ भाग है, घनत्व अपेक्षाकृत कम होने के कारण भार भी बहुत कम है । सूर्य के परिभ्रमण की कक्षा अन्य ग्रहों की तुलना में कुछ अधिक चपटी है.इससे सूर्य से उसकी दूरी न्यूनतम पौने तेरह करोड़ और अधिकतम दूरी साढ़े पन्द्रह करोड़ मील तक रहती है । पृथ्वी से उसकी दूरी साढ़े तीन करोड़ मील से लेकर २५ करोड़ मील तक हो जाती है । यही कारण है कि वह कभी बड़ा और कभी छोटा, कभी चमकीला और कभी धुँधला दिखाई पड़ता है ।

मंगल का व्यास ४२१५ मील; पृथ्वी की अपेक्षा लगभग आधा है । वहाँ की आकर्षण शक्ति पृथ्वी की तुलना में एक तिहाई है । ऐसी दशा में वहाँ की सभी वस्तुएँ भी अपेक्षाकृत बहुत हल्की होंगी । मंगल का दिन प्रायः पृथ्वी जितना २४ घण्टे ३७ मिनट २२.६ सेकण्ड का होता है । वह ६८७ दिनों में सूर्य की एक परिक्रमा करता है । इसलिए पृथ्वी की तुलना में उसका वर्ष प्रायः दूनी अवधि का होगा । सूर्योदय के समय वहाँ का तापमान १००°से. ग्रे. के लगभग रहता है । खगोलविज्ञों का कहना है कि यदि सर्दी से बचाव के साधन हों तो मनुष्य मंगल ग्रह पर जीवित रह सकता है ।

दूरबीन दिखाती है कि मंगल के विभिन्न क्षेत्र लाल, पीले, नीले तथा हरे रंग के हैं । इन रंगों को वहाँ जल, वनस्पति, बर्फ आदि का आभास बताया जाता था । इटालियन ज्योतिर्विद शियापरली ने वहाँ दिखाई पड़ने वाली धारियों को नदियाँ या नहरें माना था लावेल ने भी वहाँ समुद्र जैसे विशाल जलाशयों की स्थिति मानी थी और वनस्पतियों तथा विचारवान प्राणियों की उपस्थिति का अनुमान लगाया था । पर अब वह बात उतने उत्साह से नहीं मानी जाती ।

मंगल के दो उपग्रह हैं, जिन्हें 'डीमास' और 'फोवास' कहा जाता है । इनमें से पहले का व्यास ५ मील और दूसरे का १० मील है । मंगल के केन्द्र से इनकी दूरी क्रमशः १४६०० और ५८०० मील है । दोनों की गति बड़ी विचित्र है । फोवास ७ घण्टे ३९ मिनट में मंगल की परिक्रमा कर लेता है । जब तक मंगल अपनी धुरी पर एक बार घूम पाता है तब तक वह लगभग तीन चक्कर काट लेता है । डीमास अपनी परिक्रमा ३० घण्टे में पूरी करता है । इसलिए उसके उगने से अस्त होने और अस्त होकर उगने से ढाई-ढाई दिन बीच में आते हैं । मंगल पर यदि जीवन होगा तो उन्हें अपने दोनों चन्द्रमाओं का अलग-अलग तरह का उदय-अस्त क्रम बड़ा बेतुका लगता होगा । कभी दोनों का गायव हो जाना और कभी दोनों का निकल पड़ना । एक को अँगूठा दिखाकर दूसरे का आगे धर दौड़ना और दूसरे का बहुत पीछे रह जाना कितना अजीब लग सकता है, इसकी हम धरती वासी सिर्फ कल्पना ही कर सकते हैं ।

मैक्सिको स्टेट विश्वविद्यालय के मंगल विशेषज्ञ डॉ. ब्रैडफोर्ड स्मिथ ने बताया है कि मंगल के दक्षिण ध्रुव पर जो बर्फ की टोपी ४००० किलोमीटर तक फैली हुई है उसका धीरे-धीरे क्षरण हो रहा है और ऋतु परिवर्तन की सम्भावनाएँ स्पष्ट हो रही हैं । वे इस क्षरण को शरद का बसन्त में परिवर्तन मानते हैं ।

ससेक्स विश्वविद्यालय के अन्तरिक्ष विज्ञानी प्रो. डब्ल्यू. एच. मैक्रिया का एक अन्वेषण निष्कर्ष ब्रिटेन की नेचर पत्रिका में छपा है । उसमें यह बताया गया है कि, मंगल और पृथ्वी कभी एक ही ग्रह थे । बाद में वे एक विस्फोट के कारण दो हिस्सों में बँट गए । इस विभाजन के समय कुछ पदार्थ बीच में ही छिटक कर चन्द्रमा बन गया । चिर अतीत में पृथ्वी, चन्द्रमा और मंगल एक ही संयुक्त ग्रह के रूप में थे । तीनों ग्रहों में पाये जाने वाली मृत्तिका, धातुओं, रसायनों तथा गैसों के रूप में पाये जाने वाले

पदार्थों में असाधारण समानता पाये जाने के कारण सिद्धान्त की और भी अधिक पुष्टि होती है ।

सौरमण्डल के ग्रहों में शुक्र इसलिए अधिक चमकता है कि वह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के २६०००,००० मील अधिक निकट है । यों शुक्र की दूरी से ६७,२४०,००० मील है । शुक्र का आकाश हमारी पृथ्वी का ८३ प्रतिशत है ।

१६ वर्ष में एक समय ऐसा आता है, जब शुक्र हमारी पृथ्वी से मात्र ४२,०८०,००० मील दूर रह जाता है । यह समय उसकी खोजबीन के लिए अधिक सुविधाजनक रहता है ।

कुछ समय पूर्व शुक्र ग्रह की खोज में अमेरिकी मैरिनर मानव रहित अन्तरिक्षयान गया, उससे पता लगा है कि पृथ्वी का निकटतम पड़ौसी शुक्र पर चुम्बकीय क्षेत्र नहीं है । अन्य बातों में वह कुछ पृथ्वी से ही मिलता जुलता है । उसका व्यास ७.५७५ मील है । भार और गुरुत्वाकर्षण भी व्यास की ही तरह लगभग समान है । २३ घण्टे ५६ मिनट का वहाँ दिन होता है और २२५ दिन का एक वर्ष । पिछले दिनों शुक्र पर वर्षा होने, वनस्पति उगने और प्राणधारी रहने की बात कही जाती रही है । मैरिनर ने उन मान्यताओं को झुठलाया है, उसकी सूचनानुसार वहाँ धूल और गर्मी का बाहुल्य है और जो असाधारण चमक रात्रि के समय हमें दिखाई पड़ती है, वह चन्द्रमा की चमक की तरह सूर्य की धूप ही है । जो बादल शुक्र पर छाए हुए हैं, वे मोटाई में लगभग २४ किलोमीटर हैं । शुक्र तल से ऊपर वे ७२ किलोमीटर से आरम्भ होकर ९६ किलोमीटर तक पाये जाते हैं ।

शुक्र की शोध के लिए रूस ने भी अपना ऐसा ही 'वीनस' यान भेजा था । वह 'मैरिनर से अधिक सफल रहा और वहाँ के धरातल पर जा उतरा । उसने शुक्र पर बादलों के अस्तित्व को स्वीकार किया है ।

शनि ग्रह के आस-पास एक छल्लेनुमा भाग दिखाई देता है, उसे वर्तुल कहा जाता है । यह घेरा शक्ति के धरातल को छूता नहीं, वरन् उससे ८ हजार मील ऊपर रहता है ।

शनि २९ वर्ष छः महीने में सूर्य की एक परिक्रमा करता है । अपनी धुरी पर वह १० घण्टे में एक चक्कर लगा लेता है । उसका व्यास ७१५०० मील है । पृथ्वी से उसकी निकटतम दूरी ७४२,६४६,००० मील और अधिकतम दूरी १,०३०,९१२,००० मील है । सूर्य से उसकी औसत दूरी ८८६,७७६,९०० मील मानी गई है ।

आधुनिक ताप यन्त्रों की सहायता से शनि की नवीनतम जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं । उनके आधार पर उसके धरातल के सम्बन्ध में पता चला है कि २८०० मील व्यास में चट्टानें हैं, जिन पर ८००० मील मोटी बर्फ की तह जमी हुई है । तापमान शून्य से १५० से. ग्रे. नीचा है । अमोनिया तथा मीथेन गैस का बाहुल्य है । समय-समय पर उसमें भूकम्प आते हैं और विस्फोट होते रहते हैं ।

शनि के इर्द-गिर्द जो छल्ले वर्तुल दिखाई पड़ते हैं । उनका कभी-कभी दीखना बन्द हो जाता है । इसका कारण बताते हुए हालैण्ड के खगोल शास्त्री हायगेन्स का कथन है कि वे विशालकाय होते हुए भी बहुत ही विरल और पारदर्शी गैस कणों से बने हैं । जिस समय सूर्य की परिक्रमा करते हुए शनि के वर्तुल पृथ्वी की सीध में आ जाते हैं, तब उनका दीखना बन्द ही हो जाता है । इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी वैज्ञानिक कैसीन ने एक नहीं दो वर्तुल बताए हैं और कहा कि उन दोनों के बीच में जो खाली जगह है वह सामने आने पर उनका दीखना बन्द हो जाता है । अमेरिकी दैवज्ञ वाण्ड ने एक तीसरे बहुत ही विरल और पारदर्शी वर्तुल का पता लगाया है और उसका नाम 'क्रेयरिंग' रखा है ।

बहुत दिन पहले यह वर्तुल ठोस माने जाते थे पर मेक्सवेल ने उस धारणा को गलत सिद्ध करते हुए यह प्रतिपादन किया कि वे छोटे ग्रह खण्डों, धूमकेतुओं तथा बर्फ के कणों से बने हैं । अब इन वर्तुलों की संख्या निश्चित रूप से तीन मानी जाती है और बीच के वर्तुल को अधिक चमकदार माना जाता है । बाहरी वर्तुल की चौड़ाई १०,००० मील, बीच वाले की १६००० और भीतर वाले की १२००० मील है । इनके बीच में जो खाली स्थान पड़ा है, उसे ३००० मील माना जाता है ।

इन तीन वर्तुलों के अतिरिक्त शनि के ९ उपग्रह चन्द्रमा हैं । यह सभी शनि की परिक्रमा करते हैं । निकटतम दूरी वाला चन्द्रमा बाईस घण्टे में परिक्रमा पूरी करता है । इसके बाद के सात उपग्रह १४ से लेकर ५३ घण्टे में अपना मार्ग पूरा करते हैं । अन्तिम नौवाँ उपग्रह 'टीटान' सबसे बड़ा है, इसे सौरमण्डल का सबसे बड़ा उपग्रह माना जाता है । यह १६ दिन में एक चक्कर पूरा करता है । उनका एक चन्द्रमा ऐसा भी है जो उल्टी दिशा में चक्कर लगाता है और अपनी परिक्रमा डेढ़ वर्ष में पूरी करता है । टीटान के बारे में कहा जाता है कि उस पर प्राण, वायु, जल एवं वनस्पतियाँ होने की बहुत कुछ सम्भावना है, ऐसी दशा में वहाँ जीवधारी भी हो सकते हैं । यदि वस्तुतः शनि के ग्रह-उपग्रहों में जीवन हुआ तो जीवधारी नौ चन्द्रमाओं का अनियमित उदय-अस्त देखकर आश्चर्यचकित रहते होंगे और प्रकृति की उस अद्भुत संरचना के सौन्दर्य पर मुग्ध रहते होंगे ।

अपने सौरमण्डल के अन्य सदस्य हैं । सबसे निकट बुध इसके बाद क्रमशः शुक्र, पृथ्वी और मंगल । यह चार छोटे ग्रह हैं । इन्हीं तक मनुष्य ने अब तक अन्तरिक्षयान भेजे हैं । इसके बाद बड़े ग्रह आते हैं—बृहस्पति और शनि । इसके बाद बहुत अधिक दूरी पर तीन ग्रह और हैं—यूरेनस, नेपचून और प्लूटो इस प्रकार नौ नक्षत्र और एक सूर्य कुल मिलाकर इस परिवार में दस ग्रह सदस्य हैं । सारे सौरमण्डल का ९९ प्रतिशत वजन अकेले सूर्य में है । शेष एक प्रतिशत में अन्य सब सम्मिलित हैं ।

भूतकाल में चन्द्रमा को स्वतन्त्र ग्रह माना जाता था । पर अब पता चला कि वह पृथ्वी का उपग्रह मात्र होने से ग्रहों की विरादरी में सम्मिलित नहीं किया जा सकता ।

सौरमण्डल के सदस्य ग्रहों के सम्बन्ध में बढ़ती हुई जानकारी निकट भविष्य में वह आधार भी प्रस्तुत करेगी, जिसके सहारे उनके बीच उपयोगी आदान-प्रदान की रूपरेखा तैयार की जा सके । सहयोग के आधार पर सर्वतोन्मुखी स्थिरता और प्रगति बनी हुई है यह जैसे-जैसे बढ़ेगा वैसे-वैसे सुविधा और शान्ति के आधार बढ़ेंगे ही । सौरमण्डल के सदस्यों का ज्ञान निकट भविष्य में जब सहयोगात्मक आदान-प्रदान का रूप लेगा तो हम स्वभावतः अधिक सुखी एवं समुन्नत बन सकेंगे यह निश्चित है ।

समष्टि एवं व्यष्टि में संव्याप्त एकरूपता

पृथ्वी यों मौटे तौर से एकाकी लगती है । उसकी सम्पदा एवं हलचल अपनी ही परिधि में, अपने ही लिए काम करती दिखाई पड़ती है, पर वस्तुतः यह अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान पर जीवित है । सूर्य की ऊर्जा का शोषण पृथ्वी का वातावरण करता है और इस ईंधन से जड़ परमाणुओं और चेतन जीवाणुओं की विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ चल सकने की सामर्थ्य मिलती है । पृथ्वी अपनी विशिष्टताओं को बनाए रहने में बहुत कुछ सूर्य पर निर्भर है । दूर रहते हुए भी वह पृथ्वी को इतना उदार दुलार देता है कि उसे देखते हुए पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका जैसा रिश्ता मानने को जी करता है । पृथ्वी भी तो उसी का मुँह निहारते और परिक्रमा करते रहने में अपने जीवन की सार्थकता मानती है ।

चन्द्रमा का पृथ्वी पर कितना प्रभाव पड़ता है, यह समुद्र तट पर जाकर प्रतिदिन के सामान्य और पूर्णिमा, अमावस्या के ज्वार-भाटे देखकर सहज ही जाना जा सकता है । चन्द्रमा को रसराज कहा गया है । कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में वनस्पतियों तथा प्राणियों में सरसता की जो घट-बढ़ होती रहती है, उससे पता चलता है कि न केवल समुद्र को वरन् पृथ्वी की समग्र सरसता को वह व्यापक रूप से प्रभावित करता है । यह तो ग्रहों के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव का एक उदाहरण मात्र है । वास्तविकता यही है कि ब्राह्मी चेतना का यह सारा व्यापार आपसी आदान-प्रदान की एक सुनियोजित विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत चल रहा है ।

सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रह-उपग्रह अपने-अपने स्तर के रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े उपहार पृथ्वी को अनवरत रूप से भेजते हैं । पृथ्वी भी चुप नहीं बैठी रहती । वह भी आदान-प्रदान का शिष्टाचार और समूह कर्त्तव्य समझती है । तद्नुसार अपने अनुदान अन्य ग्रहों को भेजती है । इन सम्प्रेषणों का लाभ वे ग्रह भी उसी प्रकार उठाते हैं, जिस प्रकार कि पृथ्वी उनसे । इस आदान-प्रदान का महत्त्वपूर्ण केन्द्र ध्रुवीय क्षेत्र है । अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान इन्हीं छिद्रों से होता है । उत्तरी ध्रुव से ग्रहण की और दक्षिणी ध्रुव से विसर्जन की प्रक्रिया सम्पन्न होती रहती है । उत्तर में आदान का, दक्षिण में प्रदान का संयन्त्र नियति ने फिट करके रखा है । उत्तर को मुख और दक्षिण को मलद्वार कह सकते हैं । जितना उपयोगी है उतना पचाकर पृथ्वी का शरीर अपने में धारण कर लेता है और जो अनावश्यक है, उसे मलरूप में विसर्जित कर देता है । प्राणी शरीर की तरह धरती भी एक शरीर है, जिसे अपनी जीवनचर्या की सामग्री अन्तर्ग्रही शक्ति भण्डार से उपलब्ध करनी पड़ती है । शरीर को हवा, पानी और अन्न भी तो बाहर से ही उपलब्ध करना पड़ता है । अन्तर्ग्रही हाट से आवश्यक वस्तुएँ खरीदे बिना धरती की गुजर नहीं हो सकती । ठीक इसी प्रकार प्राणी को भी अपनी सूक्ष्म चेतनात्मक उपलब्धियों के लिए अन्तर्ग्रही, ब्रह्माण्डीय चेतना पर निर्भर रहना पड़ता है ।

मस्तिष्क मुख है । ग्रहण शक्ति उसी में है । जननेन्द्रिय विसर्जन संस्थान है । दोनों को प्राणि सत्ता के ध्रुव केन्द्र कहा जा सकता है । ऊर्ध्व केन्द्र को शिव और अधः संस्थान को शक्ति संस्थान माना गया है । इन्हें ब्रह्मवर्चस और कुण्डलिनी केन्द्र भी कहते हैं । इनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध सन्तुलन ठीक बना रहे तो सब कुछ ठीक बना रहेगा और अभीष्ट प्रगति का लक्ष्य पूरा होता रहेगा । इनके बीच असन्तुलन या अवरोध उत्पन्न होने से अपच और तज्जनित अनेकों रोग-विकार उत्पन्न होने लगते हैं । भू-वैज्ञानिकों के अनुसार दक्षिणी ध्रुव समुद्र तल से १६००० फुट उभरा हुआ है । इसे विश्व शरीर की जननेन्द्रिय का उभार कह सकते हैं । पुराणों में इसे शिवलिंग कहा गया है । नारी की जननेन्द्रिय में भी यह उभार छोटे रूप में "मॉन्स प्यूबीस" नाम से जाना जाता है । समाप्ति और व्यष्टि में कितनी एकरूपता है, इसकी झाँकी ध्रुवों की संरचना में दृष्टिगोचर होती है ।

सोवियत रूस के वैज्ञानिक डॉ. जी. ए. उशाकोव ने अपने ध्रुव शोध के विवरणों में एक और नया तथ्य प्रतिपादित किया है । वे कहते हैं कि जीवन का आधार मानी जाने वाली ऑक्सीजन वायु पृथ्वी की अपनी उपज अथवा सम्पत्ति नहीं है । वह सूर्य से प्राण रूप में प्रवाहित होती हुई चली आती है और धरती के वातावरण में यहाँ की तात्विक प्रक्रिया के साथ सम्मिलित होकर प्रस्तुत 'ऑक्सीजन' बन जाती है । यदि सूर्य अपने उस प्राण प्रवाह में कटौती कर दे अथवा पृथ्वी ही किसी कारण उसे ठीक तरह ग्रहण न कर सके तो ऑक्सीजन की न्यूनता के कारण धरती का जीवन संकट में पड़ जायेगा । पृथ्वी से ६२ मील ऊँचाई पर यह प्राण का ऑक्सीजन रूप में परिवर्तन आरम्भ होता है । यह ऑक्सीजन बादलों की तरह चाहे जहाँ नहीं बरसता रहता वरन् वह भी सीधा उत्तरी ध्रुव पर आता है और फिर वहाँ से समस्त विश्व में वितरित होता है । ध्रुव प्रभा में रंग-बिरंगी झिलमिल का दीखना विद्युत मण्डल के साथ ऑक्सीजन की उपस्थिति का प्रमाण है ।

कभी-कभी सूर्य मण्डल में विशेष उत्क्रान्ति उत्पन्न होने से उस प्रवाह की एक लहर पृथ्वी पर भी चली आती है और ध्रुव प्रदेश में चुम्बकीय आँधी, तूफानों का सिलसिला चल पड़ता है । इनकी प्रतिक्रिया उसे ध्रुव क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रखती, वरन् समस्त विश्व को प्रभावित करती है । कई बार यह चुम्बकीय तूफान बड़े उपयोगी और सुखद परिणाम उत्पन्न करते हैं और कई बार इनमें कुछ ऐसे तत्व घुले हुए चले आते हैं, जिनका प्रभाव समस्त विश्व को कई प्रकार के संकटों में धकेल देने की सामर्थ्य रखता है ।

अन्तर्ग्रही ऊर्जाएँ पृथ्वी पर उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में होकर छनी हुई उपयुक्त एवं आवश्यक मात्रा में ही प्रवेश करती हैं और पृथ्वी को अभीष्ट परिपोषण देने के उपरान्त दक्षिणी ध्रुव में होती हुई बहिर्गमन कर जाती हैं । एक सिरे से प्रवेश करके चूहा जिस प्रकार बिल के दूसरे सिरे से निकल भागता है उसी प्रकार अन्तर्ग्रहीय विकिरण धरती के एक सिरे से प्रवेश करता और दूसरे से बाहर निकलता रहता है । उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में एक ऐसी चुम्बकीय छलनी है, जो केवल उसी प्रवाह को भीतर प्रवेश करने देती है जो उपयोगी है । छलनी से बारीक आटा ही छनता है और भूसी ऊपर रह जाती है । ठीक इसी प्रकार ध्रुवीय छलनी में भी पृथ्वी के लिए उपयोगी विकिरण आते हैं और शेष को पीछे धकेल दिया जाता है ।

उत्तरी ध्रुव पर यह छानने की क्रिया टकराव के रूप में देखी जा सकती है । इस टकराव से एक विलक्षण प्रकार के ऊर्जा कम्पन

उत्पन्न होते हैं, जिनकी प्रत्यक्ष चमक उस क्षेत्र में प्रायः देखने को मिलती रहती है, उसे ध्रुव प्रभा या मेरु प्रकाश कहते हैं । इसका दृश्यमान प्रत्यक्ष रूप जितना अद्‌भुत है, उससे अधिक रहस्यमय उसका अदृश्य रूप है । इस मेरु प्रभा का प्रभाव स्थानीय ही नहीं होता वरन् समस्त भूतल को यह प्रभावित करता है । भूगर्भ में, समुद्र तल में, वायुमण्डल में, ईथर के महासागर में जो विभिन्न प्रकार की हलचलें होती रहती हैं, चढ़ाव-उतार आते हैं, उनका बहुत कुछ सम्बन्ध इस ध्रुव प्रभा एवं मेरु प्रकाश से होता है । इतना ही नहीं उसकी हलचलें प्राणधारियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करती हैं । मनुष्यों पर तो उसका प्रभाव विशिष्ट रूप से होता है । सुविज्ञ लोग उस प्रवाह में से अपने लिए उपयोगी तत्व खीच लेने, धारण कर लेने में भी सफल होते हैं और उससे असाधारण लाभ प्राप्त करते हैं ।

सूर्य एक सैकिण्ड में २०० ट्रिलियन अर्थात् १००० मिलियन (१०००,००००० किलोवाट) किलोवाट ऊर्जा पृथ्वी पर फेंकता है । वह ऊर्जा इतनी अधिक होती है कि उससे हाइडल पावर उत्पन्न करने वाले मानव निर्मित बिजली घरों के समान अनेकों करोड़ बिजली घर स्थापित हो सकते हैं । सारी पृथ्वी की चार अरब आबादी तथा चींटी, मक्खी, कौवे, गिद्ध, भेड़, बकरी, गाय, हाथी, शेर, पेड़-पौधे, बादल, समुद्र सभी इस शक्ति से ही गतिशील हैं । जिसमें यह शक्ति (प्राण तत्व) जितनी अधिक है, वह उतना ही शक्तिशाली और वैभव का स्वामी है । कीड़े-मकोड़े उसके एक कण से ही जीवित हैं, वृक्ष-वनस्पतियाँ उसका सबसे अधिक भाग उपयोग में लाती हैं । मनुष्य इन सबसे भाग्यशाली है, क्योंकि वह इस शक्ति के सुरक्षित और संचित कोष को भी प्राणायाम और योग साधनाओं द्वारा मनचाही मात्रा में प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है । इस प्रचण्ड प्राण ऊर्जा के सुनियोजन की चमत्कारी फलश्रुतियाँ हैं । प्रश्न मात्र क्रमबद्ध सदुपयोग का है ।

उपरोक्त वर्णन से ऐसा लगता है कि सूर्य असीम शक्ति का भण्डार है, पर वस्तुतः वह भी विराट् ब्रह्माण्ड के महासंचालक ब्रह्मसूर्य का एक नगण्य-सा घटक ही है । सूर्य अपनी शक्ति उसी प्रकार अपने सूत्र संचालक महासूर्य से प्राप्त करता है, जैसे कि अपनी पृथ्वी सौरमण्डल के अधिष्ठाता अपने सूर्य से । जीव और ईश्वर की दूरी ही उसकी शक्ति को दुर्बल बनाती है । यदि यह दूरी घटती जाय तो निश्चित रूप से सामर्थ्य बढ़ेगी और स्थिति वह न रहेगी, जो आज कृमि-कीटकों जैसी दिखाई पड़ रही है ।

ब्राह्मी चेतना के महासागर में तैर रही हमारी पृथ्वी में एक दूसरे किस्म का वायुमण्डल भी है, जिसे आकर्षण चुम्बकत्व अथवा ग्रेविटी के नाम से पुकारते हैं । यह चुम्बकत्व 'प्लाज्मा' को प्रभावित करता है और उसकी प्रतिक्रिया लौटकर फिर पृथ्वी पर आती है । इस प्रकार का आदान-प्रदान और भी विस्तृत क्षेत्र का अधिकार जमाता है । इस चुम्बकीय प्रत्यावर्त्तन को सम्पन्न करने वाला वायुमण्डल की तरह का ही एक भू-चुम्बकीय मण्डल भी है । यह भी पृथ्वी का ही विस्तार है, इसे उसी का आधार साधन अथवा अधिकार क्षेत्र कह सकते हैं । इस प्लाज्मा प्रवाह के कारण ही सूर्य की शक्ति का धरती तक नियन्त्रित रूप में आना सम्भव होता है और अन्य ग्रहों से उसका सम्पर्क बनता है । इसलिए धरती की परिधि नापनी हो तो उसकी गणना वायु मण्डल की परिधि के आधार पर करनी चाहिए ।

इस प्लाज्मा को ही प्रकारान्तर से सूक्ष्म जगत का प्राण तत्व माना जा सकता है । पृथ्वी सौभाग्यशाली है कि उसे जीवन मिला, उससे भी बड़े सौभाग्यशाली वे हैं जो इस पर निवास करते हैं । संव्याप्त प्राण सत्ता से जिस प्रकार पृथ्वी के दोनों ध्रुव आदान-प्रदान की प्रक्रिया सम्पन्न करते हैं, उसी प्रकार मानवी चेतन सत्ता के दोनों ध्रुव जो मेरुदण्ड के दो छोरों पर सहस्रार एवं मूलाधार चक्र के रूप में अवस्थित है, सतत ग्रहण विसर्जन का उपक्रम चलाते रहते हैं । उपयोगी को ग्रहण कर यदि उस ऊर्जा से अपनी चेतना का स्तर ऊँचा उठाया जा सके, तो मानव जीवन को और भी सार्थक, क्रियाशील एवं लोकोपयोगी बनाया जा सकता है ।

संरचनाओं का मायावी संसार

आधुनिक भौतिक विज्ञानियों को अपने नित नूतन आविष्कारों, शोध प्रक्रियाओं एवं निर्माणों पर गर्व है, वह उचित भी है । पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि भूतकाल में इस विद्या की जानकारी किसी को भी नहीं थी । सच तो यह है कि पुरातन काल में विज्ञान की अपनी विशिष्ट दिशाधारा थी, जिसमें पदार्थों का ही आश्चर्यजनक परिवर्तन नहीं होता था, वरन् शरीरगत विद्युत-शक्ति का भी भू-चुम्बकीय धाराओं से सुनियोजन स्थापित किया जाता था, जिसकी दिशाधारा को अभी तक समझा नहीं जा सका ।

मिस्र के सैकड़ों मील क्षेत्र में फैले हुए गगनचुम्बी पिरामिडों में रखे शवों में हजारों वर्ष बीत जाने के बाद भी आज तक बदबू या सड़ाँध नहीं आयी है । इनके निर्माणकर्त्ता 'फैराओ' की रूहें तो अब किसी सूक्ष्म जगत में होंगी किन्तु उनके स्मारकों के रूप में बृहदाकार पिरामिड आज भी सुसभ्य कहे जाने वाले संसार का ध्यान बलात् अपनी ओर आकर्षित करते हैं । इस विचित्र निर्माण को देखकर विज्ञान-वेत्ता भी आश्चर्यचकित हैं ।

सुप्रसिद्ध लेखक प्लिनी और रोमनों ने लिखा है कि मिस्र के तीन पिरामिडों में अपनी ख्याति से सम्पूर्ण पृथ्वी को गुन्जित कर दिया है । हजारों वर्षों से प्राकृतिक थपेड़ों को सहने के बाद भी उनकी संरचना में कोई अन्तर नहीं आया है । उन्हें देखकर सबसे बड़ा आश्चर्य यह होता है कि आरम्भिक काल में मानवों ने रेगिस्तानी पठार में प्राकृतिक संरचनाओं से स्पर्धा करते हुए ये कृत्रिम पर्वत कैसे बनाए होंगे ? किन महाबली पुरुषों ने विशालकाय चट्टानों को सुदूर पर्वत शृंखलाओं से तोड़कर उन्हें मरुस्थल में जुटाया होगा, किन वास्तुकला विशेषज्ञों ने इनकी अद्‌भूत ज्यामितीय प्रक्रिया में अपना पसीना बहाया होगा ?

विश्व के अनेक भागों जैसे—दक्षिणी अमेरिका, चीन, साइबेरिया, फ्रान्स, इंग्लैण्ड आदि देशों में पिरामिड मिले हैं, किन्तु इनमें सबसे अधिक विख्यात 'गीजा का पिरामिड' है । इसका आधार क्षेत्र १३ एकड़ से अधिक है और ऊँचाई १५० मीटर है । इसमें २६ लाख विशालकाय पत्थर के टुकड़े लगे हैं जिनका भार दो टन से ७० टन तक का है । ये पत्थर ग्रेनाइट और चूने से विनिर्मित हैं । सुप्रसिद्ध अंग्रेज पुराविद् फ्लिंडर्स पेट्री के अनुसार ४५० फीट की ऊँचाई पर इन भारी चट्टानों को बिना किसी यान्त्रिक सहायता के ऊपर चढ़ाया गया है । इनकी जुड़ाई में कहीं भी एक इंच के किसी भी भाग का अन्तर नहीं आया है । इन पिरामिडों के निर्माण में इतना ठोस पदार्थ लगाया गया है, जितना

कि उस समय के निर्मित गिरिजाघरों तथा अन्य भवनों में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है ।

विलियम पीटरसन कॉलेज न्यूजर्सी में प्राचीन इतिहास के मूर्धन्य प्राध्यापक डॉ. लिवियो सी. स्टेचिनी के अनुसार मिस्र के लोग ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व भी आधुनिक टेलिस्कोप और क्रोनोमीटर से भली-भाँति परिचित थे । उन्होंने पिरामिड के निर्माण में उच्च स्तरीय वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग किया था । पिरामिड की चोटी ध्रुव के एवं परिधि भूमध्य रेखा के सदृश है । इसका जब वैज्ञानिक पर्यवेक्षण किया गया और इसके त्रिभुजाकार दीवारों की माप ली गई तो इनके विभिन्न आयामों में गणितीय स्थिरांक-पाई (३.१४) एवं फाई (१.६१८) का महत्त्वपूर्ण अनुपात पाया गया । पुनर्जागरण काल में इन अनुपातों का शिल्पकला में बहुतायत से प्रयोग किया गया । विशेषज्ञों के अनुसार यह अनुपात मानवी काया में सौन्दर्य व आकर्षण उत्पन्न करता है । टी. ब्रुन्स ने अपनी पुस्तक 'सीक्रेट्स ऑफ एन्शीएण्ट ज्यामेट्री' में पिरामिडों के रहस्यमय आकार व उनके प्रभावों का गहराई से विवेचन किया है ।

वैज्ञानिकों ने आकृति व आयामों की विभिन्न माप एवं उनके पारस्परिक अनुपातों से अन्य अनेक रहस्यों का पता लगाया है । इससे गीजा पिरामिड के रचनाकाल की भी जानकारी मिली है । इन मापों से अन्तरिक्षीय ग्रह पिण्डों की दूरियों की भी जानकारी मिलती है उन्नीसवीं सदी के प्रख्यात खगोलवेत्ता प्राक्टर ने अपने अनुसन्धान निष्कर्ष में कहा था कि इन पिरामिडों का उपयोग ग्रह-नक्षत्रों के अध्ययन के लिए वेधशालाओं के रूप में किया जाता रहा होगा । उनके अनुसार इतनी बहुमूल्य वेधशालाएँ न तो कभी पहले तैयार की गई थीं न ही भविष्य में कोई सम्भावना है ।

विशेषज्ञों का कहना है कि गीजा का पिरामिड निखिल ब्रह्माण्ड का एक छोटा सा मॉडल है । इस महान् पिरामिड की स्थिति मिस्र के लिए ही नहीं, वरन् समस्त भूमण्डल के लिए सेन्ट्रल मेरीडियन-केन्द्रीय याम्योत्तर है । सम्पूर्ण विश्व मानचित्र को दो बराबर भागों में बाँटने वाली रेखा के मध्य बिन्दु पर यह स्थित है । यदि इससे गुजरती हुई कोई क्षैतिज रेखा खींची जाय तो इस रेखा के पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्र परस्पर बराबर होंगे । इस प्रकार इसका केन्द्रीय यामोत्तर भूमण्डल के देशान्तर का प्राकृतिक शून्य है । मानव निर्मित यह स्मारक पृथ्वीवासियों की तत्कालीन तीक्ष्ण प्रतिभा का अद्वितीय परिचायक है ।

महान् पिरामिड के निर्माताओं ने वृत्तों में वर्गीकरण और घनत्वीकरण इस प्रकार से निर्मित किया है कि रेखागणित के कोणों के स्थायित्व को वक्रों की अस्थिरता में परिवर्तित किया जा सके । पिरामिडों को शंकु के रूप में, वक्र को ग्लोब के रूप में देखा जा सके । इसका शंकु वाला भाग ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है । वैज्ञानिकों ने अपने पर्यवेक्षण में पाया है कि कॉस्मिक ऊर्जा शक्ति पिरामिड के क्षेत्र में अणु-अणु में व्याप्त है । भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक, आत्मिक सभी प्रकार की ऊर्जाएँ वहाँ विद्यमान हैं । वहाँ पर जीवन पूर्णरूपेण भावना से सम्बन्धित हो जाता है । ऐसे अनेकों प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि पिरामिड की ऊर्जा पदार्थीय और सूक्ष्मीय चेतना को प्रभावित करने में सक्षम है । प्रयोग परीक्षणों के समय ऐसा देखा गया है कि इसके अन्दर उत्तर दक्षिण अक्ष में रखे गए फल फूल, माँस बहुत दिनों तक यथावत् ताजे बने रहते हैं । पानी तथा अन्य द्रवीय पदार्थों को पात्रों में भर कर रखने से उनके गुणों में आश्चर्यजनक परिवर्तन पाया गया । फ्रान्स और इटली की दो विभिन्न फर्मों ने पिरामिड की आकृति के कण्टेनरों का निर्माण किया और उनमें दूध रखकर उसका परीक्षण किया है । इसमें पाया गया कि चौकोर आकृति की अपेक्षा पिरामिड आकृति के कण्टेनरों में दूध ताजा और अधिक सुरक्षित रहता है । शंकु की आकृति वाले कण्टेनरों में पौधे अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से बढ़ते देखे गए हैं ।

मूर्धन्य फ्रान्सीसी इन्जीनियर एल. तुरीनी ने अपनी पुस्तक 'वेव्स फ्राम फार्म्स' में लिखा है कि कोण, पिरामिड स्फियर्स आदि में विभिन्न प्रकार की ब्रह्माण्डीय ऊर्जाएँ-जैसे कॉस्मिक, सोलर जियोमैग्नेटिक करेण्टस आदि का समावेश रहता है । यही कारण है कि पिरामिड ऐसे चमत्कारिक कार्यों को सम्पादित करते हैं । प्रख्यात नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. लुइस अलवरेज के अनुसार पिरामिड की संरचना ऐसे हुई है कि उसके अन्दर की खुली हुई जगह सदैव इलैक्ट्रोमैग्नेटिक प्रतिबिम्बीय ऊर्जा उत्पादित करती है तथा ऊपर से अन्तरिक्षीय ऊर्जा किरणें प्रविष्ट होती रहती हैं । कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार पिरामिड से न केवल ऊर्जा प्रवाहित होती है, वरन् ऊर्जाओं को वहाँ रूपान्तरित भी किया जाता है । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक येथ और नेल्सन ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि पिरामिड की ऊर्जा मध्याह्न को विस्तृत भी होती है ।

मिस्र के पिरामिड प्राचीन प्रतिभा की ऐसी अमूल्य निधि है, जिसमें क्यों और कैसे का बाहुल्य है और पूर्णरूपेण गणित पर आधारित है । इसकी आकृति मायावी है, जिसमें ज्ञात और अज्ञात ऊर्जा जीवित और निर्जीव पदार्थों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती । आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए पिरामिड की संरचना आज भी चुनौती बनी हुई है । ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने अपने नए शोध कार्य में आकृति-संरचना के प्रभावों की विवेचना के अन्तर्गत पिरामिडॉलाजी को भी सम्मिलित किया है । पाये गए निष्कर्ष अति महत्त्वपूर्ण हैं उपरोक्त मान्यताओं की पुष्टि ही करते हैं ।

परोक्ष जगत से जुड़ा पिरामिडों का ज्ञान-विज्ञान

मनुष्य की शक्ति असीम है । शरीर बल में वह सीमित अवश्य है, पर आत्मबल, मनोबल एवं प्रतिभा-पुरुषार्थ में वह असीम और असाधारण है । प्रतिकूल परिस्थितियों एवं साधन-सुविधाओं के अभाव में भी वह अपनी आकांक्षाओं और संकल्पों को पूरा कर सकता है । विश्व में सदियों पूर्व विनिर्मित जहाँ-तहाँ ऐसी अनेकों संरचनाएँ बिखरी पड़ी हैं, जो मानवी पुरुषार्थ का, बुद्धि कौशल का परिचय देती हैं । मिस्र के पिरामिड इनमें से एक हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि मानवी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाले कुशल शिल्पियों ने इन बहुउद्देशीय भवनों का निर्माण किया था । नीरव विराट रेगिस्तान में विशालकाय चट्टानों को सुदूर पर्वत शृंखलाओं से लाकर उनसे ज्यामितीय प्रक्रिया द्वारा वृहदाकार पिरामिडों के निर्माण-भूतकालीन मानवी पराक्रम का साक्ष्य तो प्रस्तुत करते हीं हैं, साथ

ही उन्नत एवं प्रगतिशील कहे जाने वाले आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं के लिए अनुसन्धान के विषय बने हुए हैं । आश्चर्यचकित करने वाले इन निर्माणों की दिशाधारा को अभी तक पूरी तरह समझा नहीं जा सका है ।

'पिरामिडोलॉजी' नामक एक विशुद्ध विज्ञान का विकास आज इन्हीं संरचनाओं के रहस्यों को समझने के लिए किया गया है । इसके प्रवक्ताओं का मत है कि पिरामिडों के विशिष्ट आकार-प्रकार में अलौकिक शक्ति छिपी पड़ी है । इनकी आकृति इतनी मायावी है कि उसे निखिल ब्रह्माण्ड का मानव कृत लघु संस्करण कहा जा सकता है । उसमें सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का बहुलता से एकत्रीकरण होता है, जो जीवित तथा निर्जीव पदार्थों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती । कुछ अन्वेषणकर्त्ताओं का कहना है कि इन्हें लोकोत्तरवासियों ने विनिर्मित किया था तो कुछ का मत है कि इन्हें भवनकला विशेषज्ञों ने बनाया है, जो ज्योतिर्विज्ञान और भौतिकी के निष्णात विद्वान थे ।

डॉ. विलशुल, एडपेटिट, डॉ. टाम्पकिन्स, डॉ. पीटर जैसे विख्यात वैज्ञानिकों ने पिरामिडोलॉजी पर गहन अध्ययन किया है । इनका निष्कर्ष है कि पिरामिड के अन्दर कुछ विलक्षण प्रकार की शक्ति तरंगें काम करती हैं, जो जड़ चेतन दोनों को प्रभावित करती हैं । प्रयोग परीक्षणों में पाया गया है कि इन संरचनाओं के अन्दर नीचे के एक तिहाई ऊपर के दो तिहाई भाग के जंक्शन पर पुराने सिक्के एवं रेजर ब्लेड रखने पर शक्ति के प्रभाव से क्रमशः सिक्कों पर चमक एवं ब्लेड में तेज धार आ जाती है । लम्बे समय तक रखे जाने पर भी दूध खराब नहीं होता, वरन् बाद में वह स्वतः ही दही में बदल जाता है, पर फटता नहीं ।

अनुसन्धानकर्त्ताओं के अनुसार पिरामिड आकार में वस्तुओं को जल शुष्क करके खराब होने से बचाए रखने की अद्‌भुत क्षमता है । इसमें रखे गए फूल एवं पत्तियाँ जलहीन होकर ज्यों के त्यों बने रहते हैं । न तो वे मुझते हैं और न ही उनका रंग उड़ता है । इसी गुणवत्ता के कारण मिस्र के पिरामिडों में अब से ढाई सहस्राब्दी पूर्व रखी गई वस्तुएँ यथावत् पायी गई हैं ।

'वेक्स फ्राम फार्म्स' नामक अपनी कृति में फ्रान्स के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एल. तूरेने ने कहा है कि ब्रह्माण्ड से अपने अनुकूल एवं प्रभावशाली ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए ही सम्भवतः पिरामिडों की संरचना वास्तुविद्या विशारदों द्वारा की गई थी । इनका निर्माण मात्र मिस्र में ही नहीं हुआ, वरन् संरचनाएँ दक्षिण अमेरिका, चीन, साइबेरिया, मेक्सिको, कम्बोडिया, फ्रान्स, इंग्लैण्ड आदि देशों में भी पायी गई हैं । नील नदी के पश्चिमी तट पर लगभग एक सौ पिरामिड फैले हुए हैं । काहिरा के गीजा पठार पर एक वर्ग मील के दायरे में पिरामिडों के त्रिकोणाकार पहाड़ खड़े हैं । इनमें 'खूफू' का पिरामिड सबसे पुराना एवं आकार में बड़ा है । आधुनिक वास्तु-शिल्पियों एवं विज्ञानवेत्ताओं का ध्यान इन दिनों इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है और वे इस अध्ययन-अनुसन्धान में निरत हैं कि भवनों की संरचनाओं का, आकार का मानव स्वास्थ्य एवं मनःसंस्थान पर क्या कुछ प्रभाव पड़ता है ? व्यस्तता एवं तनावग्रस्तता भरे इस तकनीकी युग में इस तरह के निर्माणों में लोगों को बसाकर क्या उन्हें तनाव से मुक्ति दिलाई जा सकती है ? एल. तूरेने इसका उत्तर 'हाँ' में देते हुए कहते हैं कि पिरामिडनुमा भवन चाहे वह चौकोर हो अथवा गोलाकार, विभिन्न प्रकार की ब्रह्माण्डीय तरंगों को आकर्षित कर अपना प्रभाव शरीर और मन पर अवश्य डालते हैं ।

पर्यवेक्षकों का कहना है कि सभी पिरामिड उत्तर-दक्षिण एक्सिस पर बने हैं । यह भी एक वैज्ञानिक रहस्य है, जो बताता है कि भू चुम्बकत्व एवं ब्रह्माण्डीय तरंगों का इस विशिष्ट संरचना से निश्चय ही कोई सम्बन्ध है । उत्तर-दक्षिण गोलार्द्धों को मिलाने वाली रेखा पृथ्वी की चुम्बकीय रेखा है । चुम्बकीय शक्तियाँ विद्युत तरंगों से सीधी जुड़ी हुई हैं, जो यह दर्शाती हैं कि ब्रह्माण्ड में बिखरी मैग्नेटोस्फीयर में विद्यमान चुम्बकीय किरणों को संचित करने की अभूतपूर्व क्षमता पिरामिड में है । यही किरणें एकत्रित होकर अपना प्रभाव अन्दर विद्यमान वस्तुओं या जीवधारियों पर डालती हैं । इन निर्माणों में ग्रेनाइट पत्थर का उपयोग भी सूक्ष्म तरंगों को अवशोषित करने की क्षमता रखता है ।

एक सम्भावना यह भी व्यक्त की गई है कि इन पिरामिडों का निर्माण ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर किया गया है, जिसमें मानव जाति को लाभान्वित करने का उद्देश्य सन्निहित था । देखा गया है कि पिरामिड के अन्दर उत्पन्न तरंगें जब प्रतिध्वनित होकर वापस लौटती हैं, तो उनकी तरंगदैर्ध्य में परिवर्तन आ जाता है और उसके प्रभाव से अन्दर उपस्थित व्यक्ति को तनाव शैथिल्य एवं मानसिक स्फूर्ति की, शान्ति की अनुभूति होती है ।

इस सन्दर्भ में अनुसन्धान कर रहे चिकित्सा विशेषज्ञों का कहना है कि सिर दर्द और दाँत दर्द के रोगी को पिरामिड के अन्दर बिठाने पर वे दर्द मुक्त हो जाते हैं । गठिया, वातरोग, पुराना दर्द भी इस संरचना में संघनित ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के प्रभाव से दूर हो जाते हैं । पेड़-पौधों पर पिरामिड के प्रभाव के अध्ययन से भी यह निष्कर्ष सामने आया है कि एक ही प्रकार के पौधों को अन्दर के तथा बाहर के वातावरण में रखने पर पिरामिड के अन्दर वे कहीं ज्यादा तेजी से पनपते हैं । उसकी ऊर्जा तरंगें वनस्पतियों की वृद्धि पर सूक्ष्म एवं तीव्र प्रभाव डालती हैं ।

पिरामिड के अन्दर रखे जल का प्रयोग करने वाले पाचन सम्बन्धी अनियमितता से मुक्ति पाते देखे गए हैं । यही जल जब त्वचा पर लगाया जाता है तो झुर्रियाँ मिटा देता है । घावों को जल्दी भरने में भी इस प्रकार का ऊर्जा संचित जल एण्टीसेप्टिक औषधियों की तरह प्रयुक्त होता है । विश्लेषण कर्त्ताओं का कहना है कि इस प्रकार के जल के अन्दर छिपी हुई सूक्ष्म सामर्थ्य ऋणायनों की अभिवृद्धि के कारण होती है ।

पिरामिड के रहस्योद्‌घाटन के सम्बन्ध में अनेकों पुस्तकें लिखी गई हैं । टाम्पकिन्स कृत 'सीक्रेट्स ऑफ द ग्रेट पिरामिड' बिल्कुल एवं एडपेटिट की 'दि सीक्रेट पावर ऑफ पिरामिड' टोथ की 'पिरामिड पावर' आदि पुस्तकों में इन आकृतियों में छिपी सूक्ष्म शक्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । 'साइकिक डिस्कवरीज बिहाइण्ड दि आयरन करटेन' नामक पुस्तक में कहा गया है कि पिरामिडों के अन्दर विद्युत चुम्बकीय शक्तियाँ होती हैं । यह ब्रह्माण्डीय ऊर्जा इतनी सशक्त होती है कि अन्दर रखे गए किसी भी पदार्थ को सड़ने नहीं देती । इनके अन्दर हजारों वर्षों से जो शव एक विशिष्ट स्थान पर रखे हैं, वे अभी भी सुरक्षित हैं, सड़े नहीं । इसका प्रमुख कारण यह है कि जिस विशिष्ट ज्यामितीय आधार पर उन्हें बनाया गया है, उस कारण उनके अन्दर विशेष प्रकार के ऊर्जा प्रवाह विनिर्मित होते हैं और सूक्ष्म

माइक्रोवेव सिगनल्स सतत् प्रकम्पित होते रहते हैं । पूजागृहों की भाँति इन भवनों का निर्माण भी कभी किन्हीं उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही हुआ होगा, ऐसा विशेषज्ञों का मत है ।

पिरामिड के अन्दर बैठकर ध्यान साधना करने वाले साधकों पर भी कुछ प्रयोग परीक्षण हुए हैं । पाया गया है कि इसके अन्दर बैठने पर तनाव से सहज ही छुटकारा मिल जाता है और शरीर में एक नई स्फूर्ति के संचार का अनुभव होता है । जिस प्रकार पवित्र वातावरण युक्त मन्दिरों, उपासना-गृहों में प्रवेश करने और साधना उपक्रम अपनाने पर मन की एकाग्रता सधती और शान्ति की अनुभूति होती है, ठीक उसी तरह के लाभ इन संरचनाओं के अन्दर बैठने पर मिलता है । जिन्हें स्नायविक गड़बड़ियों के कारण नींद नहीं आती, वे गहरी नींद सोने लगते हैं । विचारकों, लेखकों एवं अन्वेषणकर्ताओं को अपने-अपने विषयों में अधिक गहराई तक प्रवेश करते और उच्च स्तरीय परिणाम हस्तगत करते पाया गया है । पिरामिड के अन्दर उत्तराभिमुख होकर बैठने पर कार्यदक्षता बढ़ती और अच्छे परिणाम मिलते हैं । वस्तुतः 'पिरामिडोलॉजी' एवं 'पिरामेडीटेशन' अपने आप में देवसंस्कृति की थाती के रूप में विद्यमान एक ऐसा विज्ञान है, जो गम्भीरतापूर्वक अन्वेषण, परीक्षण की अपेक्षा रखता है । यदि भवन निर्माण-कला एवं साधना विज्ञान का परस्पर सामन्जस्य स्थापित किया जा सके तो स्थापत्य के क्षेत्र में एक नूतन क्रान्ति लायी जा सकती है व परोक्ष जगत के प्रवाह से लाभान्वित हुआ जा सकता है ।

अजब तेरी कुदरत, अजब तेरा खेल

रस्टीड—जर्मनी के सेण्ट भूलारिच चर्च में एक ऊँची मीनार बनी है । इस पर एक १५६६ और १७८३ के बीच भयंकर आकाशीय बिजली चार बार गिरी । वह चार बार धराशायी हुई और नए सिरे से बनाई गई । चारों बार बिजली गिरने की तारीख १८ अप्रेल थी ।

स्पेन के वार्सिलोना नगर में एक 'सिएट सेंटिएम्ब्रे' नामक व्यक्ति हुआ है, जिसका अर्थ स्पेनी भाषा में होता है—सात सितम्बर । यह नाम उसे माता-पिता से नहीं मिला । लोगों के द्वारा थोपा गया । वह ७ सितम्बर, १७४६ को पैदा हुआ और ७ सितम्बर, १८०१ को मर गया । उसके बेटे का भी यही नाम था । वह ७ सितम्बर, १७७४ को पैदा हुआ और ७ सितम्बर, १८२६ को मरा । इतना ही नहीं उसके पोते का भी यही नाम था और जन्म-मरण का दिन भी पूर्वजों की भाँति है । पोता ७ सितम्बर, '१८१४ को पैदा हुआ और ७ सितम्बर, १८६८ को दिवंगत हुआ । तीन पीढ़ियों तक एक ही नाम और एक ही जन्म-मरण का दिन अभी तक उस देश में चर्चा का विषय है ।

जापान पर भूकम्पों की विपत्तियाँ अनेक बार आयी हैं पर छः भयानक संयोग ऐसे हैं, जो एक ही तारीख को घटित हुए और विनाश की दृष्टि से असाधारण रूप से भयानक माने गए ।

(१) १ सितम्बर, ८३७, (२) १ सितम्बर, ८५६, (३) १ सितम्बर, ८६७, (४) १ सितम्बर, ११८५, (५) १ सितम्बर, १६४६, (६) १ सितम्बर, १६२३ । इनमें से छठे ने सबसे अधिक विनाश किया ।

ऐलन वान ने अपनी पुस्तक 'इनक्रेडिबल कोइन्सीडेन्स' में अंक संयोग पर आधारित घटना का भी उल्लेख किया है । आयरलैण्ड स्थित डबलिन के निवासी एण्टनी क्लैंसी के जीवन में 'सात' संख्या का विशेष महत्त्व रहा । उसके जीवन के हर महत्त्वपूर्ण मोड़ पर सात का संयोग अवश्य रहा । एण्टनी क्लैंसी के शब्दों में—"सप्ताह के सातवें दिन, महीने की ७वीं तारीख को, वर्ष के सातवें दिन, इस सदी के सातवें वर्ष में मेरा जन्म हुआ था । मैं अपने माता-पिता का सातवाँ बेटा हूँ । यहाँ तक मेरे पिता भी अपने अभिभावक के सातवें पुत्र थे । अपनी सत्ताईसवीं वर्षगाँठ पर सातवीं घुड़-दौड़ में मैंने सात नम्बर का घोड़ा चुना और उसका नाम था—'सातवाँ बहिश्त' । मैंने उस घोड़े पर सात शिलिंग लगाए । रेस में भी उसका सातवाँ नम्बर था ।

संयोगवश संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास में १६० वर्षों से एक विचित्र परम्परा ही दिखाई पड़ती है । प्रति २० वर्ष पर राष्ट्रपति की मृत्यु अपने ही कार्यकाल में हो जाया करती थी । १८४० में ६८ वर्षीय विलियम हैरीसन राष्ट्रपति बने । मार्च १८४१ में निमोनिया से मृत्यु हो गई । १८६० में लिंकन राष्ट्रपति वने और इनकी हत्या १८६५ में हो गई । १८८० में प्रेसीडेण्ट गारफील्ड राष्ट्रपति बने और अगले वर्ष गोली लगने के कारण मर गए । १६२० में प्रीसीडेण्ट हार्डिंग ने कार्यभार सम्भाला । आप स्वाभाविक मृत्यु से १६२३ में मर गए । १६४० में फ्रेंकलिन रुजवेल्ट राष्ट्रपति बने और १६४५ आते-आते मर गए । १६६० में प्रेसीडेण्ट कैनेडी ने अपनी १६६३ की मृत्यु के पूर्व तक राष्ट्रपति पद को सुशोभित किया । १८६०, १६००, १६४० में चुने सभी राष्ट्रपति अपने कार्यकाल में मरे तो थे ही, सब दूसरी बार राष्ट्रपति कार्यकाल में थे । अपवाद रूप में वर्तमान राष्ट्रपति में रीगन ही हैं । अब तक इस शृंखला में वर्णित राष्ट्रपति में रीगन भी सबसे वयोवृद्ध हैं । वे १६८४ में दूसरी बार के लिए पुनः चुने गए ।

अमेरिका के जिम विशप ने अपने तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध कर दिया है कि एफ. कैनेडी ही अब्राहम लिंकन थे । चालीस वर्ष की आयु में लिंकन को राष्ट्रपति बनने की इच्छा हुई थी । कैनेडी को भी । दोनों विश्व शान्ति के प्रयासों में संलग्न रहे और नीग्रो स्वतन्त्रता को भी उन्होंने समान रूप से चाहा । लिंकन के चार बच्चे थे दो मर गए दो उनके साथ रहते थे । कैनेडी के भी चार पुत्र हुए, दो मर गए दो जीवित रहे । लिंकन की पहली पत्नी फैशनेबुल थी, कविता व पेन्टिंग में उसकी रुचि थी । ठीक इसी स्वभाव की पत्नी कैनेडी की थी । दोनों की आस्था धार्मिकता की ओर थी । भोजन में स्पार्श दोनों को प्रिय था । लिंकन १८६१ में राष्ट्रपति बने तो कैनेडी १६६१ में । लिंकन के प्राइवेट सैक्रेटरी का नाम था कैनेडी और कैनेडी का लिंकन । दोनों की मृत्यु शुक्रवार के दिन हुई । दोनों ही गोली के शिकार हुए और जॉन्सन नामक उपराष्ट्रपतियों ने ही दोनों का पद सम्भाला ।

किन्हीं व्यक्तियों के जीवन में कुछ अंकों का विशेष महत्त्व रहता है । प्रिंस विस्मार्क के जीवन में ३ का अंक कुछ विलक्षण संयोग लाता रहा । उनके तीन नाम थे—लाग्नवर्ग, शोपासेवी और बिस्मार्क । उन्हें तीन उपाधियाँ मिलीं प्रिस, ड्यूक तथा काउण्ट । तीन कॉलेजों से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की । तीन ही उनके पुत्र थे ।

साइप्रस के शासनाध्यक्ष मकरिआस के जीवन में १३ का अंक कुछ ऐसे ही संयोग लाता रहा। १० अगस्त, १९१३ को उनका जन्म हुआ। १३ वर्ष की आयु में चर्च में भर्ती हुए। १३ नवम्बर, १९४६ में उन्होंने प्रीस्ट दीक्षा ही। १३ जून, १९४८ में वे विशप बने तथा राजगद्दी पर बैठे। १३ मार्च, १९५१ में यूनान के राजा ने उनका अभिनन्दन किया। १३ सितम्बर, १९५९ को वे राष्ट्रपति चुने गए।

भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व. लाल बहादुर शास्त्री के जीवन में मंगलवार का विशेष महत्त्व रहा। बचपन में एक बार वे गंगा में डूबते-डूबते बचे वह दिन भी मंगलवार था। यू. पी. पार्लियामेंट्री बोर्ड के मन्त्री, १९४७ में पुलिस एवं यातायात मन्त्री, १९५१ में कांग्रेस के महासचिव, १९५२ में रेलमन्त्री, १९५७ में परिवहन मन्त्री आदि पद उन्होंने मंगलवार के दिन ही प्राप्त किए। यहाँ तक कि वे प्रधानमन्त्री भी मंगलवार को ही बने। मंगलवार को ही उन्हें स्व. राधाकृष्णन् ने भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया। ताशकन्द वार्त्ता भी उन्होंने मंगलवार को प्रारम्भ की और अन्त में उन्होंने अपना पार्थिव शरीर भी मंगलवार के दिन छोड़ा।

आयरलैण्ड क्रुक हैवेन शहर में एक ही मकान में रहने वाले दो दम्पत्तियों के एक ही दिन कुछ मिनटों के अन्तर से दो पुत्र पैदा हुए। नाम रखा गया—एलेनर गेडी तथा पैट्रिक दोनों बच्चे अलग-अलग खेलते, किन्तु एक दिन दोनों रोते-रोते घर पहुँचे तो उनके माता-पिता ने देखा कि दोनों के पैर में एक ही स्थान पर चोट लगी थी। दोनों बच्चे पढ़ रहे थे, तब कई बार ऐसा हुआ कि दोनों को परीक्षा में समान अंक मिले। दोनों का विवाह एक साथ ही तय हुआ। शादी के बाद पहला बच्चा दोनों के एक ही दिन हुआ। पैट्रिक और ऐलेनर ९६ बर्ष की आयु में एक ही दिन बीमार पड़े और साथ ही मृत्यु भी दोनों की एक समय में हुई। इन घटनाओं से आयरलैण्ड के शिक्षित व्यक्ति भी इस बात को मानने लगे कि कोई एक सार्वभौमिक सत्ता व नियम सृष्टि में अवश्य काम कर रहा है।

भारत की भुवाल रियासत के उत्तराधिकारी के मुकदमे का फैसला संसार के इतिहास में अपने ढंग का अनोखा है। रियासत का राजा रमेन्द्र राय १९०९ में मरा। उत्तराधिकारी स्थानापन्न हो गए। इसके १२ वर्ष बाद राजा प्रकट हुआ और उसने अदालत में अपनी सम्पत्ति वापस लेने का दावा किया। उसका कहना था कि घर के लोग चिता में आग लगाकर घर चले गए और उसी समय वर्षा से आग बुझ गई और वे मृतक से जीवित हो गए। स्मृति न रहने के कारण वे बारह वर्ष जहाँ-तहाँ भटकते रहे और अब वे अपनी बंगला मातृ भाषा तक भूल चुके हैं। इस दावे का उनके पूरे परिवार ने खण्डन किया। विधवा ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि यह कोई जालसाज है, उसका पति नहीं। इतने पर भी ब्रिटेन की प्रीवी कौंसिल ने सन् १९३५ में राजा के पक्ष में फैसला दिया। राजा की भारी जायदाद थी उससे तैतीस लाख रुपया वार्षिक की आमदनी थी। यह सम्पत्ति फैसले के अनुसार उस मृतात्मा को मिल गई जिसने अपने आपको सिद्ध करने और न्यायकर्त्ताओं को प्रभावित करने में विभिन्न सबूतों के आधार पर सफलता पायी। कुदरत का खेल विचित्र इसकी पहेलियाँ वस्तुतः अबूझ हैं।

किसी अविज्ञात गतिचक्र से बँधा जीवन-तन्त्र

जीवन क्रम किसी सरल गति चक्र पर परिभ्रमण करता दीखता है, जन्म, बचपन, यौवन, जरा और मरण के सामान्य चक्र में सभी परिभ्रमण करते दीखते हैं। जागने, निपटने, खाने, काम करने, थककर सो जाने की दिनचर्या ही प्रायः सभी को बितानी पड़ती है। पेट और प्रजनन की समस्या सुलझाने में ही जिन्दगी कट जाती है। अनुकूलता, प्रतिकूलता की कड़वी मीठी अनुभूतियाँ भी दिन रात की तरह आती और चली जाती हैं। लाभ-हानि के झूले में झूलते हुए, हर्ष विषाद की अभिव्यक्तियाँ प्रकट करते हुए लोग मौत के दिन सम्मान-अपमान सहन करते हुए व्यतीत करते हैं। इस ढर्रे से सभी परिचित हैं। इसलिए जन्मने, मरने और दिन गुजारने में कोई अनौखापन प्रतीत नहीं होता।

इतने पर भी यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उसके साथ कुछ विचित्र संयोग जुड़े हुए दीखते हैं और लगता है कि मनुष्य सर्वथा अपना स्वामी आप नहीं है। उसके पीछे कोई नियति तन्त्र भी जुड़ा हुआ है, जो ऐसे संयोग बिठा देता है। जिनमें व्यक्ति का अपना कुछ हाथ न होते हुए भी, वह था अत्यन्त आश्चर्यजनक। ऐसी घटनाएँ बताती हैं कि जीवन जितना सरल है उतना ही विचित्र भी है। जिसका स्वरूप जितना साधारण है उतना ही बहुत कुछ असाधारण भी, उसके साथ संयुक्त, सम्बद्ध है।

तारीखों का घटनाओं के साथ कभी-कभी ऐसा विचित्र संयोग बैठता है कि सामान्य बुद्धि यह समझने में समर्थ नहीं होती कि आखिर ऐसा किस कारण होता है, उसके पीछे प्रकट या अप्रकट रहस्य क्या है ?

जीवन के साथ जुड़ी हुई इन विचित्रताओं- विलक्षणताओं की कोई संगति प्रत्यक्ष कारणों से नहीं बैठती। तो भी उनकी प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। अध्यात्मवेत्ताओं का मत है कि अविज्ञात होते हुए उनके सुनिश्चित आधार हैं जिन्हें बुद्धि के सहारे समझ पाना सम्भव नहीं है। यथार्थता की खोज के लिए अध्यात्म की उस गुह्य विज्ञान विधा का अवलम्बन लेना होगा जिसे वैज्ञानिकों ने उपेक्षित मानकर समुचित सम्मान नहीं दिया है।

ग्रहण और उनकी प्रतिक्रियाएँ

सूर्य और चन्द्र पर लगने वाले ग्रहण क्या हैं ? इस सन्दर्भ में अब तो प्राथमिकशाला के विद्यार्थी भी बता सकते हैं कि चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने और सूर्य प्रकाश को उस तक पहुँचने में बाधा पड़ने का दृश्य ही चन्द्र ग्रहण है। इसी प्रकार सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी तक आने देने में जब चन्द्रमा व्यवधान उत्पन्न करता है, तो उसे सूर्य ग्रहण कहते हैं, पर ऐसी मान्यता सदा से नहीं थी। खगोल विज्ञान का उपयुक्त ज्ञान अब तक सर्वसाधारण को नहीं था, तब तक मात्र अटकलों और किम्बदन्तियों के सहारे ही तद् विषयक समाधान किए जाते थे।

ग्रहण के समय याचक लोग शोर मचाते, ढोल बजाते और निकलने वाले दैत्यों की भर्त्सना में जोर-जोर से अपशब्द कहते सुने जाते हैं। धार्मिक लोग उस समय विशेष रूप से जप-तप

और दान पुण्य करते हैं । विश्वास किया जाता है कि राहु केतु नामक दैत्य सूर्य चन्द्र पर आक्रमण करके उन्हें निगलने का प्रयत्न करते हैं । जितना अंग उनके मुँह में घुस जाता है । उतने से ग्रहण दृष्टिगोचर होता है । इस प्रताड़ना से इन देवताओं को बचाने के लिए दान-पुण्य, जप-तप काम आता है । इसलिए कृतज्ञता निर्वाह के लिए वैसा करने की आवश्यकता समझी और पूरी की जाती है ।

चीन देश में मान्यता थी कि आकाश में दोनों सिरों पर ड्रैगन दैत्य परिवार समेत बसते हैं । जब परिभ्रमण करते हुए चन्द्र, सूर्य उनके समीप से गुजरते हैं, तब वे दैत्य उन पर टूट पड़ते हैं । मनुष्य लोक का शोर सुनकर ही वे डरकर भागते और इन देवताओं को मुख में निगलते हैं । यूनान में भी ग्रहण को दैत्यों का आक्रमण माना जाता रहा है । अमेरिकी रैड इण्डियन और अफ्रीकी हब्शी उस समय सूर्य चन्द्र के बीमार पड़ने की किम्वदन्ती पर विश्वास करते हैं । अन्यान्य देशों में उसे भेड़ियों, कुत्तों, बाघों, साँपों का आक्रमण होने की मान्यता है । प्रशान्त के तराहती द्वीपवासियों की कल्पना इन सबसे अनौखी है । वे सूर्य को प्रेमी और चन्द्र को प्रेमिका मानते हैं और कभी सुयोग मिलने पर मधुर मिलन की बेला को ग्रहण मानते हैं । उस दृश्य को देखने में वे लज्जा अनुभव करते हैं और मुँह छिपाते फिरते हैं । फलित ज्योतिषी ग्रहणों को धरती के लिए, प्राणियों तथा वनस्पतियों के लिए अनिष्टकर मानते हैं और इस आधार पर भावी विपत्तियों का आकलन करते हैं । तन्त्र-मन्त्र पर विश्वास करने वाले सोचते हैं कि यह अवसर देव या प्रेत सिद्धि के लिए उपयुक्त मुहूर्त है । उस समय वे वैसे ही विधि-विधानों में प्रवृत्त रहते हैं ।

अमेरिका के आदिवासियों का विद्रोह शान्त करने के लिए भी कोलम्बस ने ऐसी ही चतुरता से काम लिया । उसने बागियों के नेताओं को बुलाकर कहा—तुम्हारे कृत्यों से देवता बहुत नाराज हैं । वे पूर्व सूचना के रूप में अमुक दिन चन्द्रमा को अपनी झोली में डालकर ले चलेंगे और तुम्हारे ऊपर विपत्ति बरसने का शाप देंगे । नियत समय पर आदिवासी एकत्रित हुए और उनके उस पूर्व कथन को सर्वथा सच पाया । फलतः वे बुरी तरह डर गए और विरोध छोड़कर कोलम्बस का सहयोग करने लगे ।

अन्ध-विश्वास किसी भी विचित्र घटना के साथ जुड़ सकते हैं । इन्द्र धनुष, बिजली की कड़क को देवताओं की करतूत माना जाता है और डरे हुए लोगों द्वारा उनका कोप शमन करने तथा अनुग्रह पाने के लिए पूजा, प्रार्थना का विधि-विधान अपनाया जाता रहा है । ग्रहण भी ऐसे ही देव विग्रह का एक स्वरूप समझा जाता रहा है और कई बार तो उस मान्यता से चतुर लोगों द्वारा लाभ भी उठाया जाता रहा है ।

चीन के ज्योतिषी अब से चार हजार वर्ष पूर्व ग्रहणों की भविष्यवाणी करने लगे थे । यूनानियों ने भी इस गणित को जाना और वे भविष्यवक्ता के रूप में अपनी सिद्धावस्था प्रमाणित करने लगे । एक बार तो उन्होंने इस आधार पर एक बड़े संकट को टाल देने जैसा लाभ भी उठाया । यूनान के मेडीज और लाइडियन्स के बीच जोरदार युद्ध छिड़ा था । ज्योतिषी बेलीज ने इन दिनों बड़ी चतुरता से काम लिया और घोषित किया कि इस युद्ध से सूर्य देवता अत्यधिक कुपित हैं और अपने रोष का प्रदर्शन करने के लिए वे २८ मई सन् ५८५ को काले पड़ जायेंगे, इस संकेत में उनका अभिप्रायः यह होगा कि युद्ध करने वाले यदि रुके नहीं तो उनके ऊपर दैवी प्रकोप बरसेगा और तहस-नहस करके रख देगा ।

भविष्यवाणी सच निकली । सभी ने सूर्य को दिन दहाड़े कुपित होते और काला पड़ते देखा । फलतः सन्नाटा खिंच गया । सैनिकों ने हथियार डाल दिए । युद्ध रुका और तत्काल सन्धि हो गई ।

भारत के ज्योतिषियों ने ग्रह गणित से यह जान लिया था कि २२३ चन्द्र मासों अर्थात् ६५४५ दिनों बाद ग्रहणों की गतिचक्र की पुनरावृत्ति होने लगती है । इस सिद्धान्त के हस्तगत होने से हजारों वर्ष आगे के सूर्य, चन्द्र ग्रहणों की भविष्यवाणियाँ करना सम्भव हो गया । इसी आधार पर आस्ट्रिया के देवज्ञ थियोडोर आपोल्जेर ने एक विवरण पत्र में प्रकाशित किया जिसमें भावी ८००० सूर्य ग्रहणों और ५२०० चन्द्र ग्रहणों की तारीखें तथा घण्टा मिनटें दी गई हैं । इसमें ७२०७ से २१६२ तक के निर्धारण छपे हैं । वस्तुतः इन सबकी पृष्ठभूमि भारतीय ज्योतिष शास्त्र ही रही है ।

सूर्य ग्रहण की बेला को वैज्ञानिक शोधों के निमित्त बड़ा अनुकूल माना जाता है । आमतौर से दिन में तारे नहीं दीखते पर यदि किसी गहरे कुएँ में झाँककर देखा जाय तो पानी की परछाई में दिन के समय भी तारे देखे जा सकते हैं । इसका कारण कुए के भीतर उस सूर्य प्रकाश का न पहुँचना है जो धरातल पर चारों ओर छाया रहता है और तारक दर्शन से आँखों को वंचित रखे रहता है । यही स्थिति सूर्य ग्रहण के समय भी होती है । यदि उस समय खग्रास हो अथवा अधिक ढका हो तो प्रकृति की उन विलक्षणताओं को खोजा जा सकता है जो सूर्य की सामान्य गर्मी, रोशनी के कारण देखने-समझने, पकड़ने में नहीं आती ।

भूतकाल में कितने ही महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान सूर्य ग्रहण की अवधि में ही सम्भव हुए हैं । विज्ञानी लाकेयर और जॉन्सन की संयुक्त खोजों से १८६८ में सूर्य के वातारवण में एक नया तत्व 'हीलियम' खोजा था ।

प्राणी तथा पदार्थ एक अभ्यस्त एवं सामान्य वातावरण में रहने के अभ्यासी होते हैं । पर ग्रहण बेला में न केवल प्रकाश ही घटता है, वरन् वातावरण में और भी बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है । इसकी जानकारी पक्षियों को विशेष को रूप से मिलती है । फलतः वे डरकर अपने घोंसलों में जा घुसते हैं, जबकि उससे भी अँधेरा करने वाली बदली आसमान पर छा जाने के समय उनकी सामान्य गतिविधियों में कोई अन्तर नहीं पड़ता । वातावरण का यह विचित्र परिवर्तन, सामान्य जीवन तथा पदार्थों पर भी विशेष रूप से पड़ता है । फलतः उसकी स्थिति में सावधानी रखने तथा सुरक्षा बरतने की आवश्यकता होती है । गर्भिणियों तथा भ्रूणों पर पड़ने वाले प्रभाव का इन दिनों विशेष रूप से आकलन उन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया जा रहा है ।

वर्ष १६८३ में भी चन्द्र ग्रहणों और सूर्य ग्रहणों की एक बड़ी शृंखला थी । एक वर्ष के भीतर ही छः पड़े थे । इतनी धमाचौकड़ी पिछले हजारों वर्षों से नहीं मची थी । इनके साथ जुड़ी हुई अस्त-व्यस्तता को देखते हुए हमें भारी कठिनाइयों का ध्यान रखते हुए अधिक आत्म-बल बढ़ाना और साहस सँजोना चाहिए ।

अन्तर्ग्रही प्रवाहों का व्यष्टि चेतना से सघन सम्बन्ध

'आकल्ट साइन्स इन मेडिसिन' पुस्तक के लेखक हैं—फ्रान्ज हार्टमान । चिकित्सा विज्ञान के मूर्धन्य विद्वानों में इनकी गणना होती है । लेखक ने आधुनिक चिकित्सा के जन्मदाता थियोफ्रेस्टस, पार्सेल्सस, और उनकी पुस्तक 'दि फण्डामेण्डो सेपियेण्टी' का उल्लेख किया है । पार्सेल्सस अपने समय के प्रख्यात चिकित्सा शास्त्री थे । उनका कहना था कि प्रचलित प्रणाली ने मनुष्य के स्थूल शरीर (जिसे एनीमल बॉडी नाम दिया है), की ही जानकारी उपलब्ध की है किन्तु मनुष्य-शरीर में निवास करने वाली चेतन सत्ता की ओर उसने कोई ध्यान नहीं दिया । जो व्यष्टि में होते हुए भी समष्टि के चैतन्य-प्रवाहों से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ी हुई है और भले-बुरे प्रभावों से प्रभावित होती है । पार्सेल्सस का मत है कि मनुष्य की संरचना इतनी सरल नहीं है कि उसे मात्र शरीर के विश्लेषण द्वारा समझा जा सके । न ही स्वास्थ्य और रुग्णता का कारण मात्र स्थूल अवयव हैं । इनके कारणों में अदृश्य कारणों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । उनकी उपेक्षा कर न तो सुस्वास्थ्य का लाभ प्राप्त किया जा सकना सम्भव है और न ही रोगों का वास्तविक कारण तथा निवारण का स्थायी उपचार ढूँढ़ सकना । पार्सेल्सस के अनुसार सामान्य ही नहीं असामान्य, असाध्य, शारीरिक तथा अनेकों मनोरोगों को दूर करने के लिए शरीर निदान, मनोविश्लेषण के साथ-साथ अन्तर्ग्रहीय प्रभावों की जानकारी प्राप्त करना अतीव आवश्यक है, क्योंकि पृथ्वी सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रहों से जुड़ी है और उनकी गति और स्थिति से प्रभावित होती है । अस्तु, मानवी स्वास्थ्य मात्र पृथ्वी के वातावरण से ही सम्बन्धित नहीं हैं, बल्कि अन्तर्ग्रहीय परिस्थितियों से भी जुड़ा हुआ है ।" इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डालने वाली उनकी पुस्तक 'एस्ट्रोनामिया' कितने ही गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करती है ।

पुस्तक में वर्णित तथ्यों के अनुसार शरीर के स्थूल-सूक्ष्म, जड़-चेतन आदि घटकों का सम्बन्ध विभिन्न ग्रह, नक्षत्रों से सतत् बना हुआ है । सात ग्रहों का तारतम्य इस प्रकार है । 'शनि'—प्रकृति—पृथ्वी तत्व । इन्द्रिय-गम्य सभी पदार्थ इसके अन्तर्गत आ जाते हैं । सूर्य—प्राण का अधिष्ठाता । यह हमारे जीवन में क्रियाशक्ति प्राणशक्ति के रूप में परिलक्षित होता है । चन्द्रमा-मनःसंस्थान का स्वामी । यह चिन्तन को हर क्षण प्रभावित करता है । मंगल—इच्छा, वासना, काम से सम्बन्धित है । बुध—मन की विविध क्षमताओं से सूक्ष्म रूप से जुड़ा है । गुरु (बृहस्पति)—आध्यात्मिक शक्ति, सम्वेदना, भावना, श्रद्धा को प्रभावित करता है । शुक्र—अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों को जन्म देता है ।

पार्सेल्सस का मत है कि ज्योतिर्विज्ञान मात्र आकाशीय पिण्डों की गति, स्थिति की जानकारी तक सीमित नहीं है वरन् उनका पृथ्वी के वातावरण एवं प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन, विश्लेषण और परस्पर आदान-प्रदान से लाभ उठाना भी उसका उद्देश्य है । इस प्रश्न के उत्तर में कि यदि अन्यान्य ग्रह पृथ्वी के जीवन को प्रभावित करते हैं तो उनका प्रभाव सर्वत्र एक जैसा क्यों नहीं दीखता है, पार्सेल्सस का कहना है कि "जिस प्रकार एक ही भूमि पर बोए गए आम, नीम, बबूल अपनी-अपनी प्रकृति के अनुरूप गुण धर्मों का चयन कर लेते हैं । सोने की खदान की ओर सोना, चाँदी की ओर चाँदी और लोहे की खदान की ओर लौह कण आकर्षित होते हैं । आकाश में संव्याप्त ईथर तत्व में फैले विभिन्न प्रसारणों में रेडियो मात्र उस स्टेशन की आवाज ग्रहण करता है । जहाँ से उसकी सुई का सम्बन्ध जुड़ा होता है । ठीक उसी प्रकार पृथ्वी के जीवधारी विश्व चेतना के अथाह महासागर में रहते हुए भी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुरूप अन्तर्ग्रही अनुदानों को ग्रहण करते हैं तथा बुरे प्रभावों से प्रभावित होते हैं । उदाहरणार्थ पूर्णिमा के दिन जब चन्द्रमा अपने पूर्ण यौवन पर होता है तो मनःस्थिति पर प्रभाव डालता है, पर यह एक समान नहीं होता है । कमजोर और असन्तुलित मनःस्थिति के व्यक्तियों में इसकी प्रतिक्रिया अधिक दिखाई पड़ती हैं अपेक्षाकृत दृढ़ मनःस्थिति वालों के ।

बोस इन्स्टीट्यूट कलकत्ता के माइक्रोबायोलॉजी के दो वैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि सौर विकिरण से वायुमण्डल के जीवाणुओं का भी नियन्त्रण होता है । १६ फरवरी ८० के पूर्ण सूर्य ग्रहण के अवसर पर कलकत्ता के प्रख्यात बोटे निकल गार्डन के वायुमण्डल में बैक्टीरिया, फंजाई एवं घातक जीवाणु प्रचुर मात्रा में पाये गए । सूर्य ग्रहण के पूर्व और उसके बाद विभिन्न जीवाणुओं का अध्ययन करने पर पाया गया कि सूर्यग्रहण के समय न केवल इनकी संख्या में वृद्धि पायी गई, अपितु मारक क्षमता भी अपेक्षाकृत अधिक थी । इस तथ्य की पुष्टि रीवां विश्वविद्यालय के विक्रम फिजिक्स सेण्टर और इनवॉयरनमेण्टल बायोलॉजी सेण्टर के वैज्ञानिकों के प्रयोगों से हुई । इन वैज्ञानिकों ने देखा कि सूर्य ग्रहण के अवसर पर पानी को खुला छोड़ देने पर उसमें विभिन्न प्रकार के विषाणु और जीवाणु वायुमण्डल से आकार उसे विषाक्त कर देते हैं । जबकि अन्य अवसरों पर ऐसा नहीं होता ।

भारतीय ऋषियों का निर्देश है कि सूर्य और चन्द्र ग्रहण के समय किसी भी प्रकार का आहार ग्रहण न किया जाय । पानी आदि पीना भी वर्जित है । उस दिन उपवास आदि करने की परम्परा भी सदियों से चली आ रही है । तत्वविद् ऋषि पृथ्वी पर पड़ने वाले अन्तर्ग्रही दुष्प्रभावों से परिचित थे तथा यह जानते थे कि ग्रहण के समय खान-पान से शरीर पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है । अन्तरिक्ष से आने वाले दुष्प्रभावों से बचाव के लिए व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर उपासना—साधना के सूक्ष्म उपचार किए जाते थे, जो आज भी विभिन्न स्थानों पर व्यक्तिगत स्तर पर छिटपुट रूप में प्रचलित हैं । सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के बाद नदियों आदि में स्नान करने की परम्परा है जो पूर्णतया वैज्ञानिक है । वैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि प्रवाहित जल में प्राण ऊर्जा की प्रचुरता होती है । शरीर पर सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण से पढ़ने वाले वायुमण्डलीय विषाणुओं का आक्रमण होता है । स्नान करने से नदी के जल की प्राण ऊर्जा उन्हें मार डालती है । इस अवसर पर उपवास, स्नान, उपासना आदि कृत्यों को कभी महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता था, पर नवीन वैज्ञानिक तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि सभी क्रियाएँ पूर्णतया वैज्ञानिक सुरक्षा और उपचार की समर्थ माध्यम हैं ।

शरीर का स्थूल पक्ष पृथ्वी एवं सम्बन्धित वातावरण से, पर सूक्ष्म घटक अन्तरिक्षीय सूक्ष्म चैतन्य प्रवाहों से जुड़ा हुआ है तथा भले-बुरे प्रभावों से प्रभावित होता है । अस्तु, स्थूल अध्ययन,

विश्लेषण एवं उपचार के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों के साथ-साथ अन्तर्ग्रही प्रभावों की जानकारी रखना तथा उपचार के लिए उपाय ढूँढ़ना भी आवश्यक हो जाता है । कहना न होगा कि यह समग्र जानकारी अध्यात्म सम्मत ज्योतिर्विज्ञान द्वारा ही सम्भव है ।

गणितीय नियमों में बँधे हम सब

संसार एक सुनिश्चित और व्यवस्थित क्रम से चल रहा है । यद्यपि इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक घटक ग्रह, नक्षत्र से लेकर कीट-पतंगों तक सब कुछ गतिशील है । सब चलते हैं, कुछ भी स्थिर नहीं रहता और सब की गति अलग-अलग है, परन्तु सब इतने व्यवस्थित ढंग से गतिशील हैं कि कोई किसी की व्यवस्था में व्यतिक्रम नहीं पहुँचाता । उदाहरण के लिए अपने सौरमण्डल को ही लिया जाय । पृथ्वी समेत इस परिवार में नौ ग्रह हैं । इनमें कुछ सूरज के सबसे पास हैं और यम, प्लूटो सबसे दूर । यह आकार में सबसे छोटे हैं फिर भी दोनों की स्थिति एकदम भिन्न है । बुध सूरज के पास रहने से गर्मी में झुलसता रहता है तो प्लूटो सर्दी के मारे जमा रहता है ।

नवों ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा बड़े अनुशासित ढंग से करते रहते हैं । यदि उनमें से कोई भी ग्रह अपनी कक्षा छोड़कर थोड़ा भी इधर-उधर जाय तो उसके अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न हो सकता है । पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी ९ करोड़ ३० लाख मील है । यदि पृथ्वी अपनी कक्षा से हट कर जरा भी सूर्य की ओर खिसक जाय तो न केवल यहाँ का मौसम भयानक रूप से गर्म हो उठे, बल्कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव पर जमी हुई बर्फ पिघलकर जल प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दे । इसी प्रकार यदि पृथ्वी अपनी कक्षा छोड़कर सूर्य से जरा-सी दूरी पर खिसक जाय, तो यहाँ इतना शीत पड़ने लगे कि समुद्र और नदी-नालों सहित पृथ्वी का सम्पूर्ण जल भण्डार जमकर बर्फ हो जाय और जीना भी दूभर होने लगे ।

पृथ्वी की तरह अन्यान्य ग्रह भी अपनी समान दूरी पर रहते हुए इस सौर परिवार के अनुशासित सदस्य बनकर जी रहे हैं । इसी आधार पर प्राचीन काल में मनीषियों ने ज्योतिष विद्या की शोध की थी और ग्रह, नक्षत्रों का अध्ययन कर वे निष्कर्ष प्राप्त किए थे जो आज भी सत्य हैं । इतना ही नहीं उन्होंने गहन अन्वेषणों और अनुसन्धान के आधार पर यह भी देखा और जाना था कि ग्रह, नक्षत्र ही नहीं मनुष्य और अन्य प्राणियों का जीवन क्रम भी एक गणितीय नियम के अनुसार चलता है । इन नियमों की शोध भी कर ली गई थी, परन्तु कालान्तर में वह विद्या लुप्त हो गई तथा ज्योतिष के नाम पर जीविका कमाने, लोगों को ठगने वालों का ही वर्ग बढ़ने और फलने-फूलने लगा ।

ऐसी बात नहीं है कि ज्योतिर्विज्ञान कोई कपोल कल्पना और कोरी गप्पबाजी हो । जब निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए इस विद्या का उपयोग किया जाने लगा तो स्वाभाविक ही इस विद्या का दुरुपयोग हुआ, सच्चाई को छिपाया गया और लाभ को महत्त्व देने के कारण झूठे नियम सिद्धान्त गढ़े गए । इतने पर भी यह विद्या पूरी तरह लुप्त नहीं हुई है । प्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिषी कीरो ने अपनी पुस्तक 'बुक ऑफ नेवर्स' में अपनी भारत यात्रा का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि जब मैं भारत यात्रा के लिए गया तो मुझे ऐसे ब्राह्मणों के सान्निध्य में रहने का सुअवसर मिला, जो प्रकृति के बहुत से गूढ़ रहस्यों को अपने हृदय में छिपाये हुए थे । उन्होंने कृपा करके मुझे ऐसी कई बातों का ज्ञान कराया । उनमें से एक तो यह थी कि अंकों का मनुष्य जीवन पर असाधारण प्रभाव पड़ता है । कहा जा सकता है मानवीय जीवन की घटनाएँ एक सुनिश्चित गणितीय नियमों के अनुसार घटती हैं ।

कीरो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में नौ वर्षों का एक चक्र आता है और प्रति नवें वर्ष उसके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना घटती है । उन्होंने अपनी पुस्तक में कई उदाहरणों से यह सिद्ध किया है । इतिहास की घटनाएँ भी कई बार इस चमत्कारिक अन्तर से घटती हैं कि उनमें भी अंकों की एक लयबद्धता देखी जा सकती है । सन् १२१५ में जन्मे फ्रांस के सन्त लुई एक महान् क्रान्त दृष्टा थे । उनके ठीक ५३९ वर्ष बाद सन् १७५४ में फ्रांस के सम्राट लुई सोलहवें का जन्म हुआ । दोनों के जीवनक्रम में इतनी समानता थी कि कई लोग लुई १६ वें को सेण्ट लुई का अवतार मानते थे । सेण्ट लुई के जन्म के १० वर्ष बाद उनकी बहन इसाबले का जन्म हुआ । सम्राट लुई की बहन भी उनसे १० वर्ष छोटी थी और उसका नाम भी इसाबले से मिलता जुलता ही था, एलिजाबेथ । दोनों के पिताओं की मृत्यु उनकी आयु के १२वें वर्ष में हुई । १५ वर्ष की आयु में सेण्ट लुई बीमार पड़े और सम्राट लुई भी इसी अवस्था में उसी रोग के शिकार हुए । दोनों का विवाह १७वें वर्ष में हुआ ।

सेण्ट लुई ने २९वें वर्ष में सन् १२४३ में इंग्लैण्ड के बादशाह हेनरी तृतीय से युद्ध के बाद सन्धि वार्त्ता की और इसके ५३९ वर्ष बाद लुई १६वें ने भी २९ वर्ष की अवस्था में इंग्लैण्ड के बादशाह जार्ज तृतीय से युद्ध के बाद सन्धि की । सन् १२४९ में पूर्वी देश का एक राजकुमार सेण्ट लुई से ईसाई बनने के लिए मिला । सम्राट लुई के पास भी १७८८ में एक राजकुमार ने अपना राजदूत इसी आशय से भेजा । ३५ वर्ष की आयु में सन्त लुई अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण बन्दी बनाये गए और इसी आयु में सम्राट लुई को भी बन्दी बनना पड़ा । इसी आयु में १२५० में सेण्ट लुई को सन्त पद से हटाया गया और सम्राट लुई भी ठीक ५३९ वर्ष बाद सत्ता से हटाये गए । ३६ वर्ष की आयु में सन्त लुई ने ट्रिस्टन की स्थापना की व क्रान्ति का उद्घोष किया, तो सम्राट लुई ने भी ३६वें वर्ष में वैस्टिन के पतन के साथ क्रान्ति का शुभारम्भ किया । उसी वर्ष सेण्ट लुई ने जैकब की स्थापना की थी और ५३९ वर्ष बाद सम्राट लुई ने भी ।

सन् १२५३ में सेण्ट लुई की माँ इसाबले का स्वर्गवास हुआ । ५३९ वर्ष बाद उसी प्रकार सम्राट लुई की माँ ने भी १७९२ में देह त्याग किया । ३९वें वर्ष में सेण्ट लुई अवकाश ग्रहण कर जैकोबिन बने । सम्राट लुई का जीवन भी ५३९ वर्ष बाद १७९३ में जैकोबियनों के हाथों हुआ । इस प्रकार दोनों के जीवन की घटनाओं में अद्भुत साम्य है । सभी घटनाएँ ५३९ वर्ष के अन्तर से हुई ।

इसी प्रकार लिंकन और कैनेडी के जीवन में अद्भुत साम्य है । लिंकन व कैनेडी दोनों गहरी धार्मिक भावनाओं वाले थे तथा दोनों ही बाइविल के प्रेमी पाठक थे । दोनों विश्व शान्ति के उपासक थे । ४० वर्ष की आयु में दोनों ने राष्ट्रपति बनना चाहा । दोनों ने नीग्रो स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर प्रयत्न किए । लिंकन के चार बच्चे थे, उनमें से दो मर गए, शेष दो से उन्हें

गहरा प्यार था । कैनेडी के भी चार बच्चे हुए उनमें से दो का निधन हो गया शेष दो से उन्हें भी अगाध स्नेह था ।

लिंकन और कैनेडी के जीवन क्रम में प्रायः १०० वर्षों का अन्तर पाया जाता है । लिंकन १८६० में अमेरिका के राष्ट्रपति बने और कैनेडी १९६० में । लिंकन तीन वर्ष तक ही अमेरिका के राष्ट्रपति रह सके और १८६३ में उनकी हत्या कर दी गई । कैनेडी की हत्या भी इसके १०० वर्ष बाद १९६३ में हुई । दोनों ही अपना शासनकाल पूरा न कर सके । दोनों गोली से मारे गए और एक ही दिन—शुक्रवार को लिंकन की मृत्यु के बाद उनका पद सँभाला । उपराष्ट्रपति जॉन्सन ने जो दक्षिण अमेरिका के थे, कैनेडी की मृत्यु के बाद भी इस जिम्मेदारी को सम्हालने वाले उपराष्ट्रपति का नाम भी जॉन्सन ही था और वे भी दक्षिणी अमेरिका के ही थे ।

लिंकन की धर्मपत्नी बहुत फैशन प्रिय और फिजूल खर्च करने वाली थी कैनेडी की पत्नी भी विलासिता प्रिय थी । लिंकन के प्राणों की सर्वाधिक चिन्ता कैनेडी नामक अधिकारी को रहती थी और कैनेडी की सुरक्षा के लिए उनका निजी सचिव लिंकन सर्वाधिक सतर्क रहता था ।

इसके अतिरिक्त अमेरिका के हर पाँचवे चुनाव में चुना जाने वाला राष्ट्रपति अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाया है, यह भी एक विचित्र बात है । सन् १८४० से १९६० तक हर बीसवें साल हुए चुनाव में जीते हुए राष्ट्रपति को अपना कार्यकाल पूरा किए बिना ही अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा है । १८४० का चुनाव विलियम हेनरी हैसिसन जीते थे, जो पद ग्रहण करने के एक माह बाद ही निमोनिया से मर गए । १८६० में राष्ट्रपति चुने गए अब्राहम लिंकन की हत्या हो गई । २० वर्ष बाद १८८० में जब गारफील्ड अमेरिका के राष्ट्रपति बने, तो कुछ ही महीनों के बाद उन्हें भी मार डाला गया । १९०० में मैक्किनली अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए थे और वे अपना पद सँहालने के छः महीने बाद ही हत्यारे की गोली का शिकार हुए । १९२० में राष्ट्रपति बने हार्डिंग पद ग्रहण के ढाई वर्ष बाद ही काल कवलित हो गए । १९४० में वे चौथी बार अमेरिका के राष्ट्रपति बने । फ्रेंकलिन रुजवेल्ट की भी एक महीने बाद अकाल मृत्यु हो गई । सन् १९६० में राष्ट्रपति पद का चुनाव कैनेडी ने जीता था, पर वे भी अपना कार्यकाल पूरा कहाँ कर पाये ?

भारतीय इतिहास में प्रति नवें दसवें वर्ष महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटती रहीं । अधिक दूर न जायें, प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय से ही देखें तो प्रति नवें-दसवें वर्ष यहाँ ऐतिहासिक परिवर्तन होते रहे हैं । पहला स्वतन्त्रता संग्राम १८५७ में लड़ा गया, दूसरे ९ वर्ष बाद सन् १८६६ में उड़ीसा में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, जिसमें एक ही वर्ष के भीतर १० लाख व्यक्ति मारे गए । यह दुर्भिक्ष लगातार फैलता गया और ६८-६९ तक राजपूताना तथा बुन्देलखण्ड तक पहुँच गया ।

सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना हुई । जिसने भारतीय संस्कृति को एक नई दिशा व नया आधार प्रदान किया तथा पराधीन राष्ट्र ने आत्म गौरव की भावना उत्पन्न की । सन् १८८४ में ए. ओ. ह्यूम ने देश की युवा शक्ति को ललकारते हुए 'इण्डियन नेशनल यूनियन' की स्थापना की जो अगले वर्ष इण्डियन नेशनल कांग्रेस के रूप में विकसित हुई ।

सन् १८९२ में कांग्रेस अधिवेशन में पहली बार सरकार की कटु आलोचना की गई । इस अधिवेशन के अध्यक्ष गोपाल कृष्ण गोखले थे । सन् १९०२ में बंगाल के भीतर वह राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई जिसे तोड़ने के लिए लार्ड कर्जन ने बंगला का कदम उठाया और उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि १९०५ तक विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी के प्रचार का कार्यक्रम तीव्रगति से चल पड़ा । १९११ में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ उग्रतर हो गईं और अंग्रेजी शासन का तख्ता उलटने के लिए आवेगपूर्ण कदम उठाये जाने लगे ।

सन् १९२० में कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा बनायी गई और जोर-शोर से यह आन्दोलन आरम्भ किया गया । इसके ९ वर्ष बाद १९२९ में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने पूर्ण स्वतन्त्रता का झण्डा फहराते हुए कहा, "कांग्रेस के संविधान की प्रथम धारा में स्वराज्य शब्द का अभिप्राय पूर्ण स्वतन्त्रता से है ।" सन् १९३८ में बिहार, संयुक्त प्रान्त और मद्रास आदि स्थानों पर व्यापक साम्प्रदायिक दंगे हुए । सन् १९४७ में भारत को स्वतन्त्रता मिलने तथा देश-विभाजन होने की घटनाएँ तो सर्वविदित ही हैं ।

इसके नौ वर्ष बाद १९५६ में चीन सरकार ने पहली बार वह नक्शा प्रकाशित किया, जिसमें भारत के सीमा क्षेत्रों को अपने देश का भूभाग बताया गया । यहीं से सन् ६२ की चीन भारत की लड़ाई के बीज पड़े । १९५० के नौ वर्ष बाद १९५९ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया और ६२ के बाद नौ वर्ष के अन्तराल से ही सन् १९७१ में पुनः भारत पाक संघर्ष हुआ ।

व्यक्तियों के जीवन क्रम में तो ऐसी कई संगतियाँ मिल जायेगीं जिनसे सिद्ध होता है कि मनुष्य का जीवन क्रम और इतिहास किन्हीं गणितीय नियमों के आधार पर चलता है । इन नियमों को समझा जा सके तो इस तथ्य की पुष्टि में पर्याप्त आधार मिल जाते हैं कि सारा संसार एक नियम व्यवस्था के अन्तर्गत चल रहा है । व्यक्ति हो या समाज, देश या विश्व, ग्रह, नक्षत्र हों या ब्रह्माण्ड, न केवल मर्यादा नियमों का वरन् समय मर्यादाओं से भी बँधे हुए हैं । इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मनुष्य भाग्य के हाथ की कठपुतली है, बल्कि उसे इस व्यवस्था को समझना चाहिए तथा उस व्यवस्था की नियामक सत्ता के निर्देशों, आदेशों का पालन करना चाहिए ।

समूचा ब्रह्माण्ड एक चैतन्य शरीर

तत्वदर्शियों का यह मत है कि जड़ और चैतन्य में भेद हमें हमारी स्थूल दृष्टि के कारण दिखाई पड़ता है । वस्तुतः जड़ता कहीं भी नहीं है । ब्रह्माण्ड के कण-कण में चेतना संव्याप्त है । मानवी काया और विराट ब्रह्माण्ड भी उसी चेतना के महासागर का एक अंग होने के नाते परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं । इस तत्व-दर्शन का प्रतिपादन कर विश्व भर में फैलाने एवं विज्ञान का स्वरूप देने का कार्य भारत से ही आरम्भ हुआ व इसे ज्योतिर्विज्ञान नाम दिया गया । इसका उद्देश्य यही था कि आकाश में ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति का मौसम विज्ञान और प्राणी समुदाय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाय । विडम्बना यही है कि इस विद्या का फलित ज्योतिष के नाम पर दुष्प्रभावों की

भय-विभीषिका फैलाने के रूप में दुरुपयोग अधिक हुआ है, फिर भी छुटपुट प्रयास ऐसे चले हैं जिन्हें यथार्थवादी एवं भ्रान्ति निवारक कहा जा सकता है ।

भारतीय ज्योतिष की नींव बड़ी गहरी, वैदिक काल से पड़ी प्रतीत होती है । सृष्टि के निर्माण काल के बारे में विज्ञान तथा इस ज्योतिष से बड़ा तालमेल बैठता है । काल गणना करके मानव वर्ष तथा देव वर्ष बने हैं । ३६० मानव वर्षों का एक देव वर्ष कहा जाता है । १२ हजार वर्षों का एक देवयुग और १००० देव युग को ब्रह्मा जी का एक दिन कहा जाता है । एक देव युग में सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग क्रमशः ४८, ३६, २४ और १० हजार वर्ष के होते हैं । प्रत्येक युग के आरम्भ तथा अन्त में पड़ने वाली सान्ध्य वेला को भी वर्गीकृत किया गया । आरम्भिक सान्ध्य वेला को सन्ध्या और अन्तिम चरण को सन्ध्यांश कहा गया । भारतीय ज्योतिर्विद् यह भी बताते हैं कि कलियुग, द्वापर, त्रेता और सतयुग में सन्ध्याएँ क्रमशः १००, २००, ३०० और चार-चार सौ वर्ष की पड़ती हैं । एक युग की सन्ध्या और सन्ध्यांश का समय एक जैसा होता है । युगों के मुख्य भाग सतयुग में ४०००, त्रेता में ३०००, द्वापर में २००० और कलियुग में १००० वर्षों के कहे गए हैं ।

ज्योतिष शास्त्र का आधार गणित को दिलाने का श्रेय आर्य भट्ट को जाता है । अनेक कठिन प्रश्नों को सूक्ष्मीकृत करके उन्होंने मात्र ३० श्लोकों में सीमित कर दिया । प्रसिद्ध ज्योतिष सिद्धान्त के काल क्रिया पाद अध्याय में तिथि नक्षत्र की गणना की गई है । सूर्य सिद्धान्त में ब्रह्माण्ड की ही नहीं काल विभाजन की भी गवेषणा की गई है ।

बाराह मिहिर की पंच सिद्धान्तिका में चन्द्रमा की कलाओं की विवेचना है । ग्रन्थ यन्त्राध्याय के अनुसार काल के सूक्ष्म अवयवों का ज्ञान बिना यन्त्र के असम्भव है । राशि वलय, नाड़ी वलय या शंकुधरी, चक्र चाप, सूर्य फलक और भित्ति यन्त्र जैसे यन्त्रों का विशद् वर्णन भाष्कराचार्य ने किया है । तदुपरान्त ज्योतिष में कुछ शतकों तक पठार सा रहा, क्योंकि उसमें कोई ठोस कार्य सम्पन्न नहीं दीखते ।

१६८२ में सवाई जयसिंह का जन्म हुआ । बड़े होकर पहले उन्होंने जन्तर-मन्तर दिल्ली में वेधशाला बनवाई और बाद में जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा में वेधशालाएँ स्थापित कराईं । यह दुर्भाग्य ही है कि अन्तिम तीन वेधशालाएँ अब खण्डहर स्वरूप ही हैं । इतना ही नहीं महाराजा जयसिंह का विशाल ग्रन्थागार भी विनष्ट हो गया है । उन्होंने पं. जगन्नाथ से टॉलेमी के 'सिनटैविसस' का अनुवाद कराया । आधुनिक इक्वेटोरियल यन्त्र की भाँति ही उनका बनवाया हुआ चक्र यन्त्र प्रसिद्ध है ।

आज की दिल्ली की कुतुबमीनार का निर्माण कभी सम्राट समुद्र गुप्त ने कराया था । परन्तु आमतौर पर लोग इसे कुतुबुद्दीन ऐबक का बनाया मानते हैं । यह इतिहास की एक बड़ी भूल है । इस मीनार का वास्तविक नाम 'विष्णु ध्वज' था । इसे वेधशाला की केन्द्रीय मीनार के रूप में बनवाया गया था । प्रो. डी. त्रिवेदी द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार, इस मीनार का निर्माता समुद्रगुप्त ही था । पास की विष्णुपद पहाड़ी में लोहे का स्तम्भ भी खड़ा किया गया था । जिस पर गुप्तकालीन लिपि में खुदे सूत्र हैं ।

डॉ. त्रिवेदी की जानकारी से यह भी स्पष्ट होता है कि यह मीनार ५ डिग्री कोण पर झुकी हुई है और २२ जून को दोपहर में उसकी छाया नहीं पड़ती । सर्वविदित है कि यह दिन उत्तरी गोलार्द्ध का सबसे बड़ा दिन माना जाता है । कुतुबमीनार गणित के सिद्धान्तों के आधार पर बनायी गई थी । इसके प्रत्येक कोने के बीच की दूरी ३० डिग्री तथा ३५ डिग्री है । त्रिकोण भित्ति की गणना से इसकी ऊँचाई आधुनिक इकाई में ८७०३ मीटर है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक भौतिक विज्ञानियों द्वारा प्रणीत ब्रह्माण्डीय एकत्व का सिद्धान्त ऋषियों को बहुत पहले ही मालूम हो चुका था । इसकी झाँकी हम आर्ष ग्रन्थों में पाते हैं । भारतीय ऋषि सदा से इस बात को कहते आये हैं कि इस जगत को दो मार्गों में समझा जा सकता है । अपरा विद्या और परा विद्या उनके अनुसार अपरा विद्या निकृष्ट स्तर की है, जो पदार्थ जगत के लिए ही लागू होती है । दूसरी तरफ परा विद्या को अतीन्द्रिय व सूक्ष्म योग शक्ति ग्राह्य माना गया है । यह वस्तुतः उच्चस्तरीय गणित है । जिससे वैदिक काल में विश्व की संरचना व काल गणना का अध्ययन किया जाता था ।

चिर पुरातन वेदों का सम्बन्ध परा विद्या से है और ज्योतिष को वेदों का नेत्र कहा गया है । अतः ज्योतिष को भी परा विद्या से ही सम्बन्धित बताया गया है, चूँकि परा विद्या एक उच्चस्तरीय गणित है अतः ज्योतिष भी उसी स्तर की गणित विद्या है । इन महान् ग्रन्थों के अनुसार इस महान् विद्या ज्योतिर्विज्ञान का मूलभूत आधार वस्तुतः चन्द्रमा, सूर्य तथा सौर जगत के अन्यान्य ग्रहों का पृथ्वी तथा उसके निवासियों से अन्योन्याश्रित सम्बन्धों एवं सम्भावित प्रभावों का अध्ययन है ।

ज्योतिष का तात्विक अर्थ शक्ति अथवा नक्षत्र है । सर एम. एम. विलियम ने अपनी संस्कृत से अंग्रेजी शब्दकोष में ज्योतिष की इस प्रकार व्याख्या की है—"सत्व गुण से व्याप्त मनःस्थिति अथवा प्रशान्त मनःस्थिति अथवा ब्रह्म-ज्योति अथवा सर्वोच्च सत्ता के रूप में बोधगम्य प्रकाश ।" एक शब्द में ज्योतिष को चेतन सत्ता की पारस्परिक क्रिया को विज्ञान कह सकते हैं अर्थात् तत्वों अथवा शरीर के अवयवों, मन एवं ब्रह्माण्डीय शक्तियों के बीच पारस्परिक संयोग क्रिया का परिणाम ही ज्योतिर्विज्ञान है ।

ब्रह्माण्ड विद्या (ज्योतिष शास्त्र) में ग्रहों को एक राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था क्रम में रखा गया है, जिसमें सूर्य राजा का प्रतिनिधि है, चन्द्रमा रानी का तथा बुध राजकुमार का । इस सबके पीछे भी गणितीय सिद्धान्त काम करते हैं । प्राचीन आर्ष ज्योतिषियों ने ज्योतिर्विद्या को एक ब्रह्माण्डीय अनुशासन के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसमें ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम, निष्ठा व्यक्त की गई है । ज्योतिष का उन्होंने पवित्र मन्त्र के रूप में ध्यानपूर्वक अध्ययन किया एवं ज्योतिष को ज्ञान का समुद्र कहा है । इस विद्या को परम पावन परा विद्या के रूप में प्रतिपादित किया गया, जिसकी गहराईयाँ तथा सीमाएँ अनन्त हैं । इसीलिए भारतीय ज्योतिष शास्त्रियों में उपरोक्त संकेत रूपक स्थापित किए हैं, जिससे इस विद्या के रहस्यों को समझा जा सके ।

ब्रह्माण्ड रसायन जैविकी के अनुसार राशि चक्र के बारह चिन्ह काल पुरुष के, महाकाल के शरीर के अंग हैं । पहला राशि चिन्ह मेष है जो काल पुरुष के मस्तिष्क नियन्त्रण केन्द्र का प्रतिपादन

करता है । वृषभ चेहरे का प्रतीक है । मिथुन गर्दन तथा सीने के ऊपरी हिस्से का तथा कन्धों का चिन्ह है । कर्क हृदय, सिंह पेट, कन्या नाभि, तुला आँतों, वृश्चिक गुप्तांगों, धनुष जंघाओं, मकर जोड़ों, कुम्भ घुटनों के नीचे वाले भागों तथा मीन शरीर के अन्तिम निचले हिस्से पैरों का प्रतीक है ।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्माण्डीय पुरुष के शरीर के विभिन्न अंगों के रूप में ग्रहों को चिन्हित किया गया है । चन्द्रमा मन है । मंगल शक्ति है । बुध वाक् है । गुरु काल पुरुष का ज्ञान, स्वास्थ्य, समृद्धि सन्तति तथा सुख सम्बन्धी पक्ष है । शुक्र आकर्षण शक्ति, लैंगिक प्रेम तथा उपभोग का प्रतीक है । शनि तितीक्षा, व्यथा एवं अन्ततः मुक्ति की वेदना का प्रतीक है । जिसमें मिलन की सम्भावनाएँ निहित हैं ।

ब्रह्माण्डीय विद्या में सामाजिक, राजनैतिक प्रतीक भी है । जैसे—सूर्य—राजा, चन्द्रमा—रानी, गुरु—शुक्र, मन्त्री, मंगल—सेनापति, बुध—राजकुमार तथा शनि सेवक हैं । ये प्रतीक मात्र हैं जो उनके अधिकार क्षेत्र का बोध कराते हैं, जिसकी परिधि में सृष्टि का घट-घट आ जाता है । काल पुरुष चार्ट, जो ग्रहों की जानकारी का मूल आधार है, की सहायता लेकर किसी भी व्यक्ति की जन्म कुण्डली बनाकर व्यक्ति के शारीरिक-मानसिक विकास की जानकारी मिल सकती है । साथ ही भावी भावनाओं की जानकारी देकर दिशाधारा निर्धारित की जा सकती है । यदि किसी व्यक्ति का सूर्य ग्रह ठीक जगह स्थित तथा बलवान है, तो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति तथा नियन्त्रण शक्ति ठीक होने की जानकारी मिलती है । शक्तिशाली ग्रह अपने विशिष्ट प्रभाव की जानकारी देते हैं ।

यह एक समग्र विज्ञान सम्मत विद्या है, ऐसा इस वर्णन से स्पष्ट होता है । खगोल भौतिकी के सिद्धान्त भी कुछ ऐसा ही प्रतिपादित करते हैं । न केवल भारत अपितु विदेशों के विद्वान भी ज्योतिर्विज्ञान के स्वरूप की ऐसी व्याख्या करने में समर्थ हुए हैं, जिससे ब्रह्माण्डीय भक्तियों के जीव चेतना पर प्रभाव की पुष्टि होती है ।

ईसाई धर्म की पुस्तक बाइबिल की व्याख्या करते हुए तीन शताब्दी पूर्व विद्वान पैरासेल्सस ने लिखा था कि "मनुष्य शरीर को इच्छाओं का सजा हुआ वाद्य यन्त्र कहना चाहिए, जिसमें कि आत्मा की झंकार सबसे मधुर कण में सुनाई देती है । इच्छाएँ आकाश में स्थित नक्षत्रों (देव शक्तियों) के बीज कोश ही हैं । यह बीज शरीर के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थानों में रहते हैं । उनकी आणविक संरचना और ब्रह्माण्डव्यापी नक्षत्रों की मूलभूत संरचना में विलक्षण साम्य होता है ।"

पैरासेल्सस लिखते हैं—"शरीर की रचना नक्षत्र गति के संरक्षण और निर्देशन में होती है । उत्पत्ति के तीसरे दिन चन्द्रमा ने बुद्धि और तुला ने व्यक्तित्व को प्रभावित किया । शरीर में तन्मात्राएँ दूसरे दिन ही आ गई थीं, जिनकी उत्पत्ति सूर्य शक्ति से हुई । हृदय पर लियो (चन्द्रमा) का अधिकार होता है और वह आत्मिक शान्ति और सभ्यता प्रदान करता है । शरीर के दूसरे सूक्ष्म अंगों को सेजीटेरियस इगो प्रभावित करते हैं । इस प्रकार मध्यकाल के ज्योतिर्विद भी आर्यविज्ञान की इस विधा के उन पक्षों का समर्थन करते दीखते हैं जिन्हें देव संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है ।

सभी वैज्ञानिक प्रमाण एवं उपलब्ध तथ्य यही बताते हैं कि यह समग्र ब्रह्माण्ड एक शरीर है और इसका कोई भी अंग अलग नहीं, वरन् एकात्म भाव से जुड़ा हुआ है । कोई भी ग्रह, नक्षत्र कितनी भी दूर क्यों न हो, वह जीव जगत को निश्चित रूप से प्रभावित करता है । साथ ही अपने ग्रह पर होने वाली विधाता की अमान्य गतिविधियाँ प्रकारान्तर से अन्तर्ग्रही सन्तुलन को प्रभावित कर, दैवी प्रकोपों को आमन्त्रित करती हैं, यह भी सत्य है । अन्तर्ग्रही प्रभावों से अब भली-भाँति परिचित मनीषीगण यह कहने में हिचकते नहीं कि अणु में लघु एवं विभु में महान् की, पिण्ड व ब्रह्माण्ड की एकता का सिद्धान्त सुनिश्चित एवं सत्य है । चिन्तन में परिवर्तन के इस महत्त्वपूर्ण मोड़ ने विज्ञान को नयी दिशाधारा दी है, नये सिरे से सोचने का अवसर दिया है ।

आरोग्यशास्त्र का पूरक ज्योतिर्विज्ञान

ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्य को अपनी गतिविधियों में उपयुक्त अन्तर करना पड़ता है । सोने का स्थान, कपड़े, पंखे, हीटर आदि का उपयोग सर्दी और गर्मी की ऋतुओं में भिन्न प्रकार से होता है । आहार की मात्रा एवं प्रकृति में अन्तर आता है । किसानों की बोने, काटने की सारी कार्य पद्धति महीने के अनुसार निर्धारित रहती है । वर्षा में छत-छप्पर सँभालने की, खेतों की मेंड़ बाँधने की धुन रहती है । गर्मी में आँधी-तूफानों से बचाव करना पड़ता है । विद्यार्थी जाड़े के दिनों में देर तक पढ़ते हैं, पहलवानों को उन्हीं दिनों कसरत बढ़ाते देखा जाता है । पशु पक्षियों का कुदकने-फुकदने और घरों में मुँह छिपाकर बैठे रहने का मौसम होता है । बसन्त में कुछ ऐसा वातावरण होता है जिसमें वनस्पतियाँ फूलतीं और मादाएँ गर्भ धारण करती हैं । यह सारे परिवर्तन ऋतु परिवर्तन की प्रकृति सूचना के अनुसार होते रहते हैं । कृमि कीटकों से लेकर वृक्ष वनस्पति तक इस परिवर्तन प्रवाह से बेतरह प्रभावित होते हैं । फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या । मक्खी, मच्छर वर्षा के दिनों में सर्वत्र छाये रहते हैं, पर शीत ऋतु में उनके दर्शन दुर्लभ रहते हैं ।

यदि कोई ऐसी मूढ़मति हो जिसे ऋतुओं का समय, परिवर्तन एवं प्रभाव विदित न हो और वह उनके अनुरूप सुरक्षा एवं उपलब्धियों के लिए पूर्व तैयारी न करें तो समझना चाहिए कि उसका निर्वाह कठिन पड़ जायेगा और अप्रत्याशित संकटों का सामना करना पड़ेगा । बुद्धिमत्ता के महत्त्वपूर्ण पक्षों में एक यह भी है कि ऋतु प्रभाव को समझे और तद्नुसार तालमेल बिठाने की दूरदर्शिता बदले ।

ऋतु प्रभाव क्या है ? अन्तरिक्ष से ग्रहों की स्थिति का हेर-फेर । सूर्य अपनी पृथ्वी को प्रभावित करने वाला प्रधान ग्रह है । पृथ्वी भी एक ग्रह है । दोनों ही अपनी-अपनी धुरी तथा कक्षा में भ्रमण करते हैं । इस गति क्रम में जो उतार-चढ़ाव आते हैं उसी की रात-दिन, सदी-गर्मी, वर्षा-बसन्त आदि के रूप में जाना जाता है । पानी बरसने से लेकर भूकम्प, तूफान आने तक की अनेकों प्रकृति विचित्रताएँ इसी आधार पर घटित होती रहती हैं । इनका मनुष्य, वनस्पति, प्राणी तथा परिस्थितियों पर कितना प्रभाव पड़ता है और उससे कितनी सुविधा-असुविधा बढ़ती है उसे कौन नहीं जानता ? संक्षेप में निर्जीव दीखने वाले और एक दूसरे से बहुत दूर रहते हुए, अपने-अपने रास्ते चलते हुए दूसरे

पर कितना प्रभाव छोड़ते हैं । इसे बारीकी से देखा समझा जाय तो कोई विचारशील आश्चर्यचकित हुए बिना न रहेगा ।

यह मोटी जानकारियाँ हुईं । अब तनिक और गहराई में उतरा जाय तो प्रतीत होगा कि ग्रह प्रभाव से न केवल धरती का वातावरण प्रभावित होता है वरन् मनुष्य का स्वास्थ्य और स्वभाव भी समुद्री ज्वार भाटे को किसी अदृश्य प्रवाहों से प्रभावित होकर झूले झूलता रहता है । माना कि ग्रहों का प्रभाव बदल सकना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है । इतने गर भी उस जानकारी के आधार पर बचाव करने तथा लाभ उठाने की वैसी ही पूर्व योजना बनायी जा सकती है, जैसी कि आमतौर से मौसम बदलने की बात को ध्यान में रखते हुए क्रिया-कलापों में तद्नुरूप परिवर्तन किए जाते रहते हैं ।

स्वास्थ्य के प्रसंग में ग्रहों को, मौसम के प्रभाव को, यदि समझा जा सके तो खतरे से बचने और अवसर के अनुकूल लाभ उठाने की सुविधा हर किसी को मिल सकती है ।

चरक सूत्र—अ. ६।४ के अनुसार ऋतुओं के अनुरूप आहार-विहार में परिवर्तन करते रहने से ही स्वस्थ और निरोग रहा जा सकता है । चरक ने ऋतुओं के विभाग के अनुसार वर्ष को छः अंग और छः ऋतुओं में विभाजन किया है । (१) माघ-फाल्गुन को शिशिर, (२) चैत्र-बैसाख को बसन्त, (३) ज्येष्ठ-अषाढ़ को ग्रीष्म, (४) श्रावण-भाद्र पक्ष को वर्षा, (५) आश्विन-कार्तिक को शरद, (६) अगहन-पौष को हेमन्त ऋतु समझा जा सकता है । यह विभाजन सुश्रुत संहिता के अनुसार किया गया है ।

आयुर्वेद में ज्योतिर्विद्या का विशद वर्णन मिलता है । दिन रात और ऋतुओं आदि का प्रभाव प्राणियों एवं वनस्पतियों पर समान रूप से पड़ता है । आयुर्वेद शास्त्र के आचार्य इस तथ्य से परिचित थे कि इन परिवर्तनों का मूल कारण पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और वायु की गति विशेष है । चरक संहिता के अनुसार वनस्पतियों में से सौम्य अंश सूख जाने से इनमें तिक्त, कषाय और कटु रस की क्रमशः वृद्धि होती है तथा प्राणियों में रुक्षता अधिक पायी जाती है । ग्रीष्म ऋतु में सूर्य पृथ्वी का जलीयांश ले लेता है तथा वायु तीव्र और रुक्ष होकर संसार के स्नेह भाग का पोषण करती है, परिणाम स्वरूप शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म इन तीनों ऋतुओं में रुक्षता उत्पन्न हो जाने से तिक्त, कषाय और कटु रसों की वृद्धि से मनुष्य शरीर में दुर्बलता आती है ।

बसन्त ऋतु में जब सूर्य, मीन और मेष राशि पर रहता है सूर्य की उष्णता बढ़नी आरम्भ होती है । फलतः दुर्बलता एवं व्याधियों का बढ़ना भी यहीं से आरम्भ होता है । ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य वृष और मिथुन राशि पर आता है, तो उसकी किरणें अत्यन्त प्रखर हो जाती हैं जिससे भूमण्डल के सभी पदार्थों के कटु रस की वृद्धि होती तथा प्राणियों में रुग्णता और दुर्बलता सर्वाधिक बढ़ती है ।

सूर्य और चन्द्र की गति और स्थिति का पृथ्वी की वनस्पतियों और प्राणियों पर पड़ने वाले बुरे प्रभावों की रोकथाम के लिए ऋतुओं के अनुरूप आहार-विहार में हेर-फेर करने का आयुर्वेद में विस्तृत वर्णन आता है । मनीषी सुश्रुत के अनुसार—

हेमन्त ऋतु में सामान्यतया शरीर की जठराग्नि सशक्त रहती है । इन दिनों वायु का प्रकोप अधिक रहता है । स्निग्ध पदार्थों के बहुलता वाले पदार्थ स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं ।

शिशिर ऋतु में कटु, तिक्त, कषाय रसों से युक्त वातवर्धक पदार्थों का सेवन वर्जित है ।

हेमन्त ऋतु में संचित हुआ कफ बसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से प्रभावित होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है अतः अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं । अतः स्निग्ध और अम्लीय पदार्थों का सेवन वर्जित है पुराने अन्न का सेवन लाभकारी है ।

ग्रीष्म ऋतु में शरीर में स्निग्धता का अभाव पड़ जाता है । इस काल में स्निग्ध पदार्थ, मधुर रस, घी, चावल आदि का सेवन अधिक करना चाहिए । लवण, अम्लीय तथा कटु रस वाले पदार्थों का सेवन हानिकारक है ।

वर्षा ऋतु में जठराग्नि सर्वाधिक दुर्बल रहती है । रोगों की बहुलता भी इसी कारण इन्हीं दिनों देखी जाती है । दिन में सोना, धूप में बैठना वर्जित है । पुराने जौ, गेहूँ का प्रयोग लाभप्रद है । अम्लीय लवण से युक्त स्निग्ध पदार्थों की बहुलता स्वास्थ्य रक्षक है ।

शरद ऋतु में, वर्षा ऋतु में संचित पित्त प्रकुपित रहता है, वसा, क्षारीय एवं दही का सेवन वर्जित है ।

पश्चिम जर्मनी, 'बोकुम' स्थित वेधशाला के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. हाइन्ज कामिस्की के अनुसार हर नवें, ग्यारहवें, अठारवें वर्ष सूर्य के धरातल पर भयंकर विस्फोट होते हैं । इस सदी में किए गए अध्ययन के अनुसार विस्फोटों की तीव्रता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है । सन् १९७२ अगस्त माह में, सूर्य पर एक विस्फोट हुआ जो करोड़ों हाइड्रोजन बमों की शक्ति के बराबर था ।

इस विस्फोट की घातक तरंगें बाह्यावरण आयनोस्फियर को चीर कर पृथ्वी पर पहुँची, जिनका घातक प्रभाव पृथ्वी के वातावरण, वृक्ष, वनस्पतियों एवं जीवों पर भी पड़ा । प्रो. हाइन्ज के अनुसार कैंसर, हृदय रोग, रक्तचाप जैसी बीमारियों में अभिवृद्धि का एक कारण सूर्य का विषैला प्रभाव है । प्रो. कामिस्की का मत है कि यदि उस समय कोई अन्तरिक्ष यात्री अन्तरिक्ष में रहा होता तो एक्स किरणों से उसकी तत्काल मृत्यु हो सकती थी ।

अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. स्टीफेन कोजेन ने बताया है कि मौसम का प्रभाव सुनिश्चित रूप से औषधि पर व उसे लेने वाले पर पड़ता है । न्यूयार्क टाइम्स में प्रकाशित एवं इण्डियन एक्सप्रेस ७ अगस्त, १९८१ द्वारा उद्धृत इस समाचार के अनुसार जिसने औषधि सेवन में मौसम की अवहेलना की, उसे या तो दुष्परिणामों या मृत्यु का सामना करना पड़ा है । मौसम से उनका मतलब है ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार पृथ्वी पर सम्भावित वातावरण में परिवर्तन है । यदि सूखी गर्म जलवायु में बिना सोचे समझे व व्यक्ति का पूरा निरीक्षण किए आँख में एट्रोपीन नामक दवा डाल दी जाय, जो पुतलियों को चौड़ा करती है, तो शरीर के तापमान नियमन की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है एवं हीट स्ट्रोक से रोगी की मृत्यु हो सकती है । दोष यहाँ लू को देकर छुट्टी पा ली जाती है, जबकि उत्तेजक कारण था जलवायु का ध्यान रखे बिना एण्टी कोलिनर्जिक औषधि दे देना ।

पिछले दिनों तीन मानसिक रोगी न्यूयार्क के एक अस्पताल में अप्रत्याशित रूप से मृत पाये गए । उन्हें जो एण्टी सायकोटिक औषधियाँ दी गईं उन्होंने उन रोगियों को वातावरण से जूझने की क्षमता को नष्ट कर दिया एवं वे जरा से मौसम परिवर्तन को भी सहन न कर पाये । डॉ. रोजेक का कहना है कि पहले से रोगी की मनःस्थिति व वातावरण में सम्भावित परिवर्तनों का ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर एक चार्ट बना लेना चाहिए तथा तभी औषधि दी जानी चाहिए, जब उसे मौसमीय प्रतिकूलताओं से लड़ने के लिए बाध्य न होना पड़े ।

डॉक्टर रोजेक का कहना है कि कितने व्यक्ति जानते हैं कि—दवा की पोटेन्सी, दुष्प्रभाव व वांछित प्रभाव मनुष्य के पर्यावरण पर पूर्णरूपेण निर्भर है । मौसम परिवर्तन के अनुसार ही औषधियाँ अपने प्रभाव बनाती हैं । यही बात कुछ एण्टीबायोटिक, कुछ एलर्जी की औषधियों एवं कुछ तनाव शामक औषधियों पर भी लागू होती है ।

रोगों के निराकरण, आरोग्य सम्वर्धन के सन्दर्भ में जहाँ आहार-विहार, परिचर्या-उपचार पर ध्यान दिया जाता है, वहाँ इस तथ्य को भी नजरअन्दाज न किया जाना चाहिए कि अन्तरिक्षीय परिस्थितियों से भी मानवी स्वास्थ्य के बनने-बिगड़ने का बहुत कुछ सम्बन्ध है, उस विवशता को भाग्यवाद के समर्थन में तो प्रस्तुत न किया जाय पर सतर्कता एवं चेष्टा के अन्यान्य उपाय सोचते समय एक मार्ग यह भी जुड़ा रखा जाय कि अन्तरिक्ष या स्थिति से अवगत रहा जाय और उस आधार पर पड़ने वाले प्रभाव के अनुकूलन का प्रयत्न उठा न रखा जाय । इस आवश्यकता की पूर्ति आरोग्य शक्ति के साथ-साथ ज्योतिर्विज्ञान की जानकारी रखने से ही हो सकती है ।

अन्तर्ग्रही प्रभावों के घेरे में मनुष्य एवं पर्यावरण

ज्योतिर्विज्ञान के ज्ञाता यह भली-भाँति जानते हैं कि पृथ्वी से करोड़ों मील दूर स्थित अन्तरिक्षीय ग्रहों का प्रभाव धरतीवासियों पर किस तरह पड़ता है । वैज्ञानिकों द्वारा भी अब इसकी पुष्टि की जा चुकी है कि, गुरु, शुक्र आदि सभी ग्रह अपने अच्छे बुरे प्रभाव से मनुष्य सहित सभी प्राणियों में हलचल उत्पन्न करते हैं । सूर्य से निकलने वाली विभिन्न प्रकार की किरणों का अपना प्रभाव होता है तो चन्द्र कलाओं का अपना । धूमकेतुओं के उदय से पृथ्वी के वातावरण में अनेकानेक परिवर्तन होते हैं जिन्हें अनेक तरह की बीमारियाँ उत्पन्न करने वाला माना जाता है ।

सौरपरिवार का सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति अर्थात् गुरु है । यूनान के साहित्य में इसे 'आकाश का राजा' कहा गया है । पृथ्वी से ५ करोड़ ४० लाख किलोमीटर दूरी पर स्थित गुरु का भार पृथ्वी का ३०० गुना, व्यास ११ गुना भारी है तथा गुरुत्वाकर्षण ढाई गुना अधिक है । इस आकर्षण शक्ति के कारण यह पुच्छल तारा धूमकेतु तथा उल्काओं (एस्टेराइड्स) को अपनी ओर सतत् तीव्र वेग से खींचा करता है । प्रत्येक १३ माह के बाद बृहस्पति, पृथ्वी तथा सूर्य एक सीध में आ जाते हैं तब इसके रजकण प्रचुर मात्रा में निकलकर पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश कर जाते हैं । गुरु और शनि जब एक सीध में आ जाते हैं, तो दोनों का चुम्बकत्व सौरमण्डल के चुम्बकत्व के आधे से अधिक हो जाता है । वैज्ञानिकों के अनुसार, यदि सौरमण्डल के सभी ग्रह एक पंक्ति में आ जायें तो उस समय चुम्बकत्व की जो अभिवृद्धि होती हैं, प्राणि जगत पर उसका विनाशकारी प्रभाव पड़ता है । पिछले दिनों इस प्रकार के सुपर कन्जक्शन—'बृहत्तम युति' की स्थिति आ चुकी है ।

खगोल विज्ञान तथा ज्योतिर्विज्ञान दोनों में गुरु प्रभाव 'जुपिटर इफेक्ट' को बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है । एक ओर सूर्य तथा दूसरी ओर अन्य सभी ग्रहों के एक लाइन में आ जाने पर यह स्थिति बनती है, इस समय सूर्य की क्रियाशीलता अधिकतम हो जाती है और उस पर बनने वाले धब्बों की संख्या में भी अभिवृद्धि होती है । कई खगोलीय घटनाओं के साथ पृथ्वी के वातावरण में भी परिवर्तन आ जाता है । जैसे—वैज्ञानिकों ने अपने अनुसन्धानों में पाया है कि आकाश के कुछ चमकीले पल्सार्स, तारों से प्राप्त विकिरण के कारण पृथ्वी के वातावरण में विद्युत आवेश पैदा होता है जो अनेक विसंगतियों को जन्म देता है ।

मूर्धन्य वैज्ञानिक द्वय डॉ. जॉन रिबिन तथा डॉ. स्ट्रीफेन ब्लेवमान ने १९८१ में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "जुपिटर इफेक्ट" में लिखा था, कि "सूर्य कलंक बढ़ने के साथ ही जलवायु में विषमता आ जायेगी । शीत ऋतु या ठण्डे प्रान्त अधिक ठण्डे एवं गर्मी वाले स्थान अत्यधिक गर्म हो जायेंगे ।" ये परिवर्तन उनके अनुसार आने वाले दो दशकों तक मनुष्यों को प्राकृतिक सन्तुलन एवं वृक्ष वनस्पतियों की क्रिया पद्धति को प्रभावित करेंगे । वे लिखते हैं कि "आँधी तूफान एवं वर्षा की अधिकता से सारे विश्व को जानमाल की भारी क्षति उठानी पड़ सकती है । घनी आबादी वाले स्थानों में विनाशकारी भूकम्प आ सकते हैं ।" मेक्सिको व कोलम्बिया के भूकम्प व हेलेना के ज्वालामुखी विस्फोट की घटनाएँ, इस वर्ष की विश्वव्यापी सूखा व कहीं बाढ़ इसकी साक्षी देते हैं ।

अन्य वैज्ञानिकों ने भी चेतावनी देते हुए कहा है कि सूर्य कलंकों की अत्यधिक संख्या बढ़ने के कारण हृदयाघात तथा सड़क दुर्घटनाओं की अभिवृद्धि तो होगी ही, अनेकानेक नई महामारियाँ भी व्यापक रूप से फैल जायेंगी । विगत इन्टरनेशनल जियोफिजिकल वर्ष में सभी देशों के चिकित्सकों ने एक मत से यह स्वीकार किया था कि सूर्य के धब्बों की संख्या में वृद्धि के साथ अस्पतालों के कार्डियालॉजी विभाग एवं पागलखानों में भर्ती होने वाले मरीजों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है । इसी हेतु अनुसन्धान की दो नई शाखाएँ—(१) हेलियोबायलॉजी तथा (२) कास्मॉस साइकोलॉजी विकसित की गई हैं ।

स्वीडन के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सैण्टी अरहेनिस के विभिन्न अस्पतालों में उपलब्ध रिकार्डों का अध्ययन करने के पश्चात् अपने शोध निष्कर्ष में बताया है कि अमावस्या को जब पृथ्वी तथा सूर्य के बीच अत्यधिक गुरुत्वाकर्षण होता है, उस समय मिरगी, चर्मरोग, विक्षिप्त मनोदशा के रोगियों की संख्या बढ़ जाती है । जब सूर्य तथा चन्द्रमा १८० अंश पर होते हैं, तब कई रोगों में अधिक उभार १४वें दिन आता है । वस्तुतः चन्द्रकलाओं के घट-बढ़ के साथ पृथ्वी पर अनेक परिवर्तन होते हैं—समुद्र में ज्वार भाटे आते हैं । इसके अतिरिक्त मनुष्यों तथा इतर प्राणियों पर भी इनका व्यापक प्रभाव पड़ता है । वैज्ञानिकों की मान्यता

है कि पृथ्वी पर जितना भी तरल द्रव्य है, वह चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय से सम्बन्धित है । मनुष्य के शरीर में अधिकांश भाग द्रव का है । रक्त को 'तरल संयोजी ऊतक'—लिक्विड कनेक्टिव टिशू कहा जाता है, जिसके अन्तर्गत रक्त कणिकाएँ तरल सीरम और प्लाज्मा आता है । काया की प्रत्येक कोशिका में आधे से अधिक भाग जल का होता है । इस तरलता के कारण ही समुद्र की तरह काया में भी चन्द्रकलाओं के प्रभाव से तूफान उठता और शान्त होता रहता है । इसका सबसे अधिक व्यापक प्रभाव रक्त पर पड़ता है । विभिन्न अध्ययनों में यह देखा गया है कि पूर्णिमा के दिन विश्व भर में जितने अपराध होते हैं, उतने शेष दिनों में नहीं होते । पूर्णिमा के चाँद का मनुष्य के शरीर ही नहीं, चरित्र पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है । इसी तरह अमावस्या की काली छाया भी मन-मस्तिष्क को प्रभावित किए बिना नहीं रहती ।

अनेक वैज्ञानिक प्रयोग, परीक्षणों से अब यह ज्ञात हो चुका है कि पूर्णिमा का चन्द्रमा मनुष्य की बायोलॉजिकल एवं भावनात्मक प्रक्रिया में भारी हलचल उत्पन्न करता है । उस काल में एन्जाइम्स तथा हारमोन्स अपनी क्रियाशीलता बढ़ा देते हैं । चयापचय की क्रिया में तेजी आ जाती है । रक्तचाप एवं हृदय की धड़कन भी इस मध्य बढ़ जाती है ।

शिकागो के इलिनॉइस विश्वविद्यालय में अनुसंधानरत मूर्धन्य वैज्ञानिक डॉ. राल्फ डब्ल्यू. मोरिस के शोध का प्रमुख विषय है, "पूर्णिमा के चन्द्रमा का मनुष्य पर प्रभाव ।" इसके लिए उन्होंने अनेक अस्पतालों के रोगियों का अध्ययन किया है । उनका कहना है कि पूर्ण चाँद मनुष्य के दुःख दर्द को बढ़ाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता । इस काल में रक्त स्राव करने वाले अल्सर अन्य अवसरों की तुलना में अपनी क्रियाशीलता बढ़ाते हुए देखे गए हैं । हैमरेज, अपस्मार, मधुमेह जैसे रोग इन दिनों गम्भीर रूप धारण कर लेते हैं । हृदय रोगी इस दौरान एन्जाइना पेक्टोरिस के प्रति अधिक सम्वेदनशील बन जाते हैं । इस विशेष काल में दवाइयों के प्रति रोगियों के व्यवहार में भी विशिष्ट परिवर्तन देखे गए हैं । मोरिस का कहना है कि यदि इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके तो चिकित्सा क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय जुड़ सकता है ।

वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में रखे गए चूहे जैसे प्राणियों पर चन्द्रकलाओं के प्रभाव का अध्ययन किया है । देखा गया है कि चन्द्रकलाओं की अभिवृद्धि के साथ ही उनकी भी सक्रियता बढ़ जाती है । फ्लोरिडा के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. एडीसन एण्ड्रूस के अनुसार यदि कोई ऑपरेशन पूर्णिमा के दिन होता है तो उस दिन रक्त स्राव ज्यादा होता है । एक बार तो कुशल चिकित्सक भी इस प्रकार के रक्त बहाव को नहीं रोक पाते । तेनहा के मेमोरियल हॉस्पिटल की एक नर्स ने अत्यधिक रक्त स्राव वाले रोगियों के भर्ती होने की तिथि अंकित की है । उसके अनुसार इस तरह के सभी रोगी प्रायः पूर्णिमा को ही आते थे ।

मनः चिकित्सकों का कहना है कि पूर्णिमा का चन्द्रमा तनाव और चिन्ता को बढ़ा देता है । उस दिन व्यक्ति की हठधर्मिता एवं आक्रामकता अन्य दिनों की अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी देखी जाती है । यही कारण है कि पूर्णिमा एवं अमावस्या को पागलखानों में कर्मचारियों को विशेष जागरूक एवं सन्नद्ध रखा जाता है । न्यूयार्क के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार इस काल में अपराधों एवं आगजनी की घटनाओं में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है । 'सन ऑफ सैम' नामक बहुचर्चित हत्याकाण्ड का अभियुक्ति डेविड बरकोविज डाकतार विभाग का एक कर्मचारी था उसने अनेक जघन्य हत्याएँ की थीं । जिनमें से अधिकांश पूर्णिमा की रात को की गई थीं ।

डॉ. मोरिस के अनुसार मनुष्य के व्यवहार एवं चिन्तन में उन्माद भरने वाले इन चन्द्र प्रभावों की व्याख्या करना अत्यन्त जटिल है, क्योंकि पूर्णिमा काल में पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा तीनों एक सीध में आ जाते हैं । कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच विद्युत्चुम्बकीय एवं गुरुत्वाकर्षण सम्बन्ध के ही यह परिणाम हैं । वस्तुतः लम्बे समय से चिकित्सा जगत मे इस सम्बन्ध में अनुसन्धान चल रहा है, कि चन्द्रकला के साथ शारीरिक एवं मानसिक रुग्णता का क्या सम्बन्ध हो सकता है ? अब यह बात क्रमशः समझ में आने लगी है ।

अन्याय ग्रह, नक्षत्रों की तरह धूमकेतु भी धरतीवासियों पर अपना विघातक प्रभाव डालते हैं । सुप्रसिद्ध खगोलविद् फ्रेड ह्वाइल के अनुसार जब धूमकेतु पृथ्वी के निकट से गुजरते हैं, तो यहाँ के वातावरण में पर्याप्त परिवर्तन हुआ करते हैं । उन्होंने अपने शोध निष्कर्ष में बताया है कि जब पृथ्वी धूमकेतु के प्रसार को पार करती है तब अनेक महामारियाँ फैलती हैं ।

धूमकेतु के बारे में कहा जाता है कि वह सौरमण्डल बनते समय का ही अवशेष पदार्थ है जो किसी ग्रह पिण्ड का रूप धारण नहीं कर सका और ऐसे ही अनगढ़ स्वरूप में रह गया । उसमें प्रायः वे ही पदार्थ पाये जाते हैं जिनसे अपनी पृथ्वी का गठन हुआ है । उस धूल में बैक्टीरिया और वायरस—जीवकोश तथा विषाणु दोनों ही बड़ी मात्रा में पाये गए हैं । इससे पता चलता है कि विकासवाद के कथनानुसार पृथ्वी पर जीवन बाद में उत्पन्न हुआ कहना गलत है । जीवन अनादि काल से पदार्थ की ही भाँति विद्यमान है ।

धूमकेतु जब धूल भरे अन्धड़ की तरह पृथ्वी के निकट आते हैं तो बारीक कणों की आँधी अपने साथ लाते हैं और छोटी-बड़ी उल्काएँ भी बरसती हैं । इतना ही नहीं जीवाणुओं-विषाणुओं की ऐसी बौछार भी करते हैं जो धरती के प्राणियों के लिए उपयोगी कम और हानिकारक अधिक होते हैं ।

पृथ्वी बनते समय की विनिर्मित चट्टानों में जीवन पाया गया है । निश्चय ही यह उसका अपना उत्पादन नहीं वरन् अन्तरिक्षीय अनुदान है । इतना ही नहीं धूमकेतु के मध्यवर्ती नाभिक में वह क्षमता भी विद्यमान है जो भयंकर विकिरण उत्पन्न करती है और उसके प्रभाव क्षेत्र की लम्बी परिधि होती है ।

प्रथम बार जिस खगोलवेत्ता 'हेली' ने इसका एक प्रामाणिक भित्ति चित्र तैयार किया था, उसी के नाम पर इसका नामकरण किया गया है । गतवर्ष उसके समीप पहुँच कर प्रथम बार उसके सही चित्र खींचने तथा उसका कुछ पदार्थ बटोर कर धरती पर लाने का प्रयास किया गया है । इससे उसकी संरचना तथा प्रभाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से अधिक कुछ जानने का प्रयास किया गया है ।

कभी-कभी पृथ्वी पर उल्काओं की जलती हुई फुलझड़ी जैसी आभा बरसती दृष्टिगोचर होती है । उस अद्भुत दृश्य को देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं । ऐसी अग्निवर्षा का दृश्य

पिछले दिनों सन् १९७२ में देखा गया था। इसके पूर्व भी इन दृश्यों की पुनरावृत्ति होती रही है। कारण यह होता है कि पृथ्वी अपने कक्ष में परिभ्रमण करती हुई ऐसे स्थान पर जा पहुँचती है, जहाँ किसी धूमकेतु के छोड़े हुए अवशेष बिखरे होते हैं। वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से खिंचकर जब वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं और जलकर भस्म हो जाते हैं। यही होता है इन आकाशीय ज्योतियों के दृष्टिगोचर होने का कारण।

रूस के साइबेरिया प्रान्त के अन्तर्गत तुम्मुस्का नामक एक स्थान में सन् १९०८ में एक भयंकर विस्फोट हुआ था, जिसमें पृथ्वी की टक्कर एक विशाल उल्का से हो गई थी। ऐसे अनेक छोटे धूमकेतु हैं जो सूर्य से १५ करोड़ मील दूर रह जाने पर वापस लौट पड़ते हैं और आगे का रास्ता अपनाते हैं। हमारी पृथ्वी भी सूर्य से प्रायः १५ करोड़ मील पर ही परिक्रमा करती है। ऐसी दशा में यह सम्भावना बनी ही रहती है कि उनका आवागमन पृथ्वी के साथ मुठभेड़ करे या अपना कोई अतिरिक्त अनुपयुक्त प्रभाव छोड़े। कुछ भी हो, यह तो सत्य है कि अन्तर्ग्रही धाराएँ अपना प्रभाव जीव जगत एवं पर्यावरण सन्तुलन ही नहीं, सूक्ष्म वातावरण पर भी छोड़ती हैं। इनसे बचने व अनुकूलन का मध्य का मार्ग निकालने की विधा ज्योतिर्विज्ञान के अन्तर्गत आर्ष ग्रन्थों में काफी समय से समझायी जाती रही है। साधना उपचारों की नियमितता निश्चित ही प्रतिकूल प्रभावों से रक्षा करती है।

ज्योतिर्विज्ञान का दुर्भाग्यपूर्ण दुरुपयोग

भारतीय ज्योतिष शास्त्र प्राचीनकाल में विशुद्ध रूप से आकाश स्थित ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति और गति जानने तक सीमित था, ग्रहों की स्थिति का प्रभाव पृथ्वी के मौसम पर पड़ता है तथा दूसरी प्रकार के सूक्ष्म प्रभाव भी आते रहते हैं। इसके लाभान्वित होने अथवा हानि से बचने का लाभ उठाया जा सकता है, इसी दृष्टि से इस विज्ञान की गहरी खोज-बीन की गई थी।

प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान के वेत्ताओं को यह स्वप्न में भी ध्यान न था कि आगे चलकर इस विज्ञान का उपयोग चतुर लोग फलित ज्योतिष के रूप में करेंगे और लोगों को अन्ध-विश्वास में फँसाकर उनके धन, समय एवं चिन्तन को भारी क्षति पहुँचायेंगे।

प्राचीन आर्ष ज्योतिष ग्रन्थों में आर्य भट्ट द्वारा लिखित 'आर्य भट्टीय' और तन्त्र नामक दोनों ग्रन्थों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। बराह मिहिर का पंच सिद्धान्तिका ग्रन्थ ही प्राप्य है। ब्रह्म गुप्त की 'ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त' तथा 'खण्ड खाद्यक' ग्रन्थ भी खगोल विद्या सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है।

आर्य भट्ट का ज्योतिष सिद्धान्त पुस्तक नाम से खगोल विद्या का ग्रन्थ है। उसके प्रथम पाद में अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के सिद्धान्त ही समझाए गए हैं। मात्र तीस श्लोकों में दशमलव, वर्ग, वर्ग क्षेत्र, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुजाकार शंकु का घनमूल जैसी महत्त्वपूर्ण विषयों की शिक्षा सूत्र में दी गई है। यदि उन्हीं बातों को विस्तार और उदाहरण सहित लिखा गया होता तो वही एक विशाल ग्रन्थ के रूप में दृष्टिगोचर होता। काल-क्रिया पाद में खगोल का वर्णन है। इस प्रकार उसका अन्तिम ५० श्लोकों का अध्याय 'गोल पाद' भी अपने विषय का सुसम्बद्ध प्रतिपादन है।

भारतीय ज्योतिष का प्रमुख ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त है। आर्य भट्ट, नारदेव और ब्रह्म गुप्त ने इसमें अपने-अपने ढंग से संशोधन एवं परिवर्द्धन किया है। बराह मिहिर की 'पंच सिद्धान्तिका' में पाँच वर्ष का भी युग माना गया है। इससे प्रतीत होता है कि उन दिनों भी आज की ही तरह पंचवर्षीय योजनाएँ विभिन्न क्षेत्रों में बनाई जाती रहती होंगी। पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर और पितामह नामक पाँच सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन बराह मिहिर ने ही किया था। भास्कर स्वामी रचित 'महाभास्करीय' भी प्राचीन समय के खगोल ज्ञान पर सुविस्तृत प्रकाश डालता है। इसी प्रकार 'महासिद्धान्त ग्रन्थ' भी भारतीय-ज्योतिष का प्रामाणिक ग्रन्थ है। सिद्धान्त शिरोमणी ग्रन्थ के यन्त्राध्याय में गोल, नाड़ी वलय, याष्टि, शंकुघटी, चक्र, चाप, तुर्यफलक, प्रभृति, ऐसे यन्त्रों का वर्णन है, जिसके आधार पर खगोल विद्या की आवश्यक जानकारी को क्रमबद्ध किया जाता था। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह ने इस सन्दर्भ में अधिक दिलचस्पी दिखाई, उन्होंने जयपुर, दिल्ली, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा की वेधशालाएँ बनवाईं। 'टालसी के सिनटैविसस' ग्रन्थ से जयसिंह जी बहुत प्रभावित थे, उन्होंने डलूग वेना की ज्योतिष सारणियाँ, प्लैम स्टीड की हिस्टीरिया, सेलेस्टिस ब्रिटेनिका, पुविलड की ज्यॉमिति आदि ग्रन्थों का भी विस्तृत अध्ययन किया था। वेधशालाओं में नाड़ी यन्त्र, वक्र यन्त्र, गोल यन्त्र, दिगेश यन्त्र, दक्षिणोदिग्मित्ति, वृत्त षष्ठांशक, सम्राट यन्त्र, जय यन्त्र, चक्र यन्त्र आदि कतिपय बड़े उपयोगी यन्त्रों का निर्माण कराया।

नक्षत्र विद्या अपने आप में एक स्वतन्त्र विज्ञान है और उसकी मर्यादा भी। इस आधार को तोड़-मरोड़ कर यह ठग विद्या बहुत पीछे गढ़ी गई, कि अमुक नाम वाले, अमुक राशि के व्यक्ति पर अमुक ग्रह, नक्षत्र, अमुक अवधि तक भला या बुरा प्रभाव डालता है। आजकल ज्योतिषी लोग इसी बहाने भोली जनता को तरह-तरह से मूँड़ते और भ्रम जंजाल में फँसाते हैं। तेजी-मन्दी, वर्ष फल, भविष्य कथन, विवाह का विधि-वर्ग, मुहुर्त, उपचार, शुभ-अशुभ समय, हानि-लाभ जैसे मानवी पुरुषार्थ प्रयत्न एवं विवेक से सम्बन्ध रखने वाली बातों को तब फिर ग्रह-नक्षत्रों से वैज्ञानिक ज्योतिष विद्या का निर्भय उपहास ही कहा जायेगा।

ज्योतिर्विज्ञान की चुनौती भौतिकी स्वीकार करे

शरीर के किसी भाग पर आघात पहुँचता है तो उसकी प्रतिक्रिया से शरीर का रोम-रोम काँप उठता है। मन और मस्तिष्क भी उद्विग्न और बेचैन हो उठते हैं, समूचा ध्यान शारीरिक पीड़ा पर केन्द्रित हो जाता है। मनःसंस्थान असन्तुलित हो तो शरीर भी स्वस्थ एवं निरोग नहीं रह पाता। शरीर के प्रत्येक अवयव मनःसंस्थान परस्पर एक-दूसरे की स्थिति से प्रभावित होते हैं। यह शरीर की चैतन्यता एवं एकता के प्रमाण हैं। दृश्य और अदृश्य प्रकृति समूचा ब्रह्माण्ड भी इसी प्रकार एक चेतन पिण्ड है, जिसके सभी घटक परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसके एक सिरे पर जो कुछ भी घटित होता है तो अन्यान्य स्थानों पर उसकी प्रतिक्रिया परलक्षित होती है।

इस तथ्य को प्रतिपादित करने एवं रहस्योद्घाटन करने का जो विज्ञान भारत में प्राचीन काल से प्रचलित था उसे ज्योतिष विज्ञान के नाम से जाना जाता है । इसका लक्ष्य था—अन्तर्ग्रही सम्बन्धों की वैज्ञानिक विवेचना करना तथा एक-दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत कराना । फलतः इस विद्या के सहारे पृथ्वी से इतर ग्रह, नक्षत्रों के अनुदानों से लाभ उठा सकना एवं दुष्प्रभावों से बचाव कर पाना सुलभ था, जो आज विकसित भौतिक विज्ञान द्वारा भी सम्भव नहीं है । कालान्तर में यह विज्ञान विलुप्त होता गया और उसका स्थान फलित ज्योतिष की मूढ़-मान्यताओं एवं भ्रान्तियों ने लिया । जिसे देखकर विज्ञजनों द्वारा इस विद्या की उपेक्षा हुई ।

इसके बावजूद भी विज्ञान ने जब से प्रौढ़ता की ओर कदम रखा है उसका ध्यान अन्तरिक्ष की खोजबीन की ओर आकर्षित हुआ है । साथ ही ग्रह, नक्षत्रों, सौरमण्डल की गतिविधियों, आपसी सम्बन्धों एवं परस्पर एक-दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों को जानने के लिए छुट-पुट प्रयास भी चल रहे हैं । प्रकारान्तर से भौतिक विज्ञान अब उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँच रहा है, जिस पर सदियों पूर्व तत्ववेत्ता ऋषि जो ज्योतिर्विज्ञान के मर्मज्ञ भी थे पहुँच चुके थे ।

ज्योतिर्विज्ञान के आचार्यों ने सौरमण्डल के ग्रह, नक्षत्रों को देवशक्तियों के रूप में प्रतिष्ठापित किया था । नौ ग्रहों की नौ देवताओं के रूप में प्रतिष्ठापना की गई है । ज्योतिर्विज्ञान की यह मान्यता सदियों से चली आ रही है कि सौरमण्डल का अधिपति सूर्य मात्र अग्नि का धधकता पिण्ड नहीं, अपितु जीवन प्राण और सक्रिय अग्नि का पुंज है । जो पल-प्रतिपल अपने सौरमण्डल के सदस्यों को अपनी गतिविधियों से प्रभावित करता है । न केवल सूर्य बल्कि मंगल, बृहस्पति, बुध आदि भी पृथ्वी के वातावरण को प्रभावित करते हैं ।

इस तथ्य को विश्व के प्रसिद्ध भौतिकविद् भी स्वीकार करने लगे हैं कि सौरमण्डल की गतिविधियाँ पृथ्वी के वातावरण एवं जैविक परिस्थितियों पर प्रभाव डालती है । यूगोस्लाविया के नाभिकीय भौतिकविद् प्रो. 'स्टीवेन डेडीजर' जैसे विद्वानों का कहना है कि विज्ञान को अपनी अन्तरिक्षीय खोज की सफलता के लिए प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान का अवलम्बन लेना होगा । प्राकृतिक घटनाओं की अभी भी कितनी ही गुत्थियाँ ऐसी हैं जिसको सुलझा पाने में आज का विकसित विज्ञान भी असमर्थ है । आधुनिक विज्ञान अन्तरिक्ष एवं सबन्यूक्लीयर क्षेत्र में अपनी शानदार सफलता के बावजूद भी ब्रह्माण्ड सम्बन्धी घटनाओं की व्याख्या कर पाने में अपनी अक्षमता व्यक्त कर रहा है, क्योंकि इसका क्षेत्र सीमित है । इसके विपरीत ज्योतिष विज्ञान का ब्रह्माण्डीय ज्ञान अन्तरिक्षीय रहस्यों का उद्घाटन करने में पूर्णतया सक्षम है ।

भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तानुसार हर पदार्थ कण इस ब्रह्माण्ड में एक-दूसरे के सापेक्ष गतिशील है । वे अपना स्थान भी परवर्तित करते रहते हैं । फलतः जिस पर्यावरण में वे गतिशील रहते हैं, वह बदलता रहता है और एक अविच्छिन्न ब्रह्माण्डीय शृंखला में बँधे होने के कारण कणों का सन्दोह विशेष प्रभाव उत्पन्न करता है । जो अन्यान्य ग्रहों तथा पृथ्वी, चर, अचर, पदार्थों एवं खगोलीय पिण्डों को प्रभावित करता है । इस तथ्य से परिचित होते हुए भी विज्ञान ग्रह, नक्षत्रों की गतिस्थिति और प्रभावों की स्पष्ट जानकारी देने में असमर्थ है । उपरोक्त टिप्पणी देते हुए भौतिकविद् 'स्टीवेन्ड डेडीजर' का कहना है कि समग्र जानकारियों के लिए ज्योतिर्विज्ञान के विलुप्त ज्ञान को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है ।

प्रख्यात आस्ट्रियाई वैज्ञानिक एरनेस्ट मैक का मत है कि ब्रह्माण्ड के अनन्त कण एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा उनमें घना सम्बन्ध है । सौर लपटें जो कि ग्रहों की निकटता एवं चन्द्रमा की गति से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित हैं । पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के व्यतिरेक उत्पन्न करती हैं । ग्रही योग पृथ्वी एवं जैविकीय चुम्बकत्व पर अपना प्रभाव डालते हैं । ग्रहों के असुन्तलन से उत्पन्न होने वाली चुम्बकीय आँधी प्रकृति प्रकोपों एवं पृथ्वी के जीवधारियों में अनेकों प्रकार के मानसिक एवं नर्वस सिस्टम के रोग उत्पन्न करती है । भू-चुम्बकत्व में होने वाले हेर-फेर से मानवी आचरण और स्वभाव भी अछूता नहीं रहता है ।

रूस के वैज्ञानिक चीनेवस्की ने इस क्षेत्र में लम्बे समय तक खोजबीन करने के उपरान्त महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं । उनका कहना है, सौरमण्डल की हलचलों से पृथ्वी के वातावरण एवं घटनाक्रमों का घना सम्बन्ध है । हर ग्यारहवें वर्ष सूर्य में आणविक विस्फोट होता है । इन वर्षों में पृथ्वी पर युद्ध और क्रान्तियाँ जन्म लेती हैं । प्रकृति प्रकोप एवं महामारियाँ बढ़ती हैं ।

जियोजारजी गिआरडी नामक वैज्ञानिक ने ज्योतिर्विज्ञान से प्रेरणा लेकर विज्ञान की एक नवीन शाखा को जन्म दिया—ब्रह्माण्ड रसायन शास्त्र । गिआरडी का कहना है कि समूचा ब्रह्माण्ड एक शरीर है इसका कोई भी घटक अलग नहीं, वरन् संयुक्त रूप से एकात्म है । इसलिए कोई भी ग्रह तारा पिण्ड कितना भी दूर क्यों न हो पृथ्वी के जीवन को प्रभावित करते हैं ।

प्रो. ब्राउन का मत है कि पृथ्वी सौरमण्डल का ही एक सदस्य है और चन्द्रमा उसका ही एक उपग्रह । वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी और चन्द्र की उत्पत्ति सूर्य से हुई है । न केवल चन्द्र और सूर्य वरन् मंगल, बृहस्पति शुक्र और शनि की गतियाँ भी पृथ्वी को प्रभावित करती हैं । उन्होंने अन्तर्ग्रही प्रभावों को 'समानुभूति' नाम दिया है ।

३ फरवरी, १९६९ को अहमदाबाद में तीसरी अन्तर्राष्ट्रीय विषुवतीय वायु विज्ञान गोष्ठी का उद्घाटन हुआ । अहमदाबाद भौतिक अनुसन्धानशाला के दो वैज्ञानिकों, प्रो. के. आर. रामनाथन और डॉ. एस. अनन्त कृष्णन ने यह घोषणा की है कि पृथ्वी सौरमण्डल की अभिन्न घटक है । आकाशीय पिण्डों के स्पन्दन धरती को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं । अपनी एक खोज में इन वैज्ञानिकों ने पाया कि वायुमण्डल के 'डी' क्षेत्र में शक्तिशाली एक्स-किरणों के स्रोत स्कोपिओं—११ के गुजरने से वनस्पति एवं जीव जगत की हलचलें बढ़ जाती हैं तथा उनका हानिकारक प्रभाव पड़ता है ।

परमाणु शक्ति आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष और विश्व विख्यात भौतिकविद् डॉ. साराभाई ने विभिन्न देशों से आये वैज्ञानिकों की एक गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए कहा कि सूर्य के अतिरिक्त भी अन्य आकाशीय पिण्डों का प्रेक्षीय प्रभाव धरती पर आता है । यदि ज्योतिर्विज्ञान के सूत्रों को ढूँढ़ा जा सके और

अन्तरिक्षीय ज्ञान में प्रयुक्त किया जा सके तो अनेकों महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ हाथ लग सकती हैं।

रूसी वैज्ञानिक ब्लादीमोर देस्यातोब ने इस सम्बन्ध में व्यापक शोध कार्य किया है, उनका कहना है कि पृथ्वी पर समय-समय पर आने वाले चुम्बकीय तूफानों से धरती के निवासियों में स्नायविक एवं मनोरोगों की बहुलता देखी जाती है। धरती पर चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता या फ्रीक्वेन्सी बदलना आकाशीय पिण्डों के ऊर्जा प्रवाह के परिणाम हैं। अपनी आरम्भिक खोजों में ब्लादीमोर ने यह पाया कि जब सूर्य पर एक विशेष प्रकार के ज्वाला प्रकोप (फ्लेयर) फूटते हैं तो धरती पर प्रचण्ड चुम्बकीय तूफान आते हैं जिनसे प्रभावित तो सभी होते हैं, पर कमजोर मनःस्थिति वाले व्यक्तियों पर उनकी प्रतिक्रिया अत्यधिक दिखाई पड़ती है। आत्महत्याएँ, हत्याएँ एवं असन्तुलन के फलस्वरूप सड़क दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं। इसी आधार पर वैज्ञानिकों का कहना है कि मस्तिष्कीय क्रिया-क्षमता का मूलभूत स्रोत-अल्फा इनर्जी धरती के चुम्बकीय क्षेत्र से जुड़ा हुआ है और भू-चुम्बकत्व का सीधा सम्बन्ध आकाशीय पिण्डों से है। इसलिए मानवी जीवन अन्तरिक्षीय घटनाक्रमों एवं शक्तियों से विलक्षण रूप से सम्बन्धित है। अस्तु अन्तरिक्ष में पैदा होने वाली हर हलचल पृथ्वी, मानवी प्रकृति, मन, बुद्धि, एवं चेतना को प्रभावित करती है।

प्रसिद्ध खगोल शास्त्री पास्कल का कहना है कि सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा आरोपित सशक्त खिंचाव से सभी परिचित हैं जो समुद्रों-सागरों में ज्वार-भाटे उत्पन्न करते हैं। ये जीवधारियों पर भी अपना प्रभाव छोड़ते हैं। पास्कल के अनुसार समस्त जीवधारी कम्पायमान समष्टिगत ऊर्जा के एक विशाल समुद्र में निवास करते हैं, फिर विभिन्न ग्रहों से उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा तरंगों से अप्रभावित कैसे रह सकते हैं। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में यह तथ्य अगले दिनों सप्रमाण पुष्ट होगा कि पृथ्वी पर विद्यमान जीवन का अन्तरिक्ष के ग्रह, नक्षत्रों से घना सम्बन्ध है और अविज्ञात होते हुए भी सूक्ष्म आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता है।

प्रौढ़ता को प्राप्त करता हुआ विज्ञान अब उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँच रहा है जिन पर सदियों पूर्व भारतीय तत्वेत्ता ज्योतिर्विद पहुँच चुके थे। समूचा ब्रह्माण्ड एक चैतन्य शरीर है, जिसका प्रत्येक स्पन्दन हर घटक को प्रभावित करता है जिसमें पृथ्वी और सम्बन्धित वातावरण वनस्पति एवं जीवधारी भी सम्मिलित हैं। प्राचीनकाल में ज्योतिष विज्ञान इसी दिशा में अनुसंधान करने, प्रमाण जुटाने और अन्तर्ग्रही तथ्यों की खोजबीन करने में सचेष्ट था, जिसकी अनेकानेक उपलब्धियों से समय-समय पर मानव जाति लाभान्वित होती रहती थी। विज्ञान का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और अन्तर्ग्रही टोह लेने का सिलसिला आरम्भ हुआ है, यह शुभ चिन्ह है। फिर भी ज्योतिर्विज्ञान के बिना अन्तरिक्षीय खोज-बीन करने में विज्ञान उतना सक्षम नहीं है। इस दिशा में प्राचीन भारतीय ज्ञान सहायक सिद्ध हो सकता है। उस विषय पर भारतीय प्राचीन ज्योतिर्विदों ने गहन अनुसन्धान किए एवं निष्कर्ष निकाले हैं। आर्य भट्ट का ज्योतिष सिद्धान्त, कालक्रियापाद, गोलपाद, सूर्य सिद्धान्त और उस पर नारदेव, ब्रह्म गुप्त के संशोधन, परिवर्धन, भास्कर स्वामी का महाभास्करीय आदि दुर्लभ और अमूल्य ग्रन्थ अनेकानेक रहस्यों एवं निष्कर्षों से भरे पड़े हैं। ज्योतिष सिद्धान्त पुस्तक के प्रथम पाद में अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के सिद्धान्त समझाए गए हैं। मात्र तीस श्लोकों में दशमलव, वर्ग, क्षेत्रफल, घनमूल, त्रिभुजाकार शंकु का घनफल निकालने जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों की जानकारी सूत्र रूप में आबद्ध है। काल क्रियापाद में खगोलशास्त्र का विशद वर्णन है। इसी तरह उसका अन्तिम पाद ५० श्लोकों का अध्याय 'गोलपाद' अपने में ज्योतिष विज्ञान के महत्त्वपूर्ण रहस्यों पर प्रकाश डालता है। अपने पंच सिद्धान्तिक में वाराह मिहिर ने पौलिश, रोमक, वाशिष्ट, सौर और पितामह नामक पाँच ज्योतिर्सिद्धान्तों का वर्णन किया है जो ज्योतिर्विज्ञान पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं। ज्योतिर्विज्ञान के शोधकर्त्ताओं के लिए अतीत के महान् ज्योतिर्विदों द्वारा संगृहीत किया गया है यह ज्ञान पथ प्रदर्शन कर सकता है।

रोगोपचार में ज्योतिर्विज्ञान का योगदान

प्राचीनकाल में ज्योतिर्विज्ञान का प्रयोग विविध प्रयोजनों के लिए किया जाता था। आज जैसे भौतिक विज्ञान का विकास न होते हुए भी वह इतना सक्षम था कि उसका अवलम्बन लेकर कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए जाते थे। अन्तर्दृष्टा, ऋषि इस तथ्य से भली-भाँति अवगत थे कि पृथ्वी पर सम्पदाओं का एक बड़ा भाग दूसरे ग्रहों एवं नक्षत्रों से प्राप्त होता है। कब, किस प्रकार के अनुदान उनसे पृथ्वी पर बरसते हैं, इससे वे भली प्रकार परिचित थे। उसी के अनुरूप वर्तमान और भावी गतिविधियों का निर्धारण किया जाता था। वे जानते थे कि एकाकी मानवी पुरुषार्थ ही सब कुछ नहीं है। पुरुषार्थ के साथ परिस्थितियाँ अनुकूल हों तभी सफलता मिलती है।

अन्तर्ग्रही हेर-फेर से पृथ्वी के वातावरण, मनुष्य, जीव-जन्तु एवं वृक्ष-वनस्पतियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी जानकारी होने से तदनुरूप सुरक्षा-व्यवस्था बनाने और दैनन्दिन क्रिया-कलापों में आवश्यक परिवर्तन की बात सोची जाती थी। कृषि कार्यों में ज्योतिर्विज्ञान का सहयोग लिया जाता था। ग्रहों की गति एवं स्थिति, नक्षत्रों के योग का कब और किस प्रकार का प्रभाव पृथ्वी के मौसम पर पड़ेगा ? इस जानकारी के आधार पर ही निश्चित प्रकार के बीज बोने का निर्धारण किया जाता था।

ज्योतिर्विज्ञान का सर्वाधिक योगदान था—मानवी स्वास्थ्य सन्तुलन में। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली किसी समय में हर तरह की बीमारियों के उपचार में सक्षम थी। आज जैसे 'असाध्य' नाम के कोई रोग नहीं थे। न केवल रोग निवारण और स्वास्थ्य सम्वर्धन वरन् वृद्धावस्था में भी यौवन प्राप्त करने के कायाकल्प जैसे उपचारों का उल्लेख आयुर्वेद में मिलता है। कितने ही व्यक्तियों के प्रमाण भी मिलते हैं, जिन्होंने काया-कल्प के माध्यम से युवकों जैसी शक्ति पायी। आयुर्वेद की चिकित्सा प्रणाली, निदान, उपचार की विधियाँ आज भी प्रचलित हैं। सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं, पर काया-कल्प और असाध्य रोगों का उपचार तो दूर रहा, सामान्य रोगों के उन्मूलन में भी सफलता नहीं मिल पाती।

रोगोपचार की वनस्पतियाँ भी अविज्ञात और अनुपलब्ध नहीं है और न ही इस विषय पर ग्रन्थों का अभाव है। फिर क्या कारण है कि रोगोपचार में आशातीत सफलता नहीं मिल पाती।

गहराई से अध्ययन करने पर एक ही तथ्य उभर कर सामने आता है कि आयुर्वेद शास्त्र के साथ ज्योतिर्विज्ञान घुला-मिला था। आयुर्वेद की सफलता का श्रेय वस्तुतः ज्योतिर्विद्या को ही था। जो कालान्तर में विलुप्त होती गई। फलस्वरूप यह चिकित्सा प्रणाली उतनी सक्षम न रही जितनी कि प्राचीन काल में थी।

आयुर्वेद के मूर्धन्य विद्वानों में चरक, सुश्रुत वाण भट्ट का नाम आता है। ये सभी न केवल चिकिसा शास्त्र के वरन् ज्योतिर्विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे, किम्बदन्ती है कि 'चरक' वनस्पतियों के संग्रह के लिए वनों एवं पहाड़ों पर जाते थे तो जड़ी-बूटियाँ स्वतः अपनी विशेषताओं और गुणों को बता देती थी। साथ ही उन्हें किस वातावरण में और कब लगाने से क्या विशेषताएँ पैदा होती हैं और किस तरह के मनोभूमि एवं रोग वाले व्यक्ति को लाभ पहुँचाती हैं, की जानकारी भी दे देती थीं। कथानक की सत्यता और असत्यता पर न जाकर सन्निहित तथ्यों पर ध्यान दें तो पता चलता है—रोग निवारण में मात्र औषधि का ही योगदान नहीं होता। उसे किस वातावरण में कब और किन ग्रह, नक्षत्रों के योग की स्थिति में उगाए जाने से क्या प्रभाव पड़ता है, यह जानना भी आवश्यक है। उपचार की सफलता इस तथ्य के ऊपर ही निर्भर करती है।

मानवी स्वास्थ्य अन्तर्ग्रही गतिविधियों एवं परिवर्तनों से असाधारण रूप से प्रभावित होता है। इस तथ्य पर प्रकाश डालने वाले कितने ही सूत्रों का उल्लेख आयुर्वेद शास्त्र में मिलता है। ज्योतिष सूत्र के अनुसार 'अष्टमी व्याधिनाशिनी' अर्थात् अष्टमी जो चन्द्रमा का आठवां दिन होता है, सम्पूर्ण व्याधियों का अन्त करने वाला दिन है अर्थात् इस दिन जो भी औषधि ली जायेगी विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होगी। अष्टमी को सूर्य और चन्द्रमा एक-दूसरे से ९० अंश पर स्थित होते हैं इसलिए दोनों ही पृथ्वी के सभी द्रवों के प्रति अपना आकर्षण कम कर देते हैं। मानव शरीर में विद्यमान रक्त और जल में भी सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त आकर्षण कम हो जाने से इस अवधि में दी गई दवाएँ अधिक प्रभावकारी सिद्ध होती हैं।

"भैषजिक ज्योतिष के अनुसार अनेकों बीमारियाँ" विशेषतः चर्मरोग, पागलपन, मिरगी, मानसिक, विक्षिप्तता, शुक्ल पक्ष में उग्र होती हैं। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र को इसकी कोई जानकारी नहीं है कि ऐसा क्यों होता है? ज्योतिष विज्ञान के अनुसार शुक्ल पक्ष में सूर्य और चन्द्रमा आकाश में एक-दूसरे के अधिक निकट होते हैं। ये दोनों ही पृथ्वी के वायुमण्डल में सुव्याप्त गैस कणों को अधिक आकर्षित करते हैं। जिसका प्रभाव मनुष्य और पशुओं के स्वास्थ्य के ऊपर पड़ता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि चतुर्दशी को जब सूर्य और चन्द्रमा एक-दूसरे से १६० अंश का कोण बनाते हैं—बीमारियाँ अधिक उग्र हो जाती हैं। भावनात्मक उद्वेग भी इन्हीं दिनों चरम बिन्दु पर होता है।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध त्रिदोष सिद्धान्त भी अपने में ज्योतिषशास्त्र के कितने ही सूक्ष्म रहस्यों को समाहित किए हुए हैं। वात, पित्त, और कफ का विश्लेषण करने पर महत्त्वपूर्ण सूत्र हाथ लगते हैं। जिन्हें समझा जा सके तो अनेकों रोगों के उपचार में सहयोग मिल सकता है। 'वात' शब्द की उत्पत्ति व्युत्पत्ति 'वा' धातु से हुई है जिसका अर्थ है—गति। "वा गतिगंधन यो रिति धातुः।" पित्त शब्द का उद्गम 'तप' से हुआ है। 'तप' अर्थात् 'तपसं तामे पित्तम।' अर्थात् उत्क्रान्तता, उत्तेजना और शक्ति का परिचायक। कफ-श्लेष्मा से अभिप्रायः है—मिलना-आकर्षण करना।

"श्लिष आलिंगनेः"। टीकाकार 'चक्रपाणि' ने इन तीनों की व्याख्या सारगर्भित रूप से की है। उनके अनुसार वात गति का, पित्त शक्ति और कफ आकर्षण का प्रतीक है। अस्तु, मात्र इतना ही जानना पर्याप्त नहीं है कि ये तीन शरीर की मात्र तीन रासायनिक प्रकृतियाँ हैं वरन् इनकी सूक्ष्म विशेषताओं को जानना भी आवश्यक है।

आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत का मत है कि जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा और वायु की शक्तियाँ संसार को गतिशील करने के लिए आवश्यक हैं, उसी तरह वात, पित्त और कफ का सन्तुलन शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य के लिए भी अनिवार्य है। उन तीनों प्रकृतियों पर ग्रहों की स्थिति, गति और परिवर्तनों का समय-समय पर क्या प्रभाव पड़ता है? यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है। रोग का निदान और उपचार भली-भाँति तभी सम्भव है।

ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार तारा पुंजों के तीन समुदाय हैं, जिनका सम्बन्ध आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त से है। वे तीनों वात, पित्त, कफ की स्थिति को भी समय-समय पर प्रभावित करते हैं। इसी तरह ग्रहों का प्रभाव भी तीनों ही धातुओं पर पड़ता है। उदाहरणार्थ सूर्य अधिकांशतः पित्त पर तथा चन्द्रमा वात पर असर डालता है। चन्द्रकला की स्थिति और सूर्य की गतिविधि भी दोनों ही तत्वों में उतार-चढ़ाव लाते हैं। ज्योतिष शास्त्र का मत है कि चन्द्रमा मन को, सूर्य आत्मा को, बुध चेतन तन्तुओं को अपनी स्थिति से प्रभावित करते हैं। जिन जातकों में सूर्य और चन्द्रमा आग्नेय राशियों के नक्षत्र में होते हैं, ऐसी स्थिति में शुष्क, गर्म और तेज धूप वाली जलवायु में रहने वाले व्यक्तियों के चेतना तन्तुओं में विशिष्ट प्रकार की विकृतियाँ आ जाती हैं, जिनके कारणों से आज के चिकित्सा शास्त्री न तो अपरिचित होते हैं। फलस्वरूप उनको निदान और उपचार में सफलता नहीं मिल पाती।

शरीर विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र के जिन गूढ़ रहस्यों पर ज्योतिर्विज्ञान के सिद्धान्त प्रकाश डालते रहे हैं उनके विषय में विश्व में ढूँढ़, खोज आरम्भ हो गई है। रोगों की उत्पत्ति और उपचार में शारीरिक और मानसिक स्थिति में अन्तर्ग्रही परिस्थितियों का भी योगदान होता है, अब यह विश्व के मूर्धन्य चिकित्सा शास्त्री अनुभव करने लगे हैं। डॉ. एडसन ने अपने अनेकों प्रयोगों के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि रक्त स्राव की ८२ प्रतिशत घटनाएँ चाँद के प्रथम और तीसरे सप्ताहों में घटित होती हैं। 'प्रो. रिविस्ज' का मत है कि मानव शरीर में वैद्युतीय शक्ति की अधिकता पूर्णमासी की चौदहवीं रात को होती है। ये वैद्युतीय परिवर्तन मनुष्य की मनःस्थिति और स्वभाव को विक्षुब्ध बनाते हैं। डॉ. 'वेकर' के अनुसार मानसिक विक्षिप्तता के कारण इन्हीं दिनों अपराध की घटनाओं में भी वृद्धि होती है।

स्वीडेन के प्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्री सावन्ते आर. हैन्थस ने अपनी खोजों के आधार पर घोषणा की है कि स्त्रियों में मासिक धर्म चन्द्र मास की विशेष तिथियों में ही प्रकट होता है। स्त्री रोग विशेषज्ञ औगिनो और नोस का कहना है कि गर्भधान के

लिए सर्वश्रेष्ठ समय मासिक धर्म से क्रमशः चौदहवाँ, पन्द्रहवाँ और सोलहवाँ दिन अधिक उपयुक्त होता है ।

जिन रहस्यों का उद्घाटन आज के चिकित्सा शास्त्री कर रहे हैं, उससे भारतीय ज्योतिर्विज्ञ पहले ही परिचित थे । जातक पारिजात नामक ज्योतिष ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि मासिक धर्म के आरम्भ के बाद चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं रातों में गर्भाधान की सम्भावना सर्वाधिक रहती है । 'आचार्य' वाराह मिहिर का एक सूत्र इस प्रकार है—

कुजेन्दुहेतुः प्रतिमास मार्यवं ।
गतेतु पोऽर्षमनुष्ठा धी दितौ ॥

अर्थात् किसी भी स्त्री में मासिक धर्म उस समय आरम्भ होता है जबकि चन्द्रमा उसकी जन्म कुण्डली के एक निश्चित स्थान में प्रविष्ट करता है ।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलने लगे हैं कि सौर कलंक के समय सूर्य से एक विशिष्ट प्रकार का रेडिमेशन होता है, जो भू-चुम्बकीय क्षेत्र और पृथ्वी के वातावरण में असन्तुलन उत्पन्न करता है । ऐसी स्थिति में विविध रोगों की उत्पत्ति होती है ।

प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक 'निकोलससिउज' का मत है कि "सूर्य कलंकों में वृद्धि होने से मानव रक्त में पाये जाने वाले रक्षात्मक श्वेत कणों में कमी आ जाती है । फलतः रुग्ण होने की सम्भावना बढ़ जाती है ।"

प्राचीन ज्योतिर्विद्या में न केवल रोगों की उत्पत्ति के कारणों का वर्णन है, वरन् निदान और उपचार पर भी प्रकाश डाला गया है । भैषिजीय ज्योतिर्विद्या में रोग निदान का विस्तृत उल्लेख किया है । उसमें मात्र औषधि उपचार का ही नहीं अन्तर्ग्रही परिवर्तनों के साथ खान-पान में किस तरह का हेर-फेर करना तथा उपवास एवं मन्त्र चिकित्सा का प्रयोग अपनाना चाहिए का भी छुट-पुट वर्णन मिलता है । 'अरिष्ट योग' में बताया गया है कि रोगी की क्षय हुई शक्ति को और नष्ट हो गई कोशिकाओं को मन्त्र चिकित्सा द्वारा पुनः प्राप्त कर सकता है ।

ज्योतिर्विज्ञान के चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित विविध पक्षों को नये सिरे से अध्ययन पर्यवेक्षण की आवश्यकता है । रोगों की उत्पत्ति में प्रत्यक्ष स्थूल कारणों को महत्त्व दिया जाता और स्थूल उपचारों की बात सोची जाती है । अदृश्य किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ग्रह, नक्षत्रों के ज्ञान को भी चिकित्सा अनुसन्धान की कड़ी में जोड़ा जा सके तो रोगों के कारण और निवारण के कितने ही चमत्कारी सूत्र हाथ लग सकते हैं, जिनसे अपरिचित बने रहने से रोगोपचार में चिकित्सक अपने को अक्षम पाते हैं । निदान और उपचार के ऐसे अनेकों रहस्य इस अनुसन्धान प्रक्रिया से खुलने की सम्भावना है ।

ज्योतिर्विज्ञान मात्र भौतिकी तक सीमित नहीं

ग्रह, नक्षत्रों, सौरमण्डल की गतिविधियों, उनके आपसी सम्बन्धों और परस्पर एक दूसरे पर, पृथ्वी के वातावरण, वृक्ष, वनस्पति एवं जीवधारियों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी देने के अतिरिक्त भी ज्योतिष विज्ञान का एक पक्ष है—सूक्ष्म अन्तरिक्ष में चलने वाले चैतन्य प्रवाह और उनकी भली-बुरी प्रतिक्रियाओं से अवगत कराना । एकांगी सौर गतिविधियों की जानकारी तो आज के विकसित खगोल शास्त्र और सम्बन्धित आधुनिकतम यन्त्रों द्वारा भी मिल जाती है । सशक्त रेडियो टेलीस्कोपों से लेकर अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित-स्थापित कृत्रिम सेटेलाइट्स हजारों की संख्या अन्तरिक्ष की विभिन्न कक्षाओं में घूमते हुए यह सीमित प्रयोजन पूरा कर ही रहे हैं । ग्रह, नक्षत्रों, तारा पिण्डों के स्वरूप, स्थिति एवं गति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है और कितने ही नवीन तथ्यों का आविष्कार हो रहा है । यह ज्ञान उपयोगी और मानवी प्रयास प्रशंसनीय है ।

इतने पर भी ज्ञान का वह पक्ष अभी भी अछूता है जिसके सहारे सूक्ष्म अन्तरिक्षीय चैतन्य प्रवाहों की जानकारी मिलती थी । उपयोगी प्रवाह को पकड़ने, लाभ उठाने और हानिकारक से बचाव करने की बात सोची जाती थी । कहना न होगा कि यह महत्त्वपूर्ण प्रयोजन भी ज्योतिर्विद्या में प्राचीनकाल में समाहित था जिसका चेतना विज्ञान खगोल जानकारियों की तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान और मनुष्य जाति के लिए उपयोगी था । जिसके सहारे प्रकृति की हलचलों में भी हेर-फेर की बात सोची और आध्यात्मिक उपचारों की व्यवस्था बनाई जाती थीं ।

प्रगति की ओर आगे बढ़ते हुए विज्ञान कल नहीं तो परसों वहाँ पहुँचने वाला है, जिसके सहारे भावी अन्तरिक्षीय घटनाक्रमों के विषय में पूर्व ज्ञान प्राप्त कर सकें । कई बार भविष्य विज्ञानियों के प्रकृति विक्षोभों के सम्बन्ध में कथन सही भी उतरते हैं । सम्भव है अगले दिनों वे और भी यथार्थता के निकट पहुँचें । पर इतने पर भी मूलभूत समस्या का समाधान नहीं निकलता । कहने का आशय यह है कि अन्तर्ग्रही असन्तुलनों के कारण जानने एवं निवारण के लिए उपचारों के अभाव में अन्तर्ग्रही जानकारी मात्र होने से कुछ बनता बिगड़ता नहीं है । अस्तु वैज्ञानिक प्रयास उत्साहवर्धक एवं सराहनीय होते हुए भी एकांगी और अपूर्ण हैं ।

आये दिन भूकम्प, तूफान, चक्रवात, भू-स्खलन, बाढ़, ज्वालामुखियों का फटना जैसी प्रकृति की विभीषिकाएँ अपनी विनाशलीला पृथ्वी पर रच जाती हैं । मनुष्य मूक, असहाय बना उन्हें देखता और बेबसी पर आँसू बहाता है । आँकड़े एकत्रित किए जायें तो पता चलेगा, कि प्रतिवर्ष विश्व भर में युद्धों, बीमारियों से मरने वालों की तुलना में प्रकृति प्रकोपों से जान गँवाने वालों की संख्या कहीं अधिक होती है । भौतिक सम्पदा का एक बड़ा भाग प्रकृति विक्षोभ लील जाते हैं और मानवी पुरुषार्थ पर निर्दयतापूर्वक पानी फेर जाते हैं । जितनी सम्पदा प्रकृति विक्षोभों के कारण नष्ट हो जाती है । वह किसी प्रकार सुरक्षित रहती तो उससे प्रगति में भारी योगदान मिल सकता था । प्रस्तुत होने वाली विभीषिकाओं की यदि किसी प्रकार विज्ञान द्वारा जानकारी मिल जाय तो भी उन्हें रोक सकने, सूक्ष्म अन्तरिक्ष में पक रही घटनाओं में हेर-फेर कर पाने में भौतिक विज्ञान अभी भी असमर्थ है । वह तकनीक अभी तक विकसित नहीं हो पायी है जिसके माध्यम से यह प्रयोजन पूरा हो सके ।

प्राचीनकाल में ज्योतिर्विज्ञान के आचार्य न केवल अन्तर्ग्रही गतिविधियों के ज्ञाता होते थे वरन् आत्मविज्ञान, चेतना विज्ञान के क्षेत्र में भी उनकी पहुँच होती थी । फलतः सौरमण्डल की जानकारियाँ प्राप्त करने के साथ-साथ उनमें अभीष्ट हेर-फेर करने

के आध्यात्मिक उपचारों से परिचित होने से समय-समय पर इस प्रकार के प्रयोग, परीक्षण भी किए जाते थे। ऐसे कितने ही उल्लेख आर्ष ग्रन्थों में मिलते हैं, जिनमें मन्त्र शक्ति का प्रयोग प्रकृति विप्लवों को रोकने, वर्षा कराने, असन्तुलनों के निवारण में समय-समय पर किया जाता रहा है। सूर्य-सविता की उपासना किसी समय घर-घर प्रचलित थी। भारत ही नहीं जापान, चीन, इंग्लैण्ड, रोम, जर्मनी, आदि स्थानों पर भी सूर्य उपासना के प्रचलन का उल्लेख विविध ग्रन्थों में मिलता है। सूर्य सौरमण्डल के सदस्यों का मुखिया है। पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रभाव भी उसी का पड़ता है। अन्यान्य ग्रह सूर्य के साथ मिलकर अपनी प्रतिक्रियाएँ पृथ्वी पर प्रकट करते हैं। अस्तु सूर्य उपासना विज्ञान सम्मत और विविध प्रयोजनों के लिए विविध रूपों में प्रचलित थी। मन्त्र शक्ति यज्ञोपचार आदि द्वारा वर्षा पर नियन्त्रण प्राप्त करने, प्राण तत्व को धरती पर उतारने जैसे प्रयोग सुलभ थे।

चेतना की सामर्थ्य जड़ की तुलना में कई गुनी अधिक है। जड़ प्रकृति पर नियमन, नियन्त्रण ही नहीं उसमें हेर-फेर करने में भी वह सक्षम है। अन्तर्ग्रही चैतन्य प्रवाह को उलटना-पलटना हो, तो चेतना की सामर्थ्य का ही प्रयोग करना होगा। अन्तर्ग्रही शक्तियों की विशालता और प्रचण्डता अद्‌भुत और विलक्षण है। इतने पर भी चेतन की प्राण शक्ति द्वारा सुव्यवस्थित साधना क्रम को अपनाकर प्राण प्रहार द्वारा उस प्रवाह में परिवर्तन कर सकना सम्भव है। ऐसे परिवर्तन जो पृथ्वी के जीवधारियों के लिए उत्पन्न अविज्ञात कठिनाइयों को रोकने और अदृश्य अनुदानों को बढ़ाने में समर्थ हो सके। खगोल विज्ञान की पूर्णता ज्योतिर्विज्ञान में है जो अपने में चेतना विज्ञान की सामर्थ्य को भी समाहित किए हुए है। कुशल चिकित्सक रोग का निदान ही पर्याप्त नहीं समझते, रुग्णता हटाने और आरोग्य हटाने का उपचार भी सोचते हैं। ज्योतिर्विज्ञान केवल ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति ही अवगत नहीं कराता, अपितु अदृश्य प्रभावों के अनुकूलन का प्रबन्ध करता है।

इस सन्दर्भ में एक बात और समझने योग्य है कि सौरमण्डल के ग्रह उपग्रह भौतिक दृष्टि से रासायनिक तत्वों से बने और बड़े आकार के गतिशील पिण्ड मात्र नहीं है। आत्म विज्ञानियों का मत है कि प्रत्येक जड़ सत्ता का एक चेतन अभियान होता है। उसी के नियन्त्रण से इन घटकों को अपनी गतिविधियाँ चलाने का अवसर मिलता है। नवग्रहों को ज्योतिर्विज्ञान में नव देवता माना गया है, जबकि खगोल शास्त्री इनकी चेतन विशेषताओं से अपरिचित होने के कारण मात्र पदार्थ पिण्ड मानते हैं। आत्मवेत्ताओं ने तैंतीस कोटि देवता गिनाए हैं। यहाँ कोटि का अर्थ करोड़ से नहीं श्रेणी से है। इस समुदाय में ग्रह पिण्ड, नीहारिकाएँ, पंच तत्व, पंच प्राण, देवदूत, जीवनमुक्त, पितर जैसी सूक्ष्म अदृश्य दिव्य सत्ताओं को गिना जा सकता है, जो सृष्टि के सुसंचालन में हिस्सा बँटाती हैं। देवाराधना, उपासना में इन्हीं के साथ सम्पर्क और परस्पर आदान-प्रदान का मार्ग खोलने का प्रयास किया जाता है।

भूमण्डल का विस्तार सीमित है, अन्तरिक्ष का अनन्त। जितनी सम्पदा पृथ्वी तथा इसके निकटवर्ती वातावरण में है उससे असंख्यों गुना अधिक अन्तरिक्षीय परिकर, परिसर में संव्याप्त है। जिसमें पदार्थ भी है और चेतना भी। पितरों से लेकर देव समुदाय के सूक्ष्म शरीरधारी तथा महाप्राण की शक्तियाँ इसी विस्तृत अन्तरिक्ष से निवास करती हैं। इस प्रत्यक्ष और परोक्ष, जड़ और चेतन की शक्तियों का तारतम्य न मिल पाने से कितने ही अनुदानों से वंचित रहना पड़ता है और मात्र प्रकृति प्रवाह जो सहज ही मिल जाता है। उतने भर से पृथ्वीवासियों को सन्तुष्ट रहना पड़ता है।

अस्तु ज्योतिर्विज्ञान पर समग्र शोध के साथ कितनी ही उपयोगी सम्भावनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। इससे मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत अनेकानेक विभीषिकाओं के पीछे विद्यमान अदृश्य कारणों को ढूँढ़ने व उनके निवारण में सहयोग मिलेगा। साथ ही दैवी चैतन्य प्रवाह से अनुकूल लाभ पा सकना भी सम्भव हो सकेगा।

शुद्ध पंचांग और दृश्य गणित

बाजार में अनेक पंचांग बिकते हैं। उनमें से प्रख्यातों की संख्या तीस से अधिक है। इनके गणित में भारी अन्तर भी पाया जाता है। मुद्रण और विनिमय व्यवस्था के कारण जो पंचांग जिस क्षेत्र या समुदाय में बिकने लगता है उसका प्रचलन भी उन्हीं क्षेत्रों में होता है। इन विषमताओं का कारण पंचांग बनाने की वे पद्धतियाँ हैं जो विभिन्न पुरोहितों के पूर्वाग्रहों में सम्मिलित हो गई हैं और जिनकी शुद्धता पर वे सभी एक दूसरे से बढ़कर दावा करते हैं।

जिस प्रकार एक आदर्श कल्पना बहुत दिनों से यह चली आती है कि कई धर्मों को मिलाकर मानव धर्म बनाया जाय जो सार्वभौम एवं सर्वमान्य हो, उसी प्रकार गत एक शताब्दी में ज्योतिर्विज्ञान के विद्वानों ने यह भी प्रयत्न किया है कि एक सर्वमान्य पंचांग ऐसा बने जिसकी भारतीय पक्ष में तो मान्यता हो ही, पर इन दोनों प्रयासों में से एक को भी कहीं कोई सफलता नहीं मिली हो। खींच-तान की स्थिति ऐसी बनी रही जिसमें होली, दिवाली जैसे प्रमुख त्यौहार भी दो हो जाते हैं। रामनवमी और कृष्ण जन्माष्टमियों से लेकर एकादशी व्रतों तक के बारे में आगा-पीछा चलता है। पंचांग जगत के लिए यह स्थिति लज्जास्पद है कि उन्हें किस दिन कौन-सा व्रत त्यौहार मनाया जाय, इसकी सही जानकारी न दी जाय और मतभेदों के शिकार लोग अपने को अधिक सही या गलत कहते रहें।

ऐसी दशा मे अंग्रेजी कैलेण्डर की मान्यता और प्रामाणिकता बढ़ रही है। दिसम्बर, जनवरी में कैलेण्डर बेचने या उपहार देने का प्रचलन है। उसमें अंग्रेजी तारीखों वाला ही कैलेण्डर छपा होता है। कारण उसका एक तो यह है कि उन्होंने धीरे-धीरे अधिकांशतः मूर्धन्य देशों में मान्यता प्राप्त कर ली है। दूसरे अन्तरिक्ष विद्या के अनुरूप कम्प्यूटरी या रेडियो सम्पर्क की पद्धति में उसी का प्रयोग होता है। यह ग्रेगोरी पंचांग कहलाता है। अन्तरिक्ष विज्ञान के सन्दर्भ में जो इन दिनों पर्यवेक्षण किया जाता है, वह इसी के आधार पर होता है क्योंकि उसकी प्रामाणिकता पर अधिक विश्वास किया जाता है।

देश में कुछ पंचांग सूर्य सिद्धान्त के आधार पर बने हैं, कुछ चन्द्र सिद्धान्त के आधार पर। इनमें संक्रान्ति काल गणना को प्रमुख महत्त्व दिया जाता है। इस्लामी मान्यता में जिस चन्द्र पंचांग का प्रयोग होता है वह अपने ढंग का अनोखा है। चन्द्र दर्शन के साथ उसका आरम्भ होता है। पर उसमें भी यह निश्चित

नहीं रहता कि अमुक दिन निश्चय ही चन्द्र दर्शन होगा। बहुत बार उसमें एक दिन का अन्तर पड़ जाता है।

काल गणना में कई वस्तुएँ ऐसी हैं, जो अपना महत्त्व रखती हैं। पृथ्वी अपनी धुरी पर जितने समय में घूमती हैं, उससे दिन-रात बनते हैं। उसका परिभ्रमण उपक्रम कुछ ऐसा है जिसमें ऋतुओं के अनुरूप दिन-रात की लम्बाई में अन्तर पड़ता रहता है। चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाएँ समय का बोध कराती हैं एवं तिथियों की जानकारी देती हैं।

सूर्य का अपनी कक्षा पर परिभ्रमण और उसके कारण पृथ्वी का उसके समीप या दूर पहुँचना ऋतु परिवर्तन का कारण है। शीत, ग्रीष्म और वर्षा का यह परिवर्तन आधार है।

सौरमण्डल के परिभ्रमण क्षेत्र को २७ भागों में बाँटा गया है। यही नक्षत्र हैं। यों नक्षत्र ब्रह्माण्ड स्थित ग्रहों, सूर्यों को भी कहते हैं, पर जहाँ तक पंचांगों की काल गणना का सम्बन्ध है, वहाँ तक सौरमण्डल के परिभ्रमण क्षेत्र को ही नक्षत्र कहते और उसी आधार पर वे स्पष्टीकरण करते हैं कि अमुक समय, अमुक सौरमण्डलीय ग्रह या उपग्रह किस स्थान पर था ?

तिथि, वार और नक्षत्रों का सम्बन्ध सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी से सम्बन्धित है पर पंचांगों में उल्लिखित दोनों और कारणों के बारे में कोई सन्तोषजनक आधार अभी तक नहीं मिला है। संक्रान्ति से, अमावस्या से, पूर्णिमा से आरम्भ होने वाले महीनों के आधार पर अलग-अलग पंचांग बनते हैं और जहाँ जिसका प्रचलन चला आया है वहाँ उसका मान मिलता है। पूर्वार्त्त और पाश्चात्य मान्यताओं के सम्मिश्रण से एक राष्ट्रीय पंचांग भी छपता है पर उसकी बिक्री एवं मान्यता नगण्य ही है।

पंचांगों में महीनों का मान समान नहीं पाया जाता। पूरे तीस दिनों का महीना किसी ने भी नहीं माना है। महीने का मान २६०३०५५ दिनों से लेकर २६०८१२५ दिनों तक बदलता रहता है। इस अस्थिरता का एक मध्यवर्ती मार्ग २६,०५३०६ सौर दिनों का मध्यवर्ती वर्ष माना गया है। पर यह भी पूर्ण नहीं है। गणित की कोई पद्धति अभी तक ऐसी नहीं निकाली जा सकी है, जो घण्टा, मिनट या घड़ी, पल के हिसाब से वर्ष का कोई सुनिश्चित मापदण्ड स्थिर कर सके। इसलिए भारतीय पंचांग मार्ग वृद्धि या मार्ग क्षय का बीच-बीच में ऐसा जोड़-तोड़ लगाते रहते हैं ताकि अन्तर की खाई को कम चौड़ा किया जा सके। पाश्चात्य पद्धति महीने को ३० या ३१ का कर देते हैं। किसी को २८ या २६ दिन का बना देते हैं। यह सब इसलिए करना पड़ता है कि पंचांग बनाने के लिए जो गणित पद्धतियाँ बनानी पड़ती हैं उनमें से किसी को पूर्व या सुनिश्चित नहीं कहा जा सकता है। सभी अनुमान के लगभग हैं और पूरी तरह न मिलने पर आधी से काम चलाने की रीति के अनुसार काम चलाना पड़ता है।

सॉयन और विरचन पंचांग पद्धतियों को अपनाने पर विवाद सहज ही गहरा हो जाता है। वह मुद्दतों से चला आया है और अभी तक नियन्त्रण में नहीं आया।

वस्तुतः कालचक्र का विभाजन इस तथ्य को ध्यान में रखकर किया गया है कि सौरपरिवार के सभी ग्रह नियत अवधि में सूर्य की परिक्रमा करके अपने स्थान पर आ जाते हैं, पर बात ऐसी है नहीं। अपना सूर्य अपने पुत्र-पौत्रों की मण्डली को साथ लेकर एक महासूर्य की परिक्रमा भी करता है। उसके अपने ग्रह-उपग्रह भी साथ में खिंचे चले आते हैं और उस महासूर्य की पदयात्रा में अपनी-अपनी परिधि को पकड़े हुए आगे बढ़ते रहते हैं।

बात इतने पर ही समाप्त नहीं हो जाती वरन् वह महासूर्य भी अति सूर्य की ओर दौड़ता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड इतना बड़ा है कि उसकी अनन्त परिक्रमा को करते हुए कोई भी ग्रह कदाचित सृष्टि के अन्त तक ही अपने पूर्व स्थान पर लौटकर आता हो। इस सृष्टि से निखिल ब्रह्माण्ड में कौन ग्रह, कब, कहाँ होगा ? इसका निश्चय करने का एकमात्र उपाय यही है कि विनिर्मित वेधशालाओं के माध्यम से ग्रहाचार की स्थिति को हर समय परखते और जो अन्तर पड़ता जाता है, उसका परिशोधन करते रहा जाय।

पंचांग बनते हैं, वे किसी नगर विशेष की पलभा को ध्यान में रखते हुए उस आधार पर गणित करने के बाद बनते हैं, जबकि होना यह चाहिए कि जन्मकुण्डली बनाते समय अपने स्थान की पलभा स्वयं निकाली जाय और उसके आधार पर स्थानीय पंचांग स्वयं बनाया जाय। कलकत्ता की पलभा पर बने हुए पंचांग में बम्बई की पलभा देखते हुए प्रायः आधे घण्टे का अन्तर रहेगा। ऐसी दशा में शुद्ध कुण्डली का बन सकना सम्भव नहीं। शुद्ध तब बने जब ग्रहों की स्थिति को प्रामाणिक वेधशाला के सहारे जानकर वस्तुस्थिति को समझा जाय। जिन दिनों ज्योतिर्विज्ञान का सही स्वरूप स्पष्ट था, उन दिनों वेधशालाओं को बनाने और उनका उपयोग करने का विधान समझने का भी कष्ट किया जाता था, पर अब तो सब धान बाईस पंसेरी के भाव बिक रहे हैं और नकल-टीप करके उत्तीर्ण होने और तीस मारखाँ बनने का घमासान चक्र चल रहा है।

इन परिस्थितियों को देखते हुए, समय की आवश्यकता को समझते हुए शान्ति-कुंज हरिद्वार में एक प्रामाणिक वेधशाला बनाई गई है और उसे माध्यम मानकर ब्रह्मवर्चस दृश्य गणित पंचांग को कई वर्षों से प्रकाशित किया जा रहा है।

ज्योतिर्विज्ञान का पुनर्जीवन देव संस्कृति का पुनीत कर्त्तव्य

प्राचीन काल में ज्योतिर्विज्ञान विज्ञान सम्मत था। भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने वाले विदेशी विद्वानों ने इस विधा से प्रभावित होकर अन्य भाषाओं में अनुवाद कराया। मुस्लिम ज्योतिषाचार्यों में इब्नबतूता और अलबरुनी का नाम उल्लेखनीय है। भारत की यात्रा पर आये इन विद्वानों ने अन्य भारतीय विधाओं के साथ ज्योतिष विद्या का भी गहन अध्ययन किया। अरब देशों ने इसके विस्तार की योजना बनाई। अलबरुनी सन् १०१७ से १०३१ तक भारत में रहा। महमूद गजनवी के साथ वह भारत आया था। ज्योतिष शास्त्र में प्रभावित होकर उसने भारतीय ज्योतिष के पौलिश सिद्धान्त व 'ब्रह्म गुप्त' का विवेचन करते हुए गणित ज्योतिष पर अरबी भाषा में प्रामाणिक ग्रन्थ की रचना की एवं सन् १०३१-३२ में अरबी भाषा में इण्डिका नामक ग्रन्थ लिखा।

अलबरुनी संस्कृत भाषा और ज्योतिष शास्त्र दोनों ही विषयों का मर्मज्ञ था। उसके मूल ग्रन्थ 'इण्डिका' को विश्व ख्याति

मिली । जर्मनी विद्वान एडवर्ड सी. सांचो इण्डिका में वर्णित सूक्ष्म ज्योतिर्विज्ञान के सूत्रों से विशेष प्रभावित हुआ और उसने इण्डिका का रूपान्तर जर्मन भाषा में कराया । कहते हैं कि इस पुस्तक के बाद जर्मनी विद्वानों का ध्यान भारत की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ और कितने ही विद्वान यहाँ आकर प्राचीन वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन करते रहे और अपने साथ ढेरों दुर्लभ वैदिक साहित्य ले गए । एडवर्ड सी. सांचो की पुस्तक दो विशाल खण्डों में है तथा विश्व ख्याति प्राप्त है । इस ग्रन्थ में सन् १०३१ के पूर्व प्रचलित ज्योतिष सिद्धान्त एवं इस विषय के मर्मज्ञ भारतीय विद्वानों का परिचय विस्तार से मिलता है ।

अलफजारी, याकूब विनतारिक, अबूअलहसन नामक अरबी विद्वानों की गणना भी ज्योतिष के विशेषज्ञों में की जाती है । यूनान के विद्वान यवनाचार्य भी दीर्घकाल तक भारत में रहे और ज्योतिर्विज्ञान का अध्ययन करते रहे । वे संस्कृत, अरबी और यूनानी भाषा के विशेषज्ञ थे । इनकी कारिकाएँ प्रसिद्ध हैं । ग्रन्थों में 'वृहयवन जातक' और 'लघुयवन जातक' प्रसिद्ध हैं । वाराहमिहिर जैसे विद्वानों ने अपनी पुस्तक बृहत्संहिता और बृहज्जातक में यवनाचार्य का वर्णन बड़े सम्मान एवं विस्तार से किया है । ऐसा अनुमान है कि ईसा पूर्व से ही यूनानी, अरबी विद्वानों की अभिरुचि भारतीय ज्योतिर्विद्या में थी और समय-समय पर अध्ययन के लिए वे लोग भारत आते रहे हैं ।

अकबर के नवरत्नों में से अब्दुल रहीम खानखाना न केवल भारतीय संस्कृति के पुजारी और कवि थे, बल्कि महान् ज्योतिर्विद् भी थे । उनकी रचनाएँ 'खेट कौटुकम्' और द्वाविंशद्योगावली आज भी ज्योतिष शास्त्र के अध्येताओं का मार्गदर्शन करती है ।

ईसा पूर्व सातवीं से दूसरी शताब्दी तक बेबीलोन में भी इस विद्या का बहुत विस्तार हुआ । जहाँ से यहूदियों और मिस्रवासियों ने इसे अपनाया । मध्य अमेरिका की प्राचीन एजटिक एवं मय संस्कृतियों में भी ज्योति विद्या प्रचलित थी । पीछे ग्रीकवासियों में भी यह विशेष लोकप्रिय हुई । मार्सेली फिकनो (सन् १४३३-१४९९) ने ज्योतिर्विज्ञान पर एक पुस्तक लिखी—'लिबर्डीविटा' । जिसमें अन्तर्ग्रही प्रभावों का विस्तृत उल्लेख है । प्रसिद्ध दार्शनिक पैरासैल्सस ने ज्योति-विज्ञान का उपयोग चिकित्सा जगत के लिए लाभप्रद बताया । उसका कहना था कि मैक्रोकॉस्मिक प्रभाव के अनुसार मनुष्य शरीर (माइक्रोकॉस्मिक) पर प्रभाव पड़ते रहते हैं तथा चिकित्सा शास्त्र से उसका घना सम्बन्ध है । उन्होंने शरीर के अवयव एवं ग्रह, नक्षत्र का सम्बन्ध सूचित करने वाली तालिका बनाई । फलतः अन्तर्ग्रहीय गतियों का शरीर की क्रियाओं एवं औषधियों पर होने वाले असर के अनेकों प्रयोगों का संकलन ज्योतिर्विज्ञान के रूप में सामने आया । इसे अंग्रेजी में 'एस्ट्रोलॉजिकल करेस्पौण्डेन्स' कहते हैं जिसके अनुसार विभिन्न रोगों के लिए विभिन्न ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति के अनुरूप उपयोग करने की वैज्ञानिक पद्धति विकसित हुई जो चरक और सुश्रुत के वर्णित चिकित्सा शास्त्र से बहुत कुछ मिलता-जुलता है ।

हेपोक्रेट्स और गेलेन आदि की यह मान्यता थी कि प्रत्येक चिकित्सक को ज्योतिर्विज्ञान का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है । पन्द्रहवीं शताब्दी में इस दिशा में आशातीत प्रगति हुई और एस्ट्रोमेडिसिन (ग्रह, नक्षत्रों से सम्बन्धित चिकित्सा विज्ञान) अस्तित्व में आया 'रेनेसा' नामक दार्शनिक के समय इसका सुव्यवस्थित उपयोग होने लगा । इंग्लैण्ड के वनौषधि शास्त्री कैरिचर और जर्मनी के 'फ्राक' नामक विद्वान ने इसका विस्तार किया । इंग्लैण्ड के ही राबर्ट टर्नर ने तो ज्योतिर्विज्ञान से प्रभावित होकर वोटांनोलाजिया नामक विज्ञान की शाखा को जन्म दिया । एस्ट्रोलॉजिकल हर्वलिस्ट निकोलस कल्पियर की ख्याति इस क्षेत्र में अभी भी बनी हुई है । वह १६१६ में एक पादरी के घर पैदा हुआ । कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की । बाद में हृदय रोग का मरीज होते हुए भी उसने ज्योतिष को चिकित्सा शास्त्र से जोड़ने का उत्साहवर्धक प्रयास किया । अपने अनुभवों के आधार पर उसने 'कल्पिपर हर्वल्स' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की । आज भी यह ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाता है, उसकी स्मृति में लन्दन में कल्पिपर हाउस नामक भवन में 'सोसाइटी ऑफ हर्वलिस्ट संस्था काम कर रही है ।

अतीत काल में ज्योतिर्विद्या का न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान विश्व भर में लोकप्रिय हुआ, वरन् अनेकों स्थानों पर अन्तरिक्षीय गतिविधियों के अध्ययन पर्यवेक्षण के लिए विलक्षण वेधशालाओं का भी निर्माण हुआ है । जिनकी निर्माण प्रक्रिया और सन्निहित विशेषताएँ अभी भी वैज्ञानिकों के लिए रहस्यमय बनी हुई हैं ।

'दी वर्ल्ड एटलस ऑफ मिस्ट्रीज' पुस्तक के लेखक हैं—फ्रान्सिस हर्चिंग । पुस्तक में रॉयल सोसाइटी के फेलो तथा लन्दन सोलर फिजिक्स लेबोरेटरी के डायरेक्टर 'नार्मन लॉकर' जो 'नेचर' पत्रिका के संस्थापक और ५२ वर्षों तक सम्पादक भी रह चुके हैं, के शोध निष्कर्षों का वर्णन है । नार्मन लॉकर ने लम्बे समय तक मिस्र के विश्व प्रसिद्ध पिरामिडों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इनकी रचना सूर्य एवं ग्रह नक्षत्रों की वेधशाला के रूप में की गई है । उसकी पुष्टी में अनेकों तथ्य मिले हैं, जो यह बताते हैं कि गणितीय आधार पर यह विनिर्मित हुई हैं । पिरामिड का वजन ५९२३४०० टन है, जो पृथ्वी के वजन का १ हजार अरबवाँ भाग है । इसमें २ करोड़ ६० लाख पत्थर लगाए गए हैं । पिरामिडों की ऊँचाई को १०० करोड़ गुना करने पर पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी मापी जा सकती है । आकार प्रिज्म जैसा है तथा सभी भुजाएँ समान हैं । इसके सभी भुजाओं की परिमिति ३६५२० इंच है, जो पृथ्वी द्वारा सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण के समय ३६५.२० दिन से सम्बन्धित है । पिरामिड का घनत्व ५.७ है । यही पृथ्वी का भी है । इसके आधार और ऊँचाई का अनुपात वृत्त और वृत्त की त्रिज्या के अनुपात में है ।

पीटर टाम्पकिन्स नामक विद्वान ने सीक्रेट्स ऑफ दि ग्रेट पिरामिड नामक पुस्तक में लिखा है कि ये मात्र मृत शरीरों को रखने के लिए बनाई गई इमारतें नहीं हैं वरन् ज्योतिर्विज्ञान के अनेकों गूढ़ रहस्यों को अपने में समाहित किए हुए हैं । विलियम पीटर्सन कॉलेज न्यूजर्सी (अमेरिका) के एन्सियण्ट हिस्ट्री के प्रो. डॉ. लिवियो स्टेकेनी के अनुसार, पिरामिडें अपने समय में वेधशाला का प्रयोजन पूरा करती रही हैं । अभी भी इसके आधार पर खगोल का नक्शा बनाया जा सकता है । गणित के गूढ़ प्रश्नों की पाइथागोरस के विश्व विख्यात प्रमेय आदि की व्याख्या इसकी विभिन्न भुजाओं के आधार पर की जा सकती है । पृथ्वी और सूर्य का अन्तर, दिन की लम्बाई, एक दिन का २४२२वाँ भाग समय जो ज्योतिष विज्ञान के लिए आवश्यक है इससे निकाला जा

सकता है । पृथ्वी का गुरुत्व बल, सूर्य की गति एवं स्थिति भी जानी जा सकती है ।

इसकी प्रयोग विधि पूर्णरूपेण अभी भी अविज्ञात है । यदि यह जाना जा सके तो कितने ही चमत्कारी सूत्र हाथ लग सकते हैं । इस अनुसंधान के बाद 'नार्मन लाकर' ने ब्रिटेन के स्टोन हैन्ज नामक विश्व प्रसिद्ध स्थान पर दृष्टि दौड़ाई और यह पाया कि यह स्थान अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान के रहस्यात्मक सूत्रों को अपने में समेटे हुए है । इस सम्बन्ध में उन्होंने विस्तृत उल्लेख अपनी पुस्तक स्टोन हैन्ज एण्ड अदर ब्रिटिश स्टोन मौन्युमेण्ट्स नामक पुस्तक में किया है । उल्लेखनीय है कि इसी प्रकार इंग्लैण्ड के दूसरे खगोलविद् 'मोर्टिमर व्हीलर' जो सोसाइटी ऑफ एण्टीक्वेरीज इन लन्दन के प्रेसीडेण्ट हैं, ने भी अपने शोध निष्कर्षों के बाद 'नार्मन लाकर के अन्वेषण की पुष्टि की है । लन्दन के ही ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के इन्जीनियरिंग प्रभाग के प्रोफेसर डॉ. 'अलेक्जेण्डर थाम्ब अमेरिटस' ने १९४५ से १९६१ तक इन अद्भुत पत्थरों का अध्ययन किया तथा 'मेगेलिथिंक साइट्स इन ब्रिटेन' नामक पुस्तक में सन्निहित विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख किया है । उन्होंने अनेकों तथ्य एवं प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि स्टोन हैन्ज नामक स्थान पर पाये जाने वाले विशालकाय पत्थरों की भूमितीय रचना में विस्मयकारी सूक्ष्मता से ग्रह, नक्षत्रों का वेध करने के लिए स्थापित किया गया है । उनका कहना है कि इन विशालकाय एवं विचित्र पत्थरों को उस स्थान पर स्थापित करने वाले न केवल सूक्ष्म गणित के ज्ञाता थे वरन् ज्योतिष विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान भी थे । १ सेमी. के १०००वें भाग तक के सूक्ष्म वेध करने की क्षमता इन प्राचीन पत्थरों में विद्यमान है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि ब्रिटेन में पर्लियस सीजर के पदार्पण से १५०० वर्ष पूर्व ड्रूइड सम्प्रदाय के धर्मावलम्बी 'स्टोन हैन्ज' क्षेत्र को देव स्थान मानते तथा उपासना, आराधना किया करते थे । वे अन्तरिक्षीय गतिविधियों के अध्ययन, पर्यवेक्षण के साथ-साथ उनसे लाभ उठाने के लिए साधनात्मक विधि-व्यवस्था बनाते थे ।

'सीक्रेट्स ऑफ दी बरमूडा ट्रेंगिल' के लेखक एलन टेन्स बर्ग ने ब्रिटिश टापू में स्थित उत्तर स्कॉटलैण्ड, पोर्टुगल से लेकर बरमूडा तक के २५०० कि.मी. क्षेत्रफल वाले भाग को किन्हीं अन्तर्ग्रही शक्तियों का केन्द्र माना है । वहाँ ९०० विशालकाय पत्थर सूर्य के विभिन्न अंशों पर खड़े हैं । ऐसा विश्वास किया जाता है कि किसी समय यह स्थान अन्तरिक्षीय विज्ञान की वेधशाला रहा होगा । इन पत्थरों के माध्यम से प्रति ६ वर्षीय सौरमण्डल चक्र की गतियों का अध्ययन किया जा सकता है ।

भारत में भी अनेकों स्थानों पर ऐसी वेधशालाएँ स्थापित थीं पर विदेशियों ने आक्रमण कर देश की सभी महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक निधियों को नष्ट किया, जिसमें वेधशालाएँ भी थीं । अनेकों विद्वानों ने अपनी खोज द्वारा यह बताया है कि दिल्ली का कुतुबमीनार किसी समय विश्व की प्रख्यात वेधशाला थी । जिसे बाद में मुगलों ने तुड़वा दिया । उस वेधशाला का अब मेरु स्तम्भ (कुतुबमीनार) ही अब शेष बचा है । इस महान् स्तम्भ का निर्माण अन्तरिक्षीय अध्ययन के लिए सम्राट विक्रमादित्य के प्रसिद्ध नवरत्नों में से प्रख्यात ज्योतिर्विद आचार्य वाराह मिहिर द्वारा सम्राट के सहयोग से किया गया था । दिल्ली के निकट बसा मिहिरावली (महरौली) ग्राम भी आचार्य बाराह मिहिर के नाम पर ही बसा हुआ है ।

अनुमान है कि २२०० वर्षों पूर्व वाराह मिहिर ने सत्ताइस नक्षत्रों, सात ग्रहों एवं ध्रुव तारे का वेध करने के लिए तथा सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए जल के बड़े सरोवर के मध्य इस मेरु स्तम्भ का निर्माण कराया । इस स्तम्भ की ऊँचाई श्रीमद् भागवत पुराण में वर्णित हिमालय के शिखर मेरु पर्वत की ऊँचाई के अनुपात में ली गई है । सात ग्रहों के अनुसार इसकी सात मंजिलें और नीचे से ऊपर तक सत्ताइस नक्षत्रों को देखने के लिए सत्ताइस रोशनदान बने थे । स्तम्भ के निर्माण में भीतर काले पत्थरों का प्रयोग हुआ है ताकि अन्दर बिल्कुल अन्धेरा रहे । इस स्तम्भ का प्रमुख द्वार ध्रुव उत्तर की ओर है और झुकाव पाँच अंश दक्षिण की ओर है । इसकी नींव १६ गज गहरी है और ऊपर ऊँचाई लगभग ८४ गज थी जो इस समय ऊपरी झुकाव को अंग्रेजों द्वारा तुड़वा दिए जाने के कारण ७६ गज रह गई है ।

अन्तर्ग्रही परिस्थितियों के पर्यविक्षण की वेधशाला

यह समूचा ब्रह्माण्ड एक परिवार है । अनेकानेक ग्रह, नक्षत्र उसके सदस्य हैं । यह सब एक सूत्र-शृंखला में बँधे और एक-दूसरे के साथ जुड़े-जकड़े हुए हैं । इतना ही नहीं, उनके बीच अति महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान भी चलते हैं । यदि वे सर्वथा स्वतन्त्र और पृथक् होते तो उनका अस्तित्व तक न बन पाता और न टिक पाता । अपने सौरमण्डल के ग्रह-उपग्रह न केवल सूर्य के साथ जुड़े-बँधे हैं, वरन् उससे बहुत कुछ प्राप्त भी करते हैं । पृथ्वी को यह अनुदान अधिक सुसंतुलित मात्रा में मिलता है, इसी से वह अधिक विकसित भी हो सकी है । पृथ्वी को सूर्य से सौरमण्डल के सदस्यों से ही नहीं, ब्रह्माण्ड के अन्यान्य ग्रह-उपग्रहों से भी बहुत कुछ प्राप्त होता है, तभी उसकी स्थिति अद्भुत, अनुपम एवं सुविकसित स्तर की बनी हुई है ।

पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव अन्तर्ग्रही शक्तियों को खींचता है । ब्रह्माण्ड में गतिशील अति महत्त्वपूर्ण सूक्ष्म सम्पदा सर्वप्रथम उसी ध्रुव केन्द्र के हाथ लगती है । उसमें से जितना अंश उपयोगी होता है, धरती सोख लेती है; शेष को दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से फिर अन्तरिक्ष में धकेल दिया जाता है । पृथ्वी का जितना अपना वैभव, उत्पादन है, उसकी तुलना में उसे अन्तर्ग्रही भण्डार से कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध होता रहता है । अन्यान्य ग्रह, नक्षत्रों से पृथ्वी को बहुत कुछ मिलता है, इससे वह अत्यधिक प्रभावित होती है । यह प्रभाव भले भी होते हैं और बुरे भी । वे प्राणियों, पदार्थों, वनस्पतियों को, विशेषतया सम्वेदनशील मनुष्य को प्रभावित करते हैं । उस प्रभाव से समूचे वातावरण में उथल-पुथल होती रहती है; यह कई बार उपयोगी भी होती है और कभी-कभी प्रतिकूल प्रभाव भी डालती है ।

इन प्रभावों को जानने की विद्या का ज्ञान ज्योतिष है । उसके द्वारा यह पता चलता है कि ब्रह्माण्ड में अवस्थित ग्रह, नक्षत्रों की कब, कहाँ, कैसी स्थिति है ? सौरमण्डल के ग्रह-उपग्रह पृथ्वी के अधिक निकट हैं तथा परस्पर अधिक सघनता के साथ आबद्ध भी हैं, इसलिए उनका प्रभाव और भी अधिक पड़ता है ।

अन्तरिक्षीय घटनाक्रम की पूर्व जानकारी रहने से हम आये दिन अपनी व्यवस्था बनाते-बदलते रहते हैं । सर्दी, गर्मी, वर्षा अन्तरिक्षीय हलचलें हैं । इनकी पूर्व जानकारी रहने से हमारी कितनी ही योजनाएँ बनती-बदलती रहती हैं; आँधी-तूफान का पूर्वाभास होता है, बचाव का कुछ न कुछ प्रबन्ध करते हैं । रात और दिन भी तो इसी उथल-पुथल के कारण आते-जाते रहते हैं । प्रत्यक्ष है कि यह सब इन कारणों से कितने अधिक प्रभावित होते हैं । हमारा श्रम, समय, मस्तिष्क की अधिकांश क्षमता इन अन्तरिक्षीय प्रभावों से बचने और लाभान्वित होने में लगी रहती है । समृद्धि का भी हलचलों के साथ गहरा सम्बन्ध है । वर्षा के न्यूनाधिक होने से मनुष्य की सुख-समृद्धि पर प्रभाव पड़ता है । बाढ़ और दुर्भिक्ष की विनाश लीलाएँ ऊपर से ही उतरती हैं ।

यह ज्ञात विषय है । मनुष्य के स्वास्थ्य सन्तुलन एवं वैभव को भी अन्तर्ग्रही स्थिति असाधारण रूप से प्रभावित करती है । इस सन्दर्भ में जिन्हें अधिक गहरी जानकारी है, वे समझते हैं कि पृथ्वी का वैभव ही सब कुछ नहीं है । अन्तरिक्षीय वातावरण पर भी मनुष्य की अनुकूलता, प्रतिकूलता बहुत कुछ निर्भर करती है । स्वाभाविक है कि इस सन्दर्भ में अधिक जानने की इच्छा हो और उस आधार पर दुष्प्रभावों से बचने और सत्प्रभावों से लाभान्वित होने का मन चले । इस जिज्ञासा का समाधान ज्योतिष शास्त्र के सहारे ही हो सकता है । अस्तु उसका महत्त्व विज्ञान की अन्यान्य धाराओं से कम नहीं माना गया ।

धरती और समुद्र से सम्पदा सुविधा उपलब्ध करने भर से मनुष्य का काम नहीं चला; अब वह अन्तरिक्ष में बिखरे वैभव को समेटने के लिए आतुर है । वायुयानों से सन्तोष नहीं हुआ । पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूमने वाले उपग्रहों और अन्तर्ग्रही यात्रा पर निकलने वाले रॉकेटों पर प्रचुर धन, साधन एवं बुद्धि-कौशल नियोजित किया जा रहा है । इस आधार पर कि आकाश में विद्यमान अन्तरिक्षीय प्रभाव वैभव में से और कुछ उपलब्धियाँ हाथ लगें, सुरक्षा के अधिक उपाय सूझ पड़ें । यह सब खगोल विद्या के सहारे हो रहा है । खगोल की अन्तरिक्ष विद्या का नाम ही ज्योतिष है । उसमें ग्रहों की चाल तथा पारस्परिक घात-प्रतिघात के आधार पर बनने-बिगड़ने वाले तारतम्य को देखते हुए यह पता लगाया जाता है कि उन हलचलों का पृथ्वी पर कब, कैसा, कितना प्रभाव पड़ेगा । वह किसके लिए, किस प्रकार उपयोगी या अनुपयोगी सिद्ध होगा, कहना न होगा कि पूर्वाभास के आधार पर मनुष्य को बहुत कुछ सोचना पड़ता है । मात्र तत्काल बुद्धि ही पल्ले बँधी होती, तो मनुष्य की स्थिति पशु-पक्षियों तथा कृमि-कीटकों की तुलना में तनिक भी उत्तम न रह सकी होती ।

ग्रहों की स्थिति का पृथ्वी के वातावरण, प्राणि जगत, वनस्पति वैभव विशेषतया मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी को ज्ञान सम्पदा के किसी भी पक्ष से कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता । अतएव ज्योतिष को भी दिव्य चक्षुओं में एकमात्र माना गया है और उसे ब्रह्माण्ड के साथ आदान-प्रदान का द्वार खोलने वाली खिड़की कहा गया है ।

इस विज्ञान में ग्रहों की स्थिति जानना सर्वप्रथम काम है । इसके लिए इन दिनों तो बहुमूल्य यन्त्र-उपकरणों से सुसज्जित ऑबजर बैटरियाँ लगाई गई हैं और बहुत कुछ जानने का प्रयत्न चल रहा है । आश्चर्य उन दिनों का है जब बहुमूल्य यन्त्र, उपकरण नहीं थे और तत्वदर्शियों ने अपनी विलक्षण प्रज्ञा के सहारे ईंट-पत्थरों से वेधशालाएँ खड़ी करके, वैसी ही सही उपलब्धियाँ हस्तगत की थीं, जैसी कि इन दिनों अन्तरिक्ष विज्ञानी सुविकसित विज्ञान साधनों के सहारे हस्तगत करते हैं ।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान सचेतन अन्तर्ग्रही प्रभावों के सूक्ष्म परिणामों की उच्चस्तरीय जानकारी से सम्बद्ध है, जबकि विज्ञानी मात्र स्थूल ग्रह प्रभावों को ही समझ पाते हैं । दुर्भाग्य इस बात का है कि भारतीय ज्योतिर्विज्ञान प्रतिगामिता और निहित स्वार्थों के कुचक्र में पड़कर उपहासास्पद स्थिति वाले गर्त में जा गिरा । भाग्यवाद भविष्य कथन अनिष्ट-श्रेष्ठ जैसी विडम्बनाएँ उसके साथ जुड़ गईं । इसके अतिरिक्त उसके सही स्वरूप निर्धारण करते रहने के लिए जो समय-समय पर किया जाना था, उसे भी आलस्य तथा अज्ञान के कारण उपेक्षित कर दिया गया ।

सर्वविदित है कि पृथ्वी न तो पूरे २४ घण्टे में अपनी धुरी पर घूमती है और न ३६० दिन में सूर्य की परिक्रमा करती है; यह निर्धारण कामचलाऊ है । कुछ मिनट, सेकण्ड का अन्तर पड़ते रहने से कुछ शताब्दियों बाद ऐसी स्थिति आ जाती है कि उस अन्तर को दृश्य गणित के आधार पर शुद्ध किया जाय । यों तिथियों के महीनों के क्षय वृद्धि के आधार पर थोड़ा बहुत संतुलन बिठाया जाता रहता है, फिर भी अन्तर बढ़ता ही रहता है । इसी परिशोधन के लिए दृश्य गणित काम में लाया जाता है और वेधशालाओं के माध्यम से वर्तमान स्थिति को देखकर पुरातन आधार पर बनते आ रहे पंचांगों में सुधार करना पड़ता है । खेद की बात है कि इन दिनों दृश्य गणित के आधार पर चलने वाली संशोधन-प्रक्रिया की ओर भारतीय ज्योतिर्विदों का ध्यान मुड़ ही नहीं रहा है ।

मध्यकाल में इस विद्या के, भारतीय विद्या के विशेषज्ञों ने नये उत्साह से इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण निर्धारण किए थे । दिल्ली, जयपुर, वाराणसी आदि में वेधशालाएँ बनी थीं और सुधार क्रम का कुछ सिलसिला चला था । दुःख है कि वह करवट फिर कुम्भकर्णी निद्रा में समा गई ।

आवश्यक समझा गया कि ब्रह्मवर्चस की शोध प्रक्रिया के अन्तर्गत भारतीय ज्योतिष शास्त्र को पुनः प्राचीनकाल जैसी स्थिति में लाया जाय । इस हेतु सर्वप्रथम पुरातन आधार पर वेधशाला बनाने का निश्चय किया गया । शान्तिकुंज में इसका निर्माण हुआ है । उसमें प्रायः उन सभी गणित उपकरणों को विनिर्मित किया गया है, जो भारतवर्ष में कहीं भी विद्यमान हैं एवं आज की स्थिति में आवश्यक हैं । यह अपने ढंग की अनोखी वेधशाला है, जो आकार में छोटी होते हुए भी प्राचीनकाल के महान् गणितज्ञों द्वारा अपनाए जाने वाले प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण उपकरणों से सम्पन्न है ।

इन्हीं दिनों यह प्रयोगशाला इसलिए बनाना पड़ी कि युग सन्धि के इन बीस वर्षों में सन् १९८० से २००० तक की अवधि में संसार में बहुत भारी उथल-पुथल होने की सम्भावना है । उसमें मनुष्यगत हलचलें कम, दैवी उथल-पुथल अधिक बड़ी भूमिका सम्पन्न करेगी । अगले दिनों ग्रहणों की शृंखला, सूर्य कलंक, धूमकेतु आदि के प्रत्यक्ष और विक्षुब्ध प्रकृति के अप्रत्यक्ष प्रकोप ऐसे हैं, जिन्हें अन्तरिक्षीय पर्यवेक्षण के आधार पर ही

जाना जा सकता है, अस्तु, ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया के अन्तर्गत ज्योतिर्विज्ञान अनुसन्धान का तन्त्र खड़ा किया गया है ।

इस आधार पर नया पंचांग भी प्रकाशित किया जा रहा है, जो दृश्य गणित के आधार पर ग्रह नक्षत्रों की सही स्थिति प्रकट कर सकने में समर्थ होगा । अब नवग्रहों में नेपच्यून, प्लूटो और यूरेनस यह तीन ग्रह और जुड़ गए । नये पंचांग में उनका भी समावेश रहेगा और उनकी स्थिति का भी पुराने ग्रहों की तरह ही गणित किया जाता रहेगा ।

मनुष्य पर ग्रह दशा का क्या असर पड़ना चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक है कि जन्म—समय का इष्ट सही हो । इसे सही रखने और कुण्डली बनाने के लिए स्टैण्डर्ड टाइम नहीं, वरन् स्थानीय समय का सूर्योदय काल चाहिए । इन दिनों जो पंचांग छपते हैं, वे प्रकाशक या लेखक के स्थान की पलभा पर ही बने होते हैं । जबकि पंचांग गणित उस स्थान का होना चाहिए, जहाँ कि बालक जन्मा है । आजकल ऐसा नहीं होता है । जोधपुर के पंचांग पर कलकत्ते में जन्मे बच्चे की कुण्डली बनती है । होना यह चाहिए कि स्थानीय पंचांग विनिर्मित होते और उसी आधार पर इष्ट अथवा लग्न का निर्धारण होता ? यह विद्या एक प्रकार से लुप्त हो चली, जो जानते हैं, वे परिश्रम नहीं करते । इस कमी को दूर करने के लिए ब्रह्मवर्चस पंचांग में समूचे आधार का उल्लेख किया जा रहा है ताकि कोई भी ज्योतिर्विद स्थानीय पंचांग बना सके और सही जन्म कुण्डली बनाकर उस आधार पर सही निष्कर्ष निकाल सके । इसे ज्योतिष क्षेत्र की एक नई उपलब्धि ही कहा जाना चाहिए ।

युग सन्धि की इस पुनीत बेला में कितनी दिव्य आत्माएँ जन्मी तथा बढ़ रही हैं । उन्हें युग परिवर्तन के समय विशेष भूमिकाएँ निभानी हैं, ऐसे संस्कारवान् देव मानव पूर्व जन्मों की विभूतियाँ साथ लाये होंगे, तो ही यह सम्भव होगा कि वे इन दिनों कोई बड़ा उत्तरदायित्व सँभाल सकें । ऐसी आत्माओं को खोजने और उन्हें परिष्कृत करने की ठीक वैसी ही आवश्यकता पड़ रही है, जैसी कि दशरथ पुत्रों की, दिव्य विशेषताओं का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करके विश्वामित्र उन्हें आग्रह पूर्वक प्रशिक्षण के लिए ले गए थे । विवेकानन्द, शिवाजी, चन्द्रगुप्त आदि को उनके दिव्यदर्शी गुरुओं ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से खोजा था और उन संस्कार सम्पदा वालों को तनिक से प्रयास से उभार कर बड़े-बड़े प्रयोजनों को पूर्ण कराया था ।

इन दिनों शान्ति-कुंज में जन्म कुण्डलियाँ देखने, बनाने में रुचि इसीलिए ली जा रही है कि व्यक्तियों के स्तर तलाश कर उनकी पूर्व संचित सम्पदा तथा वर्तमान विशिष्टता का सही अनुमान लगाया जा सके और उन्हें उत्साह, सहयोग देकर समयानुसार उनसे उच्चस्तरीय प्रयोजन सम्पन्न कराने का सुयोग बिठाया जा सके ।

यह विभीषिकाओं का युग है । उसमें मानवी गतिविधियाँ तो उथल-पुथल के लिए प्रधानतया उत्तरदायी हैं ही, पर कुपित प्रकृति की भूमिका भी कम खतरनाक नहीं है । इस सन्दर्भ में पूर्वभास होने की स्थिति में बचाव के कुछ उपाय सोचना और कुछ मार्ग निकालना सम्भव हो सकता है । ऐसे अवसरों पर अन्तर्ग्रही अनुदान भी विपत्ति को टालने और सुखद सम्भावनाओं का पथ-प्रशस्त करने में सहायक हो सकते हैं । ऐसा तारतम्य बिठाने में भारतीय ज्योतिष के आधार पर ऐसी सूक्ष्म जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, जैसी कि भौतिक विज्ञान के आधार पर विनिर्मित एस्ट्रोनोमी के यन्त्र उपकरणों से सम्भव नहीं ।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान में मात्र अदृश्य का पूर्वाभास ही एक लाभ नहीं है, वरन् अनिष्टों के निवारण और शुभ सम्भावनाओं के आकर्षण अवतरण का आधार भी विद्यमान है । युग सन्धि के दिनों में ऐसे अदृश्य सहयोग की असाधारण आवश्यकता है, जो विनाश के कगार पर खड़ी हुई मानवी सभ्यता एवं धरती को उबार सकने का आधार अवलम्बन बन सके ।

सामान्य व्यक्तियों को भी इस आधार पर कुछ न कुछ कहा—बताया ही जा सकता है । अशुभ से बचाने और शुभ की ओर इंगित करने पर डूबते को तिनके का सहारा मिल सकता है । राई को पर्वत बनने का ऐसे ही कारणों से सुयोग बनता है । ऐसे अनेक कारण हैं, जिन्हें ध्यान में रखते हुए शान्ति-कुंज में ज्योतिर्विज्ञान की वेधशाला खड़ी की गई है और अनुसन्धान के लिए विशिष्ट तत्परता दिखाई गई है ।

शान्ति-कुंज की वेधशाला में जो यन्त्र उपकरण लगे हैं, उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) पलभा यन्त्र, (२) मकर वलय, (३) कर्क वलय, (४) नाड़ी वलय, (५) उन्नतांश यन्त्र, (६) चक्र यन्त्र, (७) कपाल यन्त्र, (८) दिगंश यन्त्र, (९) भित्ति यन्त्र, (१०) आधुनिक दूरवीक्षय यन्त्र (टेलीस्कोप) ।

इनका उपयोग किस ग्रह-गणित के लिए, किस प्रकार किया जाता है ? यह समझना-समझाना उन्हीं के लिए सरल पड़ेगा, जिन्हें ज्योतिष विज्ञान की पूर्व जानकारी है । साधारण व्यक्ति इस विभाग के मार्गदर्शक से मिलकर, जितना समझा जा सके उतना समाधान कर सकते हैं ।

ज्योतिर्विज्ञान को नूतनता का चोला पहनाया जाय

आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार कर लिया है कि पदार्थपरक सभी शक्तियाँ अथवा मूल प्रेरक बल एवं ब्रह्माण्ड में प्रभावी चेतन क्रियाएँ एक ही केन्द्र से उत्पादित व नियन्त्रित होती हैं । यह ऋषियों की उस मान्यता से मेल खाता है, जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड में क्रियाशील एक ही शक्ति स्रोत के विषय में उद्घाटन करते हुए कहा गया है—"एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"—ऋग्वेद (१।१६४।४६) अर्थात्—वह परम सत्ता एक ही है किन्तु विज्ञजन उसी ब्राह्मी सत्ता को अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि नामों से पुकारते हैं ।

पुनः कठोपनिषद् (१।२।२०) का ऋषि कहता है—

अणोरणियान महतो महियान ।
आप्तस्य जन्तोह निहितो गोहयम् ॥

अर्थात् छोटे से बड़े आकार के सभी पदार्थ एक शक्ति से सम्बन्धित तथा नियन्त्रित होते हैं ।

इन आप्त वचनों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक विज्ञान द्वारा ज्ञात किया गया—ब्रह्माण्डीय एकत्व का समस्त बलों के एकीकरण का सिद्धान्त ऋषियों को बहुत पूर्व मालूम हो चुका था । उसी आधार पर उन्होंने ज्योतिर्विज्ञान का स्वरूप विकसित किया था तथा उसके माध्यम से पदार्थों व शक्तियों के बीच पारस्परिक

क्रियाओं का अध्ययन करने में सफलता प्राप्त की थी। साथ ही उन्होंने ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म रहस्यों को भी उद्घाटित किया था, जिसे ज्योतिर्विज्ञान विद्या में निहित कर दिया गया।

वस्तुतः पदार्थ विज्ञान की समस्त विधाओं का आधार स्तम्भ ज्योतिर्विज्ञान ही है। न्यूटन, गैलीलियो, कोपर्निकस व अन्यान्य श्रेष्ठ वैज्ञानिकों ने अपने कार्य इसी क्षेत्र से आरम्भ कर इसी तथ्य की पुष्टि की है तथा इसे आधुनिक विज्ञान का जन्मदाता बतलाया है। मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा ? संसार की उत्पत्ति कैसे हुई तथा इसका भविष्य क्या है ? इस जगत का विस्तार कितना हुआ है ? जगत के समस्त घटकों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध कैसा है तथा उसका क्या परिणाम होता है ? आदि ऐसे जटिलतम वैज्ञानिक प्रश्न हैं, जो ज्योतिर्विज्ञान के माध्यम से ही हल हो सके हैं। उसी को आधार मानकर आज के वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड भौतिकी पर अनुसन्धानरत हैं।

आर्ष वाङ्मय में ज्योतिर्विज्ञान को ज्योतिष नाम से महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ज्योतिष का शाब्दिक अर्थ शक्ति अथवा नक्षत्रों का ज्ञान होता है। अतः यह वह विज्ञान है, जो ब्रह्माण्डीय शक्ति तरंगों एवं नक्षत्रों की गतिविधियों का अध्ययन करता है। स्पष्ट शब्दों में इसे शक्ति के विभिन्न घटकों की पारस्परिक क्रिया का विज्ञान कह सकते हैं अर्थात् पंचतत्वों एवं शरीर के विभिन्न अवयवों अथवा शक्ति-बलों के बीच पारस्परिक क्रिया के परिणामों का अध्ययन ही ज्योतिर्विज्ञान है। इसका सम्बन्ध मूलतः धर्म, सूर्य तथा सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रहों एवं पृथ्वी तथा उसके निवासियों के बीच पारस्परिक क्रियाओं से है। इस परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्धों के आधार पर ही ज्योतिर्विज्ञान की समग्र पृष्ठभूमि बनती है।

सृष्टि के आरम्भ से ही ज्योतिर्विज्ञान का स्वरूप आर्ष साहित्य में प्रकट हुआ पाया जाता है। ऐसा उल्लेख शास्त्रों में मिलता है कि ऋषि गर्ग ने इस ज्योतिर्विद्या को विश्व सृजेता ब्रह्मा जी से सीधे प्राप्त किया था। तदुपरान्त उन्होंने इस विद्या को अन्यान्य ऋषियों तक पहुँचाया था। मनु, कपिल, भृगु, सहदेव, अस्ति, वाराहमिहिर, वशिष्ठ, भास्कराचार्य, आर्य भट्ट आदि ज्योतिर्विद्या के प्रकाण्ड विद्वान माने जाते थे। इन्होंने सामान्य उपकरणों के माध्यम से अदृश्य जगत का अनुसन्धान कर अनेकों ऐसे निष्कर्ष निकाले, जिन्हें आज भी सत्यापित होते देखा जा सकता है।

सृष्टि की रहस्यमयी गुत्थियों को सुलझाने के लिए ऋषियों ने 'अपरा' और 'परा' विद्या की नींव डाली थी। सृष्टि के भौतिक स्वरूप का अध्ययन अपरा विद्या के माध्यम से किया जाता था, परन्तु ऋषियों ने परा की तुलना में अपरा विद्या को छोटे स्तर का माना था, क्योंकि इससे जगत के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता। जगत का वास्तविक स्वरूप सूक्ष्म में अन्तर्निहित है, जिसका ज्ञान परा विद्या के माध्यम से हो सकता है। परा विद्या को ऋषियों ने 'अतीन्द्रिय'— 'सूक्ष्म योग शक्ति ग्राह्य' बताया था। योगीजन इसी का आश्रय लेकर परोक्ष की शोध करते थे। प्रकारान्तर से जो परा विद्या में निष्णान्त थे, तप पूत योगी थे, वे ही ज्योतिर्विज्ञान के अनुसन्धान में सक्षम होते थे।

वेदों का सम्बन्ध परा विद्या से ही है और ज्योतिष को वेदों का नेत्र कहा गया है। इस प्रकार ज्योतिष को भी परा विद्या के माध्यम से ही समझा जा सकता है अर्थात् ज्योतिर्विज्ञान का स्पष्टीकरण स्थूल दृष्टि से कदापि नहीं, प्रत्युत अतीन्द्रिय सूक्ष्म योग शक्ति से ही सम्भव है। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि, चूँकि परा विद्या का एक उच्चस्तरीय गणित है, अतः ज्योतिष भी उच्चस्तरीय गणित ही है। भारतीय ज्योतिर्विद भास्कराचार्य ने तभी तो अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों लीलावती एवं बीजगणित में आधुनिक गणित के प्रारम्भिक सूत्रों की स्थापना की है। यथा—"योगे रवं क्षेप समम्, रव गुणः रवम्।" अर्थात्—किसी अंक में शून्य जोड़ने अथवा घटाने से उस अंक में कोई अन्तर नहीं आता, किन्तु किमी अंक को शून्य से गुणा करने पर गुणनफल शून्य हो जाता है।

उक्त पुस्तक में ग्रह, नक्षत्रों की पृथ्वी से दूरी, उनकी गति तथा उस गति से पृथ्वी पर पड़ने वाले सम्भावित प्रभावों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूत्रों का भी वर्णन है।

ऋषि परम्परा के जीवन्त होने के कारण ही ज्ञान विज्ञान की दृष्टि से भारत कभी विश्व का शिरोमणि था। उसने अपने सिद्धान्तों व अनुभवों से समस्त विश्व को आलोकित कर रखा था। भारतीय ज्योतिष विद्या को विश्व भर में मान्यता प्राप्त थी। आर्य संस्कृति का प्रसार-विस्तार करने वाले परिव्राजक ऋषिगणों ने इसे वसुधा के कोने-कोने तक पहुँचा दिया था।

ईसा से २०० वर्ष पूर्व वैज्ञानिक स्तर के प्रयास आरम्भिक स्तर पर ही चल रहे थे। तब मशीनों आदि का तो सर्वथा अभाव ही था। उस स्थिति में भी यूनान के भूगोलज्ञ क्लाडियस टालमेयस ने ब्रह्माण्डीय संरचना सम्बन्धी दर्शन को प्रतिपादित करने के लिए ख्याति प्राप्त की थी उसने अपने शोध प्रयासों के लिए भारतीय गणित और तर्कशास्त्र का ही अवलम्बन लिया एवं अपने ग्रन्थों में बड़े सम्मानपूर्वक इन सूत्रों को उद्धृत भी किया। उसी आधार पर उसने पृथ्वी की कक्षा तथा अन्यान्य ग्रहों के परिभ्रमण चक्र का मानचित्र बनाया था, जिससे ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति जानने में सफलता मिली, जो उन दिनों की वैज्ञानिक प्रगति को दृष्टिगत रख एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

टालमेयस ने स्वप्रतिपादित दर्शन तथा गणितीय गणनाओं को अपने 'ज्योतिष महानिबन्ध' (अलमागेस्ट) नामक ग्रन्थ में प्रकाशित करवाया। अपनी गणितीय गणना के आधार पर उसने १०२८ नक्षत्रों की भी जानकारी दी। आधुनिक यन्त्रीकृत वैज्ञानिक खोजों के समक्ष टालमेयस का सिद्धान्त तो अब बौना प्रतीत होता है, फिर भी उस प्रतिभाशाली व्यक्ति का प्रयास सराहनीय है, जिसने यन्त्राभाव में भी उन दिनों इतने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की।

छठी शताब्दी में पुनः भारत के आचार्य ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिर्विज्ञान पर महत्त्वपूर्ण काम किया। उन्होंने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' तथा 'खण्ड खाड्यक' नामक दो महान् ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में सौरमण्डल के ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति, गति एवं गणना सम्बन्धी सूत्र दिए गए हैं। सातवीं और आठवीं शताब्दी में इनका अनुवाद अरबी भाषा में भी हुआ। वहीं से वह मध्य एशिया के ग्रीस आदि देशों में पहुँचा।

११वीं सदी में भारत की यात्रा करने वाले महान् अरबी विद्वान 'अलबरूनी' वाराह मिहिर द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थों से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने उनके अनेकों ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में करवाया। अरब देशों में ज्योतिर्विद्या का प्रसार इसी प्रकार सम्भव हुआ। पिरामिडों की रचना में ज्यामिती का प्रयोग

यह बताता है कि उन दिनों उत्तर अफ्रीका, मध्य एशिया एवं विद्या के क्षेत्र में अग्रणी भारत में पारस्परिक सघन सम्बन्ध थे । खगोल गणित पर आधारित ये अद्भुत संरचनाएँ किसी भारतीय तत्वदर्शी की देख-रेख में बनवाई गई हैं, ऐसा विद्वानों का मत है । खोजियों का कहना है कि दिल्ली की कुतुबमीनार भी वस्तुतः एक वेधशाला थी जो नक्षत्रज्ञ वाराह मिहिर द्वारा स्थापित की गई थी । इसका प्राचीन नाम मेरु स्तम्भ था । आक्रमणकारियों ने उसका स्वरूप बदलकर कुतबमीनार नाम दे दिया, जो मेरु स्तम्भ का ही मुगलों द्वारा किया गया अरबी अनुवाद है । इसके माध्यम से नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त कर प्रतिकूलताओं से बचने व अनुकूलताओं से लाभ उठाने की व्यवस्था की जाती थी ।

वर्तमान में भौतिक विज्ञानियों ने भी ज्योतिष के क्षेत्र में छुई-मुई प्रयास आरम्भ किया है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक द्वय ड्यूवी एवं एडिंग्टन ने प्राणियों के ऊपर अन्तर्ग्रहीय प्रभावों का उल्लेख करते हुए बताया कि प्रत्येक ग्रह, नक्षत्रों का अपना एक वायुमण्डल है और उसका अपना एक इलेक्ट्रॉनिक नाद भी होता है । यह नाद ही प्राणियों के ऊपर प्रभाव छोड़ता है । गर्भान्तुक शिशु के भविष्य का निर्धारण ये ब्रह्माण्ड व्यापी तरंगें ही करती हैं ।

लुइस डे ब्रोगली के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में कणिकाएँ तथा स्पन्दी तरंगें प्राकृतिक तरंगें रूप से होती हैं । उन्होंने इसे पदार्थ तरंग बताया । उनके अनुसार ग्रह, नक्षत्रों की भी तरंगें होती हैं जो मनुष्य के ऊपर सतत प्रभाव छोड़ती रहती हैं । पृथ्वी की तरंगों का कान्तिमान ३.६×१० पर घात ३१ सेन्टीमीटर होता है, परन्तु इसका अनुभव नहीं होता । पृथ्वी के कम्पन का कान्तिमान ८.२५×१० पर घात ६६ नम्बर सेकण्ड होता है, फिर भी उसका ज्ञान स्थूल दृष्टि से सम्भव नहीं ।

ब्रह्माण्डव्यापी इस प्रभावशाली नाद अथवा तरंगों के समुच्चय को समझने हेतु वैज्ञानिकों ने अनेकों दूरदर्शी यन्त्र एवं सैटेलाइट्स आकाश में छोड़ रखे हैं । कैम्ब्रिज मैसा चुसेट्स से सम्बन्धित 'ज्योतिष विज्ञान शोध गृह' के संचालक डॉ. ब्रेन मार्सडेन के अनुसार पूरे विश्व में ३०० दूरबीनें वेधशालाओं में लगी हैं । परन्तु यह अपरा विद्या का अंग है जिससे ब्रह्माण्ड सम्बन्धी समग्र ज्ञान सम्भव नहीं । तरंगों की लम्बाई, कम्पन गति को ज्ञात कर मात्र स्थूल आयामों तक पहुँचा जा सकता है । परा विद्या पर आधारित आत्मिकी की ज्योतिर्विज्ञान शाखा इसके विपरीत नाद-ब्रह्म, शब्द की शक्ति को विज्ञान सम्मत विधि से वेध करने की क्षमता रखती है । कब किन कम्पनों का, कणों की बौछार व अन्तर्ग्रही प्रभावों का कैसे जीव जगत, वनस्पति समुदाय एवं वातावरण समुच्चय पर प्रभाव पड़ेगा, इसके लिए खगोल गणित के सूत्रों को ऋषियों ने आज से काफी पूर्व ही जान लिया था । इसी आधार पर दृश्य गणित पंचांग बनाया जाता था ।

नाद से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है, यह अध्यात्म विज्ञान की मान्यता है । जिस बिगबैंग से सृष्टि के जन्म होने की चर्चा एस्ट्रो फिजीसिस्ट करते हैं, वह ओंकार अथवा नाद का ही एक रूप है । आद्य शक्ति का शब्द ब्रह्म परक उस शक्ति सामर्थ्य का उद्घाटन बड़े विशद रूप में आर्षग्रन्थों में किया गया है । आज विज्ञान की उपलब्धियों के सन्दर्भ में, आधुनिक उपकरणों को पुरातन वेधशाला से समन्वित कर फिर उसी ज्योतिर्विज्ञान का पुनर्जीवन सम्भव है जो ब्रह्माण्डीय जगत की प्रतिकूलताओं से जीव जगत को बचाता था । यह जानकारी प्राप्त कर मानवता को लाभान्वित किया जा सकता है एवं आडम्बर, पाखण्ड के चंगुल में फँसे ज्योतिष शास्त्र को पुनः विज्ञान सम्मत बनाया जा सकना सम्भव है । युग सन्धि के परिप्रेक्ष्य में यह अब और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है ।

विशिष्ट आत्माओं की खोज के नये प्रयास

उच्चस्तरीय आत्माएँ पिछले दिनों भी अवतरित हो चुकी हैं । उनमें से अधिकांश मध्यवर्ती हैं । उच्चस्तरीय आत्माओं का अवतरण इन्हीं दिनों हो रहा है । वे अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य सँभालेंगी । परिवर्तन एवं सृजन की अनेक दिशाएँ हैं । आवश्यक नहीं कि सभी आन्दोलनकारी, धर्मोपदेशक एवं तप साधना में निरत हो ही । सृजन की अनेक धाराएँ हैं । कला, साहित्य, विज्ञान, शिल्प, शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, राजनीति आदि अगणित क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें से विकृतियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन आवश्यक है । इन सबके लिए उपयुक्त क्षमता सम्पन्न प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ेगी ।

युद्ध मोर्चे पर लड़ते तो सैनिक ही हैं, पर उनके लिए आवश्यक साधन जुटाने में अगणित श्रमजीवियों, बुद्धिजीवियों, शिल्पियों, उत्पादकों को जुटना पड़ता है । युग सन्धि के समय भी हर स्तर की प्रतिभा चाहिए । इसलिए संचित संस्कारों वाले व्यक्ति चाहिए । उन्हें ढूँढ़ने के अन्य उपायों के अतिरिक्त एवं विशिष्ट उपाय जन्म समय की जानकारी भी है । उस आधार पर भविष्य तो उतना स्पष्ट नहीं होता, पर स्तर सरलतापूर्वक सही रूप में जाना जा सकता है ।

प्राचीनकाल में खगोल विद्या के ऐसे जानकार मौजूद थे और उन्हें जन्म समय की प्रतिक्रिया का नव जात शिशु के साथ कितना, किस स्तर का सम्बन्ध है यह जान सकते थे । यह जानकारी भी कम महत्त्व की नहीं है । लोहे से औजार और सोने से आभूषण बनाने का काम लिया जाय तो ही उनकी सार्थकता है अन्यथा लोहे के जेवर और सोने के औजार बनाने में समय एवं शक्ति की बर्बादी ही होगी । इसी प्रकार व्यक्ति के स्तर के अनुरूप दिशा में निर्धारित हो सकें तो सफलता की अत्यधिक सम्भावना रहेगी । यह कार्य सही जन्म-समय और सही जन्म कुण्डली होने पर सम्भव हो सकता है ।

इस सन्दर्भ में एक भारी कठिनाई यह हो गई है कि बालक जहाँ जन्मा है, वहीं की पलभा के अनुरूप पंचांग होना चाहिए । आज किसी एक स्थान की पलभा से पंचांग बनते हैं और वही दूर-दूर तक प्रयुक्त होते हैं । ऐसी दशा में ग्रह गणित में निश्चित रूप में अन्तर पड़ेगा और कुण्डली अशुद्ध होने के कारण उससे कोई सही निष्कर्ष भी नहीं निकल सकेगा । स्थानीय पंचांग बनाने का कष्ट कौन उठाये ? इतने विद्वान गणितज्ञ कहाँ से आयें ? सरल ज्योतिष, सस्ते ज्योतिषी मिलकर मात्र विडम्बना ही खड़ी कर सकते हैं ।

इस सन्दर्भ में एक ओर कठिनाई है कि कलैण्डर पर पंचांग जिस आधार पर बने हैं, उसे 'लगभग' स्तर का कहा जाता है । पृथ्वी की सूर्य परिक्रमा न तो ३६० दिन में होती है न ३६५ दिन में । उसमें कुछ घण्टे, मिनट सेकण्डों का अन्तर रहता है । इसकी पूर्ति कलैण्डर वाले महीने के दिन २८, २९,३०, ३१ के क्रम में उलट-पुलट करके किसी हद तक ठीक करते हैं । पंचांग

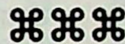
वाले तिथिक्षय, मासक्षय, मांगवृद्धि आदि की उलट-पुलट से किसी प्रकार उस न्यूनाधिकता में कतर-व्योंत करते हैं । इतने पर भी सही ग्रह गणित बनाये रखने वाला कोई तरीका अभी तक हाथ नहीं लगा है । उसका उपाय प्राचीनकाल में हर पाँच हजार वर्ष बाद ग्रहों की दशा आँखों से देखकर ठीक करने के रूप में किया जाता है । उससे प्रायः पाँच हजार वर्ष के लिए निश्चिन्तता हो जाती थी । अब वह पद्धति नहीं अपनाई जाती । फलतः उन्हीं के उदय अस्त में पन्द्रह दिन तक का अन्तर पाया जाता है । अस्त ग्रह उदित और उदित अस्त पाया जाता है । ऐसे संदिग्ध ग्रह गणित के आधार पर सही परिणाम कैसे निकले ?

इन विषम परिस्थितियों में भी यह आवश्यक समझा गया है कि युग निर्माण परिवार में जन्मी आत्माओं के स्तर का पता लगाया जाय । उनमें से जो प्रतिभाशाली हों उन्हें उपयुक्त दिशा में चल पड़ने और सरलतापूर्वक सफल होने का परामर्श दिया जाय ।

इस सन्दर्भ में जहाँ प्राचीन ज्योतिष के, गणित, विज्ञान के दुर्लभ ग्रन्थ एकत्रित किए गए हैं । वहाँ अपनी निजी वेधशाला बनाई जा रही है । दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, अहमदाबाद, वाराणसी आदि में प्राचीन वेधशालाएँ मौजूद हैं । उसी मॉडल पर अपने काम के यन्त्रों का निर्माण किया जा रहा है । साथ ही पाश्चात्य खगोल विद्या के अनुरूप आकाशदर्शी टेलिस्कोपों का प्रबन्ध किया गया है । यह सब इसलिए कि उस आधार पर सही जन्म कुण्डलियाँ बन सकें और उससे अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो सके और जो निष्कर्ष निकलेंगे उनके आधार पर जिन्हें कुछ परामर्श देना आवश्यक होगा वह समय-समय पर दिया जाता रहेगा ।

यहाँ एक बात स्मरणीय है कि जन्म पत्र, वर्ष फल फलित, फलदिश बताने, भविष्य कथन करने जैसा कोई धन्धा यहाँ चालू नहीं किया जा रहा है । परिजनों के उनके कुटुम्बियों के जन्म समय शान्तिकुंज के रजिस्टरों में नोट रहेंगे और साथ ही जन्मकुण्डली की स्थिति भी दर्ज रहेगी । जन्म समय भेजने वालों को किसी उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए । देवात्माओं की खोज में सहयोग देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेनी चाहिए ।

जिन्हें आग्रह होगा, उन्हें जन्मकुण्डली बनाकर बिना किसी पारिश्रमिक के भेजी भी जा सकती है । पर उसमें भी भविष्य कथन पर फलदिश नहीं होगा । उसमें अनावश्यक भ्रान्ति फैलने का डर रहता है । अच्छा भविष्य बताने पर लोग बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाते और पुरुषार्थ में ढील करते हैं । बुरा बताने पर चिन्ता करते और हड़बड़ी में फँसते हैं । ऐसे लोग विरले ही होते हैं जो भविष्य कथन से मात्र प्रकाश ग्रहण करें, असन्तुलित न हों । इन कारणों को ध्यान में रखते हुए जन्म कुण्डलियाँ बनाने भर का काम हाथ में लिया गया है । यह अपने रजिस्टरों में सुरक्षित रखने के लिए है । समयानुसार उनका प्रयोग अपनी ओर से होता रहेगा ।



विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय आज की सर्वोपरि आवश्यकता

अध्यात्म का स्वरूप और प्रयोजन

इस विश्व ब्रह्माण्ड में दो शक्ति-सत्ताएँ आच्छादित हैं । एक जड़ दूसरी चेतन । इन्हीं को प्रकृति और पुरुष भी कहते हैं, स्थूल और सूक्ष्म भी । इन दोनों का पृथक-पृथक अस्तित्व और महत्त्व है, पर सुयोग तभी बनता है जब वे एक-दूसरे की सहायक बनकर संयुक्त शक्ति के रूप में विकसित होतीं और अपने चमत्कार दिखाती हैं ।

उदाहरण के लिए शरीर को ही लिया जाय । काया पंचतत्वों द्वारा विनिर्मित है । अंग-अवयवों में रक्त-माँस, तन्तु-झिल्ली, अस्थिमज्जा का मिलन- एकीकरण है । इसलिए उनसे इच्छानुरूप काम कराया जा सकता है । शरीर तन्त्र की प्रकृति की करामात ही इसे कह सकते हैं ! इतने पर भी वह अपूर्ण है । उसके भीतर एक चेतना काम करती है । उसी का अचेतन भाग श्वास-प्रश्वास, निमेष-उन्मेष, आकुंचन- प्रकुंचन, सुषुप्ति-जागृति आदि की व्यवस्था बनता रहता है । उसी का दूसरा पक्ष है—सचेतन । जो सोचता, निर्णय करता और इच्छानुसार कार्य करने का आदेश देकर अनेकानेक क्रिया-कृत्य सम्पन्न करता है ।

जब तक जड़-चेतन का संयोग है, तभी तक प्राणी जीवित रहता है । दोनों के बिलग हो जाने पर मृत्यु हो जाती है । मरा हुआ शरीर देखने में यथावत् रहने पर भी सर्वथा निर्जीव हो जाता है । तेजी से सड़ने-गलने लगता है, ताकि उसके घटक पृथक-पृथक होकर अपनी मूल स्थिति में जा पहुँचें । निर्जीव शरीर बेकार है । शरीर रहित आत्मा अपना अस्तित्व भले ही बनाये रहती हो, पर उसका प्रकट परिचय देने तक की स्थिति में नहीं रहती । मरणोपरान्त अदृश्य प्राण चेतना किस रूप में रहती है ? पुनर्जन्म से पूर्व उसे किस स्थिति में कहाँ रहना पड़ता है ? उसका केवल अनुमान ही लगाया जाता रहता है । कदाचित आत्म-सत्ता कुछ अधिक सामर्थ्यवान रही होती तो उसने अपनी स्थिति पर ऐसा प्रकाश डाला होता जो हर किसी के लिए मान्य होता, पर आदिकाल से लेकर अद्यावधि इस सम्बन्ध में कुछ सुनिश्चित तथ्य हस्तगत हो नहीं सका है । आत्माएँ भी अस्तित्व के रहते हुए शरीर साधन के बिना कुछ सुनिश्चित अभिव्यक्ति प्रकट नहीं कर पातीं । भूत-प्रेत के रूप में उनके सूक्ष्म शरीर की हरकतें ही यदा-कदा प्रकाश में आती हैं । इतने पर भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि मरण से लेकर पुनर्जन्म तक की अवधि में उन्हें कहाँ, किस प्रकार रहना पड़ा और क्या करना पड़ा । कोई अनुमान लगाया भी गया हो तो मतावलम्बियों द्वारा अपने-अपने ढंग से प्रतिपादित करने पर अनिश्चय की स्थिति फिर जैसी की तैसी बन जाती है । भूत-प्रेतों तक के सम्बन्ध में उन्हें प्रभावित व्यक्ति की प्रगाढ़ मान्यता कहकर उपेक्षित कर दिया जाता है ।

अभिप्रायः इतना भर है कि जड़ और चेतन का समन्वय ही कोई सार्थक स्थिति का निर्माण करता है, अन्यथा इस विशाल में बिखरा पड़ा पदार्थ तत्व भी अपनी अस्त-व्यस्तता और कुरूपता का ही परिचय देता है । धरती पर ठोस रूप में, जलाशयों में द्रव रूप में और आकाश में वाष्पीभूत स्थिति में पदार्थ सत्ता बेतुके रूप में बिखरी पड़ी रहती है । थल प्रदेश, जिसके साथ मनुष्य का सम्पर्क सधा है वहाँ खड्डे-टीले जैसा ही कुछ अनगढ़ देखा, पाया जाता है । वृक्ष-वनस्पति वहाँ हैं तो, पर उनकी क्रमबद्धता कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती । जलाशयों में समुद्र सबसे बड़ा है, पर वह इतना गहरा और खारा है कि उसका प्रयोग सर्वसाधारण के लिए किसी निमित्त उपयोग कर सकना सम्भव नहीं । आकाश में यों हवा का ही परिचय मिलता है, पर उन गैसों में भी विद्युत, एक्स-रे जैसी सूर्य द्वारा उत्पादित किरणों की भरमार है । इसका स्व-संचालित कोई विशेष उपयोग नहीं, कभी-कभी उस क्षेत्र में भी आँधी-तूफान जैसे उद्दण्ड प्रकरण उभरते रहते हैं । मेघ मालाएँ घुमड़ने और बिजली चमकने जैसे कौतूहलवर्धक दृश्य तो सामने आते हैं, पर उनकी शक्ति सामर्थ्य का ऐसा उपयोग नहीं बनता जिसे सराहा और उपयोगी कहा जा सके । कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि । यहाँ तक कि समुद्रों से उठे बादल समुद्र पर ही बरसकर अपने बेतुकेपन का परिचय देते हैं । थल, जल और नभ के क्षेत्र में यदि चेतना का हस्तक्षेप न हुआ होता तो यहाँ अभी भी लगभग वैसा ही दीख पड़ता, जैसा अनादिकाल में किसी प्रकार विनिर्मित हुआ था ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जड़ और चेतन का संयोग ही सब प्रकार अभीष्ट है । जीवन यात्रा के सुसंचालन तक में चेतना की आवश्यकता पड़ती है, तभी वे सुन्दर, सुव्यवस्थित और उपयोगी होने का प्रमाण, परिचय दे पाते हैं । भूमि को समतल बनाकर घास किस्म की वनस्पतियों को अन्न के रूप में खाद्य का प्रमुख आधार बना देना मनुष्य का ही कौशल है । खेत और उद्यान अपने आप नहीं बन पड़ते, उनमें मनुष्य का समुचित श्रम और कौशल नियोजित होता है । बीजों और फलों को प्रस्तुत करने और उपयोग में लिए जाने की कला मनुष्य की अपनी वृत्ति है । जलाशय जहाँ-तहाँ होते हैं । धरती के भीतर भी पानी बहुत गहरा है, उसे दैनिक उपयोग में लाने के लिए घरों में संग्रह कर रखना मनुष्य का अपना कौशल है । आकाश में विद्यमान हवा और तापमान से सन्तुलित लाभ लेने के लिए मकान उसी ने बनाए हैं । तापमान की चिन्गारी से लेकर ज्वाला में बदल लेने की क्रिया का श्रेय मनुष्य को है । यद्यपि अग्नि एवं बिजली का अस्तित्व अनादिकाल से सृष्टि परिकर में विद्यमान था, पर उसका उद्घाटन तो मनुष्य ने ही किया है और उन सबका विविध प्रयोजनों के लिए उपयोग कर सकने का कौशल उसी के पुरुषार्थ ने सम्भव कर दिखाया है ।

ऊपर कुछ प्रारम्भिक प्रत्यक्षीकरण और उत्पादनों की चर्चा है जिनमें यह बताना उद्देश्य है कि प्रकृति के ठोस, द्रव और व्यापक कलेवरों में शक्ति-सामर्थ्य कितनी ही क्यों न हो, पर उनका लाभ लेना मानवी चेतना के कौशल पर ही निर्भर रहा है। आरम्भिक काल से लेकर अब तक प्रकृति की शक्तियों का रहस्योद्घाटन, सुनियोजित और महत्त्वपूर्ण उपयोग बन पड़ना सम्भव बनाने वाली कुशलता का नाम ही विज्ञान है। इस चमत्कारी उपलब्धि को जड़-चेतन का समन्वय ही कह सकते हैं। इसी के बल पर वह प्रगति सम्भव हुई है जिसके आधार पर इस धरातल पर सर्वत्र सुख-साधनों के अम्बार खड़े हो गए हैं। उनके सहारे मनुष्य अपने को सर्वश्रेष्ठ, शक्ति-सम्पन्न एवं धरातल का अधिष्ठाता बनाने का दावा करता देखा जाता है। यह दावा किसी सीमा तक सही भी है। वन्य पशुओं और मनुष्यों की तुलनात्मक समीक्षा करने पर सहज ही जाना जा सकता है कि पदार्थ को सुनियोजित करने की क्षमता-जिसे विज्ञान कहते हैं, कितना सशक्त-समर्थ और सुविधाओं से भरा-पूरा है।

पदार्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। इसी प्रकार चेतना के भी स्रोत-उद्गम और कार्यक्षेत्र पृथक हैं। इस पृथकता के रहते हुए भी संसार इतना सुन्दर और सुविधा-साधनों से भरा-पूरा बन सका उसका श्रेय उस विज्ञान को ही दिया जा सकता है जिसे पदार्थ से लाभान्वित होने की कुशलता कहा जाता है। सामान्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य कहीं अधिक सुखी-समृद्ध है, यह तभी बन पड़ा जब विज्ञान का उद्भव करना और उससे लाभ उठाने की प्रक्रिया को अधिकाधिक सफलतापूर्वक सम्पन्न करना सम्भव हुआ।

इस मोटी जानकारी के उपरान्त एक और भी बड़ी बात विचारणीय रह जाती है कि पदार्थ का उपयोग जानना ही पर्याप्त नहीं उसका सदुपयोग भी समझा जाना चाहिए। यह विभाजन रेखा मात्र पदार्थ तक ही सीमित नहीं है, वरन् स्वयं चेतना के अपने आप पर भी लागू होती है। इन दिनों महाशक्तियों का यदि सदुपयोग न बन पड़े तो फिर दूसरा पक्ष दुरुपयोग ही रह जाता है। विज्ञान को शक्ति और साधन उत्पन्न करने का श्रेय तो है, पर वह स्वयं इस स्थिति में नहीं है कि सदुपयोग और दुरुपयोग का अन्तर कर सके। देखा गया है कि तात्कालिक लाभ की संकीर्णता प्रायः ऐसे सघन आवरण से भरी-पूरी होती है कि उसे दूरवर्ती परिणामों की समझ-बूझ प्रायः नहीं के बराबर होती है। इसलिए प्रलोभनों, आकर्षणों लिप्साओं की प्रबलता उपलब्ध शक्तियों का दुरुपयोग करने के लिए ही घसीट ले जाती है। जाल में फँसने वाली चिड़िया, मछली का उदाहरण इस सन्दर्भ में प्रायः दिया जाता रहता है। चासनी में पंख फँसाकर प्राण गँवाने वाली मक्खी भी यही मूर्खता करती है। मनुष्यों में यह प्रचलन और भी अधिक है। जीभ का चटोरापन पेट खराब करने के उपरान्त स्वास्थ्य का ही सफाया कर देता है। कामुकता के लिए आतुर लोग जीवनी शक्ति को निचोड़ डालते हैं। बिना परिश्रम बहुत बड़ी सम्पदा अर्जित कर लेने के फेर में अपराधी कुकर्मों की शृंखला चल पड़ती है। तनिक-सी स्फूर्ति पाने के लिए लोग नशेबाजी के कुचक्र में फँसते—एक प्रकार से अपंग—अपाहिज बनकर रह जाते हैं। वैभव का विपुल संचय तृष्णा कहलाता है। वासना के उपरान्त तृष्णा ही पदार्थ सम्पदा का, बुरे किस्म का दुरुपयोग है। इसी त्रिदोष में यह अहंकार भी है, जो दूसरों की दृष्टि में अपने को बड़ा सिद्ध करने के लिए ऐसे विचित्र आडम्बर विनिर्मित करता है मानो वही सबसे सुन्दर, बुद्धिमान, पराक्रमी और सम्पन्न हो। ठाट-बाट की खर्चीली साज-सज्जा इसी कुचक्र की प्रेरणा से खड़ी करनी पड़ती है। सस्ती वाहवाही लूटने के लिए नाम छपवाने, बड़े कहलाने के लिए ऐसी विडम्बनाएँ रचनी पड़ती हैं, जो सर्वथा निःसार होते हुए भी प्राणप्रिय लगती हैं।

संक्षेप में, यही है पदार्थ सम्पदा का दुरुपयोग। इस विज्ञान वैभव को अनर्थ के लिए नियोजित करना कह सकते हैं। पतन तात्कालिक लाभ की आतुरता के साथ जुड़ा हुआ है। आमतौर से यही किया और अपनाया जाता है। फलस्वरूप व्यक्ति अपने सुदूर भविष्य को अन्धकारमय बनाता है। त्रास सहता है और आत्म प्रताड़ना के साथ-साथ लोक-भर्त्सना का भाजन बनता है। इसकी रोकथाम समाज, शासन द्वारा जो यत्किंचित ही बन पड़ती है उसे सहज क्रम में ढाला या लुभाया जा सकता है। मात्र एक ही रोकथाम का उपाय है—दूरदर्शी विवेकशीलता पर आधारित नीतिमत्ता, मानव गरिमा के साथ जुड़ी हुई उत्कृष्टता। इसी को तत्वदर्शन की भाषा में अध्यात्म कहा गया है।

पदार्थ से भी अधिक शक्तिवान है—चेतना। उसी का कौशल और चमत्कार है कि पदार्थ को अनगढ़ से सुघढ़ स्थिति तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त हुई। फिर भी एक आश्चर्य और भी शेष रह जाता है कि विज्ञान की जन्मदात्री होने पर भी यह चेतना अपने आपके सम्बन्ध में भी कम दिग्भ्रान्त नहीं रहती। अपने को भी अपना मकड़जाल बुनकर फँसाने और असाधारण सन्त्रास सहते रहने के लिए बाधित होती है। यह और भी जटिल स्थिति है। दूसरे के सम्बन्ध में समीक्षा करना सरल पड़ता है। दूसरों के रूप का भला-बुरा वर्णन किया जा सकता है, पर आत्म-समीक्षा कैसे बन पड़े ? अपने प्रति पक्षपात भी रहता है और सर्वोत्तम होने का आग्रह भी। ऐसी दशा में दृष्टिकोण गड़बड़ाता है, कुकल्पनाएँ उठती हैं। अपने को सही सिद्ध करने वाले अनेकानेक तर्क साथ देते हैं। बुद्धि का निर्णय कभी तदनुरूप ही होता है, जैसा भी कुछ मानस बन गया है। स्वभाव में, रुझान में, आदतों में प्रायः अनौचित्य का अंश ही अधिक देखा जाता है। पूर्व संचित कुसंस्कार और बहुसंख्यकों द्वारा अपनाया गया प्रचलन आमतौर से अपने चिन्तन को तदनुरूप ढाल लेता है। अपनी मान्यता और आस्था में ऐसी विशेषता है कि वह दूसरों के सभी परामर्शों को निरस्त कर देती है जो अपनी संचित मान्यताओं को निरस्त करती है।

ऐसी दशा में यह कठिनाई भी सामने आती है कि अपना दृष्टिकोण उत्कृष्ट आदर्शवादिता के ढाँचे में कैसे ढले ? व्यवहार में ऐसी शालीनता का समावेश कैसे हो जिसे मानवी गरिमा के उपयुक्त कहा जा सके। जिसके आधार पर चरित्र और व्यवहार किस प्रकार ऐसा बन सके कि, उपलब्ध साधनों का सदुपयोग बन पड़े ? दूसरों के साथ सज्जनता स्तर का शिष्टाचार निभ सके।

यह ध्यान में रखने योग्य बात एक है कि लोग आदर्शों की बात का मौखिक समर्थन तो अपना बड़प्पन बघारने के लिए करते रहते हैं। वैसे धर्मोपदेश सुनकर उनके प्रति समर्थन भी व्यक्ति कर देते हैं, पर मानते और करते वही रहते हैं जो पहले से ही मजबूती के साथ अपनी मान्यताओं में समाविष्ट कर रखा है।

आत्म-सुधार के क्षेत्र में यही भारी संकट है । उपदेश, परामर्श, शास्त्र उल्लेख, आप्त वचन जब कान, मस्तिष्क तक टकराकर ही बाहर निकल जाय और उसका प्रभाव अन्तराल की गहराईयों तक न पहुँचे तो चेतना का परिष्कार किस आधार पर बन पड़े ?

इस सन्दर्भ में एक ही आधार कारगर हो सका है और वह है, आत्म-समीक्षा निष्पक्ष भाव से कर सकने की क्षमता । आत्म-सुधार और आत्म-निर्माण के लिए उभारा गया प्रचण्ड साहस । अपने आप का सुधार, परिष्कार उस आत्मबल के पक्षधर तत्वदर्शन के माध्यम से ही हो सकता है, जिसे पुरातन भाषा में 'अध्यात्म' कहते हैं । विज्ञान वैभव का सदुपयोग और आत्म-चेतना का परिष्कार ये दोनों ही प्रयोजन जिस आधार पर सिद्ध हो सकें उसे एक शब्द में अध्यात्म कहा जाता है । उच्चस्तरीय तत्वदर्शन भी ।

लोक व्यवहार में अध्यात्म और विज्ञान की दो पृथक धाराएँ बन गई हैं । दोनों ने अपने-अपने दुर्ग अलग-अलग खड़े कर लिए हैं । भ्रान्तियाँ दोनों पर ही अपने-अपने ढंग की सवार हैं । वे जिस भी स्थिति में हैं अपने को पूर्ण मानकर चल रहे हैं । जिस प्रकार बँटे हुए आदम स्तर के कबीले एक-दूसरे के प्रति सहयोग और सहानुभूति रखने की आवश्यकता नहीं समझते, उसी प्रकार दोनों वर्ग के सत्ताधारी यह सोच बना चले हैं कि वे अपने आप में पूर्ण हैं । उन्हें दूसरे पक्ष की उपयोगिता समझने के लिए चिन्तन के अवरुद्ध द्वार को खोलना चाहिए । यह न बन पड़ने पर दूसरे पक्ष को बिराना समझने के साथ-साथ वैमनस्य ही उपजाता है । उस स्तर का मानस बन जाने पर यह भी प्रयास चल पड़ता है कि विपक्षी को निराधार और हेय ठहराने के लिए जितने तर्कों के तीर चलाये जा सकते हों, उन्हें चलाने में कोर-कसर न रखी जाय । पिछली शताब्दियों में यही होता भी रहा है । जब अध्यात्म का किला मजबूत था, तब उसके बुर्जों पर बैठे तोपची विज्ञान को आसुरी मायाजाल बताते रहे । शैतान की करतूत भी बताते रहे । अभ्यास प्रक्रिया की सीमा से आगे बढ़कर जब विज्ञान ने अपने नये अनुसन्धानों को यथार्थवादी बताया तो उन्हें झुठलाया ही नहीं गया, वरन् त्रास देने में भी कुछ उठा न रखा गया ।

अब इस शताब्दी में विज्ञान ने बाजी मार ली है और अपने आविष्कारों के आधार पर मिलने वाली सुविधाओं के चमत्कार से सर्वसाधारण का मन मोह लिया है, तो उसने भी अपने विरोधी के प्रति कमर कसने में कोई-कसर नहीं रखी है ।

वैज्ञानिक क्षेत्रों में अध्यात्म को अन्धविश्वास, कल्पनाओं की उड़ान और प्रतिगामियों का बौद्धिक षड़यन्त्र कहना शुरू कर दिया है । धर्म को अफीम की गोली और तत्वदर्शन को भ्रान्तियों की पिटारी ठहराना शुरू कर दिया है ।

इस द्वन्द्व में मनुष्य जाति को असीम क्षति उठानी पड़ रही है । गाड़ी को खींचने वाले दो बैल यदि परस्पर सींग मारने पर उतर आयें तो यात्रा हो नहीं सकेगी । वे बैल आहत होकर उस उद्देश्य को चोट पहुँचायेंगे जिसके लिए दोनों गाड़ी में जुते और एक दिशा में चलकर, एक लक्ष्य पूरा करने के लिए नियोजित हुए थे ।

जड़ और चेतन एक दूसरे से पृथक हैं ही नहीं

इन दिनों अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की चर्चा विज्ञ-समाज में सर्वत्र होती रहती है । इतने पर भी यह नहीं उजागर किया जाता कि उस प्रतिपाद का उद्देश्य और स्वरूप क्या है ? और क्यों इसकी आवश्यकता समझी जा रही है ?

वस्तुतः प्रश्न ही तद्-विषयक भ्रान्ति पर आधारित है । विज्ञान और अध्यात्म सदा से एक-दूसरे के पूरक रहे हैं, विलग होने पर कोई भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये नहीं रह सकता है । अस्तित्व किसी रूप में बने भी रहें तो उनमें से किसी की भी उपयोगिता का प्रमाण नहीं मिल सकता । सौरमण्डल को ही लें, उसमें नौ ग्रह और तैंतीस उपग्रह अब तक प्रकाश में आ चुके हैं । अगले दिनों इस संख्या में और भी अभिवृद्धि होने वाली है, अविज्ञातों को खोजा-निकाला जा रहा है । उस परिवार के किसी घटक में बुद्धिमान प्राणियों का अस्तित्व नहीं पाया गया है । इसका कारण एक ही हो सकता है कि या तो वहाँ जीवधारी इच्छाशक्ति से अनुकूल वातावरण बना नहीं सके अथवा प्रकृति की प्रतिकूलता के कारण वहाँ प्राणियों की समर्थ प्रजातियों का उद्भव सम्भव नहीं हो सका, इसे जड़ और चेतन की विलगता कह सकते हैं ।

ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रह गोलकों की भी यही स्थिति रही होगी, जहाँ जीवन रहा होगा वहाँ सुविधा, समृद्धि और प्रगति के अनेक आधार खड़े हुए होंगे । पदार्थ को तोड़-मरोड़ कर खींच-घसीट कर जीवधारियों के लिए काम आ सकने योग्य बनाया होगा, इसके अभाव में पदार्थ अपनी अनगढ़ स्थिति में ही पड़ा होगा, वहाँ नीरवता के अतिरिक्त और कुछ भी दृष्टिगोचर न रहा होगा । इसका तात्पर्य यही है कि जड़-चेतन के मध्य वहाँ तालमेल बनने का सुयोग नहीं बन सका । जहाँ वह व्यवस्था रही है वहाँ हर परिस्थिति में जीवधारियों ने अपना अस्तित्व बनाये रखने और विभिन्न प्रकार की हलचलें करते रहने का प्रमाण दिया है ।

पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव में असाधारण शीत है, फिर भी इन दोनों क्षेत्र में जीवधारियों के अपने-अपने ढंग के क्रिया-कलाप पाये गए हैं । इस सुयोग के अभाव में समुद्र के मध्य उठे हुए अनेक द्वीप अभी भी सुनसान पड़े हैं । वहाँ छोटे जीव-जन्तु भर किसी प्रकार जन्मे और बढ़ सके हैं । जड़ और चेतन के युग्म को ही विज्ञान और अध्यात्म की संज्ञा दी जाती है । जहाँ अकेला एक हो वहाँ निस्तब्धता के अतिरिक्त और क्या पाया जा सकता है जलजीव भी उसी सुयोग का परिणाम है । आकाश में उड़ते रहने वाले जीवाणु-विषाणु आदि भी इसी तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि दोनों का मिलन ही उपयोगी हलचलों का केन्द्र हो सकता है । इससे प्रमाणित होता है कि जड़ और चेतन का मिलन ही हलचलों का केन्द्र है और वे महत्त्वपूर्ण तब बनती हैं जब उन दोनों को उभारने-सुधारने वाला विज्ञान एवं अध्यात्म उपयोगी सीमा तक विकसित हो सकता हो ।

यह समन्वय-सुयोग अनादि और अनन्त है, जहाँ वे दोनों बिछुड़ जायें तो सर्वत्र न सही उस क्षेत्र में तो प्रलय के सूखे-गीले, गर्म-ठण्डे दृश्य दिखाई ही देंगे, इसलिए दोनों के समन्वय के प्रश्न को उभारने में कोई प्रत्यक्ष दम नहीं है ।

यदि सचेतन प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्वकाल पर दृष्टि डाली जाय तो भी आदि कारण को खोजते-खोजते वहाँ पहुँचना पड़ेगा जहाँ चेतन की इच्छा या प्रेरणा के उपरान्त पदार्थ का अस्तित्व प्रकाश में आया। श्रुति वचनों में उसका उल्लेख भर है—'एकोहम् बहुस्यामि' सूत्र में यही प्रतिपादन है कि स्रष्टा को शून्य स्थिति में रहना अखरा तो उसने इच्छा की, 'एक से बहुत हो जाऊँ' फलतः परा और अपरा प्रकृति के रूप में दो प्रवाह फूट पड़े और सृष्टि का आरम्भ हो गया। ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि के रचे जाने का अलंकारिक मिथक भी प्रकारान्तर से इसी स्थिति पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार शास्त्र वचनों में भी इसी वस्तुस्थिति को उजागर किया गया है—'ऋतं च सत्यं च ·······' आदि वर्णनों में भी इसी उपक्रम का विस्तार किया गया है, यह अध्यात्म प्रधान पक्ष का प्रतिपादन हुआ।

पदार्थ विद्या भले ही अपने परिकर द्वारा ही विश्व को ओत-प्रोत सिद्ध करे, उसी को प्रधान माने—फिर भी यह स्वीकार किए बिना उनका कथन भी समग्र नहीं बन पड़ता कि कोई अदृश्य इच्छा-शक्ति पदार्थ सत्ता का उद्भव, संचालन, अभिवर्धन और परिवर्तन जैसे खेल खिला रही है। यहाँ हर पदार्थ के पीछे एक सुव्यवस्था का समावेश है। परमाणु, जीवाणु, विषाणु स्तर के अदृश्य घटकों को भी किसी सुनियोजित रीति-नीति का प्रतिपादन करने के लिए विवश रहना पड़ता है। यदा-कदा उच्छृंखलता दीख पड़ती है, वह भी किन्हीं सशक्त नियमों के आधार पर ही दृश्यमान होती है, भले ही उन नियमों के सम्बन्ध में मनुष्य की जानकारी, कुछ आभास पाने तक ही सीमित क्यों न रही हो?

पोले आकाश में असंख्य ग्रहगोलकों, वाष्पीभूत महामेघों के चक्रवातों की इकाइयाँ अधर में टँगी हुई हैं। गतिशीलता उनमें आकर्षण शक्ति बनाए हुए है, सबके बीच एक अत्यन्त सुव्यवस्थित क्रिया-प्रक्रिया काम कर रही है और अणु से लेकर विभु तक के पसरे वैभव का इस प्रकार संचालन किए हुए है कि उसे अकारण नहीं कह सकते, उसके पीछे निश्चित ही कोई सुनियोजित चेतना तालमेल बिठाए हुए है।

वनस्पितियों, प्राणियों, सूक्ष्म जीवियों, जलचरों की जीवन-लीला और गतिविधियों पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि यह सब आकस्मिक रूप से नहीं चल रहा है। हर घटक के पीछे कोई उच्चस्तरीय बुद्धिमत्ता काम कर रही है अन्यथा बिखराव और टकराव का ऐसा माहौल दीख पड़ता, जिसके कारण उत्पन्न हुई अव्यवस्था और अराजकता उड़ते गुबार के अतिरिक्त और कुछ भी दीख न पड़ती। किसी पदार्थ का कोई स्वरूप ही न बन पाता और न वह कुछ क्षणार्ध तक स्थिर ही रह पाता। सचेतन ही अचेतन पर नियन्त्रण कर सकता है। पदार्थ की छोटी इकाई के अन्तर्गत जिस प्रकार जितने परिकर काम करते और अपनी धुरी-कक्षा में भ्रमण करते देखे जाते हैं, उनसे स्पष्ट है कि यह नियमित अनुशासन भी किसी व्यापक सत्ता का ही इच्छापूर्वक अवस्था के अन्तर्गत रखा गया खेल है। प्राणियों के शरीरों में देखे जाने वाले अंग-अवयव, रसायन-जीवाणु अपने-अपने कार्य में इतने अधिक तल्लीन हैं मानों किसी ने उन्हें किसी आश्चर्यजनक कम्प्यूटर की तरह सुनियोजित किया हो। प्राणियों को क्षुधा निवृत्ति और वंश-वृद्धि के कर्मों में इस प्रकार जोता हुआ है कि वे अपनी व्यस्त जीवनचर्या को सरलतापूर्वक पूर्ण करते रह सकें। इन दोनों प्रयोजन के लिए आवश्यक साधनों का सृजन भी इस प्रकार किया गया है कि वे हर किसी को सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सकें। इतना ही नहीं ऋतुचक्र भी इस प्रकार का विनिर्मित है कि उससे निबटने के लिए हर जीवधारी को अपने कौशल का, समुचित अभिवर्धन करने का अवसर प्राप्त होता रहे। वनस्पतियों और प्राणियों का एक-दूसरे का पूरक बनकर रहना भी कितना विचित्र है कि यह विश्वास किए बिना रहा नहीं जाता कि यह समस्त विस्तार किसी बुद्धिमत्ता तन्त्र के संरक्षण में चल रहा है।

शास्त्रीय प्रतिपादनों से लेकर वैज्ञानिक अनुसंधानों तक को अपने-अपने ढंग से एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा है कि पदार्थ का उत्पादन और उसका क्रमबद्ध नियमन किसी सचेतन सत्ता का ही खेल है। इस प्रकार जड़ और चेतन दोनों का अत्यन्त सुव्यवस्थित होना सहज सिद्ध है, साथ ही यह भी प्रकट है कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं जिसे सर्वथा जड़ समझा जाता है वह भी मृत नहीं है। पाषाण शिलाएँ और धातु खण्ड भी अपने अन्तराल में किसी स्तर का जीवन धारण किए हुए हैं और वे घटते-बढ़ते, बदलते रहते हैं। पूर्ण निर्जीव कहा जा सके, ऐसा तो यहाँ कुछ भी नहीं है! अग्नि का ज्वलन्त ज्वाला भाल भी नहीं। समुद्र के ज्वार-भाटे तक नहीं। पदार्थ में सन्निहित 'गति या शक्ति' एक सुनियोजित व्यवस्था क्रम के साथ इस प्रकार जुड़ी हुई है कि वे राई रत्तीभर भी व्यतिरेक बरतने की स्थिति में नहीं है। प्राणियों की संख्या-वृद्धि को नियन्त्रित रखने से लेकर उनके निर्वाह साधन जुटाने तक की सुव्यवस्था इस प्रकार बनी हुई है कि आश्चर्य होता है कि यह उपक्रम किस प्रकार बन गया। हर प्राणी की चेतना इस ढाँचे में ढली है कि वह सुखपूर्वक जिए और दूसरों को सुव्यवस्थित रखने में योगदान कर सके।

चेतना का अस्तित्व सुनिश्चित है, वह ब्रह्माण्डव्यापी विराट् भी है और प्रत्येक प्राणी तथा परमाणु में अपने अस्तित्व का सुनियोजन के आधार पर परिचय भी देती है। इसी प्रकार पदार्थ को उसके विभिन्न रूपों में विद्यमान देखा जा सकता है। वायुभूत होने पर वह दृष्टिगोचर भले ही न होती हो, पर उसका परिचय तो ठोस, द्रव और गैस के रूप में विद्यमान है ही, दोनों के बीच सघनता भी इतनी है कि एक के बिना दूसरे का काम चल ही नहीं सकता। उनका अस्तित्व भी जाना और समझा नहीं जा सकता, विलग होने की स्थिति में यहाँ कुछ भी शेष न रहेगा। ताप, शब्द और प्रकाश की जो तरंगें काम करती हैं, जड़ चेतन को एक सूत्र में बाँधती हैं, उनका भी कहीं अता-पता न चलेगा। क्षीरसागर में विष्णु के सो जाने पर महाप्रलय हो जाता है, क्षीरसागर और विष्णु जड़ चेतन के यही दो समन्वय अन्त में रह जाते हैं। आरम्भ में भी कमल पुष्प पर बैठे ब्रह्मा द्वारा सृष्टि सृजन का यही तात्पर्य है कि ब्रह्म और प्रकृति-वैभव का मिल-जुलकर बना आधार ही सृष्टि के सृजन का मूल कारण बना।

कोई जड़ ऐसा नहीं है जिसमें चेतना का कोई न कोई अंश विद्यमान न हो। पत्थरों तक में मन्दगामी हलचल होती है, धातुओं तक को जंग लगती और क्षरण-परिवर्तन होता है। समुद्र उफनते हैं, हवा में अन्धड़ चलते हैं, पृथ्वी में भूकम्प आते

हैं, आकाश में इन्द्रधनुष देखे जाते हैं । पानी बरसता है, भाप उड़ती है, मौसम बदलते हैं । इन सबके साथ एक सूक्ष्म नियम व्यवस्था काम करती है, उसे सचेतन का ही प्रकार कहा जा सकता है । पड़ी लकड़ी में से कुकरमुत्ते उग पड़ते हैं । गोबर-कीचड़ में कृमियों का जन्म होने लगता है । यह सब तथ्य बताते हैं कि जड़ नितान्त निर्जीव एवं गति विहीन नहीं है । इसी प्रकार चेतन के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि उसका स्वरूप देखना तो दूर कल्पना तक कर सकना कठिन है । उथली चेतना होने के कारण मनुष्येत्तर प्राणी ईश्वर के स्वरूप और नियमों के सम्बन्ध में कोई कल्पना तक नहीं कर सकते । मनुष्य भी निष्कलंक ब्रह्म के सम्बन्ध में अपनी सुनिश्चित आस्था नहीं जमा पाता । धर्म धारणा और ध्यान साधना के माध्यम से ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने की प्रक्रिया में उसे किसी न किसी आकार को कहीं न कहीं ठहरा हुआ कल्पित करना पड़ता है । विभिन्न सम्प्रदायों और साधना परम्पराओं ने ईश्वर का कोई न कोई ऐसा स्वरूप निर्धारित किया है, जिसका ध्यान बन पड़े और उसके साथ भक्ति-भावना का आरोपण सम्भव हो सके, नितान्त निराकार की कल्पना तक नहीं बन पड़ती । वेदान्त तक में, आत्म स्वरूप में ईश्वर की ज्योति प्रकाशित होने की मान्यता है । इसके बिना तद्विषयक कोई चिन्तन-चेतना उभरती ही नहीं, निराकार मत वाले भी प्रकाश ज्योति को ईश्वर का स्वरूप मानकर काम चलाते हैं ।

चेतन और जड़ का दो भागों में वर्गीकरण करते हुए इस तथ्य को समझने में सुविधा पड़ती है, पर वह वर्गीकरण ऐसा नहीं हो सकता जो नितान्त एकाकी हो । न तो हलचलों से, गुणों से, सामर्थ्यों से रहित किसी जड़-पदार्थ की उपस्थिति ढूँढ़ी जा सकती है और न सर्वव्यापी ब्रह्म चेतना का स्वरूप विवेचन सम्भव है । ईश्वर को भी किसी नियम व्यवस्था से अनुशासित- अनुप्राणित ही माना जाता है । उसके अनुग्रह और कोप की मान्यता को हृदयंगम किया जाता है । स्वर्ग में, मुक्ति में उसके वैभव से मिल-जुलकर रहने की कल्पना है । भक्तजन ईश्वर से भी बदले में अपनी जैसी प्रेम भावना उपलब्ध होने की मान्यता अपनाए रहते हैं ।

उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्तन—यह तीन गतिविधियाँ प्रत्येक पदार्थ और प्राणी में अनवरत रूप से होती रही हैं । इन हलचलों का केन्द्र सजीव सत्ता ही हो सकता है । वैज्ञानिक, परमाणुओं से बनी इस सृष्टि को मानते हैं, परमाणुओं का ढाँचा भी सौरमण्डल जैसा है, उसके अन्तर्गत अनेकों इलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन जैसे घटक ग्रह-उपग्रहों की भाँति धुरी और कक्षा में दौड़ते रहते हैं । उनकी क्रिया-प्रक्रिया में जो तारतम्य रहता है उसे देखते हुए भी यही कहा जा सकता है कि गति, शक्ति और अनुशासन, निर्जीव पदार्थ अपने सम्बन्ध में स्वयं ही स्थापित और निर्धारित नहीं कर सकता ।

इकालॉजी सिद्धान्त के अनुसार समूची विश्व व्यवस्था में अति सघनता के साथ अनुशासन का समावेश है । सर्वत्र व्यवस्था ही व्यवस्था है, यहाँ तक कि यदा-कदा भूकम्प-तूफान जैसे व्यतिक्रम जो दीख पड़ते हैं वे भी उन विशिष्ट नियमों के साथ जुड़े हुए हैं जिनका मनुष्य की समझ अभी तक पूरी तरह पता नहीं लगा पायी है ।

जड़ को अव्यवस्थित होना चाहिए, किन्तु यहाँ किसी को भी वैसी छूट नहीं मिली हुई है । शरीर के जीवाणु, तन्तु ऊतक, घटक इस क्रमबद्धता का परिचय देते हैं कि कायिक ढाँचा तक नियमबद्ध है । मनुष्य कभी-कभी नैतिक नियमों का उल्लंघन कर तात्कालिक लाभ उठाता देखा जाता है । इससे कर्मफल की व्यवस्था में सन्देह होता है, पर कुछ ही समय में क्रिया की प्रतिक्रिया सामने आकर रहती है—इससे विदित है कि जड़ और चेतन का पारस्परिक समन्वय अविच्छिन्न है ।

पदार्थ का प्रतिनिधित्व विज्ञान करता है और चेतना का अध्यात्म, दोनों के बीच सघन समन्वय न रहने पर तो यहाँ कुछ भी बन या चल न सकेगा । ऐसी दशा में यह मान्यता गलत है कि दोनों सत्ताएँ एक-दूसरे से पृथक हैं, ऐसी दशा में यह चर्चा भी बाल-विनोद जैसी लगती है कि अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय होना चाहिए । जो विलग हैं ही नहीं, उनका समन्वय करने की आवश्यकता और चेष्टा भी किस प्रकार बन पड़ेगी ?

यथार्थता तो स्वीकारनी ही पड़ेगी

श्रुति का वचन है कि 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' अर्थात् यह सब विशद ब्रह्माण्ड ब्रह्म ही है । विराट् ब्रह्म की परिकल्पना में इस विश्व को ही ईश्वर का दृश्य स्वरूप माना गया है । अर्जुन, कौशल्या, काकभुशुण्डि आदि ने ईश्वर दर्शन का आग्रह किया जो उन्हें विराट् विश्व की झाँकी करके ही सन्तोष करना पड़ा । निराकार का अपना निजी स्वरूप कोई हो ही नहीं सकता । कलेवर समेत ही उसकी झाँकी होने की अपेक्षा की जाती है, यह कलेवर और कुछ नहीं प्रकृतिपरक ही हो सकता है, भले ही वह प्रत्यक्ष हो अथवा परोक्ष । दृश्य हो या अदृश्य, वह वस्तु रूप भी हो सकता है और कल्पना शक्ति के आधार पर स्व-निर्मित भी ।

ईश्वर सान्निध्य की चर्चा का जहाँ प्रसंग आता है उसे अन्तराल में, हृदय देश में, अन्तर गुहा में अवस्थित ही बताया जाता है । चेतना का अणु पक्ष आत्म सत्ता में है और विभु पक्ष ब्रह्माण्डीय चेतना में । दोनों एक ही तत्व के बने हैं । चिन्गारी और आग, बूँद और जलाशय, घटाकाश और महाकाश में मात्र आकार भिन्नता है । सत्ता एक ही है, ब्रह्म सान्निध्य का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आत्म-परिष्कार ही एक मात्र उपाय माना गया है । इसी के निमित्त उपासना, साधना और आराधना का त्रिविध प्रयास करना पड़ता है । योग और तप का बहुमुखी आधार इसी निमित्त जाना और किया जाता है । मैले दर्पण में अपनी छवि दिखाई नहीं पड़ती, मैले पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं चमकता—इसी प्रकार दुश्चिन्तन और कुकर्मों से, सड़े-गले जीवन से अन्तःकरण ऐसा दूषित हो जाता है कि उसमें ईश्वर सत्ता विद्यमान होते हुए भी आभास मिल नहीं पाता । इस अवरोध को दूर करने के लिए आत्मशोधन के ही प्रयास करने पड़ते हैं । अपूर्णता से उबरकर पूर्णता प्राप्त करने का यही एक मात्र मार्ग है । अध्यात्म तत्वदर्शन में इसी का प्रतिपाद है । साधनापरक समस्त कर्मकाण्ड इसी की पूर्ति के लिए विनिर्मित किए गए हैं । जो जिस अनुपात से आत्मशोधन करता जाता है, उसके भवबन्धन उसी मात्रा में कटते हैं । ब्रह्म सान्निध्य का रसास्वादन करने का अवसर उसे उसी अनुपात में मिलता चला जाता है । जीव का ब्रह्म सान्निध्य की लालसा को मृग की नाभि

में कस्तूरी होने पर भी उसे अन्यत्र ढूँढ़ते-फिरने की तरह प्रयत्न करना बताया गया है ।

तात्विक प्रतिपादन और अनुभवों का निर्धारण जीवन और ब्रह्म की एकता का समर्थन है, इसे जड़ चेतन का समन्वय भी कह सकते हैं । इतना होते हुए भी यह देखा जाता है कि दोनों सत्ताओं में पृथकता ही नहीं प्रतिकूलता भी है । ईश्वर के गुण जीवन में नहीं पाये जाते और जीव स्तर की गतिविधियाँ न अपनाने के लिए ईश्वर की विवशता भी समझी जा सकती है । जो व्यापक है वह एक केन्द्र पर सिकुड़कर केन्द्रित कैसे हो सके, यदि होने का प्रयास भी करे तो सृष्टि में अन्यत्र कैसे उपस्थित हो सकेगा ? शून्य को पूरा कौन करेगा ?

पुरातन प्रतिपादनों और निर्धारणों को समझ सकने के उपरान्त वस्तुस्थिति सहज समझी जा सकती है, फिर भी इन दिनों दोनों के पृथक होने की कठिनाई का जो वर्णन किया जाता है, पृथकता के कारण होने वाली हानियों का जो वर्णन किया जाता है, एक अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय पर जो जोर दिया जाता है, उन प्रतिपादन कर्त्ताओं के मन्तव्य को ममझना चाहिए । शब्दों के भ्रम-जंजाल में कई बार वह बात स्पष्ट नहीं हो पाती कि जो कुछ कहा जा रहा था, चाहा जा रहा था उसके पीछे वास्तविक उद्देश्य क्या था और किस कठिनाई का क्या समाधान खोजा जा रहा था । इन दिनों चल रही चर्चा के सम्बन्ध में ऐसा ही शब्द जंजाल बाधक हो रहा है, उस उलझन की वास्तविकता को गहराई में उतर कर समझना होगा ताकि जो तथ्य विचारशीलों को उद्विग्न करते हैं, उन्हें समझा और उनका समाधान खोजा जा सके ।

विज्ञान पक्ष की मान्यता है कि जो भी प्रत्यक्ष है वह उतना ही सत्य है । इसमें जो तुरन्त लाभ दीख सके, अपनी सत्ता का परिचय दे सके वही मान्य है । चूँकि ईश्वर, धर्म और तत्वदर्शन के प्रतिपादन प्रत्यक्ष नहीं है, इसलिए उन्हें मान्यता क्यों दी जाय ?

अध्यात्म का कथन है—शास्त्रों-आप्तवचनों में ही पूर्ण सत्य समाहित है, उन्हें झुठलाना ऋषियों और शास्त्रों का अपमान है । विज्ञान की खोजें नित नई सामने आती हैं, पिछले कथनों को झुठलाती चलती हैं—ऐसे अपरिपक्व प्रतिपादनों की बात क्यों सुनी जाय ?

विरोध के मुख्य तथ्य यही हैं, विरोध चल पड़ने पर कटु प्रहार एवं दोषारोपण के अनेकों प्रसंग आते हैं और परस्पर गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग होने लगता है । मन्तव्यों को मिथ्या ही नहीं, निहित स्वार्थों से प्रेरित तक कहा जाने लगता है । आस्तिक-नास्तिक स्तर का यही मल्लयुद्ध खून-खराबे तक पहुँचता रहा है ।

विज्ञान के सम्बन्ध में अध्यात्म पक्ष द्वारा कहा जाता है कि उसके द्वारा प्रकृति का असाधारण दोहन किए जाने पर भविष्य के लिए कुछ न बचेगा । प्रदूषण फैलने की विषाक्तता प्राणघातक होगी, लोग काहिल बनेंगे—इसके कारण समस्त सत्ता सम्पदा सिमट कर कुछ ही हाथों में सीमित हो जायेगी । नीति-मर्यादाओं का कोई मूल्य न रहेगा आदि-आदि ।

इसी प्रकार विज्ञान ने अध्यात्म को अन्ध-विज्ञान बताया है । धर्म को अफीम की गोली कहा है, आधार रहित कल्पनाओं की उड़ानें बताया है । ईश्वर यदि नियामक है तो वही कर्म अपनी विशेषताओं के कारण प्रकृति क्यों नहीं कर सकती । अध्यात्म परावलम्बन है, वह पराक्रम साहस को काटता और व्यक्ति को दीन-दुर्बल बनाता है ।

दोनों पक्ष अपने-अपने समर्थन में बहुत कुछ कहते रहे हैं, दूसरों पर लाँछन लगाने में कोई कसर नहीं रहने देते रहे हैं । किसी ने भी यह नहीं सोचा कि दूसरे पक्ष के प्रतिपादनों और आक्षेपों में क्या कुछ सच्चाई भी है । भ्रान्तियों के निराकरण और उपयोगी प्रतिपादनों को ग्रहण करने की यदि मनोभूमि रही होती तो जो खाई लगातार बढ़ती चली आयी है वह घटती । एक-दूसरे के परिश्रम को सराहता और जो गृहण योग्य होता—अपनाता । जहाँ सहमति नहीं बन पड़ रही हो उसे सुलझाने के लिए कभी उचित अवसर आने की प्रतीक्षा करता तो ऐसी स्थिति न बन पड़ती जैसी आज है ।

वस्तुतः दोनों ही पक्ष असाधारण शक्ति सम्पन्न हैं, उनके प्रतिदानों में इतनी सच्चाई एवं उपयोगिता भी है जिसे जनसाधारण को बताते हुए औचित्य अपनाने की पृष्ठिभूमि तैयार की जा सके । विग्रह से शत्रुता उपजती है, आग्रह प्रतिष्ठा का प्रश्न बनता है और अहंकार इस प्रकार आड़े आता है कि तथ्यों के निरीक्षण-परीक्षण की गुंजाइश तक नहीं रहती वरन् विरोध में मजा आता है, दूसरे पक्ष को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति बढ़ती है ।

इस तनावपूर्ण स्थिति में एक तीसरा पक्ष उभरा है जिसे विवाद से उत्पन्न दिग्भ्रम ही कहा जा सकता है । सेनाएँ परस्पर विरोधी युद्ध की साज-सज्जा इसी मनःस्थिति में बनाती हैं । सभी जानते हैं कि उपयोगी पक्षों का विग्रह सर्वसाधारण के लिए, संसार के लिए हानिकारक ही सिद्ध होता है । देवासुर संग्राम लम्बे समय तक चलता रहा, पर उससे किसको क्या मिला ? दोनों ने ही हानि उठाई, इस स्थिति में किसी को भी शान्ति में रहने एवं प्रगति करने का अवसर न मिला ।

अन्ततः दूरदर्शी बुद्धिमत्ता उभरी, सहयोग की बात सोची गई । समुद्र मंथन की योजना बनी । लड़-झगड़ में खर्च होने वाली शक्ति सृजन प्रयोजन में लगी, इस माहौल में निराश बैठे हुए कच्छप भगवान, वासुकि महासर्प, मन्दिराचल पर्वत उस प्रयास में सहयोग के लिए कटिबद्ध हो गए । मन्थन में चौदह रत्न निकले, उनके माध्यम से उन दोनों पक्षों का ही नहीं सर्वसाधारण को भी अनेक प्रकार से लाभान्वित होने का अवसर मिला ।

उसी घटनाक्रम का स्मरण करते हुए विचारशील वर्ग द्वारा सोचा जा रहा है कि संसार की इन दोनों सर्वोपरि कही जा सकने योग्य शक्तियों का परस्पर सामंजस्य और सहयोग का तालमेल बिठाने की स्थिति में लाया जाय, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय किया जाय—यह आवाज आज हर दिशा में उठ रही है । विश्व के मूर्धन्य विचारकों का यही अभिमत है कि इनके मध्य जो खाई खुद गई है, उसे पाटने के लिए प्रबल प्रयत्न किया जाय ।

वास्तविकता यह है कि दोनों के बीच सामंजस्य की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, वे एक दूसरे के विरोधी नहीं पूरक हैं । एक से सर्वथा पृथक रहकर दूसरा अपना अस्तित्व तक बनाए नहीं रह सकता । पदार्थ के बिना चेतना पंगु है और चेतना की प्रखरता के बिना पदार्थ अन्धे के समतुल्य । अन्धे-पंगे परस्पर मिल कर नदी पार करने की योजना बना सकते हैं और पार जाने में सफल हो सकते हैं, यही स्थिति उपरोक्त विवाद के सम्बन्ध में भी है । पृथक रहकर तो वे अभीष्ट लाभ उठाने से वंचित ही

रहेंगे और असहयोग एवं विग्रहजन्य घाटा ही उठाते रहेंगे । अब समय आ गया है कि विरोध को मैत्री में परिणत किया जाय ।

अध्यात्म और विज्ञान दोनों का ही एक लक्ष्य है—सत्य की खोज । यह तभी बन पड़ता है जब मस्तिष्क खुला रखा जाय, पिछली मान्यताओं में यदि नये तथ्य सामने आने पर परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़े तो उसके लिए तैयार रहा जाय । शोध प्रक्रिया इसी प्रकार सम्पन्न होती है ।

अब तक दोनों पक्षों ने बहुत कुछ जाना है, पर जो ज्ञानने के लिए शेष है, वह उससे भी कहीं अधिक है जो अब तक हस्तगत हो चुका। विज्ञान अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह समझता और अपनाता है, तभी तो पुराने शोध निष्कर्षों से सन्तुष्ट न रहकर आगे की बात जानने, अधिक गहराई में उतरने और यदि पिछले में सुधार-संशोधन करना पड़े तो उसके लिए तैयार रहा है । उपलब्धियों को पूर्ण मानने की उसकी प्रवृत्ति है ही नहीं, इसी का परिणाम है कि नित नये आविष्कार प्रकट होते चलते हैं और उनके द्वारा अधिक क्षमताएँ प्राप्त करते चलने के अवसर मिलते रहते हैं । यदि पूर्णता का आग्रह किया गया होता तो उसका परिणाम निश्चित रूप से यही होता है कि अग्रगमन की संभावनाएँ समाप्त हो जातीं एवं अधिक नया जानने और अधिक महत्त्वपूर्ण प्राप्त करने का चलता हुआ उपक्रम अवरुद्ध होकर रह जाता है ।

इस सम्बन्ध में अध्यात्म पक्ष ने भूल की है । शास्त्र उल्लेख और आप्त-वचनों को भी पूर्ण न मानकर नये अनुसन्धानों के लिए द्वार खुला रखा गया होता तो आज उसकी प्रखरता, प्रामाणिकता और उपयोगिता इतनी अधिक रही होती कि किसी को उँगली उठाने की चुनौती देने का अवसर ही न मिलता ।

उदाहरण के लिए अगणित सम्प्रदाओं की परस्पर विरोधी असंख्य मान्यताओं को लिया जा सकता है, उन्हें सोचना चाहिए था कि सच्चाई तो एक ही हो सकती है, उसकी समग्रता को समझते हुए असहमतियों को शिथिल करते हुए किसी एक निश्चय पर क्यों न पहुँचा जाय ताकि न मतभेदों-विरोधों के लिए गुंजाइश रहे और न जन समुदायों को इस आधार पर एक दूसरे को दुराग्राही-विग्रही ठहराना पड़े । यहाँ हाथी वाली कहानी याद आती है, जिसमें अन्धों के एक समूह ने उसका स्वरूप निर्धारित करने का प्रयत्न किया था, पर हाथ से जिन अंगों को वे छू सके उसी आकार का हाथी बताने की जिद करने लगे । फलतः वे किसी निष्कर्ष पर भी न पहुँच सके और परस्पर लड़ते भी रहे । यह स्थिति धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में भी है, उनके मूर्धन्य जन सभी पक्षों के स्वरूप को मिलाकर उन्हें एकता के केन्द्र पर केन्द्रित कर सकते हैं और धर्मों में जो सर्वोपयोगी है उसे एकत्रित करके सर्वसाधारण तक एक सुनिश्चित मान्यता के रूप में पहुँचा सकते हैं । यदि इतना बन पड़े तो सम्प्रदाओं की भिन्नता-एकता में विकसित होकर लोक-कल्याण में भली प्रकार समर्थ हो सकती है । विग्रहों में, भिन्नताओं में जो शक्ति खर्च होती है उसका उपयोग सदुद्देश्य के लिए बन पड़ना सम्भव हो सकता है ।

विज्ञान ने वही किया है, उसके सिद्धान्त सार्वभौम हैं । सभी देश उनसे समान रूप से लाभ उठाते हैं । बिजली, रेडियो, टेलीवीजन, टेलीफोन, मशीनें सभी का स्वरूप संसार भर में प्रायः एक जैसा है । सच्चाई एक होनी चाहिए, सूर्य एक है, चन्द्रमा एक है, आकाश एक है, फिर विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों और प्रयोगों में भी एकता क्यों न होगी । इस प्रयोग ने सर्वसाधारण के मन में, विज्ञान सिद्धान्त की सच्चाई के सम्बन्ध में आस्था उत्पन्न की है और उसका समुचित लाभ भी उठाया है । धर्म को भी प्रामाणिकता के लिए एकता का, एकात्मता का सिद्धान्त अपनाना होगा तभी विग्रह और भ्रम फैलाने के लांछन से मुक्ति मिल सकेगी । सभी एक न हो सकें तो कम से कम सहिष्णुता, समन्वय समभाव तो अपनाना ही चाहिए, भले ही निजी अभिरुचि के अनुरूप कोई किसी प्रकार का प्रयोग-उपयोग अपनाता रहे । विज्ञान सार्वभौम, सार्वजनिक और सर्वोपयोगी है । अध्यात्म को भी इसी स्तर का बनकर अपनी महत्ता प्रतिपादित करनी चाहिए और वह स्थिति नहीं बनने देनी चाहिए जिसमें उँगली उठाने और निन्दा होने की स्थिति बने ।

विज्ञान को, प्रत्यक्षवाद को झुठलाया नहीं जा सकता, उसकी प्रकृति और उपलब्धि का लाभ उठाया जाना चाहिए । भूतकाल के आरम्भिक चरणों में भी उसने इस विश्व वसुधा की, विशेषतया मानव जाति की महती सेवा-साधना की है । अब जब वह प्रौढ़ता के चरण में प्रवेश कर रहा है तो उससे और भी बड़ी आशाएँ की जा सकती हैं । उसकी उपयोगिता से इन्कार करते हुए देखना इतना भर है कि जो उसने कमाया है उसका दुरुपयोग न होने पाये, वरन् ऐसा सदुपयोग बने, जिससे वह अध्यात्म की परोक्ष सत्ता का पूरक बन सके ।

वास्तविकता सिद्ध करने से कोई डरे क्यों ?

शरीर को स्थिर और समर्थ बनाए रखने के लिए आहार-विहार के नियम पालने पड़ते हैं । लोक व्यवहार की भी कुछ मर्यादाएँ और परम्पराएँ हैं, जिनका निर्वाह करते हुए ही कोई शिष्ट-सज्जन कहा जा सकता है और सभ्य समाज में अपनी जगह बना सकता है । अर्थशास्त्र से लेकर विज्ञान तक की अनेक विधाएँ अपने सिद्धान्तों के अनुरूप आचरण चाहती हैं । इन विधाओं की अवमानना करने पर प्रत्यक्ष जीवन में पग-पग पर हानि उठानी और भर्त्सना सहनी पड़ती है । अनुशासन और प्रयोग विधान से विनिर्मित राजमार्ग पर चलते हुए ही कोई सुखी रह सकता है और प्रगति पथ पर अग्रसर होने का लाभ उठा सकता है ।

अध्यात्म क्षेत्र का अपना स्वरूप और अपना अनुशासन है, जिसे पढ़-सुन लेने से काम नहीं चलता, वरन् उसके निर्धारणों को हृदयंगम करना और दृढ़तापूर्वक प्रयोग में लाना पड़ता है । उस सारी व्यवस्था को समझ पाने पर ही यह सम्भव हो सकता है कि प्रतिफलों से लाभान्वित हुआ जा सके, केवल कथोपकथनों की तोता रटन्त से तो कौतूहल मात्र बन पड़ता है । लाभ उठाने जैसी स्थिति तो बन ही नहीं पाती ।

चेतन पक्ष को सुनियोजित-सुसंस्कृत बनाने की विधा को 'अध्यात्म' नाम से जाना जाता है । इसमें वह अनुशासन भी जुड़ा हुआ है, जिसको संयम या आत्मानुशासन नाम से जाना जाता है । यह न बनने पर जो शेष रह जाता है, उसे आडम्बर या कलेवर ही कह सकते हैं । रामलीला आयोजन में बड़े आकार के रावण-कुम्भकरण आदि खड़े किए जाते हैं । उनसे कौतूहल

भर होता है । अधिक से अधिक उन दैत्यों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिलती है, पर यह नहीं होता कि वे पुतले अपने कलेवर के अनुरूप कुछ क्रिया-कृत्य पराक्रम-पुरुषार्थ करके दिखा सकें । यही बात अध्यात्म के सम्बन्ध में भी है । आमतौर से लोग उसके कलेवर भर का स्पर्श करने में रुचि लेते हैं । उसकी मर्यादाओं को जीवन में उतारने का प्रयत्न नहीं करते । फलतः जो कुछ बचा रहता है, उसे कलेवर की विडम्बना भर कहा जा सकता है । तथ्य और तत्व का समावेश न होने पर यह स्थिति बन नहीं पड़ती, जिसमें विज्ञान के समतुल्य या उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर सकने की स्थिति बन सके । एक ओर सजीव हाथी खड़ा हो और दूसरी ओर वैसा ही कागज का पुतला बनाकर खड़ा कर दिया जाय, तो यह आशा नहीं की जा सकती कि तुलना करने पर दोनों की सामर्थ्य समान सिद्ध हो सकेगी, दोनों को समान महत्त्व का मूल्य मिल सकेगा, दोनों से समान काम लिया जा सकेगा । नकली को अधिक वरिष्ठ या प्रमुख सिद्ध करने का तो अवसर ही कहाँ आता है ।

जब जड़ पदार्थों से लाभान्वित होने की, शरीरों को स्वस्थ रखने की, व्यापार-व्यवसाय की, कोई विधि-व्यवस्था हो सकती है, तो चेतना को सही और सुसंस्कृत बनाए रहने का भी सुनिश्चित अनुशासन रहेगा ही । शरीर की पृष्ठभूमि में प्राण काम करता है । प्राण दुर्बल हो जाने पर या विलग हो जाने पर शरीर महत्त्वहीन बन जाता है । इससे प्रकट है कि चेतना की, प्राण सत्ता की, विचारणा की अपनी समर्थता और उपयोगिता है । उसे उपेक्षा की स्थिति में नहीं रखा जा सकता है, जैसे-तैसे जहाँ-तहाँ उसे पड़ा नहीं रहने दिया जा सकता है । अनगढ़ बनी रहने पर तो वह जंग खाई हुई घड़ी की तरह समय बताने की अपनी क्षमता से वंचित ही बनी रहेगी । इस दुर्गति से चेतना क्षेत्र को बचाए रहने के लिए अध्यात्म विज्ञान का सुनियोजन हुआ । पदार्थ विज्ञानियों की तरह ऋषि-कल्प तपस्वियों ने अपने मानस को प्रयोगशाला बनाकर उन तथ्यों को खोज निकाला है, जिन्हें अपनाकर नर-वानर स्तर का एक सामान्य प्राणी किस प्रकार ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी, विश्व वसुधा का अधिष्ठाता बन सका । किस प्रकार उसने अपनी प्रसुप्त शक्तियों को खोजा और उन्हें जाग्रत करके देवमानव का पद पाया । अध्यात्म को जादू जैसा इन दिनों माना जाता है और उसे प्राप्त करने के लिए रहन-सहन किन्हीं विचित्रताओं से भरा बनाना पड़ता है, पर बात ऐसी बिल्कुल भी है नहीं । अध्यात्म विचारों की उत्कृष्टता अपनाने से आरम्भ होता है । इसका प्रभाव व्यक्तिगत चरित्र को उत्कृष्ट स्तर का देखे जाने में परिलक्षित होता है । यही उपलब्धि जब जन सम्पर्क में उतरती है तो आदर्शवादी व्यवहार कुशलता के रूप में दीख पड़ती है । इसी समग्र प्रयोजन को एक शब्द में चेतना की उत्कृष्टता भी कह सकते हैं । यही अध्यात्म है ।

पदार्थ द्वारा मिल सकने वाले लाभों से सभी परिचित हैं । बलिष्ठ शरीर की उपयोगिता भी निरन्तर सिद्ध होती रहती है । सम्पत्ति के आधार पर इच्छित, सुविधा-साधन खरीदे जा सकते हैं । यह प्रत्यक्ष उपलब्धियों का माहात्म्य हुआ । इससे कहीं अधिक बढ़े-चढ़े लाभ विभूतियों के हैं । गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता को ही दार्शनिक भाषा में अध्यात्म कहा जाता है । उसके आधार पर जो मिल सकता है, उसकी जानकारी संसार में सृजन के प्रयोजनों में सफल हुए महामानवों की जीवन-गाथा का पर्यवेक्षण करते हुए सहज ही जानी जा सकती है ।

इन दिनों देवताओं, भूत-प्रेतों, सिद्धि चमत्कारों की विचित्रताओं से भरी हुई कृतियों को ही अध्यात्म का स्वरूप जाना जाता है । मान्यताओं के क्षेत्र में उसकी परिधि परलोक तक सीमाबद्ध रहती है । स्वर्ग, मुक्ति के अतिरिक्त चमत्कारी सिद्धियों से उसे जोड़ा जा सकता है । मनोकामनाएँ पूर्ण करने, शाप-वरदान देने में भी उसकी भूमिका समझी जाती है । यह मान्यताएँ सर्वथा अप्रासंगिक हैं । वास्तविकता इतनी भर है कि अध्यात्म विज्ञान के अनुरूप आचरण करने पर अदृश्य चेतना के भावना, मान्यता, आस्था, प्रज्ञा, निष्ठा, श्रद्धा पक्षों को उच्चस्तरीय बनाया जाता है । वे परिस्थिति होने पर इच्छा, आकांक्षा, प्रेरणा के रूप में बुद्धि क्षेत्र को देवोपम बनाती हैं । देवोपम से तात्पर्य है—उत्कृष्टता सम्पन्न आदर्शवादी चिन्तन और चरित्र । व्यक्तित्व का परिष्कार भी इसी को कहते हैं । प्रतिभा परिवर्धन भी इसी के साथ जुड़ा रहता है । इन विशेषताओं से सम्पन्न होने पर व्यक्ति उस स्तर का बन जाता है, जिसे श्रद्धेय, सम्माननीय, प्रामाणिक, अनुकरणीय, अभिनन्दनीय कहा जा सके । इसी स्तर पर पहुँचने के लिए जो पराक्रम एवं अनुशासन अपनाना पड़ता है, उसे अध्यात्म की ही फल-श्रुति समझना चाहिए । यह नकद धर्म है । इस क्षेत्र के प्रयासों के परिणाम हाथों-हाथ देखे जा सकते हैं । आत्म-सन्तोष, लोक सम्मान और दैवी अनुग्रह इसकी तीन उपलब्धियाँ मानी जाती हैं, जो इस मार्ग पर चलने वालों को पग-पग पर मिलती जाती हैं ।

आत्मबल प्राप्त करने के लिए दो साधनाएँ निरन्तर करनी पड़ती हैं—एक है संयमशीलता, जिसे दूसरे शब्दों में तपश्चर्या भी कह सकते हैं । इसका प्रयोग है—पुण्य परमार्थ । लोक-मंगल, जनकल्याण भी इसी आधार पर बन पड़ता है । संकीर्ण स्वार्थपरता यदि उदात्त उदारता में विकसित हो चले, तो समझना चाहिए कि अध्यात्म सही रूप में अपनाया गया और उल्लास भरा सत्परिणाम मिलते रहने की बात बन गई ।

आत्म-निर्माण, आत्मबल सम्पादन आदि की अलंकारिक फल-श्रुतियों और माहात्म्य-महत्त्वों का वर्णन दार्शनिक स्तर पर विशद रूप में होता रहता है । इस हेतु अलंकारिक कथानक भी कहे सुने जाते रहते हैं । उन्हें कई लोग भ्रमवश प्रकृति नियमों का अतिक्रमण भी मान बैठते हैं, पर वस्तुतः ऐसा कुछ है नहीं । विश्वव्यवस्था की शक्तिधारा सर्वत्र एक-सा काम करती है । व्यक्ति विशेष पर प्रसन्न-अप्रसन्न भी नहीं होती । मनुहार और उपहार का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । उपासना-साधना के नाम पर जो कुछ भी किया जाता है, उसका एक मात्र उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास परिष्कार ही है । इतना बन पड़ने पर मनुष्य एक ऐसा चुम्बक बन जाता है, जो बहिरंग क्षेत्र की समृद्धियों और अन्तरंग की विभूतियों एवं सिद्धियों को अपने साथ खींचता और जोड़ता रहता है ।

व्यक्ति चेतना की तरह ब्रह्माण्ड चेतना भी है । चिनगारी और ज्वाला की उपमा इसी प्रसंग में दी जाती है । परिष्कृत व्यक्तित्व जाग्रत चिनगारी है, जो अवसर का सुयोग मिलते ही ज्वाल-माल एवं दावानल के रूप में सुविस्तृत बनती और

असाधारण भूमिका निभाती देखी जाती है । ऐसे प्रसंगों का ही दैवी चमत्कार के रूप में उल्लेख होता रहता है ।

अध्यात्म की वास्तविकता का स्वरूप एवं उपक्रम समझ लेने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि चेतन को महत्चेतन के साथ जोड़ने की यह प्रक्रिया आत्म संयम, अनुशासन, मर्यादापालन की तपश्चर्या से आरम्भ होती है और उत्कृष्ट आदर्शवादिता से भरे-पूरे चरित्र व्यवहार में अपना प्रमाण-परिचय पग-पग पर देती है । परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा है । वेदान्त दर्शन में 'अयमात्मा ब्रह्म', 'प्रज्ञानंब्रह्म', 'तत्वमसि', 'सोऽहम्', 'शिवोऽहम्' जैसे सूत्रों द्वारा वास्तविकता का स्पष्टीकरण किया गया है ।

गई-गुजरी स्थिति में मनुष्य नर-वानर से अधिक और कुछ नहीं रहता । संचित कुसंस्कार और प्रचलन के प्रभाव मिलकर पतनोन्मुख प्रवाह उत्पन्न करते हैं । ढलान पर वैसे लोग क्रमशः नीचे की तरफ खिसकते रहते हैं । पतनोन्मुख इन्हीं प्रवृत्तियों को भवबन्धन, नरक आदि नाम से जाना जाता है । असुर, शैतान, दैत्य दानव आदि यही हैं । जन-साधारण पर छाए हुए इस कुहरे को हटाने को, उसके देव मानव स्तर को प्रकट करने वाले स्वरूप को ही ब्रह्म-निर्वाण कहते हैं । यही ईश्वर-दर्शन है । महामिलन भी इसी को कहते हैं । जीवनमुक्त उन्हीं को कहते हैं, जो अपनी चेतना को कषाय-कल्मषों से मुक्त करके निर्मल जल अथवा स्वच्छ दर्पण जैसा बना लें । उन्हीं पर आकाश का प्रतिबिम्ब यथावत् उतरता है । ईश्वर सान्निध्य इसी आधार पर बन पड़ता है । चुम्बक के साथ लोहे के टुकड़े ही सट पाते हैं । अधिक तापमान से प्रभावित हुआ कोयला ही हीरे के रूप में परिणत होता है । परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा के समतुल्य बन जाती है । सद्गुणों के समुच्चय वाली विश्व-व्यापी चेतना ही परमात्मा है । उसी स्तर की आत्माएँ ही सजातीय के साथ घुलने में समर्थ होती हैं ।

अध्यात्म का स्वरूप और उद्देश्य यही है । यह उपक्रम जहाँ, जितने अंश में बन पड़ रहा हो, समझना चाहिए कि वहाँ उतना ही भगवान का निवास है । असली और बड़ी मात्रा में होने पर ही महत्त्वपूर्ण सत्ताएँ अपना चमत्कार दिखाने में समर्थ होती हैं ।

अध्यात्म आस्तिकता पर अवलम्बित है । आस्तिकता मर्यादाओं के परिपालन और वर्जनाओं से बचे रहने के रूप में प्रत्यक्ष देखी जाती है । कर्मफल पर विश्वास जमाना अध्यात्म का मूल उद्देश्य है । लोग सोचते हैं कि कुकर्मों का फल हाथों-हाथ नहीं मिला, तो पीछे कभी नहीं मिलेगा, इस बात पर क्यों विश्वास किया जाय ? इसी विभ्रम के कारण आये दिन अनाचार की अभिवृद्धि होती देखी जाती है । यदि कर्मों के प्रतिफल का विश्वास यथावत् बना रहे तो फिर सदाचार पर अवलम्बित समाज में सर्वत्र सुख-शान्ति का वातावरण ही बना रहे ।

इस स्तर के अध्यात्म का, विज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज, अविज्ञात का अनुसंधान और प्रगति के साधन जुटाना है । यदि यही कुछ अध्यात्म के द्वारा चेतना क्षेत्र में सम्पन्न किया जाता हो, तो विग्रह क्यों उठेगा । दोनों अपने-अपने क्षेत्र में काम करते हुए भी एक-दूसरे के पूरक समझे जाने लगेंगे । हवा आकाश में परिभ्रमण करती है और आहार दृश्यमान खाद्य पदार्थों से विनिर्मित है । इतने भर से दोनों की भूमिका जीवन निर्वाह में समान स्तर की होती है । यदि लक्ष्य एक रहे, तो उन्हें विरोधी क्यों माना जायेगा ? उपलब्धियों का सदुपयोग और जो आगे की सम्भावनाएँ हैं, उनका अनुसंधान—यह कार्य दोनों महाशक्तियाँ अपने-अपने ढंग से सम्पन्न करती रहें तो उनके बीच विग्रह कहाँ रहा ? कान सुनते हैं, आँखें देखती हैं । दोनों की कार्यप्रणाली अलग होते हुए भी काया को समग्र सुनियोजित रखने में उनकी भूमिका समान ही होती है । एक के अभाव में, दूसरे के होने पर भी समग्र क्षमता में भारी व्यवधान ही उत्पन्न हो जाता है ।

अन्धविश्वास फैलाने का आरोप दार्शनिक प्रतिपादनों पर लगता है, कारण कि उनके आधार पर जो कुछ कहा जाता है वह सर्वमान्य नहीं होता । मात्र एक वर्ग के लोग ही उसे यथार्थ मानते हैं । अपने को सच्चा और दूसरों को झूठा भी ठहराते हैं । कलह यहीं से आरम्भ होती है । जो बात प्रत्यक्ष प्रमाणित न की जा सके, उसे अपनी श्रद्धा के अनुरूप मान्यता देने में तो कोई भी स्वतन्त्र है, पर उन्हें दबाव या प्रलोभन के आधार पर दूसरों पर थोपना अनुचित है । इसी अनौचित्य का विरोध प्रायः विज्ञान वर्ग द्वारा अध्यात्म पर होता रहता है । मरणोत्तर जीवन, सम्प्रदाय विशेष पर ईश्वर की अनुकम्पा या नाराजी जैसे प्रतिपादनों से सत्य की शोध में बाधा पड़ती है । प्रत्यक्षवाद का हिमायती बुद्धिवादी वर्ग इसी आधार पर अध्यात्म को अन्धविश्वासों पर अवलम्बित कहता और उसे अमान्य ठहराता है । इस प्रश्न पर सम्प्रदायवादी दार्शनिकों को भी नरम होना चाहिए । साथ ही अनुसंधान के क्षेत्र में उतरकर यह देखना चाहिए कि उनके प्रतिपादन नीतिशास्त्र और समाज सुनियोजन में किस सीमा तक सहायक सिद्ध होते हैं । सर्वसाधारण को उस मान्यताओं के सहारे किन सुव्यवस्थाओं की उपलब्धि होती है । तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण के आधार पर यदि अध्यात्म मान्यताएँ सही सिद्ध की जा सकें, तो वे प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी खरी सिद्ध होंगी और उनका मान बौद्धिक तथा वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी खरा सिद्ध होता चलेगा, फिर किसी को किसी पर आरोप लगाने का, आक्षेप थोपने की गुंजाइश न रहेगी ।

अध्यात्म मान्यताओं में ऐसे अनेकों प्रसंग एवं प्रकरण जुड़ गए हैं, जो न तो अपनी यथार्थता सिद्ध कर पाते हैं और न उपयोगिता । मात्र शास्त्र वचन, परम्परा प्रचलन की दुहाई देकर दुराग्रह ही अपनाये रहते हैं यह स्थिति विचारशील वर्ग के सम्मुख उपहासास्पद बने, तो आश्चर्य ही क्या ?

समय की माँग है कि इस सर्वव्यापी अवांछनीयता और अप्रामाणिकता के माहौल में हर मान्यता का नये सिरे से विवेचन निरीक्षण हो । जो अपनी उपयोगिता सिद्ध कर पाता है उसी को लोकमान्यता मिलती है । इस सन्दर्भ में अध्यात्म को स्वयं आत्म निरीक्षण, परीक्षण करना चाहिए और "जो खरा है, वह अपना" वाला सिद्धान्त अपनाकर ऐसा कवच पहन लेना चाहिए कि जिस पर बुद्धिवाद का, प्रत्यक्षवाद का आक्रमण आघात न पहुँच सके ।

विज्ञान और ज्ञान क्षेत्र की उलझनें

शारीरिक श्रम पराक्रम के उपरान्त मनुष्य के लिए करने को जो सबसे बड़ा काम बच रहता है वह है मानसिक चिन्तन । शरीर और मन दोनों के मिलने से ही समग्रता बनती है । तत्परता और तन्मयता का संयोग ही ऐसी उपलब्धियाँ हस्तगत करता है जिनके आधार पर सुविधाएँ बढ़ती, प्रसन्नताएँ फलती और प्रगति

की सम्भावनाएँ मूर्तिमान होती हैं । मानवी प्रगति के इतिहास में मूल तत्व यही सन्निहित है । पशु और मनुष्य के बीच में यही अन्तर है । अन्य प्राणी मात्र शरीर से काम लेते हैं । प्रकृति प्रेरणाओं का अनुसरण करते हैं और शरीर रक्षा से जुड़ी हुई समस्याओं का समाधान करते हैं । उन्हें चिन्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती । समस्याओं की पेचीदगी में नहीं उतरना पड़ता और न कोई महत्त्वाकांक्षाएँ ही उनके सामने रहती हैं, जिनकी पूर्ति के लिए असाधारण दौड़-धूप करनी पड़े । मनुष्य ही है जो आकाश पाताल के कुलावे मिलाता है । दलदलों में धँसता और उनसे उबरने के लिए इतने स्तर के प्रयत्न करता है जिन्हें अद्भुत एवं आश्चर्यजनक ही कहा जा सकता है । यही हैं वे विडम्बनाएँ जिनमें फँसा—धँसा हुआ, निरन्तर व्यग्र रहता हुआ मनुष्य को देखा जा सकता है ।

सामान्य प्राणी हँसता-हँसाता, कुदकता-फुदकता, हल्का-फुल्का जीवन जी लेते हैं । उनके लिए समय काटना और आवश्यकताओं को पूरा करना कोई समस्या नहीं है । प्रसन्नतापूर्वक उठते और सन्तोषपूर्वक सो जाते हैं, किन्तु मनुष्य को वैसा सुयोग उपलब्ध नहीं है । उसकी कल्पनाएँ, इच्छाएँ, आदतें और योजनाएँ ऐसी विकृत बेढंगी होती हैं जिन्हें सही रीति से हल करना तो दूर उनका स्वरूप समझना तक सम्भव नहीं होता । भूल-भुलैयों में पड़ा हुआ प्राणी अधिक हैरान होता है । जबकि वास्तविक पेचीदगियों का हल निकालना उतना कठिन नहीं है । मृगतृष्णा में भटकता हुआ कस्तूरी का हिरन उन साथियों की तुलना में अधिक हैरान होता है जिन्हें आहार, जल, आच्छादन, सुरक्षा जैसी सामान्य व्यवस्थाएँ ही करनी पड़ती हैं । हैरानी सबसे बड़ी विपत्ति है उनसे मानसिक और शारीरिक शक्तियों का, समय, श्रम एवं मनोयोग का इतना अधिक क्षरण होता है कि उनकी पूर्ति के लिए वह सब अपर्याप्त ही रहता है जो कौशलपूर्वक बनाया कमाया गया है । नाप-तौल कर देखा जाय तो सृष्टि के अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य कहीं अधिक समस्याग्रस्त और उलझनों में भटकता हुआ—खिन्न-विपन्न पाया जाता है ।

सुविधाओं और क्षमताओं की इतनी अधिकता और उस पर भी इतनी विपन्नता ? इस पहेली का कारण और निराकरण ढूँढ़ने के लिए हमें गहराई में उतरना होगा । देखना होगा कि गणित की लम्बी-चौड़ी प्रश्नावली सामने रखकर उनका हल निकालते समय उन फार्मूलों को तो विस्मृत नहीं कर दिया गया है जिनके आधार पर छोटे बालकों से लेकर निष्णात प्रोफसरों तक अपनी-अपनी प्रश्नावलियों को सही समाधान तक पहुँचाते हैं ।

अन्य प्राणियों में से कितनों की ही तुलना में मनुष्य पिछड़ा हुआ है । तब घोड़े, चीते, हिरन की तरह नहीं दौड़ सकता । हाथी और गेंडे जैसा बलिष्ठ भी नहीं है । दीमक, चींटी, मधुमक्खी जैसी क्रमबद्धता भी उसमें नहीं है । घ्राणशक्ति में वह कुत्ते, बिल्लियों तक से पिछड़ा हुआ है । चमगादड़ की जितनी विकसित अतीन्द्रिय क्षमता भी उसमें नहीं है । इतने पर भी वह सभी पशुवर्ग के सजातियों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गया । इतना आगे कि उनकी तुलना कर सकने की बात तक नहीं सोची जा सकती । मनुष्य सृष्टि का शिरोमणि है । उसने ज्ञान-विज्ञान के दोनों ही क्षेत्रों में इतनी दूरी तक प्रवेश पा लिया है कि उसे देवपुत्र या प्रकृति का राजकुमार कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी ।

दो पैरों के सहारे चलकर दूरी तय की जाती है और मंजिल तक पहुँचा जाता है । मानवी प्रगति की विशिष्टता का श्रेय जिसे दिया जा सकता है उसे ज्ञान और विज्ञान का नाम देना उपयुक्त ही है । मनुष्य ने इन्हीं दोनों की साधना की है फलतः वे ऋद्धि-सिद्धि उसके सामने हाथ जोड़कर आ खड़ी हुई हैं जिन्हें समृद्धि और प्रगति भी कहा जा सकता है । समृद्धि से तात्पर्य है पदार्थपरक सुविधा साधन । मनुष्य की क्षमता, सुविधा और प्रसन्नता इसी आधार पर बढ़ी है । प्रगति का अर्थ है—चिन्तन की वह उत्कृष्टता जिसके आधार पर उसने शास्त्र का, दर्शन का, व्यवहार का ढाँचा खड़ा किया है और अनेक दिशाओं में कल्पनाओं की उड़ानें उड़ने के लिए रंगीले पंख प्राप्त किए हैं । मनुष्य पदार्थ सम्पदाओं में अपने उपयोग की वस्तुएँ खोजता और बढ़ाता है साथ ही उनके उपयोग की, उपभोग की विधा भी निर्धारित करता है । विज्ञान यही है । इसके आविष्कारों से पृथ्वी पर अनगढ़ स्थिति में पड़ा हुआ पदार्थ, परिष्कृत होकर उपयोगी स्थिति में सामने आया है । धरातल से नीचे के खनिज इसी आधार पर खोज निकाले गए हैं । धातुएँ, रसायनें, तेल, पत्थर, कोयला आदि न जाने क्या-क्या विज्ञान ने हमारे सामने प्रस्तुत किए हैं । पेयजल का अधिकांश भाग धरती की परतें खोदकर ही प्राप्त किया जाता है । अनगढ़ झरनों और नदी नालों को कृषि कार्य में प्रयुक्त हो सकने योग्य स्थिति में विज्ञान ने ही बनाया है । कृषि कर्म, बागवानी, पशुपालन की क्रिया-प्रक्रिया विज्ञान ने ही सिखाई है । उसी ने वह जानकारी दी है जिसके आधार पर वस्त्र और मकान एवं वाहन, पात्र, उपकरण, औजार बन सकें । आग जलाना और उसके विविध उपयोग करना विज्ञान की सहायता से ही सम्भव हुआ है । यह समृद्धि के आरम्भिक दिनों की चर्चा है । बाद में तो वह कारखाने खड़े करने लगा, जलयान, वायुयान बनाने लगा और अस्त्र-शस्त्रों के ऐसे जखीरे जमा करने लगा जिनके द्वारा पौराणिक प्रलय का नूतन संस्करण प्रस्तुत खड़ा किया जा सके । कम्प्यूटरों से लेकर रोबोटों तक के—रेडियो, टेलीविजन से लेकर एक्स और लेसर किरणों तक के वे साधन उपलब्ध कर लिए गए हैं जिनके आधार पर उसने प्रकृति पुत्र न रहकर उसका अधिष्ठाता होने का दावा करना आरम्भ कर दिया है । सौरमण्डल को लाँघकर समूचे ब्रह्माण्ड तक अपनी पहुँच बनाने तक की उसकी अभिलाषा है । विज्ञान का यह विशाल कार्यक्षेत्र है जिसके आधार पर चिकित्सा से लेकर प्लास्टिक सर्जरी तक के कृत्रिम खाद्यों तक के अनेक आधार हस्तगत कर लिए गए हैं ।

दूसरा क्षेत्र है—ज्ञान । जिसे शिक्षा कहा जाता है । भाषा, लिपि, प्रेस, पुस्तक जैसे प्रत्यक्ष आधारों से लेकर चिन्तन की इतनी अधिक दिशा धाराएँ सामने आयी हैं कि उनकी विचित्रता और भिन्नता आश्चर्यचकित कर देती है । धर्म सम्प्रदाओं का कलेवर इतना बड़ा है जिसने सभ्य-असभ्य सभी को अपने आँचल में ढक लिया है । ईश्वर से लेकर देवताओं तक की सृष्टि इस ज्ञान उद्यान की उपज है । धर्म, दर्शन, अध्यात्म, साधना, सिद्धि जैसे अनेकानेक प्रकरण इसी क्षेत्र की उपज हैं । राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक क्षेत्र की अनेकानेक पद्धतियाँ, प्रजातियाँ, दिशाधाराएँ यद्यपि एक दूसरे के विपरीत चलती हैं और तालमेल न बिठा

सकने वाला बिलगाव रखती है तो भी उन सबका अस्तित्व 'ज्ञान' की खदान से ही निकलकर चित्र विचित्र रूप में सामने आया है।

प्रत्यक्ष परम्पराएँ, मान्यताएँ इस ज्ञान क्षेत्र की ही देन हैं। तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण ढूँढ़कर अपने-अपने पक्ष का समर्थन करने और उसे सत्य ठहराने का कौतुक ज्ञान की पिटारी से ही निकल कर बाहर आया है। सत्य एक है पर उसे इतने लोगों ने इतनी तरह से प्रस्तुत, प्रतिपादित किया है कि उस समूचे जंजाल को देखते हुए हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाने का मन करता है। अपना-अपना सूर्य यदि हर कोई ऐसे गढ़ने लगे जिसकी दूसरे के साथ कोई संगति न बैठती हो तो उस बहम को मानसिक विक्षिप्तता ही कहा जायेगा। इस अन्नकूट में से एक-एक दाना बीनकर अलग करना और फिर उनमें से कौन कितने अंश में उपयोगी और किस अंश में अनुपयोगी है यह सिद्ध करना टेढ़ी खीर है। फिर भी इसी उलझी स्थिति में रहना पड़ता है। उसे जंजाल की उधेड़-बुन करने में लगा रहना पड़ता है। अक्सर इन दुराग्रह भरी भिन्नताओं को लेकर विवाद मनोमालिन्य ही नहीं होते विग्रह और रक्तपात तक के क्रम चल पड़ते हैं।

विज्ञान को इस अर्थ में एक सीमा तक निर्भ्रान्त माना जा सकता है कि उसके प्रतिपादन-सिद्धान्त सतही तौर पर परस्पर मिल-जुलकर एक सूत्र में बँधते हैं। एक सिद्धान्त का एक ही तरह प्रतिपादन होता है। कारण, आधार, सिद्धान्त एक ही तथ्य बताते हैं। इसलिए विज्ञान के प्रतिपादन पक्ष को समस्त विश्व में समान रूप से प्रामाणिक मान्यता मिली है। इसे सन्तोष और हर्ष का विषय माना जा सकता है। विग्रह तब खड़ा होता है जब विज्ञान की उपलब्धियों का किस प्रकार उपयोग किया जाय इस प्रसंग पर निर्धारण करना पड़ता है। शक्ति एक यथार्थता है। उसे सहज ही मान्यता मिलती है। पर इस सामर्थ्य का किस प्रकार, किनके लिए, किस प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाय। मतभेद यहाँ से खड़ा होता है। यदि वैज्ञानिकों ने आविष्कारों के लिए श्रम करने के साथ-साथ यह निश्चय भी कर लिया होता कि इसे किस निमित्त, किस प्रकार प्रयोग करना है? तो उस उभयपक्षीय निर्धारण से विज्ञान ऐसे अकाट्य तथ्य और सत्य के रूप में प्रकट होता कि भौतिक क्षेत्र में किसी को भी, किसी प्रकार की असुविधा न रहती। जो भूल हो चुकी है उसे सुधारना है। पिछली पीढ़ी आविष्कारों का प्रश्न-पत्र सही हल कर गई। उससे भूल दूसरे प्रश्न-पत्र का जबाव देने में हुई। उन्होंने विज्ञान को चतुरों और समर्थों की लिप्सा पूरी करने के लिए प्रयुक्त होने दिया और पिछड़े लोगों की जिन आवश्यकताओं को पूरा किया जाना था उनकी ओर से आँखें फेर लीं। इस अनौचित्य का समाधान विज्ञान क्षेत्र की नई पीढ़ी को करना है। पदार्थ का उत्पादन, परिष्कृतीकरण ही नहीं, उपयोग और उपभोग की भी सीमा निर्धारित करनी है ताकि समूची मनुष्य जाति विज्ञान के सहारे उसका लाभ सर्वसाधारण को मिल सके।

दूसरा पक्ष ज्ञान का है। इन भ्रान्तियों का समावेश तो सम्भवतः प्रगति के आरम्भ काल से ही हुआ होगा और अब वह बढ़ते-बढ़ते इस स्तर तक पहुँचा है कि व्यापक क्षेत्र पर दृष्टिपात करते हुए इस असमंजस में पहुँचना पड़ता है कि उस कुहासे को बेधते हुए सही दिशा में निर्धारण किस आधार पर किया जाय। वस्तु को वास्तविक रूप में किस प्रकार पहचानना चाहिए। सत्य और असत्य के बीच साक्षी रूप में किसे कसौटी में खड़ा किया जाय। किसे अपनाया और किसे अमान्य ठहराया जाय। प्रतिपादकों तक से लेकर समर्थकों तक के अनेकानेक पक्ष हैं। सभी अपने को खरा और दूसरों को खोटा कहते हैं। सत्य का ठेकेदार अपने को बताते हैं और अन्य सभी को पक्षपाती, दुराग्रही, दिग्भ्रान्त एवं असत्य का पक्षधर ठहराते हैं। इस कुहरास के बीच किसकी बात सुनी जाय और किसकी अनसुनी की जाय यह विकट समस्या है। इस दृष्टि से विज्ञान की तुलना में ज्ञान अधिक अप्रामाणिक सिद्ध हो रहा है। विज्ञान की यथार्थता जाँचने के लिए कुछ कसौटियाँ हैं। उसे अपने प्रतिपादन को सही सत्य सिद्ध करने के लिए कुछ प्रमाण देने पड़ते हैं। पर तथाकथित ज्ञान का समूचा ढाँचा ढकोसला और कल्पनाओं पर आधारित है। कल्पनाएँ स्वच्छन्द हैं वे मनमानी उड़ानें उड़ सकती हैं और किसी भी सपने को सही कहने लग सकती हैं।

विज्ञान की तुलना में ज्ञान पिछड़ा

'ज्ञान' शब्द की परिधि असीम है। शरीरचर्या के खान-पान, शयन, जागरण, नित्य कर्म, मल विसर्जन जैसे दैनिक क्रिया-कलापों में भी ज्ञान का उपयोग होता है। भोजन बनाने से लेकर वस्त्रों की, निवास की, स्वच्छता, सज्जा की सभी बात ज्ञान की परिधि में आती हैं। पशुओं और मनुष्यों की भिन्नता यहीं से आरम्भ होती है। अन्य प्राणियों को आहार चयन, सुरक्षा एवं प्रजनन कर्म भर की जानकारी प्रकृति प्रेरणा के सहारे मिली होती है उसी आधार पर वे अपना जीवन काट लेते हैं, किन्तु मनुष्य के लिए शरीरचर्या भी एक महत्त्वपूर्ण विषय है। उसकी संरचना ही कुछ इस ढंग से हुई है कि प्रसव काल से लेकर कई वर्ष की आयु हो जाने तक उसे अभिभावकों की जानकारी एवं सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। अपने बलबूते तो वह आरम्भिक दिनों में कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं होता। जबकि अन्य प्राणी अपने जन्मदाताओं की सीमित सहायता लेकर ही स्वावलम्बी हो जाते हैं।

मनुष्य को सामाजिक प्राणी इसलिए बनाया गया है कि वह अपने जन्मकाल से लेकर मरणकाल तक दूसरों पर आश्रित रहे और अपना अनुदान अनिवार्यतः देते हुए गुजारा करे। इस दृष्टि से अन्य प्राणी कहीं अच्छी स्थिति में हैं कि उन्हें जन्मकाल में ही जननी की यत्किंचित सेवा, सहायता की आवश्यकता पड़ती है। पीछे वे अन्तकाल तक स्वावलम्बी बने रहते हैं। उपलब्ध प्रकृति प्रेरणा के सहारे अपना काम चला लेते हैं।

विज्ञान का उपयोग जीवन में जिस स्तर पर जिस क्रम से चलता है, उससे कहीं अधिक कहीं पहले ज्ञान का विभिन्न योग चलाना पड़ता है। छोटे शिशुओं को मल-मूत्र त्यागने की, भूख, सर्दी, गर्मी आदि को बताने के लिए रोने का संकेत करने की आदत डालनी पड़ती है। इसके बाद भाषा-ज्ञान का, अपने-पराये का भेद करने का ज्ञान विकसित होता है। शिष्टाचार, निर्वाह, समय का कार्यरत उपयोग, आहार में रुचिकर-अरुचिकर का वर्गीकरण, ग्रहण करने की मात्रा का अनुमान जैसी अनेकों जानकारियाँ अभिभावकों और परिजनों से प्राप्त होती रहती हैं। इन सबकी गम्भीरता, आवश्यकता एवं उपयोगिता पर विशेष

ध्यान नहीं दिया जाता । जो सीखा और सिखाया जाता है उसका अधिकांश भाग अनुपयुक्त होता है । यही कारण है कि अनुपयुक्त को चरितार्थ करते रहने के कारण बालकों में अधिकांश बीमार पड़ते और बे-मौत मरते हैं ! आदतें आरम्भ से ही ऐसी पड़ जाती हैं जिनके कारण सदा-सर्वदा कठिनाइयों, आपदाओं का सामना करना पड़ता है । यदि शिशुपालन की, उनके विकास की सही जानकारी अभिभावकों, परिजनों को हो तो बच्चा विकास के क्रम पर सही रीति से चलता रह सकता है । उसका शरीर, स्वभाव और विधि-निषेध का निर्णय करने वाला मन सुसंस्कारी ढाँचे में ढल सकता है, किन्तु कठिनाई प्रत्यक्ष है । बच्चा अपने बलबूते ज्ञानार्जन कर नहीं सकता और जो सिखाने वाले हैं उन्हें इस बात का पता नहीं होता कि आरम्भिक आयु कितनी महत्त्वपूर्ण है और उसके निमित्त किस अवसर पर, किस प्रकार, क्या सीखा और क्या सिखाया जाना चाहिए ।

चूँकि बच्चा समझदार नहीं होता, वह अपने उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में न तो कुछ सोच ही सकता है और न व्यवस्था बनाने, साधन जुटाने में ही समर्थ होता है । ऐसी दशा में सभी स्तर की जिम्मेदारियाँ उन सबके कन्धों पर आती हैं जिन्होंने प्रजनन का वातावरण बनाया, प्रोत्साहन या सहयोग दिया । यदि बड़े होने पर बालक अस्वस्थ, असंस्कृत, अनगढ़ स्तर का होता है, तो उसकी जिम्मेदारी अभिभावक समुदाय की है । दुःख की बात यह है कि इस समुदाय को इस प्रसंग के सन्दर्भ में यह ज्ञान होता ही नहीं जिसकी नितान्त आवश्यकता समझी जानी चाहिए । इस सन्दर्भ में कोई सांगोपांग शास्त्र रचा भी नहीं गया है । एक अनगढ़ ढर्रा चला आता है । उसी को सहज बुद्धि के लोग अपना लेते हैं फलतः बच्चे वैसे ही बन जाते हैं जैसे कि बिना माली वाले उद्यान या बिना किसान वाले खेत को होना चाहिए । फसल कैसी उगती है, उसे भाग्य भरोसे ही छोड़ा जा सकता है । कुछ न कुछ करते रहने से कुछ न कुछ बन ही जाता है । इस उक्ति के अनुसार हमारी नई पीढ़ियाँ बनती और ढलती चली जाती हैं ।

बालक छोटी आयु में अत्यधिक सम्वेदनशील होता है । वह गर्भकाल से लेकर बोलने, चलने योग्य होने तक व्यक्तित्व को विनिर्मित करने वाली अधिकांश विद्याएँ हृदयंगम कर लेता है । समर्थ जीवन में वह इस पूँजी के सहारे अपने व्यक्तित्व का परिचय देता है । व्यवसाय कुछ भी क्यों न हो पर दृष्टिकोण वही रहता है जो अल्पवयस्क स्थिति में अपना लिया जाता है अथवा यों कहिए कि जिसका अभ्यस्त करा दिया जाता है ।

उदाहरण के लिए कन्या और पुत्र के बीच बरता जाने वाला भेदभाव है । यह विभेद बालक पर थोपा हुआ है । उसे लिंग भेद के संस्कार आरम्भ से ही थोपे जाते हैं । लड़के का सम्मान लड़की की उपेक्षा । आत्म परिचय देने में स्त्री लिंग वाचक शब्द विन्यास को प्रयुक्त करना, कपड़े स्त्री लिंग वाले वर्ग के धारण करना, प्रसाधन, उपकरण, उसी प्रकार के देना । वार्तालाप करते समय उसके भावी जीवन का निरन्तर संकेत देते रहना, सहेलियों में खेलने देना, अध्यापिकाओं द्वारा शिक्षण दिलाना आदि-आदि बातों से बालिका यह समझने लगती है कि वह मानव समाज के हेय वर्ग का घटक है । जिसे पराधीनता भरा जीवन जीना है । जो कमी रह जाती है उसकी पूर्ति नाक-कान छेदकर, केश विन्यास का, कपड़ों का तरीका बदल कर यह निश्चय करा दिया जाता है कि वह पिछड़े वर्ग का प्राणी है । पुरुष का आधिपत्य अनुशासन संरक्षण उसके लिए आवश्यक है । यह समूची-प्रक्रिया उसे नारी के रूप में ढाल देती है जिसमें अपने-अपने क्षेत्रों में किसी प्रकार निर्वाह कर रही है । उसकी मौलिक मानवी प्रतिभा पर आरम्भ में ही अंकुश लगा दिया जाता है । उसे यह सोचने का अवसर ही नहीं मिलता कि वह पूर्ण मनुष्य है । मनुष्य में जो मनोबल पुरुषार्थ पाया जाता है उसकी वह अधिकारिणी है और अवसर मिलने पर उस प्रतिभा का सर्वतोन्मुखी परिचय दे सकती है । जो किसी भी पूर्ण मनुष्य के लिए स्वाभाविक है । यदि ऐसी स्थिति रही होती तो नर-नारी का वर्तमान दुःखदायी हेयहीन विभेद वर्गीकरण न होता । आधे मनुष्य कैदी की और आधे जेलर की स्थिति में न रहते । दोनों वर्ग मिल-जुलकर सहयोगपूर्वक काम करते । एक-दूसरे का भार हल्का करते और मिलजुल कर साथी को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते । परस्पर भरपूर स्नेह, सम्मान और सहयोग करते । पर वह बाधित स्तर का न होता । उसमें स्वेच्छा समर्थन छलकता रहता है । ऐसी दशा में समाज की स्थिति आज की अपेक्षा सर्वथा दूसरे ढंग की होती । समूची जनसंख्या समर्थ, सुयोग्य, सुसंस्कृत, सुविकसित एवं सुसम्पन्न होती । ऐसे युग्म यदि दूरदर्शिता अपनाकर अपने, साथी के, बच्चे के, समाज के हित को गम्भीरतापूर्वक समझते हुए प्रजनन की दिशा में कदम बढ़ाते तो निश्चित रूप से भावी पीढ़ी उस स्तर की ढलती जिसे सहज ही महामानव की संज्ञा मिलती । ऐसे समुदाय वाला समाज समुन्नत भी होता और समृद्ध, सुसंस्कृत भी ।

इस लाभ से आज समूचा समाज वंचित है । इसका एकमात्र कारण है प्रजनन एवं शिशु विकास सम्बन्धी विचारणा में गर्हित तत्वों की भरमार होना । दूरदर्शी, विवेकशीलता और तथ्यान्वेषी विचारशीलता को कहीं कोई प्रश्रय ही नहीं मिलता । जो ढर्रा चलता है उसी को सहज अपनाकर भेड़, वानरों जैसा अनुकरण-वृत्ति का परिचय दिया जाता है । यही है हमारी नियति और तथाकथित समझदारी । जिसने समूचे समाज को हेय स्थिति में ला पटका है । आधा समाज भोग्या के रूप में रह रहा है और आधा उपभोक्ता के रूप में । नारी को खिलवाड़ की गुड़िया की तरह प्रयुक्त किया जाता है । वह रमणी, कामिनी बनकर रहती है । असंतुष्ट, रुष्ट होने पर अनीतिजन्य उत्पीड़न सहने पर वह केवल आँसू बहा सकती है । मन मारकर एक कोने में बैठ सकती है पर ऐसा कुछ नहीं सोच सकती जैसा कि एक समान या समर्थ मनुष्य को सोचना चाहिए । इस पोषक शोषित जैसे वर्गीकरण का एकमात्र कारण है, नर-नारी सम्बन्धी अवांछनीय दृष्टिकोण । शिशु उत्पादन और पालन के सम्बन्ध में अभीष्ट जानकारी का अभाव ।

इतने महत्त्वपूर्ण, आवश्यक आरम्भिक विषयों पर ऐसी उपेक्षा क्यों बरती गई ? इतनी महती आवश्यकता की पूर्ति क्यों नहीं सोची गई ? स्थिति पर पुनर्विचार क्यों नहीं हुआ ? उपयुक्त मार्ग क्यों नहीं खोजा गया ? सही दृष्टिकोण अपनाकर सही व्यवस्था बनाने का उत्साह मानव मन में क्यों उत्पन्न नहीं हुआ ? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि ज्ञान के धनी तो हम बनते रहे, बुद्धिमत्ता का ढिंढोरा भी पीटते रहे । उसका अहंकार भी करते रहे पर मौलिक सूझबूझ से कोसों दूर रहे । परम्परा ही

हमारे लिए पत्थर की लकीर है । उसी को ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र मानते हैं । इस पर भी दावा करते हैं कि हमें ज्ञान प्राप्त है । हम जानकार या बुद्धिमान हैं । विज्ञान के साथ प्रामाणिकता के आधार पर ज्ञान की समानता करनी है तो उसे वह विनम्रता भी अपनानी होगी कि उसी को स्वीकारे जो तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण आदि आधारों पर खरा सिद्ध होता है । इस कसौटी पर कसने से प्रतीत होता है कि ज्ञान पिछड़ रहा है और विज्ञान आगे बढ़ रहा है ।

अध्यात्म विज्ञान सम्मत बने एवं विज्ञान अध्यात्मपरक

पिछले दिनों बुद्धिवाद एवं विज्ञान का जो विकास हुआ है, उसने भौतिक सुविधाओं को भले ही बढ़ाया हो, आध्यात्मिक आस्था को दुर्बल बनाया है । विज्ञान ने जब मनुष्य को एक पेड़ पौधा मात्र बनाकर रख दिया और उसके भीतर किसी आत्मा को मानने से इन्कार कर दिया, ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकृत किया इस सृष्टि को सब कुछ अणुओं की स्वाभाविक गतिविधि के आधार पर स्वसंचालित बताया तो स्वभावतः विज्ञान को, प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर अति प्रामाणिक मानने वाली बुद्धिवादी नई पीढ़ी उसी मान्यता को शिरोधार्य क्यों न करेगी ? प्रत्यक्ष है कि विचारशील वर्ग अनास्थावान होता चला जा रहा है और यह एक भयानक परिस्थिति है क्योंकि बुद्धिजीवी वर्ग के पीछे जनता के अन्य वर्गों को चलने के लिए विवश होना पड़ता है । आज के थोड़े से अनास्थावान् बुद्धिजीवी कल-परसों अपनी मान्यताओं से समस्त जन-समाज को आच्छादित किए हुए होंगे ।

आध्यात्मिक मान्यताएँ सदाचार, सहयोग, सद्भाव, सेवा, सद्भावना, पुण्य, संयम एवं त्याग, बलिदान जैसी सत्प्रवृत्तियों की रीढ़ है । आत्म-कल्याण ईश्वरीय प्रसन्नता, पुण्य-परमार्थ, स्वर्ग-नरक, कर्मफल आदि मान्यताओं के आधार पर ही मनुष्य अपनी चिरसंचित पशुता पैशाचिकता पर नियन्त्रण करने और लोक-कल्याण के लिए नितान्त आवश्यक सत्प्रवृत्तियों को चरितार्थ करने में समर्थ होता है । यदि वह आधार ही नष्ट हो गया । यदि उन मान्यताओं को कपोल-कल्पित मान लिया गया तो फिर न किसी को संयमी बनने की आवश्यकता अनुभव होगी, न सदाचारी होने की । न पुण्य अभीष्ट होगा, न परमार्थ । न त्याग की बात कोई करेगा, न बलिदान की । फिर मनुष्य 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' के आदर्श को अपनाकर हर अनैतिक कार्य करने के लिए तैयार हो जायेगा । ताकि वह अधिक मौज-मजा उड़ाने का अधिक अवसर प्राप्त कर सके ।

कानूनी पकड़ एवं दण्ड से बचने का रास्ता अब अति सरल है । कानून बहुत ही ढीले-पोले हैं । फिर जिन पर कानून पालने के लिए विवश करने की—दण्ड, देने-दिलाने की जिम्मेदारी है, वे राज्य कर्मचारी ही कहाँ दूध के धुले हैं ? अपराधी से साँठ-गाँठ रखने की कला उन्हें भी आ गई है और उस दुर्बलता से हर भ्रष्टाचारी, हर सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाला पूरा-पूरा लाभ उठाता है, उठा सकता है । केवल कानून के द्वारा अपराध रोक सकने की बात सोचना उपहासास्पद है । मनुष्य केवल अपनी अन्तरात्मा की पुकार और ईश्वरीय सत्ता के रोक, अनुग्रह का विचार स्मरण रखकर ही कुमार्ग से बचता और सन्मार्ग अपनाता है । यदि आत्मा और ईश्वर कोई है ही नहीं, कर्मफल देने की कोई अज्ञात व्यवस्था है ही नहीं, तो फिर पाप प्रवृत्तियों को अपनाकर शौक-मौज के साधन जुटाने से कोई चूके क्यों ? आज यही विचार बुद्धि-जीवी पीढ़ी के मस्तिष्क में घूम रहे हैं और उसका नैतिक स्तर दिन-दिन दुर्बल होता चला जा रहा है ।

यह विभीषिका इतनी भयानक है कि इसकी भावी सम्भावनाओं का स्मरण करने मात्र से आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है । शुतरमुर्ग की तरह बालू में मुँह ढककर खतरा टल गया ऐसा सोचना मूर्खता है । सब कुछ अपने आप ठीक हो जायेगा ऐसी मान्यता वास्तविकता से दूर है । जहाँ धर्म अध्यात्म का प्रकाश नहीं पहुँचा है ऐसे अफ्रीका आदि प्रदेशों के जंगली लोग अभी भी नर माँस खाते और एक से एक बढ़कर घृणित एवं नृशंस रीति-रिवाज अपनाये बैठे हैं । अपने आप सब कुछ ठीक होने वाला होता तो सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक लाखों वर्षों में वे अपने आपको सभ्यता के उच्च स्तर तक ले आने में समर्थ हो गए होते । अपने आप कुछ नहीं होता, सब कुछ करने से होता है । ऋषियों ने लाखों वर्ष तक तप, त्याग, मनन-चिन्तन करके अध्यात्म और धर्म का अति महत्त्वपूर्ण कलेवर खड़ा किया है । उसे जन-मानस में प्रविष्ट कराने के लिए अगणित साधु ब्राह्मणों ने तिल-तिल करके अपना जीवन जलाया है । अगणित धर्म ग्रन्थ लिखे गए हैं और उन्हें पढ़ने, सुनने, समझने तथा हृदयंगम करने की स्थिति उत्पन्न करने के लिए अगणित मानववादी परम्पराओं या रीति-रिवाजों, प्रक्रियाओं, पूजा-पद्धतियाँ एवं कर्मकाण्डों का प्रचलन किया है । लगातार उस विचारधारा से सम्पर्क बनाये रखने के लिए उन्होंने धर्म एवं अध्यात्म का विशालकाय ढाँचा खड़ा किया है ।

यदि ऋषियों द्वारा प्रादुर्भूत धर्म संस्कृति का आविर्भाव न हुआ होता तो अन्य प्रदेशों को उद्धत जंगली जातियों की तरह समस्त जन-समाज पशु प्रवृत्तियाँ अपनाये होता और उसकी बौद्धिक विशेषता पतनोन्मुख होकर इस संसार में पैशाचिक कुकर्मों की आग जला रही होती । ईश्वर अपने आप सब कुछ कर लेगा यह सोचना ठीक नहीं । गत ८० वर्षों में संसार का ८० फीसदी भाग बौद्धिक एवं राजनैतिक स्तर पर साम्यवादी शासन के अन्तर्गत आ गया जिस तीव्र गति से अब वह चक्र घूम रहा है उसे देखते हुए अगले २० वर्ष में शेष २० प्रतिशत भाग भी उसी मान्यता के क्षेत्र में चला जा सकता है ।

बुद्धिवाद और विज्ञान के द्वारा प्रतिपादित उन मान्यताओं के सम्बन्ध में हमें सतर्क होना होगा जो मनुष्य को अनास्थावान एवं अनैतिक बनाती हैं । विचारों को विचारों से, मान्यताओं को मान्यताओं से, प्रतिपादनों से काटा जाना चाहिए । समय-समय पर यही हुआ भी है । बाममार्गी विचारधारा को बौद्धों ने हटाया और बौद्ध धर्म के शून्यवाद का समाधान जगद्गुरु शंकराचार्य के प्रबल प्रयत्नों द्वारा हुआ । लोगों को केवल तलवार, बन्दूकों की लड़ाइयाँ ही स्मरण रहती हैं । असली लड़ाइयाँ तो विचारों की लड़ाइयाँ हैं । वे ही जन-समूह के भाग्य का निर्माण करती हैं । प्रजातन्त्र सिद्धान्त के जन्मदाता रूसो और साम्यवाद के प्रवर्तक कार्लमार्क्स की विचारधाराएँ पिछली शताब्दियों से मानव समाज का भाग्य निर्माण करती रही हैं । पूँजीवाद, समाजवाद,

अधिनायकवाद की विचारधाराओं ने भी अपने ढंग से अपनी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत की हैं । बाह्य संघर्षों की पृष्ठभूमि में मूलतः यह विचारधाराएँ काम करती हैं । देशों और जातियों का उत्थान-पतन उनकी आस्थाओं और प्रवृत्तियों के आधार पर ही होता है, होता रहा है, हो सकता है ।

उत्कृष्ट आदर्शों के प्रति अनास्था उत्पन्न करने वाला आज की बुद्धिवादी और विज्ञानवादी मान्यता जिस तेजी से अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाती चली जा रही है उसकी भयंकरता को दुर्घर्ष सम्भावना का मूल्यांकन कम नहीं किया जाना चाहिए । उसका प्रतिरोध करने के लिए तत्परतापूर्वक खड़ा होना चाहिए । युग के प्रबुद्ध व्यक्तियों की यह महती जिम्मेदारी है । इसकी न तो उपेक्षा की जानी चाहिए और न अवज्ञा । हमें एक ऐसा विचारमोर्चा खड़ा करना चाहिए जो भौतिकवादी अनास्था से पूरी तरह लोहा ले सके । यदि यह कार्य सम्पन्न किया जा सका तो समझना चाहिए कि मानवजाति के मस्तिष्क को धर्म, संस्कृति और अध्यात्म को अंधकार के गर्त में गिरने से बचा लिया गया । पर यह मोर्चा खड़ा न किया जा सका, उसे सफलता न मिली तो परिणाम प्रत्यक्ष है । कुछ ही दिन बाद हम जंगली संस्कृति के, नास्तिकता के, पशु प्रवृत्तियों के पूरी तरह शिकार हो जायेंगे और लाखों वर्षों की मानवीय संस्कृति आत्मदाह करके अपना करुण अन्त प्रस्तुत करेगी ।

समय रहते चेतने में ही बुद्धिमानी है । बुद्धिमत्ता की भूमिका प्रस्तुत करनी चाहिए । वही शुभारम्भ किया भी जा रहा है । बुद्धि सम्पन्न एवं विज्ञान सम्पन्न अध्यात्म के प्रतिपादन की चर्चा इसी दृष्टि से की जा रही है । यह कहना सही नहीं कि धर्म, अध्यात्म-ईश्वर आत्मा आदि का प्रतिपादन बुद्धि का नहीं श्रद्धा का मिश्रण है । अन्ध-श्रद्धा नहीं—विवेक सम्पन्न श्रद्धा ही स्थिर और समर्थ हो सकती है । प्राचीनकाल के ऋषियों ने भी बुद्धि की शक्ति से ही अध्यात्म का सारा कलेवर खड़ा किया था । प्राचीनकाल में श्रद्धा, शास्त्र और आप्त वचन जन मान्यता के आधार थे । अब यदि दिमाग, तर्क और प्रमाण उसके आधार बन गए हैं तो कोई कारण नहीं कि आज की जन मनोभूमि के अनुसार अध्यात्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन और समर्थन न किया जा सके ।

कार्य कठिन है । अति विस्तृत और अति श्रम साध्य है । उसके लिए भारी मनोयोग, अध्यात्म और प्रत्युत्पन्न मति की आवश्यकता है पर इस संसार में अभाव तो किसी वस्तु का नहीं । आखिर कठिन काम भी तो मनुष्यों ने ही किए हैं । यह काम भी ऐसा नहीं है जो न किया जा सके । सही आधार पर किए गए प्रतिपादन जब मनुष्य के अन्तःकरण में बैठ जाते हैं तो उनके अनुसार वे आचरण भी करते हैं । गान्धी युग में जब लोगों को "स्वतन्त्रता प्राप्ति की उपयोगिता और उसके लिए त्याग, बलिदान की आवश्यकता" समझाई गई तो लाखों लोगों ने बड़े से बड़े त्याग, बलिदान उसके लिए किए । हजारों ने फाँसी और गोली खाकर अपने जीवन निछावर कर दिए । ठीक आधार पर पक्की तरह जो आदर्श लोगों को सिखा, समझा दिया जाता है उसके लिए वे कष्ट सहते हुए भी आगे बढ़ते हैं । प्राचीनकाल में धर्म और अध्यात्म की मान्यताएँ जब लोगों के गले उतर गई थीं तो भारतीय समाज का हर सदस्य देवोपम उत्कृष्ट जीवन जीने में अपनी शान और बहादुरी समझता था भले ही उसे उसमें कितना ही बड़ा कष्ट क्यों न सहना पड़ता रहा हो । आगे भी यही रीति-नीति बरती जाती रहेगी । जब भी कोई आदर्श उस युग की मनोभूमि का आधार लेकर सिखाया, समझाया जायेगा तो वस्तु स्थिति को लोग समझेंगे और उस पर आचरण भी करेंगे । यदि हम अध्यात्मवादी मान्यताओं का आज विज्ञान, तर्क और प्रमाणों के आधार पर प्रतिपादन कर सकते हों तो निःसन्देह जनसमाज को उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी और यह भी निश्चित है कि जो बात अन्तःकरण की गहराई में स्वीकार की जाती है वह आचरण में भी अवश्य उतरती है ।

आज अध्यात्म का प्रतिपादन जिन आदर्शों पर जिस ढंग से किया जाता है वे जनमानस में गहराई तक प्रवेश नहीं करते । कथा, पुराणों, धर्म शास्त्रों किम्वदंतियों एवं परम्पराओं की प्रामाणिकता पर अब लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया है । वे उन्हें किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों की ऐसी कल्पनाएँ मानते हैं जिनकी उपयोगिता एवं वास्तविकता प्रमाणित नहीं होती । शंका-शंकित और संदिग्ध मन से हम धर्मोपदेश सुन तो लेते हैं पर उसकी यथार्थता एवं व्यावहारिकता पर विश्वास नहीं करते । यही कारण है कि धर्मोपदेशों का विशालकाय कलेवर, इतने बड़े आडम्बर के साथ विद्यमान रहते हुए भी उसका जन-जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है । धर्म के बाह्य आवरणों को एक-एक पक्षपात के रूप से अपना लेते हैं पर आचरण में उन आदर्शों का प्रवेश तनिक भी नहीं होने देते जो धर्म की आत्मा है । इसका एक ही कारण है कि अध्यात्म को उन आदर्शों पर नहीं समझाया जाता जो आज की जन मनोभूमि के अनुरूप हो । आज हर व्यक्ति तर्क, प्रमाण और विज्ञान को आधार मानता है । इस युग में कोई भी मान्यता केवल इन तीन आधारों पर ही प्रामाणिक एवं ग्राह्य बन सकती है ।

दर्शन और तत्वज्ञान के उद्गम से ही कोई विचार पद्धति एवं आचार प्रक्रिया प्रादुर्भूत होती है । अध्यात्म का दर्शन और तत्वज्ञान प्रतिपादन करने के लिए ही वेद उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण, आरण्यक आदि का आविर्भाव हुआ । ईश्वर, जीव प्रकृति के विभिन्न भेद उपभेदों की चर्चा रही । दर्शन ही विचार और आचरण का मूल आधार है । इसलिए ईश्वर, आत्मा, धर्म, स्वभाव, कर्मफल आदि के दार्शनिक सिद्धान्तों को सही ढंग से प्रतिपादित करना होगा । संसार की दिशा मोड़ने वाले दार्शनिकों ने मानवीय आस्थाओं का मूलभूत विश्लेषण अपने ढंग से किया है और यदि वह लोगों को ग्राह्य हुआ तो निःसन्देह जनसमूह की मतिविधि भी उसी दिशा में सोचने, करने और बढ़ने के लिए प्रेरित प्रभावित होगी । अब भी यही किया जाना है । हम अध्यात्म के दार्शनिक सिद्धान्तों का विज्ञान, तर्क और प्रमाणों के आधार पर प्रतिपादन कर सकें तो निःसन्देह जन-मानस को पुनः उसी प्रकार सोचने और करने को तत्पर किया जा सकता है, जिस पर कि भारतीय जनता लाखों वर्षों तक आरूढ़ रहकर समस्त विश्व का प्रकाशपूर्ण मार्ग-दर्शन करती रही है ।

अध्यात्म ही अनगढ़ विज्ञान को सुगढ़ बना सकता है

इस विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रत्येक घटक की संरचना में दो तथ्य अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष । प्रत्यक्ष वह है जो इन्द्रियगम्य है । परोक्ष जिसे इन्द्रियातीत कहा जा सकता है । इन्द्रियातीत अर्थात् बुद्धिगम्य । प्रत्यक्ष को ज्ञान कहते हैं और परोक्ष को विज्ञान । इन्हीं दो पक्षों को अध्यात्म की भाषा में स्थूल एवं सूक्ष्म कहा जाता है ।

हर घटक की प्रत्यक्ष क्षमता एवं उपयोगिता स्वल्प है । उसका वर्चस्व परोक्ष में छिपा है । समग्र क्षमता एवं उपयोगिता समझने पर ही समुचित लाभ उठाया जाना सम्भव है अन्यथा इस दुनिया में सर्वत्र मिट्टी बिखरी पड़ी है । पानी के गड्ढे और पेड़-पौधे भर दृष्टिगोचर होते हैं । चाबीदार खिलौनों की तरह कुछ जीवधारी चित्र-विचित्र हलचलें करते दिखाई पड़ते हैं । इतने भर से सन्तोष होता और काम चलता होता तो मनुष्य भी अन्य प्राणियों की भाँति अपने निर्वाह की आवश्यकता जुटाने भर तक सीमाबद्ध रहा होता । प्रस्तुत प्रगति की न आकांक्षा उठती है और न आवश्यकता प्रतीत होती है ।

जमीन पर बिखरी धूलि की कोई कीमत नहीं । पर उसके छोटे से परमाणु की परोक्ष शक्ति की जो जानकारी रहस्य का पर्दा उठने पर मिलती है उसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पडता है । आकाश नीले शामियाने जैसा दिखता है, पर इस प्रत्यक्ष से आगे बढ़कर इन्द्रियातीत रहस्यों का पता चलता रहता है कि उस पोल में उससे भी अधिक सम्पदा भरी पड़ी है जितनी कि इस धरती पर इन्द्रियों के सहारे बिखरी हुई लगती है । यह रहस्य लोक ही है जिसे इन्द्रियातीत या बुद्धिगम्य कहते हैं । परोक्ष भी प्रत्यक्ष के साथ ही गुथा हुआ है, पर उसे जानने, पकड़ने और करतलगत करने के लिए इन्द्रियों की क्षमता से काम नहीं चलता उसके लिए बुद्धि क्षेत्र की प्रखरता उभार कर उसके सहारे गहराई में प्रवेश करने और मोती ढूँढ़ निकालने का पुरुषार्थ करना पड़ता है । प्रत्यक्ष जानकारी को ज्ञान और परोक्ष के रहस्योद्घाटन को विज्ञान कहते हैं । ज्ञान सब प्राणियों को समान मिला है । विज्ञान मनुष्य की अपनी उपलब्धि है ।

विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में इन दिनों तक इतनी सामर्थ्य प्रदान कर दी है कि उसे पौराणिक महादैत्यों के समतुल्य मानने में कोई अत्युक्ति नहीं । पाँचों देवता उसकी सेवा में नियुक्त हैं । अग्नि देव खाना पकाते हैं । वरुण देव नल में विराजमान आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं । पवन पंखा झलते हैं । अनन्त (आकाश) रेडियो सुनाते हैं । धरती अपनी उदरदरी की छिपी हुई सम्पदा की तिजोरी खोल-खोल कर उसका वैभव बढ़ाती चली जाती है । प्राचीनकाल के पौराणिक महादैत्यों ने भी इसी प्रकार देवताओं को वशवर्ती करके उनके माध्यम से विपुल वैभव और वर्चस्व उपलब्ध किया था ।

अब तक जो मिला है वह आदि मानव को आश्चर्यचकित कर सकता है । भविष्य में जो मिलने वाला है उसे भी इतना ही महत्त्वपूर्ण और रहस्यमय समझा जा सकता है कि आज का मनुष्य हजार वर्ष बाद फिर लौटकर इस धरती पर आये तो देखे कि वह सन् ८३ के युग को करोड़ों मील पीछे छोड़ कर किसी देव मानवों के लोक में आ पहुँचा । यह पदार्थ विज्ञान की देन है । विज्ञान अर्थात् परोक्ष । परोक्ष अर्थात् इन्द्रिय शक्ति से परे बुद्धिगम्य । पदार्थ की प्रकृति सत्ता और मनुष्य की जिज्ञासाजन्य तत्परता के समन्वय का चमत्कार ही है जिसके कारण हम इस समूचे ब्रह्माण्ड के कदाचित सर्वश्रेष्ठ लोक में निवास करने का गौरव पा रहे और आनन्द ले रहे हैं ।

पदार्थ जगत के साथ विज्ञान की प्रखरता जुड़ जाने से जो सम्पदा हस्तगत हुई है, होने वाली है उस पर हम सभी प्रसन्न हैं, गौरवान्वित हैं और भविष्य में इससे भी अधिक पाने की अपेक्षा लगाये बैठे हैं । इस प्रकार विज्ञान को जितना सराहा जाय उतना ही कम है । उसे देवाधिदेव ने कहा दैत्यादिदैत्य तो कहा ही जा सकता है । दैत्य शक्ति को कहते हैं और देव सम्पदावानों को । इसलिए विज्ञान को देव कहकर दैत्य नाम देना ही ठीक है ।

अब सृष्टि संरचना के दूसरे पक्ष का प्रसंग आता है वह है—चेतना । चेतना प्राणियों में पायी जाती है । इसलिए उसे प्राण भी कहते हैं । प्राण होने से प्राणी कहे गए या प्राणियों की आधारभूत सत्ता होने के कारण उस चेतना को प्राण कहा गया । इस विवाद में न पड़कर इतना मान लेने से ही काम चल जायेगा कि प्राणियों की काया देखने में जैसी भी लगती हो, करने को जो कुछ भी करती हो, पर यह उनका निर्वाह पक्ष भर है । उनकी रहस्यमय क्षमता इन्द्रियातीत है परोक्ष—बुद्धिगम्य । मनुष्य की हलचलें उसी सीमा तक सीमित हैं जिसके सहारे वह अपना निर्वाह करता है । निर्वाह क्षेत्र में ही आजीविका और परिवार को जोड़ा जा सकता है । अन्य प्राणियों के पेट प्रजनन की सीमा छोटी है । मनुष्य जीवन में उन्हीं दो आवश्यकताओं ने थोड़ा विस्तार करके आजीविका एवं परिवार क्षेत्र तक विस्तार कर लिया है । व्यक्तिगत विशेषता देखनी हो तो उसकी वाणी, भाषा, सज्जा, शिल्प, कला आदि की गणना हो सकती है । इन्द्रिय लिप्सा की प्रबलता उसे और कुछ प्रपंच रचने सरंजाम जुटाने को बाधित करती रहती है । इसके अतिरिक्त मूर्धन्य समझे जाने वाले मनुष्य का भी क्या विवेचन विश्लेषण किया जाय ? औरों की तरह वह भी खाता, सोता और साँसें पूरी करके मौत के मुँह में चला जाता है । सामान्यतया मनुष्य की व्याख्या और क्या की जाय ? उसकी विशेषता और क्या बताई जाय ? इन्द्रियगम्य उसका प्रत्यक्ष स्वरूप इतना ही तो है । अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की प्रत्यक्ष विशेषता इतनी ही आंकी जा सकती है कि उसकी चतुरता एवं सम्पन्नता की दृष्टि से कुछ अधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं ।

मनुष्य की वास्तविक विशेषता प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष है । वह चतुरता और सम्पन्नता से बहुत आगे की वस्तु है । मानवी परोक्ष को—अध्यात्म कहते हैं । यह वह उद्गम स्रोत है जहाँ से उसे सर्वतोमुखी प्रगति के लिए आधारभूत सामर्थ्य उपलब्ध होती है । असली व्यक्तित्व, हाड़-माँस की टोकरी में नहीं है वरन् उस लचीली तिजोरी में भरा हुआ बहुमूल्य रत्न भण्डार है । इतना बहुमूल्य जिसकी तुलना में इस वसुधा पर बिखरी हुई समूची सम्पदा भी कम पड़ती है । यदि मानवी बुद्धिमत्ता प्रकाश में न आयी तो इस धरती का यह स्वरूप ही न निखरता और उसकी रहस्यमयी क्षमता से अविज्ञात के पर्दे में ही छिपी पड़ी रहती है जैसे कि अन्य ग्रहों में उपेक्षित पड़ी हुई है । सृष्टि में क्या है—क्या नहीं, इस असीम, अनन्त और अचिन्त्य को कौन जाने ? जो प्रकाश

में, उपयोग में आया वही तो सब कुछ बना और गौरवान्वित हुआ । इस दृष्टि से न केवल प्रकृति वैभव का वरन् परब्रह्म तक का सृजेता न सही उद्घाटनकर्त्ता तो मनुष्य ही ठहरता है । कान के समतुल्य किसी खंदक में पड़े हीरे का अपना महत्त्व कुछ भी क्यों न हो, श्रेय तो उस जौहरी को ही मिलेगा जिसने उसे ढूँढ़ निकालने से लेकर खरादने और आभूषण का रूप देने की कला दिखाई । इस प्रकार सृष्टि का—स्रष्टा का—उद्घाटन कर्त्ता होने का—श्रेयाधिकारी यदि मनुष्य को ठहराया जाय तो इसे अतिरंजित नहीं कहा जाना चाहिए ।

पदार्थ शक्ति की सम्भावनाओं का अनुमान लगाते-लगाते वैज्ञानिक पसीने-पसीने हो जाते हैं । दूसरे पक्ष चेतन की प्रत्येक तरंग का मूल्यांकन किया जा सके तो उसकी भूतकालीन उपलब्धियों और भावी सम्भावनाओं को देखते हुए चेतना क्षेत्र को सूक्ष्मदर्शियों को और भी अधिक आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है । मनुष्य जो न्यूनाधिक मात्रा में अपने तथाकथित वानर पूर्वजों से कुछ ही बात में विशिष्ट प्रतीत होता है, जिन विभूतियों से भरा-पूरा है वे उसके काय संरचना एवं मस्तिष्कीय विशेषता तक सीमित नहीं है वरन् अन्तराल की गहन पर्तों में छिपी पड़ी है । व्यक्तित्व की परिभाषा शोभा, सज्जा, सम्पदा एवं चतुरता के रूप में नहीं हो सकती । इनके सहारे तो वह मात्र सुविधा सामग्री एवं इन्द्रिय जन्य प्रसन्नता ही प्राप्त कर सकता है । जिस आधार पर वह महान् बनता है वे तत्व तो उसके अन्तःकरण की गहन गुफा में प्रसुप्त जैसी ही पड़ी होती है ।

महर्षि व्यास का कथन है—"मैं एक अद्भुत रहस्य का उद्घाटन करता हूँ कि इस विश्व में मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है ।" इस रहस्य को प्रकट करते हुए वे यह बताना चाहते थे कि चेतना का उच्चस्तरीय प्रतिनिधित्व करने वाली क्षमता मनुष्य के अन्तराल में छिपी पडी है । उन्हें समझने, उभारने और प्रयोग में लाने की विद्या का नाम अध्यात्म है । प्रकृतिगत अणु सत्ता और तरंग सत्ता की खोज एवं उपलब्धि को विज्ञान कहते हैं और चेतना की भावनात्मक विभूतियों के रहस्योद्घाटन एवं उपार्जन उपयोग को अध्यात्म ।

विज्ञान के स्वरूप एवं प्रयोग क्रमबद्ध होने से उसकी महत्ता सर्वसाधारण के सम्मुख है, किन्तु अध्यात्म को सुनियोजित न किए जाने के कारण वह अनगढ़ अस्त-व्यस्त स्थिति में पड़ा रहा । इतना ही नहीं भ्रान्त प्रतिगामिता और निहित स्वार्थों की कुचेष्टा का संयुक्त आक्रमण होने से वह उपयोगी सिद्ध होने के स्थान पर विकृत स्थिति में पहुँच जाने के कारण अवास्तविक उपहासास्पद एवं दयनीय भी बन गया है । आज उसकी वही दुर्गति है । इतने पर भी तथ्य अपने स्थान पर जहाँ के तहाँ ही रहेंगे जैसे कि बदली छा जाने से सूर्य और चन्द्रमा ढक जाते हैं फिर भी प्रखरता के कारण उनका अस्तित्व यथावत् बना रहता है और बदली हटते ही वे पूर्ववत फिर चमकने लगते हैं । विज्ञान की तरह अध्यात्म भी एक तथ्य है । विज्ञान ने प्रकृतिगत सम्पदा और समर्थता को मनुष्य के हाथ सौंपा । अध्यात्म में वह क्षमता विद्यमान है कि चेतना के परोक्ष स्वरूप को प्रकाश में लाये और उसके वर्चस्व से शोधकर्त्ता साधक को समर्थ बनाए । साथ ही उसकी विशिष्टता से समूचा समुदाय लाभ भी उठाए ।

मनुष्य समुदाय की शरीर संरचना में कोई बड़ा अन्तर नहीं । कुछ अपंग अपवादों को छोड़कर मनः संस्थान भी एक जैसा है । साधनों में न्यूनाधिकता हो सकती है, पर परिस्थितियाँ सभी के लिए एक जैसी हैं । इतने पर भी किसी को पतित, पराजित, दीन-दुर्बल, दुःखी-दरिद्र देखा जाता है । कोई चैन के दिन गुजारते हैं, किन्तु किन्हीं-किन्हीं की वरिष्ठता ऐसी होती है कि उसके सहारे वे न केवल प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचते हैं—न केवल असाधारण सफलताएँ पाते हैं—वरन् अपनी प्रतिभा, प्रखरता से असंख्यों का मार्गदर्शन करते हैं, अपने क्षेत्र एवं समय के वातावरण को प्रभावित, परिवर्तित करने की भूमिका निभाते हैं । इन तीनों प्रकार के मनुष्यों में क्या अन्तर है इसकी गहराई में उतरकर जाँच-पड़ताल करने पर एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि साधन, सहयोग, परिस्थिति इन भिन्नताओं में कारण या बाधक उतने नहीं रहे हैं जितने कि इन वर्गों की अपनी-अपनी मनःस्थिति । यही है वह उद्गम केन्द्र जो अन्तराल में सन्निहित रहने पर भी बाह्य जगत की परिस्थितियों को प्रभावित करता है और उपयुक्त सहयोगी तथा साधन अपने चुम्बकत्व के सहारे खींच बुलाता है । यही है उत्थान-पतन का रहस्य ।

वस्तु का स्वरूप देखने से ही काम चलाना, उसकी विशेषताओं को समझना, उभारना एवं प्रयोग में लाना भी आवश्यक होता है । चेतना वस्तु नहीं शक्ति है । इसलिए उसके रहस्यों को जानने तथा प्रयोग करने में और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता पड़ती है । ईंट-पत्थरों को इधर से उधर हटाया, पटका जा सकता है, किन्तु आग या बिजली की उलट-पलट करने में अधिक जानकारी तथा सतर्कता की आवश्यकता होती है । पदार्थ को अनुपयुक्त रीति में प्रयोग करने में जितनी हानि है उससे कहीं अधिक बिजली जैसी शक्तियों के सम्बन्ध में अनजान या प्रमादग्रस्त रहने से होती है । मनुष्य के पास उसकी चेतना का अस्तित्व ही सर्वोपरि सम्पदा है । यह ईश्वर का प्रतिनिधित्व करती हुई कायकलेवर में विद्यमान है । इस वैभव के सम्बन्ध में अभीष्ट जानकारी एवं प्रयोग प्रक्रिया से मनुष्य को अवगत होना ही चाहिए । इसी को ब्रह्म विद्या—अध्यात्म विद्या आदि के रूप में तत्वदर्शियों ने विवेचन, निरूपण, निर्धारण किया है । इससे अनजान रहना या विकृत मान्यताएँ अपनाए रहना प्रत्येक के सचेतन के लिए उतनी ही हानिकारक है जितना कि कपड़े में आग छिपाए फिरना या अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना ।

शस्त्र, पेट्रोल, बारूद, बिजली आदि शक्तिशाली पदार्थों का प्रयोग करने एवं सुरक्षा रखने में हर कोई समुचित ध्यान रखता है । चेतना महाशक्ति है । वह अपने अन्तराल में विद्यमान है । हर स्तर के शाप वरदान देने की सामर्थ्य उसमें विद्यमान हैं । देवता अपमानित और असन्तुष्ट होने पर शाप देते, अनिष्ट करते हैं । प्रसन्न होने पर वरदान देते, ऋद्धि-सिद्धियाँ बरसाते और निहाल कर देते हैं ।

चेतना को ही आत्मदेव कहते हैं । जीवनचर्या के साथ उसी प्रकार गुथा है जिस प्रकार की जीवकोषों, अंग अवयवों एवं रस धातुओं के साथ । रक्त माँस की गतिविधियों में चेतना की शक्ति ही काम करती है । प्राण निकल जाने पर समूची काया निश्चेष्ट हो जाती है और देखते-देखते सड़ने लगती है । ठीक इसी प्रकार जीवन की अन्तरंग एवं बहिरंग की गतिविधियों पर चेतना का

प्रभाव रहता है। चिन्तन एवं चरित्र के रूप में उसी का अनुशासन चलता है। कहना न होगा कि अन्तराल की गहन गुफा में विद्यमान यह सचेतन किन्तु अदृश्य व्यक्तित्व ही मनुष्य के भाग्य का निर्माण करता है। तिरस्कृत, विकृत, अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित किए जाने पर उसी के शाप उभरते हैं और मनुष्य को दुःखी, दरिद्र, पतित, पराजित बनाकर दयनीय स्थिति में पटक देते हैं। उसी सत्ता को सम्मानित, सुसंस्कृत, समुन्नत, सुव्यवस्थित बनाने पर विभूतियाँ अन्तराल से उभरती हैं उन्हीं के सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि वे किसी अदृश्य लोक से, देवी शक्ति द्वारा सौभाग्य या वरदान की तरह अनुग्रहपूर्वक दी गई है।

आत्म साधना का नाम अध्यात्म है। चेतना को किस प्रकार मल आवरण, विक्षेपों से बचाया जाय ? किस प्रकार उसे प्रगति पथ पर अग्रसर होने का अवसर दिया जाय ? किस प्रकार उसे बलिष्ठ, प्रखर और परिष्कृत बनाया जाय ? इसी विद्या का नाम 'अध्यात्म' है। वह विज्ञान से कनिष्ठ नहीं वरिष्ठ है। विज्ञान ने मनुष्य को अगणित सुविधा-साधन दिए हैं, किन्तु यदि पदार्थ की ही तरह चेतना की भी शोध और साधना की जाय तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य इसी जीवन में देवताओं जैसा अन्तराल प्राप्त न कर सके, कोई कारण नहीं कि वह सामान्य परिस्थितियाँ और सीमित साधनों के सहारे भी स्वर्गीय वातावरण में रहने का आनन्द न ले सके।

विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक बनें

भावी पीढ़ी को मानसिक दिग्भ्रान्ति से बचाने के लिए यह प्रश्न सुलझाना आवश्यक है। धर्म के गिरते हुए मूल्यों को देख कर ऐसा लगता है कि कहीं आने वाली पीढ़ियाँ पूर्णतया पदार्थवादी होकर अपनी आध्यात्मिक शक्तियाँ नष्ट न कर डालें।

ऐसे विचार दुनिया के अनेक मनीषियों के मस्तिष्क में आये और उन्होंने अपनी-अपनी तरह के विचार भी दिए। किसी भी ठोस निर्णय के लिए उनके विचारों का बड़ा भारी महत्त्व हो सकता है। एक अमेरिकी स्नातक श्री हेरेल्ड केशेलिंग के मस्तिष्क में भी यह प्रश्न उठा था। उन्होंने "विज्ञान और धर्म में क्या सम्बन्ध है ? इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन किया और अपने निर्णयों को एक 'थीसिस' के रूप में 'साइन्स एण्ड रिलीजन' (विज्ञान और धर्म) के नाम से पेन्सिलवानिया यूनीवर्सिटी को प्रस्तुत किया। थीसिस के मध्यपृष्ठों में श्री 'केशेलिंग' ने भी चेतावनी देते हुए लिखा है कि—"हमें व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से इस परिस्थिति की ओर सच्चे रूप में ध्यान देना होगा तथा हमेशा के लिए यह तय करना होगा कि वास्तव में धर्म और विज्ञान में कोई समझौता हो सकता है या नहीं।"

इसी सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने आगे लिखा—"कई धार्मिक संस्थाओं ने यह पहचान लिया है कि धर्म और विज्ञान की सम्मिलित प्रगति से मनुष्य जाति की यथार्थ प्रगति हो सकती है। इस ओर उन्होंने काम भी प्रारम्भ किया है इससे अनेक मानवीय समस्याओं के सही हल सामने आये हैं। विज्ञान की महत्त्वपूर्ण बातों में कई बातें ऐसी हैं जो धार्मिक संस्थाओं के लिए उचित हैं तथा उनकी स्वयं की जानकारी का स्पष्टीकरण करती हैं। पिछले दिनों धर्म विज्ञान का संघर्ष मुख्य बातों में असहयोग के कारण होता था जो अब समाप्त होता जा रहा है। पहले जो बातें विरोधी लगती थीं, अब पूर्ण रूप से एक रूप और अनुरूप प्रतीत होती हैं।"

यह विचार वस्तुतः मार्गदर्शक है। आइन्स्टीन, न्यूटन, गैलीलियो जैसे महान् वैज्ञानिकों को अन्ततः यह स्वीकार करना पड़ा कि सब कुछ पदार्थ ही नहीं है। कुछ मानसिक और भावनात्मक सत्य भी संसार में है विज्ञान का दृष्टिकोण उनका स्पष्टीकरण करना है। इस तरह के कर्त्तव्यों के बाद ही रूढ़िवादी वैज्ञानिक और धार्मिक व्यक्तियों—दोनों को अपना हठ समझौते के लिए बदलना पड़ा। आज पाश्चात्य देशों में इसीलिए लोग विज्ञान की बातों की संगतियाँ आध्यात्मिक सत्यों से जोड़ने लगे हैं। उसे उनकी समझदारी कहना चाहिए। विज्ञान कितना ही आगे बढ़ जाय हम मनुष्य जीवन के मूलभूत सत्यों यथा जन्म-मरण, परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफल, परमात्मा आदि के अस्तित्व और मानव-मानव के बीच के सम्बन्धों को ठुकरा नहीं सकते। उनको सुलझाने के लिए हमें भावनात्मक आधार बनाना ही पड़ेगा और तब-तब धर्म की उपस्थिति अनिवार्य होगी ही।

अल्वर्ट आइन्स्टीन ने प्रिन्स्टन यूनिवर्सिटी में कहा था—"संसार में ज्ञान और विश्वास दो वस्तुएँ हैं। ज्ञान को विज्ञान और विश्वास को धर्म कहेंगे। इस युग में लोगों की मान्यता है कि ज्ञान बड़ा है क्योंकि यह क्रमबद्ध है, स्कूलों में इसी का शिक्षण होता है किन्तु यह मानव जीवन के उद्देश्य को बहुत देर तक प्रयोग करके भी शायद ही बता सके जबकि विश्वास में तार्किक चिन्तन और क्रमबद्ध ज्ञान (राशनल नॉलेज) दोनों ही आधार हैं, जो हमारा सम्बन्ध सीधे परम अवस्था या अपने मूलभूत उद्देश्य से जोड़ देते हैं।

इतिहास मर्मज्ञ डॉ. टायनवी से एक पत्रकार ने पूछा—निकट भविष्य में जब वैज्ञानिक प्रगति के कारण मनुष्य को सहज ही सस्ते मूल्य पर प्रचुर सुविधाएँ मिलने लगेंगी, तब वह बैठे ठाले अपना समय किस प्रकार बिताया करेगा ? इस प्रश्न के उत्तर में टायनवी ने कहा—"उसके पास काम करने का इतना बड़ा और इतना महत्त्वपूर्ण क्षेत्र खाली है, वह क्षेत्र ऐसा है जिसमें प्रगति होते हुए भी भौतिक सुविधाएँ उसके लिए सुखद न रह कर दुःखद बनती जायेंगी यह उपेक्षित क्षेत्र अध्यात्म का है। चिन्तन को परिष्कृत बनाने वाला क्षेत्र भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा बड़ा भी है और व्यापक भी। सुविधाओं की अभिवृद्धि के कारण जो समय बचेगा, उसे आगामी पीढ़ियाँ अध्यात्म उत्पादन में लगाया करेंगी। संगीत, साहित्य कला के माध्यम से विचारों का परिष्कार करने की आवश्यकता अनुभव की जायेगी और भावनात्मक सहयोग एक के द्वारा दूसरे को मिलता रहे, इसकी आवश्यकता अनुभव की जायेगी।"

दर्शन अन्तर्ज्ञान शक्ति 'इन्टरनल पावर' तर्क भाव सम्वेदना और दूरदर्शी विवेक पर अवलम्बित है और विज्ञान बौद्धिक शक्ति पर, प्रयोगात्मक तथ्यों पर। इस प्रकार से उनके साधन तो पृथक-पृथक हैं पर सत्य के समीप तक पहुँचाने का दोनों का मूलभूत उद्देश्य एक है। ब्रिटिश विज्ञानी सर जेम्स जीन्स ने अपनी पुस्तक 'फिजिक्स एण्ड फिलोसोफी' में लिखा है—विज्ञान और दर्शन के परस्पर विरोध का झगड़ा अब मर चुका है। ज्ञान के विस्तार ने अब दोनों के बीच की सीमा-रेखा तोड़ कर फेंक दी है। दोनों क्षेत्र यह सोचते हैं कि एक-दूसरे की सहायता के बिना

किसी का भी प्रयोजन पूरा न हो सकेगा । दर्शनशास्त्रीय बिल ड्रण्ट ने अपने ग्रन्थ 'दी स्टोरी ऑफ फिलोसोफी, में इसी से मिलते-जुलते विचार व्यक्त किए । वे कहते हैं 'विज्ञान का आरम्भ दर्शन में होता है और अन्त कला में ।' यदि विज्ञान में मानवी चेतना की सुसम्वेदना उत्पन्न करने की क्षमता न होती तो उसके लिए कठोर श्रम करने में किसी को भी उत्साह न होता । केवल कौतूहल के लिए विज्ञान की शोध थोड़े ही होती है । उसके पीछे मानवी सुख-शान्ति का जो उत्साह भरा लक्ष्य जुड़ा है, उसी ने विज्ञान की उन्नति का पथ प्रशस्त किया है । विद्वान केसर लिंग ने अपनी पुस्तक 'क्रिएक्टिव अण्डर स्टेंडिंग' में कहा है—ज्ञान की दो धाराएँ विज्ञान और दर्शन अविच्छिन्न हैं । विज्ञान या दर्शन दोनों को मिलाकर एक शब्द वैज्ञानिक दर्शन अथवा दार्शनिक विज्ञान नाम दिया जाना इस युग के ज्ञान विस्तार को देखते हुए सब प्रकार उपयुक्त ही होगा । विज्ञान के अन्तर्गत जिस प्रकार रसायन शास्त्र, शरीर शास्त्र, यान्त्रिकी, तकनीकी आदि धाराएँ आती हैं, उसी प्रकार ज्ञान मीमांसा, प्रमाण मीमांसा, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र और अध्यात्म जैसे दार्शनिक विषयों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए । दोनों के बीच परस्पर सहयोग से ही समग्र सत्य का दर्शन हो सकता है ।

एफ. सी. नार्थरोम का कथन है—वैज्ञानिक को जितना वास्तविक माना जाता है, उससे अधिक वे काल्पनिक हैं । किसी प्रयोग का सही उतरना इस बात की गारण्टी नहीं है कि प्रयोग की जो व्याख्या, विवेचना की गई है, उसके जो आधार पर कारण बताये गए हैं वे सही ही हैं । अक्सर ऐसे होता रहता है कि पुराने सिद्धान्त काटकर उनके स्थान पर नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है । इस पर भी प्रयोग पूर्ववत सही ही बने रहते हैं । विज्ञानी करनर हाईसवर्ग ने अपने ग्रन्थ 'भौतिक विज्ञान और दर्शन' ग्रन्थ में अनिश्चतता के नियमों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—विज्ञान वस्तुतः दर्शन शास्त्र की स्थूल जाति का निरूपण करने की एक शैली मात्र है । सिद्धान्तों के हाथ लगने के बाद ही वैज्ञानिक प्रयोगों में पूर्णता आती है । उन्हें अणु विज्ञान को प्रयोगात्मक विज्ञान की परिधि में करना है और कहा है उसे समझ सकना गणित के गहन नियमों के साथ ही जुड़ा हुआ है ।

डॉ. राधाकृष्णन ने 'दर्शन' की परिभाषा करते हुए उसे "सत्य को समझने का बौद्धिक प्रयास" कहा है—महर्षि अरविन्द ने इस निरन्तर चल-बदल रहे संसार में एक मात्र सत्य वैचारिक निष्ठा को ही माना है । भले ही वह सापेक्ष बनी रहे । वे कहते हैं—"विचार ही जगत के निर्माता हैं । इसलिए वस्तुतः वे ही सत्य हैं । वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के माध्यम से जो अनुभूतियाँ होती हैं, उनका मूल कारण विचारगत निष्ठा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । कात्यायन ने "यथार्थता के मर्मस्थल तक पहुँच सकने वाली तीखी विवेक दृष्टि को दर्शन की संज्ञा दी है और कहा कि अध्यात्म अन्धता का निराकरण मात्र दार्शनिक दृष्टि मिलने पर ही हो सकता है ।

दार्शनिक लिनयुतांग के विचार से "वस्तुओं के परखच्चे उधेड़ते रहने पर जगत का न तो स्वरूप समझ में आ सकता है और न उसका प्रयोजन स्पष्ट होता है । इसके लिए दर्शन का सहारा लिए बिना काम नहीं चल सकता । डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं—विज्ञान के लिए बिना दर्शन की सहायता के विश्व का तात्विक स्वरूप समझ सकना अशक्य है । दार्शनिक जींन 'ड्यू प्लेसिस' का मत है—जगत का स्थूल स्वरूप ही विज्ञान हमें समझा सकता है और पदार्थों की प्रकृति पहचान कर उससे लाभ उठाना सम्भव कर सकता है । इसके आगे उसकी गति नहीं । जो है सो क्यों है ? किस लिए है ? कैसे है ? इन प्रश्नों का उत्तर दर्शन के अतिरिक्त और किसी माध्यम से मिल ही नहीं सकता ।

आइन्स्टीन ने लिखा है—"वैज्ञानिक चिन्तन के विस्तार से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई है कि भौतिक जगत का कोई ऐसा रहस्य नहीं है जो अपने आगे भी किसी रहस्य की ओर इंगित न करता हो ।

चेतना का सूक्ष्मतम स्तर है—सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् । वस्तुओं में लोभ और व्यक्तियों में मोह का दृष्टिकोण बहुत ही स्थूल है । यह अहंता का आरोपण मात्र है । जिस सम्पत्ति को हम अपने अधिकार के अन्तर्गत मानते हैं वह हमें प्रिय लगती है और जिन व्यक्तियों को हम अपने परिवार के मान लेते हैं उनमें आसक्ति बढ़ जाती है । इसी 'प्रिय' परिधि की समीपता सुहाती है और उसे बढ़ाने तथा रखाने की ललक लगी रहती है । आमतौर से सुख सन्तोष की परिधि उतने ही क्षेत्र में अवरुद्ध होकर रह जाती है । जो किया और चाहा जाता है वह उसी सीमा में बँधा रहता है यह अहंता की प्रतिध्वनि मात्र है इसमें वस्तु के मूल सौन्दर्य का दर्शन हो ही नहीं पाता और व्यक्ति लोभ और मोह के अंवर-डंवर देखता हुआ बाल कौतुकों में उलझा रहता है ।

कला, काव्य एवं सौन्दर्य को भावनात्मक सम्वेदना तथा चिन्तन की सूक्ष्मतर परिधि कह सकते हैं । नृत्य गायन, कला नहीं, कला का आवरण है उस माध्यम से अन्तःकरण में उल्लासपूर्ण प्रस्फुरण उमगता है । वह सम्वेदना ही कला है । काव्य किन्हीं तुकबन्दी या छन्द विन्यास को नहीं कहते । शब्दों का आवरण उठाकर विशिष्ट स्तर के भावोद्रेक को सजाया भर जाता है । उन शब्दों के अन्तरंग में जो कोमलता झाँकती है और चेतना में गुदगुदी पैदा करती है वह कविता है । सौन्दर्य, वस्तुओं की सज्जा, दृश्यों की शोभा एवं व्यक्तियों के अंग गठन पर निर्भर नहीं है वह तो प्रकृति की मृदुल एवं आत्मा की कोमल कान्त सम्वेदनशीलता को अपने अन्तरंग चित्रपट पर कलात्मक तूलिका के साथ चित्रण कर सकने की कलाकारिता है । सुन्दरता को दूसरे शब्दों में दिव्यानुभूति कह सकते हैं । भाव भरे अन्तःकरण में अपनी विशिष्टता के अनुरूप उमंगती, उभरती रहती है । उसका किसी के अंग, संगठन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है ।

द्रोपदी और लैला बिल्कुल स्याह काले रंग की थीं साथ ही कुरूप भी, पर उनके प्रेमी उन्हें प्राण प्रिय मानते थे । इसमें विशेषता उन महिलाओं के अंग गठन की अथवा हाव-भावों की नहीं, आरोपण में श्रेय, देखने वाले के अपने दृष्टिकोण को जितना दिया जायेगा उतना प्रिय पात्र को नहीं ।

भौतिक विज्ञान को असंस्कृत समझने का कोई कारण नहीं, क्योंकि उसका उद्देश्य न केवल अणु-सत्ता का विवेचन एवं उपयोग जानना है, वरन् चेतना के साथ जुड़ी हुई कोमल सम्वेदनाओं को उभार कर अन्तःकरण की भाव भरी रसानुभूति प्रदान करना भी है इन दोनों प्रयोजनों को साथ लेकर चलने से ही विज्ञान की पूर्णता बनती है अन्यथा भौतिकी को ही विज्ञान मान लेने पर तो

वह सचमुच ही असंस्कृत बन जायेगा । तब उसे लंगड़े, काने, कुबड़े, पंगे, नकटे, बूचे की संज्ञा दी जा सकेगी, वह वस्तुतः कुरूप एवं कर्कश ही बन जायेगा ।

जीवन को जड़ और चेतन का समन्वय कह सकते हैं । हमें पदार्थों का भी उपयोग करना पड़ता है और चेतनता से भी वास्ता पड़ता है । हमारा शरीर स्वयं जड़ पदार्थों से बना है और अन्तःकरण में चेतना की सत्ता विद्यमान है । उभय-पक्षीय वस्तुस्थिति से अधिकाधिक आनन्द लेने के लिए उनकी सूक्ष्मता में प्रवेश करना आवश्यक है । ताकि जो अभी तक नहीं मिल सका वह आगे मिल सके । इस आवश्यकता की पूर्ति स्थूल जड़ जगत के क्षेत्र में भौतिक द्वारा सम्पन्न होती है और चेतना के क्षेत्र में भाव सम्वेदना के अन्तराल में प्रवेश करके वह प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है ।

विज्ञान और दर्शन का क्षेत्र पृथक रखा जाय तो दोनों ही अपूर्ण रह जायेंगे । वस्तुतः वे दोनों दो हैं भी नहीं । एक ही तथ्य के दो पूरक पक्ष हैं । भौतिकी जड़ पक्ष को सम्भालता है और ब्रह्म विद्या चेतना को सुसंस्कृत बनाती है तथ्यों की उपेक्षा करके, मात्र चिन्तन की कलाबाजी का खेल खड़ा करते रहने वाला दर्शन भ्रान्तियों का भण्डार बन जायेगा । वह हमें अवास्तविक कल्पनाओं की उड़ान में उड़ते रहने वाला-दिवास्वप्न देखते रहने वाला मात्र बनाकर रख देगा । इसी प्रकार जड़ पदार्थों की क्षमता पर निर्भर होते-होते हम स्वयं हृदयहीन मशीनी मनुष्य मात्र बनकर रह जायेंगे । विज्ञान को दर्शन के साथ और दर्शन को विज्ञान के साथ अपना तालमेल बिठाना पड़ेगा । यद्यपि आज यह बहुत कठिन दीखता है पर कल इसकी अनिवार्यता अनुभव की जायेगी । सत्य और तथ्य का समन्वय करने से ही सर्वतोन्मुखी प्रगति के दोनों पहिए गतिशील हो सकेंगे ।

विज्ञानी को कलाकार बनना चाहिए और कलाकार को विज्ञान के साथ अपना मेल-जोल बढ़ाना चाहिए । दर्शन और विज्ञान को मिलाकर उभयपक्षीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहिए । दोनों को दो धाराओं में बहते हुए भी एक लक्ष्य पर पहुँचना चाहिए । पिछली कितनी ही मान्यताएँ, परम्पराएँ, परिभाषाएँ, और आकांक्षाएँ अब अवास्तविक और असामयिक ठहरा दी गई हैं । किसी समय उनका औचित्य रहा होगा पर अब उनके साथ चिपके रहना हमें केवल उपहासास्पद ही बना सकता है । ठीक इसी प्रकार यदि विज्ञानी बिना हित अनहित का विचार किए घातक आविष्कार करता रहा और विलास वृद्धि में आविष्कारों का उपयोग होता रहा तो मनुष्य अपनी कलाकारिता को अनावश्यक समझने लगेगा और उसकी सौन्दर्यानुभूति समाप्त हो जायेगी । यदि ऐसा हुआ तो विज्ञान की प्रगति सचमुच बहुत महँगी पड़ेगी ।

विज्ञान के सम्पर्क में दर्शन की सत्ता को खतरा उत्पन्न हो जायेगा, इस प्रकार सोचना तभी उचित है जब वह अवास्तविक आधारों को लेकर चल रहा हो । अब बुद्धिवादी युग आ गया । क्यों और कैसे की कसौटी पर कसे बिना अगले दिनों किसी भी प्रचलन को स्वीकार न किया जा सकेगा । यथार्थता की परीक्षा में यदि दर्शन भागेगा तो उसका यह भगोड़ापन ही उसकी कच्चाई समझ ली जायेगी और दंभी बताकर समय का प्रवाह उसका साथ छोड़ देगा तब उसे बे-मौत मरना पड़ेगा । इससे अच्छा यही है कि वह समय रहते आत्म निरीक्षण, परीक्षण करके उसे इस योग्य बना लें कि तथ्यों का सामना करने में उसे डरने की तनिक भी आवश्यकता न रहे । दर्शन का गौरव इसी में है ।

भाव सम्वेदनाओं का क्षेत्र उतना ही सुविस्तृत है जितना भौतिक जगत, यह एक तथ्य है कि मनुष्य की आत्म सन्तुष्टि, शान्ति और प्रसन्नता भावनाओं के ही स्पदन हैं । फिर भी भावनाओं की उपेक्षा की जाती रहती है । विज्ञान और धर्म एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं, दो भिन्न वस्तुएँ नहीं । इस तरह धर्म के बिना हमारा काम वैसे ही चल नहीं सकता जिस तरह अन्न और वस्त्र के बिना । धर्म का उद्देश्य भौतिक शक्तियों के स्वामी 'विज्ञान' को निरंकुश होने से बचाना है अतएव उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए । विज्ञान के साथ धर्म का समन्वय बना रहने से ही मानवीय प्रगति की शान्ति और प्रसन्नता स्थिर रह सकती है इससे कम में नहीं ।

पूर्वाग्रहों से मुक्त हो चला, आज का विज्ञान

वैज्ञानिक अध्ययन सम्बन्धी विविध शाखा-प्रशाखाएँ गम्भीर शोधात्मक अध्ययन के पश्चात् इन्हीं निष्कर्षों का प्रतिपादन करती हैं कि विविधता के मूल में एकता है । यही सृष्टि का परम नियम है । समष्टि चेतना ही अलग-अलग अंशों में सृष्टि के विभिन्न घटकों में वितरित हुई है ।

विश्व-ब्रह्माण्ड का सृजेता कोई ऐसा मानव या अतिमानव नहीं है जो कहीं दूर रहकर या सातवें आसमान में सिंहासनारूढ़ होकर अपना दरबार लगाता हो और सलाहकारों, मुसाहिबों से पूछकर निर्देश देता हो । वेदान्त दर्शन का कथन है कि जीवन का सिद्धान्त पुरुषार्थ है । मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का सृजेता है । अपने भविष्य को निर्मित करना उसी के हाथों में है । इस मत को स्वीकार करने, मानने वाला व्यक्ति किसी अन्धविश्वास के अन्धकूप में न गिरकर विभिन्न मत-मतान्तरों की भूल-भुलैया में न उलझकर पुरुषार्थ को अपनाकर अपने विकास के राजमार्ग पर निरन्तर प्रगतिशील रहता है ।

परमहंस रामकृष्ण ने परमात्मा के बारे में बताते हुए कहा था—कि वह सगुण साकार भी है और निर्गुण निराकार भी, फिर इन दोनों से परे भी है । समूचे भारतीय आस्तिक विचारधाराओं का सार यही है । यह परमात्मा काण्ट के लिए 'डिज एन सिच' हो सकता है, हर्बर्ट स्पेन्सर के लिए 'अननोएबल', इंमर्सन के लिए 'ओवर सोल' तथा स्पिनोजा के लिए 'सबस्टेंशियाँ' । ऐसा पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता किसी नाम के बंधन में नहीं बँध सकता । संसार की सबसे पहली पुस्तक ऋग्वेद "एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् सत्य एक ही है ज्ञानी उसे विविध नामों से पुकारते हैं, कह कर मूल सत्ता के एकत्व को सुस्पष्ट करता है । परिभाषाओं की विविधता, उद्‌बोधन की भिन्नताएँ भले ही कितनी ही क्यों न हों परमपिता विश्व ब्रह्माण्ड का सूत्रधार वही रहेगा ।

'यूनिटी इन डायवर्सिटी' अनेकता में एकता के वेदान्तिक प्रतिपादन का विज्ञान के साथ पूरा तालमेल बैठता है । सुविख्यात खगोल शास्त्री फ्रडहॉयल के अनुसार, ब्रह्माण्ड का विकास उसी

मूल तत्व से हुआ है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में कॉस्मिक धूल और वेदान्त की भाषा में चिदाकाश कहा गया है ।

वेदान्त भी सारी सृष्टि को ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति मानते हुए आत्मा की अमरता को प्रतिपादित करते हुए उसे स्वयं भू शक्ति का अपरिमित स्रोत बताता है । आत्मा का सम्बन्ध जिस मूल केन्द्र बिन्दु से है, उस परमशक्ति का प्रतिभासन बुद्धि तथा पदार्थ दोनों ही रूपों में होता है । आग के ढेर से जिस तरह हजारों-हजारों अग्नि स्फुल्लिंग निकलते हैं, उसी तरह परमसत्ता से भी आत्मा रूपी अग्नि स्फुल्लिंग बाहर आये हैं । अद्वैत दर्शन के मतानुसार प्रत्येक आत्मा ब्रह्म स्वरूप है । सहस्रों-सहस्रों जल कणों पर सूर्य प्रतिबिम्बित होकर सहस्रों रूपों में प्रतिभासित होता है । उसी तरह प्रत्येक आत्मा ब्रह्म के प्रतिबिम्ब के रूप में विराजमान है ।

दृश्य जगत की संरचना, किसी क्षण विशेष में हो सकना सम्भव है । पर परमशक्ति का कोई आदि नहीं जिससे आत्मा का भौतिक स्वरूप अनुप्राणित होता है । कर्मफल का सिद्धान्त आत्मा पर लागू होता है । सही मायने में यही परमसत्ता, वैश्व चेतना का अनुशासन वाला पक्ष है । वह दिव्य सत्ता न तो रिश्वतखोर अफसर की तरह रिश्वत लेकर किसी को अतिरिक्त सुविधा सहूलियतें प्रदान करती है न ही नाराज होकर कठोर दण्ड । वह तो चेतना का उद्गम स्रोत है, कर्म सिद्धान्त अच्छे-बुरे परिणामों की व्यापकता के रूप में भी उसकी एक छवि है ।

जगत का मूल स्रोत एक ही है । यह एक ऐसा बिन्दु है जहाँ पदार्थ विज्ञानी और अध्यात्म वेत्ता एक मत हैं । विज्ञान का आधुनिक स्वरूप इस बात को स्वीकार करता है कि जड़ और चेतन सभी में कोई दिव्य शक्ति विराजमान है जहाँ चेतन कहे जाने वाले प्राणियों में उसकी अभिव्यक्ति बुद्धि और इच्छा के रूप में होती है, वहीं जड़ पदार्थों में वह शक्ति विभिन्न हलचलों में दिखाई देती है ।

आइन्स्टीन जैसे मूर्धन्य विज्ञानी विशारद ने चेतना रूपी आत्म तत्व को अविनाशी और व्यापक माना है । उनके एक मित्र ने उनसे सम्बन्धित संस्मरण में लिखा है कि उनके रोगी होने पर मैंने उनसे पूछा कि—"क्यों आपको अपनी मौत से भय नहीं लगता ।" जवाब में आइन्स्टीन ने कहा—"आजकल मुझे एक आश्चर्यजनक अनुभव हो रहा है । मैं अपने आपको समग्र चेतन सत्ता से एकाकार होता महसूस करता हूँ । यह तादात्म्य इतना गहरा है कि मुझे अपने अस्तित्व का पृथक रूप से भास ही नहीं होता । अब मुझे यह बात बिल्कुल महत्त्वहीन लगती है कि इस संसार में कौन कब आता है, कब जाता है ? मेरे विचार से यह आना-जाना चेतना की सूक्ष्म और स्थूल अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं । चेतना की सरिता तो नित्य निरन्तर अजस्र रूप से प्रवाहित होती रहती है ।"

आइन्स्टीन का यह अनुभव स्पष्ट करता है कि उनके विचार से भौतिक जीवन चेतना का ही अंग है तथा मृत्यु का तात्पर्य जीवन की समाप्ति नहीं, अपितु चेतना के नवीनीकरण की एक प्रक्रिया भर है । अनेकानेक महत्त्वपूर्ण शोध कार्यों के पश्चात् भी यह महान् भौतिकविद् सन्तुष्ट न था । उनकी व्यस्तता अन्तिम समय में गहरी हो गई थी । उनकी व्यस्तता का प्रयोजन-समस्त भौतिक शक्तियों के मूल केन्द्र का पता लगाना था । उनके विश्वास के अनुसार चुम्बकीय गुरुत्वीय नाभिकीय शक्ति का कुछ ठोस आधार अवश्य होना चाहिए ।

भौतिकी के क्षेत्र में जो भी शोध कार्य हो रहे हैं—उनका विवेचन, विश्लेषण करने पर यही तथ्य प्रकाश में आता है कि समस्त शक्तियों का इस सृष्टि का मूल क्या है ? शोध कार्य स्थूल की संकीर्ण परिधि से अपने को मुक्त कर अब सूक्ष्म से सूक्ष्मतर क्षेत्र में उस जगह जा पहुँचा है, जहाँ चेतना के क्षेत्र की परिधि शुरू होती है । रहस्यों का उद्घाटन अभी इसलिए सम्भव नहीं हो पा रहा कि खोज की प्रक्रिया भौतिक ही बनी हुई है, जबकि चेतना का सुविशाल दिव्य क्षेत्र सर्वथा अलग है । उसे ज्ञात करने, समझने तथा अभिव्यक्त करने के लिए इस पदार्थ विज्ञान की हठवादिता की चाहर दीवारी लाँघ कर चेतना विज्ञान के क्षेत्र में कूदना पड़ेगा । अपने इस भ्रम एवं हठवादिता को कुछ भौतिकविद् समझने भी लगे हैं । उनके प्रयास भी पदार्थ विज्ञान संकीर्णता की बेड़ियों से मुक्त होने की ओर हैं ।

मूलतत्व क्या है ? विश्व ब्रह्माण्ड का उद्गम कहाँ से हुआ ? आदि के परम रहस्य को जानने के लिए फ्रिटजॉफ काप्रा, डेविड फिन्सेल्टाइन, माइकेलमर्फी आदि भौतिकविदों ने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में एक प्रयोगशाला की स्थापना की, जिसका नाम उन्होंने लारेन्स-बर्कले प्रयोगशाला रखा । इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु एक चालीस सदस्यीय संगठन बनाया गया, जिसमें प्रख्यात भौतिकशास्त्री तथा प्राच्य विद्या विशारद हैं । भौतिक विज्ञान के अब तक हुए शोध कार्यों के निष्कर्ष के अनुसार इन वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि हमने शोध कार्य की शुरूआत की-विज्ञान से परे आ पहुँचे पूर्वार्त दर्शन में । इस संगठन के सदस्य एवं प्रख्यात भौतिकविद् प्रो. माइकेल मर्फी ने बताया कि हमारी शोध प्रक्रिया से चिन्तन क्षेत्र में एक नये आयाम का विकास हो रहा है । अब यह अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि पदार्थ और अन्तरिक्षीय ऊर्जा वास्तव में एक ही तत्व हैं इनका उद्गम स्रोत एक ही है ।

बर्कले में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्री प्रोफेसर फ्रिट ऑफ काप्रा ने अपने एक शोध निबन्ध में कहा है कि, प्रकृति के अन्वेषण एवं इसके उद्गम स्रोत का पता लगाना बुद्धि और तर्क पर आश्रित रहने वालों के लिए असम्भव है । यह कार्य 'इंट्यूशन' जिसे प्राच्य लोग प्रज्ञा या अन्तर्ज्ञान कहते हैं—के द्वारा ही सम्भव है । यह प्रज्ञा तार्किक बुद्धि से परे है । इसका महत्त्व बहुत अधिक है । सूक्ष्मतर ज्ञान इसी से अर्जित होता है । उन्होंने वैज्ञानिक असफलताओं का कारण बताते हुए कहा है कि इसका एकमात्र कारण प्रज्ञा की उपेक्षा है ।

प्रोफेसर काप्रा ने इस सम्बन्ध में एक पुस्तक की रचना की है जिसका नाम है 'The Tao of Physics' 'द ताओ ऑफ फिजिक्स' । इस पुस्तक ने पूर्वी एवं पश्चिमी जगत में अत्यधिक लोकप्रियता अर्जित की है । पश्चिमी विचारक वेदान्त के तत्व को गम्भीरता से जानने को उन्मुख हुए हैं । उन्होंने इसी पुस्तक के दसवें अध्याय 'Unity of all things' सभी चीजों की एकता में बताया है कि सृष्टि एक संरचना नहीं अपितु एक अभिव्यक्ति है । यहाँ सभी चीजें परस्पर अन्यान्योश्रित हैं । सभी की अभिव्यक्ति का स्रोत एक परम सत्ता है जिसे हिन्दुओं ने ब्रह्म, बौद्धों ने धरमाक्य और ताओइज्म ने 'ताओ' कहा है ।

आगे बताते हुए वह कहते हैं कि एक परमसत्य से सभी की अभिव्यक्ति की बात सामान्य जीवन में भले ही हमें न समझ में आये पर यथार्थ यही है ।

प्रो. काप्रा ने बताया है कि, "विज्ञान का भटकाव अब अधिक नहीं रहेगा । सर्वत्र संव्याप्त चेतना में इस ब्रह्माण्डीय सत्ता को परमसत्ता के स्वरूप की तरह स्वीकारा जाने लगेगा । वेदान्त के सूत्र "सर्व खिल्विदं ब्रह्म" की आर्ष मान्यता साकार हो सकेगी ।"

यह विज्ञान की पूर्वाग्रहों से मुक्ति की शुरूआत भर है । जब यह प्रगति यात्रा द्रुतगति से अनेकानेक वैज्ञानिकों-मनीषियों के प्रयास से चल पड़ेगी तो ब्राह्मी चेतना के स्वरूप को समझने एवं उसके अनुशासन के अनुरूप स्वयं को ढालने हेतु मनुष्य स्वयं बाध्य होगा । यही मनुष्य का सहज एवं यथार्थवादी विकास क्रम है, जो उसे मानव से महामानव के ऋषिपद को पहुँचायेगा । ऊर्जा के सभी बलों का एकीकरण सिद्धान्त की विवेचना के माध्यम से ये प्रयास आरम्भ हो गए हैं । विज्ञान व अध्यात्म का मिलन होकर ही रहेगा ।

चले विज्ञान अब अध्यात्म का कर थाम कर जग में

जड़ पदार्थ और मनुष्य की प्राण चेतना मिल जुलकर ही वह स्थिति उत्पन्न करते हैं, जिससे मानवी ज्ञान और प्रकृतिगत साधनों का सदुपयोग हो सके । दोनों एक दूसरे से अलग रहने पर वे प्रयोग में नहीं आ सकते और एक प्रकार से निरर्थक ही पड़े रहते हैं । दोनों का समन्वय ही है, जिसने दुनिया को इतनी सुन्दरता और सुव्यवस्था प्रदान की है । एक को दूसरे के सहारे ही अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का अवसर मिला है । इसलिए ज्ञान और विज्ञान के बीच घनिष्ठ सहयोग करना उपयुक्त है ।

देखा जाय तो विज्ञान का व्यावहारिक उत्कर्ष अभी कुछ ही शताब्दियों के अन्तर्गत हुआ है । उसकी यह बात एक सीमा तक ही सही बैठती है कि जिसे प्रत्यक्ष देख लिया जाय उतने को ही मान्यता दी जाय । पर यह बात धर्म के सम्बन्ध में पूरी तरह लागू नहीं होती । उसमें श्रद्धा और विश्वास को प्रधान मान्यता दी जाती है ।

नवोदित विज्ञान की मान्यता थी कि जिन पंच तत्वों के मिलने से चेतना की उत्पत्ति होती है, उसका अन्त भी तत्वों के विखण्डन होने के साथ-साथ ही हो जाता है, अर्थात् आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं । वह भी शरीर के साथ जन्मती और मृत्यु के साथ मर जाती है । मनुष्य चलता-फिरता पेड़-पौधा है ।

इसी प्रकार विज्ञान की ईश्वर के सम्बन्ध में भी यह मान्यता थी कि 'ईश्वर' नाम की कोई अलग वस्तु नहीं । प्रकृति के नियमों को ही कोई चाहे तो ईश्वर कह सकता है, पर इस मान्यता के रहते तो व्यक्ति को आदर्शों के साथ बाँधना भी किस प्रकार सम्भव हो सकता था ? फलतः अनैतिकता का माहौल बनता चला गया और उससे सामाजिक संगठन को अपार क्षति पहुँची ।

वस्तुतः मनुष्य की गरिमा वैयक्तिक आदर्शवादिता और सामाजिक मर्यादा के पालन में है । अन्धविश्वासी प्रचलनों को छोड़कर उपयोगी अनुबन्ध स्वीकारने पर ही वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का ढर्रा ठीक प्रकार चल सकता है । "अन्धेर नगरी-बेबूझ राजा" की उक्ति चरितार्थ करने पर तो पारस्परिक स्नेह, सहयोग और उदार व्यवहार के सारे आदर्श ही नष्ट हो जाते हैं । क्योंकि तथाकथित विज्ञानवाद के फेर में मनुष्य को नियन्त्रण रखने के लिए मात्र राजकीय कानून ही शेष रह जाते हैं, जिनसे बच निकलना मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी के लिए तनिक भी कठिन नहीं है ।

अस्तु, चेतना और सम्पदा के बीच तालमेल बिठाये रखने के लिए उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श चरित्र की महती आवश्यकता रहती है । अधकचरे विज्ञान की मान्यताएँ उस उत्कृष्टता की जड़ें काटती हैं, जिनके सहारे मनुष्य श्रेष्ठ बनता और दूसरों को श्रेष्ठ बनाता है, स्वयं उठता और दूसरों को उठाता है ।

विज्ञान ने धर्म के सम्बन्ध में जो विकृत मान्यताएँ बनायी थीं, उसका परिणाम जब वैयक्तिक जीवन और समाज व्यवस्था के क्षेत्र में अराजकता जैसा दीखने लगा तो प्रतीत हुआ कि यह मान्यताएँ उसी उपयोगितावाद का समर्थन करेंगी, जिसमें बड़ी मछली छोटी को खा जाती और बड़ा पेड़ नीचे के पौधों की खुराक का अपहरण कर लेता है । यह "जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला जंगली कानून यदि मनुष्य में भी अपनाया जाने लगा, तो समर्थों की बन पड़ेगी और असमर्थ धरती पर से मिट जायेंगे ।"

विज्ञान ने पिछली शताब्दी की मान्यताओं में उसके गुण-दोष देखते हुए नये सिरे से विचार किया है और जो पिछले दिनों कहा जाता था, उसमें आमूल-चूल परिवर्तन भी किया है ।

सृष्टि की कार्यविधि कितनी व्यवस्थापूर्ण है, यह 'ईकालॉजी' सिद्धान्त का पर्यविक्षण करने पर सहज ही समझा जा सकता है । सृष्टि के किसी भी पक्ष की जाँच-पड़ताल की जाय तो उसमें एक घटक दूसरे घटक के साथ अनवरत सहयोग करता दिखाई पड़ता है । इतनी बुद्धिमत्ता पूर्ण सांसारिक व्यवस्था और मानवी प्रकृति के भीतर पग-पग पर लागू होने वाले 'ईकालॉजी' सिद्धान्त को देखते हुए हर किसी को सहज मान्यता बनती है कि संसार को कोई बुद्धिमान स्रष्टा होना चाहिए, जो राह बताने और भूल सुधारने की योग्यता से सुसम्पन्न है । आकाश में इतने सारे ग्रह-नक्षत्रों की भगदड़ और उनका स्वभाव यदि क्रमबद्ध न हो तो संसार में सुख-शान्ति नाम की कोई वस्तु ही शेष न रहे ।

यही सिद्धान्त यदि हम मानव की प्रतिभा के अनायास ही सम्भावित समय से पूर्व विकसित होने, विलक्षण क्षमताओं से सुसम्पन्न होने वाले उदाहरणों पर लागू करें तो पाते हैं कि कोई न कोई ऐसी व्यवस्था जरूर है जो पूर्व जन्म के संचित संस्कारों को, ज्ञान सम्पदा आदि को पीढ़ी दर पीढ़ी अथवा एक जन्म से दूसरे में पहुँचाने में महती भूमिका निभाती है । अब तो मरणोत्तर जीवन के इतने अधिक प्रमाण ढूँढ़ निकाले गए हैं, जिनसे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि आत्मा की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और वह काया के न रहने पर भी किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखती है । यह अधकचरे विज्ञान की भूतकालीन मान्यताओं का खण्डन है ।

मानवी अन्तःकरण में आदर्शों के निर्वाह की आकांक्षा है । उसके प्रतिकूल आचरण करने पर अन्तर्द्वन्द्व खड़ा हो जाता है और उस आधार पर शारीरिक और मानसिक रोगों की झड़ी लग जाती है । शरीर मात्र रक्त-माँस के आधार पर ही निरोग नहीं रहता,

वरन् उसके प्रत्येक घटक को मानसिक विद्युत शक्ति का भी असाधारण प्रभाव सहना पड़ता है । असन्तोष, उद्वेग, रोष, आक्रोश जैसे विकारों के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व हर किसी की दृष्टि में हेय ठहरता है । साथ ही शरीर और मन में अनेकों प्रकार की अव्यवस्थाएँ उभरने लगती हैं जो असाध्य रोगों का रूप ले लेती हैं । यह अनैतिकता का प्रत्यक्ष दुष्परिणाम है ।

देखा गया है कि आदर्शवादी चिन्तन, चरित्र और व्यवहार रखने वाले सर्वत्र सम्मान और स्नेह-सहयोग अर्जित करने तथा अन्तरंग-बहिरंग दोनों ही दृष्टि से समुन्नत स्थिति प्राप्त करते हैं । यह व्यवस्था पूरे समाज में गतिशील होते हुए यह स्पष्ट मानना पड़ता है कि चेतना के स्तर के साथ ही जीवन के उत्थान-पतन के अनेकों सूत्र जुड़े हुए हैं ।

विचारों की शक्ति को अब एक प्रकार की जीवनी शक्ति माना जाने लगा है, जिसके सहारे कर्म बन पड़ते हैं, परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और वे ही सुख-शान्ति अथवा प्रतिरोध-विक्षेप का निमित्त कारण बनती हैं । व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति बनता है, इसलिए दोनों को सही-सन्तुलित रखने के लिए हमें वही सोचते रहना चाहिए जो व्यक्तित्व की गरिमा बढ़ाने की दृष्टि से समग्र एवं उच्चस्तरीय हो ।

देश भक्ति, समाज सेवा, संयम, पुण्य परमार्थ जैसे आदर्श अपनाना आत्मिक प्रेरणा पर ही सम्भव है, क्योंकि इस प्रकार के आचरणों से तात्कालिक घाटा सहना पड़ता है । सत्परिणाम तो समय साध्य है, किन्तु महानता उन्हीं विशेषताओं तथा विभूतियों पर निर्भर है । यह उत्कृष्टता तथाकथित मनोविज्ञान के आधार पर नहीं बन पड़ती । क्योंकि प्रत्यक्षवाद में तत्काल लाभ को ही मान्यता मिलती है, जबकि कालान्तर में परिणामों के मिलने की बात को आत्मा की अमरता और सृष्टि में चल रही व्यवस्था के आधार पर ही सही सिद्ध किया जा सकता है । पाश्चात्य मनोविज्ञान की दृष्टि से तो मनुष्य और पशु एक ही बिरादरी के बनते हैं । इसलिए उनमें भी दया, करुणा, परोपकार जैसी धर्म-धारणाओं की अपेक्षा की जानी चाहिए, किन्तु पशु तो निरन्तर स्वार्थ-वृत्तियों से ही ग्रसित रहते हैं । फिर दान, सेवा, पुण्य, परमार्थ, आत्मीयता, देशभक्ति, त्याग बलिदान जैसे किसी आदर्श को अपनाने की बात तभी सम्भव हो सकती है, जब उनके द्वारा मानवी उत्कृष्टता को अपनाया जा सके । वैज्ञानिकों से लेकर हर उच्चस्तर के व्यक्तित्व को अपना स्वार्थ गौण करना पड़ता और लक्ष्य को प्रधानता देनी होती है । यहाँ तक कि उस मार्ग पर चलने वाले को कष्ट में रहते हुए भी सन्तोष एवं प्रसन्नता की आदत डालनी पड़ती है । इसके लिए प्रयत्न कर सकना पशु की स्थिति में नहीं बन पड़ता, जबकि तथाकथित वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार मनुष्य बन्दर से ही विकसित होकर बना है और बन्दर एवं पशु का समूचा आन्तरिक ढाँचा संकीर्ण स्वार्थपरता के ढाँचे में ही ढला है । उत्कृष्टता की प्रेरणा व उल्लास की मानवी प्रवृत्ति विकासवाद के तथाकथित सिद्धान्तों को झुठलाती है ।

अब विज्ञान की प्रगति के साथ वे सूत्र भी मिले हैं, जिनके आधार पर ईश्वर, आत्मा, कर्मफल, आदर्शवादिता जैसे तथ्यों को न केवल व्यक्ति एवं समाज की भलाई को ध्यान में रखते हुए, वरन् इन उच्चस्तरीय दैवी विभूतियों को विशुद्ध पदार्थ विज्ञान के आधार पर भी सिद्ध प्रतिपादित किया जा सकता है ।

पर यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य को पशु या पौधा कहने वाले विज्ञान की हर बात सही ही मानी जाय । मनुष्य की अपनी विशेषता और मर्यादा है और उनका समुच्चय 'धर्म' कहा जाता है । यहाँ धर्म शब्द का उपयोग सम्प्रदायवाद के अन्धविश्वासों के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा रहा । सम्प्रदाय रीति-रिवाजों के आधार पर बनते और चलते हैं । यह मान्यताएँ मनुष्यकृत हैं और एक समुदाय के लोग मिल-जुलकर जो ढर्रा अपना लेते हैं, वही ढर्रा सम्प्रदाय बन जाता है । उनमें मतभेद के साथ-साथ पूर्वाग्रह होना भी स्वाभाविक है । उस भावोन्माद में औचित्य पर विचार करने की गुंजाइश नहीं रहती । इन सम्प्रदायों ने ही कलह के बीज बोये और समाज की अखण्डता को चुनौती दी है । यदि यह मोटी बात समझाई जा सके कि धर्म और सम्प्रदाय दो अलग-अलग घटक हैं एवं धर्म का विकृत स्वरूप अनुपयुक्त प्रतीत होने पर उसका विरोध विज्ञान के द्वारा किया जाना चाहिए तो निश्चित ही विज्ञान की उपादेयता सर्वमान्य होगी ।

समष्टिगत हित की बात सोचें तो धर्म और विज्ञान के बीच असहयोग या विरोध का होना हर दृष्टि से मानव समाज के लिए अहितकर है । धर्म को मानवी आदर्शों का सार्वभौम आदर्श माना जाय और उसका विज्ञान के आविष्कारों तथा प्रयोगों पर अंकुश रहे, ताकि अणु बम, रासायनिक गैसें जैसे अवांछनीय निर्माण और प्रयोगों पर रोक लगे । विज्ञान का उपयोग मात्र लोकहित में ही किया जाय ।

इसी प्रकार आवश्यकता इस बात की भी है कि धर्म को विज्ञान की कसौटी पर कसा जाय और उसके विवेक, न्याय, सहयोग, स्नेह वाले पक्षों को भी मान्यता मिले । धर्म के नाम पर जितनी कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ, मूढ़-मान्यताएँ प्रचलित हैं, उन्हें धर्म के उच्च सिंहासन से पदच्युत करके सम्प्रदायों के खण्डहरों में जमा कर दिया जाय । नये या पुराने होने के नाम-पर किन्हीं मान्यताओं को श्रेष्ठ या निकृष्ट न ठहराया जाय ।

विज्ञान ने धर्म को प्रतिगामी बताकर खूब कोसा है और धर्म ने विज्ञान को छिछोरा कहकर गालियाँ दी हैं । इसलिए वे दोनों एक-दूसरे से दूर ही हटते गए हैं । फलस्वरूप दोनों ही क्षेत्रों में अराजकता फैली है । विज्ञान ने हर क्षेत्र में हिंसा का खुला समर्थन किया है और तत्वदर्शन की प्रत्येक मान्यता का उपहास उड़ाया है । ठीक इसी प्रकार धार्मिकों की दृष्टि में वैज्ञानिकों को आसुरी साधनों का सहायक सम्वर्धक कहा है । इससे चिढ़ बढ़ी है और परस्पर विग्रह का वातावरण बना है, जबकि होना यह चाहिए था कि धर्म अपने आपको विज्ञान की कसौटी पर खरा सिद्ध करने के लिए साहस जुटाता और प्रचलित मूढ़-मान्यताओं का निःसंकोच खण्डन करता । दूसरी ओर विज्ञान का भी यह कर्त्तव्य था कि धर्म की छत्रछाया में अपनी दिशा धारा का निर्माण करता, अपना उच्छृंखल उपयोग न होने देता, भविष्य में इसी समन्वय को अपनाना पड़ेगा । तभी विज्ञान के सहारे भौतिक और धर्म के सहारे आध्यात्मिकता का पथ प्रशस्त होगा । दोनों के समन्वय से समग्र सुख शान्ति का आधार खड़ा होगा ।

सही, सुखद और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकने योग्य अध्यात्म को प्रतिष्ठित करने के लिए यह आवश्यक है कि सुधारक वर्ग सामने आये । निहित स्वार्थों वाले सन्त-महन्त वंश और वेश के नाम पर धन और सम्मान की लूटमार करते रहने

वाले, लोगों को भ्रम जंजालों में फँसाने से बाज न आये, तो विचारशील लोगों का कर्त्तव्य है कि लोक मानस में वैसी प्रखर चेतना जगायें जो धर्म का स्वरूप पहचानने योग्य बुद्धिमत्ता का परिचय दे सके। साम्प्रदायिक दुराग्रहों में जो अनुपयुक्त अंश घुस पड़ा है, उसे छाँटकर कूड़े-करकट की तरह बुहार कर किसी कूड़ेदान में डाल दें। इस प्रकार का परिशोधित और परिष्कृत धर्म अध्यात्म ही विज्ञ समुदाय तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में मान्यता प्राप्त करने योग्य और लोक मानस के दबाव से वैज्ञानिक शोधों और प्रचलनों को नीतियुक्त धर्म सम्मत बना सकता है। यही समय की महती आवश्यकता है।

विज्ञान और अध्यात्म को साथ-साथ चलना होगा

विज्ञान और अध्यात्म अन्योन्याश्रित है। एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की गति नहीं। विज्ञान हमारे साधनों को बढ़ाता है और अध्यात्म आत्मा को। आत्मा को खोकर साधनों की मात्रा कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो उनसे मनुष्य भोगी, व्यसनी, अहंकारी और स्वार्थी ही बनेगा। महत्त्वाकांक्षाएँ मनुष्य को नीति तक सीमित नहीं रहने देतीं। आकुल-व्याकुल व्यक्ति कुछ भी कर गुजरता है, उसे अनीति अपनाने और कुकर्म करने में भी कोई झिझक नहीं होती। अध्यात्म चिन्तन को, आकांक्षाओं को, क्रिया को उन मर्यादाओं की परिधि में बाँधकर रखता है जिसमें व्यक्ति का चरित्र और समाज का व्यवस्था क्रम अक्षुण्ण बना रह सके। अस्तु दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र के समान रूप से उपयोगी हैं।

पुरुषार्थ के साथ प्रगति को जोड़ा जाना वैज्ञानिक दृष्टि है। जो होने वाला है, जो भाग्य में लिखा है, जो ईश्वर को करना है, सो होकर रहेगा। यह मान्यता अवैज्ञानिक है। जन्मपत्र के आधार पर कितने दिन जीना है यह निर्धारण करना मिथ्या है। अब से पचास वर्ष पूर्व रूस की औसत आयु २३ साल थी अब वह बढ़कर ६८ साल हो गई स्वीडन और स्विट्जरलैण्ड में वह बढ़कर ८० के करीब जा पहुँची जबकि हम भारतवासी ३२ वर्ष की औसत आयु से आगे नहीं बढ़ सके। इसमें भाग्य विधान नहीं पुरुषार्थ ही कारण है। भौतिक प्रगति के लिए चिन्तन और कर्तृत्व को विकसित करना विज्ञान है। जिसे अध्यात्म की ही तरह आवश्यक माना जाना चाहिए।

हमारा चिन्तन सर्वांगीण होना चाहिए न कि एकांगी। रोटी के बिना संन्यासी भी नहीं जी सकता। वह संसार को असार—माया, मिथ्या कहता भले ही रहे पर उन पदार्थों के बिना एक दिन का भी गुजारा नहीं जो 'माया' के अन्तर्गत आते हैं। पिछले दिनों हम ब्रह्मवाद के बढ़े-चढ़े प्रतिपादन करते रहे हैं और भौतिक क्षमताओं को उपेक्षित बनाये रहे हैं। फलतः उस एक-पक्षीय प्रगति ने हमें भौतिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया। इस दुर्बलता का लाभ विदेशी आक्रमणकारियों ने उठाया और हमें लम्बे समय तक गुलामी के सिकंजे में कसकर रखा।

भौतिक पदार्थों की विवेचना एवं उपलब्धि प्रस्तुत करने वाला विज्ञान मिथ्या नहीं हो सकता। वह सत्य है। सत्य के नियम होते हैं—झूठ के नहीं। विज्ञान नियमों पर आधारित है। स्वप्न का, मिथ्या का कोई नियम नहीं। यदि यह संसार मिथ्या होता तो उसमें कोई नियम क्रम दिखायी न पड़ता।

पिछले दिनों हमने वैज्ञानिक दृष्टि गवाँ दी और विवेक रहित श्रद्धा को छाती से लगाये रहे। फलतः पग-पग पर मार खाते रहे। विदेशी आक्रमणों से जूझने की भौतिक तैयारी न थी। मन्त्रों की अथवा देवताओं की शक्ति से सारे संकट पार होने की बात सोची जाती रही फलतः आक्रमणकारी सरलतापूर्वक सफल होते चले गए। यदि हमारे पास वैज्ञानिक दृष्टि होती तो यथार्थ चिन्तन सम्भव होता। आत्मा को परिष्कृत बनाने के लिए अध्यात्म को, शरीर को और समाज को परिपुष्ट करने के लिए समर्थता की आवश्यकता अनुभव करते और तदनुरूप साधन जुटाते। वैज्ञानिक दृष्टि का अर्थ है—मान्यताओं, आग्रहों, आस्थाओं की गुलामी से छुटकारा पाकर यथार्थता को समझ सकने योग्य विवेक का अवलम्बन। उसमें अन्धविश्वासों और परम्पराओं के लिए कोई स्थान नहीं। तथ्यों और प्रमाणों की कसौटी पर जो खरा उतरे उसी को अपनाना वस्तुतः सत्य की खोज है। इसे हटा देने पर अध्यात्म निष्प्राण ही नहीं, भ्रमोत्पादक और भय सम्वर्धक बन जाता है। हम निष्ठावान बनें, श्रद्धालु रहें, पर वह सब विवेक युक्त होना चाहिए। बुद्धि बेचकर मात्र परम्परावादी आग्रह अपनाये रहने से अध्यात्म का उद्देश्य और लाभ प्राप्त न हो सकेगा।

विज्ञान एवं धर्म अध्यात्म को एक-दूसरे का विरोधी तब कहा जाता है; जब यथार्थ चिन्तन की अवज्ञा करके किन्हीं पूर्वाग्रहों के साथ ही चिपटे रहने पर बल दिया जा रहा हो। हम यह भूल जाते हैं कि प्रगति की ओर हम क्रमशः ही बढ़े हैं और यह अनादि काल से चला आ रहा क्रम अनन्त काल तक चलता रहेगा। जो पिछले लोगों ने सोचा या किया था वह अन्तिम था उसमें सुधार की गुंजाइश नहीं। यह मान बैठने से प्रगति पथ अवरुद्ध हो जाता है और सत्य की खोज के लिए बढ़ते चलने वाले हमारे कदम रुक जाते हैं। विज्ञान ने अपने को मूर्त पूजा से मुक्त रखा है और पिछली जानकारियों से लाभ उठा कर आगे की उपलब्धियों के लिए प्रयास जारी रखा है। अस्तु वह क्रमशः अधिकाधिक सफल समुन्नत होता चला गया। अध्यात्म ने ऐसा नहीं किया उसने 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की नीति अपनायी। समय आगे बढ़ गया, पर आग्रह शीलता की बेड़ियों ने मनुष्य को उन्हीं मान्यताओं के साथ जकड़े रखा जो भूतकाल की तरह अब उपयोगी नहीं समझी जाती। पूर्वजों से आगे की बात सोचना उनका अपमान करना है ऐसा सोचना क्रमशः आगे बढ़ते चले आने के सार्वभौम नियम को झुठला देना है।

इस पृथ्वी के जन्म के समय क्या परिस्थितियाँ थीं और आदिम काल का मनुष्य कैसा था, इसे जानने के उपरान्त आज की परिस्थितियों के साथ तुलना करने पर मध्यवर्ती इतिहास देखना पड़ता है। उस निरीक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रगति क्रमशः ही सम्भव हुई है। आगे कदम बढ़ाने के लिए पैर को वह स्थान छोड़ना पड़ता है जहाँ वह पहले जमा हुआ था। पिछले स्थान से पैर न उठाया जाय तो वह आगे कैसे बढ़ सकेगा ? विज्ञान ने इस तथ्य को स्वीकारा और अपनाया है किन्तु अध्यात्म को न जाने क्यों इस प्रकार का साहस संचय करने में हिचकिचाहट रही है।

पिछले दिनों विज्ञान ने अपनी पूर्व निर्धारित ऐसी मान्यताओं को बहिष्कृत कर दिया जो किसी समय सर्वमान्य रही है; पर नवीनतम खोजों ने जिन्हें झुठला दिया है। इन बहिष्कृत मान्यताओं में कुछ इस प्रकार हैं—(१) सौरमण्डल का केन्द्र पृथ्वी है, (२) तारक का आकार विस्तार और उनकी एक-दूसरे से दूरी सम्बन्धी मान्यताएँ, (३) ग्रह तारक व्यक्ति विशेष पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, (४) पृथ्वी चपटी है, (५) पृथ्वी कुछ हजार वर्ष ही पुरानी है, (६) ऊपर से गिराने पर हल्की की अपेक्षा भारी वस्तु जल्दी नीचे गिरेगी, (७) वस्तुएँ तभी गति करती हैं अब उनमें बल लगाया जाय, (८) पदार्थ को ऊर्जा में नहीं बदला जा सकता, (९) ब्रह्माण्ड स्थिर है, (१०) प्रकृति रिक्तता (वैकुम) से घृणा करती है और कहीं पोल नहीं रखना चाहती, (११) जीव विज्ञान की किस्में अपरिवर्तनीय हैं, (१२) जीव उत्पत्ति के लिए अमुक जीव कोष ही उत्तरदायी है, (१३) पानी और हवा मूल तत्व है, (१४) परमाणु पदार्थ की अन्तिम न्यूनतम और अखण्डित इकाई है, आदि अगणित मान्यताएँ ऐसी हैं जिन्हें अवास्तविक ठहरा दिया गया है फिर भी उनके प्रतिपादनकर्त्ताओं का सम्मान यथावत् बनाये रखा गया है। कारण कि जिस समय उन्होंने यह मान्यताएँ प्रचलित की थीं उस समय की प्रचलित मान्यताएँ और भी अधिक पिछड़ी हुई थीं। उन दिनों उन प्रतिपादनों को भी क्रान्तिकारी माना गया है। प्रगति के पथ पर चलते हुए सत्य की दिशा में जो कुछ इस समय जाना माना गया है आवश्यक नहीं कि वह भविष्य में भी इसी तरह माना जाता रहे। इस बात की पूरी सम्भावना है कि अब की अपेक्षा भावी प्रतिपादन और भी अधिक क्रान्तिकारी माने जायें। ऐसी स्थिति का आज के वैज्ञानिक सहर्ष स्वागत करने के लिए तैयार हैं।

धार्मिक मान्यताओं में भी क्रमशः परिवर्तन होता आया है यद्यपि कहा यही जाता है कि धर्म सनातन और शाश्वत है। बारीकी से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म न तो अनादि और न अनन्त। वह स्थिर भी नहीं है और अपरिवर्तनशील भी नहीं। उसका जाने अनजाने क्रमिक विकास होता रहा है। इस स्थिति को सुधारवाद कहा जा सकता है। धर्म वेत्ता, मनीषी, अवतारी, देवदूत समय-समय पर इसी प्रयोजन के लिए अवतरित होते रहे हैं कि न केवल परिस्थिति को वरन् तत्कालीन लोक मनःस्थिति को भी बदलें। उन्होंने अपने से पूर्व के प्रचलनों के स्थान पर ऐसे प्रतिपादन प्रस्तुत किए जिन्हें उस समय निश्चित रूप से क्रान्तिकारी समझा गया है और तत्कालीन पुरातन पंथियों ने उसका घोर विरोध भी किया था।

ईश्वर सम्बन्धी आज की मान्यताएँ उसमें भिन्न हैं जो आदिम ने मनुष्य के अपने मस्तिष्क में स्थापित की थीं। देवताओं के रुष्ट और प्रसन्न होने का आधार और परिणाम—धर्म के नियम और प्रतीक-उपासनात्मक- कर्मकाण्ड और विधान आदि के सम्बन्ध में क्रमशः इतने अधिक परिवर्तन होते रहे हैं कि भूतकालीन मान्यताएँ न केवल विचित्र वरन् बहुत अंशों में अब के प्रतिपादनों में लगभग सर्वथा विपरीत पड़ते हैं। धर्म संस्थापक, सुधारक एवं अवतारी व्यक्ति वस्तुतः अपने समय की अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष परिस्थितियों मान्यताओं एवं प्रथाओं में—क्रान्तिकारी परिवर्तन करके सुधारवादी प्रतिष्ठापनाएँ करने वाले लोग ही थे।

यूरोप में इंग्लैण्ड के न्यूटन, इटली के गैलीलियो, पोलैण्ड के केपलर आदि वैज्ञानिकों ने अपने समय में क्रान्तिकारी वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादन किए थे। धार्मिक मान्यताओं में भारी सुधार प्रस्तुत कराने वाले मनीषियों में जर्मनी के लूथर, स्विट्जरलैण्ड के ज्विंगी, फ्रांस के केल्विन, स्कॉटलैण्ड के जोन नोक्स आदि अग्रणी रहे हैं। न केवल भारत में भी ऐसे ही अनेकानेक उदाहरण हैं वरन् समस्त विश्व में अपने ढंग से यह सुधारवादी प्रक्रिया चलती रही है। भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में सदा ही प्रगति की कुसमुसाहट जारी रही है। उसी ने मानव को उस स्तर तक पहुँचाया है जिसमें कि वह आज है।

जूलियन हक्सले ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि विज्ञान की तरह ही अध्यात्म का आधार भी तथ्यों को रखा जाना चाहिए। लोभ और भय से उसे मुक्त किया जाना चाहिए, काल्पनिक मान्यताओं का निराकरण होना चाहिए और चेतना को परिष्कृत करने की उसकी मूलदिशा एवं क्षमता को प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

विचार और कार्य, विश्वास और श्रद्धा, शंका और निराशा, ज्ञान और कर्त्तव्य, व्यक्ति और समाज, पदार्थ और आत्मा, जाति और सभ्यता, कथा और इतिहास, प्रेम और घृणा, त्याग और भक्ति, जैसे असंख्य प्रश्न अभी अनिर्णीत पड़े हैं। इस सन्दर्भ में अध्यात्म द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखकर शोध करना चाहिए और जो निष्कर्ष सामने आये उनसे मानव जाति को लाभान्वित करना चाहिए।

सामायिक परिस्थितियाँ या तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो दबाव देती हैं उनसे वैज्ञानिक अपने खोज प्रयासों के लिए दिशा एवं प्रेरणा उपलब्ध करते हैं। ठीक इसी प्रकार अध्यात्म वेत्ताओं को भी समय की माँग को पूरा करने के लिए विचारणा एवं श्रद्धा के शक्तिशाली चेतना तत्वों को नये सिरे से ढालना पड़ता है और उस प्रयोग का प्रचलन योजनाबद्ध रूप से करना पड़ता है।

विज्ञान और धर्म वस्तुतः मानव जीवन के दो ऐसे पहलू हैं जो अविच्छिन्न रूप से एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। उन्हें परस्पर विरोधी न तो माना जा सकता है और न रखा जाता है यदि वास्तविक प्रगति की सुस्थिर सुख-शान्ति की अपेक्षा हो तो इन दोनों महान् शक्ति स्रोतों को गाड़ी के दो पहियों की तरह समन्वित रहने और गतिशील रहने के लिए बाध्य करना होगा।

विज्ञान और अध्यात्म बनेंगे अब पूरक

सन्त विनोबा कहते थे—"धर्म और राजनीति के दिन लद चुके हैं। अब विज्ञान और अध्यात्म मानव पर हावी रहेंगे। वह दिन दूर नहीं जब यह समन्वय सार्थक रूप से सामने प्रस्तुत होगा।"

विज्ञान प्रत्यक्ष की कसौटी पर कसकर अपने सिद्धान्तों और आविष्कारों को मान्यता देता है। जो अन्वेषण इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते उन्हें रद्द कर दिया जाता है। फिर चाहे उसके पीछे कितना ही श्रम-धन या मूर्धन्यों का कर्मयोग ही क्यों न लगा हो। यह सत्य की खोज है—प्रकृति की पर्तों का रहस्योद्घाटन। इस सुदृढ़ आधार को अपना कर ही विज्ञान इतना आगे बढ़ा और सफल हुआ है।

५.२५ विज्ञान और अध्यात्म : परस्पर पूरक

भौतिक विज्ञान की तरह ही अध्यात्म विज्ञान है । उसका लक्ष्य भी चेतना पक्ष की प्रज्ञा और श्रद्धा का सार तत्व खोज निकालना है । इसलिए उसे भी सत्यान्वेषी कह सकते हैं और विज्ञान के समतुल्य ही कदम मिलाकर चलने वाला कह सकते हैं ।

पर यह दोनों ही एकांगी रहने पर अधूरे हैं । इन दोनों महाशक्तियों के समन्वय से ही वह विधा बन पड़ती है जो बिजली के ठण्डे और गर्म तारों के मिलने पर करेन्ट प्रवाह चलने के समकक्ष अपनी क्षमता और प्रामाणिकता का परिचय प्रस्तुत करती है । एक पहिए की गाड़ी चल नहीं सकती । एक हाथ से ताली बज नहीं सकती । समन्वय के बिना दोनों ही लंगड़े लूले रह जाते हैं । वह कहानी सर्वविदित है, जिसमें अंधे और पंगे ने पारस्परिक सहयोग से नदी पार की थी । विज्ञान अंधा है और अध्यात्म पंगा । दोनों को पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता है ।

भौतिक विज्ञान जिन आविष्कारों को करता है, उनमें क्रिया की सरलता मुख्य है । आविष्कार उपकरणों में पूँजी लगाने वाले मनचाहा लाभ कमाते हैं । उसके पीछे यह विवेक नहीं जुड़ता कि इससे किसी के साथ अन्याय तो नहीं हो रहा । कोई अनुचित लाभ तो नहीं उठा रहा । इसके अतिरिक्त उसे यह भी पता नहीं है कि इसके दूरगामी परिणाम क्या होंगे ? चिन्तन का विवेक पक्ष उसके साथ जुड़ नहीं पाया है । मात्र बुद्धि कौशल ने आविष्कार गढ़े हैं और इच्छित सुविधाएँ देने में मनुष्य का हाथ बँटाया है । यह सुविधाएँ कौन प्रयुक्त करता है ? किसलिए प्रयुक्त करता है ? और उसका अन्तिम परिणाम क्या होता है ? यह समझने बूझने की फुर्सत वैज्ञानिकों को नहीं है । वह ऐसे अस्त्र बना सकता है जो क्षण भर में जापान की तरह असंख्यों का प्राण हरण कर सकें—अपंग बना सकें । इस परिणति से निर्माता का कोई सम्बन्ध नहीं । वह अपनी प्रक्रिया की शोध और निर्माण क्षमता पर गर्व ही करता रहेगा । इस प्रकार स्वसंचालित यन्त्रों से बना कारखाना मालिक को कितना सुसम्पन्न बनाता है और कितने गरीब श्रमिकों की रोजी रोटी छीनता है । इस प्रसंग पर विचार करने की उसे कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि धर्म या दर्शन उसका विषय नहीं है । एक दिन में हजारों पशुओं का वध करने वाला बूचड़खाना लगा देना विज्ञान को सफलता का श्रेय प्रदान करता है । उसे इससे क्या कि उन नवनिर्मित उपकरणों से जो हो रहा है वह उचित है या अनुचित । विज्ञान विभिन्न नशे बनाने की फैक्टरियाँ लगाता चला जायेगा पर यह नहीं सोचेगा कि इस उत्पादन से कितनों का कितना अहित होगा ? भाव सम्वेदना एवं विवेक सम्मत दूरदर्शिता से उसका किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है । ट्रैक्टर कुछ ही दिन में टूट-फूट कर कबाड़ा बन जाता है, वह गोबर तक नहीं देता फिर भी प्रशंसा उनकी है जो मनुष्य को जल्दी एवं अधिक काम करने की सुविधा देते हैं । रासायनिक खाद जमीन की जीवन-शक्ति को नष्ट करती जाती है । कारखाने हवा और पानी में विष घोलते चले जाते हैं । इस परिणति पर विज्ञान क्यों विचार करे ? दूरगामी परिणति का निष्कर्ष निकालने के लिए माथापच्ची करना उसका काम नहीं है । उसका कार्यक्षेत्र जड़ पदार्थों तक सीमित है, अस्तु विवेचनात्मक विचारणा उसे प्रभावित नहीं करती ।

धर्म श्रद्धा पर अवलम्बित है । यह अन्ध श्रद्धा भी हो सकती है और बौद्धिक विभ्रम भी, व्यक्ति और समाज के लिए अभिशाप भी । उसके माध्यम से कितना धन और कितना समय श्रम बर्बाद होता है इसका पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि अवांछनीय प्रचलन आध्यात्मिकी दलदल से ही उगते हैं । प्रपंच और पाखण्ड उसी की देन हैं । अवास्तविक रंगीली दुनिया बेपर की उड़ान भरने का कौतुक कौतूहल उसी ने विनिर्मित किया है । सम्प्रदायों की मनुष्य जाति की यही देन है उसने मनुष्य को मनुष्य का दुश्मन बनाया है । दुराग्रह की विडम्बना से विष बीज बोये और झगड़े कराए हैं ।

असली धर्म वह है जिसे सम्प्रदाय नहीं, अध्यात्म कहना चाहिए । जो न्याय और विवेक का समर्थक है । जिसकी आधारशिला शालीनता, सहकारिता और उदारता पर रखी हुई है । जो आत्मा और परमात्मा की चर्चा इस लिए करता है कि मनुष्य कर्मफल की सुनिश्चितता पर विश्वास करे । भाव सम्वेदनाओं को महत्त्व देकर दया, प्रेम, करुणा, नम्रता, सेवा जैसी उदात्त आदर्शवादिता को अपनाये ।

भौतिक विज्ञान की क्रियाशीलता और आध्यात्मिकता की भाव सम्वेदना मिलकर जड़-चेतन का समन्वय कर सकती है और सुविधा सम्वर्धन के साथ-साथ भाव सम्वेदना को जोड़ सकती है । तब अध्यात्म को वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुरूप अपने आप को प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर कसे जाने के लिए तत्पर होना होगा । साथ ही यह भी बताना पड़ेगा कि अदृश्य की कल्पनाओं तक सीमित न रहकर अध्यात्म व्यक्ति को गरिमा सम्पन्न और समाज को सुव्यवस्थित बनाने में योगदान देता है । अन्धविश्वासों के दलदल में से निकालकर यथार्थता के राजमार्ग पर चल सकने का अवसर देता है ।

अध्यात्म विज्ञान का मार्गदर्शन करे, उसकी गतिविधियों का, नीतिमत्ता का, अनुशासन स्थापित करे, उसे अंकुश में रखे और मदोन्मत्त हाथी की तरह विनाश-विग्रह न रचने दे । साथ ही अध्यात्म भी अपना ऐसा स्वरूप विनिर्मित करे जिसमें प्रपंच-पाखण्ड और अन्धविश्वास की विडम्बनाएँ प्रवेश न पा सकें ।

धर्म का तात्पर्य अब सम्प्रदाय से ही समझा जा रहा है अन्यथा नैतिक नियम ही धर्म है । वे सर्वत्र एक जैसे ही हैं । इसलिए मानव धर्म एक ही हो सकता है, जिसे प्रकारान्तर से समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी नाम दिया जा सके । मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षण अथवा योगसाधना के प्रथम चरण यम और नियम आदर्शवादी तो हैं पर व्यवहार में साधारणजन सहज ही नहीं उतार सकते । इसलिए साम्प्रदायिक धर्म के दिन लद गए ऐसा कहा गया है । उसके स्थान पर अध्यात्म की प्रतिष्ठा होगी । अध्यात्म का एक शब्द में परिचय करना हो तो प्रामाणिकता और दूरदर्शिता उसे कह सकते हैं । भविष्य में न्याय और विवेक की प्रतिष्ठापना होगी ऐसा मानकर चला जा सकता है ।

राजनीति का सीधा अर्थ शासन व्यवस्था है, जिसमें सुरक्षा और सुव्यवस्था दोनों ही आती हैं । यह तो सदा से थी और सदा रहेगी । पर उनके साथ क्षेत्रवाद, भाषावाद आर्थिक विषमता, आपाधापी जैसे तत्व मिल जाने से वोटरों को बहकाकर चुनाव

जीतने जैसी अवांछनीयताएँ घुस पड़ने से ही राजनीति बदनाम हुई है। उसका स्थान एकता, समता और व्यापकता, सहकारिता ग्रहण कर सके तो समझना चाहिए कि राजनीति शब्द का शुद्धिकरण हो गया और वह सुव्यवस्था के रूप में विकसित हो गई।

अगले दिनों साम्प्रदायिकता और गुटबन्दी के दिन लदेंगे। विज्ञान को अध्यात्म का पूरक और अध्यात्म को विज्ञान का मार्गदर्शक बनकर रहना होगा। इसी में उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ सन्निहित हैं।

विज्ञान को पथ भ्रष्ट होने से रोका जाय

कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी की लारेंन्स वर्कले प्रयोगशाला के कई मूर्धन्य भौतिक विज्ञानियों ने पिछले दिनों मिलजुल कर ऐसी कान्फ्रेन्स बुलाई जिसमें दार्शनिक स्तर के भौतिक विज्ञानियों की एक बड़ी मण्डली सम्मिलित हुई।

इसमें भौतिकी के मूर्धन्य वैज्ञानिकों में से अनेकों की अभिव्यक्तियों का समावेश सम्भव हो सका था। एलिजावेथ रॉशर, माइकेल मर्फी, फ्रिटजाफ काप्रा, डेविड फिन्सेल्टाइन, गैरी जुकैव आदि ने इस विषय पर विचार व्यक्त किए कि—"क्या भौतिक विज्ञान अपने चरम लक्ष्य की दिशा में बढ़ रहा है? क्या हम वर्तमान रीति-नीति अपनाए रहकर वहाँ पहुँच सकेंगे, जहाँ पहुँचना विज्ञान के लिए उचित है? यदि नहीं, तो इसकी वैकल्पिक दिशा धारा क्या हो सकती है?"

कान्फ्रेन्स में व्यक्त किए गए विचारों का सार संक्षेप यह था कि हमने प्रारम्भ तो अच्छे उद्देश्य से किया और उसे देर तक सही दिशा में अपनाए भी रखा, पर अब आकर भटकने लगे हैं। मानवी प्रगति ही नहीं, शान्ति भी विज्ञान का लक्ष्य है। शान्ति विहीन प्रगति से काम चलेगा नहीं। हमें प्रकृति के रहस्योद्घाटन की तरह ही मानवी गरिमा के अनुरूप उपलब्धियों के उपयोग की मर्यादा बनानी चाहिए।

दूसरा विचार कान्फ्रेन्स का यह था कि अब प्रकृतिगत पदार्थ सत्ता ही सब कुछ नहीं मानी जा सकती। चेतना का स्वतन्त्र अस्तित्व भी प्रमाणित हो रहा है। अतएव चिन्तन को प्रभावित करने वाला तत्वदर्शन भी वैज्ञानिक शोध प्रयोजनों में ही सम्मिलित रहना चाहिए।

विज्ञान को पथ-भ्रष्ट होने से रोकने के लिए कितने ही मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने आवाज उठाई है और कहा है कि हमें अन्धी दौड़ नहीं दौड़नी चाहिए वरन् यह देखना चाहिए कि जो कमाया जा रहा है उसे ठीक तरह खाया और सही रूप में पचाया भी जा रहा है या नहीं।

इस सन्दर्भ में प्रोफेसर काप्रा की पुस्तक 'दि ताओ ऑफ फिजिक्स' और प्रो. जुकैव की 'दि डान्सिग ऑफ मास्टर्स' विशेष रूप से पठनीय हैं। वे अब से पाँच वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हुई थीं पर अपने प्रतिपादनों से सारगर्भित होने के कारण ही बहुत लोकप्रिय हुईं और देखते-देखते लाखों की संख्या वाले कई संस्करण बिक गए। इससे प्रतीत होता है कि विचारशील वर्ग की सहानुभूति किस ओर है। कोई नहीं चाहता कि विज्ञान को ऐसे अनुपयुक्त कार्य करने दिए जायें जैसे कि उसके द्वारा इन दिनों किए जा रहे हैं।

जॉर्जिया स्कूल ऑफ टेक्नोलॉजी के फिजिक्स डायरेक्टर प्रो. फिन्सेन्टाइन ने अपने प्रतिपादनों में इस बात पर बहुत जोर दिया है कि कुछ समय के लिए आविष्कारों को विराम देकर यह सोचा जाय कि उन्हें किन के लिए किन प्रयोजनों के लिए नियोजित किया जाय। बिना पर्यवेक्षण किए और उद्देश्य निर्धारित किए ऐसे ही घुड़दौड़ मचाने का परिणाम ऐसा भी हो सकता है जिसके कारण जन-साधारण को-विज्ञान क्षेत्र ही नहीं, स्वयं वैज्ञानिकों को भी विपत्ति में फँसना पड़े।

सत्य और तथ्य को खोजना भी विज्ञान का विषय होना चाहिए। उपलब्धियों का उपयोग किस प्रयोजन के लिए हो, उन पर आधिपत्य किन का हो, अनुचित प्रयोगों की रोकथाम कैसे हो? यह प्रसंग भी विचारणीय है उसकी उपेक्षा होने पर जिसे उत्कर्ष में लगना चाहिए था, वह विनाश में जुट सकता है।

विज्ञान को अब भौतिकी तक ही सीमित न रहकर आत्मिकी के क्षेत्र में प्रवेश करना होगा। यह मन्थन विश्व मनीषा के मस्तिष्क में दिनों दिन अधिकाधिक गतिशील होता जा रहा है। प्रोफेसर काप्रा का एक विचारोतेजक लेख प्रख्यात अमेरिका पत्रिका 'सटर्डे रिव्यू' में छपा है। वे कहते हैं—"प्रकृति के रहस्योद्घाटन में अब तक मनुष्य की तार्किक बुद्धि ने काम किया है। अब बदलती परिस्थितियों में एक नया आधार अपनाया जाना आवश्यक हो गया है। वह है इन्ट्यूशन अर्थात् अन्तः प्रज्ञा। अब तक अन्तःप्रज्ञा की नीतिमत्ता और भाव सम्वेदना की उपेक्षा होती रही है। समय आ गया है कि उसे उसकी समुचित प्रतिष्ठा प्रदान की जाय।" उनके विचारों को स्वामी रंगनाथानन्द ने अपनी पुस्तक 'साइन्स एण्ड रिलीजन' में बड़ी भाव कुशलता से व्यक्त किया है।

प्रगतिशील मनीषा के सामने कुछ नये तथ्य और नये संकल्प हैं। उसे खोजना है कि क्या मानवी प्रगति पदार्थ सम्पदा के माध्यम से ही हो सकती है अथवा उसमें नीति मत्ता और भाव-सम्वेदनाओं के समावेश की भी आवश्यकता है? सोचना होगा कि क्या सामर्थ्य साधनों से ही मनुष्य बलिष्ठ बन सकता है, अथवा उसके व्यक्तित्व में शालीनता की मात्रा भी बढ़नी चाहिए।

पदार्थजन्य सुविधा साधनों का कितना ही महत्त्व क्यों न हो, उनका सदुपयोग माइन्ड स्टफ—मनःतत्व में उत्कृष्टता उत्पन्न किए बिना सम्भव नहीं हो सकता। दुरुपयोग से तो अमृत भी विष बनता है। कपड़ा सीने वाली सुई प्राण घातक अस्त्र बन सकती है। विज्ञान सुविधाएँ उत्पन्न करे, उसमें उसकी सराहना है, पर साथ ही इसमें निन्दा भी कम नहीं कि उसके कारण मनुष्य विलासी, लालची और आक्रामक प्रकृति के बनते जायें, छीना-झपटी का मत्स्य न्याय अपनाए और प्रतिशोध की आग जलाकर अपने को ही भस्मसात कर लें। इस स्तर की दुर्गति उत्पन्न करने में यदि विज्ञान का उपयोग होने लगा तो समझना चाहिए कि उसने उस उद्देश्य का परित्याग कर दिया जिसमें उसे सत्य और तथ्य को ढूँढ़ना ही नहीं उपलब्धियों का विवेकपूर्ण उपयोग भी कराना था।

विज्ञान का काम है कि वह अन्धविश्वासों से मुक्ति दिलाए। साथ ही उस श्रद्धा का उत्पादन अभिवर्धन भी करे जो मानवी गरिमा को अक्षुण्ण रखने में सहायता कर सके। आइन्सटाइन कहते रहते थे कि "विज्ञान के बिना धर्म अन्धा है और धर्म के

बिना विज्ञान लँगड़ा ।" अन्धे और पंगे ने मिलकर नदी पार की थी । इन दोनों का परस्पर सघन सहयोग और भी अधिक आवश्यक हो गया है ।

कार्य कुछ भी क्यों न हो उसके पीछे उद्देश्यों का समावेश होना चाहिए । उपलब्धियाँ किसी भी स्तर की क्यों न हों उनका उपयोग सही प्रयोजन के लिए—सही मनुष्यों द्वारा होना चाहिए अन्यथा उपयोगी भी अनुपयुक्त घातक बन सकता है । प्रकृति के रहस्योद्घाटन से कितनी ही चमत्कारी क्षमताएँ विज्ञान क्षेत्र में उपलब्ध हुई हैं । उनके सहारे सुविधा साधनों का सम्वर्धन भी हुआ है । पर साथ ही यह संकट भी सामने है कि दुरुपयोग होने पर जलाई गई माचिस की तीली इस विश्व वैभव को भस्मसात भी कर सकती है, जिसके निर्माण में अनेकानेक मनीषियों की श्रमशीलता एवं बुद्धिमता का सुनियोजन हुआ है । विचारशीलता वैज्ञानिक क्षेत्र के सूत्र संचालकों को इस तथ्य पर नये सिरे से विचार करने के लिए बाधित कर रही है कि उनके प्रयासों का उपयोग मानवी प्रगति एवं सुख-शान्ति के निमित्त हो, न कि दुष्टता के परिपोषण और पिछड़े वर्ग को अधिक गिराने-निचोड़ने में उसे प्रयुक्त किया जाने लगे ।

विज्ञान सद्ज्ञान के साथ जुड़े

आदिम युग की सभ्यता से आज की तुलना करते हैं, तो धरती-आसमान जितना अन्तर दिखाई पड़ता है । प्रकृति की शक्तियाँ तो आदिकाल से विद्यमान हैं, पर उनका अधिकतम उपयोग मनुष्य बीसवीं सदी में ही कर सका है । बुद्धि के क्रमिक विकास और उस क्रम में भौतिक शक्तियों के आविष्कार की एक लम्बी कहानी है । आदिम युग में मानव जाति की एक मात्र शक्ति उसका बाहुबल था । पालतू पशुओं से काम लेना मनुष्य ने थोड़े समय बाद सीखा । प्रागैतिहासिक काल में पत्थर फेंकने वाले रस्सीनुमा यन्त्र, धनुष, बाण, जहाज चलाने के डाँड, गाड़ी का पहिया आदि औजारों के बनाने की विद्या विकसित हुई, पर मनुष्य एवं पशु की शक्ति ही अधिक काम आती थी । जब तक उन छोटे-छोटे काष्ठ तथा पाषाण यन्त्रों का प्रयोग होता रहा, प्रगति की गति अत्यन्त धीमी थी । अधिक सूक्ष्म जड़ शक्तियों में पानी, हवा, अग्नि की खोज तथा उनके प्रयोग की विधि का हाथ लगना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी । अग्नि के आविष्कार ने नई कड़ी जोड़कर प्रगति को द्रुतगामी किया । पवन चक्की, रहट, डायनामाइट जैसे शक्ति स्रोतों के उद्भव से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में वाष्प शक्ति तथा विद्युत शक्ति की खोज एक महान् घटना थी, जिससे कम खर्च में अधिक शक्ति पाने का सूत्र हाथ लगा । बैलगाड़ी पर चलने वाले मानव की गति इंजन की गति से और भी बढ़ गई । विमान के उद्भव से तो जैसे उसके पंख लग गए हों, वह उन्मुक्त आकाश में बे-धड़क सैर करने लगा । विश्व की जो दूरी अत्यधिक लगती थी, वह खुले अन्तरिक्ष के एक मुहल्ले जैसी लगने लगी । सदियों से दीपक की टिम-टिमाती लौ में विश्व वसुधा का सौन्दर्य रात्रि की कालिमा के साथ ही ढका प्रतीत होता था, उसे उजागर होने का अवसर विद्युत प्रकाश से मिला । अब रात्रि और दिन में विशेष अन्तर नहीं रहा । अन्धकार में एक अनजान सा भय मन में समा जाता था, वह प्रकाश के कारण जाता रहा ।

हजारों-लाखों वर्ष तक यह किसी की कल्पना भी नहीं थी कि पैरों से रौंधे जाने वाले नगण्य कणों में भी इतनी अधिक शक्ति छुपी हो सकती है । वह एक अद्भुत विलक्षण घटना थी, जिस दिन अणु शक्ति की खोज हुई । 'इशा वाश्य—मिदं सर्वं' की उपनिषद उक्ति सुनी जाती थी, पर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति पहली बार अणु शक्ति के रूप में हुई । बीसवीं सदी के मध्य भाग में मनुष्य द्वारा प्रयुक्त शक्ति का नब्बे प्रतिशत भाग जड़ शक्ति थी, जो कोयले, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस तथा जल शक्ति से प्राप्त होती थी । यदि मनुष्य की माँसपेशियों की सहायता से इतनी मात्रा में शक्ति उत्पन्न करनी हो तो ४२ अरब मनुष्यों को पूरे वर्ष सप्ताह में ४० घण्टे कार्य करना आवश्यक होता । इस तथ्य को इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि बीसवीं सदी के मध्य भाग में यदि विश्व द्वारा प्रयुक्त शक्ति को समान रूप से बाँटा जाता तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए १७ नौकर काम करते दृष्टिगोचर होते । पर यह कार्य प्रकृति स्रोतों ने सम्भाला । शक्ति के उत्पादन तथा उपयोग दोनों ही में असामान्य रूप से वृद्धि हुई । अब तो प्रगति का मापदण्ड इस आधार पर किया जाता है कि किस देश में मशीनों को चलाने के लिए कितनी अधिक शक्ति संचित हुई है । आर्थिक दृष्टि से बीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी विशेषता विश्व के कार्य संचालन के लिए अधिक शक्ति प्राप्त करना है । खनिज परम्परा, पेट्रोलियम, नाभिकीय संयन्त्र आदि स्रोतों से अधिकतम परिमाण में ऊर्जा प्राप्त करने का प्रयत्न हर देश द्वारा किया जा रहा है । उल्लेखनीय है कि १९०० से १९५० के बीच विश्व की आबादी ५० प्रतिशत बढ़ी तथा शक्ति का उत्पादन १०० प्रतिशत । जनसंख्या वृद्धि तथा शक्ति उत्पादन के अनुपात का अन्तर बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में और भी अधिक बढ़ा है । रचनात्मक एवं ध्वंशात्मक दोनों ही दिशाओं में संचित शक्ति का व्यापक प्रयोग होने लगा है । शक्ति का बाहुल्य तथा उस पर नियन्त्रण का अभाव संघर्षों, द्वन्द्वों और युद्धों को जन्म देता है । समाज शास्त्रियों का मत है कि बीसवीं सदी के मध्य के बाद विश्व में तनावों एवं संघर्षों के बढ़ने का एक प्रमुख कारण प्रचंड शक्ति स्रोतों का हाथ लगना भी है ।

बुद्धि के विकास एवं उसकी खोजी विज्ञान की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है । एक सदी पूर्व जो संसार का स्वरूप था, उसकी काया ही पलट गई । एक सदी पूर्व इस धरती पर रहने वाला कोई व्यक्ति यदि किसी प्रकार पुनः अपने उसी भौतिक शरीर में आ जाय तो थोड़ी देर के लिए उसे विश्वास करने में कठिनाई होगी कि यह संसार वही है अथवा कोई दूसरा । यह बदला हुआ नया स्वरूप संसार को विज्ञान ने प्रदान किया है ।

भौतिक विज्ञान की नितनई खोजें कितनी ही महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ जोड़ती जा रही हैं । रेडियो, टेलीविजन, आटोमेटिक मशीनें, टेलिस्कोप अब पुराने समय की बात हुई । अन्तरिक्ष में मनुष्य के पदार्पण से कितनी ही असम्भव जान पड़ने वाली बातों को साकार करने की सोची जा रही है । अन्तरिक्ष में बस्तियाँ बसाने, निवास करने तथा औद्योगिक विकास तक की बातें सोची जा रही हैं । अभी तो यह असम्भव जान पड़ रही हैं पर कल सम्भव हो जायें तो कुछ आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए ।

अन्तरिक्ष क्षेत्र में अड्डा बनाने, कब्जा करने की तिकड़में सभी प्रगतिशील देशों द्वारा की जा रही हैं ।

चिकित्सा विज्ञान के क्रमिक विकास से मनुष्य की औसत आयु निरन्तर बढ़ती जा रही है । पुरातन समय में मानव बीमारियों का गुलाम था । जानकारियों एवं उपचारों के अभाव में मलेरिया, हैजा, टी.बी. जैसे रोगों से प्रतिवर्ष करोड़ों की संख्या में लोग मरते थे, पर वह स्थिति अब समाप्त हुई । इन बीमारियों का उपचार ढूँढ़ लिया गया है तथा इनसे मरने वालों की संख्या में औसतन भारी कमी आयी है । एक्स-रे, रेडियोथिरेपी, लेसरथिरेपी जैसी कितनी ही सूक्ष्म शक्तिशाली पद्धतियाँ उपचार के लिए प्रयोग होने लगी हैं । दवाओं से आगे बढ़कर प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों से उपचार होने लगना चिकित्सा जगत की एक ऐसी क्रान्ति है, जिसके साथ कितनी ही आशावादी सम्भावनाएँ जुड़ी हुई हैं ।

विज्ञान ने दैनन्दिन जीवन की सुविधाएँ ही नहीं मनोरंजन के लिए अगणित साधन भी प्रदान किए हैं । एक स्थान पर बैठे-बैठे सुदूर चल रहे कार्यक्रमों को कोई भी व्यक्ति सुन तथा देख सकता है । देश ही नहीं विदेशी सांस्कृतिक कलापों का भी आनन्द उठाया जा सकता है । हजारों-लाखों मील दूर के दृश्यों एवं घटनाओं को दूरदर्शन कार्यक्रमों में देख सकना एक सामान्य सी बात हो गई है । मिनटों में धरती के एक छोर पर जो घटना घट रही है दूसरे छोर पर उसका समाचार मिल सकता है । लाखों मील दूर बैठे व्यक्ति इस तरह बातचीत कर सकते हैं जैसे आमने-सामने खड़े हों । पुराने समय में खेलों का स्वरूप अविकसित था सीमित समुदाय के लोग ही भाग लेते थे, पर अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाएँ आयोजित होने लगी हैं । अगणित प्रकार के खेलों का विकास एवं विस्तार हुआ है । इससे अधिक मनोरंजन करने का सुअवसर हर किसी को मिला है ।

विज्ञान के विकास की यह संक्षिप्त कहानी है जिसके साथ कितने ही भले-बुरे पक्ष एवं सम्भावनाएँ जुड़ी हुई हैं । इस भौतिक प्रगति के साथ मनुष्य का स्तर भी विकसित होना चाहिए था । सर्वांगीण प्रगति की बात तभी बनती है । पर जिस मति के साथ भौतिक प्रगति हुई, मनुष्य का स्तर उस अनुपात से नहीं बढ़ सका । बुद्धि का बढ़ना प्रगति का परिचायक नहीं । ऐसे अवसर इतिहास में पहले भी आ चुके हैं जब भौतिक प्रगति चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी । महाभारत काल में भी भौतिक उन्नति शिखर पर थी, इसके प्रमाण में अनेकों तथ्य मिलते हैं, पर दुर्बुद्धि के कारण वह प्रगति नेस्तनाबूद हो गई । युद्ध में उस सभ्यता का अन्त हो गया । समीक्षकों का कहना है कि—भौतिक प्रगति उत्थान, अवसान के क्रमिक सोपानों से होकर गुजरती है । टिकाऊ उस समय बनती है जब उसे सम्भालने वाले श्रेष्ठ व्यक्तित्व हों अन्यथा निरंकुश बुद्धि अपनी संकीर्णता के कारण उसका समुचित लाभ नहीं उठा पाती, विग्रह, संघर्ष खड़े होते हैं जो समूची सभ्यता को ले डूबते हैं । आज की प्रगति की समीक्षा करने पर ऐसी आशंका स्पष्ट दिखाई पड़ती है । बुद्धि, बुद्धि से लड़ रही है और उसका शास्त्र विज्ञान से । सद्बुद्धि की न तो उपयोगिता समझी गई और न ही उसके विकास की बात सोची गई । सर्वत्र बुद्धि की ही प्रशंसा की गई । आइन्स्टीन की सराहना हर किसी ने की पर बुद्ध, ईसा को किसी ने नहीं पूछा । आइन्सटीन पैदा करने के लिए जेनेटिक इन्जीनियरिंग जैसे प्रयोग तो चल रहे हैं पर महावीर पैदा करने के लिए कोई प्रयोग उपचार की व्यवस्था नहीं है ।

प्रगति की समीक्षा गहराई से की जाय तो यह बात समझते देर नहीं लगती कि सांस्कृतिक, नैतिक एवं मानवीय दृष्टि से वर्तमान सभ्यता तेजी से अवमूल्यन की शिकार हो रही है आसन्न यह एक ऐसा संकट है जिसकी चर्चा तो सर्वत्र होती है पर उसके निवारण के लिए कोई उपाय नहीं सुझाई देता । संसार के इतिहास में अपनी ही प्रगति अपने ही आविष्कारों से इतना अधिक भयभीत मनुष्य कभी नहीं हुआ होगा जितना कि आज है ।

जितना विज्ञान से उपलब्ध हुआ है, वह पर्याप्त है । सुविधाएँ न बढ़ें तो भी कुछ समय तक काम चल सकता है । औसत बुद्धिमता न बढ़े तो भी कुछ हर्ज नहीं । पर बुद्धि इसी तरह निरंकुश बनी रहे तो समस्त मानव जाति को एक भयंकर खतरे का सामना करना पड़ सकता है । यह खतरा उल्टी बुद्धि को उलटने पर ही टल सकता है । यह तभी सम्भव है जब सद्ज्ञान की, सद्बुद्धि की तथा सुसंस्कृत व्यक्तित्व की महत्ता समझी जाय । उसे विकसित करने, ढालने के लिए उसी प्रकार के प्रयत्न-पुरुषार्थ किए जायें जिस तरह के वैज्ञानिक क्षेत्र में चलते हैं । विज्ञान से कम महत्त्व सद्ज्ञान का न आँका जाय । ऐसे शिक्षण वातावरण की महती आवश्यकता है जो सद्ज्ञान का अमृत छिड़ककर साढ़े चार अरब मनुष्यों के मन मस्तिष्क में लगे दावानल को शान्त कर सकें—उन्हें परितृप्त बना सकें ।

ज्ञान-विज्ञान पर विनाश दैत्य का आधिपत्य

ज्ञान से मनुष्य की उत्कृष्टता निखरती है और विज्ञान क्षमता एवं प्रतिभा का परिचय देता है । यह युग विज्ञान का है, बुद्धिवाद का भी । बुद्धिवाद इस श्रेणी का, जिसमें स्वार्थ के लिए परमार्थ की पूरी तरह उपेक्षा की जाय । आधुनिक दर्शन का विकास एवं विस्तार तो हुआ है, पर उसका लक्ष्य और स्तर बुरी तरह गिर गया है ।

यही बात विज्ञान के सम्बन्ध में भी है । इन दिनों वैज्ञानिकों की बिरादरी एक ही खोज करने में लगी है कि अधिक से अधिक लोगों का विनाश सरलतापूर्वक करने के साधन किस प्रकार जुटाए जायें । इन दिनों इसी प्रयोजन के लिए दिन-रात अथक श्रम कर रहे हैं । बदले में उन्हें ऊँची तनख्वाह तथा सुविधाएँ मिल रही हैं । इससे अधिक उन्हें चाहिए क्या ?

दो महायुद्ध बीत चुके । तीसरे की तैयारी अब धीमी पड़ चुकी है, फिर भी आधुनिक विज्ञान इसी प्रयास में लगा है कि जिस प्रकार दो युद्धों में करोड़ों व्यक्ति मारे गए और विपुल संख्या में उनके परिवार बिलखते रह गए । इस बार उससे भी अधिक भयंकर विनाश लीला रचकर दिखाई जाय । इसलिए हर देश सोचने लगा है कि उसके पास ऐसे वैज्ञानिक उपकरण हों कि वह समस्त संसार को पैरों तले रौंदकर स्वयं ही अधिपति बन सके । ऐसे ही आयुध उपकरण निरन्तर बन भी रहे हैं ।

एक समय था जब वैज्ञानिकों का ध्यान जन सुविधा की ओर था । वे अपना कर्त्तव्य, धर्म यह समझते थे कि संसार में सुविधा

और उन्नति के साधन विकसित किए जायें । उस मनःस्थिति में कुछ ही समय के भीतर उतनी मशीनें आविष्कृत हुईं जिनकी प्रशंसा तब भी हुई थी, अब भी हो रही है और भविष्य में भी आधुनिक सुविधाओं के विकास के बावजूद होती रहेगी ।

घरेलू उपयोग की वस्तुओं में सेफ्टी रेजर, थर्मस, धुलाई की मशीन, रेफ्रिजरेटर तथा स्टेन लैस स्टील के बर्तन इसी बीच बनने लगे थे । वातानुकूलित कमरे, इलैक्ट्रिक सैल, नकली रेशम, बिजली के बल्ब, प्लास्टिक का सामान, वैल्डिंग, पनडुब्बी जैसे आविष्कार भी इन्हीं दस वर्षों में हुए ।

सन् १९१० से १९३० के बीच उपरोक्त आविष्कारों में इतना अधिक सुधार और विकास हुआ कि वे कुछ व्यक्तियों तक सीमित न रहकर सर्वसाधारण के काम आने लगे । ग्रामोफोन और उनके रिकार्ड बनने लगे । सिनेमा घर हर बड़े कस्बे में स्थापित हो गए । पेट्रोल का स्थान डीजल लेने लगा ।

अब ऐसे आविष्कारों की आवश्यकता नहीं रही, यह बात नहीं है । बढ़ती हुई जनसंख्या ने मनुष्य की अगणित आवश्यकताएँ बढ़ा दी हैं । गरीबी और बेकारी निरन्तर बढ़ रही है । इसे दूर करने के लिए छोटे-छोटे ऐसे यन्त्र बनाने की अत्यधिक आवश्यकता है जो छोटे गाँवों में भी लगाए जा सकें और बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, किन्तु यह बन पड़ना तभी सम्भव है जब हमारे मूर्धन्य राजनैतिक तथा वैज्ञानिक जन-साधारण की आवश्यकताओं पर ध्यान दे सकें । प्रतिभा का, मति का सही उपयोग हो सके, आज तो सबके सिर पर क्षमताओं को कुण्ठित करने वाला महाविनाश का दैत्य ही अपना आधिपत्य जमाए हुए है । नीतिमत्ता को बुद्धिमत्ता पर अपना अंकुश अगले दिनों जमाना ही होगा । उसी में मानव के धरती पर अवतरण की सार्थकता है ।

क्या विज्ञान मनुष्य की अन्तरात्मा को भी छीन लेगा ?

वैज्ञानिक प्रयोग विगत कुछ दशकों से ऐसी गतिविधियों में संलग्न हैं जिन्हें देखते हुए एक प्रश्न चिन्ह सामने आ खड़ा हुआ है कि क्या ये हमें सही दिशा में ले जा रहे हैं । जब तक विज्ञान का सृजनात्मक प्रयोग होता रहा, तब तक उसे पूजा जाता रहा पर अब स्थिति बदलती जा रही है । घातक प्रयोग युद्ध तक ही सीमित नहीं रहे वरन् अब मानव की आकृति-प्रकृति से भी छेड़खानी करने लगे हैं ।

प. जर्मनी के न्यूरोलॉजिस्ट डॉ. ऐलन जैक एवं मार्क रोजनेबर्ग इन दिनों जेनेटिक इन्जीनियरिंग एवं न्यूरो बायो केमिस्ट्री के क्षेत्र में प्रयोग कर यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि क्या सुविकसित मस्तिष्क की प्रतिभा का स्वल्प विकसित अथवा इसके ठीक विपरीत परिवर्तन सम्भव है ? क्या मनुष्य को नितान्त बुद्धिहीन, मात्र आदेश मानने वाला एक रोबोट बनाया जा सकता है ।

इलेक्ट्रीकल एस्ट्रीमुलेशन ऑफ ब्रेन (ई. एस. बी.) पद्धति के अनुसार अब कई एशियन विश्वविद्यालयों ने आंशिक रूप से मस्तिष्क की धुलाई (ब्रेन वाशिंग) में सफलता प्राप्त कर ली है । अभी तो बन्दर, कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, चूहे जैसे छोटे स्तर के जीवों पर ही प्रयोग किए गए हैं । इनमें आहार की रुचि, शत्रुता, मित्रता, भय, आक्रमण आदि के सामान्य स्वभाव को जिन परिस्थितियों में जिस प्रकार चरितार्थ करना चाहिए उसे वे बिल्कुल भूल जाते हैं और चित्र-विचित्र प्रकार का आचरण करते हैं । बिल्ली के सामने जब एक चूहा छोड़ा गया तो वह आक्रमण करना तो दूर उससे डर कर एक कोने में जा छिपी । क्षण भर में एक-दूसरे पर खूनी आक्रमण करना, एक आधे मिनट बाद परस्पर लिपटकर प्यार करना ये परिवर्तन मस्तिष्क में किए गए विद्युतीय प्रवाह से देखे गए ।

डॉ. डेलगाडो ने मस्तिष्क के अचेतन भाग को प्रभावित करने के सन्दर्भ में कितने ही वैज्ञानिक प्रयोग करके दिखाए और सफल रहे । एक प्रयोग में 'अली' नामक एक बन्दर को केला खाने के लिए दिया गया । केला खाते समय ही उसे ई. ई. जी. के माध्यम से सन्देश दिया गया कि केला खाने की अपेक्षा भूखा रहना चाहिए तो बन्दर ने भूखा रहते हुए भी केला फेंक दिया ।

दूसरे प्रयोग में डॉ. डेलगाडो ने दो खूँख्वार साँड़ों को सार्वजनिक प्रयोग में दिखाया । दोनों साँड़ों के दो इलेक्ट्रोड (एरियल) लगाकर डेलगाडो उनके मध्य खड़े हो गए । दोनों साँड़ ऐसी भयंकर मुद्रा में खड़े थे जैसे वे दोनों डॉ. डेलगाडो पर आक्रमण करने वाले ही हों । जैसे ही वे डेलगाडो के पास पहुँचे, उन्होंने अपने ट्रान्समीटर द्वारा शान्त रहने का आदेश दिया तो दोनों साँड़ फुसकारते भर रहे । धीरे-धीरे शान्त हो प्रेम से दो बकरियों की तरह खड़े हो गए ।

मस्तिष्कीय क्षमता को ही व्यक्तित्व का विकास समझने वाले वैज्ञानिकों ने इन दिनों इस सन्दर्भ में कई दृष्टियों से विचार किया और कई उपाय सोचे हैं । वे यह भी मानते हैं कि परिवार एवं समाज के वातावरण का मनुष्य चिन्तन और स्वभाव पर असर पड़ता है । इसलिए शिक्षा तथा परम्परा के क्षेत्र में कुछ ऐसा समावेश होना चाहिए जिसके प्रभाव से आज का मनुष्य कल अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान, साहसी और सद्गुणी हो सके ।

इसके अतिरिक्त उनका विशेष ध्यान इस बात पर है कि 'ब्रेन वाशिंग' के कोई कारगर उपाय ढूँढ़ निकाले जायें । इस सन्दर्भ में कम्युनिस्ट देश सबसे आगे हैं । उन्होंने अपने विरोधियों का सफाया करके सिरदर्द से छुटकारा पाने के उपायों में अत्यधिक उत्साह दिखाया है । वहाँ हल्का-फुल्का यह प्रयोग भी किया गया है कि प्रतिपक्षी मान्यता वालों पर ऐसे मनोवैज्ञानिक दबाव डाले जायें ताकि वे अपनी पूर्व मान्यता को छोड़कर नये निर्देशों को हृदयंगम करने के लिए स्वेच्छापूर्वक सहमत हो जायें ।

अठारहवीं सदी के अन्त में सर विलियम पेनफील्ड (१८८६) ने ब्रेन सेण्टर्स को जानने के लिए जो प्रयोग आरम्भ किए, उनकी शृंखला अभी चल ही रही है । मस्तिष्क विज्ञानी कहते हैं कि स्थूल मस्तिष्क के दो भाग होते हैं—एक पुराना एनिमल ब्रेन (पूर्व संचित पाशविक कुसंस्कारों एवं अन्तःप्रवृत्तियों से युक्त) तथा दूसरा ऊँचे स्तर का नया मस्तिष्क जो मात्र मनुष्य को ही मिला है । पहले में दर्द, भय, भूख, यौनेच्छा, थकान, आक्रमण आदि के केन्द्र होते हैं, जो मुख्यतः जीवन को बनाए रखने एवं नस्ल को जीवित रखने के लिए जरूरी है । जो दूसरा नया मस्तिष्क है उसमें और भी अधिक विकसित प्रीफ्राण्टल लोब होते हैं जिनका कार्यक्षेत्र विशुद्ध रूप से भौतिक है । तर्क बुद्धि, सिविक सेन्स, आपसी

व्यवहार, योजनाबद्ध कार्यक्रम का निर्धारण आदि यहीं निश्चित किए जाते हैं । भावनात्मक आवेगों पर नियन्त्रण यहीं से होता है ।

उदाहरण के लिए—प्रयोगशाला में विद्युतीय इलेक्ट्रोडों के माध्यम से बिल्ली की मानसिक स्थिति ऐसी बना दी गई कि वह चूहे पर आक्रमण का स्वभाव भूल कर उससे डरने लगी । खरगोश और शेर की कुश्ती कराई गई तो शेर दुम दबाकर एक कोने में जा बैठा और खरगोश ने इस प्रकार हमला बोला मानो उसे अपनी बहादुरी—जीत का पूरा भरोसा हो । आमतौर से पशु अपने सजातियों से ही यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं, पर इलेक्ट्रोडों से प्रभावित जीवों ने अन्य जाति वालों के साथ यौन सम्बन्ध स्वीकारने में उत्साह दिखाया । इसी प्रकार वे अपने अभ्यस्त आहार को छोड़कर अन्य प्रकार का आहार अपनाने लगे । अधिक नींद लिए बिना या बिना सोये ही बहुत समय तक स्वेच्छापूर्वक कार्यरत रहने में भी सफलता मिल गई ।

विद्युतीय उपचारों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के प्रयोग भी पिछले दिनों चलते रहे हैं । इनमें से एक है प्राण प्रहार—हिप्नोटिज्म, दूसरा है—रासायनिक उपचार । मस्तिष्क को एक सीमा तक इन दोनों साधनों से प्रभावित करने में सफलता बहुत दिनों से मिलती आ रही है । अब उन साधनों को नये ढंग से, नये प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त करने की बात सोची गई है । हिप्नोटिज्म से प्रभावित व्यक्ति अपनी स्वाभाविक मनःस्थिति को भूल जाते और प्रयोक्ता के सन्देशों को शिरोधार्य करते हुए वैसा ही सोचते और करते हैं । हिप्नोटिज्म का भी बायो मैग्नेटिज्म से जुड़कर अब आधुनिकीकरण हो गया है ।

चीन के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक डॉ. चू-फुट सेन ने एक बार प्रदर्शन के तौर पर बड़ा ही मनोरंजक प्रयोग किया । प्रयोग के लिए छः कैदियों को चुना गया, जिनमें तीन महिलाएँ भी थीं । छहों को एक कमरे में लाया गया । फिर उनके सिर के पिछले हिस्से के थोड़े बाल साफ करके उसमें अत्यन्त पतला तार जोड़ दिया । यह साधारण दीखने वाला तार मस्तिष्क की अनेक ताड़ियों से जोड़ा जा सकता था और उनके नियन्त्रण के लिए तार का सम्बन्ध एक रेडियो ट्रान्जिस्टर रिसीवर से कर दिया गया फिर उन कैदियों के सामने २० दिन का एक छोटा-सा पिल्ला लाकर छोड़ा गया । उनकी स्थिति सामान्य बनी रही और वे पिल्ले को देखकर प्रसन्न होते रहे । इसी बीच डॉ. चू-फुट सेन ने उस तार का सम्बन्ध मस्तिष्क की भय नाड़ी से जोड़कर ट्रांजिस्टर चालू कर दिया । विद्युत प्रवाह का एक निश्चित आवृत्ति पर दौड़ना शुरू हुआ ही था कि उस छोटे से कमरे में तूफान खड़ा हो गया । कैदी 'शेर-शेर' चिल्लाते हुए भागे । कई तो इतने भयभीत हुए कि उन्हें तत्काल मूर्छा आ गई । जैसे ही उसे बन्द किया गया कैदी फिर शान्त हो गए ।

मिशीगन विश्वविद्यालय के डॉ. बर्नार्ड एग्रानोफ ने सुनहरी मछलियों पर यह प्रयोग किया कि उन्हें यदि भोजन के बाद प्यूरोमाइसिन नामक मारक औषधि खिला दी जाय तो वे यह भूल जाती हैं कि वे भोजन कर चुकी हैं । ये प्रयोग अब मनुष्यों पर भी किए जा रहे हैं, विशेष कर कम्युनिस्ट देशों में भी । इन प्रत्यनों का तात्पर्य है मनुष्य की अन्तरात्मा का समापन । यह प्रयत्न यदि सफल हो सके तो मनुष्य समुदाय भेड़ों की झुण्ड की तरह रह जायेगा, जिसे किसी भी दिशा में चलने के लिए एक चरवाहा बाधित कर सके ।

विज्ञान की छलांग मात्र शरीर तक ही क्यों ?

बौद्धिक दृष्टि से आज का मानव प्राचीन काल की तुलना में कई गुना आगे है । प्रतिभा के चमत्कार सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं । एक सदी की वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानवी प्रगति ने सदियों आगे की बड़ी छलांग लगा ली हो । एक सदी पूर्व के मनुष्य जब बीते जमाने की तुलना आज के अन्तरिक्षीय युग से करते हैं तो उन्हें सब कुछ चमत्कारी प्रतीत होता है और सहज ही यह विश्वास नहीं होता कि बदले रूप में यह पुरानी ही दुनिया है । एक ओर बौद्धिक विकास और उसकी असाधारण उपलब्धियों को देखकर पुलकन होती है तथा मानवी पुरुषार्थ की अनायास ही प्रशंसा करनी पड़ती है । पर दूसरे ही क्षण मानव की वर्तमान स्थिति पर नजर जाती है तो उस प्रसन्नता के निराशा में बदलते देर नहीं लगती ।

बाह्य परिस्थितियों की दृष्टि से संसार में बहुत कुछ परिवर्तन-प्रतिकूलताओं का अनुकूलन हुआ है । पर मनुष्य के साथ उल्टा ही हुआ है । मानसिक सन्तुलन की दृष्टि से बीसवीं सदी का आदमी एक सदी पूर्व के मानव की तुलना में अधिक असन्तुलित है । उसकी प्रसन्नता सरसता, प्रफुल्लता, सुख और चैन जाने कौन ले गया ? उत्तेजित, उद्विग्न, चिन्तित, विक्षिप्तों-अर्धपागलों की ही पीढ़ी बढ़ती और चहुँ ओर डोलती दिखाई पड़ रही है । श्मशान में जलते रहने वाले उद्विग्न भूतों की तरह बहुसंख्यक आबादी की मानसिक चिन्ता एवं असन्तोष की अग्नि में जलते सहज ही सर्वत्र देखा जा सकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे-जैसे साधन सुविधाएँ बढ़ रही हैं, उसी अनुपात में मनुष्य की सुख-शान्ति भी छिनती जा रही है । यह इस बात का परिचायक है कि प्रगति रूप में कहीं कोई भारी भूल हो रही है ।

विगत कुछ दशकों में चिकित्सा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है । निदान एवं उपचार की नई तकनीकें विकसित हुईं हैं । आधुनिकतम वैज्ञानिक यन्त्रों ने वे कार्य सम्भव कर दिखाए हैं जो पहले असम्भव समझे जाते थे । एक्स-रे द्वारा भीतरी अंगों की टूट-फूट तथा आन्तरिक अवयवों में आये व्यक्तिरेक की जानकारी प्राप्त कर लेना अब बीते युग की बात हो गई । उस प्रणाली में कितनी ही नई तकनीकें जुड़ चुकी हैं । कम्प्यूटर युक्त एक्सियल टोमोग्राफी द्वारा उससे भी सूक्ष्म जानकारियाँ प्राप्त करना सम्भव हो गया है । एक्स-रे को टी. वी. कैथोड के ट्यूब तथा कम्प्यूटर से संलग्न कर देने पर शरीर के भीतरी अंगों तथा प्रणालियों में आयी गड़बड़ियों, ब्रेन ट्यूमर, रक्त क्षति, पित्त वाहिनी की बाधाओं आदि का पता लगाया जा सकता है । चिकित्सक इलेक्ट्रोनिक मानीटरिंग द्वारा तीन माह तक के गर्भस्थ भ्रूण को भी देख सकता है । अल्ट्रा साउण्ड सिस्टम पर आधारित प्रणाली द्वारा गर्भ में पल रहे भ्रूण का प्रगति क्रम मालूम किया जा सकता है ।

'कोरोनरी बाई-पास सर्जरी' के विकास से रुग्ण हृदय धमनी वालों को नवजीवन मिला है । कृत्रिम हृदय आरोपण में आशातीत

सफलता मिली है । आँखों के सफल प्रत्यारोपण से अन्धों को भी नेत्र ज्योति मिलने लगी है । अल्ट्रासोनिक तरंगों से सही निदान एवं समर्थ उपचार की विधियाँ खोज निकाली गई हैं । अब अल्ट्रा साउण्ड स्कैन में हाइ फ्रीक्वेन्सी पर ध्वनि तरंगों द्वारा चिकित्सकों को सूक्ष्मतम जानकारियाँ प्राप्त करना सुलभ हो गया है ।

क्रायो एवं माइक्रो सर्जरी के क्षेत्र में आशातीत सफलताएँ मिली हैं । तीन आयामीय दृश्य दर्शाने वाले माइक्रोस्कोपों के सहयोग से सर्जरी की पहुँच शरीर के उन मर्मस्थलों तक हो चुकी है जिसे पहले असम्भव समझा जा रहा था । पहले प्रायः मस्तिष्क के ट्यूमर, पिट्यूटरी ग्लैण्ड तथा रीढ़ के ऑपरेशन इस भय से नहीं किए जाते थे कि अधिक उग्र समस्याएँ न पैदा हो जायें, पर ऐसे नाजुक ऑपरेशन भी अब होने लगे हैं । उनमें सफलताएँ भी मिलने लगी हैं ।

बायोमेडिकल क्षेत्र मे हुई इन शोधों से नई सफलताएँ वैज्ञानिकों को हस्तगत हुई हैं । कोलबिया प्रेस विटेरियन मेडिकल सेन्टर न्यूयार्क सिटी के प्रो. सी. एण्ड्रिव तथा एल. वैसेट ने टूटी हडिड्यों को जोड़ने में इलेक्ट्रिक हिलिंग की नई तकनीक विकसित की है । यह विलक्षण प्रयोग हजारों व्यक्तियों पर किया जा चुका है । इन वैज्ञानिकों का मत है कि खतरनाक सर्जिकल ऑपरेशनों की तुलना में यह प्रविधि कहीं अधिक सुरक्षात्मक तथा सफल है । क्लीण्टन कैम्पेयर नामक चिकित्सा शास्त्री का कहना है कि आर्थोरीडिक सर्जरी के क्षेत्र में यह नई खोज वरदान सिद्ध हुई है ।

कम्प्यूटरों का प्रयोग विगत दिनों तक गणनाओं के लिए होता रहा है पर अब वे चिकित्सा के क्षेत्र में चिकित्सक जैसी भूमिका निभाने जा रहे हैं । इलेक्ट्रॉनिक डाक्टर्स के रूप में कम्प्यूटरों का विकास विशेषज्ञों द्वारा कर लिया गया है । पिट्स वर्ग विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों ने 'सेड्रेसियस' नामक ऐसे इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर का निर्माण किया है जो अधिक तीव्रता तथा कुशलता से चार हजार रोगों का निदान, लक्षण, शारीरिक पहचान आदि कर सकता है । इस प्रणाली के आविष्कारक डॉ. जैकमेयर का कहना है कि इसे पूर्णतया विकसित होने तथा प्रभावशाली बनने में कुछ वर्ष और भी लग सकते हैं । पर इस खोज से चिकित्सा जगत में एक क्रान्तिकारी शुरूआत होने जा रही है ।

कुछ इलेक्ट्रॉनिक चिकित्साविदों ने सांख्यिकी विश्लेषण पद्धति के नये प्रयोगों द्वारा पेट के तीव्र दर्द के कारणों का पता लगाने में सफलता पायी है । जन्मजात हृदय रोग तथा आत्महत्या के इच्छुक रोगी की पहचान भी इस प्रणाली से हो सकती है । समय रहते आने वाले संकटों से—सुरक्षा भी हो सकती है । प्रायः बड़े, सुविधा सम्पन्न चिकित्सालयों में अब तक कम्प्यूटर्स का अधिकतम उपयोग रोगी को प्रवेश दिलाने तथा खर्चे का बिल बनाने तक सीमित रहा था पर उनका कार्यक्षेत्र अब निदान एवं औषधि निर्धारण में भी होने की सम्भावनाएँ बन गई हैं ।

कम्प्यूटर अब मनोवैज्ञानिक परीक्षण का कार्य भी सम्भालेंगे । पिट्सवर्ग के वैज्ञानिकों ने ऐसी तकनीक खोज निकाली है जिससे पिनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनल्टी इन्वेन्टरी (एम. एम. पी. आई.) जैसे समय साध्य मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी अत्यन्त कम समय तथा खर्च में सम्पन्न हो सकेंगे । इस परीक्षण के लिए एक चिकित्सक को हजारों मनोवैज्ञानिक साहित्यों के सन्दर्भ ढूँढ़ने तथा याद रखने होते हैं जो उसके लिए कठिन हैं । पर कम्प्यूटर्स के लिए यह अब कठिन नहीं रहा ।

सारा विवेचन यही तथ्य दर्शाता है कि आज के युग के मानव की शारीरिक देख-भाल एवं सुविधा विकास के लिए अगणित प्रकार के प्रयास चल रहे हैं । विज्ञान क्षेत्र की मूर्धन्य प्रतिभाएँ इस प्रयोजन में लगी हुई हैं । पर एक भयंकर भूल यह होती चली आ रही है कि मानवी व्यक्तित्व के सूक्ष्म घटकों—मन और अन्तःकरण की भारी उपेक्षा होती रही है । मनुष्य को विभिन्न इन्द्रियों से युक्त शरीर मात्र मान लेने की गल्ती ही है जिसने जीवन से जुड़ी अगणित समस्याओं को जन्म दिया है । मानसिक समस्वरता एवं गुणों के विकास पर ध्यान न देने—अन्तःकरण की भाव-सम्वेदनाओं को पोषण न मिलने से वे स्रोत सूखते चले जा रहे हैं जिसके कारण मनुष्य सही अर्थों में देव पुत्र माना जाता रहा है । अच्छा तो यह हो कि विज्ञान के प्रयास अध्यात्म विवेचनों से संगति बिठाते हुए भाव क्षेत्र में भी चल पड़े । उसे मात्र मशीनी मानव नहीं सत्प्रवृतियों की पक्षधर सद्‌गुणों की समुच्चय इकाई बनाने हेतु अग्रसर हों ।

यान्त्रिक जीवन में हमारी खो रही सम्वेदना

आज के नागरिक की दिनचर्या, रहन-सहन और आदतें देखकर उसकी जो तस्वीर बनती है वह यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि मनुष्य का जीवन भी एक यन्त्र की तरह हो गया है । पाषाण, लौह और ताम्रयुगीन विभाजनों के साथ वर्तमान सन्दर्भों को देखा जाय तो इसे निश्चित ही यन्त्र युग कहना पड़ेगा । क्योंकि मनुष्य का जीवन और यान्त्रिक उपकरण परस्पर इतने घनिष्ठ हो गए हैं कि उन दोनों को एक-दूसरे से विलग कर पाना ही असम्भव है । उस क्षण की स्थिति को कल्पनांकित ही नहीं किया जा सकता, जब कि मनुष्य का जीवन यन्त्रों की सुविधा से एकदम रहित हो जाय । मिल कपड़े बनाते हैं, कारखानों में खाद्य पदार्थ तैयार होते हैं, साबुन, तेल, ईंधन आदि सब किसी न किसी रूप में मशीनों से सम्बद्ध मिलेंगे । यहाँ तक कि जिस रोशनी का हम रात दिन उपयोग करते हैं वह भी रात-दिन मशीनों द्वारा ही पैदा होती है और हम तक पहुँचाई जाती है ।

हम जिन परिस्थितियों, वातावरणों तथा वस्तुओं के संसर्ग में रहते हैं, उनका हम पर प्रभाव पड़ता है और हमारा उन पर । मनुष्य से समाज बनता है और समाज मनुष्य को बनाता है । मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होता है और वातावरण मनुष्य को प्रभावित करता है । प्रभाव पड़ने या पैदा होने की यह प्रक्रिया दोनों ओर से होती है एकांगी कभी नहीं, लेकिन यन्त्रों के सम्बन्ध में कुछ और ही सच्चाई है । सिलाई की मशीन पाँव चलाने से चलती है और पाँव रोक देने पर बन्द हो जाती है । बाद में वह कोई गति नहीं करती, परन्तु दिन-रात सिलाई मशीन पर बैठने वालों के पाँव कभी-कभी अपने आप भी चलने लगते हैं । यह आदतन प्रभाव है ।

आदतन प्रभाव की तरह ही मनुष्य भावनाओं से भी प्रभावित होता है और आजकल 'यान्त्रिक-सभ्यता' की समीक्षा करते समय इसी भावनात्मक प्रभाव की चर्चा की जाती है ।

हाँलाकि संसर्ग के अतिरिक्त इसके और भी कई कारण हैं । इसी तथ्य की ओर इशारा करते हुए प्रसिद्ध विचारक नीत्शे ने कहा था—"यन्त्र जितनी तीव्रता से प्रगति कर रहा है उसी अनुपात से मनुष्य की धर्म सम्वेदना का ह्रास हो रहा है । समस्त भौतिक सुविधाओं के सम्पन्न हो जाने पर भी मनुष्य इतना आत्म-विपन्न हो रहा है कि बीसवीं शती के अन्त तक वह एकदम खोखला हो जायेगा और भयंकर रूप से दुःखी रहने लगेगा ।"

इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए एक आधुनिक विचारक का कथन है कि—"आज के युग में जीने वाले व्यक्ति की स्थिति विचित्र कम और शोचनीय अधिक है । समस्त मानवीय सम्बन्ध अब केवल वित्तीय स्तर पर बनते हैं अन्य सभी माध्यमों को या तो नगण्य घोषित कर दिया गया है अथवा फिर यान्त्रिकता से जकड़े हुए नये समाज में वे किसी अज्ञात प्रक्रिया द्वारा स्वतः डूबते जाते हैं ।" चूँकि मनुष्य समाज का एक अंग है और इस नाते उसे दूसरे अन्य अंगों के सम्पर्क में आना पड़ता है । मानवता का तकाजा तो यह है कि हम अपने पड़ौसियों के दुःख-सुख में काम आयें, उनकी खैर-खबर रखें और कुशल क्षेम से अवगत रहने के साथ-साथ समय-समय पर काम भी आयें । परन्तु पड़ोसियों के प्रति यह आत्मीयता का भाव धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है । महानगरों की स्थिति तो यह है कि वहाँ रहने वाला एक व्यक्ति अपने पड़ोसी के दुःख-दर्द में साथ देने के स्थान पर उसे जानता तक भी नहीं । शहरों और कस्बों के नागरिकों को भी अपनी समस्याओं से कम ही फुर्सत मिल पाती है और इस फुर्सत को पड़ोसियों से मेल-जोल बनाने के स्थान पर सिनेमा देखने या सैर करने में गुजारना अधिक अच्छा समझते हैं ।

पड़ोसियों से कटे रहने तक ही बात सीमित रहती तो इतनी शोचनीय स्थिति नहीं आती । आश्चर्य तो तब होता है जब लोगों को अपने रिश्तेदारों और सम्बन्धियों से सम्पर्क रखने का भी समय नहीं मिलता । यही नहीं आदमी अपनी बीमार पत्नी के पास बैठने की अपेक्षा दिन भर की थकान उतारने के लिए रेडियो सुनना और घूमने निकल जाना अधिक अच्छा समझता है । कई अभिवावक ऐसे हैं जो अपने बच्चों की पढ़ाई में क्या स्थिति है—इससे अनिभज्ञ रहते हैं । कई लोग ऐसे हैं जिन्हें अपने शहर में रहने वाले मित्रों और सम्बन्धियों के घर न जाये ही महीनों बीत चुके हैं अर्थात् मनुष्य समाज में रहता तो है अवश्य, पर समाज के प्रति उसके क्या उत्तरदायित्व हैं—या तो वह अनभिज्ञ है अथवा जान-बूझकर उनकी उपेक्षा करता है ।

इतना एकाकीपन होने के बावजूद भी मनुष्य आर्थिक दृष्टि से किसी से सम्पर्क सूत्र कायम करने में चूकना नहीं चाहता । कई लोगों को अक्सर यह कहते सुना जाता है—फूफाजी के पास जाने से क्या फायदा अब तो वे चाय तक के लिए नहीं पूछते । जैसे चाय पीना ही मिलने का उद्देश्य हो और इन सबका कारण यन्त्र युग को बताया जाता है । कारण कि यन्त्रों की बाढ़ ने मनुष्य का श्रम हल्का किया है और उसकी सुविधाएँ बढ़ाई हैं । इसलिए उपभोग सामग्रियों से बाजार भरे पड़े हैं । जो समर्थ हैं, वे उन्हें खरीद सकते हैं तथा उनका उपभोग कर सकते हैं । इस कारण असमर्थ और विपन्न व्यक्तियों का ध्यान भी उस ओर आकृष्ट होता है तथा वे भी उनका वैसा ही उपयोग करने के लिए ललक उठते हैं । बेशक उन्हें खरीदने के लिए अतिरिक्त आर्थिक साधन चाहिए । इस समर्थता और असमर्थता ने सम्पन्नता को ही प्रतिष्ठा का बिन्दु बना दिया है । जिसे हर कोई बींधना चाहता है और उसे बींधने में इस कदर लवलीन है कि उसे अपने आस-पास की चीजें भी नहीं दिखाई देतीं ।

यान्त्रिक संसर्ग का जहाँ तक प्रश्न है मशीनी वातावरण में रहने का अपना एक अलग प्रभाव है । लेकिन उससे भी अधिक बुरी तरह प्रभावित और आत्म-विपन्न कर देने वाली स्थिति बदलते दृष्टिकोण से उत्पन्न हुई है । जिसने वित्तीय-दशा को ही सर्व प्रधान बना दिया और उसे पूरा करने के लिए मनुष्य इतना मदमत्त होकर दौड़ने लगा कि एकाकीपन, सन्त्रास, आत्म-विपन्नता, स्वकेन्द्रित मनोवृत्तियाँ, कुण्ठाएँ और विक्षेप उसे चारों ओर से छेदने लगे हैं । मशीनों के संसर्ग का एक दिन व्यवस्थित कार्यक्रम है, जो सुखी जीवन की एक निश्चित गारण्टी है, परन्तु उसके बावजूद और-और कारण जो यान्त्रिक सभ्यता के दोषों से विषाक्त करते हैं मनुष्य को तनावग्रस्त तथा असुरक्षित बनाते हैं ।

आज संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं और एकाकी परिवार अधूरी-अधकचरी स्थिति में जीते हुए अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने की आशा बाँधे रहते थे । अपने माता-पिता और सहोदर भाई-बहिनों से सिकुड़ कर मानवी गतिविधियों का केन्द्र पत्नी, बच्चे और स्वयं तक ही सीमित हो गया है । जो संयुक्त परिवार किसी प्रकार टूटने से बचे हुए हैं, जिनके सदस्य एक दूसरे के प्रति अपने कुछ दायित्व अनुभव करते हैं और उन्हें पूरा करने के लिए सजग रहते हैं, वे भी नौकरी और रोजगार करने के लिए बिखरे पड़े हैं । कहने का अर्थ यह कि आर्थिक स्थिति मजबूत करने और सुदृढ़ बनाने के चक्कर में हम और अधिक दीन-हीन व एकाकी बनते जा रहे हैं । यह भी कहा जा सकता है कि जो लोग अपने माता-पिता और सहोदर भाई-बहिनों के लिए ही कुछ करना व्यर्थ समझते हों वे पड़ोसियों और मित्रों के लिए कुछ करने की क्या सोचेंगे ?

अकेलेपन का यह मानसिक प्रभाव नगरीय लोगों में अधिकांशतः है । इसकी तुलना सौ वर्ष पुराने समाज से करते हुए लिखा गया है—"उन्नीसवीं सदी का मनुष्य अपनी आत्म-सम्पन्नता के बल पर ही अनेक दुःख झेलकर भी मानवीयता से भ्रष्ट नहीं हो पाता था और उसकी इस आत्म-सम्पन्नता के पीछे संयुक्त परिवार प्रथा, धर्म और संस्कारों का बहुत बड़ा हाथ था । जबकि बीसवीं सदी का मनुष्य इतना बर्हिप्रविष्ट हो गया है कि सामान्यतया स्वयं को नगण्य व एकाकी मानता हुआ किसी भी क्षण अपने आपको दूसरों के हाथ में छोड़ देने के लिए विवश हो जाता है या मजबूरन अपने को तैयार करता है ।"

यान्त्रिक सभ्यता में मनुष्य की दृष्टि का केन्द्र बिन्दु बदला है और उसने मानवीयता के स्थान पर आर्थिकता को व्यक्ति की प्रत्यभिज्ञा माना है । वही उसका अपना जीवन भी एकरस और उसके कारण विद्रोही बना है । हाल ही में पिछले वर्षों ब्राक्स में एक अद्भुत घटना घटी । एक बस ड्राइवर अपनी बस समेत अनायास लापता हो गया । तीन-चार दिन बाद वह बस समेत फ्लोरिडा में पकड़ा गया । इस बीच अखबारों में वह बड़ी चर्चा का विषय बन गया । बस कम्पनी के मालिकों ने जब उससे भागने का कारण पूछा तो उसने बताया कि पिछले सात वर्षों से वह एक

ही रूट पर बस चलाते-चलाते और उन्हीं स्थानों पर बार-बार बस रोकते-रोकते बुरी तरह बोर हो गया है । परिवर्तन के लिए ही उसे फ्लोरिडा आने का निर्णय लेना पड़ा ।

जैसा कि कहा जा चुका है कि मनुष्य के पास पहले की अपेक्षा आज अधिक सुनिश्चित और व्यवस्थित कार्यक्रम है । परन्तु उसकी ऊबाऊ एकरसता ने मनुष्य की चेतना को एकरस बना दिया है और वह इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए एकदम से तैयार नहीं है । इस उबाऊ एकरसता के कारण वह बोरियत अनुभव करता है और उसे तोड़ देने के लिए स्वच्छन्दता, उन्मुक्तता और हिप्पीवाद की अनेकानेक भ्रान्त धाराओं में बह निकलना चाहता है । यन्त्र जिस प्रकार एक ही गति और लय में चलता है उसी प्रकार मनुष्य भी एक ही स्थिति को बार-बार भोगने के लिए अपने आपको विवश अनुभव करता है । कहने का अर्थ यह है कि वह अपने आपको कोल्हू के बैल वाली स्थिति में पाता है, जिसे उसकी प्रवाहमान गतिशील चेतना किसी भी दशा में भोगने को तैयार नहीं है । एक अर्थशास्त्री के शब्दों में मनुष्य की चेतना ह्रासमान उपयोगिता की भाँति सम्वेदना शून्य बनती जा रही है । यह व्यक्ति को इस सीमा तक जड़ीभूत किए दे रही है कि वह उकता कर अपने आपको ऐश्वर्य से बचाने के लिए छटपटा रही है ।

यह स्थिति ऐश्वर्य सम्पन्न लोगों के लिए ही नहीं है । उन लोगों के लिए भी उसी प्रकार विकराल है जिनकी दौड़ ऐश्वर्य का लक्ष्य सामने रखकर चल रही है । ऐश्वर्यशाली अपने ऐश्वर्य में आत्मा को खोया अनुभव करते हैं तो ऐश्वर्य अभिलाषी अपनी आकांक्षा के दहर में आत्मा को दग्ध पा रहे हैं ।

इन सब बातों का यह अर्थ नहीं है कि यन्त्र सभ्यता को छोड़कर समाज पीछे चला जाय । यह एक और बड़ी गल्ती होगी । हमें यह सोचना चाहिए कि हम अपने मूल्यों को सुरक्षित रखें, यन्त्रों द्वारा श्रम की थकान को कम करें, न कि नष्ट । इसके लिए बदलती आय की मान्यताओं पर तीक्ष्ण दृष्टि रखने की आवश्यकता है ।

धर्म-विहीन विज्ञान नितान्त अपूर्ण

विज्ञान का मत है कि पदार्थ और उसके रासायनिक संवेग ही सत्य हैं । पदार्थ से परे भी कोई आत्मा या परमात्मा नाम की कोई सूक्ष्म सत्ता काम कर रही है—विज्ञान की इस सम्बन्ध में कोई श्रद्धा नहीं । विज्ञान की यह मान्यता मेढ़क-विश्वास से समान है ।

एक कुएँ में एक मेढ़क रहता था । एक हंस मानसरोवर से उड़ता हुआ उधर आ पहुँचा । उसने कुएँ में देखकर कहा—ओ कूप-मण्डूक! इस संकीर्ण क्षेत्र में पड़े रहने में क्या आनन्द ? आओ, देखो तो संसार कितना विराट् है ? यहाँ कैसी-कैसी विभूतियाँ फैली हुई हैं ।

मेढ़क ने कुएँ का एक चक्कर लगाया और हंस से पूछा—"तुम्हारी दुनिया इतनी बड़ी है ?" हंस मुस्कराया और कहने लगा—इससे भी बड़ी है । मण्डूक ने अब कुएँ के दस-बीस चक्कर काटे और फिर पूछा—तो फिर तुम्हारी दुनिया इतनी बड़ी होगी ? हंस को हँसी आ गई । उसने कहा—बन्धु ! यह तो उस विशालता की तुलना में हाथी के आगे चींटी के सिर से भी छोटा है । मेढ़क इस बार देर तक १००-२०० चक्कर मारता रहा, फिर रुककर बोला—तो भाई हंस ! तुम्हारा संसार इतना बड़ा होना चाहिए ।

हंस गम्भीर होकर बोला—बन्धु ! तुम जिस स्थिति में पड़े हो, विश्व की विशालता का दिग्दर्शन करना उसमें सम्भव नहीं । यह कहकर हंस वहाँ से उड़कर चला आया ।

आज के तथाकथित पदार्थवादी या बुद्धिवादी लोगों की अध्यात्म और धर्म के सम्बन्ध की मान्यताएँ भी कूप-मण्डूक की तरह हैं । तो भी संसार आज जिस विश्वास पर और प्रत्यक्षवादी दर्शन पर चल रहा है, उसे देखते हुए हमें विरोध नहीं व्यक्त करना चाहिए कि सचमुच विज्ञान का धर्म के सम्मुख कोई अस्तित्व नहीं ।

चींटी एक बार में अधिक-से-अधिक एक वर्ग इंच दूरी की वस्तुएँ देख सकती है । इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी दुनिया को कुल एक योजन की अधिकतम सीमा में ही मान लिया जाय । विज्ञान पढ़ने और सुनने वालों की आँखें यदि केवल थोड़े-से वैज्ञानिक निष्कर्षों तक ही बुद्धि दौड़ाकर कोई निष्कर्ष निकाल रहा हो तो, न तो उनकी बात को सत्य ही माना जा सकता है और न ही उन्हें झूँठा सिद्ध किया जा सकता है । किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचने के लिए हमें वैज्ञानिकों का मत भी जानना अनिवार्य है, क्योंकि उनके मस्तिष्क की दौड़ सामान्य पाठक के भिन्न होती है ।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जे. आर्थर हिल ने 'आत्म-विज्ञान और धार्मिक विश्वास' (साइकिकल साइन्स एण्ड रिलीजियस विलीव) नामक पुस्तक में विज्ञान की अपूर्णता और धर्म की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"जब भी हमारे सामने धर्म शब्द आता है, हमें एक आध्यात्मिक संसार की कल्पना करनी पड़ती है । आध्यात्मिक संसार का अर्थ है कि हमें यह विश्वास करना चाहिए कि यह भौतिक विश्व ही सब कुछ नहीं है । व्यक्तिगत अस्तित्व (इनडिविजुअल एक्जिस्टैन्स) हमारे शारीरिक अन्त तक ही सीमित नहीं है । हमें इस भौतिक विश्व में ही यह बोध होता है कि कुछ ऐसी भी घटनाएँ (फिनामेना) इस संसार में घटती रहती हैं, जो हमें भौतिक सिद्धान्तों से आगे ले जाती हैं । यह प्रतिक्रियाएँ ही हमें भौतिकवादी आस्था से धार्मिक विश्वास में अस्तित्व का भान कराने का कारण बनती हैं ।"

एक बच्चा जन्म से ऐसी प्रतिभाएँ लेकर आता है, जो उसके माता-पिता ही नहीं, परिवार के किसी भी सदस्य में नहीं होतीं । माता-पिता बड़े साहसी और धार्मिक निष्ठाओं वाले होते हैं, पर उनके बच्चे प्रारम्भ से ही भयभीत और बुरे स्वभाव वाले । जो बच्चा सारी बातें अपने माता-पिता से अनुकरण कर सीखता है, उसके लिए भय एक पूर्व संस्कार ही हो सकता है और वह किन्हीं-न-किन्हीं घटनाओं और परिस्थितियों के कारण होता है । ये घटनाएँ और परिस्थितियाँ जब इस जन्म की नहीं हुईं, तो उससे निश्चित होता है कि इस नये जन्म से पूर्व वह एक व्यवस्थित जीवनयापन कर चुका है ।

११ नवम्बर १९६९ के 'वीर अर्जुन' में बम्बई का एक समाचार इस प्रकार छपा था—"बम्बई १० नवम्बर । हीरालाल कर्णावत नामक एक अद्भुत स्मरण शक्ति सम्पन्न ९ वर्षीय बालक

उज्जैन से यहाँ आया है । संस्कृत साहित्य का पर्याप्त ज्ञान तो इसे प्रभु-प्रदत्त वरदान ही प्रतीत होता है ।"

"इस बालक के पिता श्री रामचन्द्र कर्णावत ने डिप्टी कलेक्टरी के पद का परित्याग कर शिक्षण कार्य अपनाया था । उनका कथन है कि पाँच वर्ष की आयु में ही हीरालाल संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करने की हठ करने लगा था । तब से अब तक वह विभिन्न धार्मिक विषयों के सौ से भी अधिक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन कर चुका है । वह गीता के किसी भी श्लोक को उद्धृत कर उसकी व्याख्या कर सकने में समर्थ है । उसने विगत १५ मास से तो जैन धर्म और संस्कृत ग्रन्थों पर विशाल जन समुदाय के समक्ष अनेक भाषण भी किए हैं । वह ४५ मिनट से लेकर १ घन्टा तक बोलने की क्षमता रखता है ।"

ऐसे ही पूर्वाभास, स्वप्नों में घटित होने वाले सत्य, भविष्यवाणियों का सत्य होना और अन्तरिक्ष की असीमता का जितना अधिक चिन्तन करते हैं, धार्मिक विश्वास उतने ही परिपुष्ट होते चले जाते हैं । हमें विश्वास करना पड़ता है कि दृश्य संसार में कुछ अदृश्य सत्य भी हैं जो दिखाई तो नहीं देते, पर मनुष्य उन संवेगों से भी चिरकाल से जुड़ा हुआ है । जब तक वे सुखी नहीं होते, मनुष्य पुर्णतः सुखी नहीं हो पाता ।

श्री आर्थर हिल स्वीकार करते हैं—"विज्ञान और धर्म विरोधी नहीं है । हमारी धार्मिक चेतनाएँ और आध्यात्मिक ज्ञान सत्य को पाने का एक यथार्थ या उचित मार्ग है, क्योंकि उससे हमें अपने भीतर उठने वाली जिज्ञासाओं का समाधान मिलता है । मान लिया कि हम पदार्थों के बारे में बहुत-सी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं, पर उससे जीवन का उद्देश्य तो सिद्ध नहीं हो जाता । यदि पदार्थों का सुख ही वास्तविक सुख है, तो हमें मृत्यु से पूर्व किसी ऐसे स्थान को प्राप्त कर लेना चाहिए था, जहाँ हमारी सभी सुख की इच्छाएँ सन्तुष्ट हो जातीं । पर ऐसा स्थान कहाँ है ? हम अमरता की इच्छा क्यों करते हैं ? क्यों सुख को चिरस्थायित्व देने का प्रयत्न करते हैं ? इससे हमें लगता है कि अर्न्तज्ञान और अनुभूतियाँ (इन्स्ट्यूशन एण्ड इन्स्पायरेशन्स) वास्तविक हैं । पदार्थ-ज्ञान का महत्त्व केवल शरीर धारण किए रहने तक है, इसलिए वह कम उपयोगी है । धर्म स्थायी जीवन का उद्देश्य और व्यवहार बताता है, इसलिए उसका मूल्य और महत्त्व ज्यादा होना चाहिए ।"

विज्ञान उन पदार्थों के समान है, जो हमारे खेलने में, प्रसन्नता बढ़ाने में मदद करते हैं । पर वृद्धा माँ जानती है कि यह सारी सामग्री खेलने और बच्चे के समुचित विकास भर के लिए आवश्यक हैं । इसलिए जैसे ही बच्चा बड़ा हुआ वह छोटी साइकिल, छोटी गेंद, लकड़ी की घोड़ा-गाड़ी आदि सब छीन लेती हैं और बड़ी वस्तुएँ देती हैं, जिससे वह गृहस्थ-पालन व समाज-सेवा की जिम्मेदारी पूरी करता है । कोई बड़ा होकर भी यदि वही खेल-खिलौने माँगे, तो उस पर हँसा ही जा सकता है । वृद्धा इस बात को जानकर ही छोटी वस्तुएँ छीन लेती है ।

आज विज्ञान की उपलब्धियाँ सामान्य स्तर की नहीं रहीं । वह अनुभव कर रहा है कि कोई पदार्थ से भी बड़ी सत्ता संसार में है । यदि ऐसी सम्भावना है, तो उसे प्रत्यक्षवादी मान्यताओं तक ही सीमित न रहकर धर्म और अध्यात्म के सूक्ष्म जगत् में प्रवेश की प्रेरणा भी मनुष्य को देनी चाहिए । धर्म की आँख विज्ञान से बड़ी और यथार्थ है । जब तक हम वह दूसरी आँख भी नहीं खोलते, तब तक अपने और संसार के वास्तविक स्वरूप को उसी प्रकार समझ न सकेंगे, जिस प्रकार पानी में पड़े मेढ़क ने केवल कुएँ को ही संसार समझा और उसी में चहकता-फुदकता रहा ।

अब विज्ञान उतना नास्तिक नहीं रहा

भौतिक विज्ञान जैसे-जैसे अपना बचपन पूरा करके प्रौढ़ता में प्रवेश करता जाता है वैसे-वैसे उसके अनेक पूर्वाग्रह घटे हैं जो आरम्भ में तथ्य और सत्य जैसे प्रतीत होते थे । नई पीढ़ी के वैज्ञानिक अब पदार्थ को ही सब कुछ मानने का आग्रह नहीं करते वरन् चेतना के स्वतन्त्र अस्तित्व के सम्बन्ध में भी सम्भावना स्वीकारने लगे हैं । पिछले दिनों से चली आ रही इस मान्यता का नई शोध के निष्कर्षों से सहज ही खण्डन हो जाता है । जो जगत को परमाणु घटकों की स्व संचालित संरचना मात्र मानती थी, सृष्टि संचालन आत्मा या परमात्मा जैसी किसी अन्य सत्ता की आवश्यकता नहीं समझती थी ।

हलचलों के साथ सम्वेदनाएँ किस प्रकार जुड़ सकती हैं इसका कोई समाधान वैज्ञानिकों के पास नहीं है । जो उत्तर वे देते हैं उनसे सन्तोषप्रद समाधान नहीं निकलता इस सन्दर्भ में जो अगली खोजें हुई हैं उनसे 'रिअलाइजेशन'—अनुभूति को एक स्वतन्त्र सत्ता मानना पड़ा है और यह समझा जाने लगा है कि चेतना का नियन्त्रण जब पदार्थगत हलचलों के साथ जुड़ता है तभी जीवन का स्वरूप सामने आता है ।

"मिस्टीरिअस यूनीवर्स" ग्रन्थ के रचयिता सरजेम्स जीन्स ने लिखा है—'विज्ञान जगत अब पदार्थ सत्ता नियन्त्रण करने वाली चेतन सत्ता की ओर उन्मुख हो रहा है और यह खोजने में लगा है कि हर पदार्थ को गुण धर्म की रीति-नीति से नियन्त्रित रखने वाली व्यापकता चेतना का स्वरूप क्या है ? पदार्थ को स्वसंचालित, अचेतन सत्ता समझने की प्रचलित मान्यता अब इतनी अपूर्ण है कि उस आधार पर प्राणियों की चिन्ता क्षमता का कोई समाधान नहीं मिलता । अब वैज्ञानिक निष्कर्ष आणविक हलचलों के ऊपर शासन करने वाली एक अज्ञात चेतन सत्ता को समझने का प्रयास गम्भीरतापूर्वक कर रहे हैं ।

फिजिओलॉजीकल साइकॉलाजी के लेखक श्री मैक्डूगल ने लिखा है—मस्तिष्कीय संरचना को कितनी ही बारीकी से देखा समझा जाय यह उत्तर नहीं मिलता कि पाशविक स्तर से ऊँचे उठकर मानव प्राणी अपने में उच्चस्तरीय ज्ञान, विज्ञान की धाराएँ कैसे बहाता रहता है और भावनापूर्ण सम्वेदनाओं से कैसे ओत-प्रोत रहता है ? भाव सम्वेदनाओं की गरिमा समझते हुए हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य के भीतर कोई अमूर्तिक सत्ता भी विद्यमान है जिसे आत्मा अथवा भाव चेतना जैसा कोई नाम दिया जा सकता है ।

अणु विज्ञान के आचार्य अल्बर्ट आइंस्टीन ने परमाणु प्रक्रिया का विशद विवेचन करने के उपरान्त अपने निष्कर्ष को घोषित करते हुए कहा है—मुझे विश्वास हो गया है कि जड़ प्रकृति के भीतर एक ज्ञानवान चेतना भी काम कर रही है ।

सर ए. एस. एडिंग्टन का कथन है—भौतिक पदार्थों के भीतर एक चेतन शक्ति काम कर रही है जिसे अणु प्रक्रिया का

प्राण कहा जा सकता है । हम उसका सही स्वरूप और क्रिया-कलाप अभी नहीं जानते पर यह अनुभव करते हैं कि संसार में जो कुछ हो रहा है—वह अनायास, आकस्मिक या अविचारपूर्ण नहीं है ।

पी. गेईडर्स अपने ग्रन्थ 'इवोल्यूशन' में अपने निष्कर्ष व्यक्त करते हुए कहते हैं—सृष्टि आरम्भ जड़ परमाणुओं से हुआ और ज्ञान पीछे उपजा यह मान्यता सही नहीं है । लगता है सृष्टि से भी पूर्व कोई चेतना मौजूद थी और उसी के क्रमबद्ध एवं सोद्देश्य रीति-नीति के साथ इस विश्व ब्रह्माण्ड का सृजन किया ।

'इन्ट्रोडक्शन टू साइन्स' पुस्तक में विज्ञानी जे. ए. थामसन ने कहा है—विश्व में जीवन कब और कैसे उत्पन्न हुआ उसका विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं है ।

ख्याति प्राप्त विज्ञानवेत्ता टेन्डल ने अपने ग्रन्थ 'फ्रेगमन्ट्स ऑफ साइन्स' में स्वीकार किया है—हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस प्रभृति तत्वों के ज्ञान शून्य परमाणुओं से मस्तिष्क की संरचना हुई है इस यान्त्रिक प्रक्रिया के माध्यम से देखना, सोचना स्वप्न सम्वेदनाएँ एवं आदर्शवादी भावनाओं के उभार की कोई तुक नहीं बैठती । शरीर यात्रा की आवश्यकता पूरी करने के अतिरिक्त मनुष्य कुछ सोचता, चाहता और करता है वह इतना अद्भुत है कि जड़ परमाणुओं से बने मस्तिष्क के साथ उसकी कोई संगति नहीं बिठाई जा सकती । चौपड़ के फांसे खड़खड़ाने से होमर कवि की प्रतिभा एवं गेंद की फड़फड़ाहट से गणित के—डिफरेन्शियल सिद्धान्त का उद्भव कैसे हो सकता है इसका उत्तर मस्तिष्क को जड़ परमाणुओं की संरचना मात्र मानकर चलने से मिल ही नहीं सकता ।

जे. बी. एस. हेल्डेन का कथन है कि, पदार्थ या शक्ति ही इस संसार का समग्र स्वरूप नहीं है । हम दिन-दिन इसी निष्कर्ष पर पहुँचते जाते हैं कि समष्टिगत मनःतत्व समस्त विश्व पर नियन्त्रण स्थापित किए हुए हैं ।

आर्थर एच क्राम्पटन इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि—संसार के पदार्थों को जलते हुए ईंधन जैसा समझा जा सकता है । जड़ चेतन की ज्वलन्त गतिविधियाँ ऐसे अग्नि तत्व के साथ सम्बद्ध हैं जिसे व्यापक चेतना या आत्मा आदि किसी नाम से सम्बोधित किया जा सकता है ।

हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'फर्स्ट प्रिन्सिपल' में कहा है—एक ऐसे विश्वव्यापी चेतन तत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता जो साधारणतया सभी प्राणियों में विशेषतया मानव प्राणियों में जीवन की एक सुरम्य प्रक्रिया का निर्धारण करती है । प्राचीन काल के धर्माचार्य या दार्शनिक जिस प्रकार उसका विवेचन करते रहे हैं भले ही वह संदिग्ध हो, भले ही उसका सही स्वरूप अभी समझा न जा सका हो पर उसका अस्तित्व असंदिग्ध रूप से है और वह ऐसा है जिसका गम्भीर अन्वेषण होना चाहिए ।

डॉ. गाल कहते हैं—संसार का मुख्य तत्व, पदार्थ नहीं वरन् वह चेतन सत्ता है जो समझती, अनुभव करती, सोचती, याद रखती और प्रेम करती है । मृत्यु के उपरान्त जीवन की पुनरावृत्ति का सनातन क्रम उसी के द्वारा गतिशील रहता चला आ रहा है ।

संसार के प्रमुख विज्ञान वेत्ताओं के सम्मिलित निष्कर्ष व्यक्त करने वाले ग्रन्थ 'दी ग्रेट डिजाइन' में प्रतिपादन किया गया है कि यह संसार निर्जीव यन्त्र नहीं है । यह सब अनायास अकस्मात ही नहीं बन गया है । चेतन और अचेतन हर पदार्थ में एक ज्ञान शक्ति काम कर रही है उसका नाम भले ही कुछ भी दिया जाय ।

'साइन्स एण्ड सोल' के लेखक आर. डबलिन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्राणि जगत के अस्तित्व को जड़ परमाणुओं की हलचल मात्र मान बैठने से काम नहीं चलेगा । भावना, विचारणा, कल्पना और सम्वेदना जैसी तरंगें उत्पन्न करने वाली ज्ञान सत्ता को यदि अस्वीकार किया जाय तो जीवधारियों की सत्ता की सही व्याख्या ही नहीं हो सकती ।

इसी प्रकार विश्व के अगणित प्रख्यात विज्ञान वेत्ता चेतना के अस्तित्व को स्वीकार कर चुके हैं और इस सन्दर्भ में चल रहे शोध प्रयास निरन्तर अधिक स्पष्ट रूप से यह प्रामाणित कर रहे हैं कि चेतना प्रवाह की सत्ता को, न आत्मा के अस्तित्व को संदिग्ध मानने का कोई कारण नहीं है ।

क्रिएटिव इवोल्यूशन नामक अपने ग्रन्थ में शरीर शास्त्री वर्गसन ने इस बात पर अत्यन्त विस्मय प्रकट किया है कि नेत्र गोलकों की संरचना अत्यधिक जटिलताओं के साथ हुई है और साथ ही उनके द्वारा प्रकाश तरंगों को गृहण करके मस्तिष्क क्षण भर में पकड़ लेता है । इतनी लम्बी और जटिलताओं के बीच घूमती हुई दृष्टि प्रक्रिया इतनी अधिक सरलतापूर्वक गतिशील रह सकती है । इस पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जाता है कि इतनी जटिल संरचनाओं वाला शरीर अनायास ही जड़ प्रकृति द्वारा नहीं बनाया जा सकता । इसकी सृजेता कोई विचारशील, बुद्धिमान सत्ता होनी चाहिए ।

चेतन सत्ता केवल प्राणधारियों के अस्तित्व में चिन्तनात्मक एवं भावनात्मक सम्वेदना उत्पन्न करती हो वह बात नहीं । जड़ समझे जाने वाले वृक्ष वनस्पति से लेकर रासायनिक एवं खनिज पदार्थों में भी उसका न्यूनाधिक प्रभाव रहता है । चेतना तत्व के सम्बन्ध में जो शोध संशोधन चल रहे हैं उन्होंने वृक्ष-वनस्पतियों को भी प्राणि जगत का असंदिग्ध सदस्य बना दिया है । मनुष्य से लेकर वनस्पति तक की विभिन्न प्राण योनियों में सम्वेदनाओं का स्तर विभिन्न प्रकार का पाया जाता है । फिर भी यह कहा जा सकता है कि इन सभी में चेतन सत्ता आत्मा का अस्तित्व विद्यमान है इससे आगे जल, खनिज, मृतिका आदि रासायनिक वर्ग में आते हैं । इनके सम्बन्ध में भी दिन-दिन अधिक स्पष्ट समझा जा रहा है कि ये भी वैसे निःचेष्ट, निर्जीव नहीं हैं जैसा दिखाई पड़ता है ।

लोहे पर जंग लगना, कीचड़ से कीड़ों का उत्पन्न होना, जल पर काई जमना, इस बात के प्रमाण हैं कि जीवन तत्व विद्यमान है । जल की प्रत्येक बूँद से अणुवीक्षण यन्त्र से चलते-फिरते कीड़े देखे जा सकते हैं इस प्रकार जल की सजीवता भी स्वयं ही प्रकट है । यह जीवन धातुओं, पत्थरों में कम भले ही हों पर क्रमशः उनकी बद्धता और विनष्ट होते रहने की रीति-नीति को देखते हुए उन्हें भी मन्द जीवनधारी वर्ग में विभाजित किया जा सकता है । इन तथ्यों से अब वैज्ञानिक मान्यताएँ परिपुष्ट हो चली हैं कि विश्व के कण-कण, अणु-अणु में न केवल हलचलें हो रहीं है वरन् उनमें जीवन तत्व भी हिलोरें ले रहा है ।

जीवन ही आत्मा है समष्टिगत आत्मा ही परमात्मा है । जिस ब्रह्माण्ड की छोटी प्रतिकृत पिण्ड ग्रह और ग्रह का छोटा

घटक परमाणु है । उसी प्रकार विभिन्न प्राणियों और पदार्थों में विद्यमान जीवन सत्ता आत्मा का समग्र स्वरूप परमात्मा है ।

विज्ञान अब उतना नास्तिक नहीं रह गया है जितना कि पचास वर्ष पूर्व था । अब वह आत्मा ही नहीं प्रकारान्तर से परमात्म सत्ता भी स्वीकार करने लगा है । शोध प्रयास इसी प्रकार जारी रहे तो चेतना के स्वरूप, लक्ष्य एवं क्रिया-कलाप का सर्वमान्य आधार भी सामने आ सकेगा भले ही धर्म, सम्प्रदायों द्वारा की गई चेतना की परिभाषाएँ कितनी ही भिन्न क्यों न हों । वह दिन भी दूर नहीं जब आत्मा और परमात्मा जीवनोपयोगी, उपयोग कर सकने का आधार भी उपलब्ध होगा और उपासना, साधना का भी चिकित्सा एवं मानसोपचार की तरह ही सर्वोपयोगी मानकर उन्हें विधिवत् उपयोग में लाने की आवश्यकता स्वीकार की जायेगी ।

धर्म रहित विज्ञान हमारा सर्वनाश करके छोड़ेगा

विज्ञान ने मनुष्य को बहुत सुख-सुविधाएँ प्रदान की हैं । इनसे कौन इन्कार कर सकता है । यातायात के सुन्दर साधन, चिकित्सा के बढ़िया उपकरण और औषधियाँ कृषि और उद्योग बढ़ाने वाली बढ़िया मशीनें देकर अनन्त उपकार किए हैं, विज्ञान है मनुष्य-जाति के साथ । किन्तु यदि उन आँकड़ों और परिणामों तक भी पहुँचा जा सके, जो सामान्य रूप से सामने नहीं आते तो यही पता चलेगा कि विज्ञान अच्छा है अवश्य पर धार्मिक नियन्त्रण के अभाव में उससे अपराध, उद्दण्डता और भयानकता का ही अधिक विकास हुआ है । जनहित उसके आगे चींटी के बच्चे की तरह रह गया ।

जब यह विश्वास कर लिया जाता है कि विश्व रचना की प्रधान भूमिका किसी समर्थ सत्ता के हाथ में है जो हमें दिखाई नहीं देती पर स्वयं सबको देख सकती है और तद्नुरूप कर्मफल भी प्रदान करती रहती है । तब मनुष्य अपराध नहीं कर सकता । सामाजिक दण्ड से बचने के लिए बुद्धि काम कर जाती है पर जब घट-घट में व्याप्त परमात्मा का भय हो जाता है तो मनुष्य एकान्त और निर्जन में भी पाप करने से काँपता है, इसीलिए धर्म की महत्ता और आवश्यकता सर्वोपरि है । विज्ञान न ईश्वर को मानता है, न धर्म को और न कर्मफल को ऐसी दशा में वह पाप की ओर से हमें उच्छृंखल एवं स्वच्छन्द ही बना सकता है । विज्ञान को धर्म का आश्रित रखा गया होता है तो आज की तरह परिस्थितियाँ भयंकर न होतीं ।

एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला की ओर आपको ले चलना चाहेंगे, जहाँ आपके लिए दवाएँ बनती हैं । जहाँ औषधि, शारीरिक क्रिया, अन्तरिक्ष आदि के प्रभाव को जानने के लिए परीक्षण किए जाते हैं । वहाँ तरह-तरह की पीड़ा और यन्त्रणाएँ पाते हुए, पशु-पक्षियों और कीटपतंगों के साथ हो रही निर्दयता को आप देखेंगे तो कहेंगे यह सुविधाएँ और उपलब्धियों की अपेक्षा हम अभाव-ग्रस्त रहे होते तो कहीं अच्छा था ।

हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में एक प्रयोग चल रहा था । कई कुत्तों को जंजीर से बाँधकर आग की लपटों में फेंक दिया गया । ५-७ दिन तक कुत्ते चिन्गारियों में तड़प-तड़प कर झुलसते रहे । उस अवस्था में भी उनको जान से नहीं मारा गया, क्योंकि वहाँ प्रोफेसरों को उद्वेगों की उत्पत्ति पर परीक्षण करना था । ऐसे ही एक प्रयोग में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में कुत्तों के हाथ-पैरों को हथौड़ों से इस तरह कूटा और कुचला गया, जिस तरह लोहार लोहे को घन से पीटता है ।

अधिकांश कुत्ते उसी दिन मर गए । तीन कुत्ते बचे उन्हें अगले दिन फिर प्रयोगशाला में लाया गया । बेचारों ने घुट-घुट कर प्राण त्यागे । प्रयोगों के दरम्यान इन्हें पीटना, भूखों मारना, जलाना, सर्दी में ठिठुराना, आँखें फोड़ना, जब तक थक कर बेहोश न हो जायें—दौड़ाना, पानी में डुबो देना, सोने न देना, चमड़ी उधेड़ लेना, शरीर के किसी अंग को विषाणुओं के इन्जेक्शन देकर उस हिस्से को सड़ाकर इन्जेक्शन तैयार करना, शरीर को जीवित काटकर अनेक प्रकार की चर्बी और औषधियाँ प्राप्त करना, यह सब अन्धी कोठरियों में होता रहता है, विज्ञान के विकास के लिए ।

१६२८ से जॉन हापकिन्स यूनिवर्सिटी के अन्वेषक बिल्लियों पर प्रयोग कर रहे हैं । उनको चमड़ी पकड़कर नोंचा और झकझोड़ा जाता है, कान और पूँछ खींची जाती हैं, पिटाई की जाती है । यह सब केवल इसलिए किया जाता है कि ऐसा करते समय जीवाणुओं की हलचल का पता लगाया जा सके । एक बार एक बिल्ली की पूँछ को भींचकर किसी औजार से इतना दबाया गया कि खून छलछला उठा । यह बिल्ली १४० दिन जिन्दा रही । इस बीच उसे लगभग १०० दिन इसी तरह उत्पीड़ित किया गया । एक बार कई कुत्ते ६५ दिन बिल्कुल भूखे रखे गए । उनके मर जाने के बाद मालूम हुआ कि वैसा ही प्रयोग पहले भी किया जा चुका है । तात्पर्य यह है कि इस तरह के भयंकर प्रयोग इतने छुपा कर किए जाते हैं कि पड़ौसी अध्यापक भी नहीं जान पाते ।

अमेरिका के वाल्टर अस्पताल में बन्दरों को ६-६ घण्टे बेहोश रखा गया । चेतना आने पर उनके मस्तिष्क का कुछ अंश काटकर उनमें बिजली के करेंट दौड़ाये गए बन्दर बुरी तरह चीखते । कई बार ६-६ घण्टे तक लगातार बिजली का करेंट डालकर बन्दरों को तड़पाया गया । बन्दर उछल-कूद करते हैं तो उन्हें ऐसी निर्दयता से बाँधा जाता है कि वे हिलडुल तक न सकें, उस समय उनकी आँखें, मुँह और चिल्लाहट से ही उनके भय, कष्ट और पीड़ा को आँका जा सकता है । प्रयोग के बाद न उन्हें कोई भोजन, न पानी, न हवा, न औषधि बेचारे तड़प-तड़पकर प्राण देते हैं और मनुष्य जाति को आशीर्वाद देते विदा होते हैं—"ओरे निर्दय मनुष्य तू किसी का दर्द नहीं जान सकता, तो तेरी भी दुर्गति ही होगी ।"

चूहे, मेढ़क, मछली और छोटे-छोटे कीड़ों को काटना तो अब साधारण बात हो गई है, कौन जाने इन प्रयोगों में एक दिन स्वयं मनुष्य को ही न काटा जाने लगे । कहीं लुक-छिप कर होता भी हो तो कुछ आश्चर्य नहीं ।

यह मूक आत्माओं के शाप कभी निरर्थक नहीं हो सकते । सबसे धनी देश अमेरिका, आज सबसे अधिक दुःखी है । अपराध और आत्म-हत्याएँ वहीं सर्वाधिक होती हैं । पागल और विक्षिप्तों की वहाँ कतारें लगीं हैं । पति-पत्नी कोई-कोई ऐसा होगा, जहाँ परस्पर प्रेम और विश्वास हो, अधिकांश एक-दूसरे से सशंकित

ही रहते हैं। यह उन अदृश्य अभिशापों का ही प्रतिफल हो सकता है।

पशु माना कि अपने कर्मों से उन योनियों में आये हैं पर उन्हें उन असुविधाजनक योनियों में पहुँचाकर विधाता ने जो दण्ड देना था दे दिया। उससे आगे दण्ड देने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं। उच्छृंखलता का बर्ताव जब उनके साथ किया जा सकता है, तो यही स्वभाव एक दिन मनुष्य से भेद करा सकता है। वही इन देशों में हो भी रहा है।

इन प्रयोग और उपलब्धियों से जो उपकरण बनते चले जा रहे हैं, उनकी भयानकता का चित्रण करते हुए, अमेरिका के सुविख्यात विज्ञान लेखक आइजैक आसिमोव ने सन् १९९० में दुनिया का नक्शा प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि—"कल-कारखाने व मोटरें जिस तेजी से बढ़ रही हैं, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि १९९० में शुद्ध वायु और जल मिलना असम्भव हो जायेगा। उस समय धूम्रपान रोकने के लिए एक ऐसा घर बनाना पड़ेगा, जहाँ सब बीड़ी पीने वाले पहुँचकर बीड़ी पिया करेंगे। खुलेआम कोई न पी सकेगा, क्योंकि अभी तो बीड़ी सिगरेट पीने वालों को ओंठ ओर फेफड़े के कैंसर हो रहे हैं, तब धुआँ इतना बढ़ जायेगा कि न पीने वालों को भी तम्बाकू के धुएँ से फेफड़े और त्वचा का कैंसर होने लगेगा।"

"शुद्ध पानी केवल समुद्र को साफ करने से ही मिल सकेगा, वह भी बहुत महँगा पड़ेगा। प्रति व्यक्ति शुद्ध पानी का राशन तक किया जा सकेगा। लोग बस्ती वाले क्षेत्रों के शोर-गुल से इतना ऊब जायेंगे कि हर कोई जंगल की ओर भागेगा, कुछ लोग समुद्र में रहना चाहेंगे, पर तब यह समस्या पैदा होगी कि आणविक रद्दी (रेडियो एक्टिव वेस्ट) को कहाँ फेंका जायेगा, क्योंकि उसका जहर भी मनुष्य के लिए घातक होगा। तब उसे सम्भव है शीशे के घनों में भर कर समुद्र में ही डुबोया जाय।"

विज्ञान ने मनुष्य की परिस्थिति को सुधारा नहीं उलझा दिया है। चिकित्सा क्षेत्र में ही अनेक महत्त्वपूर्ण खोजें हुई हैं, पर यदि मनुष्य का भावनात्मक स्तर विकसित नहीं होता तो वह सुविधाएँ भी प्राण लेवा बन सकती हैं। विदेशों में नींद न आने पर नींद की गोली खाने का आम-रिवाज है। पर वह स्वयं इतनी खतरनाक है कि आगामी पीढ़ी को शंकर जी की बरात बना सकती है। बेल्जियम के लीज नगर में सैंजा वांदेपुत माइकेल नामक एक सुन्दर तरुणी जिसे प्रायः गोलियाँ लेकर नींद बुलानी पड़ती थी, जब उसे बच्चा हुआ, तो उसके सब अंग सुन्दर और स्वस्थ थे, किन्तु उसके हाथ ही नहीं थे। माँ ने स्वयं बच्चे को एक दवा की प्राण-घातक मात्रा देकर उसे इस कष्ट से छुटकारा दिलाया। बाद में उसे गिरफ्तार भी किया गया। पर न तो गिरफ्तारी कुछ कर सकती है और न दवाओं पर नियन्त्रण। उनकी प्रतिक्रिया तो कहीं भी किसी न किसी रूप में परिलक्षित होती ही है।

एरिजोना (अमेरिका) की श्रीमती फिकबाइन को थैलिडोमाइड की टिकियाँ दी गई। दवा ने हृदय को प्रभावित किया। वह गर्भवती थीं, डॉक्टरों ने बताया कि उन्हें जो सन्तान होगी, वह लंगड़ी-लूली होगी। फिकबाइन ने बच्चे के भ्रूण को ही मार डालने का निश्चय किया पर एरिजोना में गर्भपात अपराध है, इसलिए उसने स्वीडन जाकर गर्भपात किया। इस नींद लाने वाली दवा के कारण लंगड़ी-लूली सन्तानों की संख्या विदेशों में तेजी से बढ़ रही है। यह सब वर्तमान विज्ञान की दोहरी देन है, एक ओर तो भावनाओं का गिर जाना और दूसरी ओर जहरीले पदार्थों को शरीर में पहुँचाना। इससे अधिक तो वह अल्प-विकसित देश ही सुखी हैं, जिनमें विज्ञान का प्रसार उतना नहीं हुआ।

थैलिडोमाइड ही नहीं, डाइएथिलीन ग्लाइकोज, स्टालिनोत आदि औषधियों ने हजारों की जाने लीं और अनेक अष्टावक्र पैदा किए हैं। स्व. डॉ. राममनोहर लोहिया ने एक बार दाँतों को पुष्ट करने वाली एक दवा के विरुद्ध कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए थे। उसके बाद राज्य सरकार को उस दवा पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा था। यहाँ हमारा तात्पर्य यह नहीं कि दवाएँ सर्वथा बुरी हैं वरन् हम विज्ञान के उस पक्ष को व्यक्त करना चाहते हैं, जो मनुष्य को अस्वाभाविक क्रियाओं की प्रेरणा देता है और उससे मानव-जाति का संकट बढ़ता है। यह संकट मानव-जाति पर निरन्तर गहरा होता जा रहा है।

जर्मनी के औचविज स्मारक को अभी युगों तक भूला न जा सकेगा, यह वह स्थान है, जहाँ ४० लाख लोगों को नाजियों ने एक साथ मृत्यु के घाट उतार दिया था। उससे क्रूर अत्याचार मानव-जाति के इतिहास में नहीं है, किन्तु आधुनिक विज्ञान उससे भी बड़े अत्याचारों की तैयारी कर रहा है। फिलहाल संसार ७०० अरब रुपये प्रतिवर्ष शस्त्रास्त्रों पर व्यय करता है। एक ब्रिटिश विमान-वाहक जंगी जहाज $८६\frac{१}{२}$ करोड़ रुपये में पड़ता है, जबकि ५३ करोड़ रुपये से मिस्र के प्रत्येक नागरिक को शुद्ध जल की व्यवस्था की जा सकती है। इतनी रकम से ९०० अच्छे देहाती अस्पताल खोले जा सकते हैं। एक एटलस मिसाइल लगभग ४० करोड़ रुपये का पड़ता है, इतनी पूँजी को यदि नाइट्रोजन खाद का कारखाना बनाने में लगा दिया जाय तो उससे ५० से ७० हजार टन वार्षिक उत्पादन वाला कारखाना तैयार हो सकता है। एक पोलारिस मिसाइल ब्रिटेन के चार विश्वविद्यालय, एक ए. बी. बमवर्षक से सात सौ सेकण्डरी स्कूल, एक टी. एस. आर. २ से पचास सर्वसाधन सम्पन्न अस्पतालों का एक वर्ष का खर्चा चल सकता है। एक मिसाइल विध्वंसक की कीमत से एक लाख ट्रेक्टर खरीदे जा सकते हैं। इतनी भारी शक्ति विज्ञान ने केवल मानवीय सभ्यता के विनाश के लिए तैयार की है और उसके प्रयोग के बाद कैसी भयंकर परिस्थिति उत्पन्न होगी, उसका अभी अनुमान बाकी है। जब यह सब वस्तुएँ बन रही हैं तो परिणाम भी किसी न किसी दिन निकलना ही है।

आधुनिक भौतिकतावादी विज्ञान ने नैतिक आदर्शों और भावनात्मक उत्कृष्टता पर इतनी गहरी चोट की है कि पशु-पक्षियों को ही नहीं मनुष्य को भी अब घास-पात की तरह जलती हुई भट्टियों में झोंक देने वाला मान लिया गया है। व्यक्ति और समाज में बढ़ती हुई उद्विग्नता, रुग्णता, वेदना एवं व्यथा इस बात का प्रमाण है कि विज्ञान के प्रतिफल मानवीय आदर्श और आकांक्षाओं के विपरीत हो गए हैं। उसने मनुष्य को सामूहिक आत्महत्या के गर्त की ओर ही धकेलने का प्रयास किया और कर रहा है।

प्रेसीडेन्ट ट्रूमैन का वह फरमान युग-युगान्तरों तक नहीं भूला जा सकेगा, जिसमें उन्होंने नागाशाकी और हिरोशिमा (जापान) में अणुबम गिराने का आर्डर दिया था । अमेरिकी वायुसेना के एक भूतपूर्व विमान चालक क्लाड एथर्ली ने आगे बढ़कर कहा—"यह कार्य मैं करने के लिए तैयार हूँ ।" उसके साथ कुछ और लोग भी आगे आये । ६ अगस्त १९४५ वह अभागा दिन था, जिस दिन क्लाड एथर्ली ने हिरोशिमा पर पहली बार अणुबम गिराया और ७८ हजार आदमियों को एक बारगी मौत के घाट उतार दिया । इससे अधिक अपंग और उससे भी अधिक बेघरबार हो गए । उस बम विस्फोट से उत्पन्न विकिरण के दुष्परिणामों को जापान अब भी भोग रहा है । आज भी वहाँ देश के सब भागों में अधिक रोगी और अपाहिज आदमी पड़े, विज्ञान को कोस रहे हैं और भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं, "हे प्रभु ! तू ऐसी दुनिया से हमें मुक्ति दे ।"

क्या इतने मनुष्यों का सर्वनाश क्लाड एथर्ली को यों ही छोड़ सकता था । बम गिराकर लौटते समय जैसे ही उसने उस भयंकर कृत्य की झाँकी देखी, लोगों को जलते तवे पर पानी की बूँदों की तरह जलजलाते देखा तो उसकी आत्मा कचोटने लगी । उसने तमगा पाया सही—पर यह भावना दिनों दिन बढ़ती ही गई कि उस भयानक विनाश के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ । १९४७ में सेना से छुट्टी लेने के बाद भी वह पाप छाया की तरह उसका पीछा करता रहा । जहाँ भी वह फोटो और फिल्में देखता वहीं उसके सिर भूत सवार होता । उसके कानों में सैकड़ों जख्मी जापानियों की चीख-पुकारें गूँजने लगतीं । एक दिन तो उसने पश्चात्ताप से आविर्भूत अपनी एक रक्त-वाहिनी नली ही काट डाली । वहाँ से किसी तरह बचा तो वह विक्षिप्त हो गया । चोरी और डकैती डालने लगा और अन्त में उसे एक पागलखाने में शरण मिली, जहाँ वह बड़-बड़ाकर मर गया ।

पाप और उसकी विभीषिकाएँ कहीं भी हों मनुष्य समाज को चैन नहीं लेने देतीं और विज्ञान ने पाप और विभीषिकाओं को बढ़ाया ही है । अमेरिका आदि देशों में आत्महत्या की प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए, अंग्रेजी के विद्वान ग्रेगरी कार्सो ने लिखा है कि— "आस्ट्रिया, डेन्मार्क, फिनलैण्ड, पश्चिम जर्मनी, हंगरी, स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड, जापान आदि में अमेरिका से भी दुगुनी आत्महत्याएँ होती हैं । फ्रांस में कुछ कम हैं, पर इंग्लैण्ड और वेल्स उस कमी को पूर्ण कर देते हैं । कनाडा, आइसलैण्ड, इटली, नीदरलैण्ड, नार्वे, पुर्तगाल, स्काटलैण्ड और स्पेन में भी आत्महत्याओं का जोर है और उसका कारण युद्ध और उसके प्रभाव से उत्पन्न वायुमण्डल पर भयंकर परिस्थितियों के सूक्ष्म कम्पन और भौतिक विज्ञान के द्वारा उत्पन्न दूषित वातावरण अधिक है । सन् १९५२ में अमेरिका में १५४०० आत्महत्याएँ हुईं । एक लाख लोगों के पीछे १० व्यक्ति केवल आत्महत्या से मरते हैं । उससे चिन्तित होकर लास ऐंजिल्स में आत्म-हत्या निषेध केन्द्र की स्थापना की गई । नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ और अमेरिका की पब्लिक हेल्थ सर्विस दोनों ने मिलकर उन परिस्थितियों का गहन अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि अन्य कारणों की अपेक्षा विज्ञान जनित मानवीय अशान्ति आत्महत्या का एक प्रमुख कारण है । उस पर युद्ध का और गहरा प्रभाव देखा गया है ।"

पशु-पक्षियों के उत्पीड़न से लेकर मानवीय अशान्ति तक की जितनी व्यथाएँ इस युग में बढ़ रही हैं, उनका प्रमुख कारण भावनाओं का गिर जाना है । मनुष्य का अन्तःकरण भी यान्त्रिक हो गया है, इसलिए अब उसमें प्रेम, विश्वास, त्याग, क्षमा, उदारता, दया, मैत्री और समानता का स्थान स्वार्थ और छल-कपट ने ले लिया है । विज्ञान ने बताया कि कर्मफल कोई वस्तु नहीं, इसलिए कुछ भी करने से डरना नहीं चाहिए, पर तथ्य यह बताते हैं कि, न तो एक व्यक्ति का पाप उसे छोड़ सकता है और न सामूहिक अपराध समाज को बख्श सकते हैं । पाप और अत्याचार का दण्ड प्रकृति का एक सनातन सत्य और अटल सिद्धान्त है, उससे कोई बच नहीं सकता । उसकी कृपा तो नैतिक आदर्शों और मानवीय भावनाओं से ही मिल सकती है, इसके लिए विज्ञान और तद्जन्य साधन आवश्यक नहीं । एक प्रयोग ऋषि करके दिखा गए हैं कि मनुष्य साधनों के अभाव में त्याग-तपस्या का जीवन जीकर भी अधिक सुखी रह सकता है, यदि वह भावनाओं की दृष्टि से उत्कृष्ट हो, यदि भावनाएँ और आकांक्षाएँ निकृष्ट और अधोगामी हों तो स्वर्ग में रहकर भी मनुष्य सुखी नहीं रह सकता ।

यह परिस्थिति आज शीशे की तरह साफ दिखाई दे रही है । अनेक साधनों और सुविधाओं के होते हुए भी आज का मनुष्य दुःखी और अशान्त है । इस स्थिति में परिवर्तन तभी सम्भव है, जब भौतिक विज्ञान को धर्म के बन्धन और नियन्त्रण में रखा जाय । इसके बिना विज्ञान पागल हाथी की तरह ही उत्पात करता है । वही आज हो भी रहा है । धर्म का अभाव ही आज की अशान्ति और उद्विग्नता का कारण है । उसका निवारण होगा, तभी मानवीय सभ्यता चैन की साँस ले सकेगी ।

विज्ञान बनाम तत्वज्ञान

ब्रिटिश भौतिकी विशेषज्ञ एडमन्ड ह्विटैकर ने लिखा है कि "यह कहना गलत है कि प्रकाश और शक्ति के अचानक संयोग से ही ब्रह्माण्ड की रचना हुई है । वास्तविक बात यह है कि परब्रह्म शून्य से इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है । दूसरे विशेषज्ञ एडवर्ड मिल्ने का भी कथन है कि ईश्वर के किसी सृजेता के बिना ब्रह्माण्ड की कल्पना हो ही नहीं सकती ।

अधिकांश भौतिकी विशेषज्ञों और खगोलज्ञों का अनुमान है कि सृष्टि के प्रारम्भ में कोई महान् शक्ति अवश्य थी जिसने इस ब्रह्माण्ड की रचना की । अपने आप यह ब्रह्माण्ड कदापि नहीं बन सकता । सिर्फ प्रकाश और शक्ति के संयोग के बिना सिरजनहार का यह सुव्यवस्थित ब्रह्माण्ड अरबों वर्षों तक कैसे कायम रहेगा ? सन्त आगस्तिन, आइन्स्टीन, वाल्टर नर्सट्, फिलिप्स मॉरसन और एलन सैन्डोज आदि विशेषज्ञ इन्हीं बातों को स्वीकारते हैं । एलन सैन्डोज ने ब्रह्माण्ड का जन्म दस अरब वर्ष पूर्व होने की सम्भावना व्यक्त की है ।

आइन्स्टीन का कथन है कि विज्ञान का एक धर्म है । वह निश्चित नियमों पर चलता है । सृष्टि की रचना अपने आप हुई—यह कहना विज्ञान के विपरीत है । यह सारा सुव्यवस्थित विश्व कैसे अपने आप बन सकता है ? अतः हमें मानना ही पड़ेगा कि विश्व का निर्माता एवं संचालक कोई सुपर पावर अवश्य है ।

भूगोलज्ञों के अनुसार प्रारम्भ में सृष्टि के पूर्व ब्रह्माण्ड में तीव्र दबाव पड़ा और अग्नि गोलों की उत्पत्ति हुई । कालान्तर में ये ही गोले ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, तारे आदि बने । इस अग्निकाण्ड से विश्व के (पूर्व के) प्रमाण सब नष्ट हो गए । सम्भव है कि उस समय एक सभ्य और बुद्धिमान दुनिया रही हो जो कि इस विस्फोट से नष्ट हो गई । इसके बाद ही हमारे विश्व की रचना हुई हो, किन्तु दुर्भाग्यवश विज्ञान इन सबका प्रमाण नहीं दे सकता ।

सभी खगोलज्ञों में प्रायः यह सहमति है कि ब्रह्माण्ड का विस्तार प्रारम्भ में कैसे हुआ ? पहले यह पाया गया कि विश्व ब्रह्माण्ड हमेशा निरन्तर फैलता ही रहेगा । मंदाकिनियाँ निरन्तर एक-दूसरे से दूर हटती रहती हैं और उनके बीच अन्तर बढ़ता ही जाता है । अतः अन्तरिक्ष सूना पड़ता जा रहा है । प्रत्यक्षतः प्रत्येक मन्दाकिनी अकेली है, उसका कोई पड़ोसी नहीं है ।

इन दूरवर्ती मंदाकिनियों में पुराने तारे एक-एक करके जलते रहते हैं और नए-नए तारे इनके बदले उत्पन्न होते हैं । इन मंदाकिनियों में विशाल शक्ति होती है जिससे सभी जीव जीते हैं । समाप्त होते हुए अन्तिम तारे का प्रकाश बन्द होने पर ब्रह्माण्ड में अन्धेरा छा जायेगा और सब प्राणी मर जायेंगे ।

ब्रह्म विज्ञानियों (तत्वज्ञानियों) का कहना है कि आर्ष ग्रन्थों में दिए गए उद्धरण सत्य हैं । प्रारम्भ में ईश्वर ने पृथ्वी व जीवधारियों की रचना की । सन्त आगस्तिन कहते हैं कि इस बात को कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि पृथ्वी पर ही जीवन जैसी परिस्थितियाँ क्यों विनिर्मित की गईं और ग्रहों पर क्यों नहीं ? विज्ञान ने इतना ही प्रामाणित किया है कि ब्रह्माण्ड में गैस पिण्ड बना, उसमें विस्फोट से अग्नि पिण्ड बना जो बाद में तारे का रूप लेता है । पृथ्वी, सूर्य और समस्त ग्रह-तारों की रचना इसी तरह होती है ।

वस्तुतः विज्ञान विश्वास पर नहीं चलता वरन् वह प्रमाणों पर चलता है । यह वास्तव में प्रमाणित नहीं हो सकता कि ब्रह्माण्ड की रचना प्रारम्भ में कैसे हुई ? यह कोरी कल्पना का विषय है । विज्ञान तो सिर्फ इतना बता सकता है कि वर्तमान में सृष्टि क्रम क्या है ? वह कैसे हुआ ? भविष्य में क्या होगा ? इस सबके पीछे नियामक शक्ति कौन-सी है ? इस प्रश्न का उत्तर ईश्वर की सत्ता को केन्द्र बिन्दु मानने वाले तत्वज्ञानी ही दे सकते हैं ।

विज्ञान क्रमशः अध्यात्म के निकट आ रहा है

वह समय अब पीछे छूटता जा रहा है जब विज्ञान के क्षेत्र द्वारा सच्चाई खोज निकालने की ठेकेदारी की जोर-शोर से घोषणा की जाती थी और साथ ही यह भी कहा जाता था कि अध्यात्म की मान्यताएँ काल्पनिक एवं निरर्थक हैं । पर अब स्थिति वैसी नहीं रही । विज्ञान और बुद्धिवाद को अब अपने पूर्व प्रतिपादनों पर नये सिरे से विचार करना पड़ रहा है ।

जैसे-जैसे यह पुनर्विचार उपलब्ध नये तथ्यों को ख़ोजता जा रहा है वैसे-वैसे उसे अपनी पूर्व मान्यता बदलने को विवश कर रहा है । कारण यह है कि बुद्धिवाद पर नीति और उत्कृष्टता का अनुशासन आवश्यक प्रतीत हो रहा है । इसके बिना उच्छृंखल समर्थता भ्रष्टता और दुष्टता की ओर तेजी से बढ़ रही है साथ ही विनाश की ओर भी । इसी प्रकार तथ्य अब इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संसार में सब कुछ जड़ ही नहीं है । पदार्थ पर अंकुश रखने वाली चेतन सत्ता का भी स्वतन्त्र अस्तित्व है और उसका विश्व व्यवस्था एवं प्राणि जगत पर सुनिश्चित अनुशासन है ।

विज्ञान का जैसे-जैसे बचपन दूर हो रहा है और प्रौढ़ता, परिपक्वता की स्थिति आ रही है वैसे-वैसे विज्ञजनों ने अध्यात्म सत्ता, शैली एवं उपयोगिता के सम्बन्ध में अपनी पुरानी मान्यताएँ बदली हैं और कहा है—"विज्ञान मात्र पदार्थ तक ही सीमित नहीं है । चेतना की वरिष्ठता को खोज निकालना और उसके सहारे जनजीवन को सर्वतोन्मुखी प्रगति पथ पर अग्रसर करना भी विज्ञान का ही काम है ।"

इसके साथ ही अध्यात्म ने भी हठधर्मी छोड़ी है और यह स्वीकारा है कि उसकी गरिमा विज्ञान की कसौटी पर अपने स्वरूप को निखारने से ही इस युग में सम्भव हो सकेगी ।

परिवर्तित विचारधारा का परिचय विश्व के मूर्धन्य महा-मनीषियों द्वारा इन्हीं दिनों व्यक्त किए गए उद्‌गारों से मिलता है । इसका थोड़ा-सा संकलन नीचे है—

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आलिवरलाज कहते थे—"मुझे विश्वास है अब वह समय निकट आ गया है जबकि विज्ञान को नये क्षेत्र में प्रवेश करना होगा । विज्ञान अब भौतिक जगत तक ही सीमित नहीं रहेगा । चेतन जगत भी अब वैज्ञानिक प्रयोग, परीक्षण का महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है ।"

इंग्लैण्ड को रायल सोसायटी के सेक्रेटरी सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक 'सर जेम्स जीन्स' ने लिखा है—"पहले यह मान्यता थी कि जड़ जगत ही चेतना की उत्पत्ति का आधार है । भौतिक तत्वों के समन्वय से ही मन की उत्पत्ति होती है । लेकिन यह पदार्थवादी मान्यता अब बदल गई है । अब यह माना जाने लगा है कि चेतन सत्ता ही जड़ पदार्थों की उत्पत्ति करती है । इस जड़ जगत के पीछे एक विराट चेतना काम कर रही है ।"

सर जेम्स जीन्स ने 'दि न्यू बैक ग्राउण्ड ऑफ साइन्स' नामक पुस्तक में यह उल्लेख किया है—"उन्नीसदीं सदी में विज्ञान का मूल विषय भौतिक जगत था लेकिन अब प्रतीत हो रहा है कि विज्ञान जड़ पदार्थों से अधिकाधिक दूर होता जा रहा है ।"

'दि मिस्टीरियस यूनिवर्स' में उन्होंने लिखा है—"वैज्ञानिक विषय के सन्दर्भ में हमने जो पूर्व मान्यता बना ली है अब उसकी पुनः परीक्षण की आवश्यकता है । जड़ जगत को जो प्रधानता दे बैठे थे—अब प्रतीत हो रहा है कि वह गौण है । जड़ जगत के पीछे एक नियात्मक सत्ता काम कर रही है ।

प्रो. ए. एस. एडिंगटन ने कहा है—"अब विज्ञान इस निर्णय पर पहुँचा है कि समस्त सृष्टि को एक अज्ञात शक्ति गतिमान कर रही है ।"

"अब विज्ञान का जड़ पदार्थों से लगाव समाप्त हो गया । चेतना, मन, आत्मा का अस्तित्व माना जाने लगा है । चेतन सत्ता ही जड़ जगत की उत्पत्ति का मूल कारण है ।"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा—"जिस शक्ति को मैं बुद्धि की पहुँच से परे मानता हूँ वह धर्म का खण्डन नहीं करती अपितु उसे और अधिक बल पहुँचाती है ।"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलफ्रेड रसल वैलेस ने अपनी पुस्तक 'सोशल इनवाइरनमेन्ट एण्ड मॉरल प्रोग्रेस' में स्पष्ट लिखा है—"मुझे विश्वास है कि चेतना ही जड़ पदार्थों को गति प्रदान करती है ।"

सन् १९३४ में 'दि ग्रेट डिजाइन' नामक पुस्तक में चौदह वैज्ञानिकों ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया—"यह संसार चेतना रहित कोई मशीन नहीं है । इसका निर्माण अकस्मात् ऐसे ही नहीं हो गया । ब्रह्माण्ड के सभी क्रिया-कलापों को एक चेतन शक्ति नियन्त्रित कर रही है चाहे हम उसे कुछ भी नाम दे दें ।"

अल्बर्ट आइन्स्टीन ने कहा है—"मैं ईश्वर को मानता हूँ । इस अविज्ञात सृष्टि के अद्भुत रहस्यों में वह ईश्वरीय शक्ति ही परिलक्षित होती है । अब विज्ञान भी इस बात का समर्थन कर रहा है कि सम्पूर्ण सृष्टि का नियमन एक अदृश्य चेतन सत्ता कर रही है ।"

जे. बी. एस. हैलडेन ने लिखा है—"अविज्ञात सृष्टि के कुछ ही रहस्यों को हम जान पाये हैं । सृष्टि को हम एक निर्जीव मशीन मात्र समझ रहे थे—यह हमारी भूल थी । वास्तव में यह सृष्टि चेतन शक्ति से सम्बद्ध है । जड़ पदार्थों का संचालन यह चेतन शक्ति ही कर रही है ।"

आर्थर एस. एडिंगटन ने लिखा है—"ईश्वर का अस्तित्व नहीं है यह मान्यता टूट चुकी है । चूँकि धर्म आत्म और परमात्म शक्ति से जुड़ा हुआ है । अतः धर्म का खण्डन नहीं किया जा सकता ।"

आर्थर एच. क्रॉम्पटन ने कहा है—"हमारे चिन्तन-मनन को न केवल मस्तिष्क ही प्रभावित करता है वरन् इससे भी अलग एक शक्ति है जो विचारणाओं को प्रेरित करती है । उस चेतन शक्ति की सम्पूर्ण जानकारी तो नहीं मिल पायी है, लेकिन यह निश्चित है कि मृत्यु के बाद भी उस चेतना का अस्तित्व बना रहता है ।"

ब्रह्माण्डीय प्राण-चेतना का मिलन अब निकट ही है

पृथ्वी से बाहर के ग्रह-नक्षत्रों में जीवन की सम्भावना पर चिरकाल से विचार होता चला आया है । उपलब्ध प्रमाण सामग्री के आधार पर दावे के साथ तो नहीं कहा जा सका, पर आशा यही बँध रही थी कि 'जीवन' अकेली पृथ्वी की ही बपौती नहीं हो सकता उसका अस्तित्व अन्यत्र भी हो सकता है ।

इस दिशा में अधिक उत्साहवर्धक प्रयास आरिसवाँ दक्षिण अमेरिका के प्यूरटोरिकन कस्बे में स्थापित एक वेधशाला के द्वारा प्रारम्भ हुआ है । इस वेधशाला का नाम 'नेशनल एस्ट्रोनामी एण्ड आयोनोस्फियर सेन्टर' है । इसमें १००० फुट व्यास की रेडियो दुरबीन लगायी गई है और साथ ही शक्तिशाली रेडार ट्रान्समीटर फिट किए गए हैं । यह स्थापना अपने ढंग की अनोखी और अत्यन्त शक्तिशाली है ।

नये-नये दूरवीक्षण संयन्त्र के सहारे अब बुध, शुक्र, मंगल और चन्द्रमा के कुछ हिस्सों को अधिक स्पष्ट रूप से देख सकना सम्भव हो गया है । इन दिनों मंगल की खोजबीन इसलिए की जा रही है कि अमेरिका अपना 'बाइकिंग—ए रॉकेट' सन् १९७६ में मंगल को धरती पर उतारने का निश्चय कर चुका है । उसके उतरने का स्थान चुनने के लिए स्थान का चुनाव अभी से करना होगा ।

इस संयन्त्र द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड के लिए सौरमण्डल का नक्शा, मानव शरीर की रचना और प्रकृतिगत परिस्थितियों की आरम्भिक जानकारी प्रसारित की गई हैं, ताकि यदि मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी कहीं रहते हों और उनका ज्ञान इसी सीमा तक विकसित हो गया हो तो वे इन संकेतों को समझकर तद्नुकूल उत्तर दें और पृथ्वी से सम्पर्क बनाने का प्रयत्न करें ।

कारनेल विश्वविद्यालय की वेधशाला के निर्देशक और प्रख्यात खगोलशास्त्री डॉ. कार्ल एडवर्ड स्वांगा विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं । उन्होंने एक अन्तर्ग्रही भाषा के रूप में 'मैसेज वायनरी' का आविष्कार किया है जिसके सहारे रेडियो विज्ञान के जानकार किसी भी लोक में रहने वाले प्रेषित विचारों को समझ सकेंगे और उसी आधार पर उत्तर दे सकेंगे । यह भाषा चित्र प्रधान है ।

हार्वर्ट विश्वविद्यालय के फिलिस मारसिन—शिकागो विश्वविद्यालय के स्टेनले मिलर के सहयोग से ऐसी प्रयोगशाला बनाना सम्भव हो गया है जिसमें मंगल ग्रह जैसा वातावरण है उसमें ऐसे जीवाणुओं का विकास किया गया जो मंगल जैसी परिस्थितियों में निर्वाह कर सकें ।

डॉ. सांगा और रूस के अन्तरिक्ष विज्ञानी इयोसेफ श्क्लोवस्की ने संयुक्त रूप से इस सन्दर्भ में एक पुस्तक लिखी है—'इन्टेलिजेन्ट लाइफ इन दि यूनिवर्स' । इसमें अन्तर्ग्रही जीवन की सम्भावना उसके स्वरूप एवं पृथ्वी निवासियों के साथ सम्पर्क के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है । यदाकदा उड़न तश्तरियों जैसे तथ्य सामने आते रहते हैं और उनसे अन्तर्ग्रही सम्पर्क का आभास मिलता है । ऐसे प्रमाणों की गहरी छान-बीन करने में 'अमेरिकन ऐसोसियेशन फार दि एडवांसमेण्ट ऑफ साइन्स' नामक संस्था संलग्न है, उसकी शोधें भी इस सम्भावना को बल देती हैं कि ब्रह्माण्ड में अन्यत्र भी जीवन है और कितने ही ग्रहों पर पृथ्वी से भी अच्छी स्थिति मौजूद है ।

यह मान्य तथ्य है कि हम विकसित हो रहे हैं । अभी यह विकास क्रम विज्ञान के आधार पर भौतिक क्षेत्र में बढ़ा है और उसने कई प्रकार के सुख साधन प्रस्तुत किए हैं । अगले दिनों अध्यात्म सक्रिय होगा और विचारणा तथा भावना की विभूतियाँ भी उसे उपलब्ध होंगी । ज्ञान और विज्ञान का उभय-पक्षीय विकास हमें अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर करेगा । इस मार्ग पर चलते हुए मनुष्य अपने अन्य सजातीयों को इस निखिल ब्रह्माण्ड में कहीं न कहीं से खोज ही लेगा । जब ब्रह्माण्डीय मानव चेतना एकजुट होकर कुछ अच्छा सोचने और कुछ अच्छा करने में प्रवृत्त होगी तो निश्चय ही यह संसार बहुत सुन्दर सुहावना दृष्टिगोचर होगा ।

विज्ञान के साथ सद्ज्ञान के समन्वय की आवश्यकता

पिछले तीस वर्षों में मनुष्य को विज्ञान के देवता ने तीन बड़ी उपलब्धियाँ प्रदान की हैं । इनमें से एक है अणुविखण्डन । सन् ४५ में एलमागाडो (न्यू मैक्सिको) में प्रथम अणुविघटन परीक्षण हुआ था । तब से अब तक उस दिशा में एक से एक

बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं । दूसरी उपलब्धि है—आनुवंशिकी की नई व्याख्याएँ । जीवकोष की गहराई में समान जीवकोषों के पुनर्जन्म के लिए निर्देश संहिता की खोज । जीव तत्व के इस उद्गम केन्द्र के पकड़ में आ जाने से अब प्राणियों की आकृति और प्रकृति में अभीष्ट परिवर्तन कर सकने का सूत्र हाथ लग गया है । तीसरी उपलब्धि है—अन्तर्ग्रही यात्रा के लिए अपनी पृथ्वी की पकड़ से आगे वाले अन्तरिक्ष में प्रवेश । इस दिशा में चन्द्रयात्रा पहला कदम था । सौरमण्डल की खोज-खबर लेने के लिए अभी निर्जीव गुप्तचरों के रूप में रॉकेट भेजे गए हैं, निकट भविष्य में उनमें शरीरधारी जा सकेंगे । पीछे सौरमण्डल की परिधि पार करके अनन्त अन्तरिक्ष में, सुविस्तृत ब्रह्माण्ड में, स्वेच्छा भ्रमण सम्भव हो जायेगा ।

यों मनुष्य की दुर्बुद्धि ने इन उपलब्धियों के कारण मंसार को भयभीत ही किया है और अनेकों आशंकाओं में डुबोया है, पर यह सम्भावना भी विद्यमान है कि यदि उनका सदुपयोग सम्भव हो सका तो मानवी शक्ति एवं सुविधाओं की सीमा न रहेगी ।

अणुविखण्डन का प्रधान रूप अणुबमों के रूप में ही सामने आया है और सर्वसाधारण के लिए अणु विज्ञान और अणुबम एक ही जाने जाते हैं और उससे इस सुन्दर पृथ्वी के सर्वनाश की सम्भावना ही सोची जाती है, पर यह एक पक्ष है समूचा प्रतिपादन नहीं । अणु शक्ति में प्रचुर विद्युत उत्पादन हो सकता है और उससे मानवी श्रम में बचत होने से वह अन्य साहित्य, कला आदि बौद्धिक प्रयोजनों के लिए अवकाश प्राप्त कर सकता है । उद्योग, चिकित्सा, मनोरंजन जैसे कितने ही प्रयोजन इस शक्ति से बहुत सस्ते मूल्य पर सरलता के साथ प्राप्त हो सकते हैं । इससे गरीबी एवं कड़ी मेहनत से छुटकारा मिल सकता है और अधिक सुख-सुविधा भरा जीवन जीया जा सकता है ।

परिष्कृत आनुवंशिकी में पीढ़ियों से चले आ रहे कुसंस्कारों से नई सन्तति को मुक्त किया जा सकेगा । शरीर में दुर्बलता, रुग्णता के अनेक बीज पीढ़ियों से चले आते हैं और स्वभाव में ऐसी प्रेरणाएँ भरी रहती हैं जो इच्छा के विपरीत उसे अवांछनीय स्थिति में डाले रखती हैं । सामान्य संकल्प बल एवं उपचार भी उन्हें पूरी तरह निरस्त नहीं कर सकते और प्रगति की आकांक्षा किसी अज्ञात द्वारा पग-पग पर असफल की जाती रहती है । यद्यपि मूल कठिनाई अपने ही भीतर होती है, पर जब वह उलटने, बदलने में न आ सके तो उसे बाहरी भी कहा जा सकता है । भाग्य एवं विधि-विधान ऐसी ही विषम परिस्थिति को कहा जाता है । अब इस आनुवंशिकी की नवीनतम खोजों को फलितार्थ बनाने के प्रयत्न चल पड़े हैं और यह सम्भव दिखाई देने लगा है कि मनुष्य की प्रकृति ही नहीं आकृति भी बदली जा सकेगी । परिस्थितियों के साथ तालमेल कर चलने वाला सन्तुलित और परिष्कृत मनुष्य का निर्माण अगले दिनों सम्भव हो जायेगा । उस प्रयास की सफलता को देव सृष्टि की अभिनव संरचना कहा जा सकेगा, वस्तुतः वह समय कितना सुन्दर और सुखद होगा इसकी कल्पना मात्र से मन में सिहरन उठती है ।

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण और हवा के कड़े कवच के अन्दर निर्वाह करने वाला मनुष्य गूलर के भुनगों की तरह है यह बात तब समझ में आती है जब पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच अधर अन्तरिक्ष में हम यात्रा पर निकलते हैं । ब्रह्माण्डीय सम्पदा कितनी असीम है, उसका विस्तार कितना सुविस्तृत है और उसमें रहने वाले प्राणी कितने समुन्नत हैं, इसका प्रत्यक्ष परिचय जब मिलेगा और ससीम का असीम के साथ निर्बाध आदान-प्रदान सम्भव होगा तो आदमी अपने को सचमुच ही 'बड़ा' अनुभव करेगा । तब उसका बड़प्पन सचमुच ही गौरवास्पद होगा ।

भार और वायु रहित स्थिति में रह सकने की स्थिति ढूँढ़ने के प्रयास में मनुष्य के हाथों ऐसी एक से एक अद्भुत उपलब्धियाँ लगी हैं जो अन्तरिक्ष खोज से कम नहीं वरन् कुछ अधिक ही लाभदायक सिद्ध होंगी । अन्तरिक्ष में कहीं भी बस सकना सम्भव हो सकता है । पृथ्वी तक आने वाले अन्तरिक्षीय अनुदानों में से अभी बहुत स्वल्प अंश ही काम में आता है । उसकी उपयोगी मात्रा को गृहण करना और अनुपयोगी को हटाकर मौसम इच्छानुकूल बनाये जा सकते हैं । भूकम्प, बाढ़, तूफान आदि दैवी प्रकोपों पर नियन्त्रण किया जा सकता है । समुद्र, बादल, हवा, गर्मी, सर्दी आदि को इच्छानुवर्ती बनाया जा सकता है । यह सब प्राप्त कर सकने के उपरान्त मनुष्य कितना बलिष्ठ और सशक्त होगा; इसकी कल्पना करने मात्र से लगता है कि हम किसी जादुई युग में भ्रमण कर रहे हैं । यह कल्पना सदा कल्पनाएँ ही बनी रहें, ऐसी बात नहीं है । प्रगति के पिछले इतिहास के साथ भविष्य की सम्भावनाओं को जोड़ देने पर लगता है यह असम्भव नहीं वरन् पूर्णतया सम्भव है । आज की कल्पना कल मूर्तिमान बन सके इसकी सम्भावनाएँ अमान्य नहीं ठहराई जा सकतीं ।

प्रकृति के प्रत्येक कक्ष में एक से एक बड़ी सम्पदाएँ भरी पड़ी हैं, यदि सीधे मार्ग पर चलकर उन्हें करतलगत किया जाय तो मनुष्य की भौतिक सम्पदा भी अतुलनीय बन सकती है, पर हो तो उल्टा रहा है । विकास के नाम पर विनाश खोजा जा रहा है । यदि सीधी चाल चलें तो आकाश में घूमने वाले हिमपर्वतों तक को खोजा जा सकता है और उन्हें शुष्क उष्ण प्रदेशों पर बरसा कर सरसता और शीतलता का लाभ लिया जा सकता है ।

आकाश से पानी बरसता है, छोटे-मोटे ओले भी बरसते हैं । पर कभी-कभी बर्फ की ऐसी चट्टानें भी बरसती देखी गई हैं जो तोप के गोले की तरह जहाँ भी गिरें वहाँ सफाया करके रख दें ।

आकाशीय स्थिति विशेषज्ञों द्वारा खोज करने पर पता चला है कि आकाश में हिमानी चट्टानें और पहाड़ियाँ इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान हैं जोकि इधर से उधर ले जाने में इतनी आसान हैं कि उन्हें हल्के चुम्बकीय थपेड़े देकर किसी भी क्षेत्र तक घसीट कर ले जाया जा सकता है और मनचाही मात्रा में धरती पर उतारा जा सकता है ।

विज्ञान के साथ यदि सद्ज्ञान का समन्वय हो सके तो अपनी धरती पर इन्हीं पदार्थों, इन्हीं व्यक्तियों और इन्हीं परिस्थितियों में स्वर्गीय वातावरण का सृजन हो सकता है ।

आस्था-क्षेत्र में भी विज्ञान का प्रवेश

वर्तमान में विज्ञान ने अपनी गतिमान शोध प्रक्रिया के द्वारा अनेकानेक नूतन आयामों को उद्घाटित किया है । इससे दृश्य जगत की कई पहेलियाँ सुलझी भी हैं, साथ ही प्रकृति के अविज्ञात साधनों के उपयोग की विद्या भी भली-भाँति समझ में आयी है किन्तु मनुष्य ने इन साधन-सुविधाओं का उपयोग अपने व्यक्तित्व

की परिपक्वता या अपरिपक्वता के आधार पर ही किया है । इन सारी उपलब्धियों की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकेगी जब मानवी मन उसे विधेयात्मक रूप में अंगीकार करें । इस हेतु शोध के एक अन्य आयाम में प्रवेश करना होगा । जड़ को एक मात्र क्षेत्र न मानकर चेतना के क्षेत्र में प्रविष्ट होना अपरिहार्य है ।

चेतना के विज्ञान को आत्मिकी का नाम दिया गया है । मानवी अन्तराल में निहित बहुमूल्य रहस्यों का सदुपयोग न हो पाने के कारण मनुष्य इस शक्तिशाली भण्डार का लाभ उठाने से वंचित रहा है । वंचित रहने में एक कारण यह भी है कि इसे अंधविश्वास, रूढ़िवाद के रूप में करार कर दिया गया । आज आप्त वचनों की दुहाई पर्याप्त नहीं, आवश्यकता तर्क, तथ्य, प्रमाणों की है । इसकी जिम्मेदारी विज्ञान ने हर क्षेत्र में सँभाली है । पदार्थ की तरह चिन्तन चेतना के क्षेत्र में उसने मनोविज्ञान के रूप में आधिपत्य जमाया है, तो यह उसी का दायित्व बन पड़ता है कि चेतना विज्ञान के सूत्रों पर प्रयोग अनुसन्धान करके उसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करे । ऐसे साधन जुटाये, समस्त उपाय आविष्कृत करे जिनको प्रयुक्त करने से मानवी काय संरचना तथा मनःसंस्थान की प्रसुप्त क्षमताएँ उभारी जा सकें तथा व्यक्ति को वर्तमान से कहीं अधिक सक्षम, समर्थ एवं असाधारण बनाया जा सके ।

अध्यात्म के कई उपचार मात्र श्रद्धा पर अवलम्बित हैं । कभी समय था जब संयमित जीवन, साधना प्रक्रियाओं, तप के उपक्रमों, आप्त वचनों, आर्ष साहित्य के कथनों को श्रद्धा के सहारे अपनाया जाता था और उनके परिणाम स्पष्ट गोचर होते थे, किन्तु आज मानव की बुद्धिवादी प्रकृति ने श्रद्धा के गूढ़तत्व में प्रवेश न कर पाने के कारण इनसे सर्वथा इन्कार कर दिया है । इस प्रयोजन की पूर्ति प्रखर तथ्यों से ही कर सकना सम्भव है । विज्ञान साक्षी की आज प्रामाणिकता का परिचायक बन गया है । वरिष्ठता का चोला आज कल वैज्ञानिकता ने पहन रखा है । ऐसी स्थिति में विचार एवं भावना क्षेत्र के साम्य स्थापक तथ्यों को ढूँढ़ निकालने में उसे अग्रणी होना चाहिए । उपरोक्त तथ्य से सहमति व्यक्त करते हुए मूर्धन्य मनोविद इरा प्रोग्राफ ने अपनी कृति 'डेथ एण्ड रिबर्थ ऑफ साइकोलॉजी' में कहा है कि मनोविज्ञान के परम्परागत अध्ययन को भारतीय साधनाओं में वर्णित प्रक्रियाओं से दिशा ग्रहण कर तत्सम्बद्ध शोध प्रयास करना होगा । इस तरह किया गया प्रयास नूतन मनोविज्ञान को जन्म देने वाला सिद्ध होगा जिससे मानवी व्यक्तित्व को प्रखर बनाना सम्भव हो सकेगा ।

लारेंस हाइड ने अपनी कृति 'आइसिस एण्ड औरेसिस' में यही मत व्यक्त किया है कि वर्तमान में प्रचलित उपरतलीय मनोविज्ञान की पद्धतियाँ व्यक्ति के मनःक्षेत्र की गड़बड़ियों का सही निदान नहीं कर पाती हैं । इस सम्बन्ध में आध्यात्मिक साधनाओं पर अनुसन्धान करने की आवश्यकता है । उनके अनुसार मनोविकारों एवं अन्तर्द्वन्द्वों से न केवल शारीरिक, मानसिक रोग होते हैं अपितु इस कुचक्र में फँस जाने पर आर्थिक पारिवारिक सामाजिक जीवन के भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाने कि बात भी पूर्णतया स्पष्ट है । पुरातन काल में यही तथ्य पाप-पुण्य के प्रत्ययों से समझाया जाता था । आधुनिक काल में इसे इण्डीविजुअल साइकॉलोजी एवं सोशल साइकोलॉजी में सामंजस्य स्थापित कर समझाया जा सकता है । इसी को इरा प्रोग्राफ ने अपनी अन्य कृति 'युंग्स साइकोलॉजी एण्ड इट्स सोशल मीनिंग' में समझाते हुए कहा है कि "मनोविकारों एवं रोगों के प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में न रहकर सामाजिक क्षेत्र में भी कलुष उत्पन्न करते हैं । अतः इस स्तर पर व्यापक अनुसन्धान अपरिहार्य है ।

प्राचीन समय में साधना निग्रह, आहार-विहार, साधना, योग, तप, जैसे अध्यात्म उपचारों को सफलता में देव अनुग्रह को माध्यम माना जाता था । अब इन्हीं को क्रिया-कृत्यों के सहारे, स्वसम्मोहन, अचेतन, परिशोधन, प्रसुप्त शक्तियों के जागरण, संकल्पबल, एकाग्रता एवं इच्छा शक्ति के चमत्कार के रूप में सिद्ध किया जा सकता है ।

मानवी सत्ता में निहित ऐसे अनेकानेक आधार अब विदित हो गए हैं जिन पर वैज्ञानिक प्रयोग करके व्यक्ति की उपयोगी विशिष्टताओं को उभारा और अनेक दृष्टियों से समर्थ बनाया जा सकता है । गुण, सूत्र, हार्मोन्स, नाड़ी, गुच्छक एक प्रकार से षटचक्रों, उत्पादन क्रियायों महा ग्रन्थियों के परिष्कार के रूप में पुरातन काल जैसी भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं ।

प्राचीनकाल में ऋद्धि-सिद्धियों की चर्चा अपने ढंग से होती थी । आज भी प्रसुप्त विशेषताओं का अस्तित्व स्वीकार करने और उन्हें उभारने की सम्भावनाओं पर परा-मनोविज्ञान ने अपने समर्थन की मुहर लगा दी है । सम्मोहन, विचार संचालन, दूर श्रवण, भविष्य ज्ञान जैसे उपचार अब अध्यात्म न रहकर इस क्षेत्र की जानी मानी धाराएँ बन चुकी हैं । इनसे एक कदम और आगे बढ़ा जा सके तो बहुचर्चित ऋद्धि-सिद्धियों से आज के मनुष्यों को लाभान्वित होने का अवसर मिल सकता है । इन दिनों इन्हें कौतूहल की तरह देखा समझा जा सकता है पर अगले समय में इन्हीं उपलब्धियों को बड़े एवं व्यापक रूप से उसी तरह प्रयुक्त किया जा सकेगा जिस तरह सम्मोहन आदि का प्रयोग चिकित्सा पद्धति के रूप में होने लगा है ।

आज व्यक्तित्वों को न केवल श्रेष्ठ वरन् अधिक समर्थ भी बनाये जाने की आवश्यकता है ताकि वे विकृतियों से बचने बचाने में, विपत्तियों से जूझने-जुझाने में प्रवीण एवं सफल सिद्ध हो सकें । यह श्रेष्ठता एवं समर्थता शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक तीनों ही स्तर की होनी चाहिए ताकि मनुष्य की कर्म, ज्ञान एवं भाव की त्रिविध धाराओं को उच्चस्तरीय बनाया जा सके । महामानव निर्माण का यह समग्र क्षेत्र अनुसन्धान प्रक्रिया से गुजरे, यह समय की माँग है ।

व्यक्ति के सुधार के लिए आमतौर से भाषण एवं पुस्तकों के सहारे प्रशिक्षित करने की बात सोची जा रही है, पर मानवी इतिहास के लगातार के अनुभव यह बताते हैं कि आस्था क्षेत्र में निकृष्टता की जड़ें जमी होने के कारण बाहरी सुझाव क्षणिक प्रभावी ही सिद्ध होते हैं । यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि मानवी सत्ता का उद्गम केन्द्र अन्तःकरण है । उस क्षेत्र में भावनाओं, मान्यताओं, आकांक्षाओं का साम्राज्य है उसे सँभालने सुधारने की सामर्थ्य भौतिक उपचारों में नहीं है, किन्तु बुद्धिवाद ने इसे अन्धविश्वास करार कर दिया है । यदि इस क्षेत्र में वैज्ञानिकता प्रविष्ट हो सके तो ब्रेन वाशिंग की तरह आस्था परिष्कार की सम्भावना सिद्ध हो सकती है ।

निश्चित ही व्यक्तित्व को परिष्कृत कर महामानव बनने की आध्यात्मिक आधारों को स्वीकार कर वैज्ञानिक प्रणाली आविष्कृत

होने की पूर्ण सम्भावना है । समय- समय पर दार्शनिक, मनीषी, अध्यात्मवादी अपने-अपने सुझाव देते रहे हैं । आवश्यकता इस बात की है कि अध्यात्मवादी एवं वैज्ञानिक दोनों संयुक्त रूप से इस शोध परियोजना को अपने हाथ में लें और अन्वेषण करें कि चिरकाल से व्यवहृत एवं सफल होती रही मनुष्य में देवत्व के उदय की सम्भावना को वर्तमान परिस्थितियों में वर्तमान साधनों से किस प्रकार पुनर्जीवित किया जा सकता है ।

प्राचीनकाल में मनुष्य में देव भाव के उदय एवं धरित्री पर स्वर्गिक वातावरण की परिस्थितियाँ रही हैं । अन्वेषण के नूतन प्रयास इस लुप्त कड़ी को पुनः जोड़ सकने में अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं । विज्ञान एवं अध्यात्म दोनों के संयुक्त प्रयत्न स्वयं सार्थक होकर मानव जाति को सार्थकता की ओर अग्रसर कर सकते हैं ।

विज्ञान व अध्यात्म के समन्वित सर्वांगपूर्ण प्रयास

विज्ञान और धर्म कभी विपरीत दिशाधारा अपनाने वाले दो भिन्न शक्ति स्रोतों के रूप में जाने जाते रहे हैं, किन्तु जैसे-जैसे मानवी बुद्धि का विकास होता जा रहा है, यह स्पष्ट होता जा रहा है कि दोनों एक ही तथ्य के उद्घाटन में निरत हैं । सम्पूर्ण सत्य की खोज ही दोनों का लक्ष्य है । एक की यात्रा बाहर से भीतर की ओर आरम्भ होती है तो दूसरा आभ्यन्तरिक उपलब्धियों को बाहर फैलाने में प्रयासरत है । विज्ञानवेत्ता भी अब मानने लगे हैं कि जीवन के उद्देश्यों एवं उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भौतिक विज्ञान की दिशा का सुनियोजन एवं व्यवस्थापन किया जा सके तो मानवता की यह सबसे बड़ी सेवा होगी ।

वैज्ञानिक मनीषी मिलिकन ने अपनी कृति 'इवोल्यूशन इन साइन्स एण्ड रिलीजन' में कहा है कि दोनों महाशक्तियों के समन्वय की प्रक्रिया आरम्भ हो गई है । इसे अधिक सरलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि जिस तरह विज्ञान के क्षेत्र में मस्तिष्क को अधिक खुला रखा और हर सिद्धान्त का प्रयोगात्मक निरीक्षण-परीक्षण किया जाता है, अध्यात्म के क्षेत्र में भी उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए । मानवी भावनाओं, विचारणाओं एवं क्रिया-कलापों को उत्कृष्टता का पक्षधर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि तदनुरूप वैज्ञानिक अनुसंधानों की दिशा मोड़ी जाय और उसी तरह के निर्माण प्रस्तुत किए जायें । धर्म को भी निरीक्षण-परीक्षण की प्रक्रिया को आत्मसात करना होगा । उनके अनुसार वर्तमान तकनीकी सभ्यता को आध्यात्मिक आधार की आवश्यकता है, तो अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार की । नैतिकता एवं आध्यात्मिकता के बिना विज्ञान मात्र विनाश का सरंजाम जुटाता रहेगा तो इसकी ओर धार्मिकता भी वैज्ञानिकता के अभाव में अपनी प्रामाणिकता खोती चली जायेगी । दोनों के समन्वय से ही जीवन में आये विरोधाभास को समाप्त किया जा सकता है ।

विश्व प्रसिद्ध मनीषी पैरासेल्सस ने बहुत पहले कहा था कि बिना सत्यज्ञान के विज्ञान जिस तरह भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, ठीक उसी तरह ईश्वरीय आस्था—'फेथ' कर्म में प्रकट हुए बिना जड़वत्, निष्प्राण है । कर्म से यहाँ उनका तात्पर्य उन आदर्शवादी श्रेष्ठ कार्यों, सत्कर्मों से है जो मनुष्य के उत्कर्ष में सहायक हों । विश्वास प्रमाण के बिना मात्र एक स्वप्न है तो भावनाएँ, इच्छाएँ बिना सक्रिय अभ्यास के सत्य का साक्षात्कार नहीं करा सकतीं । काल्पनिक उड़ानें भरते रहने वालों की गणना उसी श्रेणी में की जाती रहेगी जैसे कि बिना धन के खजांची । ऐसी स्थिति में मनुष्य की स्थिति उस व्यक्ति की तरह बनी रहेगी जो अपने देश की सम्पूर्ण परिस्थितियों से अवगत होना और यात्रा करना तो चाहता है, परन्तु भ्रमण पर न निकल कर मात्र नक्शे में खिंची लकीरों को मापता रहकर जीवन को योंही व्यर्थ गँवा देता है । पैरासेल्सस के अनुसार जो अध्यात्म वास्तविकता से साक्षात्कार अथवा आत्मदर्शन कराकर जीवन को श्रेष्ठताओं से न भर सके, उसे कल्पना, जल्पना या मनोरंजन के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? इसी तरह जो भौतिक विज्ञान मानव मूल्यों की रक्षा न कर सके, जीवनोद्देश्य की उपलब्धि न करा सके, वह निष्फल सिद्धान्तों के अतिरिक्त और कुछ नहीं । उसे मात्र मनुष्य की पाशविक इच्छाओं की पूर्ति का साधन भर कहा जा सकता है । अध्यात्म और विज्ञान का समग्र एवं समन्वित सक्रिय स्वरूप ही मानव सभ्यता के उत्कर्ष का पथ प्रशस्त कर सकता है ।

इस सन्दर्भ में चिकित्सा विज्ञानी फ्रेंच हार्टमन का कथन है कि विज्ञान बुद्धि की देन है तो धर्म अध्यात्म प्रज्ञा की जिसका सीधा सम्बन्ध ईश्वर से है । विज्ञान के कितने ही प्रकार हैं किन्तु प्रज्ञा एक है । विज्ञान का परिष्कार इसी विवेक बुद्धि के द्वारा सम्भव है । इसके बिना वह अपने अस्तित्व को बनाए नहीं रख सकता । उनका कहना है कि प्रज्ञा स्वामी है तो विज्ञान दास । उसका निर्माण वस्तुतः उसी के हाथों हुआ है । वह सबकी जन्मदात्री है । कल्पना शक्ति जिसने भौतिकी का सृजन किया है वह सत्य का प्रत्यक्षीकरण कराने वाली प्रज्ञा की उथली परत की देन है । जिस तर्क बुद्धि का आश्रय लेकर प्रकृति रहस्यों की खोज आरम्भ की गई, तथ्यों को एकत्रित किया गया, उनसे सम्बन्धित नियम बने और भावी-शोध अनुसन्धानों की, आविष्कारों की रूपरेखा तैयार हुई । विविध विधियों द्वारा उनका निरीक्षण-परीक्षण हुआ और जो उपयुक्त पाया गया उसके द्वारा सुख-सुविधा के साधन जुटाए गए और अब वैज्ञानिक-अवैज्ञानिक सभी लाभान्वित हो रहे हैं, अब वह सभी प्रज्ञा चेतना रूपी सूर्य की एक किरण की झलक झाँकी भर है । आज वैज्ञानिक जगत में जिसे "टेक्नीकल ट्रुथ कहा जाता है और भविष्य में जिससे अधिक सफलतापूर्वक आविष्कार करने की आशा बँधी है, परिष्कृत बुद्धि का ही उसमें दिग्दर्शन किया जा सकता है ।

फ्रेन्ज का मत है कि प्रस्तुत समय का विज्ञान केवल सतही ज्ञान, कारणों और प्रभावों पर आधारित है । प्रयत्न करने और गहराई में प्रवेश करने पर इससे कहीं अधिक जानकारी हासिल की जा सकती है । प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियाँ एवं मनुष्य की विलक्षणताएँ मेधा, प्रज्ञा जैसी सूक्ष्म पर्तें जो अभी अज्ञात बनी हुई हैं, सूक्ष्मता में प्रवेश पाकर उन रहस्यों पर से पड़े पर्दे को उघाड़ा जा सकता है । उच्चस्तरीय मानसिक चेतना के विकास से ही यह सम्भव हो सकता है । उनका विश्वास है कि भविष्य में मानव इन दोनों ही क्षेत्रों में विकास करेगा । एक ओर वह

जहाँ विवेक बुद्धि से विज्ञान क्षेत्र में सृजनात्मक प्रगति करेगा, वहीं आत्मिकी के सहारे दैवी क्षमताओं से परिपूरित होगा । तब गंगा, यमुना एवं सरस्वती के सम्मिलन से बने त्रिवेणी संगम की तरह साइंस, स्प्रिचुअलिटी और ह्यूमेनिटीज का समन्वय होगा और एक नवीन ज्ञान का उद्भव होगा । उन्होंने इसे 'डिवाइन विजडम' के नाम से सम्बोधित किया है और बताया है कि तब मनुष्य अपना परिचय उच्चस्तरीय चेतना के रूप में, प्रकाश और बुद्धिमत्ता के सम्मिलित रूप में देगा । वास्तविक 'स्व' के जाग्रत हो जाने पर उच्चस्तरीय व्यक्तित्व की किरणें ही उसका वाहन, प्रतिष्ठा और प्रतीक बन जायेंगी । तथापि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को बहुत लम्बी मंजिल तय करनी पड़ेगी ।

शेक्सपियर ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' में कहा है कि "सच्ची दिव्यता वही है जो स्वयं के निर्देशों का पालन करती, अन्तःकरण से उमगती-उभरती सत्प्रेरणाओं का अनुसरण करती है ।" तात्पर्य यह है कि यह आचरण करने वाले ही सत्य का साक्षात्कार कर पाते हैं, परन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या नगण्य है जो अन्तरात्मा के परामर्श को मानते और तदनुरूप व्यवहार करते हैं । संसार में बहुलता दिवा स्वप्न देखने वालों, कपोल कल्पित ख्याली पुलाव पकाने वालों की है । कहीं कोई दिव्य चेतना भी है, यह उनकी जानकारी से परे है । देवत्व का नाम सुना है, तो यह पता नहीं कि वह रहता कहाँ है ? जबकि वह अपने ही काय-कलेवर के भीतर कहीं कोने में छिपा दबा पड़ा है । बाहर उसके क्रिया-कलाप भर दृष्टिगोचर होते हैं । जिस तरह असुरत्व अपना प्रकट परिचय अपहरण, आक्रमण, स्वार्थन्धता व अनाचार आदि के रूप में प्रस्तुत करता है, देवत्व, ईश्वरत्व या आदर्शवादिता भी अपना परिचय श्रेष्ठ सत्कर्मों के रूप में, उच्चस्तरीय सिद्धान्तों के परिपालन के रूप में देता है ।

वस्तुतः विवेक बुद्धि या प्रज्ञा के अभाव में आज सब कुछ गड्ड-बड्ड हो गया है । एक चिकित्सक या मेडीकल प्रैक्टिशनर को मेडीसिन के अतिरिक्त अधिक जानकारी नहीं है । नृतत्ववेत्ता मनुष्य की प्रकृति से आगे नहीं बढ़ते, तो वकील की, न्यायाधीश की बुद्धि न्याय-अन्याय में अन्तर बताने से आगे प्रगति नहीं करती । जनकल्याण से जुड़े शासकीय वर्ग को अपने मातहतों, कर्मचारियों की निर्धनता दूर करने, आर्थिक लाभ पहुँचाने के अतिरिक्त कुछ सूझता नहीं । राजनेता को स्वयं के जीवन की रीति-नीति का भान नहीं, फिर वह नीति—न्याय से आगे कैसे बढ़े । इसी तरह विज्ञानवेत्ता एवं तकनीकी विशेषता मात्र भौतिक सुखोपभोग के लिए साधन-सुविधाएँ जुटाने में निमग्न हैं तो धर्मध्वजी बाह्याडम्बरों मात्र में उलझे हुए हैं । आदर्श और सिद्धान्त मात्र कहने-सुनने तक सिमट कर रह गए । आचरण में चिन्तन, चरित्र व्यवहार में उसके कहीं दर्शन नहीं होते । जीवन की प्रत्येक परिधि में छाई हुई बहिर्मुखी प्रवृत्ति ने अन्तराल की दिव्य चेतना को भुला दिया और सत्य या यथार्थता से मनुष्य अनभिज्ञ ही बना रहा । ऐसी स्थिति में प्रकृति को, विराट् ब्रह्म को भला कैसे जाना जा सकता है ?

इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए विद्वत्जन कहते हैं कि आशा की एक किरण इन्हीं दिनों कौंधी है और मनीषियों एवं वैज्ञानिकों के प्रयास धार्मिक चेतना एवं वैज्ञानिक चेतना के समन्वय की दिशा में साथ-साथ उठे हैं । दोनों के मध्य की खाई प्रज्ञा के उदय के साथ ही समाप्त हो जायेगी यह मात्र आशा ही नहीं, भविष्य की सुनिश्चित सम्भावना भी है ।

आत्मिकी को अग्नि-परीक्षा से गुजरना होगा

तर्क एवं प्रमाण की अपनी उपयोगिता है । विज्ञान ने अपना सतत् विकास इसी आधार पर किया है । परीक्षण की कसौटियों पर कसने के बाद उसने अपना वर्चस्व सिद्ध किया है । उसकी प्रत्यक्षवादी मान्यताएँ परीक्षण किए जाने के बाद ही अपनी प्रामाणिकता प्रस्तुत कर सकी हैं । धर्मतन्त्र को, आत्मिकी को भी प्रत्यक्षवाद ने चुनौती दी है कि परीक्षण की कसौटियों पर अपनी उपयोगिता सिद्ध करे ।

इसे समय का दुर्भाग्य कहा जाना चाहिए कि धर्म ने लौकिक ज्ञान तर्कशास्त्र से अपने को सिद्ध करना अस्वीकार किया । किसी समय मनुष्य की आस्था इतनी प्रगाढ़ भावनाएँ इतनी उदात्त रहीं होगीं कि शास्त्रों, महापुरुषों के वचनों में तर्क करने की आवश्यकता नहीं अनुभव की जाती रही होंगी । किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में मनुष्य की विचारणा, भावना एवं मनःस्थिति में भारी अन्तर आया है । बुद्धि का असाधारण विकास हुआ है । जिज्ञासा एवं तर्क शक्ति बढ़ी है । बुद्धिवाद धर्म के सिद्धान्तों को बिना परखे, तर्क एवं परीक्षण की कसौटी पर बिना कसे स्वीकार करने को तैयार नहीं है । धर्म को भी अब उसी बुद्धि, तर्क से प्रामाणिक और उपयोगी सिद्ध करने की आवश्यकता आ पड़ी है जिससे विज्ञान अपने प्रतिपादनों को सिद्ध करता है ।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"मेरा अपना विश्वास है कि बाह्यज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जिन अन्वेषण पद्धतियों का प्रयोग होता है, उन्हें धर्म क्षेत्र में अध्यात्म में भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए । यह कार्य जितना शीघ्र हो उतना ही अच्छा । यदि कोई धर्म इन अन्वेषणों से ध्वंस हो जाय तो समझना चाहिए कि वह निरर्थक था । ऐसा धर्म जो तर्क, प्रमाण एवं उपयोगिता की दृष्टि से खरा न उतरे, उसका लुप्त हो जाना स्वाभाविक घटना होगी । इस अनुसन्धान के फलस्वरूप सारा मल धुल जायेगा तथा धर्म के उपयोगी तत्व अपनी प्रखरता के साथ सामने आयेंगे ।"

मनीषियों का कहना है कि जो धर्म बौद्धिक अन्वेषण की उपयोगिता से इन्कार करते हैं वे वस्तुतः आत्म विरोधी हैं । उनकी क्रिया प्रणाली कितनी भी सशक्त क्यों न हो, उपयोगिता के अभाव में कालान्तर में संदिग्ध बन जायेंगे । शास्त्रों, आप्त वचनों के दुहराने एवं कर्म काण्डों की लकीरें पीटने मात्र से उनका महत्त्व नहीं बढ़ पायेगा वरन् मनुष्य की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने से ही वे उपयोगी एवं प्रामाणिक बन सकते हैं । धर्म का मूलतत्व ग्रन्थों, कर्मकाण्डों से परे है जो परीक्षण एवं अनुभूतिगम्य है । उसका अन्वेषण आज की परिस्थितियों में किया जाना अति आवश्यक है । इस सार्वभौम तत्व की सनातन गरिमा को प्रमाणित करना ही अन्वेषण का उद्देश्य है । बुद्धि का सदुपयोग इस दिशा में होना चाहिए ।

धर्म की, अध्यात्म की उपलब्धियाँ हैं—श्रेष्ठ व्यक्तित्व एवं आदर्श कर्तृत्व । जो धर्म मानवी व्यक्तित्व के विकास में अपना योगदान दे, वही अपना अस्तित्व कायम रख सकता है ।

व्यावहारिक जीवन की समस्याओं का समाधान उसमें होना ही चाहिए । क्यों, किसलिए का समाधान उसे प्रस्तुत करना चाहिए । आज प्रत्यक्षवाद को ही सब कुछ मानने वाला विचारशीलवर्ग कर्मकाण्डों की लकीर को अपनाने को तैयार नहीं इसलिए उन कर्मकाण्डों में जीव परिष्कार का वह दर्शन जुड़ा रहना अति आवश्यक है जिसकी फलश्रुति मनुष्य में देवत्व के उदय के रूप में सामने आती है । इसके अभाव में तो कलेवर विकृति ही खड़ा करेंगे, धर्म की गरिमा को गिरायेंगे ।

धर्म का प्रमाण किसी ग्रन्थ की रचना पर नहीं वरन् सत्ता पर आधारित है । ग्रन्थ मानवी रचना के बाह्य परिणाम हैं जो सार्वभौम सत्ता एवं प्राणिमात्र की एकता का प्रतिपादन करते हैं । मनुष्य उनका प्रणेता है । बुद्धि भी मानव संचरना का ही परिणाम है । बुद्धि की शरण में न्याय के लिए जाना होगा । उसका उत्तरदायित्व है कि वह प्रचलनों के कारण एवं उद्देश्य की व्याख्या करके व्यक्ति को समाधान और सन्तोष प्रदान करे । उसी शाश्वत प्रयास को अन्वेषण कहते हैं । जब कोई घटना घटित होती है तो उसे देखकर असमंजस्य होता है, पर यदि यह विश्वास हो जाय कि यह घटना अमुक नियम का परिणाम थी तो समाधान हो जाता है । पेड़ से सेब गिरा । न्यूटन की बुद्धि आविष्कार के लिए प्रवृत्त हुई । फलस्वरूप पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ । इस सार्वभौम सिद्धान्त को सबने स्वीकार किया । अन्वेषण की इस पद्धति को धर्म क्षेत्र में भी प्रयुक्त करना होगा ।

विज्ञान की मान्यता है कि किसी वस्तु की व्याख्या स्वयं उसकी प्रकृति में निहित है । इसी कारण वह वस्तु के स्वरूप को जानने के लिए प्रयोग, परीक्षण करता है । पदार्थ सत्ता के स्वरूप को जानने के लिए परमाणु रचना को देखना, जाँचना होता है । इस मान्यता के अनुसार सृष्टि में घटित होने वाली घटनाओं की व्याख्या किसी बाह्य सत्ता एवं शक्ति पर आश्रित नहीं है, वरन् उसकी प्रकृति में सन्निहित है । रसायनशास्त्री अपने तथ्यों का प्रतिपादन करने में दैत्य, भूत अथवा बाहरी शक्ति की आवश्यकता नहीं अनुभव करता । विज्ञान के इस सिद्धान्त का प्रयोग धर्म क्षेत्र में भी करना होगा । उसे सिद्धान्तों-मान्यताओं की उपयोगिता की कसौटी पर कसना होगा । परोक्ष में, जीवनोपरान्त धर्माचरण का लाभ मिलेगा या नहीं, बुद्धिवाद इस प्रश्न पर विचार करने को तैयार नहीं है । प्रत्यक्ष में इसी जीवन में धर्म को अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी होगी ।

विज्ञान अपनी व्याख्याएँ वस्तु सत्ता के भीतर से करता है, जबकि धर्म ऐसा करने में पिछले दिनों असमर्थ रहा है । आवश्यकता आ पड़ी है कि धर्म या अध्यात्म भी इस पद्धति को अपनाए तथा अपनी महत्ता को अपने भीतर से सिद्ध करे । विश्व से पूर्णतया पृथक ईश्वर की सत्ता एक प्राचीन मान्यता है । ऐसे ईश्वर की सत्ता को जो विश्व से पृथक है, बुद्धिवाद, उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद स्वीकार करने में असमर्थ है तो उसे मानवी जीवन के निकट उपयोगी बनकर रहना चाहिए । जीवनक्रम की श्रेष्ठता के रूप में परिलक्षित होना चाहिए । उसे श्रेष्ठ व्यक्तित्व के रूप में फलित-परिणत होना चाहिए ।

इन कसौटियों पर कसे जाने एवं अनुसन्धान पर खरा उतरने पर ही धर्म जीवन्त बना रह सकता है, अन्यथा बुद्धिवाद उसे आसानी से स्वीकार नहीं करेगा उल्टे उस पर प्रहार करेगा । अनुसन्धान की उपेक्षा करके देवी-देवताओं की मान्यताओं से चिपके रहने से धर्म की उपयोगिता संदिग्ध बनी रहेगी ।

वस्तु की व्याख्या उसकी प्रकृति में निहित है, भारतीय दर्शन भी पूर्ण रूप से इस सिद्धान्त का समर्थन करता है । ब्रह्म या वेदान्त के ईश्वर से बाहर कुछ भी नहीं है । 'यह सब वही है', सर्वखिल्विदं ब्रह्म' अर्थात् विश्व-ब्रह्माण्ड में उसकी ही सत्ता है । वह स्वयं विश्व ही है । उसी को हम देखते और अनुभव करते हैं । उसी में हमारी जीवनगति और हमारी सत्ता है । विश्व में अन्तर्व्याप्त ईश्वर की समस्त वस्तु सारे तत्व की एवं सर्वत्र अन्तर्यामी होने का भाव भी यही है । वह जगत के साथ में अपने को व्यक्त कर रहा है । जड़ चेतन उसकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं । मनुष्य, देव मानव, मानव-पशु, पौधे आदि के बीच जो विभेद दिखाई देता है वह तत्व की दृष्टि से नहीं परिमाण की दृष्टि से है । महान् देव से लेकर सूक्ष्मकण तक सभी उसी परम चेतना के असीम सागर की अभिव्यक्तियाँ हैं । इस सिद्धान्त की व्याख्या के लिए किन्हीं बाह्य कारणों को ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं, वरन् उसकी प्रकृति में ही जाना होगा ।

इसके लिए धर्म की मान्यताओं को विवेक के, विज्ञान के न्यायालय में प्रस्तुत करना होगा, तर्क एवं उपयोगिता की कसौटी पर कस कर उन सिद्धान्तों को अपनाना होगा जो जीवन के परिष्कार एवं उत्थान में अपना योगदान देते हों । मनुष्य-मनुष्य के बीच प्राणिमात्र के बीच स्नेह-सद्भाव उत्पन्न करते हों । समाज की अन्यान्य अगणित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हों । तर्क एवं परीक्षण की इन कसौटियों पर खरा उतरने के उपरान्त ही धर्म, दर्शन या अध्यात्म बुद्धिग्राह्य हो सकता है । वर्तमान परिस्थितियों में जबकि व्यक्तित्व के विकास के सारे प्रत्यत्न असफल हो रहे हैं, धर्म तत्व को आगे बढ़कर अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करनी होगी, पर यह तभी सम्भव हो सकता है जब वह परीक्षण की भट्टी में अपने को निर्भीकतापूर्वक प्रस्तुत करे । भौतिकी ने जिन आधारों पर अपने को प्रामाणिक ठहराया है उन्हीं आधारों पर आत्मिकी को भी प्रामाणिक एवं उपयोगी सिद्ध करना होगा । समय की इस मांग को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं ।

यह मिलन अगले दिनों होने जा रहा है

स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास में दिए गए एक व्याख्यान में घोषणा की थी कि "मनुष्य का भविष्य उसके सही अर्थों में वैज्ञानिक और सच्चे आध्यात्मिक होने पर अवलम्बित है ।" उनके अनुसार विराट् ब्रह्माण्ड में 'माइक्रोकास्म' एवं 'मैक्रोकास्म' नामक दो आन्तरिक और बाह्य विश्व हैं । अपने अनुभवों द्वारा हम दोनों में से सत्य को ग्रहण करते हैं । आन्तरिक अनुभूति द्वारा प्राप्त सत्य मेटाफिजिक्स या अध्यात्म कहलाता है, तो बाह्य अनुभवों से तर्क बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान फिजिकल साइन्स या भौतिक विज्ञान । दोनों क्षेत्रों के अनुभवों का समन्वय ही हमें पूर्ण सत्य के निकट पहुँचा सकता है । अब वह दिन दूर नहीं, जब विज्ञान और अध्यात्म एक-दूसरे से हाथ मिलायेंगे । काव्य और दर्शन विज्ञान के समीकरणों के दोस्त बनेंगे । दोनों का समन्वित स्वरूप ही भविष्य का सार्वभौम धर्म होगा । इस दिशा में यदि

गम्भीरतापूर्वक प्रयास चल पड़े, तो निश्चय ही यह समूची मानव जाति के लिए, सभी कालों के लिए उपयुक्त जीवन दर्शन होगा ।

अभी तक की वैज्ञानिक खोजें बहिर्मुखी हैं । इस क्षेत्र में संलग्न प्रतिभाओं का विश्वास है कि जीवन में सुख-शान्ति एवं प्रसन्नता बाह्य जगत से प्राप्त की जा सकती हैं । धर्म-दर्शन या अध्यात्म अन्तर्जगत की ओर ले जाता है और प्रसन्नता-प्रफुल्लता का द्वार वहीं से खोलने को कहता है । वस्तुतः वैज्ञानिक सिद्धान्त और उनकी उपलब्धियाँ और कुछ नहीं, मानवी मस्तिष्क का खेल है । उसमें उद्‌भूत कल्पनाओं, विचारणाओं, चित्रों का प्रकटीकरण मात्र है । मस्तिष्क तो तथ्यों को जोड़ता, उनमें काट-छाँट करता, कुछ को स्वीकारता और उन्हें बार-बार कसौटियों पर कसता रहता है, जिससे उसमें सतत् नवीनता बनी रहती है । इसी तरह अध्यात्म भी मात्र कहने-सुनने का कोरा सिद्धान्त नहीं है वरन् स्वयं अनुभव करने, जीवन में उतारने और व्यवहार में प्रकट करने की विधा का नारा है । यह महाग्रन्थ अपने ही काय कलेवर के भीतर अन्तःकरण में लिपिबद्ध है । किसी भी वैज्ञानिक अविष्कार की भाँति उसका अपने ही मन-मस्तिक की प्रयोगशाला में प्रयोग-परीक्षण करना पड़ता है और पूर्ववर्ती आध्यात्मवेत्ताओं के, सन्त-महापुरुषों के अनुभव रूपी आँकड़ों से मिलाया जाता है । इससे अनावश्यक तत्वों को निकाल बाहर करने में सहायता मिलती है, पुरानी सड़ी-गली परम्पराओं से पीछा छूटता है, साथ ही नवीनतम तथ्यों का समावेश होता रहता है ।

मूर्धन्य वैज्ञानिक एफ. काप्रा ने अपनी पुस्तक 'ताओ ऑफ फिजिक्स' में कहा है कि विज्ञान और अध्यात्म दोनों ही सत्य की खोज में लगे हैं । अध्यात्मवेत्ता अपने अन्तराल की गहराई में प्रवेश करके यह तथ्य उद्‌घाटित करते हैं कि जो भीतर है, वही बाहर अभिव्यक्त हो रहा है, जड़-चेतन एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं । यही बात अब विज्ञानवेत्ता भी कह रहे हैं । प्रकृति पदार्थों की गहराई तक प्रवेश करके सूक्ष्म-निरीक्षण, परीक्षण करने के उपरान्त जो निष्कर्ष उन्होंने निकाले हैं उसके अनुसार वस्तुओं और घटनाओं के मध्य गहन एकता है । पदार्थ और चेतना समष्टिगत सत्ता के अनिवार्य अंग हैं । एक के बिना दूसरा अपने को व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकता । दोनों की खोजें परस्पर पूरक एवं सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं, किन्तु अब तक विडम्बना यही रही है कि आत्मिकी का क्षेत्र चेतना के परिष्कार परिमार्जन तक सीमाबद्ध होकर रह गया, धर्म पूजापाठ के बाह्याडम्बरों में उलझ गया, तो विज्ञान ने भी अपने को प्राकृतिक रहस्यों जड़ पदार्थों की खोज तक सीमित मान लिया । एक ने दूसरे की उपोगिता एवं महत्ता को नहीं समझा और न स्वीकारा, जबकि दोनों का उद्देश्य सृष्टि रहस्य को समझना, जीवन उद्देश्य की प्राप्ति करना और उन उपलब्धियों से मानव मात्र का हित साधन करना है । काप्रा के अनुसार यह दूरी अब क्रमशः मिटती जा रही है और दोनों शक्तियाँ मिलन बिन्दु की ओर अग्रसर हो रही हैं ।

प्रसिद्ध रसायनवेत्ता इन्नो बोल्थू का कहना है कि मानव सभ्यता की समस्त समस्याओं का समाधान अकेले विज्ञान और टेक्नोलॉजी के सहारे सम्भव नहीं । जीवन के कई पक्ष ऐसे हैं, जिन्हें वैज्ञानिक तरीकों से नहीं सुलझाया जा सकता । आदर्शवादिता, चरित्रनिष्ठा, सामाजिकता, भाव सम्वेदना जैसे उच्चस्तरीय मानवी मूल्यों की व्याख्या, विवेचना न तो गणित द्वारा हो सकती है और न विज्ञान द्वारा इसका समाधान मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र या दर्शन के द्वारा ही सम्भव है । विज्ञान-ज्ञान की ही एक शक्ति धारा है किन्तु अकेले वह मानव हृदय को नियन्त्रित नहीं कर सकता ।

विश्व का निर्माण स्रष्टा ने किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया है, यदि यह तथ्य सही है तो हमें यह जानना होगा कि वह कौन सा उद्देश्य है, जिसके लिए इस सुरम्य धरती का, उस पर रहने वाले प्राणियों-वनस्पतियों का सृजन हुआ है । निश्चय ही विज्ञान इस सम्बन्ध में मौन है । उसकी पहुँच केवल इतने तक सीमित है कि प्रकृति में कौन-कौन से घटक हैं, उनमें सन्निहित शक्ति का स्वरूप क्या है और उनका अपनी सुख-सुविधा के लिए कैसे और कितनी मात्रा में दोहन सम्भव है । मनुष्य में अन्तर्निहित भाव सम्वेदनाओं आत्मिक विभूतियों को न तो पदार्थ कणों की सूक्ष्म हलचलों के आधार पर और न ही इलेक्ट्रॉमैग्नेटिक वेव्स के विश्लेषण के आधार पर जाना जा सकता है । स्नेह प्यार, आत्मीयता, उदारता, सहिष्णुता, साहस, उमंग, क्रोध, आवेश आदि मनोभावों का समाधान वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा कहाँ हो पाता है ? पदार्थों की भाँति मनुष्यों की प्रकृति एक जैसी नहीं होती । बाह्य रूप से मापक गुणों के आधार पर उन्हें समझना सम्भव नहीं । अतः जीवन की प्रायः अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विज्ञान पर अवलम्बित रहने पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि उन सभी समस्याओं का समाधान वह प्रस्तुत कर सकता है, जो मानव जीवन की पूर्णता के लिए अभीष्ट है ।

अध्यात्म जीवन दर्शन सम्बन्धी समस्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है । इसके प्रयोक्ता अपने गुण-कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का एवं चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में आदर्शवादिता का समावेश करते और अन्तराल की गहराई में प्रवेशकर उस शाश्वत सत्य के दर्शन करते हैं जिसे जान कर और कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता । जिसे पाकर और कुछ प्राप्त करने की इच्छा-आकांक्षा का सर्वथा समापन हो जाता है । अध्यात्मवेत्ताओं के अनुसार मनुष्य वस्तुतः 'स्प्रिचुअल बींइंग' अर्थात् आध्यात्मिक जीवर्थ है । जीवित पदार्थ के अतिरिक्त भी वह कुछ और है । आत्मिक परिपूर्णता अर्थात् क्षुद्रता से महानता में परिवर्तन-प्रत्यावर्तन ।

इस सन्दर्भ में प्रख्यात भौतिक विज्ञानी विलियम जी. पोलार्ड का कहना है कि विज्ञान और अध्यात्म दोनों महाशक्तियों का समन्वय उक्त उद्देश्य की पूर्ति सहजतापूर्वक करा सकता है । प्रगति का मार्ग इसलिए अवरुद्ध हो गया है कि विज्ञान को मात्र वस्तुनिष्ठ ज्ञान माना और प्रयोग-परीक्षणों द्वारा सत्य प्रामाणित किया जाता है । इसी तरह अध्यात्म को व्यक्तिगत-आत्मपरक मान लिया जाता है जिसकी नींव श्रद्धा और विश्वास पर टिकी हुई है । यही कारण है कि तर्क, तथ्य एवं प्रमाणों के अभाव में इसके अनुयायी को यह प्रमाणित करना कठिन पड़ जाता है कि भौतिक विज्ञान के प्राथमिक सिद्धान्त की तरह इसमें वास्तविकता कितनी है । कुशल वैज्ञानिक बनने के लिए सम्बन्धित विषय के प्रति लगन, दीर्घकालिक अध्ययन, तत्परता, अनुशासन आदि की

आवश्यकता पड़ती है । सच्चे अध्यात्मवेत्ता को भी धैर्यपूर्वक उसी मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है ।

वस्तुतः विज्ञान और अध्यात्म मानवी प्रगति की दो महत्त्वपूर्ण एवं परस्पर पूरक शक्तियाँ हैं । एक हमारे परोक्ष जगत की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को सरल बनाती है तो दूसरी परोक्ष जगत की आत्मिक विभूतियों से हमें सम्पन्न करती है। दोनों का सन्तुलित विकास ही मानव के समग्र उत्थान का पथ-प्रशस्त कर सकता है । यही आज की आवश्यकता भी है ।

विज्ञान की समग्रता जीवन मूल्यों के साथ जुड़ कर ही

विगत कुछ शताब्दियों से मानवीय जीवन में विज्ञान की भूमिका बहुत बढ़ गई है । वर्तमान जीवन के प्रत्येक आयाम पर इसकी छाप अंकित है । परिणामतः जीवन पद्धति एवं दृष्टिकोण तीव्रगति से परिवर्तित हुए हैं । इसी के कारण समूचा संसार एक लघु परिधि में सिमट सा गया है । इसी का परिणाम है कि जीवन बहुत आरामदायक बन गया है ।

इतने पर भी इसकी प्राभाविकता का एक अन्य आयाम भी है, वह है मानव मूल्यों का पतन । डॉ. राधाकृष्णन् अपनी कृति 'आध्यात्मिक सहचर्य' में इसका तात्पर्य "शुद्ध मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा का ह्रास" बतलाते हैं । उनके अनुसार यह तत्व व्यक्ति के जीवन तक सीमित न रहकर समूचे समाज में व्याप्त है ।

विज्ञान-समूचे समाज में परिव्याप्त इन मूल्यों के पतन का कारण क्यों बना ? इसकी विवेचना हेतु विज्ञान के प्रति पूर्वकालीन तथा अद्यतन दृष्टिकोण पर विचार करना होगा । वैदिक काल में विज्ञान धर्म का ही एक अभिन्न अंग था । इस काल में कलाएँ, विज्ञान प्रौद्योगिकी, नैतिक व सामाजिक व्यवस्था, दर्शन के मणि मुक्तक जिस केन्द्रीय सूत्र में पिरोए थे, वह था अध्यात्म । प्रत्येक कार्य एवं विधा का यही लक्ष्य था ।

इसी कारण उस काल में प्रत्येक व्यक्ति निज के कार्य को करते हुए इन मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखता था । यही नहीं मनुष्यत्व के परिपाक के रूप में देवत्व की अनुभूति भी करता था । उसका स्वयं का कार्य ही धर्माचरण था । धार्मिक बनने के लिए उसे कुछ अलग से करने की आवश्यकता न थी । इस स्थिति को निरूपित करते हुए गीताकार का कहना है—"श्रेयान्स्व धर्मो हिः" । बात भी औचित्यपूर्ण है । जब व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक आयाम में मूल्यों की उत्कृष्टता अविछिन्न हो, तब श्रेष्ठता के अतिरिक्त और हो भी क्या सकता है ?

इस भारतीय चिन्तन की प्राभाविकता को ग्रीक के क्लासिकल युग में देखा जा सकता है । इस काल में भी विज्ञान को तत्व दर्शन का एक अभिन्न अंग माना गया । तत्वदर्शन का सम्बन्ध वस्तुओं की प्रकृति तथा उसमें निहित सत्य के ज्ञान की खोज से होता है । इसमें देखने व विचारने की विधा समग्र होती है । विशिष्ट वस्तु की पहचान या उसके स्वरूप की जानकारी समग्रता की परिधियों में ही की जा सकती है ।

जीवन का एक पक्ष अन्य दूसरे पक्षों से अभिन्नतापूर्वक जुड़ा हुआ है । अतएव किसी एक पक्ष की विवेचना सम्पूर्ण व्यवस्था के एक अंग के रूप में ही कर सकते हैं । इस कारण विज्ञान की एकाकी व्यवस्था न हो सकना स्वाभाविक है ।

यह यथार्थ है कि वैदिक युगीन तथा क्लासीकल युगीन जीवन में विज्ञान का स्थान महत्त्वपूर्ण तो था, किन्तु निरपेक्ष नहीं । निरपेक्ष स्थान न होने के कारण ही उसे धर्म तथा दर्शन की परिधि के अन्तर्गत लिया जाता था । अतएव यह स्वाभाविक ही था कि जीवन के प्रत्येक कार्य का मूल्यांकन जीवन के लक्ष्य व आदर्शों के सन्दर्भ में किया जाय ।

इसी कारण विज्ञान की गतिविधियों का मूल्यांकन अच्छा जीवन, अच्छा समाज, अच्छी व्यवस्था आदि आधारों पर किया जाता था । धर्म के बड़े घेरे में विज्ञान का सम्बन्ध मूल्यों से रहा । इन मूल्यों के द्वारा ही व्यक्ति अपने निजी हितों से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज के हित में निर्णयात्मक कदम उठा सकता है ।

पुनः जागरणकाल में विज्ञान के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर आया । कला की भाँति इसने भी धर्म से सम्बन्ध विच्छेद कर स्वायत्त स्थान ग्रहण किया । इस स्वायत्तता के स्वरूप की नई व्याख्या सत्रहवीं सदी के बेकन, हाब्स, देकार्ते आदि विचारकों ने प्रस्तुत की । वह विज्ञान जो पहले सुसम्बद्ध एवं परिमार्जित जीवन के लिए प्रयोग किया जाता था, उसे मानवी शक्ति की अभिवृद्धि में प्रयोग किया जाने लगा । परिणामस्वरूप प्राकृतिक विज्ञान का उदय हुआ जो दर्शन और धर्म दोनों से ही मुक्त था ।

अन्य शब्दों में यहाँ पर विज्ञान का लक्ष्य प्रकृति का विश्लेषण कर सत्य की शोध की अपेक्षा प्रकृति को जीतना हो गया । इस प्रवृत्ति की बढ़ती निरन्तरता से विज्ञान को मानव इच्छाओं का दासत्व स्वीकारना पड़ा । व्यक्ति की बढ़ती हुई इच्छाओं ने नूतन उपभोक्ता सामग्री के अन्वेषण पर बल दिया ।

परिणामतः व्यक्ति की सोच का दायरा इसी में सिमटता जा रहा है कि जीवन पहले से अधिक विलासिता और आरामदेह कैसे बनाया जाय ? यह सोच जीवन में लालच, ईर्ष्या, जोड़-तोड़ व विघटन उभारने वाली ही सिद्ध हुई है । फलतः व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन से मानवीय मूल्यों का सम्बन्ध विच्छेद हो जाना अस्वाभाविक नहीं है ।

इस असामंजस्यपूर्ण स्थिति से बचने के लिए ही वैदिक चिन्तकों ने समस्त विधाओं को अध्यात्म के सूत्र में पिरोया था । इसी से आग्रह करते हुए अरस्तू ने कहा था कि "विज्ञान व तकनीक को यदि जीवन मूल्यों से मुक्त किया गया तो परिणाम खतरनाक होंगे ।" संकीर्ण स्वार्थपरता से ग्रसित व्यक्ति एक छोटी सी चीज को त्याग नहीं सकता है । इसके विपरीत जीवन-मूल्यों से प्रेरित व्यक्ति आदर्शों के लिए बड़ा से बड़ा त्याग करने में नहीं हिचकिचाते । यह प्रेरणा धार्मिक शिक्षाओं से ही मिल सकती है ।

आधुनिक दृष्टिकोण ने विज्ञान ने विज्ञान का जो स्वरूप गढ़ा है । उसी का परिणाम मूल्यों के पतन के रूप में गोचर है । उसकी निषेधात्मक प्राभाविकता से व्यक्ति और समाज दोनों ही अछूते नहीं बचे हैं । व्यक्ति भिन्नता और अलगाव की भावना से ग्रसित होकर मात्र मशीन का पुर्जा बनकर रह गया है । सामुदायिक स्नेह तथा लगाव का स्थान एकाकीपन ने ले लिया है । साधन सुविधाओं की बहुलता भी व्यक्ति को सन्तुष्टि नहीं प्रदान कर रही है । जीवन में अस्त-व्यस्तता का ही वर्चस्व है ।

कारक की खोज तथा मूल्यों की स्थापना के लिए एक समन्वय साधना की आवश्यकता है । सामाजिकता का अभिनव गठन तभी सम्भव है, जब विज्ञान के प्रति हमारा दृष्टिकोण परिवर्तित हो । इसमें जीवन मूल्यों का समावेश हो । इसके लिए आवश्यक है, विज्ञान-दर्शन व धर्म का समन्वय । रूसो विज्ञान एवं दर्शन के समन्वय पर जोर देते हुए कहते हैं कि विज्ञान समाज की मान्यताओं की नई व्याख्या प्रस्तुत कर सकता है, तो दर्शन इस नई व्याख्या को अच्छी व्यवस्था का रूप दे सकता है ।

रूसो की वह मान्यता ठीक है, किन्तु इस अच्छी व्यवस्था को व्यावहारिक स्तर की प्रायोगिकता में अवतीर्ण करना धर्म का कार्य है । यही दोनों में सन्तुलन स्थापित करता है । सन्तुलन की यह सामन्जस्यपूर्ण स्थिति है, वैज्ञानिक अध्यात्म है, जिसे सिद्धान्त के रूप में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद कहा जा सकता है ।

इसमें विज्ञान की सत्यनिष्ठापूर्ण शोध बुद्धि, दर्शन की मूढ़ मान्यतों से मुक्त तर्कपूर्ण व्यवस्था तथा अध्यात्म के शाश्वत जीवन मूल्य सभी का समावेश है । इस सिद्धान्त को आचरण में उतारकर व्यक्ति एक तरफ सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं मूल्यों को सुसम्बद्धता का आधार प्रदान करके समाज को प्रगति की ओर बढ़ा सकता है । दूसरी ओर इससे व्यक्ति का निर्णय निजी स्वार्थ संकीर्णता से ऊपर उठेगा एवं सामूहिकता के, संघ शक्ति के विकास के सम्बन्ध में भी सोचने लगेगा । यही समय की आवश्यकता भी है ।

बुद्धि पर धर्म का अंकुश रखा जाय

विज्ञान-बुद्धि से हम चित्र की लम्बाई-चौड़ाई नाप सकते हैं, उसमें रंगों का विश्लेषण कर सकते हैं । यहीं उसकी सीमा समाप्त हो जाती है । चित्र में जो सौन्दर्य है, जो भाव-अभिव्यंजना है—उसका लेखा-जोखा प्रस्तुत कर सकने का कोई मापदण्ड विज्ञान के पास नहीं है । ऐसी दशा में चित्रों का मूल्यांकन, क्या उसमें प्रयुक्त हुए पदार्थों को नाप-तौल कर करना ही ठीक रहेगा ?

आँसुओं के पानी का वैज्ञानिक विश्लेषण पानी, खनिज, श्लेष्मा, क्षार, प्रोटीन का सम्मिश्रण भर किया जा सकता है । प्रयोगशालाएँ आँसुओं का स्वरूप इतना ही बता सकेंगी । ऐसी दशा में क्या उनके साथ जुड़े हुए—स्नेह, ममता, करुणा, व्यथा, वेदना आदि के अस्तित्व से इन्कार कर दिया जाय ? अथवा इन सम्वेदनाओं को इसलिए अमान्य ठहरा दिया जाय, क्योंकि उसका कोई प्रमाण पदार्थ विश्लेषण द्वारा उपलब्ध नहीं हो सका ।

मनुष्य का शरीर विज्ञान की दृष्टि से कुछ रासायनिक पदार्थों का सम्मिश्रण मात्र है । उसकी गतिविधियों का आधार अन्न-जल और वायु से मिलने वाली ऊर्जा है । मस्तिष्कीय-चिन्तन को शरीगत सम्वेदनाओं से प्रभावित आवेश मात्र कहकर विज्ञान दूर जा बैठता है । आत्मा का, निष्ठा का, भाव सम्वेदना का, आदर्शों के लिए कष्ट सहने का, त्याग करने की उमंगों का, विज्ञान के पास कोई समाधान नहीं ? ऐसी दशा में मनुष्य को, आत्मा और भावना से रहित एक रासायनिक-यन्त्र कहकर सन्तोष कर लिया जाय ।

देहात के अशिक्षित लोग अपेक्षाकृत सुखी, सन्तुष्ट और निश्चिन्त पाये जाते हैं, जब कि शिक्षित और सम्पन्न वर्ग के लोग अधिक चिन्तित, उद्विग्न और असन्तुष्ट पाये जाते हैं । इसका कारण बुद्धि का एकांगी विकास है । उसके ऊपर से आस्थाओं का आवरण हट जाने से मानसिक उच्छृंखलता न केवल अचिन्त्य-चिन्तन के आधार प्रस्तुत करती है, वरन् उन दुष्कर्मों को करने के लिए भी छूट देती है, जो मनुष्य के गौरव और समाज गत अनुशासन को नष्ट-भ्रष्ट करके रख देते हैं । उद्धत महत्त्वाकांक्षाएँ मनुष्य को एक प्रकार से ऐसा अर्द्ध-विक्षिप्त बना देती हैं, जो कामना-पूर्ति के लिए उचित-अनुचित का भेद त्याग कर भी कर गुजरने के लिए तत्पर हो जाता है । असीम उपयोग की ललक सीमित क्षमता और सामान्य परिस्थिति में पूर्ण नहीं हो सकती, असीम उपलब्धि के साधन नहीं जुटते, ऐसी दशा में हर समय मनुष्य पर खीज चढ़ी रहती है और उसकी अभिवृद्धि से मनःक्षेत्र विषाक्त हो जाता है । ऐसे लोग अपराध-कृत्यों में निरत, उद्धत, अशान्त और हत्या अथवा आत्महत्या के लिए उतारू दीखते हैं, उन्हें अपने चारों ओर का वातावरण प्रतिकूल दीखता है । प्रतिकूलता को पचा सकने का सन्तुलन भी आध्यात्मिक विवेक-दृष्टि से ही बनता है, चूँकि दर्शन को पहले ही तिलांजलि दी जा चुकी थी । इसलिए तथा-कथित मरघट के प्रेत-पिशाचों से भी गई-गुजरी मनःस्थिति में लोगों को अपने दिन गुजारने पड़ते हैं । शिक्षा, धन, पद, वैभव और परिवार की उपलब्धियाँ निरर्थक सिद्ध होती हैं, उनसे कोई समाधान नहीं निकलता । आकांक्षाओं के तूफान में उपलब्धियों के तिनके अस्त-व्यस्त छितराए उड़ते फिरते हैं । मनुष्य पर अभाव और असन्तोष ही छाया रहता है । हर घड़ी बेचैनी अनुभव होती है ।

शान्ति, सन्तोष और विश्वास की छाया यदि देखनी हो तो पिछड़े अशिक्षित, देहाती और निर्धन क्षेत्र में किसी न किसी मात्रा में अवश्य मिल जायेगी, किन्तु सुसम्पन्न वर्ग में उसके दर्शन भी दुर्लभ होंगे । मित्रता के नाम पर चापलूसी ही बिखरी दिखाई देगी । क्या गहन घनिष्ठता, आत्मीयता एवं सघन निष्ठा के दर्शन दुर्लभ होंगे । परिवार एवं मित्र-मण्डली में मित्रता के चोंचले तो बहुत चल रहे होंगे, पर जिस वफादारी में एक-दूसरे के लिए मर-मिटता है, उसका कहीं पता भी न होगा । यह बात आन्तरिक स्थिति के बारे में निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व मनोभूमि कदाचित ही किसी को मिलेगी । मनोविकारों के तूफान उठ रहे होंगे और उनकी जलन से उद्विग्नता इस कदर बढ़ी हुई होगी कि जीवन का रस उसमें जल-भुन कर नष्ट ही हो चलेगा ।

इसमें निर्धनता को श्रेय और सम्पन्नता को निकृष्ट होना कारण नहीं है वरन् यह है कि तथाकथित पिछड़े वर्ग ने अपने विश्वासों में उन तत्वों का किसी कदर समावेश करके रखा, जिन्हें अध्यात्म के वर्ग में रखा जा सकता है । भाग्यवाद, ईश्वर पर विश्वास, सन्तोष, वचन का पालन, वफादारी का निर्वाह जैसी आस्थाएँ तथाकथित विज्ञ-समाज में दकियानूसी कही जा सकती है, पर जिन्होंने उन्हें हृदयंगम किया है—वे अज्ञ इन विज्ञों की अपेक्षा अधिक हर्षोउल्लास लेकर जा रहे होंगे । दूसरी ओर सम्पन्नता का लाभ केवल शरीर पाता है । वे सुविधा साधनों का उपयोग अधिक कर लेते हैं, इससे शारीरिक-सुविधा में कमी नहीं रहती, फिर भी अन्तःकरण अतृप्त और क्षुब्ध ही बना रहता है, क्योंकि उसे आस्थाओं का आहार नहीं मिल सका । प्यार और विश्वास के अभाव में मनःस्थिति मरघट जैसी वीभत्स ही बनी रहेगी । बहिरंग सुविधा-साधन उस अभाव की पूर्ति न कर सकेंगे, भले ही वे कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों ।

देखते हैं कि आस्था खोकर सम्पन्न वर्ग ने कुछ नहीं पाया, जबकि आस्था को अपनाये रहकर तथाकथित पिछड़ा वर्ग लाभ में रहा। आस्थाएँ गवाँकर भटकाव और विक्षोभ के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। वैभव अपने साथ जो उत्तेजनाएँ लेकर आता है, उनके कारण उपलब्ध होने वाले दुर्गुणों और दुष्प्रवृत्तियों की बहुलता—न शरीर को स्वस्थ रहने देती है और न मन को सन्तुलित। चढ़ाव-उतार और प्रतिस्पर्धा की जटिल प्रतिक्रियाएँ इतनी दुर्धर्ष होती हैं कि उनके सामने हर्षोल्लास का वह वातावरण भी नहीं टिक पाता, जिसे सरल और सौम्य प्रकृति का सामान्य मनुष्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करता हुआ अपने पिछड़ेपन को भी सराहता रहता है। सम्पन्नता और सुशिक्षा, लोक और परलोक दोनों ही गवाँ बैठती है, जबकि वैभव रहित व्यक्ति कम से कम एक को तो हथियाए ही रहते हैं। हत्या और आत्महत्या जैसे कुकृत्य अनास्था के बूचड़खाने में ही होते हैं। आस्थावान् सहन भी कर लेता है और भविष्य के प्रति विश्वासी भी रहता है, पर जिसने इन निष्ठाओं को उखाड़ फेंका है—उनके लिए मन को समाधान कर सकने वाला सम्बल ही हाथ से निकल जाता है। संयम और सत्कर्म के लिए—औचित्य और विवेक के लिए उन्हीं के जीवन में स्थान रहता है, जिन्होंने आस्थाओं को मजबूती से पकड़ कर रखा है। अनात्मवान् "खाओ-पियो, मजा करो" से आगे की कोई बात सोच ही नहीं सकता। ऐसा वर्ग जिस समाज में बढ़ता है, उसका भविष्य अन्धकारमय बनकर ही रहेगा। संशय और अविश्वास की मनोभूमि में विक्षोभ के विष-वृक्ष ही उगते हैं।

स्थिरता तभी तक रहेगी—जब तक बुद्धि और धर्म का समन्वय रहेगा। बुद्धि से शक्ति अर्जित की जाय और धर्म का परामर्श लेकर उसका उपयोग किया जाय तो ही दुरुपयोग से बचा जा सकता है और तज्जनित दुष्परिणामों से बचा जा सकता है। बुद्धि पर से धर्म का नियन्त्रण हट जाने से ऐसी भयावह उच्छृंखलता उत्पन्न होती है, जिसके सामने बुद्धि के सुखद उपार्जन का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता। विज्ञान, शिक्षा, कला, तकनीकी, शिल्प आदि के क्षेत्र में इन दिनों भारी प्रगति हुई है, किन्तु उससे मानवी सुख-शान्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई है। आन्तरिक स्तर तनिक भी नहीं बढ़ा, वरन् आदिम-युग की जंगली-सभ्यता की ओर लौट पड़ा। जबकि बढ़े हुए सुविधा-साधनों के सहारे व्यक्ति और समाज को अधिक परिष्कृत स्थिति का लाभ मिलना चाहिए था। बौद्धिक-विकास और तज्जनित उपलब्धियों का परिवार भस्मासुर की तरह सर्वनाश का आयोजन करने में जुटा हुआ है। परमाणु को तोड़कर प्रचण्ड शक्ति को हस्तगत तो कर लिया गया, पर अब वही मनुष्य के अस्तित्व को चुनोती देने पर तुल गई है। बुद्धि पर धर्म का नियन्त्रण रहना इन परिस्थितियों में अनिवार्य हो गया है। निरंकुश स्वेच्छाचार तो हमें नष्ट करके ही छोड़ेगा।

धर्म अपने स्वस्थ स्वरूप में ही वरणीय है

'इन्ट्रोडक्शन टू साइन्स' पुस्तक में विद्वान टी. ए. थाक्सन लिखते हैं कि विज्ञान का लक्ष्य अवैयक्तिक तथ्यों का प्रामाणिक रूप से सत्य की भाषा में सरलता से प्रस्तुतीकरण करना है एवं वैज्ञानिक घटनाओं और दृश्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करना तथा उनमें नियमानुकूलता का पता लगाकर जो निष्कर्ष निकालता है, वही परीक्षण की कसौटी पर खरा उतरने पर एक निश्चित सिद्धान्त अथवा विधि-विधान के रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार विज्ञान तर्कपूर्ण निष्कर्षों तथा आनुभविक सूक्ष्म परीक्षणों द्वारा सत्य के निकट पहुँचता है। पर उस निष्कर्ष तथा आविष्कृत सत्य को कभी भी अन्तिम नहीं मानता। प्रयोग में पुनरावृत्ति विज्ञान का आवश्यक अंग है। प्रयोगों की कसौटी पर कसे बिना कोई भी तथ्य स्वीकार्य नहीं होता। किसी ग्रन्थ अथवा व्यक्ति का कथन इसलिए प्रामाणिक नहीं माना जाता कि वे पुरातन हैं वरन् सत्यता के आधार पर वे प्रामाणिक घोषित किए जाते हैं। सत्यानुसन्धान की प्रवृत्ति के कारण विज्ञान ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

आदिम अवस्था में मानव की बुद्धि इतनी विकसित नहीं हुई थी। प्रकृति की घटनाओं को वह समझ नहीं पाता था। प्राकृतिक प्रकोपों को वह किसी अविज्ञात शक्ति का, देवी-देवता का कोप मानता था। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण का लगना, भूकम्प का आना, ज्वालामुखी का फटना, तूफान का आना जैसी घटनाओं के प्रति उसकी मान्यता थी कि वे किसी दैवी शक्ति से अभिप्रेरित होती हैं, पर बुद्धि के विकास से प्रकृति के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा बढ़ी। फलतः वे रहस्य अनावृत होते चले गए तथा पुरानी मान्यताएँ भी बदलती गई। उन्हें अब प्रकृति की असमान्य घटना भर समझा जाता है।

जिज्ञासा की भावना तथा तर्क की प्रवृत्ति वैज्ञानिक मनोवृत्ति की प्राथमिक शर्त है। किसी वस्तु, घटना अथवा रहस्य को देखकर सहसा ही 'क्या', क्यों और कैसे का प्रश्न उठे, यही वैज्ञानिक मानसिकता है। सत्य एवं तथ्य की खोज में इसी से प्रेरणा मिलती है। प्रचलित सिद्धान्तों, मान्यताओं तथा परिकल्पनाओं में औचित्य का अंश कितना है, इसका निर्धारण इस खोज की मनोवृत्ति से ही हो पाता है। पूर्व मान्यताओं एवं स्वयं के पूर्वाग्रहों का उसमें स्थान नहीं होता। रहस्यों को जानने के लिए उठायी गई शंकाएँ वितण्डावादी तर्क से अभिप्रेरित नहीं होती वरन् जिज्ञासा से प्रेरित होती हैं। जिज्ञासा से प्रेरित वैज्ञानिक खोज ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का आधार बनता है। विज्ञान कभी भी सिद्धान्तों की सर्वज्ञता को स्वीकार नहीं करता। उसके लिए कोई तथ्य अथवा घटना प्रश्न से परे नहीं होते। क्रिया और प्रतिक्रिया के नियम को मात्र वह शाश्वत मानकर चलता है तथा उसका स्वरूप जानने का प्रयत्न करता है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति सृष्टि के रहस्यों को जानने के लिए मनुष्य को सतत् उत्प्रेरित करती है। अपनी सामर्थ्य एवं उपलब्धियों को कभी भी विज्ञान पूर्ण नहीं मानता। न्यूटन जैसे विज्ञानी तो यहाँ तक कहते हैं कि "ज्ञान के अथाह सागर से कुछ सीपी और घोंघे ही अभी एकत्रित किए जा चुके हैं। गहराई में डुबकी लगाने पर नीलम, मूँगे, मोती और पन्ने मिलने की भी सम्भावना है।"

ज्ञान को पूर्ण नहीं सतत् विकासशील मानना विज्ञान का नियम है। किसी भी नई सम्भावना से वह इन्कार नहीं करता। आशावादी भविष्य पर उसका दृढ़ विश्वास होता है। प्रकृति के जिन रहस्यों अथवा घटनाओं को अभी समझा नहीं जा सका है, विज्ञान यह मानकर चलता है कि कल नहीं तो परसों उनके ऊपर के पर्दे अवश्य उठेंगे तथा यथार्थता सामने आयेगी। आविष्कृत सार्वभौम सिद्धान्तों एवं तथ्यों को जो सर्वमान्य हैं, उन्हें ही विज्ञान

प्रामाणिक मानता तथा स्वीकृति देता है । सन्देहपूर्ण आविष्कार मान्यता प्राप्त नहीं कर पाते । भेद खड़ी करने वाली दीवारों को पार करके वह सिद्धान्तों की एकरूपता में विश्वास करता, उन्हें ही मान्यता देता है ।

आध्यात्मिक विज्ञान की भी प्रगति हो

विज्ञान, भौतिक जगत की एक महाशक्ति है । प्रकृति के भण्डार में असीम प्रयोजनों में काम आने वाली अगणित क्षमताएँ भरी पड़ी हैं, उनमें से क्रमशः प्रयत्नपूर्वक मनुष्य के हाथों कितनी ही सामर्थ्यें लगती गई हैं । अग्नि का, कृषि, पशुपालन, धातुओं के उपकरण बनाने का, पहिए का सिद्धान्त प्रगति के आरम्भिक दिनों में हस्तगत हुआ । इतने भर से ही भौतिक जीवन में असाधारण सुविधाएँ हस्तगत करता गया । यह लोभ आगे भी संवरण न हो सका । एक के बाद एक खोज करते हुए वह विद्युत ही नहीं अपितु अणु शक्ति और लेसर किरणों तक का अधिष्ठाता बन गया । यांत्रिक वाहन जलयान, नभयान उसने बनाये और मुद्रणकला जैसे अनेकों सुविधा साधन ढूँढ़ निकाले । अब वह अन्तरिक्ष पर अधिकार जमाने के फेर में है । प्रक्षेपास्त्र उसके हाथ आ गए हैं । कल-कारखानों के सहारे अनेकों सुविधा साधन बनते चले जाते हैं । विज्ञान ने मनुष्य के हाथों असीम सामर्थ्य प्रदान की है । इस आधार पर वह सम्पन्न भी हुआ है और बुद्धि-बल बढ़ाता प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ा है । यह प्रकृति के रहस्यों को खोजते जाने और उसके ज्ञान के सहारे उपयोगी उपकरण बनाते जाने का ही प्रतिफल है ।

इन प्रशंसनीय प्रयासों के साथ एक दुर्भाग्य भी पीछा करता आया है कि मारक और घातक उपकरणों का निर्माण भी कम नहीं हुआ और उपार्जित पूँजी का कम अंश उसमें नहीं लगा । इनके द्वारा करोड़ों को जान गवाँनी पड़ी और उनके आश्रित बिलखते रह गए । युद्ध का प्रतिफल यही तो हो सकता था ।

विज्ञान ने सुखोपभोग के जहाँ अनेकों साधन प्रयोग किए, वहाँ मनुष्य को आलसी, प्रमादी भी बनाया । नशे को ही लें । उसने अच्छे खासों को निकम्मा बना कर रख दिया । यांत्रिक उत्पादन ने अमीरों की अमीरी, गरीबों की गरीबी को बढ़ा कर दोनों के मध्य खाई चौड़ी कर दी । हर हाथ को काम मिलना सम्भव न रहा । बेकार-बेरोजगारी के कुचक्र में असंख्यों पिसने लगे । वैज्ञानिक प्रगति में मानवी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा, तो की जा सकती है, पर उसके द्वारा अपनाये मार्ग को देखते हुए यह भी कहना पड़ता है कि उपलब्धियों का सदुपयोग नहीं हुआ । उससे लाभ थोड़ों को हुआ और हानिकारक दुष्परिणाम असंख्यों को भुगतने पड़े । जिस मार्ग पर कदम बढ़ रहे हैं, उन्हें देखते हुए भविष्य और अन्धकारमय दिखता है । स्वसंचालित विशालकाय मशीनें अगणित लोगों को बेरोजगार, भूखों मरने के लिए विवश करेंगी । उत्पादन को खपाने के लिए, मण्डियों पर अधिकार करने के लिए समर्थों की लिप्सा युद्धोन्माद बढ़ा कर नये-नये युद्ध क्षेत्र रचेंगी । वाहन और कारखाने जो जहरीला धुआँ उगलते हैं, उससे वायुमण्डल विषाक्त हो चला । कारखानों की गन्दगी नदी-नालों की मारफत समुद्र में पहुँचती है, जिससे जल जीवों का ही सफाया नहीं होता, वर्षा भी जहरीली होती है । हवा की तरह पानी भी क्रमशः अधिक जहरीला होता चला जा रहा है । अधिक अन्न उपजाने के लिए रासायनिक खाद और फसल के कीड़े मरने के लिए बनने वाले जहरीले छिड़कावों ने खाद्य-पदार्थों को विषाक्त करना आरम्भ कर दिया । अणु शक्ति का उपयोग चाहे युद्ध के लिए हो या बिजली बनाने के लिए, हर हालत में विकिरण उत्पन्न करती है । इस प्रकार वैज्ञानिक प्रगति जितनी सुविधाएँ उत्पन्न कर रही है, उससे कहीं अधिक जीवन संकट उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम भी खड़े कर रही है । मारक औषधियों ने स्वास्थ्य का रक्षण कम और भक्षण अधिक किया है ।

अच्छा होता वैज्ञानिकों को पैसे के बल पर मुट्ठी में रखकर, उनके द्वारा नयी शोधें कराने और नये उपकरण बनवाने वाले सत्ताधीश एवं धनाध्यक्ष, अपनी बिरादरी को अधिक समर्थ बनाने की अपेक्षा सर्व साधारण का हित सोचते और ऐसा निर्माण करते जिससे देहातों में बिखरे अशिक्षित भारत के बहुसंख्यक लोगों को, छोटे-छोटे उपकरणों के सहारे उपयोगी उत्पादन में सुविधा मिलती । इस सन्दर्भ में मानवता की एक बड़ी चुनौती विज्ञान के सामने है । उसे एक-दो हार्स पावर की बिजली से चल सकने वाले कुटीर उद्योगों के यन्त्र बनाने चाहिए । हवा और पानी की शक्ति से चलने वाले सस्ते बिजलीघर बनाने चाहिए । जमीन के ऊपर पानी लाने वाले पम्प, छोटे हल, ट्रैक्टर, करघे, लकड़ी चीरने और लोहा गलाने की भट्टियाँ बना सकना अधिक कठिन नहीं होना चाहिए । वजन ढोने की हल्की गाड़ियाँ, बैलों पर कम वजन डालने वाले जुए, छोटी पवन चक्कियों जैसे यन्त्र मनुष्य का, पशुओं का श्रम हल्का कर सकते हैं, साथ ही रोजगार भी देते रह सकते हैं । अन्न के बाद दूसरी आवश्यकता कपड़े की है । इसके लिए रुई बनाने, कातने, बुनने, धोने, रंगने की छोटी-छोटी मशीनें बन सकती हैं, और उस क्षेत्र में बड़ी मीलों की प्रतिद्वन्द्विता रोककर लाखों बेरोजगारों को काम दिया जा सकता है । सरकार ही शिक्षा का सारा भार अपने ऊपर उठाये यह आवश्यक नहीं । निजी विद्यालय चलाने को भी एक स्वतन्त्र व्यवसाय के रूप में छूट दी जा सकती है । इस प्रकार सरकार, जनता एवं वैज्ञानिक मिलकर देश के लिए एक ऐसा रचनात्मक तन्त्र खड़ा कर सकते हैं, जिससे स्वल्प पूँजी वाले भी अपने लिए तथा साथियों के लिए आजीविका उपार्जन के नये स्रोत खोल सकें । विज्ञान को 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए, और सदा काम आने वाले छोटे यन्त्रों के निर्माण में तत्परतापूर्वक लगना चाहिए । इससे यन्त्र बनाने वाले उद्यमी और उनसे काम लेने वाले प्रयोक्ता सभी का हित साधन हो सकता है । यों अभी भी कुछ तो यन्त्र बने हैं पर वे बे-मन से उपेक्षापूर्वक बनाये गए हैं । उनकी खामियाँ दूर नहीं की गईं अन्यथा अम्बर चरखा जैसे उपकरण फेल क्यों होते ? इस दिशा में अब नये सिरे से सोचा और सहकारिता के आधार पर कारगर कदम उठाया जाना चाहिए ।

बड़े लोग इस दिशा में कम ध्यान दें तो छोटे लोग मिलजुल कर सहकारी स्तर पर बड़ी पूँजी वाले कारखाने खड़े कर सकते हैं । करोड़ों की पूँजी वाले कारखाने शेयरों से, बैंकों के ऋण से, सरकारी अनुदानों से बनकर खड़े हो जाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि देहातों में काम आ सकने वाले गृह उद्योगों के लिए आवश्यक उपकरण न बन सकें । शहरों पर आबादी का बढ़ता हुआ दबाव

और बढ़ता हुआ गन्दगी का प्रभाव कम करने के लिए कस्बों को विकसित किया जाना चाहिए । सड़कों का जाल इस तरह बिछाया जाना चाहिए कि पास वाले कस्बों तक सस्ते वाहन आसानी से पहुँच सकें सरकारी कोष में धन कम हो तो वाहनों पर टैक्स लगाकर उसकी पूर्ति की जा सकती है जैसा कि नये पुल बनाने पर यातायात टैक्स लगता है । विज्ञान को सब कुछ अमीरों के लिए बड़े पैमाने पर काम करने वाले साधन ही नहीं जुटाने चाहिए वरन् देहातों में चल सकने वाले उपकरण भी बनाने चाहिए, जिससे बेरोजगारी का निराकरण हो सके । कृषि में शाक और सस्ते फल उत्पादन की काफी गुंजाइश है, आवश्यकता लगनपूर्वक काम करने की है ।

यह सुविधा-साधन उत्पन्न करने वाले अर्थ प्रधान उपायों की चर्चा हुई । यह भौतिक विज्ञानियों का और उनके लिए बड़ी पूँजी जुटाने वालों का क्षेत्र हुआ । विज्ञान को इतने क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, उसे चेतना क्षेत्र में भी प्रवेश करना चाहिए और व्यक्तित्व निखारने वाले कामों में भी हाथ डालना चाहिए । यह काम अध्यात्म विज्ञानियों का है । संसार में पदार्थ क्षेत्र ही सब कुछ नहीं हैं, उसके समतुल्य एवं अधिक महत्त्वपूर्ण चेतना क्षेत्र भी है । मनुष्य को अन्य प्राणियों के स्वास्थ्य, बुद्धि, प्रतिभा, कला-कौशल, व्यवहार संयम आदि की दृष्टि से अधिकाधिक समुन्नत और सुसंस्कृत बनाना अध्यात्म क्षेत्र के विज्ञानियों, प्राणवान मनीषियों, योगी-तपस्वियों का काम है । उनका कार्यक्षेत्र भौतिक विज्ञान से भी कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और अधिक उपयोगी है । पदार्थ विज्ञान सुविधा साधन विनिर्मित कर रहा है, उन साधनों का उपयोग जिसे करना है, उस मनुष्य का दृष्टिकोण परिष्कृत करना असामान्य काम है । उसने अनेकों कुटेवें अपना ली हैं और ऐसे क्रिया-कलाप अपना लिए हैं, जो मात्र व्यक्ति के लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए हानिकारक हैं । ढेरों प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनसे पीछा छूटना और छुड़ाया जाना चाहिए । ढेरों सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं, जिन्हें अभी अपनाया नहीं गया अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में रहने वाला व्यक्ति भी महामानव स्तर का बन सकता है । इस सन्दर्भ में प्रयोग करना और उपलब्धियों से जनसाधारण को अवगत कराना यह आत्मवेत्ताओं का, मनीषियों का काम है ।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क बहुमूल्य यन्त्र है, उसके अन्तराल में प्रकृति की पदार्थ परक और परब्रह्म की चेतना परक अनेकानेक विभूतियाँ समाविष्ट हैं । वे बीज रूप में प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं, उन्हें अंकुरित और पल्लवित किया जा सके तो नर के भीतर नारायण जगाया जा सकता है और पुरुष में पुरुषोत्तम की झाँकी करने को मिल सकती है । इस स्तर के प्रयत्नों को योगाभ्यास एवं तपश्चर्या कहते हैं । साधना भी इसी को कहा जा सकता है । पुरातन काल के तत्वदर्शी अपनी काया में सन्निहित उन सूक्ष्म केन्द्रों को समझते थे, साथ ही उन्हें प्रखर बनाने की विधा का प्रयोग करके न केवल अपने को असामान्य बनाते थे वरन् आन्यान्यों को भी इस कौशल से लाभान्वित करते थे । यह गुह्य विद्या है, तो भी है यथार्थ और प्रचण्ड । जिसमें श्रद्धा हो वे अनुभवी, प्रवीण पारंगतों के मार्ग दर्शन में यह प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं और अभ्यास की परिणतियों से लाभान्वित हो सकते हैं । पिण्ड में ब्रह्माण्ड का समग्र ढाँचा विद्यमान है । बीज में समग्र वृक्ष और शुक्राणु में परिपूर्ण मनुष्य रहता है । इसी प्रकार पिण्ड में ब्रह्माण्ड है । मनुष्य में देवत्व का उदय करने के लिए उस प्रसुप्ति को जागृति में बदलना होगा । यह योगाभ्यास का विषय है । इसे चेतना परक विज्ञान क्षेत्र ही समझना चाहिए । पिछले दिनों यह क्षेत्र पाखण्डियों के हाथों रहा है, अब उसे मनस्वी, तेजस्वी और तपस्वी हाथ में लें, तो विज्ञान के अधूरेपन की भी पूर्ति हो चले और उस प्रगति से ऐसा लाभ मिले जो भौतिक विज्ञान से भी उपलब्ध नहीं हुआ है ।

इन दिनों 'ब्रेन वाशिंग' के नाम से किए जाने वाले प्रयोग की महती आवश्यकता है । इस क्षेत्र में भौतिक विज्ञानियों ने भी यत्किंचित प्रयोग किए हैं और विरोधियों को समर्थक बनाने में आंशिक सफलता पायी है । उनकी कल्पना है कि सशक्तों को दुर्बलों के मनों पर आधिपत्य करने के उपरान्त पालतू पशुओं जैसा इच्छानुवर्ती होने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है । उनके प्रयोग सफल हुए तो समर्थ नफे में रहेंगे, किन्तु मनुष्य का स्वतन्त्र चिन्तन और आत्मबल समाप्त हो जायेगा । अस्तु यह क्षेत्र विशुद्ध रूप से अध्यात्मवादियों का है, उन्हें लोककल्याण की दृष्टि से उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए जनसाधारण को प्रशिक्षित करना चाहिए । 'ब्रेन वाशिंग' उन्हीं का काम है । इसे हाथ में लेकर वे मनुष्य जाति की महती सेवा साधना कर सकते हैं ।

विज्ञान ने पंच भौतिक मानवी काया के हृदय-फुस्फुस आदि अवयवों और रक्त-माँस, अस्थि आदि घटकों का स्वरूप और क्रिया-कलाप समझ लिया है । शल्य क्रिया क्षेत्र में उसने श्रेय भी प्राप्त किया है । मस्तिष्कीय घटकों के स्थान एवं क्रिया-कलाप समझकर इलेक्ट्रोडों द्वारा उस क्षेत्र को वशवर्ती बनाया जा सकता है वस्तुतः मनःक्षेत्र चेतना से जुड़ा रहता है और इसे सम्भालने की जिम्मेदारी तत्वज्ञानियों अध्यात्मवादियों पर आती है । पर उन्होंने गहराई में उतरना छोड़ दिया है । पाखण्डों के सहारे अपनी गाड़ी चला रहे हैं । यह जादू का खेल तभी चल सकता है, जब तक भारत में अन्धश्रद्धा वाले अनगढ़ भावुक भक्तजनों का अस्तित्व बना रहेगा । भौतिक विज्ञानियों ने जब अध्यात्म क्षेत्र का मोर्चा खाली देखा, तो उसमें भी अपनी टाँग अड़ानी प्रारम्भ कर दी और प्रसन्नता की बात है कि कुछ न कुछ सफलता प्राप्त कर ली है । मैस्मेरेजम—हिप्नोटिज्म का सिद्धान्त बहुत दिन पहले ही हाथ लग गया था । अब 'मैटाफिजिक्स' एक मान्यता प्राप्त विज्ञान की शाखा है । दूरदर्शन, दूरवार्ता, भविष्यकथन, मनों को पढ़ना इसमें कई नई-नई धाराएँ सम्मिलित हो गई हैं और परामनोविज्ञान, मरणोत्तर जीवन, अतीन्द्रिय क्षमता आदि पर नया प्रकाश डाला है । फिर भी सन्देह इस बात का है कि वे अध्यात्म के आत्मापरक अन्तःकरण से सम्बन्धित पक्ष पर अधिक सफलता न प्राप्त कर सकेंगे, क्योंकि उसके लिए चारित्रिक पवित्रता की विशेष रूप से आवश्यकता होती है । जबकि विज्ञानी इस सन्दर्भ में काफी पिछड़े हुए होते हैं ।

जिन रहस्यों पर अधिक प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है, उसमें मानवीय विद्युत, मस्तिष्कीय घटकों के कम्पन, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और उनसे निकलने वाले स्रावों पर नियन्त्रण करने की पद्धति, मानवी चेतना को समुन्नत करने की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक है । हार्मोनों पर नियन्त्रण की तरह ही गुणसूत्रों को

इच्छानुरूप प्रवाह दे सकने की बात भी असामान्य है । शरीर में संव्याप्त रासायनिक पदार्थों में हेराफेरी की बात भी है । जीव कोशों और ज्ञानतन्तुओं की सूक्ष्म संरचना को प्रभावित करना, मस्तिष्क की विभिन्न कोशिकाओं के प्रवाह में परिवर्तन करना वह तथ्य है, जिनके ऊपर आध्यात्मिक ऋद्धि—सिद्धियों का आधार है ।

मनुष्य को हर दृष्टि से समुन्नत स्तर का बनाना है—उसमें देवत्व का अभ्युदय करना है, तो इन रहस्यों का समझना ही नहीं वशवर्ती भी करना आवश्यक है । यह कार्य भौतिक यन्त्रों, उपकरणों एवं क्रिया-कलापों से सम्भव नहीं । इसके लिए अध्यात्म क्षेत्र पर अधिकार रख सकने वाले पवित्रता एवं प्रखरता सम्पन्न लोगों की कार्यक्षमता एवं विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता पड़ेगी । भौतिक उपलब्धियों के समान ही यदि आत्म विज्ञान अन्तःक्षेत्र की विभूतियों को करतलगत कर सके, तो समझना चाहिए कि समग्र विज्ञान में प्रवेश पाना सम्भव हुआ । मात्र पदार्थों पर अधिकार करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, कि जिनके बिना मानवी विशिष्टता अवरुद्ध बनी रहे । बिना सुविधा साधनों के भी काम चल सकता है । आत्मवेत्ता तो विशेष रूप से कम से कम साधनों से काम चलाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि यह अब इतनी आवश्यक नहीं कि इसके बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का न बनाया जा सके और सच्चे अर्थों में विभूतिवान न बना जा सके । भौतिक साधनों की प्राचीनकाल में कमी थी, इतनी बहुलता न थी जितनी इन दिनों है, तो भी मनुष्य आत्मबल के सहारे सुखी भी रहते थे और समुन्नत एवं सुसंस्कृत भी । इसके विपरीत जिनके पास साधनों की बहुलता है, वे भी बहिरंग एवं अंतरंग क्षेत्रों में विपन्न उद्विग्न माने जाते हैं ।

मनुष्य व्यक्तिगत जीवन में उल्लसित विकसित रहे तथा आनन्द से परिपूर्ण दिखाई पड़े, तो समझना चाहिए कि उभय-पक्षीय उपलब्धियाँ हस्तगत करके मनुष्य सच्चे अर्थों में अपनी गरिमा, उपलब्ध कर सके । ऐसे व्यक्तियों की जितनी बहुलता होगी, उतना ही वातावरण सुख-शान्ति से भरा पूरा होगा और स्वल्प साधनों से भी प्रगति एवं समृद्धि की परिस्थितियों का अनुभव होगा ।

ऋषियों ने इतने उच्चस्तर की विभूतियाँ उपलब्ध की थीं, जिन पर आज तो सहसा विश्वास करना कठिन होता है । समूचे समाज को आगे बढ़ाने एवं ऊँचा उठाने की क्षमता जिन प्रवाह एवं वातावरण में है, उसकी उपलब्धि आत्म-विज्ञान की प्रगति से ही सम्भव हो सकती है ।

धर्म ही सच्चा विज्ञान वैज्ञानिकों के उपाख्यान

एक बार सर आइजक न्यूटन से उनके एक मित्र ने प्रश्न किया—"धर्म के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है ? तो उन्होंने गम्भीर होकर कहा—

"मुझे नहीं पता मेरे प्रति लोगों की भावनाएँ क्या हैं ? लोग विद्वान समझें यह उनकी कृपा, किन्तु जब मैं अपने सम्बन्ध में विचार करता हूँ तो ऐसा लगता है कि अज्ञ अल्पवय बालक की तरह किसी समुद्र के किनारे खेल रहा हूँ । ज्ञान कण जो मैंने पाये हैं, वह अथाह सागर की सीपियों की तरह हैं, जो न तो अथाह हैं, न अन्तिम । जो अथाह और असीम है, वही शाश्वत और सत्य है, उसका रहस्य मैं समझ नहीं पाता हूँ ।"

न्यूटन जैसा महान् वैज्ञानिक जब उस असीम सत्ता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका, तो उसने अपनी विद्या का अहंकार त्याग दिया, किन्तु आज के अल्प-बुद्धि व्यक्ति अहंकार के वशवर्ती होकर अपना और समाज का जीवन किस तरह विशृंखलित कर रहे हैं, यह सर्वविदित है । ज्ञान के लिए श्रद्धा आवश्यक है, जो श्रद्धालु नहीं, वह धार्मिक नहीं । धर्म वेत्ता के लिए निरहंकार होना आवश्यक है । वह तो कोई और ही शक्ति है, जो विश्व की महान् व्यवस्था पालन और सृजन में समर्थ है ।

एटामिक फिजीशियन लीज मिटनर कहते हैं—"मनुष्य से भी कोई ऊँची शक्ति है, वही परमाणु शक्ति पर नियन्त्रण कर सकती है ।" यह ठीक है कि श्री लीज का कार्य-क्षेत्र अणु शक्ति की ही खोज रहा है पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे धर्म विमुख हो गए हों, उक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है । हम भी तो यही मानते हैं कि परमात्मा परमाणु शक्ति से भी कोई सूक्ष्म सत्ता है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियम और व्यवस्थापूर्वक संचालन करती है ।

पिछले दिनों के धर्म-वेत्ताओं की एक महान् भूल यह हुई कि उन्होंने विज्ञान को धर्म का विरोधी बताकर सामान्य जनता को भ्रम में डाल दिया । मानव-जीवन की सुख-शान्ति के लिए यद्यपि विज्ञान अपूर्ण है, किन्तु वह न तो धर्म-विमुख है और न अनुपयोगी । यदि विज्ञान को पूरक मानकर धर्म का विवेचन किया गया होता, तो धार्मिक मान्यताओं—आस्तिकता, ईश्वर विश्वास, कर्मफल, पुनर्जन्म, परलोकवाद की मान्यताएँ असत्य नहीं कही जातीं वरन् उनकी सत्यता के प्रमाण ही निकलते । महान् विद्वान् वैज्ञानिक माइकेल रैक्जे आर्कबिशप ऑफ कैन्टर बर्ग लिखते हैं—"पिछली शताब्दी के इतिहास से मालूम होता है कि धार्मिक विचारों वाला व्यक्ति अधिक गल्तियाँ कर सकता है, क्योंकि धर्म को सच्चा सिद्ध करने के लिए पूर्वाग्रह का आश्रय लिया गया, जबकि आवश्यकता थी वैज्ञानिक तत्वों के समावेश की । यही बात विज्ञान के लिए भी है । उसे यदि धर्म-संगत न बनाया जाय, तो वह भी मनुष्य को विनाश की ओर ले जायेगा । धर्म और विज्ञान दोनों को पास-पास रहना चाहिए ।"

विज्ञान और धर्म के क्षेत्र अलग-अलग हैं । स्वरूप परिभाषा और कार्य प्रणाली अवश्य है, विज्ञान प्रमाण भूत है, धर्म श्रद्धा का परिणाम, किन्तु दोनों का एक मिलन बिन्दु है, जहाँ विज्ञान थक जाता है, उससे आगे भावनाएँ ले जाती हैं । भावनाएँ थक जाती हैं, वहाँ विज्ञान प्रादुर्भूत हो जाता है । इनमें से न तो अकेला विज्ञान ही और न धर्म ही सन्तोष प्रदान कर सकेगा । यही बात फिजीशियन आर्थर कामटन ने इस तरह कही है—

"विज्ञान और धर्म के बीच कोई मतभेद सम्भव नहीं है । विज्ञान वास्तविकता की खोज का सही तरीका है और धर्म द्वारा जीवन में संतुष्टि का रास्ता खोजा जाता है । विज्ञान निःसन्देह उन्नति कर रहा है, किन्तु आज का संसार जो विज्ञानमय है, पहले से भी अधिक धार्मिक प्रेरणाओं की आवश्यकता अनुभव कर रहा

है, क्योंकि विज्ञानमय जीवन में शान्ति और सन्तोष का आनन्द नहीं और अधिक की थकावट है ।"

अध्यात्मोपनिषत् का ऋषि कहता है—

"सन्तः शरीरे निहितो गुहायामज एकोनित्यमस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवी मन्तरे संचरन यं पृथिवी न वेदा .... ।"

अर्थात्—शरीर के भीतर हृदय रूपी गुहा में एक 'अजन्मा नित्य' रहता है, वह पृथ्वी के भीतर रहता है पर पृथ्वी उसे नहीं जानती । मन-बुद्धि, अहंकार, चित्त से भी अत्यन्त सूक्ष्म जिसे न कोई मार सकता है, न खण्ड और विनाश कर सकता है, वही सर्वभूतों का अन्तरात्मा है, देह इन्द्रियाँ आदि अनात्म पदार्थ हैं ।

यह शास्त्र वचन है, इसलिए उसे मान्यता नहीं दी जा सकती है, ऐसा विज्ञानवादी कहें किन्तु यदि कोई वैज्ञानिक ही उक्त तथ्य को स्वीकार करने लगे तब तो उसे न मानने का कोई कारण नहीं रह जाना चाहिए ।

मिसाइल एक्स्पर्ट श्री वर्नहर वान ब्रान कहते हैं—"विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि पदार्थ का नाश नहीं किया जा सकता, इसलिए जीवन और आत्मा का भी नाश नहीं किया जा सकता है । आत्मा अमर है । मैं अमर आत्मा में विश्वास करता हूँ ।"

उपनिषदकार ने अपने उक्त कथन में आत्मा के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए, उसे अजन्मा और नित्य कहा है अर्थात् इस सृष्टि का जहाँ आदि-अन्त है, वहीं आत्मा का भी आदि-अन्त है और चूँकि ब्रह्माण्ड का कोई अन्त नहीं । सनातनकाल से ही एक सुस्थिर व्यवस्था चल रही है, इसलिए आत्मा अथवा परमात्मा भी सनातन हैं, एक व्यवस्था है । प्रसिद्ध बायोलॉजिस्ट श्री एडविन कॉकलिन का तर्क है—"यदि जीवन का निर्माण अकस्मात सम्भव है तो यह भी सम्भव है कि एक छापाखाने में अकस्मात् भड़ाका हो और सारे शब्द स्वयं व्यवस्थित होकर एक शब्द कोष बना दें ।"

किन्तु ऐसा कभी कहीं भी सम्भव नहीं है । आत्मा कर्मफल के विधान के अनुसार रूप परिवर्तित करती है । न तो उसका नाश ही होता है और न ही कर्मफल मिटते हैं अर्थात् कर्म की गति के अनुसार संसार-चक्र चल रहा है, जो अच्छे, श्रेष्ठ एवं विचारपूर्ण कार्य करता है, वह ऊर्ध्वगामी लोकों का आनन्द प्राप्त करता है, पाप और मूर्खता की जिन्दगी जीने वाला अधोगामी स्थिति में चिन्ता और विक्षोभ के कारण दुःखी रहता है ।

उपनिषदकार का मत है कि—प्रारब्ध फल की सत्यता के लिए प्रमाणों की आवश्यकता नहीं—

प्रारब्धं सिध्यति तदा यदा देहात्मना स्थिति ।

—अध्यात्मोपनिषत् ५६

अर्थात् प्रारब्ध कर्म तो उसी समय सिद्ध होता है, जब देह के ऊपर आत्मबुद्धि प्रकाशित हो ।

इसी उपनिषद में यह भी कहा है कि जिस तरह छोड़ा हुआ वाण बाघ को बेधे बिना नहीं रहता, उसी प्रकार कर्मफल से आत्मा वंचित नहीं रह सकती । इसमें विज्ञान की कोई सिफारिश चल नहीं सकती ।

यदि विज्ञान की यह बात ही मान ली जाय कि संसार में न तो कोई कर्मफल है और न कर्मफल का नियन्त्रण करने वाला ईश्वर है, तो भी फिजीशियन जार्ज डेविस की यह बात तो माननी ही पड़ेगी—

"यदि ब्रह्माण्ड ने स्वयं अपने को उत्पन्न किया है तो इसको बनाने वाले शक्ति-केन्द्र भी तो स्पष्ट नजर आते हैं, उदाहरण के लिए पृथ्वी की सारी गतिविधियाँ, रहन-सहन, उत्पादन, क्रियाशीलता, सूर्य की गति पर आधारित हैं । ऐसी स्थिति में मानना पड़ेगा कि ब्रह्माण्ड स्वयं तो भगवान है ।"

जार्ज डेविस माण्डूक्योपनिषद के प्रथम मन्त्र के आख्यान से शत-प्रतिशत मेल खा जाते हैं । इस मन्त्र में भी यही बताया गया है कि—"सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्म है । विराट्-विश्व को परमात्मा का रूप मान लेने से ही साकार उपासना का उद्देश्य पूरा होता है । पर तब किसी से छल-कपट, अभद्र-व्यवहार, पाप और अत्याचार नहीं किया जा सकता । संसार के प्रत्येक पदार्थ और प्राणी के प्रति ईश्वर जैसी श्रद्धा रखने से उसके प्रति सहज ही सेवा और सद्-व्यवहार की भावना जाग्रत होती है, यही भावना विश्व-शान्ति एवं आत्म-कल्याण का प्रधान आधार होती है ।"

अब जो विज्ञान का तर्क देकर भौतिक सुखों और निजी स्वार्थों तक ही सीमित रहने की बात सोचते हैं, उनके लिए थ्योरिटिकल फिजीशियन अल्बर्ट आइन्स्टाइन का प्रवचन पढ़ना चाहिए । आइन्स्टाइन का कथन है—"वह आदमी जो अपने ही जीवन को महत्त्व देता है और अपने साथियों के जीवन को निरर्थक मानता है, तो वह केवल अभाग्यशाली ही नहीं है, बल्कि जीवन के योग्य भी नहीं है ।"

बायोलॉजिस्ट अल्बर्ट विनचेस्टर जब परीक्षण और प्रयोग करते-करते थक गए, तो उन्हें भी कहना ही पड़ा—"भगवान में गहरी और सच्ची आस्था ही सत्यता की गहराइयों तक पहुँचा सकती है । विज्ञान का सीमा क्षेत्र तो पदार्थ तक ही सीमित है, किन्तु धर्म की मापकता उससे भी सूक्ष्म भावनाओं तक जा पहुँचती है, इसलिए धर्म ही सत्य है ।"

धर्म का उद्देश्य मनुष्य को परमात्मा की समीपता का सुख और जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कराना है, इसलिए उसे जीवन में प्रमुख स्थान देकर ही मनुष्य स्थिर कल्याण की ओर अग्रसर हो सकता है । विज्ञान दृश्य जगत् में सुख और सुविधाएँ बढ़ाता है, इसलिए वह आवश्यक तो है पर प्रमुख नहीं । अदृश्य जीवन की आयु अनन्त है, अनन्त सुख के लिए लौकिक सुखों को, विज्ञान को प्रमुख मानना कोई बुद्धिमानी नहीं । हमें वह ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जो परमात्मा की प्राप्ति कराये, इस बात को एस्ट्रोनामर श्री जोन्स केपलर महोदय स्वीकार करते हुए लिखते हैं—भगवान ज्ञान स्वरूप है आर हम उसके बारे में बहुत कम जानते हैं ।

न्यूटन से लेकर केपलर तक सभी महान् वैज्ञानिक कक्षा 'क' के विद्यार्थी की तरह धर्म की पाठशाला में आ बैठते हैं । तो फिर शेष विश्व के लिए भी आत्म-शान्ति और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग धर्म ही रह जाता है, उसके बिना विज्ञान लंगड़ा और अधूरा ही रहेगा । एतरेयोपनिषद तृतीय अध्याय के दूसरे मन्त्र में ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम ज्ञान, आदर्श विज्ञान, प्रतिज्ञान, मेधा दृष्टि, धैर्य, मनन, स्मृति, संकल्प, गति, कामना आदि को बताया गया है । इनका विकास बाह्य पदार्थों से नहीं अन्तःवृत्तियों के द्वारा ही प्राप्त कर सकना सम्भव है । धर्म हमारी अन्तःवृत्तियों

को जाग्रत और विकसित करता है, इसलिए उसका परित्याग कर हम जिन्दा नहीं रह सकते, विश्व-कल्याण के महान् परिणाम भी उपलब्ध नहीं कर सकते ।

धर्म आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी

पदार्थ विज्ञान की दृष्टि में आत्मा का या किसी समष्टि सत्ता (ईश्वर) का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं । जो कुछ है शरीर है, चेतना शरीर की ही सम्पत्ति है । जल, वायु, ऊष्मा, मिट्टी इन चारों के रासायनिक संयोग से शरीर में एक चेतना उत्पन्न हो जाती है, वह कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व हो ? आत्मा की सर्वव्यापकता और सनातन होने की बात भी पदार्थ विज्ञान नहीं मानता । इसी पदार्थवादी मान्यता पर आज अधिकांश संसार चल रहा है इसे ही प्रकृतिवाद, जड़वाद, पदार्थवाद या भौतिकवाद कहते हैं ।

विज्ञान और यान्त्रिक विज्ञान (साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी) का जितना अधिक विकास होता जा रहा है, प्रक्षेपास्त्र, अन्तरिक्षयान, टेलस्टार, लेजर यन्त्र आदि का जितना अधिक विकास होता जाता है लोग आत्मा और परमात्मा को उतना ही भुलाते जा रहे हैं । अब अमैथुनी सृष्टि का समय आ पहुँचा । पुरुष की आवश्यकता नहीं रही । कृत्रिम निषेचन क्रिया द्वारा स्त्रियों को गर्भ धारण कराया जाने लगा है । संगणक (कम्प्यूटर) एक ऐसा यान्त्रिक मस्तिक है जिसने आदमियों की आवश्यकताएँ पूरी करनी प्रारम्भ कर दीं । यह यन्त्र किसी दुकान में डाक्टर का, विक्रेता का, डिमांस्ट्रेटर का काम कर सकता है । नई शब्दावली, व्याकरण गढ़कर एक ही साथ एक भाषा का विश्व की १५ भाषाओं में अनुवाद कर सकता है । ऐसे आश्चर्यजनक निर्माण करके मानो मनुष्य को ईश्वर की, आत्मा की और धर्म की आवश्यकता रही ही नहीं ।

लोगों ने प्रश्न किया यदि शारीरिक तत्वों की रासायनिक क्रिया ही मानवीय चेतना के रूप में परिलक्षित होती है तो फिर ज्ञान और विचार क्या है ? भौतिकवादी इस प्रश्न का उत्तर इन शब्दों में देते हैं—"जिस प्रकार जिगर पित्त उत्पन्न करता है और उससे भूख उत्पन्न होती है उसी प्रकार पदार्थों की प्रतिक्रिया उनके कार्य ही विचार हैं और आँखें जो कुछ देखती हैं (परसेप्सन) वही विचार और ज्ञान के साधन हैं । रासायनिक परिवर्तनों से काम, क्रोध, आकर्षण, प्रेम, स्नेह आदि गुण आविर्भूत होते हैं उनका सम्बन्ध किसी शाश्वत सिद्धान्त से नहीं है । यह एकमात्र भ्रम है और इसी प्रकार लोक मर्यादाएँ या नैतिकता भी लोगों की सम्मतियाँ मात्र हैं, इनकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

यदि विज्ञान की इन मान्यताओं को विज्ञान के द्वारा ही तोलें और कसौटी पर कसें तो उनका थोथापन आप प्रकट हो जाता है । यदि यह संसार रासायनिक संयोग मात्र है तो वैज्ञानिक हवा, पानी, मिट्टी और विभिन्न खनिज व धातुएँ मिलाकर भी "प्रोटोप्लाज्म" क्यों नहीं तैयार कर सके ? प्रोटोप्लाज्म ही वह इकाई है जिससे जीवित प्राणियों की रचना होती है । इसका रासायनिक विश्लेषण कर लिया गया किन्तु नये सिरे से प्रोटोप्लाज्म तैयार नहीं किया जा सका ।

हमारे साथ जो एक विचार प्रणाली काम करती है, ज्ञान, अनुभूति, आकांक्षाएँ काम करती हैं, प्रेम, आकर्षण, स्नेह उद्योग के भाव होते हैं, वह एक कम्प्यूटर में नहीं होते । उसमें जितनी जानकारियाँ भर दी जाती हैं उस सीमित क्षेत्र से अधिक काम करने की क्षमता उसमें उत्पन्न नहीं हो सकी । जर्मन का एक वैज्ञानिक एक कम्प्यूटर पर काम कर रहा था । वह उसके हाथों के नीचे झुका हुआ कोई यन्त्र ठीक करने में लगा हुआ था तभी कोई यन्त्र खराब हो गया और लोहे का हाथ उस वैज्ञानिक के सिर में लगा । सिर फट गया । मुश्किल से जान बची । प्रश्न यह है कि मनुष्य जैसा विवेक और आत्म-चिन्तन का विकास मनुष्यकृत किसी भी मशीन में नहीं है तो मनुष्य को भी एक रासायनिक संयोग कैसे कहा जा सकता है ।

कुम्हार मिट्टी लाता है, उसमें रंग, पानी मिलाकर तरह-तरह के बर्तन और खिलौने बनाता है यह खिलौने कैसे हैं इससे पहले यह भी पूछते हैं यह खिलौने किसने बनाये हैं । संसार की रचना के पीछे भी कुम्हार की भाँति ही कोई साक्षी तत्व होना ही चाहिए । यदि वह प्रकृति ही है तो उसमें विचार और ज्ञान की क्षमता होनी चाहिए और यह क्षमता यदि है तो उसका स्वतन्त्र अस्तित्व उसी प्रकार होना चाहिए जैसे आँख शरीर का एक अंग होकर भी अलग वस्तु भी है ।

मनुष्य आज तक संसार के करोड़ों जीवों की तरह का एक भी नया जीव तैयार नहीं कर सका । यहीं से एक सर्वशक्तिमान सत्ता पर विश्वास करना आवश्यक हो गया । धर्म यही तो है कि हम अपने आपको उन शक्तियों को पहचानने योग्य बनायें ।

देखना (परसेप्शन) भी रासायनिक गुण नहीं वरन् बाह्य परिस्थितियों पर अवलम्बित ज्ञान है, हमें पता है कि यदि आँखों से प्रकाश न टकराये तो वस्तुएँ नहीं देखी जा सकतीं । यदि प्रकाश किसी वस्तु से टकराकर हमारी आँखों तक तो पहुँचता है पर हमारी आँखें खराब हैं इस स्थिति में भी उस वस्तु को देखने से हम वंचित हो जाते हैं । ज्ञान का एक आधार प्रकाश रूप में बाह्य जगत में भी व्याप्त है और अपने भीतर दोनों के संयोग से ही ज्ञान की अनुभूति होती है । हम जब नहीं देखते तब भी दूसरे देखते रहते हैं और जब हम देखते हैं तब भी हमारा विचार उस दृश्य वस्तु से परे बहुत दूर का चिंतन किया करता है । यह वह तर्क है जिसके द्वारा हमें यह मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि चेतना एक सर्वव्यापी तत्व है और वह रासायनिक चेतना से अधिक समर्थ और शक्तिशाली है ।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी अनुमान या विश्वास के बिना हम अधूरे हैं । हम कहाँ देखते हैं कि पृथ्वी चल रही है और सूर्य का चक्कर लगा रही है । हमारी आँखें इतनी छोटी हैं कि विराट् ब्रह्माण्ड (गैलेक्सी) में होने वाली हलचलों को बड़े-बड़े उपकरण लगाकर भी पूरी तरह नहीं देख सकते हैं । वहाँ जो कुछ है, जहाँ-जहाँ से परिक्रमा पथ बनाते हुए यह ग्रह-नक्षत्र चलते हैं उसका ज्ञान हमने अनुमान और विश्वास के आधार पर ही तो प्राप्त किया है । यह अनुमान इतने सत्य उतर रहे हैं कि एक सेकण्ड और एक अंश (डिग्री) समय और कोण का अन्तर किए बिना अन्तरिक्षयान इन ग्रह-नक्षत्रों में उतारे जा रहे हैं । जहाँ हमारी आँखों का प्रकाश नहीं पहुँचता या जिन स्थानों का प्रकाश हमारी आँखों तक नहीं पहुँचता वहाँ की अधिकांश जानकारी का जायजा हम विश्वास और अनुमान के आधार पर ही ले रहे हैं

विश्वास एक प्रकार की गणित है और विज्ञान की तरह भावनाओं के क्षेत्र में भी वह सत्य की निरन्तर पुष्टि करता है ।

केवल मात्र विज्ञान के दुष्परिणाम वैसे ही निकले जैसे बीमार को दवा न दें उल्टे उसके कमरे में दही, चाट-पकौड़ी आदि वस्तुएँ रख दें । रोगी उन्हें देखकर ललचाता है । स्वतन्त्र होने से खा भी लेता है । उसे क्षणिक स्वाद भी मिलता है इसलिए दवा की कडुवाहट के बदले वह उस अपथ्य को पसन्द भी करता है पर अन्ततः वह उससे अपनी मृत्यु को ही तो निमन्त्रण देता है । विज्ञान की वर्तमान मान्यताओं ने भी मनुष्य को स्वच्छन्दता देकर युद्ध, रोग, खाद्य संकट, महामारी और अपराध आदि वह परिस्थितियाँ पैदा करा दी हैं जो आज मनुष्य के लिए वैसी ही हानिकारक सिद्ध हो रही हैं ।

कहते हैं शरीर में हल्दी लगा कर पानी में प्रवेश करें तो मगर आदि हिंसक जन्तु उसकी गन्ध से दूर भाग जाते हैं और स्नान करने वाला निर्द्वन्द स्नान कर आता है । धर्म ऐसा ही ज्ञान है, विवेक है, श्रद्धा है, विश्वास है जो मनुष्य को पदार्थवादी सभ्यता के दोषों से बचाये रखता है इसलिए उसे आवश्यक ही नहीं जीवन में अनिवार्य स्थान देना ही पड़ेगा । धार्मिक विश्वासों के बिना हम जीवन में स्थायी सुख-शान्ति अर्जित नहीं कर सकते ।

प्राचीनता की हठ सत्य के प्रति अत्याचार

अहंकार और व्यामोह का समन्वित रूप बनता है— दुराग्रह । इसमें आवेश और हठ दोनों ही जुड़े रहते हैं । फलतः चिन्तन तन्त्र के लिए यह कठिन पड़ता है कि वह सत्य और तथ्य को ठीक तरह समझ सके और उचित-अनुचित का भेद कर सके । अभ्यस्त मान्यताओं के प्रति एक प्रकार की कट्टरता जुड़ जाती है । इसे अच्छी सिद्ध करने के लिए परम्पराओं के निर्वाह की दुहाई दी जाती है । उसका समर्थन धर्मशास्त्र, आप्तवचन, देश भक्ति आदि के नाम पर किया जाता है और कई बार तो उसे ईश्वर का आदेश तक घोषित कर दिया जाता है ।

अपना धर्म श्रेष्ठ दूसरे का निकृष्ट, अपनी जाति ऊँची दूसरे की नीची, अपनी मान्यता सच दूसरे की झूठ, ऐसा दुराग्रह यदि आरम्भ से ही हो तो फिर सत्य-असत्य का निर्णय हो ही नहीं सकता । न्याय और औचित्य की रक्षा के लिए आवश्यक है कि तथ्यों को ढूँढ़ने के लिए खुला मस्तिष्क रखा जाय और अपने-पराये का, नए-पुराने का भेदभाव न रखकर विवेक और तर्क का सहारा लेने की नीति अपनाई जाय । सत्य को प्राप्त करने का लक्ष्य इसी नीति को अपनाने से पूरा हो सकता है । पक्षपात और दुराग्रह सत्य को समझने से इन्कार करना है । ऐसे हठी लोग प्रायः सत्य और सत्यशोधकों को सताने तक में नहीं चूकते ।

टेलिस्कोप ने आविष्कारक गैलीलियो ने जब पृथ्वी को गतिशील बताने का सर्वप्रथम साहस किया तो पुरातन पंथी धर्म गुरुओं ने इसे धर्म विरुद्ध ठहराया । उसे तरह-तरह से सताया गया और जेल में बन्द करके सड़ाया गया । सबसे पहले जब पैरिस में रेलगाड़ी चली तो उस प्रचलन का पुरातन पंथियों ने घोर विरोध किया और कहा जो काम हमारे महान् पूर्वज नहीं कर सके उन्हें करना अपने पूर्व पुरुषों के गौरव पर बट्टा लगाना है । रेलगाड़ी के चलाने वाले जोसफ केग्नार को उस जुर्म में जेल में डाला गया है कि वह ईश्वर के नियमों के विरुद्ध काम करता है । इटली में शरीर शास्त्र की शिक्षा किसी समय अपराध थी । आपरेशन करना पाप समझा जाता था और कोई चिकित्सक छोटा-मोटा ऑपरेशन भी करता पाया जाता तो उसे मृत्यु दण्ड सुनाया जाता था ।

कारीगर रैगर वेकन ने सर्वप्रथम दो कोनों को जोड़कर सूक्ष्मदर्शी यन्त्र बनाया था । इस आविष्कार की निन्दा की गई । उस कारीगर को इस खतरनाक काम को करने के अभियोग में दस वर्ष की कैद सुनाई गई । बेचारा जेल में ही तड़प-तड़प कर मर गया ।

रसायनशास्त्र के कुछ नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के अपराध में स्वन्ति अर्हीनियस को प्राध्यापक के पद से पदच्युत करके एक छोटा अध्यापक बनाया गया और उसे सनकी ठहराकर अपमानित किया गया । विधि का विधान ही समझिए कि वही सिद्धान्त आगे चलकर विज्ञान जगत में सर्वमान्य हुए और स्वन्ति को उन्हीं पर नोबल पुरस्कार मिला ।

डॉ. हार्ले ने जब सर्वप्रथम यह कहा कि रक्त नस में भरा नहीं रहता वरन् चलता रहता है तो समकालीन चिकित्सकों ने उसे खुले आम बेवकूफ कहा । ब्रूनों ने जब अन्य ग्रहों पर भी जीवन होने की सम्भावना बताई तो लोग इतने क्रुद्ध हुए कि उसे जीवित ही जला दिया ।

दुराग्रह के अत्याचारों का इतिहास बहुत लम्बा और बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है । पिछले दिनों यह हठवादिता बहुत चलती रही है । धर्म परम्परा, देश भक्ति, ईश्वर का आदेश आदि न जाने क्या-क्या नाम इस हठवादिता को दिए जाते हैं और सत्य एवं धर्म की आत्मा का हनन होता रहा है । मानवी विवेक में निष्पक्ष सत्यशोधक की दृष्टि को ही प्रश्रय मिलना चाहिए ।

अध्यात्म और विज्ञान का मिलन किस स्तर पर हो ?

अपनी शरीर से लेकर सम्पूर्ण दृश्य जगत में कहीं भी देखें, सर्वत्र जड़ और चेतन की संयुक्त सत्ता दृष्टिगोचर होती है । यदि दोनों का संयोग बिखर जाय तो न तो कहीं प्राणी के लिए पदार्थ रहेगा न ही पदार्थ के लिए प्राणी । बुद्धि और मन की परिधि यह संसार ही है । वे इसी परिधि के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं । इन्द्रियों की अनुभूतियाँ हों या मानसिक कल्पनाएँ अथवा अन्तःकरण की भाव सम्वेदनाएँ इनकी क्षमता का प्रकटीकरण तभी होता है जब शरीर या पदार्थों के बीच उनका सम्बन्ध स्थापित हो सके । इसके बिना सारा का सारा चिन्तन का ढाँचा ढह जायेगा ।

ऐसे ही अन्योन्याश्रित सम्बन्धों में एक युग्म अध्यात्म और विज्ञान का है । पदार्थ विज्ञान में बुद्धि और पदार्थ का संयोग काम करता है । आत्मिकी में बुद्धि का स्थूल रूप नहीं अपितु सुपरिष्कृत रूप जिसे ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं—काम करता है । तत्व चिन्तन के ब्रह्म विद्या प्रकरण में इसी की चर्चा की गई है । इस तरह पारस्परिक तालमेल की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है । यदि ये दोनों परस्पर लड़ने-झगड़ने लगें-एक-दूसरे के अस्तित्व को नकारने लगें, अनावश्यक और अप्रामाणिक बनाने

लगें तब तो यही मानना होगा कि दुःख और दुर्भाग्य ही राहु-केतु के सदृश हमारे चिन्तन क्षेत्र पर ग्रहण की तरह लग गए हैं ।

जीव के समग्र व परिपूर्ण विकास के लिए दोनों का अपना महत्त्व है । यदि ये दोनों आपस में ही टकराने लगें तो इनकी टकराहट उसी तरह होगी जैसी अपना दायां हाथ अनन्यतम सहयोगी बाएँ हाथ को काटने के लिए जुट जाय । यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि वैज्ञानिकता के बिना धर्म अन्धविश्वास बन जायेगा इसी तरह आत्मिकी के बगैर विज्ञान अनैतिक और उच्छृंखल । आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है इन दोनों में ताल-मेल हो । पारस्परिक सहयोग का स्नेह-बन्धन हो । असहयोग होने पर तो हानि के सिवा और कुछ न होगा । इनका पारस्परिक विग्रह संसार की प्रगति और संस्कृति को निष्ट करने वाला ही सिद्ध होगा ।

आध्यात्मिक उपलब्धियाँ हैं श्रेष्ठ व्यक्तित्व एवं आदर्श कर्त्तव्य । आध्यात्मिकता सच्ची वही है जो मानवी विकास में सहायक हो । उसमें व्यावहारिक जीवन जीने की कला व जीवन की विविध समस्याओं का समाधान निहित हो । मात्र कर्मकाण्डों का अन्धानुकरण करने, श्रद्धा विश्वास के नाम पर लकीर पीटने को आज का बौद्धिक वर्ग तैयार न होगा । इन कर्मकाण्डों के साथ परिष्कृत जीवन के सूत्र-सिद्धान्तों का दार्शनिक क्रम भी होना चाहिए । इसके अभाव में तो धर्म की गरिमा गिरेगी । इसकी महानता तो तभी अक्षुण्ण रह सकती है जब यह भव्य जीवन के भव्य निर्माण में अपनी महती भूमिका निभाए । मानव-मानव के बीच वह भाव और विचार पैदा करे जिससे वे सार्वभौम तत्व की एकता को एक-दूसरे में अनुभव कर सकें ।

इस तरह अपनी भूमिका का भली प्रकार निर्वाह करके ही धर्म जाग्रत और जीवन्त बना रह सकता है । इस तरह सभी इसे आदर से अपना सकेंगे अन्यथा बुद्धिवाद उसे आसानी से न स्वीकार करेगा, उल्टे उस पर प्रहार करने की सोचेगा ।

लन्दन विश्वविद्यालय के एस्ट्रोफिजीसिस्ट प्रो. हर्बर्ट डिग्ले का कहना है कि "विज्ञान की अपनी परिधि सीमित है, यह मात्र पदार्थ के स्वरूप एवं प्रयोग का ही विश्लेषण करता है । पदार्थ को बनाया किसने ? क्यों बना ? कैसे बना ? इसका उत्तर दे पाना अभी सम्भव नहीं है इसके लिए विज्ञान को ऊँची और विलक्षण कक्षा में प्रवेश लेना पड़ेगा । यह कक्षा लगभग उसी स्तर की होगी जैसी कि अध्यात्म के तत्वांश को समझने के लिए अपनानी होती है ।"

तत्वविद् रेनाल्ड का कथन है—धर्म क्षेत्र को अपनी भावनात्मक मर्यादाओं में रहना चाहिए और व्यक्तिगत सदाचार व समाजगत सुव्यवस्था के लिए आचार व्यवहार की प्रक्रिया को परिष्कृत बनाए रखने में जुटा रहना चाहिए । यह कोई कम बड़ी बात नहीं है । यदि अध्यात्मवेत्ता अपनी कल्पनाओं के आधार पर भौतिक पदार्थों की रीति-नीति का निर्धारण करने लगेंगे तो वे सत्य की कुसेवा ही करेंगे और ज्ञान के विकास में बाधक ही सिद्ध होंगे ।

विख्यात दार्शनिक पालटिलिच धर्म और विज्ञान का मिलन दार्शनिक स्तर पर होने की घोषणा करते हैं । उनका कथन है—दोनों के क्रिया-कलाप एवं प्रतिपादन की दिशाएँ अलग-अलग ही बनी रहेंगी । न तो धर्म शास्त्रों के आधार पर खगोल, रसायन, भौतिकी के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और न ही दुनिया भर की प्रयोगशालाएँ ईश्वर, आत्मा, सदाचार, भाव-प्रवाह जैसे तथ्यों पर कुछ प्रामाणिक प्रकाश डाल सकती हैं । मात्र दार्शनिक स्तर ही ऐसा है, जहाँ दोनों धाराओं का मिलन सम्भव है ।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक रूनेग्लोविश का भी यही मानना है कि धर्म और विज्ञान का बाह्य स्वरूप भले ही पृथ्वी के दो ध्रुवों अथवा ग्रीष्म-शीत ऋतु के प्रभाव की तरह सर्वथा भिन्न दिखे पर अन्तस्तल में एक है । ये दोनों सर्वथा एक-दूसरे के पूरक हैं । दोनों में से किसी एक की अवेहलना करने पर निकाला गया निष्कर्ष अधूरा ही होगा । पदार्थ में चेतना को सक्रिय तथा चेतन का अस्तित्व बनाये रखने के लिए भौतिक पदार्थों की आवश्यकता अनिवार्य ही है । दोनों का समत्व ही विश्व को वर्तमान स्वरूप प्रदान कर सका है । इन्हें पृथक करने पर तो अधूरे और भटकाव भरे परिणाम ही सामने आयेंगे ।

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म की वैज्ञानिकता घोषित करते हुए कहा था कि "मेरा अपना विश्वास है कि बाह्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जिन अन्वेषण पद्धतियों का प्रयोग होता है, उन्हें धर्म क्षेत्र में भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए । यह कार्य जितना शीघ्र हो उतना ही अच्छा । यदि कोई धर्म इन अन्वेषणों से ध्वस्त हो जाय तो यही समझना चाहिए कि वह निरर्थक था ! ऐसा धर्म जो तर्क, प्रमाण व उपयोगिता की दृष्टि से खरा न उतरे, लुप्त हो जाना एक श्रेष्ठ घटना होगी । इस अनुसन्धान के फलस्वरूप सारा मल धुल जायेगा तथा धर्म के उपयोगी और आवश्यक तत्व अपनी प्रखरता के साथ सामने आयेंगे ।

इस तरह धर्म के क्षेत्र में व्याप रहे अन्धविश्वास जैसा अनावश्यक चीजों का सफाया हो जायेगा । वस्तुतः वैज्ञानिक तरीकों से प्राप्त होने वाले ज्ञान में अन्तर्ज्ञान तत्व अन्तर्निहित है, जबकि आत्मचेतना का प्रकाश भी सत्य को प्रदर्शित करता है । दोनों ही रहस्यमय हैं और जैसा कि विलियम जेम्स स्पष्ट करते हैं "जीवन का सत्य रहस्य की दशा में ही है । रहस्य में वास्तविकता भी हो सकती है और अनावश्यक पथभ्रष्टता भी । अतएव जब सत्य की दिशा में अग्रसर हुआ जाय तब ध्यान रहे कि मनोवैज्ञानिक सत्य छुपने न पाये । उसके लिए यह परमावश्यक है कि धर्म और विज्ञान दोनों ही मिलकर पथ प्रदर्शन करें । विज्ञान की पहुँच जहाँ तक है वहाँ तक का ज्ञान देकर धर्म का मार्ग प्रशस्त करे और धर्म का यह दायित्व बन पड़ता है कि वह वैज्ञानिक उपलब्धियों की संगति बिठाकर उस अपूर्णता को दूर करे जो विज्ञान के लिए आगे बढ़ने में आकस्मिक अवरोध के कारण उत्पन्न होती है ।

यह सुनिश्चित तथ्य व सार्वभौमिक शाश्वत सत्य है कि विज्ञान और अध्यात्म एक सिक्के के दो पहलू हैं अथवा दो ऐसे ज्ञान के प्रवाह वाले निर्झर हैं, जिनका उद्गम स्थल एक ही पर्वत है । क्षेत्र की भिन्नता के कारण उनका स्वरूप भले ही भिन्न दिखाई पड़े वे एक ही महाप्रयोजन की पूर्ति करते हैं ।

अध्यात्म और विज्ञान एक ही परम सत्य को दो विभिन्न दिशाओं में खोज करने में संलग्न होते हैं । जैसे-जैसे प्रगति की ओर अग्रसर होते हैं वैसे-वैसे एक दूसरे के अधिकाधिक निकट पहुँचते जाते हैं । विज्ञान जड़ जगत की संरचना व क्रिया पद्धति का निर्धारण, विवेचन करता है साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि उसका अधिक से अधिक सदुपयोग कैसे और किस तरह किया

जाय ? धर्म चेतना जगत के आवरण खोलता है और रहस्यों को उद्घाटित करता है और बताता है कि विश्व-ब्रह्माण्ड की इस अद्भुत शक्ति का व्यक्ति और समाज के उन्नयन में श्रेष्ठतम उपयोग क्या है ? जड़ और चेतन के द्विविध रहस्यों का अनावरण व सदुपयोग की विधा जानने व सीखने के लिए हमें अध्यात्म व विज्ञान का समन्वय-सन्तुलन बिठाकर ही आगे बढ़ना होगा ।

दर्शन और विज्ञान हैं, परस्पर पूरक व अभिन्न

ज्ञान दो भागों में विभक्त है । एक को दर्शन और दूसरे को विज्ञान कहते हैं । विज्ञान में पंच तत्वों से विनिर्मित वस्तुओं की—गतिविधियों की जानकारी और उनके उपयोग की विधा सम्मिलित है । दर्शन में चेतना को प्रभावित करने वाली भावनागत एवं पदार्थगत् सम्वेदनाओं का विश्लेषण, विवेचन किया जाता है । नीति, धर्म, सदाचार, अध्यात्म इसी परिधि में आते हैं । विज्ञान की असंख्य धाराएँ हैं—शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, पदार्थविज्ञान, रसायन, भौतिकी, यान्त्रिकी, तकनीकी आदि । सामान्यतया विज्ञान और दर्शन के यह दोनों ही क्षेत्र पृथक-पृथक और असम्बद्ध माने जाते हैं । कई बार इन्हें परस्पर विरोधी भी ठहराया जाता है पर गम्भीरता से देखने पर स्पष्ट होता है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं । एक के बिना दूसरे का प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता । फिर जहाँ तक सत्य के शोधन का प्रश्न है, वहाँ इन दोनों में कभी किसी प्रकार का विरोध हो ही नहीं सकता ।

वस्तुतः हमारा प्रगतिशील एवं सुख-सुविधा सम्पन्न जीवन-रथ के दो पहियों की तरह विज्ञान और दर्शन के समन्वय से ही गतिशील हो रहा है । दर्शन अन्तर्ज्ञान शक्ति इन्टरनल पावर, तर्कभाव सम्वेदना और दूरदर्शी विवेक पर अवलम्बित है और बौद्धिक शक्ति पर, प्रयोगात्मक तथ्यों पर । इस प्रकार से उनके साधन तो पृथक-पृथक हैं पर सत्य के समीप तक पहुँचने का दोनों का मूलभूत उद्देश्य एक है ।

सुप्रसिद्ध मनीषी बिल डूरण्ट ने 'द स्टोरी ऑफ फिलोसफी' नामक अपने ग्रन्थ में इसी से मिलते-जुलते हुए विचार व्यक्त किए हैं । वे कहते हैं कि विज्ञान का आरम्भ दर्शन में होता है और अन्त कला में । यदि विज्ञान में मानवी चेतना की सुसम्वेदना उत्पन्न करने की क्षमता न होती तो उसके लिए कठोर श्रम करने में किसी को उत्साह न होता । केवल कौतूहल भर के लिए विज्ञान की शोध नहीं होती है । उसके पीछे मानवी सुख-शान्ति का जो उत्साह भरा लक्ष्य जुड़ा है, उसी ने विज्ञान की उन्नति का पथ-प्रशस्त किया है । विज्ञानवेत्ता करनर हाईसबर्ग ने भी अपनी कृति 'फिजिक्स एण्ड फिलोसफी' में अनिश्चितता के नियमों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि विज्ञान वस्तुतः दर्शन शास्त्र की स्थूल जाति का निरूपण करने की एक शैली मात्र है । सिद्धान्तों के हाथ लगने के बाद हीं वैज्ञानिक प्रयोगों में पूर्णता आती है ।

विज्ञान और दर्शन आपस में अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, इस तथ्य को बुद्धिजीवियों ने अब बिना हिचक के स्वीकार कर लिया है । फलस्वरूप 'वैज्ञानिक दर्शन' एक नया ही विचारणीय विषय सामने आया है । इस सम्बन्ध में ख्यातिलब्ध विद्वान केसरलिंग ने अपनी पुस्तक 'क्रिएटिव अण्डरस्टैंडिंग' में कहा है कि ज्ञान की दो धाराएँ-विज्ञान और दर्शन अविच्छिन्न हैं। इन दोनों को मिलाकर एक शब्द 'वैज्ञानिक दर्शन अथवा दार्शनिक विज्ञान' नाम दिया जाना इस युग के ज्ञान विस्तार को देखते हुए सब प्रकार उपयुक्त ही होगा। उनके अनुसार जिस प्रकार विज्ञान के अन्तर्गत रसायनशास्त्र, शरीरशास्त्र, यान्त्रिकी आदि धाराएँ आती हैं, उसी प्रकार ज्ञान मीमांसा, प्रमाण मीमांसा, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र और अध्यात्म जैसे दार्शनिक विषयों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए । दोनों के बीच परस्पर सहयोग से ही समग्र सत्य का दर्शन हो सकता है ।

मूर्धन्य वैज्ञानिक एफ. सी. नार्थरोम का कहना है कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों को जितना वास्तविक माना जाता है उससे अधिक वे काल्पनिक हैं कि प्रयोग का सही उतरना इस बात की गारन्टी नहीं है कि प्रयोग की जो व्याख्या, विवेचना की गई है, उसके जो आधार कारण बताए गए हैं, वे सही हैं । प्रायः ऐसा होता रहता है कि पुराने सिद्धान्त काटकर उनके स्थान पर नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है । भूतकाल के कितने ही सिद्धान्त, जो कभी पत्थर की लकीर समझे जाते थे, देखते-देखते निरस्त हो गए । यह क्रम आगे भी चलते ही रहने वाला है । इसी प्रकार अनेक सामाजिक एवं धार्मिक प्रथा-परम्पराएँ ऐसी हैं जिन्हें स्वभाव में सम्मिलित कर लिया गया है, पर आज के सन्दर्भ में यथार्थ से उनका कोई गहरा सम्बन्ध नहीं है । तर्क और तथ्य की कसौटी पर भी वे खरे नहीं उतरते । अतः भ्रान्तियों की गुंजाइश दोनों में समान रूप से है और इन्हें छोड़ा जा सकता है । इतने पर भी यह मानना ही पड़ेगा कि दोनों ने गिरते-पड़ते सत्य के अधिकाधिक निकट मनुष्य की ज्ञान चेतना को पहुँचाने में अति महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । आइन्स्टीन ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि विज्ञानी भी दार्शनिकों की ही तरह अपने सिद्धान्त की स्थापना, कल्पना के आधार पर करते हैं । प्रयोगों की कसौटी पर उस कल्पना का खरा-खोटापन परखा जाता है । इस पर भी सत्य और असत्य का सम्मिलित घोटाला कहीं न कहीं रह ही जाता है और एक समय की स्थिर मान्यता को दूसरे समय में बहुत कुछ सुधारना पड़ता है । दर्शन को भी इसी मार्ग का अनुसरण करना होगा ।

दार्शनिक लिनयुतांग के अनुसार वस्तुओं के परखच्चे उधेड़ते रहने पर जगत का न तो स्वरूप समझ में आ सकता है न उसका प्रयोजन स्पष्ट होता है । इसके लिए दर्शन का सहारा लिए बिना काम नहीं चल सकता । दर्शन की परिभाषा करते हुए डॉ. राधाकृष्णन ने उस सत्य को समझने को बौद्धिक प्रयास कहा है । उनका कथन है कि विज्ञान के लिए बिना दर्शन की सहायता के विश्व का तात्विक स्वरूप समझ सकना अशक्य है । दार्शनिक जीन ड्यू प्लेसिस का मत है कि जगत का स्थूल स्वरूप ही विज्ञान हमें समझा सकता है और पदार्थों की प्रकृति पहचान कर उससे लाभ उठाना सम्भव कर सकता है । इसके आगे गति नहीं । जो है सो क्यों है ? किसलिए है ? कैसा है ? इन प्रश्नों का उत्तर दर्शन के अतिरिक्त और किसी माध्यम से मिल ही नहीं सकता ।

महर्षि कात्यायन ने 'यथार्थता' के मर्मस्थल तक पहुँच सकने वाली तीखी विवेक दृष्टि को दर्शन की संज्ञा दी है और कहा है कि अध्यात्म अन्धता का निराकरण मात्र दार्शनिक दृष्टि मिलने पर ही हो सकता है । 'फिलॉसफी ऑफ फिजिकल साइन्स' के

लेखक सर ए. एस. एडिंगटन ने इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि विज्ञान के सिद्धान्तों का समझना और समझाना दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों के सहारे ही सम्भव हो सकता है । 'फ्राम युक्लिड टू एडिंगटन' नामक अपनी कृति में सर एडमण्ड व्हेटेकार ने लिखा है कि प्राचीन दर्शनशास्त्र के विवादास्पद सिद्धान्तों को वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर अधिक प्रामाणिक रीति से परखा और जाना जा सकता है । 'दि फिलॉसफी ऑफ स्पेश एण्ड टाइम प्रिफेस' के लेखक हन्स राइशन वाच ने भी लिखा है कि-वह जमाना अब लद गया, जब विज्ञान और दर्शन को एक-दूसरे से सर्वथा पृथक कहा जाता था । अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दर्शन और विज्ञान की जोड़ी में से एक को हटा देने पर दूसरा लड़खड़ाने लगा है । थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी जैसे सिद्धान्तों की उपज दर्शन और विज्ञान को अन्योन्याश्रित मान कर ही हो सकती है ।

ज्ञान का मूल आधार है—जिज्ञासा, जानने की इच्छा । इसी प्रवृत्ति ने भौतिक पदार्थों के स्वरूप, स्वभाव एवं उपयोग की विधि-व्यवस्था पर चढ़ते हुए आवरणों को हटाकर भौतिकी विद्या का विशालकाय भाण्डागार प्रस्तुत किया और उसका उपयोग-उपभोग करके मनुष्य ने अन्य प्राणियों की तुलना में असंख्य गुने सुविधा साधनों भरे जीवन का रसास्वादन किया है । जिज्ञासा का ही विस्तार चेतना को प्रभावित करने वाले तथ्यों की गूढ़ जानकारियों के रूप में हुआ है । समाज विज्ञान, शासन तन्त्र, कला, नीति, न्याय, शिक्षा, अध्यात्म, भावसम्वेदना, स्नेह, संयम आदि के अनेक उपयोगी तन्त्र दार्शनिक चिन्तन के ही फलस्वरूप सामने आये हैं और मनुष्य क्रमबद्ध एवं परिष्कृत पद्धति से चिन्तन कर सकने योग्य बना है । भौतिक विज्ञान एवं दार्शनिक चिन्तन के सुसन्तुलन का सम्मिश्रण ही मानव जीवन के समग्र विकास की पृष्ठभूमि बन सकता है ।

ग्रीक के शब्दकोशों में उल्लेख मिलता है कि यूनान के सुकरात से भी पुराने दार्शनिक दर्शन का अर्थ—'बहिर्जगत का अध्ययन' करते रहे । इससे स्पष्ट है कि पाश्चात्य जगत में भी दर्शन और विज्ञान की गणना एक स्तर पर ही होती रही है । अन्यान्य प्राचीन मनीषियों ने भी लगभग इसी स्तर की व्याख्या की है । इन दोनों क्षेत्रों का जब अधिक विस्तार हुआ, तभी यह बँटवारे की बात सामने आयी और अन्तरंग चिन्तन की धारा को दर्शन तथा बहिरंग हलचलों के ऊहापोह को विज्ञान कहा जाने लगा । इतना होते हुए भी यह एक स्पष्ट तथ्य है कि दोनों के मिलाये बिना न तो चिन्तन में स्पष्टता आती है और न वैज्ञानिक प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है । यथार्थता के मर्मस्थल तक पहुँचने के लिए दोनों में समन्वय का होना आज की अनिवार्य आवश्यकता है ।

धर्म और विज्ञान परस्पर विपरीत किन्तु परिपूरक

प्रसिद्ध वैज्ञानिक ब्वायल ने एक सिद्धान्त (ब्वायल्स लॉ) प्रतिपादित कर बताया कि यदि दबाव (प्रेशर) बढ़ाया जाय तो आयतन (वोल्यूम) कम हो जायेगा अर्थात् आयतन और दबाव दोनों एक-दूसरे के विपरीत अनुपात (रेसीप्रोकल प्रपोर्शन) में हैं । हवा भर कर किसी गुब्बारे को एक निश्चित आयतन में फुला लें और फिर उसे दाबें तो जितना अधिक गुब्बारे को दबाते चलेंगे, उसका आकार उतना ही छोटा होता चला जायेगा ।

धर्म और विज्ञान भी इसी प्रकार एक-दूसरे के विपरीत अनुपात (रेसीप्रोकल प्रपोर्शन) में दिखाई देते हैं, जहाँ पर धर्म आ जाता है, वहाँ विज्ञान की आवश्यकता कम हो जाती है और जहाँ विज्ञान की मात्रा बढ़ जाती है, वहाँ धर्म को उतना स्थान छोड़ना पड़ता है । इस विपरीत अनुपाती सिद्धान्त के अनुसार ऐसा जान पड़ता है, धर्म और विज्ञान में परस्पर विरोध है ।

लेकिन तार्किक दृष्टि से देखें तो दोनों अन्योन्याश्रित सम्बन्धित भी हैं । स्त्री की अपनी प्रकृति होती है, पुरुषों की अपनी प्रकृति, दोनों की इच्छाएँ और जरूरतें अपनी-अपनी तरह की हैं, किन्तु अपने आप में दोनों अपूर्ण हैं और जीवन का आनन्द तभी आता है, जब दोनों एक बिन्दु पर एक समझौते पर सम्बन्धित हो जाते हैं । दोनों एक-दूसरे के हित की रक्षा करने लगते हैं तो परस्पर विपरीतता भी अभिन्न एकता में बदल जाती है, सृष्टि एवं जीवन का आनन्द निर्झर हिलोरें लेने लगता है ।

दोनों में से कोई भी अकेला नहीं रह सकता । दबाव बढ़ाते जाने की भी एक सीमा है, उस सीमा के आगे गुब्बारा फट जाने की तरह उस वस्तु का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है, उसी प्रकार आयतन बढ़ाते चलो तो एक अवस्था ऐसी आयेगी, जब भीतरी फैलाव ही उस वस्तु के अस्तित्व को फोड़कर नष्ट कर देगा ।

धर्म को इतना बढ़ाते चला जाय की विज्ञान से कोई वास्ता ही न रहे तो धर्म, धर्म न रहकर अन्धविश्वास हो जायेगा । भारतवर्ष महान् धार्मिक देश रहा है । यहाँ श्रद्धा, भक्ति का, विश्वास और आस्तिकता का अति-सीमा तक विकास हुआ । वह इतना सूक्ष्म और जटिल होता गया कि सर्वसाधारण उसे समझ नहीं पाया यदि उसे छोटे-छोटे वैज्ञानिक उदाहरणों द्वारा समझाया गया होता तो कम बुद्धि के लोग भी उन गहराइयों में उतरते चले जाते और धर्म अन्धविश्वास, अन्ध-श्रद्धा में परिणत होने से बच जाता । धार्मिक विडम्बनाएँ इसीलिए उठ खड़ी हुईं कि अल्प-बुद्धि के लोगों ने उसके तत्व-दर्शन को समझा तो था नहीं उल्टे उन पर जबरन विश्वास करने का दबाव डाला जाता रहा, फलस्वरूप तरह-तरह के अन्धविश्वास पनपे और उन्होंने प्रबुद्ध वर्ग में धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी ।

धर्म का आधार काल्पनिक नहीं । श्रद्धा और विश्वास की शक्ति निर्जीव नहीं । यदि कोई परम तत्व (एब्सोल्यूट एलिमेन्ट) नहीं था तो यह विविधता वाला संसार कहाँ से आया । इस पर हमें विश्वास करना ही चाहिए था । जो शक्ति आप प्रस्फुटित होकर विराट् विश्व का सृजन, निर्माण और विकास कर सकती है, उसके सर्वव्यापी और शक्तिमान होने में कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए था, किन्तु जब सामान्य मस्तिष्क उस दौड़ को पूरा न कर पाये और उन्होंने क्रम और कर्मव्यवस्था को न समझा तो ईश्वरीय सर्वशक्तिमत्ता को मन-मनोरथ पूरा करते रहने का माध्यम मान लिया । फल यह हुआ कि धर्म जैसी शाश्वत सत्ता से पढ़ा-लिखा विचारशील वर्ग बिदक गया और इस तरह धर्म अपने आप ही नष्ट होता गया । सिद्धान्ततः यह स्थान विज्ञान लेता चला गया क्योंकि बुद्धिमान आदमी को भी तो आखिर अपने लक्ष्य, इष्ट और सत्य की खोज की आवश्यकता थी ही । इसके

लिए स्वाभाविक ही था कि वह विज्ञान का आश्रय लेता और अन्ततः यही हुआ भी ।

धर्म जीवन की महान् और अन्यतम आवश्यकता है पर अन्धविश्वास के लिए मनुष्य जीवन में क्या स्थान हो सकता है ? बाइबिल कहती थी, पृथ्वी चपटी है, लोग उस बात का अन्धानुकरण किए चले आये । गैलीलियो वैज्ञानिक था, विचारशील व्यक्ति था, उसने और ग्रह-नक्षत्रों से तुलना की, अपने दृष्टिकोण को बड़ा किया तो समझ में आया पृथ्वी चपटी नहीं गोल है । उसने लोगों को बताया पृथ्वी गोल है । धर्म वालों को यह चाहिए था कि वे इस बात पर विचार करते, किन्तु यह अन्धविश्वास का ही पाप था कि पादरियों ने गैलीलियो को मरवा दिया । एक वैज्ञानिक सत्य को छुपाना सफल न हो सका, अन्ततः सत्य, सत्य ही रहा और बाइबिल को अपने आपमें से उतना अंश निकालकर फेंकना ही पड़ा । जबकि धर्म भी सत्य की शोध-प्रक्रिया है तो उसे पूर्णग्रही या अन्धविश्वासी क्यों होना चाहिए ?

इस दृष्टि से ही विज्ञान की अनिवार्यता सामने आयी । धर्म एक विश्वास के आधार दार्शनिक गहराई लेकर चला था, विज्ञान प्रकृति के तथ्यों (फैक्ट्स) को लेकर प्रारम्भ धातुओं से किया गया था, धीरे-धीरे मिट्टी, पानी, धातुएँ, गैसें, अग्नि, चुम्बकत्व, प्रकाश, विद्युत और इन सबसे बनने वाले तरह-तरह के यन्त्र (मैकेनिज्म) बनने प्रारम्भ हुए । विज्ञान हमें बताता है कि प्रकृति के तथ्य क्या हैं, उनमें परस्पर किस प्रकार और किन परिस्थितियों में सम्बन्ध बैठाया जा सकता है, इसी आधार पर उसने महान् खोजें कीं, जो हमें इस आधुनिक संसार में चमत्कार की तरह दिखाई देती हैं । इन्होंने माना हमारी सुख-सुविधाएँ भी बढ़ाईं। किन्तु इन सबका अन्तिम उद्देश्य क्या हो, यह बताना विज्ञान भूल गया । वह चला तो था, सत्य की खोज के लिए पर मार्ग में मिलने वाले फलों के स्वाद, फूलों की सुगन्ध, वृक्षों की छाया में आराम करने के पीछे वह जिस रास्ते पर चला था, उसे भूलकर एक घने जंगल में भटक गया, जहाँ केवल फल-फूल ही नहीं जंगली जानवर भी थे । काँटें, नदियाँ, टीले और पहाड़ भी थे । आज विज्ञान ने मनुष्य जीवन को कुछ इस तरह उलझा दिया है कि मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं (एब्सौल्यूट नेसेसिटीज) को समझ ही नहीं पा रहा ।

लक्ष्य प्रयोग के द्वारा नहीं आ सकता, किन्तु सामाजिक जीवन में उसकी गहराई कहीं भी, कभी भी देखी जा सकती है । (१) मरने की इच्छा कोई नहीं करता, (२) प्रेम की प्यास हर किसी को है, (३) छोटे से छोटा प्राणी भी प्रभुत्व की इच्छा करता है, (४) आनन्द के लिए सब बेचैन हैं, (५) मनुष्य अपने आप में सन्तुष्ट नहीं । इन शक्तिशाली आकांक्षाओं (पावरफुल ट्रेडीशन्स) के पीछे सत्य क्या है, यह जब तक समझ न पाये, तब तक विज्ञान के हजार हाथ और उनके द्वारा अर्जित सफलताएँ क्या प्रसन्नता दे सकती हैं । आज अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, जापान ने विज्ञान के क्षेत्र में भारी सफलताएँ पायी हैं, किन्तु मानवीय व्यवहार के इस अत्यावश्यक पहलू को वह भी हल नहीं कर सके ।

विज्ञान इतना छितर गया है कि वह स्वयं भी एक अन्धविश्वास बन गया है । हर नया प्रयोग व्यक्ति के वर्तमान दृष्टिकोण और मान्यता को बदल देता है । पदार्थ के सम्बन्ध में डाल्टन के परमाणुवाद (डाल्टन एटॉमिक थ्योरी) से लेकर आइन्स्टीन के सापेक्षवाद (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटि) तक अनेक मान्यताएँ परिवर्तित होती गईं और उन्होंने प्रत्येक बार नया चिन्तन देकर मनुष्य को और भी अशान्त किया, किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव न हो सका ।

विज्ञान किसी भी वस्तु (आब्जेक्टिव फील्ड) का वैज्ञानिक निर्णय और तार्किक चिन्तन (लॉजिकल थिंकिंग) सही दे सकता है, उदाहरण के लिए वह मौसम की जानकारी दे सकता है । बम विस्फोट से कितनी ऊर्जा (एनर्जी) पैदा होगी, यह बता सकता है, पृथ्वी से चन्द्रमा के बीच की दूरी नाप सकता है, किन्तु मानवीय व्यवहार और न्याय का एक क्षेत्र है, उसे विज्ञान अपनी तार्किक चिन्तन (लॉजिकल थिंकिंग) से बताए तो उसका निर्णय गलत बैठेगा । विज्ञान एक शक्तिशाली साधन है, पदार्थ के अध्ययन का, पर अन्तिम उद्देश्य के केवल धर्म द्वारा ही निर्धारित किए जा सकते हैं । वैज्ञानिक शोधों का मूल्यांकन और उन्हें मानवीय जीवन में उतारना एक सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। जिसे केवल धर्म ही पूरा कर सकता है ।

विज्ञान इस सम्बन्ध में अन्धविश्वास फैलाता है, माँसाहार प्राणियों का उत्पीड़न, जीवन में असंख्य प्रकार के वैभव विलास के उपकरण मनुष्य के सुख की आकांक्षा को उत्तेजित कर के बढ़ा तो देते हैं पर उनसे किसी भी व्यक्ति को सन्तुष्टि नहीं होती, फलस्वरूप परस्पर प्रेम, सहयोग, न्याय, नैतिकता, ईमानदारी के स्थान पर हिंसा, घृणा, बैर-भाव, अन्यान्य, अनीति और बेईमानी बढ़ती है । यही हुआ भी । इस स्थान पर आकर विज्ञान भी फेल हुआ और लोगों को फिर मानवीय जीवन के सम्बन्ध में एक नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी ।

बायोलॉजी का ज्ञान मनुष्य को जीव-कोश (सेल्स) और अनेकों प्रकार के सूक्ष्मतम जीवाणुओं (बैसिलाई) तक ले आया—इनका क्या हो मनुष्य समझ नहीं पाया । बॉटनी और जूलॉजी ने करोड़ों वृक्ष-वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं के आकार-प्रकार, गुण-स्वभाव आदि का परिचय पाया पर इनका किया क्या जाय—कुछ पता नहीं । एनाटॉमी और फिजियोलॉजी ने हाथ, पाँव, पेट, मुख, आँख, कान, नाक, दाँत, गुर्दे, हृदय, आमाशय, कण्ठ, मस्तिष्क, माँसपेशियाँ, धमनियाँ, किरणें, कोशिकाओं की रचना और क्रिया-शास्त्र का पता लगाकर ग्रन्थ के ग्रन्थ रचकर तैयार कर दिए पर उनका क्या उपयोग हो कुछ पता नहीं । चिकित्सा की दृष्टि से भी हमने जितने रोगों की जानकारी प्राप्त की, उससे कई गुना नये रोग पैदा हुए, दवाइयाँ तो इतनी बनीं कि उन्हें केवल अलमारियों और काँच की बोतलों में रखा जाय तो संसार भर की सारी औषधियों को रखने के लिए लंका जितने कम से कम दस द्वीपों की आवश्यकता पड़े लेकिन रोग और मृत्यु की दर अभी पहले जितनी ही बनी हुई है । चन्द्रमा से लेकर विशाल ब्रह्माण्ड (गैलेक्सी) के अरबों नक्षत्र गिन लिए पर उनका क्या उपयोग हो कुछ पता नहीं । धर्म जिस तरह जटिल होकर अन्धविश्वास बन गया था, उसी प्रकार विज्ञान भी जटिल होकर अन्धविश्वास बन गया है और इस तरह अब इसकी भी पूर्णता सिद्ध हो गई है । लोग चन्द्रमा पर पहुँचकर यह अनुभव कर रहे हैं कि मनुष्य जीवन के मूलभूत तथ्यों के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाये बिना काम न चलेगा ।

"धर्म और विज्ञान" विषय गोष्ठी पर भाषण करते समय १९ मई, १९३९ को अल्बर्ट आइन्स्टीन ने प्रिन्स्टन यूनिवर्सिटी में कहा था—"संसार में ज्ञान और विश्वास दो वस्तुएँ हैं। ज्ञान को विज्ञान और विश्वास को धर्म कहेंगे। इस युग में लोगों की मान्यता है कि ज्ञान बड़ा है, क्योंकि यह क्रमबद्ध है, स्कूलों में इसी का शिक्षण होता है, किन्तु यह मानव-जीवन के उद्देश्य को बहुत देर तक प्रयोग करके भी शायद ही बता सके। जबकि तार्किक चिन्तन और क्रमबद्ध ज्ञान (राशनल नॉलेज) दोनों ही आधार हैं, जो हमारा सम्बन्ध सीधे परम अवस्था या अपने मूलभूत उद्देश्य से जोड़ देते हैं।

२२ जुलाई, १९६९ को जिस दिन चन्द्र-यात्री नील आर्मस्ट्रांग और एडविन एल्ड्रिन ने अपनी चन्द्र-यात्रा के निर्धारित कार्यक्रम पूरे कर लिए और सकुशल पृथ्वी की ओर चल पड़े थे, उस दिन अन्तरिक्ष केन्द्र ह्यूस्टन, टैक्सास (अमेरिका) के अन्तरिक्ष उड़ान केन्द्र के निर्देशक श्री डॉ. वेरनेर वान वोन ने बड़े गम्भीर शब्दों में कहा था—"मेरा विचार है कि अन्य लोकों में जीवन की सम्भावनाएँ निश्चित हो गई हैं और उससे मानव-जाति की अमरता निश्चित हो गई है।"

यह कथन उनका विज्ञान की ओर से धार्मिक सत्य की ही ओर झुकाव था, इसी दिन अहमदाबाद में परमाणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष डॉ. विक्रम साराभाई ने कहा कि—"मानव के अब तक के साहसिक कदमों में से यह सबसे बड़ा कदम है, इससे विश्व के बारे में हमारी धारणाओं में बुनियादी परिवर्तन हो सकता है।"

तात्पर्य यह कि विज्ञान के पीछे किसी सशक्त सत्ता का रहना आवश्यक है अन्यथा उसकी उपयोगिता मारी जा सकती है। मानवता के लिए उसका उपयोग तभी सम्भव है। यह सत्ता केवल धर्म या विश्वास की ही हो सकती है। धार्मिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए भी यदि हम समय रखें तो साधनों का अभाव हमारे लिए कोई अभाव नहीं है। इसी तरह हम धार्मिक आधार पर मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य निर्धारित करें, किन्तु उसके पीछे वैज्ञानिक तर्कों का समावेश आवश्यक है।

ब्यायल के सिद्धान्त (ब्यायल्स लॉ) के अनुसार विपरीत जान पड़ने वाले धर्म और विज्ञान वस्तुतः विरोधी होकर ही एक स्थान पर रहकर ही मानव-जीवन का कल्याण कर सकते हैं। चार्ल्स का सिद्धान्त (चार्ल्स लॉ) के अनुसार जैसे-जैसे ताप (टेम्परेचर) बढ़ेगा उसी अनुपात में आयतन (वॉल्यूम) भी बढ़ेगा अर्थात् ताप और आयतन सीधे अनुपात (डाइरेक्टली प्रपोर्शन) में हैं। विज्ञान और धर्म का भी सम्बन्ध ऐसा ही है, जब धर्म बढ़ेगा उसकी रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास को दूर करने के लिए विज्ञान का बढ़ना अनिवार्य हो जायेगा, उसी तरह अब जब कि विज्ञान अपनी चरम प्रगति पर बढ़ चुका है, उसके एकाधिकार और निरंकुशता को समाप्त करने एवं मनुष्य जीवन का निश्चित लक्ष्य निर्धारित करने के लिए धर्म का विकास आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया है। यह एक तरह का अटल सिद्धान्त है, अगले दिनों विश्व विराट् हमारे लिए जितना स्पष्ट होता चलेगा हमें उतना ही धार्मिक होना पड़ेगा, यह प्रकृति और परमेश्वर दोनों का ही अटल विधान है।

धर्म और विज्ञान का समन्वय ही एक मात्र चारा

विश्व में फैली ज्ञान की दो धाराओं—धर्म और विज्ञान का प्रादुर्भाव दो भूमि खण्डों से हुआ है। समस्त जीवित और महान् धर्मों की जन्मभूमि आज का सीमित किन्तु कभी का वृहत्तर भारत है। प्राकृतिक विज्ञानों की पाश्चात्य जगत एक अन्तर्मुखी और आत्मनिष्ठ है, दूसरी बहुर्मुखी और वस्तुनिष्ठ। एक इन्द्रियातीत तत्वों के रहस्यों के उद्घाटन में व्यस्त तो दूसरी इन्द्रियग्राह्य वस्तुओं के सन्दर्भ में प्रयत्नशील।

भारतीय विचारधारा मूलतः धार्मिक विचारधारा है। हिन्दू, बौद्ध, जैन, यहूदी, मुसलमान और येरुसलेम की भूमि में उपजे क्रिश्चियन धर्म की रोमन कैथोलिक शाखा का अनुयायी ईसाई—इन सब की व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन जीने की रीति- नीतियाँ, मान्यताएँ, परम्पराएँ, दृष्टिकोण और व्यावहारिक गतिविधियाँ अपने-अपने धर्मों के द्वारा प्रतिपादित नियमों द्वारा नियमित और संचालित होती हैं। किसी समय आध्यात्मिकता उत्पन्न करने वाला यह सारा क्षेत्र वृहत्तर भारत की परिधि में आता था जिसे इन दिनों एशिया कहते हैं।

देश-काल-परिस्थिति ने इन धर्मों को भिन्न-भिन्न कलेवर तो धारण करा दिए हैं, कर्मकाण्ड और विचार- व्यवहार के ढंग तो अलग-अलग कर दिए हैं, परन्तु उनका माँस और प्राण—उनकी मूल मान्यताएँ बहुत बड़े अंश में समान हैं। उदाहरणार्थ, उपरोक्त सभी धर्म मरणधर्मा शरीर को नियन्त्रित और संचालित करने वाली ऐसी सत्ता—आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करते हैं जिसका इस जीवन के परे भी अस्तित्व बना रहता है। इस तथा ऐसी ही अन्य उभयनिष्ठ आधारभूत मान्यताओं ने इन धर्मों के अनुयायियों के सम्पूर्ण जीवन को, इन्द्रिय मस्तिष्क हृदय की प्रत्येक क्रिया को, अनुशासित करने का न केवल प्रयत्न किया है, वरन् परलोक के लोभ और भय दिलाकर आत्मा के कल्याण के लिए अनेक विधि-निषेधों को मानने को मजबूर भी किया है।

इसे स्वस्थ स्थिति नहीं कहा जा सकता। एशियाई धर्मों ने स्वर्ग और निर्वाण के प्रति, पारलौकिक जीवन के प्रति, अपने अनुयायियों के झुकाव, रुचि और ललक को इतना तीव्र कर दिया है कि इहलोक का मूल्य भवबन्धन एवं मायाजाल कहा जाने लगा। वैयक्तिक जीवन से श्रम; कर्म, स्वावलम्बन और आत्म-विश्वास, पारिवारिक जीवन में घनिष्ठता और उदारता तथा सामाजिक जीवन में सामूहिकता की भावना और सहयोग जैसे सद्गुण इस पारलौकिकता की अति से लुप्त होने लगे। अपनी मेहनत से धरती को स्वर्ग बनाने और इसी जीवन में स्वर्ग में रहने का आनन्द पाने के बदले किसी बने बनाए स्वर्ग में मृत्यु के उपरान्त पहुँचने और सुख पाने की मोहक कल्पना ने जन मानस को ग्रस लिया। परलोकवाद का एकांगी पक्ष एक घातक रोग बन गया और उसने सर्वतोन्मुखी प्रगति के मार्ग में बाधा ही पहुँचाई।

इसके विपरीत पश्चिमी विचारधारा मूलतः विज्ञान प्रेरित विचारधारा है। इन्द्रियग्राह्य वस्तु व विषय ही प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन एवं अनुसंधान का क्षेत्र है। अब तक के अधिकांश वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य केवल इतना

रहा है कि एहिक जीवन को अधिक सुख-सुविधापूर्ण बनाने के लिए प्रकृति का दोहन किस प्रकार किया जा सकता है । इस विचारधारा ने जहाँ मनुष्य को साहसी, कर्त्तव्यपरायण कर्मशील और व्यावहारिक बनाया है, वहीं उसे बहिर्मुखी, सुखवादी और अनात्मवादी भी बना दिया है । कर्मफल के नियम और आत्म-कल्याण की कल्याणकारी आस्था को हटाकर, औचित्य की समस्त सीमाओं को लाँघती विलासिता ने तथा स्नेह रहितता, असुरक्षा और तनाव ने पश्चिमी मन को ग्रस लिया ।

यद्यपि यह सही है कि धर्म के समान प्राकृतिक विज्ञान भी गणित की गिनती, भौतिकी की ऊर्जा, रसायन की संयोजकता जैसे अनेक अवस्तुनिष्ठ विचारों (एब्सैट्रेक्ट आइडियाज) की नींव पर टिके हैं तथापि यह भी सही है कि उन विज्ञानों से उपजी पश्चिमी विचारधारा व सभ्यता का वर्तमान स्वरूप केवल वस्तुनिष्ठता या वैषयिकता से अर्थात् केवल इहलोकवाद से नाता जोड़े हुए हैं । परलोकवाद के समान इहलोकवाद भी पश्चिम का एक संक्रामक घातक रोग बन चुका है ।

धर्म और विज्ञान की यह स्थितियाँ एक-दूसरे के बिल्कुल विरुद्ध पड़ती हैं, और प्रतीत होता है कि उनमें समझौते की तनिक भी सम्भावना नहीं है, किन्तु सूक्ष्म विचार करने पर ज्ञात होता है कि इन परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली विचारधाराओं के बीच में सन्तुलन का बिन्दु भी विद्यमान है । गतिमान पैण्डुलम जब बाएँ या दाएँ छोर पर पहुँच जाता है, तब विपरीत दिशा में लौटने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं रह जाता । यह डोलना, यह अस्थिरता उस समय तक जारी रहती है, जब तक कि मध्य की सन्तुलित स्थिति स्थायी रूप से प्राप्त न हो जाय । आत्मवादी धर्म और पदार्थवादी विज्ञान मध्यमान सन्तुलन-बिन्दु की विपरीत दिशाओं में स्थित दो अतिवादी व अस्थायी स्थितियाँ हैं, जहाँ से उन्हें सन्तुलन-बिन्दु की ओर लौटना ही होगा । इससे मिलता-जुलता उदाहरण देते हुए हरबर्ट स्पेन्सर यह मत प्रतिपादित करते हैं कि—"अन्तिम सीमा तक विकसित हुए भावनात्मक (धार्मिक) संस्कृति को चेतनात्मक (पदार्थवादी) संस्कृति की दिशा में तथा चेतनात्मक संस्कृति को भावनात्मक संस्कृति की दिशा में लौटने के सिवा और कोई विकल्प नहीं है ।" इस प्रकार इस विचित्र किन्तु तर्क सिद्ध निष्कर्ष पर हम पहुँचते हैं कि परम सत्य की खोज में संलग्न धर्म और प्राकृतिक विज्ञान अतिवादी एवं अस्थायी स्थितियों पर स्थित होने के कारण स्वयं ही 'असत्य' की श्रेणी में ही रखे जा सकते हैं । तर्क, प्रयोग और अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि दो अतिवादी स्थितियों के मध्यमान पर ही 'सत्य' स्थित होता है, क्योंकि वहीं पर सन्तुलन और स्थायित्व उपलब्ध होते हैं । यह तथ्य स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि यह स्थायित्व जड़ता का सूचक नहीं है, वरन् गतिशील सन्तुलन मध्यमान का गुण है ।

इस सन्तुलित मध्य स्थिति को प्राप्त करने में, जिसमें धार्मिक और वैज्ञानिक विचारधाराओं का सानुपातिक समन्वय हो जाता है, दर्शन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है । प्रसन्नता की बात है कि सर्वोच्च कोटि के वैज्ञानिकों ने भी दर्शन की इस उपयोगिता को अब स्वीकार कर लिया है । परिणामस्वरूप मानवीय इतिहास का नया और कल्याणकारी युग प्रारम्भ करने की सामर्थ्य से युक्त वैज्ञानिक धर्म और धार्मिक विज्ञान की प्रतिष्ठापना का मार्ग प्रशस्त हो गया है ।

अन्ध श्रद्धा उपार्जित, कल्पना प्रभूत—अवास्तिकता पर आधारित धर्म स्वतन्त्र इकाई के रूप में कितना हानिप्रद है, इसका अनुमान व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले उसके दुष्प्रभावों को देखकर लगाया जा सकता है । गैलीलियो और आर्किमिडीज के प्राणहरण से लेकर धर्मोन्माद और धर्मयुद्ध तक तथा पर्दा प्रथा से लेकर गलत कार्य (पाप) की अनिवार्य हानिकारक प्रतिक्रिया (दण्ड) से मात्र स्नान द्वारा मुक्ति तक सैकड़ों-सहस्रों धार्मिक अन्धविश्वास और मूढ़ मान्यताएँ धर्म के नाम पर मानव मस्तिष्क पर हावी हो गई हैं । गुरुडम नामक तानाशाही—बैकुण्ठ-निर्वाण दिलाने की दलाली— आनुवंशिक उच्चता तथा प्रजातीय उच्चता का अहंकार जैसी अनेक अवैज्ञानिक मान्यताएँ व परम्पराएँ धर्म की दुहाई देकर फल-फूल रही हैं । 'कारण-कार्य' का नियम, धार्मिक सिद्धान्तों व नियमों का पुनः परीक्षण करने का प्रत्येक जिज्ञासु को अधिकार है । उनकी सुस्पष्ट एवं सर्वज्ञात विधि-व्यवस्था, प्रमाणित तथ्यों की मान्यता—जैसे वैज्ञानिक आधार धर्म व्यवस्था ढूँढ़े नहीं मिलते, किन्तु आशा की जानी चाहिए कि वैज्ञानिक धर्म जब कभी भी मानव समाज में प्रचलित होगा, तब क्यों—कैसे की कसौटियाँ ही धार्मिक सिद्धान्तों व क्रिया-कलापों को मान्यता और समाज में उनके प्रसारण की स्वीकृति का प्रमाण-पत्र प्रदान किया करेंगी ।

विज्ञान भी स्वतन्त्र इकाई के रूप में कितना अपूर्ण है, इसकी झलक जेम्स जीन्स के इस वक्तव्य से मिलती है—"विज्ञान गूँगा और बहरा है । वह अपनी एक हथेली पर पैनिसिलीन और दूसरी पर परमाणु बम रखकर तुम्हारे पास आता है । अब यह तुम पर निर्भर है कि तुम किसे पसन्द करते और उठाते हो ।" तात्पर्य यह हुआ कि विज्ञान चुनाव सम्बन्धी कोई सलाह नहीं देता, न ही गलत चुनाव के दुष्परिणामों की शिकायत सुनना चाहता है ।

तब सही मार्गदर्शन कहाँ से प्राप्त हो ? असमंजस की इस स्थिति में धर्म—वास्तविक धर्म—सहायता का हाथ बढ़ाता है । वह सत्य, न्याय और लोकमंगल की कसौटियाँ प्रस्तुत करता है । प्राकृतिक विज्ञानों की जो भी देन इन कसौटियों पर खरी उतरें वे ही ग्रहणीय हैं, शेष नष्ट करने योग्य । जब कभी भी धार्मिक विज्ञान विश्व में प्रचलित होगा, उपरोक्त कसौटियाँ ही अनुसन्धान की दिशाओं को निश्चित किया करेंगी ।

इस दृष्टिकोण से अच्छा हो, यदि हम धर्म को 'अपूर्ण विज्ञान' कहें और विज्ञान को 'अपूर्ण धर्म' । यह पर्यायवाची शब्द जहाँ उनकी निजी विशेषताओं पर जरा भी आँच नहीं लाते, वहीं उनकी अपूर्णता और अन्योन्याश्रितता को भी उभार कर हमारे सामने लाते हैं, और हमारी इस भ्रान्ति को दूर करते हैं कि उनमें से कोई एक प्रमुख प्रभावशाली है तथा दूसरा गौण और मुखापेक्षी ।

वास्तविकता यह है कि मानव रचना में आत्मतत्व और अनात्मत्व दोनों लगे हैं । दोनों के तालमेल से ही जीवन सुसंगठित, सन्तुलित और उन्नत हो सकता है । आत्म विज्ञान और पदार्थ विज्ञान, दोनों का सानुपातिक समन्वय ही इहलोक और परलोक को उत्साह व समृद्धि से तथा सन्तोष व आनन्द से भर सकता है । धर्म और विज्ञान का—अर्थात् आत्मा और अनात्म पक्षों

का—अर्थात् परमात्मा और माया का—अर्थात् आत्म कल्याण और विश्व कल्याण का—अर्थात् परलोक और इहलोक का ऐसा बुद्धिमत्तापूर्ण योग ही व्यावहारिक और उचित है ।

पिछले कुछ समय की तथा वर्तमान समय की धर्म और विज्ञान क्षेत्रों की गतिविधियाँ इस बात का संकेत दे रही हैं कि उनके बीच की कृत्रिम दीवारों के ढहने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है । पूर्व काल में धर्म द्वारा निन्दित और दण्डित विज्ञान आज धर्म से हाथ मिलाकर उसे अपनी वैज्ञानिकता प्रदान कर रहा है, दूसरी ओर धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों ने सर्वोच्च कोटि के वैज्ञानिकों के चिन्तन को परम सत्य की शोध तथा मानव कल्याण के प्रयास की दिशा में बढ़ने की सफल प्रेरणा दी है । प्रकृति के मूलभूत नियमों की खोज, परामनोविज्ञान आदि धर्म विज्ञान के मध्य सेतु बनने जा रहे हैं । इस बात के लक्षण दिखाई देने लगे हैं कि सम्पूर्ण मानवता की एक आत्मा की घोषणा करने वाला वैज्ञानिक धर्म भविष्य के गर्भ में विकसित हो रहा है । विभिन्न विशिष्ट विज्ञान भी परस्पर समन्वित होकर एक विज्ञान का रूप धारण करने की दिशा में बढ़ रहे हैं । आशा की जानी चाहिए कि ऐसा समन्वित विज्ञान स्वयं को तथा धर्म को एक ही वृहद सत्य के दो परस्पर सम्बन्धित पक्ष सिद्ध कर सकेगा । अविच्छिन्न रूप से जुड़े तथा एक-दूसरे को पोषित करने वाले धर्म और विज्ञान की अर्थात् वैज्ञानिक धर्म और धार्मिक विज्ञान की आज के विश्व में महती आवश्यकता है । इसके प्रादुर्भाव और क्रियाशील होने के पश्चात् ही विश्व-शान्ति और विश्व-बन्धुत्व की कल्पनाएँ सार्थक हो सकेंगी ।

विज्ञान और अध्यात्म में विरोध कहाँ ?

मनुष्य की प्रवृत्तियाँ दो दिशाओं में गति करती हैं एक अन्तर्मुखी और दूसरी बहिर्मुखी । जीवन निर्वाह के लिए कई एक भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है । बहिर्मुखी प्रवृत्ति उन आवश्यकताओं को सरलता है पूरा करने का प्रयत्न करती है और किस प्रकार सरलतम ढंग से पूरी हो जायें इसके लिए प्रयत्न करती है । अन्तर्मुखी दिशा में अपनी वृत्तियों और प्रवृत्तियों का अन्वेषण, परिशोधन किया जाता है और किस प्रकार चरमलक्ष्य, अक्षय आनन्द की प्राप्ति हो सके इसके लिए यत्न किया जाता है ।

जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा सुख-शान्ति, सुव्यवस्था का सम्पादन करने के लिए किए गए प्रयास विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं । यों विज्ञान की परिभाषा किसी वस्तु या विषय का क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित और तर्क व तथ्य संगत ज्ञान है । फिर भी विज्ञान का क्षेत्र अभी मुख्यतः स्थूल जगत, भौतिक संसार ही है । वह जीवन समस्याओं को सुलझाने के लिए अपने ढंग से आप करता है । अध्यात्म दूसरी दिशा से मनुष्य को सुखी और आनन्दित बनाने की व्यवस्था देता है । वह मनुष्य के स्वभाव, प्रकृति, संसार और अन्तश्चेतना को परिष्कृत करने पर जोर देता है तथा उसी आधार पर मनुष्य को शान्त, ज्ञानी तथा आनन्दित बनाने की कला सिखाता है । इस अन्तर्मुखी दृष्टि को अध्यात्म कहा जा सकता है और बहिर्मुखी प्रयोजनों को विज्ञान का नाम दिया जा सकता है । दीखने में अध्यात्म और विज्ञान अलग-अलग दिखाई देते हैं । उनके प्रयोग प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं । दोनों की दिशाएँ भी अलग-अलग दिखाई देती हैं । एक बहिर्जगत में अनुसंधान करता है तो दूसरा आन्तरिक उत्कर्ष को महत्त्व देता है ।

स्थूल दृष्टि से देखने पर विज्ञान और अध्यात्म सर्वथा भिन्न तथा एक-दूसरे के विरोधी दिखाई देते हैं, लेकिन वस्तुतः ऐसा है नहीं । दोनों एक-दूसरे के साथ इतने घुले-मिले हैं कि एक को दूसरे से अलग कर पाना उतना ही कठिन है जितना कि रक्त के जलीय तथा शुष्क अंशों को पृथक करके उन्हें अपने मूल में बनाये रखना । दोनों की दिशाएँ भिन्न-भिन्न दिखाई देती हैं लेकिन वास्तव में दोनों एक ही दिशा में चल रहे हैं । वह दिशा है—मनुष्य को अधिकाधिक सुख-शान्ति सम्पन्न बनाना ।

कहा जा चुका है कि एक बाह्य दृष्टि से मनुष्य की सुख-शान्ति के लिए प्रयत्नशील है और एक उसे आन्तरिक दृष्टि से समृद्ध व सम्पन्न बनाने का उपक्रम रचता है । आन्तरिक और बाह्य कार्यक्षेत्र की दृष्टि से अध्यात्म और विज्ञान में यह दो भिन्नताएँ हैं अन्यथा दोनों का लक्ष्य एक ही होने से वे एक ही दिशा में बढ़ने वाले दो पग हैं । अज्ञान से छूटकर ज्ञान की भूमिका में प्रवेश करने वाला दोनों का लक्ष्य है । दोनों सत्य की, परम सत्य की खोज में निरत हैं और दोनों एक साथ जन्मे, पले, बढ़े और विकसित हुए दो भाई हैं ।

विज्ञान और अध्यात्म कई स्तर पर एक समान कार्यपद्धति अपनाते हैं । उदाहरण के लिए दोनों ही पिछली मान्यताओं के गलत सिद्ध होने पर उन्हें अस्वीकार कर देते हैं । दोनों ही इस तथ्य से सहमत हैं कि मनुष्य निरन्तर विकसित हो रहा है । दोनों मनुष्य के कल्याण को लक्ष्य बनाकर गतिशील हैं । दोनों सत्य की खोज में निरत हैं । जब दोनों में इतनी समानता है तो उनमें विरोध कैसा ?

विरोध वहाँ उत्पन्न हुआ जहाँ दोनों क्षेत्र के अधिकारी विद्वानों ने पूर्वाग्रहों को पकड़कर दूसरे की उपेक्षा आरम्भ कर दी । यह विरोध अधकचरे अध्यात्मवादियों और विज्ञानवादियों में ही है अन्यथा विज्ञान भी उन्हीं तथ्यों की पुष्टि करता है जिनकी अध्यात्म । बल्कि कई बार तो दोनों ने एक-दूसरे का सहयोग लेकर काम चलाया । जब तक विज्ञान और अध्यात्म एक-दूसरे के सहयोगी, पूरक बनकर काम करते रहे तब तक समाज में सुख-शान्ति और समृद्धि, आनन्द की स्वर्गिक परिस्थितियाँ बनी रहीं । प्राचीन काल में सभ्यता और संस्कृति के चरम शिखर पर पहुँचने का यही कारण था कि विज्ञान और अध्यात्म एक-दूसरे के पूरक बनकर काम करते रहे । अन्तश्चेतना के क्षेत्र में गूढ़ सत्यों की शोध के लिए प्रयोग, अनूभूति और पक्षपातपूर्ण आग्रह से मुक्त नीति अपनाई गई । ईश्वर सर्वव्यापी है, कण-कण में, प्राणिमात्र में विद्यमान है, सृष्टि जड़-चेतन का समुच्चय है, आदि मान्यताएँ ऐसी हैं, जिन्हें स्थापित और सिद्ध करने के लिए विज्ञान का सहयोग लिया गया और उस आधार पर मनुष्य को आदर्शवादिता की दिशा में अग्रसर किया गया ।

इस प्रकार अध्यात्म ने मनुष्य की आत्मा को, उसकी चेतना को विकसित बनाकर उसे आन्तरिक उल्लास और आनन्द प्रदान करने का उपक्रम रचा । विज्ञान ने अपने प्रयास दूसरे छोर से आरम्भ किए थे । उसी छोर से वह आज भी बढ़ रहा है । वह छोर है मनुष्य को बाह्य दृष्टि से सुविधा सम्पन्न बनाना । अध्यात्म अपनी लम्बी अनुसंधान यात्रा सम्पन्न करते हुए इस निष्कर्ष पर

पहुँच गया है कि ईश्वर एक शक्ति है और शक्ति के स्फुल्लिंग जगत में प्राणियों की चेतना के रूप में विद्यमान है । इस तत्वदर्शन को अपनाकर कोई भी व्यक्ति आन्तरिक दृष्टि से सुखी व सम्पन्न बन सकता है । अध्यात्म दर्शन को जीवन क्रम में उतारकर कोई भी व्यक्ति आनन्दित और उल्लसित जीवन व्यतीत कर सकता है ।

विज्ञान भी उस स्थिति में पहुँच गया है कि मनुष्य को जीवनयापन के लिए, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत अधिक मरना-खपना न पड़े । उसने इतने यन्त्र, उपकरण जुटा दिए हैं कि मनुष्य को कम से कम श्रम करना पड़े, वहीं उसने मनुष्य की दुनिया को इतना विस्तृत बना दिया है, उसका अपना आपा स्वयं तक या परिवार तक ही सीमित न रहकर मुहल्ले, गाँव, नगर, प्रदेश और राष्ट्र की सीमाओं को लाँघकर पूरे विश्व तक फैल गया है । आज यदि हजारों मील दूर किसी स्थान पर कोई दुर्घटना घटती है तो सारे विश्व को उसका तुरन्त पता लग जाता है । कहीं कोई प्राकृतिक विपदा आती है तो पूरे विश्व का मनुष्य समाज विपत्तिग्रस्त क्षेत्र के लिए चिन्तित हो उठता है । चिन्तित नहीं भी हो तो कम से कम सहानुभूति उमड़ती हुई अवश्य अनुभव करता है । यह मनुष्य का आपा विस्तृत होना कहा जाय अथवा दुनिया का छोटा हो जाना, बात एक ही है । अब मनुष्य संसार में घटने वाली किसी भी घटनाक्रम या परिवर्तन से अप्रभावित नहीं रह सकता ।

अध्यात्म की प्रेरणा भी पूरी वसुधा को एक परिवार मान कर चलने की है । 'वसुधैव कुटुम्बकम' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'आत्मैवेदं सर्व' आदि उक्तियों में अपनी चेतना और भावना को विश्वव्यापी मानकर चलने तथा उसी तरह रहने का सन्देश निहित है । बहिर्जगत में विज्ञान ने दुनिया को एकसूत्र में आबद्ध करने का आधार प्रस्तुत किया है तो अन्तर्जगत में वही प्रयोजन अध्यात्म पूरा करता है ।

इस प्रकार अध्यात्म और विज्ञान का लक्ष्य एक रहा, दिशा एक रही, जन्म एक साथ हुआ । विकास, परिवर्तन और निष्कर्षों की गति एक रही । इतिहास भी लगभग दोनों का एक समान ही है तो किस आधार पर कहा जा सकता है कि विज्ञान और अध्यात्म एक-दूसरे के विरोधी हैं । वस्तुतः तो दोनों एक-दूसरे के पूरक, सत्य की खोज में एक ही अस्तित्व को बढ़े हुए दोनों हाथ हैं । दोनों में तात्विक दृष्टि से कोई विरोधाभास नहीं है, बल्कि अलग-अलग भाषा में दोनों एक ही बात कहते रहे हैं । अगले दिनों यह एकता मनुष्य के भविष्य को और अधिक उज्ज्वल बनायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

विज्ञान को अध्यात्म के साथ मिलना होगा

समस्याएँ असन्तुलन से उत्पन्न होती हैं । समग्र दृष्टि का अभाव और एकांगी प्रयत्नों के कारण ही अनेकानेक समस्याओं का जन्म होता है तथा वे संकटों का कारण बनती हैं । सन्तुलित एवं सुव्यवस्थित जीवन क्रम के लिए उन सभी पक्षों का समावेश करना होता है जो शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हों । मानवी काया जड़ चेतन के समन्वय से बनी है । शरीर भौतिक तत्वों से पुष्ट होता और उत्कृष्ट विचारणा एवं उदात्त सम्वेदनाओं से । इन दोनों के समन्वय को ही जीवन दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है । जिस पर व्यक्ति एवं समाज की प्रगति एवं उन्नति अवलम्बित है । असन्तुलन सामंजस्य का अभाव ही विभिन्न प्रकार की समस्याओं को जन्म देता तथा मानवी अधःपतन का कारण होता है ।

आकृति विज्ञान द्वारा गढ़ी जाती है, प्रकृति अध्यात्म द्वारा । साधनों के निर्माण में विज्ञान का योगदान होता है, व्यक्तित्व में अध्यात्म का । प्रकृतिगत स्थूल रहस्यों का उद्घाटन विज्ञान करता है, उसके सूक्ष्म रहस्यों—उद्देश्यों को अध्यात्म । वस्तुओं के आकार-प्रकार एवं संरचना का विश्लेषण विज्ञान का विषय है और उन संरचना के लक्ष्य एवं मूलभूत कारणों का उद्घोष अध्यात्म करता है । क्षेत्र एवं प्रकृति की भिन्नता होते हुए दोनों में एक मूलभूत समानता यह है कि दोनों ही सृष्टि के मूलभूत रहस्यों को जानना चाहते हैं । अन्तर मात्र इतना है कि एक खोज करता है कि अमुक वस्तु क्या है, जबकि दूसरे की खोज वस्तु क्यों है ? पर टिकी हुई है । आवश्यकता सामंजस्य की है—परस्पर सहयोग की है । एक नदी के दो फाट—एक क्षितिज के दो छोर होते हुए भी नदी और क्षितिज के प्रवाह विस्तार से अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं ।

सामंजस्य के अभाव ने ही अनेकानेक समस्याओं को जन्म दिया है । विज्ञान ने प्रकृति के भण्डार को खोजा-उधेड़ा और भौतिक सामर्थ्य प्राप्त की । पर आध्यात्मिक अवलम्बन के न होने के कारण वह प्राप्त सामर्थ्य का सदुपयोग न कर सका । वस्तुएँ ही लक्ष्य बनकर रह गईं और जीवन लक्ष्य जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की उपेक्षा कर दी गई । जबकि होना यह चाहिए था कि उन प्रश्नों पर भी विचार किया जाय जो उन गुत्थियों को भी सुलझा सकें, जिनमें जीवन लक्ष्य का समावेश हो । भौतिक खोजों में जड़ की सामर्थ्य पकड़ में आयी । पर मानवी अन्तरंग में निवास करने वाली उत्कृष्ट विचारणा—भाव सम्वेदना की असीम सामर्थ्य अनभिज्ञ एवं उपेक्षित ही बनी रही । फलस्वरूप जड़ सभ्यता जीवन पर हावी हो गई और चेतना की उपेक्षा हुई, जो होना चाहिए वही हुआ । लक्ष्य जब वस्तुएँ बनीं तो सद्विचारणा—सद्भावना की महत्ता एवं उपयोगिता की बात क्यों कर समझ में आये । नीति-सदाचार, सौहार्द्र, सहयोग, उदारता से भरा दृष्टिकोण तो उच्चस्तरीय भाव-सम्वेदनाओं पर टिकाऊ है । जब उनकी महत्ता नहीं समझी गई तो अपनाया ही क्यों जाय ? संकीर्ण स्वार्थपरता की आपा-धापी भाव-सम्वेदनाओं की उपेक्षा एवं दरिद्रता की ही परिचायक है । जिसके कारण ही भौतिक सम्पन्नता होते हुए भी विश्व में अनेकानेक समस्याएँ नित्य-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं ।

शोध की गरिमा एवं विज्ञान की उपलब्धियों का लाभ सही रूप में तब मिल सकेगा जब वह क्या की सीमा से बढ़कर क्यों पर विचार करेगा । अनेक प्रकार के दार्शनिकों ने विज्ञान के समक्ष इस प्रकार प्रश्न रखे हैं । प्रसिद्ध नाटककार एवं दार्शनिक टॉलस्टाय एवं रोशजाक जैसे विद्वानों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलन में प्रश्न उठाया कि विज्ञान की हर वस्तु कैसी है, यह प्रश्न करता है—क्यों है । यह जानने की चेष्टा क्यों नहीं करता ? स्वयं उत्तर देते हुए टॉलस्टाय ने कहा—विज्ञान का बचपन 'क्या' से आरम्भ होता है । परिपक्वता 'क्यों' में निहित है । 'क्यों' में प्रवेश से ही सृष्टि के मूल रहस्यों का उद्घाटन सम्भव है । यही विज्ञान

एवं अध्यात्म के समन्वय का केन्द्र बिन्दु होगा । लूटो ने भी कहा है कि विज्ञान की समग्रता, परिपूर्णता अध्यात्म में प्रवेश पर निर्भर करती है ।

दृश्य जगत क्यों है ? मनुष्य जीव जन्तुओं की उत्पत्ति क्यों हुई ? सृष्टि सुव्यवस्था का कारण क्या है ? गणित के नियमों के समान ब्रह्माण्ड का प्रत्येक घटक एक निर्धारित क्रम में क्यों गतिशील है ? सृष्टि की सुव्यवस्था, अनुशासन, व्यापकता जैसे प्रश्नों का विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं है । अस्तित्ववादियों के इन प्रश्नों का समाधान वैज्ञानिकों के पास नहीं है ।

इन गूढ़ दार्शनिक प्रश्नों को छोड़ दिया जाय तो भी मनुष्य जीवन के विकास से सम्बन्धित अनेकों प्रश्न ऐसे हैं जिन पर खोज करने की आवश्यकता विज्ञान द्वारा अनुभव नहीं की गई । जिन पर मानव जाति का अस्तित्व अवलम्बित है ।

टॉल्सटाय ने जहाँ आधुनिक विज्ञान के सृजनात्मक प्रयत्नों की प्रशंसा की है, जिसके कारण मनुष्य जाति को अनेकों प्रकार के उपयोगी साधन मिले । वहीं दूसरी ओर आक्रोश भी व्यक्त किया है कि विज्ञान ने नैतिकता एवं मान्यता जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर क्यों नहीं विचार किया ? अपने शोध का विषय क्यों नहीं बनाया ?

'बैनेवार बुश' नामक विचारक ने अपनी पुस्तक 'साइन्स इज नाट ऐनफ' नामक पुस्तक में लिखा है कि 'विज्ञान वस्तुओं के विश्लेषण एवं संश्लेषण के अध्ययन तक ही सिमट कर रह गया है । वह एक सामान्य वस्तु की पूर्ण जानकारी होने तक का भी दावा नहीं कर सकता । प्रमाण सामने है । पदार्थ का छोटा घटक परमाणु तक अपने स्वरूप के लिए रहस्यात्मक बना हुआ है । बदलती हुई मान्यताओं ने उसकी वैज्ञानिक क्षमताओं को अपर्याप्त ठहराया है । 'रोशजाक' नामक विचारक ने अपना सुझाव प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "जब तक कि विज्ञान की दार्शनिक नींव मेटाफिजिक्स में नहीं होगी—चेतन विज्ञान की ओर नहीं मुड़ेगा, तब तक वह एक बनावटी तकनीक के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता ।"

'बारेन बीवर' जैसे वैज्ञानिकों ने भी कहा है कि समग्र शोध एवं सृष्टि की गुत्थियों को सुलझाने के लिए विज्ञान को भी पूर्वाग्रहों से हटना होगा । पूर्वाग्रह इन अर्थों में कि उसे शोध की विषय वस्तु जड़ वस्तुओं तक ही नहीं रखना होगा । बस, उससे ऊपर उठकर चेतना के क्षेत्र में प्रविष्ट करने से ही वह अधिक उपयोगी बन सकेगा ।

'बारेन बीवर' की मान्यता है कि दुःख, शोक, क्लेश, भय के क्षणों में अन्तःप्रेरणा के क्षणों में अन्तःप्रेरणा के रूप में कोई शक्ति आश्वस्त करती प्रतीत होती है । प्रस्तुत संकटों के निवारण के लिए शक्ति का संचार करती है । असमंजस की स्थिति में समाधान देने वाली शक्ति ही परमात्मा का अदृश्य स्वरूप है । जिसकी अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कभी न करता है ।

सदियों से विज्ञान एवं अध्यात्म परस्पर पूरक न रहकर विरोधी रहे हैं । इस प्रतिगामिता के कारण दोनों को ही एक-दूसरे की विशेषताओं से वंचित रहना पड़ा है । वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में अध्यात्म की उपयोगिता संदिग्ध है । ऐसा अध्यात्म लोकोपयोगी नहीं बन सकता । उसमें अन्धविश्वास, मूढ़ मान्यताएँ जड़ जमा लेती हैं । विज्ञान भी अध्यात्म के बिना एकांगी तथा अपूर्ण है । सद्विचारों एवं सद्भावनाओं को विकसित करने का माध्यम अध्यात्म है । एकाकी रहने का विज्ञान निरंकुश बन जाता है । मनमानी करने एवं बरतने की उसे खुली छूट मिल जाती है । इस सच्चाई को परखना हो तो आज की परिस्थितियों का अध्ययन, पर्यवेक्षण गहराई से किया जा सकता है । विकासक्रम में विज्ञान ने जितना सहयोग दिया है उससे अधिक भयावह-विस्फोटक परिस्थितियाँ भी उत्पन्न की हैं । यह एकांगी वैज्ञानिक प्रगति का दुष्परिणाम है । समय रहते विज्ञान की अपूर्णता दूर करना अनिवार्य है । यह तभी सम्भव है जब उपेक्षित अध्यात्म का अवलम्बन लिया जाय । विज्ञान साधनों की पूर्ति कर सकता है नैतिकता की नहीं । समृद्धि दे सकता है—भाव सम्वेदनाओं से अभिपूरित परिस्थितियाँ नहीं । इस आवश्यकता की पूर्ति न हो सकी तो बढ़ी हुई प्रगति भी मानव जाति के लिए अभिशाप ही सिद्ध होगी ।

युग समस्याओं से निपटने के लिए विज्ञान और अध्यात्म का सहयोग आवश्यक

मनुष्य जितना सत्य के निकट पहुँचता जाता है उतना ही उसे सन्तोष होता और समाधान मिलता है अन्यथा भ्रम जंजालों की भटकन में मनःस्थिति संदिग्ध, शंकित एवं असमंजस भरी ही रहती है । अस्तु, सदा से यह चाहा जाता रहा है कि सत्य की समीपता का आनन्द मिले और वस्तुस्थिति को समझते हुए तद्नुरूप निर्धारण किया और कदम उठाया जाता रहे । इस सन्दर्भ में विज्ञान ने मनुष्य की भारी सेवा-सहायता की है । उसने दार्शनिक एवं काल्पनिक मान्यताओं से पीछा छुड़ाकर प्रत्यक्षवाद की एवं तर्क, तथ्य, प्रमाण की कई कसौटियों पर कसने के उपरान्त यथार्थता को सर्वसाधारण के सामने रखा है । फलतः उसकी साख बढ़ी है । जो उसके द्वारा प्रतिपादित किया गया, उसे प्रामाणिक ठहराया गया । इसी कारण अपने युग को बुद्धिवादी, तर्कवादी, प्रत्यक्षवादी कहा जाता है । पुरातन काल की अगणित, अनगढ़ मान्यताओं को अवास्तविक ठहराने से लेकर वस्तुस्थिति से अवगत कराने और यथार्थता के सहारे मार्ग निर्धारण करने में विज्ञान ने मनुष्य की जो सहायता की है उसके लिए वह अनन्त काल तक कृतज्ञ रहेगा ।

पुरातन काल में शास्त्र लेख एवं आप्त वचन ही सत्य के प्रतिपादन में पर्याप्त माने जाते रहे हैं । कभी वह स्थिति सही भी थी । उन दिनों प्रतिपादनकर्ता महामनीषी ही होते थे । अपनी शोध, पवित्रता एवं प्रखरता के कारण वे वही कहते जो उनकी दृष्टि से सही होता था, किन्तु यह स्थिति देर तक नहीं रही । अप्रामाणिक एवं निहित स्वार्थों ने भी मनीषा का जामा पहना तो असमाधान कारक भ्रम जँजाल ही बढ़ता गया कसौटियों पर वे कथन जैसे-जैसे अवास्तविक सिद्ध होते चले गए, वैसे-वैसे अश्रद्धा बढ़ी और अमान्य ठहराने की प्रखरता उभरी । आज बौद्धिक जगत में ऐसी ही असमंजस एवं विद्रोह भरी स्थिति का वातावरण छाया हुआ है । अपने युग को अनास्था युग कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति ने होगी । यह अनास्था यदि दार्शनिक परिधि में रहती तो कोई हर्ज नहीं था । पर जब वह नीति, सदाचार, सद्भाव एवं कर्त्तव्य उत्तरदायित्व जैसे शाश्वत सत्यों पर

भी आक्रमण करने लगी है तो उसकी परिणति विषैली-विभीषिकाओं के रूप में सामने आ रही है । यह चिन्ताजनक है । होना यह चाहिए था कि विज्ञान अपनी प्रखरता एवं प्रामाणिकता के आधार पर मात्र भ्रान्तियों मर्यादाओं की परिपुष्टि करता जो मानवी गरिमा एवं प्रगति की आधारशिला एवं अद्यावधि प्रगति में धुरी जैसी भूमिका निभाती रही हैं । किन्तु यह विवेक सन्तुलन रहा नहीं । प्रगतिशीलता के अत्युत्साह ने ऐसा दुधारा चलाया जो मात्र भ्रान्तियों के उन्मूलन तक सीमित नहीं रहा वरन् उन पैरों पर भी चोट मारने लगा जिन पर कि प्रयोक्ता का अपना अस्तित्व ही खड़ा था ।

अपने समय की एक चिन्ताजनक बात यह है कि प्रत्यक्षवाद ने उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्शवादी आचरण की प्रेरणा देने वाली अध्यात्मवादी आस्थाओं को अवास्तविक ठहराना, उन्हें निरर्थक कहना आरम्भ कर दिया है । फलतः विज्ञान समर्थित प्रत्यक्षवाद से प्रभावित लोकमानस ने उसे सहज स्वीकार करना आरम्भ कर दिया है । इन दिनों नैतिक मूल्यों का बेतरह ह्रास हो रहा है । उससे अर्थतन्त्र में विकृति, सामाजिक अव्यवस्था, शासकीय भ्रष्टता, दरिद्रता, अशिक्षा जैसे अनेकों अभिशाप जुड़ चले हैं । पर उन क्षेत्रों में जो भी अवांछनीयता अपनाई जाती है, वह अपने पक्ष का खुला समर्थन नहीं करती, कुकृत्यों पर पर्दा डाले रहती है और कम से कम प्रदर्शन एवं कथन में तो नीतिगत मान्यताओं का ही समर्थन करती है । वैयक्तिक प्रत्यक्षवाद की स्थिति इससे भिन्न है, वह नीति, दर्शन, की आधारभूत मान्यताओं पर ही कुठाराघात करता है—ऐसी दशा में जन-मानस में यदि "ऋण कृत्वा सुरां पिबैत" का औचित्य पनपे तो इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है ।

ईश्वर, आत्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म जैसी मान्यताएँ कुल मिलाकर मनुष्य को नीति समर्थक एवं उदार बनने की प्रेरणा देती हैं । यदि उनका उच्छेदन कर दिया जाय और कहा जाय कि "मनुष्य मात्र चलता-फिरता पेड़ है, मरण के उपरान्त उसका कोई अस्तित्व शेष नहीं रहता । स्वसंचालित अणुओं का संयोग-वियोग ही मनुष्य जीवन है ।" तो फिर समझना चाहिए कि प्रकारान्तर से उन सभी मान्यताओं का खण्डन हो गया जो मनुष्य को संयमी, सदाचारी, कर्त्तव्यपरायण, उदार एवं सदाशयता के समर्थन में कष्ट तक उठाने की, उदारता बरतकर प्रसन्न होने की प्रेरणा देती है । कहना न होगा कि आदर्शों से रहित—निरंकुश मानवी बुद्धि के लिए तब उद्धत स्वार्थसाधन के लिए पूरा द्वार खुल जायेगा । ऐसी दशा में जंगल का कानून ही चलेगा । तब बड़ी मछली छोटी को निगलेगी । बड़ा पेड़ समीपवर्ती पौधों की खुराक खींचने में कोई संकोच न करेगा । "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का, "सर्वाइबल ऑफ दी फिटेस्ट" का सिद्धान्त सही और स्वाभाविक ठहराये जाने पर मानवी सभ्यता की कैसी दुर्दशा हो सकती है, मनुष्य की बुद्धि उन मान्यताओं को अपनाकर किस सीमा तक अनाचरण पर उतर सकती है—इसकी आज तो एक झाँकी भर मिल रही है । वह दिन दूर नहीं जब इस अभिनव प्रतिपादन के परिपूर्ण रूप होने पर हिम-युग एवं खण्ड प्रलय से भी अधिक भयानक स्थिति उत्पन्न होगी । आज तो लुक-छिपकर अनाचरण बरते जाते हैं किन्तु अगले दिनों नृशंस स्वेच्छाचारी शासकों की तरह सर्वत्र कत्लेआम मचाते दृष्टिगोचर होंगे । अन्तःकरण की पुकार से लेकर मानवी गरिमा तक के उन आदर्शों के लिए कहीं कोई स्थान रह नहीं जायेगा जिनके कारण "बन्दर की औलाद" कहे गए जाने वाले मनुष्य ने विश्व का मुकुटमणि बनने की स्थिति तक पहुँचने में प्रगति की है ।

यह सब पारस्परिक सहयोग और उदार अनुदान की नीति अपनाने से ही सम्भव हुआ है । सामाजिक सभ्यता और वैयक्तिक संस्कृति का प्रादुर्भाव तथा उत्थान इन्हीं उत्कृष्टता की—पक्षधर आस्थाओं के सहारे सम्भव हुआ है । यदि यह आधार नष्ट हो गया तो हमें फिर आदिम युग की ओर वापस लौटना होगा । शायद वह भी न बन पड़े क्योंकि बुद्धि-कौशल के रहते आदर्शहीन व्यक्ति मात्र पिशाच ही बन सकते हैं । पशुता के स्तर तक उतर कर सन्तोष कर लेने के लिए भी उन्हें सहमत न किया जा सकेगा । इस सम्भावना की आंशिक झाँकी आज भी हो रही है । अनास्था युग के बाल्यकाल में जब स्वार्थपरता का विस्तार निष्ठुरता से लेकर आततायी प्रवृत्तियों के रूप में बेतरह विकसित हो रहा है तो फिर जब प्रौढ़ता आयेगी तो हर व्यक्ति अपने समीपवर्तियों की गर्दनें नापता हुआ दूरवर्तियों का सफाया करेगा । फलतः सृष्टि विकास के समय उपजे अनगढ़ महागजों, महासरीसृपों, महाव्याघ्रों की तरह अभावों और आक्रमणों की आग में जल कर समाप्त होना पड़ेगा ।

सम्भावना काल्पनिक नहीं है । अपने युग में सम्पत्ति शिक्षा, सुविधा और शक्ति की पूर्वकाल की तुलना में भारी वृद्धि हुई है । फिर भी सदाशयता, दूरदर्शिता और उदारता के तत्व घट जाने से मनुष्य अपेक्षाकृत हर क्षेत्र में पिछड़ा है । स्वास्थ्य, सन्तुलन, सन्तोष, सहकार के क्षेत्रों में निरन्तर गिरावट हुई है और पारिवारिक—सामाजिक जीवन क्रमशः अधिक असन्तोषजनक होता चला गया है । हर ओर खिजाने वाली परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होने पर मनुष्य अपने को असहाय, एकाकी, चक्रव्यूह में फँसा हुआ एवं निराश, उद्विग्न अनुभव करता है । यही है वह वास्तविकता जिसका सामना हर धनी, दरिद्र, शिक्षित, अशिक्षित को समान रूप से करना पड़ रहा है । हर किसी को वर्तमान की उद्विग्नता और भविष्य की आशंका बेतरह डराने लगी है । व्यापक तनाव इसी महाव्याधि का नाम है । इससे जर्जरता एवं खिन्नता बढ़ती ही चली जा रही है । रक्तचाप, मधुमेह, अपच, अनिद्रा, अर्द्ध-विक्षिप्तता, जैसे अनेकानेक शारीरिक, मानसिक, रोगी की बाढ़ इसी अस्त-व्यस्तता की परिणति है जो बढ़ती हुई अनास्था ने मनुष्य को आदर्श विहीन बनाकर उत्पन्न की है । यह प्रवाह अभी मंथर गति से बहा है । अगले दिनों उसमें तूफानी उभार आने की पूरी-पूरी सम्भावना है । तब क्या स्थिति होगी इसकी सम्भावना दार्शनिक बर्टेंड रसेल के शब्दों में 'सामूहिक आत्महत्या' के रूप में निरूपित की जा सकती है ।

विज्ञान को अपने युग का वरदान कहने में इसलिए किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती है कि उसने भ्रान्तियों से निकलकर सत्य की समीपता तक पहुँचाने में दार्शनिक क्षेत्र की असाधारण सेवा की है । इतना ही नहीं उसने प्रकृति के अन्तराल को मथकर अनेकानेक सुविधा साधन प्रदान करने में भी भूरि-भूरि प्रशंसा के योग्य योगदान किया है । इसके लिए समूची मानवता उसकी ऋणी भी है । इतने पर भी अमृत के साथ मिले हुए विष को

कैसे निगला जाय जिसने आदर्शवादी मूल्यों को अमान्य ठहराने वाले प्रत्यक्षवादी तर्क प्रस्तुत किए और प्रगति की समूची आधारशिला को ही झकझोर कर रख दिया।

कोसने से काम चलने वाला नहीं। दोषारोपण मात्र से कभी किसी गुत्थी का हल नहीं निकला। प्रत्यक्षवाद के वृक्ष का आश्रय लेकर पनपी और चोटी तक चढ़ गई विष बेल को अलग करने में ही लाभ है। यह कठिन कार्य अध्यात्मवाद की उन मान्यताओं को उभारने से ही सम्भव हो सकता है जो न केवल प्रगतिशीलता की जन्मदात्री आदर्शवादिता का समर्थन करती है वरन् उन्हें हर कसौटी पर प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए भी तत्पर है। इस चुनौती को स्वीकार करना विज्ञान का काम है। उसे लोक मान्यता मिली है इसीलिए वही इन दिनों स्वभावतः वरिष्ठ भी है।

ऐसी दशा में उसका कर्त्तव्य है कि प्रति पक्ष की चुनौती स्वीकार करे और यह देखे कि आदर्शवादी आस्थाएँ प्रत्यक्षवाद की कसौटियों पर कहाँ तक खरी सिद्ध होती हैं। साथ ही अध्यात्म को भी समझना होगा कि अब उसकी सुरक्षा, शास्त्र कथन एवं आप्त वचन की गुदड़ी ओढ़कर होती रहने वाली नहीं है। उसे युग मान्यता प्राप्त प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर अपनी प्रामाणिकता खरी सिद्ध करने के लिए तत्पर होना होगा। "साँच को आँच नहीं" का सिद्धान्त यदि सही है तो फिर कोई कारण नहीं कि उन उत्कृष्टतावादी आस्थाओं को तर्क, तथ्य, प्रमाण एवं उदाहरणों का ऐसा समर्थन न मिल सके जो प्रत्यक्षवाद का भी आधारभूत अवलम्बन है।

निःसन्देह मध्यकाल में धर्म, व्यवहार एवं अध्यात्म दर्शन के क्षेत्र में भ्रान्तियों एवं विकृतियों का कूड़ा-करकट इतना अधिक बढ़ गया था कि तथ्य की तुलना में छद्म का भार कहीं अधिक विशालकाय दीखने लगा। अध्यात्म और विज्ञान की जाँच-पड़ताल का एक नया लाभ यह होगा कि तत्व दर्शन पर चढ़ी हुई मलिनताएँ दूर होंगी और उसे खरे सोने की तरह हर दुकान पर स्वागत भरा सम्मान मिलेगा। फिर कोई उसे न तो उपेक्षित कर सकेगा और न तिरस्कृत। वरन् मनीषा का हर घटक उसे उसी तरह स्वीकार-शिरोधार्य करेगा जिस तरह कि विज्ञान के सिद्धान्त एवं प्रयोगों को प्रसन्नतापूर्वक अपनाया जाता है।

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय सन्निकट

पदार्थ का सूक्ष्मतम घटक जब परमाणु माना जाता था, वह बात बहुत पुरानी हो गई। परमाणु भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि अनेक घटकों में विभाजित हो गया और उसका स्थान एक संघ संचालक भर का रह गया है।

विज्ञान क्रमशः आगे ही आगे बढ़ते-बढ़ते पदार्थ की मूल इकाई को तलाश करने की दिशा में पिछली शताब्दियों और दशाब्दियों की तुलना में बहुत प्रगति कर चुका है और अब बात चेतना के घटक समुदाय तक का स्पर्श करने लगी है। इन दिनों चेतना के मूल घटक के रूप में एक नये घटक को मान्यता मिली है। उसका नामकरण हुआ है—साइकोट्रॉन। इस नई खोज का स्वरूप जिस तरह सामने आया है उससे जड़-चेतन का मध्यवर्ती विवाद निकट भविष्य में नये करवट बदलता दिखाई पड़ता है। इसलिए उस परिशोध को असाधारण महत्त्व दिया गया है। उसकी खोज पर विज्ञान जगत का ध्यान नये सिरे से केन्द्रीभूत हुआ है और उसकी शोध को एक अतिरिक्त प्रकरण की तरह मान्यता मिल रही है। इसकी शोधचर्या को साइकोट्रॉनिक विज्ञान नामक एक अतिरिक्त धारा ही मान लिया गया है। जुलाई ७५ की अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान परिषद के अधिवेशन में यह प्रसंग उभरा था तब से लेकर अब तक इन तीन वर्षों की अवधि में बहुत काम हो चुका है और पदार्थ को नई परिभाषा करने की तैयारियाँ जोरों से चल रही हैं।

इस अभिनव शोध धारा ने पदार्थ सत्ता और मनुष्य की अन्तःचेतना को पारस्परिक तारतम्य बिठाने वाला आधार ढूँढ़ निकाला है। चेतना ऊर्जा और पदार्थ ऊर्जा में दिखाई देने वाली भिन्नता इस आधार पर अधिकतम निकट तो दीख ही रही है उसके अविच्छिन्न सिद्ध होने की भी सम्भावना है।

फोटोग्राफी में प्रायः उन्हीं पदार्थों के चित्र उतरते थे जो आँखों की सहायता से देखे जा सकते हैं। सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी यन्त्रों की सहायता से जो देखा जा सका वह भी नेत्रों की परिधि में ही आया समझा जाना चाहिए। कैमरों का लेन्स प्रकारान्तर से नेत्र की ही अनुकृति है। साइकोट्रॉनिक विज्ञान के अन्तर्गत क्लिर्लियन फोटोग्राफी के आधार पर अब भाव सम्वेदनाओं के उतार-चढ़ावों को भी फोटो प्लेटों पर कैद कर सकना सम्भव हो गया है। इस सफलता से यह निष्कर्ष निकलता है कि ताप, तरंगों—ध्वनि, कम्पनों और रेडियो विकरण की तरह इस अनन्त ब्रह्माण्ड में भाव सम्वेदनाएँ भी प्रवाहमान रहती हैं और अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच कर विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करती हैं। यदि लेसर आदि किरणें किसी अभीष्ट स्थान तक पहुँचा कर इच्छित प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है तो अब यह मानने के पक्ष में भी आधार बन गया है कि विचारणाएँ एवं भावनाएँ भी अमुक व्यक्ति को वही, अमुक पदार्थ को भी प्रभावित कर सकती हैं। बन्दूक की गोली अन्तरिक्ष में तैरती हुई निशान तक पहुँचती और प्रहार करती है। रेडियो टेलीफोन भी व्यक्तिगत वार्तालाप की भूमिका बनाते हैं। भाव-सम्वेदना को पदार्थ सत्ता के साथ तालमेल बिठा सकने वाला साइकोट्रॉनिक्स भी इस सम्भावना को प्रशस्त करता है कि भाव-सम्वेदनाएँ भी अब भौतिक पदार्थों को प्रभावित करने में समर्थ रह सकेंगी।

परम्परागत मान्यता में इतना तो जाना और माना जाता रहा है कि पदार्थ से चेतना प्रभावित होती है। सौन्दर्य और कुरूपता से दृष्टि मार्ग द्वारा मस्तिष्क में उपयुक्त एवं अनुपयुक्त भाव-सम्वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। अन्य इन्द्रियाँ भी जो रसास्वादन करती हैं उनसे भी चेतना को प्रसन्नता, अप्रसन्नता होती है। त्वचा द्वारा ऋतु प्रभाव की प्रतिक्रियाएँ अनुभव की जाती हैं और उनसे प्रिय-अप्रिय का भान होता है। चोट लगने आदि का तथा प्यास बुझाने जैसी पदार्थजन्य हलचलों का मनः संस्थान पर प्रभाव पड़ता है। अब नये तथ्य सामने इस प्रकार आ रहे हैं मानो चेतना में भी यह शक्ति विद्यमान है जिससे पदार्थों एवं प्राणियों के शरीरों को भी प्रभावित किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रमाण मिलते तो पहले से भी रहे हैं, किन्तु उनके कारण न समझे जाने से किसी मान्यता पर पहुँच सकना सम्भव न हो सका।

अतीन्द्रिय क्षमता मनुष्य में विद्यमान है और वह कई बार ऐसी जानकारियाँ देती है जो उपलब्ध इन्द्रिय शक्ति को देखते हुए असम्भव लगती है । ऐसी घटनाओं को या तो छल, भ्रम आदि कहकर झुठला दिया जाता है या फिर दैवी चमत्कार का नाम देकर किसी अविज्ञात एवं अनिश्चित के गर्त में धकेल कर पीछा छुड़ा लिया जाता है । पैरासाइकालॉजी—मैटाफिजिक्स के आधार पर जो शोधें हुई हैं । उनसे उतना ही जाना जा सकता है कि चमत्कारी अनुभव और घटनाक्रम होते हैं, वे प्रपंच नहीं तथ्य हैं । इतने पर भी यह नहीं जाना जा सका कि भौतिकी के किन नियमों के आधार पर ऐसा हो सकने की बात सिद्ध की जा सकती है । अतीन्द्रिय क्षमता को मान्यता तो मिले, पर उसके कारणों का पता न चल सके तो वस्तुतः यह एक बड़े असमंजस की बात है । अब तक स्थिति ऐसी ही रही है ।

चमत्कारी सिद्धियों और शक्तियों से यही प्रमाणित होता है कि पदार्थ ही चेतना को प्रभावित नहीं करता वरन् चेतना भी पदार्थ को प्रभावित कर सकने में समर्थ है । मेस्मेरिज्म हिप्नोटिज्म के आविष्कारों ने इस दिशा में एक और प्रमाण, मूल तथ्य सामने रखा था, फिर भी बात अधूरी ही रही । प्राण ऊर्जा को मान्यता देने के लिए तथ्य तो विवश करते थे, पर साहसिक प्रतिपादन कैसे सम्भव हो ? विज्ञान की किस शाखा के आधार पर इसका सुनिश्चित समर्थन किया जाय ? अटकलें तो लगती रही हैं और कुछ संगति बिठाने के लिए तर्क और प्रमाण भी प्रस्तुत किए जाते रहे हैं, पर वह सब रहा संदिग्ध ही । जब तक कुछ प्रामाणिक तथ्य सामने न आयें तो उसे निश्चित कहने का साहस किस आधार पर किया जाय ?

साइकोट्रॉनिक्स ने इस असमंजस को किसी निष्कर्ष तक पहुँचाने की आधारशिला रख दी है और उस सिद्धान्त को उजागर किया है जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि चेतना और पदार्थ के बीच तालमेल बिठाने वाले कोई सुनिश्चित सूत्र विद्यमान हैं । वे दोनों परस्पर गुँथे हुए ही नहीं वरन् एक ही सत्ता के दो रूप हैं जिन्हें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष की संज्ञा दी जा सकती है । इस विज्ञान के अन्तर्गत चेतना की एक अति प्रभावशाली क्षमता—साइकोकायनेसिस—दूरस्थ व्यक्ति के प्रति आदेश प्रेषण क्षमता को तथ्य रूप में स्वीकार कर लिया गया है ।

साइकोट्रॉनिक विज्ञान के मूर्धन्य शोधकर्त्ता डॉ. राबर्ट स्टोन का प्रतिवेदन है कि जड़ और चेतन के विवाद को सुलझाने के लिए अब तक जो प्रयत्न चलते रहे हैं उसे देर तक अनिश्चित स्थिति में न पड़ा रहने देने की चुनौती स्वीकार कर ली गई है और अपनी पीढ़ी के ही शोधकर्त्ता किसी निश्चित स्थिति तक पहुँच जाने योग्य आधार प्राप्त कर चुके हैं । विज्ञान की पिछली पीढ़ी के कुलपति आइन्स्टाइन के नेतृत्व में स्पेस—टाइम-यूनीवर्स के सिद्धान्त ने काफी प्रगति की थी उससे ब्रह्माण्ड की मूल स्थिति को समझ सकने की लिए आशाजनक पृष्ठभूमि बनी थी । अब साइकोट्रॉनिक्स ने और बड़ा प्रकाश प्राप्त किया है । गुत्थी को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह सुलझाने में उससे भारी सहायता मिलेगी ।

गत वर्ष टोकियो के अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान कान्फ्रेन्स के अधिवेशन में भी यह प्रसंग प्रधान रूप से चर्चा का विषय रहा । स्टेन फोर्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने तो अपने कन्धे पर उस धारा के सम्बन्ध में अधिक विस्तारपूर्वक उच्चस्तरीय शोध करने के लिए मूल्यवान साधन भी जुटा लिए हैं ।

चन्द्रमा के धरातल पर उतरने वाले ११वें वैज्ञानिक एवं नोयटिक साइन्स इन्स्टीट्यूट के संस्थापक एडगर निचेल ने अपनी चन्द्र यात्रा से लौटने के उपरान्त यह मानना और कहना जोरों से शुरू कर दिया है कि—ब्रह्माण्ड की संरचना जिन पदार्थों से हुई है वे किसी चेतना प्रवाह के उद्गम से आविर्भूत हुए हैं, भौतिक नहीं है । पदार्थ को जिन प्रतिबन्धों में बँध कर परिपूर्ण अनुशासन में रहना पड़ रहा है वह संयोग मात्र नहीं वरन् किसी महती विश्व व्यवस्था का अंग है ।

इस दिशा में मनोवैज्ञानिक डॉ. कार्ल सिमण्टन ने एक साधन सम्पन्न अस्पताल की स्थापना की है जिसमें चिकित्सा का जो नया आधार खड़ा किया है उसमें साइकोट्रानिक्स के सिद्धान्तों को ही क्रियान्वित किया गया है । वह प्रचलित मानसिक चिकित्सा से भिन्न है । इन दिनों मानसोपसार में सजेशनों को ही आधारभूत माना जाता है । स्व-संकेत पर संकेत की जो प्रक्रिया पिछले दिनों हिप्नोटिज्म प्रतिपादनों के सहारे चलती रही है, इस नये प्रयोग में उससे बहुत आगे की बात है । इसमें विचार सम्प्रेषण को—एक शक्ति एवं औषधि के रूप में रोगी के शरीर और मस्तिष्क में प्रवेश कराया जाता है । परिणामों को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा रहा है कि विचार सम्प्रेषण पद्धति प्रचलित अन्य चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में किसी दृष्टि से पीछे नहीं है । उसके उत्साहवर्धक परिणामों का अनुपात अन्य उपचारों की सफलता के समतुल्य नहीं वरन् अग्रगामी है ।

इस क्षेत्र में अधिक तत्परतापूर्वक शोध प्रयत्नों में लगे हुए डॉ. स्टोन ने मस्तिष्क विधा के परीक्षण निष्कर्षों का प्रतिफल यह बताया है कि मानवी मस्तिष्क का बायाँ भाग तो उसकी निजी आवश्यकताएँ जुटाने में लगा रहता है और दाहिना भाग इस सुविस्तृत ब्रह्माण्ड के साथ अपना तालमेल बिठाता और आदान-प्रदान बनाता रहता है । वह सम्पर्क एवं वातावरण से प्रभावित होता भी है और उसे प्रभावित करता भी है । सामान्यतया यह प्रक्रिया उतनी ही छोटी परिधि में चलती है जिससे व्यक्ति को छोटा व्यक्तित्व अपनी सीमित इच्छाओं के अनुरूप सुविधा पाने में किसी कदर समर्थ होता रह सके, किन्तु इस परिधि का विकास होना सम्भव है । इस बात की पूरी सम्भावना है कि व्यक्ति की चेतना यदि अपने को अधिक समुन्नत स्थिति तक विकसित कर सके तो वातावरण से प्रभावित होने और प्रभावित करने से जो लाभ उठाया जा सकता है उसे उठा सके । स्टोन के कथनानुसार कला, संस्कृति, दर्शन तथा सम्वेदनाओं का बहुत कुछ आधार मस्तिष्क के इस दाहिने भाग पर ही बहुत कुछ निर्भर रहता है ।

अतीन्द्रिय क्षमता का परिचय देने वालों में मस्तिष्क का यह दाहिना भाग—सेरीब्रम-अधिक सक्षम, परिपुष्ट पाया गया है । रहस्यों को जानने और अद्भुत कर सकने की चमत्कारी विशेषताएँ विकसित करने का श्रेय इसी भाग को है । इस क्षेत्र में क्षमताएँ भौतिक क्षेत्र से विकसित होने पर व्यापक पदार्थ सम्पदा के साथ अपनी घनिष्ठता स्थापित कर सकती हैं और ज्ञान एवं कर्म का क्षेत्र सीमित न होकर असीम बन सकता है । ऐसे ही आन्तरिक क्षमता सम्पन्नों को देव मानवों की संज्ञा एवं श्रद्धा प्रदान की जाती रही है ।

न्यूरो साइंटिस्ट डॉ. कार्लप्रिब्रम और फिजिसिस्ट प्रो. डेविड ब्रोहम के व्यक्ति और ब्रह्माण्ड के गहन रहस्यों की झाँकी की है। उसे वे एक अद्भुत सत्य का अनिर्वचनीय आभास बताते हैं। दोनों के कथन मिलते-जुलते हैं वे मानवी मस्तिष्क इस निखिल ब्रह्माण्ड का लघु अणु रूप हैं। इसके प्रसुप्त संस्थानों को मेडीटेशन—ध्यान-जैसे उपचारों से जाग्रत बनाया जा सकता है। अपने ही संकल्प बल से इस क्षेत्र में 'साइकोट्रॉनिक लेसर-बीम' तैयार की जा सकती है। उसका मेट्रिक्स के अभेद्य समझे जाने वाले क्षेत्र में प्रवेश हो सकता है और ऐसा कुछ प्राप्त करने का अवसर मिल सकता है जो मनुष्य की वर्तमान क्षमता को असंख्य गुनी अधिक समुन्नत बना दे।

औसत व्यक्ति की भौतिक सम्पन्नता की तरह आन्तरिक क्षमता भी सीमित है, किन्तु यह सीमा बन्धन अकाट्य नहीं है। व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक अपने को क्रमशः ससीम से असीम बनने की दिशा में निरन्तर प्रयत्न करता रह सकता है। यह विशालता विश्व सत्ता और आत्मसत्ता के अन्तर को समाप्त करती है और सबको अपने में अपने को सब में देखने का अवसर मात्र भाव-सम्वेदना की दृष्टि से ही नहीं—तथ्यों के आधार पर भी उपलब्ध हो सकता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन—नर की नारायण रूप में परिणति—जैसे अध्यात्म लक्ष्यों के साथ विकासोन्मुख आत्म सत्ता की संगति पूरी तरह बैठ जाती है।

जीवनी शक्ति, चेतन सत्ता एवं पदार्थ ऊर्जा के क्षेत्र पिछले दिनों एक सीमा तक ही पारस्परिक घनिष्ठता स्थापित कर सके हैं, पर अब यह सम्भावना प्रशस्त हो रही है कि तीनों को परस्पर पूरक और सुसम्बन्ध मान कर चला जाय और एक की उपलब्धि से अन्य दो धाराओं को अधिक सक्षम बनाकर अभाव ग्रस्तताओं से उबरा जाय। अगले कदम इस स्थिति का भी रहस्योद्घाटन कर सकते हैं कि चेतना सागर के अतिरिक्त इस विश्व ब्रह्माण्ड में और कुछ है ही नहीं। प्राणियों के स्वतन्त्र अस्तित्वों का दृश्यमान स्वरूप उसी स्तर का है जैसा कि समुद्र की सतह पर उतरने वाली लहरों का होता है। उनकी दृश्यमान पृथकता अवास्तविक और मध्यवर्ती एकता वास्तविक होती है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर वेदान्त और विज्ञान दोनों एक हो जाते हैं। तत्वदर्शन और पदार्थ विज्ञान को एकीभूत करने के लिए नई शोध धारा साइकोट्रॉनिक्स के रूप में सामने आयी है। उसका अभिनव प्रतिपादन, विश्लेषण प्रयोग और निष्कर्ष-सापेक्षवाद की तरह ही जटिल है। उन्हें ठीक तरह समझ सकना इन दिनों कठिन प्रतीत हो सकता है, पर इन सम्भावनाओं का द्वार निश्चित रूप से खुला है कि चेतना को विश्व की मूलभूत शक्ति मानने का सिद्धान्त सर्वमान्य बन सके। ऐसा हो सका तो भौतिकी को जो श्रेय इन दिनों प्राप्त है उससे कम नहीं वरन् अधिक ही आत्मिकी को प्राप्त होगा।

विज्ञान भावनाशील बने और धर्म तथ्यानुयायी

मोटेतौर से प्रतीत होता है कि विज्ञान और अध्यात्म के आधारभूत सिद्धान्तों में मौलिक अन्तर है इसलिए उनका समन्वय कदाचित कभी भी सम्भव न हो सकेगा। अन्तर को देखकर प्रस्तुत निष्कर्ष पर पहुँचाने वाले मनीषियों का कहना यह है कि विज्ञान आग्रही है नहीं वह तथ्यों को खुले मस्तिष्क से तलाश करता है। पूर्वाग्रहों से मुक्त रहता है और जब जो प्रामाणिक आधार मिलते हैं उनके सहारे सिद्धान्तों का निर्धारण करता है। इसके विपरीत अध्यात्म से पूर्वाग्रहों की ही भरमार है। तर्क के लिए गुंजाइश नहीं है। शास्त्र अथवा आप्त पुरुष ही सब कुछ हैं। उन्हीं की खींची रेखाओं की परिधि में घूमने के लिए धार्मिक अथवा अध्यात्मवादी को सीमित रहना पड़ता है। तर्कों के झरोखे में झाँकने वालों की धार्मिकता को पतिव्रत को तोड़ने वाला घोषित कर दिया जाता है। ऐसी दशा में तथ्यों का निर्धारण करने को जब तक दोनों की स्थिति एक न हो तब तक समन्वय कैसे सम्भव होगा ? या तो विज्ञान अपने तथ्यों को प्रामाणिकता देने वाली प्रवृति छोड़े अथवा धर्म को परम्परा आग्रह अपनाये रहने से विरल किया जाय तभी वह स्थिति बनेगी जिसके आधार पर दोनों को साथ चलने अथवा सहयोग करके सत्य की शोध में समन्वित मार्ग अपनाने की बात बन सके।

कथन को सच मानने को मन तभी करता है जब कि दोनों की मूल प्रकृति को समझने में भ्रम बना रहे। यह अड़चन उथले चिन्तन से सही मालूम पड़ती है और उस समय भी ठीक लगती है जब धर्म पक्ष के विकृत रूप को ही उसका आधारभूत सिद्धान्त मान लिया जाय। गहराई में उतरने पर धर्म और विज्ञान दोनों ही ऐसे तथ्यों पर आधारित दीखते हैं; जिन पर अविश्वास करने या मिल-जुल कर साथ-साथ न चल सकने की आशंका करने का कोई कारण नहीं हो।

विकृतियाँ तो न्याय और कानून के क्षेत्र में भी बनी रहती हैं। इससे उनकी उपयोगिता या आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। उत्पादन और व्यवसाय में भी आये दिन बदमाशियाँ चलती हैं इसी कारण उन कार्यों को बन्द तो नहीं कर दिया जाता। धार्मिक क्षेत्र में निहित स्वार्थों को घुस पड़ने और अवांछनीय प्रथा परम्परा चला देने का अवसर मिल जाता है जबकि उस क्षेत्र के अनुयायी तर्क और तथ्यों को जानने की आवश्यकता नहीं समझते। यदि वे धर्माध्यक्षों के उद्देश्य और प्रतिपादनों के फलितार्थ पर विवेकपूर्ण विचार करना सीखें तो फिर धर्म क्षेत्र की उपयोगिता भी विज्ञान क्षेत्र की तरह ही अक्षुण्ण बनी रह सकती है। धर्म को मूल प्रवृत्ति अन्धविश्वासी या दुराग्रही नहीं है। जिस श्रद्धा तत्व के आधार पर अन्धेरगर्दी फैलती रहती है उसका भी आधार श्रेष्ठता के साथ जुड़ा हुआ है। श्रेष्ठता के प्यार को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा की अवधारणा जहाँ भी करनी हो वहाँ सर्वप्रथम श्रेष्ठता है या नहीं इसको कसौटी पर कसना होता है। यह परख जाग्रत रखी जा सके तो श्रद्धा के शोषण की सम्भावना न रहेगी और धर्म की अवैधानिक तर्क विरोधी अथवा अप्रामाणिक कहे जाने का अवसर न आने पायेगा।

धर्म भी एक विज्ञान है। चेतना को अनुशासित रखना और उसे प्रयोजनों में नियोजित करना उसका उद्देश्य है। चेतना की सामर्थ्य प्रकृति क्षेत्र में भरी पदार्थ सम्पदा एवं शक्ति धाराओं से किसी भी प्रकार कम नहीं है। प्रकृति सम्पदाओं को खोज निकालने और उनका सदुपयोग कर सकने की क्षमता पदार्थ में नहीं है। वह तो चेतना ही कर सकता है। विचारणाएँ, भावनाएँ और प्रवृत्तियाँ चेतना की ही चमत्कारी धाराएँ हैं। पदार्थों की जड़ता को चेतना जैसी सुखद स्थिति में उभार लाने का श्रेय चेतना को

ही है । सर्व विदित है—विचार संस्थान की उत्कृष्टता से ही व्यक्ति का अन्तरंग आनन्दित और बहिरंग समुन्नत बन पाता है । उसमें त्रुटि रहेगी तो विकृत चिन्तन के फलस्वरूप मनुष्य उद्विग्न और दरिद्र ही बना रहेगा । पिछड़ेपन और शोक संकट से उसे छुटकारा मिल ही न सकेगा । भले ही परिस्थितियाँ उसके अनुकूल हों अथवा साधनों का बाहुल्य सामने प्रस्तुत हो । व्यक्ति को सुविकसित और समाज को सुव्यवस्थित बनाये रहना इस बात पर निर्भर है कि लोक चेतना का धारा प्रवाह किस दिशा में चल रहा है । इन तथ्यों पर ध्यान देने से धर्म चेतना को वैज्ञानिक उपलब्धियों की तरह ही श्रेयष्कर माना जायेगा । इतनी बड़ी उपयोगिता यदि अवैज्ञानिक, अप्रमाणित मानी जाने की स्थिति में बनी रहे तो उसे मनुष्य जाति का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा । धर्म को प्रखर बनाये रहने के लिए उसके साथ यथार्थवादी विज्ञान दृष्टि का जुड़े रहना आवश्यक है । यह कार्य दोनों के समन्वय से ही हो सकता है ।

ठीक इसी प्रकार विज्ञान को उस भाव सम्वेदना को अपनाकर चलना होगा जो विचार संस्थान की नहीं भाव संस्थान की उत्पत्ति कही जा सकती है । विज्ञान को मात्र बुद्धिवादी बने रहने से भी उसकी उपलब्धियाँ तो मिलती रह सकती हैं; पर उपयोगिता नष्ट हो जायेगी और वे सूत्र सूख जायेंगे जहाँ से अन्वेषणों के मूलभूत स्फुरण का उद्भव होता है ।

आविष्कारों के बारे में समझा यह जाता है कि वे प्रयोगशालाओं की देन हैं अथवा वे बुद्धिमत्ता के कारण उपलब्ध हुए हैं; पर बात इतनी उथली नहीं है । प्रत्येक आविष्कारों की सम्भावना का आरम्भिक विचार अन्तः स्फुरण से उठा है । बुद्धि का काम पूर्व प्रचलनों का ऊहापोह करना है । पूर्ववर्ती अस्तित्व के बिना उसकी दौड़ आगे बढ़ती ही नहीं । मस्तिष्कीय संरचना में ऐसे विचारों के उद्भव की गुंजाइश नहीं है जिन्हें मौलिक कहा जा सकता है । विज्ञान का विस्तार, बुद्धि और साधन सामग्री के सहारे होने की बात सच है; पर यह सच नहीं है कि आविष्कारों से भी पूर्व अन्तःकरण में उठने वाली अन्तःस्फुरणाएँ भी मस्तिष्क ही उगा सकता है । यदि ऐसा होता तो पूर्ववर्ती बुद्धिमानों ने उन सब आविष्कारों को बहुत पहले ही कर लिया होता है जो अब क्रमशः प्रत्यक्ष होते चले जा रहे हैं । न्यूटन से पहले भी चिरकाल से पेड़ों पर से फल जमीन पर गिरते हुए मूर्खों से लेकर विद्वानों तक सभी देखते रहें है, पर उतने भर संकेत से पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का आभास पाना, विश्वास करना और अन्ततः उसे खोज निकालना न्यूटन की बुद्धि का नहीं अन्तःस्फुरणा का आधार है ।

इसी प्रकार अन्यान्य सभी आविष्कार अपने प्रारम्भिक रूप में जब चिन्तन क्षेत्र में उतरे तब उनका अवतरण स्थल उस परत से कहीं गहरा था जिसे मस्तिष्क सम्पदा कहते हैं । यह अन्तःकरण ही है जो न केवल वैज्ञानिक उपलब्धियों का आधारभूत कारण है, वरन् मानवी व्यक्तित्व की उत्कृष्टता और सामाजिक संगठना का उद्गम स्रोत भी यही है । यदि अन्तःकरण तत्व को मनुष्य से छीन लिया जाय तो उससे न वैज्ञानिक शोधों की आरम्भिक अनुभूति पाने की क्षमता रहेगी और न पशु आचरणों से ऊँचे उन आधारों के अपनाने की आशा की जा सकेगी, जिसे मानवी संस्कृति कहा जाता है । सर्वतोन्मुखी प्रगति का श्रेय जितना शारीरिक और मानसिक श्रमशीलता को दिया जाता है उससे भी अधिक संस्कृति को मिलना चाहिए ।

संस्कृति भी वैज्ञानिक उपलब्धि है । अन्तःस्फुरणा उत्पन्न करने वाला अन्तराल प्रकृति प्रदत्त अनुदान नहीं है । वरन् विज्ञान की तरह ही मानवी पुरुषार्थ का प्रतिफल है । धर्म तत्व को विज्ञान की आत्मा में गुथा देखा जा सकता है । ऐसा न होता तो वैज्ञानिकों में भी स्वार्थपरता और विलासिता जैसे दुर्गुण छाये रहते और वे शोध प्रयत्नों में योगियों जैसी तत्परता और तन्मयता का समावेश न कर सके होते । विज्ञानी में योगी और तपस्वी के दोनों लक्षण पाये जाते हैं । वह सत्य का शोधक भी होता है और व्यक्तिगत, ललक लिप्साओं से ऊँचा उठकर शोध प्रयत्नों में दत्तचित्त रहने वाला तपस्वी भी होता है । इन प्रयासों में उसे जो संकट सहने और खतरे उठाने पड़ते हैं । वे चेतना की उत्कृष्टता के बिना सम्भव नहीं हो सकते । विज्ञानी भले ही ईश्वरवादी नहीं धार्मिक तो निश्चित रूप से होता है । भले ही वह किसी मत सम्प्रदाय का अनुसरण न करता हो ।

धर्म के बिना विज्ञान अपंग है और विज्ञान के बिना धर्म अन्धा । दोनों परस्पर सहयोग न करेंगे तो वे अपूर्ण ही बने रहेंगे और उतने उपयोगी सिद्ध न हो सकेंगे जितना कि मिल-जुलकर काम करने पर हो सकते हैं । दोनों के बीच जो दिशा विरोध दीखता है वह सतही है । गहराई तक उतरने पर भिन्नता घटती और समता बढ़ती जाती है । गंगा और यमुना का मध्यान्तर लम्बा है पर गंगोत्री और जमुनोत्री की दूरी कम है यदि हिमालय की भीतरी जल सम्पदा तक पहुँचा जा सके तो प्रतीत होगा कि दोनों के उद्गम भिन्न स्थानों पर होते हुए भी उनकी धाराएँ एक ही विशाल जलाशय में अनुदान प्राप्त करती हैं । धर्म और विज्ञान की प्रवाहमान धाराएँ अलग-अलग हैं—उनके कार्य क्षेत्र भिन्न हैं इतने पर भी दोनों के मध्य मौलिक समानता विद्यमान है और दोनों को पूर्ण बनने के लिए पारस्परिक सहयोग की नितान्त आवश्यकता है ।

अध्यात्म क्षेत्र में जिन रहस्यमयी उपलब्धियों की चर्चा होती रहती है; उन सिद्धियों और चमत्कारों का आधार विज्ञान की किसी ऐसी धारा के साथ कल नहीं तो परसों जुड़ा हुआ पाया जायेगा जो प्रकृति के अन्तराल में विद्यमान तो है पर अभी प्रकाश में नहीं आयी है । यहाँ अद्भुत का कोई अस्तित्व नहीं । सब कुछ सुव्यवस्थित है । जिस व्यवस्था के कारणों को हम जान नहीं पाते वही अद्भुत लगता है । आरम्भ में अग्नि का प्रकटीकरण भी दैवी चमत्कार था । पीछे उसके रहस्य विदित हो जाने पर प्रकृति का एक सामान्य उपक्रम उसे मान लिया गया । ठीक इसी प्रकार वैयक्तिक चेतना की गहरी पर्तों से जब कभी कोई स्रोत फूट पड़ते हैं तो वे दैवी प्रतीत होते हैं । अनुसन्धान को अपनाये रहा जाय तो उस सूत्र के सहारे वहाँ पहुँचने में सफलता मिलती है जहाँ चेतना की किन्हीं गहरी पर्तों से वैयक्तिक चमत्कारी का उत्पादन होता है । इसी प्रकार इस विशाल ब्रह्माण्ड में संव्यक्त चेतना के समुद्र या स्वरूप और उपयोग समझा जा सके तो वह आधार मिल सकता है जिसे दिव्य लोकों में बरसने वाले वरदानों की संज्ञा दी जाती है । वैयक्तिक विभूतियों और दैवी अनुकम्पा की चमत्कारी सिद्धियों की चर्चा होती रहती है और उन्हें अभौतिक कहा जाता रहता है; किन्तु तथ्य यह है कि जो इन्द्रियगम्य या

बुद्धिगम्य हैं वह सभी मौलिक हैं । अध्यात्म के नाम से चलने वाली साधनाओं को अथवा उपलब्धियों को भौतिक क्षेत्र से बाहर समझना भूल है । पदार्थों की सहायता से जो किया जाता है अथवा जिनकी अनुभूति मन समेत ग्यारह इन्द्रियों द्वारा होती है उन्हें अभौतिक कहने का साहस बालबुद्धि तो कर सकती है; पर तत्वदर्शन के गले उसे नहीं उतारा जा सकता । इसी प्रकार विज्ञान का उद्‌भव, अनुसन्धान, अभिवर्धन और उपयोग में आदर्शों को तिलांजलि नहीं दी जा सकती है । इस प्रकार धर्म और विज्ञान एक ही उदर से जन्मे दो सहोदर भाइयों की तरह समझे जा सकते हैं और उनमें परस्पर सहयोग से मिलकर काम करने की पूरी गुंजाइश है । देव और दानवों के सहयोग से समुद्रमन्थन किए जाने और उसके फलस्वरूप चौदह रत्न मिलने की पौराणिक गाथा को अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए पाया जा सकता है ।

विज्ञान अब विगत शताब्दी की तरह अप्रत्यक्ष की सत्ता से इन्कार करने में दुराग्रही नहीं रहा है । मैटा फिजिक्स और पैरासाइकोलॉजी की अगणित शाखा-प्रशाखाएँ इस अनुसन्धान में संलग्न है कि अतीन्द्रिय अनुभूतियों के मूल में किन तथ्यों का समावेश है । गणितज्ञ सी. ए. डार्विन ने अपने ग्रन्थ 'दि न्यू कंसेयशंस ऑफ मैटर' में कहा है—अपने जमाने में वैज्ञानिक क्षेत्र की यह एक बड़ी क्रान्ति है कि जो अप्रत्यक्ष है उसकी सत्ता को भी अनुसन्धान के क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया गया है ।

विज्ञानी हर्वर्ट डिंगल ने स्वीकारा है कि वे दिन बीत गए जब विज्ञान का क्षेत्र मात्र तथ्यों तक सीमित था । अब उसका कार्य क्षेत्र कहीं आगे बढ़ गया है और रहस्यों को भी अनुसन्धान के उपयुक्त आधारों का मान लिया गया है । अन्तरिक्ष विज्ञानी एडीगृन के कथनानुसार विज्ञान के रहस्यों को भी तथ्यों में सम्मिलित कर लिया है इसका अर्थ है उन्होंने अपने में अध्यात्म के सुरक्षित सीमा क्षेत्र तक पहुँचने और उसमें प्रवेश करने की हिम्मत जुटा ली है ।

इन दिनों विज्ञान के विधिवत् रहस्यवाद को अपने कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया है पर पूर्ववर्ती विज्ञान-वेत्ता इस सन्दर्भ में सर्वथा अनुदार नहीं रहे हैं वे अपने शोध प्रयत्न धर्म और विज्ञान दोनों ही दिशाओं में नियोजित किए रहे हैं और उनके समन्वय की सम्भावना पर विश्वास करते रहे हैं । पैरासेल्सस, ब्रूनो, पैस्काल, न्यूटन आदि की गणना इसी वर्ग के वैज्ञानिकों में की जा सकती है । प्लेटो अपने समय का प्रख्यात समन्वयवादी था । उसने दार्शनिक चर्चा करने के लिए आने वाले जिज्ञासुओं के लिए यह शर्त रखी थी कि उनका गणित का जानकार होना आवश्यक है । उसके दरवाजे पर एक तख्ती टँगी रहती थी, जिस पर लिखा था—"जिसे गणित न आता हो वह भीतर न आये ।"

धर्म को विज्ञान सम्मत अर्थात् बुद्धिसंगत बनाने और तथ्यों को कसौटी पर कसने का प्रतिपादन करने वाले अनेकों सुधारक समय-समय पर होते रहे हैं । धर्म क्षेत्र में चिरकाल से चलती आने वाली क्रान्तियाँ इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि अन्धानुकरण नहीं तथ्यों की कसौटी पर श्रद्धा और परम्परा को कसा जाना आवश्यक है । भगवान बुद्ध की ख्याति इसी रूप में थी कि उन्होंने बुद्धिवाद का प्रतिपादन किया था और तथ्यों की कसौटी पर खरी न उतरने वाली परम्पराओं को अस्वीकार करने के लिए जनमानस को भड़काया था । इस श्रृंखला में प्राचीन एवं अर्वाचीन समाज सुधारकों को इसी वर्ग में गिना जा सकता है ।

विग्रह का अन्त और समन्वय का आरम्भ हर क्षेत्र में आवश्यक समझा जा रहा है और उसके लिए सर्वत्र अपने-अपने स्तर के प्रयत्न अपने-अपने ढंग से चल रहे हैं । धर्म और विज्ञान के सहयोग की आवश्यकता भी युग की पुकार है । हमें इच्छा और अनिच्छा से इस दिशा में बढ़ना ही होगा । विज्ञान को भावनाशील और धर्म को तथ्यानुवर्ती होने की आवश्यकता है इस यथार्थता को जितनी अच्छी तरह समझा जाने लगेगा उतनी ही तेजी और मजबूती के साथ दोनों महान् शक्ति धाराओं के सुखद समन्वय का दिन निकट आता चला जायेगा ।

विज्ञान और अध्यात्म साथ-साथ ही बढ़ेंगे

जीवन की दो दिशाएँ हैं—एक अन्तर्मुखी दूसरी बहिर्मुखी । बाह्य जीवन में अन्न, वस्त्र, निवास एवं अन्यान्य सुख-साधनों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है और अन्तः जीवन में अपनी वृत्तियों-प्रवृत्तियों का अन्वेषण करके उन्हें परिष्कृत किया जाता है । अन्तर्मुखी जीवन की अध्यात्म के नाम से व्याख्या की जाती है और बहिर्मुखी प्रयोजनों को विज्ञान नाम से जाना जाता है ।

यों भौतिकवाद और अध्यात्मवाद को अलग-अलग माना जाता है और उनके प्रयोग, प्रयोजन भिन्न-भिन्न रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं, पर वस्तुतः वे दोनों एक दूसरे के साथ इतने घुले-मिले हैं कि एक को दूसरे में सर्वथा भिन्न कर देना उससे भी कठिन है जितना की रक्त के जलीय एवं शुष्क अंशों को पृथक करके उन्हें अपने मूल में बनाये रहना ।

दोनों एक ही दिशा में चल रहे हैं—अज्ञान से छूटकर ज्ञान भूमिका में अधिकाधिक गहराई तक प्रवेश करते जाना दोनों का लक्ष्य है । दोनों सत्य की—परम सत्य की खोज में निरत हैं । कर्मक्षेत्र पृथक होते हुए भी वे एक ही उद्देश्य की पूर्ति में निरत हैं । दोनों सम्भवतः समकालीन भी हैं । शोधकर्त्ताओं के अनुसार ईसा से कोई दो लाख वर्ष पहले मनुष्य ने वैज्ञानिक अनुसन्धान आरम्भ कर दिए थे । समय का ज्ञान, वाणी के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान, आग का उत्पादन-उपयोग, आखेट के दांव-पेच, कृषि, पशु पालन, आच्छादन, भोजन सम्बन्धी सुविधाएँ, परिवार संरचना जैसे प्रयोग आरम्भ कर देने और उन्हें क्रमशः आगे बढ़ाते चलने के कारण ही शारीरिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ होने पर भी वह उन प्राणियों की तुलना में अधिक समर्थ बन सका । धरती की सम्पदा और प्राणियों पर अपना अधिकार जमा सकने में समर्थ हुआ ।

विज्ञान अपने क्रम से विकसित होता चला गया । अब इसकी अनेकानेक धाराएँ हैं । इन्हें मोटेतौर से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) भौतिकी, (२) रसायन, (३) प्राणि विज्ञान । चाहें तो गणित को भी एक वर्ग में गिन सकते हैं ।

अब हम विज्ञान की मोटी सतह पार करके बारीकी के क्षेत्र में चल रहे हैं । अब पदार्थ के ठोस, द्रव और वाष्प को तीन रूप में बताकर काम नहीं चल सकता । अब शब्द, प्रकाश, ऊर्जा आदि की व्याख्या को करने के लिए तत्वों और यौगिकों को भी समझना समझाना पड़ता है । परमाणु की भीतरी संरचना और हलचलों को जानना होता है । अब पंचतत्व कहकर सृष्टि की सरल व्याख्या

कर सकना अपर्याप्त है । अब तक १०४ तत्व ढूँढ़े जा चुके हैं । इनमें से २०-२१ तो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं । ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन, सिलिकान, क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन, कैल्सियम, मैग्नेशियम, सोडियम, फॉस्फोरस, लोहा, चाँदी, ताँबा आदि उन प्रमुख तत्वों में से हैं जिनके आधार पर हमारे सुपरिचित पदार्थों की संरचना सम्भव हो सकी है । इन्हीं के संयोजन-वियोजन में पानी जैसी अनेक जीवनोपयोगी वस्तुएँ बनी हैं ।

रसायनों का दो वर्गों में विभाजन किया जाय । मिट्टी, पत्थर, नमक, लोहा आदि निर्जीव और वनस्पति, माँस, खाद आदि सजीव । प्राणि जगत इसी वर्ग में आता है । प्रयोगशालाओं में सजीव तत्वों का संयोजन विघटन तो किया गया है किन्तु नये जीव का रासायनिक अभिक्रियाओं के सहारे नया उत्पादन सम्भव नहीं हो सका । सम्भवतः हो भी नहीं सकेगा । इस सन्दर्भ में विज्ञान पिछली शताब्दी में पूरी शक्ति के साथ माथापच्ची कर चुका है और अब किसी अज्ञात और संव्याप्त 'लाइफ फोर्स' की ऐसी उपस्थिति स्वीकार करने लगा है, जो पदार्थ की तात्विक परिधि से ऊपर की चीज है ।

फिर भी उसे पदार्थ से सर्वथा भिन्न नहीं किया जा सकता । वह उससे संव्याप्त है और प्रयत्न करने पर पदार्थों के अमुक संयोग से—अमुक मात्रा में उत्पन्न की जा सकती है । इस प्रकार जड़-चेतन की मर्यादा एवं भिन्नता यथावत् रहते हुए भी यह विचित्र सम्भावना बनी ही हुई है कि जड़ भी एक सीमा तक चेतना की सम्भावनाएँ अपने भीतर सँजोये हुए है । अमोनिया सायनेट का परीक्षण करते हुए जब उसके साथ रासायनिक सम्मिश्रण होने पर 'यूरिया' बन गया तो जड़-चेतन की दीवार बहुत 'झीनी' पड़ गई । 'यूरिया' प्राणियों के मूत्र में पाया जाने वाला एक पदार्थ है जो खाद के काम आता है और उसे जैविक पदार्थों की श्रेणी में गिना जाता है ।

तत्वों और योगियों का सुविस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त भी कुछ गुत्थियाँ ऐसी हैं जो किसी प्रकार सुलझने में नहीं आतीं । उदाहरण के लिए चीनी में पायी जाने वाली मिठास को ही लेते हैं । चीनी का वैज्ञानिक विश्लेषण यह है कि उसके एक अणु में कार्बन के १२, हाइड्रोजन के २२ तथा ऑक्सीजन के ११ परमाणु होते हैं । इनमें एक भी मीठा नहीं है । इन्हीं तीनों पदार्थों के सम्मिश्रण में अणुओं की संख्या का थोड़ा-थोड़ा अन्तर कर देने से अन्य कई ऐसे पदार्थ बन जाते हैं जिसके गुणधर्म एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न रहेंगे । ऐसी दशा में चीनी में मिठास कहाँ से आयी ? यह गुत्थी बिना सुलझी ही रह जाती है ।

इसका नया समाधान अन्तरिक्ष की स्थिति का परमाणुओं पर पड़ने वाले प्रभाव के रूप में खोजा गया है । यह अन्तरिक्ष की स्थिति एक नया सिरदर्द है । इसे भी 'लाइफ फोर्स' की तरह अनबूझ पहेली ही मान लिया गया है । अणु विश्लेषण तक पहुँच जाना भी विज्ञान की बड़ी सफलता है, पर अब उसे अधिकाधिक गहराई में प्रवेश करने पर 'अन्तरिक्ष की विशिष्ट स्थिति' और 'लाइफ फोर्स' की शोध में प्रवेश करते हुए भारी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है । कारण कि उस क्षेत्र में यान्त्रिकी साथ नहीं दे रही है । ऐसे उपकरण बन नहीं पा रहे हैं जो इन दोनों महान् अस्तित्वों के सम्बन्ध में जानकारी दे सकने में सहायक हो सकें ।

रसायन-शास्त्र अब भटकते-भटकते इस मान्यता पर पैर जमा सका है कि पदार्थ में कोई गुण नहीं है । अन्तरिक्ष में परमाणुओं की स्थिति ही उसमें पाये जाने वाले गुणों के लिए उत्तरदायी है । पदार्थ तो मात्र धारक एवं वाहक है । पदार्थ पर किसी गुणधर्म का आरोपण व्यर्थ है । उसकी सारी विशेषताएँ अन्तरिक्ष की स्थिति का उन पर पड़ने वाले प्रभाव के ऊपर निर्भर है ।

पुरानी मान्यता यह थी कि कोई पदार्थ नष्ट नहीं होता । उसका रूपान्तरण होता रहता है जैसे प्रवाही जल ठण्डक से बर्फ और गर्मी से भाप बन जाता है और सामान्य ताप में फिर प्रवाही दिखाई पड़ता है । उसकी स्थिति और उपस्थिति किसी न किसी रूप में बनी ही रहती है । यह पुरानी मान्यता अब निरस्त हो गई है । अणु विखण्डन से उस फटने वाले अणु की सत्ता एक प्रकार से सदा-सर्वदा के लिए समाप्त हो जाती है भले ही उसके कारण अन्य हलचलें कितनी ही क्यों न होती हों ।

इसी प्रकार ऊष्मा, प्रकाश, विद्युत, ध्वनि चुम्बकत्व आदि अनेक ऊर्जाएँ ज्ञात होने के उपरान्त उनके स्वतन्त्र सत्तावान होने की जो मान्यता थी, वह भी अब लगभग समाप्त हो गई है । ऊर्जाएँ एक-दूसरे से परिवर्तित हो सकने की बात पिछले दिनों सिद्ध हो गई । अब अणु जगत की मूल इकाई नहीं रहा वरन् वह ऊर्जा प्रवाह को मिल गया है । अब यह जगत् ऊर्जा का एक पूँजीभूत रूप भर रह गया है । उसे परमाणु समुच्चय कहना पिछड़ी हुई पुरातन व्याख्या कहा जायेगा ।

परमाणु संरचनाओं में इलेक्ट्रॉन और प्रोट्रॉन लगभग एक ही जाति के होते हैं । मात्र उनकी संख्या में थोड़ा सा अन्तर होता है उतने भर से नये तत्व बन जाते हैं । एक इलेक्ट्रॉन और एक प्रोट्रॉन के मिलन से हाइड्रोजन का परमाणु बनता है और यदि वे दो-दो हो जायें तो हीलियम का परमाणु बन जायेगा । यह कैसा विचित्र संयोग है । इसस प्रतीत होता है पदार्थ की मूल सत्ता का अपना कोई मौलिक गुण नहीं है । संख्या, भेद और मिलन क्रम ही सब कुछ है ।

लगता है यह सारा जगत ऊर्जा मात्र है । ऊर्जा के दो वर्ग हैं—एक धन दूसरा ऋण, इन्हें परा और अपरा प्रकृति के नाम से तत्ववेत्ताओं ने कहा है । यह विश्व शक्ति रूप है उसकी स्फुरणा से विभिन्न हलचलें यहाँ होती रहती है ।

विज्ञान हठीला नहीं है । उसे अपनी पिछली भूलें स्वीकार करने में तनिक भी आपत्ति नहीं हुई है । जब भी अधिक प्रखर प्रतिपादन सामने आये हैं तब उसने पिछली बहुचर्चित और बहुप्रचलित मान्यताओं को बिना अनुनय किए खुशी-खुशी बदल लिया है । ऐसा न होता तो विज्ञान भी एक सम्प्रदाय बन जाता और उसके उत्तराधिकारी अपने गुरुओं की यश-गाथाओं और उक्तियों को शाश्वत सत्य कहकर रूढ़िवादी अन्धपरम्पराओं के लिए आग्रह करते रहते, पर ऐसा हुआ नहीं है । होना भी नहीं चाहिए था ।

किसी समय के देवज्ञ पृथ्वी को चपटी मानते थे । ज्योतिष की गणना में चन्द्रमा नवग्रहों की बिरादरी का एक पूर्ण ग्रह है । आँखें जों कुछ दिखाती हैं वह सब कुछ सही नहीं है । खुली आँख में लोहे की चद्दर पूरी तरह ठोस दिखाई पड़ती है, पर एक्स-रे के चित्र बताते हैं कि उसमें स्पंज की तरह छेद हैं । अणु को पदार्थ की सबसे छोटी इकाई माना जाता रहा है, पर अब वह

एक समूचा ब्रह्माण्ड है जिसमें अनेक सौरमण्डल अपनी धुरी और कक्षा में भ्रमण करते हुए पाये गए हैं । उस्तरे की धार— सामान्यतया बिल्कुल सीधी दिखाई पड़ती है, पर माइक्रोस्कोप बताता है उसमें तिरछी लहरियाँ भरी पड़ी हैं । चलचित्रों में तस्वीरें भागती, दौड़ती मालूम पड़ती हैं, पर वस्तुतः वह आँखों की भ्रम-ग्रस्तता मात्र है । फिल्म अपनी चरखी पर इतनी तेजी से घूमती है कि आँखों की दृश्य शक्ति उन्हें उतनी तेजी से मस्तिष्क को आभास नहीं करा पाती, फलतः नेत्रगोलक और मस्तिष्क दोनों ही धोखा खाकर चलचित्रों में भगदड़ के दृश्य देखते हुए भ्रमग्रस्त बने रहते हैं ।

जीवन संचालक अवयवों में 'हार्ट' और 'ब्रेन' का उल्लेख विशेष उत्साह के साथ किया जाता है, एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध और जीवन के लिए उत्तरदायी बताये जाते हैं किन्तु देखा गया है कि हृदय के बन्द हो जाने पर कृत्रिम पम्पिंग करके रक्त संचार जारी रखा जा सकता है और मस्तिष्क क्रियाशील रह सकता है । इसी प्रकार मस्तिष्क को मूर्च्छित कर देने पर भी हृदय चालू रह सकता है । दोनों के सहयोग का महत्त्व अवश्य है, पर इस संयोग पर ही जीवन निर्भर नहीं है । योगियों द्वारा ली जाने वाली समाधि में तो मस्तिष्क एवं हृदय दोनों ही लगभग अवरुद्ध स्थिति में पहुँच जाते हैं—सघन शीत से शरीर को जमा देने पर भी उसमें जीवन बना रहता है । अस्तु शरीर के अमुक अवयवों को जीवन के लिए उत्तरदायी ठहराने से भी काम नहीं चलता । भले ही वे अवयव कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों ।

वस्तुतः 'ब्रेन' और 'माइण्ड' में स्तरीय अन्तर है । ब्रेन को 'मस्तिष्क' कह सकते हैं और माइण्ड को 'मानस' । मस्तिष्क शरीर का विकास क्रम के साथ जुड़ा होने के साथ-साथ वह आयु के साथ-साथ घटी और बढ़ी स्थिति में पहुँचता है । उसका विकास मेमोरी स्मरण शक्ति और एनवाइरनमेण्ट—इन्द्रियों की सांसारिक अनुभूति है । मानस भावना प्रधान है । उसे विवेक कहा जा सकता है । उसकी परिष्कृत स्थिति प्रज्ञा कहलाती है । उपनिषद्कार ने इस क्षेत्र की सुविकसित स्थिति को ऋतम्भरा, भूमा आदि नामों से सम्बोधन किया है । इसे कान्शसनेस अन्तःकरण कह सकते हैं । इन दोनों के समन्वय को ही चेतना सत्ता माना गया है ।

मृत्यु के आघात से ब्रेन नष्ट हो जाता है किन्तु मानस बना रहता है, यही सूक्ष्म शरीर या प्राण है । मानस का कलेवर, आवरण एवं उपकरण मस्तिष्क है । उसे ऊपरी पर्त कह सकते हैं । सेल—कोशिका तथा उसका रासायनिक ढाँचा नष्ट होने से शरीर का क्रिया-कलाप रुक जाता है किन्तु मानस नहीं मरता । हवा से पेड़-पौधे जीवित रहते हैं । वह उनमें जीवन संचार करती है किन्तु पौधों के मर जाने पर भी हवा जीवित रहती है । ब्रेन को पौधा और माइण्ड को हवा कहा जा सकता है । मरणोत्तर जीवन की शृंखला इस मानस के साथ जुड़ी रहती है । परलोक और पुनर्जन्म के चक्र में यह मानस ही परिभ्रमण करता रहता है ।

इसे प्राण अथवा जीव भी कह सकते हैं, यों जीव सत्ता की मूल स्थिति इससे भी कहीं अधिक गहरी है । यह मानस भी उसका एक वैसा ही कलेवर है जैसा कि मानस का मस्तिष्क ।

मानस का निवास शरीर में कहाँ हो सकता है ? क्या वह मस्तिष्क की परिधि में ही अवरुद्ध है ? इसका उत्तर अध्यात्मवादी, सूक्ष्मदर्शी बताते हैं कि यदि अन्तःकरण का किसी शारीरिक केन्द्र से विशेष सम्बन्ध जोड़ना हो तो वह वेगस नर्व—सुषुम्ना ही हो सकता है । यद्यपि वह दूध में घी की तरह सम्पूर्ण चेतना में—समस्त शरीर में—किसी न किसी रूप में संव्याप्त है । साइनो आरीक्युलर नोड—प्राण उर्जा—प्रत्येक कोशिका को जीवित रखती है । शारीरिक विश्लेषण करने पर उसे ओषजन और पोषक तत्वों का सम्मिश्रण कह सकते हैं । मेड्यूला और हाइपोथैल के बीच साइनोआरिक्युलर नोड—एस. ए. एन. का स्थान सुरक्षित है । इसका संचालन केन्द्र मूर्धा का वह स्थल है जो उन दोनों को परस्पर जोड़ता है । इसे सुषुम्ना कह सकते हैं । यहीं से मूलतः समस्त शरीर का संचालन और शासन होता है । मन के बदलते हुए भावों की हलचल यहीं से संचालित होती है । इस सुषुम्ना केन्द्र पर हार्मोनों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । सच तो यह है कि इसी केन्द्र से विभिन्न हार्मोन ग्रन्थियों को प्रेरणाएँ मिलती हैं और वे तदनुरूप स्राव निःसृत करते हैं । हार्मोनों की सिम्पेथेटिक सम्वेदनशील स्फुरणाएँ इसी सुप्रारीनल शासन केन्द्र से उत्पन्न होती हैं । इसे जीवसत्ता का शरीरगत केन्द्रस्थल कहा जा सकता है ।

दिव्यदर्शियों का कहना है कि सुषुम्ना—वेगस और मूर्धा—मेड्यूला हाइपोथैलेमस के बीच एक हाथ के अँगूठे के बराबर विस्तार वाला जो स्थान है वही उस अव्यक्त प्राण ऊर्जा का स्रोत केन्द्र है । आत्मा का उद्‌गम वही है यों वह समस्त मस्तिष्क में संव्याप्त है और वहाँ से सुविस्तृत होकर काया के कण-कण में गतिशील है ।

कणोपनिषद् में आता है—वह अंगुष्ठ मात्र परिमाण का आत्मा सम्पूर्ण शरीर में संव्याप्त है । उसी का शासन है । वह निर्धूम ज्योति की तरह दीप्तमान है । वही इस शरीर रथ का सारथी है ।

शरीर विज्ञान, फिजियालॉजी और मनोविज्ञान, साइकोलॉजी के अनुसार भी मन और अहम् का अन्तर स्पष्ट रूप से बताया गया है । इन्द्रिय सम्बन्धित निम्नस्तरीय स्नायुमण्डल—लोअर नर्वस सिस्टम कहलाता है । इसी में इन्स्टिक्ट, रिफ्लेक्सएक्शन आदि सम्मिलित हैं । यह मन अथवा चित्त भाग हुआ । अहम्—अन्तःकरण इससे भिन्न है, बुद्धि एवं विवेक उसके गुण हैं । भावनाएँ इसी केन्द्र से उद्‌भूत होती हैं । ईगो-सुपर-ईगो—को इसी से सम्बन्धित माना जा सकता है ।

विज्ञान आगे बढ़ रहा है और वह प्रकृति के रहस्यों पर से एक-एक करके चढ़े हुए आवरण उतारता जा रहा है । भौतिक जगत की रहस्यमयी उपलब्धियाँ उसे मिल रही हैं । शोध की यह प्रवृत्ति हमें सत्य के अधिकाधिक समीप पहुँचा रही है । इस दिशा में चलते हुए अध्यात्म उपेक्षित नहीं रह सकता क्योंकि विज्ञान की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है । अणुओं की चलसत्ता, अचल पदार्थों के रूप में दृष्टिगोचर होती है, इसलिए उसे एक बार असत्य, भ्रामक और माया भी कह सकते हैं, पर चेतना के लहलहाते हुए समुद्र को आँख से ओझल कैसे किया जाय ? जिसकी लहरों का प्रतीक मनुष्य अपनी अद्‌भुत सत्ता का परिचय स्वयं ही दे रहा है । सत्य की शोध ने ही विज्ञान के क्षेत्र में सफलताएँ प्रस्तुत की हैं और उसी राह पर चलते हुए हम अध्यात्म की चमत्कारी शक्ति का भी दर्शन तथा अवगाहन करेंगे ।

ज्ञान और विज्ञान एक दूसरे का अवलम्बन अपनाएँ

ज्ञान और विज्ञान यह दोनों सहोदर भाई हैं । ज्ञान अर्थात् चेतना को मानवी गरिमा के अनुरूप चिन्तन तथा चरित्र के लिए आस्थावान बनने तथा बनाने की प्रक्रिया । यदि ज्ञान का अभाव हो तो मनुष्य को भी अन्य प्राणियों की भाँति स्वार्थ परायण रहना होगा । उसकी गतिविधियाँ पेट की क्षुधा निवारण तथा मस्तिष्कीय खुजली के रूप में कामवासना का ताना-बाना बुनते रहने में ही नष्ट हो जायेंगी । अन्यान्य सभी जीवधारी पेट और प्रजनन के सम्बन्ध में ही सोचते और इन्हीं दो कृत्यों में निरत रहते हैं । अकेला मनुष्य ही है जो जीवन का मूल्य और महत्त्व समझता है । वह आदर्शों के साथ जीने की बात सोचता है और इस निमित्त यदि कष्ट सहने पड़े तो भी प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है । इस स्तर की मनोभूमि बनाने का कार्य ज्ञान है । इस शब्द से काम न चले तो उसे सद्ज्ञान कह सकते हैं ।

ज्ञान का मोटा अर्थ जानकारी है । इस जानकारी की परिधि में वे सब बातें भी आती हैं जो वस्तु विनियोग से सम्बन्ध रखती हैं । कृषि, पशु-पालन, वास्तुशिल्प आदि के जीवनयापन में काम आने वाली अनेकानेक गतिविधियाँ एवं वस्तुओं की जानकारी को भी यों ज्ञान शब्द की परिभाषा में लपेटा जा सकता है, पर यहाँ जिस हेतु को ध्यान में रखकर ज्ञान की महिमा बखानी जा रही है, वहाँ उसे चेतना को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर करने की प्रक्रिया समझना चाहिए ।

मनुष्य भी एक तरह का पशु है । जन्मजात रूप से उसमें भी पशु, प्रवृत्तियाँ भरी होती हैं । उन्हें परिमार्जित करके सुसंस्कारी एवं आदर्शवादी बनाने का काम जिस चिन्तन पद्धति का है उसे ज्ञान कहा गया है । गीताकार का कथन है कि—"ज्ञान से अधिक श्रेष्ठ और पवित्र अन्य कोई वस्तु नहीं है । "न हि ज्ञानेन पवित्रमिह विद्यते ।"

ज्ञान वह अग्नि है जो सड़े-गले उबले लोहे को अग्नि संस्कार करके माण्डूर भस्म—लौह भस्म आदि अमृतोपम गुण दिखा सकने योग्य बनाती है । पतित, पापी, मूढ़, पशु, महामानव, ऋषि आदि की काया एक ही तरह की होती है । उनकी बनावट और रहन-सहन पद्धति में कोई अन्तर नहीं होता । फिर जो एक को गया-गुजरा और दूसरे को आकाश में छाया देखते हैं । वह उसकी ज्ञान चेतना का ही चमत्कार है । वह हेय स्तर की हो तो मनुष्य निरर्थक या अनर्थ मूलक कामों में लगा हुआ दृष्टिगोचर होगा । यदि यह ज्ञान पवित्र, श्रेष्ठ और उत्साहवर्धक हो तो वही शरीर ऐसे काम करते हुए दिखाई देगा जिनसे असंख्यों को प्रेरणा मिले और उसका अनुगमन करने वालों के लिए भी प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो ।

ज्ञान आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित है और वह चेतना क्षेत्र में प्रभावित करके उचित-अनुचित का अन्तर करना सिखाता है । दूरदर्शी विवेकशीलता के आधार पर जो निर्णय या निर्धारण किए जाते हैं उन्हें ज्ञान का, सद्ज्ञान का ही अनुदान कहना चाहिए ।

ज्ञान का सहोदर है—विज्ञान । विज्ञान अर्थात् पदार्थ ज्ञान । हमारे चारों ओर अगणित वस्तुएँ बिखरी पड़ी हैं । वे अपने मूल रूप में प्रायः निरर्थक जैसी हैं उन्हें उपयोगी बनाने और उनकी विशेषताओं को समझने की प्रक्रिया विज्ञान है । विज्ञान ने मनुष्य को साधन सम्पन्न बनाया है । अन्य प्राणी इस जानकारी से रहित हैं इसलिए वे निकटवर्ती आहार को उपलब्ध करने में ही अपनी क्षमता समाप्त कर लेते हैं । यौवन की तरंग मन में उठने पर वे प्रजनन कृत्य में भी अपना विशेष पुरुषार्थ प्रदर्शित करते देखे जाते हैं । यह प्रकृति प्रदत्त शरीर के साथ मिलने वाली स्वाभाविकता है । उन्हें विज्ञान नहीं मिला । विज्ञान केवल मनुष्य की विशेष उपलब्धि है । आग जलाना, कृषि, पशुपालन, वास्तुशिल्प, भाषा, चिकित्सा आदि एक से एक बढ़कर जानकारियाँ उसने प्राप्त की हैं और उनके सहारे साधन सम्पन्न बना है ।

कभी विज्ञान की परिधि छोटी थी और उसके सहारे जीवनोपयोगी वस्तुओं तक का ही उत्पादन एवं प्रस्तुतीकरण होता था, पर अब बात बहुत आगे बढ़ गई और प्रकृति ने अनेकानेक रहस्य खोज निकाल लिए गए हैं । इतना ही नहीं वरन् इससे भी आगे बढ़कर दूसरों के साधन छीनने वाले, उन्हें असमर्थ बनाने वाले प्राण घातक अस्त्र-शस्त्र भी बनने लगे हैं । जिस विज्ञान से सुख साधनों की वृद्धि का स्वप्न देखा जाता है वही यदि विनाश या पतन की सामग्री प्रस्तुत करने लगे तो आश्चर्य और असमंजस की बात है ।

जिन्हें पिछले दो विश्वयुद्धों की जानकारी है । जो तीसरे अणुयुद्ध की तैयारी से परिचित हैं । इसी शताब्दी में १७५ की लगभग छोटे और स्थानीय युद्धों की जिन्हें जानकारी है वे उस विभीषिका के पीछे विज्ञान की ही विनाश लीला को विभीषिका के रूप में सामने खड़ी देखते हैं । जिन विज्ञान के सहारे माँसाहार का व्यवसाय चमका नशेबाजी की चित्र-विचित्र वस्तुएँ बनकर तैयारी हुई । कामुकता को उत्तेजित करके वर्जनाओं पर प्रहार करने वाले अश्लील साहित्य एवं फिल्मों का घटाटोप उमड़ा वह विज्ञान की ही काली करतूत है । जहाँ चिकित्सा क्षेत्र में सर्जरी जैसे उपयोगी साधन बनाये वहाँ उद्योगीकरण के नाम पर ऐसे विशालकाय तन्त्र भी खड़े किए जिन्होंने मुट्ठी भर लोगों को धन कुबेर बनाकर अगणित लोगों को बेकारी, बीमारी और भुखमरी के गर्त्त में विलख-विलख कर मरने के लिए छोड़ दिया । शहरों की तोंद फूल गई और देहातें उड़कर वनवासियों के झोंपड़ों में अभावग्रस्त हो गईं । यह भी विज्ञान का ही चमत्कार है जो प्रत्यक्ष सामने व आकार परोक्ष में बाजीगर की तरह कठपुतली का तमाशा दिखाता रहता है ।

आज ज्ञान और विज्ञान दोनों ही अपनी प्रौढ़ावस्था में हैं । विडम्बना एक ही है कि वे सीधी राह चलने की अपेक्षा उल्टी दिशा अपना रहे हैं और एकदूसरे का सहयोग न करके विरोध का रुख अपनाए हुए हैं और तरह-तरह के दाँव-पेचों का आविष्कार कर रहे हैं । इन गतिविधियों से वह धारा अवरुद्ध हो गई जो अब तक मनुष्य को समर्थ और सुखी बनाती रही है । अब उनमें प्रयास भस्मासुर जैसे ही चले हैं । जिसने उन्हें विकसित किया उसी मनुष्य को हेय, हीन बनाते और जीवन संकट खड़ा करने के लिए उद्यत दीखते हैं ।

मानवोचित दूरदर्शिता और विवेकशीलता का तकाजा है कि ज्ञान और विज्ञान मिलकर चलें । ज्ञान के क्षेत्र में अनैतिकता,

अन्ध श्रद्धा एवं अवांछनीयता का प्रचलन बढ़ा-चढ़ा है। कुरीतियाँ और दुष्प्रवृत्तियाँ घट नहीं रही वरन् बढ़ रही हैं। इसका ताना-बाना 'ज्ञान' द्वारा बुना जा रहा है। जानकार समझदार लोग अपने-अपने ढंग से इसका समर्थन कर रहे हैं। धर्म अपनी गरिमा से बहुत नीचे उतरकर साम्प्रदायिकता, कट्टरता के विषम बीज बो रहा है और जिन्हें वे प्रभावित कर सकते हैं उन्हें अशिक्षितों और अधर्मियों से भी गया बीता बना रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि वे वैज्ञानिकता की तथ्यान्वेषी प्रवृत्ति अपनायें और अन्ध-परम्पराओं को अमान्य ठहराकर धर्म और अध्यात्म को सत्य के निकट पहुँचाने वाली वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करें।

ठीक इसी प्रकार विज्ञान के लिए भी आवश्यक है कि वह अपनी उपलब्धियों का उपयोग करते समय ज्ञान से परामर्श करे कि उपलब्धियों का उपयोग आँखें मूँदकर—अनीति के समर्थन में न होने पाये। शक्ति के ऊपर अंकुश रहे और शक्तियों को औचित्य के अनुशासन में जकड़कर रखा जाय।

सुन्द और उपसुन्द दो भाई थे। दोनों ने इतनी शक्ति अर्जित कर ली कि संसार में कोई भी उन दोनों की संयुक्त शक्ति को चुनौती नहीं दे सकता था, किन्तु दुर्भाग्यवश वे अपनी इस विश्व विजयी शक्ति का संयुक्त उपयोग न कर सके। किसी छोटी बात पर अहंकार वश वे दोनों आपस में भिड़ गए और परस्पर लड़-भिड़कर समाप्त हो गए। यह उदाहरण ज्ञान और विज्ञान की संयुक्त शक्ति के सामने भी प्रस्तुत है। विज्ञान द्वारा अर्जित विभूतियों को यदि सद्ज्ञान के मार्गदर्शन में विवेकपूर्वक लोक-मंगल के लिए प्रयुक्त किया जाय तो प्रस्तुत जन-समाज के प्रत्येक सदस्य को इतने साधन मिल सकते हैं कि विश्व का प्रत्येक मनुष्य—प्रत्येक प्राणी—निर्वाह के ही नहीं प्रगति की भी आवश्यक सामग्री प्रचुर परिमाण में प्राप्त कर सके। तब मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण दिवा स्वप्न नहीं वरन् एक सुनिश्चित सम्भावना के रूप में सामने आ सकता है। जो मस्तिष्क, जो अनुसन्धान विघातक क्षमता बढ़ाने के प्रयास में लगे हुए हैं। जो सम्पदा महामरण का साधन साधने में लगी हुई है यदि वह उलटकर ऐसे उपकरण खोजे जो मनुष्य का श्रम, समय बचाकर सद्ज्ञान के मार्गदर्शन में लोकहित संजो सके तो आज जितने वैभव का मनुष्य स्वामी है उतने से ही गरीबी, बीमारी, बेकारी, अशिक्षा और कलह कारणों का सरलतापूर्वक उन्मूलन हो सकता है।

शिक्षितों, विद्वानों की कमी नहीं, पर वे अपने मस्तिष्क को पैसे के लिए बेचकर किसी भी उचित अनुचित के समर्थन में बिना हिचक के संलग्न है। यदि उन्होंने प्रज्ञा का अवलम्बन लेकर मनीषा को श्रेय देने वाली प्रखरता को गति दी होती तो जन-शक्ति की यथार्थता का भान हुआ और प्रयासों का प्रवाह औचित्य की दिशा में बहा होता। वैज्ञानिक साधन कितने ही सशक्त क्यों न हों, उनका प्रयोग तो मनुष्य ही करता है। यदि इस प्रयोगकर्त्री विवेकबुद्धि को श्रेयानुगामी बनाया गया होता तो वह साधनों का दुरुपयोग होने देने से रोकने के लिए आगे बढ़ी होती और उन्हें चुनौती दे रही होती जो निर्द्वन्द्व होकर विनाशकारी प्रयासों में लगे हुए हैं।

विज्ञान की सशक्तता के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते, पर यह भी सुनिश्चित है कि उनका भला-बुरा प्रयोग मनुष्य ही करता है। क्या निर्णय किया जाय, इसका भार मुट्ठी भर सशक्तों पर छोड़कर शेष जन समुदाय मूकदर्शक बना रहे तो यह एक परले सिरे का दुर्भाग्य ही होगा। अनीति की गतिविधियाँ चलती रहें तो इसमें दोषी वे लोग भी होते हैं जो विरोध करने में डरते हैं या उसे आवश्यक कर्त्तव्यों में सम्मिलित नहीं करते। यह कार्य विचारशील विज्ञजनों का है कि विज्ञान को महाविनाश की दिशा में अग्रसर होने से रोकें और उन्हें स्वेच्छाचार न बरतने दें जिन्हें समर्थता उपलब्ध हो गई है।

चाकू को कलम बनाने के काम में लाया जा सकता है और किसी को अंग-भंग करने में भी। विज्ञान एक चाकू है जिसे मानवी प्रगति के लिए ही प्रयुक्त होना चाहिए। यह काम ज्ञान का है कि जन-साधारण की विचारणा का उद्बोधन करे और ऐसा वातावरण बनाए जिससे सामूहिक आत्म-हत्या के लिए समूची मानवता को विवश करने वालों के हाथ रुकें और पैर थमें।

ज्ञान को विज्ञानवादियों के सम्पर्क में आना चाहिए और विज्ञान को अपनी सत्यान्वेषण की सहज प्रकृति से ज्ञानवानों का द्वार खटखटाना चाहिए, ताकि वे जन-मानस का इतना सान्निध्य करें कि मुट्ठी भर सत्ताधारी इस समूची दुनिया का भविष्य अन्धकार में न झोंक सकें।

ज्ञान और विज्ञान की सत्ता पुरानी है पर नई परिस्थिति को देखते हुए उन दोनों को एक-दूसरे का अवलम्बन लेते हुए समय की समस्याओं का समाधान करने के लिए उद्यत होना चाहिए।

धर्म और विज्ञान जुड़वाँ भाई

पिछले दिनों धर्म और विज्ञान को विरोधी माना जाता रहा है। दोनों के तर्क, प्रतिपादन और आधार एक-दूसरे से भिन्न समझे जाते रहे हैं। एक को प्रत्यक्षवादी और दूसरे को परोक्षवादी कहकर उन्हें असम्बद्ध कहा जाता रहा है। इसलिए दोनों की दिशा विपरीत मान ली गई और माना गया कि किसी धार्मिक के लिए विज्ञान को समझना एवं किसी वैज्ञानिक को धर्म के बारे में जानना आवश्यक नहीं।

इतने पर भी यह शाश्वत सत्य यथास्थान है, धर्म और विज्ञान जुड़वाँ भाई हैं। एक ही पर्वत से निकलने वाले दो महा निर्झर हैं। क्षेत्र भिन्नता की दृष्टि से उनका स्वरूप भिन्न है तो भी वे एक ही महा प्रयोजन की पूर्ति करते हैं। उनकी उपयोगिता मनुष्य के कंधों में जुड़ी हुई दो भुजाओं जैसी है। वे एक-दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक हैं।

लन्दन विश्वविद्यालय के ऐस्ट्रो फिजीसिस्ट विज्ञानी हर्बर्ट ढिंगले का कथन है—धर्म और विज्ञान दोनों एक ही महा सत्य को दो दिशाओं से खोजना आरम्भ करते हैं और जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं वैसे-वैसे एक दूसरे के अधिकाधिक निकट पहुँचते हैं। विज्ञान जड़ जगत की संरचना और क्रिया-पद्धति का स्वरूप निर्धारण करता है और यह बताता है कि उसका अधिकाधिक उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। धर्म चेतन जगत के रहस्यों का उद्घाटन करता है और सिखाता है कि विश्व की इस महती शक्ति का व्यक्ति और समाज के लिए श्रेष्ठतम उपयोग क्या हो सकता है। जड़ और चेतन के उभय-पक्षीय रहस्यों का उद्घाटन एवं उपयोग सीखने के लिए हमें धर्म और विज्ञान का समानान्तर उपयोग करते हुए आगे बढ़ना होगा।

आदिम काल में जड़ पदार्थों के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्त मान्यताएँ गढ़ ली गई थीं । प्रकृति की साधारण हलचलें देवताओं या भूत-प्रेतों की करतूतें समझी जाती थीं । वर्षा, आँधी, तूफान, सर्दी, गर्मी, बाढ़, दुर्भिक्ष, रोग, हानि, दुर्घटना आदि के साथ किन्हीं अदृश्य आत्माओं का अभिशाप समझा जाता था और सफलताओं में उनका वरदान माना जाता था । देवताओं की अप्रसन्नता को प्रसन्नता में बदलने के लिए तरह-तरह के विनय, अनुरोध, भेंट, उपहार प्रस्तुत किए जाते थे । विज्ञान ने उन सब मान्यताओं को झुठला दिया और बताया कि प्रकृति की शक्तियों को यन्त्र बन्धनों में बाँधकर वह सब किया जा सकता है जो मन्त्र-तन्त्र से सम्भव नहीं था । जिन कारणों से संसार में अभाव दारिद्रय का बाहुल्य था—उनके निवारण कर सकने योग्य अनेकानेक साधन उपस्थित करके समृद्धि, प्रगति की ओर मनुष्य को बढ़ाया । इस दृष्टि से विज्ञान की मनुष्य जाति ऋणी है । उसे पाकर निश्चित रूप से सुख-सुविधाओं में वृद्धि हुई है । उसकी उपयोगिता के कारण विज्ञान के प्रति हर किसी का सम्मान है । वह सत्य के लिए ही नहीं सुख-शान्ति के लिए भी हमारा पथ-प्रदर्शन करता है । दुरुपयोग की तो बात ही अलग है । गलत प्रयोग करके तो अमृत भी विष बन सकता है । दुष्ट प्रयोजन के लिए यदि विज्ञान का प्रयोग किया जाय तो इसमें प्रयोक्ताओं की मूर्खता ही निन्दनीय ठहराई जायेगी; उससे विज्ञान की गरिमा नहीं घटेगी ।

ठीक यही बात धर्म के सम्बन्ध में लागू होती है । आदिमकाल का मनुष्य एक दुर्बलकाय पशु मात्र था । उसके पास कोई आचार, व्यवहार, दर्शन, आदर्श, नियम, विधान नहीं था । मत्स्य न्याय ही चलता था—जंगल का कानून ही मनुष्य भी पालते थे । अपनी सुविधा के साथ दूसरों का हनन करने में निकृष्ट स्तर के प्राणी संकोच नहीं करते; वैसा ही बर्ताव मनुष्यों का था । समझ की दृष्टि से थोड़ा विकसित होने के कारण वह अन्य पशुओं की तुलना में अधिक छली और अधिक दुष्ट था ।

धर्म के उदय ने आचार, मर्यादा और कर्त्तव्य की जंजीरों में उन आदिमकालीन क्रूरताओं को जकड़ा और सभ्यता का सृजन करके मनुष्य को शालीनता एवं सामाजिकता का पाठ पढ़ाया । यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जिसे धरती की समस्त सम्पदा से भी बढ़ी-चढ़ी माना जा सकता है । धर्म ने क्रमशः पशुता के, असुरता के, पर्तों को उखाड़ा है और मनुष्य को उस स्तर तक पहुँचाया है जिसमें वह बढ़ी-चढ़ी सम्पत्ति के आधार पर ही नहीं सुविकसित सभ्यता के आधार पर भी गर्व करने का—गौरवान्वित होने का अधिकारी है ।

लोभ-लाभ की आकांक्षा से अथवा द्वेष-क्रोध भरी प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर क्रूर कर्म कर बैठने पर बहुत कुछ बन्धन धर्म ने लगाया है । उदार, दयालु, सहिष्णु, सरल एवं सहृदय बनने में भी धर्म का योगदान कम नहीं है । अपराध-निरोधक, सरकारी और गैरसरकारी जितने भी प्रतिबन्ध, प्रतिरोध हैं उन सबकी सम्मिलित शक्ति से भी कहीं बढ़ी-चढ़ी शक्ति धर्म की है जो मनुष्यता को शालीनता को सजीव बनाये रहती है और जिसके आधार पर आनन्द, उल्लास के, स्नेह, सौहार्द्र के आदर्श, उत्कर्ष के अभिनव उदाहरण प्रस्तुत होते हैं । वस्तुतः विकास का सर्वोत्तम आधार इन्हीं उपलब्धियों को माना जा सकता है ।

विज्ञान क्रमशः आगे बढ़ रहा है—धर्म भी अपने उस रूप से कहीं आगे बढ़ चला जिसे किसी समय बहुत आदर प्राप्त था, पर अब उसे अन्धविश्वास का पोषक माना जाता है । विज्ञान के सम्बन्ध में भी यही बात है । पत्थरों को रगड़ कर जब आग पैदा की गई थी तब वह एक महती क्रान्ति थी । आग की उत्पत्ति ने उस समय मानव प्रगति में उतना ही बड़ा योगदान दिया था जितना कि इन दिनों बिजली द्वारा किया जा रहा है । आज की दृष्टि से पत्थर रगड़ कर चिन्गारी निकालने की कला एक विनोद मात्र है । ठीक इसी तरह धर्म सम्बन्धी वे मान्यताएँ जो अब दकियानूसी कही जा सकती हैं कभी अपने समय की महती आवश्यकता पूरी कर रही थीं । उन दिनों का पिछड़ापन उन परम्पराओं ने ही हल्का किया था जिन्हें आज हम उपहासास्पद मानते हैं ।

विज्ञानी पालटिनिश का कथन है—विज्ञान और दर्शन तेजी से नजदीक दौड़ते चले आ रहे हैं और वह दिन दूर नहीं जब वे अपने बाहुपाश में एक-दूसरे को कस लेंगे ।

किसी समय की वैज्ञानिक मान्यताएँ अब झुठलाई जा चुकी हैं । इससे विज्ञान का अपमान नहीं हुआ वरन् सच्चाई के अधिक नजदीक पहुँचने की उपलब्धि पर खुशियाँ मनाई गईं । धर्म की पुरातन मान्यताओं में यदि युग के अनुरूप परिवर्तन करना पड़े तो इसमें विकास क्रम की झाँकी ही की जानी चाहिए । बच्चे के मूछें नहीं होतीं, पर वे बड़े होने पर निकलती हैं । इससे बचपन का कोई अपमान नहीं होता । धर्म परम्पराओं में यदि प्रगति का समावेश करके कुछ हेर-फेर किया जाय तो इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । अनादिकाल से न केवल धर्म और विज्ञान में वरन् संसार के हर प्रतिपादन में अनवरत परिवर्तन होते रहे हैं । आगे भी वह क्रम चलता ही रहेगा ।

विज्ञान प्रत्यक्ष है वह यन्त्रों द्वारा—प्रयोगशालाओं में प्रमाणित किया जा सकता है । धर्म अप्रत्यक्ष तो है पर अप्रामाणिक नहीं । अधर्मी व्यक्ति के उच्छृंखल जीवन और सुसंस्कृत व्यक्ति की—शालीनता की प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि धर्म की उपयोगिता प्रामाणिक है । वह व्यक्ति के अन्तरंग और बहिरंग जीवन में सर्वतोन्मुखी प्रगति के आधार प्रस्तुत करती है ।

विद्वान एच. के. शिलेंग ने अपनी पुस्तक 'साइन्स एण्ड रिलीजन' में यह भविष्यवाणी की है कि अगली शताब्दी में धर्म को विज्ञान का और विज्ञान को धर्म का अविच्छिन्न अंग मान लिया जायेगा । अस्तु विज्ञान और धर्म के समन्वय से ही उसकी उभय-पक्षीय प्रगति का सुसन्तुलित आधार बन सकेगा ।

विज्ञान और धर्म में समन्वय अनिवार्य

भले ही पदार्थ के रूप में पर विज्ञान भी आन्तरिक सत्ता का ही तो उद्घाटन करता है । धर्म के क्षेत्र में परमात्मा एक विश्व व्यापक शक्ति है और पदार्थ भी शक्ति के ही कण हैं । सच तो यह है कि शक्ति के अतिरिक्त संसार में और कुछ है ही नहीं । धर्म उसे अन्तर्चेतना के रूप में देखता है । वह उदाहरण देता है कि गाँधी जी का आत्मबल ही था जिसने ब्रिटिश सत्ता को बिना लड़े निकाल दिया और विज्ञान कहता है एक छोटे से शस्त्र ने जो हिरोशिमा के ७० हजार नागरिक पल भर में भून

डाले वह क्या कम जबर्दस्त शक्ति थी । भले ही एक का स्वरूप रचनात्मक हो और दूसरे का स्वभाव ध्वंस, पर विज्ञान और धर्म दोनों ने ही शक्ति के एक ही स्वरूप की जानकारी दी है । दोनों में कोई विरोध नहीं है ।

यह झगड़ा तो राम और शिव की तरह का है । राम शिव के उपासक हैं और शिव राम के, पर शिवजी के भक्त भूत-प्रेतों का स्वभाव, राम के भक्त रीछ-वानरों के स्वभाव से नहीं मिलता । इसीलिए वे परस्पर लड़ते हैं । आज विज्ञान धर्मावलम्बियों को हीन मानता है तो धर्म को मानने वाले भौतिकवादी या पदार्थ की शक्ति पर विश्वास करने वालों को ओछा मानते हैं । दरअसल दोनों को यह समझना चाहिए कि धर्म और विज्ञान के मूलभूत उद्देश्य एक ही सत्य को प्राप्त करना है ।

रामकृष्ण परमहंस के शब्दों में मंगल का उपवास लड़की भी रखती है, और माँ भी दोनों के लिए 'मंगल' एक ही है पर मान्यताएँ अलग-अलग हैं । वह कहती है कि मैं मंगल का व्रत हूँ, माँ कहती है कि मैं मंगल का व्रत हूँ—उद्देश्य दोनों के एक हैं केवल मैं—मैं का झगड़ा है ।

धार्मिकता अनिवार्य होनी चाहिए पर उसका यह अर्थ नहीं कि विज्ञान को छोड़ दिया जाय । विज्ञान का परित्याग ही विश्वास को अन्धविश्वास और श्रद्धा को अन्ध-श्रद्धा बनाता है । जबकि धर्म का उद्देश्य सत्य को खोजकर मनुष्य को एक ऐसा रास्ता दिखाना है जिसमें वह अपने हर पड़ोसी के साथ, मिलने-जुलने वाले के साथ शान्ति, प्रेम और भाई-चारे का जीवन-यापन कर सके । भारतवर्ष में इस समन्वय की गंगा बह चुकी है । जब यहाँ धर्म और विज्ञान दोनों का समन्वय किया गया था और मनुष्य जीवन को इस तरह सन्तुलित किया गया था जिसमें धर्म भी था विज्ञान भी तभी यह देश चरमोत्कर्ष कर सका था ।

धर्म ग्रन्थों में जीव को ईश्वर अंश बताते हुए कहा जाता है व्यक्ति भगवान है (ईसा, कृष्ण या राम के रूप में) अर्थात् व्यक्ति में ईश्वरीय गुणों की खोज करते हैं लेकिन विज्ञान ब्रह्माण्ड के ज्ञान में वृद्धि करता है तब हमें पता चलता है कि उसका रचयिता (क्रियेटर) मनुष्य नहीं हो सकता । अलबत्ता वह मनुष्यों की सी शक्ति, क्षमता, ज्ञान और सामर्थ्य का विकसित रूप होना चाहिए । इस दृष्टि से विज्ञान ने सत्य की खोज में मदद की और यह बताया कि ईश्वर एक सर्वव्यापी तत्व होना चाहिए । मनुष्य को उसका प्रतिबिम्ब होना चाहिए ।

यदि इन निष्कर्षों को मान लेते हैं तो सचमुच मनुष्य को दीक्षित करने की एक बड़ी भारी समस्या हल हो जाती है फिर तो मनुष्य को इतना समझना शेष रह जाता है कि हम अपनी शक्तियों को अपव्यय से बचाकर उनका किस प्रकार विकास करें कि अपनी अपूर्णता ईश्वरीय पूर्णता में परिवर्तित हो जाय । इस कार्य को फिर धर्म पूरा कर सकता है ।

दोनों का लक्ष्य अच्छाई और सत्यान्वेषण रहे तो विज्ञान और धर्म एक-दूसरे का विरोध कर भी नहीं सकते । अभी हमारा विज्ञान केवल पदार्थ सम्बन्धी जानकारी देता है, लक्ष्य नहीं बताता । इसलिए धर्म की दृष्टि में वह अहितकारक है इसी प्रकार अध्यात्म अन्धविश्वास को मान्यता देता है जिसे विज्ञान कभी स्वीकार नहीं कर सकता । यह दोनों की भूलें हैं । दोनों में से किसी को भी अपनी सच्चाई से विमुख नहीं होना चाहिए ।

विज्ञान विशिष्ट तरीकों से ज्ञान प्राप्त कराता है और धर्म की अनुभूति भिन्न प्रकार की होती है । विज्ञान की दिशाएँ पदार्थ के ज्ञान की ओर बढ़ती हुई चली जाती हैं, और एक दिन वहाँ पहुँचेगी जहाँ से ईश्वरीय शक्तियों ने स्वेच्छा या अन्य किसी कारण से पदार्थ में परिवर्तित होना प्रारम्भ किया । इसी प्रकार आत्मा का प्रकाश तथा आत्मा की विशालता की अनुभूति भी एक दिन उसी सर्वव्यापी सर्व चैतन्य तत्व तक पहुँचा देती है । दोनों एक ही स्थान से उठते हैं और दोनों के गन्तव्य भी एक हैं इसलिए उनको यहाँ भी साथ-साथ ही रहना चाहिए । मनुष्य को इस जीवन में भौतिक सुखों की अनुभूति भी रहनी चाहिए और आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील भी, इसलिए दोनों का समन्वय आवश्यक हो जाता है ।

अकेले विज्ञान को ही महत्त्व देना दो अन्धों की कहानी की तरह होगा । एक बार एक अन्धा अपने घर से निकल पड़ा और उस दरवाजे पर जाकर सहायता के लिए पुकारने लगा जिस घर में एक दूसरा अन्धा रहता था । वह अन्धा बाहर तो आया पर कोई रास्ता बताने के पहले उसे यही पता लगाना कठिन हो गया कि यह अन्धा किधर से आया है और वह किधर जाना चाहता है, वह दिशा किस तरफ है बेचारे से असमर्थता ही प्रकट करते बनी । यदि विज्ञान केवल पदार्थ से ही उलझा रहा तो मनुष्य शरीर में भावनाओं के ईश्वरत्व के विकास का क्या बनेगा ? यदि सब कुछ पदार्थ को ही मान लिया गया तो प्रेम, मैत्री, सेवा सन्तोष और शान्ति की भावनाओं का क्या होगा ? क्या इनकी उपेक्षा करके मनुष्य सुखी रह सकता है ?

भौतिकतावादी दर्शन शास्त्र (मैटेलिस्टिक फिलास्फी) मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता लेकिन विज्ञान अब भौतिकता से आगे बढ़ गया है । अब यह माना जाने लगा है कि शरीर और विश्व में कुछ वस्तुएँ जैसे संस्कार-कोश (जीन्स) अमर तत्व हैं उनका कभी नाश नहीं होता ? उसी प्रकार अब भौतिकतावाद का यह सिद्धान्त 'पदार्थ नष्ट नहीं होता' पुराना पड़ गया । इलेक्ट्रॉन जो कि पदार्थ का विद्युत आवेश है ऊर्जा केन्द्र (सेन्टर्स ऑफ एनर्जी) में वाष्पीकृत हो जाता है तब पदार्थ का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है और वह ऊर्जा (एनर्जी) में बदल जाती है । पदार्थ में भार होता है पर ऊर्जा (एनर्जी) में कोई भार नहीं रह जाता ।

परामनोविज्ञान अब मानव-विज्ञान के उस अध्याय में प्रवेश कर रहा है, जिसे हम पुनर्जन्म कहते हैं और इस प्रकार विज्ञान धर्म की मान्यताओं पर आ रहा है यह कहा जा सकता है—भारतवर्ष के प्रायः सभी धर्म पुनर्जन्म को मानते हैं । मनोविज्ञान के अनुसंधानकर्त्ताओं को ऐसे लड़के-लड़कियाँ मिली हैं जो अपने पूर्व जन्मों का हाल बताती हैं । अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डॉ. स्टीवेन्सन कुछ दिन पूर्व नई दिल्ली आये उन्होंने बताया कि मैंने विश्व के लगभग ५०० मामलों का अध्ययन किया है उससे मुझे विश्वास हो गया है कि पुनर्जन्म की कल्पना कपोल कल्पित नहीं । उनकी इस सम्मत्ति को वैज्ञानिकों में बहुत महत्त्व दिया जा रहा है । यह बताता है कि वैज्ञानिक धार्मिक सत्यों से आँख नहीं मींचते वरन् वे अब उस स्थान पर हैं जहाँ से धर्म के सत्यों को सरलता से प्रतिपादित किया जा सकता है ।

वैज्ञानिक रॉबर्ट ब्लेचफोर्ड ने माना कि आज भौतिक पदार्थ और भोगवाद के पग उखाड़ दिए हैं और अब वह समय आ गया है जब विज्ञान—खाओ पीओ मौज करो (ईट-ड्रिंक एण्ड बी मैरी) के भौतिकतावादी सिद्धान्त को फोड़ देगा और आध्यात्मिक क्षेत्र में जा प्रवेश करेगा।"

डॉ. ब्लेचफोर्ड का यह सिद्धान्त अब-पश्चिम (वेस्टर्न कन्ट्रीज) में फिलास्फी आफ ब्लेचफोर्ड (ब्लेचफोर्ड के सिद्धान्त) के नाम से तीव्रता से प्रसिद्धि पा रहा है। वहाँ का पाप और दुर्भाग्य से संसप्त जीवन अब अध्यात्म की शीतल छाया में बैठने के लिए भागा चला आ रहा है जबकि धार्मिक जीवन का अन्धविश्वास भी चरमरा कर टूट रहा है और वह विज्ञान से अपने प्रमाणित तथ्यों की खोज कराने के लिए निकल पड़ा है। दोनों समन्वय चाहते हैं और इस प्रकार मनुष्य को एक सच्चा मार्ग देना चाहते हैं जिसमें इस संसार की उपस्थिति को भी न त्यागा जाय और अपनी अदृश्य सत्ता को भी भुलाया न जाय। सत्य के अनुसंधान का यही समन्वय युक्त मार्ग सच्चा और व्यावहारिक होगा।

वैज्ञानिक तरीकों से प्राप्त ज्ञान में अन्तर ज्ञान तत्व अन्तर्हित है जबकि आत्म चेतना का प्रकाश भी सत्य को प्रदर्शित करता है। दोनों ही रहस्यपूर्ण हैं और जैसा कि विलियम जेम्स ने कहा, जीवन का सत्य भी रहस्य की दिशा में ही है। रहस्य में वास्तविकता भी हो सकती है और निरर्थकता एवं पथ-भ्रष्टता भी। इसलिए जब सत्य और रहस्यों की दिशा में बढ़ें तब मनोवैज्ञानिक सत्य छुपें नहीं उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि धर्म और विज्ञान दोनों ही साथ-साथ पथ प्रदर्शन करें। जहाँ तक विज्ञान की पहुँच है वहाँ तक का अन्तर्ज्ञान ही देकर वह धर्म का रास्ता साफ करें और धर्म का कर्त्तव्य है कि वह वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ अपनी उपलब्धियों की संगतियाँ बैठाकर उस अपूर्णता को दूर करें जो विज्ञान के लिए आगे बढ़ने के आकस्मिक अवरोध के कारण उत्पन्न होती हैं। विज्ञान पदार्थ की स्थूलता का विश्लेषण कर सकता है, ज्ञान और अनुभूति के प्रसंग में वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। ज्ञान और अनुभूति के लिए विचार और भावनाओं की शक्तियाँ काम देती हैं और इनका विकास धार्मिकता के अन्तर्गत आता है। मनुष्य पदार्थ और भावनाओं का मिला-जुला स्वरूप है इसलिए सम्पूर्ण सत्य की खोज के लिए दोनों का विश्लेषण आवश्यक है अकेला विज्ञान भावनाओं की परिधि तक पहुँचकर रुक जाता है जबकि धर्म भी पदार्थ की जानकारी न दे सकने के कारण मनुष्य को उसके भौतिक आकर्षण से नहीं बचा पाता। इसलिए विकास और अन्तिम सत्य की खोज तभी सम्भव होगी जब इनमें से किसी को भी छोड़ा न जाय।

काश, विज्ञान के साथ सद्ज्ञान भी हमें मिला होता

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा संकलित आँकड़ों द्वारा पता चलता है कि संसार भर में युद्ध कार्यों पर होने वाला खर्च ६०,००० करोड़ रुपया वार्षिक है। यह प्रकट खर्च है। आमतौर से सभी देश अपने बढ़े हुए युद्ध खर्चों को छिपाते हैं और उस राशि को दूसरे विभागों में दिखाते हैं। कुछ देश तो बिल्कुल ही नहीं बताते। ऐसी दशा में यह आँकड़े वास्तविक खर्च से बहुत कम ही होंगे। अनुमान है कि यह खर्च १००,००० करोड़ से कम नहीं हो सकता। इस रकम में ८५% धन तो अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, फ्रान्स और चीन यह छः देश ही कर लेते हैं। शेष १५ प्रतिशत में अन्य सब देश हैं। यह युद्ध राशि एशिया और अफ्रीका के विशाल भूखण्डों में बसे हुए सैकड़ों छोटे-बड़े देशों की समस्त राष्ट्रीय आय के बराबर है। युद्ध खर्च हर वर्ष बढ़ ही रहा है उसमें कटौती या कमी होने की सम्भावना भी प्रतीत नहीं होती।

सन् १९६० से १९७० तक १० वर्ष में समस्त संसार में १२,००,००० करोड़ रुपया हथियार बनाने में खर्च किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति अनुसन्धान संस्था के अनुसार अब १२,००,००० करोड़ रुपया हर वर्ष नये हथियार बनाने में खर्च हो रहा है। रूस और अमेरिका यह दो बड़े देश इस खर्च का ८५ प्रतिशत भार वहन करते हैं। इन दोनों का शस्त्र व्यय १००,००० करोड़ रुपया है।

चीन, फ्रान्स, ब्रिटेन और पश्चिमी जर्मनी का शस्त्र व्यय प्रति वर्ष १२००० करोड़ रुपया है। भारत जैसे गरीब देश को भी १६०० करोड़ तो खर्च कर ही देने पड़ते हैं। नये शस्त्रों की खोज करने, उनके नये डिजायन बनाने और नये भण्डार बनाने में अमेरिका को अपने सुरक्षा बजट का ५४ प्रतिशत अर्थात् ६५०० करोड़ रुपया खर्च करना पड़ता है।

विश्व का सैनिक व्यय बढ़कर अब ३००,००० करोड़ रुपया वार्षिक पहुँचने में अब एक दो वर्ष की ही देर है। यह रकम इतनी बड़ी है कि एक रुपये का सिक्का यदि एक-एक करके एक आदमी दिन-रात गिनता रहे तो उसे यह रकम गिनने में १ लाख १० हजार वर्ष लगेंगे।

'गरीबी मिटाओ' नारे को पूरा करने के लिए दुनिया के देश जितनी रकम आर्थिक विकास के लिए लगाते हैं उसकी तुलना में २० गुना पैसा युद्ध की तैयारी के कार्यों पर लग जाता है।

आणविक प्रहार कर सकने की क्षमता वाले केन्द्रों की संख्या अमेरिका में ४६०० है। रूस में ऐसे केन्द्र २००० हैं। अब संख्या की प्रतिद्वन्द्विता न करके इन देशों द्वारा मारक क्षमता और दूर तक जल्दी से जल्दी कई निशाने एक साथ लगाने वाले प्रक्षेपणास्त्रों की दिशा में होड़ को मोड़ दिया है। 'भले ही थोड़ी या अधिक उत्कृष्ट' की नीति अब अस्त्र प्रतिद्वन्द्विता की धुरी बन गई है।

अमेरिका के पास छोटे-बड़े ३५ हजार अणुबम हैं। जो बटन दबाते ही किसी भी क्षेत्र पर अन्तर्द्वीपीय मार करने के लिए तैयार खड़े हैं। उन्हें ले दौड़ने वाले एटलस, टिटन, पोलरिस किस्म के दो हजार मील तक की मार करने वाले प्रक्षेपणास्त्र बिल्कुल सुसज्जित हैं। यह पलक मारते लक्ष्य पर जा पहुँचेंगे और किसी भी देश को धूलधूसरित कर देंगे।

६ अगस्त, १९४५ को जापान के हिरोशिमा नगर पर अणुबम गिराया गया था। इसके बाद दूसरा बम नागासाकी पर गिराया गया था। इसमें ६० हजार व्यक्ति तत्काल मर गए थे और एक विशाल भू-भाग जल भुनकर खाक हो गया था। तब से लेकर अब तक इन ३० वर्षों में अणु-अस्त्रों की भारी वृद्धि हुई है। जापान पर गिराए गए बम २००० टन टी. एन. टी. शक्ति के थे। अब जो उद्जन बम बन रहे हैं वे ६००००००

टन उच्च शक्ति के हैं । इनकी तुलना में जापान पर गिरे बम खिलौने मात्र थे ।

अणुबमों के चार प्रभाव होते हैं—(१) विस्फोट, (२) ताप, (३) तात्कालिक विकिरण, (४) रेडियोधर्मी धूल । वे अन्धा बना देने वाली चमक के साथ फटते हैं, उनसे भयंकर ज्वलन गैसें आकाश की ओर लपकती हैं । धमक इतने जोर की होती है कि १२ मील तक के भवन बुरी तरह ध्वस्त हो जाते हैं । ३ मील तक की मोटी-मोटी कंकरीट की दीवारें चूर-चूर हो जाती हैं । १५ मील तक के घेरे में बादल, कोहरा तथा अन्य वायुमण्डलीय वस्तुएँ अग्नि पुंज का रूप धारण कर लेती हैं और भयंकर आग्नेय तूफान खड़े हो जाते हैं ।

विस्फोट के एक मिनट बाद ही विकिरण फैलने लगता है, उसमें न्यूट्रॉनों तथा बीटा और गामा किरणों का प्रवाह बहने लगता है और वे अभेद्य समझे जाने वाले अवरोधों को पार करती हुई आर-पार हो जाती हैं । धमाका, ताप और विकिरण यह वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से तीन हैं, पर सामान्य जानकारी के हिसाब से तीनों का समन्वित रूप भयावह महाविनाश के रूप में ही सामने आता है । प्राणियों और पदार्थों में जो कुछ भी उसकी चपेट में आ जाता है, भस्मसात् होकर रहता है ।

इस तात्कालिक विनाश के बाद रेडियोधर्मी धूल का नम्बर आता है । यह विस्फोट के साथ आकाश में उड़ने वाले धूल-कणों के साथ विषाक्त, विकिरण सहित अन्तरिक्ष में उड़ने लगती है । इसका एक छोटा भाग तो कुछ ही दिन में जमीन पर उतर आता है, कुछ वर्षा के पानी के साथ भूतल पर गिरता है और कुछ ऐसा होता है जो दशाब्दियों तक आसमान में उड़ता रहता है और थोड़ा-थोड़ा करके नीचे आता है । सन् १९५४ में विकिनी स्टोल वाले परीक्षण अणु विस्फोट की रेडियो धर्मी धूल ने ७०० वर्ग मील क्षेत्र को दूषित किया था और १९५५ के परीक्षण में अमेरिका की ६३ हजार मील जमीन खराब थी ।

अब तक अणु विस्फोट के लिए जितने परीक्षण हो चुके हैं उतनों का मानव जाति को क्या दुष्परिणाम भुगतना पड़ेगा । इसका हिसाब संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक वैज्ञानिक समिति ने लगाकर बताया है कि जो हो चुका है उसका विषाक्त प्रभाव हवा में मौजूद है और उसके फलस्वरूप वर्तमान तथा अगली पीढ़ी में प्रायः डेढ़ करोड़ बच्चे शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से विकृत स्थिति लेकर जन्मेंगे । फिर उनकी सन्तानें भी गई-गुजरी किस्म की होती जायेंगी । शिशु जन्म की इस विकृति के अतिरिक्त इस पिछले प्रभाव के कारण २० लाख व्यक्तियों को केंसर, ल्यूकोमिया आदि रोग लगेंगे । हर डेढ़ हजार पीछे एक आदमी को इस दारुण व्यथा को सहते हुए प्राण त्यागने पड़ेंगे । करोड़ों लोगों को प्रायः दस वर्ष पूर्व अकाल मृत्यु से मरना पड़ेगा ।

संसार भर में गरीबी, बेकारी की कमी नहीं है । अमेरिका सबसे सम्पन्न देश है, पर उसकी पंचमाश आबादी अर्थात् लगभग चार करोड़ व्यक्ति अभावग्रस्त हैं । उस देश में लगभग एक करोड़ व्यक्तियों को सरकार गुजारे का भत्ता देती है । रूस और चीन का युद्ध व्यय बहुत बढ़ा-चढ़ा है तो भी उन देशों में भरपेट रोटी न पाने वालों की संख्या कम नहीं है ।

अमेरिका की वायु सेना ने द्वितीय महायुद्ध में २७,००,००० टन बम गिराये थे । इन हमलों में उस देश के २२,००० बम वर्षक विमानों ने भाग लिया था । १,५८,००० मरे थे । जापान के विरुद्ध भी अमेरिका ने १६० हजार टन बम गिराए थे । इनमें ४८५ जेट विमान और ३००० वायु सैनिक खेत रहे थे । धन विनाश की दृष्टि से इन देशों के ३० प्रतिशत कारखाने तथा मकान आदि नष्ट हो गए थे । साथ ही लाखों आदमी मरे थे ।

जूलियस सीजर के जमाने में एक व्यक्ति के मारने में मुश्किल से पाँच रुपया लागत आती थी । नैपोलियन के जमाने में वह बढ़कर एक हजार रुपये हो गई थी । प्रथम विश्व युद्ध में वह लागत १५ हजार रुपया थी । द्वितीय विश्व युद्ध में वह बढ़कर सात गुनी अर्थात् १ लाख रुपया हो गई थी । अब अमेरिका को वियतनाम युद्ध में एक आदमी के लिए १३ लाख रुपया औसतन खर्च करना पड़ा है ।

अभी-अभी बन्द हुए वियतनाम युद्ध में ५६,५५० अमेरिकी मारे गए । १५० अरब डालर खर्च हुए । इस दृष्टि से प्रत्येक जीवित वियतनामी पर ७००० डालर खर्च हुए । इन १४ वर्षों में ३,०३,६२२ अमेरिकी घायल हुए और २६४६ लापता । उत्तरी वियतनाम को रूस और चीन से भी १० अरब डालर की मदद मिली है । विनाश प्रयोजनों में लगी यह जनशक्ति और धन शक्ति यदि उस क्षेत्र के कल्याणकारी प्रयोजनों में लग सकी होती तो उसका सत्परिणाम कल्पनातीत होता ।

बड़े देश न केवल अपने लिए हथियार बनाते हैं वरन् अन्य देशों को भी उनसे लादते जा रहे हैं । नगद उधार, मुफ्त में हर तरह वे बेचे और बाँटे जाते हैं । इससे लड़ने की आतुरता पकड़ते हैं और अपने से छोटे या बराबर वालों से छोटे से कारणों को लेकर उलझ पड़ते हैं और भयानक धन-जन का विनाश करते हैं ।

दूसरे विश्व युद्ध से लेकर अब तक अकेले अमेरिका ने विभिन्न देशों को २२ लाख बढ़िया राइफलें, १४ लाख मामूली बन्दूकें, ८३ हजार मशीनगनें, ३१ हजार मोर्टार्स, २५ हजार फील्डगन, ६३००० लड़ाकू हवाई जहाज, २५०० समुद्री युद्ध जहाज तथा नौकाएँ, २० हजार टैंक, ४५०००० ट्रक, ३१ हजार प्रक्षेपणास्त्र निर्यात किए हैं । यह माल लगभग ५७ देशों को गया है । रूस का भी जहाँ प्रभाव है वहाँ वह भी अपने शस्त्र निर्माण की मण्डी बनाता जा रहा है ।

युद्ध तैयारी के समर्थन में बड़े देशों के तर्क विचित्र हैं । वे इसे अपने देश की अर्थव्यवस्था को ठीक रखने के लिए भी आवश्यक समझते हैं । अमेरिका के अर्थशास्त्री जेम्स बारवर्ग—लिखित पुस्तक 'निःशस्त्रीकरण अपने समय को चुनौती' में लिखा है । यदि अमेरिकी सरकार ने निःशस्त्रीकरण की नीति अपनाई तो उसके ५५ लाख कारीगर बेकार हो जायेंगे और उन्हें दूसरा काम देना कठिन होगा । ब्रिटेन अणु चालित नई किस्म की पनडुब्बियाँ बना रहा है, उनमें से प्रत्येक की कीमत २२ करोड़ रुपया है । इनके बनाने की योजना में ढेरों धन फँस चुका है । आगे काम चालू रखना है तो रकम और भी फँसेगी । बन्द करते हैं तो लगी पूँजी बेकार जाती है ।

वायुमण्डल का पानी, बढ़ती हुई प्रदूषण, भूख, बीमारी, बेरोजगारी, अशिक्षा, यातायात, दुर्भिक्ष, पिछड़ापन, फूट, फसाद, बढ़े हुए अपराध आदि अनेकानेक समस्याएँ संसार के सामने मुँह बाये खड़ी हैं और अपना समाधान माँगती हैं किन्तु उस ओर

चिन्ह पूजा के लिए—प्रचार प्रोपेगण्डा का उद्देश्य पूरा कर सकने जितनी लकीर पीट दी जाती है, असली ध्यान तो युद्ध के लिए अधिकाधिक बढ़ी-चढ़ी तैयारी करने में लगा हुआ है । धन भी उसी के लिए पानी की तरह बहाया जाता है फिर अन्य कार्यों के लिए गुंजाइश ही नहीं बचती ।

संसार के हर व्यक्ति पर औसत फैलाया जाय तो लगभग ४०० रु. वार्षिक का औसत आता है । जबकि भारत जैसे देशों के नागरिकों की पूरी औसत आमदनी ही इतनी है । अकेला भारत ही नहीं, दूसरे २६ देश और भी ऐसे हैं जिनकी आय इतनी ही या इससे भी कम है । विश्व के समस्त उत्पादन का ७ प्रतिशत खर्च युद्ध की तैयारियों पर इन दिनों हो रहा है ।

विनाश साधन जुटाने में लगी हुई हमारी बुद्धि यदि विकास को लक्ष्य मानकर चल रही होती तो यह संसार स्वर्ग जैसी परिस्थितियों का आनन्द ले रहा होता । विज्ञान के क्षेत्र में हमने विकास किया उससे सुख-साधन जुटाये पर वह ज्ञान प्राप्त न किया जा सका जिसके आधार पर सद्भावनाएँ बढ़तीं और उपलब्धियों का श्रेष्ठ सदुपयोग बन पड़ता । जब तक सद्ज्ञान को प्रश्रय न मिलेगा तब तक प्रत्येक भौतिक उपलब्धि हमारे विनाश का दिन निकट लाने वाली ही सिद्ध होती रहेगी ।

धार्मिक परिपेक्ष्य में विज्ञान की सीमितता

१९वीं शताब्दी के योरोपीय वैज्ञानिकों ने यह खोज की कि मनुष्य शरीर भी परमाणुओं से बना है, उस परमाणु को जीवित-कोश (सेल) कहा गया । वैज्ञानिकों ने बताया कि सेल का निर्माण निश्चित रूप से उन्हीं रासायनिक एटम से होता है, जिससे निर्जीव पदार्थों का निर्माण होता है । उन सब का निर्देश समान प्राकृतिक नियमों द्वारा होता है, किन्तु जब वैज्ञानिकों से प्रश्न किया गया है कि निर्जीव पदार्थों में क्रियाशील शक्ति क्या है और वे प्राकृतिक नियम क्या हैं तो वैज्ञानिक उसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सके ।

सर ए. एस. एडिग्टन ने कहा—"कुछ अज्ञात शक्ति काम कर रही है, हम नहीं जानते वह क्या है ? पर मैं चेतना को मुख्य मानता हूँ, भौतिक पदार्थ को गौण । पुराना नास्तिकवाद अब चला जाना चाहिए, अध्यात्म इसी चेतना का विषय है उसे किसी प्रकार डिगाया नहीं जा सकता है ।"

डॉ. गाल ने कहा—"मेरी राय में केवल एक ही मुख्य तत्व है जो देखता है, अनुभव करता है, प्रेम करता है, विचारता है, याद करता है आदि, परन्तु इस तत्व को भिन्न-भिन्न कार्य करने के लिए, भिन्न-भिन्न प्रकार के भौतिक साधनों की आवश्यकता पड़ती है ।"

'दि ग्रेट डिजाइन' नामक पुस्तक में अनेक वैज्ञानिकों ने मिलकर सहमति प्रकट की और लिखा है—"यह संसार बिना चेतन-सत्ता की मशीन नहीं है । यह यों ही नहीं बन गया । जड़ को यदि एक पौधा मानें तो यह भी निश्चित है कि उसके पीछे एक मस्तिष्क, चेतन-शक्ति काम कर रही है, उसका नाम चाहे कुछ भी हो पर वह विज्ञान की शक्ति के परे है ।"

कुछ वैज्ञानिकों ने उक्त विचारों को सत्य नहीं माना और जीवन को रासायनिक क्रिया मानकर ही आगे की खोजों को जारी रखा । जीवित कोशिका के और अधिक विश्लेषण से पता चला कि कोशिका प्रोटोप्लाज्मा नामक तत्व से बनी है । एक प्रोटोप्लाज्मा में १२ करोड़ से अधिक मालेक्यूल्स पाये जाते हैं । यह इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें आँखों से देखा जाना सम्भव नहीं है । प्रोटोप्लाज्म १२ तत्वों से मिलकर बना है—कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, सल्फर, कैल्सियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, लोहा, फॉस्फोरस, क्लोरीन और सोडियम । प्रोटोप्लाज्म पर रासायनिक क्रियाओं का प्रभाव पड़ता है । भोजन का उपयोग करने और उससे बढ़ने की क्षमता होती है । यह क्षमता रहस्यमय सृजनात्मक प्रक्रिया द्वारा व्यक्त होती है । एक सेल दो भागों में बँट जाता है । उन दो के भी दो + दो = चार हो जाते हैं, फिर चार के दूने ८ हो जाते हैं, इस तरह संख्या अपने आप बढ़ती रहती है । प्रत्येक सेल केन्द्रक (न्यूक्लियस) से बँधा होता है, बाँधने वाले तत्व को क्रोमोटोन कहते हैं, वही सम्पूर्ण जीवन का नियन्त्रण करता है, किन्तु यदि ऊपर के सभी तत्वों को अलग-अलग लेकर मिलाएँ तो उस रासायनिक प्रोटोप्लाज्मा में चेतना नहीं आती, यही वह रहस्यमय प्रक्रिया है जिसे जानने में वैज्ञानिक अब तक असमर्थ रहे हैं । उस जीवित कोश (सेल) में (१) विकास की शक्ति, (२) भोज्य पदार्थों को ऊर्जा (हीट) और शक्ति (एनर्जी) में परिवर्तित करने की शक्ति, (३) गति, (४) जन्म देने की शक्ति थी, वह कौन थी, जब तक विज्ञान इस बात का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाता, तब तक उसका सम्पूर्ण यान्त्रिक ज्ञान अपूर्ण है । यह विज्ञान की पहली सीमितता है कि वह चेतना के गुणों का अध्ययन कर लेने के बाद भी चेतना के मूल अस्तित्व पर कुछ प्रकाश नहीं डाल पाता । निर्जीव पदार्थों में मालेक्यूलर गति होती है पर जीवित पदार्थों में सम्पूर्ण पिण्ड की गति की क्षमता होती है, उस सर्वशक्तिमान् सत्ता का बोध धर्म और विश्वास के द्वारा ही सम्भव है । यद्यपि विकिरण (रेडियेशन), गुरुत्वाकर्षण (ग्रैविटेशन) आदि को लेकर एटम, मालीक्यूल्स और पदार्थ के इलेक्ट्रॉन्स की खोज अभी जारी है पर भावनाओं की सूक्ष्मता तक यान्त्रिक शक्ति पहुँच सकती है, इस पर सहसा विश्वास नहीं होता ?

दूर की क्यों कहें, वैज्ञानिकों से जब यह पूछा जाता है कि इस प्रोटोप्लाज्म की रासायनिक उत्पत्ति कैसे हुई तो उसका भी विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं है ।

बिल्ली सीधे मार्ग चली जा रही है, शरीर की किसी रासायनिक इच्छा से प्रेरित होकर माना वह किसी चूहे पर झपट पड़ती है और उसे पकड़ लेती है पर इतना साहस करने के बाद भी उसे यह भय रहता है कि कोई उसे इस कार्य के लिए दण्ड न दे अथवा और कोई दूसरा उसे छुड़ा न ले, वह चूहे को लेकर किसी एकान्त और सुरक्षित स्थान में जाती है । साहस और भय, प्रेम और घृणा, आकाश में उछलना और पानी में डुबकी लगाना, मारना और दुःखी होना यह परस्पर विरोधी क्रियाएँ क्यों उत्पन्न होती हैं । कोई प्राणी आगे चलकर दाएँ घूमेगा या बाएँ, चलता रहेगा या रुक जायेगा, इस तरह से संवेग और प्रतिक्रियाएँ जीवों में कहाँ से उठती हैं । यदि इन्हें भी रासायनिक प्रभाव कहा जाय तो एक ही माता-पिता से उत्पन्न दो बच्चों में जिन्हें माता-पिता के जीन्स भी समान मिले, परिस्थितियाँ समान मिलीं, आहार समान मिला फिर यह गुण-क्रम क्यों परिवर्तित हो जाते हैं, इसका कोई निश्चित उत्तर विज्ञान के पास नहीं है और न ही उस सूक्ष्म

चेतन सत्ता के इन व्यापक गुणों के अध्ययन का कोई यन्त्र विज्ञान विकसित कर पाया है ।

विज्ञान कहता है कि एटम (अणु) पदार्थ की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्था है । शक्ति एनर्जी, एटम से ही पैदा होती है । विज्ञान यह भी कहता है कि संसार में किसी वस्तु का नाश नहीं होता । अर्थात् यदि लकड़ी को जलाने से पूर्व तौल लें और मानें कि वह तौल ५ किलो थी । इसके बाद उसे जला दें । जलाते समय (१) धुआँ, (२) भाप, (३) गर्मी, (४) प्रकाश । इन सबकी तौल की जाती रहे और अन्त में (५) जो राख बचे उसे, इन सबको तौल लें तो यह वजन ५ किलो ही होगा । तात्पर्य यह कि गर्मी, प्रकाश आदि में परिवर्तित हुए कण स्थूल लकड़ी में व्याप्त सूक्ष्म परमाणु ही थे, जो अपने-अपने गुण (नेचर) में बदल गए, यह एक प्राकृतिक सिद्धान्त है और समझ में आ जाता है, किन्तु एटम जिसका कोई न भार है, न घनत्व वह इतनी अधिक शक्ति देता है, जिससे हिरोशिमा और नागाशाकी जैसे भू-खण्डों को पल भर में नष्ट कर सकता है । एटम् के अन्दर यह शक्ति कहाँ से आयी इसका कोई उत्तर विज्ञान के पास नहीं है और इसीलिए यह जानना पड़ता है कि कोई अन्य शक्ति है जो रासायनिक सत्ता से कहीं अधिक व्यापक और बलवान है ।

एक और बड़ा भारी प्रश्न है जिसका समाधान प्रस्तुत करने में विज्ञान परिमित रह गया है और वह यह है कि प्रकृति की यन्त्रवत् सत्ता (मैकेनिज्म) कहाँ से और क्यों बना और वह किस ओर जा रहा है, उसके पीछे क्या है और उसका भविष्य क्या है ?

'विज्ञान की परिमितता' (लिमिटेशन ऑफ साइन्स) के लेखक जे. डब्लू. एन. सुलीवान ने इस प्रश्न को बड़ा गहराई से देखा और लिखा कि ब्रह्माण्ड का वैज्ञानिक रूप स्पष्ट तथा पूर्ण विश्वसनीय है । यह हमारी रुचि को विषयों की कार्य-विधियों (फिनामेनन) में लगाये रहता है । उदाहरणार्थ उम्र, स्थिति, साइज, वेग और तारों की रासायनिक रचना के बारे में काफी ज्ञान मिला है । पदार्थ छोटे-छोटे विद्युत कणों से निर्मित होता है, जो एकदूसरे से निश्चित तरीके से मिले रहते हैं । इस जानकारी से पदार्थ के सम्बन्ध में हमें बड़ा सन्तोष हुआ है किन्तु जब हम उस विज्ञान की ओर जाते हैं, जो जीवन से सम्बन्धित होता है, तब इसका काम कम सन्तोषजनक होता है । बहुत से मौलिक प्रश्न उभरते हैं और हम उनका हल नहीं जानते । उदाहरण के लिए जीवाणु (लिविंग आर्गेनिज्म) को हम पूर्ण मानते हैं, फिर भी जीवाणु अपने ही अंश या भाग का योग नहीं लगता और उसका विस्तार चेतन प्राणियों में किस समय हुआ है, इसका अनुमान लगाना कठिन हो जाता है । यदि जीवाणु को ही निरन्तर बढ़ने वाली प्रक्रिया मानें तो भी यह प्रश्न उठेगा कि उसका स्फुरण किसी एक बिन्दु से हुआ है और वह क्या है, विज्ञान यह बताने में असमर्थ है । उस व्यक्तिगतता (इनडिविज्युअलिटी) का कोई निश्चित समाधान विज्ञान के पास नहीं है ।

कारण परिणाम के सिद्धान्त (प्रिन्सिपल ऑफ काजेशन) निर्जीव संसार को नियन्त्रित करता है, ऐसा कुछ लोगों का विचार है । सम्पूर्ण प्राकृतिक नियम भी अन्तिम रूप से एक ही यन्त्र शास्त्र में सम्मिलित लगते हैं अर्थात् पदार्थ का आविर्भाव, उसमें निरन्तर गति और रूपान्तर होता रहता है, उसी के फलस्वरूप संसार का स्वरूप बदलता रहता है । यदि यह सब यन्त्रवत चलता रहता होता तो विज्ञान के इस कथन को मानने में कोई आपत्ति न होती कि संसार में रासायनिक परिवर्तनों से ही विश्व बनता-बिगड़ता रहता है पर जब विस्तृत ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म नियमों और गणित के सिद्धान्तों पर दृष्टि डालते हैं तो उनमें एक सुनिश्चित नियमितता के साथ-साथ कुछ ऐसी विलक्षणताएँ भी दिखाई देती हैं, जिससे यह पता चलता है कि यह संसार किसी मूल-बिन्दु की इच्छा पर चल रहा है और वह उन नियमों में स्वेच्छा से परिवर्तन कर सकता है । उसका वर्णन हम ब्रह्माण्ड की खगोलीय स्थिति पर प्रकाश डालते समय करेंगे । उस वृहत् क्रम व्यवस्था को स्थिर रखने वाली सचेतन शक्ति के बारे में विज्ञान का कोई अनुमान नहीं है ।

विज्ञान की वह जानकारियाँ जो ऊपर प्रदर्शित की गई हैं, धार्मिक विज्ञान का एक अत्यन्त लघु अंश है । योगवाशिष्ठ में इस सम्बन्ध में सारी जानकारी इस प्रकार दी है—

प्रत्येकमेव यच्चित्तं तदेवंरूपशक्तिमत् ।
प्रत्येक मुदिता राम नूनं संसृति खण्डकः ॥

—३/४०/२६, ४/११/२७

परमाणौ परमाणौ सर्गवर्गा निरर्गलम् ।
महाचितेः स्फुरन्त्यर्कसचीव त्रसरेणवः ॥

—३/२७/२६

जगद्‌गुञ्जासहस्राणि यत्रासंख्यान्यणापणौ ।
अपरस्पर लग्नानि काननं ब्रह्म नाम तत् ॥

—४/१८/६

अर्थात्—हे राम ! प्रत्येक चित्त में इस प्रकार सृजन शक्ति है । जैसे सोते हुए अनेक सैनिकों के मन में अनेक स्वप्न-जगत् पृथक-पृथक उदित हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक जीव का संसार उसके भीतर अलग-अलग उदित होता है । जगत्भ्रम सब जीव को अलग-अलग होता है वह उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता । जिस प्रकार सूर्य की किरणों में अनेक त्रसरेणु दिखाई पड़ते हैं, विश्व के परमाणु-परमाणु के भीतर उसी प्रकार अनन्त सृष्टियाँ दिखाई देती हैं जैसे धुँधुँची के गुंजाफल एक दूसरे से अलग-अलग लटके रहते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म में अणु-अणु के भीतर अनेक सृष्टियाँ हैं ।

परमाणु और पदार्थ सम्बन्धी इस जानकारी से ब्रह्म शक्ति या विश्व की सृजनात्मक प्रक्रिया का महत्त्व बहुत अधिक है, किन्तु उसकी जानकारी देना और मनुष्य की अहं समस्याओं का समाधान देना विज्ञान के बलबूते की बात नहीं है । वह श्रद्धा और भक्ति, आस्था और विश्वास के द्वारा जाना और अनुभव किया जा सकता है, यह धर्म के अंग हैं, इसलिए विज्ञान जहाँ रुक जाता है, उसके आगे धर्म और भावनाएँ नियन्त्रण करती हैं । मनुष्य जीवन में इसीलिए विज्ञान की अपेक्षा धर्म अधिक व्यापक और महत्त्वपूर्ण है, उसके बिना हम न तो अमरत्व की कल्पना कर सकते हैं और न जन्म-मरण, रोग-बीमारी, क्रोध, काम, हिंसा आदि कष्टों से मुक्ति की । धर्म ही हमें शाश्वत मुक्ति और चिर-आनन्द प्रदान करने की क्षमता रखता है क्योंकि वह चेतना-मूल का विज्ञान है ।

विज्ञान और धर्म में पारस्परिक सम्बन्ध

प्रकृति और परमेश्वर की तरह विज्ञान और धर्म दो महाशक्तियाँ हैं। एक पुरुष दूसरी नारी, की तरह दो विपरीत वस्तुएँ लगती हैं, पर यदि वे दोनों एक दूसरे को काटने लग जायें तो गृह कलह की तरह संसार में सर्वत्र अशान्ति ही अशान्ति फैल सकती है। इस युग में बात स्पष्ट दिखाई देने लगी है। इसलिए आज यह तय कर लेना आवश्यक है कि वे दोनों पूरक बनकर रहें अथवा परस्पर विरोध करते रहें।

भावी पीढ़ी को मानसिक दिग्भ्रान्ति से बचाने के लिए यह प्रश्न सुलझाना आवश्यक है। धर्म के गिरते हुए मूल्य को देखकर ऐसा लगता है कि कहीं आने वाली पीढ़ियाँ पूर्णतया पदार्थवादी होकर अपनी आध्यात्मिक शक्तियाँ नष्ट न कर डालें।

हमारी तरह से ऐसे विचार दुनिया के अनेक मनीषियों के मस्तिष्कं में आये और उन्होंने अपनी-अपनी तरह के विचार भी दिए। किसी भी ठोस निर्णय के लिए उसके विचारों का बड़ा भारी महत्त्व हो सकता है। एक अमेरिकी स्नातक श्री हेरोल्ड केशेलिंग के मस्तिष्क में भी यह प्रश्न उठा था। उन्होंने "विज्ञान और धर्म में क्या सम्बन्ध है ? इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन किया और अपने निर्णयों को एक 'थीसिस' के रूप में 'साइन्स एण्ड रिलीजन' (विज्ञान और धर्म) के नाम से पेन्सिलवोनिया यूनीवर्सिटी को प्रस्तुत (सम्मिट) किया। थीसिस के मध्य-पृष्ठों में श्री केशेलिंग ने भी चेतावनी देते हुए लिखा है कि—"हमें व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से इस परिस्थिति की ओर सच्चे रूप में ध्यान देना होगा, हमेशा के लिए यह तय करना होगा कि वास्तव में धर्म और विज्ञान में कोई समझौता हो सकता है या नहीं।"

इसी सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने आगे लिखा—"कई धार्मिक संस्थाओं ने यह पहचान लिया है कि धर्म और विज्ञान की सम्मिलित प्रगति से मनुष्य जाति की यथार्थ प्रगति हो सकती है। इस ओर उन्होंने काम भी प्रारम्भ किया है इससे अनेक मानवीय समस्याओं के सही हल सामने आये हैं। विज्ञान की महत्त्वपूर्ण बातों में कई बातें ऐसी हैं जो धार्मिक संस्थाओं के लिए उचित हैं तथा उनकी स्वयं की जानकारी का स्पष्टीकरण करती हैं। पिछले दिनों धर्म विज्ञान का संघर्ष मुख्य बातों में सहयोग के कारण होता था जो अब समाप्त होता जा रहा है। पहले जो बातें विरोधी लगती थीं, अब पूर्ण रूप से एक रूप और अनुरूप प्रतीत होती हैं।"

यह विचार वस्तुतः मार्गदर्शक हैं। आइन्स्टीन, न्यूटन, गैलीलियो जैसे महान् वैज्ञानिकों को अन्ततः यह स्वीकार करना पड़ा कि सब कुछ पदार्थ ही नहीं है कुछ मानसिक और भावनात्मक सत्य भी संसार में है विज्ञान का दृष्टिकोण उनका स्पष्टीकरण करना है। इस तरह के वक्तव्यों के बाद ही रूढ़िवादी वैज्ञानिक और धार्मिक व्यक्तियों, दोनों को अपना हठ समझौते के लिए बदलना पड़ा। आज पाश्चात्य देशों में इसीलिए लोग विज्ञान की बातों की संगतियाँ आध्यात्मिक सत्यों से जोड़ने लगे। उसे उनकी समझदारी कहना चाहिए। विज्ञान कितना ही आगे बढ़ जाय हम मनुष्य-जीवन के मूल-भूत सत्यों यथा—जन्म-मरण, परलोक पुनर्जन्म, कर्मफल, परमात्मा आदि के अस्तित्व और मानव-मानव के बीच के सम्बन्धों को ठुकरा नहीं सकते। उनको सुलझाने के लिए भावनात्मक आधार बनाना ही पड़ेगा और तब-तब धर्म की उपस्थिति अनिवार्य होगी ही।

धर्म और विज्ञान में सम्बन्ध स्थापित करने में प्रमुख कठिनाई इनकी वास्तविक प्रकृति के बारे में प्रचलित मिथ्याबोध (मिस अण्डरस्टैडिंग) है। धर्म को अध्यात्मवादियों ने इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि विज्ञान उस बात को कभी नहीं मान सकता जैसे कोई भगवान का नाम नहीं लेगा तो नरक को चला जायेगा। 'वैज्ञानिक कहता है यह भी कोई बात हुई जो कुछ संसार में है ही नहीं उसका नाम कैसे लें यदि है भी तो क्या वह इतना स्वार्थी है कि केवल अपना नाम न लेने पर कठोरतम दण्ड दे सकता है "ऐसा व्यक्ति भगवान हो भी सकता है।" इसी बात को यदि यों कहा जाता है कि "मनुष्य जब तक संसार की नियामक सत्ता (क्रियेटिव सावरेन) से सम्पर्क नहीं बनाता उसके विचार स्वार्थवादी, भोगवादी होते जाते हैं, उससे आत्म-शक्तियों का हनन होता है और जब शक्तियाँ नहीं रहतीं तभी मनुष्य दुःखी रहता है। अशक्त मनःस्थिति में छाई हुई वासनाएँ ही नरक की तरह हैं" तो सम्भवतः विज्ञान का समर्थन करने वाले लोगों की समझ में भी बात आती और वे एक विशाल दृष्टिकोण से चिन्तन करने की आवश्यकता अनुभव करते। झगड़ा इसलिए पैदा हुआ कि धर्म विज्ञान के तर्क (लॉजिक) को सन्तुष्ट नहीं कर सका।

इसी तरह वेदान्त के वैशेषिक विज्ञान के पदार्थ, समय, ब्रह्माण्ड, गति और इन समस्त परिस्थितियों का कारण और उद्देश्य क्या है इसका बात का कोई सन्तोषजनक उत्तर देने से पहले ही कह दिया कि संसार में ऐसी कोई चेतन सत्ता है नहीं जिसे आत्मा या परमात्मा कहें। उसने ऐसा कहते समय मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को ठुकरा दिया इसलिए धर्म बिगड़ खड़ा हुआ। यह नासमझी ही दोनों में झगड़े का कारण बनी अन्यथा अन्तर्ज्ञान दोनों ही दिशाओं में एक रूप, एक निश्चित और यथार्थ उद्देश्य की ओर बढ़ रहा है।

प्रोफेसर हरवर्ड डिंगले जो लन्दन विश्वविद्यालय के सुप्रतिष्ठित खगोल पिण्डों के भौतिकीय एवं रासायनिक विज्ञान के ज्ञाता (एस्ट्रोफिजिस्ट) थे उन्हें जब इससे सन्तोष नहीं हुआ तो उन्होंने मनुष्य जीवन का लक्ष्य निर्धारित करने के लिए विज्ञान का इतिहास (हिस्ट्री ऑफ साइन्स) और दर्शन शास्त्र (फिलॉस्फी) भी पढ़ी। दोनों प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने जो निष्कर्ष दिए वह काफी महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय हैं। वे लिखते हैं—"जब हम उस विज्ञान की प्रकृति (नेचर ऑफ साइन्स) के बारे में विचार करते हैं जो आजकल प्रचलित है एवं जिसका आजकल उपयोग हो रहा है तो हम ऐसी दुःखद परिस्थितियाँ पाते हैं जिन्हें देखकर भगवनान के दूत भी रो पड़ें। यह ऐसा युग नहीं है जिसमें हम विज्ञान की शक्ति को महत्त्व दें, विज्ञान की सत्यता पर ही ध्यान दें और अध्यात्म के सत्यों को पूर्णरूपेण भुला दें क्योंकि उसके दुःखद परिणाम भी हमारे सामने प्रस्तुत हैं।"

इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस आदि संसार के वह देश हैं जहाँ लोग विज्ञान में जन्म लेते हैं, विज्ञान में पलते हैं, विज्ञान में ही खाते-पीते, चलते हैं किन्तु इन देशों में ७० प्रतिशत लोगों की मानसिक स्थिति उद्विग्नता से भरी है, दुनिया में सबसे ज्यादा हत्याएँ और आत्म-हत्याएँ अमेरिका में होती हैं। ७० प्रतिशत

लोग नींद की दवाइयाँ लेकर नींद बुलाते हैं । रात में विवाह सवेरे तलाक (नाइट मैरिजेज मारनिंग डाइवर्स) वहाँ का प्रसिद्ध मुहावरा बन गया है । वहाँ प्रति क्षण आकाश में हवाई जहाजों की गूँज छाई रहती है शहरों में शोर-शराबा इतना बढ़ गया है कि जिसे कोई शारीरिक कष्ट नहीं वह भी कुछ विलक्षण सी तान्त्रिक परेशानी अनुभव करता है । कुछ बीमारियाँ केवल इन्हीं देशों में होती हैं दूसरे देशों के डॉक्टर उनका नाम तक नहीं जानते । यह क्या है—धर्म विहीन, आस्था विहीन, भौतिकतावाद का विषदंश । खाते-पीते लोग भी वहाँ शान्ति अनुभव नहीं करते । माता-पिता और बच्चों में भावनात्मक सम्बन्ध बहुत सीमित हो गए हैं । वहाँ लोग धर्म की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव कर रहे हैं ।

विज्ञान एवं भौतिकतावाद को हम पूर्णतया छोड़ नहीं सकते पर उसी प्रकार धर्म के बिना भी हमारी शान्ति स्थिर नहीं रह सकती इसलिए इन दोनों में समन्वय की जीवन पद्धति अपनानी ही पड़ेगी तभी हम सुखी और शान्तिपूर्ण जीवनयापन कर सकते हैं ।

अध्यात्म और विज्ञान की सहकारिता

विकृत बुद्धिवाद ने उन आधारों को भी उलट-पुलट कर रख दिया है जिन्हें मानवी गरिमा का प्राण एवं मेरुदण्ड कहा जाता रहा है । क्यों ? कैसे ? की जिज्ञासा को तो इससे मान्यता मिलती रही है, पर अब स्थिति अतिवाद की चरम सीमा तक पहुँच गई है । यों मान्यता प्राप्त पिता को बारम्बार पिता मानने के लिए भी माता की साक्षी को ही सामयिक मानना पड़ता है । विश्वास अनिवार्य हो जाता है । उसे न अपनाया जाय तो मन सदा शंका-शंकित ही बना रहेगा । अनिश्चितता की शंकाशील मनःस्थिति में मनुष्य सदा खिन्न और विपन्न ही रहेगा ।

आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता आदि ऐसे तीन पक्ष हैं जो मनुष्य के कारण, सूक्ष्म, और स्थूल शरीर को सुसंयत रहने, शान्ति पाने और प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए नितान्त आवश्यक है किन्तु कठिनाई यह है कि इन सनातन सत्यों को भी शंकित मानस के संकीर्ण घेरे में भीतर कोने में उतार दिया गया । अनास्था के माहौल में मात्र प्रत्यक्ष ही सब कुछ रह गया है । प्रत्यक्षवाद और विज्ञान के अतिरिक्त और सभी कसौटियों से इन दिनों उदीयमान आवेशों ने ऐसे सभी तथ्यों को नकार दिया है जो श्रद्धा पर अवलम्बित थे, उत्कृष्टता के साथ अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित थे । ऐसी विषम स्थिति में श्रद्धा युग को वापस लौटाना कठिन प्रतीत होता है । सरल और सम्भव यही रह जाता है कि विज्ञान और प्रत्यक्षवाद के आधार को मान्यता दी जाय । उसे अपनाते हुए प्रबुद्ध वर्ग को उन सनातन सत्यों को स्वीकार करने के लिए बाधित किया जाय । उत्कृष्टता शास्त्र सम्मत ही नहीं है, भौतिक विज्ञान की कसौटी पर कसे जाने के लिए भी पूरी तरह तैयार है । साँच को आँच कहाँ ?

शान्ति कुंज की ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया में एक ही लक्ष्य हाथ में लिया गया है कि आध्यात्मिक मान्यताओं को बुद्धिवाद की, विज्ञान की कसौटी पर कस कर उसकी गरिमा स्वीकारने के लिए प्रत्यक्षवाद को सहमत किया जाय ।

विज्ञान ने आत्मा की, परमात्मा की, कर्मफल की सत्ता को नकारा है । यदि उसकी बात मान ली जाय तो नैतिकता का, सामाजिकता का कोई आधार नहीं रह जाता । स्वार्थ सिद्धि ही सर्वोपरि बुद्धिमत्ता और सफलता ठहरती है । ऐसी दशा में दूसरों की सुविधा या कठिनाई पर विचार करने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है । यदि यही प्रलचन चल पड़े तो मनुष्य अधिक बुद्धिमान और अधिक साधन सम्पन्न होने के नाते अनाचार की चरम सीमा तक पहुँच सकता है । इस दुनिया में सर्वत्र अराजकता और उद्धत अनाचार का बोलबाला ही होकर रहेगा । अध्यात्म को नकारने की परिणति मनुष्य समाज को प्रेत-पिशाचों का जमघट ही बनाकर छोड़ेगी ।

प्रस्तुत सम्भावना पर विचार करते हुए युग मनीषियों ने यह प्रयत्न किया है कि अध्यात्मवादी उत्कृष्टता को विज्ञान की कसौटियों पर कसने और उन्हें खरा सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाय । तथ्य को देखते हुए यह उद्देश्य पूरा हो सकना सम्भव भी दिखाई पड़ता है । इसलिए अध्यात्म तत्वज्ञान को विज्ञान की प्रयोगशालाओं में रहना अनिवार्य है । वही किया भी गया है एवं परिणाम अच्छे ही निकल रहे हैं । तर्क, तथ्य और प्रमाणों का समुच्चय भी प्रत्यक्षवाद का अंग होने के कारण वैज्ञानिक प्रयोगों में ही सम्मिलित किया जाता है ।

पिछले दिनों परामनोविज्ञान क्षेत्र में कई प्रयोग हुए हैं । उस आधार पर कई अतीन्द्रिय क्षमताओं का आधार मानवी चेतना में विद्यमान पाया गया है । दूरदर्शन, दूरश्रवण, विचार संचालन, भविष्य कथन, स्वप्नाभास, मरणोत्तर जीवन, पुनर्जन्म आदि विषयों पर सफल प्रयोग हुए हैं । मेस्मेरिज्म, हिप्नोटिज्म, साइकिक हीलिंग जैसी विचारधाराएँ परिपूर्ण प्रामाणिकता के साथ उभर कर ऊपर आयी हैं ।

इन उपलब्धियों के आधार पर यह सोचने के लिए बाधित होना पड़ा है कि चेतना मात्र शरीर का ही एक उदात्त उत्पादन नहीं, वरन् उसकी स्वतन्त्र और व्यापक सत्ता का भी अस्तित्व है । अभी विज्ञान की रहस्यमय पर्तें दिन-दिन अधिक प्रामाणिकता के साथ उभर रही हैं । विचार शक्ति का शरीर सत्ता पर कितना अधिक प्रभाव है इसके प्रमाण पुरातन खोजों और नवीन अनुसन्धानों के आधार पर अधिकाधिक प्रकट, प्रत्यक्ष होते जा रहे हैं । ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ पिण्ड में सन्निहित पायी गई हैं । सौरमण्डल का गतिचक्र पूरी तरह मानव शरीर में विद्यमान जीवकोशों प्रकृति के लघुतम घटक परमाणु यथावत काम करते देखे गए हैं । मानव मस्तिष्क की सम्भावनाओं से आंकलन करने वालों का कथन है कि इस क्षेत्र की मात्र सात प्रतिशत ही गतिविधियाँ प्रत्यक्ष में आयी हैं । यदि शेष ९३ प्रतिशत भी आ जातीं और प्रयोग में लायी जा सकें तो मानवी क्षमता की असीम सम्भावनाओं का भाण्डागार हाथ लग सकता है ।

जिस प्रकार प्रकृति के रहस्यों को खोजते-खोजते मनुष्य लेसर किरणों और अन्तरिक्ष आधिपत्य की स्थिति में जा पहुँचा है । उसी प्रकार यह विश्वास भी सुदृढ़, सुनिश्चित हो जाता है कि चेतना की इस विश्व ब्रह्माण्ड में स्वतन्त्र सत्ता है और प्रकृति के हर क्षेत्र पर उसका सशक्त आधिपत्य है । इस मान्यता ने अध्यात्म तत्वज्ञान को एक बड़ी सीमा तक मान्यता दी है । वह दिन दूर नहीं जब आत्मा और परमात्मा को भी प्रकृति क्षेत्र के

आरण्यों में आँख-मिचौनी करते हुए ढूँढ़ा जा सकेगा । मानसिक स्थिति का शरीर पर, प्रत्यक्ष परिस्थितियों पर नियन्त्रण जैसे सिद्धान्त जिस सीमा तक मान्यता प्राप्त करते जा रहे हैं उसी सीमा तक नास्तिकवाद आगे बढ़कर आस्तिकवाद के साथ अपना विलय करने के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है ।

मनुष्य का निजी व्यक्तित्व आदर्शवादी सिद्धान्तों को अपनाकर ही देवोपम स्थिति में पहुँचने की स्थिति में विकसित होता है । समाज में न्यायोचित सुव्यवस्था बन पड़ना भी कुछ औचित्य अपनाये जाने पर भी निर्भर है । इस विधा को अध्यात्म का प्राणतत्व कह सकते हैं । इसके न रहने पर यहाँ जंगल का कानून चलने लगेगा । बड़ी मछली छोटी को निगलने लगेगी । शोषण, अपहरण एकमात्र नियम बन जायेगा । ऐसी दशा में स्नेह, सौजन्य, सत्कार, सद्‌भाव, पुण्य-परमार्थ के लिए कहीं कोई स्थान ही न रह जायेगा । तब यह दुनिया डरते-डरते रहने वाले प्रेत-पिशाचों की श्मशान जैसी वीभत्स स्थली बन कर रह जायेगी । ऐसी स्थिति न आने पाये इसलिए हर समझदार व्यक्ति की मान्यताएँ सुधारने और व्यवहार को न्यायनिष्ठ रखने के लिए सभी समझदारों को प्रयत्न करना चाहिए । यह दायित्व तत्वदर्शियों और वैज्ञानिकों पर विशेष रूप से आता है । उनका सम्मिलित प्रयत्न ही मानवी प्रतिभा और सामाजिक सुव्यवस्था को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में समर्थ हो सकता है ।

कार्य अत्यन्त ही सुविस्तृत एवं दुष्कर है । इसके लिए ज्ञान और विज्ञान की अनेकानेक दिशा धाराओं को हाथ में लिया गया है । अध्यात्म को विज्ञान के साथ और विज्ञान को अध्यात्म के साथ इस प्रकार तालमेल बिठाने के लिए पथ-प्रशस्त किए जाने का प्रयास किया जा रहा है कि दोनों ही अपने को सत्यशोधक स्वीकार करें । अपने-अपने आधारों, मान्यताओं को दूसरे पक्ष की कसौटी पर कस कर देखें कि दुनिया को, दोनों आधारों पर सही सिद्ध करने की चेष्टा करें । कोई पूर्वाग्रह न रहे । अपना कथन सच, दूसरे का झूठा ठहराने के लिए दुराग्रह न रखें तो आज के परिवेश में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय सम्भव है ।

धर्म और विज्ञान का पारस्परिक सहयोग नितान्त आवश्यक

धर्म के बिना विज्ञान अन्धा है और बिना विज्ञान के धर्म लँगड़ा । दोनों के समन्वय से ही हम शक्तिशाली यथार्थता तक पहुँचते हैं । धर्म हमें श्रद्धा प्रदान करता है पर यदि वह श्रद्धा विवेकहीन हो तो अन्ध श्रद्धा कहलायेगी और लाभ के स्थान पर हानि उत्पन्न करेगी । इसलिए दोनों का औचित्य इसी में है कि एक-दूसरे का आश्रय ग्रहण करें और उसे अपनाने का प्रयत्न करें, जो यथार्थता के अत्यधिक समीप है ।

इस सम्बन्ध में विज्ञान की पहल सराहनीय है । उसने दुराग्रह नहीं अपनाया । सत्य के लिए अपने द्वार खुले रखे हैं । यदि आज कोई बात गलत निकली तो वह अपनी बात सुधारने के लिए तैयार है । उसका कथन है कि हम सब सत्य की राह के पथिक मात्र हैं । यदि रास्ता भटक गए तो इसमें बेइज्जती की कोई बात नहीं है । हठ करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि जो बात गलत साबित हुई है उसे सुधार लिया जाय । इस मान्यता से उसकी ईमानदारी साबित होती है । धर्म को भी उसका अनुकरण करना चाहिए । इससे उसकी सर्वज्ञता का त्रिकालदर्शी होने का दावा करने में कुछ हेटी तो होगी पर उसकी पूर्ति इस बात से हो जायेगी कि देर-सवेर में जब भी गलती मालूम हो वह ईमानदारी से उसे स्वीकार करने के लिए तैयार है ।

सर्वज्ञता का दावा तो ऐसे भी कट जाता है, क्योंकि धर्म एक नहीं है । उसकी शाखाएँ बहुत बड़ी संख्या में हैं और प्रत्येक की मान्यता एक-दूसरे से भिन्न है । यथार्थवादिता को अपनाने वाले इतनी भिन्नताओं को कैसे अंगीकार कर सकते हैं । यदि ऐसा नहीं तो किसी एक धर्म को स्वीकारना चाहिए और शेष सब को गलत कह देना चाहिए । यदि गलत कहा जाय तो किसे कहा जाय ? कौन अपने को असत्य कहे जाने के लिए तैयार होगा ? अथवा कौन यह कहेगा कि मैं उन आक्षेपों को स्वीकार करता हूँ जो तथ्यों और तर्कों की कसौटी पर खरे सिद्ध नहीं हो रहे ।

धर्म और विज्ञान के बीच तालमेल बिठाने से पहले धर्मों को आपस में निपटना होगा और यह सोचना होगा कि किन बातों पर श्रद्धा रखी जाय, किन पर नहीं ? आचरणों में से किन्हें धर्म का अंग माना जाय, किन्हें नहीं । दर्शन की दृष्टि में किन प्रतिपादनों को मान्यता दी जाय, किनको नहीं ?

इन न सुलझने वाले विवादों को एक ही समुद्र की अनेक लहरें—एक ही पेड़ की अनेक पत्तियाँ कहकर मन को समझाया जाता रहा है । लहरों या पत्तियों में मौलिक अन्तर नहीं होता । इनकी प्रकृति में भिन्नता नहीं पायी जाती, पर धर्मों के बारे में ऐसा नहीं । उनके मतभेद असीम हैं । इतने असीम कि उन्हीं को लेकर शास्त्रार्थों से लेकर रक्तपात तक होते रहे हैं और अपने अतिरिक्त अन्य सबको असत्य ठहराते रहे हैं । ऐसी दशा में न एकरूपता बनती है, और न समस्वरता ।

ऐसी दशा में एक मध्यवर्ती मार्ग यह हो सकता है कि कुछ नैतिक नियमों को मान्यता दी जाय और प्रथा प्रचलनों को ऐच्छिक छोड़ दिया जाय । ऐसा करने से कलह मिट जायेगा और आपस में एक-दूसरे को असत्य ठहराने का विग्रह रुकेगा ।

उदाहरण के लिए ईश्वर के अस्तित्व को मान्यता मिले और उसे कर्मफल का फलदाता ठहराया जाय । कर्मफलों में नैतिक नियमों को पर्याप्त माना जाय । प्रथा प्रचलनों पर विवाद करने की उपेक्षा उन्हें ऐच्छिक ठहराकर काम चल सकता है । इस प्रकार ईश्वर और धर्म दोनों की प्रारम्भिक सीमा में वैसा ही एकीकरण हो सकता है जैसाकि विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं के अन्तर्गत है ।

धर्म और विज्ञान दोनों को ही भावी शोध प्रक्रिया और परिमार्जन शैली पर सहमत होना चाहिए । पिछले सौ वर्षों में विज्ञान के अनेक सिद्धान्तों में प्रगति हुई है । इसमें पूर्व मान्यताओं को न तो तिरस्कृत कर दिया गया है और न झूठा ही ठहराया गया है वरन् केवल इतना ही कहा गया है कि जो बच्चा कुछ समय तीन फुट का था और अब पाँच फुट का हो गया, तो दोनों ही परिस्थितियों में किसी प्रकार का टकराव नहीं है । मात्र प्रगति के एक-एक फुट लम्बे दो चरण जुड़ गए हैं । इससे खिन्न होने के स्थान पर प्रसन्न होने की ही बात है । ईश्वर का अस्तित्व मानने से काम चल जायेगा । फिर उस मान्यता के साथ विधान कर्म जोड़ना हो तो भले-बुरे कर्मों के प्रतिफल की व्यवस्था को

मान्यता दी जा सकती है । कितना दण्ड पुरस्कार मिलेगा, कब मिलेगा, कहाँ मिलेगा ? यह प्रश्न ऐसे हैं जिनका निर्णय होना फिर कभी के लिए छोड़ा जा सकता है, शोध के लिए ।

यही बात धर्म के सम्बन्ध में भी है । धर्म को नैतिक नियमों की मर्यादा में बाँधा जा सकता है । नैतिक नियमों को चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत लाया जा सकता है जो सार्वभौम हो । "वह मत कीजिए जो आपको अपने लिए अच्छा न लगे । जो बर्ताव आप अपने साथ किया जाना नापसन्द करते हैं वह दूसरों के साथ न करें ।" धर्म की इतनी सार्वभौम परिभाषा जन-जन को स्वीकृत हो सके तो समझना चाहिए कि ईश्वर और धर्म का प्रारम्भिक एवं निर्विवाद रूप बन गया । प्रथा-प्रचलनों की परम्परा इसके बाद कभी पीछे के लिए सुरक्षित रखी जा सकती है । इतना धैर्य हमें रखना होगा कि क्रमिक विकास की पद्धति स्वीकार करें और उसमें से जितना सर्वमान्य निकलता चले उतना अंगीकृत करते चलें ।

विज्ञान की धर्म रहित स्थिति दयनीय है । इस कारण वह निरंकुश और निष्ठुर हो गया है । उसकी दृष्टि उपयोगितावादी है । प्रस्तुत विज्ञान में दया और करुणा के लिए कोई स्थान नहीं है । यह उसे धर्म से उधार लेनी पड़ेगी । बूढ़े बैल को कसाई के सुपुर्द कर देना वैज्ञानिक अर्थशास्त्र है । औषधि अनुसन्धान के लिए कितने ही जीव-जन्तुओं को निर्मम पीड़ा होने से एतराज करना वैज्ञानिक वर्जनाओं के अन्तर्गत नहीं आता । विज्ञान को परमाणु बम, रासायनिक बम बनाने और उनका जापान की तरह कहीं भी प्रयोग करने से विज्ञान अपने हाथ नहीं रोक सकता । अन्याय और न्याय में अन्तर करना विज्ञान का काम नहीं है । यह उसकी हृदयहीन प्रकृति है, जो एक कड़वा सत्य है । वह मनुष्य को भी मशीन मानकर चलता है । ऐसी दशा में उसकी उपलब्धियाँ कुछ ही के लिए सुविधाजनक और असंख्यों के लिए असुविधादायक हो सकती हैं । विज्ञान अपने को ऐसी स्वसंचालित मशीन बनाने में गौरवान्वित होता है जिसे एक यन्त्र मानव चलाता रहे । एक पूँजीपति के लिए प्रचुर मुनाफा कमाता है, भले ही उसके बदले हजारों-लाखों की आजीविका छिनती रहे ।

विज्ञान मस्तिष्क प्रधान है और धर्म हृदय प्रधान । करुणा, सम्वेदना, स्नेह, सहयोग हमें धर्म से मिलते हैं । इनके लिए विज्ञान की प्रयोगशाला में कोई मान्यता नहीं मिलती । धर्म परोक्ष के सपने दिखाता है और यह नहीं देखता कि इससे प्रत्यक्ष प्रगति में बाधा तो नहीं पड़ती ।

पूजा सेवा के दो सार्थक शब्द प्राचीनकाल से भी मिलते चले आ रहे हैं । अब उन्हें नये सिरे से फिर मिलाया जा सकता है । परमार्थ को ईश्वर की पूजा में सम्मिलित करके लोकोपकारी कार्यों को गठबन्धन में बाँधा जा सकता है । इसके लिए गाँधी जी ने दारिद्र नारायण शब्द ठीक दिया है । सेवा धर्म अपनाकर श्रमदान, अंशदान, करते रहना और साथ-साथ मन ही मन भगवान का स्मरण करते रहना उस देवी जागरण या अखण्ड कीर्तन से कहीं अच्छा है, जिसमें विद्यार्थियों की पढ़ाई, नागरिकों का सुख-चैन व बीमारों की चिकित्सा में कठिनाई पड़ती है ।

विज्ञान को धर्म की प्रकृति पहचाननी चाहिए और धर्म को सोचना चाहिए कि समय हर बात को बुद्धिवाद की कसौटी पर कसे बिना अपनाने के लिए तैयार नहीं । विज्ञान ने अपनी प्रकृति सच्चाई को स्वीकार करने की बनाई तो है पर वह भावना रहित । धर्म ने भाव लोक में विचरण किया है, पर यह नहीं सोचा कि अब इलहाम की दुहाई देने से काम नहीं चलेगा । बच्चे से लेकर बुड्ढे तक को अब इस तरह समझना और समझाना पड़ेगा कि प्रतिपादन भावना संगत भी हो और बुद्धि सम्मत भी ।

धर्म विज्ञान के द्वारा ही मनुष्य सुखी बनेगा

अमेरिका का रौगरमार्टन यों दूसरों की आँखों में बहुत उन्नतिशील और सुसम्पन्न व्यक्ति था । उसके वैभव को देखकर लोग ईर्ष्या करते थे और चाहते थे कि उन्हें भी भगवान उसी जैसी सम्पन्नता प्रदान करे, पर यह दूसरों का ही दृष्टिकोण था । स्वयं रौगरमार्टन को जिस तनाव, दबाव, उद्वेग और खीज का सामना करना पड़ता था उसे वह अकेला ही जानता था । जिन परेशानियों और विफलताओं में होकर उसे रोज ही गुजरना पड़ता था उससे दुःखी होकर उसने जीवन के प्रति एक विचित्र दृष्टिकोण बना लिया था । वह कहने लगा था—"जिन्दगी एक गन्दगी भर है ।"

मार्टन के स्वजन, सम्बन्धियों, मित्रों और विश्वास-पात्रों तक ने उसे बुरी तरह ठगा और बहकाया । सो उसने यही अनुमान लगाया कि दुनिया में वफादारी और ईमानदारी नाम की कोई चीज है नहीं । एक दूसरे को भरमाने के लिए लोग ऐसे ही आदर्शवाद के ढकोसले रचते हैं, पर जब वक्त आता है तब उस व्यवहार की कसौटी पर कोसों दूर रह जाते हैं । दूसरों के बारे में जैसा समझा जाता है वे वस्तुतः वैसे होते नहीं ।

शान्ति की खोज में उसने मद्य-पान की आदत डाली, पर जैसे ही होश आता—विक्षोभ फिर उसके सिर पर सवार हो जाते आखिर हर घड़ी नशे में अचेत पड़े रहना भी तो नहीं बनता था । उसने आत्महत्या की भी कोशिश की; पर वह प्रयत्न भी अधूरा असफल बनकर रह गया ।

इस प्रकार के अनेक उतार-चढ़ावों के बीच भटकने के बाद उसने धर्म का तात्विक अध्ययन किया तो पाया कि साम्प्रदायिक जंजाल और धर्म के तत्वदर्शन में जमीन-आसमान का अन्तर है, धर्म का दृष्टिकोण यदि मनुष्य के भीतर उतर सके तो वह रोशनी मिल सकती है जिसके आधार पर खीज को एक विनोदी हलचल के रूप में देखा जा सके और सन्तुलित मनःस्थिति अपनाकर आत्म निर्भर जीवन जिया जा सके ।

इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद उसे लगा कि मनुष्य जाति की सबसे बड़ी सेवा उसे धार्मिक आस्थाओं को समझने, अपनाने का अवसर देना है । इस प्रयोजन के लिए उसने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी और एक धर्मान्वेषी संस्था स्थापित की—'फाउण्डेशन ऑफ रिलीजन एण्ड फिलॉस्फी' अर्थात् धर्म और मनोविज्ञान की संस्था । धर्म और मनोविज्ञान के समन्वित स्वरूप को यदि हम चाहें तो व्यवहारवादी अध्यात्म भी कह सकते हैं ।

भारतीय तत्ववेत्ता अति प्राचीनकाल से ही इस निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि मनुष्य की अन्तःस्थिति जब तक उत्कृष्ट चिन्तन के साथ लिपटी हुई न रहेगी तब तक उसका विकास उस दिशा में न हो सकेगा जिससे कि व्यक्ति और समाज की सुख-शान्ति जुड़ी हुई है । उत्कृष्ट अन्तःस्थिति के बिना किया गया भौतिक

उपार्जन विपत्ति का कारण ही बनेगा उससे सौभाग्य का उदय नहीं होगा वरन् दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही उत्पन्न होगी ।

स्वल्प साधनों में भी सुखी रहने—विपरीत परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने और प्रतिशोध, प्रत्याक्रमण के उद्वेग से बचकर स्नेह, सुधार की ओर मुड़ने, उपभोग को उदारता में परिणत करने से ही मनुष्य अपने आप में सुखी, सन्तुष्ट रह सकता है और समाज के लिए श्रेयस्कर अनुदान दे सकता है ।

व्यक्ति और समाज को श्रेष्ठता एवं सम्पन्नता से सुसज्जित करने का आधार धर्म तत्व की सुदृढ़ संस्थापना के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता । विचारवान अमेरिकी नागरिक ने धर्म विडम्बना को धर्म विज्ञान के रूप में परिणत करने के लिए जो अपने ढंग से एक सराहनीय कदम उठाया; हम सब भी इसी दिशा में कुछ सोचें और करें तो अपनी और अपने समाज की महती सेवा साधना कर सकते हैं ।

धर्म और विज्ञान को मिलकर चलना होगा

खगोल की गतिविधियाँ, वस्तुओं तथा प्राणियों का इतिहास, आहार, व्यवहार आदि की चर्चा करना तथा उनके सम्बन्ध में कुछ निर्णय करना भौतिक विज्ञान की गवेषणा से सम्बन्धित है । इस प्रकार की जिज्ञासाओं को यदि धर्म, अध्यात्म आदि के माध्यम से हल किया जायेगा तो गल्तियाँ होंगी ही, इसी प्रकार यदि आत्मानुभूतियों की श्रद्धा एवं भावनाजन्य सामर्थ्य की खोज अध्यात्म विज्ञान की परिधि से बाहर की जायेगी, उनकी प्रामाणिकता के लिए प्रयोगशाला का आश्रय लिया जायेगा तो यथार्थता की तह तक नहीं पहुँचा जा सकेगा ।

पिछली पीढ़ियों पर जो धार्मिक प्रभाव था अब वह धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है । धर्म को अपनी खोई हुई पुरानी शक्ति तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि विज्ञान की भाँति वह भी परिवर्तनों का सामना करने के लिए न हिचकिचाये ।

धर्म वस्तुतः एक नैतिक, भावनात्मक एवं सामाजिक परिष्कार की नियोजित प्रक्रिया है । इसका लाभ परलोक में मिलेगा इसकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । धर्म धारणा जहाँ भी होगी वहाँ आत्म-सन्तोष और आत्म-उल्लास की ऐसी शक्ति विद्यमान रहेगी जिसके सामने भौतिक दृष्टि से अभावग्रस्त समझा जाने वाला जीवन भी शान्ति और धैर्यपूर्वक सरल एवं सुरम्य बनाया जा सके ।

अक्सर लोगों को यह कहते सुना जाता है कि, "धर्म से हमें क्या फायदा ? क्या इससे गरीबों की गरीबी दूर हो जायेगी ?" मान लीजिए धर्म ऐसा नहीं कर सकता तो क्या इतने भर से वह निरुपयोगी हो जायेगा ?

मान लीजिए आप किसी बच्चे को खगोल विद्या का स्वरूप समझा रहे हैं और बच्चा आपसे पूछता है कि 'इस जानकारी से क्या उसे टोपी मिल जायेगी ?' तो उसे यही जवाब देना पड़ेगा कि 'नहीं इसमें टोपी नहीं मिल सकती ।' बच्चा कह सकता है कि तब खगोल विद्या निरर्थक है उसे अपने ढंग से सोचते देखकर यह नहीं मान बैठना चाहिए कि टोपी और खगोल विद्या का परस्पर संगति मिलाने वाला बच्चे का तर्क सही है । भले ही टोपी न मिल सके पर खगोल विद्या की जानकारी की मानव जीवन में उपयोगिता तो बनी ही रहेगी ।

धर्म को पूजा प्रक्रिया तक और कर्म को शिल्प व्यवसाय तक सीमित रखा जाय तो दोनों की गरिमा बढ़ेगी नहीं गिरेगी ही । दोनों अपंग अधूरे रह जायेंगे । इन दोनों का परस्पर पूरक होकर रहना उचित ही नहीं आवश्यक है । पदार्थ में सौन्दर्य निखारने का यही तरीका है । कारीगर कलाकार तब बनता है जब अपने क्रिया-कलाप में भावपूर्ण मनोयोग को नियोजित करता है । भावपूर्ण मनोयोग तब कल्पना मात्र बनकर रह जायेगा जब उसमें श्रेष्ठ निष्ठा जुड़ी न होगी । इसी प्रकार मात्र श्रम की कोल्हू के बैल से, भारवाही गधे से तुलना की जाती रहेगी । दोनों का समन्वय ही कर्म-कौशल बनकर सामने आता है ।

समग्र ज्ञान को दो भागों में बाँटा जा सकता है—एक अन्तर्बोध पर आधारित अध्यात्म अथवा धर्म । दूसरा तर्क, परीक्षण, अनुभव तथा बताये गए तथ्यों के आधार पर भौतिक जगत सम्बन्धी निष्कर्ष । इनमें एक प्रथम को विद्या दूसरे को शिक्षा कहा जा सकता है प्रथम जानकारी को प्रज्ञा—दूसरी को बुद्धि कहते हैं और भी स्पष्ट करें तो एक को ज्ञान दूसरे को विज्ञान । एक को धर्म और दूसरे को कर्म कहने से ही वस्तुस्थिति समझी जा सकती है । भ्रमवश यह समझा जाता रहा कि इन दोनों का स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र पृथक-पृथक हैं । पर सही बात यह है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, यदि उन्हें असम्बद्ध होने दिया जाय तो स्थिति बहुत ही विद्रूप हो जायेगी ।

गड़बड़ तब पड़ती है जब दोनों के कार्यक्षेत्र की भिन्नता पहचानने में भूल की जाती है और एक से दूसरे का काम लेने का प्रयास किया जाता है मनुष्य और पशु एक-दूसरे के पूरक हैं । पारस्परिक सहयोग से दोनों ही लाभान्वित होते हैं, किन्तु यदि मनुष्य का कार्य पशु को सौंपा जाय और पशु के कार्य मनुष्य से लिए जायें तो इसका परिणाम अवांछनीय ही होगा । धर्म का लक्ष्य है अन्तरात्मा में सन्निहित सत्प्रवृत्तियों का मनोविज्ञान सम्मत पद्धति से इतना समुन्नत करना कि वे व्यावहारिक जीवन में ओत-प्रोत हो सकें । विज्ञान का लक्ष्य है प्रकृतिगत शक्तियों तथा पदार्थों के स्वरूप तथा क्रिया-कलाप की इतनी जानकारी देना कि उनका समुचित लाभ मानवी सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि के लिए किया जा सके । दोनों का कार्यक्षेत्र प्रत्यक्षतः अलग है, जिसमें एक-दूसरे को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, फिर भी वे दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं क्योंकि जीवन आत्मिक एवं भौतिक दोनों प्रकार के तत्वों से मिलकर बना है । जड़-चेतन के समन्वय से ही जीवन का स्वरूप प्रत्यक्ष होता है । इतने पर भी यह अन्तर रखना ही पड़ेगा कि हृदय और मस्तिष्क की तरह दोनों का कार्यक्षेत्र विभक्त हो । एक का कार्य दूसरे पर थोपने की गलती न की जाय । भौतिक तथ्यों की जानकारी में पदार्थ विज्ञान को प्रामाणिक माना जाय और आत्मिक आन्तरिक चिन्तन एवं भावनात्मक प्रसंग में श्रद्धा की आत्मानुभूति को मान्यता दी जाय ।

लन्दन विश्वविद्यालय के एस्टोफिजीसिस्ट प्रो. हर्बर्ट डिग्ले का कथन है—विज्ञान की एक सीमित परिधि है । पदार्थ के स्वरूप एवं प्रयोग का विश्लेषण करना उसका काम है । पदार्थ किसने बनाया ? किस प्रकार बना ? क्यों बना ? इसका उत्तर दे सकना वर्तमान में सम्भव नहीं । इसके लिए विज्ञान की बहुत ऊँची एवं

बहुत अद्भुत कक्षा में प्रवेश करना पड़ेगा । वह कक्षा लगभग उसी स्तर की होगी जैसी कि अध्यात्म के तत्वांश को समझा जाता है ।

दार्शनिक रेनाल्ड कहते हैं—धर्मक्षेत्र को अपनी भावनात्मक मर्यादाओं में रहना चाहिए और व्यक्तिगत सदाचार एवं समाजगत सुव्यवस्था के लिए आचार, व्यवहार की प्रक्रिया को परिष्कृत बनाये रखने में जुटा रहना चाहिए । इतनी बात भी कुछ कम नहीं है । यदि धर्मवित्ता अपनी कल्पनाओं के आधार पर भौतिक पदार्थों की रीति-नीति का निर्धारण करेंगे तो वे सत्य की कुसेवा ही करेंगे और ज्ञान के स्वरूप विकास में बाधक ही बनेंगे ।

दार्शनिक पॉलटिलिच ने कहा है धर्म और विज्ञान का मिलन दार्शनिक स्तर पर ही हो सकता है । दोनों के क्रिया-कलाप एवं प्रतिपादन की दिशाएँ अलग-अलग ही बनी रहेंगी । न तो धर्मशास्त्रों के आधार पर खगोल रसायन पदार्थ विश्लेषण जैसे निष्कर्ष निकाल सकता है और न भौतिक विज्ञान की प्रयोगशालाएँ ईश्वर, आत्मा, कर्मफल, सदाचार, भावप्रवाह जैसे तथ्यों पर कुछ प्रामाणिक प्रकाश डाल सकती है । केवल दार्शनिक स्तर ही ऐसा है जहाँ यह दोनों धाराएँ मिल सकती हैं ।

ह्यमन डैस्टिनी ग्रन्थ के लेखक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लैकोम्टे डुन्वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आधुनिक बेचैनी मुख्य रूप से बुद्धिमानी की कमी के कारण है । इस अविवेक ने ही मानव समाज की दुर्गति की है । विज्ञान अभी तक पालने में पल रहा है । वह वस्तुओं के गुण-धर्म पर तो थोड़ा प्रकाश डालता है पर यह नहीं बताता कि दूरदर्शी बुद्धिमत्ता की घटोतरी को कैसे पूरा किया जाय । धर्म में वे बीज मौजूद हैं जिनके आधार पर चेतना में विवेकशीलता का अधिक समावेश हो सकता है पर दुर्भाग्य यहाँ भी जमा बैठा है, आज धर्म का जो स्वरूप है उसमें दुराग्रहों ने जड़ जमा ली है और विवेकशील चिन्तन के द्वार अवरुद्ध कर दिए हैं । ऐसी दिशा में सूझ नहीं पड़ता कि बुद्धिमत्ता की कमी किस प्रकार पूरी की जाय ?

विज्ञान की प्रगति इसलिए होती गई कि उसने नये ज्ञान प्रकाश के लिए द्वार खुला रखा और अपनी भूलों के समझने तथा सुधारने के लिए निरन्तर प्रयत्न जारी रखा । जबकि धर्म ने अपने द्वार नये प्रकाश के लिए बन्द कर लिए । पूर्ववर्ती व्यक्तियों तथा पुस्तकों द्वारा जो कुछ कहा, लिखा गया उसी को अन्तिम मान लिया गया और येन-केन-प्रकारेण उसी को सत्य सिद्ध करने के लिए हठ किया जाता रहा । इसी भिन्नता के कारण प्रगति की दौड़ में विज्ञान आगे निकल गया और धर्म पिछड़ गया । यदि शोध और सुधार का द्वार खुला रखा गया होता तो निःसन्देह धर्म को भी वैसी ही मान्यता मिलती जैसी कि विज्ञान को मिली है ।

भावनात्मक प्रवाह विलक्षण रीति से बहते हैं । एक ही समय में विभिन्न देशों में एक ही प्रकार के महत्त्वपूर्ण प्रयास करते हुए कतिपय महामानव अवतरित होते हैं और वे सूक्ष्म जगत में गतिशील प्रवाह को अग्रगामी बनाते हुए विश्वव्यापी हलचलों का सृजन करते हैं । धर्मक्षेत्र में प्रायः ऐसा ही होता रहा है । लूथर जर्मनी में, ज्विंगी स्विट्जरलैण्ड में, केल्विन फ्रान्स में, जोन नोक्स स्काटलैण्ड में हुए । उन्हीं दिनों भारत में भी कई प्रख्यात सुधारकों ने जन्म लिया । विज्ञान के क्षेत्र में भी ऐसा ही होता रहा है । गैलीलियो इटली में, केपलर पोलेण्ड में, न्यूटन इंग्लैण्ड में एक ही समय हुए और उन्होंने विज्ञान की प्रगति को महत्त्वपूर्ण दिशाओं में अग्रसर किया और पुराने ढर्रे को नई पटरी पर चलने के लिए विवश कर दिया ।

भावनात्मक क्षेत्र में क्रान्तिकारी चिन्तन धारा प्रस्तुत करने वाले अनेक मनीषी एक ही समय में उत्पन्न हुए । भले ही वे विभिन्न देशों में जन्मे हों—भले ही उनका परस्पर परिचय न रहा हो पर प्रतीत होता है कि एक ही प्रपात से उठने वाले बुद्बुदों की तरह ही वे समय की आवश्यकता पूरी करने में जुटे हुए थे ।

धार्मिक एवं भावनात्मक क्षेत्र में अभिनव प्रकाश उत्पन्न करने वाले विद्वानों में टम्पिले ब्रेथ, ब्रुमनेर, वेरडयेव, औलेन, न्यैगरैन, वैल्लीज, नैवुहरक, वुल्टमान, फैरी, टिलिच आदि का नाम उल्लेखनीय है । इन लोगों को चिन्तन की परम्परागत शैली को मोड़ देने के लिए सदा सराहा जाता रहेगा ।

वैज्ञानिक और आत्मवादी दोनों ही अन्तर्ज्ञान से प्रकाश की किरणें प्राप्त करते रहे हैं । आविष्कारकों को अकारण ही ऐसी सूझ उठी जिसके सहारे वे अपनी खोज का आधार खड़ा कर सके । पूर्व शृंखला न होने पर भी इस प्रकार का अनायास अन्तर्बोध यही सिद्ध करता है कि मानवी चेतना के पीछे कोई अलौकिक प्रवाह काम कर रहा था, जिसे अप्रकट को प्रकट करने की उतावली थी । विज्ञान की प्रधान धाराओं के मूल आविष्कर्त्ता इस तथ्य से सहमत हैं कि उन्हें अपने विषय की सूझ-बूझ अन्तःकरण में अकारण ही प्रस्फुटित हुई । यदि उस प्रकाश के लिए कुछ साधारण से कारण भी थे तो भी उनमें कोई नवीनता नहीं थी । वह सब कुछ पहले से ही होता चला आया था । उमंग उठकर ठप्प नहीं हुई वरन् उसने एक के बाद एक कदम आगे बढ़ने का सहारा दिया और सूझ-बूझ की उस शृंखला में एक के बाद एक कड़ी जुड़ती चली गई । यदि ऐसा न होता तो शोध की उठी हुई इच्छा मार्ग न मिलने पर कुण्ठित ही रह जाती ।

विज्ञान का क्षेत्र हो अथवा धर्म का, उसमें समुद्र मन्थन करके कुछ रत्न प्राप्त कर सकने का श्रेय मनुष्य की रहस्यमय प्रवृत्तियों को ही है । वे स्वल्प मात्रा में कहीं भी पायी जा सकती हैं पर यदि किसी प्रकार उनको प्रखर किया जा सके तो उनकी परिणति असाधारण उपलब्धियों के रूप में ही होती है । इसी अवलम्बन के सहारे सामान्य ज्ञान को महद्ज्ञान और सामान्य व्यक्तित्व को महामानव बनने का श्रेय सौभाग्य प्राप्त होता है ।

विज्ञान और धर्म की प्रगति में जो तथ्य सहायक रहे हैं उनमें से कुछ प्रमुख युग्म इस प्रकार हैं—(१) विवेक और औचित्य, (२) विश्वास एवं श्रद्धा, (३) तर्क एवं आशा, (४) जिज्ञासा और जानकारी, (५) सभ्यता और शालीनता, (६) प्रेम और वफादारी, (७) त्याग और सेवा, (८) लगन और निष्ठा, (९) धैर्य और साहस (१०) पुरुषार्थ एवं मनोयोग । इनका अवलम्बन लेकर चलने वाले व्यक्तित्व इस संसार में कुछ बहुमूल्य रत्न प्राप्त करके ही रहते हैं । धर्म अथवा विज्ञान हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का श्रेय अन्ततः कुछ विशिष्ट सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर सिद्ध होता है । कहना न होगा कि वह अन्तःस्फुरणा जो प्रसुप्त दिव्य प्रवृत्तियों को जाग्रत कर सके किसी अज्ञात संकेत से ही उद्भूत होती हैं ।

विद्वान ह्वाइट हैड का यह कथन बहुत हद तक सही है कि—"धर्म के सिद्धान्त मानवता के अनुभवों में निहित सत्यता को संक्षेप में प्रदर्शित करने का एक प्रयास मात्र है । इसी प्रकार

विज्ञान भी मानव की ज्ञानेन्द्रिय शक्ति में निहित सत्यों को संक्षेप में सूत्रीकरण करने का प्रयास मात्र है ।"

दार्शनिक रेक्वे कहते हैं—मनुष्य ने विज्ञान द्वारा प्रकृति के अन्तराल को समझा है और धर्म के द्वारा अपनी महानता का आभास पाया है ।

दार्शनिक पैट्रन का कथन है कि—यदि धर्म मान्यताओं के लिए पक्षपात, पूर्वाग्रह और कट्टरता की दृष्टि रखे तो ऐसा मनुष्य घोर अनैतिक भी हो सकता है, भले ही वह धार्मिक समझा जाता रहे ।

श्री जेविन्स का कथन है कि जादू-टोने, चमत्कार तथा रहस्यवाद के आधार पर जो धर्म अथवा धर्माधिकारी खड़े हैं, उनकी जड़ें खोखली हैं । सिद्धान्तों और प्रेरणाओं की दृष्टि से जहाँ खोखलापन होगा वहीं लोगों को आकर्षित करने के लिए ऐसे हथकण्डे काम में लाये जायेंगे । धर्म तो अपने आप में इतना उपयोगी है कि उसका यथार्थ स्वरूप समझने पर वह स्वयं ही एक ऐसा जादू, चमत्कार प्रतीत होता है जिसके आधार पर व्यक्तित्व में क्रान्तिकारी परिष्कार एवं उसका सत्परिणाम प्रत्यक्ष देखा जा सके ।

विज्ञान की तरह दर्शन में भी उत्क्रान्ति होगी

यह सच है कि गैलीलियो द्वारा प्रतिपादित 'इन्वेन्शन' समता सिद्धान्त ने विश्व के सम्बन्ध में बनी हुई अनेकों मान्यताओं को बदल डाला है । पहले जिस तरह से सोचा जाता था, अब उस तरह नहीं सोचा जाता । वस्तुओं के गुण धर्म के सम्बन्ध में जो मान्यताएँ पिछली पीढ़ी के लोगों की थीं, वे अब नहीं रहीं । विज्ञान ने एक नया दृष्टिकोण दिया है । तथ्य और प्रमाणों की कसौटी पर ही किसी सच्चाई को स्वीकार किया जाय—इस आधार की आवश्यकता और भी अधिक मात्रा में इसलिए समझी गई, क्योंकि पिछली मान्यताओं को जब तथ्यों की कसौटी पर कसा गया तो उनमें से अनेकों को झुठलाना पड़ा । ऐसी दशा में मन का शंकालु हो जाना स्वाभाविक था । समय की यह माँग उचित ही थी कि जो कुछ जैसा स्वीकारा जाय, वह तथ्यपूर्ण होना चाहिए ।

परम्परागत मान्यताएँ जब एक के बाद दूसरी निराधार और निष्प्रयोजन सिद्ध हो रही हैं तो शेष जो कुछ बची हैं, उन्हें भी तर्क और प्रमाण की कसौटी पर क्यों न कस लिया जाय ? यह माँग वर्तमान स्थिति में अनुपयुक्त नहीं ठहराई जा सकती है । फलस्वरूप पूर्वाग्रहों की परख होने लगी । जो सही प्रतीत नहीं हुए, वे उपेक्षित कर दिए गए । मान्यता उन्हें ही मिली, जिनके पीछे तथ्य और तर्क का बल मौजूद था ।

इस पद्धति ने हजारों वर्षों से चली आ रही असंख्यों मान्यताओं को नये सिरे से परखा और बदला है । वस्तुओं का स्वरूप, गुण, धर्म अब पूर्वमान्यताओं की अपेक्षा भिन्न प्रकार से समझा, माना जाता है । इसमें पूर्वजों के प्रति व्यंग्य, उपहास अथवा अवज्ञा व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं समझी गई क्योंकि तथ्यों की शोध करते हुए पूर्ण सत्य तक पहुँचना एक छलाँग में नहीं हो सकता था । यह एक लम्बी मंजिल है, जिसे मनुष्य जाति ने धीरे-धीरे चलकर ही पार किया है । अभी भी जो बातें तथ्य के रूप में स्वीकार की गई हैं, निश्चित नहीं कि भविष्य में भी उन्हें उसी रूप में माना जाता रहेगा । मानवी-बुद्धि स्वल्प है । विश्व के रहस्य अनन्त हैं । ससीम को असीम तक पहुँचने की लम्बी मंजिल में धैर्य भी रखना होगा और अधिक प्रखर प्रकाश को स्वीकार करने के लिए पूर्वाग्रहों की धुन्ध में जो दिखाई पड़ता रहा है, उसे छोड़ने का साहस भी रखना पड़ेगा । सत्य की शोध क्यों अनादिकाल से चलती रही है ।

पूर्व काल में इतने साधन उपकरण उपलब्ध न थे, जितने अब हैं । इसलिए उन दिनों स्वल्प उपलब्धियों पर ही सन्तोष करना पड़ता था और जिज्ञासाओं की प्रचण्ड क्षुधा को—जो कुछ हाथ लगे, उसी से तृप्त करना होता था । ऐसी दशा में भूत और वर्तमान के बीच कोई मौलिक विरोध नहीं है । प्रगति की लम्बी यात्रा में मील के पत्थर तो बदले ही जाने थे, सो बदले भी हैं ।

विज्ञान ने तथ्य और सत्य की कसौटी पर जहाँ भौतिकी पर वस्तुओं के गुण-धर्म को परखा है, वहाँ ईश्वर और धर्म को भी अछूता नहीं छोड़ा है । उन्हें भी तरह-तरह की बुद्धिवादी कसौटियों पर कसा गया है । इस सन्दर्भ में श्रद्धा का क्षेत्र भी लड़खड़ाया है । धर्म के क्षेत्र में पिछले दो सौ वर्षों में एक प्रकार से क्रान्तिकारी भाष्य और सुधार प्रस्तुत हुए हैं । सुधारवादी तूफान आये हैं । उसने सनातन मान्यताओं की या तो नये ढंग से व्याख्या की है, या फिर नया स्वरूप दिया है । हम देखते हैं कि धर्म-क्षेत्र में पूर्वाग्रहों से भिन्न मान्यताएँ प्रस्तुत करने वाले सम्प्रदायों और सुधारकों की इन्हीं दिनों बाढ़ आयी है ।

यह नहीं कहा जा सकता कि यह सभी सुधारक सही थे । पर यह स्पष्ट है कि पूर्व मान्यताओं के प्रति उनके मन में भारी विद्रोह था । उन्हें उनमें सड़न की गन्ध आ रही थी और ऐसा कुछ ढूँढ़ने-बताने की आकुलता थी, जो अधिक सत्य हो । वस्तुतः उसके लिए अधिक गहरी खोज की जरूरत थी और नये प्रतिपादनों में ऐसे तथ्य जोड़ने की आवश्यकता थी, जो अधिक टिकाऊ होते । पर लगता है—सुधारक अत्यन्त आवेश में थे और इस हाथ सुधार, उस हाथ प्रतिपादन के समय-साध्य और श्रम-साध्य को तुर्त-फुर्त कर डालना चाहते थे । इस आकुल-व्याकुल मनःस्थिति में पिछली दो शताब्दियों में संसार भर में सुधारवाद और सम्प्रदायवाद की बाढ़ आयी है और उस अन्धड़ ने प्रत्येक धर्म को झकझोरा है ।

अधिक स्पष्ट तथ्य भले ही हाथ न लगे हों पर निःसन्देह पिछले दिनों दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी हवाएँ चली हैं और उनसे जन-मानस को यह आधार मिला है कि जो कुछ पिछले दिनों कहा या माना जाता रहा है, वह सब कुछ यथार्थ ही नहीं था, उसमें सुधार और परिवर्तन की बहुत गुंजाइश है । इन दिनों हम इसी मनःस्थिति में चल रहे हैं और जिस प्रकार वैज्ञानिक-क्षेत्र में पूर्वाग्रहों के साथ संगति बैठने न बैठने का विचार किए बिना भौतिक तथ्यों का खुले मस्तिष्क से ऊहा-पोह किया जा रहा है, उसी प्रकार धर्म के सम्बन्ध में यह आवश्यक समझा जा रहा है कि जो उचित हो, उपयोगी हो—उसे ही स्वीकार किया जाय । अनुपयुक्त अथवा अनगढ़ मान्यताएँ वापस ले ली जायें । भले ही वे कितनी ही पुरातन क्यों न हों ।

अनगढ़ के प्रति अनास्था व्यक्त करने का कार्य बहुत हो चुका, एक दृष्टि से आवश्यकता से अधिक भी । अनास्था सरल

है । अस्वीकृति में मन के विद्रोही घटकों को भड़का देना भर काफी है । नदी में बाढ़ आते ही तटवर्ती मर्यादाओं की क्रम व्यवस्था देखते-देखते अस्त-व्यस्त हो जाती है, यह सब बिना योजना और बिना प्रयत्न के सहज ही हो जाता है । अनास्था सहज ही उत्पन्न की जा सकती है । इन दिनों अनास्थावाद आवश्यकता से अधिक पनपता है । सुधारवाद में पुराने के स्थान पर नया रखने की पुनर्निर्माण प्रवृत्ति होती है, पर अनास्था तो सब कुछ विस्मार भर देखना चाहती है । अधार्मिक होने के पक्ष में यह दलील काफी है कि हम भ्रान्त धारणाओं में क्यों उलझें ? पर साथ ही यह भुला दिया जाता है कि धारणा रहित मनःस्थिति भ्रान्तियों में उलझने से भी अधिक बुरी है । मर्यादाहीन, आस्था रहित मन तो ऐसा उद्धत हो सकता है कि मनुष्य-जाति की नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं को भी तोड़-फोड़ कर रख दे और उस विस्फोट की अव्यवस्था सँभलते भी न बने । धर्म के सम्बन्ध में सुधारवादी, सत्य-शोधी दृष्टिकोण ही सराहनीय है । अनास्थावादी अत्युत्साह प्रगतिशीलता-चिह्न भले ही प्रतीत हो, पर अन्ततः वह भयावह ही सिद्ध होगा ।

अभी यह निर्धारित करना शेष है कि तर्क और तथ्य पर आधारित मानवी-धर्म का स्वरूप क्या हो ? यों मोटेतौर से विश्व का उच्च स्तरीय चिन्तन एक ही दिशा में चल रहा है कि धर्म का स्वरूप सार्वभौम होना चाहिए । उसे देश और जातिगत परम्पराओं अथवा मान्यताओं के आधार पर वर्गीकृत नहीं होना चाहिए । धर्म-शास्त्रों और आप्त-पुरुषों से शाश्वत-धर्म की स्थापना सहायता तो ली जा सकती है, पर उनमें से किसी एक को पूर्ण प्रामाणिकता नहीं मिल सकती । पिछले दिनों यह तो उत्साह हो रहा है कि समस्त विश्व का एक धर्म हो, पर उसके साथ यह आग्रह जुड़ रहा है कि हमारे ही धर्म को मान्यता मिले । समस्त विश्व को अपने ही धर्म के अन्तर्गत लाने के लिए मध्य-काल में कत्लेआम हुए और धरती को बेतरह श्रोणित स्नान कराया गया है । अब वह कार्य प्रचार और प्रलोभन के आधार पर चल रहा है । हमारा धर्म ही विश्व धर्म बने, इस आग्रह के पीछे दूसरे धर्म वालों की अवमानना का भाव जुड़ जाता है और वह बात धर्म का स्वरूप निर्धारण करने की न रहकर 'प्रतिष्ठा' के प्रश्न की चट्टान से जाकर अड़ जाती है ।

पुरातन-धर्मों का विश्लेषण करने पर कोई भी तो पूर्ण खरा नहीं उतरता और उसकी मान्यताओं को यह बुद्धिवादी युग शत-प्रतिशत गले उतारने के लिए तैयार नहीं हो सकता, क्योंकि अनुपयुक्तता के दोष से कोई भी अछूता नहीं है । पौराणिक दन्त-कथाओं ने और अपने वर्ग के प्रति पक्षपात की स्थापना ने, किसी भी धर्म-कथाओं ने सर्वथा विवेक-संगत कहला सकने की स्थिति में नहीं रहने दिया है । न्यूनाधिक मात्रा में सभी इस दोष से ग्रसित हैं । ऐसी दशा में इतना ही हो सकता है कि सार्वभौम और सर्वमान्य धर्म की प्रतिष्ठापना में भले ही भूतकालीन देवदूतों अथवा शास्त्रों के उपयोगी कथनों की प्रशंसा की जाय, पर उसका आधार इतना मजबूत होना चाहिए, जो तर्क और तथ्यों की परख पर कहीं से भी डगमगाने न पाये । व्यक्ति और समाज की महानता को निरन्तर अग्रगामी बनाये रखने वाले तथ्यों से भरा-पूरा उसका स्वरूप हो । पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर ही मौलिक चिन्तन के आधार से ऐसे सार्वभौम की स्थापना की जा सकती है । आज नहीं तो कल यही करना पड़ेगा अन्यथा पुरातन के प्रति विद्रोही अनास्था अपनी तोड़-फोड़ में उन मर्यादाओं को भी तोड़-फोड़ कर रख देगी, जो व्यक्ति और समाज की शान्ति और सुव्यवस्था के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

गेलीलियो प्रभृत्ति तथ्य शोधी दृष्टाओं ने चिन्गारी भले ही भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में जलाई हो, पर वह दावानल अब किसी एक कोने तक सीमित नहीं रह गया है । दर्शन, अध्यात्म और धर्म भी इन लपटों से अछूते नहीं बचे हैं । धर्म के स्वरूप में सुधार की आवश्यकता समझी जा रही है और साथ ही ईश्वर को भी लपेट में लिया जा रहा है । अब जादुई-ईश्वर गए-बीते जमाने का हो गया । ईश्वर का वर्णन ऐसे चमत्कारी और शक्तिशाली के रूप में होता रहा है, जिसे सुनकर बुद्धि हतप्रभ होकर रह जाय । वह कभी भी, किसी का भी, कहीं भी, कुछ भी करके रख सकता है । इस आतंकवादी प्रतिपादन को सुनकर मनुष्य उसी की शरण में जाने की बात सोचता था । उससे लड़ने में खैर नहीं, इसलिए भक्ति करना भी लाभदायक है । इस भक्ति का स्वरूप क्या हो ? इसके लिए ईश्वर के जीवित या मृतक प्रतिनिधियों के वचन अथवा लेखन ही प्रमाण होते थे । इस दृष्टि से भूतकालीन ईश्वरों की आकृति, प्रकृति, रुचि, इच्छा आज्ञा के परस्पर विरोधी इतने स्वरूप बन गए, मानों वे एक-दूसरे को मार-काट करके या नीचा दिखाने के लिए ही पैदा हुए हैं । इन ईश्वरीय-आज्ञाओं में ऐसे तथ्य भी भरे पड़े हैं, जो विवेकवादी नैतिकता और सामाजिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते ।

ईश्वरीय-कृपा प्राप्त करने के लिए अमुक विधि-विधान से पूजा-पाठ कर लेना अथवा सम्प्रदायगत मान्यताओं को अपना लेना पर्याप्त समझा जाता था । इसके बदले ईश्वर असीम इन्द्रिय-सुखों से भरपूर स्वर्ग प्रदान करता था और पाप-कर्मों का दण्ड मिलने से बचा देता था । यह प्रलोभन उस सरल-सी भक्ति-क्रिया का निर्वाह करने के लिए कुछ महँगा नहीं था । फलस्वरूप बहुत लोग ईश्वरवादी, ईश्वर-भक्त होने का दावा करते थे । साथ ही एक प्रकार के ईश्वर का भक्त दूसरी जाति के ईश्वर भक्तों से घृणा और शत्रुता भी कम नहीं करता था, अपराधी तत्वों ने अहंकार और लोभ वश जितना अनाचार फैलाया है, ईश्वर के नाम पर ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ईश्वर-भक्तों ने परस्पर एक-दूसरे का रक्त-पान उससे कम नहीं किया है । पुरोहित वर्ग ने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि अथवा विशेष कृपा-पात्र सिद्ध करके जिस प्रकार भोली-भावुकता का शोषण किया है, वह तो और भी अधिक हृदय-विदारक एवं घृणास्पद है ।

ईश्वर के नाम पर चल रही अन्धेरगर्दी के विरुद्ध विद्रोह भले ही विस्फोटक रूप धारण न कर सका हो, पर वह सुलझता भूतकाल में भी रहा है और उस विक्षोभ ने विविध रूप में अपना परिचय दिया है । बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म को अनीश्वरवादी कहा जाता है । उनमें सत्कर्म एवं सद्भाव को आत्मिक प्रगति के लिए, सद्गति के लिए पर्याप्त माना, इसके अतिरिक्त ईश्वर के किन्हीं आकार-प्रकारों को मानने को आवश्यक बताया है । वेदान्त-दर्शन को आधा नास्तिकवाद कहा जाता है । आत्मा की उच्चतम स्थिति का नाम ही परमात्मा को सिद्ध करके किसी विशिष्ट-कर्मी देव-दानव के रूप में चल रही भूतकालीन

मान्यताओं की उसने भी उपेक्षा कर दी है । यों चार्वाक मत सरीखा उग्र और अनैतिक नास्तिकवाद भी जब-तब फूटा है । इन तथ्यों के प्रकाश में एक झाँकी इस बात की मिलती है कि मध्यकाल में भी ईश्वर के नाम पर चल रही अन्धेरगर्दी के प्रति किस कदर सक्षोभ उभरता रहा है ।

इन दिनों चेतन को जड़ की ही स्फुरणा के रूप में विज्ञान ने प्रतिपादित किया है और आत्मा-परमात्मा की अतिरिक्त सत्ता मानने से इन्कार कर दिया है, उससे दार्शनिक-नास्तिकता पनपी है । दूसरी ओर ईश्वरवादियों द्वारा अपनाई जाने वाली रीति-नीति को मानव-समाज के लिए अहितकर सिद्ध करके समाजवादियों ने नास्तिकवाद का झण्डा फहराया है । वैज्ञानिक और सामाजिक कसौटी पर ईश्वर को खोटा सिद्ध करने के लिए इन दिनों जो बुद्धिवादी प्रयास हुए हैं, उन्होंने धर्म-धारणा की ही भाँति ईश्वरीय-मान्यता की भी नींव कमजोर की है ।

अत्युत्साह के आँधी-तूफानों को चीरते हुए पैनी आँखों से हम देख सकते हैं कि धर्म की ही तरह ईश्वरीय आस्था की भी मानव-जीवन को, उच्च-स्तरीय बनाये रहने के लिए, नितान्त आवश्यकता है—वस्तुतः ये दोनों एक ही प्रयोजन के दो पक्ष हैं । आदर्शवादी व्यवहार को धर्म कहते हैं और उत्कृष्ट परिष्कृत चिन्तन को अध्यात्म । यह दोनों ही ईश्वरवाद का जड़ से शोषण प्राप्त करते हैं । यदि सत्समर्थक और असत्-विरोधी दिव्य-सत्ता के अस्तित्व से इन्कार कर दिया जाय और मात्र भौतिक-सामाजिक आधार पर उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समर्थन किया जाय तो बात बनेगी ही नहीं । स्पष्टतः धार्मिकता और आस्तिकता की मान्यताएँ त्याग, संयम, सेवा, उदारता का दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं । जिनमें तात्कालिक एवं भौतिक दृष्टि से घाटा ही पड़ता है, नफा नहीं होता फिर इसे कोई क्यों अपनायेगा ? आत्मा का उल्लास, ईश्वरीय-अनुग्रह जैसे लाभ ही उत्कृष्ट जीवन के मूलभूत प्रेरणा-स्रोत हैं । भौतिक-जगत में राजसत्ता की आवश्यकता है और आत्मिक-जगत में ईश्वरीय-सत्ता की । इसके बिना जो अराजकता उत्पन्न होगी, उससे समस्त व्यवस्था ही लड़खड़ा जायेगी ।

धार्मिक-सुधारों की ही तरह ईश्वर-सम्बन्धी मान्यताओं में बुद्धिवादी दार्शनिकता ने काफी हेर-फेर किया है । सुधरा हुआ ईश्वर उद्धत या उच्छृंखल नहीं है, वह अपने बनाये नियमों में स्वयं बँधा है और मर्यादाओं के अनुरूप स्वयं चलता है और उसी राह पर चलने के लिए अपने भक्त अनुयायियों को प्रेरणा देता है ।

प्रकृति की क्रमबद्धता और ज्ञेयता, उसकी विश्वसनीयता, क्षमता मानव-हित में उसकी दोहन-शीलता को अब अधिक स्पष्टता के साथ समझा जाने लगा है । तदनुरूप धर्म को कर्त्तव्य और ईश्वर को औचित्य की संरक्षक सत्ता के रूप में स्वीकार किया जा रहा है ।

अध्यात्म का विकास अब किन्हीं जादुई क्षमताओं की उपलब्धि की दशा में पीछे लौट रहा है । ऋद्धि सिद्धि की कौतुक-कौतूहल प्रस्तुत करने वाली भौतिक क्षमताएँ प्राप्त करने के लिए विचारशील अध्यात्मवादी अब इच्छुक नहीं रहे । क्योंकि यह सब तो बाजीगरी-कला के अथवा वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से और भी अधिक मात्रा में और भी अधिक सरलता से मिल सकता है । अध्यात्म की नई परिभाषा है—'समष्टि को समुन्नत बनाने के लिए व्यष्टि का अधिकाधिक त्याग करने का उत्साह ।' उपनिषदों का यह प्रतिपादन अब अधिक अच्छी तरह समझा जाने लगा है । जिसमें कहा गया है—पवित्रता ही उल्लास की और सेवा ही आनन्द की जननी है । तत्वदर्शन ने पग-पग पर यह कहा है कि जो स्वार्थ में उसे खोजेगा, वह खोता चला जायेगा और जिसने अपने को खोया है वह अनन्त वैभव का अधिकारी बनता है । सेवा और संयम के दोनों पहिए जिस अध्यात्म की धुरी से जुड़े हुए हैं, भविष्य में उसी को दूरगामी दार्शनिकता द्वारा मान्यता प्राप्त होगी ।

धर्म, ईश्वर और अध्यात्म का भूतकालीन स्वरूप जो भी रहा है, उस विकासवादी और बुद्धिवादी युग में नये स्वरूप में ढाला जायेगा । परम्परागत मान्यताओं को जकड़े-पकड़े रहने से तो अधार्मिकता और अनास्था ही पनपेगी । विज्ञान ने तथ्य और तर्क की मान्यता प्रदान की है । दर्शन को भी इस बदलाव का स्वागत करना होगा । खीज व्यक्त करते रहने पर तो हम अपने पक्ष की दुर्बलता ही सिद्ध करेंगे ।

विज्ञान व अध्यात्म में विभेद नहीं, अभेद है

ज्ञान सम्पदा का खजाना दो तिजोरियों में भरा हुआ समझा जा सकता है । एक दर्शन की है, दूसरी विज्ञान की । दर्शन की तिजोरी में ज्ञान के वह तत्व निहित हैं, जिनसे चेतना को प्रभावित करने वाली, भावनागत सम्वेदनाओं का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है । नीति, धर्म, सदाचार, अध्यात्म का खजाना यही है । विज्ञान की तिजोरी में पंचभूतों से विनिर्मित चीजों की गतिविधियों की जानकारी तथा उसके उपयोग की विधियाँ सन्निहित हैं । आज इसकी अनेकानेक धाराएँ हैं—शरीर विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, रसायन, यांत्रिकी आदि ।

सामान्यजनों ने इनके बाह्य कलेवर को देख इन्हें परस्पर पृथक और असम्बद्ध माना है । यही नहीं इन्हें परस्पर विरोधी भी ठहराया है, पर यदि इस विषय पर गहन चिन्तन-मनन किया जाय तो पृथकता व असम्बद्धता का आवरण हट जाता है । यथार्थता प्रकट होने से यह समझ में आ जाता है कि ये परस्पर विरोधी नहीं, एक-दूसरे के पूरक हैं ।

आध्यात्मिकता की अवमानना तथा विज्ञान को विरोधी ठहराए जाने का प्रधान कारण है कि अध्यात्म तत्वदर्शन रूपी सूर्य पर प्रथा-परम्पराओं, लोक प्रचलनों का कुहासा छा गया है । लोग इस कुहासे को ही आत्मिकी समझ बैठे हैं पर यदि विवेक की हवा इस कुहासे को हटा दे तो तत्वदर्शन के सूर्य की यथार्थता प्रकट हो जाती है । तत्वदर्शन व विज्ञान दोनों ही एक बिन्दु पर आने लगते हैं । कारण कि रास्ते की भिन्नता के बावजूद दोनों ही सत्यान्वेषी हैं । इस सत्य शोधन की प्रक्रिया में दोनों में विभेद होने, विरोध जैसी स्थिति पनपने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

विज्ञान और अध्यात्म के पारस्परिक सम्बन्धों पर मेधावी वैज्ञानिक हैरोल्ड केशेलिंग ने सुविस्तीर्ण गम्भीर अध्ययन किया और प्राप्त निष्कर्षों को शोध प्रबन्ध के रूप में 'साइन्स एण्ड रिलीजन' के नाम से पेन्सिलवानियाँ यूनिवर्सिटी को प्रस्तुत किया ।

इस शोध प्रबन्ध में उन्होंने दोनों के साम्य और एक्य को बताते हुए जोरदार शब्दों में कहा है कि मानव की सर्वांग पूर्ण प्रगति के लिए दोनों ही आवश्यक और अनिवार्य हैं । अध्यात्म की कई बातें ऐसी हैं जिनसे विज्ञान दिशा ले सकता है और अपने को विध्वंसात्मक नहीं सृजनात्मक क्षेत्र में नियोजित कर सकता है । वहीं अध्यात्म भी तर्क, तथ्य पूर्ण वैज्ञानिक विधि को अपनाकर लोक मान्यताओं, अंध-विश्वासों, चित्र-विचित्र प्रचलनों का कोहरा मिटाकर अपनी यथार्थता, प्रखरता, तेजस्विता को प्रकट कर सकता है । उन्होंने आगे बताते हुए लिखा है पिछले दिनों अध्यात्म-विज्ञान का संघर्ष इन्हीं मुद्दों पर असहयोग के कारण होता था, जो अब समाप्त हो रहा है ।

विज्ञान की हठवादिता भी अब छूटती जा रही है । कारण कि पदार्थ जिसे उसने अपना आधार मान रखा था, सारे के सारे शोध प्रयास उसी में केन्द्रित थे, अब अपना अस्तित्व खोता जा रहा है । डेनमार्क के नील्सबोर, फ्रान्स के लुइसदे ब्रोगली, ऑस्ट्रिया के इरविन स्क्रोडिंगर तथा बुल्फ गैंगपाली, जर्मनी के वारनर, हाइजोन वर्ग व इंग्लैण्ड के पाल डिरेक आदि ने अपने मिले-जुले शोध प्रयत्नों से यह सिद्ध कर दिया है कि पदार्थ अनित्य है । उसका रूपान्तर ऊर्जा में होना अवश्यम्भावी है । वैज्ञानिकों की यह भी मान्यता है कि ऊर्जा जड़-चेतन सभी में समाई हुई है । इसे सर्वव्याप्तता कहना किसी भी तरह अत्युक्ति नहीं है । इनकी यह मान्यता प्रकारान्तर वेदान्त का ही समर्थन करती है ।

पदार्थ की अनित्यता का भान होने के साथ यह भी समझ में आता जा रहा है कि मानसिक और भावनात्मक सत्य का भी अस्तित्व है । इनका महत्त्व भी कम नहीं है । अपने को जड़वादी कहने में गर्व अनुभव करने वाले विज्ञानवेत्ता पुनर्जन्म परलोक, परमात्मा के अस्तित्व तथा मानव-मानव के बीच के सम्बन्धों को ठुकरा नहीं सकते । उनको सुलझाने के लिए जिस भावनात्मक आधार की आवश्यकता है उसे अध्यात्म ही पूरा कर सकता है ।

वैज्ञानिकों द्वारा की जाने वाली नित्य नवीन शोधें महत्त्वपूर्ण हैं । इनके महत्त्व से कोई इन्कार भी नहीं कर सकता है । इस प्रकार के प्रयासों से मानव का दैनन्दिन जीवन कितना सहज व सुगम हो गया है । इसे सभी जानते हैं । इस सहजता व सुगमता में विज्ञान के साथ अध्यात्म का भी हाथ है । उदाहरणार्थ डायनामाइट को ही लें । इसे किसी समय विज्ञान जगत की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता था, पर इसका उपयोग सुन्दर और भव्य भवनों का विनाश करके श्मशान बनाने में भी हो सकता है । ऊबड़-खाबड़, ऊँचे-बीहड़ पहाड़ों-चट्टानों को तोड़कर सड़कें बनाने के काम में भी । इन दोनों में समुचित कौन-सा है ? और किसे अपनाया जाना उचित है ? इस प्रकार औचित्यपूर्ण दिशा-दर्शन करना विज्ञान के बस की बात नहीं । कल्याणदायी इस दायित्व को निभा सकना आध्यात्मिकता से ही सम्भव है ।

विज्ञान किसी भी वस्तु का वैज्ञानिक निर्णय और तार्किक चिन्तन सही रूप में दे सकता है । जैसे यह मौसम की जानकारी दे सकता है, परमाणु विस्फोट से कितनी ऊर्जा पैदा होगी, यह बता सकता है, पर उसके सुनियोजन के बारे में नहीं बता सकता । देखा जा सकता है कि मानवीय व्यवहार और भावनाओं का भी एक क्षेत्र है । उसे भी यदि विज्ञान अपने तार्किक चिन्तन से बताने लगे तो यह निर्णय गलत ही होगा । यह एक शक्तिशाली साधन है । इससे साध्य की प्राप्ति कैसे होगी, इसे धर्म द्वारा ही निर्धारित किया जा सकना सम्भव है । इसके द्वारा की गई शोधों का मूल्यांकन एवं उन्हें मानवीय जीवन में व्यावहारिक धरातल पर लाना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, जिसे आत्मिकी ही पूरा कर सकती है ।

अध्यात्म-अन्तर्ज्ञान भावसम्वेदना व विवेक पर अवलम्बित है । विज्ञान का अवलम्बन बौद्धिक शक्ति पर है । प्रयोग की आवश्यकता दोनों में है । आध्यात्मिक सिद्धान्तों, उपनिषदों के श्लोकों को यदि रटते रहा जाय तो कुछ भी बात नहीं बनेगी । बस एक तोते की भूमिका ही निभाई जा सकेगी । प्रयोग में जुट पड़ने, इसके लिए समर्पित होने से सत्य का बोध पाकर सामान्य मानव से अतिमानव हुआ जा सकता है । विज्ञान का काम भी मात्र परिकल्पनाओं के आधार पर नहीं चलता । यथार्थता की शोध के लिए प्रायोगिक स्तर पर आना ही पड़ता है । इस प्रकार के किए जाने वाले प्रयोगों में यह अन्तर अवश्य है कि एक के प्रयोग का क्षेत्र पदार्थ है, दूसरे का चेतना । एक के प्रयोग में बहिरंग जगत की प्रधानता होती है दूसरे में अन्तरंग की । फिर एक साम्य भी है । प्रयोग के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले उपादानों में दोनों को ही इन दोनों क्षेत्रों का सहारा लेना पड़ता है । वैज्ञानिक बहिरंग जगत में कितनी ही बड़ी प्रयोगशाला क्यों न बना लें । कितने ही उपकरण क्यों न जुटा लें, पर बुद्धि, मन, मस्तिष्क जो अंतरंग क्षेत्र के हैं इनका समुचित उपयोग किए बिना किसी तरह का प्रयोग परीक्षण सम्भव नहीं । इसी तरह आध्यात्मिक प्रयोगों में चेतना अर्थात् अंतरंग की प्रधानता रहती है, फिर भी बहिरंग साधन शरीर की महत्ता है । इसी कारण तत्वविदों ने 'शरीर माद्यंखलु धर्म साधनं' भी कहा है । शरीर को स्वस्थ-सबल, सक्षम बनाने में वैज्ञानिक साधन भी प्रयुक्त होते हैं । इस तरह यह स्पष्ट होता है कि पारस्परिक विग्रह जैसी कोई बात नहीं । इन दोनों का अस्तित्व परस्पर पूरक सहयोगी बने रहने में ही है ।

ब्रिटिश विज्ञानविद् सर जेक्सजीन्स ने अपनी पुस्तक 'फिजिक्स एण्ड फिलॉस्फी' में लिखा है कि विज्ञान व अध्यात्म दर्शन के परस्पर विरोध का काल अब समाप्त हो चुका । दोनों ही क्षेत्र यह अनुभव करने लगे हैं कि पारस्परिक सहायता के बिना किसी का प्रयोजन पूरा न हो सकेगा । दर्शनशास्त्री बिल डुरण्ट ने अपने ग्रन्थ 'दि स्टोरी ऑफ फिलॉस्फी' में ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं । वे कहते हैं "विज्ञान का आरम्भ दर्शन में होता है और अन्त कला में । यदि इसमें मानवी चेतना की सुसम्वेदना उत्पन्न करने की क्षमता न होती तो इसके पीछे मानवी सुख शान्ति का जो उत्साह भरा लक्ष्य है, उसी ने विज्ञान की उन्नति का पथ-प्रशस्त किया है ।" विख्यात चिन्तक केसरलिंग ने अपनी पुस्तक 'क्रिएटिव अण्डरस्टैण्डिंग' में कहा है कि ज्ञान की दो धाराएँ विज्ञान एवं अध्यात्म दर्शन अविच्छिन्न हैं । इन दोनों को मिलाकर एक शब्द 'दार्शनिक विज्ञान या वैज्ञानिक दर्शन' नाम दिया जाना इस युग में सब प्रकार से उपयुक्त होगा ।

इन दोनों की अविच्छिन्नता को अब सभी मानने लगे हैं । अस्तु वैज्ञानिक दर्शन एक नये विश्वास के रूप में सामने आया है । विज्ञानी वारनर हाइजेनबर्ग ने अपने ग्रन्थ 'भौतिक विज्ञान एवं दर्शन' में अनिश्चितता के नियमों पर प्रकाश डालते हुए लिखा

है—"विज्ञान वस्तुतः दर्शनशास्त्र की स्थूल जाति का निरूपण करने की एक शैली मात्र है ।"

'फिलॉस्फी ऑफ फिजिकल साइन्स' के लेखक सर ए. एस. एडिंगस्टन ने अपनी मान्यता व्यक्त करते हुए लिखा है विज्ञान के सिद्धान्तों का समझना और समझाना अध्यात्मदर्शन के सिद्धान्तों के सहारे ही सम्भव है । 'फ्रॉम यूक्लिड टू एडिंगटन' के लेखक सर एडमण्ड हेटकार ने लिखा है "प्राचीन शास्त्रों के विवादास्पद सिद्धान्तों को वैज्ञानिक ढंग से अधिक प्रामाणिक रीति से परखा जा सकता है ।" 'दि फिलॉस्फी ऑफ स्पेस एण्ड टाइम प्रिफेस' के लेखक हैन्सराइवाय ने लिखा है—"वह जमाना समाप्त हो गया जब विज्ञान और अध्यात्म दर्शन को परस्पर पृथक माना जाता था । अब नवीन शोध निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि दोनों में ही एकत्व और साम्य है ।"

सचमुच इन दोनों के बाह्य स्वरूप भिन्न दिखाई पड़ने पर भी भिन्नता जैसी कोई बात नहीं । जिस तरह से गंगा और यमुना एक ही हिमालय के दो विभिन्न स्थानों से निकलकर मीलों, कोसों का प्रगति पथ पूरा करती हुई भिन्न दीखती हैं । यहाँ तक कि उनका बाह्यरंग भी श्वेत और श्याम होने के कारण विभेद आभास कराता है, पर यह विभेद तीर्थ राज प्रयाग में सम्मिलित होने पर लुप्त हो जाता है । दोनों ही सागर की ओर चल पड़ती हैं । उसी तरह अध्यात्म व विज्ञान की दोनों धाराएँ अन्तराल की जिज्ञासा से ही प्रस्फुटित हुई हैं । स्थान भेद अवश्य है, एक है—"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" जो अध्यात्म तत्वदर्शन के उत्कर्ष वेदान्त का मूल स्रोत है । दूसरे को "अथातो प्रकृति जिज्ञासा" कहा जा सकता है । परन्तु इन दोनों अर्थात् अध्यात्म गंगा और विज्ञान यमुना के बाह्य स्वरूप श्वेत और श्याम का विभेद चिरस्थाई नहीं । 'क्वांटम थ्योरी' तथा 'थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी' रूपी यमुनोत्री से प्रवेश कर विज्ञान की यमुना का प्रवाह तीव्रता से चलकर मिलन बिन्दु जिसे सही माने में तीर्थराज कहा जाना ही उपयुक्त है—पहुँच गया है । अब ये दोनों ही एकाकार होकर परम सत्य के असीम सागर की ओर लहराती-बलखाती तीव्रता से चल पड़ी हैं ।

श्वेत-श्याम का विभेद विज्ञान की प्राचीनता तथा मध्यकाल में आये अध्यात्म में छाए लोक प्रचलनों रूढ़िमान्यताओं के कारण ही दीखता है, पर अब प्रगति प्रवाह बहुत आगे बढ़ गया है । अब विभेद की जगह अभेद है । मिलन के इस तीर्थराज को बुद्धिजीवी, मनीषी, चिन्तक सभी इसे स्पष्ट देख सकते हैं । यह मात्र ऐसी अभेदता नहीं जहाँ इन मूर्धन्यों को ही सन्तोष मिले । समूची मानव जाति इस अपूर्व संगम में अवगाहन कर अर्थात् अध्यात्म विज्ञान दोनों को अपने बहिरंग व अंतरंग जीवन के व्यवहार में लाकर, समृद्धि प्राप्त कर तथा व्यवहार में उत्कृष्टता सम्पूर्ण जगत के प्रति प्रेम आत्मभाव के विस्तार जैसे दिव्य गुणों की प्राप्ति कर सांसारिक जीवन को सुनिश्चित रूप से सफल बना सकती है । साथ ही अंतरंग के निर्मल और प्रखर होने तथा प्रवाह के साथ चल पड़ने से वह दिव्य पथ-प्रशस्त हो जाता है जिसे अपनाकर कोई भी चिदानन्द सागर का भी आनन्द ले सकता है । यहाँ मात्र शान्ति नहीं, परम शान्ति है । विकास के उत्कर्ष का यह मर्म विभेद में नहीं अभेद में निहित है । इस अपूर्व तीर्थराज संगम में मज्जन-पान कर शरीर व मन की क्लान्ति, सारे सन्देहों, पूर्वाग्रहों से मुक्त प्रसन्नचित्त हो विकास यात्रा पर चल पड़ने का उत्साह उत्पन्न होता है । समय की माँग है कि दोनों ही विधाओं के पक्षधर अब इस महायात्रा पर चल ही पड़ें । उसी में जीवन की सार्थकता भी निहित है ।

दोनों प्रचण्ड शक्तियों का समन्वय

शक्ति और समर्थता का अपना महत्त्व है, पर उससे लाभ उठाने की एक ही शर्त है कि उस पर दूरदर्शी विवेकशीलता का अंकुश रहे । इसके बिना शक्तिमद उच्छृंखलता अपना लेता है और ऐसा कुछ करने के लिए उतारू होता है जिसे प्रकारान्तर से अनर्थ ही कहा जा सके । दुर्बल खरगोश तो एक सीमा तक ही खेत को उजाड़ सकता है, पर पागल हाथी को उसे खाने और खुरतारने की सनक में उस हरितिमा को तहस-नहस किए बिना चैन नहीं मिलता । इसीलिए जंगली हाथियों वाले क्षेत्र में कृषि करने वालों को सुरक्षा के लिए विशेष प्रयत्न और प्रबन्ध करना पड़ता है ।

पशु पालक बलिष्ठ जानवरों से उपयोगी काम कराते हैं, पर इसलिए उन पर नियन्त्रण की कड़ी व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है । घोड़े के मुँह में लगाम लगानी पड़ती है । ऊँट की नाक में नकेल डाली जाती है, बैल के नथुने छेदने पड़ते हैं । हाथी से सही काम कराने के लिए महावत को न केवल प्रशिक्षित होना पड़ता है वरन् पैनी नोंक वाले अंकुश का भी लगातार प्रयोग करना पड़ता है । यदि इन जानवरों को अपनी मर्जी पर चलने के लिए खुला छोड़ दिया जाय तो न केवल पालने वालों के लिए, वरन् उनकी चपेट में आने वाले हर किसी का बंटाढार करेंगे । रेल और मोटर को घुमाने, रोकने की प्रणाली सही रखनी पड़ती है अन्यथा वे किसी से भी टकरा कर अपना और सामने वाले का विनाश कर सकती है । सर्कसों में खूँखार जानवरों के खेल दिखाना तभी सम्भव होता है जब उन्हें चाबुकों की मार से डराकर संचालक को इच्छानुसार काम करने के लिए पूरी तरह सहमत कर लिया जाता है । यदि वे स्वच्छन्द रहें तो पालने वालों से लेकर दर्शकों तक की दुर्गति बना सकते हैं ।

विज्ञान को शक्तिपुंज कहा जा सकता है, पर वह जड़ पदार्थों से विनिर्मित होने के कारण विवेक शून्य स्तर का है । स्वच्छन्दता मिलने पर वह ऐसा भी कर बैठ सकता है, जिससे भारी हानि उठानी पड़े और पछताते हुए सिर धुनना पड़े । चूल्हे की चिन्गारी को उचटने का अवसर मिल जाय तो वह अपने घर का छप्पर ही नहीं जलायेगी, वरन् पास-पड़ोस को चपेट में लेते हुए पूरे गाँव को भस्मसात करके रहेगी । इसलिए आग को सतर्कतापूर्वक ढककर रखा जाता है ।

समर्थता अच्छी बात है, पर उसके साथ सदुपयोग करने और सुरक्षा में रखने की शर्त अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है अन्यथा खतरा ही खतरा मँडराता रहेगा । धन-दौलत को जहाँ-तहाँ पड़ी रहने देने पर चोर-डाकुओं का आक्रमण हुए बिना नहीं रह सकता । अस्त्र-शस्त्रों को लूट ले जाने की बात में लुटेरे रहते हैं । विषैले रसायनों की बिक्री पर लाइसेन्स रहता है । मादक पदार्थों के सेवन की भी खुली छूट नहीं रहती । कारण कि वे सब असाधारण शक्तिशाली होते हैं और बारूद के भड़क उठने पर उत्पन्न होने वाले विनाश की तरह संकट खड़े करते हैं ।

भौतिक विज्ञान और उनके सशक्त उत्पादनों का लाभ तभी है जब उनके ऊपर दूरदर्शी प्रणाली का समुचित अंकुश नियन्त्रण हो अन्यथा असुरक्षित छोड़ देने पर लाभ के स्थान पर हानि सहने का संकट ही सहन करना होगा । भूल यहीं हुई है और हो रही है । समर्थ होने के अहंकार ने अपने आपको सर्वत्र स्वतन्त्र मान लिया है, उसके ऊपर नियन्त्रण की भी आवश्यकता है, यह किसी ने अनुभव नहीं किया । फलस्वरूप स्वच्छन्दता इस कदर बढ़ गई कि विज्ञान ने पदार्थ सम्पदा की उधेड़बुन करते रहने तक सीमित न रहकर तत्वदर्शन को भी अपने ढाँचे में ढालना आरम्भ कर दिया । अब भौतिकवाद एक दर्शन भी बन गया है, उसका प्रतिपादन है कि जो इन्द्रियों या यन्त्रों की पकड़ में आ सकता है उतना ही सत्य और तथ्य है । ईश्वर द्वारा विनिर्मित क्रिया की प्रतिक्रिया को भी नकारा गया है और कहा गया है कि उसे भावनात्मक मामले में दखल नहीं देना चाहिए । विष खाने से मृत्यु हो जाती है और टॉनिक पीने से फुर्ती आती है, इतना ही प्रतिपादन पर्याप्त है । चेतना पक्ष में क्या उचित और क्या अनुचित है ? इसे किसी ने जानने और सदुपयोग करने का महत्त्व ही नहीं समझा ।

दर्शन के क्षेत्र में विज्ञान का हस्तक्षेप बढ़ने का प्रतिफल लगभग नास्तिकता जैसा हुआ । प्राणी को जब पदार्थ मात्र मान लिया गया तो उस पर भी जड़ नियम लागू करने की बात सोचना स्वाभाविक है । ऐसी दशा में चेतना की स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती तो उस पर उन कर्त्तव्यों और दायित्वों का आरोपण कैसे किया जाय जो भाव सम्वेदना, उदारता, परमार्थ-परायणता, सेवा-सद्भावना, शालीनता, संयम जैसी दिव्य विभूतियों से सम्बन्धित है । यदि इन्हें अनावश्यक ठहरा दिया जाय तो मानवी मर्यादाओं का पालन और वर्जनाओं का अनुशासन मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती । ऐसी दशा में समाजनिष्ठ और परस्पर आदान-प्रदान पर निर्भर मानवी सत्ता की चारित्रिक उत्कृष्टता को मान्यता मिलना कठिन हो जायेगा । भौतिक दर्शन या दमन मनुष्य जैसे अति चतुर प्राणी को सज्जनता के अनुबन्ध में बाँधे रह सकेगा, यह सम्भव नहीं । वह पग-पग पर धूर्तता का प्रयोग करते हुए ऐसा कुछ कर सकता है जिससे नीति, सदाचार, न्याय, सहकार, सद्भाव जैसे मानवी सद्गुणों की चूलें ही हिल जायें । धूर्तता में कौए और लोमड़ी को बदनाम करने वाली कहानियाँ कही जाती हैं, पर असल में नीचे स्तर पर उतरा हुआ मनुष्य ही वह प्राणी है जिसे दूसरे शब्दों में प्रेत-पिशाच कह सकते हैं । वह जब अनाचार पर उतारू होता है तो वैसे असंख्यों कुचक्र रच देता है, जिससे अपना ही नहीं अन्यान्यों का, प्राणियों का एवं पदार्थ जगत का भी सर्वनाश करके रख दे । प्राचीनकाल की असुर उपाख्यानों की वृहत्तर श्रृंखला इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण है । आधुनिक काल में हर क्षेत्र में उफनती विपन्नता भी यही बताती है कि मनुष्य भटका हुआ देवता ही नहीं, छद्मवेषधारी दैत्य-दानव भी है ।

संव्याप्त विपत्तियों, समस्याओं, विडम्बनाओं और अनिष्ट आशंकाओं के मूल में एक ही कारण है—मनुष्य के स्तर में निकृष्टता का समावेश । उसकी कृतियाँ संसार में स्वर्ग भी उतार सकती हैं और देखते-देखते नरक का माहौल भी बना सकती हैं । यदि संसार को सुखी-समुन्नत बनाना है तो प्रधानतया एक ही उपाय अपनाना होगा—उसे सुसंस्कृत बनाना, शालीनता अपनाने के लिए भावना स्तर पर तैयार करना । यह कैसे बन पड़े ? इसके उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है कि उसके दृष्टिकोण में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश कर सकने वाले तत्वदर्शन को अपनाने के लिए उसके अन्तराल को सहमत करना ।

दबावों में कुटिलों को एक सीमा तक ही बदला जा सकता है । अवसर पाते ही जिस भी परिस्थिति में रहना पड़े, उसी में 'बेशर्म बेल' और जलकुम्भी की तरह अपना विस्तार करने लगते हैं और अमरबेल जैसा अपना परिचय देने लगते हैं । प्राचीनकाल का दैत्य अभी भी मौजूद है, मात्र उसके क्रिया-कलाप में परिस्थिति के अनुरूप अन्तर हुआ है । नृशंसता अभी भी मौजूद है, मात्र उसने वेश बदला है । तर्कों के सहारे अपने कुकृत्यों को औचित्य बनाना शुरू कर दिया है, उसमें बाधक बनने का अपयश लेने के स्थान पर शोषण, छद्म, विश्वासघात और भ्रमजंजाल में फँसाकर उल्लू सीधा करना सरल पड़ता है । जल्लाद की तुलना में चिड़ीमार अधिक सरल मालूम पड़ते हैं । इसी प्रकार तर्कों का आवरण पहनाकर सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध करना अधिक सरल पड़ता है । कई अधिवक्ता इसी आधार पर अपनी आजीविका चलाते हैं । मार्गदर्शन का दायित्व उठाने वाले नेता भी कई अभिनेता और बहुरूपिए विदूषकों की भूमिका निभाते देखे जाते हैं, इन्हें कैसे समझाया और राह-रास्ते पर लाया जाय, यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा और जटिल मालूम देता है । समझाने-बुझाने का तरीका भी कुछ अधिक कारगर सिद्ध नहीं होता । कारण कि वह सब प्रायः सभी ने पहले से ही सुना-समझा होता है । कहने की प्रथा का जहाँ तक सम्बन्ध है वहाँ तक आदर्शवाद की शिक्षा दूसरों को देने में सभी प्रवीण पाये जाते हैं । स्वयं भी चोर को नौकर रखने, नशेबाज के साथ व्यवहार रखने को तैयार नहीं होते, क्योंकि उनके हानिकारक अनौचित्य को पहले से ही समझते हैं । फिर भी जब अपनी बात आती है तो उन्हीं बुराइयों को कार्यान्वित करने में सकुचाते नहीं, इस छद्म के रहते सदाचार की शिक्षा देना भी एक प्रकार से निरर्थक हो जाता है, क्योंकि अन्तराल की गहराई में अनाचार का पक्षधर अविवेक पहले से ही जड़ जमाए बैठा होता है । उखाड़ना इसी क्षेत्र में गड़ी हुई जड़ों को है । परिवर्तन उस दृष्टिकोण का किया जाना चाहिए जिसका स्थायित्व आस्थाओं और भावनाओं से सम्बन्धित है ।

यह हेर-फेर जीवन दर्शन आस्थाओं के अभ्यास पर, प्रचलन के प्रभाव पर निर्भर है । इसके लिए अध्यात्मपरक मान्यताओं, आस्थाओं और आदतों को स्वभाव में सम्मिलित करना होगा, यही है व्यक्तित्व के स्तर का मूलभूत आधार । इसी को परिष्कृत करने के लिए अध्यात्म का समग्र ताना-बाना बुना गया है । इस भाव सम्वेदना में जिस आधार पर उत्कृष्टता का मानवी गरिमा के अनुरूप समावेश किया जा सके, उसी आस्था नियोजन के आधार पर व्यक्ति के गुण, कर्म और स्वभाव का निर्माण होता है । यही है वह मेरुदण्ड जिसके सही, सीधा होने पर कोई सीधा खड़ा होने और तनकर चलने में समर्थ हो सकता है ।

इस तथ्य को इतिहास और वर्तमान के जन स्तर पर दृष्टिपात करके भली प्रकार जाना जा सकता है कि ऊँचे दृष्टिकोण एवं अच्छे स्वभाव के कारण ही लोग सर्वसाधारण की दृष्टि में अपने को प्रामाणिक एवं विश्वस्त सिद्ध कर पाते हैं, उसी को सम्मान और

सहयोग मिलता है । इसी के आधार पर किसी का मनोबल, चरित्रबल और कौशल बढ़ता है । ऊँचे उठने, आगे बढ़ने और सफलताएँ अर्जित करने का यही मार्ग है । इसी विशिष्टता के आधार पर कोई महामानव स्तर के, अपना और अन्यान्यों का कल्याण कर सकने वाले परमार्थ स्तर के कार्य कर पाता है । इस प्रकार अध्यात्म का अवलम्बन प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से हर किसी के लिए लाभदायक ही सिद्ध होता है । नीति-निष्ठा अपनाए रहने पर आत्मसन्तोष का, हल्के-फुल्के प्रसन्नचित्त बने रहने का लाभ मिलता है । उसी में वह शक्ति होती है कि अपने अनुकरण से सम्पर्क क्षेत्र वालों को अधिक श्रेष्ठ समुन्नत बना सकने में समर्थ हो सके । संसार के हर क्षेत्र की चिरस्थाई और दूरगामी सत्परिणाम उत्पन्न कर सकने वाली मनःस्थिति और परिस्थिति हाथ लगती है । दूसरों को सुधारना-समझाना भी ऐसे ही लोगों के लिए सम्भव है । उसी का परामर्श विश्वस्त समझा जाता है जो अपनी कथनी और करनी को एक कर चुका हो । व्यक्तित्व को इस स्तर का बना सकना सम्भव है जिन्होंने मानवी गरिमा के साथ जुड़े हुए नीतिनिष्ठ, समाजनिष्ठ एवं आदर्शनिष्ठ तत्वज्ञान को चिन्तन और चरित्र में गहराई तक स्थापित किया है । इस प्रकार आस्था संस्थान को उत्कृष्ट बना लेना हर किसी के लिए, हर प्रकार लाभदायक सिद्ध होता है । समझा जाना चाहिए कि अध्यात्म तत्वदर्शन से सम्बन्धित अनेकानेक, प्रतिपादन, अनुभव एवं कर्मकाण्ड इसी एक उद्देश्य को लेकर बनाए गए हैं जो लोक और परलोक को, प्रत्यक्ष और परोक्ष हर कसौटी पर बहुमूल्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं । जिस आस्था संकट ने अनेकानेक समस्याओं, उलझनों, विपत्तियों, विडम्बनाओं और आशंकाओं को जन्म दिया है उन्हें निरस्त करने का वास्तविक उपाय यही है कि लोकमानस को आदर्शवादी निष्ठाओं से अनुप्राणित किया जाय । हर किसी का हर प्रकार कल्याण इसी अवलम्बन को अपनाने में है ।

विज्ञान का दुराग्रह यह है कि उसने प्रत्यक्षवाद को ही सब कुछ मान लिया है और उसी के आधार पर हर विषय का प्रतिपादन आरम्भ कर दिया है । इस आधार पर तो हर अनैतिकता को निर्दोष ठहराया जा सकता है । यदि धर्म और अध्यात्म के सिद्धान्तों की अवहेलना चल पड़े तो फिर बूढ़े बैल की तरह बूढ़े बाप को भी कसाईखाने पहुँचाने में लाभ सोचा जाने लगेगा । नारी मात्र को अश्लील उपयोग का आधार मानने में कोई संकोच न होगा, शोषण, अपहरण और आक्रमण में भी कोई दोष न माना जायेगा । चूँकि पशु स्वभाव में इन्हीं बातों का समावेश है और मनुष्य को भी जब एक पशु ही मान लिया गया तो उस पर भी उन अनुबन्धों को लागू किस प्रकार किया जा सकता है, जिन्हें सभ्यता और संस्कृति के नाम से जाना जाता है जो अब तक की सराहनीय प्रगति के लिए एकमात्र श्रेयाधिकारी भी है ।

अध्यात्म का विशुद्ध दर्शन मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के आधार पर सही बैठता है और आवश्यक समझा जा सकता है । उसके साथ जुड़े हुए प्रतिपादनों और कर्मकाण्डों को भी इस दृष्टि से स्वीकार किया जा सकता है कि वे अन्ततः व्यक्ति को संयमी, अनुशासित, प्रामाणिक, सद्गुणी एवं परमार्थ-परायण बनाने की भूमिका निभाते हैं । ऐसे उपचार भी प्रत्यक्ष के आधार पर परोक्ष को प्रशिक्षित करने की नीति के अंग ही बनते हैं और प्रत्यक्ष दृष्टि से उनकी उपयोगिता में सन्देह उठने पर भी समाधान इसलिए हो जाता है कि उनका प्रभाव-परिणाम अन्ततः व्यक्तित्व को अधिक शालीन बनाने में सहायक होता है, जिसकी कि आज अन्यान्य प्रयोजनों की अपेक्षा अत्यधिक आवश्यकता है । इस तथ्य पर विचार करते हुए विज्ञान को, अविज्ञात को भी एक विधा मानना चाहिए, जो सुविधा-सम्वर्धन की ही तरह सभ्यता और संस्कृति का स्तर बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है ।

अध्यात्म दर्शन के प्रति उपेक्षा और अवमानना इसलिए नहीं बनी है कि उसके प्रतिपादन गलत हैं वरन् इसलिए विग्रह उपजा है कि उसकी आड़ में अनेकानेक अवांछनीयताओं ने अपना अड्डा जमा लिया है । अन्धविश्वासों, मूढ़ मान्यताओं और अवांछनीयताओं के पक्ष में ऐसा समर्थन भी प्रस्तुत किया है जो कबीलों की गुटबन्दी की दृष्टि से किन्हीं को भले ही रास आता, पर उसे सर्वोपयोगी नहीं कहा जा सकता । विशेषतया यह अनौचित्य तब असह्य हो जाता है जब उसमें से समन्वय की, सहिष्णुता की और मिल-जुलकर रहने की वृत्ति समाप्त हो जाती है । हमारा पक्ष शत-प्रतिशत सत्य और अन्यान्यों की मान्यता सर्वथा झूठी, इसी को मतान्धता, धर्मान्धता, असहिष्णुता आदि के नाम से पुकारा जाता है । इसी पर अड़ जाने के कारण आये दिन विग्रह खड़े होते हैं और खून-खराबे के दृश्य नजर आते हैं । इस प्रकार प्रचलनों को पत्थर की लकीर मानकर उनके अनुपयोगी होने पर भी अपनाने के लिए अड़े रहना भी एक ऐसा अनौचित्य है जिसके कारण धर्म और अध्यात्म के प्रति विरोध भाव उपजता है और उसकी उपेक्षा, हठवादिता हर विचारशील पर बुरा असर छोड़ती है ।

निहित स्वार्थों वाले चतुर वर्ग ने अध्यात्म से सम्बन्धित अनेक प्रचलनों को अपने ढंग से तोड़-मरोड़कर आजीविका का माध्यम बना लिया । अन्य व्यवसायों की तरह यदि धर्मधुरीण कहलाने वाले व्यक्ति अपनी सेवा का उचित पुरस्कार माँगते तो हर्ज न होगा, पर अन्धविश्वासों में भावुक जनों को फँसाकर उनके भोलेपन का अनुचित लाभ उठाना अखरता है और इस औचित्य के प्रति उपजा आक्रोश समूचे धर्म या अध्यात्म क्षेत्र के प्रति तिरस्कार का भाव उत्पन्न करता है और इसी कारण सीमित विरोध असीम विग्रह तक जा पहुँचता है ।

विज्ञान ने सत्य की शोध को लक्ष्य बनाया है, जब भी भूल मालूम हुई है, सुधारा है । जो हस्तगत हुआ है उसे आत्यन्तिक सत्य न मानकर आगे भी खोज चलते रहने की उपयोगिता को स्वीकार किया है । इन्हीं मान्यताओं के आधार पर उन्होंने इतनी प्रगति की है और भविष्य में और भी अधिक कर गुजरने की सम्भावना है । यही तथ्य यदि अध्यात्म क्षेत्र में अपनाया गया होता और सत्य के अधिक निकट पहुँचने के लिए आग्रहरहित मानस बनाकर रखा गया होता तो क्रमशः निखार आता चलता और अध्यात्म में भी वह विश्वास मिला होता जो विज्ञान को उपलब्ध है ।

अध्यात्म और विज्ञान के सम्बन्ध का तात्पर्य यह है—मनुष्य जीवन को भौतिक और आत्मिक प्रगति का सन्तुलन बिठाने, मिल-जुलकर काम करने के लिए सहमत किया जाय, वैसे ही प्रचलन को जन्म दिया जाय । सत्य की शोध के लिए दोनों में

समान रूप से उत्साह रहे । सम्भव सत्प्रगति के मार्ग में किन्हीं भी पूर्वाग्रहों को बाधक न बनने दिया जाय, इसी में सबका सब प्रकार कल्याण है ।

समन्वय प्रशस्त करेगा उज्ज्वल भविष्य के पथ को

विज्ञान और धर्म में परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । दोनों एक दूसरे की कमी को पूरा करते हैं । एक की दिशा धारा नेचर से सुपर नेचर की ओर प्रगति करने की है, तो दूसरा सुपर नेचुरल को प्राकृतिक जगत में व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करता है । एक का परित्याग करने अथवा दूसरे पर हावी होने से ही टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है एवं साथ चलने पर समग्र प्रगति का द्वार खुलता है ।

एक शताब्दी पूर्व जर्मन वैज्ञानिक डॉ. ड्रापर ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द कनफ्लिक्ट बिट्वीन साइन्स एण्ड रिलीजन' में कहा था कि धर्म और विज्ञान में अभी जो संघर्ष दिखाई पड़ रहा है, भविष्य में वह समाप्त हो जायेगा । जैसे-जैसे मनुष्य की बौद्धिक चेतना विकसित होती जायेगी, यह स्पष्ट होने लगेगा कि यह दोनों ही समूचे विश्व-ब्रह्माण्ड एवं उसमें संव्याप्त विराट् चेतना को जानने-समझने, जीवन में उतारने एवं व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने की विधाएँ हैं । अभी जो वैज्ञानिक बुद्धि हड़बड़ी में अनर्थकारी, अपरिमित निर्माण करने, साधन-सुविधाएँ जुटाने में निरत हैं, आगे चलकर उस पर नियन्त्रण सद्भावपूर्ण विवेक बुद्धि का होगा और तब दोनों का समन्वित प्रशिक्षण नूतन मानवी सभ्यता को जन्म देगा ।

वाशिंगटन विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉन ई. बेन्टली का कहना है कि विज्ञान को कभी 'फेथलेस फैक्ट' अर्थात् श्रद्धाविहीन तथ्य कहा जाता था, तो धर्म या अध्यात्म को 'फैक्टलेस फेथ' अर्थात् तथ्य विहीन विश्वास, किन्तु आज दोनों के मध्य दूरी कम हुई है उनमें एकत्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है । विज्ञान की अकड़ ढीली हुई है और वह विनम्रतापूर्वक यह सिद्ध करने में जुट गया है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड में कोई दिव्य चेतना विद्यमान है जो प्रकृति पदार्थों से लेकर चेतन प्राणियों तक का संचालन, नियन्त्रण एवं अभिवर्धन कर रही है । श्रद्धा-विश्वास की गहनता द्वारा उसकी अनुभूति सरलतापूर्वक कोई भी कर सकता है ।

मूर्धन्य चिकित्साधिकारी डॉ. चार्ल्स सिन्गर के अनुसार मध्यकाल में जब विज्ञान अपनी आरम्भिक अवस्था में था । तब उसका धर्म या अध्यात्म से कोई विरोध नहीं था, किन्तु जैसे-जैसे आविष्कार होते गए, कोपरनिक्स, गैलीलियो, न्यूटन, मेन्डेलीफ आदि वैज्ञानिकों की खोजें सामने आयीं तर्क, तथ्य एवं साक्ष्य के अभाव में धार्मिक मान्यताओं की धज्जियाँ बिखरनी आरम्भ हो गईं । भावनाओं का स्थान तर्क बुद्धि ने ग्रहण कर लिया । कल्पनाएँ प्रयोग परीक्षण की वस्तु बन गईं और समय के साथ खरी भी सिद्ध होने लगीं । एक छोर को पकड़ लेने पर अगली कड़ी अपने रहस्य स्वयं उगलने लगती है । धर्म या अध्यात्म के साथ ऐसा नहीं हुआ । जहाँ का तहाँ पड़ा रह कर अपनी उपयोगिता को पानी में पड़े लोहे की तरह जंग लगाता रहा । विज्ञान बुद्धि प्रधान है तो अध्यात्म भावना प्रधान । स्वर्ग-मुक्ति सम्बन्धी, सुख-शान्ति सम्बन्धी इसकी बातें वैज्ञानिक यन्त्रों की पकड़ से बाहर हैं । ऐसी स्थिति में विज्ञान का पलड़ा भारी रहा । दूसरे, वह जो कहता है या सिद्धान्त प्रतिपादित करता है प्रत्यक्ष कर दिखाता है । अध्यात्म गुण, कर्म, स्वभाव, में श्रेष्ठता एवं चिन्तन, चरित्र व्यवहार में उत्कृष्टता की बात करता है पर उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों के उदाहरण ढूँढ़ने पर मुश्किल से ही मिलते हैं और साथ ही मशीनें भी उनकी गहराई को कहाँ माप पाती हैं । यही वह मूल कारण जो दोनों के मध्य की खाई को गहरी बनाते हैं ।

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित प्रख्यात दार्शनिक एवं गणितज्ञ बर्ट्रेण्ड रसेल अपनी कृति—'रिलीजन एण्ड साइन्स' में विज्ञान और धर्म के सामाजिक जीवन के दो प्रमुख आधार बताए हैं । इनमें से एक आन्तरिक एवं मानसिक विकास के लिए, स्थायी सुख-शान्ति के लिए आवश्यक है तो दूसरा भौतिक अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए । एक पक्ष की उपेक्षा कर देने अथवा दूसरे को अधिक महत्त्व देने से असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और जीवन के समग्र विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है । पिछले दो महायुद्ध इस बात के साक्षी हैं कि एकांगी वैज्ञानिक प्रगति किस कदर मनुष्य को दिग्भ्रान्त कर उसके स्वयं के अस्तिस्व पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है । एकाकी धर्म या अध्यात्म भी आज के प्रगतिशील जीवन की उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता । चिकित्सा, परिवहन, उद्योग, शिल्प, कला, इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी जैसी महत्त्वपूर्ण विधाओं के बिना आज जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती । दोनों का समन्वित विकास ही अभीष्ट है ।

मनुष्य पूर्णतः अध्यात्म जीवी है और आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर ही उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है । वैज्ञानिक खोजों और उसकी मशीनी माप-तौल के द्वारा उसका मूल्यांकन सम्भव नहीं । इससे मात्र जीवन में सुखकारी साधन-सुविधाएँ जुट सकती हैं, कठिनाइयों को सरल बनाया जा सकता है, परन्तु सुरदुर्लभ मानव जीवन इतने तक ही सीमित नहीं है । पूर्णता की सत्य की प्राप्ति उसका लक्ष्य है । प्राकृतिक रहस्यों का उद्घाटन, जड़ पदार्थों का विश्लेषण जीवन का एक अधूरा पक्ष है जिससे मात्र कलेवर की जानकारी भर मिलती है । उसमें सन्निहित चेतन सत्ता की दिव्य सामर्थ्य का परिचय अन्तराल की गहराई में प्रविष्ट करके ही प्राप्त किया जा सकता है ।

इस सन्दर्भ में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के विख्यात वैज्ञानिक डॉ. आर्थर जेम्स का कहना है कि अध्यात्म तथा विज्ञान में अब परस्पर सहयोग के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं । वैज्ञानिक खोजों से यह स्पष्ट हो गया है कि भौतिक जगत में सर्वत्र ऊर्जा का ही खेल चल रहा है और वह अध्यात्म जगत में संव्याप्त चेतन ऊर्जा का ही एक रूप है । भौतिक ऊर्जा उसी से उत्पादित, संचालित और नियन्त्रित है । उनकी यह मान्यता प्रकारान्तर से छान्दोग्य उपनिषद् के सूत्र 'सर्व खिल्विदं ब्रह्म' की पुष्टि करती है जिसके अनुसार एक ही परम सत्ता से पृथ्वी, जल, अग्नि, ईथर, वायु, जीवन ऊर्जा और मन-मस्तिष्क की उत्पत्ति हुई है । दर्शनशास्त्र का 'स्व' और विज्ञान जगत की भौतिक ऊर्जा दोनों एक हैं । एक के बिना दूसरे की गति नहीं । यही बुद्धि की, भावनाओं की, इच्छा-आकांक्षाओं की शक्ति का स्रोत है । विज्ञानवेत्ता मेरीबेकर के अनुसार विज्ञान मस्तिष्कीय चेतना द्वारा मैटर पर आधिपत्य

के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । यदि उसकी परिधि को बढ़ाया, विकसित किया एवं उच्च आयामों में प्रवेश करने दिया जा सके तो वही 'दिव्य चेतन मस्तिष्क' के विकास में सहायक हो सकती है । सत्य का उद्घाटन उसी के द्वारा सम्भव है ।

सहस्राब्दियों से अध्यात्मवेत्ता जिस पर सत्य की खोज करते आ रहे हैं, विज्ञान ने उसे 'टेक्नीकल ट्रुथ' के रूप में जान लिया है । यह वह अवस्था या सिद्धान्त है जिसके द्वारा भविष्य में नूतन आविष्कार सम्भव हो सकेंगे । इससे वैज्ञानिक मन को अन्तर्मन की गहराई में प्रवेश करने और उसमें समाविष्ट शक्ति स्रोतों के उद्घाटन में सहायता मिलेगी । कैनन स्ट्रीकर इसी तथ्य को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि अब यह स्पष्ट हो गया है कि अकेले पदार्थ जगत की खोज ही पर्याप्त नहीं है । विज्ञानवेत्ताओं का ध्यान चेतना की ओर मुड़ा है । कारण मात्र विज्ञान के सहारे न तो कला की, मैत्री की अथवा अन्यान्य जीवन मूल्यों की व्याख्या विवेचना बन पड़ती है और न ही वह यह बताने में समर्थ है कि घृणा या प्रेम में से दयालुता या क्रूरता में से किसे अपनाया जाय । वह केवल इच्छा-आकांक्षाओं की पूर्ति के साधनों के बारे में बता सकता है, पर यह निर्णय करते अभी उससे नहीं बन पड़ता कि इनमें से महत्त्वपूर्ण एवं अनुकूल कौन है ? यह निर्णय करना विवेक-बुद्धि का काम है ।

मनीषियों का मत है कि विवेक बुद्धि स्वामी है तो विज्ञान दास । उसका निर्माण प्रज्ञा की उथली पर्त तर्क बुद्धि से, कल्पना शक्ति से हुआ है । सत्य का आधार प्रज्ञा है कल्पना नहीं । विज्ञान के प्रयोक्ता को गहराई में प्रवेश कर इसी का आश्रय लेना होगा । तब वह प्रकृति पदार्थों तक सीमित न रहकर चेतना क्षेत्र की रहस्यमयी शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित कर लेगा । तर्क बुद्धि विवेक बुद्धि में कल्पना शक्ति भावनाशक्ति में समाहित हो जायेगी और इनके समन्वय से जिस नये विज्ञान का जन्म होगा वह सत्य के बहुत समीप होगा । विश्व ब्रह्माण्ड की अद्भुत रहस्यमय पर्तों का उद्घाटन तभी सम्भव है ।

अध्यात्म यथार्थवादी है विज्ञान सम्मत भी

चेतन पक्ष को सुनियोजित सुसंस्कृत बनाने की विद्या अध्यात्म नाम से जानी जाती है । इसमें वह अनुशासन भी जुड़ा हुआ है जिसे संयम या आत्मानुशासन नाम से जाना जाता है । यह न बनने पर जो शेष रह जाता है । उसे आडम्बर या कलेवर ही कह सकते हैं । रामलीला आयोजन में बड़े आकार के रावण, कुम्भकरण आदि खड़े किए जाते हैं । उनमें कौतूहल भर होता है । अधिक से अधिक उन दैत्यों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिलती है । पर यह नहीं होता कि वे पुतले अपने कलेवर के अनुरूप कुछ कृत्य पराक्रम पुरुषार्थ करके दिखा सकें । यही बात अध्यात्म के सम्बन्ध में भी है । आम तौर से लोग उसके कलेवर भर का वर्णन करने में रुचि लेते हैं । उसकी मर्यादाओं को जीवन में उतारने का प्रयत्न नहीं करते । फलतः जो कुछ बच रहता है उसे कलेवर की विडम्बना भर कहा जा सकता है ।

तथ्य और तत्व का समावेश न होने पर यह स्थिति बन ही नहीं पड़ती जिसमें विज्ञान के समतुल्य या उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर सकने की स्थिति बन सके । एक ओर सजीव हाथी खड़ा हो और दूसरी ओर वैसा ही कागज का पुतला बनाकर खड़ा कर दिया हो तो यह आशा नहीं की जा सकती कि तुलना करने पर दोनों की सामर्थ्य समान सिद्ध हो सकेगी । दोनों को समान महत्त्व या मूल्य मिल सकेगा । दोनों से समान काम लिया जा सकेगा । नकली को अधिक वरिष्ठ या प्रमुख सिद्ध करने का तो अवसर ही कहाँ आता है ?

जब जड़ पदार्थों से लाभान्वित होने की, शरीरों को स्वस्थ रखने की, व्यापार व्यवसाय की कोई विधि व्यवस्था हो सकती है तो चेतना को सही और सुसंस्कृत बनाये रखने का भी सुनिश्चित अनुशासन रहेगा ही । शरीर की पृष्ठभूमि में प्राण काम करता है । प्राण के दुर्बल हो जाने या विलग हो जाने पर शरीर महत्त्वहीन बन जाता है । इससे प्रकट है कि चेतना की, प्राण सत्ता की, विचारणा की अपनी समर्थता और उपयोगिता है । उसे उपेक्षा की स्थिति में नहीं रखा जा सकता है । जैसे-तैसे, जहाँ-तहाँ उसे पड़ा नहीं रहने दिया जा सकता है । अनगढ़ बनी रहने पर तो वह जंग खायी हुई घड़ी की तरह समय बताने की अपनी क्षमता से वंचित की बनी रहेगी । इस दुर्गति से चेतना क्षेत्र को बचाये रहने के लिए अध्यात्म विज्ञान का सुनियोजन हुआ । पदार्थ विज्ञानियों की तरह ऋषिकल्प तपस्वियों ने अपने मानस को प्रयोगशाला बनाकर उन तथ्यों को ढूँढ़ निकाला जिन्हें अपनाकर नर बानर स्तर के एक सामान्य प्राणी किस प्रकार ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी, विश्व बसन्धुरा के अधिष्ठाता बन सके । किस प्रकार उन्होंने अपनी प्रसुप्त शक्तियों को खोजा और उन्हें जाग्रत करके देव मानव का पद पाया ।

पदार्थ द्वारा मिल सकने वाले लाभों से सभी परिचित हैं । बलिष्ठ शरीर की उपयोगिता भी निरन्तर सिद्ध होती रहती है । सम्पत्ति के आधार पर इच्छित सुविधा साधन खरीदे जा सकते हैं । यह प्रत्यक्ष उपलब्धियों का महात्म्य हुआ । इससे कहीं अधिक बढ़े-चढ़े लाभ विभूतियों के हैं । गुण, कर्म की उत्कृष्टता को ही दार्शनिक भाषा में अध्यात्म कहा जाता है उसके आधार पर जो मिल सकता है उसकी जानकारी संसार में सृजन प्रयोजनों में सफल हुए महामानवों की जीवन गाथाओं का पर्यवेक्षण करते हुए सहज ही जानी जा सकती है ।

अध्यात्मवेत्ताओं का मत है कि इस विज्ञान के अनुसार आचरण करने पर अदृश्य चेतना के भावना, मान्यता, आस्था, प्रज्ञा, श्रद्धा पक्षों को उच्चस्तरीय बनाया जाता है । वे परिस्थिति होने पर इच्छा, आकांक्षा, प्रेरणा के रूप में बुद्धिक्षेत्र को देवोपम बनाती हैं । देवोपम से तात्पर्य है—उत्कृष्टता सम्पन्न आदर्शवादी चिन्तन और चरित्र । व्यक्तित्व का परिष्कार भी इसी को कहते हैं । प्रतिभा परिवर्धन भी इसी के साथ जुड़ा रहता है । इन विशेषताओं से सम्पन्न होने पर व्यक्ति उस स्तर का बन जाता है जिसे श्रद्धेय, सम्माननीय, प्रामाणिक, अनुकरणीय, अभिनन्दनीय कहा जा सके ।

अध्यात्म की वास्तविकता का स्वरूप एवं उपक्रम समझ लेने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि चेतना को महत्चेतना के साथ जोड़ने की यह प्रक्रिया आत्मसंयम, अनुशासन, मर्यादापालन की तपश्चर्या से आरम्भ होती है और उत्कृष्ट आदर्शवादिता से भरे पूरे चरित्र व्यवहार से अपना प्रमाण परिचय पग-पग पर देती है । परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा है । वेदान्त दर्शन में

'अयमात्मा ब्रह्म', 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'तत्वमसि', 'सोहम', 'शिवोहम्' जैसे सूत्रों द्वारा वास्तविकता का स्पष्ट करना किया गया है ।

इस स्तर के अध्यात्म का विज्ञान भी कैसे विरोध करने का साहस जुटा पायेगा ? विज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज, अविज्ञात का अनुसन्धान और प्रगति के साधन जुटाना है । यदि यही कुछ अध्यात्म के द्वारा चेतना क्षेत्र में सम्पन्न किया जाता हो तो विग्रह क्यों उठेगा ? दोनों अपने-अपने क्षेत्र में काम करते हुए भी एक दूसरे के पूरक समझे जाने लगेंगे । हवा आकाश में परिभ्रमण करती है और आहार दृश्यमान खाद्य-पदार्थों से विनिर्मित होता है । इतने पर भी दोनों की भूमिका जीवन निर्वाह में समान स्तर की होती है । यदि लक्ष्य एक रहे तो उन्हें विरोधी क्यों माना जायेगा ? उपलब्धियों का सदुपयोग और जो आगे की सम्भावनाएँ हैं उनका अनुसन्धान यह कार्य यह दोनों महाशक्तियाँ अपने-अपने ढंग से सम्पन्न करती रहें तो उनके बीच विग्रह कहाँ रहा ?

अन्धविश्वास फैलाने का आरोप दार्शनिक प्रतिपादनों पर लगता है । कारण कि उनके आधार पर जो कुछ कहा जाता है वह सर्वमान्य नहीं होता । मात्र एक वर्ग के लोग ही उसे यथार्थ मानते हैं । अपने को सच्चा और दूसरों को झूठा भी ठहराते हैं । कलह यहीं से आरम्भ होती है । जो बात प्रत्यक्ष प्रमाणित न की जा सके उसे अपनी श्रद्धा के अनुरूप मान्यता देने में तो कोई भी स्वतन्त्र है, पर उन्हें दबाव व प्रलोभन के आधार पर दूसरों पर थोपना अनुचित है । इसी अनौचित्य का विरोध प्रायः विज्ञान वर्ग द्वारा अध्यात्म पर होता रहता है । मरणोत्तर जीवन, सम्प्रदाय विशेष पर ईश्वर की अनुकम्पा या नाराजी जैसे प्रतिपादनों से सत्य की शोध में बाधा पड़ती है । प्रत्यक्षवाद का हिमायती बुद्धिवादी वर्ग इसी आधार पर अध्यात्म को अन्धविश्वासों पर अवलम्बित कहता और उसे अमान्य ठहराता है । इस प्रश्न पर सम्प्रदायवादी दार्शनिकों को भी नरम होना चाहिए । साथ ही अनुसन्धान के क्षेत्र में उतर कर यह देखना चाहिए कि उनके प्रतिपादन, नीतिशास्त्र और समाज सुनियोजन में किस सीमा तक सहायक सिद्ध होते हैं ? सर्वसाधारण को उन मान्यताओं के सहारे किन सुव्यवस्थाओं की उपलब्धि होती है ? तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण के आधार पर यदि अध्यात्म मान्यताएँ सही सिद्ध की जा सकें तो वे प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी खरी सिद्ध होंगी और उनका मान बौद्धिक तथा वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी खरा सिद्ध होता चलेगा फिर किसी को किसी पर आरोप लगाने की आक्षेप थोपने की गुंजाइश न रहेगी ।

जो अपनी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता सिद्ध कर पाता है, उसी में लोक मान्यता मिलती है । इस सन्दर्भ में अध्यात्म को स्वयं आत्म निरीक्षण परीक्षण करना चाहिए और जो खरा है वह वाला सिद्धान्त अपनाकर ऐसा कवच पहन लेना चाहिए कि जिस पर बुद्धिवाद का, प्रत्यक्षवाद का अतिक्रमण आघात न पहुँचा सके ।

प्रगतिशील अध्यात्म ही युगानुकूल

देखने-सुनने में धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, पर वास्तविकता इससे भिन्न है । यह न तो परस्पर विरोधी हैं, न एक-दूसरे से पृथक, वरन् ये एक-दूसरे के सहयोगी और पूरक हैं ।

इस दिशा में भूल तब हुई, जब दोनों को एक-दूसरे से पृथक मान लिया गया, पर वास्तव में ऐसा है नहीं । दोनों एक रथ के दो पहियों के समान हैं, जिसमें एक के बिना दूसरे की गति सम्भव ही नहीं है । इस सम्बन्ध में अंग्रेज भौतिकविद् डॉ. फ्लेमिंग का कथन है कि यदि विज्ञान, धर्म से अलग होता तो यह सृष्टि-संरचना आज हम भली-भाँति नहीं समझ पाते । इसे ठीक-ठीक समझने के लिए दोनों का ही आश्रय लेना पड़ता है । कोई वस्तु 'कैसे' बनी ? इसका उत्तर विज्ञान देता है, किन्तु जब यह पूछा जाता है कि आखिर यह वस्तु 'क्यों' बनी ? तो यहाँ विज्ञान मौन हो जाता है । यही विज्ञान की अन्तिम सीमा है । इसके बाद धर्म की शुरूआत होती है । इस 'क्यों' का उत्तर वही दे सकता है । उदाहरण के लिए इस विश्व-ब्रह्माण्ड को लिया जा सकता है । इसकी रचना कैसे हुई ? इसका उत्तर विज्ञान यह कहकर देता है कि अति आरम्भकाल में एक महाविस्फोट हुआ और इसी से यह सृष्टि बनी, पर यह सृष्टि बनी क्यों ? इसका उत्तर अध्यात्म देता है कि इसके पीछे भगवद् इच्छा थी । इसी प्रकार जीवन की उत्पत्ति सम्बन्धी विज्ञान की मान्यता है कि जीवन का विकास कुछ रसायनों के मिलन संयोग से हुआ । पर प्रश्न यह है कि जड़ समझे जाने वाले इन तत्वों में गति कहाँ से आयी ? चलकर मिलने की प्रेरणा किसने दी ? उत्तर धर्म देता है, कहता है कि इसके पीछे परमसत्ता के एक से अनेक बनने की इच्छा ही मुख्य भूमिका निभाती है और प्रेरणा का उद्गम स्रोत बनकर सबको क्रिया के लिए प्रेरित करती है ।

इस प्रकार देखा जाय तो ज्ञात होगा कि धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के सहयोगी हैं, विरोधी नहीं । जब एक ही वस्तु से सम्बन्धित दो प्रश्नों में से एक का उत्तर धर्म देता है और दूसरे का विज्ञान, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक नहीं हैं । इससे तो दोनों का एक समग्र युग्म बनता है । इस युग्म में से यदि कोई भी निकाल दिया जाय तो हमें जो ज्ञान प्राप्त होगा, वह अधूरा होगा । विज्ञान को पृथक करने से हम संरचना सम्बन्धी ज्ञान से अनभिज्ञ रहेंगे, जबकि धर्म-अध्यात्म के अभाव में हमें रचना के पीछे का प्रयोजन समझ में नहीं आयेगा । अतः समग्रता दोनों के मिलने से ही सम्भव है ।

विज्ञान एवं धर्म-अध्यात्म को एक-दूसरे का विरोधी तो तब कहा जाता है, जब यथार्थ चिन्तन की उपेक्षा करके किन्हीं पूर्वाग्रहों के साथ चिपके रहने पर बल दिया जा रहा हो । प्रायः हम इसे भुला देते हैं कि हमारी प्रगति क्रमशः ही हुई है और ऐसे ही अनन्त काल तक होती रहेगी । पूर्ववर्ती लोगों ने जो कुछ कहा या किया था, वह अन्तिम था और उसमें सुधार की तनिक भी गुंजाइश नहीं—यह मान बैठने से प्रगति-पथ अवरुद्ध हो जाता है और सत्य की ओर अग्रगामी कदम रुक जाते हैं । विज्ञान ने अपने को इस स्थिति से अलग रखा एवं पिछली जानकारी से लाभ उठा कर आगे की उपलब्धियाँ हस्तगत करने के लिए प्रयत्न पुरुषार्थ जारी रखा । अतः वह क्रमशः अधिक सफल समुन्नत होता चला गया । अध्यात्म ने ऐसा नहीं किया और "बाबा वाक्यं किं प्रमाण" की नीति अपना कर पहले के लोगों द्वारा कहे एवं पुस्तकों में लिखे वचनों को ही पत्थर की लकीर मानकर चलता रहा, जिससे वह उसी स्थिति में पड़ा रहा । इस बीच एक लम्बा समय गुजर गया, परिस्थितियों में परिवर्तन आया और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

पुरातन धर्म प्रतिगामी नजर आने लगा, जबकि होना यह चाहिए था कि समय और परिस्थिति के अनुरूप उसमें भी सुधार होते। विज्ञान ने इस दिशा में अधिक उदारता और साहस का परिचय दिया, फलतः आज वह अपनी आरम्भिक अविकसित स्थिति से सुविकसित स्थिति में जा पहुँचा है, जबकि धर्म-अध्यात्म के साथ ऐसा न हो सका।

यों कहने को तो धर्म को शाश्वत सनातन और अपरिवर्तनशील माना जाता है, पर तनिक सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें, तो ज्ञात होगा कि यह न तो अनादि है, न अनन्त और न अपरिवर्तनीय ही। समय और परिस्थिति के अनुरूप समय-समय पर इसमें भी सुधार, परिवर्तन होते रहे हैं। उच्चस्तरीय आत्माएँ अवतारी, महापुरुष इसी प्रयोजन के लिए अवतरित होते रहे हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि इस दिशा में इसकी गति विज्ञान की तुलना में धीमी रही है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि धर्म आज भी अपने मूल रूप में पड़ा हुआ है और इसमें किसी प्रकार का विकास-परिवर्तन हुआ ही नहीं। सच्चाई तो यह है कि विज्ञान की भाँति इसका भी क्रमिक विकास होता आया है और आगे भी होता रहेगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दोनों ही प्रगतिशीलता के पक्षधर हैं और बदलते काल के साथ-साथ युगानुकूल सुधार—परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं। ऐसे में दोनों को एक-दूसरे का विरोधी कहना किसी भी प्रकार समीचीन न होगा।

वस्तुतः धर्म और विज्ञान एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। एक हमें सच्चाई को तर्क, तथ्य, प्रमाण की कसौटी पर कसना सिखाता है, तो दूसरा नैतिक नियमों व उच्च आदर्शों के प्रति आस्थावान बनाता है। एक उपार्जन की विधा बताता है, तो दूसरा "शतहस्तं समाहरं सहस्रहस्तं संकिर" कहकर उसके श्रेष्ठतम् सदुपयोग का निर्देश देता है, तरीका बताता व प्रयोजन समझाता है। एक प्रत्यक्षवाद पर आधारित है और दूसरा परोक्षवाद पर। एक के अनुसन्धान का विषय पदार्थ-जगत है, तो दूसरे का आत्म-जगत। एक पदार्थ सत्ता का अन्वेषण स्थूल यन्त्र-उपकरणों के माध्यम से करने का प्रयास कर रहा है, तो दूसरा आत्मसत्ता का उद्घाटन साधना प्रयासों द्वारा करता है। दोनों मूल सत्ता के ही दो रूप हैं। विज्ञान-अध्यात्म उन्हें ही अपने-अपने ढंग से ढूँढ़ने का उपक्रम कर रहे हैं। दोनों के साथ रहने में ही समग्रता बनती है। अतः दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। जीवन में अध्यात्म का, धर्म धारणा का भी उतना ही महत्त्व है, जितना विज्ञान का। अस्तु जीवन में दोनों का समावेश ही कल्याणकारी हो सकता है। यह आज की सर्वोपरि आवश्यकता भी है।

आइए ! चेतना के विज्ञान पर शोध करें

अध्यात्म और विज्ञान में सामंजस्य और सहयोग का तालमेल बिठाने में इन दिनों विज्ञ समुदाय द्वारा समुद्र मंथन जैसा प्रयास चल रहा है। सर्वत्र यही सोचा जा रहा है कि दोनों महाशक्तियों का समन्वय किया जाय। इनके मध्य जो खाई खुद गई है, उसे पाटने के लिए प्रयत्न किया जाय इतने पर भी दोनों को पृथक शक्तियाँ मानने वालों के सामने यह स्पष्ट नहीं है कि उनके प्रतिपादन का उद्देश्य और स्वरूप क्या है ?

यथार्थतः विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय की माँग करने वाले यह भूल जाते हैं कि जीवन सत्ता ही तब प्रकट होती है, जब चेतना और पदार्थ का समन्वय होता है। जड़ और चेतन का मिलन ही हलचलों का केन्द्र है। काया का दृश्यमान पक्ष जड़ तत्वों से विनिर्मित प्रत्यक्ष भौतिक विज्ञान का चमत्कार है तो उसमें सन्निहित अदृश्य चेतन सत्ता अध्यात्म है। दोनों का मिलन ही जीवन की स्थिरता का चिन्ह है। दोनों के मध्य सामंजस्य की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, जब स्रष्टा ने 'एकोऽहम् बहुस्यामि' की इच्छा की तो चेतन-अचेतन के दो प्रवाह फूट पड़े। दोनों एक-दूसरे से सर्वथा पृथक रहकर अपना अस्तित्व नहीं बनाये रख सकते। पदार्थ के बिना चेतना पंगु है, तो चेतना की प्रखरता के बिना पदार्थ अन्धे के समान। अन्धे और पंगे की जोड़ी मिलकर ही नदी पार करने की योजना बना सकते हैं और पार पाने में सफल होते हैं।

गहराई में प्रवेश करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में टकराव तब उत्पन्न हुआ, जब विज्ञान को फिजिक्स से एवं सुविधा-साधन जुटाने वाली मशीनों, कल-कारखानों से सम्बन्धित मानने तक मानवी बुद्धि सीमित हो गई, जबकि इसका तात्विक अर्थ कुछ और है। विज्ञान कहते हैं प्रगतिशीलता को, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को। हम जो भी सोचें जो भी करें उसमें वैज्ञानिकता का समावेश हो, वह तर्क, तथ्य एवं प्रमाणयुक्त हो, इसी में हमारे चिन्तन, कथन और कर्त्तव्य की प्रामाणिकता है। विज्ञान मात्र प्रकृति से सम्बन्धित सूक्ष्म जगत का रहस्योद्घाटन करने और उससे लाभान्वित होने तक सीमित न होकर जीवन से, प्राणि शरीरों से भी सम्बन्धित है। चेतना उसी से लिपटी एवं सघनतापूर्वक गुँथी हुई सक्रिय है। उसकी शक्ति अदृश्य होते हुए भी इतनी प्रचण्ड है कि अनगढ़ पदार्थ जगत को सुनियोजित कर स्वर्गोपम सुखद परिस्थितियाँ पैदा कर दे। इसे ही अध्यात्म कहते हैं। भौतिक साधन एवं चेतना के अदृश्य पक्ष को मिला देने पर जीवन में समन्वय स्थापित होता और प्रगति का आधार खड़ा होता है।

पदार्थ सत्ता की सूक्ष्म जानकारी विज्ञानियों के हाथ लगती है, तो चेतन सत्ता वाले सूक्ष्म अध्यात्म जगत के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान मनीषीगण प्राप्त करते और उससे लाभान्वित होते हैं। वैज्ञानिक प्रोफेसर ए. ई. वाइल्डर स्मिथ के अनुसार प्रकृति विज्ञानी जिस तर्क बुद्धि या कल्पना शक्ति के सहारे पदार्थ जगत के अध्ययन और अनुसन्धान में निरत रहते हैं, यदि उनसे यह पूछा जाय कि इस सबका जन्मदाता कौन है ? उनके स्वयं के जीवन के पीछे विचार या शब्द, बुद्धि या कल्पनाएँ कौन प्रस्फुटित कर रहा है, अनुसन्धान की प्रेरणा कौन उभार रहा है ? तो इसका उत्तर देने में वे असमर्थता अनुभव करते हैं। कारण स्पष्ट है कि वह उनकी खोजी सम्भावनाओं से बाहर है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि इस ओर उनका ध्यान ही आकृष्ट नहीं हुआ। इतना ही नहीं जिस गुरुत्वाकर्षण शक्ति की वे बात करते और कहते हैं कि उस बल के सहारे पृथ्वी समेत सभी गृह-नक्षत्र अधर में लटके रहकर नियत कक्षा में नियत गति से परिभ्रमणशील हैं, वस्तुतः उनके मध्य चेतन तत्व ही सक्रिय भूमिका निभा रहा है। वैज्ञानिक बुद्धि न तो इस तरह के निर्माण कर सकती है और न उन्हें व्यवस्थित क्रम, गति प्रदान कर सकती एवं सम्पदाओं से भरा-पूरा बना

सकती है । यह कार्य परम चेतना का है । पदार्थों के सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं, उप परमाणुओं, उनके व्यवहार एवं ऊर्जा उत्सर्जन की प्रक्रिया का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यही तथ्य सामने आता है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म कण के पीछे नया क्रम, नया नियम कार्यरत है, जिसे किसी अदृश्य चेतना की इच्छाशक्ति से संचालित माना जा सकता है । अध्यात्मवेत्ताओं ने इसे 'यूनिवर्सल फोर्स' या ब्रह्माण्डव्यापी चेतना माना और कहा है कि सृष्टि में सर्वत्र उसकी इच्छाशक्ति ही कार्यरत है ।

मानव जीवन के दो पक्ष हैं । पहला पदार्थ परक साधन सामग्री, जिसे विज्ञान कहते हैं । इसका सम्बन्ध बुद्धि से है जो यह निर्णय करती है कि लोक व्यवहार कैसा हो । दूसरा पक्ष अध्यात्म कहलाता है, जिसका सम्बन्ध चिन्तन, भाव सम्वेदना एवं प्रज्ञा से है । यह सभी चेतना की उच्चस्तरीय पर्तें हैं, जो यह निरूपण करती हैं कि ऊर्ध्वगामिता का अनुगमन किस प्रकार किया जाय । पाश्चात्त्य मनोविज्ञानी सी. जी. जुंग भी इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि मानवी चेतना के चार कार्य हैं—तर्क बुद्धि, अनुभव, भाव सम्वेदना और अन्तः प्रज्ञा । यह सभी एक से बढ़कर एक उच्चस्तरीय विभूतियाँ हैं । विज्ञानी इनमें से मात्र तर्क बुद्धि तक सीमित रहकर अधूरे सत्य की खोज में संलग्न हैं । समग्रता की उपलब्धि सम्पूर्ण पक्षों को अपनाने पर ही सम्भव हो सकती है ।

विख्यात भौतिकीविद् जीन ई. चेरोन के अनुसार हम चेतना और पदार्थ को अलग मानते और उनमें से किसी एक की खोज में निमग्न हो जाते हैं । विज्ञानी पदार्थ जगत में अपने को सीमाबद्ध कर लेते हैं, तो अध्यात्मवेत्ता चेतना के निरीक्षण-परीक्षण में लगे रहते हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि चेतना और पदार्थ इतनी अधिक जटिलता से परस्पर गुँथे हुए हैं कि उनमें से किसी एक की महत्ता को कम नहीं किया जा सकता । यद्यपि चेतना की महिमा और गरिमा सर्वोपरि है । उनके अनुसार जिसे हम मैटर या 'मॉस' कहते हैं, वह चेतना का ही एक भाग है और इसका निर्माण उसी की इच्छाशक्ति के आधार पर हुआ है । जिस तरह पॉजिटिव और निगेटिव तारों के मिलने पर उनमें विद्युत प्रवाहित होती है और बल्व जलने से लेकर भारी मशीनों का संचालन तक होने लगता है । यही तथ्य चेतना और पदार्थ के सम्मिलन से उद्भुत जीवन पर भी लागू होता है । इलेक्ट्रॉन और पॉजिट्रॉन नामक ऋणात्मक एवं धनात्मक कणों के सम्मिलन से जिस तरह 'फर्स्ट मैटर' का निर्माण होता है, उसी तरह जीवन का प्रादुर्भाव जड़-चेतन से समन्वित दो सूक्ष्म इकाइयों के सम्मिलन से भ्रूण-कलल के रूप में आरम्भ होता और अन्ततः ५-६ फुट लम्बे काय-कलेवर वाला मनुष्य बन जाता है । इस निर्माण के पीछे प्राणी विशेषज्ञ जिस जेनेटिक कोड की बात करते और कहते हैं कि सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित इकाइयाँ 'जीन' इसके लिए उत्तरदायी हैं, वस्तुतः मैटर के अन्दर समाहित चेतना ही वहाँ कार्यरत रहती और अपने अनुकूल उपयुक्त परमाणुओं की काट-छाँट करती तथा विकास क्रम का निर्धारण करती है ।

विचारशीलता, भावना, इच्छा एवं सक्रियता चेतना के प्रमुख गुण हैं । चेतन सत्ता के साथ छोड़ते ही मृत शरीर को ठिकाने लगाने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और सारा कलेवर पंचभूतों में बिखर जाता है । विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन को पदार्थ जगत के अनुसन्धान के चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के पश्चात् यह अनुभूति हो गई थी कि समूचा विश्व-ब्रह्माण्ड चेतना का खेल है । कार्बनिक, अकार्बनिक जड़ पदार्थों से लेकर जीव जगत तक में उसकी सक्रिय हलचलें ही क्रीड़ाकल्लोल कर रही हैं । मनुष्य में इसकी सघनता अधिक है । इस तथ्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपने वसीयतनामा में लिखा था कि मरणोपरान्त मेरे शरीर का तो संस्कार कर दिया जाय परन्तु सिर वैज्ञानिकों को परीक्षण के लिए दे दिया जाय, ताकि यह जाना जा सके कि मस्तिष्क में कोई विशिष्टता या क्षमता मरने के बाद भी विद्यमान है क्या ? जो मस्तिष्क जीवन पर्यन्त प्रकृति पदार्थों में सन्निहित रहस्यमय शक्तियों की खोज करने में निमग्न रहा, क्या वह ज्ञान चेतना अब भी उसके स्नायु कोषों में सुरक्षित है ? जैसा सबको विदित है कोई विलक्षणता उस जड़ पिण्ड-लिबलिबे ग्रे व ह्वाइट मैटर से बने पदार्थ में नहीं पायी गई । चेतना की शक्ति का संचार होने पर ही मस्तिष्क विभूति सम्पन्न बनता है, यह तथ्य प्रतिपादित करना ही आइन्स्टीन का लक्ष्य था ।

पदार्थ जगत पर चेतना का आधिपत्य है । चेतना स्वामी है तो मैटर दास । समस्त जीवों, पदार्थों, विभिन्न क्षेत्रों, दिशाओं और परिस्थितियों में चैतन्य शक्ति ही उनके स्तरों के अनुरूप अविरल गति से गतिमान है । यह सृष्टि परमचेतना का मात्र एक कौतुक भर नहीं है, वरन् उसमें समग्र सत्यदर्शन का लक्ष्य सन्निहित है । तभी तो आइन्स्टीन ने कहा था कि "ईश्वर पासे नहीं खेलता । उसके द्वारा सृजित एकल परमाणु से लेकर ग्रहगोलकों एवं उसके निवासी मनुष्यों तक सभी सुनियोजित ढंग से विनिर्मित हैं ।"

सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का दिग्दर्शन कराना, उसका परम लक्ष्य है उस उपलब्धि की दिशा में अग्रसर होना ही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए ।

तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम्

निरन्तर चलायमान इस संसार में सतत् जन्म और मरण का संघात देखने में आता है । नये-नये जीव पैदा होते पर देखते-देखते न जाने कहाँ काल के गर्भ में समाते चले जाते हैं । पता नहीं कितने काल से जीवन और मरण का यह पहिया अबाध गति से घूम रहा है । इस सबको देखकर यह प्रश्न मानव मन को शताब्दियों-सहस्राब्दियों से आन्दोलित करता चला आ रहा है कि इन सबके पीछे सत्य क्या है ?

जीवन है क्या ? मात्र अणुओं-परमाणुओं की हलचल, उनका सम्मिश्रण या इसके अलावा अन्य कुछ ? इस अहम् सवाल को हम शक्ति-ऐश्वर्य, वैभव-विलास के नशे में भले ही कुछ समय के लिए भूल जायें पर नशा उतरते ही यह सवाल फिर से हमारे मन को मथने लगता है । प्रारम्भ से ही मानव मन को सृष्टि प्रवाह के सत्य को जानने की उत्कृष्ट जिज्ञासा रही है । समय-समय पर चिन्तन की विविध धाराओं के पण्डितों-मनीषियों ने विविध समाधान भी प्रस्तुत किए हैं ।

ये विविध चिन्तन धाराएँ विज्ञान, मनोविज्ञान व दर्शन क्षेत्र की हैं । इनमें सर्वाधिक प्रचलित मान्यताएँ तीन तरह की हैं ।

विज्ञान, जीवन को जड़ तत्वों का संघात सम्मिश्रण मानता है जो तत्वों के संगठन-विघटन के कारण पैदा होता तथा नष्ट होता है । शून्यवादी इस सबको शून्य मानते हैं, उधर दर्शन शास्त्री

मानते हैं कि जीवन का आधार भौतिक तत्व नहीं है । इन भौतिक तत्वों से जीवन का पैदा होना या नष्ट होना सम्भव नहीं है । जीवन की सत्ता इस सबसे परे और अविनाशी है ।

संसार के सभी चिन्तकों, वैज्ञानिकों तथा धर्मग्रन्थों के विचार-मान्यताएँ इन्हीं के इर्द-गिर्द चक्कर काटती हैं सभी अपने-अपने स्तर पर प्रतिपादन प्रस्तुत करती हैं ।

वैज्ञानिकगण यह मानते हैं कि सृष्टि की हलचलों का एकमात्र कारण अणु-परमाणुओं का पारस्परिक संघात है । समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में चलने वाली प्रक्रिया स्वचालित है । चेतना की उत्पत्ति का कारण भी यही पारस्परिक संघात ही है । शरीर के विनष्ट होते ही उपस्थित चेतना का भी अस्तित्व नहीं रहता ।

विचार करके देखा जाय कि यदि शरीर के गठन का कारण परमाणुओं का पारस्परिक संघात और हलचल ही है, तो परमाणुओं में हलचल पैदाकर उनको सुन्दर पुष्ट अंग अवयवों वाले शरीर में रूपान्तरित करने वाली शक्ति कौन सी है ? प्रकृति के कुछ परमाणु अणुओं को लेकर कहीं एक प्रकार के शरीर की रचना होती है, कहीं दूसरे प्रकार कीं । इस प्रकार ये विविध आकार-प्रकार प्रदान करने वाली शक्ति कौन-सी है ? इन सवालों के जवाब में विज्ञान चुप्पी साध लेता है । यह कहना कि चेतना, जीवन का कारण कुछ जड़ तत्वों के परमाणुओं का संघात मात्र है, अविवेकपूर्ण और दुराग्रह से ग्रसित ही कहा जायेगा ।

शून्यवादी यह मानते हैं कि संसार निरन्तर परिवर्तनशील है । यहाँ कोई चीज स्थायी नहीं है । इसीलिए यहाँ किसी चीज का अस्तित्व भी नहीं है । सब कुछ शून्य है । भूत-भविष्य भी अस्तित्वहीन हैं, मात्र वर्तमान ही सत्य है ।

शून्यवाद की इस मान्यता पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर इसका खोखलापन सिद्ध हो जाता है । सापेक्षिता के सिद्धान्त के अनुसार भूत, वर्तमान व भविष्य सभी एक दूसरे के सापेक्ष हैं । वर्तमान के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना भी कर सकना असम्भव है । इस तरह तो यह होगा कि सन्तान के अस्तित्व को स्वीकार कर माता-पिता के अस्तित्व से इन्कार कर दिया जाय । इसी तरह प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, मात्र इसी कारण सभी कुछ भ्रम है, शून्य है । कहाँ तक सच है ? मात्र परिवर्तनशीलता के कारण सभी वस्तुओं के अस्तित्व को इन्कार कर देना न्यायसंगत या विवेकपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता है । यह तो उसी प्रकार हुआ जैसे किसी बच्चे के शरीर में नित्य नये परिवर्तन होते देखकर कोई बच्चे के अस्तित्व से ही इन्कार कर दे । शून्यवाद की इस प्रकार की मान्यता सृष्टि के कारणों की सन्तोषजनक व्याख्या कर सकने में सर्वथा अक्षम है । इस मान्यता पर अड़ने वालों को बाल बुद्धि ही कहा जायेगा ।

दार्शनिकों के अनुसार आत्मा ही जीवन का आधार है । यही अविनाशी तत्व-चेतन सत्ता है । यह जीवन-मरण से परे है । शरीर के अवयवों के नष्ट हो जाने पर उसका नाश नहीं होता । देशकाल की सीमाएँ इसे बाँध नहीं सकतीं । शरीर इसका देश नहीं, आयु इसका काल नहीं । यह आदिकाल से है और अनन्तकाल तक रहेगी । यह स्वयं असीम और अनन्त है । काल चक्र से होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का प्रभाव ससीम, पर ही पड़ता है असीम तक तो इसकी पहुँच भी नहीं । इसी कारण ससीम शरीर में होने वाले परिवर्तन असीम आत्मा को छू भी नहीं पाते । यह मान्यता ही आस्तिकता है । जीवन की व्यापकता और आत्मा की अमरता ही सत्य है । दार्शनिक चिन्तन का उत्कृष्ट रूप वेदान्त इसी का समर्थन व प्रतिपादन करता है ।

आज के वैज्ञानिक भी अब इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं कि विश्व की मूल सत्ता कोई वैश्व चेतना है जो अज्ञेय है और यह संसार इसी अज्ञेय, अविश्लेष्य तरंगों का संघात है । जिनके बारे में हमारी जानकारी नहीं के बराबर है । वैज्ञानिकों ने इसे "कॉस्मास" भी कहा है ।

डॉ. डब्लू कार ने कहा है कि, टाइम और स्पेस न तो कन्टेनर है, न ही कन्टेन्ट, वे तो मात्र वेरियन्ट हैं । इसी बात को मिन्कोवस्की ने अधिक सुस्पष्ट करते हुए लिखा है कि दिक् व काल की अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं । वे मात्र धाराएँ हैं ।

आज वैज्ञानिक जगत में सापेक्षिता का सिद्धान्त सर्वाधिक प्रतिष्ठित माना जाता है । उसके अनुसार सब दृश्यमान, अनुभूयमान जागतिक सत्य मात्र आपेक्षिक सत्य है । आकार, गति के अवस्था भेद से बाह्य वस्तु का ज्ञान प्रत्येक दर्शकों को भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है और हो सकता है । फिर निरपेक्ष सत्य क्या है ? इसका निरूपण कैसे हो ?

ऐसी स्थिति में मूर्धन्य मनीषियों-वैज्ञानिकों की वाणी लड़खड़ाने लगती है और वे कोई स्पष्ट बात कहने की जगह पहेलियाँ सी बुझाने लगते हैं । जब इन्हीं का यह हाल है तो फिर साधारण व्यक्ति कैसे समझें ।

विज्ञान की क्षमता सीमित है । सूक्ष्मता के स्तर तक जाने के बाद यह हथियार डाल देता है और स्वीकार करने लगता है कि आगे आ सकना वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा सम्भव नहीं । परम सत्य तो इन सबसे परे है । फिर इसे कैसे जाना जाय । सूक्ष्म और वृहद दोनों दिशाओं में ज्ञान अर्जित करने की मानवी क्षमता सीमित है । जबकि परम सत्य दोनों में से किसी भी सीमा में बद्ध नहीं । वेदान्त दर्शन इसे "अणोरणीयान्महतो महीयान" (श्वेत ३/२०) मानता है ।

वेदान्त दर्शन में निहित संकेतों-निर्देशों के अनुरूप तप-साधना करने पर परिशुद्ध चेतना में वह परम ज्योति स्वतः ही प्रकट होती है । यद्यपि यह सभी जगह, सभी समय विद्यमान है, किन्तु जब तक बौद्धिक क्रियाओं को ही आत्मानुभूति समझने का भ्रम रहता है । तब एक यह अविज्ञात ही रहती है । बुद्धि तत्व को उस मूल चेतना से जोड़ देने पर उसमें पूरी तरह से समर्पित कर देने पर वह परम चेतना अपने आलोक से बुद्धि को प्रकाशित कर देती है स्वयं को प्रकट कर देती है । यह स्थिति अकस्मात् किसी जादू की छड़ी घुमाने से नहीं आती है । इसके लिए साधनात्मक अनुशासनों में बाँधकर अपनी अन्तःश्चेतना का परिष्कार करना होता है । ऐसी परिपक्वता विकसित करने तथा अन्तःकरण की निर्मलता अर्जित करने पर जीवन का रहस्य सत्य का बोध पा सकना सभी के लिए सम्भव है ।

बाहर खोजें या अन्दर तथ्य एक ही है

पदार्थ भौतिक विज्ञानी ने सत्य को वस्तुओं में सन्निहित समझा और वह उनके अन्तराल में छिपी प्रकृति शक्तियों को खोजने में लग गया । इस खोज में वह जितना ही गहरा उतरा

उतना ही अधिक आश्चर्यचकित रहता चला गया । एक-एक करके उसके सामने ऐसे अद्भुत शक्ति स्रोतों का रहस्योद्घाटन होता गया जिनकी सम्भावना कभी उसकी कल्पना में भी नहीं आयी थी । उसे लगा यह विश्व जितना अद्भुत है उतना ही अनन्त भी ! शायद इस वस्तु जगत की विलक्षणता को पूरी तरह समझ सकना मनुष्य की तुच्छ बुद्धि और नगण्य शोध उपकरणों द्वारा कभी भी सम्भव न हो सकेगा । प्रकृति की विशालता, सूक्ष्मता और शक्ति सम्पन्नता तो अचिन्त्य जैसी लगती है ।

वैज्ञानिक अपने शोध कार्यों में निरत रहा—क्रमशः एक के बाद दूसरे चरण में कुछ अधिक भी पाता चला गया किन्तु उसने यह उत्साह शिथिल कर दिया जिसके अनुसार उसे प्रकृति के समस्त रहस्य जानने थे और भौतिक जगत की समस्त शक्तियों को करतलगत करना था ।

योगी अन्तःजगत को खोजता चला गया । सामान्य जीवन क्रम में आन्तरिक क्षमता का जितना उपयोग साधारणतया होता रहता है उसकी अपेक्षा उसकी शोधक दृष्टि ने जब गहराई में प्रवेश किया तो देखा गया कि जितना सोचा जाता रहा है उससे कहीं अधिक समर्थता और सम्भावना अपने भीतर भरी पड़ी है । योगी आश्चर्यचकित रह गया ।

चेतना का विशाल सागर इस ब्रह्माण्ड में बिखरा पड़ा है । उसी ने पदार्थ को उत्पन्न किया और उसमें विविधविधि विलक्षणताएँ भर दीं—उनके अन्तराल में एक से एक अद्भुत क्षमताएँ नियोजित कर दीं । प्रकृति जगत में सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर प्रदेश में प्रवेश करते हुए भौतिक विज्ञानी ने जो कुछ देखा था और जैसा कुछ अवाक् कर देने वाला वैभव देखा था आत्म विज्ञानी की अनुभूति उससे भी अधिक स्तब्ध कर देने वाली थी । चेतन ने ही तो जड़ को उत्पन्न किया है । शिशु की तुलना में उसकी जननी की सामर्थ्य जितनी अधिक होती है उससे असंख्य गुना अनुपात जड़ और चेतन के बीच पाया गया । वैज्ञानिक जो प्राप्त करता चला जा रहा था—योगी ने उससे कम नहीं अधिक ही पाया । विज्ञानी को प्रकृति विजय पर जिस गर्व-गौरव को प्राप्त करने की आशा थी, योगी की आशाएँ उसकी तुलना में अत्यधिक ऊँचाई तक चली गईं । वह सोचने लगा अनन्त चेतना के साथ सम्पर्क मिलाकर तुच्छ प्राणी अनन्त शक्ति सम्पन्न उसी प्रकार बन सकता है जिस प्रकार वर्षा की एक बूँद समुद्र में अपने आपको घुलाकर विशालकाय सागर के रूप में अपने अस्तित्व को सुविस्तृत बना लेती है ।

विज्ञानी यह सोचता था कि प्रकृति की गहराई में जितना गहरा उतरा जायेगा उतने ही शक्तिशाली आधार हाथ लगते चले जायेंगे और अनन्तः उसे सृष्टि का अधिपति एवं संचालनकर्त्ता नियामक बनने का अवसर मिल जायेगा । प्रकृति पर विजय प्राप्त करके वह उत्पादक, पोषक एवं परिवर्तनकर्त्ता की ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भूमिका निभा सकेगा । उसके हाथ में उतना ही कर्तृत्व होगा जितना आज प्रकृति पुरुष के हाथ में दिखाई देता है ।

योगी की कल्पना भी कुछ-कुछ इसी से मिलती-जुलती थी । उसकी यह आशा बलवती होती चली जा रही थी कि अनन्त चेतना के अधिपति के साथ स्वल्प चेतना को भागीदार बनाया जा सकता है और चित् शक्ति प्राणियों की प्रवृत्ति का जैसा अद्भुत सूत्र-संचालन कर रही है उसका उत्तराधिकार साधना द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है । आत्मा को परमात्मा के स्तर पर पहुँचाया जा सकता है ।

प्रकृतिगत परमाणुओं के भीतर विद्यमान 'नाभिक' के भीतर इतनी समर्थता संव्याप्त है कि एक ही अणु की सामर्थ्य एक ग्रह पिण्ड का अभिनव सृजन करने में पूरी तरह समर्थ है अथवा एक पूरे नक्षत्र को चूर्ण-विचूर्ण करके आकाश में उड़ा सकती है । जब यह तथ्य विज्ञानी की समझ में आया तो उसने नये सिरे से सोचना आरम्भ किया—समस्त जगत में बिखरी पड़ी अनन्त शक्तियों की खोज में भटकने की अपेक्षा एक परमाणु को केन्द्र बनाकर उस पर अपने शोध को सीमाबद्ध किया जाय ? क्यों न एक ही अणु विश्लेषण से समस्त सृष्टि का रहस्य जान लिया जाय ? जितनी गहराई तक विचार किया उतना ही यह विचार अधिक युक्ति संगत प्रतीत हुआ और वह सुविस्तृत क्षेत्रों में यत्र-तत्र विशालकाय शोध संस्थानों को स्थापित करने की योजना देकर परमाणु के मध्य में रहने वाले 'नाभिक' का अन्वेषण करने में दत्त-चित्त हो गया ।

यही हाल योगी का भी हुआ । आरम्भ में वह अनेक देवताओं की अनेकानेक शक्तियों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए भयानक तन्त्रानुष्ठानों की योजना बना रहा था—पीछे उसने ब्रह्म उपासना की बात सोची और ब्रह्म वर्चस्व उपलब्ध करके आत्मा को परमात्मा के सिंहासन पर बिठाने की तैयारी की । इसकी योजना और भी सुविस्तृत थी । इसके लिए विशालकाय यज्ञानुष्ठानों का आयोजन करना था । तप-साधना और योगाभ्यास की वैसी प्रक्रिया बननी थी जो चेतना के समुद्र को मथकर रख दे । पौराणिक समुद्र मंथन में चौदह रत्न निकले थे । योगी ने ब्रह्म मंथन करके न जाने कितने रत्न पाने का स्वप्न देखा था इसका कुछ ठीक से पता नहीं चल सका ।

विशालता के विस्तार से थकी बुद्धि विज्ञानी को अणु के अन्तराल में छिपे 'नाभिक' तक सीमाबद्ध होने की बात पर सहमत हो गई थी । योगी को भी यहीं लौटना पड़ा । विशाल ब्रह्म की परिधि अनन्त ब्रह्माण्डों से भी अधिक थी । उसे समग्र रूप से प्रभावित करना और उसके उत्तरदायित्वों को अपने कंधे पर लेना तभी तक अच्छा लगता रहा जब तक उसने अपनी तुच्छता पर विचार नहीं किया । अहम् की स्वल्प सीमा और परम् की असीम सत्ता का जब तुलनात्मक निरीक्षण किया तो योगी की बुद्धि भी थक कर बैठ गई और सोचने लगी जब पिण्ड के भीतर ही ब्रह्माण्ड की सत्ता बीज रूप से विद्यमान है और आत्मा के केन्द्र पर ही परमात्मा के समस्त तत्व केन्द्रीभूत हो रहे हैं तो क्यों न अपने निरीक्षण परीक्षण में सीमित हुआ जाय ? जब अन्तः की प्राप्ति का प्रतिफल ही बहिः को प्राप्त करना हो सकता है तो अपनी आराधना करने में ही क्या हर्ज है । योगी आत्म साधना में लग गया उसने ब्रह्मोपासना को ध्यान में रखकर बनाई गई विशालकाय योजनाओं का परित्याग कर दिया ।

विज्ञानी अपनी शोध मे लगा रहा, योगी अपनी साधना में । दोनों इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि विराट् की उपलब्धि के लिए विराट् पर केन्द्रित होने से काम चल सकता है । दोनों ने कुछ दिन बाद एक और भी तथ्य खोजा कि अन्तः का प्रवेश और बहिः का उन्मेष दोनों अन्ततः एक ही स्थान पर जा पहुँचते हैं ।

बहिः की विशालता में भटक कर सत्य और तथ्य को प्राप्त करना दोनों को ही कठिन लगा उन्होंने निश्चय किया, अन्तः को ही खोजना उपयुक्त है और सरल भी ।

तब से अब तक दोनों ही सत्य शोधक अपने-अपने ढंग से—साधना में निरत हैं । यह समझते हुए भी कि वे दो तथ्यों को खोज रहे हैं और दो दिशाओं में जा रहे हैं ! वस्तुतः उनका प्रयास एक ही दिशा में है ।

प्रजापति ने दोनों को ही सराहा, दुलारा और दोनों का उत्साह अपना-अपना काम करते रहने के लिए उभारा । वे जानते थे कि बाह्य को खोजने वाला अन्तः की चरम सीमा तक पहुँच कर ही रुकेगा और जो अन्तः को खोज रहा है उसका समाधान विराट् बहिः का स्पर्श किए बिना हो नहीं सकेगा । प्रकृति की उपासना पुरुष तक पहुँचे बिना पूर्ण न हो सकेगी और न पुरुष की उपासना प्रकृति की उपेक्षा करके पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त कर सकेगी ।

अध्यात्म विज्ञान और उसका महान् प्रयोजन

अध्यात्म विज्ञान का सारा ढाँचा इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया है । मनुष्य अपने उच्च स्तर से अपनी दुर्बलताओं के कारण ही अधःपतित होता है और दुःख, क्लेश भरा नरक भोगता है । मनुष्य को इस विश्व के साथ सम्पर्क बनाकर सुखानुभूति प्राप्त करने के तीन उपकरण मिले हुए हैं । यदि वह उनका ठीक तरह उपयोग जान सके तो उसे पग-पग पर यह अनुभव हो कि यह संसार कितना सुन्दर और जीवन कितना मधुर है । इन तीन उपकरणों के नाम हैं—(१) अन्तरात्मा, (२) मन, (३) इन्द्रिय समूह ।

इन्द्रियों की बनावट ऐसी अद्भुत है कि दैनिक जीवन की सामान्य प्रक्रिया में ही उन्हें पग-पग पर असाधारण सरसता अनुभव होती है । पेट भरने के लिए भोजन करना स्वाभाविक है । भगवान की कैसी महिमा है कि उसने दैनिक जीवन की शरीर यात्रा भर की नितान्त स्वाभाविक प्रक्रिया को कितना सरस बना दिया है । उपयुक्त भोजन करते हुए जीभ को कितना रस मिलता है और चित्त को उस अनुभूति से कैसी प्रसन्नता होती है ।

आँखों का साधारण काम है वस्तुओं का देखना ताकि हमारी जीवन यात्रा ठीक तरह चलती रह सके । पर आँखों में कितनी अद्भुत विशेषता भर दी है कि वह रूप, सौन्दर्य, कौतुक, कौतूहल जैसी रस भरी अनुभूतियाँ ग्रहण करके चित्त को प्रफुल्लित बनाती हैं । संसार में उत्पादन, परिपुष्ट, विनाश का क्रम नितान्त स्वाभाविक है । मध्यवर्ती स्थिति में हर चीज तरुण होती है और सुन्दर लगती है । क्या पुष्प, क्या मनुष्य हर किसी को तीनों स्थितियों में होकर गुजरना पड़ता है । मध्यकाल सौन्दर्य लगता है । वस्तुतः यह तीनों ही स्थितियाँ अपने क्रम, अपने स्थान और अपने समय पर सुन्दर हैं, पर आँखों को सुन्दर-असुन्दर का भेद करके मध्य स्थिति को सुन्दर समझने को कुछ अद्भुत विशेषता मिली है । फलस्वरूप जो कुछ उभरता हुआ विकसित, परिपुष्ट दीखता है सो सुन्दर लगता है । सुन्दर-असुन्दर का तात्विक दृष्टि से यहाँ कुछ भी अस्तित्व नहीं है । पर हमारी अद्भुत आँखें ही हैं जो अपनी सौन्दर्यानुभूति वाली विशेषता के कारण हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्धित समीपवर्ती वस्तुओं में से सौन्दर्य वाला भाग देखतीं, आनन्द अनुभव करतीं, उल्लसित और पुलकित होती हैं । चित्त को प्रसन्न करती हैं ।

इसी प्रकार जननेन्द्रिय की प्रक्रिया है । प्रजनन, मक्खी-मच्छरों, कीट-पतंगों बीज-अंकुरों में भी चलता रहता है । यह सृष्टि का सरल स्वाभाविक क्रम है पर हमारी जननेन्द्रिय में कैसा अजीब उल्लास रसावोर कर दिया है कि सम्भोग के क्षण ही नहीं-उसकी कल्पना भी मन के कोने-कोने में सिहरन, पुलकन, उमंग और आतुरता भर देती है । तत्वतः बात कुछ भी नहीं है । दो शरीरों के दो अवयवों का स्पर्श इसमें क्या अनोखापन है ? क्या अद्भुतता है ? क्या उपलब्धि है ? फिर स्पर्श का कुछ प्रभाव हो भी तो उसकी कल्पना से किस प्रकार, क्यों, किस लिए चित्त को बेचैन करने वाली ललक पैदा होनी चाहिए ? बात कुछ भी नहीं है । मात्र जननेन्द्रिय की बनावट में एक अद्भुत प्रकार की सरसता का समावेश मात्र है जो हमें सामान्य, स्वाभाविक दाम्पत्य-जीवन के वास्तविक या काल्पनिक प्रत्यक्ष और परोक्ष-क्षेत्र में एक विचित्र प्रकार की रसानुभूति उत्पन्न करके-जीने भर के लिए प्रयुक्त हो सकने वाले जीवन को निरन्तर उमंगों से भरता रहता है ।

ऊपर जीभ, आँख और जननेन्द्रिय की चर्चा हुई, कान और नाक के बारे में भी इसी प्रकार समझना चाहिए । यहाँ पान भाग वाला इन्द्रिय समूह अपने साथ रसानुभूति की विलक्षणता इसलिए धारण किए हुए है कि सरस, स्वाभाविक सामान्य जीवन क्रम ऐसे ही नीरस ढर्रे का जीने भर के लिए मिला हुआ प्रतीत न हो वरन् उसमें हर घड़ी उत्साह, उल्लास रस आनन्द बना रहे और उसे उपलब्ध करते रहने के लिए जीवन की उपयोगिता, सार्थकता और सरसता का भान होता रहे । इन्द्रिय समूह हमें प्रयोजन के लिए उपलब्ध है । यदि उनका उचित, संयमित, विवेकपूर्ण, व्यवस्था पूर्वक उपयोग किया जा सके; तो हमारा भौतिक सांसारिक जीवन पग-पग पर सरसता, आनन्द उपलब्ध करता रह सकता है ।

दूसरा उपकरण मन इसलिए मिला है कि संसार में जो कुछ चेतन है उसके साथ अपनी चेतना का स्पर्श करके और भी ऊँचे स्तर की आनन्दानुभूति प्राप्त करे । इन्द्रियाँ जड़ शरीर से सम्बन्धित हैं । जड़ पदार्थों को स्पर्श करके उस संसर्ग का सुख लूटती हैं । जड़ का जड़ से स्पर्श भी कितना सुखद हो सकता है, इस विचित्रता का अनुभव हमें इन्द्रियों के माध्यम से होता है । चेतन का चेतन के साथ, जीवधारी का जीवधारी के साथ स्पर्श-सम्पर्क होने से मित्रता, ममता, मोह, स्नेह, सद्भाव, घनिष्ठता, दया, करुणा, मुदिता जैसी अनुभूतियाँ होती हैं । प्रतिकूल परिस्थितियों में द्वेष, घृणा जैसे भाव भी उत्पन्न होते हैं पर उनका अस्तित्व है इसलिए कि मित्रता के वातावरण में सम्पर्क, संसर्ग का आनन्द बिखरता रहे, यदि अन्धकार न हो तो प्रकाश की विशेषता ही नष्ट हो जाय । वस्तुतः मन की बनावट दूसरों के सम्पर्क, सहयोग, स्नेह भावों के आदान-प्रदान का सुख प्राप्त करने में है । मेले-ठेलों में, सभा-सम्मेलन में जाने की इच्छा इसीलिए उठती है उन जन संकुल स्थानों से व्यक्तियों की घनिष्ठता न सही समीपता का अदृश्य सुख तो अनायास मिलता ही है ।

चूँकि इन्द्रिय सुख और जन सम्पर्क की घनिष्ठता में सहायक एक और नया माध्यम सभ्यता के विकास के साथ-साथ बनकर

खड़ा हो गया है इसलिए अब प्रिय वह भी लगने लगा है—इस तीसरे मनुष्य कृत-आकर्षण तत्व का नाम है—धन । इसमें स्वभावतः कोई आकर्षण नहीं । इसमें इन्द्रिय समूह या मन को पुलकित करने वाली कोई सीधी क्षमता नहीं है । धातु के सिक्के या कागज के टुकड़े भला आदमी के लिए प्रत्यक्षतः क्यों आकर्षक हो सकते हैं पर चूँकि वर्तमान समाज व्यवस्था के अनुसार धन के द्वारा इन्द्रिय सुख के साधन प्राप्त होते हैं । मैत्री भी सम्भव होती है । इसलिए धन भी प्रकारान्तर रूप से मन का प्रिय विषय बन गया । अस्तु धन की गणना भी सुखदायक माध्यमों से जोड़ ली गई है ।

तीन शरीरों को जीवात्मा धारण किए हुए हैं । तीनों को तीन रसानुभूतियाँ हैं । ऊपर दो की चर्चा हो चुकी । स्थूल शरीर की सरसता-इन्द्रिय समूह के साथ जुड़ी हुई है । आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसे सुख इन्द्रियों द्वारा ही मिलते हैं । सूक्ष्म शरीर का प्रतीक मन है । मन की सरसता मैत्री पर, जन-सम्पर्क पर अवलम्बित है । परिवार मोह से लेकर समाज सम्बन्ध, नेतृत्व, सम्मिलन, उत्सव, आयोजन जैसे सम्पर्क परक अवसर मन को सुख देते हैं । घटित होने वाली घटनाओं को अपने ऊपर घटित होने की सूक्ष्म सम्वेदना उत्पन्न करके यह समाज की अनेक हलचलों से भी अपने को बाँध लेता है और उन घटना-क्रमों में खट्टी-मीठी अनुभूतियाँ उपलब्ध करता है । उपन्यास, सिनेमा, अखबार, रेडियो आदि मन को इसी आधार पर आकर्षित करते और प्रिय लगते हैं ।

तीसरा रसानुभूति उपकरण है—अन्तरात्मा उसका कार्य क्षेत्र 'कारण शरीर' है । उसमें उत्कृष्टता, उत्कर्ष, प्रगति गौरव की प्रवृत्ति रहती है जो उच्च भावनाओं के माध्यम से चरितार्थ होती है । मनुष्य की श्रेष्ठता और सन्मार्गगामिता प्रखर होती रहे इसके लिए उस में भी एक रसानुभूति विद्यमान है—उसका नाम है वर्चस्व, यश, कामना, नेतृत्व, गौरव प्रदर्शन । उस आकांक्षा से प्रेरित होकर मनुष्य अगणित प्रकार की सफलताएँ प्राप्त करता है ताकि वह स्वयं दूसरों की तुलना में अपने आपको श्रेष्ठ, पुरुषार्थी, पराक्रमी, बुद्धिमानी अनुभव करके सुख प्राप्त करे और दूसरे लोग भी उसकी विशेषताओं, विभूतियों से प्रभावित होकर उसे यश, मान, प्रदान करें ।

संक्षेप में, यह मनुष्य के तीन शरीरों की—तीन रसानुभूतियों की चर्चा हुई । हमारी अगणित योजनाएँ—इच्छा, आकांक्षाएँ—गतिविधियाँ इन्हीं तीन मूल प्रवृत्तियों के इर्द-गिर्द घूमती हैं । जो कुछ मनुष्य सोचता और करता है उसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है । भगवान ने यह तीन उपहार जीवन को सरसता से भरा-पूरा रखने के लिए दिए हैं । साथ ही उनका अस्तित्व इसलिए भी है कि व्यक्ति निरन्तर सक्रिय बना रहे । इन सुखानुभूतियों को प्राप्त करने के लिए उसके तीनों शरीर निरन्तर जुटे रहें । आलस्य, अवसाद की उदासीनता, नीरसता की स्थिति सामने आकर खड़ी न हो जाय और जीवन को आनन्द रहित भार रूप न बना दे । सक्रियता के आधार पर चल रहे सृष्टि क्रम को अवरुद्ध न कर दे । अन्तरात्मा, मन और इन्द्रिय-समूह को यदि सही मार्ग पर चलने का अवसर मिलता रहे तो जीवन हर्षोल्लास के साथ व्यतीत हो सकता है ।

भूल मनुष्य की तब आरम्भ होती है जब वह इन तीनों रसानुभूतियों को अमर्यादित होकर—अनावश्यक मात्रा में—अति शीघ्र, बिना उचित मूल्य चुकाये प्राप्त करने के लिए आकुल, आतुर हो उठता है और लूट-खसोट की मनोवृत्ति अपनाकर अवांछनीय गतिविधियाँ अपना लेता है । विग्रह इसी से उत्पन्न होता है । पाप का कारण यही उतावली है । जीवन में अव्यवस्था और अस्त-व्यस्तता इसी से उत्पन्न होती है । पतन इसी भूल का परिणाम है । अपराधी, दुष्ट और घृणित बनने का कारण उन उपलब्धियों के लिए अनुचित मार्ग को अपनाना ही है । उतावला व्यक्ति आतुरता में विवेक खो बैठता है और औचित्य को भूलकर बहुत जल्दी—अधिक मात्रा में उपरोक्त सुखों को पाने के लिए असुन्तुष्ट होकर एक प्रकार से उच्छृंखल हो उठता है । यह अमर्यादित स्थिति उसके लिए विपत्ति बनकर सामने आती है । सरल स्वाभाविक रीति से जो शान्तिपूर्वक मिल रहा था—मिलता रह सकता था—वह भी हाथ से चला जाता है और शारीरिक रोग, मानसिक उद्वेग, सामाजिक तिरस्कार, आर्थिक अभाव, आत्मिक अशान्ति के संकटों से घिरा हुआ जीवन नरक बन जाता है । अधिक के लिए उतावला मनुष्य सरल स्वाभाविक को भी खोकर उल्टा शोक-सन्ताप, कष्ट-क्लेश एवं अभाव, दारिद्रय में फँस जाता है । आमतौर से मनुष्य यह भूल करते हैं । इसी भूल को माया, अज्ञान अविद्या, नामों से पुकारते हैं । यह भूल ही ईश्वर प्रदत्त पग-पग पर मिलती रहने वाली सरसता से वंचित करती है और इसी के कारण जीव ऊँचा उठने के स्थान पर नीचे गिरता है ।

अध्यात्म विद्या का उद्देश्य मनुष्य के चिन्तन और कर्तृत्व को अमर्यादित न होने देने—अवांछनीयता न अपनाने के लिए आवश्यक विवेक और साहस उत्पन्न करता है । मनुष्य अपने अस्तित्व को, लक्ष्य को, व्यवहार को सही तरह समझे । सही मार्ग को अपनाकर सही परिणाम उपलब्ध करते हुए, प्रगति के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ता चले । अपूर्णता से पूर्णता में विकसित हो । यही मार्गदर्शक करता-इसका व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करना आत्म विद्या का मूल प्रयोजन है ।

स्थूल शरीर का ठीक तरह उपयोग कैसे किया जाय ? इन्द्रिय समूह को व्यवस्थित और सन्तुलित कैसे रखा जाय ? पारस्परिक सम्बन्धों में औचित्य की, मर्यादा की रक्षा करते हुए अधिकाधिक स्नेह सद्भाव कैसे प्राप्त किया जाय ? आत्मोत्कर्ष की प्रगति और श्रेष्ठता की स्थिति कैसे प्राप्त हो ? इन सब प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने के लिए आत्म विज्ञान की ही सहायता लेनी पड़ती है । अन्तरात्मा, मन और इन्द्रिय समूह का प्रयोजन और उपभोग इसी विज्ञान के आधार पर जाना जा सकता है । सांसारिक वस्तुओं का समुचित उपयोग कर सकने की जितनी अधिक और जितनी सही जानकारी होगी उतनी भौतिक जीवन में सुविधा रहेगी पर जो जितना अनजान होगा वह उतना ही अभावग्रस्त, आपत्तिग्रस्त और असफल रहेगा । ठीक इसी प्रकार सुखी, सन्तुष्ट और समुन्नत जीवन जीने के लिए सही आत्म विज्ञान की सही जानकारी का होना आवश्यक है । इसके बिना हमारा चेतन तत्व खिन्न—पतित और दुर्गति की स्थिति में ही पड़ा रहेगा ।

वैज्ञानिक अध्यात्मवाद बनाम वैज्ञानिक मानसिकता

विज्ञान और अध्यात्म के प्रसंग में जब भी चर्चा चलती है, उन्हें दो विपरीत खेमों का पक्षधर माना जाता है । कहा जाता है कि दोनों में पारस्परिक तालमेल सम्भव नहीं । एक प्रत्यक्षवाद को प्रधानता देता है तो दूसरा परोक्ष को किन्तु यह ऊहापोह भी स्थूल स्तर पर सोचने वालों के दिमाग की उपज है । आज वैज्ञानिक एवं अध्यात्मवादी भी क्रमशः इस मत के समर्थन में पर्याप्त सबूत जुटा चुके हैं कि दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । सरजेम्स, जीन्स एवं मैक्सप्लांक जैसे विद्वानों का मत है कि अध्यात्म अनुशासनों के सम्बल की विज्ञान को आवश्यकता है, साथ ही वैज्ञानिक मनोवृत्ति का आरोपण अध्यात्म के लिए अनिवार्य है । इसके अभाव में अध्यात्म दर्शन मात्र आप्त वचनों का तर्क-तथ्य-व्याख्या रहित पारायण करता व अश्रद्धा का कोपभाजन बनता देखा जाता है । दूसरी ओर अध्यात्म मूल्यों से रहित विज्ञान अनास्था को पोषण देता, विध्वंस को जन्म देता दीख पड़ता है ।

वस्तुतः वैज्ञानिक मनोवृत्ति का होना एक अलग बात है एवं वैज्ञानिकों का प्रचार-प्रसार होना नितान्त अलग प्रकरण है । वैज्ञानिक मनोवृत्ति ज्ञान के विकास को बढ़ावा देती है । इस तरह वह दर्शन के समीप आ जाती है । इस प्रकार की मनोवृत्ति तर्क, तथ्य सम्मत प्रतिपादन के प्रति आग्रह रखती है एवं समाज की हर विधा से सम्बन्धित समस्याओं के विषय में हमारे चिन्तन को प्रबल रूप से प्रभावित करती है ।

धार्मिक या आध्यात्मिक मनोवृत्ति भी इसी प्रकार धार्मिकता, आध्यात्मिकता से एक अलग बात है । आध्यात्मिकता कहते हैं— ईश्वर के प्रति विश्वास को, श्रेष्ठता को, आदर्शों की पराकाष्ठा को । ऐसी आदर्श पारायण वृत्ति के प्रति जो झुकने के लिए जन साधारण को आन्दोलित करने लगे वह आध्यात्मिक मनोवृत्ति है । जिसके पास वैज्ञानिक मनोवृत्ति है, वह धर्म दर्शन—अध्यात्म के मूल्यों को कहीं अधिक गहराई से सोच समझ सकता है । वह परम्पराओं एवं अशाश्वत मूल्यों के बन्धन में नहीं बँधता । जो मात्र आध्यात्मिक मानसिकता का है, वैज्ञानिकता को महत्त्व नहीं देता, उसका चिन्तन एकांगी है—अधूरा है ।

इस तरह ज्ञान प्राप्ति के लिए, सत्य की ओर पहुँचने के लिए दो राजमार्ग स्पष्ट दिखाई देते हैं—एक विज्ञान से प्रारम्भ होकर दर्शन पर समाप्त होने वाला । दूसरा अध्यात्मवाद से प्रारम्भ होकर वैज्ञानिक मानसिकता तक ले जाने वाला । दोनों एक ही बिन्दु पर समाप्त होते हैं, जिसका नाम है, वैज्ञानिक अध्यात्मवादी । जब तक विज्ञान और अध्यात्म रूपी दोनों विधाओं का ऐसा समन्वयात्मक रूप स्थापित नहीं होता है तब तक दोनों ही अधूरे, लँगड़े-लूले अपाहिज के समान हैं ।

वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का मूल है—जिज्ञासा की भावना का होना । किसी भी वस्तु, घटनाक्रम, चमत्कार इत्यादि को देखकर जो मनुष्य को 'क्या', 'कैसे' व 'क्यों' का प्रश्न पूछने को प्रेरित करे, ऐसी मानसिकता वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का मूल प्राण है । इसमें शंका उठाने का मौलिक अधिकार मनुष्य को मिल जाता है ताकि उपलब्ध सिद्धान्त, परम्पराएँ, मान्यताएँ, सामाजिक स्थिति को वैज्ञानिकता के चश्मे से देखकर भली-भाँति उनका विश्लेषण किया जा सके । वैज्ञानिक मनोवृत्ति के रहते हम अध्यात्म पर चढ़े अनेकों आक्षेपों को निरस्त कर उसका शोधन कर सकते हैं । वैज्ञानिक मनोवृत्ति यह स्वीकार करने को बाध्य कर देती है कि ज्ञान का उत्थान एवं वास्तविकता का बोध हमेशा पूर्व धारणाओं, विश्वासों, सिद्धान्तों तथा नियमों को गलत सिद्ध करके ही होता है । यही कारण है कि विज्ञान की प्रगति के क्रमिक इतिहास में हम पग-पग पर अनेकों पिछली मान्यताएँ टूटते व नई बनती पाते हैं ।

कई वैज्ञानिक जिन गवेषणाओं पर पुरस्कार पाते हैं । कुछ ही वर्षों बाद अन्य अनेकों उनके ही अनुयायी उन सिद्धान्तों का खण्डन करने पर पुरस्कार प्राप्त करते देखे जाते हैं । फिजिक्स, केमिस्ट्री, मेडीसिन जैसे क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ नित नये अनुसन्धान होते व पिछली मान्यताओं के किले ढहते देखे गए हैं । यही वैज्ञानिक मानसिकता है । जब इसका आरोपण अध्यात्म दर्शन के क्षेत्र में किया जाता है तब लक्ष्य भले ही आत्म-तत्व की खोज, परोक्ष का अनुसन्धान, आध्यात्मिक मूल्यों की विज्ञान सम्मत व्याख्या करना हो, मूल आधार एक ही रहता है—तर्क संगत, तथ्य सम्मत, विवेक प्रधान मानसिकता—वैज्ञानिक मानसिकता ।

इतने स्पष्टीकरण के बाद प्रसंग पुनः वहीं आ जाता है । अध्यात्म अपने विशुद्ध रूप में एवं विज्ञान अपने मूल रूप में । अध्यात्म—अन्तरंग जीवन की शोध, आत्म साधना द्वारा उसके साक्षात्कार तथा आत्मिक प्रगति के आयामों को खोजने का प्रयास करता है । विज्ञान पदार्थ जगत की, दृश्य प्रकृति, ब्रह्माण्डीय जगत की शोध करता है । विज्ञान के पास दृश्य आयामों को जानने के लिए भिन्न-भिन्न साधन हैं, बहुमूल्य प्रयोगशालाएँ हैं । जबकि अध्यात्म साधना प्रक्रिया के माध्यम से मानवी काया रूपी प्रयोगशाला में ब्राह्मी चेतना तथा अन्तर्जगत के रहस्यों को जानने का प्रयास करता है । परम सत्ता की विधि-व्यवस्था को दृश्य आयामों द्वारा समझा भी तो नहीं जा सकता । दोनों के नजरिए अलग-अलग हैं—लक्ष्य एक ही है । दोनों को ही एक स्थिति तक स्थूल साधन प्रयुक्त करने पड़ सकते हैं । एक स्थिति ऐसी आती है जहाँ कुछ सिद्धान्त मानकर चला जाता है एवं यात्रा पूरी करने हेतु तर्कों, तथ्यों का आश्रय लेना पड़ता है । यह भी पूर्णतः विज्ञान सम्मत तकनीक है जिसे हम वैज्ञानिक मानसिकता का विज्ञान व अध्यात्म पर आरोपण कह सकते हैं ।

यदि अध्यात्म और विज्ञान दोनों ही इस दुराग्रह पर अड़ जायें कि उनके अपने ही सिद्धान्त सही हैं, उन्हें किसी वैसाखी की आवश्यकता नहीं, तो प्रगति पथ ही अवरुद्ध हो जायेगा । इसे रूढ़िवादी मनोवृत्ति कहेंगे जहाँ पूर्वाग्रहों से चिपके रहने की मौलिक भूल होती है । चाहे वह विज्ञान का दर्शन हो अथवा अध्यात्म का तत्वदर्शन, उसे मूल्य निर्धारण करना ही पड़ेगा । जो क्वालिटी कण्ट्रोल (मूल्य नियन्त्रण, गुणवत्ता, मूल्यांकन) की प्रक्रिया अन्यान्य क्षेत्रों पर लागू की जाती है । लगभग वैसी ही विज्ञान एवं अध्यात्म के क्षेत्रों पर यदि नहीं की गई तो मानव जाति दोनों से ही अर्जित हो सकने वाले महत्त्वपूर्ण अनुदानों से वंचित हो जायेगी ।

वास्तविकता तो यह है कि दोनों ही विधाएँ अपने-अपने क्षेत्र में प्रगति तो कर रही हैं किन्तु पारस्परिक 'लिंक' का अभाव है । अध्यात्म को जब सम्प्रदायवादी संकीर्ण धार्मिकता से जोड़कर देखा जाता है तो वह एक त्रुटिपूर्ण आंकलन माना जाना चाहिए ।

इसी प्रकार विज्ञान को जब विध्वंसात्मक अनुसन्धानों, कट्टर मान्यताओं से जोड़ दिया जाता है तो वह भी एक विकृत दृष्टिकोण से देखा गया पक्ष कहा जाना चाहिए। यदि विशुद्ध मनोवृत्ति का सहारा लिया जा सके तो दोनों ही गुणवत्ता की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। औदार्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाकर दोनों ही महाशक्तियों की परस्पर 'सिन्थेसिस' का सुयोग यदि बिठाया जा सके तो इसे अपने युग का प्रचण्डतम एवं सर्वोपयोगी पुरुषार्थ माना जाना चाहिए। किसी समय वैज्ञानिक दृष्टा आइन्स्टीन ने कहा था—"केवल विज्ञान के क्षेत्र में गम्भीरता से लगे कार्यकर्त्ता पूर्णरूपेण आध्यात्मिक माने जाने चाहिए।" इसी प्रकार युग पुरुष विवेकानन्द की उक्ति थी कि "आधुनिक विज्ञान वस्तुतः अध्यात्म भावना की ही अभिव्यक्ति है क्योंकि इसमें ईमानदारी के साथ सत्य को समझने का प्रयास किया जाता है।" क्या यह सम्भव नहीं कि वर्तमान परिस्थितियों में समस्याओं के निवारण एवं उज्ज्वल भविष्य को लाने के लिए अध्यात्म और विज्ञान को नई मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में परस्पर मिलाने का पुनः प्रयास किया जाय?

नए युग के दो आधार अध्यात्म और विज्ञान

कोई जमाना था जब धर्म और राजनीति की तूती बोलती थी। वे दिन तब थे जब धर्म का उद्देश्य लोगों के दिलों को जोड़ना और राजनीति का लक्ष्य सुरक्षा एवं सुव्यवस्था था। उन दिनों इन दोनों धाराओं को लोक-श्रद्धा प्राप्त थी। इसलिए उनकी जड़ें गहरी थीं और जड़ों में मजबूती देखी जाती थी। धर्माचार्य भी श्रद्धा के पात्र थे और राज संचालक भी। पर अब स्थिति बदल गई। इन दोनों ने अपना मूल प्रयोजन छोड़ दिया और निहित स्वार्थों का आश्रय अंगीकार कर लिया।

धर्म अब थोथी, कपोल कल्पनाओं, ठगी और भ्रान्तियों का केन्द्र बन गया है। निहित स्वार्थों द्वारा भोले भावुकों को भ्रम जंजाल में उलझाकर अपना उल्लू सीधा करते रहने की विडम्बना से अब धर्मक्षेत्र बेतरह घिर गया है। छुट-पुट कर्मकाण्डों द्वारा स्वर्गमुक्ति प्राप्ति जैसी सस्ती युक्तियों में उलझे तथाकथित धार्मिक व्यक्ति अब चरित्र शोधन और परमार्थ प्रयोजन की कष्ट साध्य प्रक्रिया अपनाने का साहस नहीं करते। इसी प्रकार पापकर्मों के दण्ड से बच निकलने की गंगास्नान जैसी तरकीबें हाथ लग जाने से धार्मिक व्यक्ति को निर्भय होकर दुष्कर्म करने की भी छूट मिल जाती है। मन्त्र जप से देवता जब किसी के गुलाम बन सकते हैं तो मनुष्यों पर क्यों आधिपत्य न जमाया जा सकेगा, यह सोच कर लोगों की पूजा आर्चा बड़ी-बड़ी भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं से जोड़ दी जाती हैं। जब लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती तो खीझ ही हाथ लगती है। दूसरी ओर विचारशील वर्ग जब देखता है कि इस क्षेत्र में लगने वाली जनशक्ति और धनशक्ति का उपयोगी प्रतिफल नहीं मिल रहा तो उन्हें भी निराशा होती है। अनैतिक और अवांछनीय रूढ़ियों का समर्थन करने से तो धर्म और भी अधिक बदनाम हो चला है। ऐसे-ऐसे कारणों ने मिलकर धर्म के प्रति एक खीझ पैदा कर दी है। पुरातन पन्थी उससे किसी कदर चिपके जरूर हैं पर लोक श्रद्धा बेतरह टूटती जा रही है। अनुपयोगिता को देर तक समर्थन नहीं मिल सकता, धार्मिकता का स्तर गिरकर साम्प्रदायिक तक सीमाबद्ध हो गया है। उससे अकारण वर्ग विद्वेष बढ़ रहा है। वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करने वाला लोक-विवेक अब उससे हट रहा है और धार्मिकता की जड़ें खोखली हो रही हैं। स्पष्ट है कि इस युग की प्रचण्ड समस्याओं को हल करना रुग्ण और जराजीर्ण धार्मिकता के वस की बात नहीं रही।

अनुपयोगी को हटाकर उपयोगी को स्थानापन्न करने का नियति-क्रम धर्म के स्थान पर अध्यात्म की प्रतिष्ठा करने जा रहा है। धर्म और सम्प्रदाय का अन्तर स्पष्ट है। सम्प्रदाय परम्पराओं और कर्मकाण्डों से घिरी हुई अन्ध-श्रद्धा पर आधारित है। वह अमुक वर्ग विशेष की बपौती बनकर रहता है। अध्यात्म का लक्ष्य इससे ऊँचा है, वह चिन्तन को उत्कृष्ट और कर्तृत्व को आदर्श बनाने की दार्शनिक प्रेरणा है। अन्तरंग जीवन में श्रेष्ठता का बहिरंग जीवन में उदार स्नेह सहयोग का-अभिवर्धन यही अध्यात्म का लक्ष्य है। आत्मवत् सर्वभूतेषु और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना अपना कर अध्यात्मवादी को अधिकाधिक पवित्र और उदार बनना पड़ता है। अपने सुखों को बाँट देने और दूसरों के दुःख बँटा लेने की अन्तःप्रेरणा प्रबल होती है और अनेकता में से एकता ढूँढ़ निकालने की दृष्टि रहती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण अध्यात्म किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति न रह कर सार्वभौम रहता है। समुद्र में सभी नदियाँ जा मिलती हैं। धर्मगत विभेदों का अन्त अध्यात्म के महासागर में ही होता है।

राजनीति की उपयोगिता तभी रही जब शासनकर्त्ता प्रजा हित के लिए ही जीते-मरते थे। वस्त्र वे भले ही सन्त जैसे न पहनते हों पर लोकमंगल का उदार दृष्टिकोण वैसा ही रख कर वे अपनी रीति-नीति निर्धारित करते थे। अध्यात्म और नीति को ही राजाश्रय मिलता था। आदर्शवादी वरिष्ठता को सत्ता द्वारा समर्थन, प्रोत्साहन मिलता था। उन दिनों प्रजा, राज्य-निर्देशों को शिरोधार्य करना अपना पावन कर्त्तव्य मानती थी। "दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा" की उक्ति में देश भक्ति, धर्म भक्ति, ईश्वर भक्ति का त्रिविधा समन्वय था। राजद्रोह उस समय धर्म द्रोह जैसा हेय कर्म था। तब राज्यसत्ता का स्वरूप भी तो श्रेष्ठता को सत्ता सज्जित बनाये रखना ही तो था। ऐसी दशा में राजसत्ता का समर्थन करना जनता के लिए उचित ही था और वह उसकी छाया में अपना कल्याण देखकर राजभक्त रहती थी तो वह भी उपयुक्त ही था।

आज राजनीति का उद्देश्य भी बदल गया और स्वरूप भी। अब कूटनीति का ही दूसरा नाम राजनीति है। शत्रुओं के साथ दाव-घात चलने से आरम्भ हुई कूटनीति मित्रों को भी उसी लपेट में लेती है। अब राजनीति के लिए प्रजाहित मुख्य नहीं रहा वरन् शासन की जड़ें मजबूत करना रह गया है। इसके लिए प्रजा को असुविधाओं और कठिनाइयों में धकेलने से शासन तनिक भी नहीं झिझकता। सत्ता के लिए संघर्ष ने उस क्षेत्र में अराजकता जैसी, शीत गृह युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है। राजनीति में प्रवेश करने वाला हर व्यक्ति सत्ता हथियाने और उससे लाभ लेने के लिए आतुर रहता है। सत्ता के लिए संघर्ष में इतने घिनौने दाव-पेच चलाये जाते हैं कि उसकी चपेट में आने वाले भोले प्रजाजन भी अपना सहज सन्तुलन खो बैठते हैं। चुनावों के कारण जितना विद्वेष उत्पन्न होता है, उतना शायद ही अन्य किसी

कारण से होता हो । चुनाव लड़ने वाले विष बीज बखेर कर किसी कोंतर में जा बैठते हैं, पर जन-जीवन को वह विषाक्तता देर तक उद्विग्न किए रहती है । अब राज्य घोषणाओं को यथार्थता नहीं माना जाता—अब शासन की न्याय-नीति पर विश्वास उठ चला । उस क्षेत्र में होने वाली हलचलों को देखकर सामान्य बुद्धि यह सोचने लगती है कि यह शासन विहीन समाज रहता तो अब की अपेक्षा कुछ अच्छा ही रहता—बुरा नहीं ।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शतरंज किस क्रम से खेली जा रही है उसने संगठित शोषण की जड़ें मजबूत बनाने का ही पथ-प्रशस्त किया है । युद्ध को प्रोत्साहन मिला है और विज्ञान की सत्ता राजसत्ता के हाथ में चली जाने से विश्व-वसुधा के सर्वनाश की आशंका रोमांचकारी विभीषिका बन कर सामने आयी है । ऐसी अनेक आशंकाओं ने राज्यसत्ता का स्वरूप किसी गुट विशेष का आतंक आधिपत्य समझा जाने लगा है । सामान्य जनता उसमें अपना हित कम और अहित अधिक होने की बात सोचती है । राजनेता अब श्रद्धा के पात्र नहीं रहे, उन्हें स्वार्थी-तत्वों की चापलूसी भर हाथ लगती है । अब धर्म-ध्वजी और सत्ताधारी लगभग एक ही पंक्ति में बैठते जा रहे हैं । धर्म-धारणा की तरह ही राजनीति के आश्रय में भी अपना कल्याण नहीं सोचते ।

राजनीति का नया विकल्प अब जन-साधारण के सामने है—'विज्ञान' । दूरगामी विवेकशीलता के सहारे मनुष्य मात्र को एक परिवार मानकर समस्याओं को हल करना दार्शनिक विज्ञान का काम है । न्याय और एकता की रक्षा के लिए पिछले दिनों शस्त्रधारी सैनिक नियुक्त रहते थे । अब वह शक्ति भौतिकी के हाथों चली गई है । साइन्स की बलिष्ठता और बरिष्ठता अब इतनी आगे बढ़ गई है कि सत्ता की सुरक्षा के लिए सामान्य सैनिकों की अब विशेष आवश्यकता नहीं रह गई ।

विज्ञान सत्य के निकट है । उसकी खोजों ने ही तथ्यों का रहस्योद्घाटन करने की लालसा सम्भव की है । इसलिए विज्ञान को सत्य की सन्तान कह सकते हैं । लोग वैज्ञानिक उपलब्धियों को ही विज्ञान मान बैठते हैं पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो विज्ञान एक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रतीत होगा, जिसका उद्देश्य है, सत्य का रहस्योद्घाटन करना और उपलब्धियों के उपयोग पर दूरगामी व्यापक दृष्टि से विचार करना । यह वैज्ञानिक दृष्टि ही आज की उलझी समस्याओं के ऐसे हल निकाल सकती है जो चिरस्थायी सुख-शान्ति के आधार बन सकें । राजनीति तो क्रमशः उलझनें बढ़ाती ही चली जाती है, उस पर क्षेत्र अथवा वर्ग के लाभ का इतना गहरा नशा चढ़ गया है कि सार्वभौम एवं सर्वमान्य हल निकालने के लिए उसके प्रयास सफल हो सके । न्याय और विवेक का परित्याग कर वर्ग स्वार्थों के समर्थन में खड़ी हुई राजनीति के लिए अब मानवी समस्याओं का हल करना तो दूर—उनका यथार्थ स्वरूप समझ सकना भी सम्भव नहीं रहा ।

युग की माँग अधिक प्रखर आधारों को खोज रही है । प्रगति की इन दो शताब्दियों में उलझनों की भी प्रगति हुई है । विज्ञान ने सारी दुनिया को एक छोटे से नगर के रूप में और समस्त मानव-जाति को छोटे से परिवार के रूप में सघन बना दिया है । तदनुसार बिखरी हुई उलझनें, समस्याएँ और विकृतियाँ भी सघन हुई हैं और स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि करो या मरो स्तर पर हमें इधर या उधर में से एक का फैसला करना पड़ेगा । स्पष्ट है कि मानव जाति के भाग्य और भविष्य का फैसला करने वाले इन क्षणों में धर्म और राजनीति दोनों ही अनुपयोगी सिद्ध होगें । इनके स्थान पर अध्यात्म और विज्ञान को प्रतिष्ठापित करना होगा । मनुष्य समाज के अन्तरंग जीवन को परिष्कृत बनाने की बागडोर अध्यात्म ही सँम्भाल सकता है और बहिरंग व्यवस्था में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर ही उपयुक्त समाधान निकल सकता है । अगले दिनों इन्हीं दो तथ्यों को मान्यता देनी पड़ेगी ।

सन्त विनोवा कहते हैं—मजहब और सियासत ये दो शक्तियाँ खत्म हो चुकी हैं । कल जो दो शक्तियाँ काम करने वाली हैं—उनमें एक है विज्ञान, दूसरी है रूहानियत ।

सन्त विनोबा का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि—धर्म और राजनीति के दिन लद गए । अब अध्यात्म और विज्ञान के वर्चस्व की प्रतिष्ठापना होगी ।

संसार का सदा से यही नियम रहा है कि हर वस्तु और हर मान्यता तभी तक अपनी स्थिरता रख सकती है जब तक वह उपयोगिता की कसौटी पर खरी उतर सकने की स्थिति में बनी रहे । जहाँ विकृतियों का समावेश बढ़ा वहाँ अपनी शुद्ध स्थिति में श्रेष्ठ समझी जाने वाली वस्तु भी क्रमशः हेय, हानिकारक और अग्राह्य बनती जाती है । तब स्वभावतः इसका तिरस्कार होता है और समय उसे हटाकर, उठाकर किसी कूड़े के ढेर में सड़ने, मरने के लिए पटक देता है ।

धर्म अपने शुद्ध स्वरूप में मानव-जाति के लिए अत्यन्त आवश्यक आस्था है, पर उसकी उपयोगिता है तभी तक, जब तक कि वह मनुष्य जाति की भावनात्मक, नैतिक और सामाजिक स्थिति को परिष्कृत बनाये रहने में सहायक रहे । जब उसमें शुद्धता का अंश घटता और निहित स्वार्थों की धुसपैठ बढ़ जाती है तो इस विकृति के कारण लोग समूचे धर्म को ही अनुपयोगी कहकर उसे हटाने पर तुल जाते हैं । यही है नास्तिकवाद की अधार्मिकता की पृष्ठभूमि ।

होता यह है कि धर्म के मूल सिद्धान्तों और आदर्शों की उपेक्षा होने लगती है और किसी समय किसी समाज के लिए एक कदम बढ़ाने की दृष्टि से जो रीति-रिवाज बने थे उन साम्प्रदायिक विधि-विधानों को ही धर्म मान लिया जाता है और धर्म के मूल तत्व की उपेक्षा करके प्रथा प्रचलन और वर्गीय स्वार्थों को ही प्रधानता दी जाने लगती है । यही साम्प्रदायिकता-मोटे तौर से 'धार्मिकता' समझी जाने लगती है । विवेक दृष्टि से जब इन साम्प्रदायिक मान्यताओं का विवेचन किया जाता है तो प्रतीत होता है कि उनमें न्याय का, औचित्य का, यथार्थता का पुट कम और परम्पराओं का, वर्गीय स्वार्थ का, पुट अधिक है तो यही उचित लगता है कि इन अहितकर और अनुपयोगी मान्यताओं से पीछा छुड़ा लेना ही उचित है । धर्म के प्रति इस प्रकार पनपने वाला विद्रोह वस्तुतः साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों और दुराग्रहों के विरुद्ध उभरने वाली प्रतिक्रिया ही होती है ।

आमतौर से लोग धर्म और सम्प्रदाय के बीच का अन्तर भूल जाते हैं । सम्प्रदाय को ही धर्म मान लेते हैं और दोनों के लिए एक ही शब्द का प्रयोग करने लगते हैं ।

वस्तुतः धर्म की परिभाषा भावनात्मक उत्कृष्टता एवं क्रियात्मक आदर्शवादिता के रूप में ही हो सकती है । अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय

जैसी चिन्तनात्मक और क्रियात्मक गतिविधियों की मान्यताओं को धर्म कहा जा सकता है । इस दृष्टि से धर्म सार्वभौम है । वह देश, जाति और काल के अन्तर में कटता-बँटता नहीं और न उसमें उतार-चढ़ाव आते हैं, किन्तु सम्प्रदायों के बारे में ऐसी बात नहीं है । उसमें देश-काल-पात्र की, विधि-व्यवस्थाओं की प्रधानता रहती है । यही कारण है कि उनका समय-समय पर बदला जाना आवश्यक होता है । देवदूत और सुधारक इसी प्रयोजन के लिए अवतरित होते हैं और पूर्वमान्यताओं में जितनी विकृतियों का, अनुपयोगिताओं का समावेश हो गया था उसे हटाने का प्रयत्न करते हैं ।

इसके विपरीत धर्म के मूल तत्वों को सुधार, परिवर्तन करने की कभी किसी ने न तो आवश्यकता समझी और न उसमें हेर-फेर करने का दुस्साहस किया । धर्म को सार्वजनीन, सर्वकालीन, सर्वभौम्य और शाश्वत सनातन कहा जा सकता है । इसलिए उसके विरुद्ध अनीश्वरवादी और असामाजिक लोग भी कुछ कह सकने का साहस नहीं करते । धर्माचरण में विपरीत प्रकार की गतिविधियाँ अपनाने वाले बहुत हैं, पर वे भी सिद्धान्त के प्रतिपादन का अवसर आने पर अधर्म का नहीं धर्म का ही समर्थन करते हैं ।

चोरी का पेशा अपनाये हुए व्यक्ति भी अपने घर में ऐसा नौकर नहीं रखता जो चोर हो । व्यभिचारी प्रकृति का मनुष्य भी अपने घर में इस वर्ग के लोगों का प्रवेश प्रतिबन्धित करता है ताकि उसके स्त्री-बच्चों को कोई पथ-भ्रष्ट न कर दें । निरन्तर असत्य बोलकर, आजीविका कमाने वाले भी अपने साथ दूसरे लोगों का असत्य व्यवहार पसंद नहीं करते । घर वाले, मित्र या नौकर झूठी बातें कहकर बहकाने का प्रयत्न करते हैं तो वह असत्यवादी भी उबल पड़ता है और कहता है कि मुझसे सच्ची बात क्यों नहीं कही गई ? निर्दयता और छल का व्यवहार करने के अभ्यस्त भी यह चाहते हैं कि दूसरे लोग उनके साथ सहृदयता, सज्जनता और निश्छलता बरतें । इससे स्पष्ट है कि अधर्म परक रीति-नीति अपनाते हुए भी सैद्धान्तिक दृष्टि से धर्म का ही समर्थक है । समस्त संसार अनीति बरतने लगे तो भी 'नीति' अपने बलबूते पर अकेली अपना अस्तित्व बनाये रह सकती है । बहुमत से लेकर सर्वमत तक भी अनीतिवादी होकर 'नीति' की गहरी जड़ों को उखाड़ने में समर्थ नहीं हो सकता । धर्म इतना बलवान है कि उसे हिला या हटा सकना किसी के भी बलबूते की बात नहीं है ।

झंझट सम्प्रदाओं के सम्बन्ध में है । उनमें नीति का पुट कम और आग्रहों का समर्थन अधिक रहता है । कई बार तो सम्प्रदाय धर्म के विपरीत भी चलते हैं जबकि उनकी संरचना किसी समय धर्म में समर्थनकारी गतिविधियों को प्रोत्साहन देने के लिए की गई थी । लोग तथ्यों को भुलाने और हलचलों को प्रधानता देने की चूक करते ही रहते हैं । अस्तु एक समय के उपयोगी प्रतिपादन कालान्तर में अनुपयोगी हो जाते हैं और उन्हें बदलने, सुधारने की आवश्यकता पड़ती है ।

साम्प्रदायिक उन्माद में वर्ग विशेष का अन्धानुकरण ही मुख्य होता है । न्याय और विवेक के लिए उसमें गुंजाइश क्वचित् ही रहती है । इतिहास के अगणित पृष्ठ इस कलंक से काले हैं कि साम्प्रदायिक उन्माद ने कितनी अनीति और कितनी नृशंसता बरती, कितनों पर कितने कहर बरसाये । ऐसी दशा में यदि सम्प्रदायवाद को अवांछनीय कहा जाय और उसके विरुद्ध बगावत की आवाज उठे तो उसे अनुचित कैसे कहें ?

यदि धर्म और सम्प्रदाय को ही शब्द के अन्तर्गत घसीटा जायेगा तो सम्प्रदायवादी मूर्खताओं को 'धर्म विरोधी' नाम दिया जाने लगेगा । जबकि वस्तुतः बात ऐसी है नहीं, धर्म का कभी कोई विरोध कर ही नहीं सकता । लड़ाई सम्प्रदायवाद के विरुद्ध ही होती है । जब मार पड़ती है तब सम्प्रदायवाद के विरुद्ध खड़ा हुआ विद्रोह 'धर्म विरोधी' कहा जाने लगता है । इस शब्द छल से अन्धविश्वास और दुराग्रहों का बचाव करने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है वह क्षण भर के लिए भावुक जनता को भड़का भले ही दे पर उससे कोई वास्तविक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । उल्टे साम्प्रदायिक दुराग्रहों के विरोधी धर्म शब्द पर ही आक्रमण करने लगते हैं । उचित यही है कि धर्म और सम्प्रदाय को काया और छाया की तरह एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए भले ही मानें पर साथ ही उनकी स्वतन्त्र सत्ता को भी स्वीकार किया जाय । सम्प्रदाय भले ही धर्म के निकट हो पर निश्चित रूप से वह धर्म नहीं है कई बार तो साम्प्रदायिकता अधार्मिकता की पर्यायवाची भी बन जाती है तब उसकी रक्षा की पुकार के लिए धर्मरक्षा का नारा लगाना भावुक जनता का भावनात्मक शोषण करना ही होता है ।

सम्प्रदाय मिट रहे हैं और अगले दिनों उनका स्थान रुहानियत लेगी । सन्त विनोबा की इस भविष्यवाणी का संकेत यह है कि अगले दिनों क्रमशः विवेकशीलता सूक्ष्म दृष्टि और न्याय औचित्य की विवेचना बुद्धि बढ़ती, पनपती जायेगी तब धर्म और सम्प्रदाय को दो प्रथक पंक्तियों में खड़ा किया जायेगा । सम्प्रदाय चूँकि इन दिनों अत्यधिक विकृत हो चले हैं । उनमें उपयोगिता कम और अनुपयोगिता अधिक घुस पड़ी है । ऐसी दशा में उनका शोधन, परिमार्जन, परोपकार, अनिवार्यतः करना होगा । टूटे बर्तनों को गलाकर नये रूप में ढालने में जिन आधारों का उपयोग किया जाता है, लगभग उन्हीं जैसों से साम्प्रदायिक रीति-नीति के आग्रहों और मान्यताओं में इतना परिवर्तन करना पड़ेगा कि प्राचीन की अपेक्षा अर्वाचीन में भारी अन्तर उपस्थित हो जाय । तब विशुद्ध रूप से बचे 'धर्म' को अध्यात्म कहा जायेगा ।

अध्यात्म का तात्पर्य है आत्मा की परिधि का विस्तार । अपने अहम् को, स्वार्थपरता की संकीर्ण परिधि को, विश्व मानव के लिए, परमात्मा के लिए उत्सर्ग कर देना यही आत्मिक प्रगति का एकमात्र चिन्ह है । अनादिकाल से यही परम्परा चली आ रही है कि जो अपने व्यक्तिगत लोभ, मोह, यश एवं सुख को जिस हद तक विश्व-मंगल के कृत्य में परित्याग करता है, वह उसी सीमा तक परमात्मा के सानिध्य में पहुँचा माना जाता है । यह मान्यता हर अध्यात्मवादी को समाज के लिए अधिक उपयोगी एवं उपकारी बनाकर सर्वजनीन सुख-शान्ति का अभिवर्धन करती थी, पर अब तो ठीक उल्टा है । जो जितना स्वार्थी, संकीर्ण, अनुत्तरदायी अकर्मण्य है, वह उतना ही त्यागी-तपस्वी है । सबके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझकर—आत्म-सुख को लोक-मंगल में घुला देने की प्रवृत्ति अब अध्यात्मवादियों में दिखाई नहीं पड़ती वरन् लोग अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि के लिए ईश्वरीय सहायता की याचना-कामना किया

करते हैं और उसी तराजू पर दैवी कृपा या अकृपा का—अपनी पूजा-पत्री की सफलता, असफलता का मूल्यांकन करते हैं। फलस्वरूप अब अध्यात्म व्यक्तिवाद का पोषक बनता जाता है और ऋद्धि-सिद्धियों से लेकर स्वर्गमुक्ति तक विभिन्न स्तर के स्वार्थों की पूर्ति के लिए लिप्साएँ उत्पन्न करता है। यह स्तर बदला न गया तो तत्व-ज्ञान का महान् दर्शन मानव-जाति के लिए और अधिक विपत्ति उत्पन्न करने वाला बनता चला जायेगा।

पाप से बचने और डरने का शिक्षण देना अध्यात्म का प्रयोजन है, पर जब से यह मान्यता चली है कि अमुक नदी-सरोवर में स्नान करने, अमुक तीर्थ की यात्रा या अमुक पुस्तक का पाठ करने से पाप फल भोगने से छुटकारा मिल जाता है, तब से लोग पाप से डरने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। सोचते हैं जब थोड़ा-सा व्यय करके पाप फल से बचा देने वाले कर्मकाण्ड करके दुष्कर्मों के दंड से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है तो फिर दुष्कर्मों का आकर्षण और लोभ, मोह क्यों छोड़ा जाय? पाप के दंड से बचने की मान्यता केवल अनैतिकता का ही अभिवर्धन करेगी और उससे अनाचार एवं विग्रह, विक्षोभ ही बढ़ेगा।

अध्यात्म दर्शन में उत्पन्न हुई इन्हीं विकृतियों ने हमारा मानसिक और सामाजिक ढाँचा चरमरा कर रख दिया है। विद्या, सदाचार, लोक-सेवा और उदात्त मनोभूमि के कारण पूजे जाने वाले साधु-ब्राह्मण जब वंश और वेष के आधार पर पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे तो उन महान् गुणों की ओर ध्यान देना ही बन्द हो गया। ओछे लोग जहाँ भी पूजे जायेंगे, वहाँ विकृतियाँ ही बढ़ेंगी, कर्म के आधार पर आरम्भ हुआ वर्णाश्रम धर्म जब वंश पर अवलम्बित हो गया और उसमें नीच-ऊँच का भेदभाव घुस गया तो ब्राह्मण दुर्गुणी होने पर भी पूजा जाने लगा और शूद्र सद्‌गुणी होने पर भी दुत्कारा जाने लगा। जहाँ गुणों का वर्चस्व समाप्त हो जाय और अकारण ही लोगों को मान या अपमान मिलने लगे तो वह समाज अपनों की और दूसरों की दृष्टि में अधःपतित होगा ही।

ओछा तत्व-दर्शन अपनाये रहने वाला व्यक्ति और समाज कभी भी ऊँचा नहीं उठ सकता। दर्शन ही प्रेरणाओं का आधार है। उसी के अनुरूप विचारणाएँ, आकांक्षाएँ और क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। दर्शन ही व्यक्ति को ढालता है और उसी ढाँचे में समाज का कलेवर खड़ा होता है। हम अपने समाज और संसार को समर्थ समृद्ध और सुविकसित बनाना चाहते हों तो उसका सर्व प्रमुख उपाय यही है कि वर्तमान दार्शनिक विकृतियों का परिशोधन किया जाय।

यदि इस स्थिति को सुधारा, सँभाला और बदला न गया तो भावी परिस्थितियाँ दिन-दिन अधिक भयावह होती चली जायेंगी। वैयक्तिक जीवन में आदर्शवादिता और उत्कृष्टता उत्पन्न-वाला जब प्रकाश ही बुझ जायेगा तो अन्धकार में भटकने वाला दुर्दशाग्रस्त ही होगा। लोग बुराई की ओर बढ़ेंगे और बुरी परिस्थितियाँ पैदा करेंगे। इससे सर्वत्र दुर्गन्ध और दुर्गति ही दृष्टिगोचर होगी और हम सब पारस्परिक विद्वेष, असहयोग एवं छल-छद्म की आग में जलकर सामूहिक आत्म-हत्या कर लेंगे।

इस संकट का समाधान एक ही है, वह है परिष्कृत अध्यात्म का उन्नयन। मानवीय गरिमा इस ओर आशा भरी दृष्टि से निहारने लगी है और विचारशील लोग वर्तमान परिस्थितियों में अध्यात्म की महत्ता स्वीकारने लगे हैं। जन आकांक्षाएँ जिस दिशा में चल पड़ती हैं, उधर समुचित प्रेरणाएँ प्रकाश मार्गदर्शन और ईश्वरीय व्यवस्थाएँ भी कार्य करने लगती हैं। इसे चाहे युग सत्ता के अभ्युदय की बात कहें या प्रकृति की व्यवस्था। जब एक पौध जरा जीर्ण हो जाती है तब वह नष्ट होती ही है और उसके स्थान पर नई पौध अंकुरित होती है। अध्यात्म का पुनरुत्थान इसी रूप में होने वाला है।

दूसरा पक्ष है राजनीति के स्थान पर विज्ञान की स्थापना का। यह परिवर्तन भी सम्प्रदाय और धर्म के बीच पड़े हुए व्यवधान को सुधारने की तरह ही नितान्त आवश्यक हो चला है। राजनीति का उद्देश्य है परिष्कृत समाज व्यवस्था के लिए आधार उत्पन्न करना। व्यक्ति को समाज के लिए और समाज को व्यक्ति के लिए उपयोगी बने रहने की पृष्ठभूमि विनिर्मित करते रहना ही शासनतन्त्र की स्थापना का मूल प्रयोजन है। राजनीति का अर्थ है शासन का समुचित मार्गदर्शन करना और उसके लिए उपयोगी नीतियों, परिस्थितियों, साधनों एवं व्यक्तियों का जुटाना। भूतकाल में राजनीति भी धर्म का एक अंग थी और वैयक्तिक चरित्र निष्ठा एवं सामाजिक सुव्यवस्था में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती थी। लोकमंगल, विश्वशान्ति एवं व्यक्तित्व विकास के लिए उसका योगदान असाधारण रहता है। इसीलिए धर्म तन्त्र के पश्चात् राजतन्त्र को लोक मंगल का दूसरा आधार समझा जाता था। मनीषियों ने धर्म और राजनीति को एक दूसरे का पूरक कहा है और गाड़ी के दो पहियों की तरह पारस्परिक सहयोग से आत्मिक एवं भौतिक प्रगति की उभयपक्षी सुव्यवस्था करने के लिए उनकी उपयोगिता को स्वीकारा, सराहा है।

पर आज तो नक्शा ही बदला मालूम पड़ता है। चन्द साधन सम्पन्न व्यक्ति अपना वर्चस्व बढ़ाने और वैभव कमाने के लिए राजसत्ता पर हाबी होते हैं और लोकहित की आड़ में अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ पूर्ण करते हैं। शासन की नीति वर्गीय अथवा क्षेत्रीय स्वार्थों की रहती है। देश और जाति के लाभ का आकर्षक नारा लगाकर पड़ौसियों के शोषण उत्पीड़न की योजनाएँ बनती हैं। फलस्वरूप विक्षोभ और विद्रोह की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। शीत युद्ध अथवा अग्नियुद्ध के छोटे बड़े विस्फोट आये दिन खड़े होते रहते हैं। बहुत बड़े प्रचार तन्त्र सरकारों के हाथ में हैं इसलिए वे अपने गुणानुवाद गाने और जनता पर अपने क्रिया-कौशल की छाप जमाकर समर्थन प्राप्त करने का ताना-बाना बुनती रहती है। इसमें आंशिक सफलता भी मिलती है पर साथ ही पर्दे के पीछे छिपी विद्रूपता का भी रहस्योद्‌घाटन होता रहता है। राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ किया जा रहा है वह लोकोपयोगी है अथवा शासकीय गुट के लोगों के स्वार्थ साधन के लिए, इसका विश्लेषण अब खुलेआम होता है। शासन के सदुद्देश्य पर आमतौर से आक्षेप किए जाते हैं और उसके बहिरंग एवं अन्तरंग स्वरूप में अन्तर देखा जाता है। ठीक यही बात राजनीति के क्षेत्र में

काम कर रहे लोगों के सम्बन्ध में दिखाई देती है । उनके चरित्र और व्यक्तित्व को कदाचित ही असन्दिग्ध माना जाता है । चापलूसों द्वारा मुँह सामने स्वार्थ साधन के लिए उन्हें प्रशंसा-प्रतिष्ठा भी भरपूर मिलती है पर साथ ही उनके बारे में सन्देह और अविश्वास भी कम नहीं होता । यही कारण है कि राजनीतिक के मन्च पर आज पूरी तरह चमकने वाले लोग कल जब सत्ताच्युत होते हैं तो पाते हैं कि वे अपना व्यक्तित्व खो चुके हैं । लोकश्रद्धा उनसे कोसों दूर चली गई है ।

यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का अकारण ही नहीं है । संसार भर में सम्प्रदायों ने अपनी उपयोगिता की अपेक्षा अनुपयोगिता ही अधिक सिद्ध की है । ठीक इसी प्रकार राजनीति का, सत्ता शासन का, जो ढाँचा खड़ा है उससे सर्वसाधारण का नहीं, सत्ताधारी गुटों का ही हित साधन हुआ देखा जाता है । प्रजातन्त्रवादी देशों के बारे में कहा जाता है कि वहाँ जनता पर जनता के द्वारा शासन किया जाता है पर वास्तविकता प्रायः इसके विपरीत ही होती है । जनता में शासन कर सकने योग्य विवेक बुद्धि और दूरदर्शिता उत्पन्न करना प्रजातन्त्री शासन का पहला कर्त्तव्य होना चाहिए ताकि वे मतदान का सही उपयोग कर सकें । इस दिशा में कुछ किया नहीं जाता वरन् तरह-तरह के प्रचारात्मक एवं प्रलोभनात्मक हथकण्डे खड़े करके 'कुशल' लोगों द्वारा जनमत का प्रवाह अपनी ओर मोड़ लिया जाता है । जब तक यही परिस्थिति रहें तब तक 'जन राज्य' कहा भले ही जाता रहे पर वास्तविकता वैसी होती नहीं । संगठन के, साधनों के, प्रचार के बलबूते सत्ता को अमुक वर्ग हथिया लेता है और फिर अपने समर्थकों का परिपोषण करने के लिए दुरंगी-बहुरंगी चालें चलता रहता है । देश-देश के बीच, वर्ग-वर्ग के बीच खाई का निरन्तर चौड़ी होते जाना—निर्माण की अपेक्षा ध्वंस के साधन जुटाने में अधिक उत्साह का होना, यह बताता है कि 'राज सत्ता' अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकने में असमर्थ, असफल होती चली जा रही है । राजनीति को वीरांगना का, वेश्या का, जो दर्जा दिया गया था अब उससे भी गर्हित पदवी उसे देने की आवश्यकता पड़ रही है ।

फिर शासन का विकल्प क्या हो ? राजनीति का स्थान कौन ग्रहण करे ? इस प्रश्न के उत्तर में सन्त विनोबा का उत्तर है—'विज्ञान' । राजनीति को भी सम्प्रदायों की तरह ही परिष्कृत किया जाना चाहिए और उसके स्थान पर विज्ञान प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए ।

यहाँ भी इस भ्रम की गुंजाइश है कि फिजिक्स, केमिस्ट्री, प्रभृति साइन्स की यान्त्रिक क्रिया-प्रक्रियाओं को ही साइन्स माना जाता है । यह भौतिक पक्ष भी साइन्स का एक अत्यन्त छोटा अंग है और इसका उपयोग भी जनहित के दूरगामी परिणामों को देखकर ही किया जाना चाहिए । आज वैज्ञानिक विकास का उपयोग जिस प्रकार मनुष्य को अपंग, अनैतिक और विलासी बनाने में हो रहा है वह नहीं होना चाहिए । सिनेमा की, अणु आयुधों की प्रगति ने संसार को संकट में फँसाया ही है उबारा नहीं । ऐसी अनेक धाराएँ जिनमें प्रयुक्त हो रही हैं । वैज्ञानिक उपलब्धियों को नियन्त्रित किया जाना चाहिए और उनकी दिशा बदली जानी चाहिए ।

किन्तु सन्त बिनोबा की भविष्यवाणी का तात्पर्य इस यान्त्रिक उपलब्धियों के सदुपयोग तक सीमित नहीं है । वे विज्ञान का अर्थ 'विवेक' के अर्थ में करते हैं । तथ्यों को प्रधानता दी जाय । औचित्य को आश्रय मिले । न्याय की प्रतिष्ठापना हो । सत्य का अवलम्बन ग्रहण किया जाय । यही है वह विज्ञान जिसे 'विशेष ज्ञान' के रूप में, ब्रह्म विद्या के रूप में तत्वदर्शियों ने समझा और समझाया है ।

विज्ञान से सन्त विनोबा का जो प्रयोजन है उसे हम आधुनिक मनीषियों की कुछ व्याख्याओं के आधार पर और भी अधिक स्पष्टता के साथ समझ सकते हैं ।

'कॉमन सेन्स ऑफ लाइफ' ग्रन्थ के लेखक जेकोव ब्रोनोवस्की ने विज्ञान को चिन्तन का एक समग्र दर्शन माना है और कहा है—"जो चीज काम दे उसकी स्वीकृति और जो काम न दे उसकी अस्वीकृति ही विज्ञान है ।" इस सन्दर्भ में वे अपनी बात को और भी अधिक स्पष्ट करते हैं—विज्ञान की यही प्रेरणा है कि हमारे विचार वास्तविक हों, उनमें नई-नई परिस्थितियों के अनुकूल बनने की क्षमता हो, निष्पक्ष हो, तो वह विचार भले ही जीवन के, संसार के किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो 'विज्ञान' माना जायेगा । ऐसी विचारधारा वैज्ञानिक ही कहीं जायेगी ।"

वैज्ञानिक और राजनीतिक की तुलना करते हुए, 'प्रिसिशन ऑफ साइन्स एण्ड कन्फ्यूशन ऑफ पॉलिटिक्स' पुस्तक के लेखक जेम्स रस्टन कहते हैं । वैज्ञानिक अपने साधनों की सामर्थ्य जानता है, उन पर नियन्त्रण रखता है । वह अपने साध्य का, साधनों का निर्धारण तथ्यों के आधार पर करता है । इसके बाद निर्धारित प्रक्रिया का संचालन कुशल प्रशिक्षित लोगों के हाथ सौंपता है । राजनीतिज्ञ की गतिविधियाँ इससे उल्टी होती हैं, उसे न तो शक्ति की थाह लेना है और न साधनों की । उसके निर्णय न तो तथ्यों पर आधारित होते हैं और न दूरदर्शिता पर । प्रायः दम्भ, अहंकार, द्वेष, सीमित स्वार्थ और सनक ही राजनीति पर छाये रहते हैं । इसलिए वह जुआरी की तरह अन्धे दाव लगाता है और अन्धे परिणाम ही सामने उपस्थित पाता है । राज्य सत्ता सदा क्रिया कुशल और दूरदर्शी लोगों के ही हाथ में नहीं होती वरन् ऐसे लोगों के हाथ में भी होती है जो उसके सर्वथा अयोग्य होते हैं । आवेश में वह, काम तो बड़े-बड़े शुरू कर देते हैं पर कठिनाइयों और परिस्थितियों पर नियन्त्रण न रख सकने के अभाव में उन्हें अधिकतर असफल ही रहना पड़ता है । वैज्ञानिक अपनी भूलों के खतरे को हर घड़ी समझता, देखता रहता है जबकि राजनीतिज्ञ के कदम मद्यपायी की तरह अनिश्चित दिशा में उठते हैं और अनियन्त्रित रहते हैं ।

एच. जी. वेल्स प्रभृति अनेक विश्वविख्यात विचारक इसी तरह सोचते रहे हैं कि अन्धी राजनीति के हाथ में जो मानव जाति के भविष्य निर्माण का सूत्र चला गया है वह वापिस लिया जाना चाहिए और शासन का आधार विज्ञान होना चाहिए । विज्ञान अर्थात् सुनिश्चित साधनों का सर्वोत्तम व्यक्तियों द्वारा श्रेष्ठकर आदर्शों के लिए उपयोग ।

संसार में दो ही शक्तियाँ मानव जाति के भाग्य का निर्माण निर्धारण करती हैं—एक धर्म, दूसरा शासन । धर्म का नियन्त्रण भावनात्मक क्षेत्र पर है उसके आधार पर चिन्तन परिष्कृत होता है इसलिए इस क्षेत्र में भरी हुई विकृतियों को असह्य माना जाना चाहिए और उनका अविलम्ब परिष्कार किया जाना चाहिए । राज सत्ता का नियन्त्रण भौतिक वस्तुओं और परिस्थितियों पर होता है उनके उचित उत्पादन, उपयोग, वितरण एवं मानवी मर्यादाओं के पालन का उत्तरदायित्व शासन पर होता है । वह भ्रष्ट होगा तो संसार में विभीषिकाएँ और विकृतियाँ बढ़ेंगी फलस्वरूप शोक सन्ताप के दुर्भाग्यपूर्ण संकट आये दिन बरसते रहेंगे ।

सम्प्रदाय धर्म को एवं अध्यात्म से परिष्कृत किया जाना चाहिए । राजनीति का सूत्र संचालन सनक एवं अहंता के हाथों में नहीं, तथ्य और सत्य की संगति मिलाकर लोक मंगल की व्यवस्था कर सकने वाली दूरदर्शिता के हाथों सौंपा जाना चाहिए । यही है सन्त विनोबा का अभिमत-भविष्य कथन । बदलती परिस्थितियों में लोकमंगल के लिए यह परिवर्तन अभीष्ट भी है और अवश्यम्भावी भी ।

अपूर्णता से पूर्णता की ओर

मानवी जीवन में गतिशीलता और दिशा का बड़ा महत्त्व है । यदि मनुष्य समय की रफ्तार के साथ-साथ नहीं चले तो वह विकास की दौड़ में पीछे रह जायेगा और पिछड़ा कहलायेगा । इसी प्रकार यदि जीवन की कोई दिशा नहीं हुई, तो वह प्रगति अन्धी दौड़ के समान होगी और प्राण संकट खड़े करेगी । अतः विकास के साथ-साथ प्राण-रक्षा भी होती रहे, इसके लिए जीवन में गति और दिशा दोनों का होना नितान्त आवश्यक है ।

मनुष्य को गति विज्ञान से मिलती है, जबकि धर्म उसे दिशा प्रदान करता है । विज्ञान की स्थिति अब अत्यन्त उन्नत हो चली है । पिछले समय की अपेक्षा आज हमें जो साधन-सुविधाएँ प्राप्त हैं, उसमें मुख्य भूमिका विज्ञान के उत्कर्ष की ही रही है । पिछले सौ वर्षों में विज्ञान का जितना विकास हुआ है, उसने हमें भौतिक सम्पन्नता की दृष्टि से कई दशक आगे पहुँचा दिया है । नित नई खोजों और शोधों ने हमें जितना कुछ दिया है, उससे सारी दुनिया एक कमरे तक में सिमट गई है । घर बैठे हम देश-विदेश के समाचार क्षण मात्र में जान लेते हैं । पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर की दूरी भी सिकुड़ कर न्यून हो गई है । कुछ ही घण्टों में हम एक-देश से दूसरे देश की यात्रा कर लेते हैं । इतना ही नहीं, ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति परिस्थिति भी अब हम से अज्ञात नहीं रही । निरन्तर परीक्षण-पर्यवेक्षण के आधार पर उनके सारे रहस्यों का पता लगाकर विज्ञान ने खगोल जगत में भी अपना वर्चस्व स्थापित किया है और अब उनमें बस्ती बसाने की बात सोच रहा है । इससे आगे एक कदम तब और बढ़ गया, जब उसने मानव का विकल्प यन्त्र मानव निर्माण किया एवं उसमें बुद्धि का समावेश किया । निश्चय ही इन्हें विज्ञान के वरदान कहा जा सकता है और उसका यह प्रयास सराहनीय व लाभकारी भी है । पर पिछले दिनों उसने मनुष्य और समाज का जो अहित किया, वह भी नहीं भुलाया जा सकता है । अस्त्र-शस्त्रों की होड़ से जो संकट उत्पन्न हुआ है, उसने सम्पूर्ण संसार को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया और मनुष्य जाति के अस्तित्व के आगे प्रश्न चिन्ह लगा दिया है ।

दूसरी ओर धर्म और अध्यात्म की अवगति होती चली गई । कभी ऋषि काल में इनकी तूती बोलती थी, मगर अब यह प्राणहीन कलेवर जैसी स्थिति में रह गए हैं, तब धर्म को जीवन का प्रमुख अंग माना जाता था और सारी रीति-नीति इसी के आधार पर निर्धारित की जाती थी । चाहे युद्ध क्षेत्र हो या कर्मक्षेत्र, मनुष्य हो या अन्य प्राणी, स्वजन अथवा दुर्जन, सर्वत्र धर्म भावना का परिचय देकर अपने उच्च मानदण्डों को प्रतिष्ठित रखने में गौरव अनुभव किया जाता था । स्वार्थ की तुलना में परमार्थ को अधिक महत्त्व मिलता और अधिसंख्यक ऐसे कार्यों से निरत रहते, जिससे समाज और समुदाय का अधिक कल्याण हो । अपने और पराये जैसी भेद-भाव की दृष्टि नहीं थी । सबों को समान भाव से देखा जाता और अपने वृहद कुटुम्ब को सदस्य माना जाता, पर आज स्थिति उससे सर्वथा भिन्न है । न तो अब लोगों में वह धर्म भावना रही और न जीवन के वह नीति-नियम । समाज-सेवा के प्रति न तो पहले जैसा उत्साह रहा न अभिरुचि । आज का सर्वोपरि धर्म व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि माना जाने लगा है ।

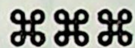
वैसे तो विज्ञान का मोटा अर्थ मशीन अथवा कल-कारखाने से लगाया जाता है, पर इसका तात्विक अर्थ कुछ और है, विज्ञान कहते हैं—प्रगतिशीलता को, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को । हम जो सोचें, जो भी करें, उसमें वैज्ञानिकता का समावेश हो, वह तर्क, तथ्य, प्रमाणयुक्त हो इसी में हमारे चिन्तन, कथन और कर्त्तव्य की प्रामाणिकता है । आज इसकी उपयोगिता, उपादेयता इसलिए भी महसूस की जा रही है, क्योंकि वर्तमान समाज कुप्रथाओं और कुप्रचलनों से ग्रस्त होकर जर्जरित हो चला है, जिससे उसकी उन्नति-प्रगति में एक प्रकार का ठहराव आ गया है । उसे इस रुग्णावस्था से मुक्तकर स्वस्थ-समुन्नत बनाना, इसकी जिम्मेदारी विज्ञान की है । विज्ञान ही इस कार्य को भली-भाँति सम्पन्न कर सकता है ।

धर्म-नीति, नियम और आदर्शों के परिपालन को कहते हैं । दूसरे शब्दों में, इसे कर्त्तव्यपरायणता भी कहा गया है । हम परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझें और निष्ठापूर्वक उसका निर्वाह करें-धर्म की यही शिक्षा है । वह हमें सदाचरण सिखाता और दुराचरण पर अंकुश लगाता है । चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता, आदर्शवादिता और शालीनता धर्म की देन है । इसी के कारण मनुष्य मर्यादाओं में बँधा रहता और मानव होने का गौरव प्राप्त करता है । वह जब भी नीति-निष्ठा की मर्यादाओं का परित्याग कर वर्जनाएँ अपनाता है, मनुष्य कहलाने का श्रेय सम्मान गवाँ बैठता है । इसी से व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन और सामाजिक जीवन में लोक श्रद्धा का सुयोग मिल पाता है । यह धर्म ही है, जो विज्ञान के कुतर्कों को अपनी आदर्शनिष्ठा की कसौटी पर कस कर उसे निरस्त करता और अभिनव मार्गदर्शन देता है ।

इस दृष्टि से भी धर्म और विज्ञान के समन्वय को आज अति महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है । इनकी जोड़ी वही भूमिका सम्पन्न करती है जो बैल और गाड़ी का युग्म । बैल दिशा प्रदान करते हैं और गति पहियों की होती है । दोनों को यदि एक दूसरे से पृथक कर दिया जाय, तो मूल प्रयोजन ही पूरा न हो सकेगा और वे स्वयं भी अधूरे बने रहेंगे । तब न तो गाड़ी अपनी जिम्मेदारी निभा सकेगी, न बैल अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकेंगे । गाड़ी की जिम्मेदारी है—सामान ढोना, उसे गति प्रदान करना एवं बैल का कर्त्तव्य है—उस दायित्व को पूरा करना, गाड़ी की मदद करना तथा उसे दिशा निर्देश देना । यह प्रयोजन दोनों के साथ रहने से ही सध सकता है ।

ऐसा ही युग्म धर्म और विज्ञान भी बनाते हैं उनकी पृथक कल्पना नहीं की जा सकती । वस्तुतः वे एक दूसरे के पूरक हैं । एक के बिना दूसरे की गति प्रगति सम्भव नहीं है । दिशा के बिना गति शक्य नहीं है और गति के बिना दिशा की सार्थकता नहीं है । दोनों के मिलने से ही समग्रता आती है । इसीलिए जीवन में दोनों की आवश्यकता पर बल देते हुए विश्व विख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने कहा था कि—धर्म के बिना विज्ञान अन्धा है और विज्ञान के बिना धर्म लंगड़ा । परस्पर उनके मिलन से ही अन्धे-पंगे की जोड़ी बनकर संकट से उबरने जैसा सुयोग बन सकता है ।

अस्तु दोनों के बीच पारस्परिक सन्तुलन और जीवन में उनके धारण से ही हमारी प्रगति सम्भव है । पृथक-पृथक दोनों में वह सामर्थ्य नहीं कि हमें उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर सकें । विज्ञान का मार्ग विनाशकारी हो चला है और धर्म में रूढ़ियों और अवांछनीयताओं के घुस पड़ने से वह विकृत हो गया है । विज्ञान हमें विनाश का रास्ता दिखाता है और धर्म अध्यात्म का, वर्तमान स्वरूप प्रतिगामी बनने के लिए बाधित करता है । इस स्थिति से हम तभी उबर सकते हैं, जब दोनों को साथ लेकर चलें । एक पर दूसरे का नियन्त्रण रहने से ही उन्नति-प्रगति ठीक हो पाती है । विज्ञान हमें गति दे तो धर्म दिशा दिखाये । विज्ञान की निरंकुशता पर अध्यात्म का अंकुश लगे और तथाकथित धर्म अध्यात्म की मूढ़ताजन्य अपंगता को विज्ञान की वैशाखी प्राप्त हो । इस प्रकार जीवन में दोनों के अवधारण से ही उनकी स्वयं की सार्थकता और मनुष्य की सफलता सम्भव हो पाती है । अतः मानवी व्यक्तित्व में दोनों के समन्वय को स्थान मिलना ही चाहिए ।



अध्यात्म विज्ञान की ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया

अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की शोध प्रक्रिया

पदार्थ जगत की क्षमताओं का स्वरूप और उपयोग समझने की विद्या को विज्ञान कहते हैं और चेतना को प्रगति एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाली विद्या को अध्यात्म कहते हैं । मानवी सत्ता को दोनों क्षेत्रों के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है । प्राण चेतना का सुसन्तुलन अध्यात्म तथ्यों पर अवलम्बित है । काया पदार्थ विनिर्मित होने से उसका काम वस्तुओं के सहारे चलता है । जीवन को सुखी—समुन्नत रखने में दोनों की समान रूप से आवश्यकता पड़ती है । अस्तु अध्यात्म और विज्ञान का परस्पर सहयोग समन्वय रहने पर व्यक्ति तथा समाज की सुविधा तथा प्रसन्नता को बनाये रखना तथा बढ़ाते चलना सम्भव हो सकता है ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इन दिनों उपरोक्त दोनों महाशक्तियों का परस्पर सहयोग समन्वय चल नहीं रहा है । एक ने दूसरे पर आक्षेप करने और हेय ठहराने की प्रतिस्पर्धा खड़ी की है । विज्ञान ने ईश्वर, आत्मा और कर्मफल के तत्व दर्शन को अमान्य ठहराया है । प्रत्यक्षवाद ने मत्स्य न्याय का पक्ष लिया है और जिसकी लाठी उसकी भैंस का उपयोगितावाद सही ठहराया है । फलतः मनुष्य नास्तिक ही नहीं अनैतिक भी बनता गया है । इन भौतिकवादी प्रतिपादनों ने मानवी चिन्तन को दिग्भ्रान्त करने में बहुत सफलता पायी है । स्वार्थपरता, उच्छृंखलता और आक्रामकता को बल मिला है । व्यक्तिगत चरित्र और समाजगत सद्भावना को इस कारण भारी ठेस लगी है । आर्थिक और बौद्धिक प्रगति में विज्ञान ने बहुत सहायता दी है किन्तु, उसके द्वारा चेतना क्षेत्र में जो विकृति उत्पन्न हुई है उसकी हानि भी कम नहीं है । पतन-पराभव का घटाटोप अनेकानेक विभीषिकाएँ उत्पन्न कर रहा है । लगता है महाविनाश के दिन तेजी से निकट आते जा रहे हैं ।

अध्यात्म ने विज्ञान के आक्षेपों का प्रामाणिक स्तर पर उत्तर नहीं दिया । खीझकर उसे गाली—गलौज देना आरम्भ कर दिया और अपनी स्वप्निल दुनिया अलग बसा ली । इससे बुद्धिजीवी वर्ग पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा और उसे पराजित की खीझ, मूढ़ मान्यता का समर्थन तथा निहित स्वार्थों का कुचक्र ठहरा कर भर्त्सना का भाजन बनाया । इस प्रकार अध्यात्म की व्यक्ति को उत्कृष्ट और समाज को समृद्ध बनाने की भौतिक क्षमता को भारी आघात लगा । अध्यात्म और विज्ञान के विग्रह असहयोग से समूची मानवता को भारी क्षति पहुँची है । व्यक्ति का पतन हुआ और समाज का सन्तुलन बिगड़ा । दर्शन क्षेत्र की इस विसंगति का जनजीवन पर, लोक व्यवस्था पर, जो घातक प्रभाव पड़ा है उसे सूक्ष्मदर्शी जानते हैं । उनकी चिन्ता और बेचैनी स्वाभाविक है ।

समय की माँग है कि विज्ञान और अध्यात्म का, पदार्थ और चेतना का, ऐसा तालमेल बैठे जिसके सहारे व्यक्ति की गरिमा और समाज की व्यवस्था को उच्चस्तरीय बनाया जाना सम्भव हो सके । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए ब्रह्मवर्चस शोध-संस्थान ने दोनों महाशक्तियों को एक-दूसरे के पूरक बनकर रहने और मिल—जुलकर सर्वतोमुखी प्रगति के लिए नये सिरे से काम करने हेतु सहमत करने का प्रयत्न आरम्भ किया है । इसे पौराणिक काल के समुद्र-मंथन से उपमा दी जा सकती है । जिसमें विज्ञान के दैत्य और अध्यात्म के दैव ने सहयोग पूर्वक पुरुषार्थ किया था और चौदह बहुमूल्य रत्न निकाले थे । समय उस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति चाहता है । ब्रह्मवर्चस ने उसे आरम्भ भी कर दिया है ।

काम कठिन है, सरल नहीं । इसके लिए आधुनिक अन्वेषणों के प्रकाश में उन सभी मान्यताओं की पुष्टि की जाती है जिन्हें अभी तक ऋषिवाक्य कहकर श्रद्धा के साथ स्वीकारा जाता रहा है । उसके लिए ब्रह्मवर्चस ने चिरपुरातन आर्ष ग्रन्थों, दर्शन के प्रतिपादनों एवं आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं से भरे-पूरे एक वृहद ग्रंथागार की कल्पना की एवं उसे साकार रूप दिया है । विज्ञान व अध्यात्म क्षेत्र की विश्वभर की सभी मान्यता प्राप्त पत्रिकाएँ तथा चुने हुए शोध ग्रन्थ यहाँ संग्रहीत हैं । मनीषीगण निरन्तर उस साहित्य का मनन-चिन्तन कर विज्ञान को अध्यात्म परक एवं अध्यात्म को विज्ञान सम्मत सिद्ध करने का प्रयास करते हैं ।

अध्यात्म तत्वदर्शन, भावनात्मक प्रतिपादन, व्यवहार—गत आदर्शवादी अनुशासन कपोलकल्पित नहीं वरन् उसके पीछे तर्क, तथ्य, प्रमाण उदाहरण ही नहीं भौतिक विज्ञान का भरपूर समावेश भी विद्यमान है, यह सिद्ध किए बिना वर्तमान बुद्धिवाद की खोई हुई आस्थाओं को लौटाना इन दिनों सम्भव नहीं रहा । शास्त्र कथन और आप्तवचन अब उतने मान्य नहीं रहे जितने कभी थे । ऐसी दशा में यदि असमंजस ग्रस्त होकर बैठा रहा जाय तो इसकी परिणति भयावह होगी । अध्यात्म दर्शन पर से आस्था चली जाने के उपरान्त किसी को नीति, धर्म, कर्त्तव्य, सदाचार, परमार्थ के लिए व्रतशील नहीं रखा जा सकता । वह मर्यादा गई तो मनुष्य की चतुरता और समर्थता ऐसे विग्रह खड़े करेगी जो इस धरती पर अराजकता, उच्छृंखलता, कुटिलता, दुष्टता के अतिरिक्त और कुछ ऐसा शेष नहीं रहने देगी जिसका उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, उदारता, संयमशीलता आदि नामों से परिचय दिया जा सके ।

तथ्यों के विग्रहों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि उत्कृष्टता के ऋषि प्रणीत प्रतिपादनों को तर्क, तथ्य, प्रमाण और विज्ञान की कसौटी पर खरा सिद्ध करके नैतिक अराजकता की आग में झुलसने से समय रहते मानवी गरिमा को बचा लिया जाय । ब्रह्मवर्चस के प्रयोग, परीक्षण, अन्वेषण, अनुसन्धान इस दिशा में असाधारण प्रयत्न कर रहे हैं । उसकी आधुनिक उपकरणों से सुसम्पन्न प्रयोगशाला है, साथ ही अन्वेषण

के लिए बहुमूल्य ग्रन्थों का पुस्तक भण्डार । स्नातकोत्तर स्तर के दर्जनों शोधकर्त्ता निर्धारित लक्ष्य में इस विश्वास के साथ संलग्न हैं कि मानवी गरिमा की पक्षधर उत्कृष्टता को हर कसौटी पर खरी सिद्ध कर सकना अगले ही दिनों सम्भव हो जायेगा । इसके लिए अति महत्त्वपूर्ण सूत्र और आधार हस्तगत भी हो रहे हैं जिन्हें देखते हुए लक्ष्य तक पहुँचने के विश्वास में कोई व्यवधान शेष न रहने की आशा प्रबलतम होती जा रही है ।

मानव शरीर और मस्तिष्क ऐसे प्रकृति विनिर्मित यन्त्र हैं जिनमें मनुष्यकृत समस्त उपकरणों की क्षमता विद्यमान है । सूक्ष्म शरीर की इतनी रहस्यमय पर्तें हैं जिनके साथ तारतम्य बिठाते हुए प्रकृति के समस्त रहस्यों को समझने तथा शक्तियों को उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध करने का सुयोग बैठ सके । यह पर्यवेक्षण जिन साधनाओं के आधार पर किया जा सकता है, उनका सही रूप में प्रयोग, पर्यवेक्षण करने का प्रयास ब्रह्मवर्चस की शोध प्रक्रिया के अन्तर्गत चल रहा है । षटचक्र, पंचकोश, ग्रन्थिसमुच्चय, उपत्यिकाएँ, दिव्य नाड़ियों, प्राण प्रवाह, सहस्रार, मूलाधार, सुषुम्ना, कुण्डलिनी केन्द्र आदि कितने अदृश्य भाण्डागार ऐसे हैं जिनका आभास, अनुभव एवं अभ्यास होने पर साधारण मनुष्य असाधारण विभूतियों एवं चमत्कारी अतीन्द्रिय क्षमताओं का धनी बन सकता है । इस सन्दर्भ में ब्रह्मवर्चस के प्रयोग, परीक्षण उत्साहवर्धक स्तर तक आगे बढ़ चले हैं ।

शान्तिकुंज में चल रहे कल्प साधना सत्रों में कितने ही साधक आते हैं । उन्हें उनकी स्थिति एवं आवश्यकताओं के अनुरूप साधना कराई जाती है और देखा जाता है कि उस क्रिया का क्या परिणाम निकला । अब तक के प्रयोग में जिन साधकों को सम्मिलित किया गया उनके द्वारा देखे गए परिणामों के आधार पर यह विश्वास जमा है कि शारीरिक स्वस्थता, बौद्धिक प्रखरता, भाव-सम्वेदना, ओजस्, तेजस्, वर्चस् की अभिवृद्धि में यह प्रयोग अगले दिनों और भी अधिक सहायक सिद्ध होंगे । विभिन्न प्रकार की दुर्बलताएँ, रुग्णताएँ, कुत्साएँ, कुण्ठाएँ निवृत्त करने तथा बलिष्ठताएँ, विशेषताएँ, प्रतिभाएँ विकसित करने में साधनात्मक प्रयोगों का उत्साहवर्धक प्रतिफल उपलब्ध होता है ।

देव संस्कृति के दो प्रमुख आधार हैं—एक गायत्री, दूसरा यज्ञ । गायत्री महाविद्या और शब्द विज्ञान, मन्त्र विज्ञान परस्पर गुंथी विधाएँ हैं । मन्त्र विद्या में शब्द शक्ति के आधार पर अद्‌भुत प्राण ऊर्जा का प्रयोग होता है । परमब्रह्म को शब्द ब्रह्म एवं नाद ब्रह्म भी कहा गया है । गायत्री का शब्द गुंथन एवं उपासना विधान इसी पर आधारित है । मन्त्र विद्या से व्यक्ति विशेष की क्षमता का उभार दूसरों पर उसका उपयोगी प्रयोग एवं वातावरण पर उसका प्रभाव किस तरह होता है । गायत्री के सम्बन्ध में प्रचलित मान्यताएँ परीक्षण की कसौटी पर कितनी खरी-खोटी सिद्ध होती हैं इसकी खोजबीन गम्भीरतापूर्वक की जा रही है और पाया जा रहा है कि इन २४ अक्षरों के गुंथन में से सूक्ष्म शरीर की रहस्यमय पर्तों को उभारने की विशिष्ट क्षमता विद्यमान है । अगले दिनों इस सन्दर्भ में अधिक मूल्यवान तथ्य हाथ लगने की सम्भावना है ।

अग्निहोत्र के लाभ शास्त्रकारों ने शारीरिक रोगों के निवारण, मानसिक विकृतियों के निराकरण के रूप में बताये हैं । शास्त्रीय प्रतिपादनों के आधार पर यह खोजा जा रहा है—क्या अग्निहोत्र का उपयोग आधि– व्याधियों का निवारण कर सकने वाली चिकित्सा पद्धति के रूप में हो सकता है ? आशा बँध चली है कि अग्निहोत्र चिकित्सा जब अपने समग्र रूप में प्रस्तुत होगी तो उसका महत्त्व वर्तमान किसी भी चिकित्सा पद्धति से कम न रहेगा । वह बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाये, जीवनी शक्ति और प्रखरता का अभिवर्धन करते हुए शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सुधारने की उपयोगी भूमिका निभा सकेगी ।

इस प्रयोजन के लिए एक ऐसा जड़ी-बूटी उद्यान शान्तिकुंज में लगाया गया है जिसमें यज्ञोपैथी में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ अपने यहाँ ही उगाई जा सकें । इनके गुणधर्म नये सिरे से जानने के लिए एक समर्थ वनौषधि विश्लेषण एवं अनुसन्धान कक्ष बनाया गया है । चिकित्सा की दृष्टि से जड़ी-बूटी का एकौषधि प्रयोग किस रोग में, किस प्रकार कारगर हो सकता है, इसकी अतिरिक्त खोजबीन भी साथ-साथ चल रही है ।

यज्ञ के अन्यान्य लाभ भी हैं । अन्तरिक्ष से धरती तक प्राण पर्जन्य की वर्षा होने पर प्राणियों तथा वनस्पतियों की परिपुष्टता बढ़ सकना एक विशेष प्रयोग है । बढ़ते हुए वायु प्रदूषण एवं खाद्य प्रदूषण का निराकरण भी यज्ञ उपचार से सम्भव है । इसके अतिरिक्त यज्ञ ऊर्जा व्यक्तित्व निखारने में, कषाय-कल्मषों को दूर करके पवित्रता-प्रखरता बढ़ाने में भी काम आती है । इसकी दार्शनिक शोधक्रिया भी इन दिनों साथ-साथ चलती रहती है ।

अन्तर्ग्रही तरंगें पृथ्वी के वातावरण, प्राण परिकर एवं वनस्पति जगत को विशेषतया मनुष्य को किस प्रकार, किस हद तक प्रभावित करती हैं, इसकी असमंजस भरी मान्यताएँ ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर प्रचलित हैं । उस विधान का वर्तमान गणित क्रम भी संदिग्ध स्थिति में है । प्रभाव परिणामों के सम्बन्ध में भी अटकलें ही काम देती हैं । यह दुर्भाग्य की बात है कि इतना महत्त्वपूर्ण मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करने वाला विज्ञान इस बुद्धि युग में भी ऐसी अस्त- व्यस्त स्थिति में पड़ा हुआ है । ब्रह्मवर्चस के अन्तर्गत पुरातन स्तर की सारे आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित वेधशाला खड़ी की गई है । उसके सहारे प्रधानतया सौरमण्डल के ग्रह-उपग्रहों की यथार्थ स्थिति को जाना जाता है, ताकि उस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सके कि इस स्थिति का भूलोक के किस समुदाय पर कब, क्यों, क्या प्रभाव पड़ेगा ? इस प्रकार के पूर्वाभास मनुष्य की कितनी ही कठिनाइयों के निराकरण एवं सुविधा संवर्धन में काम आ सकते हैं । इस शोध शाखा के अन्तर्गत इसी वर्ष से एक अभिनव पंचांग भी छापा जा रहा है जिसमें पुरातन नवग्रहों के अतिरिक्त नये खोजे गए नेपच्यून, प्लूटो, यूरेनस ग्रहों का भी अतिरिक्त ग्रह गणित सम्मलित रहेगा । ज्योतिष भी अनेक प्रयोजनों में अध्यात्म विज्ञान के समन्वय की ही आवश्यकता पूर्ण करता है इसलिए वर्तमान प्रयोग परीक्षण में उसे भी सम्मिलित रखा गया है । सचेतन अन्तर्ग्रही प्रभावों के सूक्ष्म परिणामों की उच्चस्तरीय जानकारी उपलब्ध करने के लिए आज यन्त्रों के साथ नयी मान्यताओं एवं उपकरणों का समन्वित परीक्षण अनिवार्य है । यही विचार कर प्रस्तुत अनुसन्धान में ज्योतिर्विज्ञान की शोध को भी स्थान दिया गया है ।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के अन्यान्य अविज्ञात एवं अनिर्णीत रहस्यों का पता लगाने में शोध की एक सुविस्तृत विषय सूची है ।

मनुष्य के अन्दर पायी जा सकने वाली अतीन्द्रिय क्षमताओं का आधार, स्वरूप एवं अभिवर्धन उपचार भी इस खोज का एक अंग माना गया है ।

इस ब्रह्माण्ड में अदृश्य प्राणियों का भी एक समुदाय विद्यमान है । इन्हें प्रेतात्मा, देवात्मा आदि के नाम से जाना जाता है । इनका अस्तित्व यदि है तो कैसा है ? और उनका मनुष्य के साथ आदान-प्रदान चल पड़ने पर किस पक्ष का क्या हित-अहित हो सकता है ? यह विषय भी शोध प्रयोजन में सम्मिलित रखा गया है । तथ्यों का पता लगाने में वैज्ञानिक परीक्षण के साथ तर्क, तथ्य और प्रमाणों को भी सम्मिलित रखकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

अध्यात्म क्षेत्र में पुरातन इतिहास ग्रन्थों के सन्दर्भ तथा प्रामाणिक व्यक्तियों के कथन, अनुभव एवं प्रमाण साक्षियों का अवलम्बन लिया गया है जबकि विज्ञान की प्रायः पच्चीस प्रमुख शाखाओं को आधार मानकर उन कसौटियों पर प्रतिपादनों को परखने का प्रयत्न चल रहा है । इसके अतिरिक्त और भी विषयों का ध्यान है जिन्हें समयानुसार शोध प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाता रहेगा ।

कहा जा चुका है कि अध्यात्म और विज्ञान दोनों ही इस विश्व की महान् शक्तियाँ हैं । दोनों के समर्थन सहयोग से सत्य के अधिक समीप तक पहुँचने का अवसर मिलेगा । साथ ही दोनों के समर्थन से जो प्रतिपादन प्रस्तुत होगा वह जन-मानस में स्थान भी सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकेगा । आशा की जानी चाहिए कि यह छोटा सा प्रयोग प्रयत्न अगले दिनों व्यक्ति- कल्याण एवं विश्व-कल्याण की महती भूमिका सम्पादित कर सकने में समर्थ होगा ।

ब्रह्मवर्चस का विनम्र प्रयास

भगवान ने मनुष्य को अपनी ही अनुकृति बनाया है । चेतना की दृष्टि से उसके अन्तराल में उन सभी विभूतियों के शक्तिबीज विद्यमान हैं जिनसे सृष्टा स्वयं सम्पन्न है । इस प्रकार ब्रह्माण्ड में जो प्राकृतिक शक्तियाँ संव्याप्त हैं उन सबका भी सार-संक्षेप मानवी काया में भर दिया गया है । ब्रह्माण्ड का छोटा रूप ही पिण्ड है । सौर-मण्डल की गतिविधियाँ परमाणु में पूरी तरह विद्यमान देखी जा सकती हैं । परमात्मा के दिव्य वैभव का हस्तान्तरण आत्मा में किया गया है । इन्हीं कारणों से मनुष्य को ईश्वर का युवराज कहा गया है । वेदान्त दर्शन में आत्मा और परमात्मा की एकता का भली प्रकार प्रतिपादन हुआ है ।

आश्चर्य इस बात का है कि इसकी एकता होते हुए भी इतनी भिन्नता क्यों है । विभूतिवान भगवान का सर्वोपरि स्वजन इतना दीन दरिद्र क्यों है ? इसका कारण तत्वदर्शियों ने यह बताया है कि अनुदान बीज रूप में मिले हैं और वे सभी अन्तराल की मर्म स्थल तिजोरी में बन्द करके रखे गए हैं । उन्हें उपलब्ध करने के लिए जिस चाबी की आवश्यकता है वह पराक्रम द्वारा प्राप्त की जाती है । आध्यात्मिक पराक्रम को साधना कहते हैं । पात्रता और प्रामाणिकता इसी के आधार पर उपलब्ध होती है, । यही है वह प्रतियोगिता जिसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर मनुष्य का वर्चस्व निखरता है । 'साधना से सिद्धि' का सिद्धान्त सर्वविदित है । साधना का तत्व दर्शन वैज्ञानिक आविष्कारों जैसा है । प्रकृति की अनेक शक्तियों को मनुष्य ने सूझ-बूझ और घोर प्रयत्न रत रह कर हस्तगत किया है । भाप, बिजली, रेडियो, अणु आदि की प्राकृतिक शक्तियाँ वैज्ञानिक पुरुषार्थ के आधार पर ही हस्तगत हुई हैं ।

मानवी काया एक सर्व सम्पदाओं से भरी-पूरी रत्न खदान है । उसे ठीक तरह कुरेदा जा सके तो पुरातन काल के त्रिकालदर्शी और सर्वसमर्थ ऋषियों की तरह अनेकानेक ऋद्धि-सिद्धियों को हस्तगत कर सकना सम्भव हो सकता है । अन्तराल की प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण प्रयास ही साधना है ।

मानवी सत्ता को एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला माना जा सकता है । उसके शरीर में प्रकृति की सभी शक्तियाँ बीज रूप में विद्यमान हैं । उसकी चेतना में परब्रह्म की विराट चेतना का सार तत्व पूरी तरह समाहित है । इन्हें उपलब्ध करने के लिए वैसे ही प्रयासों की आवश्यकता पड़ती है जैसे कि बीज को वृष्टि कर्म द्वारा अंकुरित, पल्लवित एवं फलित किया जाता है । परमाणु में प्रचण्ड शक्ति होते हुए भी उसका प्रत्यक्षीकरण वैज्ञानिक विधि से ही हो सकता है । शुक्राणु को समर्थ मनुष्य बनाने के लिए गर्भ धारण की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है । इसी उपक्रम को साधना से सिद्धि का सिद्धान्त कहा जा सकता है । विद्वान, पहलवान, धनवान बनाने के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है । आत्म सत्ता में समाहित विभूतियों को भी जाग्रत करने और उनके चमत्कार देखने के लिए भी आत्म साधना के क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है । आत्म साधना को उच्चस्तरीय पुरुषार्थ माना गया है ।

साधना का अपना विज्ञान है । अन्तराल की भावना, मान्यता, आकांक्षा और विचारणा को परिष्कृत करने के लिए तत्व दर्शन का आश्रय लेना होता है । ज्ञान योग इसी को कहते हैं । चिन्तन, मनन, ध्यान धारणा का उपक्रम इसीलिए है । स्वाध्याय सत्संग द्वारा इस क्षेत्र में आगे बढ़ा जाता है । संक्षेप में यही तत्व दर्शन या ज्ञान योग है । उसमें चिन्तन का ही प्रधान रूप से उपयोग होता है ।

साधना का दूसरा पक्ष है—क्रिया योग, इसमें शारीरिक हलचलों की भी आवश्यकता पड़ती है । आसन, प्राणायाम, बन्ध मुद्रा, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, जप, हवन आदि वस्तुओं के सहारे एवं शारीरिक, मानसिक श्रम के सहारे बन पड़ने वाले उपचार क्रिया-योग कहलाते हैं । ध्यान-योग और क्रिया-योग के सम्मिश्रण से ही समग्र साधना विज्ञान की पृष्ठभूमि बनती है ।

कोई समय था जब आज के भौतिक विज्ञान की तरह पुरातन काल में अध्यात्म विज्ञान का प्रचलन था । शरीर की प्रयोगशाला में प्रकृति की शक्तियों का उत्पादन कर लिया जाता था । इस आधार पर हस्तगत हुई उपलब्धियों को सिद्धियाँ कहते थे । चेतना को, अन्तःकरण को, परिष्कृत करने की मानसिक एवं भावनात्मक विभूतियों को ऋद्धियाँ कहा जाता था । आत्म साधना से पुरातन काल में साधकों को सिद्धियाँ भी प्राप्त होती थीं और ऋद्धियाँ भी । आज के वैज्ञानिक और बुद्धिवादियों की तुलना में पुरातन काल के आत्मसाधना रत प्रयोक्ता कहीं अधिक बढ़े-चढ़े लाभ प्राप्त करते थे । शरीर की प्रयोगशाला में न अतिरिक्त ईंधन की जरूरत पड़ती है, न कल-पुर्जे खरीदने और टूट-फूट सुधारने की । यह अत्यधिक बहुमूल्य और विलक्षण होते हुए भी सर्व

साधारण के लिए सुलभ है । उसे ईश्वर प्रदत्त उपहार के रूप में अनायास ही सुयोग सौभाग्य की तरह मिला है ।

साधना को परम पुरुषार्थ माना गया है । उस माध्यम से वह सब कुछ मिल सकता है जो मनुष्य के लिए आवश्यक है । जब साधना युग था तब वह विज्ञान भी सर्वविदित और लोकप्रिय था । उत्साह भी था और प्रचलन भी । पर आज तो हर व्यक्ति ललक, लिप्सा का गुलाम बनता जाता है । बहिर्मुखी दृष्टि आनन्द और वैभव बाहर खोजती है । अन्तर्मुखी होकर किसी को अन्तराल के रत्न भण्डार खोजने की फुरसत नहीं । विलासी, लालची और व्यामोह ग्रस्त मनुष्य को संयम साधना के सहारे बन पड़ने वाले अध्यात्म पुरुषार्थ को अपनाने और ऋषि कल्प महानता अर्जित करने में अभिरुचि नहीं । ऐसी दशा में जन-साधारण की जहाँ उपेक्षा बढ़ी वहाँ एक अनर्थ असमंजस यह भी खड़ा हुआ कि उस विज्ञान के निष्णात अभ्यस्तों की संख्या भी घटती गई । खरीददारों के न रहने पर व्यवसाय भी समाप्त हो गया । इन दिनों योग साधना के नाम पर मायाचार का ही बोलबाला है । सस्ते प्रयोग से लम्बे-चौड़े सब्ज बाग दिखाने वाले, ललचाते, फुसलाते तो बहुत हैं पर मंजिल तक पहुँचाने वाले निष्णातों का एक प्रकार से समापन ही होता जा रहा है । उस महान् विज्ञान के स्थान पर अब विडम्बना ही जहाँ-तहाँ मदारी जैसे कौतुक कौतूहल खड़े करती दीखती है । साधना एक प्रकार से मखौल बनती जा रही है । साथ ही उस पर से विश्वास भी घट रहा है ।

आवश्यक समझा गया है कि अध्यात्म विज्ञान के पुरातन स्वरूप का फिर से ऐसा अनुसन्धान किया जाय जिससे उसकी यथार्थता वस्तु-स्थिति एवं विधि-व्यवस्था ठीक प्रकार समझी जा सके । अविश्वास को विश्वास में बदलने का यही तरीका है । भौतिक विज्ञान की तुलना अनेक गुने महत्त्वपूर्ण अध्यात्म विज्ञान का समापन ऐसी बुरी तरह नहीं होना चाहिए जैसे कि इन दिनों हो रहा है । समस्या के समाधान के लिए ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना हुई है, उसके अन्तर्गत मानवी काया की उच्चस्तरीय प्रयोगशाला में बन पड़ने वाले उन प्रयोगों का अनुसन्धान किया जा रहा है जिसके आधार पर व्यक्तित्व में दैवी विभूतियों का पुरातन काल जैसा अवतरण सम्भव हो सके । इसके लिए आवश्यक था कि जो कहा जाय उसे प्रत्यक्षवादिता के इस युग में प्रमाणित कर दिखाया जाय ।

चेतना क्षेत्र की अध्यात्म विद्या को महाप्रज्ञा-गायत्री कहते हैं । प्रकृति क्षेत्र को प्रभावित करने वाली विद्या को अग्निहोत्र कहते हैं । इन दोनों का युग्म है । दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित भी हैं । चेतनात्मक उभारों को परिपक्व करने के लिए अग्निहोत्र की आवश्यकता पड़ती है, ईंट को आग में पकाने की तरह, शब्द को लाउडस्पीकर द्वारा बढ़ाने की तरह । आग और पानी के संयोग से भाप बनती है और उसके प्रयोग से रेल चलती है । रेडियो प्रसारणों में भाषण के साथ बिजली की शक्ति भी जुड़ती है । ठीक उसी प्रकार साधना विज्ञान में मनुष्य की भाव चेतना एवं शब्द शक्ति के समन्वय से विनिर्मित होने वाली गायत्री को अग्निहोत्र की दिव्य ऊर्जा द्वारा प्रचण्ड किया जाता है । गायत्री को भावयोग और अग्निहोत्र को क्रियायोग का प्रतीक माना गया है । गायत्री और यज्ञ भारतीय संस्कृति के माता-पिता माने गए हैं । साधना विज्ञान में उन्हें प्राण और शरीर की उपमा दी गई है । शरीर और मन का, चरित्र और व्यवहार का संयम परिष्कार तो प्रथम सोपान है ही । इसके उपरान्त ही साधना क्षेत्र में प्रवेश मिलता है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान द्वारा साधना की सिद्धि से सम्बन्धित हर क्षेत्र पर प्रयोग-परीक्षण चल रहे हैं । गायत्री की शब्द शक्ति किस प्रकार साधारण शब्दोच्चार न रह कर चेतना क्षेत्र में प्रचण्ड हलचल उत्पन्न करती है । व्यक्तित्व को निखारती, प्रभाव क्षेत्र को उभारती और वातावरण में उत्कृष्टता भरने के पीछे किन तथ्यों का समावेश है, इसकी खोज शोध संस्थान द्वारा गम्भीरता-पूर्वक की जा रही है । शब्द शक्ति एक प्रचण्ड ऊर्जा है । प्राणियों से प्राणियों के बीच आदान-प्रदान उसी के सहारे चलते हैं । ज्ञान-विज्ञान का उद्भव उसी के सहारे सम्भव हुआ है । यन्त्र मानवों का निर्देशन इसी आधार पर हो रहा है । प्रचार प्रयोजनों में उसी की प्रमुखता है । ऐसी दशा में यह भी विश्वास किया जाना चाहिए कि मन्त्र शक्ति के उपयोग से आत्मोत्कर्ष, दूसरों का हित साधन एवं वातावरण में अभीष्ट परिवर्तन भी इस आधार पर सम्भव है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान का एक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान विषय मन्त्र विद्या के रहस्यों का उद्घाटन है । इसके लिए गायत्री महामन्त्र को आधार माना गया है । शब्द शक्ति के आध्यात्मिक प्रभावों की सम्भावना प्रयोगशाला में तद्विषयक बहुमूल्य यन्त्रों द्वारा खोजी जा रही है । साथ ही कल्प साधना सत्रों में सम्मिलित होने वाले साधकों द्वारा किए गए जप अनुष्ठान के प्रतिफल का लेखा-जोखा लिया जाता है । इस आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने की सम्भावना बढ़ रही है कि यन्त्र-शक्ति की तुलना में मन्त्र-शक्ति का प्रभाव किसी भी प्रकार कम नहीं होना चाहिए ।

अग्निहोत्र मात्र चूल्हे में जलने वाली आग नहीं है वरन् प्राण ऊर्जा के समन्वय से उत्पन्न हुई दिव्याग्नि का विशेष प्रयोग है । इसमें न केवल दिव्य वनस्पतियों का सूक्ष्मीकरण एवं बहुलीकरण होता है वरन् प्रयोक्ताओं की मन्त्र-शक्ति एवं परिष्कृत प्राण ऊर्जा का भी समन्वय रहता है, अस्तु उसकी प्रभाव क्षमता भी असाधारण होनी चाहिए । शास्त्रकारों ने यज्ञ से शारीरिक स्वास्थ का सुधार, मनोबल का परिष्कार एवं आत्म-चेतना में देवत्व के अभिवर्धन जैसे लाभ बताये हैं, उसे उपचार एवं उत्कर्ष के अमोघ साधन माना है । साथ ही यह भी कहा है कि उससे वातावरण में संव्याप्त प्रदूषण का शमन होता है । यह बहुचर्चित विषय है कि यज्ञ से पर्जन्य वर्षा होती है । पर्जन्य का अर्थ मेघ वर्षा ही नहीं वरन् यह भी है कि अन्तरिक्ष से प्राणवान तत्व धरती पर उतरे और वनस्पतियों में जीवनी शक्ति बढ़ाकर प्राणियों, मनुष्यों को अधिकाधिक समर्थ बनाए ।

यह सभी लाभ ऐसे हैं जिनका यदि सही प्रयोग जाना जा सके और इन उपलब्धियों को काम में लाया जा सके तो मानवी समस्या के समाधान में, उज्ज्वल भविष्य की संरचना में, भारी योगदान मिल सकता है । अस्तु ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के तत्वावधान में शान्तिकुंज के प्रयोग क्षेत्र में सम्मिलित रूप से वे प्रयत्न चल रहे हैं जिनसे साधना विज्ञान के हर क्षेत्र पर प्रकाश पड़ सके । इस क्षेत्र में हुई प्रगति को भौतिक विज्ञान की उपलब्धियों की तुलना में किसी भी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए । गायत्री और अग्नि होत्र के अतिरिक्त

अन्यान्य साधनाएँ भी कल्प साधना सत्रों के माध्यम से अपनाई जा रही हैं और उनके परिणामों की गम्भीरता-पूर्वक जाँच-पड़ताल की जा रही है। ब्रह्मवर्चस के उच्चस्तरीय परीक्षणों में साधकों के आरम्भिक और अन्तिम स्थिति ही नहीं जानी जाती वरन् बीच-बीच में आते रहने वाले उतार-चढ़ावों पर भी पैनी दृष्टि रखी जाती है ताकि आत्म विज्ञान का महत्त्वपूर्ण आधार, साधना उपचार का सिद्धान्त एवं स्वरूप समझने में सहायता मिले। इस प्रत्यक्षवादिता के युग में यह चिन्तन आवश्यक था कि अध्यात्म विज्ञान को भौतिक विज्ञान जैसा ही खरा और प्रभावी सिद्ध कर दिखाया जाय। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के अन्तर्गत यही हो रहा है।

रहस्यवाद का एक अति महत्त्वपूर्ण पक्ष अन्तर्ग्रही अनुदानों के धरती पर अवतरण की सही स्थिति को समझा जाय और अनिष्टों से बचने तथा अनुदान के लाभ लेने के लिए सतर्क, सन्नद्ध रहा जाय। इस हेतु शान्तिकुंज में अन्तर्ग्रही परिस्थितियों को अवगत कराने वाली वेधशाला का भी निर्माण किया गया है। उस आधार पर दृश्य गणित को आधार मानकर अभिनव पंचांग प्रकाशित करने का काम हाथ में लिया गया है। इसमें पुराने नवग्रह ही नहीं, नये खोजे गए नेपच्यून, यूरेनस और प्लूटो ग्रहों का भी गणित किया गया है। हर स्थान का अलग पंचांग बनाने और जो जहाँ जन्मा है वहाँ के हिसाब से जन्मकुण्डली बनाने का विधान भी इस पंचांग में है। इस प्रयास से अन्तर्ग्रही परिस्थितियों के साथ अपनी धरती के वातावरण तथा प्राणि समुदाय पर पहुँचने वाले प्रभाव को अधिक अच्छी तरह समझा जा सकेगा। उस जानकारी के आधार पर परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने की महत्त्वपूर्ण सुविधा भी हस्तगत होगी। इसे ज्योतिष के नाम पर प्रचलित अन्धविश्वासों के स्थान पर अभिनव यथार्थवादी स्थापना कहा जा सकता है। इसे ज्योतिर्विज्ञान का काया-कल्प कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी।

अध्यात्म विज्ञान की, साधना प्रयोग की वस्तुस्थिति समझने-अपनाने की दृष्टि से ब्रह्मवर्चस शोध का असाधारण महत्त्व है। समय ही बतायेगा कि इस शुभारम्भ ने मनुष्य जाति की कितनी महान् सेवा साधना का उत्तरदायित्व उठाया और उसे पूरा कर दिखाया है।

अध्यात्म तत्वदर्शन का अनुसन्धान

इस युग में बुद्धिवाद तीव्रगति से बढ़ा है। विज्ञान की प्रत्यक्षवादी मान्यताओं ने प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। उस प्रभाव से दर्शन भी अछूता नहीं बचा है। तर्क एवं तथ्य की कसौटी पर कसने के उपरान्त सत्य को स्वीकार करने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। प्रत्यक्षवाद के इस प्रवाह ने आध्यात्मिक मूल्यों पर भी कुठाराघात किया है। आदर्शों एवं सिद्धान्तों से युक्त उच्चस्तरीय श्रद्धा के ऊपर ही मानवी गरिमा एवं सामाजिक सुव्यवस्था टिकी हुई है। बुद्धिवाद के कुठाराघात ने मानवी आस्था के ऊपर चोट पहुँचाई है। तर्क ने श्रद्धा को अनुपयुक्त ठहराया है। अब आवश्यकता आ पड़ी है कि उच्चस्तरीय आध्यात्मिक मूल्यों—श्रद्धा, आस्था, आदर्शवादी मान्यताओं को प्रामाणिकता, उपयोगिता को तर्क एवं तथ्यों के आधार पर कसा जाय। इसके लिए शोध की वही प्रक्रिया अपनानी होगी जो वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रचलित है।

भौतिक विज्ञान का महत्त्व सर्वमान्य है। इसकी महत्ता एवं उपयोगिता बने रहने का कारण यह है कि वह सदा तर्क, प्रयोग एवं परीक्षणों की कसौटी पर अपने को कसने एवं अनौचित्यपूर्ण मान्यताओं को छोड़ने के लिए तैयार रहा है। सर्वविदित है कि वैज्ञानिक प्रतिपादन समय-समय पर बदलते रहे हैं। एक बार प्रामाणिक सिद्ध हो जाने मात्र से वे शाश्वत नहीं बन जाते वरन् नवीन तथ्यों के आ जाने पर परिवर्तित भी हो जाते हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र में तब तक प्रयोग परीक्षण पर कसे सिद्धान्तों को एक मत से स्वीकारा जाता है जब तक कि नए सिद्धान्त उन्हें त्रुटिपूर्ण न ठहरा दें। इस स्वरूप प्रक्रिया के कारण ही विज्ञान अपनी महत्ता एवं उपयोगिता बनाए हुए है।

आध्यात्मिक क्षेत्र की उपलब्धियाँ विज्ञान की तुलना में कई गुना अधिक हैं। इस कारण इसकी महत्ता विज्ञान से कहीं अधिक बढ़ जाती है। इसलिए इस क्षेत्र पर उसी अनुपात में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राचीनकाल में उस पर समुचित ध्यान दिए जाने के कारण मनुष्य की गरिमा उच्चकोटि की थी। जिस क्रम से आत्मिक स्तर गिरता गया उसी अनुपात में मनुष्य को अधःपतन के गर्त में गिरना पड़ा है। उज्ज्वल भविष्य की संरचना में प्रधान उपयोग आत्मवादी तत्वों का ही होना है। इसलिए समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए आत्मिक क्षेत्र का नये सिरे से पर्यवेक्षण एवं परिशोधन आवश्यक हो गया है।

तत्वदर्शन ही मानवी चिन्तन का आधार है। अध्यात्म का यही प्राण है। विचारणा की श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता प्रचलित सामाजिक दर्शन की मान्यताओं पर निर्भर करती है। ऋषि युग के श्रेष्ठ चिन्तन का आधार उस समय प्रचलित आध्यात्मिक तत्वदर्शन था। वह मनुष्य को महानता अपनाने की सतत् प्रेरणा देता था, फलतः स्वर्गीय परिस्थितियों एवं देवतुल्य व्यक्तियों का सृजन सम्भव हो सका था। आत्मा, परमात्म-सत्ता, उसकी महत्ता, कर्मफल व्यवस्था, सृष्टि रचना एवं उसके उद्देश्य के विषय में गम्भीर प्रश्नों का सही उत्तर तत्वदर्शन ही दे सकता है।

विभिन्न काल एवं परिस्थितियों में ऋषियों ने तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप दर्शन का स्वरूप गढ़ा। ऋषि युग तक यह परम्परा ठीक प्रकार चलते रहने से स्वर्गीय परिस्थितियाँ बनी रहीं किन्तु वर्तमान और ऋषि युग के बीच लम्बा अन्धकार भरा मध्य युग गुजरा है। इस बीच स्वेच्छाचारिता की जो अराजकता फैली उसने दर्शन, धर्म और अध्यात्म का क्षेत्र भी अछूता नहीं छोड़ा है। ऐसी स्थिति में खरे-खोटे के बीच का अन्तर परखने के लिए अधिक तत्परता अभीष्ट है। यथार्थता जानने और उपयोगिता अपनाने के लिए शोध बुद्धि की ही आवश्यकता है।

प्राचीनकाल के उपयोगी आध्यात्मिक प्रतिपादनों को युग के अनुरूप इस प्रकार प्रस्तुत करना होगा कि उनकी यथार्थता और उपयोगिता के सम्बन्ध में किसी को कोई सन्देह करने की गुंजाइश न रह जाय। इसमें भूतकाल की अवमानना नहीं है और न ही शास्त्रकारों के प्रति असम्मान है, बस उनकी छोड़ी हुई यात्रा के लक्ष्य की ओर और आगे बढ़ाना है।

ऋषियों ने अपने-अपने समय में युग की माँग के अनुरूप आचार निर्धारणों में अन्तर किए हैं । स्मृतियों में यह अन्तर स्पष्ट दिखाई पड़ता है । इनके मध्य पाया जाने वाला अन्तर-पारस्परिक द्वेष, विग्रह, अवरोध या आक्षेप नहीं है, वरन् बदली हुई परिस्थितियों में जो अन्तर करने पड़े उसी विवशता का परिचायक है ।

भूतकाल की प्रगति, अवनति की समीक्षा तथा भविष्य का निर्धारण कर सकने की क्षमता का आधार है—तथ्यान्वेषी बुद्धि । इसी को प्रज्ञा कहते हैं । अध्यात्म प्रसंगों में उसी को ऋतम्भरा कहते हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों की उक्ति है कि ब्रह्मज्ञान का समाधान करते हुए प्रजापति ने कहा—"प्रलय काल में जब सब कुछ नष्ट हो जाता है तब भी सत्य का बोध कराने वाला एक ऋषि जीवित बना रहता है । उसका नाम है तर्क ।" यहाँ तर्क का अर्थ बहस में आने वाले मस्तिष्कीय कला-कौशल से नहीं तथ्यान्वेषी प्रज्ञा से है । उसी के द्वारा सत्य के अधिकतम निकट पहुँचा जा सकता है । निष्पक्ष विवेक पूर्वाग्रहों के लिए हठ नहीं करता । तथ्य एवं प्रमाण ही उसे रुचते हैं । समय चक्र की गतिशीलता के कारण परिस्थितियों में प्रायः अन्तर होता ही रहता है । तदनुरूप उपायों में भी हेर-फेर करना पड़ता है । पूर्वजों के प्रति पूर्ण आस्था रखते हुए भी उस समय के सर्वोत्तम साधनों को भी उसी रूप में अपनाया जा सकना सम्भव नहीं है । उनमें उपयोगी का चुनाव एवं अनुपयोगी का निष्कासन करना होगा ।

मध्यकालीन अज्ञानान्धकार युग में आध्यात्मिक क्षेत्र में अनेकानेक विकृतियाँ घुस पड़ीं । तत्वदर्शन के सिद्धान्तों, प्रतिपादनों, व्यवहारों में इतना अन्तर आया कि सामान्य बुद्धि के लिए उसकी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता पर विश्वास करना ही कठिन हो गया । मध्यकाल में शास्त्रों में जो मिलावटों का क्रम चला और धर्मजीवियों की उत्कृष्टता का अवमूल्यन हुआ तो जन-मानस ने उनके प्रतिपादनों पर विश्वास करना छोड़ दिया ।

किसी जमाने में आर्ष कथन और शास्त्र वचन, सन्देह और तर्क से परे समझे जाते थे । बुद्धिवाद एवं तर्क की प्रवृत्ति बढ़ने से मात्र श्रद्धा के आधार पर शास्त्र वचन गले नहीं उतरता । आस्थाओं का तत्वज्ञान अब अपनी उपयोगिता तर्क एवं तथ्यों के आधार पर ही सिद्ध कर सकता है । अब पुनः अध्यात्म तत्वज्ञान के प्रतिपादन सिद्धान्त और व्यवहार का वह स्वस्थ स्वरूप सामने आना चाहिए जिसे मनीषियों ने श्रद्धापूर्वक अपनाया और विश्वासपूर्वक जन-जन तक फैलाया था । तत्वदर्शन को हृदयंगम करने एवं उसके सिद्धान्तों को जीवन में उतारने वाले मनीषियों के परामर्शों का सार एक ही है कि मनुष्य सद्भाव सम्पन्न बने, सद्ज्ञान का वैभव बटोरे, सत्कर्मों का पुण्य कमाए और सज्जनोचित जीवन जिए । यह सब कैसे बन पड़े—इसके उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है कि अध्यात्म दर्शन की आस्थाएँ अन्तःकरण में जमायी जायें ।

इसके लिए दोहरा प्रयास किया जा रहा है । तत्वदर्शन में घुसी विकृतियों का निष्कासन और विज्ञान के साथ बन पड़े, भोगवादी भौतिक दर्शन को तर्क एवं तथ्यों के आधार पर अनुपयुक्त ठहराना । इसके लिए प्रत्येक धर्म दर्शन का नए सिरे से पर्यवेक्षण ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के समर्थ ग्रन्थालय में मनीषियों द्वारा किया जा रहा है । प्रत्येक धर्म-दर्शन की जाँच-पड़ताल, उपयोगी तत्वों का चुनाव एवं अनुपयोगी को बिना किसी पूर्वाग्रह के छोड़ देना इस शोध प्रक्रिया का लक्ष्य है । विश्वास किया जाना चाहिए कि समुद्र-मन्थन के उपरान्त निकले चौदह रत्नों के समान शोध-मन्थन द्वारा अध्यात्म के वे सार-तत्व निकल कर सामने आयेंगे, जो सर्वमान्य होंगे ।

विज्ञान के साथ पनपे भोगवादी भौतिक दर्शन से जूझना भी उतना ही आवश्यक है । प्रत्यक्षवाद एवं उपयोगितावाद की मान्यताओं ने नैतिकता की जड़ों को हिला दिया है । ईश्वर, आत्मा का अस्तित्व भौतिक- वादियों ने स्वीकार नहीं किया । फलस्वरूप पुण्य, परमार्थ, त्याग, बलिदान की बात कौन सोचे ? चार्वाक ने 'ऋणां- कृत्वा घृतं पिवेत' की नीति को बुद्धिमत्तापूर्ण बताया था और "येन-केन प्रकारेण यावज्जीवेत सुखं जीवेत" की नीति अपनाने के लिए कहा था, किन्तु आज का बुद्धिवाद तो पूरे बल समर्थन के साथ उसी नीति को सही बताता है । जब प्रत्यक्षवाद के अन्यान्य प्रतिपादन सर्वमान्य हो रहे हैं तो जीवन-दर्शन के क्षेत्र में भी स्वार्थवादिता को प्रश्रय क्यों न मिले ? परिणाम सामने है—हर क्षेत्र में संकीर्ण स्वार्थपरता, अनुदारता, निष्ठुरता की प्रवृत्ति बढ़ रही है । इसके लिए अन्यान्य कोई कारण नहीं है, वरन् आस्था संकट ही युग विभीषिकाओं का एकमात्र कारण है । उसके निवारण के लिए आस्था संकट के निराकरण का ही प्रयास करना होगा । यह अध्यात्म तत्वज्ञान को हृदयंगम कराने से ही सम्भव है ।

अध्यात्म की पुनः प्राण प्रतिष्ठा उपरोक्त दोनों मोर्चों (१) अध्यात्म तत्वज्ञान में घुसी विकृतियों का निष्कासन एवं (२) प्रत्यक्षवाद द्वारा उपेक्षित उत्कृष्टतावादी दर्शन की प्रतिष्ठापना, से ही सम्भव है । ब्रह्मवर्चस का अनुसन्धान तन्त्र इसीलिए खड़ा किया गया है । दर्शन का उत्तर दर्शन से, तर्क का उत्तर तर्क से और विज्ञान का उत्तर विज्ञान द्वारा देने से ही बुद्धिवादी युग का समाधान हो सकेगा । तर्क एवं विज्ञान सम्मत प्रतिपादनों के अभाव के कारण ही नास्तिकवाद बढ़ा है । आत्मा, परमात्मा, कर्मफल, पुण्य, परमार्थ की बातों की उपेक्षा करने में विज्ञान के प्रत्यक्षवाद का दोष कम है, प्रमुख कारण तो अध्यात्म का वैज्ञानिक, तर्क एवं तथ्य पूर्ण ढंग से प्रतिपादित न किया जाना ही है ।

इस महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान को एक समग्र तन्त्र के रूप में खड़ा किया गया है । आरम्भ तो अभी छोटा है, पर उसके विस्तार की असीम सम्भावनाएँ हैं । यह बीजारोपण है, अन्त नहीं । आध्यात्मिक सिद्धान्तों को तर्क एवं विज्ञान की कसौटी पर कसना जितना बड़ा कार्य है उतने ही बड़े साधनों की एवं तन्त्र की भी आवश्यकता है । बड़े साधन जुटें और तब शोध कार्य आरम्भ किया जाय इसके स्थान पर अपने पास वर्तमान में जितने साधन हैं, उनको लेकर ही शोध कार्य आरम्भ कर दिया गया है । साधनों की समग्रता में अनुसन्धान की गाड़ी को रोक देना अब सम्भव नहीं है । विलम्ब करने का अर्थ होगा मानव जाति जिस द्रुत गति से पतन की ओर अग्रसर हो रही है उसे रोका न जाना । आध्यात्मिक मूल्यों की प्रामाणिकता शोध की कसौटी पर कसने एवं खरा उतरने पर ही आज का बुद्धिजीवी वर्ग उन्हें अपनाने को तैयार होगा ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान का पहिया अब घूम गया है और शोध की गाड़ी चल पड़ी है।

शोध के दो पक्ष हैं—साहित्यिक अनुसन्धान और प्रयोग, परीक्षण। लाइब्रेरी में संकलित देश-विदेश की, सभी प्रमुख धर्मों की, विचारकों-मनीषियों की विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान की पुस्तकें वैज्ञानिक एवं दार्शनिक अनुसन्धान की आवश्यकता की पूर्ति करेंगी। प्रयोग परीक्षण के अन्तर्गत साधना-उपचारों को प्रयोगशाला में प्रयोगों की कसौटी पर कसा जायेगा। मन्त्र, जप और यज्ञ का मनुष्य, जीव एवं वनस्पति समुदाय पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका परीक्षण किया जा रहा है। सर्वविदित है कि आज शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक दृष्टि से मनुष्य का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। एलोपैथी, आयुर्वेदिक एवं होम्योपैथी के अनेकानेक उपचार रुग्णता के निवास एवं स्वास्थ्य सम्वर्धन में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि ऐसी उपचार प्रणाली की शोध की जाय जो तीनों ही क्षेत्रों—शरीर, मन, और आत्मा को स्वस्थ बनाने में स्थाई योगदान देती हो।

उसके लिए यज्ञ-विज्ञान को समर्थ पैथी-यज्ञोपैथी के रूप में विकसित किया जा रहा है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में देश के अनेकों वैज्ञानिकों एवं चिकित्साशास्त्र विशेषज्ञों का परामर्श लिया जा रहा है। विश्वास किया जाना चाहिए कि शीघ्र ही यज्ञोपैथी अपने स्वस्थ एवं समग्र स्वरूप में विश्व के समक्ष आयेगी तथा समस्त मानव जाति की महती सेवा करेगी।

साहित्यिक अनुसन्धान के तो अनेकों पक्ष हैं। जिनमें प्रमुख हैं—वैज्ञानिक एवं दार्शनिक अनुसन्धान। आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना युग की आवश्यकता है। इसके लिए अभी चार विषय अनुसन्धान के लिए हाथ में लिए गए हैं—(१) सार्वजनीन धर्म (सर्व धर्म समभाव), (२) ब्राह्मी चेतना एवं विराट प्रकृति, (३) विचार विज्ञान, (४) यज्ञ चिकित्सा। द्वितीय चरण में अन्य विषय लिए जायेंगे।

(१) **सार्वजनीन धर्म**—सर्व धर्म समभाव के लिए ऐसे १४ स्वर्णिम सूत्रों का निर्धारण किया गया है जो सभी धर्मों को मान्य हैं। उनके समर्थन में नौ धर्मों—हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी, ईसाई, जैन, बौद्ध, यहूदी और ताओ के धार्मिक उपाख्यान, कर्मकाण्ड एवं परम्पराओं का संकलन किया जायेगा। व्यक्ति एवं समाज को श्रेष्ठ एवं शालीन बनाने के लिए नीति, सदाचार, शिष्टाचार, सद्व्यवहार के सिद्धान्तों को भी लिया गया है।

(२) **ब्राह्मी चेतना एवं विराट प्रकृति**—जड़-प्रकृति, सूक्ष्म-अणु, विराट ब्रह्माण्ड की विलक्षणताओं, मानवी एवं ब्राह्मी चेतना की रहस्यमय पर्तों का गहन अध्ययन किया जा रहा है। ब्राह्मी चेतना से सम्पर्क कर उसके दिव्य अनुदानों को करतलगत करने, अतीन्द्रिय शक्तियों को जाग्रत करने का क्या वैज्ञानिक आधार है, इस पर गहराई से अनुसन्धान चल रहा है। इस कार्य में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन एवं उनके आधार पर आत्म विज्ञान के तथ्यों का प्रतिपादन किया जा रहा है।

(३) **विचार विज्ञान**—मनोविज्ञान एवं दर्शन के उन सभी सिद्धान्तों का अध्ययन किया जा रहा है जो मनुष्य के चिन्तन से सम्बन्ध रखते हैं। विचारणा, श्रद्धा, विश्वास, सम्वेदनाओं का मानवी व्यक्तित्व के निर्धारण में क्या योगदान होता है, यह शोध कार्य विचार विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। उपासना, प्रार्थना, ध्यान और धारणा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी सम्मिलित है।

(४) **यज्ञ चिकित्सा**—यज्ञ की वैज्ञानिक उपयोगिता, शरीर एवं मन पर पड़ने वाले प्रभाव एवं उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि का अध्ययन यज्ञ चिकित्सा के अन्तर्गत है।

विश्वास किया जाना चाहिए कि आत्मवादी तत्व सत्य की सुदृढ़ आध्यात्मिक भित्ति पर खड़े हैं और वे उथले अनास्तित्ववाद के आक्रमण को पूरी तरह निरस्त कर सकने में समर्थ हो सकेंगे। जिस पथ का प्रस्तुतीकरण और समर्थन करने वाला कोई हो ही नहीं उसे हारा हुआ ठहराने में क्या लगता है ? बुद्धिवाद की अदालत में अस्तित्ववाद को हारा हुआ इसलिए ठहराया जाने लगा कि उसके पक्षधरों ने समय की चुनौती स्वीकार करने से कन्नी काट ली और पुरातन श्रद्धावाद द्वारा आत्म रक्षा की बात सोच ली। जबकि तर्क का तर्क से, तथ्य का तथ्य से, प्रमाण का प्रमाण से, प्रत्यक्ष का प्रत्यक्ष से उत्तर देना आवश्यक था। यह नैतिक अवसाद एवं मानसिक प्रमाद का परिचायक है। जिसके कारण ही अध्यात्म की गरिमा गिरी है। इस कमी की आपूर्ति ब्रह्मवर्चस में चल रहे शोध प्रयत्नों द्वारा होगी।

वस्तुतः अध्यात्म के सिद्धान्त ऐसे हैं, जिनके सहारे मानवी सुख, शान्ति, प्रगति और समृद्धि के समस्त आधार सुरक्षित रह सकते हैं। कठिनाई एक ही है—असली में नकली का घोटाला इतना अधिक मिल गया है कि तथ्यों को उनके यथार्थ रूप में समझना और प्रयोग में लाना अति कठिन हो रहा है। सोने को आग में शोधा जाता है। अध्यात्म-सिद्धान्तों को भी अनुसन्धान में तपाकर इस रूप में प्रस्तुत किया जायेगा कि उसकी उपयोगिता समझने और उसे व्यवहार में उतारने में सामान्य बुद्धि को भी किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव न हो। तत्व दर्शन के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया द्वारा इस लक्ष्य के अधिक निकट पहुँचने की पूरी-पूरी सम्भावना है। विश्वास किया जाना चाहिए कि ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में चल रहे शोध प्रयत्नों से अध्यात्म दर्शन का एक ऐसा समग्र स्वरूप विश्व के समक्ष आयेगा जिसमें किसी प्रकार के मतभेद की गुंजाइश नहीं रहेगी। अनास्था संकट का निवारण एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना इस अनुसन्धान प्रक्रिया द्वारा ही हो सकती है। अनुसन्धान की भट्टी से निकले, तर्क एवं तथ्यों की कसौटी पर कसे सिद्धान्त ही अपनी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता सिद्ध कर सकते हैं। बुद्धिवाद की स्वीकृति इससे कम में नहीं मिल सकती है।

सहकारी शोध प्रक्रिया का स्वरूप और विस्तार

ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया का केन्द्र संस्थान हरिद्वार है। यहाँ उसकी कार्य पद्धति चार भागों में विभक्त है—

(१) **शास्त्रीय अनुसन्धान**—जिसमें अब तक के अध्यात्म प्रतिपादनों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना है और उसमें जो अंश विश्व मानव के भावनात्मक उत्कर्ष में सहायक सिद्ध होता है उसे संकलित किया जाना है। इसके लिए अपने निजी पुस्तकालय की साहित्य समृद्धि बढ़ाई जा रही है तथा पढ़ाने के

लिए अन्य स्रोतों से साहित्य उपलब्ध करने की व्यवस्था बन रही है ।

(२) वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षण—इस विभाग के अन्तर्गत बहुमूल्य यन्त्र लगाए गए हैं और यह परीक्षण किया जाता है कि किन अध्यात्म प्रवृत्तियों के अपनाने का जीवन के बहिरंग एवं अंतरंग पक्ष पर क्या प्रभाव पड़ता है । इस परीक्षण प्रक्रिया में यज्ञोपैथी का ऐसा स्वरूप निखारा जा रहा है जिसके आधार पर मनुष्य की शारीरिक बलिष्ठता, मानसिक विवेकशीलता एवं अन्तःकरण की उत्कृष्टता को समुन्नत स्तर तक पहुँचाया जा सके ।

(३) मनीषा का सहगमन—इस विभाग के अन्तर्गत देश-विदेश के ऐसे मनीषियों को सूत्रबद्ध एवं गतिशील किया जाना है जो शोध प्रयोजन में रस लेते एवं सहयोग देते हैं । यह पक्तियाँ लिखे जाते समय तक ऐसे शोध सहयोगियों की संख्या १०० से ऊपर है पर प्रयत्न इस संगठन में ऐसे १००० मनीषियों को संघबद्ध करने का है जो हरिद्वार आकर पूरे या थोड़े समय काम किया करें अथवा अपने-अपने स्थानों पर रह कर ही उधर के उपलब्ध साधनों से अभीष्ट तथ्यों का संकलन किया करें । ऐसे लोगों का आवश्यक मार्ग दर्शन यह विभाग करता है ।

(४) प्रचार परिचय—शोध संस्थान में पधारने वालों को शोध-प्रक्रिया के उद्देश्य एवं स्वरूप से परिचित कराना । जिन्हें रुचि है, उन्हें इस विषय का साहित्य उपलब्ध कराना । कौन किस प्रकार इस प्रयोजन में भागीदार बन सकता है इसकी प्रक्रिया समझाना ।

इन चारों विभागों का मिला-जुला संचालन होता है । स्थायी कार्यकर्त्ताओं की टीम आरम्भिक दिनों में बीस के लगभग है । निकट भविष्य में उनकी संख्या तेजी से बढ़ने की सम्भावना है । कार्यकर्त्ताओं में प्रायः सभी स्नातक योग्यता और प्रगल्भ प्रज्ञा के हैं । सभी के निवास निर्वाह का प्रबन्ध संस्थान की इमारत में है । जिनके पास निजी साधन हैं वे उससे अपना खर्च चलाते हैं । शेष का प्रबन्ध मिशन द्वारा होता है ।

स्थानीय कार्य पद्धति में सामयिक आवश्यकता के अनुरूप क्रिया-प्रक्रिया चलती रहती है । उनमें सुधार परिवर्तन होता रहता है । जो कार्य पूरे हो जाते हैं उनके स्थान पर अन्य कार्य हाथ में ले लिए जाते हैं अथवा बढ़े हुए स्तर के अनुरूप उन्हीं प्रयोजनों को अधिक बारीकी एवं अधिक विस्तार से क्रियान्वित करने का क्रम बना लिया जाता है । खिलाड़ियों की टीम की तरह हँसते-हँसाते वातावरण में इतना गम्भीर और इतना महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकना किस प्रकार सम्भव हो सकता है उसे निकट से देखने वाले आश्चर्य चकित रह जाते हैं । प्रयोग परीक्षण में एक विशेषता यह भी है कि विश्व मानव का भाग्य और भविष्य निर्धारण करने वाला यह ऐतिहासिक कार्य किस प्रकार नवयुवकों की मण्डली अपने बलबूतों पर कर गुजरने का दुस्साहस कर सकती है और उसमें किस सीमा तक सफल हो सकती है । इसका निर्धारण अभी शोध निष्कर्षों से नहीं हो सकेगा । शोध प्रयत्नों में सरकारी अनुदान या सम्पन्नों के उदार सहयोग ही सारी व्यवस्था बनाते हैं । इस क्षेत्र में ऐसी चेष्टा कहीं कदाचित ही अन्यत्र की गई हो जिसमें प्राचीन काल के साधु-ब्राह्मणों की परम्परा अपनाई गई हो और इतने भारी काम को इतनी हल्की-फुल्की कार्य-पद्धति अपनाकर सम्पन्न किया जाता हो जिसमें खेल और योग का अन्तर करना ही कठिन हो जाय । ब्रह्मवर्चस की शोध प्रक्रिया के लिए व्यक्तियों, साधनों एवं क्रिया-कलापों का जो निर्धारण किया गया है, वह अपने आप में एक शोध विषय है । इसमें एक बड़ा निष्कर्ष यह निकल सकता है कि बड़े विद्वानों और बड़े धनवानों का जिन्हें सहयोग न मिल सके वे भी उत्कृष्टतावादी अवलम्बनों के सहारे सब कुछ न सही तो बहुत कुछ करने में तो निश्चय ही सफल हो सकते हैं ।

ठीक गंगा तट पर, हिमालय की पुनीत छाया में, सप्त ऋषियों की ऐतिहासिक तपस्थली में बना हुआ यह शोध संस्थान यों भव्य भवनों और साधन सम्पन्न संस्थानों की तुलना में कुछ भी नहीं है किन्तु जैसी भी कुछ उसकी स्थिति है उसमें व्यक्तियों से लेकर दीवारों और पौधों से लेकर गति-विधियाँ उभारने वाले स्तर एवं उत्साह को देखकर इतना तो कहा ही जा सकता है कि 'ब्रह्मवर्चस' मात्र किसी संस्थान का नाम नहीं वरन् इस परिकर के कण-कण में ब्रह्म तेजस् की उपस्थिति का सहज दर्शन हो सकता है । जिन व्यक्तित्वों, उद्देश्यों, आदर्शों, कार्यक्रमों के साथ इस प्रक्रिया का निर्धारण, संचालन हो रहा है उसे देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचने में किसी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि जो हो रहा है वह अनुपम है और उसकी परिणति भी अद्भुत में होकर रहेगी ।

यह केन्द्र संस्थान की चर्चा हुई । इस इमारत की परिधि में जो हो रहा है उसे मध्य बिन्दु की संज्ञा तो दी जा सकती है पर यह नहीं कहा जा सकता कि जो हो रहा या होने को है वह इतनी ही छोटी परिधि तक सीमित है । वस्तुतः कार्य-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है । अपनी धरती पर रहने वाले सौ करोड़ मनुष्यों का दृष्टिकोण सुधारना और उछालना निःसन्देह इतना बड़ा कार्य है जिसकी तुलना अन्तरिक्ष यानों के द्वारा आकाश के अनुसन्धान से ही की जा सकती है । उपग्रह प्रेषण और संचालन के केन्द्रीय कार्यालय तो निर्धारित जगह पर ही बने होते हैं, पर उनके कार्य का क्षेत्र विस्तार आकाश की परिस्थितियों एवं अन्तर्ग्रही हलचलों का पता लगाना होता है । यह प्रयास कितनी परिधि में परिभ्रमण करते, किस-किससे पूछताछ करते और क्या-क्या निष्कर्ष निकाल कर संचालकों के पास भेजते हैं उसे सम्बद्ध व्यक्ति ही जानते हैं । उस विषय के अध्येता ही जानते हैं कि यह समूची प्रक्रिया कितनी कठिन और कितनी साधन साध्य है । जो इन योजनाओं को बनाते और संचालन करते हैं उनकी सूझ-बूझ, मनीषा एवं तत्परता देख कर दंग रह जाना पड़ता है । ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के कार्य-क्षेत्र को इतना ही विस्तृत माना जा सकता है । अतएव उसकी क्रिया-प्रक्रिया भी देश-विदेश में बिखरी रहना स्वाभाविक है । एक केन्द्र के लिए इतना सोचना या समेटना ही सम्भव नहीं हो सकता ।

ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया का कार्य-क्षेत्र प्रमुखतया भारत और सामान्यतया समस्त संसार है । मनीषा को युग चेतना ने पुकारा है । विश्वास किया जाना चाहिए कि बुद्धिवाद ने उसकी प्रखरता को अनास्था से धूमिल भर किया है । संकीर्ण और लोलुप भर बनाया है । अस्तित्व समाप्त करने में उसे सफलता नहीं मिली है । उस वर्ग में भी जहाँ-तहाँ ऋषि परम्परा विद्यमान है । उसका राईरत्ती सहयोग मिलते रहने से ही समन्वित प्रक्रिया इतनी

समर्थ हो जायेगी कि इतने भर से काम चलने लगे और प्रगति रथ अपने राजमार्ग पर स्पष्ट दौड़ने लगे ।

शोध संस्थान के समय दानी सदस्यों की संख्या तेजी से बढ़ रही है । उन सबको सुविधानुसार हरिद्वार आने और कुछ समय यहाँ रहकर अपनी दृष्टि तथा कार्य-पद्धति को अधिक विकसित करने के लिए कहा गया है । इस प्रयोजन के लिए यहाँ आने वाले बाल-बच्चे साथ लेकर न आयें क्योंकि इससे उनके साथ दूसरों के कार्य में अनावश्यक व्यवधान उत्पन्न होना निश्चित है । शोध संस्थान में परिवार सहित ठहरने का प्रबन्ध नहीं है । अस्तु जिन्हें वस्तुतः इसी प्रयोजन के लिए आना होगा वे अकेले आयेंगे और जहाँ तक सम्भव होगा कुछ अधिक समय ही रहा करेंगे । दो-चार दिन रहकर कुछ जाना-समझा भर जा सकता है, कुछ करना या सक्रिय योगदान दे सकना सम्भव नहीं । अस्तु शोध सदस्यों से यह आशा की गई है कि जब उन्हें केवल इसी प्रयोजन के लिए आना हो तब अपनी सुविधानुसार कुछ समय लेकर आया करेंगे और शान्त चित्त से आदान-प्रदान का क्षेत्र विस्तृत किया करेंगे । यह प्रक्रिया वस्तुतः बड़ी उपयोगी है । उसके आधार पर कुछ ठोस काम भी हो सकता है ।

व्यस्त मनीषी अपने-अपने स्थान पर रहकर भी महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं । शर्त एक ही है कि ऐसी स्थिति में वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति गम्भीर हों और आस्थावान भी । उसे एक पुनीत कर्त्तव्य पालन समझें और नित्य कर्मों की तरह उसके लिए कुछ नियमित रूप से करते रहने का निश्चय करें । समय दान की प्रक्रिया सुनिश्चित और नियमित हो तभी उससे कुछ प्रयोजन सधेगा अन्यथा जब-तब कुछ-कुछ कर देने से आत्म प्रवंचना ही हो सकेगी । आत्म श्लाघा के लिए कोई अपने को शोध संस्थान का सदस्य कहते फिरे किन्तु नियमित समय देने में बहाने बनाने लगे तो उसे 'बगले बजाने' जैसी उपहासास्पद विडम्बना ही कहा जायेगा । आशा की गई है कि जो भी सदस्य बनेंगे वे उसका उत्तरदायित्व समझेंगे, जो समय देने की स्थिति में होंगे वे ही सदस्यता अपनाने और सहयोग देने का वचन देंगे । विश्वास किया गया है कि शेखी खोर नहीं, जिम्मेदार लोग ही शोध प्रयत्न में सहभागी बनेंगे और अपने-अपने स्थान पर रहकर भी कुछ कहने लायक काम करते रह सकेंगे ।

किस स्तर और किस स्थिति के सदस्य को अपनी उपलब्ध परिस्थितियों में किस प्रकार क्या करना चाहिए, उसका सही निर्धारण तो आमने-सामने बैठकर परस्पर विचार-विनिमय से ही सम्भव हो सकता है किन्तु जिनका हरिद्वार बार-बार आना सम्भव नहीं है उनके लिए कार्य पद्धति की रूपरेखा समझने से भी काम चल सकता है । सदस्यों को सर्वप्रथम यह समझना है कि शोध प्रक्रिया में इन दिनों किन-किन विषयों का समावेश है और उनसे सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करने के लिए आवश्यक साहित्य समीपवर्ती क्षेत्रों में कहाँ से उपलब्ध हो सकता है । इसके लिए प्रधानतः एक ही उपाय है—बड़े पुस्तकालयों का आश्रय । बाजारू लाइब्रेरियाँ तो किस्से-कहानियों के कूड़े-कचरे जैसी किताबों से भरी रहती हैं और लोक-रंजन कर सकने वाले अखबार और पढ़क लोगों की भीड़ जमाने में अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझती हैं । इन तथाकथित पुस्तकालयों से हमें किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिए । समीपवर्ती विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय ही अपने काम की सामग्री से सम्पन्न हो सकते हैं । कॉलेजों एवं प्रौढ़ स्तर के साहित्य संस्थानों में भी सारगर्भित पुस्तकें हो सकती हैं । कुछ व्यक्ति भी स्वाध्यायशील होते हैं और गम्भीर विषयों का साहित्य स्वयं खरीदते रहते हैं । अपना शोध विषय उच्चस्तरीय हैं । उसका साहित्य जहाँ-तहाँ थोड़ा-थोड़ा ही मिल सकता है । बड़ी संख्या में एक ही जगह बहुत सी पुस्तकें मिल जायेंगी ऐसी आशा करना व्यर्थ है । कितने ही पुस्तकालयों में खाक छानने और उसकी पुस्तक सूची पर गहरी नजर डालने से ही यह पता चलेगा कि अपने उपयोग की सामग्री किन पुस्तकों में मिल सकती है । पुस्तक का नाम देखने से भी कुछ पता नहीं चलता । नाम आकर्षक होते हैं पर पन्ने उलटने पर पता चलता है कि उनमें जान कुछ भी नहीं है । इधर-उधर से बेकार का कबाड़ा इकट्ठा करके आकर्षक नाम और कच्चर भर का ढकोसला खड़ा कर दिया गया है । पुस्तकों की विषय सूची देखने और पन्ने उलटकर उसका प्रतिपादन जानदार है या बेजान इस तथ्य का पता लगाने पर ही इस निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव होता है कि उसे पढ़ने में सिर खपाया जाय या नहीं । शोध संस्थान के चालू अनुसन्धान प्रयोजन के साथ तालमेल बिठाते हुए विषयों की सामग्री कहाँ है ? किन पुस्तकों में है ? इसका पता लगाना शोध सदस्यों का प्रमुख काम है । इसके लिए लाइब्रेरियों की खाक छानना और उपयोगी पुस्तकों की सूची तैयारी करना प्रथम काम है ।

ऐसी पुस्तकों की विषय सूची यदि छोटी हो तो वह पूरी की पूरी नोट की जा सकती है अन्यथा बड़ी होने पर उसके वे प्रकरण नोट किए जा सकते हैं जो शोध प्रयोजन के काम आने योग्य हैं । समीपवर्ती सभी पुस्तकालयों से इस प्रकार की सूची तैयार करना प्रथम काम है । यह जितना पूरा होता चले, उसकी एक प्रति अपने पास रख कर दूसरी प्रति हरिद्वार, ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में भेजते रहना चाहिए ।

पढ़ना, ढूँढना और नोट करना आरम्भ करने से पूर्व हरिद्वार से परामर्श प्राप्त कर लेना चाहिए अन्यथा परिश्रम व्यर्थ चले जाने की आशंका रहेगी । एक स्थान पर पहले से ही एक व्यक्ति ने एक-एक विषय ले लिया है और उस सन्दर्भ में संकलन भी बहुत हो चुका है । जानकारी न होने के कारण अन्यत्र रहने वाले किसी अन्य व्यक्ति ने भी उन्हीं पुस्तकों में वही सामग्री एकत्रित करनी आरम्भ कर दी तो दुहरा श्रम होगा और एक का श्रम बिल्कुल व्यर्थ चला जायेगा । इस गड़बड़ी से बचने का एक ही उपाय है कि शोध कार्य करने से पूर्व हरिद्वार से परामर्श कर लिया जाय कि उन्हें किस प्रयोजन के लिए काम करना है । यह निर्धारण हो जाने पर कार्य सुनियोजित रीति से होने लगेगा । एक ही प्रयास अनेक जगहों पर चल रहे होंगे तो भी वे एक-दूसरे के पूरक ही रहेंगे । इस दृष्टि से केन्द्र के साथ परामर्श करते रहना नितान्त आवश्यक है ।

आरम्भिक चरण में चार प्रमुख विषय हाथ में लिए गए हैं । पर उनमें से हर एक की शाखा, प्रशाखाएँ अगणित हो सकती हैं । इस प्रकार मूल विषय चार होते हुए भी उन्हें हजारों की संख्या में विभाजित किया जा सकता है । बारीकियों और गहराइयों में जितना उतरा जायेगा उतने ही अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध होंगे । उनका एकत्रीकरण उसी स्तर की समग्रता

उत्पन्न कर सकेगा । इन प्रधान चार धाराओं की उपधाराओं में से एक-एक करके एक-एक को वितरण किया जा सकता है । दूसरा तरीका यह भी हो सकता है कि एक ही विषय में अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है तो कई विषय भी हाथ के नीचे रखे जायें और उनमें से भी कुछ-कुछ एकत्रित करते रहा जाय । ऐसी दशा में केन्द्र से जल्दी-जल्दी परामर्श करते रहने की आवश्यकता और भी अधिक रहेगी । क्योंकि विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को छोड़कर जहाँ छोटे पुस्तकालयों की ही सुविधा है वहाँ प्रायः सभी शोधकर्त्ताओं को कई-कई विषय हाथ में लेने होंगे । ऐसी दशा में अन्यान्य स्थानों पर बिखरे हुए लोग एक ही प्रसंग की एक ही प्रकार की सामग्री एकत्रित करने में लगें यह खतरा बराबर बना रहेगा । अस्तु हर शोधकर्त्ता को अपने सम्बन्ध में बार-बार यह जानते रहना होगा कि उसका परिश्रम निरर्थक तो नहीं चला जायेगा । वह किसी अन्य के कार्य को ही दुहराने तो नहीं लगा । यह निर्णय केन्द्र से परामर्श करने के अतिरिक्त और किसी प्रकार जाना नहीं जा सकता ।

शोधकर्त्ता प्रायः स्नातक स्तर के होंगे । उनके प्रमुख विषय क्या थे, इस आधार पर शोध की धारा का निर्धारण सही रीति से सम्भव हो सकेगा । शिक्षा के समय जो विषय विशेष रूप से पढ़ा गया है उसमें सहज ही उसकी गति अधिक हो सकती है, इसलिए खोज-बीन भी उसी क्षेत्र में अधिक अच्छी तरह सम्भव हो सकती है । मात्र साहित्य ही एक ऐसा विषय है जिसमें किसी विशेष विषय की प्रवीणता नहीं होती । सामान्य ज्ञान का भी उसमें समावेश रहता है । ऐसी दशा में साहित्य के स्नातक किसी भी उस विषय को हाथ में ले सकते हैं । जो टैक्नीकल न होकर सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित है । ऐसे विषयों की भी कमी नहीं है । अतएव साहित्य में एम. ए. करने वालों के लिए अधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करने की गुंजाइश है । इतने पर भी वे किसी विषय के विशेषज्ञ न होने के कारण अधिक गहराई में न उतर सकेंगे ।

जिसने जो लिखा है वह उन्हें हर महीने की पहली तारीख को हरिद्वार भेज देना चाहिए । इसका अवलोकन यथा-सम्भव होते रहने से यह पता चलता रहेगा कि संकलन क्रम में किस प्रकार के सुधार की आवश्यकता है । इकट्ठा करते रहने और बहुत दिन बाद भेजने से यह कठिनाई रहेगी कि यदि कुछ भूल हो रही होगी तो वह लगातार चलती रहेगी और इतनी अवधि तक किया गया परिश्रम निरर्थक चला जायेगा ।

शोधकर्त्ताओं का एक कार्य और भी है कि वे ऐसे मनीषियों का पता लगाएँ जिनकी सहज रुचि और गम्भीर अध्ययनशीलता की आदत रही है । ख्याति प्राप्त तो अनेकों होते हैं, पर अध्ययनशील बहुत कम । बातें बनाने, लगाने की कला का अभ्यास होने पर कोई उथले ज्ञान वाला भी किसी दार्शनिक विषय में प्रवीण होने का दावा कर सकता है, पर उतने से बनता तो कुछ नहीं । अनजानों को चमत्कृत करना एक बात है और अपनी चिर संचित प्रगाढ़ ज्ञान सम्पदा का प्रमाण देना दूसरी । सम्पर्क बातूनी से साधने की आवश्यकता नहीं वरन् मनीषियों को खोजने की चेष्टा होनी चाहिए, जो सतत् स्वाध्यायशील रहे हैं और जिन्होंने रुचिकर प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में कहाँ क्या होता रहा है, यह पता लगाने की चेष्टा की है, ऐसे लोगों का सहयोग सम्भव न हो सके तो भी उनका सुझाव परामर्श भी बहुत कुछ उपयोगी हो सकता है ।

विश्वविद्यालयों में कितने ही देशी-विदेशी शोध प्रबन्धों का संकलन रहता है । इनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं जो बाहर के लिए नहीं दिए जाते उन्हें वहीं बैठकर पढ़ना होता है । ऐसी दुर्लभ सामग्री में कभी-कभी कई प्रसंग बड़े महत्त्वपूर्ण एवं खोजपूर्ण होते हैं । उनका उपयोग अपने प्रतिपादन में हो सकता है । इस प्रकार के अध्ययन का उत्तरदायित्व समीपवर्ती लोग ही सुविधापूर्वक उठा सकते हैं ।

कई व्यक्ति कुछ ऐसी मासिक पत्रिकाएँ मँगाते रहते हैं जिनमें अपने विषय की पाठ्य-सामग्री छपती हो । ऐसी पत्रिकाएँ जमा होती रहती हैं और अन्ततः रद्दी में बिकती हैं या जगह घेरे पड़ी रहती हैं । जहाँ ऐसी पत्रिकाएँ या पुस्तकें उपलब्ध हो सकें उन्हें हरिद्वार भिजवाना चाहिए । कई बार छोटे-मोटे सन्दर्भ भी किसी उपयोगी स्थान पर फिट कर दिए जाने पर बहुत ही प्रभावशाली बन जाते हैं । अतएव अपने विषय से तालमेल खाने वाली पुस्तकें-पत्रिकाएँ, जहाँ कहीं भी उपयोग में न आ रही हों उन्हें, हरिद्वार भिजवाते रहना चाहिए । बहुत विस्तार में से थोड़ी सी भी तथ्य पूर्ण सामग्री हस्तगत होती हो तो उसे भी शोध प्रयत्नों में सफलता प्राप्त गिन लिया जा सकता है ।

हर शोध सदस्य को यह प्रयत्न करना चाहिए कि नए सदस्य बढ़ें, किन्तु वे सभी प्रतिभा सम्पन्न होने चाहिए । स्कूली शिक्षा की दृष्टि से स्नातक स्तर का होना इस दृष्टि से पर्याप्त नहीं । कितने ही पोस्ट ग्रेजुएट ऐसे होते हैं जिन्होंने परीक्षा तो रट-रटाकर पास कर लीं हैं, पर उनमें न तो अध्ययनशीलता है और न व्युत्पन्नमति जैसी प्रतिभा । ऐसे लोगों को हैरान करने से कुछ लाभ नहीं । कुशाग्रता के अभाव में उनके प्रयास निष्फल जाते हैं और देखभाल जाँच-पड़ताल में संस्थान की शक्ति भी नष्ट होती है । अतएव सिरदर्द तो नहीं ही इकट्ठा करना चाहिए, किन्तु मनीषा को तलाश करने, उससे सम्पर्क साधने एवं सहयोग पाने में उपेक्षा भी नहीं बरतनी चाहिए । प्रतिभाशाली, व्युत्पन्नमति, शोध सदस्य जितने बढ़ें उतना ही अच्छा है । इस दिशा में वर्तमान सदस्यों को सदा सचेष्ट रहना चाहिए ।

युग चिन्तन को उभारने के लिए मनीषा का आह्वान

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान का कार्य-क्षेत्र बहुत व्यापक है । उसमें मानवी चेतना को निकृष्ट दुष्प्रवृत्तियों से विरत करने— उत्कृष्टता की सत्प्रवृत्तियों के साथ जोड़ने वाले उन सभी प्रतिपादनों का समावेश है जो जीवन प्रक्रिया के साथ जुड़े हुए किसी भी मर्मस्थल का स्पर्श करते हैं । लगता तो ऐसा है कि जीवन प्रवाह आवश्यकताओं, परिस्थितियों एवं प्रतिक्रियाओं के अनुसार अपनी दिशा धारा विनिर्मित करता है, इनकी अनुकूलता से प्रसन्नता होती है और प्रतिकूलताओं से दुःखी रहना पड़ता है । इसी मान्यता के कारण प्रयास इसी में लगे रहते हैं कि साधनों को विपुल और परिस्थितियों को अनुकूल बनाया जाय—व्यक्तियों के अनुवर्ती होने के लिए सहमत किया जाय । सभी की चेष्टाएँ प्रायः

यही रहती हैं और इसी आधार पर प्रसन्नता एवं सफलता का अनुभव किया जाता है।

लोकमान्यता यही रहने पर भी गहराई से देखने पर तथ्य दूसरे ही सामने आते हैं। चेतना बाहर के आकर्षण एवं दबाव से प्रभावित तो होती है, पर उस पर निर्भर नहीं करती। यदि इच्छित पदार्थ एवं परिस्थिति न मिले तो भी यह सम्भव रहता है कि आन्तरिक उत्कृष्टता के बलबूते-परिष्कृत दृष्टकोण के सहारे—सामान्य या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हँसते-हँसाते निर्वाह कर लें। इतना ही नहीं कठिनाइयों और प्रतिकूलताओं के बीच भी प्रगति की दिशा में बढ़ते चलना भी सम्भव हो सकता है। कितने ही ऐसे हैं जो परिस्थितियों में परिपूर्ण अनुकूलता रहते हुए भी पिछड़ी स्थिति में पड़े और खिन्न बने रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि परिस्थिति प्रधान नहीं—मनःस्थिति की प्रमुखता है।

आवश्यक नहीं कि मनःस्थिति का उत्कर्ष अभीष्ट साधनों के मिलने पर ही हो, उसके मार्ग में प्रतिकूलताएँ कम ही बाधक हो पाती हैं। सच तो यह है कि कई बार कठिनाइयों से जूझने में साहस एवं पुरुषार्थ को निखरने का अवसर मिलता है। इस प्रकार वे बाधक लगती भर हैं, अन्ततः सहायक ही सिद्ध होती हैं। अज्ञों की बात दूसरी है विज्ञों को यह समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती है कि मन एक स्वतन्त्र और स्वावलम्बी शक्ति है, वह चिन्तन की उत्कृष्टता के सहारे स्वयमेव विकसित हो सकती है और प्रगति के उच्च शिखर पर अपने बलबूते ही पहुँच सकती हैं। बाहरी अनुकूलता मिलने पर सोना सुगन्ध जैसा प्रसंग बन जाता है, पर यदि न भी बने तो भी रुकता कुछ नहीं-बिगड़ता कुछ नहीं। अन्तःक्षमता के भाण्डागार यदि जाग्रत हो सकें तो मनुष्य के लिए ऐसे प्रबल पराक्रम कर सकना सम्भव हो सकता है जिसे देवता का वरदान जैसा माना जाने लगे।

भौतिक कारणों से मनुष्य को प्रभावित होने की मान्यता ही सर्वत्र छाई हुई है। इसलिए प्रायः सभी के प्रयत्न अधिक सम्पन्नता अधिक अनुकूलता पाने के लिए गतिशील रहते हैं। ऐसे लोग नगण्य ही मिलेंगे जो वस्तुस्थिति को समझते हों, मनःस्थिति को प्रधानता देते हों और यह स्वीकार करते हों कि चिन्तन अपने आप में एक प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न तथ्य है। उसका प्रवाह दृष्टिकोण में अन्तर होने पर व्यक्तित्व का समूचा ढाँचा बदल सकता है। दिशा बदलने से परिस्थितियों में अन्तर आना, सुधार होना तनिक भी कठिन नहीं है। परिस्थितियों की अनुकूलता किसी के हाथ की बात नहीं हैं, किन्तु मनःस्थिति को कोई भी मोड़-मरोड़ सकता है और प्रचुर प्रसन्नता तथा सफलता तक पहुँचने के लिए एक अति सरल पगडंडी हस्तगत कर सकता है।

परिस्थिति से मनःस्थिति को प्रभावित होने की मान्यता का नाम भौतिकवाद है। मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थितियों के ढलने बदलने की मान्यता अध्यात्मवाद। यों उपेक्षणीय दोनों में से एक भी नहीं; फिर भी जिसकी प्रधानता समझी जाय पुरुषार्थ उसी में नियोजित होगा। आज भौतिकवादी दर्शन ने मानवी सत्ता को पूरी तरह अपने शिकंजे में कस रखा है। फलतः मनःस्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती।

करना यह होगा कि चिन्तन की समर्थता और वरिष्ठता को उजागर करने वाले अध्यात्मवादी प्रतिपादनों को जन-विवेक के सम्मुख नए सिरे से प्रस्तुत किया जाय। नए सिरे से इसलिए कि आधार बदल जाने से निर्धारण भी नए स्तर पर करने पड़ेंगे। प्राचीनकाल में श्रद्धा को मान्यता प्राप्त थी। इसलिए शास्त्र प्रमाण-आप्त वचन, गुरु निर्देश, परम्परा प्रचलन भर का उल्लेख कर देने पर फिर कभी अन्य साक्षी की आवश्यकता नहीं रहती थी और व्यक्ति का सहज समाधान हो जाता था, पर अब वैसा नहीं रहा। बुद्धिवाद ने इन दिनों उत्साह-वर्धक प्रगति की है। अब तर्क, तथ्य, प्रमाण की साक्षी पग-पग पर माँगी जाने लगी है। श्रद्धा को एक प्रकार के अमान्य ठहरा दिया गया है। इसी प्रकार विज्ञान की चमत्कारी सफलता ने उसे सहज की प्रामाणिकता का सेहरा पहना दिया है। अब किसी महत्त्वपूर्ण तथ्य के सन्दर्भ में यह अपेक्षा की जाती है कि उसकी पुष्टि विज्ञान के सहारे होनी चाहिए। यहाँ तक कि तर्क के आधार पर अपनी विशिष्टता सिद्ध करने वाला दर्शन-शास्त्र भी अपने प्रतिपादनों को सही सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिक पुष्टि का मुँह ताकता है।

स्थिति विचित्र है। अध्यात्म दर्शन का घोड़ा चिरकाल से श्रद्धा के सहारे मजे में चल रहा था, पर अब अवांछनीयता उस क्षेत्र में भी घुस पड़ी तो निरूपण आवश्यक हो गया। अब श्रद्धा को कहीं मान्यता मिली भी तो उसे शास्त्र या संस्कृति के सहारे नहीं बुद्धिवाद और विज्ञानवाद के पहियों का सहारा लेकर ही अपनी गाड़ी आगे बढ़ानी पड़ेगी। यही है वह विवशता जिसके कारण अध्यात्म दर्शन का प्रतिपादन नए सिरे-नए आधार पर करना होगा। यह कार्य इतना ही कठिन है जितना कि भौतिकवादी मान्यताओं का नये सिरे से निर्धारण। यह दोनों काम एक साथ करने होंगे। वैभव की वरिष्ठता को द्वितीय श्रेणी की और चिन्तन को प्रमुख सिद्ध करना एक प्रकार से युग प्रवाह के विरुद्ध बगावत खड़ी करने जैसा है। कार्य-क्षेत्र की व्यापकता को देखते हुए लगता है यह एक प्रकार से नए संसार की रचना जैसा विराट् है। उसके लिए समूचे चिन्तन क्षेत्र को मथना पड़ेगा। पुरातन गाथाओं में समुद्र मन्थन की कथा है। जिसमें मूर्धन्य लोगों ने मिलकर विशाल जल राशि को मथ डालने का दुस्साहस किया था। मन्थन के फलस्वरूप बहुमूल्य रत्न निकले भी किन्तु उससे पहले शोधन का प्रथम चरण पूरा करना पड़ा था। सर्वप्रथम हलाहल निकला था, उसके पश्चात् मद्य। इनमें से प्रथम मारक था और दूसरा उन्मादी। इनके हटा देने के पश्चात् ही समुद्र मन्थन की प्रगति सम्भव हो सकी थी और बहुमूल्य रत्नों से लाभान्वित होने का अवसर मिला था।

लोक चिन्तन का नव निर्धारण आज का समुद्र मन्थन है। यदि यह प्रक्रिया ठीक तरह सम्पन्न हो सकी तो दुहरा लाभ होगा। अहंकारी स्वार्थ संकीर्णता का—तृष्णा और विलासिता का व्यामोह अपने युग का हलाहल है जिसके कारण ऋषि भूमिका निभाने में पूर्ण समर्थ होते हुए भी मनुष्य पाशविक और पैशाचिक प्रवृत्तियों में तल्लीन हो रहा है। वारुणी वह है जिसने दूरदर्शिता और उदारता को अनावश्यक ठहराने और कुसंस्कारों में मदमस्त रहने में ही प्रसन्नता मानी है। लोकमानस में से सर्वप्रथम इन्हीं दोनों अनुपयुक्तताओं का निष्कासन करना है। यह बड़ा मोर्चा है।

इसके समान ही वह उत्तरदायित्व है जो निकृष्टता हटने से खाली हुए स्थान को उत्कृष्टता के प्रबल प्रतिपादन से तत्काल भर

सके । यह दुहरा काम दो मोर्चों पर एक साथ लड़ने के समान है । यह मोर्चा उतना ही लम्बा है जितना यह समूचा भूलोक । यह इतना विस्तृत है जितना चार सौ करोड़ मनुष्यों का समुदाय । संक्षेप में उसे चेतना लोक का नए सिरे से नया निर्धारण कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी । विचार-क्रान्ति अभियान किसी सामाजिक कुरीति, साम्प्रदायिक प्रथा-मान्यता जैसी छोटी परिधि तक सीमित नहीं है । ऐसा होता तो उस क्षेत्र को प्रभावित करने वाले थोड़े से सुधारकों से भी काम चल सकता था, पर बात गहरी भी है, विस्तृत भी है और साथ ही अति महत्त्वपूर्ण भी है ।

इससे भी बड़ी एक विचित्र कठिनाई यह है कि उसे अकेले वीर बलिदानी भी नहीं कर सकते । इसके लिए सद्भाव सम्पन्न मनीषा की आवश्यकता पड़ेगी । अकेली मनीषा तो सहज उपलब्ध है, उसे पैसा देकर कहीं भी खरीदा जा सकता है और उचित-अनुचित कुछ भी कराया जा सकता है, पर मिशन के लिए उसे प्रयुक्त करना ही नहीं प्राप्त करना भी कठिन है । मनीषा मँहगी होती है, उसे खरीदने के लिए पैसा कहाँ से आये । फिर वह श्रद्धा रहित होने पर अभीष्ट प्रयोजन में गहराई तक उतर भी न सकेगी । स्वयं जिसका विश्वास न हो उससे वकालत करा भी ली जाय तो भी उसके तर्क खोखले और उथले रहेंगे । उनमें न जीवन होगा न प्रभाव । ऐसी लँगड़ी-लूली, कानी-कुबड़ी, शोध किसी प्रकार किसी हद तक चल भी पड़े तो वह निर्जीव होने के कारण अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध करने में निरर्थक एवं असफल ही सिद्ध होगी ।

चिन्तन के दो पक्ष हैं—एक बुद्धि, दूसरा भाव । बुद्धि का क्षेत्र मस्तिष्क और भाव का हृदय माना गया है । हृदय का तात्पर्य रक्त फेंकने वाली थैली नहीं वरन् अन्तःचेतन का वह मर्मस्थल है जहाँ आस्थाओं और आकांक्षाओं के समन्वय से बना अन्तःकरण प्रतिष्ठित है । व्यक्तित्व का उद्गम आधार, नाभिक एवं ध्रुव केन्द्र यही है । मनुष्य भला या बुरा जैसा भी कुछ है, इसी मर्मस्थल का उत्पादन निर्धारण है । सत्प्रवृत्तियों को अपनाने के लिए साहस प्रदान करने वाली सद्भाव सम्पन्न उमंगें यहीं उठती हैं । बुद्धि का उपयोग तथ्यों को समझने तक सीमित है । उसके निर्धारण आमतौर से भौतिक लाभों को ध्यान में रखते हुए होते हैं । उसका अनुभव अभ्यास ही नहीं, गठन भी इसी क्षेत्र में होता है । इसलिए स्वभावतः बुद्धि जिस निष्कर्ष पर पहुँचती है वे सुख-सुविधाओं के पक्षधर ही होते हैं । उत्कृष्टता को अपनाने में निश्चय ही आकर्षणों पर नियन्त्रण करना और उपभोग में संयम बरतना होता है । इस निर्णय पर पहुँचना बुद्धि का नहीं भावना का काम है । नव युग का सृजन भाव सम्वेदनाओं की पृष्ठभूमि पर होगा । इस तत्व को अध्यात्म भाषा में भक्ति कहा गया है । भक्ति अर्थात् उत्कृष्टता समर्थक भाव-सम्वेदनाओं का उभार । प्रकारान्तर में श्रद्धा भी इसी को कहते हैं । त्याग बलिदान के लिए—व्रत संयम के लिए—तप परमार्थ के लिए—किसी को सहमत करना हो तो उसके लिए भक्ति-भावना का अवलम्बन लेना होगा ।

इतिहास साक्षी है कि भाव-सम्वेदनाओं के आधार पर ही पुण्य-परमार्थ के ढाँचे में मनुष्य को ढाला और उसे लोक कल्याण के लिए समर्पित जीवन जीने के मार्ग में आने वाली असंख्य कठिनाइयों का सामना करते रहने योग्य गढ़ा गया है । महामानवों, ऋषियों, मनीषियों में बुद्धि का अभाव तो नहीं होता, पर मूलतः उनकी चेतना पर भाव भरी उमंगों का ही आधिपत्य होता है अन्यथा वे भी अपने साहस और कौशल का उपयोग अन्य चतुर लोगों की तरह करते और वैभववान बड़े आदमी कहलाते हैं । अल्प-शिक्षितों और अभावग्रस्तों में से भी असंख्यों ने एक से एक बढ़-चढ़कर परमार्थ सम्पन्न किए हैं । इसका कारण उनकी वह आदर्शवादी अन्तःप्रेरणा ही थी जिसके भाव प्रवाह में उन्होंने संकटों की परवाह न करके त्याग बलिदान के आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किए । नव युग में भाव-सम्वेदनाओं को उभारना, भक्ति-तत्व को तरंगित करना, अतिमहत्त्वपूर्ण पक्ष है । इस महान् प्रयोजन में धर्म और अध्यात्म की सांस्कृतिक परम्पराओं का अनिवार्य रूप से आश्रय लेना पड़ेगा । उसकी उपेक्षा करके मात्र बौद्धिक कलाबाजियों पर आश्रित रहा गया तो लोग सब कुछ समझ जाने पर भी उत्कृष्टता अपनाने के लिए तत्पर न होंगे । भले ही उथले मन से उसका समर्थन करते रहें ।

श्रद्धाहीन बुद्धिवाद आमतौर से धूर्तता की ओर मुड़ जाता है । तथाकथित बुद्धिजीवियों पर आज दृष्टिपात करते हैं तो लगता है कि इस विशिष्टता ने उन्हें चतुर, कुशल, प्रवीण तो बहुत बनाया, पर आदर्शों के निर्वाह में वे एक प्रकार से असमर्थ ही बने रहे । लेखक, कवि, वकील, नेता, कलाकार वर्ग के बुद्धिवादी यों संख्या में थोड़े ही होते हैं, पर यदि उनकी प्रतिभा सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में लग सकी होती तो उसका प्रभाव परिणाम निश्चित रूप से भावी भव्य निर्धारण की दृष्टि से अत्यन्त श्रेयस्कर रहा होता, पर स्थिति सर्वथा निराशाजनक है । प्रतिभाएँ स्वार्थ पोषण में बुरी तरह लगी हुई हैं । अपने छद्म पर पर्दा डालने के लिए तरह-तरह के आदर्शवादी आवरण भी बुनते-औढ़ते रहते हैं । इतने पर भी उनके अनुदान उतने भी नहीं होते जितने कि एक ईमानदार मजदूर या परिश्रमी किसान के । सच तो यह है कि दिशाहीन बुद्धिमत्ता ने समाज को जितना लाभ दिया है उससे कहीं अधिक हानि पहुँचाई है।

चर्चा बुद्धि का महत्त्व घटाने की नहीं—भाव सम्वेदनाओं को उभारने की दी गई है । यह भक्ति तत्व का पुनर्गठन, पुनर्जागरण है । अमृत इसी को कहते हैं, सोमपान यही है । मस्तिष्क में बुद्धि बढ़े यह प्रयत्न दूसरे लोग कर रहे हैं । हमें चिन्तन को उत्कृष्टता और अन्तःकरण की भाव श्रद्धा के सम्वर्धन में लगाना है । ब्रह्मवर्चस का शोध कृत्य इसी के उत्पादन परिवर्धन में केन्द्रीभूत हो रहा है । समग्र मानवता के उत्कर्ष को ध्यान में रखते हुए इस प्रयत्नशीलता की एक स्तर से सराहना करनी पड़ेगी ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान का कार्य-क्षेत्र कितना बड़ा है उसका अनुमान इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लगाया जा सकता है कि चार सौ करोड़ मनुष्यों के विशाल समुदाय के अन्तर्गत आने वाले सहस्रों वर्गों को सहस्रों प्रकार से प्रभावित करने वाली सहस्रों प्रवृत्तियों और परिस्थितियों पर प्रकाश डालना होगा । पशु प्रवृत्तियों की पक्षधर कुसंस्कारी मान्यताएँ भी एक दिन में नहीं बनी हैं । सतयुग के बाद निकृष्टता ने अपनी जड़ें लोक मानस में गहराई तक जमने के लिए अनेक तर्क, तथ्य, उदाहरण और प्रमाण प्रस्तुत किए हैं । तभी लोगों ने उन्हें लाभदायक माना और अपनाया है, यों कूड़े-कचरे के पर्वत को एक चिन्गारी जला

सकती है, पर अग्निकाण्ड के हानि रहित एवं सुनियोजित ढंग से सम्पन्न करने के लिए सूझ-बूझ और व्यवस्था का उपयोग करना पड़ेगा। स्थिति ऐसी ही है। विचार क्रान्ति का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसकी परिधि में हर मान्यता, हर प्रथा, हर अभिरुचि एवं व्यक्तित्व को समझने एवं उपयोगी परिवर्तन लाने की अभीष्ट सामग्री सम्पादित करनी होगी। यह समग्र विश्व क्रान्ति है। समग्र इस अर्थ में कि वस्तुतः चिन्तन ही सब कुछ है। चेतना का चिन्तन ही गुण धर्म है। सामर्थ्य का स्रोत वही है। परिस्थितियाँ तो उसका उपार्जन भर हैं। लोक चिन्तन को जिस अनुपात में परिष्कृत किया जा सकेगा उसी मात्रा में समस्याओं और विपत्तियों का समाधान होता चलेगा। उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में सुविधा सम्वर्धन की भी आवश्यकता तो समझी जा सकती है पर यही नहीं माना जा सकता कि चिन्तन में उत्कृष्टता के समावेश को उपेक्षित रखकर भी मानवी प्रगति एवं विश्व शान्ति का स्वप्न साकार हो सकता है। ऐसी दशा में नव सृजन का मूलभूत तथ्य एक ही है—विचारणा में उत्कृष्टता के समावेश का ऐसा ढाँचा खड़ा करना जो हर स्तर के व्यक्ति को उसकी स्थिति के अनुरूप उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकने में समर्थ हो सके। निश्चय ही यह बहुत बड़ा काम है। बड़े काम के लिए बड़े साधन चाहिए। इन साधनों में सर्वोपरि आवश्यकता—सद्भाव सम्पन्न मनीषा की है। शोध कार्य की सफलता इस उपलब्धि को समुचित मात्रा में मिल सकने पर निर्भर है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने अपने आरम्भिक चरण में चार प्रयोजन हाथ में लिए हैं—

(१) मनःतत्व की सामर्थ्य और उसकी प्रयोग पद्धति। (२) शरीर, मन और अन्तःकरण को निरोग बनाने में समर्थ यज्ञ उपचार प्रक्रिया। (३) चेतना और प्रकृति के अजस्र भण्डार से उपयोगी लाभ सम्पादन। (४) अध्यात्म और धर्म के तत्वदर्शन का सार्वभौम रूप। इन चारों को मिला देने से नवयुग के तत्वदर्शन की एक मोटी रूपरेखा एवं पृष्ठभूमि बनती है, जिसे ढाँचा या खाका कह सकते हैं। अभी इतने ही साधन सम्भव हैं इसलिए जितनी सौड़ उतने पैर पसारे जा रहे हैं। इन चारों वर्गों के इतने भेद-उपभेद हैं और उनमें से हर प्रभेद इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मनुष्य के असंख्य पहलू हैं, किसी को कोई एक प्रभावित करता है, किसी को दूसरा। ऐसी दशा में किसी को भी अछूता नहीं छोड़ा जा सकता। समान विचार क्रान्ति का तात्पर्य ही यह है कि किसी भी छेद से नाव में पानी न घुसने पाये। प्रतिगामिता और कुसंस्कारिता के लिए कोई भी मोर्चा ऐसा खाली न छोड़ा जाय जिससे होकर शत्रु को भीतर घुस पड़ने, सुरक्षा दीवार के अन्य पक्षों को तोड़ने का अवसर मिल जाय।

ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया—पहले चरण की मोटी रूपरेखा काबू में आते ही अगले चरण उठेंगे और एक-एक करके उन सभी प्रसंगों का स्पर्श करेंगे जिनकी ओर अभी मात्र संकेत किया गया है। इन पंक्तियों में तो उनका वर्गीकरण भी करते नहीं बन पड़ रहा है। संक्षेप में इतना जान लेना ही पर्याप्त होगा कि शोध का आरम्भ हो रहा है अन्त होने में सम्भवतः एक पूरी पीढ़ी खप जायेगी। इसके लिए कितने मनीषियों की आवश्यकता पड़ेगी यह कहना कठिन है। यह सेतुबन्ध इतना बड़ा है कि इसमें कितने सहयोगियों का कितना ही अनुदान खपाया जा सकता है। साधन अधिक होने से काम जल्दी होता है। यों मंथर गति से चलने वाली चींटी भी कभी न कभी तो पर्वत के शिखर पर भी जा पहुँचने में सफल हो सकती है।

इन दिनों शोध संस्थान में कानून, चिकित्सा, दर्शन, साहित्य एवं विज्ञान के पोस्ट ग्रेजुएट एवं न्यूनाधिक इसी योग्यता के प्रायः दो दर्जन कार्यकर्ता क्रिया संलग्न हैं। इतनी जन-शक्ति से भी काम तो चल पड़ा है पर कार्य के विस्तार और जल्दी निष्कर्ष तक पहुँचने की बात का ध्यान आने पर प्रतीत होता है कि शोधकर्ताओं की इतनी जन-शक्ति बहुत स्वल्प है। उससे कई गुनी विस्तृत और गहरी मनीषा की अभी और भी आवश्यकता है ताकि प्रथम चरण को पूरा करने और दूसरे की तैयारी करने का उत्साहवर्धक आधार खड़ा हो सके।

प्रस्तुत शोध के लिए स्वयं सेवी प्रकृति की, ऐसी ही मनीषा ही अपेक्षित है जिसके लिए पारिश्रमिक चुकाने की चिन्ता न करनी पड़े। इतने बड़े पुण्य प्रयोजन में प्रतिभाओं को पारिश्रमिक देकर उपलब्ध करना सम्भव भी नहीं हो सकता। राम को, कृष्ण को, बुद्ध को, गाँधी को असंख्य सहयोगियों के सहारे अपने अभियान चलाने पड़े। इनमें जो सम्मिलित हुए उनमें से कदाचित ही किसी की प्रतिभा को मूल्य देकर खरीदा गया हो, खरीदने के लिए साधन भी नहीं जुट सकते थे। ठीक ऐसा ही प्रयोग विचार क्रान्ति अभियान के अन्तर्गत कार्य करने वाले अनेकानेक शोधकर्त्ताओं के सम्बन्ध में हो सकता है। जो सहयोग करने के लिए अपने को योग्य समझते हों उन्हें यह भी देखना पड़ेगा कि उन्हें उसके बदले में पारिश्रमिक तो नहीं माँगना पड़ेगा। आमतौर से अपने-अपने घर से निर्वाह व्यय उठाकर सहयोग करने के लिए उपयुक्त परिस्थिति वालों का ही यहाँ आह्वान किया गया है। इसके बाद उनका नम्बर आता है जिनको परिवार के लिए कुछ नहीं भेजना पड़ेगा, मात्र अपनी ब्राह्मोचित शरीर यात्रा के लिए निर्वाह व्यय लेने से काम चल जायेगा। इससे अधिक कुछ करना मिशन के लिए सम्भव भी नहीं है।

यह चर्चा उनके सन्दर्भ में हो रही है जो पूरा समय प्रस्तुत शोध प्रयोजन में देकर एवं ब्रह्मवर्चस में स्थिर रूप से रहकर योगदान चाहते हैं। इनके अतिरिक्त उन लोगों की भी बड़ी संख्या में आवश्यकता पड़ेगी जो ब्रह्मवर्चस में आकर न्यूनतम दो महीने ठहर सकते हैं अथवा अपने घर पर रहकर ही दो घण्टा प्रतिदिन इस पुण्य प्रयोजन के लिए लगाते रह सकते हैं। समीपवर्ती बड़े पुस्तकालयों से सम्बन्ध साधने और वहाँ से निर्धारित विषय की पुस्तकें प्राप्त करने और उनमें से बताए हुए सन्दर्भ ढूँढ़ते रहने का कार्य अपने-अपने घरों पर भी चलाया जाता रह सकता है।

महाकाल ने विभीषिकाओं से जूझने और नव-सृजन की उमंगें उभारने का निश्चय किया है। इस प्रवाह को युगान्तरीय चेतना के रूप में तूफानी गति से उभरता देखा जा सकता है। जाग्रत आत्माओं पर इसका प्रभाव सर्वप्रथम पड़ता है, सूर्य की प्रथम किरणें पर्वत की ऊँची चोटियों पर ही चमकती हैं। दूध गर्म करने पर चिकनाई का अंश उभरकर मलाई के रूप में तैरने लगता है। इन दिनों परिवर्तन की ऊर्जा वैसा ही प्रयोग कर रही है। जाग्रत आत्माओं के अनेकानेक स्तर अपने उपयुक्त काम

प्राप्त करने और उसमें प्राण-प्रण से जुट पड़ने में अपनी विशेषता का परिचय दे रहे हैं । अब बारी मनीषा की है । वह जहाँ कहीं भी जीवित हो, भावना-चिन्तन एवं भाव संस्थान का नव-निर्माण करने के लिए आगे आये । इस स्तर के अनुरूप रिटायर लोगों की—आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी—गृहस्थ, भार से बचे हुए अविवाहितों की कमी नहीं । उनकी मनीषा को विशेष रूप से युग चेतना ने पुकारा है । व्यस्त लोग भी श्रद्धा रहने पर कुछ तो सहयोग करते ही रह सकते हैं । ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने ऐसे सभी लोगों का सहयोग आमन्त्रित किया है जिनमें मनीषा अस्तित्व ही नहीं वरन् युग सृजन के लिए आदर्शवादी उमंगें भी उमँगती हों ।

वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षण

अध्यात्म उपचारों की वैज्ञानिकता असंदिग्ध है । यज्ञ प्रक्रिया, योग साधनाएँ, ध्यान, मन्त्र विद्या आदि के शरीर, मन एवं अन्तःकरण पर प्रभाव तथा स्थूल एवं सूक्ष्म रोगों से निवृत्ति का वर्णन आर्ष ग्रन्थों में किया गया है । इन उपचारों का आश्रय लेकर मानव दीर्घजीवी हो सकता है, यह अध्यात्म विज्ञान का प्रतिपादन है । मानसिक एवं मनोशारीरिक व्याधियों पर पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानियों का ध्यान अब गया है । परन्तु इनके कारण और निवारण की व्यवस्था योग सूत्रों एवं अन्य प्रतिपादनों में पहले सांगोपांग वर्णित है । अध्यात्म दर्शन का कथन है कि मानसिक सन्तुलन एवं उत्कृष्ट चिन्तन न केवल भौतिक समृद्धि हेतु आवश्यक है, अपितु आत्मिक क्षेत्र में उन्नति के लिए, शरीर एवं मन को स्वस्थ बनाये रखने के लिए भी जरूरी है । इसी कारण दैनिक जीवन में साधना, उपचारों एवं आस्तिकता के सिद्धान्तों को समावेशित करने एवं उत्कृष्ट चिन्तन को क्रिया रूप में परिणत करने के लिए आत्म-प्रशिक्षण की इन प्रक्रियाओं को अपनाये रहने का निर्देश ऋषि देते आये हैं ।

वस्तुतः रोग निवारण मात्र ही इन अध्यात्म उपचारों का उद्देश्य नहीं था । इन सबके मूल में सन्निहित तथ्य था—अपने सूक्ष्म संस्थानों को जाग्रत कर अन्तःकरण को बलिष्ठ बनाना । अन्तःकरण में प्रस्फुटित उमंगें ही दृष्टिकोण को विकसित करती हैं एवं शारीरिक पुरुषार्थ हेतु निर्देश देती हैं । बिना मूल को सींचे-वृक्ष के बढ़ते रहने एवं फलों के आने की कामना करना निरर्थक है । मानव के समग्र स्वास्थ्य के विकास-शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक स्वास्थ्य सम्वर्धन को मुख्य लक्ष्य मान समस्त योग साधना उपचारों, यज्ञ विधानों एवं मन्त्र विज्ञान के सूत्रों का प्रावधान अध्यात्म-शास्त्र में किया गया है । केवल शरीर तक ही सीमित रहने की भूल से भौतिक विज्ञान भी फलतः भावनाओं का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र अधूरा रह गया । सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन इसी की देन है । अस्तु समग्र स्वास्थ्य में भावनाओं का परिष्कार या आत्मिक जगत की शोध और बोध दोनों आवश्यक हैं यह केवल अध्यात्म से ही सम्भव है, उसी से मनुष्य को शान्ति, प्रसन्नता और प्रगति का मार्ग मिलता है, आश्चर्यजनक दीखने वाली सिद्धियाँ और सामर्थ्यें भी ।

प्रत्यक्षवाद की माँग यही थी कि इन उपचारों की प्रामाणिकता को प्रयोगों की कसौटी पर कसा जाय । यदि ऐसा नहीं किया गया तो वे अश्रद्धा की दृष्टि से ही देखे जाते रहेंगे । ऐसे में पुरातन अध्यात्म विज्ञान की तो अवमानना है ही, जन-समुदाय उस लाभ से वंचित रह जायेगा जो इन्हें जीवन में उतारने से प्राप्त होता है । ब्रह्मवर्चस की शोध प्रयोगशाला उन यन्त्र उपकरणों से सुसज्जित की गई है जो अध्यात्मवादी दृष्टिकोण अपनाने और साधना प्रयोजनों में संलग्न होने की प्रतिक्रिया को प्रमाणित कर सके । पदार्थ विज्ञान एवं अध्यात्म दर्शन की सुयोग्य प्रतिभाओं को इस कार्य में तन्मयतापूर्वक लग जाने एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के इस समग्र स्वरूप को प्रतिष्ठित करने का महत् कार्य सौंपा गया है ।

वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ ऐसे तो विश्व में सहस्रों हैं । करोड़ों रुपयों के अनुदानों से विनिर्मित इन शोधशालाओं में चिकित्सा-विज्ञान एवं पदार्थ विज्ञान के क्षेत्र में नित नयी खोजें हो रही हैं । पेनिसिलिन के आविष्कार से लेकर परखनली शिशु के निर्माण तक अनगिनत मनस्वी-तपस्वियों ने अपनी जीवन की आहुतियाँ देकर मानवता की विलक्षण सेवा की है । कई शोध प्रबन्ध लिखे गए हैं व कई लिखे जा रहे हैं । हर शोध कार्य के पीछे वैज्ञानिक यही मान्यता लेकर चलते हैं कि वे जो अनुसन्धान कर रहे हैं, वह एक विनम्र प्रयास है । उन्हें निराश भी होना पड़ सकता है एवं कई असफलताओं के बाद सफलता हाथ आ सकती है । इसी खिलाड़ी भावना के साथ एक वैज्ञानिक कार्य सम्पादित करता है । वैज्ञानिक शोध एक आध्यात्मिक पुरुषार्थ है । मानवता की सेवा ही उसके पीछे निहित उद्देश्य है । विडम्बना यह है कि सत्यानुसन्धान हेतु जिस गम्भीरता से वैज्ञानिकों ने पदार्थ विज्ञान के क्षेत्र में खोज की उतनी गहराई से अध्यात्म उपचारों की वैज्ञानिकता पर ध्यान नहीं दिया गया । मात्र आप्तवचनों की दुहाई देते रहने से बात नहीं बनती । इसी कारण ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में यथासम्भव वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा, तदुपरान्त सनातन प्रतिपादनों द्वारा, इन चिर पुरातन सिद्धान्तों को प्रयोगशाला में प्रमाणित करने की आवश्यकता एवं महत्ता को समझा गया तथा तदनुरूप व्यवस्था भी बनायी गई ।

इस क्षेत्र में जहाँ-तहाँ छुट-पुट प्रयास हुए हैं । विशेष ध्यान परामनोविज्ञान की शोधों पर ही दिया गया है । पाश्चात्य जगत् में अतीन्द्रिय सामर्थ्य, दूरश्रवण, दूरदर्शन आदि की घटनाओं की वैज्ञानिकता पर अनगिनत शोधशालाएँ कार्य कर रही हैं । मात्र कौतूहल ही यदि उद्देश्य हो तो तथ्य गहराई से समझ में नहीं आ सकता । भारतीय अध्यात्म इन सामर्थ्यों की महत्ता का प्रतिपादन भी करता है एवं इन्हें साधना से सिद्धि के सोपानों में से एक प्रतिपादित करता है । वस्तुतः कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है । मानव शरीर की रहस्यमय पर्तें एवं विराट् ब्रह्माण्ड की विलक्षणताएँ अपने समक्ष शोध के अनगिनत आयाम लिए सामने खड़ी हैं । आवश्यकता उन्हें तर्क, तथ्य एवं प्रमाण के आधार पर प्रतिपादन करने की है । यही दुःसाहस इस शोध संस्थान ने कर दिखाने का निश्चय किया है ।

शोध प्रयोजन का कार्यक्षेत्र जितना विस्तृत है, उसे देखते हुए साधनों, यन्त्रों एवं कुशल वैज्ञानिकों की अभी अनेक गुनी वृद्धि उपेक्षित है । ये प्रयास और भी स्थान पर चल पड़ें, यह उपेक्षा की जा रही है । सीमित साधनों में जितना सम्भव था, उसके अनुरूप प्रयोगशाला की व्यवस्था बना दी गई है । परन्तु विस्तार

की सम्भावनाएँ असीम हैं । उनके भी देर-सवेर में सम्पन्न होने की आशा है ।

शरीर पदार्थ परक है । इसलिए उसकी संरचना तथा कार्य पद्धति को यन्त्र-उपकरणों की सहायता से सरलतापूर्वक जाना सकता है । इससे आगे की पर्त मानसिक है । इसका केन्द्र कपाल गह्वर से लेकर मेरुदण्ड के अन्तिम छोर तक चला गया है । मनोविज्ञान के अन्तर्गत मस्तिष्कीय संरचना एवं चिन्तन के उतार-चढ़ाव आते हैं । इस क्षेत्र में वैज्ञानिक क्षेत्र में जितनी खोजें हुई हैं, उसे उत्साहवर्धक कह सकते हैं, पर यह नहीं कहा जा सकता कि यही अन्तिम सत्य है । शरीर और मन के बारे में जो जाना जा सका है, वह मात्र उनका भौतिक पक्ष है । इस सन्दर्भ में जो भी प्रगति हुई है, उसका प्रभाव मानव के बहिरंग जीवन पर ही पड़ सकता है । शारीरिक स्वास्थ्य एवं मस्तिष्कीय सन्तुलन बनाये रखने तक ही इन उपलब्धियों की चरम सीमा समझी जा सकती है ।

चेतना का मूल अस्तित्व 'अहम्' (ईगो) उपरोक्त दोनों पर्तों से बहुत आगे की स्थिति है । व्यक्तित्व के सुव्यवस्थित कलेवर का केन्द्र-बिन्दु यही अहम् है । उसकी आस्थाओं, आकांक्षाओं पर ही निर्भर है—अन्तरंग जीवन का स्वरूप । जीवनी शक्ति का उद्गम है । अध्यात्म भाषा में इसे अन्तःकरण कहते हैं ।

अन्तःकरण का अपना अस्तित्व है और विज्ञान है । आस्थाओं और आकांक्षाओं का उन्मूलन अभिवर्धन इसी गुह्य संस्थान में होता है । सच्ची समर्थता और प्रखरता प्राप्त करने के लिए इसी अन्तराल को परिष्कृत करना होता है । आत्मबल यहीं से उपजता है और अनेकानेक प्रतिभाओं की विशिष्टता और विभूतियों की उपलब्धियाँ यहीं से मिलती हैं । व्यक्ति की परिस्थितियों का परिष्कार एवं परिवर्तन इस अन्तःकरण को स्वस्थ समुन्नत बनाये रखने से ही होता है । यही है सामाजिक स्वास्थ्य चिरस्थायी सुख-शान्ति का स्वरूप । अध्यात्म उपचारों की वैज्ञानिकता को समझने से पहले इस मूल दर्शन को हृदयंगम करना होगा ।

ब्रह्मवर्चस के दो पक्ष हैं—एक तत्वदर्शन अर्थात् ब्रह्मविद्या एवं दूसरा तप साधन अर्थात् योगाभ्यास । ज्ञान और कर्म थ्योरी एवं प्रेक्टिस का समन्वय ही किसी ठोस प्रगति का आधार बनता है । ज्ञान पक्ष का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन किया जा रहा है जो प्रयोग परीक्षण का प्राण है । साथ ही क्रिया पक्ष-तपश्चर्या की प्रतिक्रियाओं की जाँच परख भी की जा रही है । साधना-योगाभ्यास के उपरान्त शरीर की जैव रासायनिक गतिविधियों एवं जीवनी शक्ति के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका लेखा-जोखा हठयोग की क्रियाओं की प्रतिक्रिया के रूप में तो छुट-पुट कहीं लिया भी गया है । परन्तु ऐसा, जिसे समग्र प्रयास कहा जा सके, अभी कहीं नहीं हो पाया । 'समग्र' अर्थात् ऐसे निष्कर्ष जो मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक परिष्कार की स्थिति का मापन कर सकें । अवहेलना उन निष्कर्षों की भी नहीं की जा रही है जो मात्र स्थूल क्रियाओं का ही प्रतिपादन करते हैं एवं शारीरिक बलिष्ठता हेतु आसन आदि उपचारों की बात करते हैं, न इन प्रतिपादनों की जो ध्यान को एक मानसिक व्यायाम मात्र मानकर उसे ही समस्त साधनाओं की फलश्रुति मानते हैं । प्रयत्न इन प्रयासों को पूर्णता देने का है जिससे मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व के विकास का, मानसिक शान्ति का, सामाजिक नव-सृजन का पथ-प्रशस्त हो ।

इन शोध प्रयत्नों से पीड़ित-पतित मानवता के लिए कुछ ऐसे सुनिश्चित आधार छोड़े जाने हैं, जो आने वाले सहस्रों वर्षों तक चिरस्थायी सुख-शान्ति का आधार बन सकें । यह बन पड़ा तो मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की बात मात्र मधुर कल्पना ही नहीं रह जायेगी वरन् उसे एक यथार्थता के रूप में निकट भविष्य में ही चरितार्थ होते देखा जा सकेगा ।

अध्यात्म परक रीति-नीति अपनाने से क्या प्रभाव पड़ता है इसकी जाँच-पड़ताल करने के लिए वे सभी उपकरण आवश्यक थे, जो रोग निदान हेतु किसी भी आधुनिक प्रयोगशाला में प्रयुक्त होते हैं । प्रारम्भिक स्थिति में जिन अध्यात्म उपचारों को हाथ में लिया गया है, वे हैं—

(१) योग साधना,
(२) यज्ञ विज्ञान,
(३) मन्त्र विज्ञान ।

इन तीन चिर पुरातन उपचारों को प्रयोग, परीक्षण की कसौटी पर कसा जाता है । साधन हैं प्रयोगशाला में लगे बहुमूल्य यन्त्र । अधिकांश उपकरण भारत में बने हुए हैं । परन्तु कुछ की व्यवस्था विदेशों से आयातित करके की जा रही है । उनके लिए उपयुक्त वातानुकूलित कक्ष भी बनाये गए हैं । प्रयोगशाला को अपना सम्पूर्ण स्वरूप लेने में कुछ वर्ष लगेंगे । फिलहाल कार्य आरम्भ होने जैसी व्यवस्था तो हो ही गई है । योग-साधना, यज्ञ-विज्ञान एवं मन्त्रविज्ञान तीनों परस्पर सम्बन्धित हैं । अतः उपकरणों के प्रयोग उपयोगों का भी कोई सीमा बन्धन नहीं है ।

कार्डियालॉजी कक्ष में हृदय की कार्य-प्रणाली के परीक्षण हेतु उपयुक्त उपकरणों को जुटाया गया है । हृदय रोग आधुनिक विकसित संस्कृति का एक अभिशाप है । दैनिक जीवन के तनाव, खान-पान की अनियमितता एवं अनास्थाओं ने हृदय रोग को मृत्यु के लिए उत्तरदायी एवं एक प्रमुख कारण बना दिया है । निरन्तर चिकित्सा विज्ञानियों की यह शोध चली आ रही है कि हृदय रोग का कारण क्या है ? रक्त में बढ़ने वाला कोलेस्टेरॉल अथवा मानसिक तनाव ? कई शोध प्रबन्ध इस पर लिखे गए हैं । तथ्य तो यह बना ही हुआ है कि औद्योगिक प्रगति के साथ राष्ट्र में सुख समृद्धि आयी है, साथ ही इस रोग की बाढ़ भी । औषधियों से इसका निवारण हो पाता तो श्रेयस्कर था, परन्तु चिकित्सकों की हताशा इसी से समझी जा सकती है कि चिकित्सा व्यय का अधिकांश इसी एक रोग की शोध में व्यय होते हुए भी इस रोग से मृत्यु को टाला नहीं जा सकता है । जबकि इन्टेन्सिव केयर यूनिट के रूप में हृदय रोगों के उपचार हेतु महँगे उपकरण अधिकांश चिकित्सालयों में लगे हुए हैं । अध्यात्म विज्ञान इसका उपचार बताता है । जीवन को नयी दिशा-नया स्वरूप देने का रास्ता दिखाता है । समस्त योग-साधनाओं, ध्यान, व्रत उपासनाओं के पीछे आस्थाओं को प्रगाढ़ बनाना एवं मन को तनाव रहित करना ही एकमात्र उद्देश्य है । स्थूल प्रतिक्रियाएँ तथा रक्त में चर्बी की कमी एवं रोग के लक्षणों में परिवर्तन तो मात्र उनका बाह्य स्वरूप है ।

नियमित संयमित जीवन, समस्याओं को हल करने के लिए सही दृष्टिकोण, उदात्त परिष्कृत भावनाएँ—स्वस्थ रहने हेतु

आवश्यक हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्मवर्चस में भी योग साधनाओं एवं तपश्चर्यायुक्त अनुष्ठानों का एक स्वरूप बनाया गया है।

इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम उपकरण हृदय की गति, लय तथा विद्युत तरंगों का मापन कर उसकी स्वस्थ-अस्वस्थ स्थिति बताता है। इसके साथ जुड़ा ऑटोरिकॉर्डर, हार्ट रेट मीटर तथा कार्डियोस्कोप इसे एक समग्र उपकरण बनाता है। संस्थान में टेलीमेट्री की भी व्यवस्था की गई है जिससे वायरलेस द्वारा साधक को परीक्षण के प्रति सचेत हुए बिना जाँचा जाता है। साधना की अवधि में होने वाले विभिन्न विद्युत परिवर्तनों का, तरंगों का निरीक्षण किया जाता है एवं आवश्यक होने पर उनका स्थायी रिकॉर्ड ले लिया जाता है। साधना कक्ष कार्डियोलॉजी कक्ष में ही विनिर्मित है। जिससे नियत समयावधि तक किए गए ध्यान, एकाग्रता, शिथिलीकरण, विभिन्न मुद्राएँ, त्राटक आदि उपचारों की प्रतिक्रिया रिकॉर्ड की जा सके। चिकित्सालय के हृदय रोग विभागों में शारीरिक व्यायाम के बाद ई. सी. जी. लेकर उस व्यक्ति के भविष्य में हृदय रोग से ग्रसित होने की सम्भावनाएँ पता लगायी जाती हैं। वैसी ही व्यवस्था यहाँ भी है। अभी तो साधारण एक्सरसाइजर से ही ई. टी. टी. किया जाता है। ट्रेड मील की भी व्यवस्था की जा रही है। विशिष्ट बात यह है कि इन समस्त सम्भावनाओं का निरस्तीकरण साधक को योग साधना के विभिन्न उपचारों एवं यज्ञ प्रक्रिया द्वारा सिखाया जा रहा है। यज्ञ में प्रयुक्त विभिन्न वनौषधियाँ इस विशिष्ट रोग पर प्रभाव डालने वाली प्रामाणिक औषधियाँ होंगी। इस प्रकरण की विस्तृत चर्चा यज्ञ चिकित्सा वाले अध्याय में की गई है।

षटचक्रों की स्थिति सूक्ष्म शरीर में है। योगविज्ञान के अनुसार अनाहत चक्र हृदय से सम्बन्धित होता है। आत्मिक व्याधियों का वर्णन पाश्चात्य विज्ञान तो नहीं करता, पर अध्यात्म विज्ञान करता है। जीवन में अत्यधिक मानसिक दबाव वाला व्यक्ति हृदय रोग से ग्रस्त होता है, यह अब पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान भी मानने लगा है। उपचार औषधियों से नहीं—अन्तःकरण को प्रबल एवं आस्थाओं को प्रगाढ़ बनाने से ही हो सकता है। प्रायश्चित प्रक्रिया आध्यात्मिक मनश्चिकित्सा का प्रमुख अंग है। तपश्चर्यायुक्त वातावरण में सत्संग, स्वाध्याय एवं योग साधना के विभिन्न उपचार क्रम, यज्ञ के औषधि युक्त दिव्य वातावरण एवं मन्त्रोच्चार के समवेत स्वर के बीच साधक कैसे अपने आपको स्वस्थ जीवन की ओर उन्मुख कर सकता है, यह प्रत्यक्ष यहाँ देखा जा सकेगा।

प्राणायाम की महत्ता सर्वत्र प्रतिपादित है। "गहरी श्वास को अपना स्वभाव बनाइए" यह परामर्श चिकित्सकों का है। परन्तु यह संस्कार हिन्दू अध्यात्म में चिर पुरातन काल से जीवित है। प्राणायाम के साथ जुड़ी प्राणाकर्षण-प्राण धारण जैसी सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को मापा जाना तो सम्भव नहीं, परन्तु इनकी स्थूल प्रतिक्रियाएँ तथा फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि, रक्तशोधन क्षमता का कई गुना बढ़ जाना, विकार तत्वों को निकाल फेंकने की सामर्थ्य में वृद्धि तथा जीवनी शक्ति के उन्नयन को मापा जा सकता है। इसके लिए वायटेलोग्राफ, पी. एच. मीटर तथा ब्लड गैस एनालायजर उपकरण प्रयुक्त हो रहे हैं। वायटेलोग्राफ द्वारा फेफड़ों की कार्यक्षमता का ग्राफिक मापन, पी. एच. मीटर द्वारा रक्त की अम्लता का स्तर तथा ब्लड गैस एनालाइजर द्वारा रक्त में विद्यमान ऑक्सीजन, कार्बनडाइ-ऑक्साइड तथा बाइकार्बोनेट का विश्लेषण किया जा रहा है। ये तीनों ही उपकरण पल्मोनरी कक्ष में लगाये गए हैं। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ प्रवेश करने वाली वायु के घटकों में परिवर्तन, रक्त की गैसों का विश्लेषण एवं ऐसिड-बेस सन्तुलन यहाँ रिकॉर्ड किया जाता है।

औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप कई रोग पिछले कुछ वर्षों में उभर कर आये हैं, जिन्हें प्रत्यक्षतः आधुनिक सभ्यता का अभिशाप ही कहा जाना चाहिए। श्वास के साथ विषाक्त वायु अन्दर जाकर प्रभाव दिखाती है। साथ ही हृदय की हर धड़कन के साथ जीवकोषों में जमा होने वाले विकार को (रोगों को) फेफड़े से बाहर निकाल फेंकने में अक्षम होते हैं। जीवनीशक्ति समाप्त होती चली जाती है एवं रोगों के प्रवेश का मार्ग खुल जाता है। जीवाणु-विषाणु के आक्रमण को एक स्वस्थ शक्ति अपनी प्राणवायु के माध्यम से जीवनी शक्ति को बलवती बनाकर ही निरस्त कर पाता है।

अस्वस्थ फेफड़े, साधना उपचार, प्राणायाम तथा वनौषधियों-यजन से किस तरह स्वस्थ हो सकते हैं, यह पल्मोनरी प्रयोगशाला में प्रमाणित करने का प्रयास किया जा रहा है। भोगियों की रक्त अम्लता अधिक तथा श्वास गति तेज होती है। योगियों की रक्त अम्लता कम तथा श्वास गति भी कम होती है। ओजस् एवं तेजस् बाह्य रूप में शक्ति धाराओं के रूप में इसी कारण दृष्टिगोचर होता है। इन वर्णित तथ्यों की वैज्ञानिकता का पता लगाना ही इस शोध का लक्ष्य है।

बी. एम. आर. उपकरण शरीर की चयापचयिक क्रियाओं को मापता है। साधना द्वारा शरीर की समस्त मेटाबॉलिक क्रियाओं को न्यूनतम स्थिति तक पहुँचा कर शक्ति-क्षय को रोका जा सकना तथा उसे मानसिक एवं आत्मिक उद्देश्यों में नियोजित करना सम्भव है। यह उपकरण इसी प्रक्रिया को मापने हेतु प्रयुक्त हो रहा है।

शोध संस्थान का स्वरूप, नर्सिंग होम या रोग की जाँच करने वाली पैथोलॉजी प्रयोगशाला का नहीं है। परन्तु जितनी व्यवस्था वहाँ होती है, उससे कुछ परिष्कृत एक अलग ही उद्देश्य से विनिर्मित सूक्ष्म जैविकी कक्ष (माइक्रोबायोलॉजी चेम्बर) में की गई है। यहाँ साधक के रक्त तथा अन्य शरीर द्रव्यों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है।

जीवाणु एवं विषाणु के बढ़ते हमले मानव की जीवनी शक्ति के कम हो जाने के कारण हैं अथवा उनकी घातक क्षमता में अभिवृद्धि के कारण ? यह प्रश्न वैज्ञानिक शोध का मूल विषय है। नित नये एण्टीबायोटिक्स एवं वैक्सीन की जानकारी चिकित्सकों को होती जा रही है। परन्तु जितनी नयी खोजें होती हैं, उतनी ही जातियाँ विषाणुओं की और उत्पन्न हो जाती हैं। साथ ही इन औषधियों की संख्या में वृद्धि के साथ इनके उपयोग से होने वाले दुष्प्रभाव भी बढ़ते जा रहे हैं। सल्फा एवं क्लोरोमाइसिटिन किसी समय जीवन रक्षक औषधियाँ मानी गई थीं। परन्तु अब इनके दुष्परिणामों का इतना ज्ञान जनमानस को हो गया है कि चिकित्सक को देने से पहले कई बार विचार करना पड़ता है। मनुष्य की जीवनी शक्ति से खेलने वाली ये औषधियाँ अब धीरे-धीरे अपनी शक्ति एवं लोकप्रियता खोती जा रही हैं।

साधना उपचार, वनौषधि-यजन, यज्ञावशिष्ट (घृत, भस्म) के उपयोग से शरीर में क्या-क्या रासायनिक परिवर्तन होते हैं—यह विभिन्न उपकरणों के द्वारा सूक्ष्म जैविकी कक्ष में रिकॉर्ड किया जाता है । कैलोरीमीटर इनमें प्रमुख है । सूक्ष्म परीक्षण हेतु विभिन्न शक्तियों के माइक्रोस्कोप प्रयुक्त हो रहे हैं । कल्चर हेतु इन्क्युवेटर्स का उपयोग हो रहा है । बैक्टीरिया एवं फंगाई को प्रयोगशाला में उत्पन्न कर उन पर यज्ञधूम्र, अवशिष्ट एवं वनौषधि द्रव्यों का प्रभाव इसी उपकरण के माध्यम से देखा जा रहा है । इससे यह जाना जा सकेगा कि इन अवयवों में जीवाणु हनन क्षमता है या नहीं । कैलोरीमीटर की मदद से रक्त के विभिन्न रसायनों का विश्लेषण किया जा रहा है । यूरिया, शुगर, कोलेस्टेरॉल, एन्जाइम्स का विश्लेषण कर मानव शरीर की पूरी जैव-रासायनिक संरचना सामने प्रस्तुत की जा सकेगी । ये उपकरण पाँच कमरों को संयुक्त कर एक बनाये गए वातानुकूलित कक्ष में लगाये गए हैं ।

सहायता हेतु अन्य रिएजेन्ट्स एवं सहायक उपकरणों का भी प्रयोग हो रहा है । यथा—केमीकल बेलेन्स, ऑटोक्लेव, डिस्टिलेशन सेट, वाटर बाथ, हॉटएयर ओवेन, आइसोलेशन चेम्बर, सेण्ट्रीफ्यूज, थर्मोस्टेटिक हॉटप्लेट । ये उपकरण अन्य प्रयोगशाला में कुछ अन्य प्रयोजन हेतु प्रयुक्त होते हैं । शोध संस्थान में ये साधन हैं । साध्य बिल्कुल ही विभिन्न हैं ।

यज्ञधूम्र एवं भस्म के विश्लेषण हेतु भी एक कक्ष की व्यवस्था की गई है । ऑर्सेट एवं ग्राह्मलारेंस गैस एनालायजर्स तथा गैस क्रोमेटोग्राफी द्वारा यह पता लगाया जा रहा है कि इन धूम्रों में किन गैसों का समन्वित रूप है । वनौषधि एवं समिधा के यजन से बनने वाली भस्म एवं लकड़ी की राख में स्थूल एवं सूक्ष्म अन्तर क्या-क्या हैं तथा उनके उपयोग का भिन्न-भिन्न जीवाणु-विषाणु समूहों पर क्या प्रभाव होता है ? यह शोध की जा रही है ।

धूमीकृत औषधि तथा मुँह व रक्त मार्ग से जाने वाली औषधि किस तरह रक्त में स्वयं का स्तर बनाती हैं एवं किस मार्ग से उसका प्रभाव सर्वाधिक होता है, यह फार्मेकोडाइनेमिक्स के सिद्धान्तों द्वारा तथा विभिन्न परीक्षणों से पता लगाने का प्रयास किया जा रहा है ।

शोध की परिधि विशाल है—सम्भावनाएँ असीम । सारे कार्य एक साथ हाथ में ले लेने से समग्र परिपूर्णता तक पहुँचने में कठिनाई हो सकती है । शोध संचालकों द्वारा योजनाबद्ध रूप से ऐसा क्रम निर्धारित किया गया है कि तीनों अध्यात्म उपचारों के सभी पक्ष आगामी वर्षों में उपकरणों की कसौटी पर कसे जायें । इनमें से एक मुख्य परीक्षण है—सूक्ष्म ग्रन्थियों से स्रवित रस (हॉर्मोन्स) का विश्लेषण । हॉर्मोन्स के बारे में अभी बहुत कम जाना जा सका है । मात्र उनके स्थूल क्रिया-कलापों तक ही वैज्ञानिक दृष्टि सीमित रही है । शारीरिक बलवृद्धि-यौन विकास-व्यक्तित्व निर्माण में इन जादुई ग्रन्थियों का ही योगदान होता है । आसन सूक्ष्म व्यायाम होते हैं । उनके अलावा मुद्राएँ, बन्ध, प्राणायाम, एकाग्रता, ध्यान प्रक्रिया, शिथिलीकरण—इन सभी का प्रभाव इन रस ग्रन्थियों, उपत्यिकाओं एवं सूक्ष्म नाड़ी गुच्छकों पर पड़ता है । इससे स्रवित रस अन्तःकरण, मनस् एवं काया पर वांछित प्रभाव डालता है । नारी में स्त्रियोचित कोमलता एवं सम्वेदनाएँ इन्हीं रसों के कारण हैं । पुरुष की स्वभावगत रुक्षता एवं शारीरिक बल भी इन्हीं का प्रतिफल है ।

समस्त साधनाएँ, धर्मानुष्ठान, तपतितीक्षाएँ, व्यक्तित्व का नव निर्माण करती हैं । जिसमें शरीर बल को नहीं—सूक्ष्म शक्ति सम्वर्धन को प्रमुखता दी गई है । मनोबल-संकल्प शक्ति, उत्कृष्ट चिन्तन, श्रेष्ठ कार्य करने की उमंग जहाँ से उमंगती है, वह स्थान कोई और नहीं, मस्तिष्क का वह क्षेत्र है, जहाँ पीनियल-पिट्यूटरी जैसी ग्रन्थियाँ स्थित हैं । पीनियल की नवीनतम शोधों से इसकी स्नायु संरचना की जानकारी मिली है एवं चेतना का स्तर ऊँचा बनाये रखने के लिए उत्तरदायी हॉर्मोन्स सिरोटोनिन का स्तर यहीं सर्वाधिक पाया गया है । यौन-विकास हेतु समस्त प्रेरणाएँ इसी के द्वारा पिट्यूटरी को दी जाती हैं । इस क्षेत्र की शोध यदि और गहराई से की जा सके तो मानवी चेतना की रहस्यमय पर्तों का अनावरण सम्भव है । रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम के रूप में योग विज्ञानी सहस्रार चक्र की कल्पना करते आये हैं । चेतना को बनाये रखने एवं इसके ऊर्ध्वारोहण हेतु उत्तरदायी यह क्षेत्र असीम सम्भावनाओं से भरा पड़ा है । अतीन्द्रिय सामर्थ्य से लेकर सिद्धि-चमत्कारों की वैज्ञानिकता को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए जिस शोधकार्य की आवश्यकता थी, वह वर्तमान प्रयत्नों से पूरी होती दिखाई देगी, ऐसा विश्वास है ।

रेडियो इम्यूनोऐसे की तकनीक द्वारा शरीर के सभी रसस्रावों का विश्लेषण कर यह अध्ययन किया जायेगा कि साधना, यज्ञोपचार, मन्त्र चिकित्सा से किस स्तर का उन्नयन इन रसस्रावों में होता है एवं ओजस्, तेजस्, वर्चस की शक्तिधाराओं के जागरण में ये किस सीमा तक सहायक हो सकते हैं ।

मन्त्रविज्ञान वैज्ञानिकों के समक्ष एक चुनौती के रूप में खड़ा है । झाड़फूँक के रूप में यह आदिमकाल से प्रचलित है । परन्तु शब्द ब्रह्म की सामर्थ्य असीम है । इसी पर अध्यात्म का सारा ढाँचा खड़ा है । संगीत, स्वर लहरियों, शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म की महत्ता सर्वत्र प्रतिपादित है । यह भी प्रमाणित किया जा चुका है कि संगीत के प्रभाव से एकाग्रता बढ़ती है तथा शोर से व्यक्ति चिड़चिड़ा एवं तनाव ग्रस्त हो जाता है । इन्फ्रारेडियो तरंगों द्वारा रूस द्वारा कनाडा के विरुद्ध छेड़ा गया ध्वनि-युद्ध सर्वविदित है । चिकित्सा विज्ञान ने ध्वनि चिकित्सा द्वारा शरीर की विभिन्न व्याधियों का उपचार कर एक क्रान्ति की है । पुरातन प्रतिपादन है कि समवेत स्वर से उच्चारित ध्वनि प्रवाह शरीर की विभिन्न रहस्यमय पर्तों पर वांछित प्रभाव डालकर रसस्रावों एवं नाड़ी गुच्छकों को उत्तेजित करते हैं तथा मस्तिष्कीय तरंगों पर प्रभाव डालते हैं । इस तथ्य का वैज्ञानिक परीक्षण आसीलोस्कोप यन्त्र द्वारा ध्वनि प्रवाह को मापकर तथा इन तरंगों का प्रभाव शरीर की गतिविधियों पर देखकर किया जा रहा है । इस कार्य हेतु पॉलीग्राफ यन्त्र की सहायता ली जायेगी । यह एक मल्टीचैनल उपकरण है, जिससे मस्तिष्क की विद्युत तरंगों, नाड़ी का प्रवाह, रक्त-परिवहन, पुतलियों की गतिविधियाँ, शरीर का प्रतिदिन बदलता तापमान, रक्त की सघनता एवं अन्य कई घटकों का मापन इसी उपकरण की सहायता से होगा । माँसपेशियों की हलचलों तथा विद्युत तरंगों के मापन के लिए इ. एम. जी. उपकरण की सहायता ली जा रही है जो पॉलीग्राफ का ही एक भाग है । ध्यान साधनाएँ, शिथिलीकरण, प्राणायाम, विभिन्न औषधियों से

यज्ञोपचार एवं मन्त्रों का मस्तिष्क, नाड़ी संस्थान, रक्तवाही संस्थान एवं सूक्ष्म संस्थानों पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे मापा जा सकना इस उपकरण से सम्भव है । इसे विदेश से मँगाया जा रहा है । अभी से इसके लिए एक ध्वनि रहित, वातानुकूलित कक्ष की व्यवस्था बनायी जा रही है, जहाँ ध्वनि चिकित्सा के विभिन्न प्रयोग होंगे ।

साइकोमेट्री कक्ष में मन:विश्लेषण की व्यवस्था की गई है । अध्यात्म वस्तुतः परिष्कृत मनोविज्ञान है । मन की ऊपरी पर्तों तक ही मन:विश्लेषकों की पहुँच रही है । जबकि अध्यात्म विज्ञान मन की समग्र संरचना का वर्णन करता है एवं व्यक्तित्व के नव-निर्माण का मार्ग बताता है । समस्त साधकों एवं मानसिक तथा मनोविकार ग्रस्त रोगियों का एक सांगोपांग मनोविश्लेषण यहाँ किया जा रहा है, जिसमें प्रतिक्रिया, व्यवहार, बुद्धि-लब्धि आदि के विभिन्न प्रयोग हैं । साधन वे ही हैं परन्तु स्वरूप आध्यात्मिक है । आशीर्वाद, प्रायश्चित, धर्मानुष्ठान, तप-तितिक्षा, व्रत-आहार, ब्रह्मचर्य एवं योग साधनाओं का व्यक्तित्व के समग्र विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह जानने के लिए यह मनोविज्ञान कक्ष विनिर्मित किया गया है ।

इसके अतिरिक्त शोध संस्थान के प्रांगण में उन्हीं जड़ी-बूटियों को प्रायोगिक तौर पर उगाया जा रहा है, जिन्हें द्रव्य पदार्थ के रूप में यज्ञोपचार में प्रयुक्त किया जायेगा । बाहर से आने वाले दर्शनार्थी यहाँ उन प्रामाणिक वनौषधियों का एक परिचय पा सकेंगे, जिनकी महिमा उन्होंने सुनी अथवा पढ़ी है ।

पौधों की वृद्धि एवं जैव-रासायनिक संरचना पर प्रभाव का परीक्षण करने के लिए पादप कार्यिकी प्रयोगशाला में शोध कार्य चल रहा है । इसमें पौधों पर यज्ञ धूम्र, ऊर्जा, वातावरण एवं सामूहिक मन्त्रोच्चार की शक्ति के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है । पादप रोग विज्ञान का भी एक कक्ष इसी से लगा हुआ है जिसमें पौधों को रोगी बनाने वाले विभिन्न जीवाणुओं पर यज्ञीय प्रक्रिया का प्रभाव देखा जाता है । इस कार्य के लिए छत पर ग्लास हाउस एवं ग्रीन हाउस भी बनाया जा रहा है जिससे यह कार्य पूर्णतः वैज्ञानिक वातावरण में सम्पन्न हो सके ।

इलेक्ट्रोमायो ग्राम—शिथिलीकरण के माँसपेशियों की विद्युत पर सम्भावित प्रभावों का अंकन ।

सोलर हीटर—सविता देवता की भौतिक सामर्थ्य का एक प्रतीक-सौर हीटर ।

सूर्य की शक्ति का उपयोग कर वैज्ञानिकों ने सौर ऊर्जा चलित अनेकानेक उपकरण बना लिए हैं । ईंधन की कमी का यही एकमात्र विकल्प अब शेष बच रहा है । सूर्य की आध्यात्मिक महत्ता का प्रतिपादन भारतीय अध्यात्म करता आया है । गायत्री मन्त्र में सविता देवता से प्रार्थना की जाती है कि वे बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें । सविता साधना हेतु साधना कक्ष एवं सविता की भौतिक सामर्थ्य की परिचायक सोलर बैटरी चार्जर, कूकर, हीटर, एयर कण्डिशनिंग प्लांट की व्यवस्था शोध संस्थान की छत पर की जा रही है । भौतिक एवं आध्यात्मिक सत्ता का यह समन्वय ही इस संस्थान की अद्भुतता का परिचय देता है ।

संस्थान के मुख्य द्वार पर एक भव्य प्रदर्शनी है, जहाँ प्रशिक्षित मार्गदर्शक दर्शनार्थियों को विभिन्न चित्रों एवं यन्त्र-उपकरणों के माध्यम से संस्थान की गतिविधियों का परिचय देते हैं । पूरी प्रयोगशाला एवं अनुसन्धान प्रभाग का यह मिनी संस्करण बुद्धिजीवी मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ता है ।

यह शोध संस्थान विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय हेतु एक पुनीत लक्ष्य लेकर अपनी गतिविधियाँ चला रहा है एवं अपेक्षा करता है कि बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक, तत्वदर्शी, चिन्तक, मनीषी जहाँ भी हों, आयें, इसका अवलोकन करें एवं इसके कार्य-कलापों में अपना योगदान दें । अपने सीमित साधनों द्वारा यह एक विनम्र-सा प्रयास है जिससे चिर पुरातन आर्ष प्रतिपादन एवं चिरनवीन वैज्ञानिक मान्यताओं का समन्वय हो सके एवं पीड़ित मानवता के लिए ऐसा पथ-प्रशस्त हो जिससे समाज के नव-निर्माण, समग्र विकास एवं चिरस्थायी सुख-शान्ति के सुनिश्चित आधार खड़े हो सकें । वैज्ञानिक शोधें जहाँ भी चल रही हों, इन प्रयासों की समग्रता को समझें एवं उद्देश्य के अनुरूप अपनी क्रियाओं को भी ऐसा स्वरूप दें तो जिस अध्यात्म सिद्धान्तों को आज झुठलाया जा रहा है उन्हीं की असाधारण उपयोगिता दृश्य रूप से ही सिद्ध हो जायेगी । अदृश्य, अनुभूतिजन्य लाभ तो ऐसे हैं जो साधारण मनुष्य में असाधारण गरिमा जाग्रत कर देते हैं । भारतवर्ष कभी ऐसे नर-रत्नों, सिद्धों और समर्थों की खान रहा और विश्व को प्रकाश देता रहा । इन प्रयत्नों द्वारा उन्हीं सम्भावनाओं को पुनः साकार किया जा रहा है । भविष्य आशाजनक है, इसे हर विचारशील व्यक्ति अनुभव करता है ।

मानवी धर्म का दर्शन और व्यवहार

उपयोगी वस्तुएँ भी तभी लाभप्रद होती हैं जब उनके स्वरूप, गुण एवं प्रयोग की जानकारी हो । सही रूप में उनका सदुपयोग न करने अथवा उनका प्रयोग किस प्रकार किया जाय यह भूल जाने से वे अपना प्रभाव नहीं दिखा पातीं । इनका निर्माण किन प्रयोजनों की आपूर्ति को लेकर हुआ है इस तथ्य से अपरिचित बने रहने से उनके गुणों का लाभ ठीक प्रकार नहीं मिल पाता । जानकारियों के अभाव में उनकी उपयोगिता संदिग्ध बन जाती और लाभ के स्थान पर उन्हें हानिकारक ही सिद्ध होती है । इसी आधार पर उन्हें अनुपयोगी भी ठहराया जाने लगता है । वस्तुओं में निहित गुणों के बने रहने एवं भली-भाँति उपयोग होने पर ही, वे अनुकूल प्रभाव दिखाती तथा अपनी गरिमा बनाये रखती हैं ।

यही बात धर्म के सन्दर्भ में भी है । इसकी महिमा का प्रतिपादन सभी ग्रन्थ एक मत से करते हैं । धर्म-धारणा के चमत्कारी सत्परिणामों का उल्लेख ग्रन्थों में अनेकों स्थानों पर मिलता है । यह प्रतिपादन अकारण नहीं है, किन्तु यह तभी सम्भव है जब धर्म के वास्तविक स्वरूप एवं लक्ष्य को समझा जाय । उसके तत्व दर्शन को हृदयंगम किया जाय । व्यावहारिक जीवन में धर्म के तात्त्विक सिद्धान्तों के समावेश से वह अब भी उतना ही फलदायक हो सकता है जितना कि वर्णित है ।

धर्म का लक्ष्य है—जीवन परिष्कार एवं मानवता का विस्तार । सैद्धान्तिक दृष्टि से इसका प्रतिपादन सभी धर्म करते हैं, किन्तु किन गुणों के आधार पर इस ओर बढ़ा जाय और अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त किया जाय, इस तथ्य से कम ही लोग परिचित हैं । कलेवरों के विस्तार एवं कर्मकाण्डों की लकीर पीटने मात्र से व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं विस्तृत नहीं बनाया जा सकता

है । धर्म सम्प्रदायों के आपसी मतभेदों का कारण कर्मकाण्डों के प्रति दुराग्रह एवं कलेवरों का मोह ही है जो धर्म के तत्वदर्शन से सदा अपरिचित रखता है । वस्तुएँ अपने गुणों का प्रभाव प्रत्येक स्थान पर एक-सा दिखाती हैं । स्थान परिवर्तन एवं वातावरण की भिन्नता से उनमें थोड़ी-सी कमी अथवा अधिकता तो हो सकती है, पर उनके गुणों में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाय यह सम्भव नहीं । वस्तुओं के उपयोग करने के कुछ सिद्धान्त ऐसे होते हैं जो सदा प्रत्येक स्थान पर एक जैसे रहते हैं । उनका पालन करने पर वे अभीष्ट प्रभाव दिखाती हैं । धन और ऋण तारों के मध्य विद्युत प्रवाहित होती है । दोनों तारों में कोई ऐसा नहीं है जिसको छोड़ा जा सके । चाहे कोई भी देश क्यों न हो, वैज्ञानिक कहीं के क्यों न हों, विद्युत प्राप्त करने के लिए इस नियम का अनुशीलन सभी को करना पड़ता है । तारों में तो अन्तर हो सकता है किन्तु नियम में नहीं । ऋण और धन तारों के मध्य विद्युत प्रवाहित होने का सिद्धान्त सार्वभौम एवं शाश्वत है । इसको अपनाये बिना बिजली प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है । भौतिक विज्ञान के नियमों में देश एवं परिस्थितियों की कोई बाधा नहीं ? सभी स्थानों पर वे एक मत से स्वीकार किए जाते हैं । रेडियो एवं टेलीविजन में प्राप्त होने वाली ध्वनि एवं दृश्य एक निर्धारित संचार प्रणाली द्वारा ही उपलब्ध हो पाते हैं । रॉकेट बनाने, अन्तरिक्ष में प्रक्षेपण करने, वायुयान के उड़ने के सिद्धान्त एक जैसे हैं । उनमें लगे पदार्थों के स्तर में तो भेद हो सकता है, पर स्वरूप एवं बनाने की प्रक्रिया में नहीं । तात्पर्य यह है कि भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त प्रत्येक देश के वैज्ञानिकों द्वारा एक मत से स्वीकार किए जाते हैं । इसी कारण वे प्रामाणिक एवं उपयोगी माने जाते हैं ।

लक्ष्य की दृष्टि से सब धर्मों में समानता है । यह होते हुए भी परस्पर मतभेद दिखायी पड़ता है । इसका कारण है धर्म के तत्वदर्शन एवं उसके मूल में कार्य कर रहे सिद्धान्तों को भूल जाना है । सामान्य व्यक्ति तो बाह्य चिह्नों, पूजा-उपचारों को ही धर्म मान लेने की भूल कर बैठता है । मतभेदों को समाप्त करने एवं व्यावहारिक जीवन में उसकी उपयोगिता हृदयंगम कराने की दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि धर्म के स्वस्थ एवं परिष्कृत स्वरूप को जन-सामान्य के समक्ष रखा जाय । तात्त्विक सिद्धान्तों से सभी को अवगत कराया जाय । सर्वकालीन एवं सर्वमान्य उन धार्मिक तत्वों को अपनाने की प्रेरणा दी जाय जिनका समर्थन सभी धर्म करते हैं ।

वस्तुतः धर्म एक ही है—मानव धर्म । लक्ष्य है—मानवता का विस्तार । यह तभी सम्भव है जब धर्म दर्शन को सर्वसुलभ बनाया जाय । व्यावहारिक जीवन में उन सिद्धान्तों का समावेश किया जाय, जिनसे कि व्यक्तित्व श्रेष्ठ एवं परिष्कृत होता हो । धर्म के दर्शन एवं दैनिक जीवन में उसके समावेश की उपयोगिता क्या हो सकती है ? यह समझकर उसे परिष्कृत रूप में अपनाकर ही मानव अपने गौरव की रक्षा एवं लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है ।

हर वस्तु का अपना गुणधर्म होता है । जब तक वह उसे बनाये रहती है तब तक उपयोगी रहती है । गँवा बैठने पर वह निरुपयोगी ही नहीं होती, वरन् हानिकारक भी बन जाती है । आग अपनी गर्मी और रोशनी खो बैठे तो फिर वह निरर्थक राख बनकर रह जाती है । उस कचरे से स्थान घिरता और गन्दगी फैलती है । अस्तु उसे हटा देने की आवश्यकता पड़ती है । यही बात मनुष्य के सम्बन्ध में भी है । उसकी सत्ता जिस स्तर की है उसी के अनुरूप उसका चिन्तन एवं व्यवहार भी होना चाहिए । युवा व्यक्ति बच्चों जैसा आचरण करे तो उसका उपहास ही होगा । सृष्टि का मुकुट मणि होने के नाते मनुष्य के कुछ कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व भी हैं । अपनी गरिमा बनाये रहना अर्थात् चरित्र एवं व्यक्तित्व का स्तर श्रेष्ठ बनाये रखना उसका अनिवार्य कर्त्तव्य है । सम्पर्क में आने वाले प्राणियों एवं पदार्थों के साथ सद्व्यवहार एवं सदुपयोग का क्रम बिठाना उसका उत्तरदायित्व है । मानवी धर्म इन्हीं दो भागों में विभाजित है—कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व । इनका सही रूप बनाये रखने से ही मनुष्य सुखी रहता और प्रगति करता है । गड़बड़ी उत्पन्न होने पर वह स्वयं दुःख पाता और दूसरों को दुःख देता है । अस्तु मनुष्य मात्र को अपनी गरिमा के उपयुक्त धर्म धारणा को समझने और तद्नुरूप अपनी गतिविधियों को ढालने का प्रयत्न करना चाहिए । इसी में व्यक्ति, समाज और विश्व का कल्याण है ।

कर्त्तव्य को दो हिस्सों में विभाजित किया है—एक चिन्तन, दूसरा चरित्र । चिन्तन को अध्यात्म और चरित्र को नीति कहते हैं । मान्यताएँ, आस्थाएँ, आदतें, आकांक्षाएँ एवं सम्वेदनाएँ मिलकर अन्तःकरण बनता है । यही मानवी सत्ता का अन्तराल है । इसी की प्रेरणा से चिन्तन का समस्त ढाँचा बनता और गतिशील रहता है । इसे चित्त कहते हैं । चित्त अर्थात् चिन्ति का—चेतना का स्तर । दूसरे शब्दों में इसी को श्रद्धा कहा गया है । मन और बुद्धि पर इसी का नियन्त्रण है । अध्ययन, प्रशिक्षण, अनुभव एवं वातावरण के आधार पर मस्तिष्क का स्वरूप बनता है । मन की कल्पना शक्ति और बुद्धि की निर्णय शक्ति का बहुत बड़ा भाग बाह्य प्रशिक्षण और अभ्यास पर निर्भर करता है । फिर भी उन्हें दिशाधारा देने का कार्य अन्तःकरण का ही है । उसी की प्रेरणा से मन और बुद्धि को निर्दिष्ट लक्ष्य के समर्थन में ताना-बाना बुनना पड़ता है । स्पष्ट है कि शरीर मात्र वाहन या उपकरण है । उस पर मन का परिपूर्ण नियन्त्रण है । उसी के निर्देश पर समस्त हलचलें चलती हैं । आँखों से तो शरीरगत हलचल दीखती है, किन्तु वस्तुतः उसके पीछे मन का निर्देशन ही काम करता है ।

अन्तःकरण में जमी आस्थाओं में जन्म-जन्मान्तरों के संचित कुसंस्कार जमे होते हैं । पशु प्रवृत्तियों का ही बाहुल्य होता है । मनुष्य जीवन के चिन्तन को नये सिरे से ढालना होता है । इसके लिए संचित संकीर्णता से पिण्ड छुड़ाने और उसके स्थान पर उपयुक्त आस्थाओं की जड़ें जमाने की आवश्यकता पड़ती है । आस्थाओं एवं विचारणाओं का नये सिरे से निर्धारण करना ही अध्यात्म है । चिन्तन में घुसी कुसंस्कारिता को हटाकर उसके स्थान पर मानवोचित उत्कृष्टता की स्थापना ही संस्कृति है । अन्तराल को परिष्कृत करने के लिए ही अध्यात्म तत्वदर्शन का सृजन हुआ है । वेद, उपनिषद् आदि का निर्माण इसी प्रयोजन के लिए हुआ । अन्य धर्मों के ग्रन्थों का लक्ष्य भी अन्तःकरण में विद्यमान कुसंस्कारों को हटाकर सुसंस्कारों की प्रतिष्ठापना करता है । इनके स्वाध्याय, सत्संग, मनन चिन्तन के आधार पर आस्थाओं को परिष्कृत करने का बौद्धिक प्रयास चलता है । दर्शन इसी की

पूर्ति करते हैं । इसी प्रसंग में चेतना से अपना अनगढ़ स्वरूप छोड़ने और परिष्कृत स्तर अपनाने के लिए जो दबाव डालने वाला प्रयत्न करना पड़ता है उसे साधना कहते हैं । भावनात्मक धारणाएँ एवं अभ्यासगत आदतें उत्कृष्ट स्तर में ढालने के लिए अन्तःक्षेत्र में चलने वाला पुरुषार्थ ही साधना है । इसके अनेकानेक उपचार प्रचलित हैं । सम्प्रदाय भेद से उपासनाओं के अनेक स्वरूप हैं, पर उन सबका उद्देश्य एक ही है—चेतना का ऊँचे से ऊँचा उठाना, चरित्र को क्षुद्रता से विरत करके महानता की दिशा में आगे बढ़ाना । संक्षेप में तत्वदर्शन और साधना विधान का समन्वय अध्यात्म है । इस आधार पर अन्तःकरण से लेकर विचारतन्त्र और स्वभाव अभ्यास तक के सारे चेतना क्षेत्र को सुसंस्कृत बनाया जाता है । विधि निषेध के दोनों ही कार्य उस उपक्रम में चलते रहते हैं । योग और तप की पद्धति इसी प्रयोजन की पूर्ति करती है । योग द्वारा धारणाओं और तप द्वारा आदतों को परिष्कृत किया जाता है ।

कर्त्तव्य का अन्तरंग पक्ष है चेतना का स्तर ऊँचा उठाने के लिए अध्यात्म तत्वज्ञान को गहराई तक हृदयंगम करना । कर्त्तव्य का दूसरा एवं बाह्य पक्ष है—अपने व्यक्तित्व को गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता के अनुरूप ढालना । आदतों को श्रेष्ठ बनाने में पुराने अभ्यास भारी अड़चन डालते हैं । पशु प्रवृत्तियाँ बार-बार उभरती हैं । इनको निरस्त करने और शालीनता के आधार पर आचरण करने का अभ्यास करने के लिए जो नियम, विधान, नियन्त्रण एवं अनुशासन बनाये जाते हैं उनकी पद्धति एवं प्रक्रिया नीति है । गुण, कर्म, स्वभाव को नीति मर्यादा में प्रतिबन्धित करके ही उच्चस्तरीय बनाया जाता है अन्यथा मात्र चिन्तन का स्तर ऊँचा उठा देने भर से काम नहीं चलेगा । चिन्तन ऊँचा रहने पर भी आकांक्षाएँ एवं आदतें हेय अभ्यास को अपनाये रह सकती हैं और कोई धर्मोपदेशक या अध्यात्मवक्ता भी अनीति अपनाये रह सकता है, नीति के बन्धनों में जकड़ने और मर्यादाओं के अनुशासन में रहने के लिए विवश करने पर ही व्यक्तित्व में वास्तविक परिवर्तन लाया जाना सम्भव हो सकता है । इस प्रकार कर्त्तव्य के दोनों पक्षों—अध्यात्म तत्वदर्शन को हृदयंगम करना तथा उनके अनुरूप गुण, कर्म, स्वभाव को ढालने—से मिलकर ही आत्मिक प्रगति का क्रम सुचारु रूप से चलता है । अध्यात्म में साधन और संयम को समान महत्त्व दिया गया है । दोनों के मिलने से ही गाड़ी में दो पहिए होने की तरह समग्रता आती है और उत्कृष्टता की दिशा में गाड़ी आगे बढ़ती है । यह सनातन साधना क्रम है ।

मानवी स्तर की गरिमा प्राप्त करने, परिपक्व करने और स्वभाव का अंग बनाने के लिए दूसरा पक्ष है उत्तरदायित्वों का निर्वाह । यह व्यक्तिगत जीवन का लोक व्यवहार में आने वाला सामाजिक पक्ष है । दूसरों के साथ व्यवहार करने का जो स्तर होता है उसी के अनुरूप विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं । यदि व्यवहार का अभ्यास हेय स्तर का है तो उसकी प्रतिक्रियाएँ अपने लिए तथा दूसरों के लिए विक्षोभकारी होंगी । यदि उनमें शालीनता का समन्वय है तो दूसरे प्रसन्न होंगे—सहयोगी बनेंगे और अपने लिए प्रसन्नता उत्पन्न करेंगे । अस्तु आचरण में सद्व्यवहार का समावेश उतना ही आवश्यक है जितना कि चिन्तन में अध्यात्म तत्व ज्ञान का ।

सदाचरण के कई पक्ष हैं । एक वह जो मनुष्यों एवं प्राणियों के साथ बरता जाता है । दूसरा वह जो पदार्थों के सदुपयोग से सम्बन्धित है । प्राणियों से सम्पर्क साधना पड़ता है और पदार्थों का उपयोग करना पड़ता है तभी हमारे व्यावहारिक जीवन का उपक्रम अग्रगामी बनता है । यही उत्तरदायित्व पक्ष है । शिष्टाचार, सद्व्यवहार, सदाचार आदि कितने ही नामों से इस प्रक्रिया का उल्लेख होता है जो दूसरों के साथ व्यवहार करने में मर्यादा का काम करते हैं । यह अनुबन्ध हो तो अनगढ़ मनुष्य एक प्रकार से नर पशु जैसा ही जीवन व्यवहार करता है और उसकी प्रतिक्रिया पग-पग पर विरोध, विग्रह एवं विक्षोभ उत्पन्न करती है । क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । पानी में ढेला फेंकने से छींटें उछलती हैं और लहरें उठती हैं । दुर्व्यवहार के फलस्वरूप दूसरों को असुविधा एवं अवमानना होती है । फलतः वे असन्तुष्ट होते, विरोध करते एवं प्रतिशोध लेने पर उतारू देखे जाते हैं । सद्व्यवहार सभी को अच्छा लगता है । उससे उन्हें प्रसन्नता भी होती है और सुविधा भी । फलतः वे सहयोग करते और बदले में वैसे ही सुखद प्रत्युत्तर देते हैं । प्रतिध्वनि की तरह सद्व्यवहार की प्रतिक्रिया कर्त्ता के लिए हर दृष्टि से सुखद परिणाम उत्पन्न करती है । सज्जनता वह पूँजी है जिसका उपयोग करने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रायः उस मूलधन को ब्याज समेत वापस कर देता है । अपवाद तो जब-तब देखने को मिलते हैं । बुद्धिमानों का कहना है कि शिष्टाचार, सदाचार एवं सद्व्यवहार का अभ्यास जिसने कर लिया उसके हाथ सर्वतोमुखी प्रगति की रहस्य भरी चाभी हाथ लग गई । सज्जनता अपनाने से उस पशुता से पिण्ड छूटता है जो अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने की तरह निरन्तर विक्षोभ और प्रतिशोध की कष्टकारक परिस्थितियाँ उत्पन्न करती रहती हैं । हर विचारशील का उत्तरदायित्व है कि जिस समाज का अंग बनकर उसे निर्वाह करना है उनके साथ किस प्रकार सम्बन्ध रखा जाय और किस स्तर का आचरण किया जाय । इसकी जानकारी रहनी ही चाहिए और उस जानकारी को स्वभाव का अंग बनने के लिए व्यवहार में उतरने का अवसर मिलना ही चाहिए ।

पदार्थों का सदुपयोग करना कई दृष्टि से आवश्यक है । सृष्टि में पाये जाने वाले पदार्थ समस्त प्राणियों की सम्पदा हैं । उन पर असंख्यों का निर्वाह निर्भर है । यदि उनका अनावश्यक उपयोग या संग्रह किया जाय अथवा प्रमाद एवं अहंकारवश अपव्यय किया जाय तो उसका फल निश्चित रूप से यही होगा कि उनसे अन्यों को वंचित रहना पड़ेगा । उत्पन्न होने वाले खाद्य का यदि कुछ लोग अपव्यय करें तो निश्चित है कि अन्यों को उसी अनुपात से वंचित रहना पड़ेगा । जितने में काम चल सकता है उससे अधिक व्यय करने से स्वभाव उन्हें प्राप्त करने में जो धन का श्रम लगा वह निरर्थक जायेगा ।

अनावश्यक अपव्यय ही नहीं । उनको अव्यवस्थित, उपेक्षित एवं टूटी-फूटी स्थिति में डाल देना भी दुरुपयोग है । उससे उनकी अकाल मृत्यु होती है और बीमारियों की तरह अपनी समग्र उपयोगिता सिद्ध नहीं कर पाते । रोते-कलपते, गाली खाते—गाली देते वे अपने अधिकारी के लिए हानि एवं निन्दा के कारण ही बनते हैं । इस दुर्गति के लिए जो भी उत्तरदायी होता है वह अपने एवं दूसरों के सामने प्रमादी अनगढ़ एवं अपराधी

की तरह लज्जित होता रहता है । उनके उत्पादन में लगी शक्ति एवं बुद्धि का समुचित लाभ न मिल पाने से उसे भी एक प्रकार से निरर्थक ही बनता पड़ता है । इस प्रकार की अनेकों हानियाँ हैं जिन्हें देखते हुए पदार्थों का दुरुपयोग रोकना और उचित मात्रा में सदुपयोग का प्रचलन ही उचित सिद्ध होता है ।

मनुष्य के शरीर में एक सीमित मात्रा में जीवनी शक्ति है । उसके अभिवर्धन की भी एक सीमा है और उपयोग करने की भी । इन सीमाओं का ध्यान रखने वाले सम्पदा का आनन्द लेते, प्रगति करते और धन्य बनते हैं, किन्तु जो इन मर्यादाओं का ध्यान नहीं रखते, सीमाओं का उल्लंघन करते हैं, वे सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी को चीरने वाले की तरह सिर धुन कर पछताते हैं । व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है और अध्ययन से मस्तिष्क, किन्तु इस व्यायाम और अध्ययन करने की भी एक सीमा है । उसे तोड़कर अत्यधिक व्यायाम एवं अध्ययन करने वाले उल्टे बीमार पड़ते और घाटे में रहते हैं । इसी प्रकार शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का अत्यधिक उपयोग करने वाले भी समय से पहले खोखले, जराजीर्ण एवं विक्षिप्त होते देखे गए हैं ।

मानवी जीवनी शक्ति की तरह प्रकृति की पदार्थ सम्पदा, कार्य क्षमता और उपयोग, उपभोग की भी एक सीमा है । उसके अन्तर्गत रहने पर सृष्टि क्रम चिरकाल तक यथावत चलता रह सकता है । प्राणी उसका लम्बे काल तक उपयोग करते रह सकते हैं । इसी से सृष्टि क्रम चलता रह सकता है और प्राणियों का निर्वाह भी, किन्तु असीम उपभोग की—बर्बादी की मनोवृत्ति पनपी तो उसका प्रभाव सृष्टि की सीमित सामर्थ्य पर पड़ेगा । उसे असमय की जराजीर्णता एवं अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा । साथ ही प्राणियों की जीवनी शक्ति तथा उपयोग सामग्री की कमी पड़ती जायेगी । यह दोनों स्थितियाँ दुर्भाग्यपूर्ण हैं । मनुष्य में असीम उपभोग की मनोवृत्ति पनपने न पाये इसलिए धर्म धारण के अन्तर्गत जो उत्तरदायित्व निर्धारित किए गए हैं उनमें से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि सादगी से रहा जाय, मितव्ययी बना जाय और स्वेच्छा से सम्पदा का लाभ अन्यायों को लेने दिया जाय ।

धर्म धारणा के चार अंशों को समझ लेने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि मनीषियों ने उसका दार्शनिक ढाँचा किस दूरदर्शिता के साथ खड़ा किया है । शास्त्रकारों ने नीति-मर्यादा के सदाचरण परक अनुबन्ध इसी दृष्टि से विनिर्मित किए हैं कि प्राणियों के बीच सदाशयता बनी रहे और टकराव की स्थिति उत्पन्न न हो । पदार्थों के सदुपयोग का सदाचार भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि प्राणियों का मध्यवर्ती सद्व्यवहार, सदाचरण । मानवी धर्म तत्व का दर्शन एवं व्यवहार इसी धुरी पर परिभ्रमण करता है ।

धर्म के चार चरण और उनका स्पष्टीकरण

मानव जीवन का अंतरंग कर्त्तव्यों से और बहिरंग उत्तरदायित्वों से बँधा है । दोनों क्षेत्रों में मानवोचित उत्कृष्टता का समावेश करने के लिए चिन्तन और चरित्र की जो मर्यादाएँ बनाई गई हैं उन्हें संस्कृति और सभ्यता कहते हैं । संस्कृति-अंतरंग, सभ्यता-बहिरंग; अध्यात्म- अंतरंग, नीति-बहिरंग । अध्यात्म प्रयोजन तत्वदर्शन से और नीति पालन चरित्रगत अनुशासन से सम्भव होता है । समग्र धर्म धारणा की सीमा परिधि मानवी गरिमा को प्रभावित करने वाले इन दोनों ही पक्षों तक विस्तृत है ।

कहा जा चुका है कि धर्म का अंतरंग पक्ष अध्यात्म और सदाचरण कहलाता है । बहिरंग को सद्व्यवहार के नाम से जाना जाता है । धर्म के यही चार चरण हैं । इन चारों को यदि अधिक स्पष्ट रूप से समझना हो तो उनका विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है ।

(१) अध्यात्म

अध्यात्म—मान्यताओं, आस्थाओं, आकांक्षाओं, सम्वेदनाओं, उमंगों, और आदतों से बने अन्तःकरण को कहते हैं । व्यक्तित्व के उद्गम अन्तराल यही हैं । इसी की प्रेरणा से मनःतन्त्र सोचने की दिशा निर्धारित करता है । इन्हीं पूर्वाग्रहों के आधार पर कल्पनाओं, तर्कों, प्रमाणों का संचय किया जाता है । बुद्धि का निर्णय इसी निर्धारित दिशा में पक्ष समर्थन होता है । अन्तराल का निर्देश मस्तिष्क मानता है । प्रिय की पूर्ति के लिए उपाय सोचता है, कठिनाइयों का हल निकालता है और शरीर को उसी मार्ग के अनुसरण करने का निर्देश करता है जिससे अन्तराल की इच्छा आपूर्ति सम्भव हो सके ।

संक्षेप में किसी मनुष्य का यह ढाँचा ही उसके भूत का इतिहास, वर्तमान का प्रयास और भविष्य का निर्धारण बनकर सामने आता है । मनुष्य के स्तर का मूल्यांकन इसी ढाँचे को देखकर किया जाता है । मित्र, शत्रु के रूप में अन्यान्य व्यक्ति इसी की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं । जीवन की दिशा धारा निर्धारित करने का यही केन्द्र-बिन्दु है । इसी के अनुरूप मनुष्य उत्थान-पतन की ओर बढ़ते हैं, सुख-दुःख पाते और सफल-असफल बनते हैं । अन्तराल में से पशु प्रवृतियों के निष्कासन और देव धारणाओं को प्रतिष्ठापित करने के लिए तत्वदर्शन का सृजन हुआ है ।

तत्वदर्शन ही उत्कृष्टतावादी अध्यात्म की पृष्ठभूमि है । ब्रह्मविद्या का विशालकाय ढाँचा इसी स्तर को समुन्नत बनाये रखने के लिए सृजा गया है । ईश्वर, आत्मा, देवता, परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफल, सद्गति, स्वर्ग, नरक, बन्धन, मुक्ति, भक्ति, साधना, सिद्धि आदि से सम्बन्धित अनेकों प्रतिपादनों के पीछे एक ही प्रयोजन सन्निहित है कि मानवी आस्थाएँ निकृष्टता से विरत होकर उत्कृष्टता को स्वीकारें और उस निर्धारण के अनुरूप अपनी विचारणा एवं कार्य पद्धति की प्रेरणा प्रदान करें ।

अध्यात्म निर्धारण का मूल आधार श्रद्धा है । श्रद्धा को कल्पना मात्र न मान लिया जाय । उसे संदिग्ध न कहा जाने लगे । इसलिए शास्त्रों की, आप्त वचनों की, दिव्य प्रेरणाओं की, ईश्वरीय निर्देशों की, कथा पुराणों की, अनेकानेक साक्षियाँ देकर अध्यात्म प्रतिपादनों का पक्ष समर्थन किया जाता है । इसके पक्ष में तर्क, तथ्य, प्रमाण आदि का संचय करना और उन्हें सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत करना तत्व दर्शन का कार्य रहा है ।

(२) नीति : सदाचरण

नीति मर्यादाओं के निर्धारणों को सदाचरण कहते हैं । धर्म शास्त्रों का प्रधान विषय इसी उद्देश्य से नियम बनाना है । स्मृतियों में व्यक्ति के आन्तरिक और सामाजिक कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों

का ही विस्तृत विवेचन किया गया है । इसे कर्त्तव्यनिष्ठा-धर्मनिष्ठा भी कह सकते हैं । कर्त्तव्य को प्रधान एवं अधिकार को गौण मानने की जो प्रेरणा दी गई है और कहा गया है कि प्रलोभनों, आकर्षणों, भय, दबाव की चिन्ता न करते हुए नीति-निष्ठा पर सुदृढ़ रहा जाय ।

सहृदयता, सज्जनता, शालीनता, संयम, सादगी की महत्ता एवं उपयोगिता का प्रतिपादन करके मनुष्य को शालीन, संयमी एवं सदाचरण के प्रति निष्ठावान बनाने का उपक्रम नीति शास्त्र का विषय है । आदर्शों के लिए त्याग बलिदान करने वाले महामानवों की जयन्तियाँ मनाने, कथा गाथा करने का प्रचलन इसी दृष्टि से है कि उससे जन-साधारण को आत्म संयम बरतने और सत्प्रवृत्तियों के परिपोषण के भाव भरे अनुदान प्रस्तुत करने की प्रेरणा मिले । नीति निर्वाह में तत्काल कुछ कठिनाई पड़ती है । भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं, ललक-लिप्साओं को नियन्त्रित करना पड़ता है । इस नियमन को लय साधना कहते हैं । तपस्वी समर्थ होता है इसका कारण यह है कि वह अपनी सामर्थ्य को संकीर्ण स्वार्थपरता की पूर्ति से बचाकर परमार्थ प्रयोजनों में लगाता और आत्म सन्तोष, जन-सम्मान, स्नेह-सहयोग एवं दैवी अनुग्रह के असाधारण लाभ प्राप्त करता है । इस स्तर के उदाहरणों का प्रस्तुतीकरण नीतिपूर्ण माना जाता है । गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश इसी नीति मर्यादा का परिपालन करने से सम्भव होता है । व्यक्तित्व की गरिमा इसी आधार पर बढ़ती है ।

नीति मर्यादाओं को कई प्रकार कई स्तर पर निरूपित किया जाता रहा है । मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं । राजयोग में लगभग इन्हीं का यम-नियमों के नाम से उल्लेख है । अन्य धर्म शास्त्रों से भी थोड़े-बहुत अन्तर से इसी सीमा परिधि का निर्धारण किया गया है । धर्म सम्प्रदायों के मौलिक प्रतिपादन इसी नीति-निर्धारण की समानता के कारण एकता बनाए हुए हैं । यद्यपि इन नीति न्यायों के परिपालन के उपाय, उपचारों में अन्तर भी बहुत पाया जाता है । प्रथा-परम्पराओं का निर्धारण सभी धर्म-सम्प्रदायों में अपने-अपने ढंग से सामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया है । ये परम्पराएँ समय के साथ बदलती रहती हैं । जीर्ण होने पर विकृतियाँ बढ़नी स्वाभाविक हैं ऐसी दशा में उनमें सुधार परिवर्तन भी होता रहता है । फिर भी नीति निष्ठा की मूल मर्यादाओं में उत्कृष्टतावादी निर्धारण अपने स्थान पर यथावत् बना रहता है । इसी से धर्म को शाश्वत कहा गया है ।

(३) सद्व्यवहार : शिष्टाचार

दूसरों के साथ व्यवहार करने में शालीनता की कुछ मर्यादाओं का परिपालन होना ही चाहिए । इनमें प्रथम है दूसरों के सम्मान की रक्षा । मानवी परिवार का एक सदस्य होने के नाते उसके सम्मान, आकांक्षा का उचित समर्थन । दूसरा है अपनी सज्जनता का नम्रता के रूप में प्रस्तुतीकरण । वार्तालाप से लेकर छोटे बड़े समस्त व्यवहारों में इस मौलिक तथ्य का आदि से अन्त तक निर्वाह किया जाय । असहयोग विरोध से लेकर संघर्ष तक की स्थिति आने पर भी उस मर्यादा का हर हालत में पालन किया जाय । अशिष्टता किसी भी दशा में न बरती जाय । क्रोध में आपे से बाहर होकर गाली-गलौज जैसी पद्धति पर उतारू हो जाना, अपनी शालीनता को गँवा देना अपने ही छोटे स्तर का प्रदर्शन करना है । दुष्टों से जूझते समय भी अशिष्टता न अपनाई जाय भले ही प्रहारों की प्रक्रिया कितनी की कठोर क्यों न हो ।

नागरिकशास्त्र में ऐसी मर्यादाओं का निर्धारण है जिससे दूसरों से टकराये बिना अपना निर्वाह क्रम सरलतापूर्वक चलाया जा सकता है । दूसरे तर्क पक्ष स्तर एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसे समझने का प्रयत्न किया जाय और किसी व्यक्ति एवं प्रतिपादन के सन्दर्भ में हठ पूर्वाग्रह न अपनाया जाय । समझने और समझाने का आदान-प्रदान चलता रहे और जब तक नितान्त अनिवार्य न हो तब तक टकराव से बचा जाय ।

दूसरों से वह व्यवहार किया जाय जो अपने साथ अपेक्षित है । इसमें शिष्टाचार बरतने से लेकर उन सभी तथ्यों का समावेश है जो दूसरों को कुछ सुविधा ही देते हैं, किसी संकट या असमंजस में नहीं डालते । समय का परिपालन, वचन का परिपालन, ऐसी ही मर्यादाएँ हैं उनके सम्बन्ध में प्रत्येक शालीन व्यक्ति को प्रयत्नशील रहना चाहिए । ऐसा कोई वायदा न किया जाय जिसका निर्वाह सम्भव न हो । विश्वास दिलाना ही है तो फिर विश्वासघात की स्थिति न आने दी जाय । बेईमानी या छल से दूसरों से हानि करके अपना लाभ कमा लेना एक प्रकार से मानवी गरिमा को तिलान्जलि देना ही है । इस प्रकार के उपार्जन से बचा जाय । आर्थिक क्षेत्र में इन दिनों इसी प्रकार का अनाचार चल रहा है । श्रमिकों की काम चोरी, व्यापारियों की नफाखोरी और उद्दंडों की सीना जोरी अनुपयुक्त उपार्जन के लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए आतुर पायी जाती है । इस प्रचलन को न तो स्वयं अपनाया जाय न सहन किया जाय और न दूसरों को वैसा करने में समर्थन या सहयोग दिया जाय ।

सहकारिता, उदारता यह दोनों ही सदाचरण के वैसे ही अंग हैं जैसे कि सज्जनता एवं नम्रता । दूसरों के अधिकार को प्रधानता दी जाय और अपनी बात उसके बाद की रखी जाय । अधिकार से कर्त्तव्य को प्रमुखता मिले ।

दूसरों की नागरिक स्वतन्त्रता का आदर किया जाय । किसी पर अपने विचार थोपने का दबाव तब तक न डाला जाय जब तक वे अनैतिक या असामाजिक न बन रहे हों । बलपूर्वक विचार थोपना अनुचित माना जाय । विचार स्वातन्त्र्य का—मानवी मौलिक अधिकारों का लाभ लेने से किसी को भी वंचित न किया जाय ।

पास्परिक मिलन-व्यवहार में बरते जाने वाले शिष्टाचार का निर्धारण देश, काल, पात्र के अनुरूप होता रहा है । इनका उद्देश्य दूसरों को सम्मान, सहयोग प्रदान करने एवं अपनी शालीनता व्यक्त करना है । स्थानीय प्रचलनों को ध्यान में रखते हुए इनमें से जो उपयुक्त लगते हों उनका उत्साहपूर्वक पालन करने का अभ्यास किया जाय ।

नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र आदि के अनुसार मनुष्य को सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए उचित आधार एवं परमार्श दिए गए हैं । उन्हें समझा और अपनाया जाय । इन मर्यादाओं के परिपालन में उत्साह दिखाने वालों को पुरस्कार की और अवरोध उत्पन्न करने वालों के प्रति दण्ड की व्यवस्था बनी हुई है । सरकारें कानून, सेना, कचहरी, जेल आदि की व्यवस्था इसी सामाजिक अनुशासन को

बनाये रखने और व्यतिक्रम करने वालों का दमन करने के लिए करती है। समाज में भर्त्सना और प्रशंसा का, विरोध और समर्थन का क्रम चलता है। निजी सम्पर्क में यही प्रक्रिया विचार-विमर्श से लेकर असहयोग प्रतिरोध के रूप में चलती है। स्वजनों के प्रति भी एक आँख प्यार की दूसरी सुधार की रखी जाती है।

प्रचलनों में से दुष्प्रवृत्तियों के निराकरण और सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन में तत्परता बरती जाय। अवांछनीयताएँ, मूढ़ मान्यताएँ एवं कुरीतियों का न तो समर्थन किया जाय और न उनमें सहयोग दिया जाय वरन् यथासम्भव असहयोग-विरोध से लेकर संघर्ष की नीति अपनाई जाय। इसी प्रकार कल्याणकारी सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन के जो प्रयास चल रहे हों उनका समर्थन एवं सहयोग किया जाय। राजनीति के क्षेत्र में मतदान के अधिकार का दूरदर्शिता, निष्पक्षता एवं उत्कृष्टता की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही किसी प्रामाणित व्यक्ति के पक्ष में ही किया जाय। व्यक्तिवादी संकीर्ण स्वार्थपरता को निरुत्साहित किया जाय और सामूहिकता, सहकारिता को सामर्थ्य भर प्रोत्साहित किया जाय।

मानवी एकता एवं क्षमता को लक्ष्य मानकर चला जाय। विभेद की दीवारें गिराई जायें। जाति और लिंग के आधार पर किसी को ऊँच-नीच न ठहराया जाय। भावी मानव समाज का स्वरूप विश्व परिवार के रूप में विनिर्मित करने की तैयारी की जाय। विश्व राष्ट्र, विश्व भाषा, विश्व धर्म, विश्व संस्कृति को एकता के सूत्र में बाँधा जाय और उन सब में आग्रहों को छोड़कर औचित्य को अपनाने पर बल दिया जाय।

व्यक्ति परिवार की मध्यवर्ती धुरी परिवार है। उस छोटे से परिकर को एक समग्र राष्ट्र या समाज की संज्ञा दी जा सकती है। परिवार तन्त्र को, श्रेष्ठ नागरिकों को ढालने की फैक्टरी एवं नर-रत्नों की खदान कह सकते हैं। इसे सुव्यवस्थित एवं समुन्नत बनाने का प्रयत्न वैयक्तिक गरिमा और समाज को समुन्नत बनाने के दोनों प्रयोजन पूरे करता है। साथ ही उसमें रहने वालों को प्रसन्नता, सुविधा एवं प्रगति के अति महत्त्वपूर्ण आधार परिवार संस्था की छाया में अनायास ही मिलते हैं। परिवारों को भेड़ों का बाड़ा या सराय के स्तर पर उपेक्षित न पड़ा रहने दिया जाय, उसमें पंचशीलों की सत्प्रवृत्तियों का समावेश किया जाय। सर्वविदित है कि पारिवारिक पंचशीलों के पाँचों उद्देश्य स्वच्छता, श्रमशीलता, सहकारिता, प्रगतिशीलता एवं मितव्ययता पाँचों आदर्श ऐसे हैं जिन्हें जिस अनुपात में जहाँ अपनाया जा रहा होगा वहाँ उतना ही समृद्ध एवं सुसंस्कृत वातावरण बन रहा होगा और उस आश्रम में रहने वाले प्रत्येक सदस्य का भविष्य उज्ज्वल बन रहा होगा।

परिवार संस्था का पुनर्गठन करने की दृष्टि से युग-निर्माण मिशन का अभिनव प्रयास महिला जागरण अभियान के रूप में चल रहा है। उसके कार्यक्रमों में वे समस्त तत्व विद्यमान हैं जो व्यक्ति और समाज के बीच उपयोगी आदान-प्रदान प्रस्तुत कर सकें और उस धुरी को सक्षम बनाकर प्रगति क्रम को उज्ज्वल भविष्य की दिशा में अग्रसर कर सकें।

(४) सदुपयोग

सदुपयोग पदार्थ परक है। जो वस्तुएँ उपलब्ध हैं या जिनका उपयोग, उपभोग करना पड़ता है उन सभी को सुव्यवस्थित रखा जाय, बर्बाद न किया जाय। उपयोग करते समय यह ध्यान रखा जाय कि उसका लाभ अन्यान्यों को भी मिलता हो, उनको भी इनकी आवश्यकता पड़ेगी। पदार्थ अपने सही रूप में रहना चाहिए। ऐसा न हो कि वह अपनी उपयोगिता गँवा बैठे और उपयोगकर्त्ताओं के लिए निरर्थक, हानिकर सिद्ध होने लगे। धन का उपार्जन, उपयोग एवं वितरण इसी सीमा में आता है। जल, वायु आदि को विषाक्त न बनने की मर्यादा इसी स्तर की है। वस्तुओं का अनुपयुक्त उपयोग करके उन्हें नष्ट करना, अन्यान्यों को उस सुविधा से वंचित रखना, उन्हें कुरूप एवं अस्त-व्यस्त स्थिति में रखना पदार्थों का दुरुपयोग है।

परिग्रह को पाप और दान को पुण्य मानने के पीछे यही दर्शन काम करता है कि सम्पदा का न तो अनावश्यक उपयोग किया जाय और न उसे एक स्थान पर एकत्रित होने दिया जाय। एकत्रित सम्पदा सड़न उत्पन्न करती है। उनसे अनेकों दुर्व्यसनों-विकृतियों की विडम्बना पनपती है। ईर्ष्या भड़कती है तथा अपराध पनपते हैं। अध्यात्मवादी परम्परा में संचय एवं दुरुपयोग की भर्त्सना है। आधुनिक साम्यवाद एवं समाजवाद में भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं। उसे सम्पत्ति के दुरुपयोग को रोकना एवं सदुपयोग में प्रयुक्त करना ही कहा जा सकता है।

इन दिनों एक वित्त अर्थ चिन्तन यह चल रहा है कि वस्तुओं का अधिक उत्पादन किया जाय ताकि उत्पादकों को अधिक लाभ मिले। अधिक मात्रा में हुए उत्पादन की खपत के लिए लोगों को अनावश्यक उपभोग करके बर्बाद करने के लिए कहा जाय। उससे समृद्धि भी बढ़ेगी और सुविधा भी। अमेरिका आदि समृद्ध राष्ट्र इसी नीति को अपना रहे हैं। इसका परिणाम यह होगा कि पृथ्वी का पदार्थ भण्डार तेजी से चुकेगा। कारखानों का प्रदूषण बढ़ेगा। मशीनों से जूझने वाला मजदूर दुर्बल होगा। व्यस्तता बढ़ेगी साथ ही दुर्व्यसनों की प्रवृत्ति भी। यह पदार्थ का दुरुपयोग है। सही तरीका वही है कि हल्की मशीनों की सहायता से उत्पादन उतना ही बढ़े जितना आवश्यक है। इससे बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक लोगों को अधिक काम मिलेगा। सादगी एवं मितव्ययता अपनाने से पदार्थों की अनावश्यक बर्बादी न होगी और वितरण में वह हिस्सा पिछड़े लोगों के पक्ष में भी जा सकेगा। सादा जीवन के साथ उच्च विचारों का अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है। सादगी से न केवल शालीनता बढ़ती है, वरन् उसके कारण होने वाले समय, श्रम, बुद्धि और सम्पति की बचत के लाभ सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन के रूप में लगता है। जहाँ पदार्थ के सदुपयोग की आदर्शवादिता काम करेगी वहाँ यह प्रति साधना भी होगी कि बचत का संग्रह न किया जाय उसे सत्प्रवृत्तियों में खपाया जाय। यह दूरदर्शिता ही वस्तुओं का सदुपयोग है। इसे प्रकृति के साथ बरती गई मानवोचित शालीनता कह सकते हैं। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

धर्म के यही व्यावहारिक चार चरण हैं जिन पर चलकर व्यक्ति एवं समाज को श्रेष्ठ एवं समुन्नत बनाया जा सकता है। धर्म धारणा से अभिप्रायः उन सिद्धान्तों को आचरण में उतारना है जो सर्वजनीन एवं सर्वकालीन हैं। देश, काल अथवा सम्प्रदाय का इन पर कोई प्रभाव नहीं होता। अपवादों को छोड़कर लगभग सभी धर्म प्रत्यक्ष या परोक्ष में इनको अपनाने एवं उन पर चलने की प्रेरणा देते हैं। सिद्धान्तों को अपनाने एवं व्यवहार में उतारने

से कोई भी धर्म अपने अनुयाइयों को इतना कुछ दे सकता है जिसे पाकर वे धन्य हो सकते हैं। सामाजिक सुव्यवस्था की धुरी भी इसी पर अवलम्बित है।

उल्लेख किया जा चुका है कि इन चार सूत्रों से प्रत्येक की अनेक व्यावहारिक धाराएँ बनती हैं। जनसाधारण को उन्हें हृदयंगम कराने एवं व्यवहार में उतारने की सुविधा की दृष्टि से एक-एक सूत्र के कई-कई विभेद समझाने होंगे। अधिक बारीकी पर उतरें तब तो उनकी संख्या बहुत बड़ी हो जायेगी और सामान्य बुद्धि उन्हें याद भी न रख सकेगी। वर्तमान परिस्थिति और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनका विवेक संगत व्यावहारिक वर्गीकरण १४ सूत्रों में किया जा सकता है। यह संख्या न तो इतनी कम है कि जीवन की समग्र धाराओं को उनके अन्तर्गत लाने में कठिनाई हो और न इतनी अधिक है कि उनके भेद उपभेदों में बुद्धि उलझकर रह जाय। समुद्र मन्थन के १४ रत्नों की उपमा को सार्थक करते हुए मानव धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों, आचरणों को इन १४ सूत्रों में बाँटा जा सकता है—

(१) आस्तिकता, (२) आध्यात्मिकता, (३) धार्मिकता, (४) प्रगतिशीलता, (५) संयमशीलता, (५) समस्वरता, (७) पारिवारिता, (८) सामाजिकता, (६) शालीनता, (१०) नियमितता, (११) प्रामाणिकता, (१२) विवेकशीलता, (१३) परमार्थ परायणता, (१४) प्रखरता ही वे १४ नीति नियम हैं, जिनको अपनाये जाने से मनुष्य में धर्मनिष्ठा उत्पन्न की जा सकती है। व्यक्ति का परिष्कार एवं समाज का उद्धार इनके समावेश से ही सम्भव है।

(१) **आस्तिकता**—ईश्वर विश्वास मानवी नैतिकता का मेरुदण्ड है। कर्मफल में विश्वास, नीति, मर्यादाओं के परिपालन तभी सम्भव हैं जब यह दृढ़ विश्वास हो कि कोई सर्वव्यापी सर्वसमर्थ सत्ता इस सृष्टि का संचालन कर रही है। ईश्वरीय शासन में आस्था ही मनुष्य को कुमार्गगामी होने से बचाती तथा सद्मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा देती है। यही वह अंकुश है जो मनुष्य को सन्मार्गगामी बनाये रख सकता है। सामाजिकता, सुव्यवस्था इन नीति, मर्यादाओं के पालन एवं उनके प्रति निष्ठावान बने रहने पर ही टिकी रह सकती है। स्वेच्छाचार बरतने, अनीति अपनाने का कारण इस निष्ठा का अभाव है, जिसके कारण परिवार एवं समाज विग्रह के कगार पर जा पहुँचता है। समर्थ सत्ता उसकी कर्मव्यवस्था में विश्वास ही मनुष्य जाति को अनीति युक्त कर्मों से बचाये रख सकता है।

(२) **आध्यात्मिकता**—अपनी मूल सत्ता एवं उसकी समर्थता में अटूट विश्वास ही वह आधार है जो समग्र प्रगति का द्वार खोल देता है, यह आत्म-विश्वास व्यक्ति को आत्म-निष्ठ बनाता तथा आत्म विस्तार की प्रेरणा देता है। ईश्वर के समान आत्म-सत्ता को पवित्र एवं व्यापक मान लेने पर संकीर्णताओं के बन्धन असहनीय हो जाते हैं। शिष्टता, सज्जनता, शालीनता, सहृदयता, चरित्र निष्ठा, उदारता जैसी सत्प्रवृत्तियों से अन्तरात्मा को अलंकृत करने की उमंग उठती है। आत्म सुधार, आत्म विकास एवं आत्म निर्माण के त्रिविधि प्रयत्न चल पड़ते हैं। लोभ, मोह, वासना, तृष्णा की परिधि से ऊँचे उठकर लोकमंगल के लिए अपनी क्षमताओं का नियोजन होने लगता है। यह उत्कृष्ट भावना ही व्यक्ति को श्रेष्ठ एवं समाज को समुन्नत बनाती है।

(३) **धार्मिकता**—धार्मिकता से अभिप्रायः कर्त्तव्यपरायणता से है। पारिवारिक ही नहीं नैतिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का परिपालन भी आवश्यक है। अपने तथा दूसरों के प्रति दायित्वों का निर्वाह ही धार्मिकता है। मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त क्षमताएँ खाने-पीने मौज-मजा मनाने के लिए नहीं श्रेष्ठ कार्यों के लिए मिली हैं। आदर्शों एवं सिद्धान्तों से भरा-पूरा जीवनयापन करते हुए संसार को समुन्नत बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। धार्मिकता का उद्देश्य प्रथा-परम्पराओं के बन्धन में जकड़ना नहीं वरन् उस कर्त्तव्य भावना को साकार करना है जिसमें समस्त मानव-जाति का कल्याण होता है।

(४) **प्रगतिशीलता**—शरीर को स्वस्थ रखने, अर्थ उपार्जन करने के समान ही यह भी आवश्यक है कि ज्ञान, अनुभव एवं दृष्टिकोण का विकास परिष्कार किया जाय। आत्मिक प्रगति ही मनुष्य की वास्तविक प्रगति है। इसके लिए आत्म समीक्षा, आत्मचिन्तन आवश्यक है। मनुष्य जीवन का प्रयोजन समझ में आ जाने पर क्षमताओं का नियोजन व्यक्तिगत सीमा से आगे बढ़कर मानव मात्र के उत्थान के लिए होने लगता है। आत्म विस्तार की उपलब्धि ही प्रगतिशीलता का परिचायक है। आत्म विस्तार की उत्कृष्ट भावना दूसरों से स्नेह-सौहार्द्र के सूत्रों में आबद्ध करती, समस्त मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँध सकने में यह उत्कृष्ट भावना ही समर्थ हो सकती है।

(५) **संयम शीलता**—शरीर एवं मन को स्वस्थ एवं सन्तुलित संयम द्वारा ही रखा जा सकता है। इन्द्रियों का दुरुपयोग रोग-क्लेशों को साथ लेकर प्रकट होता है। आहार-बिहार के नियमों का पालन न करने पर शरीर की जीवनी शक्ति क्षीण पड़ती जाती है। स्वास्थ्य रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अति आवश्यक है।

शरीर अस्वस्थ होता है—इद्रियों के दुरुपयोग से और मन अचिन्त्य चिन्तन से। मानसिक व्यभिचार शारीरिक बर्बादी से भी बुरा है इसलिए मन को उत्कृष्ट चिन्तन की ओर मोड़ा जाय। शरीर और मन के समान धन का संयम भी उतना ही आवश्यक है। बलवान, विचारवान, धनवान, शरीर, मन एवं धन के संयम की ही उपलब्धियाँ हैं।

(६) **समस्वरता**—सफलताएँ मानसिक सन्तुलन पर ही अवलम्बित हैं। समस्वरता उस मानसिक स्थिति का नाम है जिसमें मनुष्य हर प्रकार की परिस्थितियों में सन्तुलन बनाये रखता है। प्रतिकूलताओं में भी निराश न होना, आशावादी दृष्टिकोण बनाये रखना स्वस्थ मन का परिचायक है। अभ्यास द्वारा कोई भी उसे स्वभाव का अंग बना सकता है। संसार में जितने भी महान् कार्य हुए हैं अथवा जितने भी महापुरुष हुए हैं उनमें समस्वरता के गुण अवश्य रहे हैं। इसका अवलम्बन लेकर प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ा जा सकता है।

(७) **पारिवारिकता**—व्यक्ति एवं समाज के मध्य की कड़ी परिवार है। समाज छोटे-छोटे परिवारों का समूह है। उसे विकसित एवं सदस्यों को सुसंस्कृत बनाने का हर सम्भव प्रयास किया जाय, पर प्रयत्नों की सीमा यहीं तक न रखी जाय। एक बड़ा परिवार भी है जिसे विश्व परिवार कहा जा सकता है। अपनी भावना को विश्व परिवार में घुला देना ही पारिवारिकता का चरम लक्ष्य है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भव्यता इस श्रेष्ठ भावना

में ही निहित है । इसके लिए शरीर से जुड़े परिवार से आगे बढ़कर विश्व परिवार के लिए अपनी क्षमताओं का नियोजन करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है । व्यक्ति समाज में इस भावना को साकार करने से स्वर्गीय परिस्थितियों का सृजन सम्भव है ।

(८) **सामाजिकता**—समाज से सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने एवं समुन्नत बनने के कारण मनुष्य पर सामाजिक उत्तरदायित्व भी होते हैं । उनका निर्वाह करना एक नैतिक दायित्व है एवं उतना ही आवश्यक है जितना कि पारिवारिक-नागरिक कर्त्तव्यों का पालन एवं नीति-मर्यादाओं के अनुशीलन से ही समाज को सुव्यवस्थित रखा एवं समुन्नत बनाया जा सकता है । दूसरों के साथ वही व्यवहार किया जाय जो हम दूसरों से अपेक्षा करते हैं । इस कसौटी पर ही नैतिक एवं सामाजिकता के तत्वों को अक्षुण्ण बनाये रखा जा सकता है । प्रचलित कुरीतियों, अनैतिकताओं, मूढ़ मान्यताओं का उन्मूलन भी उतना ही आवश्यक है जितना कि सामाजिक कर्त्तव्यों का निर्वाह । शिष्टाचार, सद्व्यवहार सामूहिकता और नागरिकता की प्रवृत्तियों को अपनाने से ही समाज को श्रेष्ठ बनाया जा सकता है ।

(९) **शालीनता**—शालीनता व्यक्तित्व का आभूषण है । योग्यताएँ-प्रतिभाएँ भी तभी सम्मान के योग्य होती हैं जब व्यवहार में सज्जनता का समावेश हो । दूसरों के सम्मान की रक्षा एवं अपने को उद्दत्त अहंकार से बचाये रखना ही शालीनता है । शरीर, वस्त्र एवं वस्तु की स्वस्थता एवं सुव्यवस्था भी इसी का एक अंग है । अस्त-व्यस्त कपड़े, वस्तुएँ, मनुष्य के फूहड़पन का परिचय देते हैं । इनमें सादगी एवं सुरुचि का समावेश होना चाहिए । व्यक्तित्व का प्रथम परिचय बाह्य वस्त्र विन्यास के आधार पर मिलता है । वस्तुओं की सुव्यवस्थिता आन्तरिक सुरुचि का परिचय देते हैं । बाह्य जीवन क्रम सुव्यवस्थित एवं अन्तःजीवन सज्जनता से भरा-पूरा हो । शालीनता का यही लक्ष्य है ।

(१०) **नियमितता**—समय एवं श्रम का सन्तुलन वह आधार है जिस पर सभी सफलताएँ टिकी हैं । नियमित दिनचर्या एवं उसमें श्रम का नियोजन प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है । प्रत्येक कार्य को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर इसमें मनोयोग लगाने से उसकी सफलता असंदिग्ध बन जाती है । मनोयोगपूर्वक किया हुआ हर कार्यकर्त्ता के सुरुचि का प्रमाण देते हैं । समय की बर्बादी वस्तुतः जीवन की बर्बादी है । जीवन का महत्त्व समझने वाले इस सम्पदा का भरपूर सदुपयोग करते हैं । पारिवारिक दायित्वों के अतिरिक्त समय एवं श्रम का नियोजन सामाजिक कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए भी होना चाहिए ।

(११) **प्रामाणिकता**—धन सम्बन्धी ईमानदारी एवं कर्त्तव्य सम्बन्धी जिम्मेदारी का समन्वय किसी भी व्यक्ति को प्रामाणिक एवं प्रतिष्ठित बनाता है । भौतिक जीवन में भी वे ही सफल होते हैं जो प्रामाणिक एवं अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हैं । व्यवसाय में वे ही सफल होते हैं जो वस्तुओं के स्तर एवं कीमत के विषय में प्रामाणिक हैं । कार्यों के प्रति जिम्मेदार व्यक्तियों की ही हर जगह माँग होती है । ऐसे व्यक्ति ही जन-श्रद्धा के पात्र होते हैं । समाज का सहयोग इन्हें मिलता है । नीति युक्त धन का उपार्जन ही नहीं, उसका एक भाग समाज के लिए अर्पित करना भी आवश्यक है । कम से कम में अपना गुजारा करना एवं बचे धन को लोकमंगल के कार्यों में लगाने की उदात्त भावना ही मनुष्य को महानता की ओर अग्रसर करती है ।

(१२) **विवेकशीलता**—औचित्य अनौचित्य के बीच अन्तर कर सकना विवेक दृष्टि से ही सम्भव है । प्रचलित कितनी ही मान्यताएँ, अन्ध परम्पराएँ, कुरीतियाँ ऐसी हैं जो कसौटी पर कसने पर हर दृष्टि से अनुपयोगी सिद्ध होती हैं, किन्तु लम्बे समय से समाज में चली आ रही हैं, इस कारण उन्हें छोड़ने का साहस नहीं होता । यह साहस विवेक के प्रकाश में ही उत्पन्न हो पाता है । विवेक शक्ति की प्रेरणा से ही मनुष्य संकीर्ण स्वार्थपरता से निकलकर परमार्थ प्रयोजनों की ओर बढ़ता है । मृतक भोज, पशुबलि, दहेज प्रथा, भूत-पलीत, टोना-टोटका, फलित ज्योतिष, भाग्यवाद जैसी कितनी ही अन्ध परम्पराएँ, मान्यताएँ समाज को लम्बे समय से जर्जर बनाती चली आ रही हैं, किन्तु पुरातन के नाम पर उन्हें छोड़ने का साहस नहीं होता । इनका उन्मूलन तो विवेक के अवलम्बन से ही सम्भव है ।

(१३) **परमार्थ परायणता**—समाज में व्यस्त पीड़ा-पतन के निवारण के लिए अपने समय, श्रम, धन, प्रतिभा, योग्यता को लगाना परमार्थ-परायणता है । इस क्षेत्र में जो जितना अधिक बढ़ा-चढ़ा अनुदान प्रस्तुत करता है वह उसी अनुपात में आत्मिक-प्रगति का अधिकारी बनता है । उपासना, साधना का लक्ष्य अन्तःकरण में इसी परमार्थ वृत्ति को पैदा करना है । करुणा से भरे हृदय दूसरों की सेवा एवं सहयोग करने में जिस आनन्द की अनुभूति करते हैं वह अन्य किसी भी वस्तु में प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है ।

(१४) **प्रखरता**—प्रखरता के अभाव में अन्यान्य गुण भी अपनी उपयोगिता एवं महत्ता खो बैठते हैं । सज्जनता, नम्रता, उदारता, सेवा जैसे गुण साहसिकता एवं निर्भीकता का ही अवलम्बन पाकर अपनी गरिमा अक्षुण्ण बनाये रह सकते हैं । दब्बू, भीरू व्यक्ति कितना भी सज्जन क्यों न हो, अवांछनीयताओं के विरोध का साहस नहीं जुटा पाता । यही कारण है कि वह अपनी शालीनता एवं उदारता का लाभ समाज को नहीं दे पाता । छोटे-मोटे प्रहार भी वह सहन कर पाने में असमर्थ होता तथा अनीति के समक्ष सिर झुका देता है । इस दृष्टि से अन्य सभी गुण प्रखरता के अभाव में अधूरे एवं अपंग हैं । आततायियों, अनाचारियों की संख्या अल्प होती है, किन्तु साहस के कारण वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रहते हैं । आध्यात्मिक दिशा में प्रगति करने वालों के लिए भी अन्य गुणों के समान प्रखरता का अवलम्बन आवश्यक है ।

यह १४ सूत्र ऐसे हैं जिन्हें जन-जीवन में प्रविष्ट करके अभीष्ट सद्परिणाम पाये जा सकते हैं और जिन्हें सभी धर्मों का समर्थन प्राप्त है । उन्हें सार्वभौम, सर्वजनीन एवं सर्वकालीन कहा जा सकता है । देश, काल, पात्र की भिन्नता रहने पर भी इनके परिपालन में कुछ अपवाद कारणों को छोड़कर अन्तर या असमंजस उत्पन्न नहीं होता ।

मनस : इस विश्व वसुधा का प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष

मानवी काया पाँच तत्वों और पाँच प्राणों की समन्वित सामग्री से बनी है । तत्वों से काया का और प्राणों से मन का निर्माण हुआ है । दो धाराओं के मिलने से चलने वाले विद्युत प्रवाह की तरह, दो पहियों के सहारे गतिशील रथ की तरह, जीवन-चक्र अपनी धुरी पर परिभ्रमण करता है । दोनों का योगदान अद्भुत है । शरीर की ज्ञात और अविज्ञात संरचना पर दृष्टिपात करते हुए जितनी गहराई में उतरा जाय उतने ही चकित करने वाले रहस्य सामने आते हैं । कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों की बनावट कार्य पद्धति और उपलब्धि को देखते हुए लगता है कि जड़ पदार्थों की संरचना कितने स्तर के कृत्य करती और कितने प्रकार के उपार्जन प्रस्तुत करती है । जीव कोशों, ज्ञान तन्तुओं, गुच्छकों, रस स्रावों, हॉर्मोनों, गुणसूत्रों की रहस्यमयी गतिविधियों को देखकर किसी रहस्य लोक के दृश्य देखने जैसी अद्भुत होती है । हृदय, वृक्क, यकृत आदि छोटे-छोटे अन्तःअवयव जो कमाल करते हैं उन्हें देखने से प्रतीत होता है कि प्रकृति की ज्ञात और अविज्ञात शक्तियों और गतिविधियों का सार तत्व समेट कर किसी कुशल कारीगर ने इस जादुई संयन्त्र की रचना की है और अपनी प्रवीणता की, इस सृजन को उत्कृष्ट बनाने में बाजी लगा दी है । शरीर सामान्यतया जीवन निर्वाह की आवश्यकताएँ जुटाता भर दीखता है पर उसे यदि अवसर दिया जाय—प्रशिक्षित और अभ्यस्त किया जाय तो इसी संयन्त्र से ऐसे अद्भुत काम लिए जा सकते हैं कि मनुष्य को असीम सामर्थ्य का पुंज कहा जाने लगे । ऐतिहासिक महामानवों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में सम्पन्न किए गए पराक्रमों और उनके परिणामों को देखने पर पता चलता है कि इस छोटे से माँसपिण्ड में क्षमताओं का विचित्र भाण्डागार भरा पड़ा है । प्रसुप्त स्थिति में रहने के कारण ही इस विशिष्टता का पता नहीं चलता । उभारने पर वह बीज से वृक्ष बनने की तरह अपना विकास-विस्तार इस प्रकार करती है कि सम्भावनाओं की दृष्टि से इस सामान्य के कण-कण को असामान्य कहा जा सके ।

यह पंच तत्व से बने काय कलेवर की बात हुई । पाँच प्राणों से बनी चेतना का स्वरूप और क्रिया-कलाप देखने पर पता चलता है कि काया को संरचना की दिशा देने और नियन्त्रण करने का पूरा उत्तरदायित्व इस चेतना ने ही सम्भाला हुआ है । सवार और वाहन की उपमा शरीर और चेतना के समुच्चय जीवन पर पूरी तरह लागू होती है । जड़ को चेतना की तरह चित्र-विचित्र क्रिया-कलाप करते हुए देखकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि संरचना और क्षमता की दृष्टि से काया कितनी ही उत्कृष्ट क्यों न हो उसका संचालन पूरी तरह चेतना ही सम्भालती है । संचालन सूत्रों में तनिक भी व्यतिक्रम होने पर सधा ढाँचा लड़खड़ा जाता है । मूर्खों, विक्षिप्तों एवं अनगढ़ व्यक्तियों की काया तो अन्य सभी लोगों की तरह ही होती है पर चेतना और काया के मध्य काम करने वाले सूत्र गड़बड़ा जाने से जीवन क्रम निरर्थक ही नहीं अस्त-व्यस्त एवं आपत्तिजनक भी बन जाता है । यह सम्बन्ध सूत्र टूटने लगे तब तो सारा खेल ही समाप्त हो जाता है ।

जड़ प्रकृति और चेतना प्रवाह का स्तर, स्वरूप और क्रिया-कलाप भिन्न स्तर का है । तो भी दोनों के समन्वय से ऐसी उपलब्धि सामने आती है जिसे एक तीसरी शक्ति कहा जा सके । दो पदार्थों के मिलने से तीसरा बनता है और उसका गुण, स्वभाव दोनों से भिन्न स्तर का होता है । इस नियम को रसायनशास्त्र के सभी विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं । जड़ और चेतना सम्मिश्रण भी अपनी विलक्षणता से विवेचनकर्त्ताओं को हतप्रभ बना देता है ।

चेतना यों अपना कार्य तो शरीर के कण-कण में करती है पर उसका केन्द्रक संस्थान मस्तिष्क के सुदृढ़ दुर्ग में बना हुआ है । मस्तिष्क के रासायनिक पदार्थ अणु और उपक्रम तो शरीर के अन्य अवयवों से ही मिलते-जुलते हैं पर उनके भीतर प्राण विद्युत की हलचलें जिस प्रकार चलती हैं और संरचना की अनुकूलता से उन हलचलों से जो उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं उसे तिलस्म ही कहा जा सकता है । मस्तिष्क को जादू का भानमती का पिटारा कहा जा सकता है । बाजीगर अपनी टोकरी में से ऐसी-ऐसी वस्तुएँ निकाल कर दिखाता है जिसकी सम्भावना पर सामान्य बुद्धि विश्वास नहीं कर सकती । स्रष्टा की बाजीगरी देखनी हो तो मस्तिष्क की पिटारी से हर घड़ी निकलने वाले कौतूहलों को देखकर लौकिक के अन्तराल में अलौकिकता का चमत्कार प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

सामान्यतया मस्तिष्क का कार्य जीवन यात्रा के साधन जुटाने में शरीर की गतिविधियों का निर्धारण संचालन भर होता है । प्राणियों की चेतना इसी परिधि में काम करती रहती है । मस्तिष्क के विशाल भाण्डागार में से उतना ही अंश प्रयुक्त होता रहता है जिससे जीवन संकट अपनी यात्रा पूरी करने, आवश्यक साधन जुटाने में होता रहे । यह सामान्य हुआ । असामान्य वह है जो दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में असंख्य गुना अधिक है । विस्तार की दृष्टि से भी और स्तर की दृष्टि से भी । स्पष्ट है कि जिसका प्रयोग होगा वही सक्षम रहेगा । प्रयुक्त न होने पर मूर्छना छाई रहती है और प्रसुप्त और असमर्थ की स्थिति बनी रहती है । प्रकृति के अन्तराल में भौतिक शक्तियों के ज्ञात और अविज्ञात भाण्डागार का बीज रूप में मानवी काया में परिपूर्ण समावेश है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड व्यवस्था चेतना प्रवाह में, परब्रह्म में, जो भी विशेषताएँ हैं उनका सूक्ष्म संस्करण जीव में विद्यमान है । जीव का केन्द्र संस्थान शासन दुर्ग मस्तिष्क में रखा हुआ है । उसकी संरचना और कार्य पद्धति को देखकर जाना जा सकता है कि जड़ और चेतन का यह सम्मिश्रण किस प्रकार विलक्षण धारा प्रवाहों का निर्झर बनकर अपनी विलक्षणता का परिचय देता है । दैनिक जीवन में मस्तिष्क के योगदान निरन्तर के अभ्यास में आने में कुछ प्रतीत नहीं होता अन्यथा इतने भर का विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि संसार भर के सर्वोत्तम कम्प्यूटरों के मिलाने पर यदि कोई विशिष्ट कम्प्यूटर बन सकता हो तो उससे भी अधिक कार्य क्षमता मानवी मस्तिष्क में विद्यमान है । दैनिक जीवन में उसी के उपयोग से वे क्रिया-कलाप चल पाते हैं जो सामान्य दीखने पर भी वस्तुतः असामान्य हैं ।

विलक्षणताओं की बात इससे आगे की है । बुद्धिमानों द्वारा मस्तिष्क तन्त्र के सहारे ऐसे काम कर दिखाए गए हैं जिनके कारण उन्हें ऐतिहासिक, चिरस्मरणीय एवं वन्दनीय माना गया है ।

अपनी कृतियों और उपलब्धियों से वे स्वयं ही धन्य नहीं बने हैं वरन् असंख्यों को लाभान्वित किया है । साहित्यकार, कलाकार, कवि, दार्शनिक, विज्ञानी, ऋषि, योगी, सिद्ध पुरुष, अवतारी क्षेत्रों की प्रतिभाएँ जो कुछ कर सकीं उन्हें उनके मनःक्षेत्र से उत्पन्न हुई सम्पदा ही कहा जा सकता है ।

ऑसीलोस्कोप—ध्वनि तरंगों का मापन :मन्त्र विज्ञान के विभिन्न प्रयोगों हेतु ।

सोनोस्टेट—ध्वनि चिकित्सा एवं मन्त्र विज्ञान— सामंजस्य के विभिन्न आयाम ।

लौकिक क्षेत्र में कितने ही व्यक्ति विलक्षण विशेषताओं और प्रतिभाओं से सम्पन्न देखे जाते हैं । ऐसा दृश्य आँख आदि की अनुभूति में किसी भी रूप में सामने आये वस्तुतः वह उनकी मस्तिष्क की क्षमता का ही उभार होता है । शरीर से तो परिपुष्ट, पहलवान, निरोग, दीर्घजीवी, परिश्रमी आदि ही बना जा सकता है किन्तु मस्तिष्क की उपलब्धि और सम्भावनाएँ अनन्त हैं । उन्हें जो जितना जीवन्त प्रयुक्त कर सका वह उतना ही बड़ा चमत्कारी कहलाया । मनःशास्त्र विज्ञान के निष्णातों का कथन है कि मस्तिष्क की समग्र क्षमता का मात्र सात प्रतिशत भाग ही जाना और काम में लाया गया है । शेष ९३ प्रतिशत भाग एक प्रकार से प्रसुप्त एवं अविज्ञात स्थिति में ही पड़ा रहता है । इस उपेक्षित में से जो जितना जगाने, काम में लाने का प्रयत्न करता है वह उतना ही विलक्षण के रूप में अपनी वरिष्ठता सिद्ध करता है ।

प्रकृति स्वभावतः अनगढ़ है । पदार्थ में बुद्धि न रहने से वह अस्त-व्यस्त स्थिति में पड़ा रहता है । परमाणुओं और तरंग प्रवाहों में सामर्थ्य भी है और गतिशीलता भी किन्तु बुद्धि के अभाव में उसके लिए व्यवस्था बनाना, सौन्दर्य निखारना और कुछ उपार्जन कर दिखाना सम्भव नहीं । इस तथ्य को वन्य क्षेत्रों, मरु प्रदेशों की भयावह स्थिति को देखकर भली प्रकार जाना जा सकता है । अन्य ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति भी ऐसी ही अनगढ़ है । बुद्धिमान प्राणी न रहने से वहाँ निस्तब्धता और नीरसता का ही वातावरण बना हुआ है । इसके विपरीत धरती के मनुष्यों ने अपने पराक्रम से धरती को इस प्रकार संजो दिया है कि वह कामधेनु की तरह शोभा और सम्पदा से स्वयं कृतकृत्य हुई और प्राणियों को भी सुख-सुविधा से सम्पन्न कर दिया । धरातल की भूगर्भ से, समुद्र और आकाश से मिलने वाले असंख्यों अनुदान खोदे पाये कहीं से भी जाते हैं वस्तुतः उसे बुद्धि वैभव ही कहा जायेगा । विज्ञान की उपलब्धियों ने सुविधा साधनों के पर्वत खड़े कर दिए हैं और मानव जीवन की गतिविधियों ने कुछ ही शताब्दियों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर उत्पन्न कर दिया है । यह सब कैसे सम्भव हुआ ? इसका उत्तर एक ही है—बुद्धि वैभव का चमत्कार । मनुष्य का मस्तिष्क ही है जिसने नीति, दर्शन, धर्म, अध्यात्म, समाज, शासन, विधान, अनुशासन जैसे निर्धारणों के सहारे सभ्यता और संस्कृति का सृजन किया । यदि आदिम अगढ़ता यथावत् बनी रहती तो मनुष्य की स्थिति आज भी वन-मनुष्यों से अधिक अच्छी न बन पाती । कृषि, पशुपालन, उद्यान, शिल्प, व्यवसाय, शिक्षा, चिकित्सा, वाहन, संचार, शास्त्र, विद्युत आदि की जिन उपलब्धियों के सहारे मनुष्य आज सृष्टि का मुकटमणि बना हुआ है ये मस्तिष्करूपी कल्पवृक्ष के ही अनुदान हैं । कहने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि ईश्वर और परलोक तक मानवी मस्तिष्क का ही उत्पादन है । उनका तर्क है कि सृष्टि में जो कुछ रहा होगा, सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध रहना चाहिए । अन्य प्राणी ईश्वर, परलोक, धर्म आदि को न तो जानते हैं और न मानते हैं । मात्र मनुष्य का ही उनसे सम्बन्ध है । ऐसी दशा में इसे ईश्वर-अनुग्रह कहा जाय अथवा बुद्धि कौशल, इस प्रश्न का निर्णय करना वस्तुतः अति जटिल हो जाता है ।

जो हो, तथ्यों से स्पष्ट है कि बुद्धि कौशल की सामर्थ्य प्रकृति गत सामर्थ्य से कम नहीं अधिक ही है । वायुयान कितना ही मूल्यवान क्यों न हो वस्तुतः पायलेट ही उड़ान की सफलता के लिए प्रमुख श्रेयाधिकारी माना जायेगा । धरती, आसमान, सूर्य, समुद्र पवन आदि के रूप में दृष्टिगोचर होने वाले प्रकृति, वैभव का महत्त्व स्वीकार करने पर भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे आज जिस रूप में अपनी उपयोगिता का परिचय दे रहे हैं तथा सम्मान पा रहे हैं वह सब कुछ मानवी बुद्धि का सहयोग न मिलने पर कदाचित सम्भव न हो पाता । अन्य ग्रह-उपग्रहों की स्थिति साक्षी है कि वहाँ बुद्धिमता के अभाव में सब कुछ नीरस, निस्तब्ध, कुरूप एवं अनगढ़ ही दृष्टिगोचर होता है भले ही पृथ्वी की तुलना में उनका वैभव विस्तार कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हों ?

व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य की सरसता, सम्वेदना, सद्भावना, शिष्टता, सभ्यता, प्रगतिशीलता, महत्त्वाकांक्षा, पुरुषार्थ परायणता देखते ही बनती है, सुरुचि और सौन्दर्य दृष्टि के कारण ही उसका शरीर, परिधान और ठाठ-वाट इस स्थिति तक पहुँचा है जिसे शोभा सुसज्जा के नयनाभिराम रूप में देखने और प्रसन्न होने का अवसर मिल सका । ऐसा न होता तो आदिम काल की तरह नर-नारी नंग-धड़ंग ही फिर रहे होते । केशों ने दोनों को और भी अधिक कुरूप बना दिया होता । केश प्रकृत अवस्था में मनुष्य को, विशेषतया पुरुषों को, कुरूप ही नहीं भयंकर बना देते हैं । कला ही है जिसने भार-भूत केशों को शोभा-शृंगार का साधन बनाकर रख दिया । परिवार का मानवी ढाँचा अन्य प्राणियों से भिन्न है । मकान बनाने से लेकर परिवार बसाने तक की प्रक्रिया प्रकृति प्रदत्त नहीं मानवी बुद्धिमत्ता की देन है ।

किसी भी क्षेत्र में दृष्टि डालकर देखा जाय । मानवी बुद्धिमता का चमत्कार ही अपनी वरिष्ठता का प्रमाण-परिचय देता देखा जाता है । मस्तिष्कीय क्षमता की उपयोगिता सर्वविदित है । इसलिए स्कूल, कॉलेजों से लेकर सभा, सत्संगों तक के अनेकानेक उपक्रम इसीलिए चलते रहते हैं कि बुद्धिमत्ता की अभिवृद्धि में जो भी उपाय उपचार सहायक सिद्ध हो सके, उसे काम में लाया जाय । प्रेस और रेडियो अपने-अपने ढंग से इसी प्रयोजन की पूर्ति में रत रहते हैं । पर्यटन से लेकर परीक्षा प्रतियोगिताओं के आयोजन इसीलिए होते रहते हैं कि बुद्धिमत्ता बढ़ाने के लिए जो भी बन पड़े उन सबका उपयोग किया जाय । तथ्य भी यही है कि धन सम्पदा से हजारों, लाखों गुना महत्त्व और परिणाम बुद्धिमत्ता का होता है । उससे सम्पन्न व्यक्ति अपना ही नहीं अपने समाज का भी भला करता है । वर्तमान की समस्याओं का समाधान, भविष्य का उज्ज्वल निर्धारण, दूरदर्शी विवेकशीलता के सहारे ही बन पड़ता है । अध्यात्म विज्ञान में ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्रतीक प्रतिनिधि गायत्री मन्त्र को माना है ।

प्रज्ञा की प्रतिष्ठा ही मानवी सुख-शान्ति की आधारशिला की सुनिश्चित गारण्टी है।

मनःसंस्थान के व्यावहारिक पक्ष को समुन्नत बनाकर किस प्रकार विश्व वसुधा एवं व्यक्ति का लौकिक विकास सम्भव हो सका—रहा है—इसकी चर्चा ऊपर की पंक्तियों में की गई है। यह मस्तिष्क को सात प्रतिशत में आँकी जाने वाली क्षमता का परिचय है। उससे आगे की अधिक गहरी पर्तें वे हैं जो काम में न आने के कारण प्रसुप्त एवं अविज्ञात स्थिति में पड़ी रहती हैं। इनका अनुपात ९३ प्रतिशत है। अर्थात् व्यवहार पक्ष की तुलना में प्रायः १४ गुना अधिक है। यह आकार-विस्तार का मूल्यांकन हुआ। स्तर की दृष्टि से उनका अनुपात १४ नहीं १४०० गुना भी हो सकता है क्योंकि उच्चस्तरीय तत्व उसी में सन्निहित हैं। साधारण श्रेणी पाते हैं जो उनके सुख-साधन जुटाने में सहायता कर सकें। चेतना का स्तर ऊँचा उठने पर भी महानता पर दृष्टि जाती है और उसके लिए आवश्यक अन्तःक्षमता उभारने की आवश्यकता अनुभव होती है। ऐसे व्यक्ति कितने हैं जो उसकी उपयोगिता समझें और उसके लिए प्रयत्न करें। बाल बुद्धि ही सर्वत्र आच्छादित है अस्तु बुद्धि का उपयोग भी उसी क्षेत्र में होता है और मस्तिष्कीय विकास की दृष्टि से इसी परिधि का मनःसंस्थान सक्रिय एवं सक्षम बन पाता है। कुछ अधिक महत्त्वाकांक्षा जागी तो वैभव वर्चस्व की अभिवृद्धि में बुद्धिमता का प्रयोग होने लगता है। निर्वाह की तुलना में महत्त्वाकांक्षा का स्तर कुछ ऊँचा अवश्य है पर उसके लिए भी मनःसंस्थान का व्यावहारिक पक्ष ही थोड़ा समुन्नत कर लेने पर काम चल जाता है, महत्त्वाकांक्षी भी मन लोक की उन गहरी पर्तों तक प्रवेश नहीं कर पाते जिनका उपयोग तत्व ज्ञानी, दिव्यदर्शी, महामनीषी, योग साधना के आधार पर बनते और उस स्थिति तक पहुँचते थे जिसे सिद्ध पुरुषों, ऋषियों एवं देवताओं का स्तर कहा जाता है।

अध्यात्म विशुद्ध रूप से मनःशास्त्र है। उसमें चित्त बुद्धि, मन की गहराई में प्रवेश करके उन्हें कुरेदने, उभारने एवं समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया जाता है। चित्त आस्थाओं एवं सम्वेदनाओं का क्षेत्र है। बुद्धि में दूरदर्शिता एवं मंथन निष्कर्ष की क्षमता रहती है। मन कल्पना करता और चित्त को व्यावहारिक जामा पहनाकर परिस्थितियों की अनगढ़ सी प्रतिमा गढ़ता है। इन तीनों को मिलाकर समग्र मनस बनता है। मनोविज्ञान में इनका वर्गीकरण दूसरे ढंग से किया है, वे व्यवहार बुद्धि को संचेतन, आदतों को अचेतन और उत्कृष्टता को अतिचेतन की संज्ञा देते हैं। इस विभाजन क्रम में मतभेद और वर्गीकरण भी अनेकानेक हैं। इन सबकी चर्चा करते हुए यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मनःतत्व को प्राचीन काल की तरह अब नए सिरे से एक प्रचण्ड शक्ति के रूप में मान्यता मिल गई है। मध्यकाल में उसकी उपेक्षा होने लगी थी और साधनों को ही सब कुछ माना जाने लगा था। उस अन्धकार युग में न शिक्षा का कोई महत्त्व था न संस्कृति का। आतंक उत्पन्न करने वाली बलिष्ठता और आकर्षण उत्पन्न करने वाली सम्पन्नता ही सब कुछ थी। अब सूक्ष्मदर्शिता बढ़ी है तो यह स्वीकारा गया है कि व्यक्ति का अभ्युदय और समाज का उत्कर्ष यदि वस्तुतः ही अभीष्ट हो तो चेतना को सुसंस्कृत बनाना, दृष्टिकोण को परिष्कृत करना आवश्यक है। जन मानस का परिष्कार, विचार, क्रान्ति अभियान, ऋतम्भरा प्रज्ञावतार आदि के जो प्रयास चल रहे हैं उन्हें प्रकारान्तर से चिन्तन का स्तर उभारना ही कह सकते हैं। लगती तो यह समाज सुधार जैसी ही है पर वस्तुतः उसे मनःक्षेत्र में उत्कृष्टतावादी तत्वों का समावेश सम्वर्धन ही कह सकते हैं।

जन-जीवन से सम्बन्धित सभी पक्षों का सुनियोजन भावना एवं विचारणा में श्रेष्ठता का समावेश होने से ही सम्भव हो सकता है। सामयिक परिस्थितियों में से प्रतिकूलता का निवारण और अनुकूलता का निर्धारण अन्ततः इसी एक उपाय द्वारा बन पड़ेगा कि लोक-चिन्तन में शालीनता का अधिकाधिक समावेश किया जाय। यह विशुद्ध रूप से मनःशास्त्र का विषय है। भले ही प्रयोजन की पूर्ति के लिए उपाय उपचार किसी भी स्तर के नाम में क्यों न बनाये जायें परिवर्तन दण्ड विधान के आधार पर होता है या दार्शनिक सम्वेदनाओं का प्रभाव सफल हो जाता है अथवा दोनों का समन्वय काम देता है, यह प्रयोक्ताओं की सूझ-बूझ और परिस्थितियों के तालमेल से सम्बन्धित है। इससे आगे की गहराई पर दृष्टिपात करने पर ये सारा खेल मनोविज्ञान की क्रिया-प्रक्रिया की परिधि में आता है। परिवर्तन चिन्तन की दिशाधारा का ही होता है। युग परिवर्तन का तात्विक स्वरूप यही है। एक शब्द में सुधार परिवर्तन के लिए चल रहे प्रयत्नों को जड़ में मनःतत्व के परिमार्जन को ही नवसृजन का केन्द्र-बिन्दु माना जा सकता है। उत्थान और पतन के समस्त स्रोत इसी मर्मस्थल पर केन्द्रीभूत हो रहे हैं।

योगाभ्यास में अतीन्द्रिय क्षमताओं के विकास को एक महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता रहा है। कौतुक कौतूहल सभा को आकर्षित करते हैं। ऐसे प्रदर्शनकारी प्रायः आकर्षण के केन्द्र होते हैं। ऐसी विलक्षणता देखकर कोई भी दूसरों को चमत्कृत कर सकता है। भले ही उस प्रदर्शन की कुछ विशेष उपयोगिता न हो। बाजीगर कई प्रकार के कौतूहल दिखाते हैं। उस प्रदर्शन से किसी की ज्ञान वृद्धि हो या जो कमाया गया है वह किसी के काम आता हो ऐसा भी कुछ नहीं है। फिर भी लोग बाजीगरों का तमाशा मजे में देखते हैं। अतीन्द्रिय क्षमताओं का स्तर बाजीगरी से ऊँचा है। बाल-बुद्धि के लोगों को चमत्कृत करके उन पर अपनी विशिष्टता की छाप डालना और उस छाप से प्रभावित लोगों से मनमर्जी पूरा करा लेना सरल है। इस लोभ को संवरण न करने से भी कितने ही लोग चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यह उसका स्तर अध्यात्म क्षेत्र में सदा हेय माना जाता रहा है। यद्यपि अधिकांश की प्रयत्नशीलता इसी दृष्टि से होती है। इतने पर भी एक तथ्य तो स्पष्ट है कि मनुष्य के अन्तराल में कुछ विलक्षण शक्तियाँ विद्यमान हैं, कार्यान्वित न होने के कारण वे मूर्छित स्थिति में पड़ी रहती हैं, यदि उन्हें विकसित किया और काम में लाया जा सके तो निश्चय ही उस विकसित स्थिति का व्यक्ति कई दृष्टियों से कहीं अधिक सामर्थ्यवान माना जाय। उस विशिष्ट सामर्थ्य का यदि प्रयत्नपूर्वक किन्हीं उच्च प्रयोजनों में उपयोग हो सके तो यह भी स्पष्ट है कि उसका प्रतिफल व्यक्ति और समाज के सामने अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ उपस्थित करता दिखाई देगा। अतीन्द्रिय क्षमताओं का क्षेत्र इन्द्रिय शक्ति के सहारे चल रहे क्रिया-कलाप की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसमें प्रवेश और उपार्जन का प्रबन्ध हो जाता है तो भौतिक विज्ञान के द्वारा जैसे अद्भुत

लाभ इन दिनों उठाये जा रहे हैं अगले दिनों उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन अध्यात्म विज्ञान के सहारे उठाये जाने लगेंगे ।

प्रगति की हर दिशा में इन दिनों भाग-दौड़ हो रही है । शक्ति के नये स्रोत ढूँढ़ने में प्रतिभावान वर्ग का पूरा उत्साह है । खर्चीले और कष्टसाध्य प्रयत्नों में शोधकर्ता जुटे हुए हैं । इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मानवी अन्तराल की गहरी पर्तों का अनुसंधान करना है । प्राचीनकाल में अनेकों द्वारा अतीन्द्रिय क्षमताओं के माध्यम से असम्भव जैसे कठिन कार्य को सम्भव कर दिखाने के उदाहरण हैं । कथा-पुराणों का पन्ना-पन्ना इस प्रकार की क्षमताएँ मनुष्य में होने की साक्षी देता है । इसके अतिरिक्त इतिहास के प्रामाणिक उल्लेख भी उतने अधिक हैं कि उनके सहारे यह विश्वास किया जा सकता है कि सामान्य मनुष्य जितनी सामर्थ्य का उपयोग करता है वस्तुतः उससे कहीं अधिक उसके अन्तराल में विद्यमान है । जो एक के लिए सम्भव हुआ वह दूसरे के लिए भी सम्भव हो सकता है । इतिहास में पुराणों की बात छोड़ भी दें तो भी वर्तमान में ऐसी कितनी प्रतिभाएँ मौजूद हैं जिन्होंने प्रयत्नपूर्वक अथवा अनायास ही अतीन्द्रिय क्षमता विकसित कर ली है और वे इस सम्भावना के सन्दर्भ में शंका-सन्देहों का निवारण करते हैं कि दिव्य क्षमताओं का आधार मानवी अन्तराल में है या नहीं ।

प्रयत्नपूर्वक जब प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों का पता लगाने और उन्हें उपयोग में लाने में जब सफलता मिल सकती है तो कोई कारण नहीं कि अतीन्द्रिय शक्तियों के क्षेत्र में खोजने और वहाँ से ऐसा कुछ पाने में सफलता न मिले जो मनुष्य का स्तर एवं भविष्य ही बदल दे । सर्वविदित है कि कुछ आविष्कारों ने परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं । अग्नि का आविष्कार, मुद्रा का प्रचलन, बिजली का उपयोग, भाषा और लिपि का उद्‌भव जैसी आज सामान्य दीखने वाली समस्त बातें अपने आरम्भ काल में महान् क्रान्तिकारी आँकी गई होंगी । इन आविष्कारों ने आदिम काल की विपन्न परिस्थितियों को आज की सुसम्पन्नता तक पहुँचाने में भारी योगदान दिया है । अतीन्द्रिय क्षमताओं के विकास का क्षेत्र इन सबसे बड़ा है । साधन कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों व्यक्तित्व की समर्थता की तुलना में उनका मूल्य नगण्य ही माना जायेगा । असामान्य स्तर की अतीन्द्रिय क्षमताओं की उपलब्धि से मनुष्य आज की तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान हो सकता है और उस उपलब्धि से मानवी प्रगति का एक नया अध्याय आरम्भ हो सकता है ।

अतीन्द्रिय क्षमताएँ किसी देवी-देवता की अनुग्रह उपहार नहीं हैं । उनकी सुनिश्चित सम्भावना मनःक्षेत्र की संरचना के साथ जुड़ी हुई है । जो काम में नहीं लाया जायेगा वह निष्क्रिय बन जायेगा । यह सिद्धान्त पदार्थों और प्राणियों पर समान रूप से लागू होता है । अन्तराल का असामान्य यदि खोजा और प्रयुक्त किया जा सके तो उस क्षेत्र की उपलब्धियाँ भी उसी प्रकार सामान्य हो सकती हैं जिस प्रकार कि प्राचीनकाल में थीं । इस देश के नागरिक संसार भर में देव मानव कहे जाते और सम्मानित होते थे । इनमें उनके गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता तो कारण थी ही साथ ही विकसित मनोबल भी सम्मिलित था जो कौतूहलवर्धक सही प्रतिभा और क्षमता को नये स्तर पर उभारने में तो निश्चित रूप से समर्थ होता है । अधिकाधिक सम्पदा और समर्थता प्राप्त करने के लिए आतुर मनुष्य के लिए यह कम आवश्यक और कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि वह अन्तराल में छिपे विशिष्ट को खोजें, उपलब्ध करे और उस उपार्जन के सहारे आज की तुलना में कहीं अधिक ऊँचे स्तर पर जा पहुँचे ।

अतीन्द्रिय क्षमता की कार्य संरचना मौलिक संरचना से सम्बन्धित है । इससे आगे का क्षेत्र है—चेतनात्मक—आध्यात्मिक । उसकी विशिष्टता ऋद्धि-सिद्धियों के क्षेत्र से भी अधिक वरिष्ठ है । सिद्धियाँ पदार्थों, शारीरिक गतिविधियों एवं मनोबल के सहारे उपार्जित की जाती हैं । उस समूचे क्षेत्र को प्रकृति विस्तार के अन्तर्गत ही माना जायेगा । ऋद्धि-सिद्धियों के नाम से जानी जाने वाली उपलब्धियाँ वरिष्ठ होते हुए भी भौतिक जगत की समर्थता एवं सफलता ही गिनी जायेंगी । इन्द्रियाँ स्थूल हैं । उनकी सामर्थ्य को इन्द्रिय शक्ति कहा जाता है । इसी की सूक्ष्म पर्तें अतीन्द्रिय हैं । दिव्य श्रवण-दिव्य दर्शन आदि को कर्णेन्द्रिय एवं नेत्रेन्द्रिय की सूक्ष्म क्षमता तन्मात्रा का विकास कहा जायेगा । चेतना और प्रकृति का समन्वय ही मस्तिष्क है । मस्तिष्कीय क्षमताओं की स्थूल उपलब्धियाँ बुद्धिमता एवं प्रतिभा के नाम से जानी जाती हैं और उनकी सूक्ष्म पर्तें अतीन्द्रिय क्षमता का परिचय देती हैं ।

चेतना का अधिक उच्चस्तरीय क्षेत्र अन्तःकरण है । आस्थाएँ, आकांक्षाएँ एवं सम्वेदनाएँ समन्वित होकर अन्तःकरण का स्तर बनाती हैं । वस्तुतः यही असली व्यक्तित्व है । इसी की प्रेरणा से मस्तिष्क को चिन्तन और शरीर को कार्य करने के लिए विवश होना पड़ता है । ड्राइवर की इच्छानुसार गाड़ी की चाल और दिशा बनती है । इसी प्रकार अन्तःकरण तो अपने इच्छित प्रसंग के समर्थन में तर्क गढ़ने और उपाय खोजने में संलग्न होता है । मन का आज्ञानुवर्ती शरीर है । असुविधा अनुभव करने पर भी शरीर और मन का, अन्तःकरण का, अनुशासन मानना पड़ता है । इन दोनों बफादार नौकरों की गतिविधियाँ अपने संचालन की इच्छानुसार ही चलती हैं । थोड़ा झाड़ भले ही लें, पर अवज्ञा कभी नहीं करते । अन्तःकरण के अनुशासन में चलने वाले शरीरगत और मनोगत क्रिया-कलाप को ही व्यक्तित्व और पुरुषार्थ के नाम से जाना जाता है । मनुष्य का मूल्यांकन उसी स्तर के आधार पर होता है । उत्थान-पतन की, सम्मान-अपमान की, जय- पराजय की धुरी यही है । स्वयं की विशिष्टता इसी के साथ जुड़ी हुई है ।

यशस्वी एवं श्रद्धास्पद महामानवों का अन्तःकरण उदात्त उच्चस्तरीय होता है । उनकी आकांक्षाओं में जो उमंगें उभरती हैं उन्हीं के सहारे दृष्टिकोण विकसित होता है और पुरुषार्थ को दिशा निर्देश मिलता है । उत्कृष्ट अन्तःकरण की परिणति मनुष्य को महामानव के स्तर तक पहुँचा देती है । ऋषियों, मनीषियों, देवदूतों में अन्तःकरण की विशिष्टता ही वह कारण होती है जिसके कारण वे सांसारिक दृष्टि से सामान्य होते हुए भी स्तर की दृष्टि से असामान्य बनते हैं । अपनी वरिष्ठता से समूचे समाज को प्रभावित करते और स्वयं श्रद्धास्पद बनते हैं ।

अन्तःकरण यों चिरकालीन संचित संस्कारों से बना होता है और सहज ही बदलने के लिए सहमत नहीं होता । फिर भी अध्यात्म प्रयत्नों में ऐसे आधार विद्यमान हैं जो इस मर्मस्थल को कुरेदने और बदलने में सफल हो सकें । योगाभ्यास और तप

साधना के छोटे-बड़े अनेक स्तर हैं । उन दोनों के सहारे शरीर की समर्थता और मस्तिष्क की प्रखरता को बढ़ाया जा सकता है । इतना ही नहीं उच्चस्तरीय साधना से अन्तःकरण का काया-कल्प कर सकना भी सम्भव हो सकता है । इस स्तर की सफलता सम्पादित करने वाले ही महामानवों की भूमिका निभाते हैं । भले ही उनकी परिस्थितियाँ कितने ही व्यवधान उत्पन्न करती रहें ।

अध्यात्म विज्ञान की चरम उपलब्धियों में स्वर्ग-मुक्ति की—ब्रह्मानन्द-परमानन्द की—ऋद्धि-सिद्धि की चर्चा होती रहती है । इस क्षेत्र के सफल व्यक्तियों को दैवी वरदान और ईश्वरीय अनुदान मिलने के वर्णन मिलते हैं । उनकी सहायता से अनेकों अवरोध हटाने और उत्कर्ष का अवलम्बन वरदान पाने का अवसर मिलता है । समय की समस्याओं का समाधान करने में उनकी प्रचण्ड क्षमता असाधारण भूमिका निभाती है । यह स्तर प्राप्त करने के लिए अन्तःकरण में जमी हुई कुसंस्कारिता उखाड़ना और उत्कृष्टता जमानी पड़ती है । योग और तप की साधनाएँ इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए करनी पड़ती हैं । इतने भर से सभी प्रयोजन पूरे हो जाते हैं जो अध्यात्म साधना की सफलता के फलस्वरूप विभिन्न उपलब्धियों के रूप में शास्त्रकारों ने अलंकारिक एवं आकर्षक भाषा में बताये-समझाये हैं । परिष्कृत दृष्टिकोण से विनिर्मित मनःस्थिति को प्रतीत होता है कि संसार में सुन्दरता, सज्जनता, उदारता एवं सद्भावना की कमी नहीं । उसके साथ घनिष्ठता बढ़ाना और आदान-प्रदान का द्वार खोलना ही स्वर्ग है । उसे प्राप्त करने के लिए मरणोत्तर समय आने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । परिष्कृत दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न आत्म-सन्तोष, निष्कर्ष-निर्धारण और सुखद आदान-प्रदान वास्तविक स्वर्ग है । जिस अन्तःकरण को परिष्कृत करने से सफल व्यक्ति हर घड़ी हर स्थिति में रसास्वादन करता रह सकता है ! मुक्ति वह स्थिति है जिससे घटिया आकर्षणों, दबावों तथा परामर्शों को अस्वीकृत करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती । भीतरी कुसंस्कार और प्रलोभन ही भव बन्धन हैं । इन्हें तोड़ने और मात्र उत्कृष्टता को ही अपनाने की साहसिकता मुक्ति है । क्षुद्रता के बन्धन टूटने और महानता के स्तर तक पहुँचने पर नर को अपना स्तर नारायण जैसा प्रतीत होता है । वेदान्त दर्शन का छात्र इसी स्थिति की यथार्थता स्वीकार करते हुए शिवोहं- मुक्तोहं की अनुभूति का आनन्द लेता है ।

परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा है । अतिमानस- अतिमानव का उल्लेख इसी स्तर की विवेचना में होता रहता है । अन्तराल में देवत्व का उदय यही है । देवताओं के वरदान ईश्वर को अनुदान मिलने के घटनाक्रमों में वस्तुतः अपने ही अन्तराल की महान् उपलब्धियाँ उभर कर आती हैं । देखने वाले इन्हें किसी दिव्य सत्ता का अनुग्रह अनुदान मानते हैं । पेड़ पर पल्लव, पुष्प और फल वस्तुतः जमीन में दबी जड़ों के ही अनुदान होते हैं । देखने वाले भले ही उन्हें आसमान से टपकने का अनुमान लगाते रहें । उत्कृष्टता के साथ अन्तःकरण की बढ़ी-चढ़ी वनिष्ठता ही ब्रह्मानन्द-परमानन्द का रसास्वादन करती है । आत्म सत्ता के वास्तविक स्वरूप, लक्ष्य और सदुपयोग को यदि अन्तराल के आस्था क्षेत्र में स्थान मिल सके तो भ्रान्तियों का-माया का-पर्दा हटा और आत्म साक्षात्कार लाभ मिल गया । ईश्वरीय अनुशासन को सच्चे मन से स्वीकार करने का नाम ही शरणागति है । समर्पणकर्ता को तत्काल ईश्वर दर्शन होता है, अर्थात् उस आग में घुस पड़ने वाली लकड़ी की तरह अपने में ईश्वरीय सत्ता ओत-प्रोत होने की सुनिश्चित अनुभूति होती है— यही ईश्वर प्राप्ति है । आत्म साक्षात्कार, ब्रह्म साक्षात्कार के नाम से इसी स्थिति का वर्णन, विवेचन होता रहता है । कहना न होगा कि परिष्कृत चेतना का प्रभाव और पराक्रम जिस क्षेत्र में भी मुड़ पड़ेगा उसी में ऋद्धि-सिद्धियों की वर्षा होने लगेगी । इसी स्तर तक पहुँचना जीवन लक्ष्य माना जाता है । इसी को पूर्णता की उपलब्धि कहा गया है ।

व्यष्टि और समष्टि को बहिरंग और अन्तरंग परिस्थितियों को हेय स्तर से ऊँचा उठाकर चरम उत्कर्ष तक पहुँचा देने का अवलम्बन एक ही है—चेतना का परिष्कार । इसी को शरीर क्षेत्र में ओजस्, मनःक्षेत्र में तेजस् और अन्तःकरण में वर्चस् कहते हैं । मनःशक्ति की सही जानकारी ब्रह्म विद्या के सहारे उपलब्ध की जाती है और उसका उत्कृष्ट प्रयोजनों में जुटाकर स्वर्गीय उपलब्धियाँ प्राप्त करना साधना के सहारे सम्भव होता है । मनस् को धरती का ईश्वर ही कहना चाहिए । उसी के चमत्कार से यह समस्त संसार चमत्कृत हो रहा है ।

चेतना को अन्तराल में खोजा जाना है

शरीर से कर्म और मन से चिन्तन सभी करते हैं । निष्क्रिय रहने पर तो यह दोनों ही गलने लगते हैं और अपना अस्तित्व ही गँवा बैठते हैं । इस कर्म और चिन्तन में स्तर प्रायः उतना ही पाया जाता है जितना निर्वाह के साधन जुटाने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है । दूरदर्शी लोग इन दोनों की साज-सँभाल करने और समुन्नत बनाने पर ध्यान देते हैं । फलतः उनकी स्थिति सामान्य लोगों की तुलना में कहीं अच्छी होती है । आहार-विहार के नियम पालन करने वाले निरोग दीर्घजीवी पाये जाते हैं । अध्ययन सन्तुलन के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति विद्वान बुद्धिमान बनते और उपार्जित प्रतिभा के बल पर वैभव एवं ऐश्वर्य अर्जित करते हैं । आमतौर से इसी परिधि में शरीर और मन की परिपोषण एवं उपार्जन-प्रक्रिया चलती रहती है ।

व्यवहार में इतना स्वल्पांश प्रयुक्त होने पर भी जो शेष रह जाता है वह अत्याधिक है । यदि आत्म-सत्ता के सभी पक्षों पर समुचित ध्यान दिया जा सके । उसे उभारने और सत्प्रयोजनों में प्रयुक्त करने का विशिष्ट प्रयास चल पड़े तो उतने भर से मनुष्य ऐसी उपलब्धियों का अधिपति बन सकता है, जो वैभव एवं ऐश्वर्य की तुलना में कहीं अधिक मूल्यवान हैं ।

अविज्ञात को खोजने और अनुपलब्ध को पाने के लिए जब हर दिशा में दौड़-धूप हो रही है तो आत्म-सत्ता के बहिरंग एवं अन्तरंग को खोजने उभारने के लिए भी विशेष प्रयत्न क्यों न किया जाय ? मनोविज्ञान एवं परामनोविज्ञान के नाम पर मनःसंस्थान की कुछ खोजें प्रारम्भ हुई हैं । उनके सत्परिणाम भी सामने आये हैं और कई प्रकार के उपयोगी निष्कर्ष सामने आये हैं । इतने पर भी उनमें एक मौलिक कमी यह रह जाती है कि मस्तिष्कीय संरचना एवं उसकी कार्य-पद्धति को ही सब कुछ मानकर इसी छोटे क्षेत्र में अनुसन्धान होता रहता है । भौतिक विज्ञान में पदार्थ ही एक मात्र सत्ता है । मस्तिष्कीय कोशाओं की गतिविधियों का विवेचन, विश्लेषण करने तक ही वह सीमा मर्यादा

समाप्त हो जाते और भौतिक विज्ञानी उस क्षेत्र में प्रवेश करने की अपेक्षा बाहर ही खड़ा रह जाता है, जिससे चेतना के स्वरूप को जानने और उसके पराक्रम का अनुसन्धान सम्भव नहीं हो पाता ।

शरीर आहार-विहार की सुविधा के सहारे जीवित रहता है । मस्तिष्क को आस्थाएँ, आकांक्षाएँ उत्तेजित करती हैं । सामान्य जीवन में भूख, वासना, अहंता, आत्म-रक्षा जैसी शरीर सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ ही मन पर छाई रहती हैं, पर बात इतने से समाप्त नहीं हो जाती । आस्थाओं, इच्छाओं एवं सम्वेदनाओं का अपना स्वतन्त्र श्रेय है । यह शरीर की आवश्यकता से प्रभावित नहीं होती और न मस्तिष्कीय रचना से उनका कोई सम्बन्ध है । इतने पर भी उनकी बलिष्ठता इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि समूची आत्म-सत्ता को हिलाकर रख देती है । कई बार तो सामान्य एवं आवश्यक कहे जाने वाले प्रवाह को भी उलटती देखी गई है । भूख-प्यास को तृप्त करने की शारीरिक आवश्यकता, विवशता से नहीं, व्रत-उपवास के साथ जुड़ी हुई आस्था के सहारे अमुक समय के लिए निरस्त कर दिया जाता है । कामुकता को मनोविज्ञानी भौतिक आवश्यकता मानते हैं, पर ब्रह्मचर्य की महान् उपलब्धियों से इन्कार नहीं किया जा सकता । ब्रह्मचर्य की व्रतशीलता न केवल क्रिया को वरन् चिन्तन तक को मोड़-मरोड़कर दूसरी दिशा में नियोजित करती देखी गई है । आत्म-रक्षा और संकट में भय से बचाव करना स्वाभाविक है, किन्तु वीर हँसते-हँसते प्राणाहुतियाँ देते देखे गए हैं । सुविधा के लिए शरीर का हर अवयव लालायित रहता है, पर तप-तितीक्षा के हठयोग से कष्ट-साध्य प्रक्रिया स्वेच्छा-पूर्वक अपनाई और प्रसन्नतापूर्वक पूरी की जाती है ।

भौतिक मनोविज्ञान के प्रतिपादनों से यहाँ गतिरोध उत्पन्न होता है कि शरीर एवं मन की संरचना ही चिन्तन को प्रभावित करती है । आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही विचार प्रवाह गतिशील होता है । यदि इतना ही था तो सदुद्देश्यों के लिए जो काय कष्ट सहते हैं, उदार अनुदान देने पड़ते हैं, उनका कोई कारण ही शेष न रह जाता । भौतिक मनोविज्ञान का प्रतिपादन कितना ही तर्क और तथ्य संगत क्यों न हो वह एक पक्षीय ही कहा जायेगा और समग्र नहीं माना जायेगा । दूसरा पक्ष भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, जिसके अनुसार भावनाएँ समूचे काय तन्त्र पर छाई रहती हैं और न केवल उसका संचालन ही करती हैं वरन् अभ्यास से लेकर संरचना तक को नये ढाँचे में ढालकर ऐसा बदल देती हैं जिसे ऊपरी दबाव का चमत्कार कहा जा सके । आवश्यकता और आदतें भी मस्तिष्क को प्रभावित करती और अनुकूलता उत्पन्न करने के लिए दबाव डालती हैं पर भावना पक्ष इतना दुर्बल नहीं है कि उसे उपेक्षणीय ठहराया जा सके । सच तो यह है कि भाव सम्वेदनाओं का प्रभाव इतना अधिक होता है जिसे देखते हुए काम प्रवृत्तियों को नक्कार खाने में तूती की आवाज कहा जा सके । जीवन क्रम को प्रभावित करने में जिस आस्था पक्ष का अत्याधिक दबाव है उसकी चर्चा भौतिक मनोविज्ञान में मानसिक संरचना, कार्य पद्धति एवं चिरसंचित आदतों को प्रमुख बताया गया है । इस प्रकार से भाग्यवादी और परावलम्बी ठहरता है । मौलिक स्वतन्त्रता एक प्रकार से समाप्त ही हो जाती है जब मनोगत प्रवृत्तियों का ही दास बनकर रहना है तो फिर आदर्शवादी चिन्तन और चरित्र की गुंजाइश ही कहाँ रही ? प्रवृत्तियों में अधिकांश पाशविक हैं । इच्छाओं में कामुकता, आत्म रक्षा के लिए छल या आक्रमण का आश्रय, अहंता का क्रोध प्रकटीकरण में जैसी नियति ही यदि मनःसंरचना के माध्यम से मनुष्य के भाग्य में बदी है तो फिर उसे पशु की तरह ही जीना भी होगा । यह निषेधात्मक प्रतिपादन मनुष्य को पतन के गर्त में ही धकेलता है ।

अध्यात्म पक्ष ने मनोविश्लेषण दूसरे आधार पर किया है । उसका प्रतिपादन है आत्मा मूल रूप से उत्कृष्टता सम्पन्न है, जीवन यात्रा के सन्दर्भ में उस पर अवांछनीय प्रचलनों की छाप पड़ती और मैल जमता है । इसकी समय-समय पर सफाई न होने से वह दुष्प्रवृत्तियों की पक्षधर मनोभूमि बनती और आचरण की निकृष्टता पनपती है । यह अस्वाभाविक एवं अवांछनीय स्थिति है । इसे स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन आदि शोधन उपचारों से सही करना और चेतना को उसके स्वाभाविक स्तर पर रखे रहना सम्भव हो सकता है । इसके आन्तरिक आत्म पक्ष का दूसरा प्रतिपादन यह भी है कि कायगत चेतना में ईश्वर स्तर की सभी उत्कृष्टताएँ एवं समर्थताएँ बीज रूप में विद्यमान हैं । उन्हें साधना, उपचार के सहारे उगाया, उठाया और सक्षम बनाया जा सकता है । इस विकास क्रम पर चल पड़ने वाली चेतना स्तर उत्कृष्टता के साथ-साथ प्रगति पथ पर द्रुत गति से अग्रसर होती है और महान् मानवों, ऋषियों, देवताओं, अवतारों की भूमिका निभाती हुई पूर्णता के लक्ष्य तक जा पहुँचती है ।

मानसिक विश्लेषण का भौतिक पक्ष ही इन दिनों शिक्षा का अंग बनकर रह रहा है । बुद्धिवादी समर्थन भी उसी को मिल रहा है । फलतः मानसिक संशोधन का पुरुषार्थ लगता ही नहीं, नियति के आगे सिर झुकाने और पशु प्रवृत्तियों को अपनाये रहने का ही औचित्य लगता है । इस स्थिति में मनुष्य का नर-पशु, नर-कीटक की तरह निर्वाह करने में ही अपनी खैर दीखती है । मानसिक संरचना में जूझना और उसके फलस्वरूप मानसिक ग्रन्थियाँ उत्पन्न करने और उनका कष्ट सहने का जोखिम कोई क्यों उठायेगा । निश्चित रूप से इस पतन प्रवाह को न केवल मान्यता देना है वरन् उसे सभी स्वाभाविक मानकर समर्थन करना भी है । कहना न होगा कि इस भौतिकवादी मनःशास्त्र ने मनुष्य की आदर्शवादिता और उत्कृष्टता पर बेतरह कुठाराघात किया है । इससे मानवी भविष्य और विश्व सन्तुलन के डगमगाने की स्थिति बनी है ।

अध्यात्म पक्ष का मनोविज्ञान ठीक इससे उल्टा है । वह चेतना को मूलतः उत्कृष्ट मानता है और उसी में रमण करता उसको स्वाभाविक नियति कहता है । उसका प्रोत्साहन यह है कि परिष्कार की योग विचारणा और प्रवृत्तियों के उत्थान की तप साधना अपनाकर न केवल मानवी गरिमा को बनाये रखा जा सकता है वरन् दैवी उत्कृष्टता को अपनाते हुए आत्मिक प्रगति के उच्चतम स्तर तक भी पहुँचा जा सकता है । यह मात्र प्रतिपादन नहीं है । इतिहास का परिपूर्ण समर्थन इसे प्राप्त है । अध्यात्म क्षेत्र की विभूतियाँ अपनी गरिमा बढ़ाने एवं लोक साधना की दृष्टि में बहुत कुछ कर गुजरने में सफल होती रही हैं । भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में मानसिक उत्कृष्टता का परिपोषण करने वाले तत्वों का बाहुल्य रहा है । फलतः यहाँ की मूर्धन्य प्रतिभाओं से लेकर लोक-प्रवृत्तियों में सर्वत्र उत्कृष्टता छाई रही है और उसका सुखद प्रतिफल समूची विश्व वसुधा को मिलता रहा है ।

उज्ज्वल भविष्य की संरचना को ध्यान में रखते हुए आज की महती आवश्यकता है कि पाशविकता के पक्षधर प्रतिगामी मनोविज्ञान की अवास्तविकता और आत्मवादी मनःशास्त्र की यथार्थता एवं उपयोगिता को जनसाधारण के सम्मुख रखा जाय। इसी में प्राचीनकाल की तरह चिन्तन प्रवाह में आदर्शवादिता का समावेश बढ़ेगा और उसका प्रतिफल सुखद सम्भावनाओं के रूप में प्रकट होगा।

मनःशास्त्र की आधुनिक खोजों में भी ऐसे तथ्यों की कमी नहीं जो चेतना की मूल-प्रवृत्ति में उत्कृष्टता का समर्थन करते हैं। गलती इतनी भर होती रही है कि उनकी व्याख्या विवेचना करने में भ्रान्तियों का बोलबाला रहा और पूर्वाग्रह निष्कर्षों की निकृष्टता का पक्षधर बना दिया। आज की आवश्यकता यह है कि मनःशास्त्र पर लगे हुए ग्रहण को परिशोधित किया जाय और उसके स्थान पर चेतना की उत्कृष्टता को समझने और उसे विकसित करने का वातावरण उत्पन्न किया जाय। उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है। सर्वविदित है कि दर्शन की उत्कृष्टता-निकृष्टता के ज्वार-भाटे ही इतिहास में भले और बुरे कार्य-कलापों और लोक-प्रवाहों के लिए उत्तरदायी रहे हैं। भविष्य के निर्धारण में भी इस दार्शनिक उत्कृष्टता को प्रमुखता देनी होगी कि आत्म-सत्ता के स्वरूप एवं प्रवाह के सम्बन्ध में भ्रान्तियों का निराकरण किया जाय और इस क्षेत्र में विशिष्टता से परिचित एवं लाभान्वित होने के लिए आधार प्रस्तुत किया जाय। इस सन्दर्भ में यदि मनःशास्त्र का नये सिरे से संशोधन किया जाय तो ऐसे तर्क और तथ्य प्रचुर परिमाण में मिल सकते हैं जिनके सहारे मानवी गरिमा को फिर सतयुग की तरह, देवकाल की तरह उच्चस्तरीय बनाया जा सके। तथ्य सुनिश्चित है, मात्र भ्रान्तियों का निराकरण भर करना है। यदि मनीषा उस कार्य को हाथ में लेती है तो निश्चित रूप से आत्म-बोध का एक नया आयाम सामने प्रस्तुत होगा और उसका सुखद परिणाम नवयुग के सृजन में अत्यधिक सहायक सिद्ध होगा।

इसके लिए बहुत कुछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मनःसंरचना का प्रतिपादन जिस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञानियों ने किया है उसमें भी अध्यात्म पक्ष के समर्थन की सामग्री इतनी अधिक है कि उसे अमान्य ठहराने की आवश्यकता नहीं है। मात्र इतना भर करना है कि व्याख्या, विवेचना करते समय जो प्रतिगामी पूर्वाग्रह काम करता रहा है उसकी अवास्तविकता को सिद्ध करना है। यह बहुत आसानी से हो सकता है क्योंकि सच्चाई का पक्ष अपने आप ही इतना प्रखर होता है कि उसके लिए तिनके का सहारा भर मिलने से अपने पैरों आप खड़े होने का सहज ही अवसर मिल जाता है। जोर तो अवास्तविक को वास्तविक सिद्ध करने में लगाना पड़ता है।

मनःशास्त्र का सामान्य पक्ष है—विचार विज्ञान। विचारों की सामर्थ्य असीम है। सच तो यह है कि जीवन प्रवाह का सूत्र संचालन पूरी तरह विचार संस्थान के ही हाथ में है। मनुष्यों के बीच पायी जाने वाली उत्कृष्टता, निकृष्टता एवं निरर्थकता में अन्तर वस्तुतः मान्यताओं और विचारणाओं की प्रतिक्रिया भर होता है। जीवन को दिशा धारा देने में वातावरण, सम्पर्क, परामर्श और आकर्षण भी किसी हद तक अपनी भूमिका निभाता है, पर अन्ततः बात आस्थाओं की प्रमुखता पर ही टिकती है। आकर्षण, परामर्श वातावरण का प्रभाव भी तभी पड़ता है जब उसकी पक्षधर मनोभूमि पहले से ही बनी हुई हो। संसार में भलाई और बुराई के पर्वत खड़े हैं। इनमें से जो रुचिकर है वही प्रबल बनकर सामने आता है। जो अरुचिकर है उसके पैर ही नहीं जमते। रुचिकर वातावरण, परामर्श और जनसमुदाय ही घनिष्ठता बढ़ाता और प्रभाव छोड़ता है। शेष जो अरुचिकर है वह उपेक्षा की फटकार सुनकर उल्टे पैरों वापस लौट जाता है।

विचार, मस्तिष्क को सोचने की दिशा देते हैं। जिसमें रुचि होती है उसकी जानकारी से लेकर सफलता पाने तक के समस्त साधन एक-एक करके अनायास ही उपलब्ध होते चले जाते हैं। विचार प्रवाह ही वस्तुतः जीवन प्रवाह है। इस महाशक्ति का स्वरूप और प्रभाव यदि समझा जा सके तो परिस्थितियों को बदलने में जितना परिश्रम किया जाता है उतना ही प्रयास विचारधारा को व्यवस्थित और परिष्कृत करने में किया जाने लगे तो श्रेष्ठ व्यक्तित्व का निर्माण एवं वर्तमान समस्याओं का समाधान मिल सकना सम्भव है। आश्चर्य यह है कि लोग विचार शक्ति का उपयोग तो दिन-रात करते हैं पर यह नहीं जानते कि उसे व्यवस्थित कैसे रखा जाय और उपयुक्त दिशा में किस प्रकार प्रयुक्त किया जाय? विचार जीवन पर हावी रहते हैं, यह सच है, पर यह उससे भी अधिक सच है कि यदि प्रज्ञा सजीव हो तो विचार संस्थान को सुनियोजित करने और उसके सहारे आनन्द भरा प्रगतिशील जीवन का लाभ ले सकती है। उत्थान और पतन तो विचार वृक्ष के कडुए-मीठे प्रतिफल मात्र हैं। नवनिर्माण में सुविधा सम्वर्धन के प्रयासों को प्रमुखता मिलती है किन्तु उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि विचार संशोधन की कला से जन-जन को परिचित कराया जाय। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। उस सूत्र के पीछे एक ही रहस्य सन्निहित है कि प्रयत्नपूर्वक विचार संस्थान को सुनियोजित कर देने पर जीवन रथ प्रगतिशीलता के राजमार्ग पर चलने लगता है और गरिमा के चरम लक्ष्य तक जा पहुँचता है। इसके विपरीत यदि विचार भ्रान्तियों और दुष्प्रवृत्तियों में उलझे रहें तो उनकी दुःखद प्रतिक्रिया ही होगी और संकटों तथा विक्षोभों का घटाटोप खड़ा होता जायेगा। यही है भाग्य और भविष्य निर्धारण में मनुष्य की अपनी भूमिका।

संकटों को हटाने और सुविधाओं को बढ़ाने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अन्य प्रयास जो भी किए जायें इस तथ्य को अनिवार्य रूप से जोड़कर रखा जाय कि जनमानस को शालीनता का, विचारधारा का, महत्त्व समझाने और अभ्यास कराने के प्रयास को प्रमुखता दी जाय अन्यथा सारे प्रयत्न एक प्रकार से निष्फल ही चले जायेंगे। सम्पन्नता बढ़ा ली गई तो भी कुविचारों के रहते उसका सदुपयोग सम्भव न हो सकेगा और आग में घी पड़ने की तरह वैभव उल्टे दुर्गुणों को भटकाने में सहायता करता चलेगा। उत्कृष्टता का पक्षधर विचार विज्ञान आज उपेक्षित स्थिति में पड़ा है। कुविचार भड़काने वाली मान्यताओं को साधनों का समर्थन मिला हुआ है। यह स्थिति बदली जानी चाहिए। विचार विज्ञान का नये सिरे से सांगोपांग पर्यवेक्षण होना चाहिए। आज की इस मान्यता को निरस्त करना चाहिए कि कुटिलता एवं धूर्तता ही लाभदायक होती है। सभ्यता और संस्कृति के समर्थक

विचार किस प्रकार भौतिक और आत्मिक क्षेत्र की विभूतियाँ उपार्जित करने में समर्थ होते हैं, कुविचार किस प्रकार घुन, तेजाब और चिनगारी की तरह गलाते-जलाते हैं, इस तथ्य को यदि तर्क, तथ्य, प्रमाण, विज्ञान और व्यवहार की समस्त कसौटियों पर खरा सिद्ध करके दिखाया जा सके तो विश्वास किया जाना चाहिए कि आज जिस प्रकार कुविचारों के आधिपत्य ने जनजीवन नष्ट किया है उसी प्रकार सद्विचारों को प्रमुखता मिलने पर श्रेय और श्रेष्ठता का ही दर्शन होता चला जायेगा । फलतः सुखद सम्भावनाएँ ही फलित होती चली जायेंगी । मनःशास्त्रियों का कर्त्तव्य है कि वे इस उत्तरदायित्व को सँभालें और श्रेष्ठता समर्थन का ऐसा सुदृढ़ आधार खड़ा करें जिसके सहारे उज्ज्वल भविष्य की संरचना सम्भव हो सके ।

इसके आगे के दो चरण और हैं । एक यह है कि स्वभाव में जड़ जमाकर बैठे हुए कुसंस्कारों को उलटकर सुसंस्कारों की स्थापना का उद्देश्य कैसे पूरा हो । दूसरा यह है कि मनःसंस्थान में जो अतीन्द्रिय क्षमताओं तथा उत्कृष्ट आस्थाओं का भण्डागार भरा पड़ा है, उसे किस प्रकार जगाने और क्रियान्वित करने का लाभ उठाया जाय । यह दोनों आधार भी विचार विज्ञान के अध्यात्मवादी पक्ष को उभारने की तरह आवश्यक हैं । कुसंस्कारों की जड़ें गहरी भी होती हैं और मजबूत भी । अध्ययन परामर्श से शालीनता की सुखद और दुर्बुद्धि की दुःखद प्रतिक्रिया को जाना जा सकता है और प्रतिपादन की दृष्टि से उसका औचित्य भी माना जा सकता है । इतने पर भी मान्यताओं और आदतों के सहारे चलने वाले ढर्रे को बदलना अति कठिन होता है । न दुष्प्रवृत्तियाँ छूटती हैं और न सत्प्रवृत्तियाँ स्वभाव में सम्मिलित होती हैं । ऐसी दशा में सद्विचारों के महत्त्व को समझना-समझाना एक प्रकार से निरर्थक ही चला जाता है ।

ठीक ऐसी ही कठिनाई मनोबल एवं आत्मबल बढ़ाने, एकाग्रता एवं संकल्प के सहारे प्रसुप्त क्षमताओं को जगाने और सामान्य से विशिष्ट बनाने में भी आती है । मनोबल का महत्त्व जान लेने भर से उसकी उपलब्धि तो नहीं हो जाती । प्रखरता न जगे तो मनःसंस्थान का कायाकल्प किस उपाय कारण से सम्भव बने ?

शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिए कठिन व्यायाम करने पड़ते हैं । विष ग्रन्थियों को हटाने के लिए ऑपरेशन करने पड़ते हैं । कैन्सर जैसे संकटों से लड़ने में रेडियो विकिरण प्रयुक्त करना पड़ता है । नट-नटनियाँ सहज ही कला प्रदर्शन का श्रेय प्राप्त नहीं कर लेतीं, उन्हें विशिष्ट अभ्यासों के लिए लगातार प्रयत्न करना पड़ता है । सर्कस के जानवरों को पुरानी आदतें छोड़ने और नई अपनाने के लिए कैसी कष्टसाध्य प्रक्रिया में होकर गुजरना पड़ता है, इसे निकटवर्ती वातावरण में रहने वाले भली प्रकार जानते हैं । दूर रहने वाले इन सबकी विशिष्टता को दैवी वरदान का अनायास उपहार भर मान सकते हैं । कहा और माना जो भी जाता रहे, तथ्य यही है कि विशिष्ट उपलब्धियाँ विशिष्ट पुरुषार्थ के सहारे ही करतलगत होती हैं । अन्तराल की गहरी पर्तों को छूने, कुरेदने, उभारने और प्रत्यक्ष कर दिखाने के लिए जो प्रबल प्रयास करने होते हैं उन्हीं का नाम साधना है । साधना का अपना दर्शन और अपना विज्ञान है । विचार विज्ञान का उपयोग दैनिक व्यवहार में होता है, उसका प्रभाव अपनी चिन्तन शैली, कार्य-पद्धति एवं स्वभाव व्यवहार पर पड़ता है । उसका प्रतिफल आत्म-सन्तोष, आत्म-गौरव, लोक-सम्मान एवं जन-सहयोग के रूप में अनेकानेक सुखद सम्भावनाएँ साथ लेकर सामने आता है । साधना विज्ञान इससे आगे की स्थिति है । विचार विज्ञान का सम्बन्ध मन की सचेतन पर्त से है । इसे व्यवहार बुद्धि की संज्ञा दी जा सकती है । मन की अगली पर्त अचेतन और उससे गहरी उच्च चेतन है । मन और बुद्धि की गतिविधियों की गतिविधियाँ सचेतन क्षेत्र की हैं, आदतें अचेतन की और आस्थाएँ उच्च चेतन की । मन और बुद्धि को लाभ का लोभ और हानि का डर दिखाकर आसानी से मोड़ा-मरोड़ा जा सकता है किन्तु आदतों को बदलना, आस्थाओं की चीर-फाड़ एवं प्लास्टिक सर्जरी करना हँसी खेल नहीं है । धरती की ऊपरी पर्त पर धूल-कंकड़ भर है । बहुमूल्य खनिज गहरी खुदाई करने पर उपलब्ध होते हैं । भूगर्भ में डूबने का दुःसाहस करने और बहुमूल्य उपकरण जुटाने वाले ही उस छिपी सम्पदा के अधिकारी बनते हैं । समुद्र के ऊपर निरर्थक झाग तैरते रहते हैं । गहरी डुबकी लगाने वाले मणि मुक्तक ढूँढ़ते हैं । धूल कण की गहराई को स्पर्श करने वाले ही अणु शक्ति के स्वामी बनते हैं । यह गहराई में प्रवेश और वहाँ की उखाड़-पछाड़ का उपक्रम आत्म चेतना के क्षेत्र में भी सम्भव हो सकता है और उसका ऐसा प्रतिफल उपार्जित किया जा सकता है जिसे चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियों के नाम से जाना जाता रहा है ।

मानवी उत्कर्ष की सही दिशा उसकी अन्तःचेतना का अभ्युदय ही हो सकता है । जो इस दिशा में जितना आगे बढ़ा वह सांसारिक दृष्टि से भी ऊँचा उठा है । महामानव भले ही कृषि व्यापार न करते रहे हों, भले ही उन्हें धनी शासक बनने का अवसर न मिला हो, पर लोक श्रद्धा अर्जित करने और जन-कल्याण के क्षेत्र में महान् प्रयोजन करने की दृष्टि से उन्होंने जो अनुकरणीय कृत्य किए उनके लिए मानवता उनकी सदा कृतज्ञ रहेगी । आत्म सन्तोष और आत्म गौरव प्राप्त करने के अनुपयुक्त और अस्थिर अवसर तो मद्यपों और आततायियों को भी मिल जाते हैं, पर जिन्हें वास्तविक और चिरस्थायी कहा जा सके वे मात्र महामानवों को ही उपलब्ध होते हैं । स्पष्ट है कि महामानवों का स्तर प्राप्त करना मात्र आत्मिक दृष्टि से समुन्नत व्यक्तियों को ही सम्भव होता है । भौतिक साधनों के सहारे किसी को भी गौरवास्पद पद पर पहुँचना सम्भव नहीं हुआ है । सम्पन्नता कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो शालीनता जन्य विभूतियों की तुलना नहीं कर सकती । इस लक्ष्य को समझने में जो समर्थ हैं, वे मनुष्य जीवन के अन्तरंग और बहिरंग सफलता का एकमात्र आधार चेतना के उत्कर्ष को ही मानते हैं । उन्हें निजी उपार्जन नहीं करना पड़ता वरन् लोक श्रद्धा ही सम्पत्ति बरसाती है जिसके कारण वे सुसम्पन्नों से भी अधिक वैभववान बनते हैं । बुद्ध, गाँधी, ईसा आदि की गतिविधियों को धन की कमी नहीं रही । यशस्वी, मनस्वी, ओजस्वी और तेजस्वी होने का सर्वतोमुखी लाभ चेतनात्मक दृष्टि से विकसित व्यक्तियों को ही मिलता है और वह इतना बड़ा है कि उसकी तुलना अन्य किसी उपार्जन के साथ नहीं की जा सकती । सम्पन्नों की सम्पदा से उनका शरीर एवं परिवार ही लाभान्वित होता है किन्तु महानता के वैभव से समूचे समाज एवं समय को कृतकृत्य बनने का अवसर मिलता है । विचारशील

को यह तथ्य शिरोधार्य रहा है और वे विश्वासपूर्वक आन्तरिक महानता का वैभव स्वयं उपार्जित करते और दूसरों को उसके लिए उत्साहित करते रहे हैं ।

अन्तःक्षेत्र में विभूतियों के भाण्डागार भरे पड़े हैं । उनमें से जो जितना चाहता है वह उतना सहज ही प्रयत्नपूर्वक उपलब्ध कर लेता है । अतीन्द्रिय क्षमताएँ सिद्ध पुरुषों को प्राप्त होती हैं और वे अपनी दिव्यदृष्टि से, दिव्यशक्तियों से असंख्यों की ऐसी सेवा करते हैं जो सामान्य मनुष्यों के लिए किसी भी प्रकार सम्भव नहीं होती । सभी जानते हैं, इस संसार में सर्वविदित और सर्व उपलब्ध उतना ही है जितना कि निर्वाह के लिए आवश्यक है । इसके अतिरिक्त जो कुछ विशिष्ट है वह सभी रहस्यमय है और इस स्थिति में रह रहा है कि उसे गहराई में उतरकर ही खोजा-पाया जा सके । प्रकृति के रहस्यों को बड़ी कठिनाई से खोजा गया है । जैसे-जैसे वे मिले हैं शक्ति और सम्पत्ति के भण्डार करतलगत होते चले गए हैं । बिजली, भाप, अणुशक्ति, ईथर आदि प्रगति शक्तियाँ थीं तो अनादिकाल से उनका लाभ उठाना कठिन प्रयत्नों से ही सम्भव हो सका । मानवी चेतना में भी ऐसी रहस्यमय पर्तें मौजूद हैं जिन्हें उखाड़ा और उछाला जा सके तो दिव्य शक्ति सम्पन्न सिद्ध पुरुषों की विशिष्टता प्राप्त हो सकती है और उन उपलब्धियों का लाभ उपार्जनकर्त्ता को ही नहीं समस्त संसार को मिल सकता है ।

प्रकृति की शक्तियों का परिचय प्राचीनकाल में था पर उसका लाभ थोड़े ही लोग उठाते थे । रावण, अहिरावण, हिरण्यकश्यपु, वृत्तासुर आदि ऐसे ही वैज्ञानिक थे जिन्होंने प्रकृति रहस्यों को जाना और उनकी उपलब्धियों से स्वयं ही लाभ उठाया । आज की स्थिति दूसरी है । प्रकृति रहस्यों को वैज्ञानिक खोजते हैं और उनसे लाभान्वित होने का अवसर सभी को मिल जाता है । अध्यात्म क्षेत्र की रहस्यमय शक्तियों के सम्बन्ध में भी यही होना चाहिए । दिव्य सिद्धियों से अभी भी थोड़े से लोग लाभ उठाते, चमत्कारी कहलाते देखे गए हैं । यह सीमा बन्धन अनुपयुक्त है । दुरुपयोग का खतरा तो बिजली से लेकर माचिस तक में है, फिर इस कारण उनका उपयोग रोका तो नहीं जाता । यही नीति आत्मिक शक्तियों के सम्बन्ध में भी होनी चाहिए । उन्हें छिपाने की नहीं प्रकट करने और सर्वसाधारण को उनसे लाभान्वित हो सकने की स्थिति होनी चाहिए । दुरुपयोग कैसे रुके यह दूसरा प्रश्न है । उसका हल ढूँढ़ा जाना चाहिए, पर वह यह नहीं होना चाहिए कि महत्त्वपूर्ण भण्डार से किसी को परिचित ही न होने दिया जाय ।

अतीन्द्रिय क्षमताओं की वास्तविकता एवं प्रामाणिकता के सम्बन्ध में परामनोविज्ञान क्षेत्र के शोधकर्ताओं ने भारी खोजबीन की है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मनुष्य उतना ही नहीं है जितना कि उसे सामान्यतः जाना जाता है । उसके अन्तराल में प्रकृति के रहस्यों की तरह ही अगणित विचित्रताएँ छिपी पड़ी हैं । मानवी काया पूरी जादू की पिटारी है । उसमें से कभी-कभी कुछ फुलझड़ियाँ फूट पड़ती हैं तो प्रतीत होता है कि पर्दे के पीछे हतप्रभ करने वाला तिलस्म भरा पड़ा है । ऐसे विलक्षण व्यक्तियों की अभी भी कमी नहीं है जो ऐसी विचित्रताओं का परिचय देते हैं, जिन पर सहज विश्वास नहीं होता । फिर भी सच्चाई तो सच्चाई है । भ्रम निवारण के लिए जब हजार बार, हजार तरीके से परीक्षा कर ली जाय तो और तथ्य ज्यों का त्यों रहे तो इस कारण इन्कार भी नहीं किया जा सकता कि उन विचित्रताओं का कारण बुद्धि एवं विज्ञान के आधार पर समझ में नहीं आता ।

अतीन्द्रिय क्षमता का अस्तित्व अब न तो अप्रामाणिक रह गया है और न अविश्वस्त । पर उसे रहस्य, रोमांच कहकर अविज्ञात विचित्रता मानकर सन्तोष भी नहीं किया जा सकता । विशेषतया उस स्थिति में जबकि यह आशा बँधती है कि इन सामर्थ्यों का अधिपति बनने पर मनुष्य उससे भी अधिक साधन सम्पन्न बन सकता है, जितना कि प्रकृति शक्तियों के सहारे इन दिनों बना हुआ है । यह सम्भावनाएँ काफी आकर्षक हैं । इन्हें जन-जन के लिए उपलब्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि उन रहस्यों का उद्‌घाटन किया जाय जिन पर अतीन्द्रिय क्षमताओं का आधार एवं उद्‌भव आश्रित है । विज्ञान ने बिजली का उपयोग लाभ ही नहीं बताया है वरन् उसका स्वरूप, आधार, प्रवाह भी जाना समझाया है । सिद्धान्त और प्रयोग का समन्वय ही किसी तथ्य का प्रतिपादन है । अतीन्द्रिय क्षमताओं से यदि मनुष्य को अवगत और लाभान्वित बनाने का व्यापक उद्देश्य हो तो उसके समग्र दर्शन एवं आधार का पता लगाना होगा । प्राचीनकाल में अध्यात्म विज्ञान भले ही समुन्नत स्थिति में रहा हो, किन्तु आज तो उस क्षेत्र में भ्रान्तियों का ही बोलबाला है । तथ्यों से तो वे भी परिचित नहीं हैं जो साधना के नाम से कुछ न कुछ उल्टा-सीधा करते रहते हैं ।

आवश्यकता इस बात की है कि न केवल अतीन्द्रिय क्षमताओं को, लाभान्वित होने के उपचारों को, पर्याप्त माना जाय, वरन् उस क्षेत्र की संरचना, कार्य-पद्धति, उतार-चढ़ाव, विधि-निषेध की समग्र जानकारी उपलब्ध की जाय और इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाय कि चेतना की अविज्ञात शक्तियों की स्थिति और सम्भावना क्या है ? उनका उत्पादन एवं उपयोग किन सिद्धान्तों एवं उपाय उपकरणों के सहारे सम्भव हो सकता है । आज के शोध प्रयोजनों में यह अतिमहत्त्वपूर्ण पक्ष गिना जाना चाहिए । प्रकृति निर्मित ब्रह्माण्ड की रहस्यमयी पर्तें जैसे-जैसे प्रकट होतीं और प्रयोग में आती हैं, वैसे-वैसे मनुष्य अधिक समर्थ एवं सम्पन्न बनता जाता है । चेतना के कार्यक्षेत्र काय-पिण्ड की रहस्यमय पर्तें प्रकृति-पिण्ड से कम नहीं वरन् अधिक ही हैं । जब शोध का उपक्रम चल रहा है तो उसे पदार्थ तक ही क्यों सीमित रखा जाय ? चेतना के उस क्षेत्र में भी रहस्योद्‌घाटन की दृष्टि से प्रवेश क्यों न किया जाय जो प्रकृति शक्तियों की तुलना में असंख्यों गुनी उपयोगी और परम कल्याणकारी विभूतियों से भरा पड़ा है । इस क्षेत्र को उपेक्षित इसलिए रहना पड़ा है कि भौतिक विज्ञान को उसकी प्रामाणिकता पर ही विश्वास नहीं हुआ । आज स्थिति बदल गई है । तथ्यों ने मनुष्य को प्राणी नहीं रहस्यमय क्षमताओं का भाण्डागार सिद्ध कर दिया है । ऐसी दशा में यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि उन रहस्यों पर से पर्दा उठाने वाले शोध प्रयत्न सुनियोजित रीति से आरम्भ किए जायें । इस क्षेत्र की सफलता निश्चित रूप से मनुष्य का स्तर और वैभव अत्यधिक बढ़ाने—नये द्वार खोलने—नये आधार खड़े करने में समर्थ हो सकती है ।

शोध सहकर्मियों से अपेक्षाएँ भविष्य की सम्भावनाएँ

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में अनुसंधान कार्य आरम्भ हो चुका है। पूर्ण समयदानी विज्ञान एवं दर्शन के मनीषी इस कार्य में लगे हैं। अकेले पुरुषार्थ एवं मनोयोग के बलबूते इतना बड़ा कार्य आरम्भ कर सकना सम्भव नहीं था पर परोक्ष सत्ता की प्रेरणा एवं प्रत्यक्ष सहयोग से यह सम्भावना बन चली है कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों के वैज्ञानिक प्रतिपादन से इस युग की महती आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी।

शोध के विषय अनेकों हैं तथा उनके क्षेत्र भी विस्तृत हैं। ऐसी स्थिति में उचित यही होगा कि शोधकार्य में इच्छुक विद्वानों से उन्हीं विषयों का अनुसंधान करने को कहा जाय जिनसे उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा हो। विषय के सम्पर्क में सतत् बने रहने के कारण वे उस क्षेत्र में घुसकर बड़ी आसानी से अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य ढूँढ़ सकते हैं। इन तथ्यों को ढूँढ़ निकालने की प्रक्रिया क्या हो तथा किन बातों को ध्यान में रखा जाय, यही सोचकर प्रारम्भिक मार्गदर्शन हेतु ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं।

यह स्पष्ट समझ लिया जाना चाहिए कि शोध अर्थात् वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के प्रतिपादनों की खोज-बीन है। प्रयोग-परीक्षण तो एक सीमा तक स्थूल प्रतिक्रियाओं का सत्यापन करने के लिए ही आवश्यक मानकर आरम्भ किया गया है। इस तथ्य को हृदयंगम कर शोध सहकर्मी को इस विशाल प्रक्रिया के विस्तार की एक झलक जानना जरूरी है। प्रत्येक विषय का विस्तार व्यापक होने के कारण अभी कुछ ही विषयों को हाथ में लिया जा रहा है। पर यह सीमा बन्धन सामयिक ही है।

चिर पुरातन आध्यात्मिक सिद्धान्तों को नूतन परिप्रेक्ष्य में किए जाने की इस शोध प्रक्रिया का वर्गीकरण तीन भागों में है—

(१) अध्यात्म दर्शन,

(२) जीवन दर्शन,

(३) विज्ञान।

अध्यात्मदर्शन में उच्चस्तरीय आध्यात्मिक सिद्धान्तों का विवेचन है, जिन्हें 'ब्रह्मविद्या' के अन्तर्गत माना जाता है। आत्मा का अस्तित्व परमात्म तत्व का विवेचन, कर्मफल, पुनर्जन्म के सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता, आस्तिकता के व्यक्ति एवं समाज पर प्रभाव, ईश्वर-जीव-प्रकृति का परस्पर सम्बन्ध, जीव-ब्रह्म मिलन संयोग योग, आस्था-विश्वास-निष्ठा सम्वेदनाएँ जैसे उच्चस्तरीय गुणों की जीवन में अनिवार्यता, मस्तिष्कीय संरचना एवं सूक्ष्म शरीर विज्ञान का आध्यात्मिक सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन (षट्चक्र, कुण्डलिनी, पंचकोष, स्थूल-सूक्ष्म कारण शरीर, ब्रह्मवर्चस-तेजोवलय), समर्पण योग एवं शरणागति, पूर्णपुरुष, अतिमानस-अतिमानव की परिकल्पना आदि विषयों को 'ब्रह्मविद्या' अनुच्छेद के अन्तर्गत लिया गया है।

अध्यात्म दर्शन का दूसरा खण्ड है—व्यवहार परक अध्यात्म। समस्त शारीरिक एवं मानसिक योग साधनाएँ तथा धर्मानुष्ठान इसी में आते हैं। तपश्चर्या, आहार-विहार की सीमा बन्धन, जप, अनुष्ठान, यज्ञ, आदि प्रक्रियाएँ धर्मानुष्ठानों के अन्तर्गत ही हैं। इनकी फलश्रुतियाँ, आत्मविकास में इनका योगदान तथा इनसे सम्भावित बाह्य जीवन की सफलताओं की प्रामाणिकता का विवेचन किया जाता है।

जीवनदर्शन व्यावहारिक मनोविज्ञान का वह पक्ष है जो नीति, सदाचार, सज्जनता, अनुशासन जैसे आध्यात्मिक गुणों को जीवन में उतारने से सम्भावित व्यक्तित्व के परिष्कार की महत्ता दर्शाता है। संतुलन, धैर्य, साहस, विवेकशीलता, मनस्विता, शालीनता आदि मानसिक गुणों का विवेचन विचार विज्ञान के इसी अनुच्छेद में किया जाता है। विचारों की विचारों से काट, मनोबल एवं संकल्पशक्ति का मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन पर प्रभाव, विधेयात्मक चिन्तन से जीवनकाल में स्वर्ग की अनुभूति जैसे विषयों का विवेचन नैतिकी, मनोविज्ञान एवं समाजविज्ञान के इन्हीं पक्षों के माध्यम से किया जायेगा।

तीसरा विषय है—विज्ञान। इस असीम विषय के विस्तार को ध्यान में रखकर इसके दो विभाजन किए गए हैं—(अ) पदार्थ विज्ञान, (ब) चिकित्सा विज्ञान।

पदार्थ विज्ञान के अन्तर्गत जड़ प्रकृति का रहस्यमय विलक्षण संसार आता है। ये सभी प्रतिपादन यह प्रमाणित करेंगे कि प्रकृति का यह विशाल स्वरूप बिना उद्देश्य, बिना नियन्त्रण के नहीं है, यह सृष्टि ब्रह्म का प्रतीक है। इन्हीं तथ्यों की वैज्ञानिकता का प्रमाणीकरण करने हेतु ब्रह्माण्ड के विराट् विस्तार, सूर्य और अंतर्ग्रहीय जीवन, पृथ्वी और जीवन-परस्पर सम्बद्धता के सिद्धान्त, जीव-जगत एवं वृक्ष-वनस्पतियों की विचित्रताएँ, प्राणी-मनुष्य-वनस्पति एवं प्रकृति का परस्पर सहकार आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। प्रकृति के भाण्डागार में छिपे ऋद्धियों और सिद्धियों के स्रोतों का वर्णन एवं साधना से सिद्धि के सिद्धान्त एवं प्रयोग इसी विशाल विषय की परिधि में आते हैं।

चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत मनुष्य शरीर की रहस्यमय पर्तों एवं उनकी विलक्षण क्षमताओं का अध्ययन किया जायेगा। उपत्यिकाओं एवं सूक्ष्मग्रंथियों के रूप में विद्यमान अंतःस्रावी ग्रंथियों एवं शारीरिक अवयवों और तत्वों में सहजीविता के सिद्धान्तों का अध्ययन वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के इसी प्रखण्ड में किया जाता है। चिकित्सा विज्ञान का दूसरा पक्ष है प्रयोग परीक्षण द्वारा योग साधनाओं तथा यज्ञप्रक्रिया द्वारा शरीर एवं मन पर होने वाली जैविक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन मापन। इन सभी पक्षों का वर्णन पिछले अध्यायों में विस्तार से कर दिया गया है।

उपर्युक्त जानकारी संक्षेप में दी गई है। इससे मात्र विषयों की परिधि का अनुमान भर होता है। वास्तविक शोधकार्य तो प्रत्यक्ष मार्गदर्शन से ही सम्भव है। इसके लिए शोध प्रशिक्षण शिविर समय-समय पर आयोजित किए जाते रहेंगे। देश-विदेश से आने वाले शोधार्थियों के रहने एवं प्रशिक्षण की शोध संस्थान में पूरी व्यवस्था है। जिनके पास अधिक समय हो, वे यहाँ ब्रह्मवर्चस में रहकर भी शोध कार्य में सहयोग दे सकते हैं। पर यह समय दो माह से कम का नहीं होना चाहिए।

उपर्युक्त विषयों के लिए शैक्षणिक योग्यता का कम एवं बुद्धि की प्रखरता का अधिक महत्त्व है। शोध हेतु जिस पकड़ की आवश्यकता होती है, उसकी परख किए जाने पर ही उनको यहाँ रोके जाने की बात सोची जा सकती है। एक बात और भी स्पष्ट हो जानी चाहिए कि व्यक्ति की शैक्षणिक उपलब्धियाँ,

वर्तमान पद-भार तथा अभिरुचि तीनों नितान्त अलग-अलग पक्ष हैं । अपवाद रूप में ही किसी बिरले में इन तीनों का सामंजस्य देखने में आता है । इसलिए शोध विषयों का चयन स्वयं शोधकर्ता को ही करना होगा ।

अध्यात्म की गरिमा समझाने, महत्ता बताने के लिए यह आवश्यक था कि उसे वैज्ञानिक आधारों पर प्रतिपादित किया जाय । यह शुभारम्भ ब्रह्मवर्चस में हो चुका है । स्वामी विवेकानन्द ने बहुत समय पूर्व कहा था कि "अध्यात्म में यदि सत्यता है तो उसे वैज्ञानिक कसौटियों पर स्वयं को कसने के लिए तैयार हो जाना चाहिए । यदि उपयोगी सिद्ध नहीं होता तो उसे समाप्त हो जाना चाहिए ।" उनका यह कथन अकारण नहीं था । आध्यात्मिक सिद्धान्तों की स्वीकारोक्ति में बुद्धिवाद की संतुष्टि इससे कम में नहीं हो सकती ।

सामान्यतया इस युग की बुद्धिमत्ता का योगदान लोक-निर्माण के क्षेत्र में निराशाजनक ही रहा है । श्रम, साधन, साहस आदि की विभूतियाँ भटकती हों तो उन्हें किसी प्रकार सहन भी किया जा सकता है पर मनीषा तो समाज के मस्तिष्क की ही नहीं, हृदय की भी भूमिका निभाती है । उसके प्रमादी होने पर लोक-चिन्तन का ढाँचा ही लड़खड़ा जाता है । सर्वविदित है कि चिन्तन की विकृतियाँ कुकृत्यों के रूप में परिणत होती हैं । कुकृत्यों से विग्रह बढ़ते हैं और वही प्रकारान्तर से त्रास बनकर वातावरण को विक्षोभ से भर देते हैं । पतन और विनाश का मार्ग यही है ।

साहित्य, कला, धर्म, विज्ञान, दर्शन आदि की प्रतिभाएँ यदि अर्थ और विलास को महत्त्व न देतीं और ब्राह्मण परम्परा अपनाकर अपने उत्तरदायित्वों को वहन करती रहतीं—उपयुक्त प्रेरणा को उभारने में लगी रहतीं तो आज वे दुर्दिन न सामने आते जिनके लिए सभी दुःखी और एक-दूसरे पर दोषारोपण करते देखे जाते हैं ।

जब सभी कुछ बदलेगा तो मनीषा भी अवसादग्रस्त कैसे रहेगी । उसने करवट बदली है और निश्चय किया है कि एक झण्डे के नीचे एकत्रित होकर कंधे से कंधा और कदम से कदम मिलाकर बौद्धिक और भावनात्मक क्षेत्र की उन आवश्यकताओं को पूरा करेंगे जिन पर नवयुग का भव्य भवन खड़ा किया जाना है ।

जो काम सौंपे गए हैं, वे कई प्रकार के हैं । उनमें एक यह भी है कि ज्ञान-विज्ञान की समस्त धाराओं का नये सिरे से अवगाहन किया जाय और उसमें से यह ढूँढ़ निकाला जाय कि सद्प्रवृत्तियों के सत्परिणाम और दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम किस प्रकार सम्पन्न होते हैं । देवत्व की उपयोगिता और निकृष्टता की विनाशलीला को नये सिरे से नये तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए सिद्ध करना होगा आज की इस स्थिति का कारण है—देवत्व के पक्ष का तथ्यपूर्ण ढंग से प्रतिपादन न हो सकना । तात्कालिक लाभ कितना और भावी विनाश कितना, यदि इसे तथ्यपूर्ण आधारों पर हृदयग्राही ढंग से समझाया जा सके तो समझदारी यथार्थता को समझने और स्वीकार करने में भी उसी प्रकार सहमत हो सकती है, जिस प्रकार हवा के रुख पर बहते हुए आज जन-जन को निकृष्टता की नीति ही लाभदायक प्रतीत हो रही है । युग मनीषा का कर्त्तव्य है कि इस प्रवाह को उल्टे और विश्व व्यवस्था से लेकर मानवी नियति तक के हर पक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत करे कि श्रेष्ठता की गरिमा स्वीकार करने और उसे जीवन-नीति बनाने के लिए लोकमानस सहमत हो सके ।

मनीषा का तात्पर्य है "ब्राह्मणोचित आदर्शवादिता के साथ जुड़ी हुई बुद्धिमत्ता" । प्रकारान्तर से इसी को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा गया है । जिस पर वह अवतरित होती है, वे तत्वदर्शी, ऋषि, मनीषी कहे जाते हैं । ब्रह्मवर्चस की शोध प्रक्रिया का संचालन, नियमन, मार्गदर्शन, संशोधन, निर्धारण एवं प्रकटीकरण तो एक जगह से होता दीखेगा, पर उसमें योगदान इन सभी तत्वदर्शियों का युग मनीषियों का होगा । नल-नील का कौशल समुद्र पर पुल बाँधने में समर्थ हुआ पर उसके लिए पत्थरों को एकत्रित करना तो असंख्य रीछ- वानरों के ही पुरुषार्थ का फल था । इन प्रयत्नों के पीछे भी वही महान् परिपाटी काम करती देखी जा सकती है ।

प्राचीनतम तत्वदर्शन को मध्यकालीन विकृतियों की कीचड़ में से उबारकर युग के अनुरूप कलेवर में प्रस्तुत करना कितना कठिन और कितना सरल था, इसका निरूपण तो भविष्य ही करेगा । इन दिनों तो इतना ही कहा जा सकता है कि जनमानस के अभिनव सृजन परिवर्तन का यह प्रयास परिपूर्ण प्रौढ़ता के साथ क्रियान्वित होगा ।

ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया में जिस अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय को लक्ष्य माना गया है उसे एक शब्द में श्रद्धा एवं शालीनता का समर्थन कह सकते हैं । ऋषियों का समस्त चिन्तन, प्रतिपादन और समर्थन इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए हुआ इसलिए उस समस्त को ऋचा या मन्त्र कहा गया । पौराणिक गाथाओं में कई प्रसंग घटनाक्रम की दृष्टि से अटपटे या असम्भव लगते हैं तो भी उन्हें धर्मशास्त्रों में गिना जाता है, कारण एक ही है कि उस कथन-लेखन का लक्ष्य जनमानस में आदर्शवादी मान्यताओं का बीजारोपण एवं अभिवर्धन है । इसी लक्ष्य को लेकर युग की समस्त बौद्धिक सम्पदा को यथास्थान रहने देकर मात्र इतना करना है कि उससे अनीति समर्थक निष्कर्ष न निकले । इसके लिए किसी तथ्य को झुठलाने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है । उसके निष्कर्ष भर ऐसे निकालने हैं जो मनुष्य को अनीति विरोधी और नीति समर्थक बनाते चले जायें । इतने भर प्रयास से शोध संस्थान का उद्देश्य भली प्रकार पूरा हो जाता है ।

ब्रह्मवर्चस के शोध प्रयासों एवं भावी सम्भावनाओं पर समस्त मानवजाति का भविष्य आधारित है । असन्तोष की आग में जलते हुए चार सौ करोड़ मनुष्यों के लिए पौराणिक मंथन के फलस्वरूप निकले हुए अमृतवत् ये शोध परिणाम अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे । विश्व का एक ऐसा समग्र दर्शन मिलेगा जिसमें जीवन की प्रत्येक व्यावहारिक समस्याओं का हल होगा ।

इन परिणामों को जब जन-मानस के सम्मुख रखा जायेगा तो एक ऐसे नूतन जीवन दर्शन का स्वरूप प्रकट होगा जो पतित-पीड़ित मानवता को नई दिशा दे सके । यज्ञोपैथी एक प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष की भूमिका सम्पादित करेगी जिसमें मनुष्य की व्याधियों का सम्पूर्ण उपचार हो, सर्वांगीण स्वास्थ्य के विकास का पथ-प्रशस्त हो । माँग स्वास्थ्य सम्वर्धन ही नहीं, वातावरण संशोधन, वनस्पति सम्वर्धन एवं शक्ति जागरण के अनेकानेक पक्षों पर भी इससे प्रकाश पड़ सकेगा । विचार विज्ञान तर्क एवं तथ्यों

के आधार पर उत्कृष्ट चिन्तन की महत्ता को सिद्ध करेगा । धर्म जब अन्धविश्वासों, परम्पराओं एवं साम्प्रदायिक विकृतियों से निकलकर मानवतावादी सिद्धान्तों के आधार पर प्रतिष्ठित होगा तो प्रत्येक विचारशील उसकी महत्ता को स्वीकार करेगा । अदृश्य सत्ता का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए दृश्य ब्रह्माण्ड को ही आधार बनाना होगा । प्रकृति की विलक्षणताओं एवं चेतना की असीम सामर्थ्य से सम्बन्धित रहस्यों का उद्घाटन उस महान् सत्ता की व्यवस्था को समझने हेतु एक नूतन दृष्टि देगा ।

इन विषयों पर सीमित साधनों में असीम सम्भावनाओं को लेकर यह प्रयास द्रुतगति से चल पड़ा है एवं शनैः-शनैः विस्तृत रूप लेता जा रहा है । विगत एक वर्ष में जो प्रगति हुई है उसे देखने वाले इसे दैवी शक्ति का प्रत्यक्ष वरदान ही मानते हैं । सच भी है । जब वैज्ञानिक भौतिक प्रतिपादनों के लिए साधन सरंजाम जुटा लेते हैं तो कोई कारण नहीं कि चेतना अपनी ही उत्कृष्टता के प्रतिपादन के लिए व्यवस्था न जुटा ले ।

सम्भावना यही है कि निकट भविष्य में शोध प्रयासों का कार्य-क्षेत्र समूचा विश्व होगा । देश-विदेश के जिन विचारकों-वैज्ञानिकों से सम्पर्क साधा गया है, उन सभी ने युग की महती आवश्यकता मानकर इस प्रयास की सराहना की है । सैकड़ों पत्र नित्य प्राप्त हो रहे हैं जिनमें जिज्ञासा की भावना भी है और सहयोग की भावना भी । अब तक की प्रगति तथा प्रतिक्रियाओं को देखते हुए विश्व के अनेकों स्थानों पर ब्रह्मवर्चस के समान ही छोटी-बड़ी प्रयोगशालाओं की स्थापना की सम्भावना की जा सकती है । निःसन्देह निकट भविष्य में सर्वाधिक रुचिकर एवं उपयोगी विषय होगा—चेतना की सामर्थ्य । ब्रह्मवर्चस के रूप में उगते हुए उषाकाल के स्वर्णिम सूर्य के रूप में इस कल्पना की झाँकी देखी जा सकती है ।

केन्द्रीय संस्थान का कार्यक्रम यह है कि प्रायः एक हजार शोध छात्रों से काम कराने, मार्गदर्शन एवं सुधार का विधिवत् उपक्रम चलेगा । इसे एक पत्राचार विद्यालय के समतुल्य समझा जा सकता है । इस प्रयोजन में करने और कराने की प्रक्रिया भी जुड़ी हुई है । ब्रह्मवर्चस के अन्तर्गत एक हजार शोधार्थी अपने निर्धारित प्रसंगों पर ठोस मार्ग दर्शन प्राप्त करते रहेंगे । इस तन्त्र को अपने ढंग का एक अनोखा विश्वविद्यालय कहा जाय तो उसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी । प्रयत्न इसका स्तर उच्चस्तरीय एवं गरिमा के अनुरूप ही बनाये रखने का किया जा रहा है ।

इस कार्य को युग साधना माना गया है । जिनमें प्रतिभा तथा योग्यता है, शोधबुद्धि है एवं इन विषयों में रुचि है । उन सभी विज्ञजनों से अपेक्षा की गई है कि ब्रह्मवर्चस में चल रहे अनुसन्धान कार्य में योगदान की बात सोंचे । किस विषय में क्या सहयोग कर सकते हैं इसका निर्धारण स्वयं करें । पुस्तक की ये पंक्तियाँ इस दिशा में मार्ग दर्शन कर सकती हैं । यदि प्रतिभाशाली भावनाशील बुद्धिजीवियों के योगदान का यह सिलसिला चल पड़े तो इस युग की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी । उज्ज्वल सम्भावनाओं से युक्त मानवी भविष्य इस अनुसन्धान से निकले नवनीत के ऊपर ही निर्भर करता है ।

सत्य एवं तथ्य-सन्दर्भ में विचारणीय प्रश्न

इस खण्ड के पिछले पृष्ठों में जिन विषयों का वर्णन किया गया है, उनका व्यावहारिक स्पष्टीकरण हेतु यह उचित समझा गया है कि पाँचों विषयों के विस्तार को प्रश्नों का रूप दे दिया जाय । इससे शोध सहकर्मियों को विषय चुनने में सहायता मिलेगी । साथ ही सीमाबन्धन हो जाने से अनावश्यक भटकाव भी नहीं होगा । विशुद्ध शोध बुद्धि के साथ इन प्रश्नों के समाधान ढूँढ़े जाने हैं । तर्क, तथ्य एवं प्रमाणों के साथ जब ये प्रतिपादन संकलित किए जायेंगे तो इन प्रश्नों में मूल में निहित चिन्तन का साकार रूप सामने आ सकेगा । मूल विषय कुल पाँच हैं—(१) अध्यात्म दर्शन, (२) साधना परक अध्यात्म, (३) जीवन दर्शन (४) पदार्थ विज्ञान, (५) चिकित्सा विज्ञान । वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के इन सभी विषयों में कहीं-कहीं पुनरावृत्ति भी है । इसका कारण मात्र यही है कि उस विषय के ज्ञाता को जिस माध्यम से तथ्यों का संकलन करना है, उसे दृष्टिगत रखकर ही उसकी भाषा वैसी बनानी पड़ी है ।

(अ) अध्यात्म दर्शन

(१) अध्यात्म तत्वदर्शन (ब्रह्मविद्या) का वास्तविक स्वरूप क्या है ? परम्परागत धर्म तथा जीवन को ऊँचा उठाने वाले अध्यात्म में क्या मूलभूत अन्तर है ?

(२) आप्त सिद्धान्तों की वैज्ञानिक युग में क्या उपादेयता है ? इनमें विद्यमान शाश्वत सिद्धान्तों को परिष्कृत रूप में समाजोत्थान के लिए किस तरह अपनाया जा सकता है ।

(३) क्या आत्मा का अस्तित्व है ?—यदि है, तो क्या उसके विज्ञान सम्मत प्रमाण दिए जा सकते हैं ?

(४) आत्मा का स्वरूप एवं बनावट क्या हो सकती है ? विभिन्न धर्म सम्प्रदायों एवं मिशनों ने इसकी व्याख्या किस-किस प्रकार से की है ?

(५) क्या आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है ? यदि है, तो सिद्धान्त एवं प्रमाण दें ।

(६) मरणोत्तर जीवन कैसा है ? मरण के समय की अनुभूतियाँ, पितरयोनि आदि मरणोत्तर प्रसंगों की वैज्ञानिकता क्या है ?

(७) पुनर्जन्म क्या विज्ञान सम्मत है ? क्या इसे आत्मा की शाश्वतता का प्रमाण माना जा सकता है ?

(८) कर्मफल सिद्धान्त किस आधार पर स्वीकार किया जाना चाहिए ? यदि यह स्वीकारजन्य है तो इस जीवन में ही सुकर्मों का प्रतिपादन क्यों न किया जाय ?

(९) आत्मा का उत्थान-पतन क्या नियामक परमसत्ता की एक स्वचालित व्यवस्था है ?

(१०) परमात्मा परब्रह्म, ईश्वर एवं भगवान की परिभाषाएँ क्या हो सकती हैं ?

(११) क्या स्रष्टा की अनुशासन-व्यवस्था पर विश्वास ही आस्तिकता है ?

(१२) क्या ईश्वर है ? यदि है तो कैसा है ? क्या उच्चस्तरीय सिद्धान्तों पर विश्वास भी ईश्वर का एक स्वरूप हो सकता है ?

(१३) आस्तिकता की जीवन में क्या अनिवार्यता है ? समाज के नव-निर्माण में आस्तिकतावाद की यह दिशा धारा किस सीमा तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है ?

(१४) "भाग्यवाद ही नास्तिकता है एवं पुरुषार्थवाद ही आस्तिकता ।" यह उक्ति कहाँ तक उचित है ?

(१५) क्या आत्म सत्ता परमात्म सत्ता का ही अंश है एवं इसके विकास की अनन्त सम्भावनाएँ हैं ? क्या मनुष्य देवात्मा, देवमानव, दिव्य पुरुष बन सकता है ?

(१६) आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण एवं आत्म-विकास की साधना द्वारा क्या व्यक्तित्व का समग्र विकास सम्भव है ?

(१७) क्या ईश्वर, जीव एवं प्रकृति के परस्पर सम्बन्धों को विशिष्ट बनाना ही योगदृष्टि है ।" यह कथन कहाँ तक सत्य है ?

(१८) योग का वास्तविक स्वरूप क्या है—दर्शन या वर्तमान में प्रतिपादित क्रिया अंश ? बिना दर्शन को अपनाए क्या क्रिया पक्ष को ही योग का पर्यायवाची मान लेना चाहिए ? यदि नहीं, तो क्यों ?

(१९) ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, वेदान्त एवं अद्वैत सिद्धान्त की व्यावहारिक विवेचना किस प्रकार की जा सकती है ?

(२०) स्वर्ग और मुक्ति की क्या परिभाषाएँ हैं ? क्या उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, निष्ठा एवं उच्चस्तरीय आस्थाएँ ही जीवनकाल में स्वर्ग-मुक्ति की परिचायक नहीं है ?

(२१) आस्थाएँ एवं सम्वेदनाएँ जीवन में क्या स्थान रखती हैं ? व्यक्ति-निर्माण एवं समाज-निर्माण में इनका किस सीमा तक योगदान हो सकता है ?

(२२) मानवी उत्थान का मूल स्रोत मानव में उत्कृष्ट बनने की कामना है या अन्तःवृत्तियाँ ? जुंग एवं फ्रायडवादी इन मान्यताओं को आध्यात्मिक विचार विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में किस तरह पुनर्निर्धारित किया जा सकता है ?

(२३) सर्वधर्म समभाव के क्या आधार हैं ? विश्व धर्म की आस्था संकट की इस बेला में क्या उपादेयता है ? सर्वभौम धर्म क्या शाश्वत सिद्धान्तों का समुच्चय ही है ?

(२४) समस्त सम्प्रदाय शाश्वत नियमों एवं सामयिक कार्यक्रमों के आधार पर बने हैं ? समय की बदलती गति के साथ क्या इन सामयिक कार्यक्रमों में हेर-फेर आवश्यक नहीं है ?

(ब) साधनापरक अध्यात्म

(१) "मस्तिष्क एक प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है ।" स्नायु विज्ञान के आधार पर इस आध्यात्मिक तथ्य को कैसे प्रतिपादित किया जा सकता है ?

(२) उच्चस्तरीय साधनाओं (षटचक्र भेदन, कुण्डलिनी जागरण, पंचकोशी साधना) का शरीर की सूक्ष्म संरचना से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? विभिन्न प्रतिपादनों का तुलनात्मक विवेचन किस तरह करेंगे ?

(३) साधना के शारीरिक एवं मानसिक क्रियापरक पक्षों का सैद्धान्तिक विवेचन अध्यात्म विज्ञान के सन्दर्भ में किस तरह किया जा सकता है ?

(४) अतीन्द्रिय सामर्थ्य के अनेकानेक पक्षों के विकास में योग साधनाओं का किस सीमा तक योगदान हो सकता है ? इनकी वैज्ञानिकता कहाँ तक प्रामाणित की जा सकती है ?

(५) ध्यान धारणा मात्र मानसिक व्यायाम है या मानव के आध्यात्मिक विकास का महत्त्वपूर्ण सोपान ?

(६) समाधि आत्म साक्षात्कार की ही एक उच्च स्थिति है, इसकी व्याख्या कीजिए ।

(७) तेजोवलय-प्राण विद्युत एवं ब्रह्मवर्चस—मानवी विद्युत के ये तीनों ही स्वरूप साधना की उपलब्धियाँ हैं । इस सन्दर्भ में चमत्कारों (सिद्धियों) की वैज्ञानिकता कैसे सिद्ध की जा सकती है ?

(८) धर्मानुष्ठानों से जुड़ी तपश्चर्याओं के वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार क्या हैं ?

(९) प्रायश्चित प्रक्रिया की वैज्ञानिकता को किस तरह प्रामाणित किया जा सकता है ?

(१०) श्रद्धा के मनोवैज्ञानिक आधार क्या हो सकते हैं ? क्या यह अपने आप में एक स्वतन्त्र विज्ञान है ?

(११) प्रार्थना विज्ञान की व्याख्या किस तरह से की जा सकती है ?

(१२) शब्द ब्रह्म (मन्त्रयोग) की साधना की वैज्ञानिकता आधुनिक सन्दर्भ में किस तरह प्रतिपादित की जा सकती है ?

(स) जीवन-दर्शन

(१) "विधेयात्मक चिन्तन ही स्वर्ग है एवं निषेधात्मक चिन्तन ही नरक"—यह कहाँ तक सत्य है ?

(२) मनोबल के सहारे भौतिक प्रगति एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष दोनों सम्भव हैं, इसको सशक्त प्रतिपादनों द्वारा प्रमाणित करें ।

(३) मनःस्थिति से परिस्थिति बदलना अध्यात्मवाद है एवं परिस्थिति से मनःस्थिति का प्रभावित होना 'भौतिक वाद' । इस उक्ति में कितनी सच्चाई है ?

(४) क्या व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए लोक-व्यवहार के मानवोचित गुणों यथा शिष्टाचार, शालीनता, सज्जनता, अनुशासन की अनिवार्यता है ? यदि है तो नीतिशास्त्र के इन सिद्धान्तों की आध्यात्मिक विवेचना किस तरह की जा सकती है ?

(५) प्रौढ़ता (परिपक्वता) की बाह्य एवं आन्तरिक सन्दर्भ में किस तरह व्यवस्था की जा सकती है ? सन्तुलन, धैर्य, साहस, सतर्कता, विवेकशीलता जैसे गुण व्यक्ति निर्माण की साधना में किस तरह सहायक हो सकते हैं ?

(६) औसत स्तर का जीवनयापन एवं वैयक्तिक उपभोग का सीमाबन्धन समाजोत्थान एवं आन्तरिक विकास में किस सीमा तक सहायक हो सकता है ?

(७) परिवार संस्था में भावनात्मक सहकार किस तरह परिवार निर्माण एवं अन्ततः सुसंस्कृत सार्वभौम समाज की परिकल्पना को साकार कर सकता है ?

(८) विश्वराष्ट्र, विश्वमानव एवं विश्व संस्कृति का स्वरूप कैसे जाना जा सकता है ? अध्यात्म का इसमें क्या योगदान हो सकता है ?

(द) पदार्थ विज्ञान

(१) मनुष्येत्तर जीवधारियों की विलक्षणताओं एवं मानवी विभूतियों का तुलनात्मक विवेचन कर अध्यात्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन किस प्रकार सम्भव है ?

(२) इकोलॉजिकल सन्तुलन प्राणियों के जीवन के लिए जरूरी है । इस सन्तुलन को बनाए रखने के लिए ही अध्यात्म उपचारों की आवश्यकता है, इसे सिद्ध करें ।

(३) प्रकृति, पदार्थ एवं चेतना के मध्य तालमेल की क्या सम्भावनाएँ हैं ? साधना से सिद्धि के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों की चर्चा करें । प्रकृति के भाण्डागार से सिद्धि एवं चेतना के साम्राज्य से ऋद्धि प्राप्त कर सकना किस प्रकार सम्भव है ?

(४) प्रकृति के रहस्यमय संसार की ज्ञात एवं अविज्ञात शक्तियों, भौगोलिक विचित्रताओं का उदाहरण देते हुए प्रकृति के साम्राज्य की इस वैचित्यपूर्ण व्यवस्था की व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है ?

(५) प्रकृति की सोद्देश्यता एवं नियन्त्रण व्यवस्था द्वारा क्या किसी अदृश्य किन्तु बुद्धिमान संचालक सत्ता का परिचय मिलता है ? सामूहिक विभीषिकाओं के रूप में प्रकृति द्वारा दी जाने वाली दण्ड व्यवस्था की आध्यात्मिक विवेचना किस प्रकार की जा सकती है ?

(६) पदार्थों की हलचलों के पीछे झाँकती मर्यादाओं का विवेचन किस प्रकार किया जा सकता है ? प्रतिकण एवं प्रतिजगत की आध्यात्मिक व्याख्या करें ।

(७) परमाणु, सौरमण्डल एवं ब्रह्माण्ड के उदाहरणों द्वारा अणु में विभु के सिद्धान्त की व्याख्या किस प्रकार सम्भव है ?

(८) ग्रह-नक्षत्रों की चाल, आपसी सहकार एवं सन्तुलन तथा अन्तरिक्ष जगत की व्याख्या द्वारा क्या सृष्टि का स्रोत एवं स्वरूप निर्धारित कर सकना सम्भव है ?

(९) सापेक्षवाद की आध्यात्मिक परिणति क्या हो सकती है ?

(१०) क्वाजार्स, पल्सार्स, तारकगुच्छकों एवं ताराविश्व की रहस्यमय जानकारियों की आध्यात्मिक विवेचना किस तरह की जा सकती है ?

(य) चिकित्सा विज्ञान

(१) शरीर के समस्त संस्थानों की कार्य-पद्धति की सामान्यता एवं असामान्यता का विवेचन कीजिए । क्या मानव शरीर की समस्त क्रियाएँ एक मशीन द्वारा सम्भव हैं ? यदि न हों, तो इन विलक्षणताओं के आध्यात्मिक प्रतिपादन दीजिए ।

(२) शुक्राणु, क्रोमोसोम, जीवकोष, मानवी काया एवं ब्रह्माण्ड की संरचना का तुलनात्मक अध्ययन कर क्या लघु में महान् की सम्भावनाओं का प्रतिपादन किया जा सकता है ?

(३) अध्यात्म उपचार, हॉर्मोन्स तथा अन्य सूक्ष्म नाड़ी गुच्छकों में परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

(४) योग साधनाओं एवं मन्त्रों के शरीरगत प्रभाव क्या हैं ? शारीरिक बलिष्ठता एवं मानसिक विकास में इनका क्या योगदान हो सकता है ? क्या शरीरगत परीक्षणों एवं मनोविश्लेषणों द्वारा इन स्थूल परिवर्तनों का अंकन सम्भव है ?

(५) मस्तिष्क एवं मन की मनोविकारों से सम्बन्धित संरचना क्या हो सकती है ? मनोशारीरिक व्याधियों का निवारण क्या आध्यात्मिक मनसोपचार द्वारा सम्भव है ?

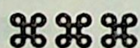
(६) यज्ञ चिकित्सा मात्र वनौषधि यजन है अथवा आस्थायुक्त कर्मकाण्डों, आहार-विहार की तपश्चर्याओं, धर्मानुष्ठानों एवं मन्त्र विज्ञान का मिलाजुला स्वरूप ?

(७) शारीरिक चिकित्सा हेतु प्रचलित अनेकानेक उपचार पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन कर अध्यात्म उपचार पद्धति की पीड़ित मानवता के लिए आवश्यकता सिद्ध करें ?

(८) यज्ञ विज्ञान के अनेकानेक प्रतिपादनों को क्या वैज्ञानिक प्रयोग, परीक्षण की कसौटी पर रखा जा सकता है यदि हाँ, तो कैसे ?

(९) विभिन्न वनौषधियों एवं द्रव्य पदार्थों का रासायनिक विश्लेषण एवं शरीरगत प्रभावों का विवेचन कर क्या यह सिद्ध किया जा सकना सम्भव है कि औषधि एवं पुष्टाई के प्रवेश का यज्ञीय माध्यम ही श्रेष्ठतम माध्यम है ?

(१०) यज्ञ की सफलता में मन्त्रोच्चार की सामर्थ्य किस सीमा तक सहायक हो सकती है ?



परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवन काल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्रनिर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़ पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका-मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोबा जी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि. संवत् २०६८ में जन्में राष्ट्र की आज़ादी में उन्मत्त बने श्रीराम मत्त कहलाने वाले, आचार्य श्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रांति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माता जी के रूप में खड़ा किया, अखण्ड ज्योति पत्रिका-अपनी लेखनी से लिखी ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक-लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उनने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाब लाये कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्व दर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में संपन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरु सत्ता को देखकर त्याग करने की यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उनने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेघ के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से संपन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक आँवल खेड़ा से अपनी जन्मभूमि से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी 12 वर्ष पूर्व आरंभ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतः स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा

हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जोकि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ बनाई गई । १९५३ में एवं क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी ।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों- प्रज्ञा संस्थानों भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों-चरणपीठों का महत्व समझा जा सकता है । नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम--संस्थान बनते हैं ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं । उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्य पूर्ण था । ***परम पूज्य गुरुदेव की महत्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ, इस प्रकार हैं-***

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शांतिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष जन्मा संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर १९११ के दिन आती थी । एक श्री मंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित-पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित बहुत बड़ी जागीर के मालिक । आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था । समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थी । जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है । उनके हाथ से खोदा कुआँ जिसे पूरे गाँव का एक मात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं । पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीर धारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशा धारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था । यह सब देखकर मस्तिष्क पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना । आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इंटर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धन राशि द्वारा विनिर्मित्त है । १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म निर्भर बने है व उच्च पदों पर पहुँचे हैं ।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ-एवं कन्या इंटर कालेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा एवं एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित संस्कारवान आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है । प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्‌भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव निर्माण की सांस्कृतिक-भावनात्मक क्रांति की पृष्ठभूमि रख सके । यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं ।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीया मण्डी, मथुरा में स्थित हैं । परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रांतिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरंभ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तंभ व अन्यान्य

लेखों की पंक्तियों के माध्यम से संपन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुखी, तनाव ग्रसित व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परम वंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी टेण्ड्रिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजा घर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में 1942-43 में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ सहस्त्र कुण्डीयज्ञ की आधार शिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परम वंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं संपन्न हुआ। जन सम्मेलनों छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन विस्तार डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू० गुरुदेव की साधना स्थली व प्रातः काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्त्रकुण्डी यज्ञायोजन संपन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा संपन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्य श्री ने युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरंभ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार- ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने,

सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने 24 कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का तांता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्त ऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को संपन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार संपन्न होते हैं। इस बीच परम वंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ संपन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक अकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ। विलक्षण, दुर्लभ जड़ी बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थ स्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परम-पूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवी स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७९ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज-गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्त्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फल-श्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्त्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों-जैव विद्युत आदि पर पड़ा यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित हैं, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान २४००० से अधिक प्रज्ञा मण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जायें तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ▫▫▫

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन
समग्र वाङ्मय

*. परमपूज्य गुरुदेव पं. **श्रीराम शर्मा** आचार्य जी ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से **लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक** लेखन करवाया, पुस्तकों–पत्रिकाओं में जो प्रकाशित **हुआ, समय–समय पर उनने** अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचार–**सार व सूक्तियाँ जो वे** लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन–जन को दिया, वह इस समय वाङ्मय के खण्डों में है । इनके नाम इस प्रकार हैं:–*

१. परिचयात्मक खण्ड (इसमें सारे वाङ्मय का समग्र परिचय, आराध्य सत्ता की जीवन-गाथा, लीला प्रसंग, अनुभूतियाँ, मिशन की आधारभूत स्थापनाओं से लेकर भविष्य की संकल्पनाओं का विवरण है । इसे विश्वकोश के 'प्रोपीडिया' स्तर की रचना व 'बायोग्राफी' का समन्वित रूप कहा जा सकता है।)
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जागृति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री की साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आधार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म, परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान और विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रांक्रेया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत् एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों व कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विभिन्न आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृतिः इतिहास के कीर्त्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. सभ्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने?
४८. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
४९. युग निर्माण-दर्शन-स्वरूप व कार्यक्रम
५०. इक्कीसवीं सदी-नारी सदी
५१. यत्र नार्यस्तु पूजन्ते, रमन्ते तत्र देवता
५२. समाज का मेरुदण्ड : सशक्त परिवार तंत्र
५३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नव निर्माण
५४. शिक्षा एवं दीक्षा
५५. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग
५६. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५७. प्रेरणा प्रद दृष्टान्त
५८. अमृत कण
५९. ऋषि चिन्तन
६०. पून्यवर की अमृतवाणी-१
६१. पून्यवर की अमृतवाणी-२
६२. पून्यवर की अमृतवाणी-३
६३. पून्यवर की अमृतवाणी-४
६४. विचार-सार एवं सूक्तियाँ-१
६५. काव्य सुधा
६६. युग निमंत्रण
६७. मधु संचय
६८. जीवन संगीत
६९. अपनों से अपनी बात
७०. सृजन शिल्पियों के लिए मार्गदर्शक सूत्र ।

कुल सत्तर खण्डों में युग ऋषि का यद्यपि समग्र लेखन, वक्तृत्व एवं कृतृत्व समाता नहीं है तथापि, अपनी ओर से महत्वपूर्ण सभी अंशों को इसमें लेने का प्रयास किया गया है ।



हर निमिष उनका साथ रहा। अंतिम बीस वर्ष शांतिकुंज हरिद्वार या सूक्ष्म शरीर से हिमालय में बीते। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, सिद्ध तीर्थ गायत्री तीर्थ का निर्माण एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के लिए संकल्पित ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान व समर्थक साहित्य का लेखन इसी अवधि में हुआ। जीवन भर उनने लिखा, हर विषय को स्पर्श किया एवं जीवन मूरि की तरह भाव-संवेदना को अनुप्राणित करने वाली अपनी लेखनी साधना की। स्वयं के बारे में वे कहते थे- ''न हम अखबार नवीस हैं, न बुक सेलर, हम तो युगदृष्टा हैं। हमारे ये विचार, क्रांति के बीज हैं। ये फैल गए तो सारी विश्व-वसुधा को हिलाकर रख देंगे।''

गद्य ही नहीं, पद्य पर भी उनकी उतनी ही पकड़ थी। हजारों को प्रेरित कर उनने सृजनात्मक काव्य लिखवाया। लेखनी उनकी पत्रों के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को बदलती चली गयी। प्राय: श्रेष्ठ लेखक, श्रेष्ठ वक्ता नहीं होते। किन्तु उनकी ओजस्वी अमृतवाणी ने लाखों का कायाकल्प कर दिया। उनके उद्‌बोधनों को, जो उनने भारत के कोने-कोने व मथुरा-हरिद्वार की पावन भूमि में दिए, इस वाङ्मय में देने का प्रयास किया गया है। करुणा छलकाती उनकी वाणी, अंत: को स्पर्श करती हुई जीवन-शैली बदलने को प्रेरित रहती प्रतीत होती है।

सत्तर खण्डों में जो पाँच-पाँच सौ पृष्ठ के हैं, प्राय: वह सब कुछ समा गया है, जो ऋषि युग्म के माध्यम से प्रकट हुआ। जो कमियाँ हैं, वह संपादन मण्डल की हैं। जो कुछ भी श्रेष्ठ है, वह सब उसी गुरु-सत्ता का है, उन्हीं का है, उन्हीं को समर्पित है।


सामवेद
यजुर्वेद संहिता
प्रज्ञा अभियान